Saraswati
1936-II

सरस्वती

सचित्र

मासिक पत्रिका

भाग ३७, खण्ड २
जुलाई-दिसम्बर
१९३६

सम्पादक
देवीदत्त शुक्ल
श्रीनाथसिंह

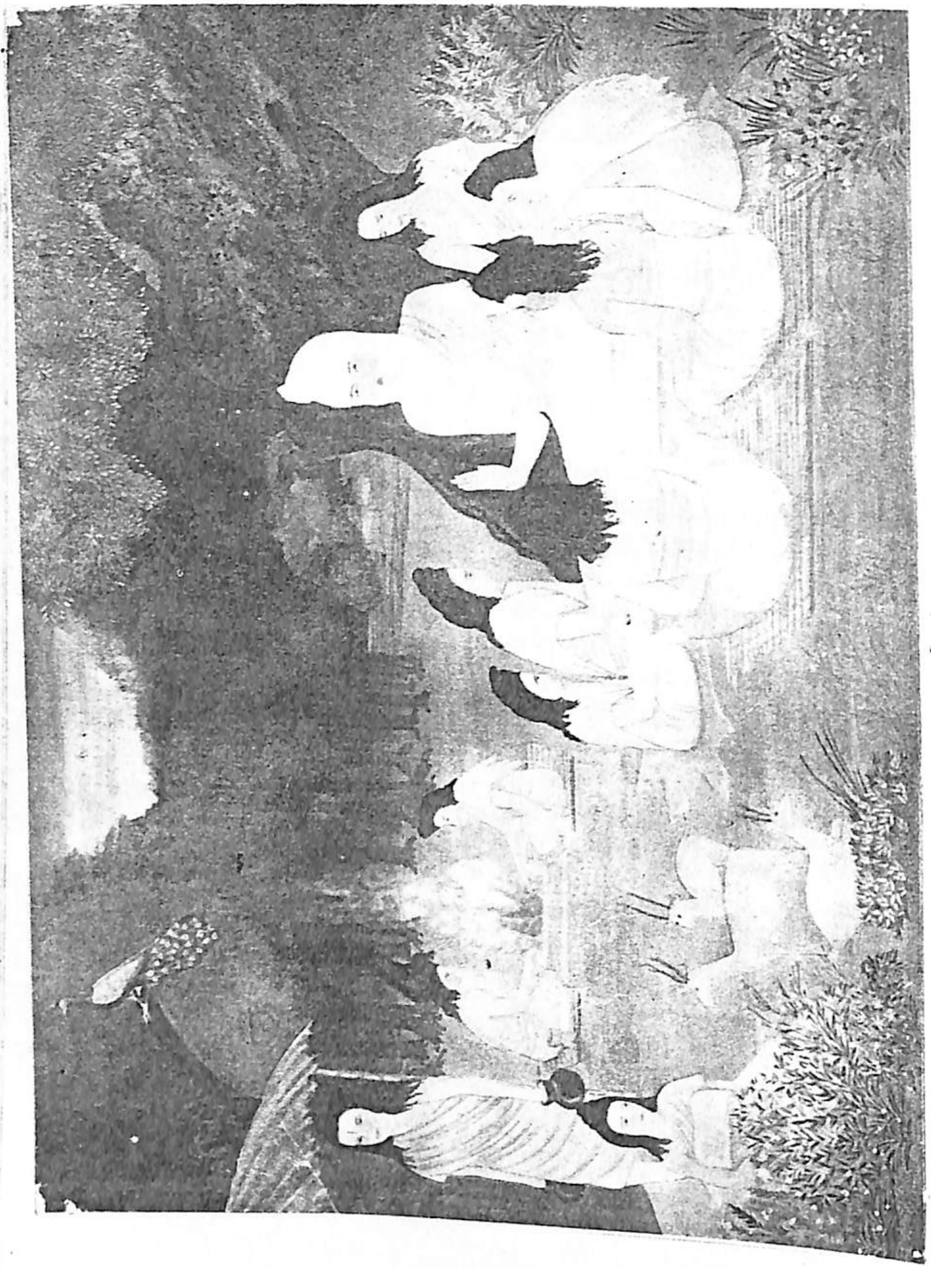
प्रकाशक
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग
वार्षिक मूल्य साढ़े छः रुपये

लेख-सूची

चित्र-सूची

रङ्गीन चित्र

सादे चित्र



प्राचीन गुरुकुल

सरस्व

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

जुलाई १९३६ } भाग ३७, खंड २ संख्या १, पूर्ण संख्या ४३९ { आषाढ़ १

दुःख-गाथा

लेखक, श्रीयुत गोपालशरणसिंह

चारों ओर रोते फिरते हैं दल बादल के,
दामिनी सभीत रहती है छिपी घन में।
रात भर तारे अश्रु-जल बरसा के प्रात,
होते हैं विलीन, द्युति-हीन हो गगन में।
झुलसे प्रखर रवि-रश्मियों से वृक्ष-वृन्द,
खाते हैं समीर के थपेड़े सदा वन में।
कहाँ जायँ, किसको सुनावें दुःख-गाथा निज,
कौन सुनता है दुखियों की त्रिभुवन में ?॥

शीशे का व्यवसाय

शीशे की वस्तुओं का व्यवहार हमारे देश में बढ़ रहा है पर अधिकतर शीशे की वस्तुएँ विदेशों से आती हैं। चूड़ियाँ जो सौभाग्य का चिह्न मानी गई हैं वे भी विदेशों से बनकर आती हैं। हमारे देश में शीशे के बहुत-से कारखाने खुले पर अधिकांश चल न सके। इस समय भी जो कारखाने हैं वे राज्य से कोई संरक्षण न होने के कारण अच्छी स्थिति में नहीं हैं। इस लेख में विद्वान लेखक ने इसी दृष्टि से इस देश के शीशे के व्यवसाय पर विचार किया है।

लेखक, श्रीयुत सीतलासहाय

स्थिति की ज़ोरदार पुकार है कि शीशे के भारतीय व्यवसाय को तुरन्त राज्य की ओर से संरक्षण दिया जाना चाहिए।

नवीन व्यावसायिक युग के आरम्भ से ही भारतवर्ष शीशे की चीज़ों के लिए विदेशों पर आश्रित रहा है। १९२१ से इस देश में विलायती शीशे की औसत ख़रीद सालाना सवा दो करोड़ रुपये के क़रीब होती रही है। १९२९-३० में इस देश ने २ करोड़ ५२ लाख रुपये का विलायती शीशा ख़रीदा है। १९३२-३३ में १ करोड़ ४२ लाख का, और १९३३-३४ में १ करोड़ २२ लाख का। राष्ट्रीय भारत के मतानुसार इतनी लक्ष्मी का निरन्तर प्रति वर्ष इस देश से निस्सरण व्यावसायिक कुप्रबन्ध का एक ज्वलन्त प्रमाण है। शीशे के व्यवसाय की उन्नति के लिए इस देश में स्वाभाविक सुविधायें पाई जाती हैं। फिर भी यह व्यवसाय पिछले पचास बरस से जीवन और मरण की मध्य-रेखा पर ही स्थित रहा है। अगर इस व्यवसाय को राज्य की ओर से उसी प्रकार संरक्षण दिया जाय जैसा अन्य सभ्य देशों में व्यवसायों को दिया जा रहा है तो यह व्यवसाय दस बरस के अन्दर इतना विकसित और सुदृढ़ हो सकता है कि फिर उसे किसी प्रकार के कृत्रिम संरक्षण की आवश्यकता ही न रहे, साथ ही विदेशों के व्यावसायिक आक्रमण का वह आसानी से मुक़ाबिला कर लाखों भारतवासियों की जीविका का स्थायी साधन बन जाय।

शीशे और शीशे की चीज़ों का अर्वाचीन ढंग से बनाना इस देश में सन १८९२ में शुरू हुआ था। १८९२ और १९०० के बीच हिन्दुस्तान में शीशे के अर्वाचीन ढंग के पाँच कारख़ाने खुले। इनमें से दो तो बहुत जल्द बन्द हो गये। तीन बचे। इन तीनों में से एक १८९२ से १८९९ तक चला, दूसरा १८९२ से १९०२ तक और तीसरा १९०० से १९०८ तक चला। ये तीनों कारख़ाने योरपीयन प्रबन्ध में थे। इनके कार्यकर्ता भी योरप के सीखे और अनुभव-प्राप्त लोग थे और पूँजी की इनको ज़रा भी कमी न थी। तथापि ये असफल रहे। इन तीनों कारख़ानों की असफलता का मुख्य कारण यह था कि इन्हें राजकीय संरक्षण नहीं मिला।

इतनी असफलता होने पर भी १९०६–१३ के बीच हिन्दुस्तानी पूँजीपतियों ने शीशे के १६ कारख़ाने खोले और योरपीय तथा जापानी कारीगरों की सहायता से काम चलाया। लेकिन १९१४ तक, अर्थात् योरपीय महायुद्ध होने के समय तक इन १६ कारख़ानों में से १३ कारख़ाने बन्द हो चुके थे और केवल तीन जारी थे, जिनमें से एक भी मुनाफ़े पर नहीं चल रहा था। युद्ध के छिड़ते ही जर्मनी और आस्ट्रिया से शीशे की चीज़ों का आना बन्द हो गया। शीशे की चीज़ों का दाम बढ़ा। इसलिए १९१४ से १९१८ के बीच फिर शीशे के क़रीब २० कारख़ाने खुल गये। युक्त-प्रान्त में फ़िरोज़ाबाद के क़रीब ७ कारख़ाने चूड़ियों के लिए शीशा बनाते थे, बाक़ी लालटेनों की चिमनियाँ और बोतलें। चूड़ियों के कारख़ाने के अलावा अन्य कारख़ानों में उस समय १५ लाख से ज़्यादा पूँजी लग चुकी थी और क़रीब २० लाख प्रतिवर्ष की चूड़ियाँ फ़िरोज़ाबाद के कारख़ानों में बनती थीं। किन्तु जब युद्ध समाप्त हुआ, इन कारख़ानों को राजकीय संरक्षण नहीं मिला और इनमें अनेक को इसी लिए अपना काम-काज बन्द करना पड़ा।

फ़िरोज़ाबाद के कारख़ानों में से २५ कारख़ाने १९२५ के बाद खुले हैं और अब ये रंगीन चूड़ियाँ भी बनाने लग गये हैं। इनके व्यवसाय में १९२५ से विशेष उन्नति हुई है। १९३१ में एक ऐसा कारख़ाना खुला है जिसमें झूठे सीसी मोती और झलझी बनाई जाती हैं। १९२० में २० लाख रुपये की और १९३५ में ११५ लाख की चूड़ियाँ देशी कारख़ानों ने बनाई थीं। शीशे की अन्य चीज़ों की उपज १९२० में २० लाख थी, अब २२ लाख है।

आज इस देश में शीशे के ५१ कारख़ाने हैं। इनमें से २६ चूड़ियों के लिए शीशा और झूठे मोती बनाते हैं। युक्त-प्रान्त की एक फ़ैक्टरी में शीट ग्लास बनता है। लालटेन और शीशियों के बनाने के लिए इस देश में २२ कारख़ाने हैं, जिनमें से ३ युक्त-प्रान्त में हैं, ७ बंगाल में और १ बम्बई में। लालटेनों की चिमनियाँ और ग्लोब २८ कारख़ानों में बनते हैं।

निम्नलिखित आँकड़े प्रान्तवार कारख़ानों के हैं—

प्रान्त	चूड़िया और झूठे मोती के कारख़ाने	अन्य चीज़ों के कारख़ाने
पंजाब	४	१
युक्त-प्रान्त	२३	११
बंगाल	१	१०
बम्बई	३	६
मध्यप्रान्त	४	२
बिहार	४	१
निज़ाम-राज्य	४	१
	२७	३४

प्रतिवर्ष भारत में २० हज़ार टन काँच का सामान बनता है, और जिन कारख़ानों में यह सब बनता है वे छोटे और मध्यम श्रेणी के हैं।

भारतवर्ष में शीशे का व्यवसाय चलाने के लिए अनेक प्राकृतिक सुविधायें हैं। यहाँ शीशा बनाने की सारी सामग्रियाँ काफ़ी हैं और सस्ती मिलती हैं। कोयला और मिल चलाने की शक्ति सुलभ है। कारीगरों की भी अब कमी नहीं, साथ ही देश में शीशे की चीज़ों की माँग इतनी काफ़ी है कि यह व्यवसाय स्वदेशी बाज़ार के भरोसे पर ही आसानी से चलाया जा सकता है।

शीशा बनाने की पहली सामग्री आसेडिक आक्साइड है। यह चीज़ बालू से, पत्थर से, सुहागे से तथा टाले की पथरीली मिट्टी से प्राप्त की जाती है। हिन्दुस्तान के क़रीब क़रीब सभी प्रान्तों में कम या ज़्यादा बालू की खानें हैं।

दूसरी चीज़ बेसिक आक्साइड है। यह सोडा ऐश, साल्ट केक और चूने से मिल सकता है। चूड़ियों के बनाने के लिए ज़िंक आक्साइड और बैरियम कार्बोनेट की आवश्यकता पड़ती है। फिर शीशे के बनाने में आक्साइडिंग एजेंट चाहिए। यह पोटेशियम नाईट्रेट और शोरा से हासिल किया जाता है। इसके अलावा रेड्यूसिंग एजेंट चाहिए, यह ज़िंक डस्ट से मिलता है। और शीशे को रंगीन करने के लिए सेलिनियम और सलफ़ाइड की ज़रूरत पड़ती है। शीशा बनाने के लिए बस इतनी ही सामग्री चाहिए।

भारत में ये सब चीज़ें आसानी से मिलती हैं। एसिडिक आक्साइड अर्थात् बालू के कणों की माँग की पूर्ति इस देश में अनेक* स्थानों से हो सकती है और होती है। बालू इस देश में काफ़ी मात्रा में पाई जाती है और वह बढ़िया क़िस्म की भी होती है। प्रोफ़ेसर बाल्वेल और टरनट का मत है—भारत का बालू उतना ही बढ़िया होता है जितना योरपीय और अमरीकन बालू। बालू का भाव ≡) सेर से ।=) फ़ी मन है। एक टन बालू की क़ीमत ५) से ८।।।) फ़ी टन होती है। नैनी का कारख़ाना ८।=) टन के हिसाब से बालू ख़रीदता है। लोधरा का बालू कलकत्ते में २५) फ़ी टन पड़ता है। बम्बई में यही बालू २५) फ़ी टन के हिसाब से बिकता है।

* निम्नलिखित स्थानों में बालू काफ़ी मात्रा में पाई जाती है—

पंजाब	में	जैजून	में	(जालन्धर)
युक्त-प्रान्त	,,	लोधरा	,,	(नैनीताल के पास)
,,	,,	बरगढ़	,,	,,)
,,	,,	पनवई	,,	(बांदा)
राजपूताना	,,	सवाई माधोपुर	में	
बूंदी रियासत	,,	बरोधिया	,,	
बिहार-उड़ीसा	,,	मंगलहाट (राजमहल		
,,	,,	पत्थरघाट	,,	
मध्य-प्रान्त	,,	जबलपुर	,,	
बरोदा		पेधामो	में	
,,		सनखेड़ा	,,	
मदरास		पेनार	,,	
,,		एनानोर	,,	

सुहागा भारतवर्ष में तिब्बत से आता है और बहुत आसानी से और काफ़ी मात्रा में मिल सकता है। इस सम्बन्ध में भी भारतवर्ष को स्वाभाविक सुविधा प्राप्त है।

सोडा (रेह) घटिया क़िस्म के शीशे में काम आता है। बम्बई के कारख़ानों में सोडा ३०% शीशे में डाला जाता है। कलकत्ते में ४० से ५०% तक, युक्त-प्रान्त में ७० से ७५% प्रतिशत। यह चीज़ भारत में काफ़ी मात्रा में नहीं मिलती है। सन् २६-३१ के बीच १० लाख हंडरवेट सोडा ऐश प्रतिवर्ष औसतन इस देश में विदेशों से आया है। लेकिन सोडा ऐश बनाने की पूर्ण सम्भावना इस देश में है। जब योरपीय महायुद्ध छिड़ा था, रेह को साफ़ करने का काम इस देश में चल निकला था। काठियावाड़ के ध्रांगधरा-रियासत में 'श्री शक्ति अलकली वर्क्स' नाम का एक कारख़ाना अभी खुला है, जो भारतवर्ष को काफ़ी मात्रा में सोडा ऐश दे सकता है।

चूना हिन्दुस्तान में ख़ूब पाया जाता है। ज़िंक आक्साइड चूड़ियों को रंग देने के काम में आता है। यह बाहर से आता है। शोरा बिहार में ख़ूब है। ज़िंक डस्ट बाहर से आता है। सेंदुर के अलावा बाक़ी सब रंगीन करने की सामग्री बाहर से आती है। अर्थात् चंद साधारण चीज़ों को छोड़कर शीशा बनाने की सारी महत्त्वपूर्ण सामग्री यहाँ सुलभ है। फिर भी हिन्दुस्तान विदेशी शीशे की चीज़ें बहुत काफ़ी मात्रा में विदेशों से ख़रीदने के लिए विवश है। विदेश से आई हुई शीशे की चीज़ों में अधिकांश मात्रा चूड़ियों की होती है। पहले इस देश में लाख की चूड़ियों के पहनने का रवाज था। इस देश की सुहागिनों के सौभाग्य का यह चिह्न था। लाख केवल हिन्दुस्तान में ही पैदा होती है, इसलिए अगर लाख की चूड़ियाँ ही सौभाग्य का चिह्न समझी जातीं तो आज भी अपने सौभाग्य के चिह्न के लिए भारतीय ललनायें अंशतः भी इनके लिए परदेश पर आश्रित न रहतीं। १९३१-३२ में १ करोड़ २२ लाख की शीशे की परदेशी वस्तुओं में ३५ लाख रुपये की अकेली चूड़ियाँ थीं, और सन् १९३२-३३ में १ करोड़ ४२ लाख में ४० लाख रुपये की अर्थात् इस विदेशी माल में क़रीब २९ प्रतिशत चूड़ियाँ होती हैं। भारतवर्ष दो करोड़ रुपये की चूड़ियाँ प्रतिवर्ष इस्तेमाल करता है, जिसमें से १९२९-३० में ८५ लाख की चूड़ियाँ बाहर से आई थीं और ११५ लाख की हिन्दुस्तान में बनी थीं। इस व्यवसाय ने पिछले दिनों ख़ूब उन्नति की है। १९२० में केवल २० लाख की चूड़ियाँ इस देश में बनी थीं। विदेशी चूड़ियों के व्यवसाय में ब्रिटिश पूँजीपतियों की दिलचस्पी नहीं है। इस माल का सारा बाहरी व्यापार ज़ेकोस्लोवेकिया और जापान के हाथ में है। १९२९-३० में ज़ेकोस्लोवेकिया से ६५·४% और जापान से २९·३ प्रतिशत चूड़ियाँ इस देश में आई थीं। जर्मनी ने २ प्रतिशत और आस्ट्रिया ने ·९ प्रतिशत चूड़ियाँ भेजी थीं। इँग्लैंड, अमरीका और बेलजियम से एक पैसे की भी चूड़ी इस देश में नहीं आती।

कोई कारण नहीं मालूम होता कि हम चूड़ियों के लिए जापान या ज़ेकोस्लोवेकिया पर क्यों आश्रित रहें? हमारे देश में इस व्यवसाय के लिए स्वाभाविक और प्राकृतिक सुविधायें हैं। किन्तु चूँकि हम बहुत देर में सो कर जागे हैं और व्यावसायिक कुशलता की घुड़दौड़ में ये दोनों देश हमसे आगे बढ़ गये हैं, इसलिए आज हम पीछे हैं। अगर केवल १० वर्ष के लिए इस देशी व्यवसाय को राजकीय संरक्षण मिल जाय तो जापान और ज़ेकोस्लेवेकिया दोनों हमारे सामने नीचा देख जायँगे।

चूड़ियाँ साधारणतः तीन प्रकार की होती हैं—रेशमी, फ़ैन्सी और मामूली। विदेशों से मामूली चूड़ियाँ नहीं आतीं। केवल फ़ैन्सी और रेशमी चूड़ियाँ ही जापान और ज़ेकोस्लोवेकिया इस देश में भेजते हैं। और भारतीय व्यवसाय को इन्हीं दो प्रकार की चूड़ियों में विलायती चूड़ियों से मुक़ाबिला करना पड़ता है।

चूड़ियों का देशी व्यवसाय ज़्यादातर आगरे-ज़िले में फ़िरोज़ाबाद में होता है। प्रदर्शनियों में अक्सर इसका प्रदर्शन होता है, और पाठकों ने चूड़ियों का बनना इन प्रदर्शनियों में ज़रूर देखा होगा। कलकत्ते में भी चूड़ियों के बनाने का एक कारख़ाना है, लेकिन चूड़ियों का व्यवसाय मुख्यतः फ़िरोज़ाबाद का ही है।

फ़िरोज़ाबाद के ग्लास एंड बैङ्गिल इंडस्ट्रियल असोसियेशन ने टैरिफ़ बोर्ड के सामने अपनी लागत का जो नक़शा पेश किया था उससे स्पष्ट है कि चूड़ियों के बनाने में जापान की लागत से यहाँ कुछ ही ज़्यादा लागत पड़ती

यह नक़शा विदेशी शीशे की चीज़ों की क़ीमत ज़ाहिर करता है।

नाम माल	लाख रुपयों में सन् १९२९-३०	विदेशों से आयात सन् १९३१-३२	सन् १९३२-३३
चूड़ियाँ	८५·२३	३५	४०
झूठे मोती	३०·६१	९	१२
बोतलें व शीशियाँ	३९·४९	२४	२४
लैम्प की चिमनियाँ	२१·०८	७	७
वैज्ञानिक शीशे	१·३४	१	१
शीट ग्लास	३०·९७	२०	२३
मेज़ के शीशे का सामान	१३·२९	६	५
अन्य सामान	२९·९२	२०	२३
कुल	२५१·९३	१२२	१४२

इस नक़शे से मालूम होता है कि कौन कितना माल बेचता है।

नाम देश	सन् १९३१-३२	सन् १९३२-३३
जापान	४२	[illegible]
बेलजियम	१३	[illegible]
इँग्लैंड	१३	[illegible]
जर्मनी	८	[illegible]
ज़ेकोस्लोवेकिया	२३	[illegible]
आस्ट्रिया	१	[illegible]
इटली	२	[illegible]
अन्य देश	८	[illegible]
कुल	१२२	[illegible]

इस नक़शे से ज़ाहिर होगा कि कौन माल कितना कहाँ से आता है—

१९२९-३०

प्रतिशत

	ज़ेकोस्लोवेकिया	जापान	इटली	जर्मनी	ब्रिटेन	अमरीका	आस्ट्रिया	पोलैंड
चूड़ियाँ	६५·४	२९·३	×	२	×	×	०	×
झूठे मोती	३७·१	२०·५	१८·२	५·७	×	×	५·१	×
सोडे की बोतलें	+	×	×	४६·८	४६·३	×	×	×
दूसरी बोतलें	×	५५·८	×	२०·४	१६·१	×	×	×
चिमनियाँ	५·६	११·२	×	४४·८	×	२१·३	८·१	×
शीशे के वैज्ञानिक वर्तन	×	०·२	×	५६·६	२५·९	×	×	६·५
शीशे की चादरें व प्लेट	६·२	५·४	×	५·६	१६·२	×	×	६०·५
मेज़ का सामान	२·१	६८·०	×	८·७	७·०	×	×	११·४
दूसरे क़िस्म की चीज़ें	×	४३·४	×	१९·१	१८·१	×	×	६·६
अन्य क़िस्म की चीज़ें	२८·४	२९·४	२·२	१३·६	९·५	१·८	१·६	०·४

। अतएव साधारण संरक्षण से भी विलायती माल का
कना इस देश में असम्भव किया जा सकता है।

१ टन वज़न की चूड़ियों के बनाने में निम्नलिखित
र्च पड़ता है—

कच्चा माल अर्थात् सामग्री पर		१७२·७ रुपये
भट्ठी	... ...	३·२४ ,,
मज़दूरी	... ...	१००)
कोयला	... ...	४१)
दफ़्तर और प्रबन्ध पर	...	६)
मरम्मत	... ...	६·२८ ,,
विविध	... ...	४·५ ,,
बारदाना व पैकिङ्ग	...	१४०·६२॥ ,,
बिक्री पर कमीशन	...	१५)
मुनाफ़ा व सूद पूँजी पर	...	५·२५ ,,
कुल ख़र्च		४९४·५९ ,,

१ टन शीशे में ९०० ग्रुस चूड़ियाँ होती हैं। इस
साब से २·९३ पैसे अर्थात् १ दर्जन चूड़ी की क़ीमत ३
पड़ती है। जापानी चूड़ियाँ हिन्दुस्तान में २·७ पैसे
दर्जन पड़ती हैं। फ़र्क़ बहुत मामूली है। १९२९-३०
र १९३०-३१ के आँकड़ों के आधार ये चूड़ियाँ और
ठे मोतियों का औसत आयात ९० लाख १२ हज़ार प्रति-
रहा है। इससे गवर्नमेंट ने २७ लाख २२ हज़ार रुपये
गी ली है, अर्थात् ३० प्रतिशत। अगर राजकीय संरक्षण
व्यवसाय को दिया जाय तो विलायती चूड़ियाँ एकदम
भी हो जायँगी। ९० लाख रुपये के बजाय ४५ लाख
या का ही माल आवेगा। इस पर अगर ५० प्रतिशत
र्थात् रुपये के माल पर आठ आने चुंगी लगा दी जाय
भी गवर्नमेंट को २२ लाख ६८ हज़ार का मुनाफ़ा
गा। इस प्रकार संरक्षण करने से सरकारी मालगुज़ारी
भी फ़र्क़ नहीं आता। किन्तु अगर फ़र्क़ आता भी हो तो
देश की भावी सम्पन्नता के लिए राजकीय नीति को
णिक घाटे का ख़याल न करते हुए संरक्षण की ओर ले
ना चाहिए। शीशियों और बोतलों के बनाने में इस
र संरक्षण पाकर भारत का यह व्यवसाय विदेशी
पार को नीचा दिखा सकता है। कुछ दिनों के बाद
अगर संरक्षण उठा भी लिया जायगा तो यह व्यवसाय
अपने पैरों खड़ा होकर विदेशी व्यवसाय का मुक़ाबिला
कर सकेगा।

चूड़ियों के बाद बोतलें और शीशियाँ ही इस देश में
सबसे ज़्यादा मात्रा में बाहर से आती हैं। बोतलों और
शीशियों का विदेशी व्यवसाय तीन देशों के हाथ में है—
ब्रिटेन, जापान और जर्मनी।

सोडा की बोतलें १९२९ और १९३० में ४६·३
इँग्लैंड से और ४६·८ जर्मनी से आई थीं। १९३१ में ४८
प्रतिशत जर्मनी से, २१ प्रतिशत इँग्लैंड से और ३० प्रति-
शत जापान से। ३०·४ जर्मनी से और १६·२ ब्रिटेन से
आई हैं। १९२९ और १९३० में ३१·४८ लाख रुपये की
बोतलें हिन्दुस्तान में बाहर से आई थीं, जिनमें १५·५
लाख रुपये की बोतलें सोडावाटर की थीं। हिन्दुस्तानी
कारख़ाने सोडावाटर की बोतलें नहीं बनाते। २४ लाख
की साधारण बोतलों और शीशियों में ८ लाख की बोतलें
और शीशियाँ हिन्दुस्तान में बनी थीं।

भारतवर्ष में बोतलें और शीशियों के बनाने में निम्न-
लिखित ख़र्च होता है—

१ टन शीशियों के बनाने में

कच्चा माल	५८·०९
मज़दूरी	७७·६१
कोयला	३९·०४
दफ़्तर या देख-रेख	२४·३७
पैकिंग	४·६६
मरम्मत	३·०६
बिक्री पर कमीशन	८·७
सूद	२८·३०
छीज	७·८९
मुनाफ़ा	५·५५
कुल टोटल	२५७·४४

एक टन में ४० ग्रुस शीशियाँ होती हैं। इस हिसाब से
एक ग्रुस के दाम ५·२८ रुपये पड़ते हैं। भारतवर्ष में
जापानी शीशियाँ ३·८९ रु० फ़ी ग्रुस पड़ती हैं। १·२८ रु०
फ़ी ग्रुस की कमी आती है। यदि हम विदेशी शीशियों
और बोतलों पर ५० प्रतिशत संरक्षण कर लगा दें तो यह
व्यवसाय अवश्य उन्नति कर जायगा।

इन्हीं सब बातों को देखकर १९३२ में टैरिफ़-बोर्ड ने
शीशे के व्यवसाय को १० वर्ष के लिए संरक्षण देने की
सिफ़ारिश गवर्नमेंट से की थी, लेकिन गवर्नमेंट ने इस
सिफ़ारिश को अस्वीकार कर दिया। इसके स्थान पर गवर्न-
मेंट ने ब्रिटिश सोडा ऐश पर से चुंगी माफ़ कर दी। सोडा
ऐश शीशी के बनाने में काम आता है। उसका भाव घट
जाने से गवर्नमेंट का कथन है, शीशे के व्यवसाय को
सहायता मिलेगी, इसमें कुछ अंश तक ज़रूर सचाई है,
लेकिन उचित सहायता तो संरक्षण से ही मिलेगी।

इसी प्रकार शीट ग्लास की भी बात है। शीट ग्लास की
हालिया तैयारी में प्रति सौ वर्ग फ़ुट के माल पर ८·४३ रु०
लागत है; और बाज़ार का भाव ६।) प्रति सौ वर्ग फ़ुट है।
इस माल का मुख्य व्यापारी बेलजियम है। यद्यपि उसे
शीट ग्लास बनाने में भारतवर्ष से ज़्यादा ख़र्च होता है,
तो भी वह अपना बढ़िया माल दूसरे देशों में बेचता है
और घटिया माल हिन्दुस्तान में केवल कच्चे माल और
मज़दूरी की लागत पर बेच देता है।

साधारण शिक्षित जनता इस बात की आवश्यकता
का अनुभव कर रही है कि देश के व्यवसायों को राजकीय
संरक्षण मिलना चाहिए। केवल गरम दल के लोग ही
नहीं, भारतवर्ष के व्यवसायी और पूँजीपति भी इस बात
को समझ रहे हैं कि व्यवसायों की उन्नति राज्य की ड्यूटी
है। ज्यों-ज्यों इस देश में बेकारी बढ़ती जाती है, लोग
यह पूछते हैं कि अपने घर के लोगों को बेकार रखना और
विदेश के लोगों को कारबार में लगाये रहना कहाँ की
बुद्धिमत्ता और आर्थिक नीति है? मसल मशहूर है कि
'पहले लोग घर में चिराग़ जलाते हैं, फिर मसजिद में।'
ज्यों-ज्यों हम अपने देश की स्वाभाविक सुविधाओं और
प्राकृतिक सम्पन्नता से परिचित होते जाते हैं, हम उस
आर्थिक नीति के समझने में असमर्थ हो जाते हैं जिसके
आधार पर शीशे का व्यवसाय आज अरक्षित रक्खा गया
है। हम इस आर्थिक नीति को समझ नहीं पाते कि जब
किसी चीज़ को हम अपने देश में ही बना सकते हैं और
बिना किसी असाधारण कष्ट के तो उसे हम बाहर से
क्यों ख़रीदें?

भारत-सरकार ने शीशे के व्यवसाय के बारे में खोज
करके संरक्षण के सम्बन्ध में अपनी राय ज़ाहिर करने का
काम टैरिफ़-बोर्ड के सिपुर्द कर दिया था। टैरिफ़-बोर्ड
प्रेरणा पर श्री डाक्टर जे० मथाई की अध्यक्षता में श्री फ़
इब्राहीम रहमतउल्ला और श्री जी० टी० बोग की सहाय
से इस विषय पर एक रिपोर्ट तैयार की गई, जिसे हाल
ही भारत-सरकार ने प्रकाशित भी किया है। शीशे के व्य
साय के सम्बन्ध में इसका अन्तिम निर्णय यह है—

"फ़िस्कल कमीशन ने व्यवसाय के सम्बन्ध में जि
बातों को स्वाभाविक सुविधायें बताया है उन सब
परीक्षा करने के पश्चात् और जिनके आधार पर संरक्ष
का दावा किया जा सकता है उन सब बातों की अच्छ
तरह तौल-नाप करके हम इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि शी
का व्यवसाय उन सब कसौटियों पर खरा उतरता है। इ
व्यवसाय में कच्ची सामग्री में बालू की मात्रा सबसे अधि
काम में आती है। यह इस देश में इफ़रात है और इस बा
की आशा करने की मज़बूत वजहें हैं कि मुनासिब इन्तज़ा
से हिन्दुस्तानी बालू उत्तम से उत्तम शीशा बनाने के का
में लाई जा सकती है। इस समय इस देश में सोडा ऐश नह
मिलता है। लेकिन इस एक असुविधा के मुक़ाबिले
अनेक स्वाभाविक सुविधायें हैं जो इस व्यवसाय के लिए
इस देश में मौजूद हैं। सोडा ऐश सफलतापूर्वक हिन्दु
स्तान में बनाया गया है। और इस बात की आशा करने
के लिए काफ़ी कारण हैं कि जल्द ही इसका बनना फिर
शुरू हो जायगा और देशी सोडा ऐश काफ़ी मात्रा में
मिलने लगेगा। चूना यहाँ अनन्त मात्रा में पाया जाता है।
कच्ची सामग्री की बाक़ी और चीज़ों की इतनी कम मात्रा
में ज़रूरत पड़ती है कि उनके बारे में स्वाभाविक सुविधा-
असुविधा का प्रश्न ही नहीं उठता। लेकिन उनमें से भी
चन्द चीज़ें: जैसे शोरा, सोहागा और गेरुए यहाँ आसानी
से मिल जाते हैं। इस देश में बढ़िया क़िस्म का कोयला
और रिफ़रेक्टरी मेटेरियल भी मिलता है। यह विशेष
सुविधा भी है। प्रारम्भिक काल में कारीगरों के अभाव
की जो आशङ्का थी वह भी नहीं रही और मज़दूरों की
अधिकता और नया काम सीखने की उनकी कुशलता के
मुक़ाबिले में कारीगरों की रही-सही कमी बिलकुल महत्त्व
नहीं रखती। अन्त में सबसे बड़ी सुविधा तो यह है कि
इस देश में इस माल की बहुत ज़्यादा खपत हो सकती है।
अन्य देशों की अपेक्षा यहाँ यह माँग बढ़ भी सकती है।

समुद्र और ख़ुश्की के रास्ते से हिन्दुस्तान की शीशे की बनी हुई चीज़ें दूसरे देशों में बिक्री के लिए भेजी जा सकती हैं। इसलिए हम लोग इस बात को पूरे तौर से मानते हैं कि इस व्यवसाय में वे तमाम बातें पाई जाती हैं जिनके आधार पर यह संरक्षण का अधिकारी कहा जा सकता है।"

भारत-सरकार ने इस व्यवसाय की रक्षा के निमित्त मार्च १९३१ में विलायती शीशे पर १५ प्रतिशत से बढ़ा कर २० प्रतिशत चुंगी कर दी थी और सितम्बर १९३१ में २५ % । किन्तु इतने से इस व्यवसाय की रक्षा सम्भव नहीं।

ब्रिटिश सरकार ने इस व्यवसाय के सम्बन्ध में गतवर्ष एक ऐसी बात कर दी है जिससे हिन्दुस्तानी पूँजीपतियों, पत्रकारों और शिक्षित जनता में कुछ असन्तोष-सा पैदा हो गया है। वह यह कि ब्रिटेन में बने हुए सोडा ऐश पर चुंगी कम कर दी गई है। गवर्नमेंट का कहना है कि इससे सोडा ऐश के दाम घटेंगे और शीशे के व्यवसाय को सहायता मिलेगी, लेकिन भारतीय दृष्टिकोण यह है कि इससे हिन्दुस्तान के सोडा ऐश का व्यवसाय नष्ट हो जायगा।

'लीडर' के शब्दों में टैरिफ़-बोर्ड ने दस वर्ष के लिए असली क़ीमत पर २५ प्रतिशत चुंगी शीट और प्लेट शीशे पर, ५० प्रतिशत असली क़ीमत पर चूड़ियों और झूठे मोतियों पर, और ५० प्रतिशत चिमनी इत्यादि अन्य शीशे की चीज़ों पर तजवीज़ की थी। लेकिन गवर्नमेंट ने इन तजवीज़ों को नामंज़ूर करना मुनासिब समझा और उसके स्थान पर ब्रिटेन या उपनिवेशों के बने हुए सोडा ऐश पर पूरी पूरी चुंगी का रिफ़ंड करना और अन्य देशों से आये हुए सोडा ऐश पर १० प्रतिशत से ज़्यादा जितनी चुंगी होगी सबका सब रिफ़ंड करना मंज़ूर किया। इस प्रकार शीशे के व्यवसाय को शीट ग्लास में २ प्रतिशत और अन्य प्रकार के शीशों में ३ प्रतिशत संरक्षण मिलता है। केवल इतना संरक्षण शीशे के व्यवसाय के लिए ज़्यादा सहायक नहीं हो सकता और इस व्यवसाय को इस प्रकार सहायता देने का जो तरीक़ा अख़्तियार किया गया है उससे हिन्दुस्तान का सोडा ऐश-व्यवसाय पैदा होते ही मर जा सकता है।

(लीडर ३०-६-३५)

आवश्यकता इस समय यह है कि शीशे के व्यवसायी और पूँजीपति अपनी माँग गवर्नमेंट के सामने रक्खें। नया विधान आ रहा है। इनका कर्तव्य है कि ये व्यवस्थापक सभाओं में अपना प्रतिनिधित्व बढ़ावें, वोटरों में अपनी माँग के औचित्य का प्रचार करें और समाचार-पत्रों में अपना पक्ष ज़ोरदार शब्दों में रक्खें। भारतीय व्यवसायों के संरक्षण के लिए हिन्दुस्तान की जनता और हिन्दुस्तान के नेता हमेशा हर तरह से तैयार रहे हैं। यह तजवीज़ केवल शीशे के व्यवसायियों के लिए ही लाभदायक नहीं, अन्य व्यवसायी भी इससे फ़ायदा उठा सकते हैं।

१९३३-३४ के आँकड़ों के अनुसार विदेशी माल का २० प्रतिशत सूती कपड़ा होता है, ११ प्रतिशत मशीन, ८½ प्रतिशत धातु की चीज़ें, ५ प्रतिशत मोटर, ४ प्रतिशत तेल, २·१३ प्रतिशत शक्कर है और १·३५ प्रतिशत शीशा। स्वदेशी की अगर कोई आर्थिक योजना बनाई जाय तो साफ़ ज़ाहिर है कि हमारा पहला ध्यान कपड़े की ओर जाना चाहिए, फिर मशीन की तरफ़, फिर धातु की ओर। और इसी प्रकार क्रमशः मोटर और तेल की तरफ़। मशीनें हम अभी नहीं बना सकते; मोटर हम अभी नहीं बना सकते। लेकिन जो हम बना सकते हैं वह क्यों न बनावें? कपड़ा, शक्कर, शीशा, लोहा आदि के व्यवसायी सुसंगठित होकर गवर्नमेंट से विदेशी व्यवसायों से अपनी रक्षा के लिए ज़ोरदार माँग क्यों न पेश करें? राष्ट्रीय भारत ऐसे मामलों में बराबर उनके साथ रहेगा।

पुरुष के प्रति स्त्री के प्रेम पर प्रकाश डालनेवाली एक करुण कहानी

विवशता

लेखक, श्रीयुत भगवतीचरण वर्मा

मैं पुरुष हूँ, इसलिए कभी कभी मैं यह विश्वास कर लेने का दम भर लेता हूँ कि मैं स्त्री के प्रति पुरुष के प्रेम को समझता हूँ; पर मैं आज तक पुरुष के प्रति स्त्री के प्रेम को नहीं समझ सका। स्त्री के प्रेम में कितना त्याग है, कितना आत्म-समर्पण है और कितनी विवशता है—मैं सच कहता हूँ कि स्त्री के इस रूप को देखकर मुझे आश्चर्य होने लगता है! मैं कभी कभी पूछ बैठता हूँ—क्या स्त्री ने प्रेम करने के लिए ही जन्म लिया है?

लोग मुझसे भले ही सहमत न हों, पर मैं तो यह जानता हूँ कि प्रेम पुरुष के लिए एक क्षणिक भावना है, जिसमें वासना और अहमन्यता का ज़बर्दस्त पुट रहता है; वह पुरुष का एक ऐसा खेल है जिसे खेलने में उसे सुख मिलता है; पर है वह एक खेल ही—उससे अधिक कुछ नहीं।

पर स्त्री के लिए प्रेम अस्तित्व है—शायद प्रेम ही उसका जीवन है। ऐसा क्यों है, इसी को तो मैं नहीं समझ सका।

और इसी लिए जब आप मुझसे पूछेंगे कि किस अभिलाषा से प्रेरित होकर तथा किस आशा को लेकर मैं उस दिन लीला के यहाँ गया था तब कहूँगा कि मैं उस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर देने को तैयार नहीं हूँ। जीवन की कुरूपताओं की विवेचना कुछ थोड़े-से समय के लिए भले ही रुचिकर हो, पर कुरूपता अन्त में कुरूपता है, उसे अधिक देर तक देखते रहने पर आँखें ही नहीं जल उठती हैं, सारा शरीर जल उठता है; यहाँ तक कि उस जलन से आत्मा तक झुलस उठती है। और इसलिए इतना ही कह देना काफ़ी होगा कि उस दिन मैं लीला के यहाँ पहुँचा था—भूला हुआ-सा एक चोर की भाँति!

पाँच वर्ष पहले लीला मेरी सब कुछ थी—मेरी दुनिया थी। वह मेरे पड़ोस में रहती थी, साथ खेली थी और साथ पढ़ी थी। हम दोनों के पिता अभिन्न मि[त्र] ... मेरा ऐसा विश्वास था कि मैं लीला से प्रेम क[रता] ... एक दिन लीला के दरवाज़े बरात आई और ... पति के साथ बिदा हो गई। लीला की ओर मे[री] ... उसके बाद साल भर तक पत्रों द्वारा और चल[ता रहा] ... धीरे पत्र-व्यवहार भी बन्द हो गया।

और इसके बाद मेरा भी विवाह हो गया। ... सुन्दर थी—लीला से अधिक। अन्य बातों में ... बुरी न थी। धीरे धीरे मैं लीला को भूल-सा गया।

उस दिन एकाएक लीला की याद ... गई—एक अजीब प्रकार का क्रन्दन लिये हुए। ... का समय कम नहीं होता। न जाने कितने परिवर्त[न] ... वर्ष में हो चुकते हैं। पर पाँच वर्ष बाद उस दिन ज[ब] ... की याद मेरे हृदय में कसक उठी तब मैं अप[ने को न] रोक सका। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि अतीत लौ[ट आया] है—उसी तीव्रता के साथ, उसी उन्माद को लिये ...

× × ×

मुझे देखकर लीला को आश्चर्य हुआ, ... आश्चर्य उसके मुख पर स्पष्ट था। पर उसका ... मुझे सुख-दुख से सूना मालूम पड़ा—केवल ... उसके आगे कुछ नहीं।

उस समय संध्या हो गई थी। लीला के प[ति] रामकिशोर टहलने निकल गये थे और लीला ... अपने दो बच्चों के साथ बैठी थी। मुझे देखते ... उठ खड़ी हुई—"अरे, रमेश—तुम!" उसने ... हुए कहा!

"हाँ लीला मैं ही हूँ!" मुस्कराने का प्रयत्न कर[ते हुए] मैंने उत्तर दिया।

एक क्षण के लिए हम दोनों की आँखें एक दू[सरे से] मिलीं, और फिर लीला ने अपनी आँखें ज़मीन पर ...

हुए एक ठंडी श्वास ली। "अच्छा हुआ तुमने मेरी याद तो कर ली।"

लीला के इस उत्तर से मैं स्तब्ध-सा रह गया। मैंने लीला को एक बार सिर से पैर तक देखा—और मैं आपसे सच कहता हूँ, मैं सिहर उठा। मेरे सामने एक प्राणहीन स्त्री खड़ी थी; लीला बदल गई थी—बुरी तरह बदल गई थी। उसके गाल पीले पड़ गये थे, उसकी आँखों की चमक जाती रही थी। उसके मुख पर सूनेपन की स्पष्ट रेखायें विद्यमान थीं, उसकी आत्मा का सूनापन उसके सारे अस्तित्व में छलक पड़ा था।

क़रीब ग्यारह बजे रात बाबू रामकिशोर लौटे। उस समय वे होश में कम थे।

बाबू रामकिशोर की अवस्था लगभग चालीस वर्ष की थी। सुन्दर मुख जिसकी कान्ति समय के बहुत पहले उतर गई थी और बड़ी बड़ी आँखें जो गड्ढे में धँस रही थीं तथा जो कभी कभी बुरी तरह चमक उठती थीं। बाबू रामकिशोर शहर के बहुत बड़े रईसों में गिने जाते थे। कहा जाता है कि लीला के पिता ने लीला का विवाह करते समय रामकिशोर के रुपयों पर अधिक ध्यान दिया था। पर लीला के पिता को सम्भवतः यह पता न था कि वे अपनी पुत्री का विवाह एक बिगड़े हुए आदमी के साथ कर रहे हैं।

रामकिशोर ने मेरा कुशल-क्षेम पूछा। इतना जानता हूँ कि मेरा कुशल-क्षेम पूछने में उन्हें कुछ परिश्रम करना पड़ा था, और इसके बाद वे सोने चले गये।

दूसरे दिन बाबू रामकिशोर ने मेरा खुले हृदय से स्वागत किया। मुझे उस समय यह देखकर आश्चर्य हुआ कि लीला को बाबू रामकिशोर का मेरा स्वागत करना अच्छा नहीं लग रहा है।

संध्या के समय बाबू रामकिशोर मुझे और लीला को सिनेमा ले गये। लीला गई तो थी, पर मुश्किल से। ऐसा मालूम होता था कि लीला को सिनेमा अच्छा नहीं लग रहा है। वह बिलकुल भावनाहीन बैठी रही। इंटर-वेल में बाबू रामकिशोर ने मुझसे धीरे से कहा—"रमेश एक आध पेग लोगे ?"

"नहीं"। मैंने उत्तर दिया।

रामकिशोर लीला से यह कहते हुए, "अभी आता हूँ" बाहर चले गये। मैंने लीला से पूछा,—"लीला, बाबू रामकिशोर की क्या हालत है ?"

बड़े करुण स्वर में लीला ने उत्तर दिया—"रमेश, यह न पूछो !"

"नहीं, बतलाओ तो ! मैं देख रहा हूँ कि तुम बड़ी दुखी हो।" मैंने आग्रह किया।

"तो सुनो—हम पर बहुत अधिक क़र्ज़ लदा है। ये दुनिया को मानो जानते ही नहीं। सामर्थ्य से बाहर ख़र्च करते हैं। आय बढ़ाने के लिए घुड़दौड़ खेलते हैं, और वहाँ हारकर अपना दुःख दूर करने के लिए शराब पीते हैं।"

लीला की बात समाप्त भी न हो पाई थी कि रामकिशोर लौट आये। उस समय उनकी आँखें कुछ लाल थीं। लीला ने उनकी ओर देखा—कुछ देर तक उसकी आँखें रामकिशोर की आँखों से मिली रहीं। फिर रामकिशोर हँस पड़े। उन्होंने लीला का हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा—"देखो मुझे माफ़ कर दो—मैं तो ग़लतियाँ करने का इतना आदी हो गया हूँ कि अब मेरा सँभलना ग़ैर मुमकिन है।" यह कहकर उन्होंने लीला की ओर से अपनी आँखों के आँसुओं को छिपाने के लिए मुँह फेर लिया। लीला ने एक ठंडी साँस भरी और एक विवश भाव से उसने मेरी ओर देखा।

हम लोग सिनेमा से लौटे—और उस रात मुझे नींद नहीं आई। मैं न जाने क्या क्या सोचता रहा। उस आलीशान मकान का वह आलीशान कमरा जिसमें मैं लेटा हुआ था, एक अजीब कुरूपता की नज़र से मुझे देख रहा था। मुझे ऐसा मालूम होता था कि वैभव का पिशाच बराबर मेरे सिर पर पहरा दे रहा है।

सुबह हुई—बड़ी मुश्किल से। जलपान करके मैंने कपड़े पहने। बाबू रामकिशोर ने पूछा,—"कहो भाई, क्या प्रोग्राम है ?"

"शहर घूमने का इरादा है !"

बाबू रामकिशोर ने ड्राइवर को आवाज़ दी—"रमेश बाबू को शहर घुमा लाओ !" और उन्होंने मुझसे कहा—"मुझे क्षमा कीजिएगा। मेरी तबीअत ठीक नहीं है !"

दो घण्टे बाद जिस समय मैं लौटा, मैंने देखा कि लीला बैठी रो रही है—रो नहीं रही बल्कि हिचकियाँ ले रही है, और बाबू रामकिशोर शून्य-दृष्टि से अपने चारों

ओर देखते हुए बैठे थे। मुझे देखकर लीला ने बल लगा कर अपने को सँभाला। उसने खाने का प्रबन्ध किया, और हम सब खाने बैठे। पर उस समय न लीला ने खाया और न बाबू रामकिशोर ने। उन दोनों के कारण मुझसे भी नहीं खाया गया।

खाना खाकर जब हम लोग उठे तब बाबू रामकिशोर ने मुझसे कहा—"रमेश, मेरी तबीअत ठीक नहीं है, मैं तो लेटूँगा। शाम को हम लोग घुड़दौड़ चलेंगे। इस समय लीला से बातें करो।" यह कहकर वे अपने कमरे में चले गये।

हम दोनों थोड़ी देर तक हाल में बैठे रहे। मैंने कहा—"लीला, तुम इतनी उदास क्यों हो—इससे लाभ ही क्या है ?"

"शायद कुछ नहीं।," किंचित् मुस्कराते हुए लीला ने कहा—"लाभ तो किसी काम में नहीं है और उदास होना तो एक स्वाभाविक बात है।"

लीला ने बात ठीक कही थी। एकाएक मैं लीला से पूछ बैठा—"क्या तुम बाबू रामकिशोर से प्रेम करती हो ?"

मुझे पता नहीं कि किस भावना से प्रेरित होकर मैं यह प्रश्न कर बैठा, और उस प्रश्न के पूछने का मुझे आज तक दुःख है। लीला ने बड़े आश्चर्य के साथ मेरी ओर देखा, मानो मैंने कोई बहुत अनुचित बात कह दी हो। फिर उसने बाबू रामकिशोर के कमरे की ओर देखते हुए कहा—"हाँ रमेश ! बहुत अधिक—इतना अधिक कि जिसकी तुम कल्पना तक न कर सकोगे !"

हम दोनों मौन हो गये; वह बड़ा-सा हाल बिलकुल स्तब्ध था; घड़ी घड़ी का "टिक-टिक" शब्द साफ़ सुनाई पड़ रहा था, और मैं सच कहता हूँ कि घड़ी की वह आवाज़ मुझे भयावनी लग रही थी। लीला अपने गाल पर हाथ रक्खे कुछ सोच रही थी; उसका पीला मुख न जाने क्यों धुँधला पड़ गया था।

मैंने अनुभव किया कि वहाँ का सारा वातावरण मेरे लिए असह्य हो उठा। अपनी कल्पना के सौन्दर्य के स्थान पर वास्तविकता की कुरूपता देखकर मैं विचलित हो उठा। थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद मैंने लीला से कहा—"लीला, मुझे तुम्हारी हालत देखकर बड़ा दुःख हुआ है। मैं आज शाम को जाना चाहता हूँ।"

"इतनी जल्दी !" लीला चौंक-सी उठी। फिर उ[...] धीरे से कहा—"अच्छी बात है !"

सन्ध्या-समय लीला ने मेरा असबाब कार पर रख दिया। बाबू रामकिशोर उस समय घर पर नहीं थे, शा[...] वे घुड़दौड़ चले गये थे। लीला मुझे पहुँचाने के लि[...] स्वयं स्टेशन चली।

गाड़ी आने में अभी आध घण्टे की देर थी। [...] दोनों वेटिंगरूम में बैठे थे। एकाएक लीला की दृष्टि से [...] चौंक उठा। उसकी दृष्टि में अजीब बात थी—एक अज[...] करुणा थी, एक अजीब विवशता थी। थोड़ी देर तक [...] मुझे एकटक देखती रही। फिर उसने धीरे से मुझ[...] कहा—"रमेश ! तुमने मुझसे कभी प्रेम किया है ? है न[...]

मैं चुप रहा, पर मेरा हृदय तेज़ी से धड़क रहा था बिना मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किये हुए लीला कह[...] गई—"रमेश, तुम मुझे क्षमा कर देना, मैं बड़ी अभ[...]गिनी हूँ, बड़ी पापिनी हूँ। मैंने तुम्हारे साथ एक ब[...] अपराध किया है। रमेश, जिस समय तुम घूमने गये थे, [...] एक वारंट से गिरफ़्तार हो गये। उनके ऊपर दो सौ रुप[...] की डिग्री थी और उनको छुड़ाने के लिए, रमेश, मैं[...] तुम्हारे सूटकेस से तुम्हारे दो सौ रुपये निकाल लिये !"

मैं स्तब्ध-सा रह गया, मैंने केवल इतना कहा—"लीला !"

लीला के हृदय का बाँध फूट पड़ा—"रमेश ! आ[...] दिन भर मैं रोई हूँ, और न जाने कब तक मुझे रोना पड़ेगा पर मैं क्या करूँ, मैं कितनी विवश हूँ। वे मेरे सब कुछ हैं—अपने सारे ज़ेवर मैंने बेच दिये, अब मैं कंगाल हो गई हूँ। लेकिन भगवान् ने मुझे इसके आगे भेजा—मुझे आज चोरी भी करनी पड़ी। रमेश, तुमसे मेरी यही प्रार्थना है कि तुम मुझे क्षमा करो और हमारे लिए भगवान से प्रार्थना करो !"

उस समय गाड़ी प्लेटफ़ार्म पर आ गई थी। रामकिशोर के ड्राइवर ने मेरा असबाब कुली से उठवा कर गाड़ी पर रखवाया। मैंने लीला से कुछ कहा नहीं, चुपचाप लीला का हाथ पकड़े हुए मैं गाड़ी पर बैठ गया। थोड़ी देर तक मैं कुछ सोचता रहा, फिर मैंने लीला को एक बार अच्छी तरह से देखा।

और मैंने लीला के मुख पर क्या देखा, यह मैं नहीं

बतला सकता। पर इतना कह सकता हूँ कि लीला को देखकर मेरे हृदय में एक प्रकार की मुर्दनी-सी छा गई—लीला के हृदय की भावनायें बरबस मेरे हृदय में प्रवेश कर गई थीं।

मैं एकाएक चौंक उठा, रेल ने सीटी दी थी। लीला गाड़ी के बाहर खड़ी थी। उसने धीरे से कहा—"रमेश! मुझे क्षमा करते हो न—बोलो?"

गाड़ी धीरे धीरे चलने लगी। उस समय मैंने लीला से कहा—"लीला, मैं कह नहीं सकता कि तुमने कोई अपराध किया है या नहीं। यदि तुमने अपराध किया है तो मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ। भगवान् तुम्हारा भला करें।"

गाड़ी तेज़ हो गई थी। मैं लीला को देख रहा था और लीला मुझे देख रही थी—एकटक, मौन!

मैं

लेखक, श्रीयुत गिरिजाशंकर मिश्र 'गिरीश'

मैं सुनहले पंख का खग
जग मधुर मेरा बसेरा!

भोर होते ही सजग हो
नीड़ से कल-गान गाता।
अर्द्ध-चेतन विश्व को
मीठे स्वरों से गुदगुदाता।
फिर सुरीले कंठ से
कहता हुआ प्यारे सवेरा।
मैं सुनहले पंख का खग
जग मधुर मेरा बसेरा।

फिर अनिल की पीठ पर चढ़
मैं विपिन की ओर जाता।
प्रिय अरुण को खोजता
रँग में उषा के डूब जाता।
झिलमिलाते पंख से
मैं दूर कर देता अँधेरा।
मैं सुनहले पंख का खग
जग मधुर मेरा बसेरा।

मैं करौंदे की सुगन्धित
वायु में हूँ घूम लेता
फिर उतरकर डालियों पर
मैं ज़रा-सा झूम लेता।

मोतियाँ पहने कली
करतीं सदा सत्कार मेरा।
मैं सुनहले पंख का खग
जग मधुर मेरा बसेरा।

चल बकुल की वीथियों में
देखता वन के किनारे।
शंख-पुष्पी ने मुलायम
दूब पर काढ़े सितारे।

चीर कर अपना हृदय
डाले जहाँ मन्दार डेरा।
मैं सुनहले पंख का खग
जग मधुर मेरा बसेरा।

रस का रस चूम कर
मैं तितलियों का साथ देता।
वेणु का मर्मर समझता
औ' मलय का मर्म लेता।

मुझ रसिक के ही लिए
विधु ने विपुल वैभव बिखेरा।
मैं सुहनले पंख का खग
जग मधुर मेरा बसेरा।

प्रिय प्रकृति के वक्ष में
देखी बकों की मञ्जु-माला
और पीती चौंकती-सी
जल सलोनी सुमृग-बाला।

क्या कहूँ सन्ध्या पटी का
कौन है सुन्दर चितेरा।
मैं सुहनले पंख का खग
जग मधुर मेरा बसेरा।

लौटता गोधूलि में
जग से रुदन औ हास लेता।
राग उर से फूटता है
जब ज़रा-सी साँस लेता।

हैं छलकते प्राण मेरे
फैलता आवेश मेरा।
मैं सुनहले पंख का खग
जग मधुर मेरा बसेरा।

पश्चिमी युक्त-प्रान्त में जल-बल की बिजल

लेखक, श्रीयुत श्यामनारायण कपूर

यह बात स्पष्ट होती जाती है कि इस युग में पुराने ढङ्ग से खेती करके किसान फ़ायदे में नहीं रह सकते। आधुनिक ढङ्ग से कृषि करने के लिए सबसे पहले बिजली की ज़रूरत है जो यन्त्रों को चलावे। संयुक्त-प्रान्त के पश्चिमी ज़िलों में बिजली को किसानों के लिए सुलभ करने का प्रयत्न जारी है। इस कार्य्य में एक करोड़ से ऊपर धन व्यय हो चुका है और सन [illegible] तक में तीन करोड़ से ऊपर का बजट बन चुका है। इस लेख में लेखक महोदय ने इस योजना का इतिहास इसकी भावी सम्भावनायें बताते हुए कुछ आवश्यक शिफ़ारिशें भी की हैं।

भारतवर्ष में नहरें निकालकर सिंचाई के लिए पानी पहुँचाने का चलन बहुत पुराना है। ब्रिटिश राज्य की स्थापना के बहुत पूर्व नहरों का समुचित उपयोग भारत में होता था, परन्तु ब्रिटिश राज्य में नहरों को सींचने के काम में लाने के साथ ही उनसे आधुनिक उद्योग-धन्धों आदि के लिए शक्ति उत्पन्न करने का भी काम लिया जाने लगा है। भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। युक्त-प्रान्त का मुख्य उद्यम विशेषकर कृषि ही है। अतएव कृषि की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित होना सर्वथा स्वाभाविक है। वास्तव में आज-कल पुराने ढङ्ग से खेती-किसानी करने से काम नहीं चलता। खेती से समुचित लाभ उठाने के लिए आधुनिक उपायों का अवलम्बन करना आवश्यक है। इन साधनों को व्यवहार में लाने के लिए 'शक्ति' की ज़रूरत पड़ती है। शक्ति उत्पन्न करने के भी आज-कल कई साधन प्रचलित हैं। इन समस्त साधनों और रीतियों में जल-बल-द्वारा विद्युत्-शक्ति उत्पन्न करना बहुत सरल और सुगम है, विशेषकर उन प्रदेशों में जहाँ प्राकृतिक जल-प्रपात प्रचुर पाये जाते हैं अथवा कृत्रिम उपायों से सुगमतापूर्वक उनका निर्माण किया जा सकता है। वास्तव में संसार में सबसे अल्प-मूल्य की, अनेक कारणों से विशिष्ट लाभप्रद, तथा अधिक मात्रा में व्यवसाय के उपयोग में आने के उपयुक्त यदि अब तक किसी शक्ति का आविष्कार हुआ है तो वह जल-बल से उत्पन्न विद्युत्-शक्ति ही है। जल-बल से विद्युत् उत्पन्न करने में सस्ती बिजली मिलने के साथ ही सिंचाई के लिए प्रचुर मात्रा में पानी भी मिल जाता है और [illegible]
बहकर नष्ट हो जानेवाले इस जल का [illegible] लाभ
लिया जाता है।

योजना का इतिहास—युक्त-प्रान्त [illegible]
यमुना के दोआब में सिंचाई का काम [illegible]
(गङ्गा-नहर) से लिया जाता है। इस नहर [illegible]
एकड़ भूमि को लाभ पहुँचता है और [illegible]
लाख रुपये की वार्षिक आय होती है। इस नहर [illegible]
सेकेन्ड ५,००० से लेकर ८,००० घन फ़ुट पानी बह[illegible]
जिस मैदान से होकर यह नहर बहती है उसकी ढाल [illegible]
प्रतिमील से लेकर १० फ़ुट प्रतिमील तक है। अत[illegible]
मैदान में प्राकृतिक प्रपातों का होना असम्भव है। औ[illegible]
बल से विद्युत्-शक्ति उत्पन्न करने के लिए जल-प्रपा[illegible]
होना परमावश्यक है। अतएव इस नहर के पानी को [illegible]
से लेकर अलीगढ़ तक पहुँचाने के लिए रास्ते में १३
जल-प्रपात बनाये गये हैं। इन प्रपातों की औसत ऊँचा[illegible]
फ़ुट के लगभग है। इन १३ प्रपातों में से ८ प्रपात [illegible]
शक्ति उत्पन्न करने के योग्य समझे गये। [illegible] में
से चार प्रपातों—बहादराबाद, भोला, पलरा और [illegible]
से बिजली पैदा करने का निश्चय किया गया। [illegible]
में इन प्रपातों से विद्युत् उत्पन्न करने की [illegible]
योजनायें तैयार की गईं। इन योजनाओं को कार्य-[illegible]
परिणत करने के लिए [illegible] रुपये हुए।
योजनाओं के तैयार होने के कई वर्ष पूर्व [illegible]
बहादराबाद-प्रपात से विद्युत् के उत्पन्न करने का
लिया जाने लगा था और उसमें [illegible] ख़र्च
हो चुके थे। बहादराबाद का प्रपात पहले [illegible]

ऊँचा था। इस योजना के बनने पर उसकी ऊँचाई १९ फ़ुट कर दी गई। इस प्रपात से मुरादाबाद, बिजनौर और सहारनपुर के प्रमुख नगरों, ईस्ट इण्डियन रेलवे के विभिन्न स्टेशनों को बिजली पहुँचाने और बिजनौर तथा मुरादाबाद के ज़िलों में रामगङ्गा नदी से पानी पम्प करने के लिए बिजली पैदा करने का आयोजन किया गया। इसी तरह भोला से मेरठ, गाज़ियाबाद और हापड़ तथा निकटवर्ती ग्रामीण भागों को और पलरा एवं सुमेरा के प्रपातों से खुर्जा को बिजली पहुँचाने तथा काली नदी से पानी को जो अब तक स्वतः बहकर नष्ट हो जाया करता था, गङ्गा की नहर में पम्प करने का आयोजन किया गया।

संयुक्त योजना—आरम्भ में इन तीनों योजनाओं को अलग अलग मंज़ूरी दी गई थी। परन्तु १९२९ में जब ये कार्य में परिणत की जाने लगीं तब इन तीनों योजनाओं को एक संयुक्त योजना का रूप दे दिया गया और पश्चिमी युक्त-प्रान्त के सात ज़िलों—सहारनपुर, मुज़फ़्फ़रनगर, मेरठ, बुलन्दशहर, अलीगढ़, मुरादाबाद और बिजनौर (अब १० ज़िले—आगरा, मथुरा और एटा और शामिल कर लिये गये हैं।) को बिजली पहुँचाने का प्रबन्ध किया गया। इस तरह पश्चिम में सहारनपुर, शाहदरा से लेकर पूरब में चन्दौसी और कासगञ्ज तक तथा दक्षिण में आगरा तक बिजली पहुँचाने का प्रबन्ध किया गया। इन तीनों योजनाओं को परस्पर सम्बद्ध कर देने से मध्यवर्ती ग्रामीण भागों में औद्योगिक एवं कृषि-सम्बन्धी कार्यों के लिए बिजली का पहुँचाना सुगम हो गया और घटनावश किसी एक उत्पादक केन्द्र के बिगड़ जाने पर अथवा किसी केन्द्रविशेष की ताक़त से ज़्यादा बिजली की माँग हो जाने पर तीनों का परस्पर सहायता करना भी सम्भव हो गया। इस संयुक्त योजना को कार्य-रूप में परिणत करने के लिए भारतमंत्री ने (१,३८,५६,०७०) की मञ्ज़ूरी दी। तीनों स्थानीय योजनाओं के संयुक्त किये जाने पर वर्तमान योजना तैयार हुई। इस योजना से ५,००० से अधिक आबादी के ८८ नगरों को रोशनी, पंखों और छोटे उद्योग-धन्धों आदि के लिए बिजली पहुँचाने और ग्रामीण शाखाओं के निर्माण के द्वारा सैकड़ों पाताल-कुओं से गन्ने के खेतों आदि की सिंचाई के लिए पानी पहुँचाने का काम शुरू कर दिया गया। इसके साथ ही रामगङ्गा और काली नदी का बेकार बह जानेवाला पानी भी सिंचाई के लिए पम्प किया जाने लगा। संयुक्त योजना बनाते समय ग्रामीण शाखाओं को उन्नत बनाने की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया था और न यह ख़याल ही किया गया था कि गाँवों में भी बिजली लोकप्रिय हो सकेगी। उस समय केवल २२० मील लम्बी ग्रामीण लाइनें बनाने और लगभग १०० कृषि-फ़ार्मों को विद्युत्-शक्ति पहुँचाने का प्रबन्ध किया गया था। परन्तु बाद को माँग बढ़ जाने पर १,००० मील लम्बी ग्रामीण शाखाओं एवं ३०० ग्रामीण कृषि-फ़ार्मों को विद्युत्-शक्ति पहुँचाने का प्रबन्ध करना पड़ा।

१९३१-३३ तक कृषि, व्यवसाय एवं उद्योग-धन्धों आदि की स्थिति बहुत सन्तोषजनक न होते हुए भी बिजली की माँग में आशातीत वृद्धि हुई और प्रस्तावित स्थानों के अतिरिक्त और भी कई नवीन स्थानों तक बिजली के पहुँचाने का प्रबन्ध करना पड़ा। इनमें मेरठ केन्टूमेन्ट (लागत १·८१ लाख), आगरा से टूँडला (१·७४ लाख) और अलीगढ़ से कासगञ्ज (२·०६ लाख) की शाखाओं का निर्माण विशेष उल्लेखनीय है। इन नागरिक शाखाओं के अतिरिक्त बहुत-सी ग्रामीण शाखायें भी तैयार की गईं। ३०-३१ से लेकर ३४-३५ तक २३० मील लम्बी १७५ नवीन ग्रामीण शाखायें तैयार की गईं। इनसे इनकी लागत के अनुकूल सरकार को समुचित आय भी हुई।

पाताल-कुओं-द्वारा सिंचाई का आयोजन—भोला, सुमेरा और बहादराबाद की स्थानीय योजनाओं को मिलाकर संयुक्त योजना का रूप देने के बाद १९३१ में इसकी पूरी पूरी व्यावसायिक क्षमता का पता चला। उसी वर्ष जल-बल की विद्युत्-द्वारा सिंचाई करने की एक विस्तृत योजना तैयार की गई। इस योजना में उन भागों को पानी पहुँचाने का विशेष ध्यान रक्खा गया जहाँ गङ्गा-नहर अथवा गङ्गा एवं यमुना तथा रामगङ्गा, काली और शारदा नदियों से सिंचाई करना सम्भव न था, और जहाँ कृत्रिम उपायों से पानी पहुँचाने से खेती को विशेष लाभ पहुँचने की आशा थी। इन भागों में पानी पहुँचाने के लिए एक बार हिमालय-प्रदेश में बरसात का पानी जमा करने की भी एक योजना तैयार की गई थी, परन्तु वह व्यावहारिक सिद्ध न हो सकी। विभिन्न ज़मींदारियों में पाताल-कुओं के पानी से जल-बल की विद्युत्-द्वारा

सफलता-पूर्वक सिंचाई किये जाते देखकर सरकार ने भी सिंचाई के लिए अपनी ओर से पाताल-कुएँ बनवाने का निश्चय किया और १९३४ में पाताल-कुओं के निर्माण की एक पञ्च-वर्षीय योजना तैयार की गई।

वर्ष	कुँओं की संख्या	सरकार को विद्युत्-शक्ति से आय (लाख रुपयों में)	विद्युत् शक्ति की माँग	
३५-३६	५३२	२·५५	२२७३	किलोवाट
३६-३७	१०१०	४·५३	४४६०	,,
३७-३८	१४२०	७·३०	६३७७	,,
३८-३९	१४६२	१०·६०	८०९५	,,
३९-४०	१४६२	१२·६८	९३३०	,,

इस योजना के अनुसार १९३८ की ग्रीष्म-ऋतु तक मुरादाबाद-ज़िले में ३५४, बिजनौर में १०७, बदायूँ में ३९०, मुज़फ़्फ़रनगर में ३४, मेरठ में १९३, बुलंदशहर में १६७ और अलीगढ़ में ७० पताल-कुएँ बनकर तैयार हो जायँगे और १५ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई का प्रबन्ध हो जायगा। १,८३,००० एकड़ गन्ना, ३,५०,००० एकड़ गेहूँ तथा ९०,००० एकड़ दूसरी फ़सलों की सिंचाई का प्रबन्ध हो जायगा। इसके साथ ही इन विभिन्न ज़िलों में कृषि-सम्बन्धी अन्य व्यवसायों के लिए भी विद्युत्-शक्ति मिल सकेगी।

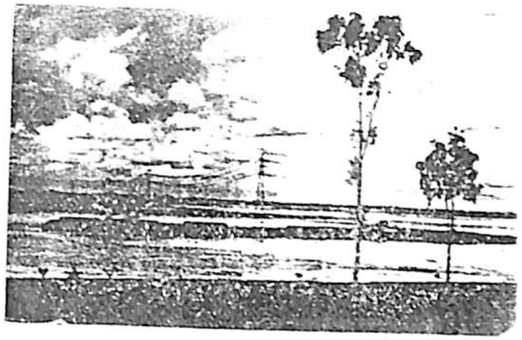
सिंचाई का इतना विराट् आयोजन किये जाने पर भी योजना के ही कार्यक्षेत्र के कुछ भाग ऐसे रह जाते हैं जिन्हें इस योजना से विशेष लाभ नहीं पहुँचता। मथुरा और आगरा ज़िलों में स्थानीय परिस्थितियों के कारण पाताल-[illegible] का निर्माण असम्भव जैसा है। अस्तु इन भागों में [illegible] पहुँचाने का प्रबन्ध किया जा रहा है। इन ज़िलों [illegible]नी जिन भागों में पाताल-कुएँ बनाने में विशेष [illegible] पड़ती, वहाँ पाताल-कुएँ बनाये जाते हैं। [illegible]नी को पम्प करके गंगा-नहर-द्वारा सिंचाई

पाताल

करना।

(२) ५

रोशनी आदि



[भोला के निकट विद्युत्-उत्पादक प्रपात का दृश्य]

के लिए पानी पहुँचाया जाता है। दौराला के निकट २७ कुएँ बनवाकर मथुरा-ज़िले की [illegible] ५,३४३ एकड़ भूमि को पानी देने का प्रबन्ध किया गया है, जहाँ उसकी ऊँचाई के कारण अब तक नहर के द्वारा पानी पहुँचाना सम्भव नहीं था। इसी तरह की दो योजनायें और भी काम कर रही हैं। यदि ये सफल प्रमाणित हुईं तो मेरठ और बुलंदशहर में सिंचाई के लिए सब पानी पाताल-कुओं से लिया जाया करेगा और गंगा-नहर का पानी दक्षिणी ज़िलों के लिए सुरक्षित रक्खा जायगा।

नवीन परिष्कृत योजना—पाताल-कुओं की योजना को कार्य-रूप में परिणत करने के लिए और उनसे सिंचाई के लिए, पानी लेने के लिए १०,९३० किलोवाट विद्युत्-शक्ति का प्रबन्ध किया जाना आवश्यक था। पाताल-कुओं की योजना के तैयार किये जाने के पहले विद्युत्-शक्ति के उत्पादन की जो योजना तैयार की गई थी उसके अनुसार इतनी अधिक शक्ति का प्रबन्ध होना सम्भव नहीं था। पाताल-कुओं के लिए अधिक शक्ति की आवश्यकता होने के साथ ही साथ घरेलू, कृषि-सम्बन्धी तथा औद्योगिक कार्यों के लिए भी बिजली की माँग बढ़ रही थी। अतएव १९३१ में संयुक्त योजना का परिष्कृत और परिवर्द्धित किया जाना आवश्यक हो गया। १९३४ में संयुक्त-प्रान्तीय सरकार ने सम्पूर्ण विस्तृत योजना की जाँच के लिए ग्रिड-जाँच-कमिटी की नियुक्ति की। मदरास और बम्बई के अनुभवी इलेक्ट्रिकल इंजीनियर, पंजाब के अर्थ-विशेषज्ञ और प्रान्तीय कौंसिल के दो प्रभावशाली सदस्य इस कमिटी के सदस्य नियुक्त किये गये। इस कमिटी ने सम्पूर्ण योजना को पूरा करने के

लिए १९४८—४९ तक ४,३२,८२,३५९) व्यय करने का अन्दाज़ा लगाया है।

कमिटी की रिपोर्ट के बाद पाताल-कुओं की योजना को शीघ्र-से-शीघ्र कार्य-रूप में परिणत करने और शीघ्र ही पूरा करने का निश्चय किया गया। लगभग १,५०० कुओं के लिए १०,९७० किलोवाट विद्युत्-शक्ति का प्रबन्ध करने के लिए शीघ्र ही नहर पर तीन प्रपातों से तथा चन्दौसी में भाफ़-द्वारा बिजली उत्पन्न करने का आयोजन किया गया। इस नवीन आयोजन से सम्पूर्ण स्कीम आगामी तीन वर्षों (१९३६, १९३७, और १९३८) में पूरी हो जायगी और २७,९०० किलोवाट विद्युत्-शक्ति के उत्पादन का प्रबन्ध हो जायगा। इनमें से १०,५०० किलोवाट छोटे उद्योग-धन्धों में, १०,९७० सरकारी पाताल-कुओं में, ३,४०० कृषि-सम्बन्धी कार्यों तथा ज़मींदारों के कुँओं में और २,९४० किलोवाट घरेलू कार्यों में ख़र्च होने का अन्दाज़ा लगाया गया है।

इस विराट् आयोजन को कार्य-रूप में परिणत करने के लिए १९३४–३५ के अन्त तक १६८·३३ लाख रुपये ख़र्च किये जा चुके हैं। परिष्कृत और अभिवर्द्धित योजना को पूरा करने में सब मिला कर ३३७·३१ लाख रुपये लगेंगे। इसका ब्योरा अग्रलिखित प्रकार है —

१६८·३३	लाख रु०—	१९३४-३५ तक ख़र्च हो चुका है
४९·८२	,, ,,	१९३५-३६
६३·४२	,, ,,	१९३६-३७
४४·६१	,, ,,	१९३७-३८
११·१३	,, ,,	१९३८-४०
३३७·३१	पूर्ण योग	

योजना के बढ़ने के साथ ही साथ सरकार की आय भी बराबर बढ़ती जा रही है। वर्तमान वर्ष में सरकार को १९·१४ लाख की आय हुई है। ४३-४४ में वही आय बढ़कर ४५·०२ लाख हो जायगी। इसका ४० प्रतिशत भाग सरकारी पाताल-कुओं से प्राप्त होगा। ब्याज और व्यवस्था आदि का समस्त ख़र्च निकालकर सरकारी गणना के अनुसार सरकार को १९३६-३७ में २·३४ लाख की बचत होगी। यह बचत भविष्य में बराबर बढ़ती ही जायगी और ४३-४४ तक ८·६४ लाख हो जायगी। इसके साथ ही विद्युत्-उत्पादन का ख़र्च भी कम होता जायगा। ३६-३७ में सब स्टेशनों पर साधारण कामचलाऊ बिजली की लागत १०·३ पाई प्रति यूनिट होगी। १९४०-४१ तक यही लागत ८·९५ पाई रह जायगी।

विद्युत्-शक्ति उत्पन्न करने के लिए गंगा-नहर के प्रपातों की क्षमता और उनसे लिये जानेवाले कार्य का अन्दाज़ा निम्नलिखित तालिका से लगाया जा सकता है—

प्रपात	हरिद्वार से दूरी	प्रपात की कम-से-कम उँचाई	पूर्ण क्षमता किलोवाट में	कितनी शक्ति उत्पन्न की जायगी
रानीपुर	५	१२	३९३४	वर्तमान योजना में शामिल नहीं
बहादराबाद और सलेमपुर	७	१५·५	५०८२	४४०० कि० वा० उत्पन्न हो रहे हैं
पथरी	१९	१०	३२८०	वर्तमान योजना में शामिल नहीं
आसफ़नगर	२३	१०	२६२३	,,
मोहम्मदपुर	३१	१५·५	४०६६	४००० कि० वा० (३७-३८)
निरगजनी	४३	१५·५	४०६६	वर्तमान योजना में शामिल
चितौरा	५६	१५·५	३०४९	३०००
सलावा	६७	१५·५	३०४९	
भोला	८४	१२	२७००	
पलरा	१४८	९	७०८	
सुमेरा	१६३	१५·५	१२१९	१२

कुओं ... जमा ... वह ... मींदारियों ... विद्युत्-द्वारा

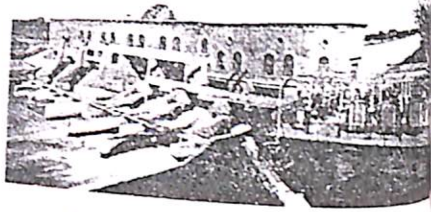
जैसा कि पीछे की तालिका से स्पष्ट है, रानीपुर, पथरी, आसफ़नगर और निरगजनी के प्रपात वर्तमान योजना में शामिल नहीं किये गये हैं। इन प्रपातों से विद्युत्-शक्ति उत्पन्न करने की अपेक्षा चन्दौसी में वाष्प-द्वारा विद्युत उत्पन्न करना अधिक सस्ता और सुगम समझा गया है। प्रस्तुत योजना-द्वारा १८,९०० कि० वा० शक्ति जल-बल से और ९,००० कि० वा० शक्ति वाष्प-द्वारा चन्दौसी में उत्पन्न की जायगी। इन प्रमुख उत्पादक केन्द्रों के अतिरिक्त १८८५ कि० वा० शक्ति उत्पन्न करनेवाले स्टेशन और भी हैं। ये केवल इस उद्देश से बनाये गये हैं कि यदि कभी घटनावश जल-बल की विद्युत् उत्पन्न करनेवाला कोई केन्द्र बिगड़ जाय तो ये वक्त पर काम आ सकें। इन स्टेशनों पर विद्युत्-शक्ति तैल-इंजनों से उत्पन्न की जाती है। ऐसे इंजन मुरादाबाद, सहारनपुर, मेरठ, हैंडला, अलीगढ़ और लकसर में लगाये जा चुके हैं। ये समस्त उत्पादक-स्थान सुविधा के लिए परस्पर सम्बन्धित हैं।

इस नवीन परिष्कृत और परिवर्धित योजना की जाँच के लिए भी युक्त-प्रान्तीय सरकार ने १९३५ में मदरास के चीफ़ इलेक्ट्रिक इंजीनियर एच० जी० होवार्ड सी० आई० ई० की अध्यक्षता में एक जाँच-कमिटी नियुक्त की थी। इस कमिटी में सर्व श्री बी० एम० स्टैग, सी० एम० करिआया, टी० गोविन जोन्स, राय बहादुर बी० एल० बधवार और के० एन० कटपालिया सम्मिलित थे। इस कमिटी ने पाताल-कुओं की उपर्युक्त पंचवर्षीय योजना को स्वीकार करने की सिफ़ारिश की और १९३९-४० तक २७,९०० कि० वा० विद्युत्-शक्ति उत्पन्न करने और उसके लिए पिछले पृष्ठों के लेखानुसार रुपया ख़र्च करना उचित बतलाया एवं बिजली के ग्राहकों तक ठीक ठीक ढंग से और सस्ते में पहुँचाने के लिए भी कई एक व्यवस्था-सम्बन्धी उपयोगी सिफ़ारिशें कीं।

योजना के उद्देश—इस योजना को तैयार करते समय निम्नलिखित प्रमुख उद्देश सम्मुख रक्खे गये थे—

(१) सिंचाई के लिए नदियों से, बाद में सरकारी पाताल-कुओं से पानी पम्प करने के लिए शक्ति प्रस्तुत करना।

(२) ५,००० से अधिक की आबादी के ८८ नगरों में रोशनी आदि घरेलू कार्यों के लिए बिजली पहुँचाना।



[बहादराबाद का विद्युत्-उत्पादक स्टेशन

(३) कृषि-सम्बन्धी उद्योग-धन्धों को प्रोत्सा[illegible] और ५,००० से कम आबादीवाले गावों में इ[illegible] के लिए बिजली पहुँचाने की व्यवस्था करना।

वास्तव में इस अन्तिम उद्देश की पूर्ति [illegible] काफ़ी परिश्रम किया गया है। सरकारी पाता[ल] की योजना इसी उद्देश-पूर्ति का परिणाम है। इन कुओं के अतिरिक्त संयुक्त योजना के अन्तर्गत द[illegible] के सैकड़ों गांवों में कृषि एवं छोटे छोटे उद्योगों [illegible] सस्ती बिजली पहुँचाने की भी व्यवस्था कर दी [illegible] आम तौर पर दूर दूर के गांवों में भी इन कार्यों [illegible] एक आना यूनिट के हिसाब से दाम लिये जाते हैं।

नगरों को स्थानीय बिजली पहुँचाने के लिए का सम्पूर्ण कार्य-क्षेत्र तीन भागों में विभाजित कर गया है—

(१) मुरादाबाद और बिजनौर।

(२) सहारनपुर, मुज़फ़्फ़रनगर और मेरठ। सहारनपुर, मुज़फ़्फ़रनगर, मेरठ, रुड़की और हरिद्वा[र] शामिल नहीं हैं, इनके लाइसेंस स्थानीय हैं।

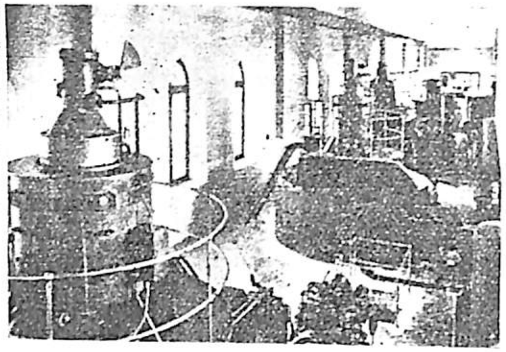
(३) अलीगढ़ और बुलन्दशहर—इसमें खुर्[जा] अलीगढ़ नगर शामिल नहीं हैं।

इन तीनों भागों में बिजली देने के लिए तीन कम[्पनियों] को ठेके दे दिये गये हैं—

(१) अपर गंगा वेली इलेक्ट्रिक सप्लाई कम्पनी।

(२) अपर जमुना वेली इलेक्ट्रिक सप्लाई कम्पनी।

(३) लोअर गंगा जमुना वेली इलेक्ट्रिक सप्लाई क[म्पनी]



[जल-बल से विद्युत् उत्पन्न करनेवाले यन्त्र]

ये कम्पनियाँ सरकार से थोक बिजली ले लेती हैं और फुटकर ग्राहकों को बेचती हैं। शुरू में कृषि-सम्बन्धी कार्यों के लिए सरकार इन कम्पनियों को ७ पाई प्रति यूनिट बिजली देती थी। कम्पनियाँ इसे एक आना प्रति यूनिट के हिसाब से बेचा करती थीं। परन्तु बाद में इन कम्पनियों का मुनाफ़ा ५ पाई प्रति यूनिट से केवल २ पाई प्रति यूनिट करने के लिए सरकार ने रेट बढ़ा दिया और अब कम्पनियों को १० पाई प्रति यूनिट के हिसाब से बिजली दी जाती है। कम्पनियों को अब भी एक आना यूनिट के हिसाब से बेचना होता है। क्या ही अच्छा होता यदि सरकार कम्पनी-वालों को सात पाई यूनिट के भाव से बिजली देकर उनसे ९ पाई प्रति यूनिट के भाव से बेचने को कहती! सरकार ने अपने लिए जो एक पैसा प्रति यूनिट की बचत की है वही यदि किसानों के हक़ में की जाती तो उनका असीम उपकार होता। किसानों की आर्थिक स्थिति सरकार की अपेक्षा कहीं अधिक शोचनीय है। उनके लिए एक एक पैसा क्या, एक एक पाई भी बहुत है। सिंचाई के लिए तथा कृषि-सम्बन्धी अन्य उद्योग-धन्धों के लिए शक्ति प्राप्त करने का कोई दूसरा उचित और सस्ता साधन न होने के कारण किसान समुचित बिजली व्यवहार में ला रहे हैं। वास्तव में किसानों की बढ़ती हुई माँग ने ही सरकार को नवीन परि-ष्कृत योजना बनाने के लिए प्रोत्साहित किया है। बड़े बड़े उद्योग-धन्धों एवं बिजली के घरेलू व्यवहार से अभी तक सरकार को आशातीत लाभ नहीं हुआ है। ऐसी स्थिति में किसानों के लिए बिजली की दर को कम करना आवश्यक ही नहीं, युक्ति-संगत भी है। बिजली के दाम कम कर दिये जाने से उसका व्यवहार और अधिक बढ़ जाने की पूरी आशा की जा सकती है।

कृषि के धन्धे—आम तौर पर निम्नलिखित धन्धे कृषि-सम्बन्धी धन्धों में गिने जाते हैं। इन धन्धों के लिए एक आना प्रति यूनिट के हिसाब से बिजली दी जाती है—

(१) सिंचाई के लिए पानी पम्प करना।
(२) शक्कर साफ़ करना।
(३) ऊख पेरना।
(४) कुट्टी और चारा काटना।
(५) दलिया दलना।
(६) हड्डी को पीस कर खाद बनाना।

इन धन्धों के अतिरिक्त दूसरे उद्योग-धन्धों के लिए: जैसे आटे की चक्की, तेल पेरने की मशीन, पालिश करने की मशीन और बरफ़ बनाने की मशीन आदि के लिए ६·१ से १८ पाई प्रति यूनिट तक दाम लिये जाते हैं। सिनेमा के लिए ३½ आना प्रति यूनिट और घरेलू रोशनी और एक पंखा चलाने के लिए ६ आना प्रति यूनिट तथा अन्य घरेलू कार्यों के लिए तीन आना प्रति यूनिट के भाव से बिजली दी जाती है। इन अन्तिम कार्यों के लिए सरकार ठेका लेनेवाली कम्पनियों को क्रमशः १½ आना, २½ आना और १½ आना प्रति यूनिट की दर से बिजली देती है। अतएव इन कम्पिनियों को आम तौर पर दूना और दूने से अधिक (२·० से लेकर २·४ गुना तक) लाभ होता है। अतएव यह स्पष्ट है कि ग्राहकों के लिए इन दरों में कमी किये जाने की समुचित गुंजाइश है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, अभी उद्योग-धन्धों और घरेलू कार्यों में बिजली का आशातीत चलन नहीं हुआ है। एक तो युक्त-प्रान्त के पश्चिमी भाग में—इस योजना के कार्य-क्षेत्र में—कृषि के अतिरिक्त कोई दूसरा प्रमुख उद्यम है भी नहीं, जिसमें बिजली का अच्छी मात्रा में व्यवहार हो सके, और न नवीन उद्योग-धन्धों को प्रच-लित करने की ही विशेष चेष्टा की गई है। यदि सिंचाई-विभाग जिसकी अध्यक्षता में यह योजना कार्य-रूप में परि-णत की जा रही है, सरकारी इंडस्ट्रीज़-विभाग के सहयोग से पश्चिमी युक्त-प्रान्त में नवीन उद्योग-धन्धों को चालू करने और प्रचलित उद्योग-धन्धों को सुसङ्गठित और सुव्यवस्थित ढंग से चलाने की योजना बनावे तो बिजली की खपत बढ़ने के साथ ही जनता को भी समुचित आर्थिक लाभ हो सकता है।

बिजली के घरेलू व्यवहार में समुचित वृद्धि न होने का कारण स्पष्टतया उसका महँगा होना ही है। रोशनी के दूसरे साधनों की तुलना में बिजली का व्यवहार काफ़ी महँगा पड़ता है। फिर ६ आना प्रति यूनिट के हिसाब से दाम देने के अलावा बिजली के व्यवहार के लिए दूसरे क़ीमती साधनों की ज़रूरत पड़ती है, जिन्हें व्यवहार में लाना औसत दर्जे की जनता के क़ाबू के बाहर की बात है। आम तौर पर रोशनी और पंखे के लिए बिजली लेने पर कम से कम २) या ३) मासिक बिजली कम्पनी को अवश्य देना होता है। इसके अतिरिक्त बिजली का बल्ब, पंखा, तार, प्लग, होल्डर आदि आवश्यक सामान ऊपर से ख़रीदने पड़ते हैं। यह सब सामग्री आम तौर पर विदेशी होती है। क्या ही अच्छा होता यदि योजना के कार्यक्षेत्र में ही वैद्युतिक सामग्री के निर्माण के भी कुछ प्रयत्न किये जाते और सरकार इसमें प्रमुख भाग लेती।

विदेशों को लाभ—वास्तव में यह योजना ऐसे समय में कार्य-रूप में परिणत की गई जब भारत ही नहीं, वरन पाश्चात्य देश भी आर्थिक संकट से पीड़ित थे और भारत में स्वदेशी-आन्दोलन के प्रभाव से विदेशी माल की खपत बहुत कम हो गई थी। इस योजना के कार्य-रूप में परिणत होने से भारत को लाभ होने के साथ ही मशीनें तथा अन्य वैद्युतिक उपकरण बनानेवाले विदेशों को कुछ कम लाभ नहीं हुआ है। योजना के फलस्वरूप कई करोड़ रुपये की मशीनें वग़ैरह विदेशों से भारत आ चुकी हैं और जब तक स्वयं भारत में इन मशीनों के बनाने का समुचित प्रबन्ध नहीं हो जाता तब तक यही क्रम जारी रहेगा! इस योजना का एक ज़बर्दस्त असर और भी हुआ है। सस्ती बिजली के सहूलियत के साथ उपलब्ध होने के कारण छोटे छोटे गाँवों तक में कल-पुर्ज़ों का व्यवहार बढ़ता जा रहा है और छोटे छोटे काम जो कुछ वर्ष पूर्व तक हाथों सम्पन्न कर लिये जाते थे, अब बिजली से चलनेवाली कलों से किये जाने लगे हैं। आटा पीसने, कुट्टी काटने, ऊख पेरने, दलिया दलने, धान कूटने और कपास ओटने के लिए स्थान स्थान पर मशीनें लग गई हैं। कुछ दिन के बाद इन कामों को हाथ से करनेवाले चक्की, कोल्हू, गँड़ासे, ओटनी, ओखली, मूसल वग़ैरह पुरातत्त्व और अजायबघर की सामग्री बन जायँगे। इन कार्यों से अपनी आजीविका उपार्जन करनेवाले साधनहीन किसान-मज़दूरों की रोटी की समस्या बहुत जटिल हो गई है। हाँ, इस योजना को मध्यम श्रेणी के पढ़े लिखे युवकों की बेकारी को दूर करने में कुछ सफलता अवश्य मिली है।

बेकारी दूर करने की इस विराट् आयोजना को सफल बनाने और कार्य-रूप में परिणत करने के लिए सरकार को सैकड़ों नवीन कर्मचारियों की नियुक्ति करनी पड़ी है। इनमें हाईस्कूल की परीक्षा पास से लेकर इंजीनियरिंग के विशेषज्ञ तक शामिल हैं। अतएव खेती-किसानी और ग्रामीण उद्योग-धन्धों के लिए सस्ती विद्युत्-शक्ति प्रस्तुत करने के साथ ही साथ इस योजना ने मध्यम श्रेणी के बेकार युवकों के रोटी के सवाल को हल करने में भी सफलता प्राप्त की है। हमारा तो विश्वास है कि यदि नवीन उद्योग-धन्धों को प्रचलित करने और पुरानों को उन्नत बनाने की चेष्टा की जायगी तो और भी सैकड़ों नवयुवकों की रोटी की समस्या हल हो जायगी।

उपहार

लेखक, श्रीयुत रवीन्द्र, बी० ए०

इस दुनिया से माँग रहा हूँ—छोटा-सा उपहार
जा शून्य क्षितिज के पार
बनाऊँ मैं तारों के हार
उन्हें छिपा काले अंचल में
ख़ाली हाथ पसार

किसी हृदय का प्रेम
जला दे इन प्राणों में ज्योति

अमर बना दे मेरी दुनिया—स्वप्नों का संसार।
इस दुनिया से माँग रहा हूँ—छोटा-सा उपहार॥

हिन्दू-स्त्रियों का अपहरण

लेखक, श्रीयुत दत्तात्रय वावले, एम० ए०, एल-एल० बी०

हिन्दू-स्त्रियों का अपहरण एक साधारण घटना हुआ जा रहा है। इस लेख के विद्वान् लेखक का कहना है कि प्रतिदिन ११ हिन्दू-स्त्रियाँ भगाई जा रही हैं और हिन्दुओं के कान पर जूँ तक नहीं रेंगती। यह स्थिति घातक है। ये घटनायें कैसे असम्भव की जा सकती हैं? यह लेख पढ़िए।

श्रीयुत जयकर ने अपने एक वक्तव्य में बताया था कि हमारे देश में भगाई जानेवाली हिन्दू-युवतियों तथा बालिकाओं की संख्या औसतन प्रतिदिन ११ है, और जिनका पता नहीं लगता उनकी संख्या अलग है। यही कारण है कि रोज़ हमें समाचार-पत्रों में इस प्रकार की एक-दो घटनाओं का रोमांचकारी वर्णन पढ़ने को मिलता है। प्रतिदिन ११ हिन्दू-युवतियों का अपहरण और प्रत्येक के साथ अपना अपना अन्याय, अत्याचार और हमारी निर्बलता की करुण-कथा एक ऐसी क्रूर वस्तुस्थिति है जिसके प्रति कभी कभी निराशाजनक उदासीनता का अनुभव किये बिना कोई नहीं रह सकता। किन्तु साथ ही न केवल हिन्दुओं के लिए, अपितु प्रत्येक विचारशील भारतवासी के लिए इस प्रकार की नैतिक व सामाजिक अराजकता लज्जा व अपमान की वस्तु होनी चाहिए। इस राष्ट्रीय व जातीय कलंक की कोई भी विचारशील भारतीय उपेक्षा नहीं कर सकता। हिन्दू-समाज की दृष्टि से यदि इस प्रकार की दुखद घटनायें उसकी कायरता, जातीय आत्मघात तथा धार्मिक कुरीतियों के द्योतक हैं तो राष्ट्रीय दृष्टि से ये हिन्दू-मुसलिम-कलह, नैतिक अराजकता व शासन-व्यवस्था की अवहेलना के कारण हैं। सांप्रदायिक वैमनस्य तथा दंगों के जहाँ अनेक कारण हैं, वहाँ इस प्रकार की शोकजनक घटनायें भी उनका एक मुख्य कारण हैं, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। ऐसी अवस्था में इन घटनाओं का विश्लेषण करके इनका कोई व्यावहारिक निराकरण कितना अनिवार्य है, यह कहने की आवश्यकता नहीं है।

इस दिशा में कार्य करनेवाले सामाजिक कार्यकर्त्ताओं तथा जिन्हें इस प्रकार की अभागी बहनों की सहायता करने का अवसर मिला है उन्हें यह अनुभव हुए बिना न रहा होगा कि कुछ बातें इस प्रकार की घटनाओं में बहुधा दृष्टिगोचर होती हैं जिनका विश्लेषण यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है। किसी भी निष्पक्ष व्यक्ति को यह स्वीकार करने में संकोच न होगा कि इस प्रकार की घटनाओं में प्रत्यक्ष या परोक्ष में मुसलमान गुंडों का हाथ होता है। परोक्ष में इसलिए कि कई बार पाठकों ने हिन्दू-गुंडों-द्वारा भगाई गई स्त्रियों के समाचार भी सुने होंगे। किन्तु ऐसी अवस्था में भी इन हिन्दू-गुंडों को या तो मुसलमान की सहायता अनिवार्य होती है या अन्त में हिन्दू-द्वारा भगाई गई स्त्रियाँ भी मुसलमानों के चंगुल में फँसे बिना नहीं रह पातीं। इसका कारण भी स्पष्ट है। कोई भी हिन्दू अपनी बिरादरी के कड़े अनुशासन के कारण स्पष्ट तौर से ऐसी स्त्री को अपने यहाँ रखने का साहस नहीं कर सकता। आधुनिक हिन्दू-समाज यद्यपि नैतिक दृष्टि से अपने आपको सर्वथा निर्दोष सिद्ध नहीं कर सकता, तथापि जिन नैतिक ख़ुराफ़ातों को वह चुपचाप सहन कर लेता है उनका वीरतापूर्वक मुक़ाबिला करके निराकरण करने का उसमें साहस नहीं है। विपरीत इसके मुसलमानों की सामाजिक व्यवस्था में अनिवार्य मानवीय कमज़ोरियों के लिए पर्याप्त स्थान है। जो बातें अवश्यम्भावी हैं उनके प्रति शुतुरमुर्ग़ के समान आँखें मींच कर उनके अस्तित्व को ही अस्वीकार करना इस्लाम मूर्खता की बात समझता है। यही कारण है कि इस प्रकार से लाई हुई हिन्दू-स्त्रियों को रखने में एक मुसलमान को कठिनता का अनुभव नहीं होता। इसके विपरीत उसके सहधर्मी न केवल उसकी सहायता करते हैं, बल्कि इस प्रकार अपने दीन की वृद्धि करने के उपलक्ष्य में उसकी सराहना करना अपना कर्तव्य समझते हैं। अभी

कुछ दिन की बात है कि चार हिन्दू युवक एक पड़ोसी मुसलमान की सहायता से एक सजातीय युवती को उसके वृद्ध पति के यहाँ से ले आये और अपने एक साथी के यहाँ उसे रख दिया। जब जाति की पंचायत जुड़ी तब पंचों ने फ़ैसला किया कि यदि कोई सजातीय उस लड़की को अपने यहाँ रक्खेगा तो उसे ५०१) दण्ड-स्वरूप उसके वृद्ध पति को देना होगा, अन्यथा वह जाति बाहर कर दिया जायगा।

उपर्युक्त युवक न रुपया दे सकता था और न बिरादरी से बाहर होना चाहता था। परिणाम यह हुआ कि उस स्त्री को मुसलमान की शरण लेनी पड़ी। हिन्दू-क़ानून में विवाह-विच्छेद न होने पर भी छोटी कही जानेवाली जातियों में यह रवाज है कि यदि किसी की स्त्री के साथ उसका कोई सजातीय 'नाता' करना चाहे तो वह कुछ निश्चित धन जिसे 'झगड़ा' कहते हैं, पूर्व-पति को देकर ऐसा कर सकता है। किन्तु रुपया न दे सकने पर या तो उसे स्त्री छोड़नी पड़ती है या बिरादरी।

एक और विशेषता जो इस प्रकार की घटनाओं में दृष्टिगोचर होती है वह यह है कि भगाई हुई हिन्दू-स्त्रियाँ अधिकांश में या तो राज़ी से या फ़ुसला कर लाई जाती हैं। अनिच्छा या बलपूर्वक अपहरण की गई स्त्रियों की संख्या पाँच प्रतिशत से अधिक न होगी। अपने को ख़तरे में डालकर पुलिस तथा अन्य लोगों का अकृपापात्र बनकर यदि इस प्रकार की अभागी देवियों की रक्षा करने का किसी ने साहस किया तो बहुधा अदालत तथा पुलिस में ये हतभागिनी देवियाँ स्पष्ट कहती हैं कि हम न केवल अपनी राज़ी-ख़ुशी से अभियुक्त के साथ भाग आई हैं, बल्कि उसके ही साथ जाना चाहती हैं। ऐसी स्थिति में बेचारे रक्षक महोदय की दशा कितनी दयनीय तथा उपहासास्पद हो जाती है, यह केवल भुक्तभोगी ही बता सकता है। किन्तु अनुभव यह बताता है कि हमें इससे निराश होकर अपना कर्त्तव्य नहीं छोड़ना चाहिए, क्योंकि जब अल्पायु होने अथवा अन्य किसी कारणवश यह अभागिनी वापस आती है तब यह स्पष्ट हो जाता है कि वास्तव में उसने प्रसन्नता से या सोच-विचार कर उक्त कार्य नहीं किया था। अपने परिवारवालों का अत्याचार, रीति-रवाजों का अन्याय अथवा इसी प्रकार के अन्य किसी दुःख-विशेष से खिन्न होकर ही वह आवेश में किसी के भी साथ परिणा[म] विचार किये बिना ही घर से निकल पड़ती है। हिन्दू[...] को अपनी अभागिनी बहनों के लिए सहानुभूति न[हीं] अपनी भूल का अनुभव करके जीवन को पुनः सुधार[ने] के लिए उसमें कोई स्थान नहीं है। समाज के इस अन[्याय में] क़ानून भी उसका सहायक है। ऐसी अवस्था में यदि भोली बहनें वापस आने का साहस न कर सकें तो आश्चर्य क्या है? बिरादरी के हृदयहीन अनुशासन, बन्धुओं के निर-तिरस्कार तथा स्वयं अपनी आत्मग्ला[नि से] बचने के लिए वे यही समझ बैठती हैं कि "जहाँ [गये] वहीं सर्वनाश।" दुर्भाग्य से उनकी वास्तविक स्थि[ति] जानकर उन्हें आश्वासन व धैर्य देने का अवस[र नहीं] मिलता। एक बार पुलिस या अदालत में जाने प[र] पर पुलिस के कर्मचारी चाहे जैसा प्रभाव डाल [...] और जब हम यह स्मरण करते हैं कि पुलिस में अ[...] कर्मचारी हिन्दुओं की भावनाओं का सम्मान क[रने की] किंचित् भी आवश्यकता का अनुभव नहीं करते त[ो] स्थिति की विषमता और भी बढ़ जाती है। हिन्दू-स्त्री वह बालिग़ हो या नाबालिग़ एक बार मुसलमान के [यहाँ] में चली गई तो उसे न केवल हिन्दू अपितु सरकारी [कर्म]चारी तक मुसलमान ही समझते हैं। हिन्दुओं का [...] कोई अधिकार नहीं समझा जाता। इसके लिए हमें [...] में परिवर्तन कराने की आवश्यकता है, जिससे इस [...] की बहनों की वास्तविक स्थिति समझने व उन्हें सम[झाने] का अवसर उनके सम्बन्धियों या स्वजातियों को मि[ल] सके। एक देशी रियासत में एक पञ्जाबी हिन्दू [...] करते थे। उनकी स्त्री को एक मुसलमान दर्ज़ी भगा ले [गया।] पता लगने पर उससे वापस अपने पति के घर जाने के [लिए] पूछा गया तब उसने केवल इनकार ही नहीं किया, आफ़त मचा दी। इस पर भी कुछ सज्जन समझा[ने का] प्रयत्न करते रहे। परिणाम यह हुआ कि दो-तीन दि[न] पश्चात् वह आर्य-समाज के एक आश्रम में आने को [राज़ी] हो गई, जहाँ उसकी करुण-कथा सुनकर उसके प्रति [...] के स्थान में सहानुभूति का सञ्चार हुए बिना नहीं [रह] सकता था।

कुछ नगण्य घटनाओं को छोड़कर इस प्रकार की घटनाओं का मूल-कारण कोई न कोई कुरीति-जन्य [...]

अथवा पारिवारिक क्लेश व दुःख होता है। हिन्दू-समाज की वर्तमान दयनीय तथा डाँवाडोल स्थिति में इस प्रकार की समस्यायें अगणित हैं, यह कहने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु उनमें से कुछ ऐसी हैं जिनका इस प्रकार की घटनाओं से विशेष सम्बन्ध है। अभी तक ऐसा समझा जाता था कि वैधव्य जीवन ही स्त्रियों का सबसे बड़ा कष्ट है, किन्तु देखने में आता है कि भागनेवाली स्त्रियों में विवाहिता तथा कुमारी लड़कियों की संख्या विधवाओं से भी अधिक होती है। हमारी विवाह-प्रथा तथा वैवाहिक जीवन की समस्यायें इन अभागिनी बहनों के मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न करती हैं, जिनसे अधीर हो जाना सर्वथा स्वाभाविक है। इन समस्याओं का यदि शीघ्र ही उचित निराकरण न किया गया तो हिन्दू-समाज में घोर अराजकता फैले बिना न रहेगी। हिन्दू-विवाह की पवित्रता व चिरस्थायित्व की स्त्री व पुरुष के लिए भिन्न भिन्न परिभाषा के होने के कारण हिन्दू-अबलाओं पर जो अत्याचार व अन्याय होता है वह इस प्रकार की घटनाओं से स्पष्ट है। दलित तथा अन्य जातियों में किसी-न-किसी रूप में विवाह-विच्छेद की प्रथा प्रचलित है, किन्तु उसमें भी पुरुषों के साथ पक्षपात की गंध आती है। पति स्त्री पर चाहे जितना अत्याचार करे, चाहे अनेक विवाह कर ले, तब भी वह स्त्री के अपने किसी सजातीय के साथ नाता करके इस विपत्ति से छूटने के मार्ग में इतनी बाधायें उपस्थित कर सकता है कि उन पीड़ित अबलाओं के लिए घर से भागकर किसी विधर्मी का आश्रय लेने के सिवा अन्य कोई मार्ग शेष नहीं रहता। ऊँची कहानेवाली जातियों में स्त्रियों के लिए विवाह-विच्छेद की कल्पना तक पाप है। अतः उनकी स्थिति और भी विषम है।

इसी प्रकार अनमेल विवाह की नाशकारी प्रथा का भी हिन्दू-समाज के इस कलङ्क को प्रोत्साहन देने में बड़ा हाथ है। विशेषकर कई जातियों में रुपया लेकर बूढ़ों के साथ युवा लड़कियों का विवाह करने की प्रथा अब भी वैसी ही बनी हुई है और यही कारण है कि भगाई जानेवाली स्त्रियों में इस प्रकार के बूढ़ों की पत्नियों की पर्याप्त संख्या होती है। बिरादरी व समाज के अत्याचार के भय से ऐसी स्त्रियाँ एक बार घर से निकल कर पाप के गहरे गड्ढे में गिरे बिना नहीं रहतीं। वे जानती हैं कि हिन्दू-समाज में अब उनके लिए कोई स्थान नहीं है। तलाक़ की प्रथा के अभाव में न केवल धर्म व समाज अपितु क़ानून भी उनके विरुद्ध है। स्त्री-जाति के प्रति भारतीय आदर्श कितना ही ऊँचा क्यों न हो, किन्तु व्यवहार में पढ़े-लिखे लोग भी स्त्रियों को अपनी इच्छा-पूर्ति का साधन-मात्र ही समझते हैं। उनके लिए स्त्रियों का कोई भिन्न अस्तित्व ही नहीं है। उनकी इच्छाओं, भावनाओं तथा आशाओं का पुरुषों के लिए कोई मूल्य ही नहीं होता। इस प्रकार के हृदयहीन वातावरण में रहते-रहते स्त्रियों का धैर्य छूट जाना अस्वाभाविक नहीं। भगाई हुई स्त्रियों में अधिकांश की करुण-कथायें इसी प्रकार के निर्दय व पाशविक व्यवहार की प्रतिध्वनि होती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि अनेक स्त्रियाँ विकृत व सदाचार-विहीन वातावरण में रहने के कारण स्वभावतः उच्छृंखल तथा नैतिक बन्धनों के प्रति विद्रोह करनेवाली हो जाती हैं। उनकी जीवन-सङ्गति, रहन-सहन सभी उनके इस पतन में सहायक होता है। किन्तु इसमें भी अप्रत्यक्ष रूप में उनके साथ-ही-साथ उनके माता-पिता और अभिभावक भी कम दोषी नहीं होते। उनकी उपेक्षा और कभी कभी खुला प्रोत्साहन इन अभागिनी बहनों के पतन में सहायक होता है। इस प्रकार की विद्रोही व चरित्रहीन बहनों के लिए भी सहानुभूति व सान्त्वना की आवश्यकता है। अपने नैतिक आदर्श के पैमाने से उन्हें नापना उनके साथ अन्याय करना है।

इस विषय में एक और अप्रिय सत्य की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना अप्रासंगिक न होगा और वह है हमारे युवकों की कायरता। यदि आज हमारे युवकों में जातीय अभिमान व आत्म-गौरव की भावनायें तथा युवकोचित साहस की कमी न होती तो इस प्रकार के गुंडों को खुला मैदान न मिलता और न हमारी इनभागिनी बहनें इतना दुःसाहस कर पातीं। इसके विपरीत हमारे अधिकांश नवयुवक एक ऐसी लज्जाजनक मनोवृत्ति के शिकार हो रहे हैं जिसके कारण इस जातीय अपमान का विरोध करने के स्थान में वे उसके उत्साहित करने के कारण बन रहे हैं। जिन घटनाओं को देखकर प्रत्येक हिन्दू का रक्त खौल उठना चाहिए, अपने तथा अपनी जाति का कलङ्क व अपमान समझ कर जिन घटनाओं को बन्द करने के

लिए प्रत्येक हिन्दू को अपने प्राण तक अर्पण करने में सङ्कोच न होना चाहिए, उन्हीं लज्जाजनक घटनाओं का रोमांचकारी वर्णन सुनकर हमारे कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती। अन्य जातियों के उदाहरण हमारे सम्मुख हैं। अँगरेज़ युवतियाँ स्वतंत्रतापूर्वक चाहे जहाँ घूमती हैं, किन्तु उनकी ओर आँख उठाने तक का साहस किसी को नहीं होता। पाठकों को स्मरण होगा कि कुछ वर्ष पूर्व किसी अँगरेज़ युवती को सीमाप्रान्त के पठान भगा ले गये थे, जिससे समस्त ब्रिटिश साम्राज्य दहल उठा था, और जब तक लड़की वापस न मिली तब तक अँगरेज़ों ने चैन न लिया। अभी कुछ दिन पूर्व एक मुसलमान घराने की युवा लड़की ने सजातीय गुंडों द्वारा पीड़ित होकर एक आर्य-अनाथालय की शरण ली। उसने अदालत व पुलिस में स्पष्ट कहा था कि वह बालिग़ है तथा उसने अपनी इच्छा से ही उस मार्ग का अनुसरण किया है तथा अब वह किसी अवस्था में भी अपने घर लौटकर जाना नहीं चाहती। दूसरे दिन लड़की खुली अदालत में बयान तक न दे सकी। हज़ारों उत्तेजित मुसलमान लठैत अदालत को चारों ओर से घेरे खड़े थे व डंके की चोट पर कह रहे थे कि अदालत व लड़की चाहे जो कहे, लड़की को लिये बिना यहाँ से नहीं टलेंगे। परिणाम स्पष्ट था। दंगा-फ़साद तथा ख़ून-ख़च्चर की ज़िम्मेदारी सरकार अपने ऊपर नहीं लेना चाहती थी, अतः लड़की मुसलमानों के हवाले दी गई। क्या कभी किसी हिन्दू युवती के लिए भी हिन्दु ने ऐसा जाति-प्रेम दिखाया है? सैकड़ों हिन्दू-अबलायें दि दहाड़े गुंडों द्वारा भगाई जाती हैं, किन्तु उनके लिए स विचलित होना तो दूर रहा, हम लोग उनकी अप्रत्यक्ष से सहायता करने का साहस करते काँपते हैं। अप बहन-बेटियों तथा अपनी जाति के सम्मान की रक्षा क का यदि हममें साहस न हो तो किसी को दोष देना व्य है। कायर व कमज़ोर की ईश्वर भी सहायता नहीं करत यदि गुंडों-बदमाशों को यह विश्वास हो जाय कि हि युवतियों को भगाना खतरे से ख़ाली नहीं है तो वे ऐ दुःसाहस न कर सकेंगे। अभी तक हिन्दू-स्त्रियों को पचायती हलवा समझते हैं। वे जानते हैं कि उन हाथ लगाने से उन पर उनका जन्म-सिद्ध अधिकार जाता है। वे जानते हैं कि हिन्दुओं में विरोध करने साहस नहीं है परन्तु जिस दिन हिन्दू-युवक व हिन्दू ने अपनी सजातीय बहनों का अपहरण अपना अपमान जाति का कलङ्क समझेंगे उस दिन ऐसी घटनाओं का साहस पूर्वक प्रतिरोध करने में हमें अपने आत्मसम्मान की क का अनुभव न होगा और न फिर ऐसी घटनायें इतन अधिक संख्या में संभव हो सकेंगी।

गीत

लेखिका, श्रीमती तारा पांडे

आओ हे अनजान!
बड़ी साध से दीप जलाया,
पूजा का प्रिय साज सजाया।
जन्म जन्म के परिचित मेरे—
आज बने अनजान!
आओ हे अनजान!
चारों ओर अँधेरा छाया,
मृदुल स्पर्श ने मुझे जगाया।
रोम रोम खिल उठा हर्ष से—
करती हूँ आह्वान!
आओ हे अनजान!
मेरा क्या? सब कुछ सपना है,
जग का दुख मेरा अपना है।
हे प्रकाश के पुंज शक्तिमय—
करती हूँ गुणगान!
आओ हे अनजान!

पेलेस्टाइन की समस्या

पेलेस्टाइन में यहूदी बसाये जा रहे हैं क्योंकि गत महायुद्ध में इसी वादे पर प्रसिद्ध यहूदी वैज्ञानिक वीज़मैन ने ब्रिटिश सरकार की सहायता की थी। इससे अरब असंतुष्ट हैं और इसी से वहाँ दंगा हो रहा है। विशेष जानकारी के लिए यह लेख पढ़िए।



डाक्टर वीज़मैन
[जिनसे युद्ध के दिनों में ब्रिटिश सरकार ने यहूदियों को पेलेस्टाइन में बसाने का वादा किया था।]

लेखक, श्रीनाथसिंह

पेलेस्टाइन में अरबों और यहूदियों के संघर्ष ने अब उग्र रूप धारण कर लिया है। ब्रिटिश सरकार वहाँ पुलिस और फ़ौज की सहायता से शान्ति स्थापित करने की चेष्टा कर रही है और पाठकों के हाथ में जब 'सरस्वती' का यह अङ्क पहुँचेगा तब तक वहाँ शान्ति स्थापित हो जायगी। परन्तु अरब और यहूदी दोनों में एक दूसरे के प्रति भय और घृणा का जो भाव उत्पन्न हो गया है वह इस प्रकार फ़ौज की सहायता से सदैव के लिए दबाया नहीं जा सकता। ऐसे और इससे भी उग्र दङ्गों के अवसर वहाँ फिर फिर आ सकते हैं। इसलिए यहाँ उनके मूल कारणों और भावी संभावनाओं पर विचार कर लेना समयोचित होगा।

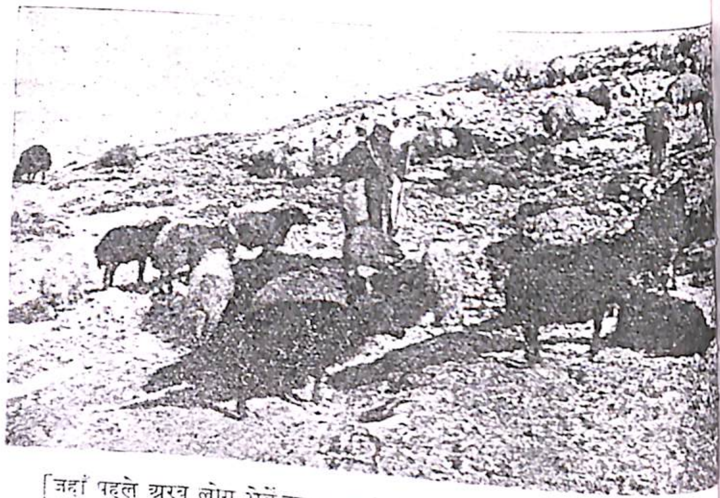
पेलेस्टाइन में यहूदियों का ज़ोर अभी हाल में गत महायुद्ध के बाद से बढ़ने लगा है। उससे पहले उन्हें पेलेस्टाइन में बसने की वे सुविधायें प्राप्त न थीं जो आज-कल हैं। यहूदियों के पूर्वज किसी समय पेलेस्टाइन में रहते थे और वह उनका स्वदेश था। पर पिछले दो हज़ार वर्षों से वे अपने उस प्रिय स्वदेश से बाहर रहे हैं और उसमें फिर जाकर बसने का स्वप्न देखते आ रहे हैं। उनका यह स्वप्न गत महायुद्ध के बाद पूरा हुआ। इस सम्बन्ध में एक कथा कही जाती है, जो इस प्रकार है—

जब लड़ाई शुरू हुई तब ब्रिटिश सरकार ने देखा कि उसके पास एक विशेष प्रकार के द्रव्य की कमी है जिससे ऊँचे दर्जे के विस्फोटक पदार्थ बनाये जा सकते हैं। एक रूसी यहूदी डाक्टर शैम वीज़मैन ने जो इँग्लेंड में २५ वर्षों से रह रहे थे और उन दिनों मैनचेस्टर-यूनिवर्सिटी में रसायन के अध्यापक थे, इस कार्य्य में अँगरेज़-सरकार की बड़ी सहायता की। उन्होंने अपने प्रयोगों-द्वारा उस द्रव्य की जगह पर एक नये द्रव्य का आविष्कार किया, जिसकी विस्फोटन-शक्ति में कोई कमी न थी। उन दिनों लायड जार्ज के सिपुर्द गोला-बारूद जुटाने का काम था। उन्होंने डाक्टर वीज़मैन से उस द्रव्य का मूल्य पूछा, पर वीज़मैन ने उत्तर दिया कि मुझे धन की इच्छा नहीं है। मैं ब्रिटिश सरकार से इस समय सिर्फ़ यह वादा करा लेना चाहता हूँ कि वह अपनी शक्ति और प्रभाव हमारे पवित्र पेलेस्टाइन

देश को शत्रु के हाथ से निकाल कर यहूदियों को देने में लगायेगी।

उन दिनों पेलेस्टाइन में अरबों का ज़ोर था और वह तुर्कों के आधिपत्य में था। युद्ध में जब जर्मनी के साथ तुर्की भी हारा तब उसके हाथ से पेलेस्टाइन छिन गया और ब्रिटिश सरकार ने उसे यहूदियों का राष्ट्रीय देश बनाने की घोषणा की।

पेलेस्टाइन का शासन अब ग्रेट ब्रिटेन के हाथ



[जहाँ पहले अरब लोग भेड़ें चराया करते थे वहीं यहूदी-धन के बल पर टेल अ[illegible] नामक नगर बस गया है।]



[टेल अवीव का आकाश से लिया गया एक दृश्य। इस नगर में लगभग डेढ़ लाख यहूदी आकर बस गये हैं।]

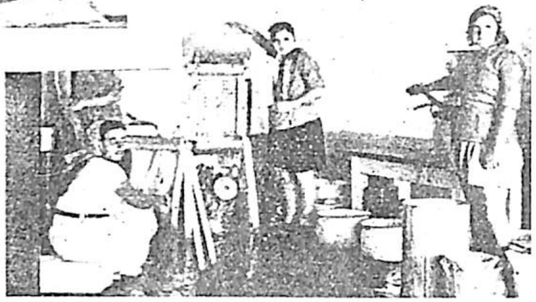


[अरब की गृहस्थी का एक भाग।]

में है। उनकी ओर से वहाँ एक हाई कमिश्नर नियुक्त है, जो जेरूसलम में रहता है। ग्रेट ब्रिटेन वहाँ के शासन की बागडोर अपने हाथ में राष्ट्र-संघ के आदेश से लिये हुए है। राष्ट्र-संघ के आदेशपत्र में इस शर्त का स्पष्ट उल्लेख है कि ग्रेट ब्रिटेन यहूदियों को वे सब सुविधायें देगा जो उन्हें पेलेस्टाइन को अपना राष्ट्रीय निवासस्थान बनाने में सहायक होंगी।

फलतः संसार भर के तिरस्कृत यहूदी हज़ारों की संख्या में प्रतिवर्ष पेलेस्टाइन में बसने के लिए चले आ रहे हैं। जब लड़ाई शुरू हुई थी तब पेलेस्टाइन में सिर्फ़ ५५ हज़ार यहूदी थे। आज यह संख्या बढ़कर ४ लाख हो गई है। यह संख्या पूरी आबादी का लगभग ⅓ है। गत वर्ष लगभग ५० हज़ार नये यहूदी आकर और बसे हैं।

यदि यहूदियों के बसने का यही क्रम जारी रहा तो यह निश्चित है कि शीघ्र ही उनकी संख्या अरबों से बहुत बढ़ जायगी और वे उस देश के सर्वेसर्वा बन जायँगे। इससे अरब लोग बहुत भयभीत हो उठे हैं और वे बराबर आन्दोलन करते चले आ रहे हैं कि यहूदियों का पेलेस्टाइन में आना अब रोक दिया जाय। पर उनकी सुने कौन? सरकार को अपना वादा भी तो पूरा करना है। इसी लिए हताश होकर अरबों ने उपद्रव आरम्भ किया है। पेलेस्टाइन में यहूदियों की मज़बूती के दो कारण हैं। एक तो राष्ट्र-संघ के मैंडेट के अनुसार उनके वहाँ बसने के सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार की अनुकूल नीति और दूसरा यहूदियों का स्वयं आर्थिक बल। अरबों ने इन दोनों बातों को कमज़ोर करने की ठानी है। इसी लिए उनका आन्दोलन ब्रिटिश सरकार और यहूदी दोनों के विरुद्ध जाता है। ब्रिटिश सरकार पर हड़तालों आदि के द्वारा वे दबाव डालना चाहते हैं कि सरकार इस सम्बन्ध में अपनी नीति



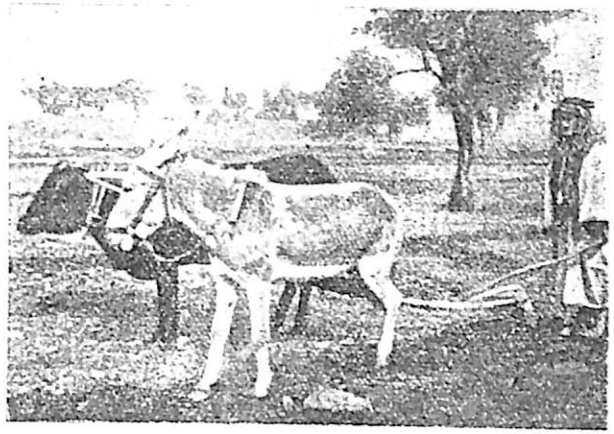
[यहूदी गृहस्थी का एक भाग। स्त्रियाँ डेयरी में काम कर रही हैं।]

बदले और यहूदियों की सम्पत्ति आदि नष्ट करके उन्हें वे आर्थिक हानि पहुँचाना चाहते हैं। जान पड़ता है कि वे अत्यन्त हताश हो गये हैं और यहाँ तक तुल गये हैं कि ऐसे दङ्गों-द्वारा वे पेलेस्टाइन का सार्वजनिक जीवन इतना बुरा बना देना चाहते हैं कि यहूदी वहाँ आकर बसने का नाम ही न लें। अरबों से यह कहा जाता है कि वे यहूदियों से कोई सम्बन्ध न रक्खें, उनके यहाँ मज़दूरी न करें, उनकी दूकानों से सौदा न ख़रीदें आदि आदि और इसके लिए बाक़ायदे पिकेटिङ्ग भी की जाती है।

परन्तु अरबों के इस उपद्रव से यहूदी भयभीत हो गये हों, सो बात नहीं। वे इस प्रयत्न में हैं कि धीरे धीरे वे अपनी जाति को इतना स्वावलम्बी बना दें कि उन्हें अरबों से काम ही न पड़े। वे दंभ के साथ कहते हैं—"अरब लोग इसके सिवा कि हमारी हत्या करें और वे हमारा

क्या बिगाड़ सकते हैं? पर हम सबकी हत्या वे नहीं कर सकते। हमारे बायकाट से उन्हीं की हानि है। उन्हें मज़दूरी नहीं मिलेगी और वे भूखों मरेंगे। हमारा यहाँ आकर बसना रुक नहीं सकता। उन्होंने बीस यहूदियों के प्राण लिये हैं। अधिक-से-अधिक बीस के प्राण वे और ले सकते हैं। इस समय हम चार लाख हैं, पर कुछ ही वर्षों में हम आठ लाख हो जायँगे।"

इसमें सन्देह नहीं कि यहूदियों ने पेलेस्टाइन में बस-कर उसकी बड़ी उन्नति की है। उन्होंने जैफ़ा के उत्तर में 'तेल अवीव' नामक एक सर्वथा नवीन अप-टु-



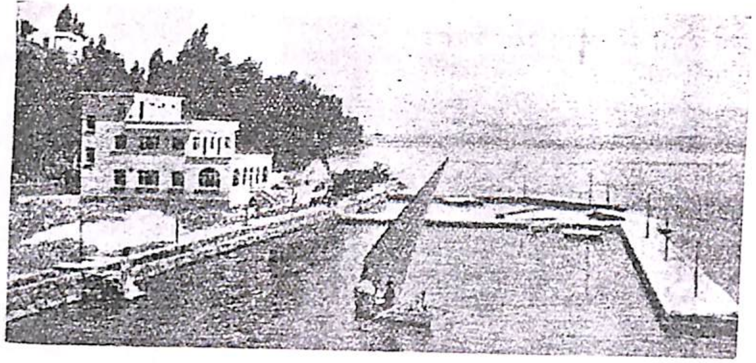
[अरब लोग अब भी गधों की सहायता से पुराने ढंग के हल चलाते हैं



[परन्तु अरबों के ये खेत धन-बल के कारण यहूदियों के हाथ में चले जा रहे हैं जिनमें मोटर-द्वारा बड़े बड़े हल चलते हैं।]

डेट नगर बसा दिया है। युद्ध के पूर्व यह नगर लगभग १०० घरों का एक यहूदियों का गाँव था। युद्ध में यह गाँव भी उनसे ख़ाली करा लिया गया था। पर युद्ध के बाद उन्हें यहाँ बसने की फिर इजाज़त मिली। पिछले बीस ही वर्षों में रेगिस्तान के बीच में यह आश्चर्यजनक नगर उत्पन्न हो गया है, जैसे किसी ने जादू के ज़ोर से बनाया हो। बाग़, होटल, स्कूल, पुस्तकालय, थियेटर, सिनेमा आदि सभी आधुनिक वस्तुओं से यह नगर युक्त है। चौड़ी पक्की सड़कें और दोनों ओर बढ़िया दूकानें और ऊँची इमारतें इसकी शोभा बढ़ा रही हैं। रात को सब बिजली की रोशनी से चमक उठती है। रेलवे-स्टेशन अलग है
सड़कों पर बराबर मो
और लारियाँ दौ
रहती हैं। इस शहर
म्युनिसिपल बोर्ड प्रति
४ लाख पौंड का आ
बजट बनाता है। इस
आबादी लगभग
लाख है। इस डेढ़ ल
में सभी यहूदी हैं। इ
ही नहीं, इस शहर
लगभग ४०० कारख
भी हैं। तेल अवीब हिब्रू-भाषा का शब्द है। इसका अ
हुआ 'बसन्त-गिरि'। जिन्होंने इस शहर को देखा है उन
कहना है कि पूर्व में इसके समान सुन्दर दूसरा शहर नहीं है

यहूदियों ने यह शहर ही नहीं बसाया। उन्होंने ल
भग १२ कृषि-फ़ार्म भी खोले हैं, जिनमें आधुनिक वैज्ञानि
ढङ्ग से खेती होती है। उन्होंने लगभग १,७८,००० एक
बेकार भूमि को सर-सब्ज़ बना डाला है। अपने काम
लाने के बाद उन्होंने लगभग १,३०,००० पौंड का दूध औ
मक्खन, २२,००० पौंड का फल और २५,००० पौंड
शहद, सब्ज़ी आदि दूसरे देशों के हाथों बेचा है। नार
के उन्होंने बड़े बड़े बाग़ लगाये हैं और लगभग ७० ला



[टेल अवीव में यहूदियों का नौका-विहार, जल व्यायाम-शाला और विश्राम-गृह।

नारङ्गी की टोकरियाँ उन्होंने विदेशों में बेची हैं। उन्होंने जरूसलम से जैफ़ा और तेल अवीव तक मोटर-लारियाँ चलाई हैं जो घंटे घंटे पर चलती हैं, और आने-जाने का किराया सिर्फ़ ३ शिलिङ्ग ६ पेंस है। हैफ़ा और न्यूयार्क के बीच में यहूदी झंडे उड़ाते हुए उनके जहाज़ भी चल रहे हैं। पानी की सैकड़ों मील लम्बी नहरें भी उन्होंने बनाई हैं। गत १२ वर्षों में उन्होंने पेलेस्टाइन में लगभग ४,००,००,००० पौंड गला डाला है।

यहूदियों के पास अपार सम्पत्ति है। पेलेस्टाइन क्या, जहाँ भी वे बसाये जाते उसी भूमि को स्वर्ग बना देते। उनकी सम्पत्ति के कारण आज पेलेस्टाइन में बेकारी नहीं है। होशियार मज़दूर वहाँ १ पौंड प्रतिदिन के हिसाब से मज़दूरी माँगते हैं और जो वे माँगते हैं, सदैव पाते हैं। जर्मनी और योरप के अन्य भागों में सताये जाने के कारण जो यहूदी पेलेस्टाइन में न आते वे भी वहाँ आकर बस गये हैं। वकील, डाक्टर, प्रोफ़ेसर, वैज्ञानिक, कवि, दार्शनिक और व्यापारी आदि सभी अपने साथ अपनी सम्पत्ति के अलावा अपना अनुभव भी लाये हैं। देश के राजनैतिक जीवन में उनका प्रभाव बढ़ता जाता है। अरबों में वैसी जाग्रति नहीं है; न वैसे आर्थिक और बौद्धिक साधन ही उनको प्राप्त हैं। इसलिए इस प्रतिद्वन्द्विता में वे यहूदियों के सामने ठहर नहीं सकते। परिणाम यह होगा कि धीरे धीरे वे अपने ही देश में पराये हो जायँगे। इसी आशङ्का और भय से आज वे त्रस्त हो उठे हैं और जो कुछ वे कर रहे हैं वह न करते तभी आश्चर्य होता। इच्छा न होते हुए भी प्रतिद्वन्द्विता में ठहर न सकने के कारण वे अपनी जायदादें यहूदियों के हाथ बेचे डालते हैं और उन्हें ख़रीदने के लिए तमाम संसार में फैले धनी यहूदी अपनी सोने की थैलियाँ खोलते चले आ रहे हैं। यह तभी रुक सकता है जब सरकार क़ानून बनाकर इस प्रकार का क्रय-विक्रय बन्द कर दे। अरबों की यह पहली माँग है। पर इसे सरकार सुनेगी, इसमें सन्देह है।

यहूदियों पर सदैव ही ज़ुल्म हुए हैं। आज भी वे संसार में तिरस्कार-पूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे हैं। एक देश में बस जाना और उसे अपना देश कहने का अधिकार उन्हें होना चाहिए, जैसे सब मनुष्यों को है। पर वह देश पेलेस्टाइन ही क्यों हो? वहाँ जो अरब सदियों से बसे हैं आख़िर वे किसे अपना देश कहें? उनकी इच्छा के विरुद्ध यहूदियों का उस देश में बसना और उनसे भिन्न जातीयता का भाव रखना, उनकी भाषा न बोलकर उनके देश में अपनी हिब्रू-भाषा का प्रचार करना आदि ऐसी बातें हैं जो कम-से-कम उन यहूदियों को न करनी चाहिए थीं जो जर्मनी में ऐसे ही उत्पीड़न का अनुभव कर चुके हैं।

कुछ लोगों का अनुमान है कि वहाँ के अरबों को रूसी साम्यवाद के प्रचारकों ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध भड़का रक्खा है। कुछ इसमें इटली और फ्रांस का हाथ बताते हैं। परन्तु जो वस्तुस्थिति पर ध्यान देगा उसे ये सब बातें ग़लत प्रतीत होंगी। यह माना कि यहूदी उजाड़े हुए पेलेस्टाइन को स्वर्ग बना रहे हैं और अरबों को भी सुखी और समृद्धिशाली बना रहे हैं, परन्तु इसके साथ ही अरबों के देश पर उनका राजनैतिक प्रभाव भी तो बढ़ रहा है। यह कौन पसन्द करेगा कि कोई ग़ैर आदमी उसके घर में आकर

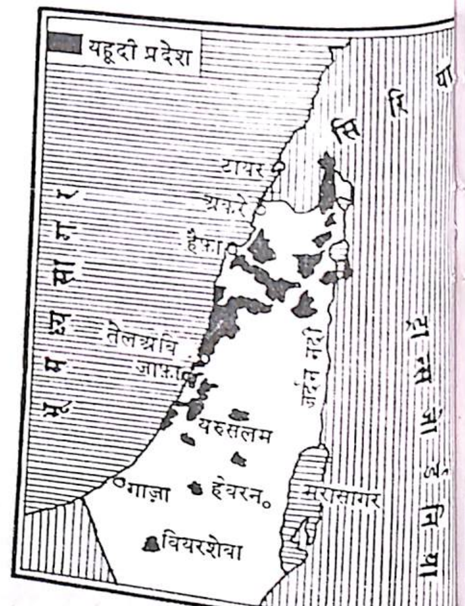


[यहूदी-झंडा। पेलेस्टाइन में यहूदियों के जातीय-उत्साह-प्रदर्शन का एक दृश्य।]

अपने हाथ में शक्ति ले ले और उससे कहे कि यही प्रबन्ध अच्छा है, क्योंकि इसमें तुम्हें खाने-पीने की कमी न होगी। प्रश्न यहूदियों या अरबों की संख्या का नहीं है। प्रश्न है राजनैतिक प्रभुत्व का जिसे यहूदी अरबों के हाथ से छीनना चाहते हैं। अरबी नेताओं ने सहायता के लिए ईराक, ईरान, यमन, अफ़ग़ानिस्तान, साउदी, अरब, तुर्की और ट्रान्सजोर्डानिया से सहायता की अपील की है। बहुत सम्भव है कि यह घटना समस्त संसार के मुसलमानों

को फिर एक सूत्र में बाँध दे और यह संघर्ष और रूप धारण करे।

पेलेस्टाइन पूर्व-इतिहास-काल में मिस्रियों और ... लोनियावालों के पारस्परिक युद्ध का क्षेत्र रहा है



पेलेस्टाइन

को ईसाइयों और मुसलमानों ने अपने धर्म-युद्धों से ... तक उसे रक्तरंजित किया। पर जान पड़ता है, जैसे ... युद्ध-पिपासा अभी नहीं मिटी है और वह अपनी गो... साम्राज्यवाद और साम्यवाद के भावी संघर्ष की ... सुलगा रहा है।

दरबार मुग़लिया की अन्तिम दिनों की एक करुण कहानी

शराब की सुराही में

लेखक, श्रीयुत चतुरसेन शास्त्री

[१]

संवत् १७६३ के फागुन मास में अद्वितीय प्रतापी मुग़ल-सम्राट् आलमगीर-पीरदस्तगीर दक्षिण में मर गया। उसने ५० वर्ष कठिनाइयों की घनी घाटियों में पैठकर राज्य किया और उसने तख़्त मुग़लिया का इतना विस्तार कर लिया था कि यदि यह कहा जाय कि उस युग में पृथ्वी भर में कोई बादशाह उससे बड़ा नहीं था तो अत्युक्ति नहीं। वह घमण्डी, नृशंस, बुद्धिमान, तीखा और दीर्घदर्शी था। उसके राज्य का विस्तार भारत के इस छोर से उस छोर तक था।

परन्तु उसके मरने के ३० वर्ष बाद ही वह महान् साम्राज्य मानो एक जादू के ज़ोर से छिन्न-भिन्न हो गया। दिल्ली उजड़ गई, सूबे स्वतन्त्र हो गये, ख़ज़ाना ख़ाली हो गया, फ़ौजें टूट गईं। इन तीस वर्षों में दिल्ली के बहुमूल्य तख़्तताऊस पर एक के बाद एक ५ बादशाह गद्दी पर बैठे। इस उलट-फेर में मुग़ल-साम्राज्य का प्रताप और वैभव सब नष्ट हो गया। मुग़ल-सम्राटों के जिन रङ्ग-महलों में ऐश्वर्य और विलास का समुद्र उमड़ रहा था, वहाँ सन्नाटा छा गया। जो मुग़ल-सम्राट् अपने दीवाने ख़ास को स्वर्ग की उपमा देते थे उन्हें अपने पेट और जान के लाले पड़ गये। सूर्य के समान तप्त और तेजपुञ्ज मुग़ल-साम्राज्य औरंगज़ेब की क़ब्र के सूखते सूखते तपेदिक़ के बीमार की भाँति मृत्यु की बाट जोहने लगा।

[२]

दिल्ली की तक़दीर फूट चुकी थी। तख़्तताऊस पर मुहम्मदशाह रँगीले रौनक़ अफ़रोज़ थे। सैयद-बन्धु मरवा डाले गये थे और इसके इनाम में सआदतख़ाँ को अवध और आसफ़जाह को दक्षिण प्रदान कर दिया गया था। बंगाल, अवध, उड़ीसा, दक्षिण और राजपूताने की बहुत-सी रियासतें स्वतन्त्र हो गई थीं। देश में अराजकता फैली थी, गूजर और जाट पक्के चोर और डाकू हो रहे थे। दिल्ली के बाहर १० कोस जाना भी निरापद न था। मराठों के तीन सरदार सिंधिया, होलकर और गायकवाड़ अपनी अपनी शक्ति बढ़ा रहे थे। मालवा सोलहो आने मराठों के हवाले हो चुका था। दिल्ली के ख़ज़ाने से ये लोग बेशुमार रुपया वसूल कर चुके थे। अब दिल्ली का ख़ज़ाना ख़ाली पड़ा था। सरदार, अमीर, गुणी सब दिल्ली छोड़ छोड़कर लखनऊ, पटना, काशी, मुर्शिदाबाद के पूर्वी शहरों में जाकर बस गये थे। दिल्ली के बड़े बड़े हिन्दू व्यापारी खत्री और अग्रवाल भारत के उन्नतशील पूर्वी शहरों को चले गये थे। दिल्ली का वातावरण अशान्त, चौंकानेवाला और भयपूर्ण था। बादशाही दरबार अब भी उसी भाँति होता था, जिस भाँति प्रतापी औरंगज़ेब के समय में होता था। पर वह शान और जलाल अब कहाँ था! बादशाह बूढ़ा और सनकी था—कविता करने, गाने-बजाने में उसे कमाल हासिल था। भरे दरबार में अब बड़े बड़े राजनैतिक मसले नहीं हल होते थे, किन्तु ग़ज़लें और शेर पढ़े जाते थे। बड़े बड़े राजाओं और बादशाहों के एलचियों की जगह अब भाँड़ और नक़्क़ाल दरबार में धमाचौकड़ी मचाया करते थे। ख़ुशामदी टट्टू चपरगट्टू बादशाह की हाँ में हाँ मिलाते और हलुआ-माँडा सीधा करते थे। दरबार में खुल्लमखुल्ला शराब का दौर चलता था। वह जगत्-प्रसिद्ध दरबार मुग़लिया अब एक चपरकनातियों का मुशायरा या भाँड़ों की मजलिस बन गई थी। यमुना लाल क़िले से रूठ कर दूर चली गई थी और उसके संगमरमर के झरोखे आँसू बहाते थे।

[३]

आठ बजे ही नौबत पर चोब पड़ी, और नक़ीब ने आवाज़ लगाई—

"जल्ले इलाही बरामद कर्द। मुजदा अदब से।"

चोबदारों ने अपने-अपने बल्लम-आसे ऊँचे करके "अदब! अदब!" का नारा बुलन्द किया। सब दरबारी सहम कर, झुक कर निस्तब्ध खड़े हो गये। सबकी नज़रें पृथ्वी पर थीं, सबकी गर्दनें झुकी हुई थीं।

बादशाह की सवारी हवादान पर रंगमहल से निकली। सोलह तातारी बाँदियाँ नंगी तलवारें लिये आगे आगे आ रही थीं। १२ बाँदियाँ हवादान को हाथोंहाथ उठाये हुए थीं। मोरछलवालियाँ, हुक़्क़ेवालियाँ, पानवालियाँ, उगालदानवालियाँ, सुराहीवालियाँ बादशाह की सवारी के साथ थीं। बादशाह सुबह की हल्की सफ़ेद रेशमी पोशाक पहने, पन्ने का कण्ठा गले में डाले, पगड़ी पर बड़ा-सा नीलम का तुर्रा लगाये थे। दोनों तरफ़ से सलामियाँ उतरने लगीं और बादशाह सलामत तनिक हाथ हिलाकर लोगों की सलाम-कोर्निस स्वीकार करते आगे बढ़े।

बादशाह के तख़्त पर बैठते ही एक एक सरदार सहमा हुआ आगे बढ़कर बादशाह के सामने आया। तीन बार ज़मीन तक झुककर कोर्निस किया और फिर पीछे हट गया। सबका मुजरा हो चुकने पर बादशाह ने एक गिलोरी पान खाकर हुक़्क़े के दो कश खींच कर कहा—

"ईं जानिब ने एक शेर फ़र्माया है।"

बादशाह ने शेर पढ़ा।

दरबार में शोर उठा—"करामात! करामात!"

एक अमीर ने आगे बढ़कर तीन बार कोर्निस करके कहा—"क़लामुल मुलूक मुलूकुलक़लाम।"

दरबार में फिर शोर उठा—"करामात! करामात!"

बादशाह मुस्कुराये। उन्होंने संकेत किया। ख़वास ने शराब की सुराही खोली। दौर चलने लगा। प्याले पर प्याला पीकर बादशाह शेर पढ़ने लगे। प्यालों के साथ ही साथ दरबार का शिष्टाचार भी भंग होने लगा। शोर—बे अदबी—फ़ब्तियाँ कसी जाने लगीं। बादशाह आँख-भौंह चढ़ाकर, गाकर, तकिया कर, रस ले लेकर अपने शेर पढ़ने लगे और दरबारी झूम झूमकर उसकी तारीफ़ मुक्तकण्ठ से करने लगे।

अवसर पाकर वज़ीर आज़म ने दस्तबस्ता अर्ज़ की—"जहाँपनाह, ईरान के लुटेरे नादिरशाह ने सफ़ीर भेजा है। वह हुज़ूर की क़दमबोसी की इजाज़त चाहता है।"

बादशाह ने रंग में भंग पड़ते देखकर नाक-भौंह सिकोड़ कर कहा—"सआदत और निज़ाम को उस लुटेरे को भगाने के लिए भेज दिया था न?"

"जहाँपनाह, उस डाकू ने सआदत और निज़ाम दोनों को भगा दिया है।"

"भगा दिया है? उसकी इतनी मजाल है?"

"जहाँपनाह, सफ़ीर उसकी अर्ज़ी लाया है।"

"अच्छा उस अर्ज़ी को हमारे हुज़ूर में पेश करो, मगर उस मूज़ी के नाम पर सब कोई एक एक प्याला चढ़ावे।"

दरबार में फिर एक बार शोर उठा—"करामात करामात!"

दूत ने बादशाह से ४० क़दम दूर चाँदी के कटघरे से बाहर खड़े होकर तीन बार कोर्निस की और एक ज़रीदार ख़रीता निकालकर बादशाह की ख़िदमत में पेश किया। बादशाह ने तनिक भर ख़रीते की ओर देखकर एक अमीर की तरफ़ देखकर संकेत किया। अमीर ने ख़रीता उठाकर वज़ीर साहब के रूबरू पेश किया। वज़ीर ने उसे खोलकर एक बार पढ़ा, और नीची नज़र कर ली।

बादशाह ने हाथ का प्याला बाँदी को सौंपते हुए कहा—"अर्ज़ी में क्या लिखा है, अर्ज़ करो।"

"जहाँपनाह, गुलाम अर्ज़ नहीं कर सकता।"

"क्यों?"

"निहायत गुस्ताख़ाना अल्फ़ाज़ लिखे हैं।"

"ताहम पढ़ो।"

वज़ीर ने ख़त पढ़कर सुना दिया। ख़त में लिखा था कि अगर दो करोड़ रुपये फ़ौरन नहीं दाख़िल कर दिये जायँगे तो दिल्ली की ईंट से ईंट बजा दी जायगी।

सुनकर बादशाह ने क्रोध नहीं किया। आश्चर्य से उनकी भौंहें चढ़ गईं। एक अमीर की ओर रुजू होकर उन्होंने कहा—"क्या यह मुमकिन है कि यह शख़्स दिल्ली की ईंट से ईंट बजा दे?"

अमीर ने अत्यन्त आश्चर्य का भाव प्रकट करके कहा—"जहाँपनाह, यह क़तई नामुमकिन है।"

बादशाह ने एक बार फिर सब अमीरों पर नज़र दौड़ाकर कहा—"यह अर्ज़ी शराब की सुराही में डुबो दी जाय और एक एक प्याला इस मूज़ी के नाम पर पिया जाय।"

दरबार में फिर कोर्निस होने लगी। और "करामात!" "करामात!" का शोर उठ खड़ा हुआ। शराब का दौर चल ही रहा था, दूत चुपचाप हाथ बाँधे खड़ा था। उसने अवसर पाकर अर्ज़ की—"जहाँपनाह, मुझे क्या हुक्म है?"

बादशाह ने हुक्म दिया—"५०० अशर्फ़ियाँ और एक दुशाला इसे इनाम दिया जाय।"

दूत ने मुस्कुरा कर आदाब अर्ज़ की, और चल दिया।

[४]

आँधी की तरह नादिरशाह दिल्ली में घुस आया। दिल्ली को लूटकर उसने शहर में आग लगवा दी। सारा शहर धाँय धाँय जलने लगा। क़िले के फाटक तोड़ डाले गये और अग्निबाण आ आकर रंगमहल के चौक में पड़ने लगे। रँगीले बादशाह का रंग फ़ीका पड़ गया। उसने नादिरशाह के लिए क़िले का फाटक खोल दिया। भरे दरबार में उसका स्वागत करके तख़्तताऊस पर अपने बराबर बैठाया।

प्रतापी मुग़लों के इतिहास में यह पहली घटना थी कि बादशाह के साथ तख़्तताऊस पर कोई दूसरा आदमी बैठे। परन्तु नगर और क़िले पर नादिर का अधिकार हो गया था। बादशाह ने सिर झुकाकर तख़्त-ताज़ उसकी नज़र कर दिया।

नादिरशाह ने सेना को विश्राम की आज्ञा दे दी। नागरिकों को अभयदान दिया। बादशाह से नादिरशाह ने दोस्ती कर ली। २ करोड़ रुपये नादिरशाह को दे दिये गये। अब उसकी ख़ातिर-तवाज़ा में दिल्ली में जशन मनाया जाने लगा। उजड़े और लुटे हुए नागरिक अपने जले-भुने घरों में दीपावली करने को लाचार हुए। रोते रोते नागरिकों ने नाच-रंग के ठाट जमाये। महलों में भी जलसे होने लगे।

रात का समा था। शाही महल में हज़ारों फ़ानूस जल रहे थे। नाच-रंग का दौर-दौरा था। बादशाह सलामत अपनी बहुत-सी ग़ज़लें नादिरशाह को सुना चुके थे। दो पहर रात जा चुकी थी। नाच-रंग फ़ीका पड़ गया था। शराब पीते पीते बदहवास होकर बादशाह ख़्वाबगाह में ले जाये गये थे। नादिरशाह दीवाने ख़ास में अपने मुसाहबों के साथ बैठा कुछ गम्भीर चिन्तना कर रहा था। एकाएक उसने हुक्म दिया कि महल की तमाम शाहज़ादियाँ और बेगमात मेरे रूबरू हाज़िर की जायँ।

सन्नाटा हो गया। मगर किसकी मजाल थी जो नादिरशाह के हुक्म की उदूली करे। पल मारते ही सब शाहज़ादियाँ और बेगमात सामने सिर झुकाकर खड़ी हो गईं।

नादिरशाह ने एक बार छिपी नज़र से सबको देखा। कमर से तलवार खोलकर उसने सामने चौकी पर रख दी और वह आँखें बन्द कर तख़्तताऊस पर लेट गया। कई मिनिट के बाद वह उठा। वह खड़ा हो गया। उसने लाल लाल आँखों से घूर घूरकर प्रत्येक उपस्थित स्त्री को देखा। इसके बाद उसने जलद गम्भीर स्वर में कहा—"तुम लोग मुग़ल शाहज़ादी और बेगमात हो, मगर इस क़दर बेशर्म और बेग़ैरत कि बिना ताअम्मुल दुश्मन के सामने आ खड़ी हुईं। तुममें से किसी में इतनी ग़ैरत नहीं जो इस बेहुर्मती के बजाय अपनी जान पर खेल जातीं। मैंने जान-बूझकर तलवार खोलकर दूर रख दी थी कि शायद कोई आबरूदार शाहज़ादी जोश में आजाय और अपनी तौहीनी के बदले मेरे कलेजे में कटार भोंक दे। इसी इन्तज़ारी में मैं आँखें बन्द किये इतनी देर पड़ा रहा, मगर अफ़सोस, तुम लोग पानीदार औरतें नहीं। ओ ज़लील औरतो, क्या तुमसे यह उम्मीद की जाय कि तुम हिन्दुस्तान पर हुकूमत करनेवाले बच्चे पैदा कर सकती हो? दूर हो आँखों के सामने से।"

शाही ख़ानदान की स्त्रियाँ नीचा सिर किये जा रहीं थीं और नादिरशाह तख़्तताऊस की पीठ से टासना लगाये बहुत-सी बातें सोच रहा था।

[५]

शहर में अफ़वाह फैल गई कि नादिरशाह मर गया। दूकानें बन्द होने लगीं, बाज़ार-गलियों में उसके सिपाही मारे जाने लगे। नादिरशाह ने सुना तब घोड़े पर सवार होकर चाँदनी चौक में निकला।

आज-कल जहाँ फ़ौव्वारा है, उसी के सामने सुनहरी मसजिद है। मसजिद के निकट आने पर नादिरशाह पर पत्थर बरसने लगे। क्रोध से मत्त होकर नादिरशाह सुनहरी मसजिद में चला गया। उसने क्रोध में भरकर तलवार ऊँची करके हुक्म दिया—"क़त्ले आम।"

हज़ारों बर्बर सिपाही नगर की गलियों में घुस पड़े।

न कहने और न देखने योग्य दृश्य दीखने लगा। बूढ़ा, बालक, बच्चा कोई भी ईरानी तलवार से नहीं बचने पाया। हाहाकार मच गया। लाशें गली-कूँचों में सड़ने लगीं। घरों से सिस्कारियाँ आने लगीं। बलात्कार के रोमाञ्चकारी दृश्य दीख पड़ने लगे।

४ दिन बीत गये। क़त्ले आम रुका नहीं। शहर लाशों से पट गया। बाज़ार जलकर राख के ढेर हो गये। नादिरशाह दीवाने ख़ास में तख़्तताऊस पर बैठा था। उसका चेहरा गम्भीर था।

बूढ़े और लाचार बादशाह ने काँपते काँपते आकर अपनी पगड़ी उसके क़दमों में रख दी। वज़ीर और अमीर ज़मीन पर लोट गये। रहम! रहम! सबकी ज़बान पर था।

नादिरशाह ने बादशाह की दीन दशा को दे[खकर क़त्ले]आम रोक देने का हुक्म दिया। उसने तख़्तता[ऊस] ले जाने का अपने नौकरों को हुक्म दिया। न[...] ख़ज़ाना लूट लिया गया।

कुल दस करोड़ का माल और ७ करोड़ [...] ताऊस लेकर वह चला गया। उजाड़, जली हु[ई ...] पटी हुई, हाहाकार से भरी दिल्ली वहीं रही।

उसी दिल्ली में अब पक्की सीमेन्ट की सड़कें [...] असंख्य बिजली के प्रकाश में चमचमाती हैं, [...] में नागरिक स्त्री-पुरुष बहुमूल्य वस्त्र धारण कि[ये] घूमते हैं। न नादिरशाह रहा, न मुहम्मदशाह। [...] अब किसका भय? उसने अब बुढ़ापे में नया ब्याह [...] वह आज-कल दुलहिन बनकर पिछले दिनों को भू[ल ...]

भिखारी

लेखक, कुँवर सोमेश्वरसिंह, बी० ए०

कर चुकी छार हैं जीवन,
जग की ज्वलन्त ज्वालायें।
राखों की ढेरी लेकर,
हम कहो पास क्या आयें ॥१॥

तृष्णा की प्यास बुझाते,
हो गई रिक्त है प्याली।
मन शरमाता है आते,
लेकर यह भाजन ख़ाली ॥२॥

रोती आँखों ने आँसू,
का कोष लुटा है डाला।
मोती न मुझे मिलता अब,
आऊँ ले जिनकी माला ॥३॥

तुमने दी थीं जो कलियाँ,
उपवन का साज सजाने।
अह! मसल दिया उन सबको,
कैसे, कब, कहो, न जाने ॥४॥

था दिया हमें जो जो सब,
मैंने वह है खो डाला।
कुछ लूट लिया लोगों ने,
कुछ मैंने हो खो डाला ॥५॥

भ्रमवश अब तक मैंने था,
वह सब अपना ही जाना।
लौटाऊँ आज कहाँ से,
थाती का अमित ख़ज़ाना ॥६॥

क्या क्या अब भला गिनाऊँ,
क्या क्या मैंने कर डाला।
आश्चर्य नहीं पहले क्यों,
मैंने कुछ देखा-भाला ॥७॥

बस एक तुम्हारी करुणा,
से ही था सब कुछ पाया।
करुणा का आज भिखारी,
बन कर हूँ फिर से आया ॥८॥

राजा सर रामपालसिंह

लेखक, श्रीयुत श्रीपतिसहाय, बी० ए०

मुझसे यह प्रश्न किया जा सकता है कि अवध के लगभग ३०० तालुक़ेदारों में से मैंने राजा सर रामपालसिंह जी की ही चरितावली का वर्णन 'सरस्वती' के पाठकों के सामने करने का निश्चय क्यों किया? इसमें सन्देह नहीं कि देश के राजन्यवर्ग के प्रति भारतीयों के हृदय में विशेष आदर है। अगर हमारा राष्ट्र सुचारुरूप से संगठित किया जाय तो यह वर्ग देश के लिए उतना ही हितकर हो सकता है जितना वर्तमान समय में जापान में यह हो रहा है। मेरी यह आशा और भी बढ़ जाती है जब हमें राजा रामपालसिंह जैसे व्यक्ति का स्मरण हो आता है। देश में साम्यवाद का ज़ोर बढ़ रहा है। ज़मींदार अपनी कमज़ोरियों या बेपरवाहियों के कारण साम्यवादियों को शिकायत का मौक़ा दे देते हैं। दिन-प्रति-दिन तालुक़ेदारों के प्रति जन-साधारण की श्रद्धा कम होती जा रही है। ऐसी परिस्थिति में भी इस समुदाय का यदि कोई व्यक्ति ऐसा है जो इन आक्षेपों से परे है और जिसने अवध के राजन्यवंश की प्राचीन मर्यादा और प्रतिष्ठा को क़ायम रक्खा है तो वे 'कुर्री-सुदौली' के राजा साहब हैं।

राजा साहब का चारु चरित्र जितना शिक्षाप्रद है, उतना ही रोचक भी है। माता-पिता ने इन महात्मा का केवल 'रामपालसिंह' नामकरण किया था। पूर्व-जन्म के पुण्य-प्रताप से चौदह महीने से कम की अवस्था में ये 'राजकुमार रामपालसिंह' हुए। होश सँभालने पर ये 'राजा रामपालसिंह' हो गये। कुछ दिनों के बाद ब्रिटिश सरकार ने इनको सी० आई० ई०, के० सी० आई० ई० और 'सर' की उपाधियों से अलंकृत किया और लोकमत ने अब इन्हें 'राजर्षि' की पदवी देकर इनके गौरव का अनुभव किया है।



[राजर्षि राजा सर रामपालसिंह जू देव के० सी० आई० ई०]

रायबरेली-ज़िले के अन्तर्गत 'कुर्री-सुदौली' नाम का एक सुन्दर गाँव इनके घराने की पुरानी राजधानी है। यहाँ के बैस-राजघरानों के एक घराने के राजा रामपालसिंह एक प्रमुख व्यक्ति हैं। इनकी रियासत की निकासी अवध की अन्य रियासतों की अपेक्षा अब यद्यपि साधारण ही है, तथापि अवध के तालुक़ेदारों में और जन-साधारण में राजा साहब का स्थान और प्रभाव असाधारण है। इसी कारण राजा सर रामपालसिंह के जीवन-चरित की एक झलक इस लेख-द्वारा दिखलाने का यहाँ प्रयत्न किया गया है।

राजा साहब ने जिस सुन्दर ढङ्ग से अपनी रियासत का प्रबन्ध किया है और जिन सिद्धान्तों पर इनका राज्य-प्रबन्ध क़ायम है, केवल वही ढङ्ग और केवल वही सिद्धान्त अर्वाचीन युग में शिष्ट-समुदाय और और ज़मींदारवर्ग को जीवित रख सकते हैं। कहा जाता है कि अर्वाचीन युग में

शिष्टजन-सत्तात्मक प्रथा असफल रही है। दूसरी ओर प्रजासत्तात्मक प्रथा के परिणाम का अनुमान भी अभी नहीं किया जा सकता, क्योंकि अभी राजनैतिक संसार में इस प्रथा की परीक्षा हो रही है। राजा सर रामपालसिंह के जीवन में और प्रबन्ध में शिष्टजन-सत्तात्मक और प्रजा-सत्तात्मक दोनों प्रथाओं का उचित सम्मिश्रण पाया जाता है। तालुक़ेदारी मर्यादा क़ायम रखते हुए और साथ ही साथ वर्तमान युग की लोकतन्त्रवाद की माँगों को जानते हुए राजा साहब ने अपने जीवन के लिए जो मध्य-मार्ग निकाला है वही एक-मात्र मार्ग है जिसका आश्रय लेने से तालुक़ेदारों का अस्तित्व बना रह सकता है। तालुक़ेदारों पर यह आक्षेप किया जाता है कि लगान वसूल करने के अतिरिक्त प्रजा से उनका कोई प्रयोजन नहीं रहता। यह लांछन मिट सकता है जब अन्य तालुक़ेदार भी उसी मार्ग को ग्रहण करें जिस पर राजा रामपालसिंह एक ज़माने से चल रहे हैं। रिआया से इनका जो घनिष्ठ सम्बन्ध है, अनुकरणीय है। वह प्राचीन आदर्श का एक जीता-जागता नमूना है, जिसमें राजा और प्रजा का सम्बन्ध पिता और पुत्र का सम्बन्ध कहा गया है।

जिस समय 'कुर्री-सुदौली' का राज्य राजा साहब के हाथों में आया था उसकी दशा डाँवाडोल थी। एक ओर उसकी आर्थिक स्थिति शोचनीय थी, दूसरी ओर प्रजा ऋण से पीड़ित थी। राजप्रासाद बिलकुल था ही नहीं, जिसके कारण आपको साल भर ख़ीमों में ही रहना पड़ा था। पर आज तो 'कुर्री-सुदौली' एक रमणीक स्थान है। विशाल राजभवन, उसके सामने ही ५१ बीघे का एक मनोहर उद्यान, सुन्दर पुष्प-वाटिकायें, हिन्दपाल-डिस्पेन्सरी, प्राइमरी और मिडिल स्कूल तथा अन्य इमारतें राजा साहब की शासन-कुशलता के ज्वलन्त प्रमाण हैं ही तथापि वे आपकी कला-कुशलता के भी परिचायक हैं।

राज्य-प्रबन्ध तो राजा साहब का मुख्य कर्तव्य हो गया है। प्रजावर्ग की आर्थिक कठिनाई को दूर करने का उन्होंने सफल प्रयत्न किया है। उन्होंने देखा कि किसानों को मुक़द्दमेबाज़ी से बड़ा नुक़सान होता है। इस ख़राबी को मिटाने के लिए उन्होंने पञ्चायतें क़ायम की हैं। किसानों को ऋण-जाल से मुक्त करने का अलग प्रबन्ध किया है। इसके लिए अपने राज्य में 'रामपाल सेन्ट्रल कोआपरेटिव बैंक' नाम का एक बैंक स्थापित है। इसके ज़रिये लोगों को केवल एक रुपया सैकड़ा मासिक सूद पर क़र्ज़ दिया जाता है। इस वर्ष की रिपोर्ट हमारे सामने है, जिससे मालूम होता है कि इस बैंक की पूँजी ६८,११८) है और इस बैंक की मातहती में सोसाइटियाँ काम कर रही हैं। यह बैंक केवल लेन-देन का ही काम नहीं करता, वरन इसके अन्तर्गत भिन्न-भिन्न सोसाइटियाँ हैं उनके ज़रिये से कृषि व स्वास्थ्य की उन्नति और विनोद की सामग्रियों को एकत्र करने का भी प्रयत्न होता है। उनके ज़रिये से मलेरिया, हैज़ा या अन्य महामारियों के अवसर पर लोगों को मुफ़्त दवा बाँटी जाती है। फल और तरकारी की खेती की ओर जनता की रुचि आकर्षित करने के लिए बैंक किसानों को अच्छे अच्छे बीज मुफ़्त देता है। इसके अतिरिक्त खेल-कूद, सिनेमा तथा ग्रामोफ़ोन के रोचक ज़रिये से स्वास्थ्य-सुधार की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित कराया जाता है। किसानों के पास जब उनका अनाज चुक जाता है और जब वे भूखों मरने लगते हैं तब वे इस बैंक से जितना अनाज चाहें, ले जा सकते हैं। फ़सल कटने पर प्रतिमन ५ सेर अधिक देकर वे लोग उस क़र्ज़ को चुकता कर देते हैं। रोगियों की सेवा-शुश्रूषा के लिए सुदौली में एक 'हिन्दपाल-डिस्पेन्सरी' भी खुल गया है।

राजा साहब ने एक और भी प्रशंसनीय कार्य किया है। उनके राज्य में जब कोई किसान नाबालिग़ लड़का या विधवा छोड़कर मर जाता है तब जिस समय तक वह बालक या विधवा अपना काम सँभालने के लायक़ नहीं हो जाते हैं, उनकी मिलकियत का प्रबन्ध रियासत अपने ख़र्च से करती है और मृतक किसान के कुटुम्ब का ख़र्च भी रियासत ही उठाती है। इसके लिए राजा साहब ने एक 'कोर्ट आफ़ वार्ड्स डिपार्टमेण्ट' खोल रक्खा है।

राजा साहब ने खेती की उन्नति को बहुत महत्त्व दिया है और इसकी ओर विशेष ध्यान भी दिया है। उन्होंने अपनी रियासत में दो माडलफ़ार्म खोले हैं। एक का नाम 'कुर्री-फ़ार्म' है और इसका रक़बा लगभग ५० बीघा है। दूसरे का नाम 'सुदौली-फ़ार्म' है और इसका रक़बा लगभग १०० बीघा है। इन फ़ार्मों में खेती बेहतर ढङ्ग से की जाती है।

अपनी रियासत में राजा साहब ने एक डेयरी-फ़ार्म (गोशाला) भी खोल रक्खा है, जिसके कारण मवेशियों की दशा में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है। इस डेयरी में मुर्रा भैंसें और रोहतक की गायें हैं। मवेशियों की नस्ल को उन्नत करने में यह डेयरी बहुत उपयोगी साबित हुआ है। कृषिकार्य में प्रोत्साहन देने के लिए रियासत की ओर से प्रतिवर्ष एक कृषि-प्रदर्शनी की भी आयोजना की जाती है। इस प्रदर्शनी में मुख्यकर ग्राम्योद्योग की वस्तुएँ, किसानों के काम की चीज़ें और अच्छे अच्छे मवेशी प्रदर्शित किये जाते हैं।

अवध की रियासतों में केवल 'कुर्री-सुदौली' ही एक ऐसा राज्य है जहाँ सौ प्रतिशत लगान वसूल हो जाता है। इतना ही नहीं, प्रजा की भी राजा साहब के प्रति इतनी श्रद्धा हो गई है कि पिछले आन्दोलन के समय जब अन्य रियासतों में तहलक़ा-सा मचा हुआ था और जब तालुक़ेदारों के ऊपर विद्रोह-विपत्ति के बादल मँडरा रहे थे, 'कुर्री-सुदौली' की प्रजा ने अपने प्रजाभक्त राजा के विरुद्ध ज़रा भी आवाज़ नहीं उठाई थी।

राज्य-प्रबन्ध की ओर इतना समय और ध्यान देते हुए भी राजा साहब को सार्वजनिक कार्यों से बड़ा प्रेम रहा है। सबसे पहले जिस बात ने राजा साहब के ध्यान को आकर्षित किया वह हिन्दू-जाति और उसके अन्तर्गत भिन्न भिन्न जातियों में प्रचलित कुरीतियाँ और कुत्सित प्रथायें थीं। वे हिन्दू-जाति की गिरी दशा से बहुत दुखी थे और समय मिलने पर उसमें सुधार करने का उन्होंने भरपूर प्रयत्न किया। सन् १९०८ ई० में लखनऊ में होनेवाली युक्त-प्रान्तीय सामाजिक सभा का उन्होंने नेतृत्व ग्रहण किया था और दो ही वर्ष के पश्चात् देश ने उनकी सामाजिक सेवाओं का यथोचित आदर करते हुए उनको अखिल-भारतवर्षीय सामाजिक सभा का सभापति नियुक्त करके सम्मानित किया था। राजा साहब का किसी एक मत की ओर झुकाव नहीं है, सभी मत-मतान्तरों का वे समान आदर करते हैं। लेकिन समाज-संशोधन की ओर उनका विशेष झुकाव है और क्षत्रिय-जाति की उन्नति की ओर राजा साहब ने बहुत ध्यान दिया है। क्षत्रियों के सङ्गठन की ओर उनका विशेष ज़ोर रहा है। सन् १९२० में वे अखिल भारतवर्षीय क्षत्रिय-महासभा के सभापति चुने गये थे। बाद में भी कई बार उनको इस महासभा का नेतृत्व ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी इसी जाति-सेवा के पुरस्कार-स्वरूप प्रान्तीय क्षत्रिय-उपकारिणी सभा ने उनको 'राजर्षि' की उपाधि से सुसम्मानित किया है। हिन्दू सङ्गठन और शुद्धि-कार्य में उन्होंने काफ़ी योग दिया है। सन् १९१८ में दिल्ली में होनेवाली अखिल भारत-वर्षीय हिन्दू-सभा के वे सभापति रह चुके हैं।

राजा साहब हिन्दू-संगठन और शुद्धि पर बहुत ज़ोर देते हैं, तो भी इसके साथ हिन्दू-मुसलिम-ऐक्य को वे देशहित के लिए एक बहुत आवश्यक वस्तु समझते हैं। उनके राज्य में चाहे हिन्दुओं को उनके त्योहारों पर राज्य की तरफ़ से कुछ मदद न मिले, तथापि मुसलमानों को मुहर्रम आदि त्योहारों पर अवश्य मदद दी जाती है। राजा साहब ने अछूतोद्धार और स्त्री-शिक्षा की ओर जिन्हें आज हम देश-हित के लिए बहुत आवश्यक समझते हैं, बहुत दिन पहले ही ध्यान दिया था। राजा साहब के धार्मिक प्रेम से ब्रिटिश सरकार भी अनभिज्ञ नहीं है, और जब सन् १९३१ में सरकार की ओर से 'हिन्दू-रिलीजस् एंड चेरीटेबुल एंडाउमेंट कमिटी' बनाई गई थी तब राजा साहब ही उसके सभापति नियुक्त किये गये थे। उन्होंने प्रान्त के क़रीब क़रीब सभी विश्वविद्यालयों की किसी-न-किसी रूप में सेवा करके अपने शिक्षा-प्रेम का परिचय दिया है। इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी के वे फ़ेलो रह चुके हैं। लखनऊ-यूनिवर्सिटी की कार्य-कारिणी सभा के वे सदस्य हैं और बनारस-हिन्दू-विश्वविद्यालय के कोर्ट के भी मेम्बर हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने अन्य स्कूल-कालेजों को स्थापित करने या उनकी उन्नति में योग दिया है। लखनऊ में कालविन-कालेज की स्थापना में भी राजा साहब ने काफ़ी आर्थिक सहायता दी है। राजा साहब ने तालुक़ेदारों की भी काफ़ी सेवायें की हैं। सन् १९२१ में तालुक़ेदारों की कमिटी—"ब्रिटिश इण्डियन ऐशोसियेशन" के वे सभापति निर्वाचित हुए थे। इस स्थान को पहली बार उन्होंने लगातार ६ साल तक सुशोभित किया। सन् १९३१ में वे फिर इसके सभापति चुने गये। इस सभा का इतनी बार नेतृत्व ग्रहण करने का अवसर और किसी तालुक़ेदार को अभी तक नहीं मिला है।

राजा साहब में कार्य-कुशलता और नीति-निपुणता तो है ही, चरित्रबल भी बहुत है। यही कारण है कि उनकी जीवन-नौका इतने संक्रात्मक भँवरों से होकर आज इस उन्नति-तट पर लग सकी है।

राजा साहब का जन्म ७ अगस्त सन् १८६७ को हुआ था। इनके पिता का नाम ठाकुर विभूतिसिंह था। राजा साहब अपने पिता के तृतीय पुत्र थे। अभी इनकी दुनिया अपनी स्नेहमयी माता की गोद ही तक सीमित थी और इनको इस संसार में आये १४ मास से भी कम हुआ था कि तत्कालीन कुर्री-सुदौली-नरेश ने इन्हें पहली अक्तूबर सन् १८६८ में गोद लेकर अपना उत्तराधिकारी बनाया। किन्तु गोद लिये जाने के एक ही वर्ष पश्चात् राजा हिन्दपालसिंह को औरस सन्तान की आशा हुई और दत्तक पुत्र का भविष्य ख़तरे में पड़ गया। लेकिन रानी साहबा के कन्या ही उत्पन्न हुई, अतएव आवश्यकता पड़ी कि रामपालसिंह जी जो अपने पिता के यहाँ वापस चले गये थे, फिर बुलाये जायँ। किन्तु चन्द द्वेष रखनेवाले आदमियों ने रानियों को बहका दिया और राजा हिन्दपालसिंह अपने दत्तक पुत्र को सुदौली न बुला सके। राजा साहब के विरुद्ध उनके विपक्षियों का षड्यन्त्र चल ही रहा था कि २० दिसम्बर सन् १८७२ को राजा हिन्दपालसिंह का स्वर्गारोहण हो गया। अब उत्तराधिकारी की समस्या उठ खड़ी हुई। ठाकुर विभूतिसिंह जी ने अपनी नीति-कुशलता से १२ अगस्त सन् १८७३ को रियासत का दाख़िल-ख़ारिज राजा साहब के नाम करवा दिया।

उत्तराधिकारी हो जाने पर उनकी शिक्षा का प्रश्न आया। राजा साहब बाल्यकाल से ही बड़ी तीव्र बुद्धि के थे। रियासत कोर्ट आफ़ वार्ड्स में होने के कारण उनकी शिक्षा का सुव्यवस्थित प्रबन्ध तो बहुत दिनों तक हो ही न सका। सात साल की अवस्था तक वे एक मुंशी से हिन्दी पढ़ते रहे। इस अवस्था में उनकी स्मरण इतनी प्रबल थी कि रामायण का किष्किन्धा-काण्ड कर लिया था। १० अगस्त सन् १८७४ को लगभग की आयु में वे रायबरेली के हाईस्कूल में पढ़ने गये उन्होंने ४ वर्ष तक शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद वे के मोहमडन-कालेज में भर्ती हुए। अलीगढ़ उन्होंने एफ़० ए० तक शिक्षा ग्रहण की। इरादा भी विद्या-लाभ करने का था, लेकिन इसी समय कोर्ट आफ़ वार्ड्स ने उनके हाथों में सौंप दिया और होकर उनको अपना विद्यार्थी-जीवन त्याग देना पड़ा

पहले-पहल राज्य-प्रबन्ध का उत्तरदायित्व जब हाथों में आया, वे प्रातःकाल स्वयं घोड़े पर सवार गाँव गाँव फिरते थे। प्रत्येक किसान से मिलते थे, दशा अपनी आँखों से देखते थे और सब कुछ नोट-बुक में दर्ज कर लेते थे। लेकिन जब कोई तब उन पर ग़ौर और कार्रवाई करते थे।

राजा रामपालसिंह जी में जाति-भक्ति है और भक्ति भी है। राजा साहब के गुणों से देश की भी अनभिज्ञ नहीं है और उनके गुणों का यथोचित करते हुए सरकार ने सन् १९०४ में उनको सी० ई० की उपाधि प्रदान की थी और फिर सन् १९ के० सी० आई० ई० की उपाधि से विभूषित राजा साहब ने राजनैतिक क्षेत्र में भी काफ़ी काम कि वे प्रान्तीय व्यवस्थापक-सभा और कौंसिल आफ़ सदस्य भी रह चुके हैं।

इधर कुछ दिनों से राजा साहब का स्वास्थ्य हो रहा है जिससे उनके मित्रों, स्नेहियों और प्र चिन्ता रहती है। ईश्वर उन्हें शीघ्र ही स्वस्थ करे प्रार्थना के साथ हम इस लेख को समाप्त करते हैं।

हलीदा का बलिदान

लेखक, श्रीयुत 'श्री हरेश'

(१)

तीन दिन से इटालियन सेना आगे बढ़ने की चेष्टा कर रही थी, किन्तु मातृभूमि पर मर-मिटने की लालसा से उत्साहित रण-बाँकुरे अबीसीनियनों के आगे उसकी एक न चलती थी। भारी तोपख़ानों, विकराल काल के साक्षात् गाल टैङ्कों और पल भर में संहार-काण्ड मचानेवाले भयावने हवाई जहाज़ों के सभी प्रयत्न व्यर्थ गये। यही नहीं, रात के आकस्मिक हमलों से इटालियनों के नाकों दम था। लोग कहते थे कि अबीसीनियनों की इस अलौकिक वीरता का कारण था उनका २५ वर्षीय सेनानायक रास गेटो। किन्तु वास्तव में यह बात नहीं थी। इन विजयों का सम्पूर्ण श्रेय गेटो को नहीं, वरन उसकी नव-विवाहिता पत्नी हलीदा को था। अबीसीनिया में स्त्रियों को पर्दे के अन्दर बन्दकर रखने की घातक प्रथा नहीं है। यही कारण था कि देश-रक्षा के पुनीत यज्ञ में हलीदा अपने पति की सर्वश्रेष्ठ सहायिका थी।

इतिहास ऐसी अनेक रमणी-रत्नों की कथाओं से भरा हुआ है जिनकी वीरता, धीरता एवं अदम्य उत्साह ने शत्रुओं के छक्के छुड़ा दिये हैं। वे देवियाँ सदैव के लिए अमर हो गई हैं। हलीदा भी ऐसी ही वीराङ्गना थी। जब भयङ्कर गोलियों की मार से व्याकुल होकर उसकी सेना का कोई भाग विचलित हो उठता तब यह देवी तीर-सी वहाँ जा पहुँचती; और उसका पहुँच जाना-मात्र ही शिथिल सैनिकों में नवीन जीवन डाल देता था। गेटो की मशीनगन जब कभी हलीदा के कोमल हाथों में आ जाती तब शत्रु-सेना में हाहाकार मच जाता था। विषैली गैसों के प्रभाव से जब उसके सैनिक मूर्छित हो जाते तब वह करुणा का साक्षात् अवतार बनकर उन्हें दवा सुँघाकर सान्त्वना देती हुई होश में लाने की चेष्टा करती।

गेटो भी वीर था। उसने बचपन से ही तलवार और बन्दूक के खेल खेले थे। परन्तु उसमें एक कमी थी। परतन्त्रता क्या है, यह उसने स्वप्न में भी नहीं जाना था। इसी कारण वह स्वतन्त्रता का मूल्य भली भाँति नहीं समझता था, साथ ही किंचित् लालची और अस्थिरबुद्धि भी था। रणचण्डी के भयानक दृश्य देखकर कभी कभी वह घबरा उठता था, किन्तु हलीदा के वीर वाक्य उसे पराङ्मुख होने से रोक देते, और रास गेटो के मस्तक पर नित्य नई विजय का सेहरा बँधता जा रहा था।

इटली-अबीसीनिया-युद्ध के अन्तिम दिनों की एक करुण कहानी

(२)

युद्ध अभी अभी समाप्त हुआ था। हलीदा सैनिकों की खोज-ख़बर लेने में लगी हुई थी। दिन भर का थका हुआ गेटो पर्वत के एक शिखर पर खड़ा हुआ विचार-सागर में ग़ोते खा रहा था। नीचे समस्त घाटी ... और सफ़ेद सिपाहियों की लाशें बि... देख देखकर वह अकुला ... झकोरों ने उसे ... उसी समय ... हाथ रख दिय... में बड़ी-सी ... एक बुड्ढा ... "तुम ... हाथ रखने ... "मैं ... कहिए वि... हैं? ये ... रहे हैं।

...राधिकारी ... के ब ... कोर्ट के भी ... के ... राजा साहब ब... कुल-कालेजों को ... ठीक ... रियासत कोर्ट आ... दिया है। लखन... पर ... ता का सुव्यवस्थित ... भी राजा साहब ने ... श ... सका। सात साल ... ा साहब ने तालुक़ेदार... ा ... १९२१ में तालुक़ेदारों ... एशोसियेशन" के वे सभाप... ान को पहली बार उन्हों... मत किया। सन् १९३१ ... गये। इस सभा का इतनी बार ... सर और किसी तालुक़ेदार को ... -कुशलता और नीति-निपुणता

"चुप रहो, हमारे सम्राट् की आज्ञा है कि इन्हें देश से मारकर निकाल दो।"

"हुँ! यही तो मज़ा है। सम्राट् तो राजमहल में बैठे मौज कर रहे हैं और आप इन पहाड़ों में अपना ख़ून बहा रहे हैं। कहीं मारे गये तो कोई यह भी नहीं जानेगा कि गेटो कौन था। यदि आप इटालियनों के साथ होते तो देखते, वे आपकी कितनी क़द्र करते हैं।"

गेटो की आँखें एक क्षण के लिए चमक उठीं। आगन्तुक ने फिर कहा—"जितनी लगन के साथ आप लड़ते हैं उससे प्रसन्न होकर इटालियन तो आपको कम-से-कम रास (गवर्नर) तो ज़रूर ही बना देंगे।"

गेटो भोलाभाला सिपाही था। फुसलाने-बहकाने की राजनैतिक चालों से सर्वथा अनभिज्ञ था। उसका हृदय डगमगाने लगा। वह मन ही मन सोचने लगा—"रास काम गेटो। उसके नाम के साथ 'रास' शब्द जँचता तो बहुत सुन्दर है।"

आगन्तुक फिर बोला—"और बातें तो पीछे। यह देखो, १,००० थेलर (सिक्का जो अबीसीनिया में चलता है) तुम्हारे ही लिए...।" बुड्ढे ने झन्न से थैली उसके आगे फेंक दी। सरल गेटो ललचा उठा। धन की चमक ने उसकी आँखें चौंधिया दीं।

"१,००० थेलर! ये तुम्हें केवल इतने काम के लिए ही मिल सकते हैं कि तुम कल अपनी सेना को लड़ने की आज्ञा देने में आधे घण्टे का विलम्ब कर दो।"

गेटो मन्त्र-मुग्ध की तरह खड़ा रहा।

"और इतना ही नहीं, यदि तुम चाहो तो इस समय तुम्हें इतना धन मिल सकता है, जितना जीवन भर में कभी देखा भी न होगा।"

युवक गेटो देश-द्रोही के फन्दे में फँस गया। वह किंचित् मुस्कराया और उसने झुककर थैली उठा ली। क्या उसमें धन था? हाँ, गेटो के लिए होगा, किन्तु हतभागिनी अबीसीनिया के लिए उसमें थी बूँद बूँद रक्त चूस लेनेवाली परतन्त्रता की भारी विपत्ति। कुछ क्षण बुड्ढे से परामर्श करने के पश्चात् थैली लेकर गेटो कैम्प की ओर चला गया। एक क्षण के लिए उसने सोचा, हलीदा क्या कहेगी। किन्तु दुर्भाग्य बोला, उँह! वह क्या समझे इन बातों को। एक स्त्री में बुद्धि ही कितनी। देशद्रोही बुड्ढा कुछ देर खड़ा रहा, फिर मुस्करा कर इटालि... कैम्प की ओर चल दिया।

(३)

अंशुमाली की नवीन किरणों की लाल लाल आ... अभी पर्वतों के शिखर से उतर भी न पाई थी कि ... इटालियन सेना मनुष्यों के रक्त-द्वारा उस स्थान को ल... रँगने के लिए उतावली होकर फिर आगे बढ़ी। ... आज उनकी तोपों की आग अन्य दिनों की भाँति भय... नहीं थी। हवाई जहाज़ों का भी कहीं पता न था। आ... इटालियन इन शक्तियों के भरोसे आगे नहीं बढ़ रहे ... आज तो किसी अन्य शक्ति ने उन्हें इतना निर्भीक ब... दिया था; और वह शक्ति थी १,००० थेलर की थैली। हाय री, कुटिला लक्ष्मी! ज्ञात नहीं तूने कितने आब... देश बर्बाद किये हैं! इस थैली का रूप धरकर आज तू कितनी सधवाओं का सुहाग लूटेगी, कितने कोम... बच्चों को अनाथ बना देगी!

वीर अबीसीनियन शत्रु से मोर्चा लेने को त... उठे। उनकी राइफ़लों की सहस्रों नलियाँ एक साथ उ... गईं। उनकी मशीनगनें इटालियनों को क्षण भर में भू... डालने को प्रस्तुत थीं। परन्तु आह! इन भूखी नलि... काओं में कारतूस डालने की आज्ञा अब भी नहीं मि... रही थी। गेटो प्रलोभन के जाल में बुरी तरह उलझ... हुआ विश्वासघातकता का पूर्ण निश्चय कर चुका था। इटालियन सेना बढ़ी चली आ रही थी। यहाँ त... कि वह बिलकुल ही निकट आ पहुँची। किन्तु गेटो के मुँ... से आक्रमण करने की आज्ञा नहीं निकली। आज्ञा देत... कौन? निकट भविष्य में ही रास बनने की धुन में निमग्न होनेवाले को युद्ध की क्या चिन्ता? स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए उन्मत्त सैनिक चकित थे, हाथ मल रहे थे। क्या हाथ में हथियार रहते कायरों की तरह शत्रु के प्रहार सहने पड़ेंगे? सैनिकों को दूसरी ओर उत्साहित करने गई हुई हलीदा को अपने पति के इस भाव की सूचना मिली तब वह भी आश्चर्य में डूब गई। किन्तु वह वीराङ्गना थी। शीघ्र दौड़कर वह अपनी कन्दरा में पहुँची। देखा, उसका पति १,००० थेलरों के परखने में व्यस्त है।

"यह क्या? क्या कुत्तों की मौत मरना चाहते हो?

इटालियन सेनायें आ पहुँची हैं और तुमने अब तक आक्रमण करने की आज्ञा नहीं दी !"

"नहीं प्रिये ! अब युद्ध नहीं करना पड़ेगा। इटालियन लोग बड़े सभ्य हैं। वे हमें-तुम्हें मालामाल कर देंगे। यह देखो !" गेटो ने एक लोलुपता-पूर्ण दृष्टि उस चाँदी के ढेर की ओर डाली।

"आज तुम्हें क्या हो गया है ? जान पड़ता है, तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है।"

"हलीदा, तुम इन बातों को क्या जानो ? सम्राट् स्वयं तो लड़ने आते नहीं और हमारा ख़ून......।"

हलीदा एक क्षण में सब कुछ समझ गई। क्रोध से थरथर काँपती हुई चिल्ला कर बोली—"तब क्या तुम युद्ध नहीं करोगे ?"

"ऐसे युद्ध से लाभ क्या, जहाँ विजय असम्भव है ?"

हलीदा के नेत्रों से आग बरसने लगी। नागिन-सी तड़प कर उसने कमर से पिस्तौल निकाल ली। धाँय, धाँय दो फ़ायर हुए और गेटो का शरीर वहीं थेलरों के ढेर पर गिर कर छटपटाने लगा।

"नीच, देशद्रोही, विश्वासघातक !" बड़बड़ाती हुई हलीदा बाहर निकल आई। उसने देखा, इटालियन अत्यन्त निकट आ गये हैं। उच्च स्वर से पुकार कर उसने देश के नाम पर अपने हतबुद्धि सैनिकों को युद्ध करने के लिए आदेश किया। पलक मारते ही वीर अबीसीनियनों की प्यासी संगीनें लपक लपककर शत्रुओं का लहू चाटने लगीं। देश, सम्राट् और अपनी सेना-नायिका की आन पर उन्होंने अपने प्राणों की बाज़ी लगा दी। परन्तु हाय ! अब क्या होता था ? गेटो की स्वार्थान्धता के कारण टिड्डी-दल की तरह उमड़ी हुई इटालियन सेना अबीसीनियनों के व्यूह के अन्दर कभी पहुँच चुकी थी। हलीदा ने भी देखा, सब कुछ समाप्त हो गया है। कराल-काली का रूप धारणकर वह भी उसी विकराल युद्धाग्नि में कूद पड़ी। सहस्रों सफ़ेद लाशों के ढेर लग गये। किन्तु अबीसीनियनों के भाग्य-नक्षत्र का अस्त होना आरम्भ हो चुका था। विजय-श्री और विश्वासघातकता तो एक दूसरे के शत्रु हैं।

रणोन्मत्त हलीदा के हृदय में गोली लगी और वह गिर पड़ी। अबीसीनियनों में हलचल मच गई। घायल सिंहिनी को यह असह्य था। वह तड़पकर उठ बैठी और चिल्लाकर बोली—"मैं स्त्री होकर देश के लिए मर रही हूँ। तुम तो मर्द हो। कट जाना, किन्तु पैर पीछे न हटे। अत्याचारी जान जायें कि हमें हमारा देश कितना प्यारा है।"

रणभूमि ने देखा, एक घायल स्त्री के शब्दों में कैसा जादू भरा था। भूखे भेड़ियों के समान ख़ून से लथपथ लम्बी संगीनें तानकर अबीसीनियन पुनः शत्रुओं पर टूट पड़े। हलीदा फिर वहीं गिरकर बड़बड़ाने लगी—

"चलो अच्छा हुआ मेरे हृदय में गोली लगी। देश-द्रोही गेटो, तुम्हें मैंने इसी हृदय में बड़े प्यार से रक्खा था।"

घाव से ख़ून का तेज़ फ़ुहारा छूट रहा था। हलीदा कुछ क्षणों में ही ठण्डी हो गई। युद्ध भी समाप्त हो गया। वीर हलीदा-द्वारा उत्साहित अबीसीनियन सैनिकों की लाशों पर उस दिन जितने घाव थे, सभी छातियों पर थे। बस, उसी दिन से नित्य अबीसीनियनों की हार होने लगी। इस हार का कारण भविष्य में इतिहास चाहे जो कुछ बतलाये, किन्तु अभागिनी अबीसीनिया १,००० थेलर और गेटो के देशद्रोह पर सदैव ख़ून के आँसू बहाती रहेगी। और हलीदा का बलिदान ? आह ! सम्भव है, वह काल-चक्र की मन्द गति में धीरे धीरे चुपचाप विस्मृत हो जाय।



[कबरा के शिला-चित्र]

प्रस्तर-युग की अमिट विभूतियाँ

लेखक, श्रीयुत ज्वालाप्रसाद मिश्र, बी० एस-सी०, एल-एल० बी०

रायगढ़-राज्य में सिंघनपुर और कबरा पहाड़ में कुछ ऐसी चट्टानें हैं जो आज से लगभग बी[illegible] हज़ार वर्ष पूर्व के मानवों की गुफाओं की दीवालें थीं। यह उन रङ्गीन चित्रों से स्पष्ट है जो [illegible] पर अब तक अमिट हैं। ऐसे चित्र योरप, अमरीका और अफ़्रीका में भी मिलते हैं। इनमें उन[illegible] उस समय में कोई सम्बन्ध अवश्य रहा होगा ? पर यह पता लगाना पुरातत्त्ववेत्ताओं का का[illegible] है। इस लेख में तो लेखक महोदय ने जो अपनी आँखों से देखा है उसी का सुन्दर ढङ्ग [illegible] वर्णन कर दिया है। यह प्रसन्नता की बात है कि रायगढ़ के राजा साहब श्रीमान चक्रधरसि[illegible] जी की भी ऐसी खोजों में दिलचस्पी है।

न जाने कब से मानव-जाति अपनी पदध्वनि से पृथ्वीतल को ध्वनित करती आ रही है, न जाने वह अपनी उस आदिम अवस्था में कैसी थी और उसने अपने 'जीवन-संघर्ष' में किन-किन कठिनाइयों का सामना किया। यह विषय रोचक होते हुए भी बहुत विवाद-ग्रस्त है। सामग्रियों के अभाव में [illegible] अभी इस ओर जैसा चाहिए, वैसा निर्णयात्मक [illegible] नहीं कर सके हैं। उस समय के आदिम निवासि[illegible] सभ्यता कैसी थी, उनकी कोई अपनी लिपि भी थी [illegible] नहीं और अगर थी भी तो वह आधुनिक काल की लि[illegible] से किसी तरह सम्बद्ध थी या नहीं, इन सब बातों का [illegible] करना बहुत कठिन है।

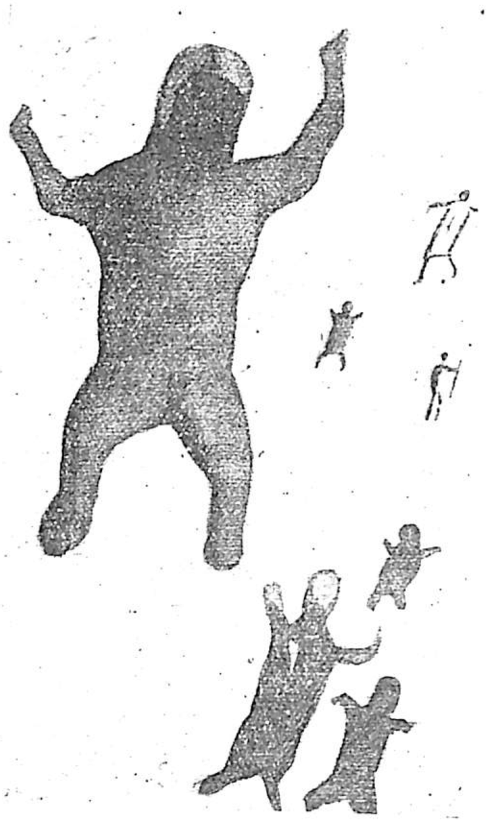
आज से प्रायः बीस हज़ार वर्ष पहले मानव[illegible]



[सिंघनपुर का सौन्दर्य । दूर पर चट्टान देख पड़ती है ।]

अपनी उस प्रारम्भिक अवस्था में थी जिसे हम आधुनिक मानवशास्त्रवेत्ताओं के शब्दों में प्रस्तर-युग कहते हैं। कहते हैं कि वही मानव-जाति की उत्पत्ति और उसके प्राथमिक विकास का काल था। पहाड़ों की गोद में वे पैदा हुए और निर्झरों की मीठी लोरियाँ सुनते हुए वन्यवृक्षों के पालनों में झूले और बढ़े। इन्हीं पहाड़ों से उन्होंने अपने पत्थरों के आदिम हथियार और बाद में उन्हीं पत्थरों के संघर्षण से अग्नि के कण पाये और उन्हीं वन्यवृक्षों से उन्होंने अपने वल्कल-परिधान और उनके बीच घूमते हुए अपने भोजन के लिए वन्य जीव पाये। वह वह समय था जब वे खेती के सिद्धान्तों तथा धातुओं के उपयोग से अनभिज्ञ थे। पहाड़ों पर अथवा उनके नीचे उनके निवासस्थान थे, पत्थर के बने हुए उनके हथियार आदि थे और 'शिकार' ही उनका धंधा था, उनके जीवन का आदर्श था।

उस समय तक दूसरे भावों का विकास उनमें भले ही न हुआ हो, पर यह निर्विवाद सत्य है कि चित्रकला का भाव उनमें उनकी तत्कालीन परिस्थिति के अनुसार किसी न किसी अंश तक जाग्रत हो गया था। यह बात उनके उस समय के बनाये हुए विचित्र चित्रों से ज्ञात होती है, जो भारतवर्ष के अतिरिक्त अन्य देशों में भी अधिकतर गुफाओं के भीतर अथवा उनके द्वार पर शिलाङ्कित रूप में मिले हैं। इन चित्रों से उस युग के आदिम



[सिंघनपुर के शिला-चित्रों में वनमानुष की-सी आकृति ।]

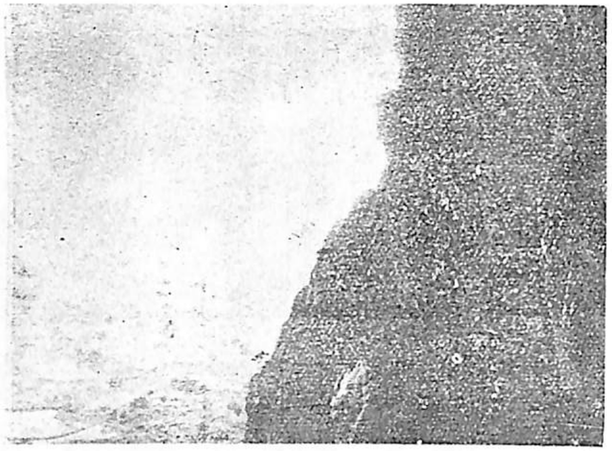
चित्रकर्ताओं की चित्रकला-अभिरुचि के अतिरिक्त अन्य कई बातों पर भी प्रकाश पड़ता है।

थोड़े ही दिन हुए मध्य-प्रदेश के रायगढ़-राज्य में भी हमें कुछ ऐसे ही शिला-चित्र देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। रायगढ़ बंगाल-नागपुर रेलवे की कलकत्ता से बम्बई जानेवाली प्रधान शाखा पर कलकत्ते से ३६५ मील पर अवस्थित है। जिन स्थानों में ये शिलाचित्र हमने देखे उनमें से एक सिंघनपुर नामक स्थान है। यह रायगढ़ से ११ मील पर स्थित नहरपाली रेलवे स्टेशन से प्रायः ३ मील की दूरी पर है। और दूसरा स्थान कबरा पहाड़ है, जो रायगढ़ से प्रायः आठ मील पर मोटर के रास्ते पर है। दोनों स्थानों में पहाड़ के ऊपर ऊँची खड़ी चट्टानों पर जिनके विषय में लोगों का अनुमान है कि वे अतीत युग की ध्वस्त गुफाओं की दीवारें हैं, ये चित्र बने हुए हैं।



[श्रीमान् चक्रधरसिंह राजा साहब, रायगढ़ ।]

हमें पहले सिंघनपुर के चित्रों को देखने का अवसर मिला। यों तो इस स्थान के आस-पास के निवासी इन चित्रों के विषय में बहुत पहले से जानते रहे हैं, पर उन लोगों का विश्वास था और अब भी है कि वे भूत-प्रेतों के निवासस्थान हैं और संभवतः वहाँ कोई गुप्त धन भी गड़ा हुआ है। उनके इस विश्वास पर हमें उस समय बड़ी ही हँसी आई जब यह ख़याल करके कि हम उसी 'गुप्त धन' का पता लगाने आये हैं कुछ लोग कह बैठे—"साहब, वहाँ कुछ भी नहीं है।" इन बेचारों को यह क्या पता है कि उनके वही भूत-प्रेतों के निवासस्थान कहे जानेवाले निर्जन गिरिखण्ड इतिहास की अमूल्य गाथाओं से ओत-प्रोत हैं, और वहाँ प्राचीन संस्कृति के जो जगमगाते हुए रत्न गड़े हुए हैं उनके आगे आज-कल का अमूल्य धन तुच्छ है। अनुसंधान करने पर हमें मालूम हुआ कि वास्तविक रूप से सिंघनपुर के चित्रों को प्रकाश में लाने का श्रेय सर्वप्रथम बंगाल-नागपुर-रेलवे के डिस्ट्रिक्ट इंजीनियर किन्हीं सी० डब्ल्यू० एण्डर्सन महोदय को है। ये सन् १९१० में इधर आये। इन चित्रों के बारे में सुनकर ये उन्हें देखने गये और बाद में अपने मित्रों—ख़ासकर डाक्टर पर्सी ब्राउन से उन्होंने इनका ज़िक्र किया। पर्सी ब्राउन महोदय ने भी सन् १९१५ में इन चित्रों को देखा और अपनी प्रख्यात पुस्तक 'इण्डियन पेण्टिङ्गस' में इनका उल्लेख करते हुए इन्हें संसार के प्राचीनतम चित्रों में स्थान दिया। इसके बाद से इन चित्रों की प्रसिद्धि बहुत बढ़ी।



[चट्टानी पर्वत से घाटी का दृश्य ।]

कई देशी और विदेशी सज्जनों ने इनका निरीक्षण किया और उनमें से कुछ ने इन पर पुस्तकें भी लिखीं। अन्त में बिहार-सरकार ने पटना-म्युज़ियम के क्युरेटर रायसाहब मनोरंजन घोष को सन् १९२१ में इन चित्रों का ख़ास तौर से अध्ययन करने को भेजा। एक अँगरेज़ सज्जन कर्नल स्टैंथम तो इन चित्रों के अध्ययन करने के प्रयास में यहाँ आकर मधुमक्खियों-द्वारा ऐसे आक्रान्त हुए कि उनका प्राणान्त ही हो गया। तब से यह स्थान अधिक सुरक्षित और निरापद रक्खा जाने लगा है।

अपने कई मित्रों से इन चित्रों की ख्याति सुनकर पुरातत्त्ववेत्ता न होते हुए भी हमें इनके देखने का कौतूहल हुआ और एक दिन हम इस मनोरंजक यात्रा के लिए निकल ही पड़े। सिंघनपुर के जिस पहाड़ पर ये चित्र बने हुए हैं वह रायगढ़ से बिलासपुर की ओर जाते समय रेल पर से दाहनी ओर बहुत स्पष्ट देख पड़ा। उसके नीचे सिंघनपुर नाम का एक छोटा-सा गाँव मिला, जिसके नाम पर ही इस स्थान का नामकरण हुआ जान पड़ता है। गाँव के बीच से होकर एक अत्यन्त ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर चक्कर काटते हुए हम उस चट्टान तक पहुँचे जहाँ ये चित्र हैं। मार्ग में एक छोटा-सा पहाड़ी झरना नीचे बहता हुआ मिला, मानो प्रस्तर-युग की कोई कहानी सुनाने के लिए वह गिरता-पड़ता भागा जा रहा था। बीच में एक जगह साधारणतया कुछ कठिन चढ़ाई मिली, पर वैसी विकट नहीं कि चढ़नेवालों को निरुत्साहित कर दे। पहाड़ के ऊपर से दूर-दूर तक फैला हुआ नीचेवाला मैदान और उसकी छाती पर बहती हुई सुदूर स्थित मांद नदी का दृश्य एक नक़्शे की तरह फैला हुआ बड़ा मनोरम देख पड़ता था! वहीं ऊपर क़रीब ६० फ़ुट ऊँची एक खड़ी चट्टान पर पश्चिम की ओर बहुत कम ऊँचाई से शुरू होकर पूर्व की ओर काफ़ी ऊँचाई तक चित्र खिंचे हुए थे—यहाँ तक कि पूर्व की ओर के चित्र बिना ऊँची सीढ़ियों के नज़दीक से नहीं देखे जा सकते थे। न जाने कितनी शताब्दियाँ इन्हें बने व्यतीत हो गईं, न जाने कितने निदाघ इन पर चमके और न जाने कितनी बरसातें इन पर फूटीं और बहीं, पर ये वैसे ही अमिट, वैसे ही स्पष्ट और वैसे ही रञ्जित अभी तक बने हैं और न जाने कब तक ऐसे ही बने रहेंगे। पटना-म्युज़ियम के क्युरेटर महोदय पूर्व की ओर के चित्रों को तो दस हज़ार वर्ष के ऊपर का बताते हैं, पर पश्चिम की ओर के चित्रों के विषय में उनका अनुमान है कि वे उसके बहुत बाद के हैं। श्री अमरनाथ दत्त नामक एक बंगाली महोदय का तो मत है कि ये सभी चित्र प्रायः बीस हज़ार वर्ष पहले के हैं।

इन चित्रों में अगर कोई अजन्ता आदि की चित्र-कला देखने की आशा लेकर आवे तो उसे नितान्त निराश होना पड़ेगा। अजन्ता आदि की चित्रकारी उस युग की है जब चित्रकला पर्याप्त रूप से विकसित हो गई थी और यह चित्रकारी उस समय की है जब कला के रूप में उसकी कोई रूपरेखा ही भली-भाँति नहीं निर्दिष्ट हुई थी। कला की दृष्टि से ये चित्र भले ही कोई महत्त्व न रखते हों, पर अन्य कई विषयों के निर्देश और निर्धारण में ये यथार्थ ही बेजोड़ हैं। पीले, काले और अधिकतर गेरू अथवा सिन्दूर सरीखे किसी अमिट लाल रंग में रँगे हुए विचित्र

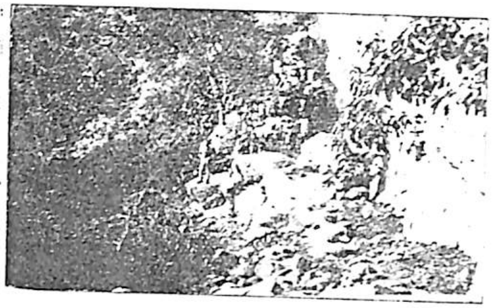


[सिंघनपुर का गिरि-खंड; बाईं ओर वह चट्टान है जिस पर चित्र बने हैं।]

तरह की आकृतिवाले ये चित्र देखने में तो प्रायः वैसे ही मालूम पड़ते हैं जैसे अपने यहाँ की हिन्दू ग्रामीण स्त्रियाँ अपने अकुशल हाथों से प्रायः किसी त्यौहारों के अवसर पर अपने घरों की दीवारों पर आकृतियाँ बना देती हैं। कहीं मनुष्यों की आकृतियाँ हैं तो कहीं बनैले भैंसों तथा शूकरों के चित्र हैं, कहीं खोपड़ियों की-सी सूरतें हैं, कहीं शिकार के दृश्य हैं, जो ऊँचाई पर, पर स्पष्ट हैं तो कहीं संभवतः कुछ संकेत-वाचक चिह्न से हैं। इन चित्रों में से उपर्युक्त शिकार के दृश्य, एक वनमानुष की-सी आकृति तथा और कई आकृतियाँ अपनी स्पष्टता के कारण हमारे ध्यान को अपनी ओर अधिक आकृष्ट करती हैं।

प्रायः उपर्युक्त आकृति और प्रकृति के ही चित्र हमने कबरा नामक पहाड़ पर भी देखे। यहाँ भी सिंघनपुर की तरह हमें वैसी ही पहाड़ी चढ़ाई का सामना करना पड़ा, वैसा ही ऊबड़खाबड़ मार्ग मिला और मिली ऊपर एक विशालकाय खड़ी चट्टान जिस पर चित्र बने थे। यह स्थान रेलवे लाइन से कुछ हटकर होने के कारण सिंघनपुर की तरह लोगों का ध्यान जल्दी नहीं आकृष्ट कर सका। अभी थोड़े ही दिन हुए, स्वयं स्टेट की ओर से ही इस स्थान का निरीक्षण किया गया, वहाँ के चित्रों की सूची तैयार की गई और उनके फ़ोटो उतरवाये गये। कुछ और लोग भी समय-समय पर इस स्थान को देखने आये—यद्यपि सिंघनपुर की तरह अधिक संख्या में नहीं—पर उन अल्प-संख्यक लोगों में से कइयों को ये चित्र सिंघनपुर के चित्रों की अपेक्षा अधिक रोचक और महत्त्वपूर्ण जँचे। इनमें से एक सूर्यबिम्ब, एक बृहत्काय शूकर, छिपकिलीनुमा कुछ सरीसृप जन्तु तथा अन्य कई अज्ञात चिह्नों की आकृतियाँ स्पष्ट देख पड़ती हैं। बहुत ऊँचे पर ऐसी आकृतियाँ बनी हुई हैं जो हरप्पा, मोहेंजोद सुमेरिया में पाई गई आकृतियों से बहुत कुछ रखती हैं और कई विद्वानों के मत से उस युग में किन्हीं अंकों का बोध कराती हैं।

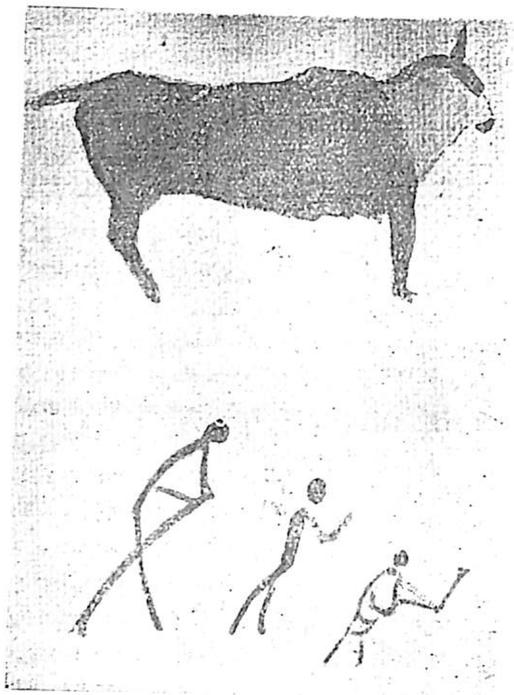
कुछ विद्वानों का कहना है कि किसी समय वि के उत्तर का सम्पूर्ण भारतवर्ष प्रायः जलमग्न हिमालय के ऊँचे स्थानों पर पाये गये कुछ जलचर के अस्थिसमूह तथा बाराहमूल (आज-कल के बारा मार्ग से पानी निकाल कर ऋषि कश्यप का कश्यप कश्मीर बसानेवाला आख्यान इस बात की पु करते हैं। उस समय इन लोगों के मत से यथार्थ वर्ष विंध्यदेश और उसके दक्षिण की ओर था औ स्थल-मार्ग-द्वारा आस्ट्रेलिया, अफ़्रीका और अमर जुड़ा हुआ था। यह सच हो या झूठ, पर इतना तो है कि प्रस्तर-युग के अवशिष्ट चिह्नों—इन शिल से इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। भारत ऐसे चित्र रायगढ़-राज्य के अतिरिक्त मिर्ज़ापुर के पा



[कबरा का गिरिखंड। सामने श्रीमान् रायगढ़-नरेश के साथ यहाँ की स्टेटों के एजेंट साहब खड़े हैं।]

मध्यप्रदेश के होशंगाबाद-ज़िले में अधिकतर विंध्य तथा उसके दक्षिण के भागों में मिले हैं और इन चित्रों से मिलते-जुलते ऐसे ही चित्र सुदूर आस्ट्रेलिया, अफ़्रीका, अमरीका तथा फ़्रांस, इटली, स्पेन आदि दक्षिणी योरपीय देशों में भी प्राप्त हुए हैं। इन चित्रों की कला तथा शैली में ऐसा अद्भुत साम्य है कि इनके एक ही तरह की संस्कृतिवाली मानव-जाति-द्वारा बनाये जाने में कोई शंका नहीं रह जाती। इन चित्रों में नौ-जीवन-सम्बन्धी भावों का अभाव प्रकट करता है कि उस समय तक शायद नौका अथवा पोत आदि की निर्माण-कला अज्ञात थी। तब इन देशों में एक ही प्रकार की संस्कृति का प्रसार यही सिद्ध करता है कि उस समय स्थल-मार्ग-द्वारा ही ये एक दूसरे से सम्बद्ध थे।

कुछ और बातें इन चित्रों से ज्ञात होती हैं। जहाँ कहीं शिकार के दृश्य दिखाये गये हैं वहाँ भालों का ही प्रयोग हुआ है, तीर-तलवार का नहीं। उस आदि युग में सम्भव है तब तक इनका आविष्कार ही न हुआ हो। मृगया का एक चित्र तो सिंघनपुर में हमने ऐसा देखा जिसमें कुछ मनुष्य भाले लिये हुए एक वनभैंसे सरीखे जन्तु को मारने का उपक्रम करते हुए दिखाये गये हैं। एक मनुष्य तो उस आकृति की पूँछ के पास ही दिखाया गया है और बाक़ी कुछ दूर पर। डाक्टर प्राणनाथ विद्यालंकार ने इस चित्र को शिकार का दृश्य न मानकर वैतरणी पार करने का दृश्य माना है, जिसमें उनके मत के अनुसार एक मनुष्य गाय की पूँछ पकड़े हुए वैतरणी पार कर रहा है और अन्य लोग—सम्भवतः यम के दूत—उसे डरवा रहे हैं। उनका कहना है, कि इस चित्र का भाव, इजिप्ट से लिया गया है। उनके इस मत की पुष्टि नहीं होती, खासकर जब हम देखते हैं कि जो मनुष्य उस जन्तु की पूँछ के पास है और जिसे विद्यालंकार महोदय वैतरणी पार करनेवाला बतलाते हैं, उसके हाथ में भी भाला सरीखी कोई वस्तु है, जो शिकार की ही अवस्था में अधिक सम्भव दिखता है। एक और विशेषता इन चित्रों में है। इनमें कहीं कहीं एक ही साथ बहुत छोटे और बहुत बड़े आकार के मनुष्यों की आकृतियाँ दिखाई गई हैं, यद्यपि छोटे आकारवालों की संख्या अधिक है और बड़े आकारवालों की कम। कहीं तो ऐसा दिखता है कि छोटे आकारवाले बड़े आकारवाली एकआध आकृति को घेरकर मारने का उपक्रम कर रहे हैं। इनके विषय में कुछ विद्वानों का कहना है कि किसी समय इस पृथ्वी पर दोनों प्रकार के मनुष्य रहते थे। क्रमशः छोटे आकारवाले



[सिंघनपुर के शिला-चित्रों में शिकार का दृश्य।]

बौनों ने दीर्घकाय जीवों का अस्तित्व मिटा डाला। संभवतः ये चित्र उसी काल के हों जब बौनों के द्वारा दीर्घकाय जीव प्रायः निःशेषप्राय हो रहे थे। एक आकृति तो वन-मानुष सरीखी सिंघनपुर के चित्रों में बहुत स्पष्ट देख पड़ती है जिसे हम मानव-जाति के आदिम प्रतिनिधि का नमूना मानने के लिए विवश हो जाते हैं जब हम देखते हैं कि एकआध अन्य स्थानों में हमें उसी तरह के जीवों के अस्थि-पञ्जर भी प्राप्त हुए हैं। कई ऐसे जीवों के चित्र भी यहाँ हैं जिनका अस्तित्व ही आज-कल मिट गया है, पर संभव है, वे उस युग में जीवित रहे हों।

जिन पहाड़ों पर ये चित्र बने हैं उनके आस-पास खास-कर नीचे पत्थर के कुछ ऐसे टुकड़े भी प्राप्त हुए हैं जिनके विषय में विद्वानों का अनुमान है कि वे उस प्रस्तर-युग के हथियारों व अन्य गृहसामग्रियों के अवशिष्ट अंश हैं। सम्भवतः उस काल के निवासी पहाड़ों के नीचे ही रहते हों और ऊपर स्थित चित्रोंवाले स्थान उनकी किसी प्रकार की उपासना के स्थान हों।

जब-तब बाहर से विद्वान इन शिला-चित्रों को देखने आया करते हैं। उनकी सुविधाओं की ओर यहाँ के सुयोग्य शासक श्रीमान् राजा चक्रधरसिंह जी का विशेष ध्यान रहता है। वे स्वयं एक विद्वान् और कार्यकुशल नरेश हैं और प्राचीन वस्तुओं के संरक्षण की ओर उनका विशेष अनुराग है। बीच बीच में मक्खियों को उड़ाकर ये स्थान साफ़ और निरापद कर दिये जाते हैं। साथ ही जब कोई सम्मानित आगन्तुक इन्हें देखने बाहर से आते हैं तब पूर्व-सूचना मिलने पर राज्य की ओर से उनके लिए सीढ़ियों आदि का भी प्रबन्ध हो जाता है, जिससे वे लोग आसानी से इन चित्रों को देख सकें और इनकी प्रतिलिपियाँ ले सकें।

अभी जैसा चाहिए वैसा प्रकाश इन चित्रों पर नहीं डाला गया है, और न वैसी सम्यक् आलोचना ही इनकी हुई है। बाहर के विद्वान आगन्तुकों ने अभी सम्भवतः इन पहाड़ों पर के कुल चित्र देखे भी नहीं हैं, पर इतना अवश्य है कि ये चित्र आदिम युग के निर्धारण में बहुत बड़ा हाथ रखते हैं और अभी न जाने इनके द्वारा उस समय की कौन-कौन-सी मनोरंजक, साथ ही मूल्यवान बातें न ज्ञात होंगी।

निर्मम जीवन

लेखक, श्रीयुत हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश'

यह निर्मम जीवन भार हुआ।
कसकों का कारागार हुआ॥

सूनापन यहाँ बरसता है,
मरुथल में कहाँ सरसता है;
केवल जल की दो बूँदों को-
चातक का प्राण तरसता है,
असफल समस्त उपचार हुआ।
यह निर्मम जीवन भार हुआ॥

अपवादों के आख्यान बने,
व्यंगों के तीर-कमान तने;
बेगानों से क्या उपालम्भ—
जब अपने भी न रहे अपने,
सबका उपेक्ष्य व्यवहार हुआ।
यह निर्मम जीवन भार हुआ॥

कोई न पूछनेवाला है,
क्या दुख है, तुम्हें कसाला है;
पूछते आँसुओं ही से कुछ--
क्यों पाया देश-निकाला है॥
क्यों ऐसा दुर्व्यवहार हुआ।
हिचकी का हाहाकार हुआ॥

उर में दावानल की दहकन,
शीतोष्ण उसासों का कम्पन;
दिन-रात झड़ी बरसाते हैं—
दृग-मेघों के भादों-सावन॥
अब त्राण मुझे दुश्वार हुआ।
यह निर्मम जीवन भार हुआ॥

अज्ञात दिशा की ओर

मिसेज़ बोस एक परम सुन्दरी रमणी हैं। उनसे भी अधिक सौन्दर्य्य उनकी एकमात्र पुत्री रेखा में उमड़ता आ रहा था। अपने को हताशगंज का ज़मींदार कहकर इन पर प्रभाव डालने के बाद अहीन्द्र ने अपने मित्र निर्मल 'चौधरी' का इनसे परिचय कराया और उनके सम्बन्ध में बतलाया कि ये कोचभूम के प्रिंस हैं। इधर मिसेज़ बोस तथा निर्मल परस्पर एक दूसरे की ओर विशेष रूप से आकर्षित हो गये, किन्तु अहीन्द्र की आसक्ति रेखा पर ही अधिक थी। एक बार वे लोग कलकत्ता छोड़कर देहात में गंगा जी के तट पर एक बँगले में कुछ समय बिताने के लिए गये। वहाँ भ्रमण के समय एकान्त पाकर अहीन्द्र ने रेखा से प्रणय निवेदन किया, किन्तु रेखा ने उसका प्रत्याख्यान कर दिया।

अनुवादक—श्रीयुत ठाकुरदत्त मिश्र

पाँचवाँ परिच्छेद
यह तो नया खेल है!

बिछौने पर पड़े पड़े भी बड़ी रात तक अहीन्द्र की आँखों में नींद नहीं आई। रेखा का स्पर्श उस समय भी उसके समस्त शरीर में बिजली के प्रवाह का सञ्चार कर रहा था। उसका हृदय रेखा की चिन्ता से ही परिपूर्ण था। देखो न, क्षण भर की दुर्बलता के कारण रेखा को वह क्या कह गया! उसे इस तरह बाहुओं के पाश में आबद्ध करके उसने चुम्बन तक कर लिया है! अहीन्द्र को तो रेखा अपना मित्र ही समझती है।...शायद वह रुष्ट हो गई है।...नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। रेखा ने ही तो मित्र कहकर इस तरह आदरपूर्वक उसे अपने हृदय में स्थान दिया है। मित्र!...इस बात का अर्थ क्या है? आखिर रेखा अहीन्द्र से चाहती क्या है?...उसके इस रूप की ज्योत्स्ना ने ही तो अहीन्द्र को एकदम विह्वल-विवश कर डाला था, यही कारण है कि......

परन्तु इस रेखा ने ही अहीन्द्र के इस तरह के उमड़े हुए प्रेम को ठुकरा दिया! नारी-जाति के सम्बन्ध में अहीन्द्र के हृदय में कितने ही संस्कार जमे हुए थे। उसका विश्वास था कि पैसा और रूप का जाल फैलाकर किसी भी नारी का चित्त वश में किया जा सकता है। परन्तु रेखा तो अभी तक इस तरह के जाल में नहीं फँस सकी। उसकी इस तरह की उपेक्षा का अर्थ क्या है? उसे लेकर क्या वह और खेल खेलाना चाहती है?

दूर से घड़ी की आवाज़ सुनाई पड़ी। टन से एक बजा।...बाद को दो भी न जाने कब बज गया। अहीन्द्र शय्या छोड़कर उठा। उसे ज़रा भी नींद न आ सकी। उसका सारा शरीर पसीने से तर हो गया। उठकर वह खिड़की के पास जाकर खड़ा हो गया। झरझराकर स्निग्ध वायु बह रही थी। उस वायु ने उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग का स्पर्श किया, उसकी सारी उष्णता दूर हो गई, शरीर शीतल हो गया। वह खिड़की के पास ही खड़ा रहा, अपनी दोनों आँखों की अलस दृष्टि उसने बहुत दूर तक फैले हुए वन और मैदान तक फैला दी। चन्द्रमा के प्रकाश से सारा वन धवलित हो उठा था। सारे पेड़-पौधे विस्मय से मुग्ध होकर खड़े थे। चन्द्रदेव अपनी किरणों के द्वारा जो अमृत की धारा बरसा रहे थे उसका वे पान कर रहे थे। आकाश और वायु में नीरव दृष्टि के मध्य से होकर कितनी काना-फूसी नहीं हो रही थी!

कुछ दूरी पर एक वृक्ष के नीचे अहीन्द्र को कोई लाल रंग की चीज़ दिखाई पड़ी। विस्मित होकर वह सोचने लगा कि यह क्या चीज़ है। क्या यह आग की लपट है? लेकिन इतनी रात को यहाँ आग कौन जलावेगा? तो क्या कोई यहाँ सिगरेट पी रहा है? अहीन्द्र ने पुकारा—निर्मल!

वृक्ष के नीचे से उत्तर आया—अहीन्द्र!

अहीन्द्र ने कहा—तुम वहाँ हो? अच्छा, ठहरो, मैं आता हूँ।

अहीन्द्र बहुत धीरे धीरे सीढ़ी से उतरकर वृक्ष के नीचे आ पहुँचा। वहाँ आकर वह कहने लगा—तुम सोये नहीं, जो इतनी रात को यहाँ पेड़ के नीचे बैठे हो?

धीरे से हँसकर निर्मल ने कहा—आँख ही नहीं लग रही थी।

एक व्यंग्यमय हँसी हँसकर अहीन्द्र ने कहा—अच्छा, तो मिसेज़ बोस तुम्हें कैसी जँची?

निर्मल ने कहा—बिलकुल परी! हृदय उनके है! अवस्था कुछ अधिक है अवश्य, परन्तु हृदय आज भी आनन्द से यौवन की हरियाली से लहलहा रहा है। उनका हृदय मानो सदा ही हरा-भरा रहता है। सोचता हूँ, कल ज़रा कलकत्ता हो आऊँ। सुनने में आया है कि कल उनका जन्मदिन है। कुछ उपहार दूँगा।

अहीन्द्र ने हँसकर कहा—उसे वे बड़े आदर से ग्रहण करेंगी। मैंने भी कुछ उपहार दिया है। परन्तु वह उनके प्रसाद की लालसा से नहीं।...

निर्मल ने कहा—तुम्हारी पूजा का लक्ष्य बराबर यह लड़की ही रही है।

अहीन्द्र ने कहा—देखें, पूजा सार्थक होती या नहीं।

अहीन्द्र को रोककर निर्मल ने कहा—किन्तु इन अल्हड़ छोकड़ियों के साथ प्रेम! मुझे तो इस बात की कल्पना करके ही हँसी आती है।...बिलकुल बच्ची!...उस दिन तुम्हारी बातें सुनकर पहले-पहल जब मैं बायस्कोप में यहाँ आया हूँ, उर्वशी के लोभ से ही आया हूँ! बाद को आने पर देखा कि सचमुच पूरी उर्वशी ही है!...यह लड़की निरा बच्ची है! अभी तक इसके हृदय का विकास नहीं हो पाया है। इसके साथ खेल-कूद कर, इसे कहानियाँ सुनाकर या स्वयं इससे कहानियाँ सुनकर मनोविनोद तो किया जा सकता है, परन्तु यह लड़की इस मतलब की नहीं है कि इससे प्रेम-चर्चा की जाय। मा अलबत्ता इस विषय में दक्ष है। अस्तु, भाग्य से ही ऐसा हुआ है, नहीं तो दोनों मित्रों में बड़ी भयङ्कर प्रतिद्वन्द्विता खड़ी हो जाती। मिसेज़ बोस प्रशंसा करके कह रही थीं कि मैं इतने आदमियों से मित्रता कर चुकी हूँ, किन्तु आपकी तरह का समझदार मित्र मुझे नहीं मिल सका—एक भी ऐसा मित्र नहीं मिल सका!

अहीन्द्र ने कहा—मैं तुम्हारी सफलता की [illegible] करता हूँ।

निर्मल ने कहा—आज बड़ी देर तक हम दो[illegible] बातचीत करते रहे। बहुत-सी बातें हुईं। अच्छा [illegible] तुम बता सकते हो कि तुम्हें नींद क्यों नहीं आ रही [illegible]

अहीन्द्र ने कहा—भाई, नींद अवश्य नहीं [illegible] थी। बात यह है कि आज मन बहुत चञ्चल हो उ[illegible] रेखा की चिन्ता मेरे हृदय से निकलती ही नहीं। मैंने उससे कह भी दिया कि मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। रेखा से इस तरह की बात कहने के लिए मुझे अ[illegible] अवसर भी मिल गया था। उस समय मैं अपने [illegible] सँभाल न सका। सुनकर वह रुष्ट हो गई हो, यह बा[illegible] नहीं है, किन्तु उस ओर से ऐसा कोई उत्तर भी न[illegible] सका हूँ। यह भी कैसी विचित्र पहेली है! अहीन्द्र ने लम्बी साँस ली।

निर्मल ने कहा—बात तो ठीक कहते हो। वह [illegible] ही है। इसी लिए तो मैं उसके पास तक नहीं फटकता। जिस स्त्री की कुछ अवस्था हुई है, अर्थात् जिसने [illegible] को देखा है, पुस्तक के समान वह आसानी से पढ़ी जा सकती है। परन्तु नवयुवती नायिकाओं का यह [illegible] इन सबको पकड़ने का उपाय नहीं है, छूने का उपाय [illegible] है, समझना तो बहुत दूर रहा। यह जो नदी बह रही [illegible] चन्द्रमा के प्रकाश में उसका जल चमचमा रहा है। देखने में कैसा सुन्दर है। परन्तु यह गहरी है या उथ[illegible] यह समझने का उपाय नहीं है। अर्थात् उस [illegible] बढ़कर जाने में बड़ा कष्ट है—बड़ी चिन्ता की बात [illegible] उनकी लम्बी साँसें, उनके आँसू,—यह सब अल्पवय[illegible] युवक ही सहन कर सकते हैं। हमारे किये तो इतनी मेह[illegible] नहीं होती भाई। प्रेम में पड़ो या और कुछ करो, परन्तु [illegible] इस अवस्था में विवाह करके एक झंझट न पालो। [illegible] ऐसा न हो कि यह मनोमुग्धकारी रूप देखकर समा[illegible] सुधारक बनने का शौक़ लग जाय। मैं इन सब स्त्रियों [illegible] बाहर की बातें लेकर ही कारबार करना चाहता हूँ—इस[illegible] अधिक नहीं। समझे मित्र। कवि क्या मिथ्या कह गये हैं [illegible] निर्मल हा हा करके हँसने लगा।

ज़रा-सा सहम कर अहीन्द्र ने कहा—नहीं, इस बा[illegible] का भय नहीं है। विवाह करके एक बँधे हुए दायरे [illegible]

में पैर नहीं रख रहा हूँ। मैं केवल एक-दो मास के आनन्द भर का उपभोग करना चाहता हूँ, इसके सिवा और कोई बात नहीं है। मैं किसी प्रकार का दायित्व नहीं लेता हूँ, किसी बन्धन में नहीं पड़ रहा हूँ। मैं तो केवल विशुद्ध काव्य-रस का उपभोग करना चाहता हूँ।

सिगरेट ख़त्म करके निर्मल ने कहा—ठीक कहते हो। यह लाख बात की एक बात है। ...अब आओ, उठा जाय, चलकर ज़रा-सा सोने की कोशिश करें।

अहीन्द्र ने कहा—सोने का प्रयत्न तो करना ही चाहिए। रात भी शायद अब बहुत अधिक नहीं रह गई। तीन तो बजता ही होगा।

दोनों मित्र उठकर अपने अपने कमरे में चले गये।

अहीन्द्र अपने कमरे में आकर जैसे ही बैठा, पहली रात की घटना सुस्पष्ट होकर उसके मन पर अधिकार कर बैठी। यही तो इतने दिनों तक इस दुर्दमनीय आकांक्षा को वह वश में किये हुए था, परन्तु आज उसमें इस तरह की दुर्बलता कैसे आ गई!···रेखा यदि कहीं रुष्ट हो गई हो! इससे यदि वह अपने आपको अपमानित समझ बैठी हो!···अहीन्द्र किस तरह सवेरे उसे मुँह दिखला-वेगा? मुलाक़ात होने पर भला वह उससे क्या कह सकेगा?

अहीन्द्र को इस तरह का साहस भी न होता, यदि रेखा साँझ हो जाने के बाद एक-मात्र उसी को संगी बनाकर निस्सङ्कोच भाव से उस एकान्त रेते में न खींच ले जाती। इसके अतिरिक्त रेखा ने मित्र कह कर उसे पुकारा भी है। इस तरह का मिलना-जुलना, इस तरह का हँसना-बोलना·······

तो भी उसका हृदय अत्यधिक लज्जा से परिपूर्ण होता जा रहा था। दिन के उजाले में रेखा से जब फिर मुलाक़ात होगी। न, कल सवेरे ही किसी तरह मुँह छिपाकर वह यह घर छोड़कर चला जायगा। इतने दिनों तक वह एक ही वस्तु के लोभ से इन सबके साथ सम्पर्क रखने की चेष्टा करता रहा है।·····आज यदि वह आशा टूटकर खंड-खंड हो गई तो फिर यहाँ रहने की आवश्यकता ही क्या है? पराजय की इस तरह की कालिमा मुँह में लपेट-कर भला वह रेखा के सामने कैसे जायगा? यह नहीं हो सकता। अहीन्द्र के लिए यहाँ रहना अब असम्भव है।

अहीन्द्र इस तरह की उधेड़-बुन में पड़ा ही था कि न जाने किस बीच में एक झपकी आई और उसकी आँखों को मूँदकर उसके मन को दबा लिया। अहीन्द्र को इस बात की ख़बर तक न लग सकी।

दरवाज़े को जब किसी ने ज़ोर से थपथपाया तब अहीन्द्र झिझककर उठ बैठा। खुली हुई खिड़की से उसने देखा कि सूर्य की किरणें आ-आकर कमरे में प्रवेश कर रही हैं।·····सबेरा हो गया है। विस्मित भाव से उठकर द्वार खोल दिया।

द्वार खुलते ही हँसी की एक बहुत ही प्रबल बाढ़-सी आकर घर में प्रविष्ट हो गई। रेखा हँसकर बोल उठी—बाप रे! इस तरह ग़ज़ब की नींद आती है आपको! कितनी बार मैं दरवाज़े को थपथपा गई हूँ—चुपचाप। बाद को चाय पी चुकने के बाद गङ्गा जी के तट पर एक बार घूम भी आई हूँ। लौटने पर बैठकर मा के साथ बात-चीत की। मोटर पर बैठकर मा प्रिंस के साथ घूमने गईं। मुझसे भी चलने को कहती थीं, मैं नहीं गई। मा के चले जाने पर इस नौकर का भाई एक मरा हुआ साँप दिखाने को ले आया। उसे उसने मैदान में मारा था। बहुत बड़ा साँप था। मुझे दिखाकर वह वापस ले गया। यह सब हो चुकने के बाद देखा कि अभी आपकी नींद नहीं खुली है। घड़ी देखी, साढ़े आठ बज गये थे। तब मैं सोचने लगी कि मेरे मित्र को आख़िर हो क्या गया है! अन्त में दर-वाज़े को बार-बार थपथपाये बिना मुझसे न रहा गया।··· तब जाकर कहीं आपकी नींद खुली!

इस तरह रेखा ने बातों का तूफ़ान खड़ा कर दिया। अहीन्द्र न जाने कैसा विह्वल-सा होकर खड़ा रहा। रेखा बकती जा रही थी और अहीन्द्र अनिमेष दृष्टि से उसी की मुखाकृति को देख रहा था। अहीन्द्र का लक्ष्य एक-मात्र इसी ओर था कि रेखा के मुखमण्डल पर रोष, अभिमान या विरक्ति का भाव है अथवा नहीं। परन्तु उसे इन सब बातों का ज़रा-सा चिह्न तक न मिल सका। उसका मुस्कराहट से भरा हुआ मुँह क्या था, मानो प्रातःकाल की ओस की बूँदों से भीगा हुआ तुरन्त का खिला हुआ फूल। नेत्रों में प्रसन्नता का भाव सुस्पष्ट रूप से व्यक्त हो रहा था।

मूढ़ की तरह अवाक् होकर अपनी ओर अनिमेष दृष्टि से अहीन्द्र को ताकते हुए देखकर रेखा ने कहा—कहिए,

बात क्या है अहीन्द्र बाबू? नींद की झोंक क्या अब भी नहीं दूर हो रही है, जो इस तरह अवाक् होकर आप खड़े हैं? कुछ बोलते क्यों नहीं?

अहीन्द्र सचमुच अवाक् हो गया था। रेखा क्या उसकी कल की अशिष्टतापूर्ण बातें भूल गई है? अहीन्द्र के मुँह से जो कोई बात नहीं निकल रही थी, इसका क्या श्रेष्ठ कारण नहीं था? कल उस एकान्त रेते में जब उन्माद उत्पन्न करनेवाला चन्द्रमा का प्रकाश फैला हुआ था, अहीन्द्र ने किस प्रकार मर्यादा को तिलाञ्जलि दे दी थी। और उसी नाज़ुक समय में·······

अहीन्द्र ने कहा—क्या तुमने मुझे क्षमा कर दिया है रेखा?

रेखा हँस पड़ी। वह कहने लगी—क्षमा! किस बात के लिए अहीन्द्र बाबू, बतलाइए तो। आपने कौन-सा ऐसा अपराध किया है, जिसके कारण आपको यह बात कहनी पड़ रही है?

अहीन्द्र ने कहा—नहीं, कल रेते में जब हम लोग गये थे, शायद किसी तरह की आशंका मुझसे हो गई हो।

एकाएक रेखा के मुखमण्डल पर रक्त की धारा ज़ोर से दौड़ गई। उसका मुँह तुरन्त ही लाल रंग के गुलाब के समान लाल हो उठा। क्षण भर तो वह गम्भीर बनी रही, बाद को उसी दम उसने कहा—ओह! वह बात स्मरण करके आप इस तरह कुण्ठित हो उठे हैं! अच्छा, यह बतलाइए कि आप वहाँ से आये कैसे? वह मल्लाह का लड़का आपको मिला था या नहीं? आपको ले आने के लिए मैं उसे कुछ इनाम भी दे आई थी।

रेखा की बातचीत या उसकी दृष्टि में किसी प्रकार की द्विविधा नहीं थी, घृणा नहीं थी। अहीन्द्र अवाक् हो गया। उसने कहा—नहीं, वह लड़का नहीं था। मैं दूसरी नौका करके आया हूँ। रात भी बहुत अधिक हो गई थी।

रेखा ने कहा—कितनी रात्रि हुई थी, ज़रा मैं भी तो सुनूँ?

अहीन्द्र ने कहा—दस तो बज ही गये थे!

रेखा ने कहा—दस बज गये थे! घर लौटकर मैंने घड़ी देखी थी तब आठ बजे थे। आप भी बेढब आदमी हैं! इतनी रात तक अकेले उस जंगल में बैठे रहे!···ख़ैर, जो हुआ, सो हो गया। उसके सम्बन्ध में सोच-विचार करने से कोई लाभ तो है नहीं। मैं कभी अतीत घटनाओं के सम्बन्ध में तर्क-वितर्क करने में अपने दिमाग़ को कष्ट नहीं देती हूँ।···अच्छा, एक काम कीजिए। आज इन कुलियों का कोई त्योहार है। ये सब दल के दल बड़े ठाट-बाट से उस ओर चले जा रहे हैं। देखने से मुझे जान पड़ा, आज इन सबमें बड़ा उत्साह है। चलिए न, हम भी इनके आनन्द, इनके उत्सव की धारा ज़रा देर तक देख आवें।

अहीन्द्र ने कहा—मिसेज़ बोस यदि कुछ कहें।

रेखा ने कहा—मा जान भी न पावेंगी। चलिए, पास ही पानी चलें।

अहीन्द्र ने कहा—चलिए।

हाय रे! इस अगियाबैताल के पीछे दौड़ते फिरना क्या अब भी न रुक सकेगा? इस प्रकार निराशा के आघात से जर्जरित होने में लाभ क्या है? कल तो अपनी प्रगल्भता के कारण इतना अधिक आघात वह पा चुका है।···और यह नवयुवती?···यह तो पहेली के समान ही दुर्बोध है। कल की घटना से वह इस तरह आग-बबूला हो उठी थी कि अहीन्द्र को उस निर्जन रेते में छोड़कर भाग आई थी और आज सवेरे अहीन्द्र को साथ में लेने के लिए अपने आप ही आकर इतने आदर से उसे बुला रही है। वह इस तरह बातें कर रही है और ऐसी दृष्टि से अहीन्द्र की ओर ताक रही है कि कल के क्रोध और झुँझलाहट का चिह्न तक नहीं प्रकट हो पाता।

इस परम सुन्दर तरुणी के मनोभाव यदि इतने गूढ़ न होते, यदि वह इस तरह दुर्बोध न होती तो अहीन्द्र का ही चित्त इस प्रकार अपना ज्ञान खोकर इसके पीछे पीछे विक्षिप्त की तरह चारों ओर क्यों दौड़ता फिरता? रेखा यदि इस तरह दुर्बोध न होकर और पाँच साधारण तरुणियों की तरह सहज होती तो क्या अहीन्द्र इस तरह किसी दिन दौड़ता उसकी ओर?···वह तो इस तरह की सैकड़ों नवयुवतियों के बीच में आया-गया है, कितनी तरुणियाँ ही उसे अपने अधिकार में करने के लिए कितनी माया की सृष्टि कर चुकी हैं, किन्तु अहीन्द्र ने सदा उनका विद्रूप ही किया है—उन्हें उपेक्षा की दृष्टि से ही देखता आया है। अपने आपको किसी की पकड़ में आने देने की कल्पना तक उसके हृदय में नहीं उदित हो पाई।

अहीन्द्र झटपट उठा और हाथ-मुँह धोकर तैयार हो गया। रेखा ने कहा—आप तैयार हो गये हैं न? अच्छा, तो अब आइए।

वे दोनों ही बँगले से निकल पड़े।

देहात का रास्ता था। वह रास्ता बहुत चौड़ा नहीं था। रेखा के ही समान वह बहुत दूर तक चला गया था। दोनों बग़ल वृक्षों की पंक्ति थी, जिसकी छाया से सारा रास्ता सदा शीतल बना रहता था। वृक्षों की डालियों पर पक्षी कलरव कर रहे थे। उस कलरव में कितनी मादकता थी? दोनों आदमी रास्ता छोड़कर नदी की ओर चले। नदी के किनारे किनारे जूट-मिल की जेटी के पास आ पहुँचे।

उस दिन मिल में छुट्टी थी। कुली-मज़दूरों का कोई त्योहार था। नर-नारियों के दल विचित्र पोशाक पहने नदी के घाट पर जम गये थे। आज उन लोगों ने लज्जा और भय का समस्त कृत्रिम बन्धन खोलकर फेंक दिया था और बहुत ही स्वाभाविक भाव से एक दूसरे से मिल-जुल रहे थे। उसमें मुक्ति का कैसा आनन्द उच्छ्वसित हो उठा था! आज मानो उन लोगों ने पृथिवी के कृत्रिम सम्पर्क का सारा बन्धन खोल डाला था। एक ओर तरुणों का दल तरुणियों के दल को पकड़कर उन्हें जल में खींच रहा था। कोई कोई तरुणी भी भय से पराक्रान्त आततायी को लिपटकर पकड़े हुए थी, कोई उसे प्रहार भी कर रही थी। कोई कोई युवतियाँ तो अबाध गति से युवकों के मुख पर पानी के छींटे मार रही थीं। पृथिवी के आदिम प्रपात में जब किसी सम्पर्क का दायरा नर-नारी के चित्त को किसी सीमा के वेष्टन में नहीं आबद्ध कर रक्खा था, उस समय जिस तरह अबाध रूप से सब लोग परस्पर एक-दूसरे से मिल कर हृदय की चपल लीला से मत्त हुआ करते थे, आज भी ठीक उसी युग का-सा उत्सव था। नदी की गोद में तरङ्गों को काट काटकर नौकायें दौड़ रही थीं, नौकाओं की गोद में तरुणियाँ नाच रही थीं, गा रही थीं, तरुणगण उनकी तारीफ़ कर रहे थे। नदी के तट पर युवकों के दल बाजे के सुर में सुर मिला रहे थे। तरुणियाँ अपने निखरे हुए यौवन में चपलता की विचित्र भङ्गियाँ विकसित किये हुए थीं। जिस ओर भी दृष्टि पहुँचती, कुल आनन्द ही आनंद था। आनन्द का ही यह मेला था। बीच बीच में यह आनन्दशीलता की सीमा का भी अतिक्रमण न कर जाता रहा हो, यह बात नहीं थी। फिर भी उसमें रोक-टोक करनेवाला वहाँ कोई था नहीं।

नदी की गोद में युवकों-युवतियों का तरह तरह के ढंग से तैरना देखकर रेखा आनन्द से नाच उठी। अहीन्द्र के दोनों हाथों को उसने ज़ोर से पकड़ लिया और कहने लगी—कैसा मज़े का है! है न? कितने सुखी हैं ये लोग! कैसे आनन्द से तैर रहे हैं, ये मानो जल की मछली हैं! ये किसी की परवा नहीं करते।

अहीन्द्र ने रेखा की ओर देखा। उसके नेत्रों में वही विह्वलतामय मुग्ध दृष्टि थी। रेखा तो पल पल पर अपने सौन्दर्य को और भी रमणीय करके विकसित कर रही थी। कैसे मोह की सृष्टि कर रही थी वह!

रेखा एकदम आनन्द में अधीर हो उठी। उसने कहा—आज जी में आता है कि मैं भी उन्हीं लोगों की तरह पानी में खेलूँ-कूदूँ और तैरूँ।...आइए। अहीन्द्र बाबू स्नान कीजिएगा, तैरिएगा? यह कहकर वह जल की ओर अग्रसर हुई।

यह बात सुनते ही अहीन्द्र अपनी कल्पना में निर्मित किये हुए स्वप्नलोक से एकाएक मर्त्यलोक में उतर आया। रेखा का हाथ पकड़कर उसे खींचते हुए उसने कहा—तुम भी क्या बकती हो रेखा? इन असभ्यों के दल में मिलकर तैरने के लिए तुम उतर रही हो? क्या तुम्हारी सारी बुद्धि, सारा विवेक नष्ट हो गया है?

रेखा ने कहा—नहीं, नहीं, जल में उतरे बिना मैं नहीं रह सकती हूँ। मैं तैरूँगी ही। हाथ-पैर बाँधकर कलकत्ते में रहते रहते मेरे दम घुट रहे थे। यहाँ तो चारों ओर इस तरह की विपुल मुक्ति है! आह! मुझे इतना आनन्द आ रहा है कि उसे प्रकट किये बिना मुझसे रहा ही नहीं जाता।

अहीन्द्र ने कहा—अच्छी बात है। नहाना ही चाहती हो तो चल कर हमारे घाट पर नहाओ। बड़ा अच्छा घाट है। वहाँ पर एकान्त भी है। वहाँ तुम तैर भी सकती हो।

रेखा ने कहा—अकेले अकेले अच्छा नहीं लगता। तैरने के लिए भी साथी चाहिए। बिना साथी के तैरने में कोई मज़ा नहीं आता।

अहीन्द्र ने कहा—बहुत अच्छा, मैं भी अभी पानी में उतरता हूँ।

रेखा ने कहा—आप?...तैरना जानते हैं आप?

अहीन्द्र ने कहा—तुम तैरना जानती हो, और मैं पुरुष होकर नहीं जानता!

आनन्द से करतल-ध्वनि करती हुई रेखा उच्छ्वसित कण्ठ से बोल उठी—वाह, वाह, बड़ा अच्छा होगा। तब आइए न। अभी ही आइए। ज़रा भी देरी न होनी चाहिए।

यह बात कहकर रेखा अहीन्द्र का हाथ छुड़ाकर तेज़ी के साथ जल की ओर दौड़ पड़ी। अहीन्द्र ने भी उसका अनुसरण किया। जल की गोद में इस तरुणी के अङ्ग-प्रत्यङ्ग की सुषुमा कैसी विचित्र लीला से लीलामय हो उठेगी, उस दृश्य को कल्पनारूपी नेत्र से निरीक्षण करके अहीन्द्र का चित्त दुर्वार लोभ से एकान्त लुब्ध हो उठा था।

× × × ×

गङ्गा जी में प्रवेश करते ही रेखा अहीन्द्र को ज़ोर से खींचती हुई अगाध जल में लेकर चली। अहीन्द्र का चित्त उत्तेजना से परिपूर्ण था। रेखा को दोनों हाथों से पकड़कर वह उसे छाती के पास खींचने लगा। रेखा ने एक बार शोर किया, बाद को उसने डुबकी मार ली और जल के नीचे ही नीचे तैरती हुई वह कुछ दूरी पर जाकर निकली। बाद को जल के ऊपर वह पीठ के बल तैरने लगी। अहीन्द्र मुग्ध दृष्टि से उसकी ओर ताकता रहा। नदी का जल गाढ़ आलिङ्गन में तरुणी को दबाकर पकड़े हुए था और उस आलिङ्गन के मध्य से तरुणी का यौवन अपने आपको ऐसी अनुपम शोभा में विकसित किये हुए था कि......वह भी कैसा अपूर्व दृश्य था! मस्तक पर काली केश-राशि श्रावण की काली काली घटाओं के समान फैल-कर जल में तैर रही थी......

अहीन्द्र तैरते तैरते गया और जल में लेटी हुई रेखा के दोनों ही हाथ ज़ोर से पकड़ लिया। बाद को उसे इस प्रकार से खींचता हुआ छाती के पास लाकर गाढ़ स्वर से कहने लगा—रेखा!......

रेखा ने दोनों ही पैर फटकार कर चञ्चलता से एक बड़े ज़ोर का कलरव मचा दिया। खड़ी होकर वह कहने लगी—कहिए, क्या है। आप क्या कह रहे हैं?

अहीन्द्र ने कहा—इस जल की गोद में खड़ी होकर भला एक बात का जवाब तो दो?

रेखा ने कहा—जवाब किस बात का?

अहीन्द्र ने कहा—उसी मेरी कल की बात का

रेखा ने कहा—कल की कौन-सी बात का?

अहीन्द्र ने कहा—दुहता मत करो रेखा। क्या याद नहीं है? वही, मैंने तुमसे जो कहा था कि मैं प्यार करता हूँ।

रेखा ने फिर डुबकी मारी और जाकर कुछ निकली। पानी के नीचे से मस्तक निकाल कर कहा—शायद आपका दिमाग़ ख़राब हो गया है नहीं, असमय नहीं, जब देखो तब केवल वही एक रह गई है! ऐसे आनन्द से तैर रही हूँ, परन्तु इस के समय में भी तुम काम की ही बात लिये काम काज के फेर में ही पड़े हो, केवल रोज़गार हो। ठीक कहती हूँ न?

अहीन्द्र ने कहा—नहीं, नहीं, तुम्हें मेरी बात देना चाहिए रेखा। तुम्हारे उत्तर पर ही मेरा निर्भर है। हृदय के इस अत्यधिक प्रबल आवेग मैं किसी प्रकार भी दबाकर नहीं रख सकता। क्या तुम मुझसे प्रेम कर सकती हो। बतलाओ, मैं तुमसे प्रेम करता हूँ, बहुत प्रेम करता हूँ। तुम्हें करते करते मैं जर्जरित हो गया हूँ, क्षत-वि उठा हूँ।

"सचमुच!" अत्यधिक कौतुक का भाव प्रदर्शित हुए रेखा ने कहा—"अच्छा, इसका प्रमाण दीजिए"

"क्या प्रमाण चाहती हो रेखा? बतलाओ"

रेखा ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। कहा—"यदि आप मुझसे प्रेम ही करते हैं तो यह मा से क्यों नहीं कहते? अपने सम्बन्ध में इस बात का उत्तर देने की स्वामिनी तो मैं हूँ नहीं।"

"इसका मतलब?"

रेखा गम्भीर हो उठी। अहीन्द्र उसके और आ गया था। उसने कहा—"यह बात क्यों कह रेखा?......इसका मतलब?"

रेखा की आँखों की पलकें मुँदी जा रही थीं। वह ज़ोर करके अहीन्द्र की ओर ताकने लगी। अहीन्द्र दृष्टि से उसकी ओर ताक रहा था। रेखा की दृष्टि हो उठी। मस्तक झुकाकर उसने स्थिर कण्ठ से कहा आप यदि मुझसे प्रेम ही करते हैं तो मा से कहे बिना

नहीं सकता। कारण, उनकी सम्मति के बिना तो मेरा विवाह होगा नहीं।

अहीन्द्र की दृष्टि के सामने से अपनी दृष्टि हटाकर रेखा नदी की ओर ताकने लगी। उसके हृदय में न जाने कैसा एक प्रकार का कम्पन हो रहा था।

अहीन्द्र ने कहा—विवाह ?

रेखा ने बड़ी ही उतावली के साथ अपनी दृष्टि फेर ली। अहीन्द्र के मुखमण्डल पर तथा उसकी दृष्टि में इस तरह का विस्मय का भाव उदित हुआ था कि वह रेखा की दृष्टि को बचा न सका। भर्त्सना के स्वर में वह बोल उठी—हाँ विवाह ! इसमें आपको आश्चर्य क्यों हो रहा है, यह बात मेरी समझ में नहीं आती ? विवाह करने की इच्छा यदि न होती तो और कारण ही क्या था, जिससे ये सब बातें आपको कहनी पड़तीं ?

रेखा बात समाप्त न कर सकी। उसकी बात काटकर अहीन्द्र ने कहा—तुम अपने आपको जिस तरह निरा बच्ची समझती हो रेखा, ठीक वैसी ही तो हो नहीं। पता नहीं कि तुम इस बात का अर्थ क्यों नहीं समझ पाती हो।... रही बात विवाह करने या घर-गृहस्थी बाँधने की, इसमें किसी तरह का मज़ा नहीं है, कोई आकर्षण नहीं है, कोई विचित्रता नहीं है। मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। परन्तु इस कारण विवाह करके विश्व ब्रह्माण्ड का भार लाकर तुम्हारे सिर पर लाद दूँ, यह बात भी मुझे पसंद नहीं है। हम लोगों का यह प्रेम नदी की तरङ्गों के समान ही स्वाभाविक उल्लास में बह जायगा, चिड़ियों के मधुर सङ्गीत के समान ही हलका होगा, सुर के समान ही हमारे सारे जीवन को प्रभावित करता रहेगा। जिस किसी समय भी इस प्रेम में तुम्हें क्लान्ति का अनुभव हो, तुम छुटकारा ले लेना। तुम्हें बलात् रोक रखने की कोई शक्ति ही न रहेगी मुझमें। किसी भी दायित्व या कर्त्तव्य की शृङ्खला में हृदय को मैं न बाँध रक्खूँगा। यह प्रेम फूल के गन्ध के समान है, वसन्त की हवा के समान है। इसे हम हाथ में लिये ही रहेंगे, इसे ज़मीन में खोदकर गाड़ न रक्खेंगे।......मेरी बातों का अर्थ समझ रही हो न ? इसमें मा की अनुमति नहीं है, मा का निषेध नहीं है, समाज नहीं है, कोई झंझट नहीं है। यह केवल हृदय के साथ हृदय के अबाध रूप से मिलने के लिए यौवन का व्याकुल आह्वान है। दो सुरों के समान हम दोनों एक दूसरे के हृदय से हृदय मिलाये रहेंगे।......

यह बात कहते कहते अहीन्द्र के चित्त में मादकता-सी आती जा रही थी। हृदय के मध्य में जीवन के आरम्भ से जो रूप अस्पष्ट छाया के समान घूमता-फिरता था उसकी मूर्ति को आज वह भाषा में विकसित कर सका है, इस कारण उसने गर्व का अनुभव किया। बात कहकर अहीन्द्र आग्रह से उत्तर की प्रतीक्षा में ताकता रहा।

समीप ही जेटी के घाट पर नगाड़ा बज रहा था और उसी के सुर में लोग गा रहे थे।......

जल की तरङ्गों ने नाच नाचकर उस सुर में ऐसे अनुपम माधुर्य की सृष्टि कर दी...... तिस पर दक्षिण हवा...। शीतल जल का यह स्निग्ध स्पर्श। नेत्रों के समक्ष सौन्दर्य की यह प्रतिमा। इन सबके अतिरिक्त अपने चित्तरूपी वन में रुककर यह विचित्र रङ्गीन विकास... अहीन्द्र जैसा विह्वल हो उठा था। उसके दृष्टि-पथ से समस्त विश्व मानो क्षण भर के लिए विलुप्त हो गया। वह अब होश में न रह गया।

एकाएक पास ही एक नौका के डांड़ का छपछप शब्द सुनकर वह जाग-सा पड़ा। आँख खोलकर उसने देखा तो छाती भर जल में वह अकेला ही खड़ा है। रेखा ! वह तो न जाने कब जा चुकी थी।

अहीन्द्र ने एक लम्बी साँस ली। जल से निकलकर वह तट पर आया।

——

छठा परिच्छेद

मन ही मन में

अहीन्द्र को अपने आप पर बड़ा क्रोध आया। उसे लेकर एक छोकड़ी ने यह क्या खेल खेलना शुरू कर दिया है ! कल रात को वह चुपचाप नौका लेकर चली गई, इस बात पर ज़रा-सा ध्यान तक न दिया कि रात को अहीन्द्र घर कैसे लौटेगा। और आज, आज भी तो उसे गले भर जल में ले जाकर किस तरह का खेल खेल आई। अहीन्द्र क्या इस तरह अपना सारा ज्ञान खो बैठा है कि इस तरह की उपेक्षा सहकर भी लोलुप भाव से उसी के पीछे पीछे दौड़ता फिरेगा ? एक वह एकदम कुत्ता ही हो गया है कि बार बार डंडे खाकर भी एक टुकड़ा रोटी के लोभ से

आस न छोड़ेगा ? यह क्यों ? अहीन्द्र को इतनी दुर्बलता क्यों आ गई है !

एक तो वह स्त्री है। तिस पर नई अवस्था। परन्तु होगी नई अवस्था ! इतना बड़ा यह संसार है, इस संसार में नवयौवनाओं का अभाव ही कहाँ है ? ऐसी भी तरुणियों का तो अभाव नहीं है जो अहीन्द्र की अणुमात्र कृपा प्राप्त कर सकने पर अपने आपको कृतकृत्य समझें। तब...? इस तब में ही तो इतना बड़ा झंझट है। वे सब नवयुवतियाँ तो इस तरह रहस्य के समान जटिल या दुर्बोध हैं नहीं। वे सब अत्यन्त ही सरल, सहज और सुलभ हैं। और रेखा ? अपने चारों ओर किस प्रकार के रहस्य का जाल उसने नहीं फैला रक्खा है ? वह दुर्लभ है। इसी लिए न उसे प्राप्त करने के लिए वह इस तरह दीवाना होकर घूम रहा है !

गङ्गा जी के तट पर से अहीन्द्र चला और बगीचे के रास्ते से बँगले में प्रविष्ट हुआ। पहुँचते ही मिसेज़ बोस से मुलाक़ात हुई। वे बरामदे में बैठी हुई थीं।

अहीन्द्र को देखते ही मिसेज़ बोस ने कहा—आप भी बच्चे बन गये हैं अहीन्द्र बाबू ? आप भी गङ्गा जी में कूद कूदकर हाथ और पैर फटकार रहे थे ? अभी ज़रा देर पहले ही रेखा आई है। उसकी आँखें जवाकुसुम के समान लाल हो गई हैं। पानी में पड़े पड़े मुँह फूल आया है। कहीं ज्वर न चढ़ आवे। आपकी आँखें भी तो जवाकुसुम के समान लाल होती आ रही हैं। आप भी पानी में पड़े थे ? आप उसे मना क्या करते, उलटा आप भी उसी के साथ...

अहीन्द्र का क्रोध उस समय भी वैसे का वैसा ही बना था। वही क्रोधमय दृष्टि उठाकर ही मिसेज़ बोस की ओर देखकर उसने कहा—ग़लती हो गई है मिसेज़ बोस।........ कभी कभी ऐसा दुर्बल मुहूर्त आ जाता है कि सचमुच निरा बच्चा बन जाता हूँ और कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान खो बैठता हूँ, बच्चों जैसा ही काम कर बैठता हूँ।

अहीन्द्र की बात सुनकर मिसेज़ बोस हँस पड़ीं। हँसकर उन्होंने कहा—कैसा मौक़े का जवाब है ! अहीन्द्र बाबू की सब बातों में ही कवित्व होता है। अब शीघ्र आइए, आपके मित्र तैयार बैठे हैं, आपके बिना भोजन करने को उनका जी नहीं चाहता। आज वे फिर ज़रा कलकत्ते जायँगे। कहते थे कि........

"यह बात है !" कहकर तेज़ी से पैर बढ़ाता अहीन्द्र अपने कमरे में गया और कपड़े बदल कर चौके में गया। वहाँ पहुँचकर वह गम्भीर भाव से भोजन करने के लिए बैठा।

मिसेज़ बोस ने कहा—रेखा तो नहीं आई ! "रेखा !" उन्होंने ज़ोर से पुकारा।

एक बेहरे ने आकर ख़बर दी कि उनके मस्तक में बड़े ज़ोर की पीड़ा हो रही है, इससे वे कमरे में लेटी हुई हैं। इस समय वे कुछ खायेंगी नहीं। उन्होंने यह भी कह दिया है कि कोई किसी भी कारण मेरे आराम में व्याघात न डालने पावे।

मिसेज़ बोस ने कहा—अच्छी बात है। ऐसा क्यों न कहेंगी ? पानी से निकलते ही निकलते मस्तक में पीड़ा होने लगी—यह तो ज्वर का ही पूर्वलक्षण है। मैं भला शान्तिपूर्वक रहने पाऊँगी ! प्रिंस, यहाँ इस देहात में आकर इसे कहीं मलेरिया न पकड़ ले। प्रिंस उर्फ़ निर्मल ने ज़रा-सा उपेक्षा का भाव प्रदर्शित करते हुए कहा—ओह, घबराने की कोई बात नहीं है। एक काम न कीजिए। एक मात्रा 'एसपिरिन' दे दीजिए। यदि अधिक ज्वर मालूम पड़े तो ज़रा-सी कुनैन खिला दीजिए और कह दीजिए कि चुपचाप आराम से लेटी रहें। बस, अभी ही चंगी हो जायँगी।

मिसेज़ बोस से ऐसा कहकर निर्मल ने अहीन्द्र की ओर अपनी दृष्टि फेरी और कहने लगा—तुम आज इतने अधिक गम्भीर क्यों हो उठे हो भाई ? क्या मामला है ? क्या गङ्गास्नान का पुण्य अर्जित कर आये हो ?

निर्मल की इस बात पर कर्णपात किये बिना ही अहीन्द्र ने कहा—क्या तुम आज कलकत्ते जा रहे हो ?

निर्मल ने उत्तर दिया—हाँ, कल ही लौट आऊँगा। कुछ बाज़ार करना है।

अहीन्द्र बाज़ार करने का अर्थ समझ गया। अवज्ञामयी दृष्टि से उसने एक बार निर्मल की ओर, उसके बाद ही मिसेज़ बोस की ओर देखा। मन ही मन उसने कहा—जाल में पैर डाले हो भाई, ऐसे ही वाहियात तुम हो। और मिसेज़ बोस......तुमको लज्जा भी नहीं आती।

अहीन्द्र ने कहा—चलो मैं भी तुम्हारे साथ ज़रा-सा घूम आऊँ।

निर्मल ने कहा—दोनों ही आदमी चले चलेंगे तो इन

लोगों के साथ कौन रहेगा ? उधर सुनता हूँ, मिस बोस की भी तबीअत ख़राब है।

असल बात यह थी कि अब वहाँ अहीन्द्र का मन किसी तरह भी नहीं लग रहा था। रेखा, रेखा, रेखा...... एक-मात्र यही चिन्ता उसके समस्त मन पर इस प्रकार अधिकार किये हुए थी कि अपने मन को किसी दूसरी ओर फेरने का उसके पास कोई उपाय ही नहीं था। अपने चित्त को उसने इस तरह रेखा के वश में कर दिया था. इसी लिए न रेखा उसकी इस प्रकार अवहेलना और अवज्ञा कर रही थी। अहीन्द्र के लिए तो यह अधिक अच्छा होगा कि एक बार वह रेखा से दूर रह कर यदि अपने मन को किसी तरह बाँध सके तो वह भी किसी दिन इसी तरह रेखा को दबा रख सकता। तब तो अपने आप ही आकर आत्म-समर्पण किये बिना रेखा से न रहा जा सकेगा।

अहीन्द्र ने कहा—एक दिन और एक रात की तो बात है। क्या कहती हो मिसेज़ बोस, रह सकेंगी न ?

मिसेज़ बोस ने कहा—रह क्यों न सकूँगी ?

निर्मल ने कहा—मिस बोस की तबीअत ख़राब है। यदि कहीं ज्वर हो आया तो ?

मिसेज़ बोस ने कहा—ज्वर तो शायद न होगा। ऐसपिरिन, और कुनैन देने से ही तबीअत ठीक हो जायगी। देर तक पानी में डुबकी मारने के ही कारण शायद ऐसा हुआ है।

निर्मल ने कहा उन्होंने कुछ खाया नहीं है...... इसी से तो !

मिसेज़ बोस ने कहा—अभी एक प्याला चाय दूँगी।

निर्मल ने कहा—इससे अवश्य लाभ होगा।...... देखिए, कभी कभी उपवास कर लेना अच्छा होता है। हमारे उस युग के ऋषि लोग इतनी उत्तम व्यवस्था कर गये हैं, परन्तु इसे बहुत-से लोग समझते नहीं।

निर्मल की यह बात सुनकर अहीन्द्र अपनी गम्भीरता और न रोक रख सका। हँसकर उसने कहा—यहाँ इस प्रसंग में ऋषि-मुनियों को क्यों खींचे लिये आ रहे हो ?

भौंह टेढ़ी करके निर्मल ने कहा—इसका मतलब ?

अहीन्द्र ने कहा—तुम्हारे मुँह से बेसलेट, कोलकार, गेल्सरप, स्टुडीबेकर आदि का ही नाम सुनने की आशा करता हूँ। तुम्हारे मुँह से ऋषि-मुनियों का नाम असङ्गत-सा जान पड़ता है। तुम ठहरे सभ्य-समाज के एक आदमी।

निर्मल ने कहा—ख़ूब रही ! तो क्या तुम यह कहना चाहते हो कि मैं हिन्दू ही नहीं हूँ ?

अहीन्द्र ने कहा—कम से कम मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट तुम्हें हिन्दू साबित करेगी ही।

भोजन आदि से निवृत्त होकर दोनों ही मित्रों ने कपड़े पहने और मोटर में आकर बैठे। अहीन्द्र ने चारों ओर दृष्टि दौड़ा कर देखा—रेखा !...कहीं भी तो नहीं दिखाई पड़ रही है। एक बार उसके जी में आया, ख़बर ले आऊँ कि रेखा कैसी है। क्षण ही भर के बाद उसके जी में फिर आया—ख़बर लेने जाऊँ तो कहीं फिर न वह कोई निष्ठुर खेल खेल बैठे ! उससे तो मुलाक़ात न करना ही अच्छा है। इस तरह चले जाने पर वह सोचेगी कि मेरे व्यवहार से अहीन्द्र इतने रुष्ट हुए हैं कि मुझसे कहे बिना ही कलकत्ते लौट गये ! सोचने दो उसे। उसकी उपेक्षा करना अहीन्द्र के लिए असम्भव नहीं है।

तो भी...

एक लम्बी साँस अहीन्द्र के वक्षपञ्जर को भेदकर मुक्त वायु में मिल गई। निर्मल ने गाड़ी स्टार्ट की, गाड़ी बँगला छोड़कर सड़क पर जा निकली। चलते समय हार्न तक न दिया।

अहीन्द्र और निर्मल के चले जाने के बाद मिसेज़ बोस बरामदे में बड़ी देर तक आराम-कुर्सी पर चुपचाप बैठी रहीं। बाद को बेहरे को बुलाकर उन्होंने पूछा—क्या बिटिया रानी अभी तक नहीं उठीं ?

बेहरे ने कहा—नहीं।

रेखा के कमरे के सामने जाकर उन्होंने देखा—कमरे का द्वार भीतर से बन्द था। किवाड़ों को हाथ से थपथपा-कर मिसेज़ बोस ने पुकारा—रेखा !...

भीतर से उत्तर आया—क्या है ?

मिसेज़ बोस ने कहा—अब तबीअत कैसी है ? मस्तक की पीड़ा शान्त हुई ?

रेखा ने कहा—हाँ।

मिसेज़ बोस ने कहा—कुछ खायगी भी नहीं ?

रेखा ने कहा—चाय पी चुकी हूँ।

मिसेज़ बोस ने कहा—केवल चाय पीने से क्या होगा ? तबीअत अच्छी हो तो भात खा ले। ज़रा दरवाज़ा तो खोल।

रेखा ने द्वार खोल दिया।

लड़की के माथे और पेट पर हाथ फेरकर मा ने कहा—नहीं तो। शरीर तो गरम नहीं है। तब...?

रेखा ने कहा—यों ही न जाने तबीअत भारी भारी मालूम पड़ रही थी।

मा ने कन्या की ओर उत्सुकतामयी दृष्टि से देखा।

रेखा ने कहा—मुझे एक बात कहनी है मा।

मा ने कहा—कैसी बात ?

रेखा ने कहा—अहीन्द्र बाबू मुझे बहुत तङ्ग करते हैं...। रेखा ने मुँह नीचा कर लिया।

मा का हृदय धक-से हो उठा। उसने कहा—इसका मतलब ?

रेखा ने कहा—बार बार केवल यही कहते हैं, तुमसे... रेखा की ज़बान रुक गई।

मा ने कहा—कहती क्यों नहीं हो, क्या बात है। रुक क्यों गई ?

मस्तक झुकाकर पृथ्वी की ओर ताकती हुई रेखा एक साँस में कह गई—"उनके मुँह में यही एक बात रह गई है—प्रेम करता, तुमसे प्रेम करता हूँ..."

मिसेज़ बोस ने गम्भीर भाव से कहा—क्या उन्होंने तुम्हारे साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट की है ?

रेखा ने कहा—नहीं।

मिसेज़ बोस ने कहा—तब...

रेखा ने कहा—मैंने उनसे कह दिया है कि मा से बातें कर लीजिए।

मिसेज़ बोस गम्भीर होकर बैठी रहीं। ज़रा देर तक चुप रहने के बाद रेखा ने कहा—विवाह करने के सम्बन्ध में तो उन्होंने कुछ कहा नहीं !

मिसेज़ बोस ने कहा—विवाह करना वह पसन्द भी न करेगा। यदि विवाह करने की उसकी इच्छा होती तो इतने दिनों तक उसका विवाह रुका भी न रह जाता।

रेखा ने कहा—तब फिर हमको इतना तङ्ग क्यों करते रहते हैं ? और यह सब बात ही क्यों कहते रहते हैं ?

मिसेज़ बोस केवल "हूँ" कहकर चुप हो गईं। बाद को गम्भीर होकर वे बैठी-बैठी कुछ सोचने लगीं।

रेखा ने पुकारा—मा...

मिसेज़ बोस ने कहा—असम्भव है। तुम्हारे अहीन्द्र का विवाह करना असम्भव है। अहीन्द्र के पा रुपया पैसा है, काफ़ी मान प्रतिष्ठा भी है। इससे य ही है कि... समस्त बहिर्जगत रेखा के सामने ब डगमग डगमग करने लगा। वह सोचने लगी—अही साथ मेरा विवाह असम्भव है। क्यों ? इसलिए कि अ के पास रुपया-पैसा है। तो इससे क्या हुआ ? मैं बिलकुल दरिद्र की लड़की नहीं हूँ। शिक्षा ? को यह भी नहीं कह सकता कि वह शिक्षित नहीं है। त मेरा विवाह क्यों असम्भव है ? इसके अतिरिक्त विवा असम्भव ही है तो फिर मुझसे इस तरह की बातें क अहीन्द्र को अधिकार ही क्या है ? एक कुमारी तर तरुण चित्त के सामने इस तरह मोह का जाल वि उसे प्रलुब्ध करने का ही उसे क्या अख़्तियार है यों कहिए कि मेरे मन को लेकर इस तरह लड़को खेल करने का साहस ही उसे किसने दिया ?

अहीन्द्र के साथ रेखा का विवाह क्यों असम्भ इस बात के वास्तविक रहस्य से रेखा चाहे भले ही अ रही हो, किन्तु मिसेज़ बोस उसे अच्छी तरह ज थीं। बात यह है कि जो परिचय लेकर मिसेज़ बोस कत्ता शहर के एक किनारे पर विलास और ऐश्व डूबी पड़ी थीं, उस परिचय पर समाज ने अपनी स्वी की मोहर नहीं की, और किसी दिन उस मोहर के ल की आशा भी नहीं है।

मिसेज़ बोस अपने जीवन-रूपी ग्रन्थ के एक पृष्ठ पर दृष्टि दौड़ाने लगीं। वे एक दरिद्र ब्राह्मण की क थीं। स्वामी कैसे हैं, यह जानने के पहले ही माता पि उनकी माँग का सिन्दूर पोंछ डाला और उन्हें गो लेकर रोते रोते महाभारत मचा दिया। बाद को उ यौवनरूपी वसन्त जब आया तब उसके मलय समी हिल्लोल से उसका जीवन-कुसुम अपनी पंखुरियों को फै कर खिल आया। उस कुसुम में इतनी मधुरता थी, इत मादकता थी कि उसे देखकर वह स्वयं उन्माद से व्याकु हो उठी, मुग्ध हो उठी। ठीक उसी दिन मुहल्ले के ध धनी के लाड़ले ने उसे इस तरह मोह से अभिभूत कर लि उसके तरुण नेत्रों के समक्ष समस्त विश्व को ऐसे अभि

आवेश के मोह से सुसज्जित कर दिया कि वह सब कुछ भूल गई ! उस लक्ष्मी के लाड़ले की रूप-राशि पर उसने अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। यौवन की लीला से मत्त होकर उसने उसी का हाथ पकड़े हुए घर का द्वार तोड़कर बाहर निकल पड़ी। जितने दिनों तक शौक़ था, उतने दिन वह धनी का दुलारा सारे समाज और संसार को भुलाकर किसी स्वप्नलोक में फूलों की शय्या पर उसे बैठाये हुए था !...बाद को शौक़ पूरा हो जाने पर वह जब एकाएक चला गया तब मामला आया समझ में मिसेज़ बोस के। परन्तु उसके चित्त की प्रणय-पिपासा उस समय भी परितृप्ति के नशा से आकुल एवं अधीर हो रही थी। उसी समय उसकी मुलाक़ात हुई तरुण बैरिस्टर मिस्टर बोस से। तरुण अवस्था में पत्नी का वियोग हो जाने के कारण मिस्टर बोस बिना पतवार की नौका के समान बहते फिरते थे। फिर से विवाह करके कठिन उत्तरदायित्व की शृङ्खला में बँधने की उनकी इच्छा नहीं थी। इस ओर किसी प्रकार का प्रयत्न भी नहीं था। मिस्टर बोस चाहते थे नारी का सङ्ग। दायित्वहीन जीवन में नारी का रूप, कण्ठ का सुर, यौवन-सुरा की फेनिल और मदिर तरङ्गें। दिन भर के सारे झगड़े-झञ्झट से छुटकारा पाकर साँझ को जिसके पास आकर केवल प्रणयरूपी सुधा का पात्र अधीर आवेग से खोल कर रख दें, और वह नारी भी लज्जाहीन आवेग से अंगूर के समान यौवन-रूपी सुधा के अत्यधिक रस से उस पात्र को भर दे। संसार के नीरस आवर्त में जो नारी इस तरुण मन को किसी प्रकार के कोलाहल से जर्जरित न करे। ऐसी ही नारी के रूप में मिसेज़ बोस उन्हें मिल गई।

तब इन तरुण-तरुणी ने नगर के एक किनारे पर जाकर प्रणय-नीड की रचना की और वहीं रहकर इच्छानुसार आनन्द करने लगे। नित्य नये नये उच्छ्वासों के रंग से उनके जीवन का प्रत्येक पृष्ठ अपूर्व रंग में रँग उठता था। किसी प्रकार की बाधा, किसी प्रकार का विघ्न कभी किसी ओर से आकर इस प्रणय-लीला में फीकापन नहीं पैदा कर सका। यह दायित्वहीन प्रेम जब खूब अच्छी तरह से पक उठा तब रेखा आकर उदित हुई। उसी समय एक बार मिस्टर बोस क़ानून के अनुसार मिसेज़ बोस को विवाह की शृङ्खला पहनाने के लिए उद्यत हुए। परन्तु इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए एक दूसरे भी व्यक्ति के सम्मुख जाकर खड़ा होना पड़ेगा, यह लज्जा ही इस दिशा में प्रबल रूप से बाधक हुई। आज-कल करते करते दिन व्यतीत होने लगे। इस प्रकार कितने दिन और कितने मास व्यतीत हो गये। अन्त में एकाएक एक दिन अपना समस्त धन-विभव मिसेज़ बोस के हाथ में छोड़कर प्रणय की सहस्र लीलाओं के सहित इस लोक की माया तोड़कर मिस्टर बोस चले गये।

इस वियोग की व्यथा से मिसेज़ बोस का चित्त बहुत ही व्यथित हुआ। परन्तु इस प्रणय-नीड में मिस्टर बोस के कुछ मित्र कभी कभी आया करते और वे इस नीड को गुञ्जन के कलरव तथा वन्दना के गीत से मुखरित कर दिया करते थे। इस प्रकार उन्हीं की सान्त्वना की धारा से मिसेज़ बोस की वेदना का क्रमशः अन्त हो गया।... मिसेज़ बोस की प्रणय-बुभुक्षा का उस समय भी अन्त नहीं हुआ था। बन्धुओं की सान्त्वना से उस क्षुधा की बहुत कुछ तृप्ति हुआ करती। क्रमशः बन्धुओं का दल बढ़ चला---और प्राप्ति के उपहारों तथा सौग़ात में आई हुई चीज़ों से मिसेज़ बोस के चित्त एवं वित्त-भाण्डार के परिपूर्ण हो उठने में कोई बाधा नहीं रही। इस प्रकार के विलास-ऐश्वर्य में भी मिसेज़ बोस रेखा के भविष्य के सम्बन्ध में उदासीन नहीं थीं। कुछ लोगों से तर्क-वितर्क एवं वार्तालाप करके उन्होंने इतना तो समझ ही लिया था कि किसी उपयुक्त वर के साथ रेखा का विवाह कर सकना सम्भव नहीं होगा। परन्तु यदि वह स्वाधीन भाव से जीवन व्यतीत करे तो उसे किसी दिन किसी प्रकार का अभाव न होगा और वह राज-राजेश्वरी के समान ही बहुतों के चित्त-रूपी राज्य पर अधिकार कर लेगी और उस राज्य पर बाक़ायदा शासन करके अपना जीवन व्यतीत कर सकेगी। इस सम्बन्ध में मा के हृदय में आशा भी यथेष्ट उत्पन्न हो गई थी......रेखा का यह रूप, यह मुकुलित यौवन, उसका गीत, उसकी सहस्रों लीला-भङ्गियाँ—पुरुषों के चित्त पर विजय प्राप्त करने के उपयोग में आनेवाले किसी भी तीर का अभाव नहीं था।

आज कन्या के जीवन के सम्बन्ध में विचार करते समय एक बात मिसेज़ बोस को कष्टदायक प्रतीत हुई। कन्या भी इसी तरह अनिर्दिष्ट मार्ग से उद्देशहीन यात्रा करेगी? वह तो स्वयं जानती है कि इस मार्ग से यात्रा करने में ऐश्वर्य का अभाव नहीं है।......फिर भी कभी कभी निराशा की वेदना हृदय को इस तरह ज़ोर से दबा बैठती है जिससे अनुभव होता है कि यह जगत् नितान्त ही निर्मम है, करुणा-रहित है, पाषाण के समान ही दुर्भेद्य है, कठोर है। यहाँ बान्धव जन दायित्व की शृङ्खला में नहीं बाँधे जाते, इसलिए जो चला जाता है वह एकदम से हृदयहीन के समान ही ज़ोर की ठोकर मारकर जाता है। मित्र को, स्नेही को रोक रखने का केवल एक ही उपाय है। वह उपाय है रूप का जादू ! इसके सिवा केवल एक ही मित्र, एक ही स्नेही पर निर्भर रहने से काम चल नहीं सकता। पाँच आदमियों को लेकर चलना पड़ता है। जो जिस तरह रीझता है उसे उसी तरह रिझा रखना पड़ता है। मन पटे का ही तो सौदा है। इस तरह के व्यापार में निराशा का जहाँ पल पल पर भय है, वहीं दूकान जमा रखने के लिए भी प्रतिक्षण अत्यधिक चेष्टा करनी पड़ती है......रेखा क्या इतना समझ कर चल सकेगी? उसके मन में संसार की इन सब दुरन्त लीलाओं का ज़रा-सा अंकुर तक तो उत्पन्न नहीं हो सका।...मिसेज़ बोस ने एक लम्बी साँस ली। वे सोचने लगीं कि इसके सिवा जीवन-यात्रा के लिए कोई दूसरा उपाय भी तो नहीं है। स्वयं अपनी दशा पर उनका ध्यान गया। वे सोचने लगीं कि मैं स्वयं भी तो दूकानदारी करके ही इतने दिनों से यह ठाट बनाये आई हूँ। आज भी अपनी ज़रा-सी हँसी, ज़रा-सी मुसकान के मूल्य में अगणित बन्धुओं का ही हृदय ख़रीदने के लिए प्राण-पण से चेष्टा करती रहती हूँ।... इसके फल-स्वरूप रेखा के साथ यदि कोई विवाह कर लेता।

परन्तु इस विवाह के नाम से भी हृदय न काँप जाता रहा हो, यह बात नहीं थी। संसार में छोटे-बड़े द्वन्द्व भी तो हैं। इन सब द्वन्द्वों की साँस में ही यदि रेखा को पुरानी पादुका के एक टूटन के समान ही डाल जा सकूँगी तो उस दशा में समाज भी ज़रा-सा चूँ तक न कर सकेगा, उससे सफ़ाई माँगने का साहस भी समाज को न होगा। बात यह है कि रेखा गोत्र-परिचय से हीन है, वैध परिणय की शय्या पर तो वह अपनी माता की गोद में आई नहीं। हाय रे! समाज चाहे और किसी की जानकारी न रक्खे, परन्तु इस सूचना को तो अपनी बही में मोटे मोटे अक्षरों में खूब चटकीली स्याही से ही लिख रक्खा होगा।

बाद को...वह जब चली जायगी...रेखा ! रेखा याद आते ही इस सुख एवं ऐश्वर्य के बीच में भी उ मन में इस प्रकार की असह्य वेदना उत्पन्न होती है। लिए रेखा की बात वे मन में भी नहीं ले आ सक हँसी ख़ुशी और प्रणय-स्वप्न की चहारदीवारी खड़ी क उस चिन्ता को रोक रखने के लिए वे समस्त शक्ति प्रयत्न किया करती थीं। तो भी...चिन्ता किये बिना तो नहीं चल सकता था।

मा को चुप देखकर रेखा का मन तरह तरह की गढ़कर तैयार करने लगा। उसका विवाह...अस क्यों है? कौन-सा रहस्य है इस बात में? उसकी इ अधिक अवस्था हो गई और मा आज तक उसकी अव की इस लड़कियों से उसे सदा अलग ही क्यों रखती आ है? यह सावधानी, मा की इस बात से इतने बड़े प्र रहस्य का जाल फेंककर रेखा के चित्त को जकड़ लि था मानो उसका निःश्वास ही बन्द हो गया। उ पुकार कर कहा---मा !

मिसेज़ बोस ने कहा---इसमें बहुत-सी बातें हैं बे किसी और दिन यह सब बतलाऊँगी। आज सिनहा अ प्रिंस दोनों ही कलकत्ते गये हैं। दूसरे वक्त तबीअत लगेगी, इससे सोचती हूँ कि नौका करके ज़रा-सा घूम आवे दक्षिणेश्वर या बेलूड़ चलने का विचार है।...चलेगी

रेखा ने कहा---नहीं मा। कहीं बाहर जाने को मे जी नहीं चाहता।

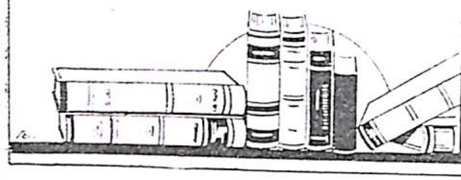
मिसेज़ बोस ने कहा—निर्बलता के कारण ऐसा मालू पड़ रहा है। कुछ खा तो ले। ज़रा-सा कटलेट या पुडिंग-

"अभी खा लूँगी"। यह कहकर रेखा वहाँ से जाने लिए उद्यत हुई।

मा ने कहा---जाती कहाँ है?

रेखा ने कहा—ज़रा-सा कोई किताब पढ़ूँगी...रेख चली गई। तब मिसेज़ बोस ने अपने मन की दारुण-खिन्नत को दूर करने के लिए आँखें मूँद लीं। कान के पास प्रिं का कल रात का प्रणय-निवेदन जैसे अपरूप स्वप्न-छन्द में बजने लगा...तुम मेरी हो, तुम मेरी हो....।

अतीत यौवन की भूली हुई रूपराशि उस निवेदन के छन्द छन्द में कल रात को कैसी अनुपम मूर्ति धारण करके सजीव हो उठी थी?



नई पुस्तकें

[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथासमय प्रकाशित होगा।]

१—मानकुमारी (उपन्यास)—अनुवादक, स्वर्गीय बाबू व्रजचन्द्र, प्रकाशक, लीडर-प्रेस, प्रयाग हैं। मूल्य २॥) है।

२-४—श्री डा० धनीराम 'प्रेम' लिखित 'रतन पब्लिशिङ्ग हाउस' की तीन पुस्तकें—

(१) रूस का जागरण—मूल्य १॥) है।

(२) मेरा देश (उपन्यास)—मूल्य ||||) है।

(३) भारत का कहानी-साहित्य—मूल्य १॥) है।

५-६—लीडर-प्रेस इलाहाबाद की दो पुस्तकें—

(१) पाँच कहानियाँ—लेखक, श्रीयुत सुमित्रानन्दन पन्त—मूल्य १) है।

(२) इन्स्टालमेन्ट—लेखक, श्रीयुत भगवतीचरण वर्मा—मूल्य १) है।

७—अवधेश-कुसुमांजलि (कविता)—लेखक, श्री अवधेश मालवीय, प्रकाशक, श्री हिन्दी-साहित्य-मण्डल, कानपुर हैं और मूल्य १) है।

८—भारतीय शासन—लेखक, श्रीयुत भगवानदास केला, प्रकाशक, भारतीय-ग्रंथमाला, वृन्दावन हैं। मूल्य १।) है।

९—स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के धर्मोपदेश—संग्रहीता, श्रीयुत लाला लब्भूराम जी नय्यड़, प्रकाशक, मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी हैं। मूल्य ||||) है

१०—अनुवादचन्द्रिका (व्याकरण-संहिता)—लेखक व प्रकाशक, श्री लोकमणि जोशी साहित्याचार्य, प्रधान अध्यापक, ए० पी० मिशन-हाईस्कूल, देहरादून हैं। मूल्य ॥=) है।

११—बालगुरु-प्रकाश—लेखक, स्वर्गीय पंडित गुरां लक्ष्मीनारायण जी शर्मा, प्रकाशक, पंडित गुरां बालमुकुन्द शर्मा, राजस्थानी हिन्दी-विद्यालय, कसाद हट्टा चौक, हैदराबाद (दक्षिण) हैं। मूल्य ।=) है।

१२—धौलागिरि-पर्वत (उर्दू)—लेखक, श्रीयुत शिवव्रतलाल जी, प्रकाशक, सन्तकार्यालय, इलाहाबाद हैं। मूल्य ||||) है।

१३-१४—पंडित रामचन्द्र शर्मा धर्मोपदेशक, मंडावर, बिजनौर, यू० पी० की दो पुस्तकें—

(१) फौजी-भजन-तरंग (सचित्र)—मूल्य ।) है।

(२) अभिमन्यु की वीरता—मूल्य ।) है।

१५-१६—डाक्टर नंदकिशोर, बी० ए०, एम० बी०, नवाबगञ्ज, कानपुर की दो पुस्तकें—

(१) श्रीमद्भगवद्गीता—मूल्य ॥) है।

(२) बालिशप्रदर्शन—मूल्य १) है।

१७—काव्यांग-चन्द्रिका—लेखक, पंडित रघुवरदयाल मिश्र 'मान', प्रकाशक, विद्या-भास्कर-बुकडिपो, बनारस सिटी हैं और मूल्य १॥=) है।

१८—बुद्धदेव—लेखक, स्वर्गीय श्री विश्वम्भरसहाय, 'व्याकुल', प्रकाशक, भारती-भंडार, लीडर-प्रेस, इलाहाबाद हैं। मूल्य १॥) है।

१९—स्वप्न-विज्ञान—रूपान्तरकार, श्री गोपीवल्लभ उपाध्याय, प्रकाशक, हिन्दी-साहित्य-मण्डल, बनारस सिटी हैं और मूल्य ||||) है।

१—तीन नाटक—लेखक, श्रीयुत सेठ गोविन्ददास, प्रकाशक, महाकोशल-साहित्य-मन्दिर, गोपालबाग, जबलपुर हैं। पृष्ठ-संख्या ५११ और मूल्य ४॥) है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में 'कर्त्तव्य', 'हर्ष' तथा 'प्रकाश' नामक तीन नाटक हैं। इनमें 'कर्त्तव्य' पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध नाम के दो खण्डों में विभक्त है। पूर्वार्द्ध में राम के तथा उत्तरार्द्ध में कृष्ण के चरित्र के आधार पर नाटक की रचना हुई है। राम और कृष्ण के चरित दिव्यादिव्य नायक या मानव के रूप

में ही अंकित किये गये हैं और दोनों दो आदर्शों के प्रतीक हैं। राम लोक-मर्यादा की रक्षा करने के कारण मर्यादा पुरुषोत्तम हैं तो कृष्ण लोक और शास्त्र की मर्यादाओं के बन्धनों से ऊपर उठने के कारण मानवता की सर्वश्रेष्ठ तथा सोलह कलापूर्ण चरम परिणति की साक्षात् मूर्ति हैं।

लेखक के दूसरे नाटक के नायक हैं भारत के अन्तिम हिन्दू-सम्राट् हर्षवर्द्धन। बौद्ध और हिन्दू-धर्मों के समन्वय की चेष्टा में लीन, अशोक के समान धर्मराज की स्थापना करने के इच्छुक हर्ष राज्यश्री को कान्यकुब्ज की सम्राज्ञी घोषित करके अपने को उसका माण्डलिक बना देते हैं और इस प्रकार आत्म-त्याग से एक विशाल संयुक्त साम्राज्य का आदर्श लोक के समक्ष उपस्थित करते हैं। वे इस नव प्रतिष्ठित साम्राज्य में बिना बल-प्रयोग के तत्कालीन सभी नरेशों को समानाधिकार रखते हुए ही सम्मिलित होने का निमंत्रण देते हैं। परन्तु निमंत्रण न स्वीकार होने पर विवश होकर उन्हें उद्धत नरेशों के साथ युद्ध करना पड़ता है और संयुक्त राज्य में लाना पड़ता है। एकसत्तात्मक राज्य-व्यवस्था को हर्ष पसन्द नहीं करते, किन्तु तात्कालिक परिस्थिति उनकी अभिलाषा के प्रतिकूल होने के कारण उन्हें विप्लवों और युद्धों से जीवन भर अवकाश नहीं मिलता। परिस्थितियों के इन्हीं घात-प्रतिघातों का सुन्दर चित्रण इस नाटक में किया गया है।

'प्रकाश' एक सामाजिक राजनैतिक नाटक है। इसके नायक हैं एक सत्याग्रही सरलप्रकृति नवयुवक प्रकाशचन्द्र। राजा अजयसिंह नामक एक ज़मींदार के प्रीति-भोज में कौंसिल के सदस्य दामोदरदास, माननीय मिनिस्टर धनपाल, हिन्दू-सभा के सभापति तथा म्युनिसिपेलिटी के प्रेसीडेण्ट पंडित विश्वनाथ, मुस्लिम-लीग के सदर एवं म्युनिसिपेलिटी के वाइस-प्रेसीडेण्ट मौलाना शहीद बख़्श, बार-एसोसिएशन के प्रेसीडेण्ट बैरिस्टर डाक्टर नेस्टफ़ील्ड आदि सज्जन बैठे हैं और सिविल-डिसओबीडियन्स के फ़ेल हो जाने की चर्चा हो रही है। इसी समय 'हिन्दुस्तान' के सम्पादक श्रीयुत कन्हैयालाल एक नवयुवक प्रकाशचंद्र के साथ पधारते हैं। सम्पादक जी दाईं ओर बैठाये जाते हैं और प्रकाशचन्द्र बाईं ओर। प्रकाश इस भेद-भाव से भड़कता है और इसका कारण पूछता है। इसी समय गवर्नर साहब के मोटर का शब्द सुनाई पड़ता है और लोग उनके स्वागत में लग जाते हैं। सपत्नीक साहब के आ जाने पर खान-पान शुरू होता है। समय प्रकाश बाईं ओर के एक टेबुल पर खड़ा हो है और प्रीति-भोज में किये हुए भेद-भाव के विरुद्ध व्याख्यान शुरू कर देता है। दाईं ओरवाले कुछ उसे रोकना चाहते हैं, परन्तु गवर्नर के संकेत पर हो जाते हैं। बाईं ओर के जन-साधारण प्रकाश का देते हैं और अन्त में प्रीति-भोज से असहयोग करके जाते हैं। इस रंग-भंग से निमंत्रणदाता और उ के लोग अनेक प्रकार की आशंकायें करते हैं। समय गवर्नर डाक्टर नेस्टफ़ील्ड से प्रकाश को 'ए एन्ट हर्ट्स बोकर' कहकर उसकी प्रशंसा करते हैं। नाटक का प्रारम्भ होता है। इसके बाद प्रकाश करता है। वह राजा अजयसिंह की रियासत में कराने के अपराध में गिरफ़्तार होता है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से नाटककार को अपने में सफलता मिली है। जिन आदर्शों एवं मन्तव्य लेकर नाटकों में चरित्रों का चित्रण हुआ है उ पर विशद प्रकाश डालनेवाली चालीस पृष्ठ की भू नाटककारों के लिए विशेष उपयोगी है। बड़े-बड़े कारों ने अपने नाटकों में पौराणिक चरित्रों को विकृत अंकित किया है, परन्तु सेठ जी ने वैसा नहीं किय इससे उनकी 'कला' के विकास की पूर्णता में बाधा पड़ी है। उदाहरण के लिए शम्बूक-वध की घटन लीजिए। इस घटना को केवल पौराणिक कथा के से ज्यों का त्यों अंकित करके उन्होंने अपने सिद्धान्त रक्षा तो अवश्य की है, किन्तु इससे रामचन्द्र को मर्यादा का रक्षक न बनाकर समाज की अनुचित मर्या तथा अन्यायपूर्ण रूढ़ियों का दास बना दिया है। के मुँह से राम के प्रति कहलवाये हुए लेखक के ये ही इसके प्रमाण हैं। शम्बूक कहता है—"मैं योगव कारण जानना हूँ कि तुमसे इस जन्म में समाज की चित मर्यादायें भी न टूटेंगी।" इसको सुनकर राम ल से कहते हैं कि "इस शूद्र के कथन में मैं भारी देखता हूँ।" परन्तु 'इस भारी सत्य की उपेक्षा नहीं अवहेला, राम केवल प्रचलित धर्म के विरुद्ध शू तपस्या करनी वर्जित करते हैं। इस चित्रण में राम

सत्य और धर्म-रक्षक के पद से गिरकर समाज की उचित-अनुचित और विचार-शून्य रूढ़ियों के आगे आँख बन्द करके सिर झुका देते हैं। इस प्रकार जहाँ पौराणिक कथा की रक्षा की ओर सेठ जी ने इतना ज़ोर दिया है, वहाँ वे दूसरी ओर चरित्रों के उच्च पुरातन आदर्शों की रक्षा की ओर उदासीन प्रतीत होते हैं। उनका अङ्कित किया हुआ राम का यह चरित्र भारतीय संस्कृति के प्रेमियों को तथा सत्यानुरागियों को पसन्द नहीं आ सकता। पृष्ठ २७ पर लक्ष्मण के मुँह से राम के सामने कहलवाया गया है कि "सीतादेवी की ऐसी आज्ञा हुई कि मुझे आपको ढूँढ़ने आना पड़ा।" औचित्य और स्वाभाविकता की दृष्टियों से बड़े भाई के सामने मातृ-सम भाभी का नाम लक्ष्मण जैसे यति से कहलवाना ठीक नहीं हुआ है। राम की अपेक्षा कृष्ण का चरित्र अधिक सुन्दरता तथा कुशलता से अंकित किया गया है।

लेखक के अन्तिम नाटक में 'प्रकाश' की बड़ी-बड़ी वक्तृतायें रंगमंच पर कहाँ तक अभिनयोपयोगी होंगी, यह सन्देहास्पद विषय है। कला, चरित्रचित्रण तथा घटनाओं के चुनाव और भाषा की दृष्टि से सभी नाटकों में हमें एक कुशल कलाकार का परिचय मिलता है। इन नाटकों की रचना से हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि हुई है। छपाई तथा गेटअप भी सुन्दर है। साहित्य-प्रेमियों को इनका संग्रह करना चाहिए।

२—महाकवि हरिऔध—लेखक, श्रीयुत गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश', बी० ए०, प्रकाशक, श्रीयुत महेशदत्त शुक्ल, अरुणोदय-पब्लिशिंग-हाउस, प्रयाग हैं। मूल्य ३) है।

यह 'अरुणोदय-ग्रन्थावली' का छठा ग्रन्थ है। श्रीयुत गिरीश जी सुकवि और सुलेखक दोनों हैं। महाकवि हरिऔध लिखकर उन्होंने इस कथन को प्रमाणित किया है। इसमें उन्होंने हरिऔध जी की उन्हीं जीवन-सम्बन्धी घटनाओं का यथासंभव संग्रह किया है जिनसे उनके कवि-जीवन, काव्य-विकास तथा काव्य-प्रेरणाओं पर प्रकाश पड़ता है। यह इस शैली का अपने ढंग का हिन्दी में पहला ग्रन्थ है। कवि की जीवन-घटनाओं की सामग्री उपलब्ध न होने के कारण हिन्दी के अतीत तथा वर्तमान कवियों की कविताओं के अनेक अंशों पर तथा उनकी काव्य-सम्बन्धी प्रेरणाओं एवं विकास पर अपर्याप्त प्रकाश पड़ता है। गिरीश जी ने अपने अनुभव तथा परिश्रम से हरिऔध जी के जीवन की अनेक घटनायें इस ग्रन्थ में संकलित की हैं तथा उनके काव्य-विकास तथा काव्यों की कला-सम्बन्धी विशेषताओं का युक्तियुक्त तथा मार्मिक विवेचन पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया है। स्थान स्थान पर हिन्दी के अनेक विद्वानों की सम्मतियाँ उद्धृत करके लेखक ने कवि की कृतियों तथा हिन्दी-काव्य-क्षेत्र में उनके स्थान-निर्णय के विषय में प्रकट किये हुए अपने विचारों की पुष्टि की है। लेखक के विचारों से मत-भेद हो सकता है, किन्तु अपनी अध्ययन-प्रसूत इस सुन्दर कृति के लिए वे हिन्दी-प्रेमियों के धन्यवाद के पात्र हैं। हरिऔध जी के ग्रन्थों की विशेषताओं तथा उनके व्यक्तित्व का परिचय पाने की इच्छा रखनेवाले अध्ययनशील काव्य-रसिकों के लिए यह ग्रन्थ विशेष रूप से उपयोगी है। क्या ही अच्छा हो यदि हिन्दी के अन्य वर्तमान सुप्रसिद्ध लेखकों, उपन्यासकारों, नाटककारों एवं कवियों पर भी इसी शैली में अधिकारी लेखकों द्वारा ऐसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे जायँ।

३—प्रेम-निकुञ्ज—लेखक, श्रीयुत नगेन्द्रनारायण-सिंह हैं। मिलने का पता—वाणी-मन्दिर, छपरा। पृष्ठ-संख्या ६० है। मूल्य नहीं लिखा।

लेखक ने सम्पूर्ण पुस्तक प्रेमी युवकों के पारस्परिक पत्रों के रूप में लिखी है। उद्दाम यौवन के उषा-काल में अपने ही यौवन की सुनहरी आभा से विश्व को अनिरंजित करके प्रत्येक युवक अपना सम्पूर्ण अपनापन और अपनी सम्पूर्ण अछूती प्रणय-निधि विश्व के प्रत्येक कल्पित सौन्दर्य पर अपने सरल और अतिविश्वस्त पागल हृदय से तथा अपने उदार और उन्मुक्त हाथों से लुटाने को निकल पड़ता है, और प्रत्युत्तर में प्राप्त सभी त्याग तथा प्रणय को अपनी आशा के अनुरूप न देखकर तथा विश्व की निर्मम वास्तविकता और अपनी सुखद, करुण तथा कोमल प्रणय-कल्पना में सामंजस्य न पाकर वह निराश और अगाध विषाद-पूर्ण दृष्टि से चारों ओर देखता है। उस समय हृदय की जो अवस्था होती है तथा भाषा में विचारों का जो आवेग, सहृदयता, करुण भावुकता, स्वाभाविकता तथा जो उच्छृङ्खल काव्यमय प्रवाह होता है उस सबका सुन्दर चित्रण इन पत्रों में किया गया है। एक युवक हृदय की सच्ची, सरल तथा प्रणय की

आशा निराशा के आलोक-अन्धकार से शोभित इस प्रणय-पत्रावली को पढ़कर पाठक को स्वाभाविकता का अनुभव होगा। इस दृष्टि से लेखक को खूब सफलता मिली है। किन्तु भाषा की दृष्टि से कहीं कहीं वाक्य-रचना सदोष है और कहीं कहीं चित्रण भी वास्तविकता का अतिक्रम करने के कारण अस्वाभाविक तथा कष्ट-लिखित-सा हो गया है। सदोष वाक्य-रचना का एक उदाहरण यह देखिए "हाँ, इतना अवश्य कहूँगा कि तुम मुझसे शर्माते हो, लेकिन जब तुम मेरा अपना हो और मुझे अपना बना लिये हो तो फिर शर्म किस बात की ?" (पृष्ठ १०)।

४—ऊर्मी—(काव्य)—लेखक, पंडित रामनारायण-दत्त शास्त्री, प्रकाशक, साहित्य-परिषद्, सलेमगढ़, गोरखपुर हैं। मूल्य ॥) है।

ऊर्मी कवि महोदय की स्फुट कविताओं का संग्रह है। सभी कवितायें नवीन शैली में लिखी गई हैं। कवि की भाषा सरल तथा विषयोपयोगी है। भावों की अभिव्यक्ति स्पष्ट है तथा काव्योचित गुणों एवं कल्पना की छटा का स्थान स्थान पर सुन्दर समावेश हुआ है। कवि में भावुकता है, और काव्य-कौशल के अनुरूप शैली, भाषा, विषय-निर्वाचन आदि उपादानों की भी कमी नहीं है। हमें आशा है, हिन्दी के वर्तमान काव्य-युग की प्रतिदिन प्रकाशित होनेवाली कविताओं के रसज्ञ-रसिकों में इन कविताओं का समुचित आदर होगा। पुस्तक के प्रारम्भ में श्रीयुत नन्ददुलारे वाजपेयी जी की एक संक्षिप्त भूमिका है, जिसमें वर्तमान हिन्दी-काव्य-युग की निर्बलताओं की ओर अच्छा संकेत किया गया है। साहित्य-व्रतियों को भूमिका में निबद्ध संक्षिप्त किन्तु तथ्य संकेतों पर गम्भीर विचार करना चाहिए।

५—सुषमा—(काव्य)—लेखक, श्रीयुत श्रीहरशरण शर्मा, प्रकाशक, श्रोभा-बन्धु-आश्रम, इलाहाबाद हैं। मूल्य ।=) है।

उषःकाल, मध्याह्न, गोधूलि तथा विभावरी नामक चार मुख्य शीर्षकों के नीचे प्रकृति की सुन्दर वस्तुओं तथा दृश्यों पर कवि ने सरल भाषा में स्फुट कवितायें लिखी हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य से चमत्कृत कवि ने इन कविताओं में प्रकृति-पर्यवेक्षण तथा सौन्दर्य-बोध का जो परिचय दिया है उससे उनकी विकासोन्मुख काव्यशक्ति का पता चलता है। यद्यपि भाषा तथा शैली पर कवि का पर्याप्त अधिकार है, तथापि उनकी इन कविताओं के शब्द-चित्रों में अनेक स्थानों पर धुँधलापन तथा अपूर्णता की भी कमी नहीं है। कुछ पद्यों की रचना तथा उपमाओं का विन्यास अस्वाभाविक तथा कष्ट-साध्य-सा प्रतीत होता है। 'खेतों की सुषमा' नामक कविता के कुछ सुन्दर पद्य पाठकों के मनोविनोद के लिए नीचे दिये जाते हैं—

सुकुमार शालि-बालाएँ,
कोमल कोमल पद गातीं,
श्रद्धा से नतमस्तक हो,
गोधूली में झुक जातीं।

× × ×

हैं कुश कासों के वन से,
सित-जरा घनों सी छायीं,
जगती में जरा-मरण है,
यह पाठ पढ़ाने आईं।

६—श्रीरामानन्द-नाटक—लेखक, श्रीयुत श्रीवैष्णव हैं। मूल्य ।~) है। पता—व्यवस्थापक, श्रीरामानन्द-ग्रन्थमाला कार्यालय, अयोध्या।

महात्मा रामानन्द का जीवन और धर्म-रक्षा के लिए उनके चमत्कारपूर्ण कार्यों को अभिनय-रूप में इस पुस्तक में अङ्कित किया गया है। तत्कालीन मुसलमान शासकों का अत्याचार, हिन्दू-जाति की विवशता तथा भगवदवतार श्रीरामानन्द जी का अलौकिक प्रभाव प्रदर्शित करनेवाले दृश्य रोचक हैं। किन्तु कला की दृष्टि से नाटक में अनेक दोष हैं। स्थान स्थान पर छन्दोभङ्ग पूर्ण नीरस तुकबन्दियों तथा शेरों के समावेश से नाटक अस्वाभाविक तथा निम्न-कोटि का असफल प्रयासमात्र रह गया है। अशुद्धियों की भी भरमार है। नाट्यकलानभिज्ञ जनता अवश्य इसके दृश्य-वैचित्र्य से अपना मनोरंजन कर सकती है। स्थिर साहित्य की वस्तु बनाने के लिए तो सम्पूर्ण नाटक को पुनः प्रारम्भ से अन्त तक अभिनयकला की दृष्टि से लिखना आवश्यक है।

७—श्रीमद्भगवद्गीता, (श्रीगीतार्थप्रकाश)—सम्पादक पण्डित श्रीमाधवशर्मा हैं। पता—'श्रीगीतार्थ-प्रकाश' कार्यालय ३५।१३ जंगमबाड़ी, काशी। वार्षिक मूल्य ४)।

भारतीयवाङ्मय की सुप्रसिद्ध चिन्तामणि श्रीमद्भगवद्गीता का हिन्दी-भाषा में सविस्तर विवेचन करने के उद्देश से 'श्रीगीतार्थप्रकाश-ग्रन्थमाला' नामक यह ग्रन्थमाला प्रकाशित की गई है। इस ग्रन्थ-माला का वार्षिक मूल्य चार रुपया है और सम्पादक महोदय ने अपनी स्वर्गीया धर्मनिष्ठा पत्नी की 'स्मृति' में इसका प्रकाशन प्रारम्भ किया है।

गीता के मूल श्लोक, अन्वयार्थ, संस्कृत-व्याख्या तथा गीतार्थ-प्रकाश नामक विस्तृत विवेचनात्मक भाषाटीका इसमें दी जाती है। अन्य विद्वानों के मत तथा लेखक के अपने विचारों का समावेश भी यथास्थान रहता है। समालोच्य 'पुष्प' में पंडित मदनमोहन मालवीय जी का काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय में किया हुआ गीता-प्रवचन दिया गया है। हिन्दी-भाषा-भाषियों को गीता का मर्म और गूढ़ार्थ स्पष्टरूप से समझाने तथा अनेक व्याख्याकारों तथा विद्वानों के मतों का संक्षेप में परिचय देने के लिए इस कार्य का प्रारम्भ किया गया है। गीता-प्रिय पाठकों को इससे लाभ उठाना चाहिए। इन 'पुष्पों' को अधिक उपयोगी तथा उन्नत बनाने के लिए अधिक सावधानी से प्रकाशित करने की आवश्यकता है। प्रस्तुत 'पुष्प' में मुद्रण-सम्बन्धी अनेक अशुद्धियाँ रह गई हैं।

८—हिन्दी-बर्मी-बाल-बोधिनी—लेखक, श्रीयुत धर्मचन्द्र खेमका, प्रकाशक, ब्रह्म-प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-गोष्ठी, रंगून हैं। मूल्य ।) है।

यह पुस्तक बर्मा-निवासियों को राष्ट्र-भाषा हिन्दी का सामान्य व्यावहारिक ज्ञान सिखाने के उद्देश से लिखी गई है। अन्य भाषाओं में, विशेषतया अँगरेज़ी में, विदेशी भाषाओं को घर बैठे सिखानेवाली 'ह्यूगो' तथा 'मार्लबोरो' नामक 'स्वयं-शिक्षक-ग्रन्थावलियाँ' प्रसिद्ध हैं, जिनकी सहायता से विश्व-पर्यटक, व्यापारी तथा साहित्य-प्रेमी परस्पर एक-दूसरे की भाषा सीखकर विदेशों में अपना काम आसानी से चला सकते हैं तथा विदेशी साहित्य का रसास्वादन भी कर सकते हैं। हिन्दी में अनेक ऐसे विद्वान् हैं, जो फ्रेंच, जर्मन, रशियन आदि भाषाओं के ज्ञाता हैं, परन्तु हिन्दी के दुर्भाग्य से न तो उन देशों में हिन्दी-प्रचार की दृष्टि से और न राष्ट्र-भाषा-भाषियों को उन विदेशी भाषाओं को सरलता से सिखाने के उद्देश से ही उन्होंने ऐसी ग्रन्थ-रचना करने की ओर ध्यान दिया। जो दो-चार प्रयत्न इस दिशा में हुए हैं वे प्रायः नगण्य से हैं। ऐसी अवस्था में हम लेखक तथा प्रकाशक दोनों के मातृ-भाषा प्रेम की और उनके उत्साह की सराहना किये बिना नहीं रह सकते। बर्मा और भारत का भाग्य अनेक बातों में एक है। बर्मा-निवासियों को इसलिए राष्ट्र-भाषा हिन्दी का ज्ञान प्राप्त करना अपरिहार्य हो गया है। हमें विश्वास है कि इस छोटी-सी पुस्तक से वे पूर्ण लाभ उठावेंगे। पुस्तक बड़े सुन्दर तथा व्यवहारोपयोगी ढङ्ग पर लिखी गई है और भारत-यात्रा करनेवाले बर्मी-यात्रियों के लिए विशेष उपयोगी है। हिन्दी-भाषा-भाषी भी बर्मी-भाषा का साधारण ज्ञान इस पुस्तक से प्राप्त कर सकते हैं।

९—सूरि-शतक—लेखक, पण्डित रामचरित उपाध्याय, प्रकाशक, श्री आत्मानन्द जैन-सभा, अम्बाला शहर हैं। मूल्य ≈) है।

यह स्वर्गवासी श्री जैनाचार्य आत्माराम जी का पद्यरूप में जीवन-चरित है। आत्माराम जी को चौदह वर्ष की अवस्था में पितृ-वियोग होने पर वैराग्य हो गया। १९१० विक्रम संवत् में गृह-परित्याग कर उन्होंने व्याकरण तथा साहित्य का अध्ययन किया। कुछ दिनों में शास्त्रों के पण्डित हो गये। शिकागो की 'सर्व-धर्म-परिषद्' से उन्हें निमंत्रण मिला पर समुद्र-यात्रा-निषिद्ध होने के कारण वे वहाँ नहीं गये। पर उनका लेख वहाँ पढ़ा गया और उनकी बड़ी प्रशंसा हुई। आजीवन जैन-धर्म का प्रचार उपदेशों, ग्रन्थों तथा अपनी जीवन-चर्या-द्वारा करके विक्रम-सम्वत् १९५३ में वे परमपद को प्राप्त हुए। उपाध्याय जी ने सरस, सुबोध, काव्य-गुण-सम्पन्न, सुंदर सौ पद्यों में उनका यही चरित निबद्ध किया है। प्रचारार्थ बँटवाने के लिए पुस्तक परमोपयोगी है।

१०-११–काशीपुस्तकभंडार, बनारस की दो पुस्तकें—

(१) **स्त्री-संगीत-गायन**—संकलयिता, श्रीमती पार्वती देवी हैं। मूल्य ।=) है।

स्त्रियों में सत्संगीतों के प्रचार के उद्देश से इस पुस्तक का प्रणयन हुआ है। इसमें मीरा, प्रतापबाला, कबीर, रूपकुँवरि आदि प्रसिद्ध पदकारों के पदों का संग्रह किया गया है। अन्त में विवाह, बन्ने, सुहाग, सोहर आदि

के ग्राम-गीतों को भी इसमें स्थान देने से पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। प्रारम्भ में विभिन्न रागों के गान का समय तथा कुछ रागों के सरगम तथा स्वरलिपियाँ भी दे दी गई हैं। पुस्तक में सुन्दर तथा पवित्र भावनाओं को उद्बुद्ध करनेवाले पदों का संग्रह है। स्त्रियों के लिए विशेषरूप से उपयोगी है। आशा है, संगीत-रसिक महिलाओं में इसका प्रचुर प्रचार होगा।

(२) **आश्रम-गीताञ्जलि**—संकलयिता, श्रीयुत सूर्यबलीसिंह हैं। मूल्य ।=) है।

इसमें महात्मा गांधी के आश्रम में गाये जानेवाले प्रसिद्ध पदों, संस्कृत-प्रार्थनाओं तथा संकीर्तनों के साथ ही साथ हिन्दी के आधुनिक राष्ट्रीय कवियों के पदों का भी संग्रह किया गया है। सब मिलाकर इस संग्रह में अधिकांश में उत्तम पदों का ही संग्रह हुआ है, परन्तु कुछ एक पद अत्यन्त साधारण कोटि के भी शामिल कर दिये गये हैं। ईश्वर-भक्ति, राष्ट्रीयता तथा उद्बोधन की इन भावनाओं को संगीत के द्वारा जनता में फैलाने के उद्देश से ही इसका प्रणयन हुआ है। प्रारम्भ में संगीतोपयोगी सरगम, स्वरलिपि आदि 'स्त्री-संगीत-गायन' के समान ही दिये गये हैं। पुस्तक संगीत-प्रिय भगवद्भक्तों तथा देशप्रेमियों के लिए उपयोगी है और उन्हें इसका संग्रह करना चाहिए।

—कैलाशचन्द्र शास्त्री, एम० ए०

१२—हमारे राष्ट्रपति—यह पुस्तक सस्ता-साहित्य-मण्डल दिल्ली-द्वारा प्रकाशित है। लेखक, श्रीयुत सत्यदेव विद्यालङ्कार, प्रस्तावना-लेखक, बाबू राजेन्द्रप्रसाद, प्रकाशक, सस्ता-साहित्य-मण्डल, दिल्ली हैं। पृष्ठ-संख्या ३८१, छपाई सुन्दर और दाम १) है। इस पुस्तक में कांग्रेस के सन् १८८५ से लेकर १९३६ तक के सभापतियों के चरित संग्रह किये गये हैं। विद्यालङ्कार जी ने इसके लिखने में परिश्रम किया है। इसकी भाषा सरल और मौक़े मौक़े पर ओजस्विनी है। चरित-नायकों का इसमें उन्होंने याथातथ्य चरित्र-चित्रण करने का पूरा प्रयत्न किया है। इसमें सामयिक घटनाओं का वर्णन समय के क्रम से किया गया है। इससे उनको हृदयंगम करने के लिए बड़ी सुविधा हो गई है। आज से पचास वर्ष पूर्व से भारत की स्वतन्त्रता के लिए जो कुछ भी प्रयत्न और आन्दोलन यहाँ हुआ है उसका परिज्ञान इस पुस्तक का पारायण करने से भले प्रकार हो जाता है। प्रत्येक भारतवासी को जिसको अपने देश से अनुराग है, इसका अवश्य संग्रह करना चाहिए। [illegible] पुरुषों के चरितों के पाठ से पथ का प्रदर्शन होता है। [illegible] ने ठीक ही लिखा है कि "राष्ट्रीय महापुरुषों का यह स्मरण पाठकों के जीवन में राष्ट्रीयता का तेज, बल, ओज पैदा करेगा और उनके मार्ग का अनुगामी बन माता के चरणों में अपने आपको भेंट चढ़ा देने की भावना उनमें भर देगा।"

प्रकाशकों को ऐसी बहुमूल्य पुस्तक की जिल्द बनानी चाहिए। कम से कम भीतर के मज़बूत काग़ज़ सुन्दर छपाई के अनुकूल तो ज़रूर ही होने चाहिए।

१३—मुनमुन—लेखक, श्रीयुत [illegible] ए०, प्रकाशक, [illegible]-साहित्य-सदन, [illegible] हैं। [illegible] डबल क्राउन [illegible]जी, पृष्ठ-संख्या [illegible] और [illegible] १) है।

प्रस्तुत पुस्तक में श्रीभारतीय जी की [illegible] कहानियाँ संग्रहीत हैं। कहानियाँ नये ढङ्ग की हैं और लेखक की शैली सजीव और रोचक है। पहली कहानी में लेखक ने एक बकरी और उसके बच्चे का और मनुष्य के साथ विशेष पशु के सम्बन्ध का बड़ा ही हृदयस्पर्शी वर्णन है। मनुष्य की दृष्टि से तो मनुष्यों को सभी लेखक देखते और दिखाते हैं, परन्तु इस कहानी में श्रीभारतीय जी ने हमें बकरी की दृष्टि से मनुष्य का प्रिय और [illegible] स्वरूप हमारे सामने बड़ी सफलता के साथ अङ्कित किया है। दूसरी कहानी 'राधा' है जो सरस्वती में छप चुकी है। 'रंग गुलाबी बातानी रङ्ग' शीर्षक कहानी में मलिन [illegible] में लिपटे हुए एक जीर्ण-शीर्ण अन्धे रंग बेचनेवाले की कहानी और उसका चित्रण है। कहानी पढ़ते ही वह [illegible] हमारे सामने आ जाता है। जैसे लेखक ने सचमुच [illegible] आदमी देखा हो। पर उसकी शेष कहानी में कल्पना का प्राधान्य है तो भी कहानी रोचक है। [illegible] सभी कहानियों में भारतीय जीवन के किसी न किसी पहलू पर [illegible] नवीन और दार्शनिक ढङ्ग से प्रकाश डाला गया है। [illegible] में नवीन विचार और सुरुचि उत्पन्न करने में ये कहानियाँ सफल सिद्ध होंगी।

१४—कृषि-विज्ञान-सम्बन्धी तीन पुस्तकें—[illegible] के चौधरी मुख्त्यारसिंह (वकील) ने हाल में कृषि [illegible]

सम्बन्धी तीन पुस्तकें लिखी और प्रकाशित की हैं। इन पुस्तकों के द्वारा वे 'कृषि-सम्बन्धी साधारण ज्ञान' का प्रचार करना चाहते हैं। इन पुस्तकों के लिखने और प्रकाशित करने का कार्य उन्होंने सर्वथा किसानों की हित-भावना से प्रेरित होकर अपने हाथ में लिया है और इस प्रकाशन से जो आय होगी उसे भी ग्राम-उन्नति में लगाने की घोषणा की है। भारत ऐसे कृषि-प्रधान देश में जहाँ कृषकोपयोगी साहित्य का सर्वथा अभाव है, उनके इस सुन्दर प्रयत्न की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है।

पहली पुस्तक भूमि है। इसकी पृष्ठ-संख्या १११ और मूल्य १॥) है। इसमें मिट्टी की कहानी है। इसमें लेखक ने उन सब बातों का वर्णन किया है जिनसे खेत की मिट्टी कृषि के योग्य बनाई जा सकती है। पौधों को ज़िन्दा रखने के लिए सिर्फ़ यही ज़रूरी नहीं है कि वे खेत में बो दिये जायँ और उन्हें खाद और पानी मिलते रहें। चतुर किसान को यह जानना भी ज़रूरी है कि पौधे किस प्रकार जीवित रहते हैं, किस प्रकार मिट्टी से अपनी ख़ूराक लेते हैं और उन्हें कब कितने दवा-पानी की आवश्यकता है। इन सब बातों का चौधरी साहब ने इस पुस्तक में सुन्दर ढङ्ग से वर्णन किया है।

दूसरी पुस्तक 'पौधा और खाद' है। इसकी पृष्ठ-संख्या ३८६ और मूल्य २) है। इसमें पौधों के जीवन, उनके अवयव और क्रम-विकास, बीज और उसकी रक्षा, खाद (कृत्रिम और प्राकृतिक) और उसकी क़िस्में और उनके तैयार करने की विधियों आदि का विस्तार के साथ वर्णन है।

तीसरी पुस्तक 'जल और जुताई' है। इसकी पृष्ठ-संख्या ३३५ और मूल्य २) है। इसमें सिंचाई और जुताई और इनसे सम्बन्ध रखनेवाले औज़ारों और यंत्रों का वर्णन है। अच्छी मिट्टी और खाद के बाद सिंचाई और जुताई के सम्बन्ध में भी आवश्यक ज्ञान प्राप्त किये बग़ैर कोई किसान कृषि-कार्य्य में सफल नहीं हो सकता। इस दृष्टि से यह पुस्तक भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है।

कृषि से दिलचस्पी रखनेवाले लोगों को ये पुस्तकें पढ़नी चाहिए। पुस्तकें सीधा लेखक को लिखने से प्राप्त होंगी।

—श्रीनाथसिंह

१५—**मेरी विलायत-यात्रा**—लेखक, श्रीयुत रामजी-दास वैश्य, मुद्रक, आलीजाह-दरबार-प्रेस, ग्वालियर हैं। पृष्ठ-संख्या २४० है।

ग्वालियर के श्रीयुत रामजीदास वैश्य हिन्दी के पुराने प्रेमी हैं। ये वहाँ के एक उच्चपदाधिकारी तथा सम्मान-प्राप्त व्यक्ति हैं। व्यापारियों के प्रतिनिधि की हैसियत से उन्हें १९२८ में 'जेनेवा' की अन्तर्राष्ट्रीय श्रमजीवी परिषद् में भाग लेने के लिए योरप जाना पड़ा था। प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने अपनी उसी यात्रा का सचित्र विस्तृत वर्णन किया है। यह यात्रा-वर्णन काफ़ी रोचक तथा अनेक ज्ञातव्य बातों से पूर्ण है। लेखक महोदय को फ्रांस, ब्रिटेन, जर्मनी आदि के परिभ्रमण में भला-बुरा जो कुछ अनुभव हुआ है उसका उन्होंने इसमें पूरा वर्णन किया है। यात्रा-साहित्य की यह एक उत्कृष्ट पुस्तक है।

१६—**दोस्त दर्ज़ियाँ** (पहला भाग)—लेखक व प्रकाशक, मास्टर ईश्वरदत्त, दर्ज़ीगर, रंगमहल बाज़ार, लाहौर हैं। पृष्ठ-संख्या ४०० और मूल्य १॥) है।

इसके लेखक दर्ज़ी के कार्यों का स्वयं अनुभव रखते हैं और उन्होंने अपने अनुभवों को लिपिबद्ध कर देने का प्रयत्न किया है। विषयानुसार पुस्तक आठ अध्यायों में विभक्त है। पहले अध्याय में कपड़े की नाप तथा भिन्न भिन्न अंग के कपड़ों से सलवारों के काटने आदि की बातों का वर्णन किया गया है। दूसरे में पायजामे-सम्बन्धी, तीसरे में कमीज़ों के सम्बन्ध की बातें, चौथे में ट्यूनिक, बीसपोक, और स्काउट-सम्बन्धी कमीज़ों का वर्णन, पाँचवें में कुर्त्ता, छठे में जम्पर तथा फ्राक, सातवें में निकर, पेटी-कोट आदि और आठवें में नाइट सूट और सर्जन कोट आदि के सम्बन्ध की बातों का वर्णन किया गया है। कपड़ों की काट आदि के समझाने के लिए यथास्थान नक़शे भी दे दिये गये हैं। यह पुस्तक अपने विषय की एक उपयोगी पुस्तक है। इससे सिलाई का काम सीखनेवालों को बड़ी मदद मिल सकती है। पुस्तक की भाषा सरल, सुबोध और मुहावरेदार है, अतएव साधारण पढ़े-लिखे भी इससे लाभ उठा सकते हैं।

१७—**फलों की खेती और व्यवसाय**—लेखक व प्रकाशक, श्रीयुत नारायण दुर्लाचन्द व्यास, एल० एजी० इम्पीरियल इन्स्टीट्यूट आफ़ एग्रीकल्चरल रिसर्च, पूसा हैं। पृष्ठ-संख्या २३० और मूल्य १॥=) है।

श्री व्यास जी को कृषि-सम्बन्धी बातों का व्यावहारिक अनुभव है। वे इस क्षेत्र में बड़ी लगन के साथ कार्य कर रहे हैं। इस पुस्तक में उन्होंने फलों की उपज बढ़ाने आदि के विषय का सुन्दर वर्णन किया है। फलवाले वृक्षों के लगाने के लिए उत्तम ज़मीन का चुनाव, उत्तम खाद का प्रयोग, उत्तम सिंचाई की व्यवस्था, वृक्षों की काट-छाँट, उसकी देख-भाल और फलों की उपज के विक्रय आदि विषयों का वर्णन बड़ी खोज के साथ किया है। लेखक महोदय ने बहुत-सी ऐसी खादों का वर्णन किया है जिनका यहाँ के किसान प्रयोग करना ही नहीं जानते या जानते हैं तो उनका प्रयोग नहीं कर सकते—जैसे, खली की खाद, हरे या सूखे पत्तों की खाद, हरी खाद आदि। इनके बताये हुए नियमों के द्वारा खाद तैयार करके फलों की उपज बढ़ाने में अवश्य सफलता मिल सकती है और लाभ भी उठाया जा सकता है। परन्तु यह सब सुसम्पन्न और इस सम्बन्ध में दिलचस्पी रखनेवाले लोग ही कर सकते हैं और उन्हें इस पुस्तक से अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

१८—**अछूत-समस्या**—लेखक, महात्मा गांधी, अनुवादक, श्री परिपूर्णानन्द वर्मा, प्रकाशक, गंगा-ग्रंथागार, ३६ लाटूशरोड, लखनऊ हैं। पृष्ठ-संख्या ११६ और मूल्य ॥।) है।

यह पुस्तक अपने विषय की एक सामयिक पुस्तक है। महात्मा गांधी के अछूत-सम्बन्धी लेखों का यह संग्रह है, जिनका अँगरेज़ी से हिन्दी में वर्मा जी ने अनुवाद किया है। अछूत क्या हैं, उनके साथ हमारा क्या बर्ताव होना चाहिए, वे क्यों हिन्दू-धर्म को मानें, अन्य धर्म को क्यों न मानें आदि महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर इस पुस्तक के लेखों में बड़ी गम्भीरता के साथ विचार किया गया है। इसके पढ़ने से पाठक इस विषय की पूरी जानकारी प्राप्त कर सकता है और अछूत-विषयक व्यर्थ के वाद-विवाद आसानी से मिट सकते हैं। अछूतों से सहानुभूति रखनेवाले या उनकी लीडरी का दम भरनेवाले व्यक्तियों को तो इसे अवश्य ही पढ़ना चाहिए। पुस्तक की छपाई सुन्दर, भाषा भी सरल है।

१९—**सटीक कवितावली रामायण**—टीकाकार, पंडित गणेश पांडे और ठाकुर सूर्यनाथसिंह 'विशारद', प्रकाशक, छात्रहितकारी पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग हैं पृष्ठ-संख्या २५० और मूल्य १॥) है।

इस पुस्तक के आरम्भ में श्रीयुत उदयनारायण त्रिपाठ[ी] एम० ए०, 'साहित्य-रत्न', की लिखी ५६ पृष्ठ की प्रस्त[ा]वना है, जिसमें उन्होंने अन्य विषयों के अतिरि[क्त] तुलसीदास की जीवनी, उनके साहित्य-प्रेम, उनकी भा[वु]कता तथा उनकी स्वतन्त्र-प्रकृति पर पूर्ण रीति से प्रका[श] डाला है। इसके पढ़ने से विद्यार्थियों को तुलसी औ[र] उनके ग्रंथों से सम्बन्ध रखनेवाली बहुत-सी बातों का ज्ञा[न] हो सकता है। इसके पश्चात् तुलसी-कवितावली की क्रम[-]बद्ध टीका की गई है। पहले कठिन शब्दों के अर्थ औ[र] पश्चात् पूरे पद का अर्थ लिखा गया है। अलङ्कार आ[दि] बातें भी पूर्णरूप से समझाई गई हैं। टीका पंडिता[ऊ] नहीं, बल्कि सामयिक ढंग की है, जिसे पढ़कर विद्यार्थ[ी] पदों का अर्थ समझ सकते हैं। टीका की दृष्टि से इसक[ा] यह संस्करण विद्यार्थियों के लिए उपयोगी है, पर इसमें विषय से सम्बन्ध रखनेवाली अन्तर्गत कथाओं पर कम प्रकाश डाला गया है। टीका उपयोगी है।

२०—**हिन्दू-विधवा या सती-गौरव**—लेखक व प्रकाशक, श्रीयुत के० सी० चटर्जी 'प्रेमी', आदर्श-प्रेस, केसरगञ्ज, अजमेर हैं। पृष्ठ-संख्या १९६ और मूल्य १) है।

यह एक उपन्यास है और १० परिच्छेदों में विभक्त है, जो पाठकों की सुविधा के लिए बहुत ही उपयुक्त है। इसके मुख्य पात्रों में बेनीमाधव और सोना नाम की एक विधवा है। अन्य पात्र केवल प्रसङ्ग के लिए लाये गये हैं। बेनीमाधव की मित्रता सोना के पति से थी, अतः उनके मरने पर उसने उसकी विधवा को अपने मकान में रहने की व्यवस्था कर दी। लेकिन उसकी आन्तरिक भावना सोना के प्रति कलुषित थी और वह उसका सर्वनाश करना चाहता था। सोना में विचार-शक्ति काफ़ी थी और उसे अपने पतन के परिणाम का पूरा ज्ञान था। पहले तो उसने बेनीमाधव को सचेत करना चाहा, पर जब उसने उसकी बातों पर ध्यान न दिया और एक दिन अपने एक एकान्त मकान में उसके साथ बलपूर्वक अशिष्ट व्यवहार करना चाहा तब सोना ने वहीं पास पड़ी हुई लोहे की एक छड़ से उसे बुरी तरह घायल कर दिया और स्वयं चहार-

दीवारी फाँदकर बाहर निकल आई। वह गङ्गा जी में डूबने जा रही थी कि उसे एक विधवा-आश्रम का स्वयंसेवक मिल गया। उसे जब इस निस्सहाय विधवा का हाल मालूम हुआ तब उसने उसे आश्रम में चलने पर विवश किया। अनिच्छा होने पर भी सोना वहाँ गई और वहाँ रहकर उसने समाज-सुधार का कार्य बड़ी लगन से आरम्भ किया।

वेनीमाधव स्वस्थ होने पर बड़ी बुरी सङ्गति में पड़ गया और उसने अपने को बिलकुल ही गिरा दिया। उसके मित्रों से एक वेश्या के कारण उसका वैमनस्य हो गया। उसने अपने एक मित्र को विष दे दिया, पर आश्रम के स्वयंसेवक से सोना को विष देने के पहले ही विष की शीशी मिल गई थी, जिससे उसने सारा विष निकाल कर उसमें दूसरी दवा भर दी थी। इधर स्वयंसेवक ने पुलिस को भी इत्तिला दे दी थी। अतः वेश्या के घर पर वेनीमाधव अपने मित्र को विष देने के अपराध में पकड़े गये और उन पर विष देने का जुर्म साबित हुआ। सोना भी गवाहों में से थी, क्योंकि उसने भी विष की शीशी देखी थी। जब उसकी गवाही हुई तब उसने कहा कि इस शीशी को मैंने ज़रूर देखा है, पर इसमें विष नहीं जान पड़ा था। दवा जान पड़ती थी। देखिए अभी उसमें कुछ दवा बाक़ी है। वह कुत्ते को दे दी जाय। यदि विष होगा तो अवश्य मर जायगा। दवा कुत्ते को पिलाई गई, मगर वह नहीं मरा। इस पर वेनीमाधव छोड़ दिया गया। इससे वेनीमाधव को सोना के प्रति विशेष श्रद्धा हो गई और उसे देवी की भाँति मानकर उसने अपनी सारी बुराइयों को छोड़ने का सङ्कल्प किया। यही इस उपन्यास की कथा का सार है। इसमें यद्यपि कहीं कहीं गन्दे और अश्लील आचरणों का भी चित्रण है, तो भी उनसे एक प्रकार की उत्तम शिक्षा और सुधार की ही भावना टपकती है। लेखक का प्रयत्न जन-साधारण के सुधार के लिए सफल कहा जा सकता है। भाषा मुहावरेदार और सामयिक है। सरल और सुबोध होने से सबकी समझ में आसानी से आ सकती है। अतः आत्म-सुधार की भावना रखनेवाले नर-नारियों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए।

२१—**ग्राम सुधार-नाटक**—लेखक, सैयद क़ासिम अली 'साहित्यालङ्कार', प्रकाशक, साहित्य-सदन, अबोहर (पंजाब) हैं। पृष्ठ-संख्या ९० और मूल्य ॥) है।

पुस्तक के आरम्भ में श्री रामदयाल जी खंडेलवाल की लिखी भूमिका है, जिसमें नाटक की उपादेयता पर प्रकाश डाला गया है। इस नाटक को लेखक ने तीन अंकों में विभक्त किया है। आरम्भ का अङ्क बड़ा है, शेष क्रमशः छोटे होते गये हैं। इस नाटक की रचना का मुख्य उद्देश गाँवों की बुराइयों को दूर करना है और इस विषय पर इसमें काफ़ी प्रकाश भी डाला गया है। इसकी भाषा साधारणतया अच्छी है, पर उर्दू के शब्दों की विशेष भरमार है। ग्रामनिवासियों की बहुत-सी बुराइयाँ इसके पढ़ने तथा देखने से दूर हो सकती हैं और यह मंच पर खेलने के योग्य भी है।

२२—**मतवाली मीरा**—लेखक, श्रीयुत तुलसीराम शर्मा 'दिनेश', प्रकाशिका, श्री शान्तिबाई रानीवाला, ३३६ ए, कालबा देवी रोड, बम्बई हैं। पृष्ठ-संख्या ११९ है।

मीराबाई की रचनाओं से हिन्दी-प्रेमी भले प्रकार परिचित हैं। इस पुस्तक में लेखक ने उन्हीं मीराबाई की जीवनी पाठकों के सामने उपस्थित करने का प्रयत्न किया है। पुस्तक की रचना कथनोपकथन के रूप में हुई है, इसलिए वह पाठकों को विशेष रोचक और बोधगम्य जान पड़ती है। इस पुस्तक के पढ़ने से मीराबाई के ऐतिहासिक और भाव-पूर्ण जीवन पर सच्चा प्रकाश पड़ता है और भाँति-भाँति की ग़लतफ़हमियाँ दूर हो जाती हैं। पुस्तक उत्तम है। साहित्य-प्रेमियों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए।

२३—**दक्षिण-भारत की यात्रा**—लेखक, श्रीयुत सत्येन्द्रनारायण, प्रकाशक श्रीनाथ साह रामाराम, दुर्गा-कुण्ड, काशी हैं और मूल्य ।=) है।

इस पुस्तक में दक्षिण-भारत के मुख्य मुख्य स्थानों का वर्णन एक यात्रा के सिलसिले में किया गया है। इसके पढ़ने से पाठकों को दक्षिण-भारत के स्थानों की पूरी जानकारी हो सकती है। इस दृष्टि से यह पुस्तक उपयोगी है। इसकी भाषा भी सरल है।

२४—**राम-राज्य**—अनुवादिका, श्रीमती कुमारी शकुन्तला 'विशारद', प्रकाशक, श्री जयन्तीलाल मोरार जी मेहता, सम्पादक, 'देशीराज्य' नड़ियाद हैं।

यह छोटी-सी पुस्तक सर श्री प्रभाकरशंकर दलपतराम जी पट्टणी-द्वारा लिखित गुजराती पुस्तक का अनुवाद है। अनुवाद शुद्ध और मुहावरेदार भाषा में किया गया है। बालकों को रामायण की कथा का ज्ञान इस पुस्तक से सरलता-पूर्वक हो सकता है। उनके लिए यह एक उत्तम पुस्तक है।

२५—**पत्र-पुष्प**—लेखक, ठाकुर देवीसिंह, प्रकाशक, जयपुर-स्टेट प्रेस, जयपुर हैं।

९१ पृष्ठों की इस छोटी-सी पुस्तक में उक्त ठाकुर साहब की फुटकर कविताओं का संग्रह है। कविताओं की भाषा, भाव बहुत ही विशुद्ध और पवित्र तथा भक्ति-भावपूर्ण हैं। कविता-प्रेमियों को इसका रसास्वादन ज़रूर करना चाहिए।

२६—**दीपक**—सम्पादक, श्री नेगाराम 'विशारद', प्रकाशक, साहित्यसदन, अबोहर (पञ्जाब) हैं। वार्षिक मूल्य २) और एक अङ्क का मूल्य ≡) है। इस समय इसका ७ वाँ अङ्क हमारे सामने है। इसमें श्री विद्यानन्द एम० एल० टी, चौ० शिवसिंह एम० ए०। श्री अचिन्त्यराम शर्मा बी० ए० और स्वामी गङ्गागिरजी आचार्य के महत्त्वपूर्ण लेख हैं और मुख पृष्ठ पर साहित्यसदन, अबोहर का चित्र है। इसके अधिकांश लेख और कवितायें ग्राम-सुधार-सम्बन्धी भावना से परिपूर्ण हैं। वास्तव में यह किसानों के लिए अपने ढंग का एक उपयोगी पत्र है और इससे किसानों के हित की पूर्ण आशा है।

—गंगासिंह

२७—**धर्मतत्त्व**—लेखक, रावराजा रायबहादुर पण्डित श्यामविहारी मिश्र और रायबहादुर शुकदेवविहारी मिश्र, 'मिश्रबन्धु', प्रकाशक, पण्डित प्रतापनारायण मिश्र गोलागंज, लखनऊ हैं। आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या १२२ और मूल्य ।||) है।

इस पुस्तक के रचयिता मिश्रबन्धु हिन्दीवालों के सुपरिचित आदरणीय व्यक्ति हैं। वे एक ज़माने से हिन्दी की निःस्वार्थ भाव से सेवा करते आ रहे हैं और इस वृद्धावस्था में भी वे अपने उस पवित्र कार्य से विरत नहीं हुए हैं। उनकी यह नई रचना उनकी अध्ययनशीलता का पूरा परिचय देती है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति के सम्बन्ध में हिन्दुओं के धार्मिक विश्वासों का तर्कपूर्ण विवेचन किया गया है और 'न्याय-कुसुमांजलि' के कार्य-कारणवाद, आयोजन धृतिवाद [illegible] परमाणुवाद के सिद्धान्तों की कसौटी पर उन्हें कसकर निष्कर्ष निकाला गया है कि परमेश्वर का अस्तित्व [illegible] है और वह 'पृथ्वी में प्रवेश करके सामर्थ्य से समस्त [illegible] को धारण करता' है। परन्तु वह कैसा है, इसका 'ऋ[illegible] में कथन नहीं है, किन्तु 'यजुर्वेद में वह शिव के रू[illegible] कल्याणकर माना गया है'। बाद को उपनिषदों में उ[illegible] वर्णन 'व्यतिरेकवाची' विचारों से किया गया है। इस ग्र[illegible] लेखक महोदयों ने वेदों से लेकर वर्तमान समय तक हिन्दू[illegible] की भिन्न भिन्न विचारधाराओं का समय-क्रम के अ[illegible] वर्गीकरण करके विवेचन किया है तथा हिन्दी में हि[illegible] धर्म का एक बोध गम्य प्रामाणिक रूप अंकित करने [illegible] सुन्दर प्रयत्न किया है। पुस्तक के अन्त में जगदुत[illegible] प्रकृति, ईश्वर और आचार सम्बन्धी चुने हुए [illegible] अवतरण दिये गये हैं। ये सब १० उपनिषदों और [illegible] से लिये गये हैं। इनके साथ 'एक वाक्य' अपने 'परि[illegible] का भी लेखक महोदयों ने लगा दिया है। उनकी यह [illegible] राय है कि सत्यनारायण की कथा के स्थान में उ[illegible] संग्रह किये हुए इन (१२० + १ = १२१ अवतरणों [illegible] पाठ हुआ करे। यह पुस्तक उन विद्वानों की आँखें खो[illegible] के लिए लिखी गई है जो हिन्दू-धर्म-ग्रन्थ में 'उच्चता [illegible] दम्भ नहीं पाते'। वास्तव में ऐसे विद्वानों का इस ग्र[illegible] पूर्ण परितोष हो सकता है। इसमें निःसन्देह हिन्दू-धर्म[illegible] तत्त्वों तथा उसके भिन्न भिन्न धर्मों एवं सम्प्रदायों [illegible] का प्रारम्भ से लेकर आज तक बड़ी ख़ूबी के साथ उ[illegible] हुआ है। ग्रन्थकारों के निष्कर्षों से बहुतों का मतभे[illegible] सकता है। परन्तु उनका विषय-विवेचन सारगर्भित [illegible] ज्ञान-वर्द्धक है। धर्म-प्रेमियों को आदरणीय मिश्रब[illegible] की इस रचना का अवश्य अवलोकन करना चाहिए।

२८—**आयुर्वेदीय ओषधि-गुण-धर्म-शास्त्र** ([illegible] विभाग)—यह मराठी ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद है। [illegible] ग्रन्थ के लेखक वैद्य पंचानन गंगाधरशास्त्री गुणे महारा[illegible] एक प्रख्यात वैद्य-शास्त्री हैं। ये खानदानी वैद्य हैं। [illegible] १०० वर्ष से इनके घराने का चिकित्सा का ही पेशा [illegible] है। इसके सिवा गुणे महोदय शास्त्र पारंगत भी हैं। [illegible] इस ग्रन्थ की मराठी में तीन आवृत्तियाँ हो गई हैं। [illegible] ग्रन्थ है भी ऐसा ही महत्त्वपूर्ण। गत ३० ३५ व[illegible]

अनुभवों के अनुसार गुणे जी ने अपने इस ग्रन्थ की रचना की है और अपने विचारों को तथा अनुभवों को शास्त्रीय ढंग से उपस्थित करने में वे सफल-मनोरथ हुए हैं। इस भाग के उपोद्घात में उन्होंने वैद्यक की रस-प्रक्रिया का शास्त्रीय क्रम से अच्छा महत्त्व प्रतिपादित किया है जो पठनीय है। इस भाग में अभ्रक, कौड़ी, कासीस, जलद, ताम्र, त्रिवंग, नाग, प्रवाल, मंडूर, मौक्तिक, रौप्य, लौह, वंग, शंख, सीप, सृंग, सुवर्ण-माक्षिक, सुवर्ण, हरताल—इन द्रव्यों की भस्में बनाने तथा भिन्न भिन्न रोगों पर उनका प्रयोग करने का वर्णन किया गया है। किसी द्रव्य के सम्बन्ध में अधिक विस्तार से तथा किसी के सम्बन्ध में अति संक्षेप से विवेचन किया गया है। और भस्में बनाने की जो प्रक्रियायें इस पुस्तक में बताई गई हैं तथा उनका भिन्न भिन्न रोगों पर प्रयोग करने की जो विधियाँ बताई गई हैं उन सबका वर्णन पढ़ते समय इस बात का विश्वास-सा होने लगता है कि गुणे महोदय ने यह जो सब कुछ लिखा है उस सबका अनुभव करके लिखा है। इस दृष्टि से यह पुस्तक वास्तव में महत्त्वपूर्ण है और इसका हिन्दी-भाषान्तर हो जाने से अब यह ग्रन्थ हिन्दीवालों के लिए भी सुलभ हो गया है। आयुर्वेद के चिकित्सकों तथा उसके प्रेमियों को इसका संग्रह करके इससे लाभ उठाना चाहिए। अनुवाद की भाषा निर्दोष नहीं है। यद्यपि आशय समझने में कठिनाई नहीं पड़ती, तथापि यह आवश्यक है कि भाषा सर्वथा निर्दोष होनी चाहिए। इस ग्रन्थ का प्रकाशन अहमदनगर के आयुर्वेद-सेवा-संघ ने किया है। उन्हीं को लिखने से यह मिल सकता है। मूल्य १॥) है। छपाई, काग़ज़ आदि सुन्दर है। इस सत्कार्य के लिए वह संघ प्रशंसा का पात्र है। उसे इस उपयोगी ग्रन्थ के अन्य भागों का भी शीघ्र प्रकाशन करना चाहिए तथा इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का हिन्दी-भाषी-चिकित्सकों तथा उसके प्रेमियों में प्रचार करना चाहिए।

२९—**सम्प्रदाय-प्रदीप**—यह संस्कृत का एक प्राचीन ग्रन्थ है। इसे संवत् १६१० में पंडित गदाधरदास द्विवेदी ने लिखा है। इसमें वल्लभ-सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री वल्लभाचार्य का चरित वर्णित है तथा वल्लभ-सम्प्रदाय का इतिहास तथा उसकी भक्ति-भावना का वर्णन किया गया है। यह अपने विषय का पहला ग्रन्थ है। इसके रचयिता वल्लभाचार्य के दूसरे पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे। इस दृष्टि से यह ग्रन्थ बड़े महत्त्व का है। इसे सानुवाद प्रकाशित करके कांकरोली के श्री विद्याविभाग ने बड़ा उपयोगी कार्य किया है। वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुयायी इससे तो लाभ उठावेंगे ही, इतर जन भी इस प्राचीन पुस्तक के द्वारा वल्लभाचार्य महाराज तथा उनके सम्प्रदाय के सम्बन्ध में प्रामाणिक इतिवृत्ति का ज्ञान प्राप्त करेंगे। इस पुस्तक का सम्पादन भी बहुत अच्छा हुआ है। प्रारम्भ में हिन्दी-अनुवाद है और अन्त में मूल ग्रन्थ है। मूल्य २) है। क्या ही अच्छा होता, यदि भक्तमाल और 'वार्ता' का भी ऐसा ही सुसम्पादित संस्करण निकल जाता।

३०—**दर्देदिल**—सम्पादक, श्रीयुत सुखदेवप्रसाद सिनहा विस्मिल, प्रकाशक, सरस्वती-सदन, दारागंज, प्रयाग हैं। पृष्ठ-संख्या २१६ और मूल्य २) है। पुस्तक सजिल्द है।

यह उर्दू-कविताओं का संग्रह है। इसमें भिन्न भिन्न कवियों की रचनाओं का संग्रह किया गया है, पर सभी कवितायें 'दिल' विषयक हैं। यह संग्रह इलाहाबाद के प्रसिद्ध शायर श्रीयुत विस्मिल ने किया है। उन्होंने 'दिल की बातें' के शीर्षक में लिखा है कि "मैंने...'दिल' पर नज़र डालते हुए 'दिल' पर जो अच्छे अच्छे उर्दू के कवि हैं उन्हीं की कविताओं का, जहाँ तक मुझे मिल सकीं, 'दिल' से संग्रह किया है।" यह कथन सर्वथा ठीक है। वास्तव में संग्रह ऐसा ही है। परन्तु यदि कवितायें भाव-क्रम तथा समय-क्रम से एकत्र की जातीं तथा कवियों का संक्षिप्त परिचय भी दे दिया जाता तो इसकी उपयोगिता और बढ़ जाती। तथापि पुस्तक उपयोगी है। कविता-प्रेमियों को इसका पारायण अवश्य करना चाहिए।

३१—**श्रीमान् साँवलेराम त्रिपाठी का वंश-वर्णन**—रायबरेली के पण्डित गुरुदयालु त्रिपाठी एक प्रसिद्ध एडवोकेट हैं। इस पुस्तक में उन्होंने अपने पूर्वजों का हाल लिखा है तथा अपने कुटुम्ब का इतिहास। इसके साथ ही अपने सम्बन्धियों तथा इष्ट-मित्रों के समुचित उल्लेख के साथ-साथ त्रिपाठी जी ने अपना आत्म-चरित भी लिखा है। इसके पढ़ने से उनके पूर्वजों के गौरव का परिज्ञान तो होता ही है, इसके साथ ही एक कुटुम्ब की

आदर्श व्यवस्था का भी परिज्ञान हो जाता है। इसके लेखक त्रिपाठी जी बड़े जातिहितैषी हैं और उन्होंने आजीवन कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की सेवा करने में अपना काफ़ी समय दिया है। पुस्तक अपने ढंग की पहली है। यदि लोग इसके अनुकरण पर अपने-अपने वंशों तथा कुटुम्बों का हाल लिख डालें तो इससे समाज और साहित्य दोनों का लाभ हो सकता है। पुस्तक पर मूल्य नहीं लिखा है। लेखक महोदय को लिखने से मिल सकती है।

३२—**मीरापदावली**—सम्पादिका, श्रीमती विष्णुकुमारी श्रीवास्तव, 'मंजु' 'हिन्दी-प्रभाकर', 'साहित्यरत्न', प्रकाशक, हिन्दी-भवन, लाहौर हैं। इसकी पृष्ठ-संख्या [illegible] + १२७ और मूल्य १) है।

मीरा के पदों का यह एक सुसम्पादित संस्करण है। सम्पादिका हिन्दी की कवयित्री हैं, अतएव इस पुस्तक का एक सुन्दर संस्करण निकालकर उन्होंने अपने उपयुक्त काम किया है। प्रारम्भ में मीरा का प्रामाणिक जीवन-परिचय तथा उनके कवित्व का सुन्दर ढंग से विवेचन किया गया है। इसके बाद मीरा के २०१ पदों का संग्रह है। फ़ुट-नोटों में कठिन शब्दों के शब्दार्थ दिये गये हैं और पुस्तकान्त में अन्तर्कथाओं का वर्णन किया गया है। पदों का पाठ भी कई प्रतियों को मिला कर शुद्ध किया गया है। और इस संस्करण के तैयार करने में विदुषी सम्पादिका द्वारा मीरा-सम्बन्धी सारी उपलब्ध सामग्री का उपयोग किया गया है, जिससे यह अधिक उपयोगी हो गया है—विशेषकर छात्रों के लिए।

३३—**माली**—अनुवादक, श्रीयुत सूर्यनारायण चतुर्वेदी, प्रकाशक, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ हैं। पृष्ठ-संख्या १३७ और मूल्य १॥) है। पुस्तक सजिल्द है।

यह महाकवि डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अँगरेज़ी 'गार्डनर' का हिन्दी-अनुवाद है। इसका यह अनुवाद अँगरेज़ी मूल से मिलता-जुलता मुहाविरेदार और स्वाभाविक किया गया है। और जिस महत्त्वपूर्ण रचना का यह अनुवाद है वह रवि बाबू की रचनाओं का स्वयं उन्हीं का किया हुआ गीतों के एक उत्कृष्ट संग्रह के अँगरेज़ी भाषान्तर का हिन्दी-अनुवाद है। हिन्दी में अभी तक इसका अभाव था। रवि बाबू की कृतियों के प्रेमियों को इस 'माली' का संग्रह करना चाहिए।

३४-३९—**श्रीयुत प्रतापनारायण चतुर्वेदी की लिखी, भारतवासी प्रेस, दारागञ्ज प्रयाग-द्वारा प्रकाशित ६ पुस्तकें**—

(१) **छत्रपति शिवाजी**—इसमें शिवाजी के जीवन की घटनायें बड़े रोचक ढंग से वर्णन की गई हैं।

(२) **सूर्यनमस्कार**—लेखक, इस पुस्तक में सूर्यनमस्कार की महिमा का वर्णन किया गया है और विधि भी बतलाई गई है। मूल्य =)॥ है।

(३) **महाराणा प्रताप**—इसमें महाराणा प्रताप के चरित्र का संक्षिप्त वर्णन है। मूल्य =) है।

(४) **सनातन-शिक्षा**—इसमें ब्रह्मचर्य तथा अन्य विषयों के सदुपदेशों का संग्रह महाभारत से किया गया है। मूल्य =)॥ है।

(५) **चित्तौड़ की कहानियाँ**—इसमें चित्तौर की प्रसिद्ध कहानियों का वर्णन है। मूल्य =)॥ है।

(६) **रामायण की कथा**—इसमें रामायण की कथा सरल और संक्षेप में लिखी गई है। मूल्य =)॥ है। ये सभी पुस्तकें बालकोपयोगी हैं।

४०—**कामधेनु**—सम्पादक व प्रकाशक, श्री पं० बटुकदेव शर्मा, ५।१४ स्ट्रेण्ड रोड, बड़ाबाज़ार, कलकत्ता हैं। वार्षिक मूल्य ३) और एक प्रति का।=) है। इसके प्रथम वर्ष के दो अङ्क प्रकाशित हो चुके हैं।

४१—**श्री काशी-विद्यापीठ-पञ्चाङ्ग**—(१९८६ से ९१ तक) प्रकाशक, श्री बीरबलसिंह पीठस्थविर, काशी-विद्यापीठ काशी हैं। इसमें काशी-विद्यापीठ की नियमावली, संकल्पपत्र, परीक्षासम्बन्धी तथा अन्य विषयों से सम्बन्ध रखनेवाली बातों का विवरण दिया गया है। इस सम्बन्ध की जानकारी के लिए इसे अवश्य पढ़ना चाहिए।

४२—**हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का चौबीसवाँ वार्षिक विवरण**—प्रकाशक, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग है। सम्मेलन के चौबीसवें वर्ष का सम्पूर्ण कार्यों का इसमें भलीभाँति विवरण है। हिन्दी-प्रेमियों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए।

पुरोहित जी

लेखक, प्रोफ़ेसर राजेन्द्रलाल सेठ, एम० ए०

[स्थान—पुरोहित जी की बैठक—दाहनी ओर तख्त जिस पर एक मैली दरी और मैला गाव-तकिया, कुछ पोथी-पत्रे, पान का झोला, चुनौटी, जूतों के पत्ते रक्खे हैं। तख्त के पास ज़मीन पर मैले टाट का टुकड़ा, बाईं ओर पीतल का सिंहासन लकड़ी की एक चौकी पर रक्खा है, जिस पर ठाकुर जी की मूर्ति है। पास में शंख, घंटा, धूपदान, आरती की सामग्री, ताँबे की कलसी में गङ्गाजल, चौकी के पास आसन पर सामने घी का दीपक जलाकर पंचपात्र इत्यादि आगे रक्खे पुरोहित जी पूजा कर रहे हैं।

पुरोहित जी का रङ्ग पक्का है। एक महीन विलायती धोती पहने और रामनामी दुपट्टा ओढ़े, माथे पर भस्म रमाये, लंबी शिखा लटकाये, तोंद फैलाये, पत्रा खोले, नाक पर धागे से बँधा पुरानी तरह का चश्मा लगाये पुरोहित जी शिव-महिम्न-स्तोत्र का अशुद्ध उच्चारण से बड़े राग से पाठ कर रहे हैं।]

पुरोहित जी—मुहुर्दौर्दोर थय्याँ ननिभिट जटा ताड़ित तटा।
जगद्रच्छायैत्वङ्ग नटसि नेनुआँमैव विभुता ॥
वियद्व्या पीतारा गण गुणित फेनोद्गम रुचिः।
प्रवाहो वारांय पुस्वत लघु दृष्टिः सिरसिते ॥
जगद्दीपाकारन् जलधिवलयङ्ग तेन कृतमिति।
अनेनैवोन्नेयङ्ग भ्रित महिमे दिव्यङ्तव वपुः ॥
रथक्षोर्णीयंता सत धृत रथेन्द्रो धनुरथो।
रथांगेचन्द्रार्कौ रथचरण पाणिस्सर इति ॥

[पुरोहित जी के शिष्य शंखराज का प्रवेश। शंखराज—दुबला, लंबी शिखा, मैली धोती, कंधे पर चारखाने का अँगोछा, माथे पर पीला चन्दन और बग़ल में पोथी का बस्ता है।]

शंखराज—गुरु जी डंडवत्।

पुरोहित—हूँ हूँ [हाथ उठाकर आशीर्वाद देते हैं और संकेत से टाट पर बैठने को कहते हैं। शंखराज बैठ जाता है। गुरु जी धीरे धीरे भुनभुनाना शुरू करते हैं। थोड़ी देर भुनभुनाने के बाद पोथी पर फूल चढ़ाते हैं और ठाकुर जी पर फूल-अक्षत चढ़ाकर आरती करते हैं। पूजा समाप्त होती है। पुरोहित जी तख्त पर विराजते हैं और सुर्ती-चूना मलकर खाते हैं। शंखराज बस्ता खोलता है।]

पुरो०—पाठ सुनाओ।

शंख०—जदा मुस्तरी कर्कटे कमाने......

पुरो०—बज्र कहीं का! "कर्कटे कमाने" नहीं "कर्कटे वा कमाने"। फिर से कह।

शंख०—"जदा मुस्तरी कर्कटे वा कमाने।
रिखी क पुत्रो......"

पुरो०—अरे मूर्ख! "रिखी क पुत्रो" नहीं, "रिखईक पुत्रो" फिर कह।

शंखराज—जदा मुस्तरी कर्कटे वा कमाने।
रिखईक पुत्रो जदा मालखाने ॥

पुरो०—पाँच बार आवृत्ती करो।

[शंखराज दो-तीन बार कहता है।]

पुरो०—याद होय गया!

शंख०—हाँ।

पुरो०—अच्छा, फिर कहो।

शंख०—जदा मुस्तरी कर्कटे वा कमाने।
रिखईक पुत्रो जदा मालखाने ॥

पुरो०—ठीक है। इसके आगे याद करो—
"तदा ज्योतसी क्या लिखेगा पढ़ेगा।"

शंख०—"तदा ज्योतसी क्या लिखेगा पढ़ेगा।"

पुरो०—"हुआ बालका बादशाह वा कि मन्त्री"

शंख०—"हुआ बादसाह..."



मधुर मधुर मेरे दीपक जल!
प्रियतम का पथ आलोकित कर! (नीरजा)

पुरो०—अबे उल्लू ! "हुआ बालका" ।
शंख०—"हुआ बालका ।"
पुरो०—"बादसाह हो कि मंत्री ।"
शंख०—"बादसाहों का मंत्री ।"
पुरो०—"हुआ बालका बादसाह हो कि मंत्री ।"
शंख०—"हुआ बालका बादसाहों का मंत्री ।"
पुरो०—याद करो—

यदा मुन्तरी कर्कट वा कमाने ।
लिखंक पुत्र जदा मालखाने ॥
तदा ज्योतसी क्या लिखेगा पढ़ेगा ?
हुआ बालका बादसाह हो कि मंत्री ॥

शंख०—जदा मुन्तरी कर्कट वा कमाने ।
लिखंक पुत्रो जदा मालखाने ॥
तदा ज्योतसी, तदा ज्योतसी... [रटने लगता है

बाहर से—फुकई महाराज हैं ?
पुरो०—कौन है भैया ?
बाहर से—नायब साहेब के हियां से आये हैं ।
पुरो०—भीतर चले आओ भाई ।

[लाल साफ़ा बाँधे एक चपरासी थाली में सीधा लिये आता है ।]

अरे तुम हौ रामऔतार । भीतर क्यों नहीं आये ?
राम०—हमें देरी होय रही है । सिद्धा ले ल्यो । हमें अब ही कचहरी की बखत से पहुँचना है । हां ! सर्कार संझा के तोके बुलाइन हैं ।
पुरो०—[मकान के अन्दर से थाली लाता है और उसमें सीधा निकाल लेता ।] है सर्कार से हमरा जै जैकार कह देना ।
राम०—अच्छा, पालागी । [जाता है]
पुरो०—[शंखराज से] देखौ विद्या से आदमी का कैसा मान होता है । गदहाराम ! पढ़ोगे तो भोजन की कमी नहीं रहेगी । देखा नायब साहेब ने बुलाया है । औ रोज उनके बाप का सराध करवाया रहा । उनको मालूम है कि बिना हमारे उनके पुरखा तर नहीं सकते । [झोली में से पान निकालकर लगाता है और खाता है ।] हरि ओं नारायण नारायण ! पढ़ो ।
शंख०—[बड़े आदर से देखकर] तदा ज्योतसी तदा ज्योतसी...

[पुरोहित के लड़के इन्दुशेखर का प्रवेश । खाकी खद्दर का हाफ़पैंट और खाकी कमीज़ पहने, नंगे सिर, नंगे पैर, साफ़ रंग, उमर २० वर्ष ।]

पुरो०—कहः महराज ! कल से आप कहाँ रहे । भला दर्सन तो भया ।
इन्दुशेखर—कुछ नहीं । विद्यापीठ में जब तक नेता लोग रहे तब तक हमारी ड्यूटी रही ।
पुरो०—(व्यंग्य से) विद्यापीठ में ड्यूटी रही ! डोम-पीठ में ड्यूटी रही ! चोरकट घर में कौनो ड्यूटी थोड़ो रही । दुइ अच्छर अँगरेज़ी पढ़लीन, ड्यूटी रही । ई विद्यापीठ कब से भई । चर्खा चलाने से कहीं विद्या आतो है । ख़बरदार हमरे आगे जो विद्यापीठ का नाम लिया है । ओके चर्खापीठ कहो । [शंखराज चुप हो इस बीच में गुरु जी का मुँह देखने लगता है ।] [शंखराज से] पढ़ते काहे नहीं ? तोहूं के चर्खापीठ जाना है क्या ? पढ़ो अपना ।
शंख—हुआ बालका हुआ बालका......
पुरोहित—[इन्दु से] देखो, ई सुथना पहिर के हमरे घर मत आया करो जो है सो ।
इन्दु०—क्यों इसमें क्या हुआ है ?
पुरोहित—ई बैकटन की चाल हमरे घर नाहीं आय सकती । तुरुक होय गये हो क्या ? अपने धरम से रहो, देसी चीज़ पहिरो ।
इन्दु०—यह देसी नहीं है तो क्या है ? खद्दर से बढ़कर भी कोई देसी चीज़ हो सकती है ?
पुरो०—खद्दर डोमड़न का पहिरावा है । ब्राह्मणन का नहीं । ई गंधिया जौन न चाहे तौन करे ।
इन्दु०—आप कौन बड़ा धर्म का पालन कर रहे हैं । विदेशी वस्त्र पहन कर पूजा करते हैं और कहते हैं, अपने देश की चीज़ पहनो । यह मेंचेस्टर की जो धोती आपके शरीर पर सुशोभित है इसका तो अग्नि-संस्कार आपके हवनकुंड में होना चाहिए तभी धर्म की रक्षा हो सकती है ।
पुरो०—देखौ, बहुत-बड़ बड़ के बात मत करौ । हमरे घर में रहना होय तो राह से रहौ । और अधूतन और बैकटन का साथ करना होय तो हमरे घर से चले जाओ ।

इन्दु०—ख़ैर, हमको तो जहाँ जाना होगा जायँगे, किन्तु आपको इस अंधकार में देखकर हमको बड़ा दुःख होता है। जब एक थानेदार जूता पहनकर आपके यहाँ हमसे भी बदतर कपड़े पहनकर आता है तब आप समझते हैं कि आपके आराध्यदेव आ गये और अगर कोई गोरे चमड़ेवाला आ जाय तब तो आपको प्रतीत होता है मानो इन्द्रासन पर आप बैठ गये, किन्तु यदि हम खद्दर का जाँघिया और कमीज़ पहिनें तो हम विधर्मी हो गये और आपके घर में रहने लायक़ न रहे। और फिर आपने यहाँ ठाकुर जी को क्यों रख छोड़ा है? साहब और थानेदार को दिखाने के लिए कि आप बड़े धर्मात्मा हैं। हम जूता पहन कर यहाँ नहीं आ सकते किन्तु थानेदार के पदत्राण की रज से ठाकुर जी पावन हो जाते हैं। क्यों? देखिए ढोंग को छोड़िए, सच्चे धर्म को देखिए। जैसे आप अफ़सरों के धर्म-कर्म का विचार न कर उनका आदर करते हैं, वैसे ही सबका कीजिए। यह नहीं कि यदि सरकारी नौकर हो तो हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, चमार ही क्यों न हो वह तो पूज्य और बेचारे साधारण मनुष्य अछूत।

पुरो०—हमरे आगे पिंगल मत बाँचो। सीधी राह से हियाँ से चले जाओ।

इन्दु०—अच्छा मैं जाता हूँ, किन्तु पीछे आप पछतायेंगे।

[प्रस्थान]

शंख०—[अपना पाठ भूलकर] पाँडे जी पस्तायेंगे वही चना गुण खायेंगे—पाँडेजी पस्तायेंगे...[रटने लगता है

पुरो०—[कान पकड़कर] क्या बकता है?

शंख०—[तेज़ी से रटने लगता है।] जदा मुस्तरी...जदा मुस्तरी......

पुरोहित—ससुर! जौंने मुँह में आई तौंने बकि है। देखो ठीक ठीक पाठ को आवृत्ती करौ, नाहीं तो तोहूँ के घर से निकास देंगे।

बाहर से—"फुकई महराज!" "फुकई महराज!!"

पुरो०—को है भैया?

बाहर से—बाहर चले आओ। दरोग़ा जी बुलाते हैं।

[पुरोहित जी घबराकर उठते हैं और पैर लड़खड़ाने से गिर पड़ते हैं और सिर मलते हुए बाहर चले जाते हैं। जैसे ही गुरु जी बाहर जाते हैं, शंखराज उठकर गुरु जी की चौकी के पास जाता है और तकिया हटाकर उसके नीचे से रुपयों की थैली में से सब रुपये निकालकर अपने टेट में खोंस लेता है। और थैली को अपनी जगह रख उस पर तकिया रख देता है। फिर अपने स्थान पर बैठकर सुर्ती-चूना मलकर खाता है। पंडित जी को वापस आते देखकर "जदा मुस्तरी जदा मुस्तरी" घोंटने लगता है। पुरोहित जी बाहर से एक धोती और एक नारियल लेकर आते हैं।]

पुरो०—[शंख से] अब तू जाओ। कल आय के पाठ सुनाय जाओ। और देखे सेर भर चिउ और दुइ सेर चीनी लेत आयो, समझो कि नहीं। जाओ।

[शंखराज का प्रस्थान]

[पुरोहित का अंदर जाना और शंखराज का जल्दी से आकर गुरु जी के तकिए के नीचे कुछ ज़ेवर रखकर बाहर भाग जाना। गुरु जी का प्रवेश। तकिए के सहारे चौकी पर बैठ पान लगाकर खाना।]

बाहर से—[ज़नानी आवाज़ में] "महाराज जी!"

पुरो०—भीतर आओ। [घूँघट काढ़े स्त्री का प्रवेश।] क्यों क्या है बेटी?

स्त्री०—महाराज! हमें बड़ा कष्ट है। हमें संतान नहीं है। इस कारण हमारी सास हमारे पति से दूसरी शादी करने को कहती हैं। कोई उपाय बताइए जिससे बाँझ के कलंक से छूटूँ।

पुरो०—हाँ! किन्तु यदि अपनी गोदी भरना चाहती हो तो ख़ाली हाथ ज्योतिषी के पास नहीं आना चाहिए। ख़ाली हाथ से गोदी ख़ाली रहती है। शास्त्रों में ऐसा लिखा है।

स्त्री०—महाराज! हमारे पास दो रुपया है। यह आपकी भेंट है और पुत्रोत्पत्ति के बाद महाराज आप जो माँगेंगे हम देंगे।

पुरोहित—हः! हः! पुत्रोत्पत्ति के लिए दो रुपया! अरे क्या यह बजार का मोल-भाव है या हमरे हियाँ, जो है सो, रुपये दो रुपये में बच्चे बिकते हैं। देखो इसके लिए बड़ा कठिन उपाय करना पड़ेगा। और इसमें भरपूर द्रव्य लगाना पड़ेगा। तब कहीं जाकर संतति की सम्भावना हो सकती है।

स्त्री०—जो आज्ञा महाराज दें।

पुरो०—देखो हमको तीस तोला सुवर्ण चाहिए और उसमें तुम्हारे पति का कोई आभरण अवश्य होना चाहिए। किन्तु उसका उनको पता न लगे।

स्त्री०—पर महाराज! यह कैसे हो सकता है?

पुरो०—पुत्रोत्पत्ति के लिए सब करना होगा। बिना कठिन अनुष्ठान किये पुत्र नहीं हो सकता। और देखो! रात्रि में इसका अनुष्ठान होगा। उस समय तुमको पन्द्रह दिन तक हमारे लिए भोजन—लड्डू और पूड़ी लाना पड़ेगा। तीस तोला सुवर्ण जब भस्म होय कर एक रत्ती भर राख रह जायेगा तब उसको खायकर सोलहवें दिन घर जाकर सो रहना। परमात्मा का चाहा है तो पुत्र ही होगा। (स्त्री चरण पर गिर पड़ती है) अच्छा अब तू जा और कल से जो कहा है वही करना—सब फलते हैं। [स्त्री का प्रस्थान। पंडित जी बाहर जाकर दरवाज़ा बंद कर आते हैं और फिर बैठ कर स्वगत।] अब जीवन में चिन्ता नहीं रहेगी! बहुत दिन के बाद धन के बृहस्पति बैठे। [गाने लगता है]

[गाना—कजली]

हम तो खोजि खोजि चौकाली चिड़िया रोज़ फँसाई ला।
जहाँ देखि आई, सुनि पाई, बस उड़ि जाई ला हो। हम तो०
चोखा चारा चाह, जतन के जाल बिछाई ला॥ हम तो०

बाहर से—"दरवाज़ा खोलो।"

पुरो०—क्या काम है? दिन-रात खटखट लगाये रहते हैं।

बाहर से—खोलते हो कि दरवाज़ा तोड़ दिया जाय।

पुरो०—[डरकर] आये भैया! चिचिआओ मत! [बाहर जाता है और दो कान्स्टेबिल और थानेदार के साथ घबराये हुए अंदर आता है।]

थानेदार—क्यों पंडित, अब चोरी भी करने लगे?

पुरो०—सरकार हमने चोरी कभी नहीं किया।

थानेदार—[सिपाहियों से] तलाशी लो।

पुरो०—[आँखें बंदकर हाथ जोड़कर रटने लगता है।]
"जयत्यति बलो रामः लच्छमनस्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभि पालितः॥"

[सिपाही ठाकुर जी की चौकी उलट देते हैं। गंगा-जल में हाथ डालते हैं और फिर तख्त पर के बिस्तरे को उलटते हैं। एकाएक तकिए के नीचे से एक ख़ाली थैली और ज़ेवर निकलते हैं।]

सिपाही—[थानेदार से] हुज़ूर देखिए, तकिए के नीचे यह बरामद हुआ है।

थानेदार—क्यों बे पंडित! यह क्या है?

पुरो०—[चकित होकर] सरकार, हम नहीं जानते।

थाने०—यहाँ नहीं जानोगे, जेलख़ाने में पता लगेगा।

पुरो०—[थैली देखकर] इसमें हमारा रुपया रहा सो हुआ?

थाने०—क्यों! हम लोगों को चोर बनाने की तदबीर रहे हो क्या?

पुरो०—नहीं सरकार।

थाने०—[सिपाहियों से] हथकड़ी भर दो और ले च

[ज्यों ही ले जाना चाहते हैं, त्यों ही इन्दुशेखर आदमी के साथ शंखराज को पकड़कर ले आना।]

इन्दु०—[थानेदार से] आपने पिता जी को किस अ में पकड़ा है।

थाने०—चोरी के लिए गिरफ़्तार किया है।

इन्दु०—किन्तु बिना पूरी तरह जाँच किये आप अत्याचार करते हैं, यह कहाँ तक मुनासिब है।

थाने०—जो कुछ कहना हो सो कचहरी में कहिए माल बरामद चोर के पास! अब आगे क्या त ज्ञात हो सकती है?

इन्दु०—यही तो, माल बरामद कहीं हुआ और चोर पर मिला। चोर तो हम गिरफ़्तार करके ला [शंखराज की ओर संकेत करता है। और फिर साथवाले आदमी से।] अब आप दारोग़ा जी से बयान कर दीजिए।

आदमी—जनाब दारोग़ा साहब! आज सुबह यह श (शंखराज को संकेत कर) मेरे यहाँ भीख माँगने था। मैं इसके लिए सीधा लेने घर के अन्दर ग इस बीच में इसने मेरे बच्चे को बुलाया और उ बदन का सारा ज़ेवर उतारकर रफ़ूचक्कर होगय मैंने आकर देखा तो, न तो इसका पता था और मेरे बच्चे के ज़ेवरों का। मैं वहाँ से जब निकला इसको बहुत दूर पर भागते देखा। मैंने इसका पी किया, मगर इस बीच में यह पंडित जी के मकान

घुसा और फिर किधर से निकल गया, मैंने नहीं देखा। मैंने समझा यह इसी का घर है, इसलिए मैंने आपके यहाँ इत्तला की। जब मैं रपट लिखाकर वापस आ रहा था उस वक्त मैंने इसको आपसे [इन्दुशेखर को दिखाकर] बातें करते पाया। मेरी शक्ल देखते ही यह भागना चाहता था कि आपने इसको रोका और मैं पास पहुँच गया।

पुरो०—कहो शंखराज ई तोरे लच्छन। ई तो बताओ हमरा रुपया थैली में से कहाँ ले गये। अपने बड़े भाई इन्दु जी के देवै।

शंख०—हम नहीं कुछ.........

थाने०—चुप बे। बकबक करेगा तो ऐसी ठोकर मारूँगा कि होश ठिकाने हो जायँगे। [आदमी से] हाँ साहब फिर क्या हुआ?

आदमी—फिर मैंने इससे पूछा कि ज़ेवर कहाँ रक्खे हैं तब बोला, मैं क्या जानूँ। इस पर इन्दुशेखर जी ने मुझसे सब पूछा और फिर एक झापड़ कस के इसे रसीद किया और कहा कि इसको पुलिस के हवाले कीजिए। इतना सुनते ही यह लगा काँपने और कहने लगा कि हमें छोड़ दो, हम बताते हैं। पुरोहित जी के तकिए के नीचे छिपा आया हूँ।

पुरो०—क्यों सरउ, ई गुरु-मारफ़ विद्या तोके के सिखाइस?

इन्दु०—फिर मैंने आपसे [आदमी की ओर दिखाकर] कहा कि अभी इसको मत छोड़िए। यह झूठ न बोलता हो। इसे वहाँ ले चलिए। अगर सच बोलता है तो आप अपना ज़ेवर लेकर इसे छुड़वा सकते हैं। इसके बाद इसको पकड़कर हम यहाँ लाये।

शंख०—सरकार हम कुछ नहीं जानते।

थाने०—[एक ठोकर मारकर] ठीक ठीक बोल, नहीं तो मारे ठोकरों के फ़र्श कर दूँगा।

शंख०—हम ले आये रहे, मुला हम हियाँ तकिए के नीचे रख दिहा। हमें अब छोड़ देओ। हम सच कह दिया।

पुरो०—और हमरा थैली में का रुपया का कियो?

शंख०—हम का जाने?

पुरो०—देखो तो सारे के दुइ लात।

शंख०—(काँपता हुआ) मारो मत, [टेंट से निकालकर] लो, ई लो अपना रुपया।

इन्दु०—क्यों बच्चू, रुपया भी चुराया था।

शंख०—[बिगड़कर] तो का करें? तोरे बाप के वास्ते बिउ चीनी कहाँ से ले अउते। रोज हमसे घिउ चीनी मँगावें तो हम कहाँ से पावें। हमरे घर में कौनो खजाना गड़ा रहा।

इन्दु०—दारोग़ा साहब, क़ानून की निगाह में तो इस लड़के ने चोरी की है, मगर सच पूछिए तो यह चोरी, हमें शर्म से कहना पड़ता है, हमारे बाप ने ही की है। मैं आपके पैर पर गिरकर यही भीख माँगता हूँ कि इस लड़के को छोड़ दीजिए। आप खुद समझ सकते हैं कि इस धर्म के ढोंग में कौन कौन पाप नहीं होते।

पहला सिपाही—दारोग़ा जी! जाये देईं। ई पंडित क पेट नाहीं भरत। इतना आपके हियाँ से आव ला तब्बौ एनकर लालच नाहीं पुरात। लड़िकवौ से मँगावलें। ई बेचारा कहाँ से पाई। अब एनके एक चुटकिऔ सिद्धा न भेजल करौ। चलौ रोजनमचवा में कुछ लिख दिहल जाई।

दूसरा सिपाही—हाँ, हुज़ूर हटाइए चलिए। यह सब शरारत इसी पंडित की है।

थानेदार—अच्छा बे लड़के। मैं इस दफ़ा तो तुझे छोड़ देता हूँ, मगर आइन्दा अगर फिर ऐसा किया तो फाँसी टँगवा दूँगा।

शंखराज—नहीं, हज़ूर! अब कभी न करेंगे।

[थानेदार और सिपाहियों का उस आदमी को ज़ेवर देकर प्रस्थान।]

[शंखराज इन्दु के पैरों पर गिरता है।]

शंख०—आप हमरी जान बचाया।

इन्दु०—अच्छा उठो। अब कोई धंधा सीखो। यह रोज़ "जदा मुस्तरी" घोटने से हो नहीं सकता। चलो विद्यापीठ में चर्खा भी कातोगे तो चार पैसे मिल जायँगे। और चोरी करने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। जाओ कल सबेरे मिलना।

शंख०—अच्छा—[प्रस्थान]

आदमी—अच्छा तो हमको भी आज्ञा दीजिए। मैं आपको कैसे धन्यवाद दूँ? यदि आप न होते तो इन बेचारे ब्राह्मण पर वृथा अत्याचार होता।

इन्दु०—इसमें कोई धन्यवाद की आवश्यकता नहीं है।

मैंने अपना कर्तव्य किया। हाँ, यदि मेरी राय आप मानें तो व्यर्थ बच्चों पर गहने न लादा करें। अच्छा नमस्कार—[आदमी का प्रस्थान]

पुरो०—बेटा इन्दू!

इन्दु०—कहिए?

पुरो०—तुम कहाँ चले गये थे?

इन्दु०—इस बहस से अब आपको क्या मतलब? मुस्कराकर। अरे आप अपने ठाकुर जी को तो उठाइए। बेचारे को सिपाहियों ने उलट दिया है। आपकी भी क्या दशा है! ठाकुर जी का भी अपमान कराया। ठाकुर जी शायद पूजा के लिए नहीं, विज्ञापन के लिए हैं। यदि आप भक्त होते तो पहले ठाकुर जी को उठा लेते और उनका अपमान न होने देते। किन्तु आपके देवता तो वही थे जो आये थे।

पुरो०—भैया माफ़ करौ। तू जो कहै से ठीक।

इन्दु०—मेरा कहना है कि पूजा कीजिए, ढोंग मत कीजिए। अच्छा अब मैं जाता हूँ।

पुरो०—कहाँ?

इन्दु०—आपने तो घर से निकाल ही दिया है। अब इससे आपको क्या मतलब कि हम कहाँ जाते हैं?

पुरो०—अरे ओही पचड़ा फिर लेके उठ्यो न।

[इन्दु जाना चाहता है, त्यों ही उस स्त्री का खाना और गहने लेकर प्रवेश। इन्दु आश्चर्य से पीछे हटकर उसकी ओर देखने लगता है। गुरु जी भी लज्जित होकर इधर-उधर देखने लगते हैं।]

स्त्री०—गुरु जी महराज! यह भोजन है [थाली रख देती है] और जितना कुछ हमारे घर में सोना मिला वह लाई हूँ।

इन्दु०—क्यों बहन, यह सोना क्या होगा?

स्त्री०—पुरोहित जी ने हमें पुत्र होने के वास्ते होम करने के लिए मुझसे ३० तोला सोना माँगा था। पर जो घर में मिला वह ले आई हूँ।

इन्दु०—[पिता की ओर तिरस्कार की दृष्टि से देखते हुए स्त्री से] बहन! तुम्हारी श्रद्धा पर गुरु जी बहुत प्रसन्न हैं। उनको सोने की आवश्यकता नहीं थी, केवल तुम्हारी श्रद्धा देखा चाहते थे। भोजन रहने दो और सोना वापस ले जाओ। परमात्मा ने चाहा तो शीघ्र ही तुम्हें पुत्र उत्पन्न होगा। गुरु जी आशीर्वाद करते हैं, जाओ।

[स्त्री का हाथ जोड़ प्रस्थान, इन्दु का गुरु जी की ओर देखना और गुरु जी का सिर नीचा कर लेना।]

कोई काम बाक़ी न रह जाय—नरक जाने में कोई रुकावट न रह जाय! क्यों पिता जी अब और कौन कौन षड्यंत्र रचनेवाले हैं? चुप क्यों हैं। कहिए? इसी धर्म के ज़ोर पर आप ऋष्यशृंग की तरह पुत्रीय याग करनेवाले थे। इसका फल आपको जेलख़ाने में मिलता और उस बेचारी का सर्वनाश हो जाता।

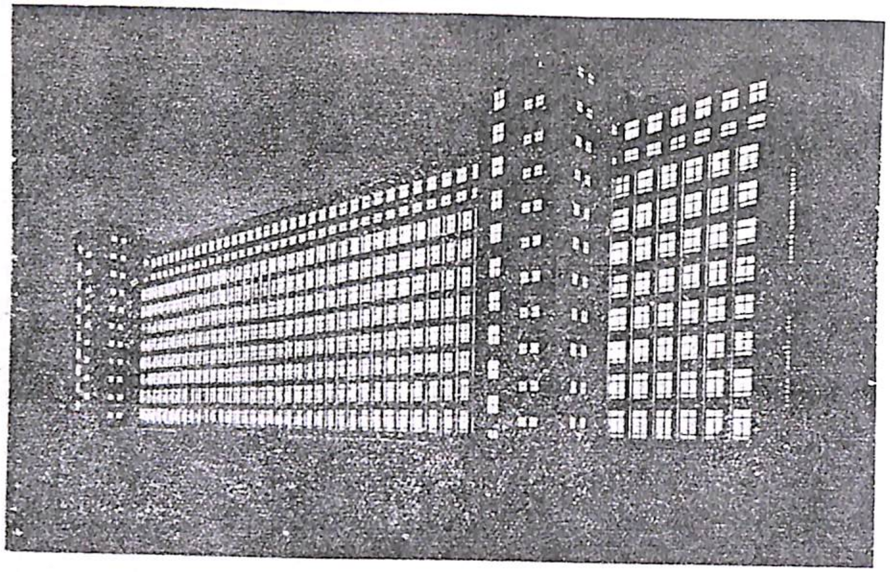
पुरो०—बेटा, हमें क्षमा करो।

इन्दु०—हम कौन क्षमा करनेवाले हैं। आपको इसका प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।

पुरो०—करूँगा।

इन्दु०—क्या पंचगव्य खाकर? इसका तो अभ्यास के कारण आपको स्वाद अच्छा लगता है। इससे काम न चलेगा। इस महीन मेंचेस्टर की धोती की जगह खद्दर पहनना पड़ेगा। और संध्या-पूजन के उपरान्त दो घंटा सबेरे और दो घंटा शाम को चर्खा कातना पड़ेगा। बस, समझे? अब मुस्तरी कर्कट और कमान से निकल गये, अब तो आपके भाग्य पर मारकेश बैठ गया है। और हमारा कहना न कीजिएगा तो जेलख़ाने की हवा खाइएगा और आगम नरक में बीतेगा।

पुरो०—हमसे बड़ा पाप हुआ, जो है सो, अब जो कहोगे सो करेंगे।



[विद्युत्-प्रकाश से युक्त सीमेन की इमारतों में से एक का रात का दृश्य।]

योरप—जैसा कि मैंने उसे देखा

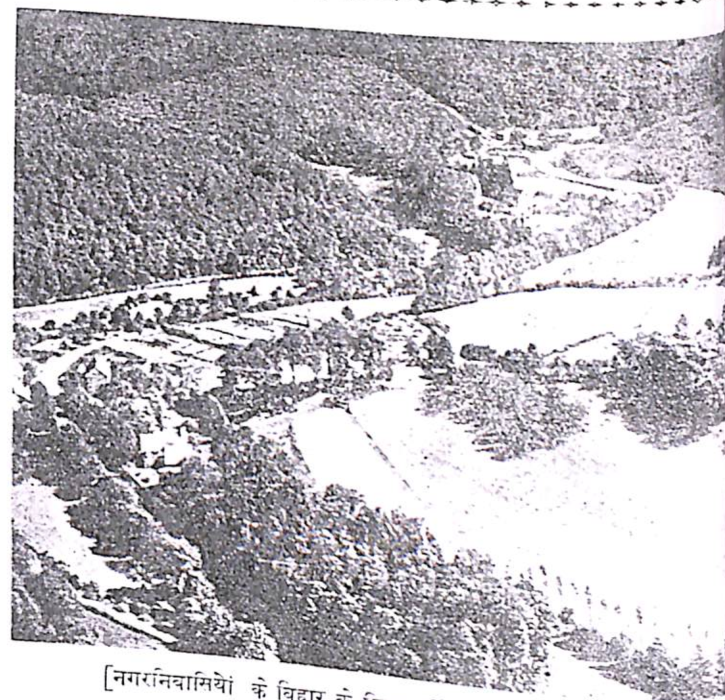
७—जर्मनी का नागरिक जीवन

लेखक, श्रीयुत हरिकेशव घोष

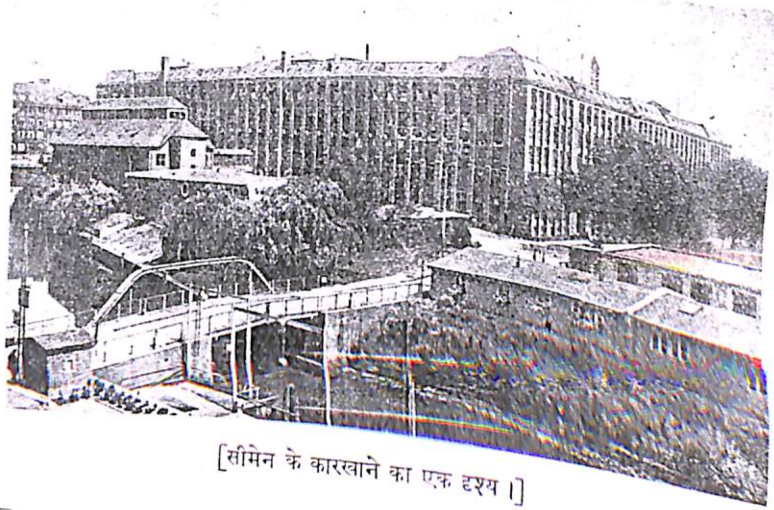
विदेशों से शिक्षा प्राप्त करके जो भारतीय विद्यार्थी लौटते हैं उनमें ८० प्रतिशत असफल सिद्ध होते हैं। क्यों? इसी प्रश्न का उत्तर इस लेख में श्रीयुत हरिकेशव घोष ने थोड़े में पर बड़ी सुन्दरता के साथ दिया है। साथ ही आपने जर्मनी के स्वच्छ और स्वास्थ्यवर्द्धक नागरिक जीवन और वहाँ के बड़े बड़े कारखानों का जिनमें सीमेन का बिजली का कारखाना भी है जो प्रतिदिन ५० लाख रुपये का माल तैयार करता है, परिचय दिया है।

बर्लिन योरपीय महाद्वीप में दूसरा सबसे बड़ा नगर है। इसका जलवायु बहुत ही अच्छा है। युद्ध के पूर्ववर्ती दिनों में जर्मन-संस्कृति का केन्द्र होने के कारण यह अपनी ओर यात्रियों के अपार जन-समूह को आकृष्ट किया करता था। युद्ध ने जर्मन-देश को निर्धन बना दिया था, तथापि वह इस महान् नगर को इसकी शोभा और आनन्द से च्युत नहीं कर सका। इसकी व्यवस्था बहुत अच्छी है और यात्री का ध्यान जो बात सबसे अधिक आकर्षित करती है वह है सड़कों और रास्तों की हद दर्जे की स्वच्छता। कहीं भी किसी तरह का कूड़ा इकट्ठा नहीं होने पाता। यहाँ की जनता के रहन-सहन को उच्च कोटि का बनाये रखने में इस स्वास्थ्यकर और साफ़-सुथरे नगर का बहुत बड़ा हाथ है। इसमें संदेह नहीं कि आर्थिक दृष्टि से लोगों की हालत बहुत कुछ

गिर गई है, तथापि उन्होंने अपनी यथा-सम्भव स्वच्छ रहने की आदत नहीं छोड़ी है। वे स्वच्छता के अपने आदर्श को जीवित बनाये हुए हैं। नगर के चारों ओर बहुत-से सुन्दर उपवन और कृत्रिम वन हैं, जहाँ प्रति सप्ताह नगरनिवासी सप्ताह के कार्य की थकावट के पश्चात् जाते हैं और जीवन का आनन्द लेते हैं। ये सुन्दर जगहें लोगों को नागरिक जीवन से कभी थकने नहीं देतीं। कदाचित् संसार में ऐसा कोई दूसरा नगर नहीं है जो अपने निवासियों को 'वीक एण्ड' की यात्राओं में इससे अधिक सुख और विश्राम की जगहें प्रदान



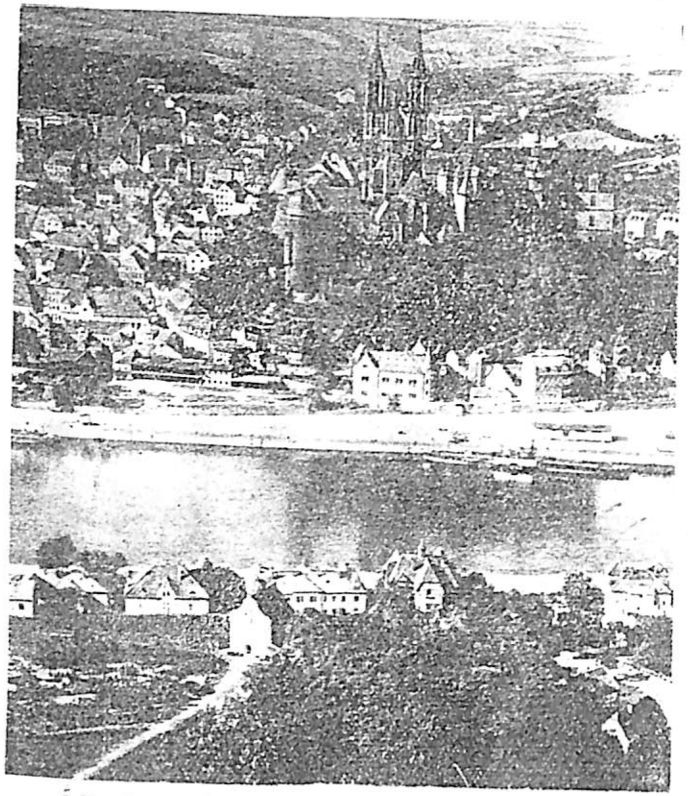
[नगरनिवासियों के विहार के लिए बर्लिन का एक कृत्रिम वन।]



[सीमेन के कारखाने का एक दृश्य।]

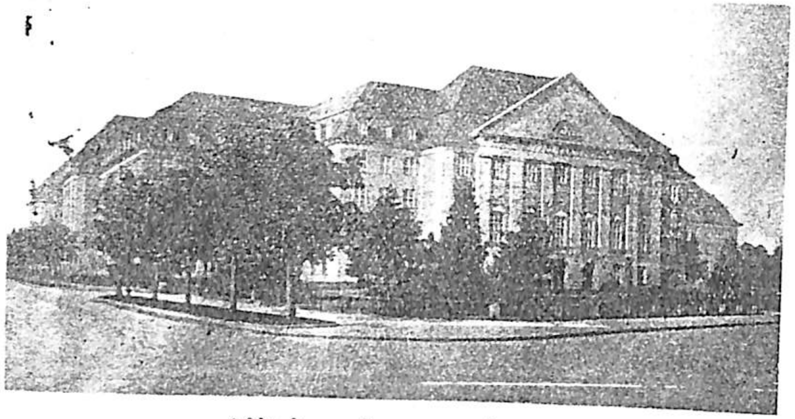
करता हो। अनन्त
कृत्रिम झीलें जहा
चारों ओर ...
हज़ारों लोग ...
उनकी चिन्तायें ...
हैं और उनमें स्वा
वर्द्धक तेजस्कर नव
डालती हैं, जिससे
आनेवाले ...
फिर अपने कार्यों
आनन्दपूर्वक ...
के योग्य हो जाते हैं।

अब इससे ...
नागरिक जीवन की ...
कीजिए। यहाँ की
और नम हवा ...



[बर्लिन की एक कृत्रिम झील जहाँ प्रति सप्ताह लोग दिल बहलाने जाते हैं।]

को वर्ष-प्रति-वर्ष उनके कार्यों के अयोग्य बनाती जाती है। रविवारों को हम कहाँ जायँ? जीवन की चिन्ताओं को कैसे भुलायें? वही मनहूस पास-पड़ोस, दृश्यों में कोई परिवर्तन नहीं, अपने बच्चों के साथ घनिष्ठता स्थापित करने का कोई अवसर नहीं। क्या अधिकतर इन्हीं सब बातों के कारण हमारा यौवन जिन उमङ्गों और इच्छाओं का स्वप्न देखता है वे मिट नहीं जातीं? यह एक समस्या है जिस पर हमारे नगर-पिताओं ने गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं किया और ये नगर-पिता वे म्युनिसिपल मेम्बर कहलाते हैं जिन पर लाखों नगर-निवासियों के स्वास्थ्य का उत्तर-दायित्व है। पर यहाँ परवा कौन करता है?



[सीमेन के कारख़ाने का प्रधान कार्यालय।]

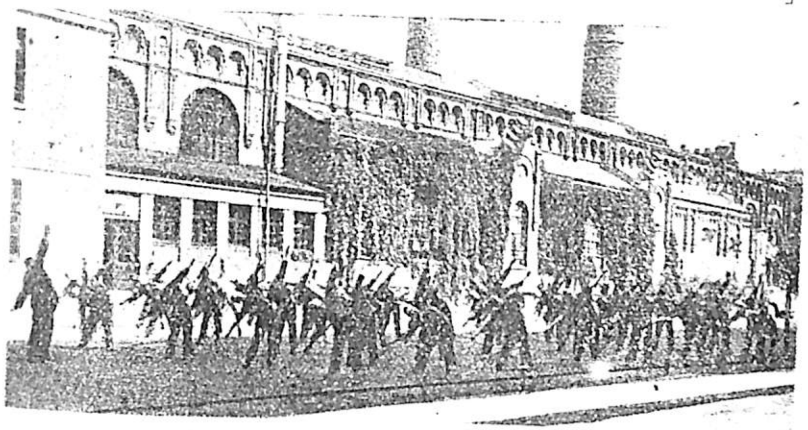
अन्य स्थानों की अपेक्षा बर्लिन में मैं कम ही समय तक रहा। परन्तु मुझे बहुत-से प्रसिद्ध व्यक्तियों से मिलने का अवसर दिया गया था। इनमें सीमेन के बहुत बड़े बिजली के कारख़ाने और सबसे बड़े छापख़ाने 'उल्स्टीन' के सञ्चालक और बहुत-से औद्योगिक नेता भी थे। सम्पूर्ण औद्योगिक जर्मनी में जापान की औद्योगिक उन्नति का बहुत प्रबल भय है।

जर्मन लोग यह जानने में असमर्थ हैं कि जापान अपने उत्पादन की लागत कैसे घटा सकता है। उनके निर्व-विधान के कोई सिद्धान्त इस दिशा में काम नहीं करते। मैंने अपनी जापानी कमीज़ और रेशमी मोज़े कुछ प्रमुख वस्त्र-व्यवसाइयों को दिखलाये। जब उन्होंने उन की परीक्षा की और मालूम किया कि मैंने उन्हें आठ आना गज़ और चार आना जोड़ा के हिसाब से ख़रीदा था तब वे आश्चर्य-चकित हो गये। ऐसी सभी वस्तुओं का निर्यात बन्द कर दिया गया है। यह यहाँ आठ लाख मज़दूरों को रोज़ी देता था। केमनीज़ में वस्त्र के महान् कारख़ानों को देखना वास्तव में एक दुःखद दृश्य था। उनमें से कुछ जो प्रत्येक १,००० व्यक्तियों को काम देते थे, अब सर्वथा बन्द हो गये हैं। लाखों मार्क की मशीनें बेकार पड़ी हैं।

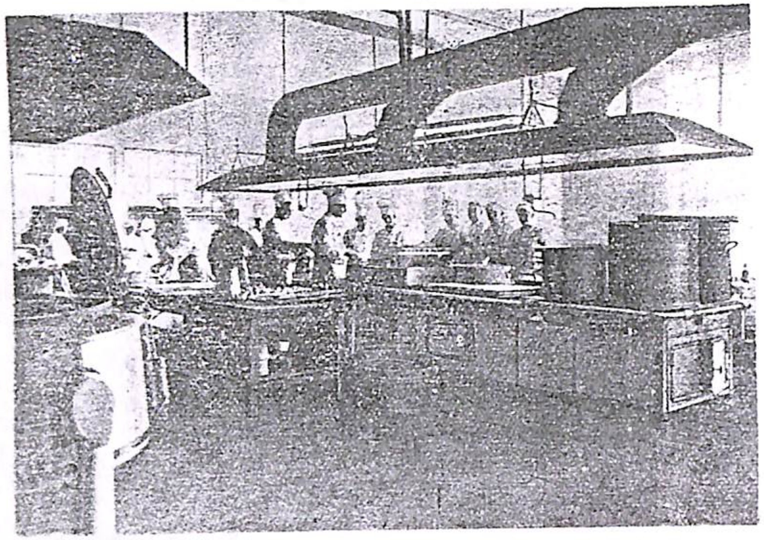


[हर वान सीमेन।]

सीमेन का बिजली का विशाल कारख़ाना देखकर कोई भी यात्री भली भाँति समझ सकता है कि यह प्रमुख व्यवसाय जर्मनी की समस्त सबसे बड़ी औद्योगिक संस्थाओं की चोटी पर कैसे पहुँच गया है। इसमें १,५०,००० से अधिक आदमी काम करते हैं। जमशेदपुर के तातानगर की तरह इसका अपना निजी नगर है। परन्तु यह तातानगर से कहीं अधिक बड़ा और



[सीमेन के कारख़ाने के कर्मचारी व्यायाम कर रहे हैं।]



[सीमेन के कारख़ाने से सम्बन्ध रखनेवाले एक भोजनालय का वह भाग जहाँ खाना पकता है। सफ़ाई पर ध्यान दीजिए।]

लगेंगे। तीन विभागों का कई घंटे तक निरीक्षण करने के बाद हम सब थक गये। डाइरेक्टरों ने हम लोगों को जल-पान के लिए आमंत्रित किया। इसमें फ़ैक्टरी का प्रति आदमी कम-से-कम ५० रुपया व्यय हुआ होगा। इस अवसर पर उन्होंने एक संक्षिप्त भाषण भी किया, जिसमें बताया कि वान सीमेन ने एक मामूली दूकान से जिसमें तीन आदमी काम करते थे, इतना बड़ा नगर के बराबर कारख़ाना जिसमें बहुत-सी शाखायें हैं और लगभग १½ लाख आदमी काम करते हैं, कैसे बनाया।



[महान् फ्रेडरिक।]

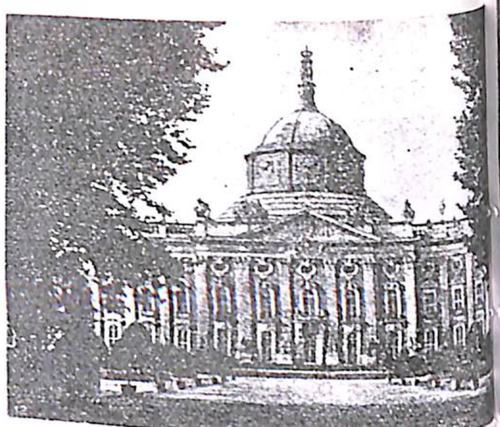
सुन्दर है। यहाँ सौ से अधिक बड़ी इमारतें हैं, जिनमें सब प्रकार की बिजली की वस्तुएँ बनाई जाती हैं। इस फ़र्म की महत्ता का अनुमान इसी बात से किया जा सकता है कि इसमें प्रतिदिन लगभग ५० लाख रुपये की वस्तुएँ तैयार होती हैं।

काम करनेवालों को जो सुविधायें यहाँ दी जाती हैं वे आश्चर्यजनक हैं। 'डायनिङ्ग-हाल' जहाँ काम करनेवाले बैठ कर भोजन करते हैं, बड़ी सुन्दरता के साथ सजाये गये हैं और जहाँ भोजन पकता है वे स्थान तो सफ़ाई और शुद्धता के नमूने हैं। यहाँ के क्रीड़ा-क्षेत्र, सिनेमाघर और व्यायामशालायें तथा बहुत-सी विश्रामप्रदायक ऐसी दर्शनीय बातें हैं जो हमारे देश के पूँजीपतियों की आँखें खोलनेवाली हैं, क्योंकि यहाँ कुछ ऐसे व्यवसाय हैं जिनसे वे अनुचित रूप से अत्यधिक लाभ उठाते हैं।

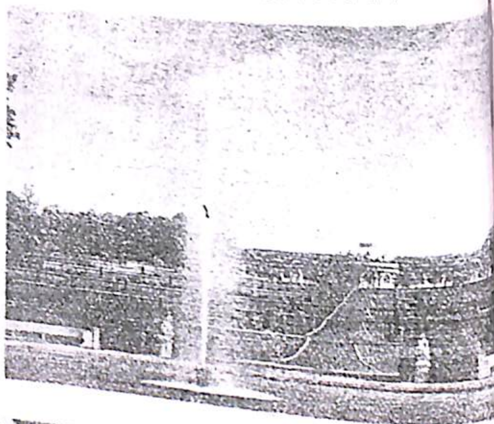
हमारा दल लगभग बीस भारतीयों का था और विभिन्न विभागों को जाकर देखने के लिए हमें बहुत अच्छे गाइड मिले थे। यदि कोई ध्यानपूर्वक प्रत्येक बात को देखना चाहे तो कदाचित् उसे पूरा घूमने में तीन वर्ष

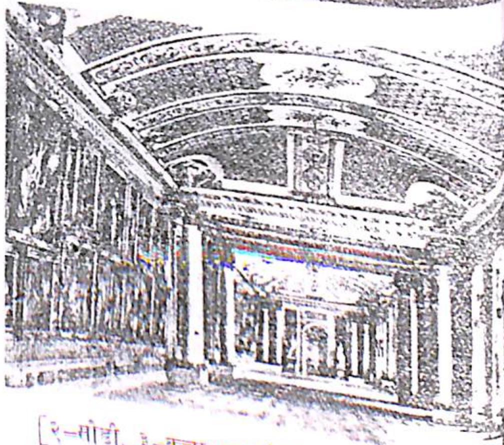
लन्दन की भाँति बर्लिन में भी पृथ्वी के अन्दर रेलगाड़ियों के चलने की व्यवस्था है, पर उतनी अच्छी और सुलभ नहीं है। नगर लगभग २५० वर्गमील में है। लन्दन के विपरीत यहाँ व्यापारिक मुहल्ले एक ही स्थान पर नहीं हैं, किन्तु सम्पूर्ण नगर में बिखरे हुए हैं। श्रीयुत दास गुप्त ने हमारे ठहरने के लिए एक पेनसां* में व्यवस्था की थी। ठहरने और जल-पान के लिए चार मार्क प्रतिदिन के हिसाब से देना तय हुआ। मकान मालकिन आस्ट्रियन जर्मन महिला थीं। उनके एक लड़की थी जो एक स्थानीय दूकान में टाइपिस्ट के रूप में काम करती थी। हमें बहुत-से भारतीय विद्यार्थियों से मिलने का अवसर मिला, जो भारतीय विद्यार्थी-संघ के वार्षिक अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए वहाँ जमा हुए थे। उनका यह अधिवेशन योरप महाद्वीप के विभिन्न स्थानों में प्रतिवर्ष होता है। कुछ विद्यार्थियों से मेरा मनोरञ्जक वादविवाद हुआ। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वे अपने अध्ययन के सिवा अन्य विषयों से बिलकुल दिलचस्पी नहीं रखते। मुझे विश्वास है कि प्रायः ८० प्रतिशत विद्यार्थी जो भारत वापस आने पर कुछ भी नहीं कर सकते, उस कार्य के योग्य नहीं होते जिसके लिए वे योरप भेजे जाते हैं। उनमें निरीक्षण की बहुत कम शक्ति होती है और वे उन औद्योगिक और व्यावसायिक शिक्षा के भीतर काम करनेवाले सिद्धान्तों का अध्ययन न करके अपना बहुमूल्य समय नष्ट किया करते हैं। यह दुःख की बात है कि उनमें दृढ़ता, सम्पूर्णता, धैर्य और कल्पना का अभाव होता है। मैं नहीं समझता कि हमारे भारतीय विश्वविद्यालय उनके मस्तिष्क और चरित्र का इस उद्देश से निर्माण करते हैं कि योरप में उन्हें जो शिक्षा मिले उसे वे पूर्णरूप से ग्रहण कर सकें। जो विद्यार्थी केवल शास्त्रीय प्रसिद्धि के लिए जाते हैं उनके लिए यह बहुत ठीक हो सकता है। परन्तु व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में प्रभावशाली शिक्षा कम या अधिक मात्रा में निराशाजनक है। परीक्षायें वे पास कर लेते हैं और कदाचित् विशेषता

* एक प्रकार का निजी गृह जिसमें आगन्तुकों को ठहरने और भोजन की व्यवस्था रहती है।



[भूतपूर्व कैसर का राजमहल जिसमें अब संग्रहालय है]





[२—सीढ़ी, ३—कला-भवन ये दोनों राजमहलों में ही हैं

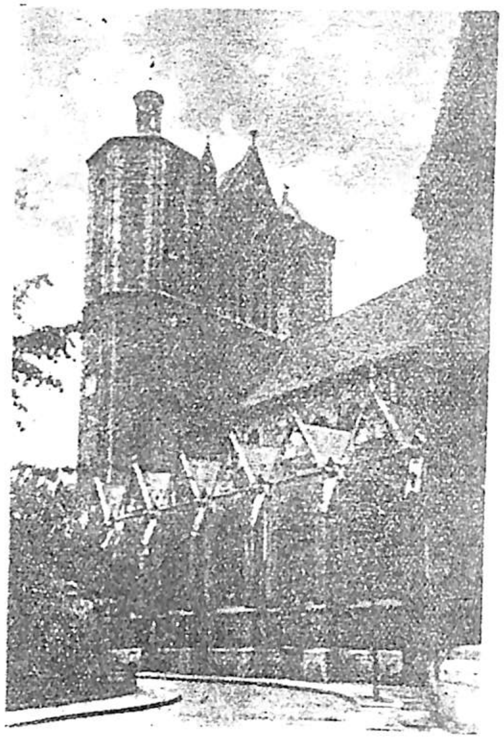


[लायन आफ़ ब्रन्सविक ।]

के साथ, परन्तु व्यावसायिक शिक्षा का अभाव होने के कारण वे कोई कार्य्य कर सकने में समर्थ नहीं होते। यदि हम योरप से ठोस और तत्त्वपूर्ण सहायता प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें व्यावसायिक शिक्षा के लिए केवल ऐसे ही विद्यार्थी चुन कर भेजना चाहिए जो व्यापार से अभिरुचि रखते हों और सांसारिक मामलों का भी व्यावहारिक ज्ञान रखते हों। कुछ विद्यार्थी तो इतने अनभिज्ञ थे कि वे यह भी नहीं बता सकते थे कि नगर का शासन कैसे होता है, उसमें कितने संग्रहालय हैं और विभिन्न कार्य्यों में लोग किस प्रकार लगे हुए हैं।

दो नवयुवक जर्मनों ने हमारे देश की शिक्षा के बारे में मुझसे बहुत कुछ पूछा। मुझे अपने यहाँ की पद्धति की वकालत करनी पड़ी, यद्यपि मैं जानता था कि हम कितने पिछड़े हुए हैं और अपने नवयुवकों को प्रभावपूर्ण शिक्षा देने में कितने असफल हुए हैं। जितने समय में कोई विद्यार्थी कालेज से निकलता है, उतने समय में वह अपना समस्त बल-विक्रम गँवा चुकता है और उसके सामने कोई भविष्य नहीं होता। वह नहीं जानता कि कौन-सी दिशा पकड़ने से वह भूखों मरने से बच जायगा। कभी-कभी वह ऐसी दिशा पकड़ता है जो उसके आदर्शों से बहुत दूर होती है। उसकी सोलह वर्ष की कुल शिक्षा व्यर्थ जाती है।

बर्लिन में सात दिन ठहरने के पश्चात् मैं एक व्यापारिक उद्देश से ब्रन्सविक गया। यह अति प्राचीन नगर है और प्राचीन काल की बहुत-सी महत्त्वपूर्ण यादगारें यहाँ



[रोमन गाथिक गिर्जा (१२ वीं शताब्दी)।]

मौजूद हैं। बारहवीं शताब्दी का रोमन-गाथिक गिर्जा वहाँ सबसे पुरानी इमारत है। ब्रन्सविक का शेर जिसका असली इस समय अमरीका में है, इँग्लेंड के बारहवीं शताब्दी के 'हेनरी दि लायन' के समय से विख्यात है। इसके बाद मैं लिपज़िग गया, जहाँ मैं पन्द्रह दिन ठहरा। जर्मनी में छपाई के व्यवसाय का लिपज़िग केन्द्र है। कई सौ बड़े बड़े छापाखाने और छपाई की मशीनें बनानेवाले फ़र्म यहाँ हैं। बहुत से अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त छापाखानों के आश्चर्यजनक संगठन को देखने में मैंने कई दिन बिताये। मुझे बताया गया कि युद्ध के पूर्ववर्ती दिनों में लिपज़िग सम्पूर्ण योरप-[illegible] में प्रतिदिन तीस ट्रेन विभिन्न प्रकार का छपा हुआ माल भेजा करता था। लिपज़िग 'फ़र' के व्यवसाय के लिए भी प्रसिद्ध है। यह व्यवसाय सर्वथा यहूदियों के हाथ में है। यद्यपि जर्मनी ने अपने बहुत-से नगरों को यहूदियों से मुक्त कर लिया है, तथापि लिपज़िग से वह अभी बहुत से यहूदियों को नहीं भगा सका, क्योंकि यहूदियों ने बहुत समय से इस व्यवसाय को सर्वथा अपने हाथ में ले रक्खा है। लिपज़िग और हाले के पास कई एक बड़े बड़े रासायनिक व्यवसाय भी हैं। जर्मन रासायनिक कारख़ानों की बड़ी मुस्तैदी से रक्षा की जाती है। उनमें किसी को प्रवेश की आज्ञा नहीं मिलती—विशेषकर उनमें जहाँ रंग और बहुत-सी गौण वस्तुएँ बनाई जाती हैं।

पोट्सडैम जो भूतपूर्व क़ैसर का सरकारी निवास-स्थान था, अब एक संग्रहालय में बदल दिया गया है। हमने राजमहल के सुन्दर उद्यानों को देखा। ये अब भी अच्छी हालत में रक्खे जाते हैं। प्रतिवर्ष हज़ारों यात्री इस स्थान को देखने आते हैं, क्योंकि गत महायुद्ध के राजनैतिक मार्गों पर यहाँ वाद-विवाद हुए थे और यहीं वे निश्चित हुए थे। महान् फ़्रेडरिक के प्राचीन महल के द्वार अब जनसाधारण के लिए खोल दिये गये हैं। हमने कुछ ख़ास कमरों को देखा। सजावट का क्या कहना था और उसकी सुरक्षा भी ख़ूब की गई थी। हमें जूतों को ढँकने के लिए मख़मल के ख़ास तरह के गिलाफ़ दिये गये थे ताकि जूतों के तल्लों से कमरों के फ़र्श की आश्चर्यजनक पालिश खुरच न जाय।

किसान का प्रश्न

लेखक, श्रीयुत श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम० ए०

रूखी रोटी या रहस गान?
देखूँ अरुण उषा की लाली,
या तन के मुरझाये प्राण?

निज पुत्रों की करुण दशा पर,
अश्रु बहाऊँ, या नित गाऊँ,
सुखद बसन्त-सुषमा महान?

शीत काल के क्रुद्ध अनिल से,
ढाँकूँ अपना वस्त्रहीन तन,
या देखूँ कवि के 'अनन्त' की,
गुप्त, मदिर, मञ्जुल, मुस्कान?

कवियों के सुन्दर स्वप्नों का
निर्मल हार बनाकर पहनूँ,
घूमूँ इन कल्पित पंखों पर
या नन्हें पौधों को सींचूँ,
हरित करूँ ये पत्ते म्लान?

खेती ही है मेरी सम्पत्ति,
श्रमकण ही हैं मेरे मोती,
सुत-दारा के अमल प्रेम में
ही है मेरा जीवन-प्राण!
इनको से। करूँ अन्न से,
या 'अनन्त' से पाऊँ त्राण?

कुछ इधर उधर की

डाक्टर अम्बेडकर हिन्दू-धर्म छोड़ने की घोषणा कर चुके हैं। पर अभी वे यह निश्चय नहीं कर सके कि ईसाई होंगे या मुसलमान। अभी वे दोनों से सौदा कर रहे हैं। जिस धर्म में उन्हें अधिक सुविधायें मिलेंगी उसी को वे ग्रहण करेंगे।

× × × ×

परन्तु डाक्टर अम्बेडकर अकेले ही ईसाई या मुसलमान नहीं होना चाहते। अपने साथ वे भारत के लाखों अछूतों की भी चोटियाँ कटवाना चाहते हैं। उच्च वर्ग के हिन्दू अछूतोद्धार के लिए जो कुछ कर रहे हैं उस पर उनका विश्वास नहीं है। वे सोचते हैं कि धर्म-परिवर्तन-मात्र से ही सारे अछूत वैसे ही उन्नति कर जायँगे, जैसे पारस के स्पर्श से लोहा सोना हो जाता है।

× × × ×

डाक्टर साहब की सम्मति में हिन्दू-धर्म संसार में सबसे घृणित वस्तु है, तथापि वे इसे छोड़ने की अभी धमकी ही दे रहे हैं। इसके छोड़ने का सम्भव है, इस जीवन में उन्हें अवसर ही न मिले और इसे छोड़ने के लिए उन्हें फिर से अछूत-वंश में जन्म लेना पड़े। क्योंकि वे तभी धर्म त्याग करेंगे जब भारत में जितने अछूत हैं वे सब धर्म त्याग कर चुकेंगे। यदि पहले उन्होंने धर्म त्याग कर दिया तो जो अछूत हिन्दू-धर्म में बाक़ी रह जायँगे उनसे कुछ कहने का उन्हें अधिकार ही न रह जायगा।

× × × ×

अब ज़रा सोचिए कि डाक्टर साहब का कार्य कितना महान है। यदि यह मान लिया जाय कि उनके हाथ में अछूत जाति की नकेल है और वे उसे एक सीमा तक अपने साथ ले भी जा सकते हैं तो भी यह सम्भव नहीं है कि एक इतनी बड़ी जन-संख्या को केवल कुछ सुविधाओं का लोभ देकर वे जहाँ चाहें वहाँ ले जा सकें। कहते हैं, एक बार एक चूहे की पकड़ में एक ऊँट की नकेल आ गई थी और वह उसे अपने बिल में ले जाना चाहता था। पर ऊँट द्वार तक पहुँच कर रह गया। चूहे से तुलना करके हमारा उद्देश डाक्टर साहब का मज़ाक उड़ाना नहीं है, पर उनका कार्य कुछ कुछ वैसा ही हास्यास्पद जान पड़ता है।

× × × ×

यह सत्य है कि उनके साथ अन्याय हुआ है, पर यह भी सत्य है कि उस अन्याय के परिष्कार का चारों ओर प्रयत्न हो रहा है। बिना इस प्रयत्न का परिणाम देखे एक भारी जन-समूह को दूसरे धर्म में ले जाने का हठ करना ऊँट को चूहे के बिल में ही ले जाने के समान है। कोई धर्म इतना उदार नहीं हो सकता कि इतने बड़े जन-समूह को बात करते हज़्म कर ले। क्या ईसाई या मुसलमान होते ही वे लोग अछूतों से रोटी-बेटी का सम्बन्ध जोड़ लेंगे और अपनी सम्पत्ति का उनके साथ बँटवारा कर लेंगे। यदि नहीं तो उनमें कौन-सी तबदीली आ जायगी।

× × × ×

विशेष सुविधाओं को ध्यान में रखकर महात्मा गांधी के पुत्र श्री हीरालाल गांधी ने मुसलमान-धर्म ग्रहण किया है और अब्दुल्ला नाम धारण किया है। कहते हैं, उन पर पठानों का क़र्ज़ था। माना कि वह अब नहीं अदा करना पड़ेगा। वे शराबी भी हैं। माना कि किसी हद तक उनको शराब भी दी जा सकेगी। पर आख़िर मुसलमान कहाँ तक चन्दा करेंगे और उन्हें शराब पिलावेंगे? और यदि शराब का ही लालच हो तो सैकड़ों शराबी आज मुसलमान बनने को तैयार हैं। पर पहले तो शराब पीना इस्लाम में वर्जित है, दूसरे मुसलमान क़ौम इतनी धनी नहीं कि वह शराबियों को बराबर शराब पिला सके।

× × × ×

धर्म-परिवर्तन आन्तरिक प्रेरणा पर ही निर्भर करता है। जो व्यक्ति या समूह अपनी अन्तर्प्रवृत्ति की उपेक्षा कर बाह्य लाभ के लिए धर्म-परिवर्तन करेगा उसका वास्तव में कोई धर्म न माना जायगा और उसे पछताना पड़ेगा। डाक्टर अम्बेडकर के धर्म-परिवर्तन के आन्दोलन से

अछूतों का लाभ तो कुछ न होगा, हाँ, हानि यह हो सकती है कि उन्हें उनकी संख्या के अनुसार मताधिकार आदि की जो सुविधायें सरकार से मिली हैं वे भी ईसाई या मुसलमान हो जाने पर उनके हाथ से जाती रहें। ग़नीमत है कि अन्य अछूत नेता डाक्टर अम्बेडकर के इस आन्दोलन में शरीक नहीं हैं, और यह एक प्रकार से आन्दोलन ही सिद्ध हो रहा है।

× × ×



[कुमारी मनोरमा मेहता एम० ए०—आप 'लीडर' सम्पादक श्रीयुत कृष्णाराम मेहता की पुत्री हैं। आपको संयुक्त प्रान्तीय सरकार से विलायत जाकर शिक्षा-सम्बन्धी विशेष योग्यता प्राप्त करने के लिए छात्रवृत्ति मिली है। सम्भवतः आप अगस्त में रवाना हो जायँगी। यह चित्र हमें श्री केशव मिश्र से प्राप्त हुआ है।]

× × × ×

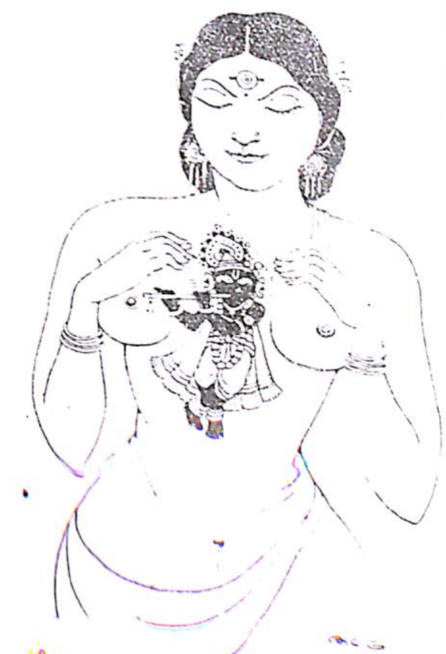
मथुरा में एक हलवाई की स्त्री ने अद्भुत पराक्रम दिखलाया है। वह कहीं बाहर गई हुई थी। उसकी ग़ैर-हाज़िरी में उसके पति को पड़ोसियों ने पीटा। जब वह आई तब पति की यह दुर्दशा देखकर बहुत क्रुद्ध हुई। वह तत्काल लट्ठ लेकर निकल पड़ी और समस्त विरोधियों को घायल कर दिया। हिन्दुओं में नारी-अपहरण के समाचार प्रायः सुन पड़ते हैं। इसका कारण कदाचित् यही हो कि पुरुषों में कायरता आ गई है। यदि स्त्रियाँ अपने इस स्वरूप को भी सर्वत्र प्रकट करने लगें तो यह बड़ी शिकायत दूर हो सकती है।

× × ×

राम 'अवतार' थे या 'मनुष्य', इस बात को लेकर कुम्भकोनम में मदरासी पंडितों में एक दिलचस्प शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। शर्त यह ठहरी कि जो हारे वह [illegible] उतार दे और आग में कूद पड़े। एक [illegible] इस शर्त को स्वीकार कर रहा था और दूसरा नहीं। परिणाम यह हुआ कि असली बात पीछे पड़ गई और [illegible] शर्त को लेकर उनमें हाथापाई होने लगी। [illegible] जहाँ प्रारम्भ होता है, वहाँ केवल [illegible] नहीं की जाती। हाथ-पाँव चलाने की नौबत आ ही जाती है।

× ×

पाठक श्रीयुत केदारनाथ शर्मा [illegible] के लिखित दोहे पर बने एक और [illegible] का आनन्द



सीस मुकुट कटि काछनी कर मुरली उर माल।
इहि बानिक मो मन बसौ, सदा बिहारीलाल॥

चिट्ठी-पत्री

बूढ़ी स्त्रियों के साथ धृष्टता का व्यवहार क्यों?

श्री सन्तराम बी० ए० ने जून की 'सरस्वती' में प्रकाशित "स्त्री के साथ कैसे निबाहा जा सकता है" शीर्षक लेख को समाप्त करते हुए लिखा है—"बूढ़ी स्त्रियों के साथ धृष्टता और अविनय का व्यवहार करो।" इस बात को आपने एक पाश्चात्य विचारक के मत के रूप में उद्धृत किया है। लेख में आपने ऐसी ही और भी बेतौल बातें कही हैं, पर यह खास बात पढ़कर मुझे दुःख हुआ। क्या कोई नवयुवक अपनी बूढ़ी माता को गाली दे और उसका नाम लेकर बुलाये? माता न सही, कोई भी बूढ़ी क्यों न हो उसके साथ अविनय का व्यवहार सिर्फ़ इसी लिए कि अब वह युवती नहीं रही, क्यों किया जाय? क्या बूढ़ी स्त्रियाँ धृष्ट व्यवहार से प्रसन्न होती हैं? यदि नहीं तो संतराम जी का ऐसी अनर्गल बात लिखने का क्या उद्देश है?

—रघुवंशमणि, चौबीस परगना

श्री सुमित्रानन्दन पन्त

श्री सुमित्रानन्दन पन्त की 'बापू के प्रति' कविता पढ़कर मेरी यह धारणा दृढ़ हो गई कि हिन्दी-कविता के क्षेत्र में पन्त जी अब भी सबसे आगे हैं। क्या भाव, क्या कल्पना और क्या शब्द-योजना। इस कविता में कई जगह मुझे जान पड़ा कि पन्त जी में गतिभङ्ग दोष आ गया है। जैसे निम्नलिखित पद में —

उर के चरखे में कात सूक्ष्म
युग युग का विषय जनित विषाद

पर जब दूसरी पंक्ति में विषय जनित को विष-यजनित इन तीनों खंडों में विभक्त करके पढ़ा तब मज़ा आ गया। पद में गतिभङ्ग दोष वास्तव में नहीं है—सिर्फ़ जान पड़ता है। इस कविता में और भी पंक्तियाँ हैं जो इसी प्रकार पढ़ी जा सकती हैं। मेरा ख़याल है कि पन्त जी की यह कविता इस मास की हिन्दी की सर्वोत्तम कृति है।

—लक्ष्मीकान्त वर्मा

आज-कल का श्रेष्ठ वक्ता कौन है?

श्रीयुत नगेन्द्रनाथ गुप्त ने पिछले अङ्क में लिखा है कि स्वर्गीय केशवचन्द्र सेन अपने समय में भारत के सर्वश्रेष्ठ वक्ता थे। यदि वे यह भी लिख देते कि आज-कल का सर्वश्रेष्ठ वक्ता कौन है तो उनकी वक्तृत्वकला का अनुमान करने में हमें कुछ सहायता मिलती। तो भी यह जानने की बात है कि आज-कल का भारत का सर्वश्रेष्ठ वक्ता कौन है। यदि मुझसे पूछा जाय तो मैं कहूँगा कि पंडित मदनमोहन मालवीय हैं। पर मैं अन्यों की भी राय जानना चाहता हूँ।

—भीमशंकर दीक्षित, कानपुर

सलाह

जून की 'सरस्वती' मिली। पिछले छः महीनों की जो विषय-सूची छपी है, इस बार सभी विषय एक ही सूची में लिख दिये गये हैं। इससे शायद सम्पादकीय विभाग को कुछ आसानी हुई हो पर हम लोगों, साधारण पाठकों, को उतना लाभ नहीं पहुँच सकता, जितना अलग अलग विषयों तथा कहानियों, लेखों, यात्रा-लेखों, कविताओं इत्यादि की अलग अलग विषय-सूची देने से, जैसा द्विवेदी जी के समय में दिया जाता था। आपको यह जान कर प्रसन्नता होगी कि हमारा परिवार 'सरस्वती' का शुरू से पाठक रहा है। थोड़े से अंकों के सिवा सभी प्रतियाँ मेरे पास सुरक्षित हैं।

जून के अंक में 'साहीगीर पत्नी', 'जाने किसकी सुधि बार-बार' तथा 'बापू के प्रति' मुझे पसन्द आये। इनके लेखकों को बधाइयाँ। 'ह्वेनसांग की भारत-यात्रा' तो बिलकुल छायावादी है। क्या उस समय लोगों की वही पोशाक थी जो चित्र में दिखाई गई है?

—सत्येन्द्रनारायण, भागलपुर

सामयिक साहित्य

खद्दर और पण्डित जवाहरलाल नेहरू

महात्मा गांधी का खद्दर की उपयोगिता पर दृढ़ विश्वास है। उनका ख़याल है कि भारतीय किसानों का उद्धार बिना खद्दर के नहीं हो सकता। पर बहुत-से लोगों का खद्दर पर ऐसा विश्वास नहीं है। वे उसे एक सामयिक उपयोगिता की वस्तु समझते हैं। ऐसे ही लोगों में पंडित जवाहरलाल नेहरू भी हैं। हाल में इस सम्बन्ध में नेहरू जी में और महात्मा जी में पत्र-व्यवहार हुआ है। इसका उल्लेख करते हुए महात्मा जी ने एक लेख 'हरिजन' में लिखा है, जिसका कुछ अंश इस प्रकार है—

हाल में पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने बम्बई में खादी-भाण्डार का निरीक्षण करते समय खादी के बारे में जो कहा था उसकी संक्षिप्त रिपोर्ट जब मैंने एक अख़बार में देखी तब उस पर मैंने विश्वास नहीं किया। खादी के सम्बन्ध में उनकी जो पुख़्ता राय मैं समझता था उससे तो वह रिपोर्ट की बात मुझे बिलकुल विपरीत मालूम हुई। इसलिए मैंने वह कटिंग पण्डित जी के पास भेज दी, और उन्होंने फ़ौरन ही उसका यह जवाब भेजा—

"बम्बई में मैं कई दर्जन सभाओं में गया और वहाँ बोला था—मुझे संख्या याद नहीं—और भाषणों की रिपोर्ट देखने का समय नहीं था। बेशक मैं हिन्दुस्तानी में बोलना और रिपोर्ट लेना कोई आसान काम नहीं—फिर, जो रिपोर्टें संक्षेप में ली जाती हैं उनसे तो और भी ग़लतफ़हमी फैलती है। फिर भी खादी पर मैंने जो कहा था उसकी रिपोर्ट मुझे जब बताई गई तब उसी दिन या दूसरे दिन मैंने उसे ठीक कर दिया। मैंने जो कहा था वह यह था कि आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक आदि कई कारणों से हमारे आज के कार्य-क्रम में खादी एक महत्त्व की चीज़ है, और उसे ज़रूर प्रोत्साहन मिलना चाहिए। मगर मे ख़याल यह नहीं है कि खादी हमारे ग़रीबों के मसले अन्ततः हल कर सकेगी, ख़ासकर समाज का अगर मौजूदा सिस्टम बना रहा। किसान जो भी सुधार करता जो भी अतिरिक्त पैसा कमाता है वह सब इस सिस्टम बदौलत ज़मींदार के पास चला जाता है। मगर मैंने य बता दिया था कि यह सैद्धान्तिक दलील आज लागू न होती। मैंने कहा था कि हालाँ कि मैं बड़े-बड़े कल-कारख़ान के पक्ष में हूँ, तो भी मेरा विश्वास है कि कल-कारख़ान की बढ़ती के साथ भी हिन्दुस्तान में गृह-उद्योगों के लि काफ़ी गुञ्जाइश रहेगी। इसमें तो शक ही नहीं कि आ अनेक दृष्टियों से इन गृह-उद्योगों का और भी ज़्याद महत्त्व है।"

खादी के हक़ में पूरा-पूरा संरक्षण चाहनेवालों को सम्भव है, इससे संतोष न हो। पर उस ग़लत रिपोर्ट और इस स्पष्टीकरण में बहुत अन्तर है।

जो पत्र इस सम्बन्ध में मेरे पास आये हैं उनसे मुझे मालूम होता है कि इस रिपोर्ट ने कुछ खादी-कार्यकर्ताओं में भारी बेचैनी पैदा कर दी है। मैं चाहता हूँ, उन्हें मैं सावधान कर दूँ। यह सद्भाग्य की बात है कि तमाम व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए पण्डित जवाहरलाल दर असल जो कहते हैं वह सन्तोषकारक है। वे इतने भले हैं कि अगर उनका किसी चीज़ में विश्वास नहीं होता तो किसी को ख़ुश करने के लिए उसके पक्ष में वे एक शब्द भी नहीं कहते हैं। इसलिए उनके पत्र का जो उद्धरण मैंने ऊपर दिया है उसका इस बात से और भी वज़न बढ़ जाता है कि कांग्रेस के कर्णधार की राय खादी के पक्ष में है। मगर खादी-सेवकों को यह मालूम होना चाहिए कि कांग्रेस के बाहर ऐसे अनेक सार्वजनिक काम करनेवाले व्यक्ति हैं जो खादी की बुराई करते हैं और उसे कभी छूते तक नहीं। उन्हें इस बात का भी पता होना चाहिए कि ख़ुद कांग्रेस में भी कुछ

ऐसे लोग हैं जिनका खादी में विश्वास नहीं है, जो हमेशा ही उसका मज़ाक उड़ाते रहते हैं, और जब तक वे कांग्रेस के प्रोग्राम में से उसे निकाल देने में सफल नहीं होते तब तक वे उसका उपयोग महज़ एक अनुशासन की चीज़ समझकर कर रहे हैं। इन सब रुकावटों के होते हुए भी खादी ने प्रगति की है। इसमें सन्देह नहीं कि अगर हमें ऐसे ऐसे विरोधियों का सामना न करना पड़ता तो उसने इससे कहीं अधिक प्रगति की होती। यह बड़ी तसल्ली की बात है कि पण्डित जवाहरलाल अपना एक हद तक खादी में विश्वास रखते हैं। पर अगर वे खादी के बारे में और अध्ययन करने पर यह कह देना ज़रूरी समझें कि वे खादी के विरुद्ध हैं तो उस वक्त खादी-सेवकों को क्या करना चाहिए? मैं आशा करता हूँ कि खादी के अनुभव और उसकी संभावनाओं के इन १६ वर्षों के बाद खादी में दृढ़ विश्वास रखनेवाले लोग काफ़ी संख्या में आज हमें मिलेंगे, जितनी श्रद्धा उनके ख़ुद के खादी-सम्बन्धी असली ज्ञान पर निर्भर करती है। अगर अब भी उनकी श्रद्धा दूसरों से ग्रहण की हुई है तो उस महान् पत्रकार की भविष्यद् वाणी सच ही निकलेगी कि गाँधी की मृत्यु के साथ खादी का भी ख़ात्मा हो जायगा, और इन चर्खों से जो उसकी मृत्यु के बाद तोड़-ताड़ के फेंक दिये जायँगे, उसकी मृत-देह का अच्छी तरह दाह-संस्कार हो जायगा।

मुस्लिम मित्रों से महात्मा गांधी की अपील

महात्मा गांधी के ज्येष्ठ पुत्र श्री हीरालाल गांधी ने हाल में इस्लाम-धर्म ग्रहण कर लिया है। इस पर मुसलमानों ने बड़ा हर्ष प्रकट किया है। पर महात्मा जी ने अपने मुसलमान मित्र को जो खुला पत्र लिखा है उससे प्रकट हो जाता है कि उनका हर्ष प्रकट करना व्यर्थ है। महात्मा जी का पत्र नीचे हम उद्धृत करते हैं—

अख़बारों में यह ख़बर छपी है कि मेरा लड़का हीरालाल जिसकी इस समय लगभग ५० साल की उमर है, मुसलमान हो गया है और पिछले शुक्रवार २९ मई को जुमामस्जिद में उसने नये धर्म-ग्रहण की हर्षध्वनि के बीच घोषणा भी की है। उसका भाषण समाप्त होने के बाद उसके प्रशंसक उससे हाथ मिलाने के लिए परस्पर होड़ करने लगे। अगर उसका यह धर्म-परिवर्तन शुद्ध हृदय और किसी सांसारिक ख़याल से न हुआ होता तो मुझे उससे कोई झगड़ा नहीं था, क्योंकि मेरा विश्वास है कि मेरे धर्म के समान ही इस्लाम भी एक सच्चा धर्म है। मगर मुझे शक है कि यह धर्म-परिवर्तन शुद्ध भावना से किया गया है और इसके पीछे किसी प्रकार का लालच नहीं।

हीरालाल से जो लोग परिचित हैं वे जानते हैं कि वह शराबी और दुराचारी है। कुछ सालों से वह अपने मित्रों के दान से अपनी ज़िन्दगी बसर कर रहा है। वह पठानों का क़र्ज़दार है, जिनसे उसने ऊँचे सूद पर रुपया लिया है। कुछ दिन पहले बम्बई में ही उसके एक महाजन पठान के कारण उसको अपने जीवन के लाले पड़े हुए थे। अब वह उसी शहर बम्बई में आज वीर पुरुष बना हुआ है। उसकी पत्नी नेक और पतिभक्ता थी। उसने इसके सब पापों को यहाँ तक कि इसके व्यभिचार को भी माफ़ कर दिया। इसके तीन जवान सन्तानें हैं—दो लड़कियाँ और एक लड़का जिनके पालने की उसे अरसे से कोई फ़िक्र नहीं।

ज़्यादा दिन नहीं हुए जब उसने अख़बारों में हिन्दुओं के विरुद्ध—हिन्दुत्व के विरुद्ध नहीं—शिकायत की थी, और ईसाई व मुसलमान होने की धमकी दी थी। उस पत्र की भाषा से मालूम होता था कि वह सबसे ऊँची बोली लगानेवाले की ओर जायगा। उस पत्र का अभीष्ट फल हुआ। एक भले हिन्दू कौंसिलर के प्रस्ताव से नागपुर-म्युनिसिपैलिटी में उसे एक स्थान मिल गया। इसके बाद उसने एक दूसरा पत्र छपवाया और अपने पुरखों के धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा प्रकट की।

मगर घटनाओं ने बताया कि उसकी आर्थिक लोभ-तृष्णा शान्त नहीं हुई है और उसको शान्त करने के लिए उसने अब इस्लाम-धर्म ग्रहण कर लिया है। उसकी कुछ और बातें हैं जो मुझे ज्ञात हैं, जिनसे मेरे ख़याल का समर्थन होता है।

पिछले अप्रेल में जब मैं नागपुर था तब वह मुझे मिलने आया और उसने तथा उसकी माँ ने मुझे बताया कि विभिन्न धर्मों के प्रचारकों को उसको मूँड़ने के प्रयत्न को देखकर उसका कितना मनोरंजन हुआ है। भगवान् चमत्कार कर सकते हैं। उसके बारे में कहा जाता है, उसने पत्थर से पत्थर दिल को पिघला दिया है। इससे अधिक और मुझे किसी बात से प्रसन्नता न होती कि शुक्रवार को हीरालाल ने अपने पहले जीवन पर पश्चात्ताप प्रकट किया है और वह अकस्मात् शराब पीना और व्यभिचार त्याग कर एकदम बदल गया है।

मगर अख़बारों में छपी ख़बर से ऐसा कुछ नहीं मालूम होता। अब भी अच्छे रहन-सहन में आनन्द लेता है। अगर वह बदल गया होता तो वह मुझको ख़ुश करने के लिए मुझे लिखता। मेरे सब बेटों का विचार स्वतन्त्रता है। उनको सिखाया गया है कि वे अपने धर्म का जितना आदर करते हैं, उतना ही अन्य धर्मों का आदर करें। हीरालाल जानता है कि यदि वह मुझे लिखता कि सत्य और शान्ति की कुंजी उसने इस्लाम में पा ली तो मैं उसके मार्ग में किसी प्रकार की बाधा नहीं डालता। मगर न तो हममें से किसी को और न अपने पुत्र को जिसकी उमर इस समय २४ साल की है और जो मेरे साथ है, अख़बार देखने से पहले इस बात की ख़बर मिली।

मुसलमान भाई जो मेरे पुत्र के मुसलमान बनने से बहुत ख़ुश मालूम होते हैं, मेरे इस्लाम-सम्बन्धी विचारों से परिचित हैं। एक मुसलमान भाई ने मुझे तार दिया है—

"आशा करता हूँ कि आप सत्य की खोज करनेवाले होने के कारण अपने पुत्र के समान इस्लाम क़बूल कर लेंगे जो कि संसार का सबसे अधिक सच्चा धर्म है।"

मैं इस बात को स्वीकार कर सकता हूँ कि इन सब बातों से मेरे दिल को चोट पहुँची है। मैं इस प्रदर्शन के पीछे कोई भी धार्मिक भावना नहीं पाता। मैं अनुभव करता हूँ कि उन लोगों ने जो कि हीरालाल को मुसलमान बनाने के ज़िम्मेवार हैं, कोई एहतियात काम नहीं किया? जो कि इस अवस्थाओं में किया जाना चाहिए था।

हीरालाल के धर्म-परिवर्तन से हिन्दू-धर्म की कोई क्षति नहीं हुई है और उसका इस्लाम ग्रहण करना उसकी कमज़ोरी को सूचित करता है, क्योंकि मुझे आशंका है कि वह पहले जैसा ही जीवन व्यतीत करेगा।

धर्म-परिवर्तन तो मनुष्य और उसके निर्माता के बीच का विषय है जो कि अकेला ही अपने सच्चे हुए हृदय को जानता है। हृदय शुद्ध न होते हुए मैं धर्म-परिवर्तन करना मेरी राय में परमात्मा और धर्म से इनकार करना है। हृदय के बिना धर्म-परिवर्तन से शोक और पश्चा[त्ताप] होता है। भले आदमी और भगवान् के प्रेमी को [प्रसन्नता] नहीं होती।

ये पंक्तियाँ अपने असंख्य मुस्लिम मित्रों के लिखने का यही अर्थ है कि वे हीरालाल की परीक्षा पहले के जीवन से करें और अगर वे देखें कि उसका परिवर्तन आत्महीन है और उसमें सच्चाई नहीं है उसे साफ़ साफ़ कह दें और उसे न अपनावें। [अगर] देखें कि वह धर्म-परिवर्तन में सच्चा है और [उसके] फल-स्वरूप वह समाज का परमात्मा से डरनेवाला बन गया है तो उसे अपनावें। उन्हें मालूम होना [चाहिए] कि उसकी विवेक-बुद्धि नष्ट हो गई है और वह [सही] और ग़लत और सत्य और असत्य में फ़र्क़ नहीं जानता। मैं इस बात की चिन्ता नहीं करता कि वह हीरालाल [रहे या] अब्दुल्ला बने कि वह एक नाम की जगह दूसरा ग्रहण करने से परमात्मा का एक सच्चा भक्त बन जा[य]।

नये वायसराय और गोपालन

यह प्रसन्नता की बात है कि हमारे नये [वाइस]राय महोदय का ध्यान भारतीय कृषकों की और गोपालन की ओर गया है। इस सम्[बन्ध में] आपने प्रान्तीय गवर्नरों के नाम एक गश्ती [चिट्ठी] भेजी है जिसे हम नीचे उद्धृत करते हैं—

मेरी इच्छा है कि पशु-सुधार की दिशा में [सरकारी] सहायता और दिलचस्पी पैदा करने के लिए [और] देश की वास्तविक उन्नति के लिए आवश्यक है, [देश]व्यापी आन्दोलन का सूत्रपात करूँ। अतएव इस[के] की सफलता के लिए आप और आपके कृषि-वि[भाग के] मिनिस्टर जो सलाह देंगे उसका मैं स्वागत करूँगा।

जैसा कि आपको मालूम है, मैंने कार्य-भार [ग्रहण] करने के बाद शीघ्र ही दिल्ली-ज़िले के कृषकों [को] साँड़ भेंट किये और देश भर के धनीमानियों से [अपील] की कि वे इस विषय में मेरा अनुकरण करें और [इस] ढङ्ग के पिंजरापोल, डेरी-फ़ार्म (दुग्ध-शालायें) संस्थाओं को और कृषकों की ऐसी ही संस्थाओं [को] ज़िला और लोकल बोर्डों को अच्छी नस्ल के [साँड़]

करें, जिससे कि नस्ल-सुधार के लिए वे उनका उपयोग करें। इसके बाद मैंने लोगों का ध्यान ऐसी बातों के महत्त्व की ओर आकर्षित किया जो उन सब व्यक्तियों को मालूम हैं जिन्हें पशु-सुधार के विषय में क्रियात्मक ज्ञान है, अर्थात् साँड़ों का चुनाव बड़ी सावधानी से किया जाय और उन अच्छी नस्ल के साँड़ों से पूरा-पूरा लाभ उठाया जाय जो सरकारी कैटिल ब्रीडिंग फ़ार्म से प्राप्त हो सकते हैं, वे साँड़ ऐसी नस्ल के हों जो ज़िले की गायों के लिए उपयुक्त हों और बछिया-बछड़ों के आँकड़े रक्खे जायँ। मैंने यह भी सुझाया था कि नस्ल-सुधार के उद्देश से भेंट किये गये साँड़ों-द्वारा पैदा बछड़ों को इच्छानुसार उचित मूल्य पर ख़रीदने की व्यवस्था हो और ज़िले के पशुओं की उन्नति के लिए अच्छी नस्ल के बहु-संख्यक पशुओं की उत्पत्ति के लिए कोई प्रयत्न उठा न रक्खा जाय।

मुझे प्रसन्नता है कि मेरी अपील का कुछ परिणाम भी हुआ है। इसके लिए सबसे पहले मैं समाचार-पत्रों का ऋणी हूँ, जिन्होंने मेरे मन्तव्य को पूर्ण-रूप से प्रकाशित किया और जिन्होंने शुरू से लेकर अब तक कई प्रकार से मुझे अमूल्य सहायता दी। एक और बात जिससे मेरे हृदय पर अच्छा प्रभाव पड़ा है, यह है कि जो दान मुझे मिला है अथवा जो मेरी अपील के फलस्वरूप विभिन्न प्रान्तों की स्थानीय संस्थाओं को प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त हुआ है वह छोटे-छोटे ज़मींदारों और मामूली हैसियत के लोगों ने भेजा है।

नस्ल-सुधार के लिए सर्वोत्तम 'धर्म-साँड़' प्रदान करना प्राचीन परम्परा के अनुकूल है। यदि इस विषय में आप और आपकी सरकार मेरे विचारों से सहमत है, जैसा कि मुझे विश्वास है कि सहमत है, तो मेरे सुझावों के आधार पर यदि आप अपने प्रान्त में इस आन्दोलन को प्रोत्साहन देने के लिए साध्य और वांछनीय उपायों को क्रियात्मक रूप देंगे तो मैं आपका आभारी होऊँगा।

मैं आपका कृतज्ञ होऊँगा यदि आप तीन महीने समाप्त होने पर मेरे पास दानियों और रक़मों की फ़ेहरिस्त या दान के साँड़ों की संख्या लिख भेजेंगे और यह सूचित करेंगे कि मेरी अपील का क्या फल हुआ। प्रान्तों को यथा-साध्य सहायता देने, ख़ास तौर पर किये जानेवाले प्रयत्नों के एकीकरण के लिए चुनाव का नियमित आधार प्राप्त करने और ख़रीदे या दान किये हुए साँड़ों के पालन-पोषण के लिए मैंने इम्पीरियल कौंसिल आफ़ एग्रिकल्चरल रिसर्च के पशुपालन-विशारद कर्नल ओल्वरल रिसर्च को पृथक् रूप से तैनात किया है। इस विषय में इम्पीरियल आफ़ एग्रिकल्चरल रिसर्च भी समस्त प्रान्तीय सरकारों और उन भारतीय रजवाड़ों के पास जिनके प्रतिनिधि कौंसिल में हैं, एक विज्ञप्ति भेज रही है, जो उनके लिए लाभदायक हो सकती है।

आप विश्वास रक्खें कि अपने कार्य-काल में कृषकों के हित-साधन और देहाती जनता के कल्याण के लिए मैं अपनी शक्ति भर कोई प्रयत्न उठा न रक्खूँगा और अन्त में मैं यह कहूँगा कि जो मार्ग मैंने अभी सुझाया है उस पर अमल करने के अतिरिक्त मुझे ऐसा कोई मार्ग नहीं दिखाई देता जिसके द्वारा भारतीय ग्रामों और भारतीय कृषि के भविष्य को इससे अधिक सहायता पहुँचाई जा सके। मैं हार्दिक आशा करता हूँ कि इस अपील पर देश भर में उदारतापूर्वक ध्यान दिया जायगा।

निज़ाम-सरकार का उर्दू-प्रेम

हैदराबाद के राज्य में शिक्षा का माध्यम उर्दू है। 'भारत' में इस विषय को लेकर एक अग्रलेख लिखा गया है, जिसकी ओर निज़ाम-सरकार का ध्यान जाना चाहिए। लेख का एक आवश्यक अंश इस प्रकार है—

हैदराबाद के निज़ाम साहब ने उस्मानिया-विश्वविद्यालय के द्वारा तथा और भी अनेक उपायों से उर्दू-भाषा तथा उर्दू-साहित्य की उन्नति का जो महान् प्रयत्न किया है तथा अब भी कर रहे हैं उसके लिए वे निस्सन्देह उर्दू-प्रेमियों की कृतज्ञता के पात्र हैं। यहाँ तक तो ठीक है, परन्तु हम उन लोगों से सहमत नहीं हो सकते जिनका यह कहना है कि निज़ाम साहब की उर्दू-सेवा के लिए सभी देशी भाषाओं के प्रेमियों को उनका कृतज्ञ होना चाहिए और उनकी उर्दू-सेवा को अपने लिए अनुकरणीय समझना चाहिए। जो लोग ऐसा कहते हैं उनका ख़याल शायद यह है कि उर्दू हैदराबाद की मुख्य भाषा है। परन्तु वास्तविक बात यह नहीं है। उर्दू निज़ाम साहब की तथा हैदराबाद के नगरों के मुसलमानों की भाषा अवश्य है, परन्तु वहाँ की अधिकांश जनता के लिए तो वह निजी भाषा नहीं है। हैदराबाद में हिन्दुओं की संख्या ८५ प्रतिशत है और मुसलमानों की १५ प्रतिशत से भी कम। उर्दू भाषा-भाषियों की संख्या तो १० प्रतिशत भी नहीं है, क्योंकि राज्य के अनेक भागों में रहनेवाले मुसलमानों की भी भाषा उर्दू नहीं है। पिछली मर्दुमशुमारी के अनुसार हैदराबाद में विभिन्न भाषा-भाषियों की संख्या इस प्रकार है—तेलगू ६९॥। लाख, मराठी ३७॥ लाख, कनाड़ी १६। लाख, उर्दू १५ लाख से कुछ अधिक। इन अंकों से मालूम होता है कि निज़ाम साहब जिस भाषा की उन्नति के प्रयत्न में जी-जान से लगे हुए हैं और उस पर अपने राज्य के सरकारी ख़ज़ाने से रुपया भी ख़र्च कर रहे हैं वह उनके राज्य के १ करोड़ ३९ लाख निवासियों में से केवल १५ लाख की ही मातृभाषा है। निज़ाम-सरकार के उर्दू-प्रेम की प्रशंसा करनेवाले ज़रा इन अंकों को देखें और फिर कहें कि क्या यह न्याय है। अगर तेलगू, मराठी और कनाड़ी कोई छोटी-मोटी तथा साहित्य की दृष्टि से हीन भाषायें होतीं तो शायद उनकी इस प्रकार की उपेक्षा किसी प्रकार क्षम्य भी हो सकती थी; परन्तु उनकी तो भारत की मुख्य भाषाओं में गणना होती है, और हैदराबाद के निकटवर्ती प्रान्तों ही में उन्होंने साहित्य में भी ऐसी उन्नति की है जिस पर भारत की कोई भी भाषा गर्व कर सकती है। फिर हैदराबाद-रियासत में उनकी इस प्रकार उपेक्षा की जाने का कारण शासकों के साम्प्रदायिक पक्षपात के अतिरिक्त और क्या हो सकता है? यह सच है कि पुराने समय में शासक ही सब कुछ होते थे और जनता का कोई महत्त्व न था; उस समय यह भले ही स्वाभाविक रहा हो कि हैदराबाद के शासकों के मुसलमान होने के कारण उनकी भाषा, उर्दू, ही राज्य की मुख्य भाषा समझी गई हो। परन्तु अब तो समय बदल गया है। अब तो लोकतन्त्र का ज़माना है। अब तो भारत जैसे पिछड़े हुए देश में भी यह माना जाने लगा है कि जनता के भी कुछ अधिकार हैं और लोकमत का भी कुछ महत्त्व है। क्या इस आधुनिक युग में भी यह बात न्यायोचित कही जा सकती है कि हैदराबाद के शासक अपने राज्य की ८५ प्रतिशत जनता की भाषा-सम्बन्धी भावनाओं तथा आकांक्षाओं की उपेक्षा करते रहें, अपनी सारी शक्ति उर्दू की उन्नति में लगाते रहें और अन्य भाषा-भाषियों के सिर उर्दू को ज़बरदस्ती लादते रहें? हम इस विचार के समर्थक हैं कि भारत में शिक्षा का माध्यम अँगरेज़ी भाषा नहीं बल्कि देशी भाषायें हों; परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि देशी भाषा के नाम पर बंगालियों के सिर गुजराती या गुजरातियों के सिर बँगला ज़बर्दस्ती लादी जाय। तेलगू या मराठी या कनाड़ी भाषा-भाषियों के सिर उर्दू का लादा जाना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता। अगर निज़ाम-सरकार देशी भाषाओं की ही उन्नति चाहती है तो उसे अपने विभिन्न प्रान्तों में अँगरेज़ी के बजाय क्रमशः तेलगू, मराठी, कनाड़ी तथा उर्दू को शिक्षा का माध्यम बनाने की चेष्टा करनी चाहिए थी। यदि वह अपनी रियासत के लिए किसी एक भाषा को प्राधान्य देना आवश्यक समझती है तो वह भाषा तेलगू होनी चाहिए, क्योंकि हैदराबाद की आधी से अधिक जनता तेलगू-भाषी है। उर्दू को शिक्षा का माध्यम बनाने का अर्थ राज्य की ८५ प्रतिशत जनता के लिए तो यही है कि एक पराई उन्नत भाषा के बजाय एक दूसरी पराई परन्तु अनुन्नत भाषा उनके सिर लादी जाय।

मुसोलिनी के हाथों कैसे पड़ा?

ब्रिटिश पत्रों में इटली के सम्बन्ध में जो लेख निकल रहे हैं, उनमें से एक का एक नमूना हम 'अर्जुन' से यहाँ उद्धृत करते हैं। यह लेख पत्रकार मि० बी० रिवियो ने 'जान बुल' में प्रकाशित कराया है।

युद्ध शुरू होने से पूर्व मैंने इटली के प्रचार-विभाग को बता दिया था कि मुझे डराने व घूस देने का प्रयत्न करना बेकार है। इससे यद्यपि मेरा और मेरे पत्र का नाम वहाँ की 'ब्लैक-लिस्ट' में दर्ज हो गया, तो भी इतना लाभ अवश्य हुआ कि मैं कुछ सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा। एकमात्र यही कारण था कि मैं उसके बाद ६ मास तक और इटली में रह सका। मुझ पर निगरानी तो युद्ध प्रारम्भ होने के पहले से ही रक्खी जाती थी, क्योंकि मुसोलिनी तथा ग्रांड फ़ासिस्ट कौंसिल के कुछ अन्य सदस्यों को यह सन्देह हो गया था कि मुझे अन्दर

का एक रहस्य मालूम है। इस रहस्य को मैं इस लेख-द्वारा पहली दफ़ा दुनिया के सम्मुख पेश कर रहा हूँ। इसका ज्ञान मुझे अत्यन्त विश्वस्तसूत्र से हुआ था। यदि उस समय मुझे इसका उद्घाटन करने की आज़ादी होती तो मैं कह सकता हूँ कि इटली के विरुद्ध लोकमत आज की अपेक्षा कहीं अधिक प्रचण्ड होता। युद्ध-घोषणा से कुछ सप्ताह पूर्व किसी भी पत्रकार के लिए अबीसीनिया के रोम-स्थित दूतावास में जाना बड़े ख़तरे और साहस का काम था। इटली की ख़ुफ़िया बड़ी चौकसी रहती थी। लेकिन मैं इन धमकियों में नहीं आया और स्थिति का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रतिदिन अबीसीनियन दूतावास जाता था। उन दिनों वहाँ अबीसीनियन मिनिस्टर मिस्टर जेसिस आफ़ेवराक थे।

युद्ध-घोषणा से पूर्व मुसोलिनी अपने सैनिक इरादों के बारे में अबीसीनिया तथा शेष संसार को चकमा दे रहा था। एक दिन मिस्टर आफ़ेवराक ने मुझसे इस बात को गुप्त रखने की प्रतिज्ञा लेकर बताया कि उन्होंने इटली के राजा विक्टर इमैनुअल से भेंट की और अबीसीनियन सम्राट् का एक ख़ानगी पत्र उन्हें दिया। इस पत्र को पढ़कर राजा इमैनुअल ने अपनी दो लड़कियों की उपस्थिति में कहा—"मेरी ओर से अपने राजा को यह आश्वासन दे दो कि इटली अबीसीनिया के विरुद्ध युद्ध कभी नहीं करेगा।"

इस पर मैंने आफ़ेवराक से पूछा कि क्या वे इस आश्वासन से सन्तुष्ट हो गये। इस पर उन्होंने बड़े नाटकीय ढंग से कहा—"एक राजा के वचन से बढ़कर और क्या बात हो सकती है? एक राजा कभी धोखा नहीं दे सकता।" और झट मुझे सम्राट् के नाम का वह पत्र दिखाया, जिसमें उन्होंने लिखा था कि युद्ध का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता।

इस पर मैंने इतना ही कहा कि इटली का राजा तो धोखा नहीं दे रहा है, लेकिन तुम्हारे सम्राट् ख़ुद-ब-ख़ुद इटली के वास्तविक शासक-द्वारा ठगे जा रहे हैं। मुझे इसी बात का अफ़सोस है कि मैं इस भेद को दुनिया पर ज़ाहिर नहीं कर सका, अन्यथा जब मुसोलिनी युद्ध छेड़ता तब सब सभ्य-जगत् को मालूम हो जाता कि मुसोलिनी ने कितनी नीचता-पूर्वक अपने राजा को भी मोहरा बनाया।

किसी तरह मुसोलिनी को यह मालूम हो गया कि मुझे इस भेद का ज्ञान है। बस उसी समय से लोग मेरे पीछे लग गये और तरह-तरह की धमकियाँ दी जाने लगीं। छाया की तरह कोई-न-कोई व्यक्ति मेरे पीछे लगा रहता था। किसी भी समय क़लम के केवल एक झटके से मैं इटली से निकाला जा सकता था। लेकिन मुसोलिनी इससे कुछ अधिक चाहता था। वह मुझे घेरे रखना चाहता था और फिर गिरफ़्तार करके 'जासूस' होने का अभियोग लगाना चाहता था। उन भयंकर महीनों में मैं बहुत सावधान रहा और उसके एजंटों को कोई भी अनुकूल बहाना नहीं दिया।

पहले तो मेरे ख़िलाफ़ मामूली जाल बिछाये गये, लेकिन उनसे मैं सदा बचता रहा। एक दिन कुछ बारीक मसला पेश हुआ। एक आदमी मेरे पास आया और बोला कि 'डेली हेरल्ड' को भेजे गये आपके ख़रीतों से ऐसा मालूम पड़ता है कि 'अन्तर्राष्ट्रीय फ़ासिस्ट संगठन' के बारे में आपको कुछ ग़लतफ़हमी है, इसलिए अच्छा हो कि आप इस सम्बन्ध में कुछ साहित्य का अवलोकन करें। आपको जब सुविधा हो तभी मैं यह साहित्य भिजवा दूँगा।

इस पर मैंने उस आदमी को अगले दिन 'फ़ारेन प्रेस असोसियेशन' में नियत समय पर मिलने के लिए कहा। अगले दिन जब मैं इस मुलाक़ात के लिए असोसियेशन में घुसने लगा, अचानक मैं पकड़ लिया गया। उन्होंने यह कह कर मुझ पर मुक्के जड़ने शुरू कर दिये कि मेरे ही कारण 'डेली हेरल्ड' में लीबिया के तत्कालीन मिनिस्टर जनरल बैल्बो के विरुद्ध कुछ आलोचना निकली है। मैंने भी कशमकश की तब वे लोग यह कह कर पास से गुज़रनेवालों से मदद माँगने लगे कि यह अँगरेज़ जासूस है। लेकिन परमात्मा को धन्यवाद है कि किसी ने उनकी बात नहीं सुनी। यह प्रायः देखा गया है कि जब कोई वर्दीधारी फ़ासिस्ट मार-पीट पर उतर आता है तब और लोग उसकी मदद नहीं करते। मुझे बाद को मालूम हुआ कि ये दोनों फ़ासिस्ट पट्ठे ख़ास मेरे लिए रोम लाये गये थे और सारा षड्यंत्र सरकारी तौर पर तैयार किया गया था। जब मैं पिट रहा था तब पास में ही फ़ासिस्ट सिपाहियों का एक दस्ता खड़ा था और एक फ़ासिस्ट जनरल इनका नेतृत्व

कर रहा था। इस षड्यंत्र का उद्देश शायद मुझे मार देना या अंगहीन कर देना था। लेकिन सौभाग्य से मैं दो मास बाद रोग-शय्या से उठ खड़ा हुआ और फिर अपने काम में लग गया। एक दिन मुसोलिनी का लाड़ला दामाद काउण्ट सियानो मेरे पास आया और उक्त काण्ड के लिए शिष्टाचार के नाते अफ़सोस ज़ाहिर कर गया।

इस घटना के बाद से मेरा निरन्तर पीछा किया जाने लगा। एक-दो आदमी सदा मुझ पर तैनात रहते थे। मेरी प्रत्येक हरकत नोट की जाने लगी। इधर-उधर आना-जाना और मिलना-जुलना मुश्किल हो गया। ऐसा मालूम होता था कि मैं जिससे भी बात करता हूँ वही मुझे फँसाने की घात में है। मेरे मकान का चौकीदार भी मुझ पर और मेरी डाक आदि पर निगरानी रखने को बाधित किया गया। यहाँ तक कि मेरे घर की स्त्री-सेविका भी इसके लिए बाधित की गई। स्त्री और बालबच्चों में अत्यन्त निर्दोष बातों तक पर भी बातचीत करना असम्भव हो गया। लंदन से टेलीफ़ोन पर मेरी बातचीत का और ख़रीतों का सेन्सर होने लग गया, क्योंकि मैंने यह भेद प्रकट किया था कि इटली के स्त्री-पुरुष सोने के जो आभूषण युद्ध-कोष को भेंट कर रहे हैं वे ९८ प्रतिशत पीतल वग़ैरह के हैं।

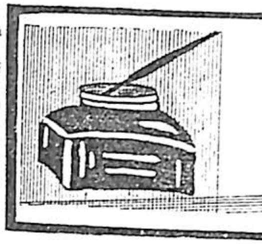
इसके बाद जब मुसोलिनी ने देखा कि उसका उद्देश-स्थान निकट आ गया है और किसी रहस्य का उद्घाटन उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता तब मैं इटली से निकाल दिया गया।

अन्त में मैं इतना अवश्य कहूँगा कि यह समझना भारी भूल है कि फ़ासिज़्म या अबीसीनियन युद्ध के प्रति इटालियन जनता की बहुत सहानुभूति है। आम जनता मुसोलिनी का पतन देखना चाहती है। उसे मालूम है कि मुसोलिनी की जीवन-रक्षा पर १८,००० पौंड दैनिक अर्थात् ६५,००,००० पौंड वार्षिक (झूठ की भी हद है—सं०) व्यय होते हैं। सैनिक विजय पर इटली में जो हर्ष-समारोह दीख पड़ता है वह सब शक्ति के ज़ोर पर करवाया जा रहा है। लोग इस बात को पहचानते हैं कि सफलता के उन्माद में मुसोलिनी एक के बाद दूसरे साहसिक कार्य को हाथ लगायेगा और इससे इटली के दिवालिये में देर न लगेगी।

प्रान्तीय सरकार द्वारा पादरियों को सहा

'आज' अपने एक सम्पादकीय टिप्प लिखता है—

जो हरिजन ईसाई हो गये हैं उनकी शिक्षा के संयुक्त-प्रांत की सरकार ने ईसाई पादरियों को इस दस हज़ार रुपया देने का इरादा किया था। पर भर में इसका घोर विरोध किया गया। कहा गया कि सहायता पादरियों को इस बात का उत्तेजन है अधिक से अधिक संख्या में हरिजनों को ईसाई हम स्वयं इस मत के समर्थक नहीं हैं। जिन लोगों के हिन्दू-समाज में कोई स्थान नहीं है—है भी तो कुत्ते बदतर—उन्हें यदि दूसरे अपनावें तो हिन्दुओं को न होना चाहिए। कम से कम हमें तो इस मा हिन्दुओं का क्रोध अनुचित मालूम होता है। हम चाहते नहीं, जिसके स्पर्श से भी हमारा धर्म जाता है यदि दूसरा भाई समझता हो तो समझने दीजिए। क्रोध की तो कोई बात नहीं है। प्रत्युत सनातन ठेकेदारों को यह समझकर ख़ुश होना चाहिए कि एक बला निकल गई। जब स्थिति ऐसी है तब अन्य धर्मियों के द्वारा उन अभागों की सामाजिक सुधरवाने में सरकार भी कुछ हाथ बँटाती हो तो बुरा ही क्या है। यही समझकर हमने प्रांतीय सर दस हज़ार दान का कभी विरोध नहीं किया था। प उन सज्जनों को बुरा लगा जिन्हें आशा है कि हिंदू इन अभागे अस्पृश्यों को किसी दिन अपनावेगा और दिन तक इन्हें हिन्दू-सीमा के भीतर ही येन-केन प्र रखना चाहिए। परमात्मा उनकी आशा सफल उनकी दृष्टि से विचार किया जाय तो यह उचित कि सरकारी पैसा ऐसे किसी काम में न लगे जो ह को अन्य धर्म में जाने के लिए उत्साहित करे।



सम्पादकीय नोट

राष्ट्र-संघ की निस्सारता

राष्ट्र-संघ की स्थापना हुई ही थी इसलिए कि यदि कोई सदस्य राष्ट्र किसी दूसरे सदस्य राष्ट्र पर आक्रमण करेगा तो अन्य सब राष्ट्र उस आक्रान्त राष्ट्र के पक्ष में आक्रमणकारी का विरोध करेंगे और इस प्रकार विश्व की शान्ति नहीं भंग होने देंगे। परन्तु चीन के एक प्रान्त को हड़पकर जापान ने राष्ट्र-संघ के प्रमुख उद्देश का खोखलापन पहले ही सिद्ध कर दिया था। और जो थोड़ी-बहुत मर्यादा उसकी इस सम्बन्ध में रह गई थी उसे इटली ने अबीसीनिया को जीत कर निःशेष कर दिया। परन्तु राष्ट्र-संघ के सूत्रधारों का धैर्य प्रशंसनीय है। वे उसकी इस असमर्थ अवस्था की परवा नहीं करते और आज भी सामूहिक रक्षा और राष्ट्र-संघ की प्रमुखता के ही गीत गाये जा रहे हैं। इसका रहस्य जान लेना तो बहुत कठिन है, पर यह दिन की तरह स्पष्ट है कि इटली की इस विजय से उसकी भूमध्यसागर और लालसागर में तथा इनके तटवर्ती देशों में प्रतिपत्ति बढ़ जायगी और यह बात अँगरेज़ों तथा फ़रासीसियों के लिए विशेष चिन्ता का कारण होगी। यह भी एक कारण है कि राष्ट्र-संघ टूटकर भी नहीं टूट रहा है, क्योंकि इन महान् राष्ट्रों के लिए राष्ट्र-संघ की सामूहिक सहायता की सदैव आवश्यकता बनी रहेगी।

इसमें सन्देह नहीं है कि इटली का अबीसीनिया में राज हो जाने से इटली अपना नौबल बढ़ायेगा और उस दशा में पूर्वी भूमध्यसागर तथा लालसागर में उसके नौबल का प्रदर्शन भी होता रहेगा। इस नई समस्या का निराकरण करने के लिए ब्रिटेन और फ्रांस के सुदृढ़ मेल की ज़रूरत है, साथ ही राष्ट्र-संघ को भी जीवित रखना पड़ेगा। यही कारण है कि जापान, जर्मनी और संयुक्त राज्य (अमरीका) के उसमें न होते हुए भी वह आज भी जीवित है। तथापि इटली ने उसे इस बार जो धक्का दिया है उससे उसका भण्डा फोड़ हो गया है और वह संसार के राष्ट्रों के आगे पूर्ण रूप से महत्त्वहीन और निस्सार सिद्ध हो चुका है।

फ्रांस की नई सरकार

फ्रांस में इस बार के नये चुनाव में समाजवादियों की जीत हुई है, अतएव वहाँ समाजवादी-सरकार की स्थापना की गई है। फ्रांस के समाजवादी-दल के नेता श्री लिओन ब्लम प्रधान मंत्री बनाये गये हैं। और ये यहूदी हैं। फ्रांस में ये पहले यहूदी हैं, जो प्रधान मंत्री बनाये गये हैं। इन्होंने अपने मंत्रिमण्डल में तीन स्त्रियों को भी लिया है। फ्रांस में रङ्गभेद भी नहीं है। वहाँ काले लोगों को समान सुविधायें प्राप्त हैं। इसी से नई पार्लियामेंट में पाँच हबशी सदस्य हैं। इनमें तीन उत्तरी फ्रेंच अफ्रीका के हैं और दो को स्वयं फ़रासीसी निर्वाचकों ने चुना है। परन्तु नई फ्रेंच-सरकार के पद ग्रहण करते ही उसे एक लोकव्यापी भीषण हड़ताल का सामना करना पड़ गया और उसने अपने अनुरूप उस हड़ताल को शांत करने में भी सफलता प्राप्त की और सो भी अल्पकाल में और बिना रक्तपात के। इस अवसर पर फ्रांस की नई सरकार ने जिस सहानुभूति और तत्परता का परिचय दिया है उससे आशा होती है कि वह भविष्य में अपनी सार्थकता अन्य क्षेत्रों में भी इसी तरह प्रमाणित करेगी। अब उसके आगे इससे कहीं अधिक टेढ़ा प्रश्न योरप की वर्तमान राजनैतिक उथल-पुथल के सँभालने का है। देखना है, फ्रांस की यह नई समाजवादी-सरकार इस क्षेत्र में अपना कौन-सा रूप प्रकट करती है। फ्रांस की पिछली सरकार ने इटली के

मामले में जो नीति ग्रहण की थी उसका योरप की राजनीति पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है और यह प्रकट हो गया है कि वहाँ के राष्ट्रों में सामूहिक एकता का सर्वथा अभाव हो गया है। यह भी उसी सरकार की ही नीति का फल हुआ कि जर्मनी ने लोकार्नो की सन्धि को भंग करके राइनलेंड में अपनी सेनायें भेज दीं। ब्लम साहब की सरकार को इस बिगड़ी अवस्था के सुधारने में, देखें, कहाँ तक सफलता मिलती है।

चीन की दयनीय दशा

संसार में इस समय चीन ही एक ऐसा देश है जो अन्तर्कलह से अति निर्बल है और जिसके राज्य का अपहरण या जिसकी नोच-खसोट बराबर होती रहती है। यों तो उसका हिस्साबाँट करने को पाँच महाशक्तियाँ उम्मेदवार हैं। परन्तु उनमें इस समय जापान और रूस दो ही अपनी गतिविधि प्रकट करते हुए दिखाई दे रहे हैं। ब्रिटेन, फ्रांस और संयुक्त-राज्य इस समय चुप-सा हैं, पर उदासीन नहीं हैं।

मंचूरिया और जेहोल को जापान ने पहले ही ले लिया था और अब उत्तरी चीन के ५ प्रान्तों पर उसकी दृष्टि है। उन्हें चीनी सेनाओं से उसने ख़ाली करवा लिया है और उनके स्थान में अपनी सेनायें वहाँ रख दी हैं। गत जून में उन्हें भी हड़प कर लेने का बहाना उसे मिल गया था, पर दक्षिणी चीन के उग्र प्रदर्शन तथा राष्ट्रीय सरकार के दैन्य से वह इस बार मौक़ा टाल गया है।

उधर रूस मंगोलिया को बहुत पहले से ही दबाये बैठा है। कुछ दिन हुए, स्टैलिन ने घोषित किया था कि यदि जापान मंगोलिया की ओर दृष्टि डालेगा तो रूस उसका सशस्त्र विरोध करेगा। अब रूस सिंकियांग या चीनी तुर्किस्तान को लोलुप दृष्टि से देख रहा है। वह वहाँ घुस भी गया है और धीरे धीरे उसका प्राधान्य अधिकाधिक बढ़ता जा रहा है।

इधर दक्षिण चीन के प्रायः सभी बन्दरगाह ब्रिटेन के हाथ में हैं। यांग-टी-सिकयांग की उपजाऊ तराई भी एक प्रकार से उसी के संरक्षण में है। इसके सिवा तिब्बत में भी उसका काफ़ी प्रभाव हो गया है। फ्रांस भी अपने इन्डोचीन में सशस्त्र बैठा हुआ अपने मौक़े की घात में है। परन्तु उसका सम्बन्ध केवल इंडोचीन के सीमावर्ती प्रान्तों तक ही परिमित है। रहा संयुक्त राज्य, सो उसका चीन से व्यापार का सम्बन्ध है और उसकी यही आकांक्षा है कि उसका वहाँ व्यापार बराबर होता रहे। इसके सिवा वह और कुछ नहीं चाहता। पर इधर जापान के व्यापार की वृद्धि से उसकी भारी हानि हो रही है। इस बात से इन दोनों में मनोमालिन्य बना रहता है। जापान का रूस और ब्रिटेन से भी संघर्ष बढ़ रहा है। पर ये तीनों किसी एक से या दो मिलकर चीन के अपने स्वार्थों के लिए इस समय लड़ना नहीं चाहते।

जापान की नीति से मुख्य चीन में तथा रूस की नीति से सिंकियांग में ब्रिटेन के हितों की काफ़ी हानि हो चुकी है और बराबर होती जा रही है, पर ब्रिटेन योरप में ऐसी दुरवस्था में पड़ गया है कि वह सुदूर पूर्व के इन मामलों में कोई कारगर हस्तक्षेप नहीं कर सकता। न वह रणसज्जा से तैयार है, न साम्राज्यान्तर्गत देश युद्ध में उसकी सहायता करने को उद्यत हैं, न योरप की ऐसी परिस्थिति ही है कि वह किसी साहसिक कार्य में अपने को डाल सके। उसकी इस परिस्थिति को रूस और जापान भले प्रकार जानते हैं और वे उससे पूरा पूरा लाभ उठा लेना चाहते हैं।

रूस और जापान भी चीन की नोच-खसोट के लिए परस्पर लड़ना नहीं चाहते। वे जानते हैं कि उस युद्ध में दोनों कमज़ोर हो जायँगे और तब रूस जर्मनी का और जापान ब्रिटेन का शिकार होगा। इसी से दोनों बच बचकर खेल रहे हैं और मौक़ा पाते ही चीन के एक एक भाग को धीरे धीरे दबोचते जा रहे हैं। फिर जापान को रूस से भिड़ने की वैसी ज़रूरत भी नहीं है। जापान की दृष्टि इस समय उत्तरी चीन पर है, जिससे रूस का कोई सम्बन्ध नहीं है। और उत्तरी चीन जापान के लिए विशेष रूप से काम का भी है, क्योंकि इसके पाँचों प्रान्तों में कोयला और लोहा की खानें हैं तथा यहाँ रुई भी ख़ूब पैदा हो सकती है। पर इन प्रान्तों को भी वह तभी अपने अधिकार में कर सकेगा जब वह देखेगा कि ब्रिटेन अन्यत्र बुरी तरह फँसा हुआ है।

इस प्रकार चीन का राजनैतिक क्षेत्र इस समय ऐसी

ही दयनीय अवस्था को प्राप्त है। वहाँ एक के स्थान पर इस समय चार सरकारें स्थापित हैं—दक्षिण चीन में कैन्टन-सरकार, मध्य-चीन में राष्ट्रीय सरकार, पश्चिमी प्रान्तों में सोवियट-सरकार और उत्तरी चीन में स्वराज्य-सरकार है। इस तरह का विभक्त चीन यदि साम्राज्यवादी सरकारों का शिकार न होगा तो फिर और कौन-सा होगा? हाल में जापान ने उत्तरी चीन में जो कार्यवाही की है उस बात का बहाना लेकर इस समय चीन में आपस में ही बड़ा कलह हो गया है। आश्चर्य नहीं है कि वहाँ गृह-युद्ध न छिड़ जाय।

वायसराय और भारतीय किसान

वायसराय लार्ड लिनलिथगो जब से आये हैं, ग़रीब किसानों की ओर समुचित ध्यान दे रहे हैं। वे चाहते हैं कि जानवरों की नस्ल सुधरे जिससे खेती के लिए उपयुक्त पशु मिल सकें, साथ ही दूध-घी भी अधिक मात्रा में सुलभ हो सके। वे यह भी चाहते हैं कि किसानों के बच्चों को दूध प्राप्त हो ताकि वे अधिक दिन जीवित रहकर खेती-बारी अच्छी तरह कर सकें। उन्होंने शिमला के एक म्यूनिसिपल स्कूल के लड़कों को दूध पिलाकर इस बात की प्रेरणा की है कि बच्चों में दुग्ध-सेवन की प्रवृत्ति हो। उन्होंने प्रान्तीय सरकारों को यह आदेश किया है कि अधिकारी देहातों में दौरा कर किसानों की दयनीय अवस्था को देखें और उनकी दशा सुधारने का प्रयत्न करें, जानवरों की नस्ल सुधारने की व्यवस्था करें तथा बच्चों के दूध-सेवन का प्रचार करें। वायसराय के इन प्रयत्नों से यही व्यक्त होता है कि उनकी भारतीय दरिद्र प्रजा के प्रति असीम हार्दिक सहानुभूति है और उनके इस मनोभाव का प्रचार जितना ही अधिक व्यापक होता जा रहा है, उतना ही इस देश के दरिद्र जन आशान्वित होते जा रहे हैं। इस देश के किसानों को दिखाई पड़ने लगा है कि इस स्थिति में उनके दुःखों और कष्टों का अब अन्त होगा, क्योंकि जब वायसराय महोदय का इतना अधिक ध्यान उनकी बेहतरी की ओर है तब उनकी माली हालत की अधिक दिनों तक उपेक्षा न होगी और उन्हें भी उनके नैसर्गिक अधिकार प्राप्त होंगे। और जब तक उनकी माली हालत नहीं दुरुस्त होगी तब तक न तो उनके बच्चों को दूध ही प्राप्त हो सकता है, न उनके जानवरों की नस्ल ही सुधर सकती है। परन्तु वायसराय महोदय एक बार कृषि-कमीशन के प्रधान की हैसियत से यहाँ आ चुके हैं और उनको किसानों की इस अवस्था का सम्यक् ज्ञान है। यही कारण है जिससे भारतीय किसान अधिक आशान्वित हो रहे हैं। हम भी चाहते हैं कि वे सफल-मनोरथ हों।

कांग्रेस की अवस्था

पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने कार्य-क्षेत्र में आते ही कांग्रेस में नई जान डाल दी है और उसके तथा देश के आगे समाजवाद का ध्येय उपस्थित किया है। उनकी इस स्फूर्ति और उपदेश का जनता चाहे स्वागत करती हो, लेकिन लोक-नेता उनसे सहमत नहीं हैं। यही नहीं, इससे भारत की सबसे प्रधान संस्था कांग्रेस में फूट-सी हो गई है और उसमें स्पष्ट रूप से दो दल हो गये हैं, और सो भी उस समय जब देश में नया शासन-विधान प्रचलित होने जा रहा है। ऐसी दशा में कांग्रेस में मतभेद का बढ़ना वाञ्छनीय कैसे हो सकता है?

यह खुली बात है कि पण्डित जवाहरलाल नेहरू समाजवादी हैं, और इसी एक बात से उनका महात्मा जी तक से कुछ कुछ विरोध है। इधर जब पण्डित जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस के सभापति की हैसियत से समाजवाद का प्रचार करने लग गये हैं तब इस स्थिति का स्पष्ट करना महात्मा जी के अनुयायियों के लिए आवश्यक हो गया है। उस दिन छपरा में भाषण करके बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने समाजवाद का स्पष्ट शब्दों में निषेध ही नहीं किया है किन्तु यह बात भी सुझाई है कि वैसा करने से परस्पर मतभेद बढ़ेगा जो देश के हित का विघातक होगा।

यह बात लखनऊ की कांग्रेस में ही स्पष्ट हो गई थी कि पण्डित जवाहरलाल नेहरू अर्थात् समाजवादी अल्पमत में हैं और कांग्रेस में बहुमत महात्मा जी के अनुयायियों का है, जो समाजवादी दल के एकदम विरुद्ध हैं। और अब तो इन दोनों दलों में परस्पर संघर्ष होने की अवस्था

आ उपस्थित हुई है। कहाँ कांग्रेस ने ख़ुद अगला चुनाव लड़ने का निश्चय किया है, कहाँ अब उसके सूत्रधार आपस में ही लड़ लेना चाहते हैं। समाजवाद ठीक है या उसके विरोधियों का वाद ठीक है, इसका निश्चय जनता आप कर लेगी। इसके लिए कोई आपस में तू तू मैं मैं क्यों करे। नेहरू जी समाजवाद को ग़रीबी और बेकारी दूर करने का एक अव्यर्थ नुसखा बताते हैं। पर उनके आलोचक उनके समाजवाद की तो निन्दा करते हैं, पर इन महाव्याधियों से देश को मुक्त करने के लिए कोई उपाय नहीं बताते, उपाय करना तो अलग रहा। नरम दलवाले तथा सेठ-साहूकार ही नेहरू जी का विरोध करते, क्या कम थे कि कांग्रेस के सूत्रधारों को इस आपस कार्य की ओर ध्यान देना पड़ा। परन्तु नहीं, कांग्रेस अब विधानात्मक हो गई है और वह अपने उस निर्दिष्ट मार्ग से दूर नहीं जा सकती जिसका ज्ञान केवल उसके सूत्रधारों भर को है। वह एक संगठित संस्था है और उसका कार्य भी उसी तरह संगठित रूप से हो रहा है। और यदि उसकी इस अवस्था का पता जनता को नहीं है तो इसमें कांग्रेस का क्या दोष है?

वास्तव में जब से कांग्रेस ने अपना सत्याग्रह-आन्दोलन स्थगित किया है तब से उसमें सरकारी क़ानून-सभाओं से सहयोग करनेवालों का बोलबाला हो गया है। अभी तक कांग्रेस ने इन लोगों को सरकारी क़ानून-सभाओं में इस मतलब से जाने दिया था कि वे वहाँ जाकर सरकार से देश की लड़ाई लड़ेंगे और ऐसे क़ानून नहीं बनने देंगे जिनसे देशवासियों के नागरिक अधिकारों का अपहरण होता है। इस परिवर्तन से अब कांग्रेस में कर्मशूरों की अपेक्षा क़ानून-सभाओं में जानेवाले वाक्शूरों का बोलबाला हो गया है, यहाँ तक कि वे अब कांग्रेस पर इस बात के लिए अपना दबाव डाल रहे हैं कि वह अगली नई क़ानून-सभाओं में उन्हें सरकारी मंत्री भी बनने दे।

परन्तु कांग्रेस का वह दल जो सरकारी संस्थाओं से दूर रहकर निस्स्वार्थ भाव से लोक-सेवा करने का पक्षपाती है, अपने सहयोगियों के इस परिवर्तित मनोभाव का घोर विरोधी है। वह क़ानून-सभाओं में जाकर वाक्शूरता दिखलाने की अपेक्षा अपनी पहले की कर्मवीरता को ही महत्त्व दे रहा है। उसका कहना है कि इन क़ानून-सभाओं में जाने से कांग्रेस के असली उद्देश की सिद्धि [illegible] होगी। वह जनता के बीच रहकर काम करना [illegible] समझता है। कांग्रेस की इस समय ऐसे ही विचार-संघर्ष [illegible] अवस्था है।

अछूतों में शिक्षा का प्रचार

अछूतों के कुछ चुने हुए प्रतिनिधियों की एक [illegible] अभी हाल में नैनीताल में हुई थी। प्रान्तीय शिक्षा[illegible] सर ज्वालाप्रसाद श्रीवास्तव उसके अध्यक्ष थे। [illegible] अवसर पर उन्होंने जो व्याख्यान किया उसमें प्रकट [illegible] है कि अछूतों में शिक्षा का [illegible] प्रचार हो रहा [illegible] शिक्षामंत्री ने बताया है—

इस प्रान्त की जन-संख्या में अछूतों की आबादी [illegible] प्रतिशत है, और एक हज़ार अछूतों में केवल ६ [illegible] शिक्षित हैं। अछूतों की शिक्षा के लिए सरकार ने ७५[illegible] वार्षिक ख़र्च करने को अलग कर दिया है, और अ[illegible] सरकार ने कुल मिला कर २,२३,०००) की सहायता [illegible] है। इस धन में से अछूतों के लिए स्पेशल [illegible] वाचनालयों और पुस्तकालयों, रात्रि के स्कूलों और [illegible] आदि का प्रबन्ध किया गया है। ज़िला बोर्डों ने [illegible] काम के लिए ५० हज़ार रुपये दिये हैं। इसके अ[illegible] उदार सज्जनों ने भी अछूतों की शिक्षा के लिए बहु[illegible] दिया है।

सन् १९३२ में अछूतों के १,१३,००० लड़के [illegible] में पढ़ते थे, पर सन् १९३४ में यह संख्या बढ़कर १,३५[illegible] हो गई। सरकार ने सन् १९३३ के दिसम्बर मास में [illegible] शिक्षा-संस्थाओं के नाम एक सर्कुलर जारी किया, [illegible] यह लिखा गया कि सरकार की यह नीति है कि [illegible] लड़का स्कूलों में केवल इसलिए भर्ती करने से न [illegible] जाय कि वह नीच जाति का है। इस समय अछू[illegible] लिए इस प्रान्त में ६४ स्पेशल स्कूल हैं, और अछूत [illegible] कियों के लिए ५ स्कूल हैं, जो साइंस्ट्रक्ट एजन्सियों के [illegible] चलते हैं और सरकार उनकी सहायता करती है। [illegible] अतिरिक्त सरकार ने रात्रि के स्कूलों के लिए ५[illegible] वार्षिक देने की मंज़ूरी दी है।

इस प्रान्त में ४८ ज़िला-बोर्ड और ८५ म्यूनिसिपैलिटियाँ हैं। नौ म्यूनिसिपैलिटियों और सब ज़िला-बोर्डों में जितने सुपरवाइज़र हैं उनमें से ४६ अछूत और तीन पिछड़ी हुई श्रेणियों में से हैं। उनका मुख्य कर्तव्य यह है कि वे अपनी अपनी जातियों के बीच जाकर लोगों को स्कूलों के फ़ायदे बतायें, और उनके अन्य स्वार्थों का भी ध्यान रक्खें। शिक्षा पानेवाले अछूत लड़कों और लड़कियों की संख्या इसलिए बढ़ी है कि उन्हें ४५,०००) की छात्रवृत्तियाँ दी गई हैं। व्यापारी और टेकनिकल स्कूलों में शिक्षा पाने के लिए सरकार ने २५ प्रतिशत छात्रवृत्तियाँ केवल अछूत लड़कों के लिए रक्खी हैं। देशी भाषाओं के प्रारम्भिक स्कूलों में अछूत विद्यार्थियों से कोई फ़ीस नहीं ली जाती, और मिडिल वर्नाक्युलर स्कूल में भी उनके लिए बहुत उदारता से काम लिया जाता है।

स्वर्गीय सर राजेन्द्रनाथ मुकर्जी

कलकत्ते के प्रसिद्ध उद्योगधन्धी सर राजेन्द्रनाथ मुकर्जी का गत मई महीने में ८२ वर्ष की उम्र में स्वर्गवास हो गया। वे एक-मात्र अपने अध्यवसाय और प्रतिभा की बदौलत अपार धन तथा प्रतिष्ठा प्राप्त करने में समर्थ हुए थे। उनका जन्म किसी सम्पन्न कुल में नहीं हुआ था। उनके पिता भी उनकी बाल्यावस्था में ही स्वर्गवासी हुए थे। अतएव उनकी जो कुछ शिक्षा-दीक्षा हुई थी, केवल माता की देख-रेख में तथा उनकी प्रेरणा से ही हुई थी। उन्होंने कलकत्ता के इंजीनियरिंग कालेज में शिक्षा पाई थी, पर वे डिगरी नहीं प्राप्त कर सके थे। तथापि उन्हें इंजीनियरिंग का इतना बढ़ा-चढ़ा ज्ञान हो गया था कि इसके द्वारा अपने जीवन में उत्तरोत्तर उन्नति ही करते गये। अन्त में कलकत्ते क्या, बंगाल के प्रमुख कारबारी हो गये।

मुकर्जी महोदय बड़े उदार प्रकृति के भी थे, और उन्होंने अपने धन का सदा सद्व्यय ही किया। बंगाल और आसाम की पिछड़ी हुई जातियों के सुधार की प्रमुख संस्था की वे पुष्कल धन से बराबर सहायता करते रहे और यद्यपि उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से राजनीति में भाग नहीं लिया, तो भी वे माननीय गोखले जैसे लोगों की अर्थ से सदा सहायता करते रहे। चित्तरंजन-सेवा-सदन के निर्माण में भी उन्होंने काफ़ी धन से सहायता की थी। अपने ऐसे सद्गुणों से वे अत्यधिक लोकप्रिय हो गये थे। सरकार के घर में भी उनका यथेष्ट आदर-सत्कार था। 'सर' की उपाधि देकर सरकार ने उनको प्रकट रूप से समादृत किया था। ऐसे कर्मवीर और परोपकारी सज्जन के तिरोभाव से समाज में एक ऐसे व्यक्ति का अभाव हो गया है जिसकी पूर्ति एकाएक नहीं हो सकती।

नये चुनाव का संघर्ष

नये शासन-विधान के अनुसार इस बार प्रान्तीय कौंसिलों आदि का जो नया चुनाव होगा वह बहुत महत्त्वपूर्ण होगा। इस बार के चुनाव में कांग्रेस भी भाग लेगी। कांग्रेस के सिवा नरमदल, प्रतिसहयोगवादी, हिन्दू-महासभा, वर्णाश्रम-स्वराज्य-संघ, मुस्लिम-लीग, यू० पी० की एग्रीकलचरिस्ट पार्टी, सिक्ख आदि अनेक दल इस चुनाव में भाग लेने की तैयारी में लगे हुए हैं। उनके सिवा भिन्न भिन्न प्रान्तों में और भी कितने ही दल बनेंगे, जो चुनाव में भाग लेंगे। परन्तु इनमें मुस्लिम-लीग को छोड़कर अभी तक किसी के निर्वाचन-बोर्डों का संगठन नहीं हुआ है और न उनके उद्देशों का ही पता लगता है। कांग्रेस कहती है कि उसके सदस्य नये शासन-विधान को तोड़ने के लिए कौंसिलों में जायँगे। परन्तु अभी यह भी निश्चित नहीं है। यह भी पता नहीं है कि वह केवल हिन्दू-सीटों से ही अपने उम्मेदवार खड़ा करेगी या इस बार वह मुसलमानों की सीटों से भी अपने उम्मेदवार खड़ा करेगी। तथापि भीतर ही भीतर उसके सूत्रधार इस सम्बन्ध में अपना कार्य नियमपूर्वक कर रहे हैं। कांग्रेस के बाद नरमदल तथा हिन्दू-सभादल हैं। इनमें नरमदलवाले तो संगठित हैं, पर वे व्यापक रूप से देश का निर्वाचन लड़ सकेंगे, इसकी आशा नहीं है। हिन्दू-सभा का ज़ोर यदि वह ज़ोर कहा जाय तो केवल पंजाब में है और वर्णाश्रम-स्वराज्य-संघ का तो उतना भी प्रभाव नहीं है। उधर सिक्खों में भी दो दल हैं। प्रतिसहयोगवादियों का जो कुछ प्रभाव है वह महाराष्ट्र में ही है। और इन सभी दलों के उम्मेदवार कांग्रेस के उम्मेदवारों के आगे वोट पा सकेंगे, इसमें काफ़ी सन्देह है। हाँ, पंजाब में हिन्दू-सभा के और संयुक्तप्रदेश में तालुक़दारों (एग्रीकलचरिस्ट पार्टी) के उम्मेदवारों का पक्ष प्रबल पड़ेगा। इस तरह अगले

चुनाव में कांग्रेस को भारी संघर्ष का सामना करना पड़ेगा। और कदाचित् यही कारण है कि ये सभी दल अभी जल्दी मैदान में नहीं आ रहे हैं। ऐसी दशा में मुस्लिम-लीग के सर्वेसर्वा श्रीयुत जिन्ना का साहस प्रशंसनीय है कि उन्होंने अपना चुनाव-बोर्ड भी बना लिया है, जिसके सभापति श्रीयुत जिन्ना, कोषाध्यक्ष महमूदाबाद के राजा साहब और मंत्री श्रीयुत अब्दुल मतीन चौधरी हैं। चुनाव लड़ने का अपना उद्देश बोर्ड ने यह घोषित किया है—

(१) मुसलमानों के धार्मिक अधिकारों की रक्षा करना। शुद्ध धार्मिक प्रश्नों पर जमैयतुल उलमाये हिन्द तथा मुजतहिदों के मतों पर पूरा विचार किया जायगा।

(२) सब दमनकारी क़ानून रद कराने की पूरी कोशिश करना।

(३) भारतहित-विरोधी, स्वतन्त्रता हरण करनेवाले तथा देश का आर्थिक शोषण करानेवाले सब प्रस्तावों को अस्वीकृत करना।

(४) केन्द्रीय तथा प्रान्तीय शासन का भारी ख़र्च घटाना, राष्ट्रनिर्माण के विभागों को पर्याप्त धन दिलाना, भारतीय सेना का भारतीयकरण तथा सैनिक व्यय घटाना।

(५) उद्योग-धन्धों की जिनमें घरेलू उद्योग-धन्धे भी शामिल रहेंगे, मुद्रा-विनिमय और भाव का इस प्रकार नियन्त्रण करना कि देश की आर्थिक दृष्टि से उन्नति हो।

(६) ग्रामों की जनता की सामाजिक, शिक्षा-सम्बन्धी तथा आर्थिक दशा के सुधार का समर्थन करना, ऋणी कृषकों की सहायता के लिए क़ानून बनवाने का प्रयत्न करना तथा प्रारंभिक शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य बनाना।

(७) उर्दू-भाषा और लिपि की रक्षा और उन्नति करना, मुसलमानों की साधारण स्थिति के सुधार का उपाय करना, क़र्ज़ का भारी बोझ हलका करने के लिए कारवाई करना, देशहित के अनुकूल लोकमत तैयार करना और सारे देश में राजनैतिक जागृति करना।

स्वर्गीय प्रिंसिपल सी० ए० किंग

काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय के इञ्जीनियरिङ्ग कालेज के प्रिंसिपल श्री चार्ल्स ए० किङ्ग का ११ मई सन् १९३६ को स्वर्गवास हो गया। उनकी मृत्यु से हिन्दू-विश्वविद्याल की बहुत बड़ी क्षति हुई है।

प्रिंसिपल किंग पहले कलकत्ते के शिवपुर-इञ्जीनियरि कालेज में थे। वहाँ से वे हिन्दू-विश्वविद्यालय में आ जहाँ १७ वर्ष तक कार्य किया। उन्होंने यहाँ के इञ्जीनियरि कालेज को अपने अदम्य उत्साह, विवेक-बुद्धि और लग से बहुत ही उन्नत किया और उसे एक ऊँची श्रेणी क कालेज बना दिया। विद्यार्थियों के लिए उनका द्वार स खुला रहता था।

वे बहुत ही खुले हाथ थे। यूनिवर्सिटी की कि संस्था का चन्दा लेने कोई जाता, ख़ाली हाथ नहीं लौट था। बिना किसी भेदभाव या धार्मिक पक्षपात के वे स संस्थाओं के उत्सवों में भाग लेते थे। वे बड़े विनोदप्रि और हँसमुख थे। साठ वर्ष की अवस्था के होने पर उनमें युवकों का-सा उत्साह और स्फूर्ति थी।

वे भारतीय राष्ट्रीयता का भी आदर करते थे। ए बार उनसे इञ्जीनियरिङ्ग कालेज-भवन के ऊपर से राष्ट्री झण्डा उतरवा देने को कहा गया। उन्होंने कहा— "यह नहीं हो सकता। मैं जब तक प्रिंसिपल हूँ तब त भारतीय राष्ट्र के झण्डे का अपमान नहीं होने दूँगा मैं उसका उतना ही आदर करता हूँ, जितना कोई रा अपने झण्डे का।" ईसाई होते हुए भी उन्हें हिन्दू-ध से बड़ा प्रेम था।

अपने जीवन का विशिष्ट भाग उन्होंने हिन्दू-विश्व विद्यालय में बिताया और वहीं उनकी मृत्यु हुई। भगवा प्रिंसिपल किङ्ग की आत्मा को सद्गति दें और उनक विधवा धर्मपत्नी को धैर्य।

हिन्दी का अभ्युदय

हिन्दी के सौभाग्य से इस वर्ष हिन्दी में बड़े बड़े लोग का आगमन हुआ है और उन्होंने उसमें व्यावहारि सहयोग ही नहीं किया है, किन्तु उसके अभ्युदय तथ उसके रूप के विकास के लिए व्यावहारिक योजनायें उप स्थित की हैं तथा उनको कार्य का रूप देने का समुचि प्रयत्न भी कर रहे हैं। इसे हम हिन्दी के लिए कल्याण कर समझते हैं और बीसवीं सदी के प्रारम्भिक तीन दशक

के बाद भी यदि उसके कार्यक्षेत्र में यह आयोजन न दिखाई देता तो फिर और कब दिखाई देता। इन दशकों में हमारे हिन्दी के उन्नायकों ने अपने परिश्रम से हिन्दी को उस स्थिति तक पहुँचा दिया है कि आज देश के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति तक उसके हितार्थ अपना कुछ अमूल्य समय दे देना व्यर्थ नहीं समझते। हमारे हिन्दी के उन उन्नायकों का कार्य कितना महत्त्वपूर्ण था, यह बात उसका एक अच्छा प्रमाण है।

परन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि वर्तमान समय के हिन्दीवालों का ध्यान अपनी इस नई शक्ति की ओर नहीं गया है। ध्यान देने की कौन कहे, उनमें से कुछ तो उसे सन्देह की दृष्टि से देख रहे हैं और सहयोग के स्थान में उसके साथ असहयोग करना ही श्रेयस्कर समझ रहे हैं। माना कि वे उनकी उपर्युक्त आयोजनाओं से असहमत हैं, उन्हें उनके क्रान्तिकारी परिवर्तन स्वीकार नहीं हैं, परन्तु उनका उनसे असहयोग करना तो हिन्दी के हित का काम नहीं होगा। वे आयोजनायें कार्य में परिणत की जायँगी, और उन्हें बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त होगी। उस दशा में उनका यह असहयोग बेकार ही नहीं सिद्ध होगा, किन्तु उनके प्रिय सिद्धान्तों को भी उस बात से काफ़ी ठेस पहुँचेगी।

और जाने दीजिए, वे कम से कम इन आदरणीय आगन्तुकों के सहयोग से साहित्य-रचना का कार्य तो कर ही सकते हैं। उदाहरण के लिए हिन्दी के दो-चार विद्वान् भारतीय इतिहास की रचना का काम वर्षों से कर रहे हैं। आवश्यकता है कि ये सब मिलकर भारत का एक सिलसिलेवार प्रामाणिक इतिहास लिख डालें। एक इस या इस तरह के दूसरे कार्यों के करने में यदि हमारे हिन्दी के महारथी उन लोगों के सहयोग को प्राप्त करें तो वह उन्हें अवश्य प्राप्त होगा, और इस तरह वे हिन्दी का अपार हित कर सकेंगे। परन्तु यह सब कुछ न करके वे उन महानुभावों के हिन्दी के क्षेत्र में आ जाने से भयभीत-सा हो उठे हैं। नहीं तो जहाँ उन्हें उनकी शक्ति का उपयोग कर हिन्दी का हित करना चाहिए था, वहाँ वे उनकी विपरीत आलोचना करके उनका उपहास करने में ही अपनी हिन्दी का हित न समझते। जो हिन्दी-भाषी अँगरेज़ी के विद्वान् हिन्दी में अच्छा लिखना, पढ़ना और बोलना जानते हुए भी हिन्दी के साहित्य को पढ़ने को इनकार करते हैं, वही अपने इन नेताओं के आदेश से उसी हिन्दी की सेवा करने को बद्धपरिकर हैं जिसकी वे अभी कल तक उपेक्षा करते थे। बड़े परिताप की बात है कि इस अघटघटना का महत्त्व हम इस समय नहीं आँक रहे हैं और लिपि आदि जैसे पुराने पचड़े को उठाकर कलह का बीज बोने में उत्साह दिखा रहे हैं। और सबसे अधिक आश्चर्य तो इस बात का है कि इस दिशा में वही लोग अधिक व्यस्त दिखाई दे रहे हैं जो हिन्द की कर्मभूमि में हिन्दी के महारथी कहलाते हैं।

स्वर्गीय श्रीयुत पूर्णचन्द्र जी नाहर

कलकत्ते के प्रसिद्ध पुरातत्त्व-प्रेमी श्रीयुत पूर्णचन्द्र जी नाहर का हाल में स्वर्गवास हो गया। नाहर जी की उम्र



[स्वर्गीय श्रीयुत पूर्णचन्द्र जी नाहर]

६० वर्ष की थी। ये बड़े साहित्यानुरागी और विद्वज्जन-प्रेमी थे। इन्होंने कलकत्ते में अपने दिवंगत भाई श्रीकुमारसिंह जी

नाहर बी० ए० की यादगार में एक संग्रहालय स्थापित किया है। यह संग्रहालय इनके अदम्य उत्साह और घोरपरिश्रम का एक सुन्दर उदाहरण है। इसमें बहुमूल्य मूर्तियाँ, चित्र तथा हस्तलिखित पुस्तकें संग्रह की गई हैं, जो पुरातत्त्व की दृष्टि से बहुमूल्य तथा दुर्लभ हैं। अधिकांश सामग्री जैन-धर्म से सम्बन्ध रखती है। नाहर जी ने अपनी माता श्रीमती गुलाबकुमारी की स्मृति में 'गुलाबकुमारी-पुस्तकालय' की भी स्थापना की है। इसमें ५,००० हज़ार से अधिक हस्तलिखित ग्रन्थ हैं। इस पुस्तकालय में १० हज़ार से अधिक पुस्तकें होंगी। नाहर जी इतिहास और जैन-धर्म के सम्बन्ध में अँगरेज़ी, बँगला और हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में लेख भी लिखा करते थे। वे बड़े विनम्र, सरल और उदार स्वभाव के थे। उनके चार पुत्र और पाँच कन्यायें हैं, जो सभी पूर्ण रूप से शिक्षित हैं। नाहर जी के निधन से एक सहृदय साहित्यानुरागी सदा के लिए उठ गया। इस दुःख के अवसर पर हम नाहर जी के परिवार के प्रति समवेदना प्रकट करते हैं।

बंगाल के एक विद्वान् ज्योतिषी

बंगाल-सरकार के ज्योतिषी राय साहब पण्डित कैलाशचन्द्र ज्योतिषार्णव अपने विषय के पारगामी विद्वान् हैं। हिन्दुओं, मुसलमानों तथा ईसाइयों के त्योहारों की ठीक ठीक तारीखें निश्चित करने का काम इन्हीं के सिपुर्द है। ये गणित करके उक्त त्योहारों की तारीखें पहले से ही निकाल कर बंगाल-सरकार के अधिकारियों को बता देते हैं। तदनुसार वे उन त्योहारों की छुट्टियों की तारीखें छापकर प्रकाशित करते हैं। पण्डित जी का गणित इतना ठीक उतरता है कि इनकी बताई हुई त्योहारों की तिथियों में कभी भूल नहीं हुई। और ज्योतिषी जी सरकार का यह कार्य अवैतनिक करते हैं। उन्होंने स्वर्गीय सम्राट् जार्ज की जन्म-पत्री भी बनाई थी। जब सम्राट् सन् १९११ में भारत आये थे और कलकत्ता गये थे तब उन्हें सम्राट् की जन्म-पत्री बनाने का आदेश मिला था। तत्कालीन वायसराय लार्ड हार्डिंज के प्राइवेट सेक्रेटरी ने सम्राट् की जन्मतिथि नक्षत्र आदि कुण्डली बनाने की आवश्यक बातें उन्हें बतलाई थीं। जन्म-पत्री बन जाने पर अन्यान्य बातों के साथ साथ ज्योतिषी जी ने सम्राट् की १९२८ की भीषण बीमारी भी बात बताई थी। जब लार्ड हार्डिंज बम्ब से घायल थे तब उन्होंने लेडी हार्डिंज के पूछने पर बताया था वायसराय के प्राणों की जोखिम नहीं है। १९१ महायुद्ध के होने की भी भविष्य-वाणी उन्होंने की वे सरकार में तथा जनता में अपने ज्योतिष के पाण्डि लिए समान रूप से समादृत हैं। ऐसे ही कुछ विद्वान् बदौलत आज भी कुछ लोग भारतीयों के प्राचीन शा थोड़ी-बहुत आस्था रखते हैं, नहीं तो पाखंडियों ने तो अब कहीं का नहीं रक्खा है।

स्वर्गीय श्री अब्बास तैयब जी

डाक्टर अंसारी की मृत्यु का अभी लोग शो मना रहे थे कि श्री अब्बास शम्सुद्दीन तैयब जी का भी महीने में स्वर्गवास हो गया। स्वर्गीय तैयब जी उन लो में थे जो पीछे रहकर ही काम करने में बड़प्पन स थे। वे महात्मा जी के अनन्य भक्तों में थे और हिन्दू-मु एकता के हामी थे।

तैयब जी का जन्म एक सम्पन्न परिवार में हुआ था ११ वें वर्ष की उम्र में ही वे पढ़ने के लिए विलायत भेज गये थे, जहाँ से वे पूरी शिक्षा पाकर बैरिस्टर होकर को लौटे। यहाँ उन्होंने अन्त में बड़ौदा में हाईकोर्ट का सन् १८९३ से १९१३ तक काम किया। इसके उनकी पेंशन हुई। बाद को जब महात्मा जी ने असह आन्दोलन शुरू किया तब इन्होंने उस आन्दोलन में मन से सहयोग किया। पंजाब-हत्याकांड के ग़ैर-सरकारी कमीशन में भी इन्होंने काम किया था। भर्सना के सत्याग्रह में नेतृत्व करने के कारण इन्हें भी जेल हुई इस समय ये ८४ वर्ष के थे। स्वभाव के सरल, निश्चय के थे। इनकी मृत्यु से वास्तव में एक बहु अनुभवी लोक-नेता का अभाव हो गया है।

कुछ जानने योग्य आँकड़े

(१) भारत की आर्थिक दशा—सन् १९३४ के महीने में भारत-सरकार का ऋण १,२२३ करोड़ ९०

रुपया था। इसमें ७५७ करोड़ ३० लाख रुपया भारत के सरकारी रेल-विभाग में लगा है। परन्तु रेल-विभाग का ख़र्च काटकर आमदनी में जो रुपया बचता है उससे उस क़र्ज़ का ब्याज भी अदा नहीं होता। सन् ३०-३१ में २,७५३ लाख रुपया बचा था तब ३,२७२ लाख ब्याज का देना था, ३१-३२ में २,३८७ लाख बचा था तब ३,३०७ लाख ब्याज देना था, सन् ३२-३३ में २,२६८ लाख बचा था तब ३,२९१ लाख ब्याज देना था, सन् ३३-३४ में २,४६२ लाख बचा था तब ३,२५८ लाख देना था। सन् ३४-३५ में २,७६० लाख बचा था तब ३,२५८ लाख देना था। सन् ३५-३६ में २,९७१ लाख के बचने की आशा है तब ३,१६१ लाख ब्याज के देने की सम्भावना है। भारत की आर्थिक अवस्था का यह एक सुन्दर उदाहरण है।

(२) बेकारों के काम की बात—भारत के बेकार यदि दूध-घी का व्यापार उठा लें तो उनका अर्थ-संकट भी टल सकता है और देश का भी बहुत लाभ हो सकता है। जिस भारत में दूध-दही की नदियाँ बहती थीं वह आज यही वस्तुएँ बाहर से भी मँगा रहा है। भारत में ३४-३५ में ५ लाख २३ हज़ार रुपये का मक्खन, ८ लाख ४३ हज़ार का पनीर, १३ लाख ६७ हज़ार के दूध से बने खाद्य, १४ हज़ार का घी और ४८ लाख ३६ हज़ार का जमा हुआ दूध विदेशों से आया है। यह कितने खेद की बात है कि इस व्यवसाय के बढ़ाने की ओर हमारा ध्यान नहीं जाता है।

(३) विलायती कपड़े के आँकड़े—१९३४-३५ के विवरण से पता चलता है कि भारत में विलायती कपड़े और सूत की खपत बढ़ गई है। प्रमाण के लिए ३३-३४ और ३४-३५ में इँग्लेंड से भारत आये हुए कपड़े और सूत के निम्न आँकड़े हैं—

सन् १९३३-३४

नक़ली रेशमी सूत	१२,९०,००० रु०
" " कपड़े	१८,२०,००० "
सूत	९५,७८,००० "
सूती कोरे कपड़े	१,३४,९६,००० "
सूती धुले कपड़े	३,६८,९८,००० रु०
" रङ्गीन "	३,६४,११,००० "
" विविध "	८८,२५,००० "

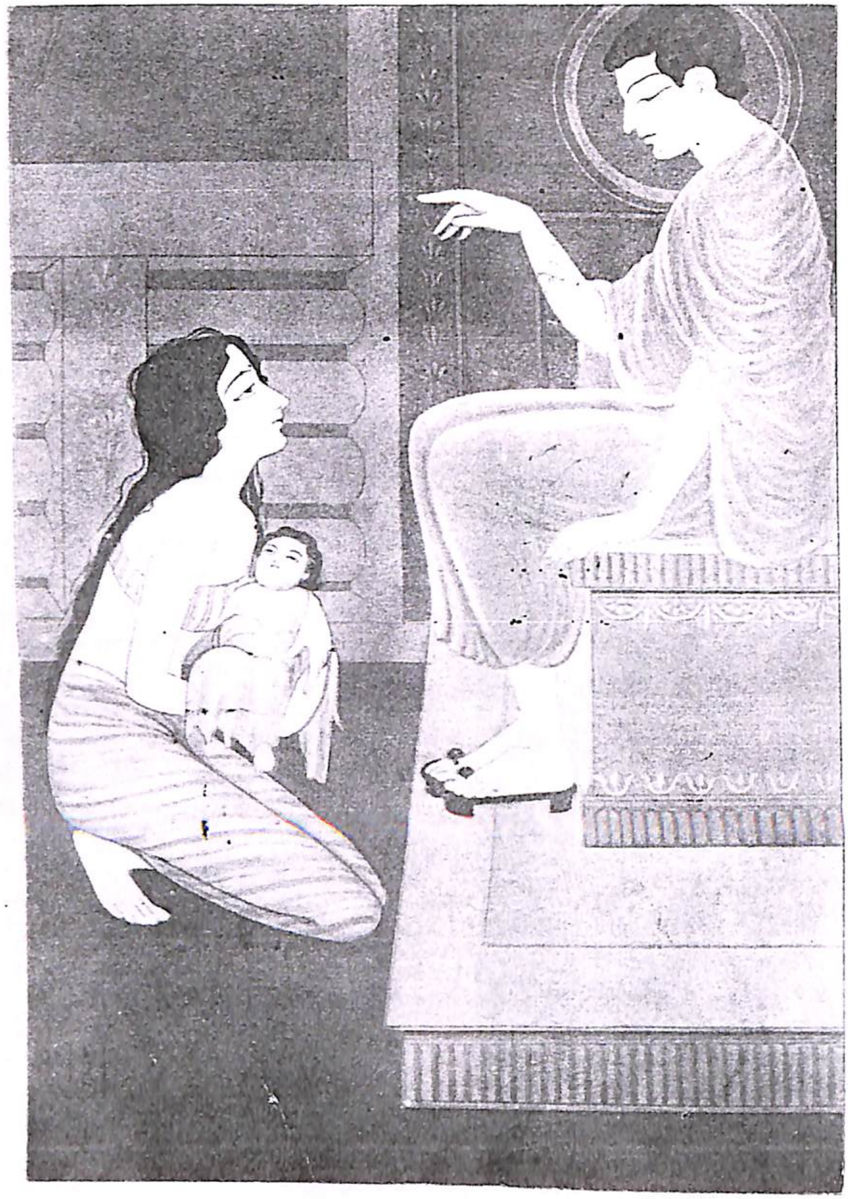
सन् १९३४-३५

नक़ली रेशमी सूत	६,९३,००० रु०
" " कपड़े	९७,८७,००० "
सूत	१,०९,४८,००० "
सूती कोरे कपड़े	१,५७,९९,००० "
" धुले "	४,५०,६२,००० "
" रङ्गीन "	५,०४,७९,००० "
" विविध "	८४,६३,००० "

(४) संसार के व्यवसाय-वाणिज्य की दशा—संसार के व्यवसाय-वाणिज्य का परिमाण क्रमशः गिर रहा है। यहाँ तक कि १९३४ में यह १९२९ का एक तिहाई रह गया है। सन्तोष की बात है कि आयात-निर्यात के कम होने की औसत १९३३-३४ में बहुत कम हो गई है। शायद अगले २-३ वर्षों में ऊपर भी चढ़ जाय। इस बात का नीचे की तालिका से ज्ञान हो जाता है—

१९२९	६,८६०	करोड़	६०	लाख	स्वर्ण डालर
१९३०	५,५५५	"	९०	"	"
१९३१	३,९७०	"	३०	"	"
१९३२	२,६८६	"	७०	"	"
१९३३	२,४२२	"	४०	"	"
१९३४	२,३३१	"	५०	"	"

Printed and Published by K. Mittra at the Indian Press Ltd., Allahabad.



बुद्ध और गौतमी

[चित्रकार, श्रीयुत बाणीकान्त दास



सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

अगस्त १९३६ } भाग ३७, खंड २
संख्या २, पूर्ण संख्या ४४० { श्रावण १९

मेरे मन घन आज घिरे हैं !

लेखक, श्रीयुत रामनाथ 'सुमन'

मेरे मन घन आज घिरे हैं।

इनमें विद्युत-सी मत चमको,
हँसो नहीं, रोने दो हमको।
अब भी कसक कलेजे में है, अब भी वे सब घाव हरे हैं।
मेरे मन घन आज घिरे हैं।

तम से प्राण लपेट लिये हैं,
जग के दीप समेट लिये हैं।
अब जीवन-नभ की ऐ चंदा,
मत उग मेरे नैन सिये हैं।
प्राणों के लाले छालों में जलते मौन प्रवाह भरे हैं।
मेरे मन घन आज घिरे हैं।

तुम भूली, जग-माया भूली,
अब तुम आई तो वह जागी।
इतना ही क्या अरे न बस था,
जो तुम चली जलाने आगी।
कोयल कहाँ पराग रहा, अब जीवन के पत्ते वि
मेरे मन घन आज

मैं बेहोशी में जीता हूँ,
अपने में तुमको पीता हूँ।
चुप, न कहीं मेरा मन कह दे,
मैं प्यासा हूँ, मैं रीता हूँ।
विकल न होना, जगत्-दृष्टि से अपने जीवन-सत्य
मेरे मन घन आज

अबी-सीनिया के पराभव की कथा

लेखक, श्रीनाथसिंह



[अबीसीनिया के सम्राट् किंग डेविड होटल में काग़ज़ी लड़ाई के द्वारा अपना खोया हुआ राज्य वापस पाने का प्रयत्न कर रहे हैं। उनकी पुत्री इस कार्य में उनकी सहायक है।]

इटली के हवाई जहाज़ों ने अडोवा पर ३ आक्टोवर सन् १९३५ को बम गिराये थे। उस दिन सम्राट् हेल सेलासी के पास एक छोटे क़द का अबीसीनियन बैठा था। यह व्यक्ति लड़ाई के दिनों में सम्राट् के पास बराबर रहा और जब वे युद्ध में हार जाने से भागे तब भी यह उनके साथ रहा। यरूसलम के एक होटल में इस व्यक्ति ने विलायत के 'संडे एक्सप्रेस' नामक प्रसिद्ध पत्र के विशेष प्रतिनिधि श्रीयुत ओ० डी० गैलेघर से अबीसीनिया के संकट की सारी दर्दनाक कहानी कही। श्रीयुत गैलेघर भी अबीसीनिया में सम्राट् के पास रहते थे और उन्हीं के साथ यरूसलम आये थे। इन्होंने उस कहानी को अपने शब्दों में लिखकर 'संडे एक्सप्रेस' में हाल में छपाया है। इन्होंने अबीसीनिया का बहुत कुछ हाल अपनी आँखों से देखा है, इसलिए इनके वर्णन में बड़ी सजीवता आ गई है। वह कहानी इस प्रकार है जिसका सारांश हम यहाँ 'लीडर' से दे रहे हैं

आदिस अबाबा में खलबली मची हुई थी। अबीसीनिया के रणबाँकुरे इटली से मोरचा लेने के लिए अपनी ताल ठोंक रहे थे। १८९६ में अबीसीनियनों ने अडोवा में इटली की फ़ौजों को बकरों के झुंड की तरह काट डाला था। वह कहानी उनकी ज़बान पर थी। उस युद्ध का विजेता बूढ़ा रास मुलगट्टा अभी जीवित था। बूढ़े शेर की तरह वह फिर माँद से निकला। उसके साथ निकले उसके एक लाख मौत से न डरनेवाले जवान। उनके हाथ में १८९२ की बनी बन्दूकें थीं और उसी समय के पुराने कारतूस थे। मुलगट्टा ने इस सेना की सम्राट् हेल-सेलासी के महल के सामने क़वायद कराई और उनसे युद्ध-क्षेत्र में जाने के लिए विदा माँगी।

सम्राट् के पास बहुत-से समाचार-पत्रों के संवाददाता खड़े थे। रास मुलगट्टा ने तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से उन्हें देखते हुए सम्राट् से पूछा—

"ये गोरट्टे कौन हैं? इनका यहाँ क्या काम है? मेनलिक इन्हें अपने पास कभी खड़ा नहीं होने देता था। मैं बूढ़ा हुआ। युद्ध में जाने की मेरी उम्र नहीं है। पर मैं इन कुत्तों को एक बार चबा चुका हूँ। मैं इनको फिर चबा



[अबीसीनिया के सम्राट् यरूसलम में आने के समय। आगे आगे सम्राज्ञी हैं और उनके पुत्र पीछे हैं।]

लूँगा। मेनलिक के समय में मैं जवान था। अब वह बल नहीं रहा। मैं इस बार जीता नहीं लौटूँगा...।"

बूढ़े सेनापति की यह भविष्यवाणी सच निकली। वह सचमुच युद्ध-क्षेत्र से नहीं लौटा और उसके गिरते ही अबीसीनियनों के पैर उखड़ गये।

सम्राट् ने सलाह दी थी कि तुम आगे आगे रहना और इसके उत्तर में इस बूढ़े ने कहा था—"हाँ, हाँ, मेनलिक खच्चर पर चलते थे। मैं भी ऐसा ही करूँगा।" एक महीने में वह अपने मोरचे पर पहुँच गया। अब उसे जल्दबाज़ी करने की ज़रूरत नहीं थी।

युद्ध-क्षेत्र में पहुँचते ही उसने रौद्र रूप धारण किया, भीषण मारकाट शुरू कर दी। वह स्वयं शैतान का अवतार बन गया। देश की स्वाधीनता और अपने एक वादे के सिवा उसके लिए कोई वस्तु पवित्र नहीं थी।

राजनीतिज्ञ हेल सेलासी ने अनुभव किया कि क़ैदियों और घायलों का निर्दयतापूर्वक वध करने से इटालियनों को संसार की सहानुभूति प्राप्त करने का एक बहाना मिल जायगा, इसलिए उन्होंने मुलगट्टा से ऐसे वध के रोकने का वचन ले लिया था। मुलगट्टा ने युद्धमंत्री की हैसियत से आज्ञा निकाल दी कि जो अबीसीनियन योद्धा घायल या क़ैदी शत्रु का अङ्गच्छेद करेगा उसे प्राणदण्ड मिलेगा। मुलगट्टा अपने इस वादे पर तब भी क़ायम रहा जब इटालियनों ने गैस का प्रयोग आरम्भ किया। बाद को अन्य अबीसीनियन सरदारों ने सम्राट् की भर्त्सना की और इस नीति को उनकी कमज़ोरी बताया। उन्होंने कहा कि सम्राट् स्त्री की भाँति कायर हैं, क्योंकि बिना निर्दयतापूर्वक वध के शत्रु के आदमियों का आगे बढ़ने का साहस कम नहीं होगा।

परन्तु मुलगट्टा अपने वादे पर क़ायम रहा, यद्यपि हेल सेलासी की यह कमज़ोरी उसने मेनलिक में नहीं देखी थी और इसके लिए उसे बराबर दुःख रहा।

इसी बीच में वर्षा आरम्भ हो गई। ठंड और नमी से वह बूढ़ा युद्ध-मंत्री अपनी रक्षा न कर सका। उसे निमोनिया हो गया। उसे एक डाक्टर की ज़रूरत पड़ी। गोरों से घृणा करनेवाले को क्या गोरे डाक्टर से इलाज कराना पड़ेगा?......।



[नरव्याघ्र रास सेयूम ।]

हेडक्वार्टर को एक डाक्टर भेजने के लिए सूचना दी गई। परन्तु वहाँ से कोई डाक्टर न आ सका। इन जङ्गली फ़ौजों में सिर्फ़ एक ही गोरा डाक्टर घुसने का साहस कर सकता था और वह उस समय उत्तरी-पश्चिमी मोरचे पर था। इसलिए मुलगट्टा का इलाज देशी डाक्टरों ने शुरू किया। वह अच्छा हो गया, पर उसमें वह बल न आया जो पहले था।

इसी बीच में उसके पुत्र को गोली लगी और मुलगट्टा को एक बार फिर गोरे डाक्टर की माँग करनी पड़ी। इस बार एक गोरा डाक्टर पहुँचा। वह आयरिश था। नाम था कैप्टन मेरिअस ब्रोफ़िल। यह डाक्टर मुलगट्टा की सेनाओं के साथ ही आया था। इसने खाई के पीछे अस्पताल खोल रक्खा था और उसमें युद्ध-क्षेत्र के घायलों को ले जाकर रखता था।

रास मुलगट्टा का मरणोन्मुख पुत्र एक गुफा में लाया गया, जिसमें कैप्टन ब्रोफ़िल का सफ़री बिस्तर था। उसी बिस्तर पर वह लिटा दिया गया। बूढ़ा पिता पास ही एक संदूक़ पर बैठ गया। कैप्टन ब्रोफ़िल ने उस नवयुवक की चिकित्सा की, पर वे उसकी जान न बचा सके।

बूढ़ा मुलगट्टा अपने पुत्र की मृत्यु पर रो पड़ा। मोमबत्तियों के कम्पित प्रकाश में कैप्टन ब्रोफ़िल ने यह करुण दृश्य देखा। इसे वे कभी [illegible]......।

उन्होंने उसके पुत्र की लाश एक पानी से भरे चहबच्चे में दफ़ना दी। और मुलगट्टा ने अपना युद्ध जारी रक्खा। उसे फिर निमोनिया हो गया। उसने फिर अपनी चिकित्सा कराई और लड़ना शुरू किया। अन्त में उसके सीने पर गोली लगी और वह अपने सख़्त बिस्तर पर अन्तिम बार लेटा। उसे तीव्र ज्वर हो आया और उसने बेहोशी की हालत में इटालियनों को अभिशाप देते हुए प्राण-त्याग किया।

उत्तरी मोरचे पर जो फ़ौजें बिखरी हुई थीं उनको एक में आबद्ध कर रखनेवाला यह सूत्र टूट गया।......और योद्धा लोग बिना नेता के हो गये। इस महान् सेना को टुकड़ियों में बिखर जाने से बचाने के लिए तुरन्त ध्यान देने की आवश्यकता थी।

सम्राट् ने अपना निर्णय सुना दिया। उन्होंने आज्ञा दी कि रास सेयूम और रास कसा उन एक लाख लड़ाकुओं की सेना को आधा आधा बाँट लें। यह विचित्र जोड़ा था।

रास सेयूम ऊँचा, तगड़ा, उत्साही और राबिनहुड की भाँति था। उसका जन्म इरीट्रिया की सीमा पर टाइगर-प्रान्त में हुआ था। इस प्रान्त के लोग समझदार, हाज़िर-जवाब और स्वाभिमानी होते हैं।

और रास कसा? अडोवा के प्रथम युद्ध का विजेता और एक बूढ़ा आदमी। हेल सेलासी की भाँति उसका भी जन्म शोआ में हुआ था। अबीसीनिया के प्रायः सभी शासक अब तक इसी प्रान्त में जन्म लेते आ रहे हैं।

अपने युवा-काल में वह एक सुन्दर योद्धा था और अच्छी ख्याति प्राप्त की थी। परन्तु अब वह बूढ़ा हो गया था और कोई निर्णय करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर नहीं लेना चाहता था।

सेयूम और कसा—उत्तरी मोरचे के सेनापति। पहला साहसी और कार्यशील, दूसरा सावधान और दीर्घजीवन से थका हुआ। यह अजीब जोड़ा था। इन्हीं के हाथ में आक्रमणकारियों को रोक रखने का कार्य सौंपा गया था।......

युद्ध में जो मरते थे उन्हें दफ़नाने के लिए क़ब्रें खोदने का समय नहीं था। परन्तु वे यों पड़े भी नहीं रहने दिये जा सकते थे। वे मृतक चाहे अबीसीनियन हों, चाहे

इटालियन, रास सेयूम और रास कसा दोनों की सेनाओं के लिए ख़तरनाक थे। उनसे कुओं का पानी ख़राब हो रहा था और फ़ौज के पास हज़ारों की तादाद में गिद्ध और गीदड़ आदि जमा हो रहे थे। इसलिए इटालियनों की भाँति अबीसीनियनों ने भी युद्ध के मुर्दों को जलाना शुरू किया। दिन को बड़ी बड़ी चितायें बनाई जातीं और उन पर दस-दस, बारह-बारह मुर्दे एक साथ जला दिये जाते। दिन को इन चिताओं से धुँआ उठकर ऊपर छाये हुए बादलों तक पहुँच जाता।

इन सब दृश्यों से रास सेयूम चंचल हो उठा। शत्रु के सामने से पीछे हटते हटते वह थक गया था और उसके सिपाही भी थक चले थे। उसे यह डर नहीं था कि सैनिक विद्रोही हो जायँगे या उसका साथ छोड़ देंगे। उसने उनसे बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। जो कुछ भी वे माँगते थे, वह उन्हें सब देता था।

युद्ध में जो भी लूट का माल मिलता वह सब अपने सैनिकों में बाँट देता। इतना ही नहीं, अपनी निजी सम्पत्ति भी उसने अपने सैनिकों को दे दी। जो कुछ भी उसके पास था उसके सैनिकों का हो गया।

स्वर्गगत रास मुलगट्टा के पीछे चलनेवाले लड़ाकू योद्धाओं में से जो सेयूम के हिस्से में पड़े थे वे इस बात से प्रसन्न थे कि उन्हें रास कसा के हिस्से में नहीं पड़ना पड़ा। ऐसा कोई सैनिक नहीं था जो रास सेयूम की आज्ञा पाने पर अपने सगे भाई तक का ख़ून न कर बैठता। वह अत्यन्त ही प्यारा सेनापति था।

एक दिन यह नरकेसरी अपने स्थान पर किसी को सेना-संचालन का कार्य सौंप कर एक ख़च्चर पर सवार हुआ और अपने छः सैनिकों से भी ऐसा ही करने के लिए कहा। इस प्रकार सवार होकर सेयूम कसा के कैम्प में उससे मिलने गया।

सेयूम को पहचान कर कसा के आदमियों ने प्रसन्नतापूर्वक उसका स्वागत किया। उसकी उदारता की कहानियाँ वे पहले ही सुन चुके थे। पर सेयूम ने अबीसीनिया के चाँदी के भारी सिक्के उनमें नहीं बाँटे। अपने इस कार्य से वह अपने सहयोगी कसा को दुःखी नहीं करना चाहता था।

कसा के कैम्प में सेयूम ने अबीसीनिया की बढ़िया तेज़ शराब का पान किया। यह शराब शहद से बनाई



[रास कसा।]

जाती है। अवसर पाते ही सेयूम ने कसा से अपने [illegible] उद्देश कहा। उसने कहा—"हम इन पर्वतों में [illegible] क्यों छिपे रहें जब तक इटालियन यहाँ आ न जायँ [illegible] तब फिर हम पीछे हटें और किसी दूसरे पहाड़ में [illegible] उनकी प्रतीक्षा करें। हम क्यों न लड़ें?"

सावधान कसा ने अपना सिर हिलाया। उसने [illegible] "यह बुद्धिमानी का कार्य नहीं होगा। पीछे हटते [illegible] यही अच्छा है। शत्रु को और भी निकट पहाड़ि[illegible] आ जाने दो। और जब सम्राट् आज्ञा दें, सम्पूर्ण ता[illegible] उन पर टूट पड़ो और उन्हें १८९६ की तरह काट [illegible]

ये बातें करते रहे। सेयूम आगे बढ़ने पर ज़ोर [illegible] कसा पीछे हटने पर। सेयूम को क्रोध आ [illegible] पेट्रोल के जो पीपे मेज़ का काम दे रहे थे उन [illegible] हाथ पटकने लगा। उसने बड़े ज़ोर से चिल्लाकर [illegible] "तब तो वे बिना लड़े ही हमारे देश पर [illegible] कर लेंगे।" यह आवाज़ कैम्प के बाहर तक गई और [illegible] ने भी सुना कि क्या बहस हो रही है।

सेयूम ने अपनी बात पर इतना ज़ोर दिया कि कसा को अन्त में अपने पक्ष में कर लिया और [illegible] ठहरी कि एक ख़ास स्थान पर दोनों दो तरफ़ से [illegible] करें। उस रात सेयूम की ख़ुशी का ठिकाना नहीं [illegible] वह ख़ुश ख़ुश अपने कैम्प को लौट गया और उसके साथी यह गीत गाते हुए उसके साथ गये—

रास सेयूम तेरी धूम,
दुश्मन तुझसे काँपें थर थर।
तू सरदार तू नरव्याघ्र,
तू माँ की सकता रक्षा कर॥
ओ महान ! सेयूम महान,
बैल-सदृश है तेरी छाती।
तेज़ी हिरनों की है तुझमें,
आँख गिद्ध की सी मदमाती।
धन्य टाइगर-राज सेयूम।
मची हुई है तेरी धूम॥

सेयूम ने एक सहभोज की रात मनाने की घोषणा की। पशु और बकरे बिना कल की चिन्ता के मार डाले गये। उसके आदमियों ने भर पेट कच्चा मांस खाया। अबीसीनिया में यही सबसे बड़ा और स्वादिष्ठ खाद्य समझा जाता है। सबके साथ बैठकर सेयूम ने भी खाया। उस समय पर्वतों में कैसा उत्साह छाया रहा होगा !

दो दिन पश्चात् अबीसीनियनों ने धावा बोल दिया। अत्यन्त चतुरता के साथ रास कसा और नरव्याघ्र सेयूम दोनों ने अपने आदमियों को आगे बढ़ाया। एक पूर्व की ओर बढ़ा, दूसरा पश्चिम की ओर।

उत्तर की ओर एक ख़ास स्थान पर दोनों ने मिलना तय किया था। एक दूसरे का पता देने के लिए दोनों ओर हरकारे दौड़ रहे थे। जब दोनों की फ़ौजें एक ख़ास स्थान पर पहुँच गईं, यद्यपि उनके बीच में मीलों का फ़ासला हो गया था, तब मुड़ने का हुक्म दिया गया।.........धीरे धीरे पर अत्यन्त सावधानी के साथ मानवनिर्मित ये दोनों काले पंजे एक दूसरे के क़रीब आने लगे और उनके बीच में एक पतले लोहे के तार की तरह मनुष्यों की एक क़तार आगई। यह इटालियनों का एडवान्स कालम (हरौल सेनादल) था।...

नरव्याघ्र सेयूम ने एक पर्वत की चोटी पर अपना अड्डा जमाया और उसके ठीक सामने दूसरे पर्वत की चोटी पर उसका साथी सावधान कसा अपने अनुयायियों के साथ जा बैठा।

सेयूम ने अपने आदमियों को इकट्ठा किया। उन्हें समझाया कि उनको किस प्रकार इटालियनों के आवागमन के मार्ग को जो नीचे गहरी घाटी में बन रहा है, तोड़ना है। इटालियनों को पता नहीं था कि ऊपर पर्वत की चोटी पर क्या हो रहा है। उनके प्रति सेयूम ने अपने साथियों को मूक घृणा से पागल कर दिया था, परन्तु वह उन्हें अपने क़ाबू में भी किये था। आक्रमणकारियों का क़त्लेआम करने के लिए ऐसा करना आवश्यक भी था।

सेयूम अन्तिम तैयारी कर चुका था। परन्तु सामने के पर्वत पर डटी कसा की सेना से उसे कोई इशारा न मिला। सेयूम प्रतीक्षा में बैठा रहा.........बैठा रहा.........और बैठा रहा। अन्त में वह अधिक प्रतीक्षा न कर सका। उसने एक चमत्कार दिखाया जो ऐतिहासिक कहा जायगा। स्तब्ध निशा में जब वर्षा ने पर्वतों को तर कर दिया था, वह कुछ चुने हुए आदमियों को लेकर घाटी में उतर गया। चुपचाप दबे पावों वह घाटी में पड़ी इटालियन लाइनों के पार निकल गया। उसका यह कार्य इस बात का सूचक था कि उसके और कसा के पूर्व-निश्चय के अनुसार कार्य करने से क्या सफलता मिल सकती है।

सामने के पर्वत पर चढ़ने में उसका दम फूल गया। वर्षा से तर चट्टानों पर फिसलता और घासों में उलझता हुआ वह कसा के कैम्प में जा पहुँचा। कसा के जिन पहरेदारों ने अँधेरे में आने के कारण उसे रोका उनको चुपके से एक ओर हटाकर वह सीधा कसा के पास गया। क्रोधावेश में उसने कसा से जितने भी प्रश्न किये, सबका कसा ने एक ही उत्तर दिया। वह यह कि बिना सम्राट् की सलाह के मैं ऐसे साहसपूर्ण कार्य में हाथ नहीं डाल सकता।

सेयूम ने गरज कर कहा—परन्तु सम्राट् डेसी में है और हम यहाँ हैं। सब कुछ हमारे हाथ में है।

तो भी कसा टस से मस न हुआ। सम्राट् की स्वीकृति उसके लिए आवश्यक थी।

अधीर होकर सेयूम वहाँ से चल पड़ा। कुछ दिनों के बाद वह अपने सैनिकों को लेकर अकेले दम हमला बोलने के लिए उस स्थान को छोड़कर किसी उपयुक्त स्थान और अवसर की खोज में निकल पड़ा।

पाँच दिन रास कसा अपने पर्वत पर बैठा इटालियन फ़ौजों का घाटी से होकर मकाले में जमा होना देखता रहा। और इस समय में उसने किया क्या ? वह एक पादरी से धार्मिक वाद-विवाद करता रहा।



[उत्तरी मोरचे पर गैस गिरानेवाला एक इटालियन हवाई जहाज़ जिसके आगे अबीसीनियनों की सारी शक्ति बेकार सिद्ध हुई।]

यह कोरी कथा नहीं है। ध्रुव सत्य है। नरव्याघ्र सेयूम के चले जाने पर कसा केवल अपने आदमियों की सहायता से मकाले पर पीछे से हमला नहीं कर सकता था। इटालियन मकाले से निकल पड़े, शाही मार्ग से डेसी पहुँचे और बाद को आदिस अबाबा पहुँच गये। उन्हें विजय मिली !

आज रास कसा जुडा के परोजित सिंह के साथ इँग्लेंड में है। उसके दुःख का ठिकाना नहीं है। हेल सेलासी के दल के अन्य लोग उससे घृणा करते हैं। उसके उत्तर-दायित्व की ठोस भावना को, जिसने उसे नरव्याघ्र सेयूम की युद्ध करने की माँग को स्वीकार करने से वञ्चित रक्खा, वे क़द्र नहीं करते। वे नहीं जानते कि रास कसा उन इने-गिने सेनानायकों में है जिसने डेसी के हेडक्वार्टर से सहयोग बनाये रखने का प्रयत्न किया था।

सम्राट् के हृदय में इस बुड्ढे आदमी के प्रति असीम श्रद्धा है। परन्तु वे स्वयं युद्ध के अच्छे संचालक नहीं हैं, केवल उसके विद्यार्थी ही हैं। मेरा ख़याल है, सम्राट् इस सावधान सरदार को सदैव अपने साथ रक्खेंगे।

सम्राट् का कहना है कि इटली ने गैस के बल पर युद्ध में विजय पाई है। यह बात बहुत अंशों में सत्य है। वर्षा क़रीब आ रही थी। उसके आगे इटली की यंत्रविद्या का चलना सम्भव नहीं था। संसार में यह चर्चा थी कि वर्षा शुरू होते ही इटली को लेने के देने पड़ जायँगे।

इसलिए मुसोलिनी ने वर्षा शुरू होने से पहले ही अबीसीनिया में गैस बिखेर दी। अबीसीनियन योद्धा इसके आगे बेकाम हो गये। उनका दम घुटने लगा। वे भागे और अत्यन्त पीड़ा से छटपटा कर मरने लगे। जो योद्धा गैस से बचे थे उन्होंने अपने साथियों को इस प्रकार मरते देखा तब उनके भी छक्के छूट गये।

अडोवा की विजय का पुराना घमंड काफ़ूर हो गया। प्रत्येक अबीसीनियन भयत्रस्त होकर एक दूसरे से पूछने लगा—यह गैस क्या वस्तु है ?

एक सेना के बाद दूसरी आगे बढ़ी और इस तरह वाष्परूपी विष ने पहले की ही भाँति उसको भी सुला दिया। इक्के-दुक्के लोग रात में छिपकर भागने लगे। कतिपय सेनाओं का ढाँचा-मात्र शेष रह गया।

सम्राट् ने ये सब बातें सुनीं। उन्होंने निश्चय किया कि ऐसे अवसर पर युद्ध-क्षेत्र में उनकी उपस्थिति आवश्यक है। अपने मंत्रियों को साथ लेकर वे तत्काल युद्धक्षेत्र में पहुँच गये।

वे एक ख़च्चर पर सवार हुए और परम्परा के अनुसार अपने राजसी ठाट-बाट के साथ आगे बढ़े। उन्हें देखकर उनके आदमियों में एक बार फिर जोश उमड़ आया।

परन्तु इटली के हवाई जहाज़ों ने आसमान से तरल गैस उँड़ेलना जारी रक्खा और अबीसीनियनों को अपनी अवस्था पहले से भी अधिक असमर्थ प्रतीत हुई। घबराहट

में वे भाग खड़े हुए और आपस में ही मारकाट करने लगे। गैस के भय से वे अपने सेनापतियों के साथ विश्वासघात तक करने लगे।

हेल सेलासी ने युद्धक्षेत्र से भयत्रस्त सैनिकों का भागना रोकने के लिए विशेष सेनायें तैयार कराईं और उनको सड़कों और कारवाँ के मार्गों पर तैनात कर दिया। उन्हें यह आदेश दिया गया था कि किसी को वापस न जाने दो। आज्ञा के शब्द ये थे—"भागनेवाले कुत्तों को गोली मार दो। उनकी बन्दूकें और रुपये तुम्हारे हैं।"

सैकड़ों कायर जो गैस के भय से भागते थे, इस प्रकार मार डाले जाते थे। अन्त में उत्तर में अबीसीनियनों की पंक्ति टूट गई और सम्राट् के पास पीछे हटने के सिवा और कोई चारा न रह गया।

कोरम के उत्तर कहीं एक जगह उन्होंने नई पंक्ति बनाने की चेष्टा की, पर गैस के आगे उनका वश न चला। उनके कुछ देशवासियों ने विद्रोह कर अनजान में सम्राट् और उनके साथियों पर आक्रमण कर दिया। एक विद्रोही की गोली सम्राट् के बग़ल में खड़े एक मुसाहिब को लगी।

सम्राट् को वहाँ से भागने के लिए विवश होना पड़ा। उनके अन्तरंग सहयोगियों की यह सलाह ठहरी कि वे कम-से-कम आदमी लेकर वापस जायँ ताकि जल्दी से आदिस अबाबा पहुँच जायँ और उन्हें कोई पहचान भी न सके। इसलिए वे अपने कुछ आदमियों के साथ आदिस अबाबा को भागे। आदिस अबाबा में पहुँच कर उनका उद्देश नई सेनायें खड़ी करना था।

जब वे उन लाइनों पर पहुँचे जो उन्होंने भागनेवालों को रोकने के लिए खड़ी की थीं तब उन्हें हुक्म मिला—"वापस जाओ और लड़ो।"

उन्होंने उत्तर दिया—"मैं तुम्हारा सम्राट् हूँ। आदिस अबाबा जा रहा हूँ।"

बड़ी मुश्किल से उन्हें आगे बढ़ने की आज्ञा मिली। इस प्रकार मार्ग में वे चार बार रोके गये। इस यात्रा में उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया। ठंड, नमी, चिन्ता आदि के कारण उनका एक फेफड़ा ख़राब हो गया।

कष्टों का यहीं अन्त न था। उन्हें एक ऐसी घाटी से गुज़रना पड़ा जो गैस से भरी थी। इसका उन पर इतना बुरा प्रभाव पड़ा कि अब तक उनका स्वास्थ्य बिगड़ा हुआ है। परन्तु उनमें आश्चर्यजनक इच्छा-शक्ति है। उसी के बल पर वे दुःख झेलते हुए आगे बढ़ते गये और आदिस अबाबा में पहुँचकर अपनी पत्नी सम्राज्ञी से मिले।

जो सेनापति और मंत्री एकत्र हो सकते थे उन्हें तुरन्त ही उन्होंने एकत्र किया और राजधानी की रक्षा के उपाय सोचने लगे। राजमहल में यह सभा बैठी और इसमें उस छोटे क़द के दाढ़ीवाले शासक ने एक जोशीला भाषण किया। उन्होंने राजधानी ख़ाली करके पश्चिमी हिस्से में जिसका इटालियनों को पता नहीं था, मोरचा बनाने की बात कही। सम्राट्-सहित सेनापति और गवर्नर सब २५ व्यक्ति उस समय वहाँ उपस्थित थे और सम्राट् का ख़याल था कि सब उनकी बात मानेंगे। परन्तु उनकी इस अन्तिम आशा पर पानी फिर गया।

कई सेनापतियों ने कहा—"इस युद्ध को जारी रखने से क्या फ़ायदा? यह तो हम सबका अन्त कर देगा।"

औरों ने भी कहा—"इस युद्ध से क्या फ़ायदा?"

सम्राट् ने कहा—"यह कि इटली की दासता की अपेक्षा लड़कर मर जाना अच्छा है। यदि हमारी स्वाधीनता ही छिन गई तो फिर बाक़ी क्या बचा? हम लड़ते लड़ते क्यों न मर जायँ?"

सभा पर इस कथन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे सब बूढ़े लोग थे। युद्ध से परेशान थे! सम्राट् ने उन पर कटु व्यङ्ग्य किये, पर वे ज़रा भी न डिगे। वोट लिये गये। जो लड़कर मर जाना चाहते थे उन्होंने सम्राट् के साथ हाथ उठाया, जो नहीं लड़ना चाहते थे उन्होंने रास कसा का साथ दिया। कसा के पक्ष में २१ वोट थे।

तब प्रथम बार सम्राट् ने यह अनुभव किया कि अब अन्त आ गया है। केवल तीन सेनानायक उनके साथ मृत्यु के द्वार तक जाने के लिए तैयार थे।

वह सभा जिसका हेल सेलासी ने सम्राट् के रूप में अन्तिम बार नेतृत्व किया, भङ्ग हो गई। वे सम्राज्ञी से मिले और उनसे सारी बातें कहीं।

उनके लिए अब भी यह सम्भव था कि वे एक छोटी सेना इकट्ठी करके युद्ध जारी रखते। पर उनके लिए यह आत्मघात सिद्ध होता, क्योंकि शत्रु के हाथ में बन्दी होना वे कदापि पसन्द न करते।

इस मामले पर विचार करके उन्होंने देश छोड़ देने का निश्चय किया ताकि वे अपना स्वास्थ्य सुधारें और राष्ट्रसंघ के द्वारा युद्ध जारी रक्खें।

आज वे इँग्लेंड में सहायता की खोज में भटक रहे हैं। परन्तु उनके अमरीकन सलाहकार ने जिसे वे बीमार की अवस्था में यरूसलम में छोड़ गये हैं, श्री गैलियर से कहा—"मुझे तो अब यह सब व्यर्थ जान पड़ता है।"

राष्ट्रसंघ की बैठक में उन्होंने स्वयं उपस्थित हो अत्यन्त दुःखद शब्दों में इटली के अमानुषिक का वर्णन किया है और संघ की एक निर्बल सदस्य प्रति इस उपेक्षाभाव की कटु आलोचना की है। कौन सुनेगा? जान पड़ता है—"जिसकी लाठी उ भैंस" की कहावत जैसे आदिकाल में सत्य थी, वै सभ्यता के इस युग में भी वह सत्य ही सिद्ध होगी।

फूल से

लेखक, श्रीयुत चतुर्वेदी रामचन्द्र शर्मा 'विद्यार्थी'

फूल! यह क्षण भर का जीवन है।
इस अनंत संसृति का सचमुच नाशवान कण-कण है।

[१]
मधुप-वृन्द तुझ पर मँडराते,
रस पीते गुन-गुन हैं गाते;
अठखेली करते इतराते,
फूला नहीं समाता तू है, हँसता मन-ही-मन है।

[२]
है कमनीय कलेवर तेरा,
यौवन का है सरस सवेरा,
किन्तु याद रख कहना मेरा,
इठलाता जिस पर है, वह तो केवल मन का धन है।

[३]
तुझे देख उत्साह मनाते,
तेरे निकट दौड़कर आते,
धूल भरा भी तुझे उठाते,
देख तुझे खिल जाता पल में सबका हृद-उपवन है।

[४]
मस्तक पर हैं तुझे चढ़ाते,
कुछ क्षण को सम्मान बढ़ाते,
आँखों में तसवीर मढ़ाते,
बस इस पर ही तू इतराता कैसा भोलाप

[५]
जहाँ फूल! तू कुम्हलायेगा,
कौन पास तेरे आयेगा?
यह यौवन क्या रह पायेगा?
भू-लुण्ठित होने ही वाला, तेरा सुन्दर तन

[६]
प्रेम तुझे ये करनेवाले,
झूम झूम कर मरनेवाले,
भाव अकल्पित भरनेवाले,
त्याग तुझे देंगे पल भर में, चञ्चल इनका म
फूल! यह क्षण भर का जीवन है।

एक ज्योतिषी ने उसे कुलच्छनी घोषित किया था पर वह कुल-लक्ष्मी बन गई! कैसे? यह कहानी पढ़िए।

खेमा

लेखक, श्रीयुत गँवार, एम० ए०, डी० लिट्०

(१)

१९२८ के मार्च की बात है। अपने अनुसन्धान के सम्बन्ध में मुझे आज-कल की बोलियों पर कुछ सामग्री इकट्ठी करनी थी। इस काम के लिए मैंने नेपाल की तराई का भी भ्रमण किया था। जाड़े के दिनों में नेपाल से उतरकर बहुत-से पहाड़ी तराई में अपनी वस्तुओं का आदान-प्रदान करने के लिए आ जाते हैं। इनसे व्यापार करने के लिए संयुक्त-प्रान्त के उत्तरी ज़िलों के बहुत-से व्यापारी तराई में मड़ियाँ बनाकर इनसे कम्बल, घी, मसाले आदि मोल लेते हैं और परिवर्तन में सोना, चाँदी, ज़ेवर, तम्बाकू आदि पदार्थ बेच देते हैं। इस प्रकार की गोला-मंडी नाम की एक मंडी बहराईच-ज़िले के छोर पर नेपाल-प्रदेश के अन्तर्गत है। यह स्थान कतर्नियाघाट-स्टेशन से कोई छः-सात मील की दूरी पर है। कुछ जंगल, कुछ ऊसर ज़मीन, जहाँ-तहाँ थारू लोगों की छोटी छोटी बस्तियाँ। इस जाति के रहन-सहन की भी विचित्र कथा है, सो कभी पीछे बताऊँगा, आज तो दूसरी ही बात कहनी है।

गोलामंडी में पिता जी की सोने चाँदी की एक दूकान है। मैं वहीं जाकर ठहरा। रात्रि को विश्राम कर सवेरे नित्य-कर्म से निवृत्त होने के लिए नदी-तट पर चला गया। निर्मल जल, शुद्ध वायु, एकान्त की निस्तब्धता मनोमोहक थी। मुझे छायावादियों के 'नीरव गान' और 'मूक आह्वान' का आभास हुआ, यद्यपि सुशिक्षित होने (कम-से-कम अपने को समझने) पर भी मैं उनकी कविता का अर्थ नहीं निकाल पाता।

नदी-तट से लौटा तब देखा, दूकानें खुल चुकी हैं। वणिकवृत्तिवालों का विश्वास है कि 'ग्राहक और मौत का ठिकाना नहीं, न जाने कब आ जाय'। इसी कारण शायद वे सवेरे से ही दूकान खोलकर बैठ जाते हैं कि कहीं आगन्तुक भटक न जाय। यदि यही व्यापारी 'मौत' के आगमन के लिए भी इतने ही सजग रहते तो शायद हम लोगों को घी के साथ चर्बी, दूध के साथ पानी और दस गज़ के जोड़े के स्थान पर साढ़े नौ गज़ का धोती का जोड़ा न मिला करता।

(२)

दूकान पर लौटकर देखा, कई पहाड़ी मुनीम जी से सौदा कर रहे हैं। कोई तम्बाकू ले रहा था, कोई ज़ेवर, एक अशर्फ़ी का मोल कर रहा था। मुनीम जी का प्रायः सम्पूर्ण ध्यान अशर्फ़ी माँगनेवाले पहाड़ी पर था। इतनी देर में एक भिखारिन भीख माँगने आई। फटे-पुराने चीथड़े पहने, नववयस्क—कोई सत्रह-अठारह वर्ष की, गोरी-चिट्टी थी। मुनीम जी यदि भावुक साहित्यिक होते तो अशर्फ़ीवाले पहाड़ी को छोड़कर उनकी दृष्टि उस नव-वयस्का पर जाती, पर वे तो थे व्यापारी, निन्नानबे के फेरवाले। भिखारिन को दुतकारने लगे, अच्छी झाड़-फिट-कार बताई। भरसक उसे टालने का उद्योग किया, पर वह बिना कुछ लिये कब हिलनेवाली थी! मुनीम जी ने २०) से चलकर २३॥) में उस पहाड़ी के हाथ अशर्फ़ी बेची और नौकरों ने तम्बाकू आदि। सब चले गये। रह गई वह भिखारिन पहाड़िन। मुनीम जी अब उस पर और

उबल पड़े—'यह कुलच्छनी कहाँ से आ मरी'। 'सवेरे सवेरे अशगुन करने आई'। 'भाग यहाँ से'। 'कोई है नहीं रे, इसके दो डंडे लगाकर निकालता नहीं'। मेरे कहने पर उसे एक पैसा दिया गया और वह खिलखिलाती हुई चल दी। इतनी भर्त्सना और इतना अपमान सहकर भिखारी ही खिलखिलाकर हँस सकता है या अपने प्रियतम की फिटकार पर उर्दू-कवि।

(३)

भिखारिन के चले जाने पर मैंने मुनीम जी से कहा कि आपने बेकार उस ग़रीब दुखिया को इतना डाँटा-डपटा। वे बोले—"भैया, तुम क्या जानो? यह कानी बड़ी कुलच्छनी है। जिस दूकान पर सवेरे पहुँच जाती है उसकी दिन भर की बिक्री चट हो जाती है। आज ही देखो। डेढ़ रुपये का नुक़सान कर गई। २५) की अशर्फ़ी २३॥) में बेचनी पड़ी।" तब सोना सस्ता था, भारत से अरबों रुपये का सोना ढुलकर विलायत नहीं पहुँच पाया था। २१), २२) की अशर्फ़ी २३॥) में बेचकर भी मुनीम जी को सन्तोष न था। पर उनसे वाद-विवाद करना व्यर्थ ही नहीं, अशिष्ट भी होता। उनकी आयु पिता जी का कारबार करते बीती थी। हम लोग उनको अपना वृद्ध मानते थे। मैं चुप होकर उस भिखारिन की बात बड़ी देर तक सोचता रहा—तो वह कानी भी है। दीन दुखिया है ही। परमेश्वर ने उसको कानी क्यों कर दिया? कोढ़ में खाज।

तीसरे पहर मैं फिर नदी-तट पर गया। देखा, वही भिखारिन नदी से चुल्लू भर भरकर पानी पी रही है और बीच बीच में अपना कोई पहाड़ी गाना भी गाती जाती है। प्रसन्न थी। मैंने नौकर से उसे पास बुलवाया, उससे उसका हाल चाल पूछा। उसने टूटी-फूटी हिन्दी में अपनी कहानी बहुत पोटने-पाटने पर इस प्रकार सुनाई—

"मेरे माता पिता बहुत ग़रीब थे। मैं उनकी प्रथम सन्तान हुई। गाँव के ज्योतिषी ने जन्म के ग्रह देखकर बताया कि यह लड़की बड़ी अभागिन है, इससे मा-बाप को दुख ही दुख होना है। इतने पर भी उन दोनों ने पाल-पोस कर मुझे बड़ा किया। न तो मा-बाप की ग़रीबी का बोझ हलका हुआ और न उनके कोई और सन्तान ही हुई। जब मैं तेरह-चौदह वर्ष की हुई तब पड़ोस के गाँव में मेरी सगाई हो गई। अभाग्यवश सगाई होने के एक मास के भीतर ही उस लड़के का देहान्त हो गया। माता-पिता को बहुत दुःख हुआ। दो साल पूर्व वे मुझे लेकर यहाँ आये। यहाँ के एक धनी मदेशिया (मध्यदेश—संयुक्तप्रान्त व मैदान) ज़मींदार की दृष्टि मुझ पर पड़ी। पिता जी से दो सौ पर सौदा हुआ। मैं उनके कोठार पहुँचाई गई। परन्तु मेरे दुर्भाग्य ने मुझे वहाँ भी नहीं छोड़ा। जिस रोज़ मैं पहुँची उसके दूसरे ही दिन ज़मींदार को साँप ने काट खाया और वे चल बसे। उनकी ब्याहता रानियों का और उनकी दासियों का कोप मुझ पर फट पड़ा। मुझे जो अमानुषिक यातना दी गई उसका वर्णन करने से क्या लाभ। एक आँख भी उसी के अर्पण हुई। निकाली जाकर किसी प्रकार मैं लौटकर यहाँ आई। मेरे माता-पिता घर चले गये थे। मैं भी पीछे पीछे पहुँची। मुझे देखकर और हाल सुनकर वे बहुत रोये। पर मुझको घर पर रखने को राज़ी नहीं हुए। बोले—"दान में दी हुई और फिर बेची हुई कन्या को कैसे वापस ले लें? यह बेईमानी न हो सकेगी"। वहाँ से चलकर मैं जाड़ों में यहाँ आ जाती हूँ, गर्मियों में फिर पहाड़। आकाश और पृथ्वी ही मेरे आश्रय-दाता हैं। मेरे घर पर मेरा एक छोटा भाई है। उसे देखकर माता-पिता प्रसन्न हैं। कहते हैं कि खेमा न जाती तो हमें यह कहाँ से प्राप्त होता।

"यहाँ का हर आदमी मेरा पूरा हाल जानता है। इसी लिए सब मुझसे घृणा करते हैं। पर मुझे खाने-पीने का कष्ट नहीं है। मैं सुख से हूँ।"

(४)

बेचारी खेमा थी रूढ़ियों का शिकार। मेरे मन में उथल-पुथल मची, इसका जीवन कैसे सँभले। मैंने उससे पूछा—"तू भीख माँगना छोड़कर गृहस्थ-जीवन में आना चाहती है?" वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। बोली—"नहीं। अभी तो कानी ही हूँ, अन्धी नहीं होना चाहती।" बहुत समझाने-बुझाने पर उसे मेरे सद्भाव में उसको विश्वास हुआ। मैंने उसे सहायता का वचन देकर विदा किया। गोलामंडी से चलने के पूर्व मैंने मुनीम जी से कह दिया कि मैं घर पहुँचकर उस कानी के बारे में पत्र लिखूँगा। वैसी कार्रवाई कीजिएगा।

घर आकर मैंने आचार्य......... सञ्चालक, कन्या-आश्रम......को पत्र लिखा। उनका उत्तर समवेदनापूर्ण

था। खेमा को मैंने उनके आश्रम में पहुँचा दिया। वहाँ वह आराम से पढ़ने लगी। वही खेमा अनुकूल परिस्थिति पाकर दमक उठी।

१९३० के दिसम्बर में पटना में ओरियंटल कान्फ़रेंस थी। वहाँ मुझसे पञ्जाब के कई प्रोफ़ेसरों से मुलाक़ात हुई। एक से मैंने खेमा की रामकहानी कही। उनको भी समवेदना हुई। लौट कर उन्होंने मुझको लिखा कि खेमा का फ़ोटो भिजवा दीजिए। आचार्य जी को मैंने लिख दिया कि खेमा की आँख बनवा दी जाय और फिर फ़ोटो उतरवा कर भेज दिया जाय।

खेमा अब अमृतसर के एक सिक्ख ठेकेदार की धर्मपत्नी है। ठेकेदार साहब को उसके सम्पूर्ण वृत्तान्त से पूर्ण परिचय है। दोनों सुख से हैं। अभी पिछले जाड़ों में मैं लाहौर गया था तब एक दिन को उनके पास भी ठहरा था। खेमा और उसके पति ने बड़ी ख़ातिर की। उनका छोटा बालक लाहनसिंह बड़ा प्यारा मालूम हुआ। चलते समय मैंने खेमा को आशीर्वाद दिया। वह बोली नहीं, पर उसकी आँखों से आँसू टपक रहे थे। उन आँसुओं में मुझे अपरिमित कृतज्ञता दिखाई पड़ी।

तब

लेखक, श्रीयुत रामदुलारे गुप्त

शरद-ऋतु हो, सुधाधर हो
मेघ-छादित यामिनी हो
स्तब्ध वसुधा, स्तब्ध अम्बर,
शान्ति चिर-अधिवासिनी हो

नींद का अञ्चल न हो,
दिन-जागरण का हो न रव,
सुप्ति-जागृति की दशा
इस हृदय की अधिकारिणी हो

रश्मियाँ भू पर न आवें
अभ्रपट पर बिछ रहें वे;
हो न तम, न प्रकाश ही हो
एक द्युति आभासिनी हो

दूर, जनपद-रोर-अविदित-
लता-निर्मित-कुञ्ज-मधुबन—
में धड़कती याचना हो,
मुखर-तट-स्रोतस्विनी हो

बादलों से कान्ति छन-छन
कुसुम-रज-सम उड़ रही हो
मुकुल सोते आँख मूँदे
प्रकृति स्वप्न-विलासिनी हो

तब,—परी-सी उतर धीरे
सहज-सुषमा में छिपी-सी
मानिनी, नभ-वासिनी, आना
प्रिये, चिर-स्वामिनी हो

लोक-सेवकों में शिष्टता का अभाव

लेखक, श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०

हमारे देश में सरकारी, अर्द्ध सरकारी और सा
जनिक कर्मचारी जनसाधारण के प्रति प्रा
असभ्य व्यवहार करते रहते हैं। इस लेख में
युत संतराम जी ने कुछ ऐसे असभ्य व्यवहा
के उदाहरण दिये हैं और उनका प्रति
कैसे किया जा सकता है, यह भी बताया है
वास्तव में यह एक ऐसी बुराई है जिस
दूर करने के लिए हम सबको प्र
शील होने की आवश्यकता है

कोई जाति कितनी सभ्य और कितनी उन्नत है, इसका पता उस देश के सरकारी, अर्द्ध-सरकारी और सार्वजनिक कर्मचारियों के जनता के प्रति व्यवहार से बहुत अच्छी तरह लग सकता है। इस कसौटी पर परखने से हमें आज का भारत बहुत ही गिरा हुआ देख पड़ता है। आप कचहरी जाइए, अस्पताल जाइए, पुलिस की चौकी जाइए, वहाँ के अरदली, चपरासी, कान्स्टेबल, मुंशी और बाबू आपसे इस प्रकार व्यवहार करेंगे और आप पर इस प्रकार धौंस जमावेंगे, मानो आप उनके क्रीत दास हैं। आप उनसे सम्मानपूर्वक 'जी' कहकर बात करेंगे और वे 'तू'-'तू' करेंगे। भूल जाना तो दूर, इन लोगों को इस बात का कभी ज्ञान कराया ही नहीं गया कि तुम जनता के सेवक हो, जनता अपनी जेब से तुम्हें वेतन देती है और उसके प्रति शिष्टता का व्यवहार करना तुम्हारा कर्तव्य है। खेद है कि जनता इनके दुर्व्यवहार का प्रतिवाद न करके उसे चुपचाप सहन कर लेती है। इससे इनकी अशिष्टता दिन पर दिन बढ़ती जा रही है, और इनके उदाहरण से सारे देश के पारस्परिक व्यवहार का आदर्श गिरता जा रहा है। रेलवे बुकिङ्ग-आफ़िस पर जाकर बाबू से टिकट माँगिए, वह आपसे ऐसे बात करेगा मानो आप उसके नौकर हैं। थाने में अपनी किसी चोरी की रिपोर्ट लिखाने जाइए, कोतवाल आपको ऐसे धमकायगा, मानो आप दस नंबर के बदमाश हैं। डाक-घर में मनीआर्डर कराने जाइए, डाक-बाबू आपके साथ ऐसी लापरवाही से पेश आयगा, मानो वह आप पर बहुत बड़ा उपकार कर रहा है। इतना ही नहीं, अशिष्टता का रोग यहाँ तक बढ़ गया है कि बड़े दफ़्तरों में, बड़ी कोठियों में कर्मचारी लोग जनता के रूखा व्यवहार करते हुए अपने व्यापार को हानि पहुँ तक का ख़याल नहीं रहता है। मैं समझता हूँ, देशहि लोगों का यह कर्तव्य है कि वे इस बढ़ती हुई अशिष्ट रोकने का प्रयत्न करें, और ऐसे गुस्ताख़ सरकारी, सरकारी या निजी नौकरों के अशिष्टता-पूर्ण व्यवहार देखते ही उनको चेतावनी दें, जिससे उन्हें अपनी भू कुछ अनुभव हो। इन कर्मचारियों को इस बात का ही नहीं कि जनता को उनसे सौजन्यपूर्ण व्यवहार की करने का अधिकार है।

एक मर्तबा की बात है, मैं होशियारपुर से फ़ी को जा रहा था। जब गाड़ी कपूर्थला पहुँची तब एक मीरासी अपने आठ-नौ वर्ष के लड़के के साथ गाड़ी में कर बैठा। जब गाड़ी चली तब रास्ते में एक टिकट करनेवाला बाबू आकर टिकट देखने लगा। मीरा पास डेढ़ टिकट था और नियमानुसार चाहिए भी उत था। परन्तु उसे ग़रीब एवं सीधा-सादा देखकर बा तंग करने लगा। वह ऐसे अपमानजनक ढंग से बातें करता था कि पास बैठे दूसरे मुसाफ़िरों को भी बुरा लगता था। परन्तु उसे किसी ने डाँटने का नहीं किया। थोड़ी देर के बाद वह चला गया, पर मन में बड़ा दुःख हुआ कि मैं उस बाबू की अ देखकर क्यों चुप बैठा रहा! मुझे उससे इस प्रकार चाहिए था—"रेलवे-विभाग ने आपको मुसाफ़िरों के

देखने का अधिकार दिया है, उनका अपमान करने का नहीं। आप जैसे कर्मचारियों के अशिष्ट व्यवहार से तंग आकर ही लोग रेल को छोड़कर मोटरलारियों में सफ़र करने लगे हैं। इसी से रेलवे को घाटा पड़ रहा है। यदि रेलवे के अधिकारी आपको इस प्रकार मुसाफ़िरों के साथ दुर्व्यवहार करते देख लें तो वे आपको शाबासी नहीं देंगे।" जब लाखों मनुष्य बेकार फिर रहे हैं तब ऐसी कम योग्यता के व्यक्ति को रखने की कोई आवश्यकता नहीं। अशिष्टता से बढ़कर और कोई अयोग्यता नहीं। रेल-गाड़ी में सफ़र करनेवाले मुसाफ़िरों को यह अधिकार प्राप्त है कि वे रेलवे के कर्मचारियों से शिष्टता और सौजन्य की माँग करें।

एक मर्तबा मैं होशियारपुर के स्टेशन पर लाहौर का टिकट ख़रीद रहा था। बुकिङ्ग क्लर्क ने बड़ी बुरी तरह से मेरे नोट को फेंकते हुए कहा—"हटो, भाँज नहीं है। भाँज ले आओ, तब टिकट मिलेगा।" मैंने उसकी इस अशिष्टता पर उसे डाँटकर कहा—"भाँज रखना आपका कर्तव्य है; नोट भुनाने के लिए अब मैं दो मील नगर में नहीं जाऊँगा; आपको टिकट देना पड़ेगा।" मेरे इतना कहते ही टिकट भी मिल गया और भाँज भी निकल आया।

लोक-सेवकों में सबसे अधिक सौजन्य का अभाव पुलिस में देखने में आता है। चौराहों पर खड़े सिपाही जिस लहजे और जिस भाषा में टाँगेवालों, बाइसिकल-सवारों और मोटरकारवालों को सम्बोधन करते हैं वह सुनने लायक़ होता है। गाली और कड़वे शब्दों के बिना उनके मुख से और कुछ निकलता ही नहीं। अशिक्षित होना या छः घंटे से ड्यूटी पर खड़े होना उनके इस अशिष्ट व्यवहार के लिए कोई बहाना नहीं हो सकता। एक सज्जन एक मर्तबा आवागमन के एक बहुत साधारण से नियम का पालन न कर सके। वे सड़क पर पड़ी हुई लकीर के कुछ परे ही ठहराने के बजाय मोटर को भूल से लकीर के ऊपर ले आये। इस पर पुलिस का सिपाही अपशब्द बोलता हुआ उन पर बरस पड़ा और चालान करने के लिए उनका नाम-धाम पूछने लगा। तब उस सज्जन ने उससे कहा—"मेरा चालान तो पीछे कीजिए; पहले ज़रा मेरे साथ इस मोटर में बैठ जाइए। हम इकट्ठे आपके सार्जंट के पास चलते हैं। मुझे विश्वास है, जिस भाषा का, जिस स्वर में आपने मेरे लिए प्रयोग किया है उसे आपके मुख से दुबारा सुनकर वह बहुत प्रसन्न होगा।" बस, फिर क्या था, सिपाही के होश ठिकाने आ गये। प्रत्येक सिपाही को पता रहना चाहिए कि सरकारी वर्दी पहन लेने से उसे नगर-निवासियों के साथ अशिष्टता का व्यवहार करने का अधिकार नहीं मिल जाता। वह हमें गिरफ़्तार कर सकता है, चालान कर सकता है, परन्तु हमें गाली देने या हमारा अपमान करने का अधिकार क़ानून उसे बिलकुल नहीं देता। इसलिए आपके उसे दबा देने पर उसे प्रायः दब जाना पड़ेगा।

पुलिसमैन के शब्द प्रायः बड़े कठोर होते हैं। जब वह टाँगेवाले को कुछ कहता है तब तो वे इतने गंदे होते हैं कि उन्हें लिखा नहीं जा सकता। उसका बोलने का ढंग, उसकी भाव-भङ्गी, उसका स्वर और उसकी शब्दावली सब कुछ ऐसा होता है जिससे वह निर्दय क़ानून की एक साक्षात् मूर्ति दीखने लगता है। उसके चेहरे से ऐसा टपकने लगता है, मानो नागरिक ने उसका अपना व्यक्तिगत या सारी पुलिस का ही भारी अपमान किया हो। वह हमें ऐसा अनुभव कराना चाहता है, मानो हम सदा अपने सारे जीवन में झूठे, कपटी, दस नम्बर के बदमाश और आत्मसम्मान-हीन प्राणी रहे हैं और आगे भी वैसे ही रहेंगे। पुलिस का सिपाही चाहता है कि जिस नागरिक से कोई हलका-सा भी अपराध हुआ है वह अपने मन में समझे, "मैं महानुर्ख हूँ, आप ठीक ही मेरा चालान कर रहे हैं, मैं ऐसा फिर कभी नहीं करूँगा। मुझ जैसे गधे के साथ ऐसा सज्जनोचित व्यवहार करने के लिए आप मेरे धन्यवाद के पात्र हैं।"

सन् १९३४ की होली की बात है। कुछ गुण्डों ने मेरी दूकान का कटहरा तोड़ डाला और दूकानदार का साइनबोर्ड जला दिया, क्योंकि उसने उनको मदिरापान के लिए पैसे नहीं दिये थे। उन लोगों को डाँट-डपट कराने के उद्देश से मैं पुरानी अनारकली (लाहौर) के थाने में रिपोर्ट लिखाने गया। मेरे साथ अमरीका से लौटे हुए मेरे एक मित्र भी थे। कोतवाल साहब मेज़-कुर्सी लगाये, कुलह बाँधे और मूँछों को ताव दिये बैठे थे। हमने जाकर रिपोर्ट लिखने को कहा। उन्होंने कुछ ध्यान न दिया। हम आध घंटा खड़े रहे, पर उनके मुँह से इतना भी न निकला कि बैठ जाइए, मैं ठहर कर रिपोर्ट लिखता हूँ। तब हमने दुबारा बड़े विनय के साथ उनसे रिपोर्ट लिखने की प्रार्थना की। इस पर आप कड़ककर बोले—"मैं तुम्हें ग्यारह बरस के लिए जेल में भेजवा दूँगा। व्यर्थ में झूठी रिपोर्टें करने चले आते हैं।" मैंने कहा—"आपने अभी हमारी रिपोर्ट तो सुनी ही नहीं, झूठी पहले ही कहने लग गये हैं।" तब तो आप और भी बिगड़ कर बोले—"मेरा सिर न खाओ; मुझे और भी काम है।" इस पर मेरे मित्र ने उनसे अँगरेज़ी में कहा—"आपको इस प्रकार बिगड़कर बात करने की कोई ज़रूरत नहीं। यदि आप रिपोर्ट लिखाना नहीं चाहते तो न लिखिए।" अब कोतवाल साहब का पारा कुछ नीचे उतरा और वे बोले—"अच्छा, जाइए; मुंशी को रिपोर्ट लिखा दीजिए।" तब हम मुंशी के पास गये। वह भी टाल-मटोल करने लगा। कोई एक घंटा प्रतीक्षा करके हम तंग आ गये। तब हमने उसे कुछ ज़ोर से कहा—"लिखना हो तो लिखो, नहीं तो साफ़ जवाब दो।" इस पर वह बड़े अविनीत भाव से बोला—"तुम बड़े जल्दी करनेवाले आ गये हो। यहाँ तो लोग रिपोर्ट लिखाने के लिए चार चार घंटे बैठे रहते हैं।" हमने कहा—"चार घंटे बैठनेवाले कोई दूसरे होंगे; हम तो जाते हैं।" इतना कहकर हम थाने से चले आये। घर आकर मैंने अँगरेज़ी में रिपोर्ट लिखकर आदमी के हाथ कोतवाली में भेज दी। कोतवाल ने चुपचाप दर्ज करके उसकी नक़ल उर्दू में मेरे पास भेज दी।

इसी प्रकार गत वर्ष, सुना है, लाहौर-हाईकोर्ट के एक जज महोदय के यहाँ चोरी हो गई। वे सवेरे साधारण कपड़ों में ही उसकी रिपोर्ट लिखाने पुलिस चौकी में गये। परन्तु चौकी के मुंशी ने उन्हें डाँटकर कहा—"जा, उधर जा के बैठ जा। अभी सूर्य निकला नहीं, यह पहले ही आ गया है, जैसे हमें और कोई काम ही नहीं।" जज साहब कोई एक घंटा खड़े रहे, परन्तु मुंशी ने उनकी बात तक न पूछी। तब उन्होंने फिर उससे रिपोर्ट लिखने को कहा। परन्तु वह फिर उसी अविनीत भाव से कड़ककर उन्हें धमकाने लगा। इतने में मुंशी का अफ़सर आ गया। मुंशी से उसने पूछा—"क्या बात है"? मुंशी ने कहा—"जी क्या बतायें? ये लोग बहुत तंग करते हैं। अभी सवेरा नहीं हुआ, यह पहले ही आ मरा है। इससे कहा है कि ज़रा ठहर, रिपोर्ट लिख लेते हैं, परन्तु यह दम ही नहीं लेने देता। जल्दी करो, जल्दी करो, कह रहा है।" इस पर मुंशी का अफ़सर जज साहब से बोला—"हम लोग तुम्हारे बाप के नौकर हैं, जो सवेरे सवेरे ही यहाँ दौड़े चले आते हो। ज़रा ठहर जाओ, रिपोर्ट लिखे लेते हैं।" जज साहब चुप रह गये। कुछ देर बाद उन्होंने फिर मुंशी के अफ़सर से रिपोर्ट लिखने को कहा। इस पर वह बड़ा उपकार जतलाता हुआ बड़े अविनीत भाव से बोला—"लिखाओ। क्या लिखाते हो? बार बार कहने पर भी तुम टलनेवाले थोड़े ही हो।" अब जज साहब रिपोर्ट लिखाने लगे। मुंशी ने पूछा—"तुम्हारा नाम?" जज साहब ने बता दिया। "बाप का नाम?" जज साहब ने वह भी बता दिया और मुंशी ने लिख लिया। फिर उसने पूछा—"क्या काम करते हो?" जज साहब ने कहा—"हाईकोर्ट में जज हूँ।" बस इतना सुनते ही मुंशी और उसके अफ़सर के होश उड़ गये। दोनों ने जज साहब के पाँव पकड़ लिये कि हमें क्षमा कीजिए; हमें जीवन-दान दीजिए; हमसे भारी भूल हुई। पर अब क्या हो सकता था? सुना है, इस घटना का पता बड़े पुलिस-अफ़सरों को लगने पर वे दोनों मौक़ूफ़ कर दिये गये।

एक ओर तो हमारी पुलिस का यह बर्ताव है, दूसरी ओर इँग्लेंड की पुलिस इतनी अच्छी और इतनी शिष्ट है कि प्रवासी भारतवासी उसकी प्रशंसा करते नहीं थकते। मेरे एक मित्र हाल में ब्रिटिश पूर्वी अफ़्रीका से छः मास की छुट्टी पर भारत आये हैं। उन्होंने मुझे सुनाया कि एक मर्तबा उनके यहाँ अफ़्रीका में चोरी हो गई। वे कोतवाली में रिपोर्ट लिखाने गये। कोतवाल अँगरेज़ था। वह उस समय किसी काम में निरत था। उसने मेरे मित्र से कहा कि आप कुर्सी पर बैठ जाइए, मैं थोड़ी देर में रिपोर्ट दर्ज करता हूँ; आपको कुछ देर ठहरना पड़ेगा, इसके लिए मुझे क्षमा कीजिए। मेरे मित्र ने कहा—"कोई बात नहीं। आप अपना काम कर लीजिए, मैं खड़ा हूँ।" वे कुर्सी पर बैठने के बजाय खड़े ही रहे, क्योंकि उन्हें भारत की पुलिस का अनुभव था। इस पर वह अँगरेज़ फिर बोला—"भारत की बात दूसरी है; यह भारत नहीं। आप आराम से कुर्सी पर बैठिए, मैं अभी रिपोर्ट लिखता हूँ।" उस पुलिस-अफ़सर के इस सज्जनोचित व्यवहार का उन पर बड़ा ही अच्छा प्रभाव पड़ा।

भारतीय पुलिस के दुर्व्यवहार का एक स्पष्ट परि-

णाम तो यह हुआ है कि जनता का इसके साथ बिलकुल असहयोग-सा रहता है। सच्चे मामलों के लिए भी पुलिस के झूठे गवाह बनाने पड़ते हैं। इसलिए गवर्नरों के इसकी प्रशंसा के पुल बाँधते रहने पर भी पुलिस दिन पर दिन अधिक बदनाम होती जा रही है। हाईकोर्ट के जज तक इसको अपने फ़ैसलों में अविश्वास्य लिखने लगे हैं। इसलिए यह परम आवश्यक जान पड़ता है कि सरकार पुलिस को जनता के प्रति शिष्टता और सौजन्य का व्यवहार करने का कड़ा आदेश करे और यह बात उसको हृदयंगम करा दे कि "तुम जनता के सेवक हो। जनता टैक्स के रूप में तुम्हें वेतन देती है ताकि तुम क़ानून की पाबन्दी कराओ। तुम क़ानून को तोड़नेवालों को ज़रूर गिरफ़्तार करो, इससे तुम्हें कोई नहीं रोकता। परन्तु याद रक्खो, तुम्हारा जनता के साथ जो सेवक और स्वामी का सम्बन्ध है उसमें कोई ऐसी बात नहीं जो तुम्हें नागरिकों का अपमान करने का अधिकार देती हो।"

हमारे देश में शिष्टता का अभाव स्थान स्थान पर अखरता है। मुझे लज्जा से कहना पड़ता है कि पंजाब इस विषय में सबसे बुरा है। लाहौर के दो बैङ्कों का मुझे अनुभव है। वहाँ सेविंग्स अकाऊँट के काऊँटर पर मुझे ऐसे क्लार्क मिलते हैं जो ग्राहक के प्रश्न का उत्तर देने में भी अपनी कसरशान समझते हैं। ग्राहक सामने खड़ा नम्रतापूर्वक कोई बात पूछता है; बाबू साहब उसकी बात को सुनकर भी अनसुनी कर रहे हैं। फिर पन्द्रह-बीस मिनट के बाद यदि एक बार ज़रा उत्तर देने की कृपा भी करते हैं तो ऐसे कड़े शब्दों में धमकाते हुए कि सुनकर तबीयत एकदम तिलमिला उठती है। कहते हैं—"हमारे पास ऐसी बातों के लिए समय नहीं है। हम बेकार नहीं बैठे हैं। फिर कभी फ़ुर्सत के वक्त आओ। हमें केवल तुम्हारा ही काम नहीं; और भी ग्राहकों की बात सुननी है।" दो-एक बार तो मैंने इनको ग्राहकों से लड़ते तक पाया है। जहाँ शिष्टता के दो शब्द कह देने से ग्राहक सन्तुष्ट हो सकता है, वहाँ ये बाबू कठोर और अविनीत शब्द बोलकर व्यर्थ में झगड़े को बढ़ा देते हैं। कई बार मन में आया है कि इनसे कहूँ—"मित्रो, यह बैङ्क इसके डायरेक्टरों ने बड़े परिश्रम से खड़ा किया है। उनका उद्देश जहाँ आप धन कमाना है, वहाँ जनता को भी लाभ पहुँचाना है। आप लोग अपने अशिष्ट व्यवहार से बैङ्क को जनता में अप्रिय बना रहे हैं। आपके कारण न केवल जनता को दुःख होता है, वरन बैङ्क की आर्थिक हानि भी होती है। यदि आप ऐसा रूखा और अशिष्ट व्यवहार दुबारा करेंगे तो मुझे अधिकारियों के पास आपकी शिकायत करनी पड़ेगी।"

यदि कुछ साहसी सज्जन उचित ढङ्ग से शिकायत करें तो यह अशिष्टता बहुत कुछ बंद हो सकती है। शिकायत के शब्द जितने थोड़े हों, उतना ही अच्छा है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अशिष्टता का व्यवहार करनेवाले, कांस्टेबल, क्लार्क, मुंशी, अर्दली, बाबू या टिकट चेकर को यह याद दिलाना है कि हमने तुम्हारी अशिष्टता को बहुत बुरा माना है और भविष्य में हम इसे चुपचाप सहन नहीं करेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि वह व्यक्ति न केवल आपके साथ, वरन दूसरों के साथ भी अधिक शिष्टता का व्यवहार करने लगेगा।

इसके अतिरिक्त एक बात और भी है। जो भला कर्मचारी अपने दूसरे अक्खड़ साथियों की अपेक्षा अधिक शिष्टता का व्यवहार करे उसकी प्रशंसा करने में भी हमें नहीं चूकना चाहिए। उसके मालिक को उसके सौजन्य की प्रशंसा लिखकर उसका उत्साह बढ़ाना चाहिए। लाहौर के सेन्ट्रल बैङ्क में एक पारसी कर्मचारी का शान्त स्वभाव और मिष्टभाषण देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैंने सब लोगों के सामने वहीं उसके इन गुणों की प्रशंसा की। इससे वह तो प्रसन्न हुआ ही, साथ ही दूसरे अक्खड़ कर्मचारियों के भी कान हो गये।

शिष्टता सब सद्गुणों की महारानी नहीं तो कम से कम वह उनकी परम सहायक अवश्य है। यह समाज-रूपी मशीन में तेल का काम देती है। यह एक ऐसा बहुमूल्य सद्गुण है जो जितना भी बढ़ाया जाय, अच्छा है। यदि दूसरा मनुष्य हमारे साथ अपने आप शिष्टता का व्यवहार करे तो यह बड़ी ख़ुशी की बात है, परन्तु यदि वह शिष्टता दिखाने में कंजूस हो तो हमें उसे इसके लिए विवश करने में भी कोई हानि नहीं।

व्यत्यस्त रेखा-शब्द-पहेली

CROSSWORD PUZZLE IN HINDI

व्यत्यस्त रेखा-शब्द-पहेली इस मास की सरस्वती में पृष्ठ १३६ के साम
दी गई है। हिन्दी में यह पहेली प्रथम बार प्रकाशित हो रही है और हम
आयोजन किया है कि सरस्वती में यह प्रतिमास प्रकाशित हो।

इस प्रकार की पहेली अर्थात् क्रासवर्ड पज़ल्स का पाश्चात्य देशों
बड़ा प्रचार है। वहाँ समय बिताने का यह सर्वोत्तम विनोद माना जाता है
फिर इसमें जी ही बहलता हो सो बात नहीं इससे बुद्धि का भी विकास हो
है। कितने ही नये नये शब्दों की जानकारी होती है और साहित्य से प्र
पैदा होता है।

इँग्लेंड अमरीका आदि देशों में इस प्रिय दिल-बहलाव के द्वारा लो
अपने शब्द-भाण्डार ही नहीं बढ़ाते बल्कि हज़ारों रुपये भी प्राप्त कर ले
हैं। वहाँ इन पहेलियों पर हज़ारों के पारितोषिक दिये जाते हैं।

इस बुद्धिवर्द्धक और अर्थप्रदायक विनोद से हमारे हिन्दी के पाठ
क्यों वञ्चित रहें यही सोचकर हमने इस पुरस्कार की सरस्वती में व्यवस्था
है। इसके नियम आदि सब पहेली के साथ छपे हैं। यह पहेली किस प्रक
हल करनी चाहिए यह बात नियम (२) में अच्छी तरह समझा दी गई है
अंक नम्बर १ से बायें को दाहिने लिखा जाने वाला शब्द सरस्वती है।
वर्ग में लिख दिया गया है। इसी तरह ऊपर से नीचे और बाएँ से दाहि
सब शब्दों को लिखना है। थोड़ा समय इसमें लगाने से आप देखेंगे
आपको कितना आनन्द आता है। फ़िर इस दिल-बहलाव के साथ आप ३०
या २००) का पुरस्कार भी प्राप्त कर सकते हैं। इस पुरस्कार की व्यवस
हमने ख़ास तौर से सरस्वती के पाठकों के लिए की है। हमें आशा है पाठ
इससे लाभ उठावेंगे।



[लेखक अपने तंबू के बाहर—तिब्बत में]



[लीपू-लेक दर्रा का एक दृश्य]



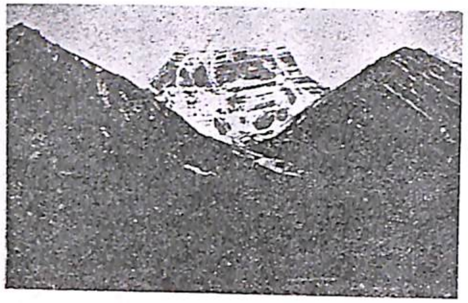
[ग्यांस घाटी की एक स्त्री]

हमारी कैलास-यात्रा

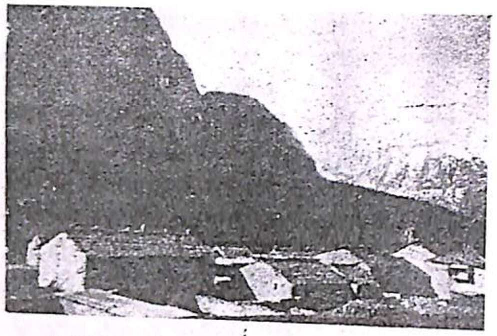
लेखक, श्रीयुत सी० बी० कपूर, एम० ए०, एल-एल० बी०

इस लेख के लेखक महोदय उत्साही पंजाबी नवयुवक हैं और यात्रा से बड़ा शौक रखते हैं। हाल ही में आपने कैलास की यात्रा की है उसका वर्णन आपने इस लेख में किया है। इस यात्रा के बाद आप काबुल होकर ख़ुश्की के मार्ग से योरप जाने की तैयारी कर रहे हैं। आपकी वह यात्रा भी मनोरञ्जक होगी और समय पर सरस्वती के पाठकों को पढ़ने को मिलेगी। इस लेख के सब चित्र भी आपही के खींचे हुए हैं।

कैलास-पर्वत भारत में नहीं, उसके बाहर पश्चिमी तिब्बत में है। यात्री लोग अलमोड़ा होकर वहाँ जाते हैं, जहाँ से वह कोई २४० मील के फ़ासले पर है। यह हिन्दुओं और तिब्बत के लोगों का भी एक बहुत प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान है। हिन्दू इसको शिव जी का वास-स्थान मानते हैं। इसकी यात्रा सब यात्राओं से कठिन है। हिन्दुस्तान के निवासियों को यात्रा के वास्ते तिब्बत जाने में तिब्बत की सरकार से कोई रोक-टोक नहीं है और न किसी पासपोर्ट आदि के लेने की ही आवश्यकता पड़ती है। इस यात्रा में भारतीय यात्रियों को हिमालय के ऊँचे पर्वतों की दीवार को नाँघकर उस पार तिब्बत में जाना पड़ता है, इसलिए जून, जुलाई और अगस्त, ये ही तीन महीने इस यात्रा के वास्ते अच्छे माने गये हैं। इन महीनों में हिमालय के पर्वतों पर की बर्फ़ आधी से अधिक गल जाती है, अतएव हिमालय के पर्वतों के उस पार जाना बहुत कुछ साध्य हो जाता है। दूसरे तिब्बत का भी मौसम कुछ बदल जाता और कुछ गर्म हो जाता है। साथ ही इन्हीं महीनों में तिब्बत के दो स्थानों (तकलाकोट और गियानिमा) में बहुत बड़ी मंडियाँ लगती हैं, जिनमें हिन्दुस्तान, चीन और



[कैलास पर्वत डीर्डाफ-गुम्पा से ।]



[गर्वियांग —ब्रिटिश राज्य का अन्तिम स्थान है ।]



[गर्वियांग ।]

नेपाल के व्यापारी बड़ी दूर से आकर व्यापार के लिए इकट्ठा होते हैं। इन दिनों इन दोनों मंडियों में हज़ारों की संख्या में तम्बू लग जाते हैं। इस प्रकार आने-जाने से मार्ग खुल जाते हैं और अनभ्यस्त यात्रियों को भी बहुत कुछ सुविधा हो जाती है।

कई कारणों से मुझे और मेरे एक मित्र को कैलास-यात्रा मई-जून के महीनों में ही करनी पड़ी।

अलमोड़ा से तिब्बत जाने के वास्ते दो रास्ते हैं। एक रास्ता बियांस की घाटी से होकर लिपूलेक दर्रा से और दूसरा जुहारघाटी से होकर किंगरी-विंगरी के तीन ऊँचे दर्रों से होकर गया है। लिपूलेक को पार कर जाना कुछ आसान है, इसलिए सब यात्री इसी रास्ते से जाते हैं। इस रास्ते से जाने से तिब्बत में तकलाकोट की मंडी मिलती है और किंगरी-विंगरीवाले रास्ते से जाने से गियानिया की मंडी से होकर जाना पड़ता है। हम लोग जाते समय लिपूलेक के दर्रे से गये और वापसी के समय किंगरी-विंगरी के दर्रों से होकर आये।

हमारी कैलास-यात्रा अलमोड़ा से शुरू हुई। काठ-गुदाम तक हम रेलवे से आये और वहाँ से अलमोड़ा मोटर-बस से गये। काठगुदाम से अलमोड़ा तक मोटर-मार्ग लुक का बना हुआ है और अति सुन्दर छोटी छोटी पहाड़ियों से होकर जाता है। रास्ते में सबसे बड़ा स्थान रानीखेत है। यह एक फ़ौजी स्थान है।

अलमोड़ा संयुक्त-प्रान्त का एक प्रधान पहाड़ी स्थान है। यहाँ सब प्रकार की वस्तुएँ मिल जाती हैं। यहाँ के सरकारी डाक बँगला में स्वीज़रलैंड के भूतत्त्वविद्या के पण्डित डाक्टर हाइन ठहरे हुए थे। उनसे हमारी मुलाक़ात हुई। वे यह सुनकर कि हम तिब्बत जा रहे हैं, बहुत ख़ुश हुए और कुछ हैरान भी हुए कि हम हिन्दुस्तानी होकर ऐसा विचार और दिल रखते हैं। हमने रात का खाना उनके पास खाया। वे इस बात पर कि हमको कोई पासपोर्ट आदि नहीं लेना पड़ता ईर्ष्या करते थे, क्योंकि उनको हाल में ही तिब्बत जाने की आज्ञा नहीं मिली थी और वे वहाँ जाने के बड़े इच्छुक थे।

यात्रा की आख़िरी तैयारी हमने अलमोड़ा में की। यहाँ से हम २८ अप्रेल १९३५ के प्रातःकाल कुछ थोड़ा खा-पीकर पहले पड़ाव दालचीना की ओर चल दिये।

मेरे मित्र ने, मैंने और हमारे रसोइये ने कोई १५ सेर के लगभग बोझा लिया था, पर हमारे अलमोड़ा के २ कुली ३० सेर से भी अधिक बोझा लाद कर चले थे। अलमोड़ा की 'कुली-एजेन्सी' से कुली सस्ते और मज़बूत मिल जाते हैं और चोरी-चारी का भी भय नहीं रहता।

अलमोड़ा से गर्बियांग तक अच्छी सड़क बनी हुई है और कोई १४ दिन का रास्ता है। यात्रियों को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। यहाँ तक थोड़ा-बहुत खाने-पीने का सामान प्रत्येक पड़ाव में मिल जाता है। गर्बियांग ब्रिटिश राज्य के अलमोड़ा-ज़िले का कैलास-मार्ग पर अन्तिम डाकख़ाना और बसा हुआ स्थान है।

खेला तक जो यात्रा का प्रथम भाग है, सभी प्रकार का थोड़ा-बहुत व्यापार होता है। परन्तु इस मार्ग में बहुत बार ऊँचे-नीचे चढ़ना उतरना पड़ता है। इस मार्ग पर सबसे गरम और नीचे बुलवाकोट और दारचुला के पड़ाव हैं। इनकी उँचाई कुल २,५०० और ३,१०० फ़ुट है। ये दोनों स्थान बड़े खुले मैदान में गोरीगंगा के तट पर हैं। इस भाग के निवासी पहाड़ी राजपूत कहे जानेवाले कुमायूँ के लोग हैं। इस स्थान से आगे गर्बियांग तक बियांग का इलाक़ा है। इस भाग के रहनेवालों को भोटिया कहते हैं। ये लोग मंगोल-जाति के हैं, और तिब्बत से आये हुए जान पड़ते हैं। परन्तु अब इनमें तिब्बतियों की कोई बात नहीं है। ये उन लोगों से हज़ार दर्जे साफ़ रहते और सुन्दर होते हैं। हिन्दी बोलते हैं और कट्टर हिन्दू हैं। सर्दियों में ये अपने घर-बार छोड़कर अपने बाल-बच्चों और पशुओं को लेकर नीचे गर्म स्थान दारचुला में आ जाते हैं। अप्रेल-मई में ये फिर अपने अपने घरों को लौट जाते हैं। हमको इनके दल के दल ऊपर जाते रास्ते में मिले। इनकी स्त्रियाँ पुरुषों से अधिक काम करती हैं। जब पुरुष व्यापार के लिए तिब्बत चले जाते हैं तब वे खेती और पशु-पालन का काम अपनी स्त्रियों के सुपुर्द कर जाते हैं। हिन्दुस्तान को तिब्बत से जो व्यापार होता है वह अब इन लोगों के हाथ में है, जिसको इनसे कोई भी नहीं छीन सकता। ये हर साल यहाँ से सत्तू, आटा, चावल और कपड़ा तिब्बत ले जाते हैं और वहाँ से नमक, ऊन



[तिब्बती आदमी और बच्चे। यहाँ लामा लोगों सिवा सब सिर पर स्त्रियों की तरह बाल रखते हैं।]



[तिब्बती बैल वा "याक"।]



[गर्बियांग का एक कुटुम्ब।]



[हमारी मंडली एक ऊँचे मार्ग पर।]



[हमारी मंडली लीपू दर्रा पार करने की तैयारी कर रही है।]

और सुहागा लाते हैं। यदि ये एक वर्ष भी यह सब सामान तिब्बत न ले जायँ तो पश्चिमी तिब्बत के लोग भूखों मर जायँ।

हमको उन भूटिया लोगों का प्रतिवर्ष ऊपर से आना जाना उनके जीवन की सबसे अधिक कष्टप्रद बात जान पड़ती थी। ये भूटिया बहुत सुन्दर और प्रियदर्शन होते हैं। और ये अधिक ग़रीब भी नहीं हैं। स्थान स्थान पर हमारी इन लोगों से बहुत देर तक बातें होती रहती थीं और ख़ूब हास-परिहास भी होता था। हमें ये लोग बहुत प्यारे लगते थे।

तुलवाकोट से जो चढ़ाई आरम्भ होती है वह गर्बियांग में ही जाकर समाप्त होती है। यहाँ से मार्ग कुछ कठिन हो जाता है और कहीं कहीं तो इतना छोटा हो जाता है कि उसकी चौड़ाई एक फ़ुट से भी कम हो जाती है। यहीं से असली हिमालय के पर्वत मिलते हैं, जिनकी उँचाई ही देखकर हृदय में भय का सञ्चार हो जाता है। इन कठोर सीधे खड़े पर्वतों को काट काटकर बहुत कठिनता से मार्ग बनाया गया है। इसके निर्माण में हज़ारों रुपया ख़र्च हुआ होगा। इस मार्ग के बनाने के लिए मैसूर के महाराज ने जो स्वयं एक बार कैलास के दर्शन कर गये हैं, चालीस हज़ार रुपये का दान किया था। इस भयानक मार्ग पर अधिक सावधानी से चलना पड़ता है। प्रतिवर्ष अनेक पशु गिरकर गोरीगंगा में बह जाते हैं। इस भयानक मार्ग का वर्णन करना भी कठिन है। इस नदी के उस पार नेपाल का राज्य है। यह मार्ग इसी नदी के किनारे किनारे गया है। कई जगह सीधे खड़े ऊँचे पर्वतों से बड़े बड़े पत्थरों के गिरने के कारण मार्गावरोध हो जाने से हमें नेपाल की हद से होकर आगे चलना पड़ा था।

गर्बियांग दस हज़ार फ़ुट की उँचाई पर मैदान में है और बहुत सुन्दर स्थान है। यहाँ हमने कुली बदल दिये और ३ तिब्बती भूटिया (ये कुली लीपूलेक दर्रा—१७,७०० फ़ुट उँचाई के मार्ग से परिचित थे) लेकर गर्बियांग से आगे बढ़े। इस स्थान से आगे न कोई दूकान है और न ठहरने के लिए



[तकलाकोट से १४ मील पर रोमगांग में हमारे तम्बू।]

कोई मकान मिलता है। लकड़ी भी हमें मिलनी कठिन हो गई।

हमने लीपूलेक का दर्रा सूर्य निकलने से पहले ही पार कर लिया, क्योंकि इन दिनों अभी उस पर अधिक बर्फ़ होने के कारण सूर्य की गर्मी से उसके पिघलने का भय था।

गर्बियांग पहुँच कर हमने दो दिन तक विश्राम किया। यहाँ से आगे का मार्ग तो उतना ख़राब नहीं है, परन्तु विकट सर्दी का अवश्य सामना करना पड़ता है। खाने की सामग्री सब यहीं से साथ ले जानी पड़ती है और 'काला-पानी' के पड़ाव से एक दिन के लिए लकड़ी भी साथ ले जानी पड़ती है। लीपू दर्रा को पार करने के लिए मज़बूत जूते, गरम जुराब, मुँह ढँकनेवाली गरम टोपी, गरम ऊनी पाजामा और कोट की आवश्यकता पड़ती है। यदि हो सके तो एक काला ऐनक भी रखना अच्छा है, क्योंकि बर्फ़ पर सूर्य की बहुत चमक होने से आँखों में कुछ पीड़ा-सी हो जाने का भय हो सकता है। जो लोग पहली बार इतनी उँचाई पर जाते हैं उनको प्रायः सिर-दर्द भी हो जाता है। परन्तु इसका भय नहीं करना चाहिए। यह सब स्वयं नीची उँचाई में जाने से ठीक हो जाता है। यात्री दर्रा को जितना ही जल्दी सूर्य निकलने से पहले पार करें, उतना ही अच्छा है। इससे पाँवों के बर्फ़ में धँसने का भय नहीं रहता है।



[एक तिब्बती कैलास की परिक्रमा लेट लेटकर, कर रहा है।]



[गोरीगंगा के तट पर हमारा खाना पकाना।]

लीपू दर्रा की चोटी पर पहुँच कर हमने कोई १५ मिनट तक आराम किया था। यहाँ चारों ओर दूर दूर तक बर्फ़ ही बर्फ़ दिखाई पड़ती थी। यहाँ बड़े बड़े विचार मेरे मन में आये। यह मेरा विचार है कि इतनी उँचाई पर जाने से हम सिर्फ़ अपने शरीर को ही नहीं ऊँचा उठाते हैं, बल्कि अपनी आत्मा को भी उच्च बनाते हैं। बड़ी कठिन और ऊँची चढ़ाई पर चढ़ने के बाद चोटी पर पहुँचने की जो ख़ुशी एक मनुष्य को होती है उसका वर्णन करना असम्भव है।



[टुकर गुम्पा से मानसरोवर का दृश्य।]

गर्बियांग से यह दर्रा कोई १८ मील की दूरी पर है। यहाँ अधिक सर्दी के कारण शरीर को ख़ूब ढाँप कर



[ठुकर गुम्पा के लामा लोग ।]

चलना पड़ता है। दर्रा से ७ मील चलकर हम तकलाकोट पहुँचे। यहाँ कुछ दुकानें और मकान भी बने हुए हैं। सबसे ऊँचे स्थान पर एक बौद्ध-मठ है, जिसमें बौद्ध पुजारी (लामा) और कुछ बौद्ध भिक्षु रहते हैं। इस मठ के साथ 'जोम्पन' डिप्टी कमिश्नर का-मकान भी है। यहाँ के सब निवासी हमारे पहुँचने पर हमारे तम्बू के नज़दीक आकर इकट्ठे हो गये। किसी के हाथ में माला और 'मनी' थी, कोई 'जोंता' सीता था और कोई ऊन बुनता था। सबके वस्त्र और शरीर बहुत अधिक मैले और गन्दे थे। छोटे छोटे बालकों की तरह वे हमारी प्रत्येक वस्तु को हाथ लगा लगाकर देखते थे।

यहाँ चाँदी का सिक्का चलता है, जिसे 'टंका' कहते हैं। इसका मूल्य दो आने के बराबर है, आधा टंका भी चलता है। हमारा रुपया तो चल जाता है, परन्तु नोट या छोटे सिक्के—दुअन्नी, चौअन्नी आदि नहीं चलते। नेपाली और चीनी सिक्के भी चलते हैं।

हमें तिब्बती लोग व्यापार में बड़े सच्चे प्रतीत हुए। वे वस्तु का जो मोल बतायेंगे, फिर उससे कम कभी न लेंगे।

तकलाकोट से हमने एक 'याक' (तिब्बती बैल) किराये पर लेकर उस पर दो कुलियों का बोझ लादकर ३ दिन में मानसरोवर झील के तट पर पहुँच कर ठुकर-नाम के गुम्पा (मन्दिर) के नज़दीक अपना तम्बू लगा दिया। तिब्बत की सब झीलों में मानसरोवर ही सबसे बड़ी है। हमारे यहाँ और तिब्बत के धर्म-ग्रन्थों में भी यह झील पवित्र मानी गई है। संसार में इस झील का जल सबसे अधिक स्वच्छ तथा मीठा माना गया है। यह झील समुद्र-तल से १५,००० फ़ुट की उँचाई पर है। यह तिब्बत के समतल मैदान में फैली हुई है, यहाँ से कैलास का दर्शन भी होता है। कैलास का हिमधवल शरीर बहुत ही मनोहर दीख पड़ता है। यहाँ हम सबने झील में स्नान भी किया। परन्तु उसका जल अत्यधिक शीतल था।

इस झील के चारों ओर सात-आठ गुम्पा (बौद्ध-मठ) हैं। उनमें से एक ठुकर-गुम्पा का हमने भीतर जाकर दर्शन किया। तिब्बती मन्दिरों में हमें जूते कहीं भी उतारने की आवश्यकता नहीं पड़ी। यहाँ के लोग भगवान् बुद्ध की पूजा करते हैं। परन्तु हिन्दू देवताओं की प्रतिमायें भी इस मठ में विद्यमान थीं, जिनकी पूजा भी की जाती है। यहाँ बहुत पुरानी हस्तलिखित पुस्तकें भी ख़ूब सजा कर रक्खी हुई हैं। एक कोने में एक लामा कुछ पढ़ रहा था और प्रत्येक पंक्ति के अंत में अपने दायें हाथ से ढोल बजा देता था।

मानसरोवर के तट को छोड़कर हमारा दल आगे बढ़ा। यहाँ से चलकर हम राक्षस-ताल (रावण-ह्रद) पर पहुँचे। यह भी एक विशाल झील है। इससे आगे पटखा का प्रसिद्ध मैदान है। दूर दूर तक मैदान ही मैदान दिखाई देता है। पटखा का पड़ाव उसके बहुत नज़दीक पहुँचने पर ही दिखाई पड़ता है। यहाँ कुल दो ही मिट्टी के मकान हैं, जिनमें से एक तहसीलदार का है। यहाँ भी एक भारी मंडी लगती है। उन दिनों यहाँ सैकड़ों तम्बू लग जाते हैं। यह पड़ाव 'लद्दाक-ल्हासा' के मार्ग पर है और यहाँ से ल्हासा को डाक बदलती है।

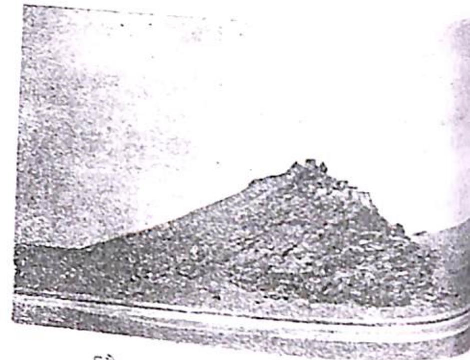
तिब्बत का देश 'उच्च समभूमि' है, जो बहुत बड़ी है और जिसकी कम-से-कम उँचाई १४,००० फ़ुट है। हिमालय के ऊँचे पर्वतों के द्वारा यह देश हिन्दुस्तान से अलग हो गया है। यह एक सूखी मरुभूमि जैसा देश जान पड़ता है। इसके अधिक ऊँचा होने के कारण इस देश में न कोई वृक्ष है और न यहाँ खेती ही होती है।

यहाँ के लोग बहुत अधिक गन्दे होते हैं। इसका कारण अधिक शीतलता है। ये लोग अपनी गुज़र-बसर भेड़-बकरियों पर करते हैं। चाय, सत्तू और घी-दूध पर ही इन्हें अपना जीवन-यापन करना पड़ता है। फल, सब्ज़ी आदि इन्हें कभी देखने तक को नहीं मिलती। याक और बकरी का गोबर लकड़ी का काम दे जाता है। हमारी भोजन-सामग्री का अंत हो जाने पर हमको भी कुछ दिन चाय-सत्तू पर ही गुज़र करनी पड़ी। पर इससे तृप्ति नहीं होती थी, सिर्फ़ पेट भरने का काम होता था। ऐसे अवसर पर कई बार अपने प्यारे देश को जल्द लौटने की इच्छा हुई थी और अपने यहाँ के जब फलों, मेवों आदि की याद आती तब मुँह में पानी भर आता था।

जितने दिन हम तिब्बत में रहे, वहाँ के लोगों की ही ख़ुराक पर गुज़र किया। दिन और रात सत्तू और नमकीन चाय पर निर्वाह करते करते हम तंग आ गये थे। अपने भारत के मीठे और नाना प्रकार के सुस्वादु भोजन हमें स्वप्न में याद आते थे। अपने यहाँ की हरी-भरी खेतियाँ और बाग़-बग़ीचे जब याद आते थे तब हमारा मन उस समय ख़ुशी से उमड़ उठता था। किसी प्रकार से उड़कर वहाँ पहुँच जायँ और उनको देखकर अपना मन प्रसन्न करें, यही हृदय में प्रायः इच्छा होती थी। तिब्बत में रहते हुए हमें भारत एक सचमुच सोने की चिड़िया और स्वर्ग के समान प्रतीत होता था। वहाँ के सूखे मैदान बड़े भयानक दिखाई पड़ते थे।

तिब्बत में हमने बकरी मारने का एक नया ही ढंग देखा। ये झटका आदि कुछ नहीं करते। बकरी का गला घोट कर उसे दो मिनट में ही मार डालते हैं। इससे बकरी का ख़ून बाहर नहीं जाने पाता। उसके ख़ून को वे लोग बड़े शौक़ से पीते हैं।

पटखा के मैदान में जंगली घोड़े पाये जाते हैं। यहाँ से कैलास का दृश्य बहुत ही सुन्दर दिखाई देता है। इसके आगे तारचिन का पड़ाव मिलता है। यह पड़ाव पटखा से भी दिखाई देता है और मैदान के अंत में है। तकलाकोट से दूसरा बड़ा पड़ाव तारचिन का ही है। यहाँ कोई २० के लगभग मकान भी बने हुए हैं। यहाँ से कैलास की परिक्रमा प्रारम्भ होती है। कैलास की



[कैलास के एक पार्श्व-पर्वत का दृश्य।]

परिक्रमा का मार्ग अनुमानतः लगभग ३२ मील
इसके परिक्रमा-मार्ग में चार प्रसिद्ध बौद्ध-मठ
हैं। पहला गुम्पा तारचिन में है।

हमने अपना बहुत-सा सामान मठ में रख दि
एक दिन की भोजन-सामग्री साथ लेकर वहाँ से प
आरम्भ कर दी। रात को डिंडीफू-गुम्पा में जो तार
११ मील पर है, जाकर विश्राम किया। इस स्था
कैलास-दर्शन पूर्ण रूप से होता है। यहाँ हमारी प
तिब्बत के सूबेदार (गोरपन) से भेंट हुई। वे भी
की परिक्रमा कर रहे थे। हमें इन्होंने तिब्बती
पिलाई। वे दूसरे तिब्बतियों से अधिक साफ़ और
थे। उन्होंने हमसे महात्मा गांधी के सम्बन्ध में ब
बातें पूछीं।

कैलास के चारों ओर से चार महानदियाँ नि
हैं। इनमें से दो नदियाँ तिब्बती हैं और दो भा
प्रवेश करती हैं और वे सिंध और सतलज हैं। चारों
से यह परमोज्ज्वल, श्वेताम्बरधारी, आकाशस्पर्शी, प्रा
महामन्दिर, श्यामरूप, कालवर्ण, विशाल पर्वत-श्र
से सुरक्षित है। वास्तव में कैलास आस-पास की
श्रेणियों के बीच कोयले की खान में सुन्दर हीरे के स
देदीप्यमान है। कैलास एक ईश्वरीय शिव-मन्दिर है।

यह धवल महाचल अपने निम्न भाग में चौकोर
इस चौकोर भाग के ऊपर मन्दिर के समान दूसरा गोला
शिखिर स्थापित है। इसके महासौन्दर्य की देदीप्य
ज्योति से नेत्र झिलमिला जाते है। इसके मनोहर दृश्य

वर्णन करना कठिन है। यह तो नेत्रों से ही देखने की वस्तु है। कैलास-शिखर की उँचाई लगभग २२,८०० फ़ुट है।

दूसरे दिन प्रातःकाल हम डीर्डाफ़-गुम्पा से चल दिये। यहाँ से चढ़ाई प्रारम्भ होती है और मार्ग में कई स्थानों पर बर्फ़ पर चलना पड़ता है। इस दर्रे को दोलमा-दर्रा कहते हैं और इसकी उँचाई कोई १८,६०० फ़ुट के लगभग है। इसकी चोटी पर पहुँचने से पहले गौरीकुंड की झील मिलती है। प्रातःकाल की सूर्य-रश्मियों ने वहाँ अपूर्व ही दृश्य उपस्थित कर रक्खा था। एक किनारे पर इसका जल हिम से नहीं ढँका था। कई यात्री यहाँ भी स्नान करते हैं। यहाँ हमें कई तिब्बती और हिन्दू यात्री मिले। कुछ तिब्बती तो कैलास-परिक्रमा लेट लेट कर कर रहे थे। तिब्बत में कैलास का बहुत अधिक माहात्म्य है।

गौरीकुंड से जुमतिलफ़ु-गुम्पा तक बहुत सीधी उतराई है। यहाँ हमने कुछ अन्न-जल ग्रहण किया और सायंकाल से पहले दारचिन पहुँच गये। इस दिन हमारी भूख और थकावट का वर्णन करना कठिन है। सारी रात दारचिन में हिम-वर्षा होती रही।

लौटते समय हमारा विचार दूसरे मार्ग से होकर जाने का हो गया और दारचिन से तीसरे दिन हम गियानिमा मंडी में पहुँच गये। वहाँ अभी मंडी लगने में कुछ देर थी। परन्तु कई स्थानों पर हमको गड़रियों के तम्बू मिले, जिनसे हमें दूध, दही, मक्खन आदि मिल जाते थे। इस मार्ग में हम जब तक तिब्बत की सीमा में रहे, दो भय प्रतिपल बने रहते थे। वे थे शीत और डकैत। वायु की तीव्रता हमारे लिए बड़ी कष्टदायक थी। उसकी ठंड बिच्छू के समान पीड़ा पहुँचानेवाली प्रतीत होती थी। शरीर को भले प्रकार ढँक कर चलना पड़ता था। और डाकुओं का तो हर समय भय रहता है। ये लोग बड़े ख़ूनी हत्यारे होते हैं। तिब्बती सरकार इनके पकड़ने का कोई यत्न नहीं करती। इसलिए बिना किसी बन्दूक़-पिस्तौल के यात्रा करने में कम मज़ा है। हमारे पास कोई हथियार नहीं था। परन्तु हमारे नौकर लाठियों पर कपड़े लपेटकर उनको झूठ-मूठ बन्दूक़ों का रूप देकर अपने कन्धों पर रखकर चलते थे। एक-दो बार इन डाकुओं से हमारी भेंट हुई, पर हम उनसे बच गये।

हमारे पाश्चात्य रहन-सहन ने भी हमारी बड़ी सहायता की। वहाँ के लोग पाश्चात्य पहनावे से बहुत डरते हैं।

मानसरोवर के शांत तट पर, गुसल गुम्पा से कोई तीन मील पर हम विश्राम कर रहे थे और सिवा हमारे तम्बू के वहाँ और किसी का भी तम्बू नहीं था। हमारे देखते ही देखते हमें वहाँ अस्त्र-शस्त्र से सज्जित सुन्दर वेशधारी सैनिकों के समान एक दल आता दिखाई दिया। हमारे पथ-प्रदर्शक ने हमें सचेत कर दिया। वे लोग उन्हीं व्यक्तियों पर आक्रमण करते हैं जो थोड़ी संख्या में होते हैं या जिनमें उनसे बदला लेने और उन्हें भगा देने का साहस कम प्रतीत होता है। उन लोगों के लम्बे नेज़े और सिर के भयानक खुले बाल देखकर वास्तव में हम डर गये थे। परन्तु हमारे नवयुवक दिल को और हमारी झूठी-मूठी बन्दूक़ों को देखकर वे लोग पैंतरा बदल गये और हमसे कोई छेड़-छाड़ न की, और थोड़ी देर की बात-चीत के बाद वहाँ से चले गये।

तिब्बत में पुलों के न होने के कारण हमें दो-तीन बड़ी बड़ी नदियों के बीच में से जाना पड़ा। और गियानिमा मंडी से तीसरे दिन हम छितिचुन पहुँच गये। यह स्थान किंगरी-बिंगरी के तीन दर्रों के नीचे है। यहाँ से हम दो गड़रियों की सहायता से तीनों दर्रे पारकर ८ जून को ब्रिटिश राज्य में आगये और टंग नामक पड़ाव की धर्मशाला में विश्राम किया।

उक्त तीनों दर्रे जैसा कि हमको लोगों ने बतलाया था, बहुत ही कठिन और भयंकर हैं। परन्तु हमने जीवन और मृत्यु को एक ओर करके बड़ी हिम्मत से इन तीनों दर्रों को पार किया। यह मार्ग वर्ष भर में कुल जुलाई, अगस्त और सितम्बर के महीनों में ही खुला रहता है।

इस दर्रे से १२ दिन में हम मिलम और बागेश्वर से होते हुए अल्मोड़ा पहुँच गये। यहाँ पहुँचने पर यात्रा लगभग ६०० मील की हो गई थी।



हास्यरस की एक कहानी

साइकिल की सवारी

लेखक, श्रीयुत सुदर्शन

(१)

भगवान् ही जानता है कि जब मैं किसी को साइकिल की सवारी करते या हारमोनियम बजाते देखता हूँ तब मुझे अपने ऊपर कैसी दया आती है! सोचता हूँ, भगवान् ने ये दोनों विद्यायें भी खूब बनाई हैं। एक से समय बचता है, दूसरी से समय कटता है। मगर तमाशा देखिए, हमारे प्रारब्ध में कलियुग की ये दोनों विद्यायें नहीं लिखी गईं। न साइकिल चला सकते हैं, न बाजा बजा सकते हैं। पता नहीं, कब से यह धारणा हमारे मन में बैठ गई है कि हम सब कुछ कर सकते हैं, मगर ये दोनों काम नहीं कर सकते।

शायद १९३२ की बात है कि बैठे बैठे ख़याल आया, चलो साइकिल चलाना सीखलें। और इसकी शुरूआत यों हुई कि हमारे लड़के ने चुपचुपाते में यह विद्या सीख ली, और हमारे सामने से सवार होकर निकलने लगा। अब आपसे क्या कहें कि लज्जा और घृणा के कैसे कैसे ख़याल मेरे मन में उठे। सोचा, भई, क्या हमीं ज़माने भर में फिसड्डी रह गये हैं। सारी दुनिया चलाती है; ज़रा ज़रा से लड़के चलाते हैं; मूर्ख और गँवार चलाते हैं। हम तो परमात्मा की कृपा से फिर भी पढ़े-लिखे हैं। क्या हमीं नहीं चला सकेंगे? आख़िर इसमें मुश्किल क्या है? कूद-कर चढ़ गये और तावड़-तोड़ पाँव मारने लगे। और जब देखा कि कोई राह में खड़ा है तब टन-टन करके घंटी बजा दी। न हटा तो क्रोध-पूर्ण आँखों से उसकी तरफ़ देखते हुए निकल गये। बस, यही तो सारा गुर है इस लोहे के घोड़े की सवारी का! अब ऐसा मालूम हुआ कि हम "बे-फ़ज़ूल" ही मरे जाते थे। कुछ ही दिनों में सीख लेंगे। बस, महा-राज! हमने निश्चय कर लिया कि चाहे जो हो जाय, परवा नहीं।

दूसरे दिन हमने अपने फटे-पुराने कपड़े तलाश किये, और उन्हें ले जाकर श्रीमती जी के सामने पटक दिया कि इनकी ज़रा मरम्मत तो कर दो।

श्रीमती जी ने हमारी तरफ़ अचरज-भरी [illegible] देखा और कहा—"इन कपड़ों में अब जान ही [illegible] जो मरम्मत करूँ। ये तो फेंक दिये थे। आप [illegible] उठा लाये? वहीं जाकर डाल आइए।"

हमने मुस्कराकर श्रीमती जी की तरफ़ देखा। [illegible] मतलब यह था कि तुम्हें क्या मालूम, हमारे क्या इरादे हैं! मुँह से कहा—"तुम हर समय बहस [illegible] करो। आख़िर मैं इन्हें ढूँढ़ ढाँढ़ कर लाया हूँ तो [illegible] तो नहीं उठा लाया। कृपा करके इनकी मरम्मत कर [illegible] जल्दी से!

मगर श्रीमती बोलीं—"पहले बताओ, इनका [illegible] बनेगा?

हम चाहते थे, घर में किसी को कानों-कान [illegible] हो, और हम साइकिल-सवार बन जायँ। और इस [illegible] जब इस विद्या के पंडित हो जायँ तब एक दिन [illegible] के मक़बरे को जाने का निश्चय करें। घरवालों को [illegible] बिठा दें, और कहें: तुम चलो, हम दूसरे तांगे में आ [illegible] और जब वे चले जायँ तब साइकिल पर सवार होकर [illegible] रास्ते में जा लें। हमें साइकिल पर सवार देख [illegible] लोगों की क्या हालत होगी! हैरान हो जायँगे; [illegible] जायँगे; आँखें मल-मल कर देखेंगे कि कहीं कोई [illegible] नहीं है! परन्तु हम गर्दन टेढ़ी करके दूसरी तरफ़ [illegible] लग जायँगे, जैसे हमें कुछ मालूम ही नहीं है, और [illegible] सवारी हमारे लिए साधारण बात है।

मगर श्रीमती जी ने कहा—"पहले बताओ, [illegible] क्या बनेगा?" झक मारकर बताना पड़ा कि रोज़ [illegible] का ख़र्च मारे डालता है। साइकिल चलाना सीखेंगे।

श्रीमती जी ने बच्चे को सुलाते हुए हमारी तरफ़ [illegible] और मुस्करा कर बोलीं—"मुझे तो आशा नहीं कि यह बेल मढ़ये चढ़ सके। ख़ैर यत्न कर देखिए। मगर [illegible] कपड़ों का क्या बनेगा?"

हमने ज़रा रोब से कहा—आख़िर बाइसिकल [illegible]

दो बार गिरेंगे या नहीं ? और गिरने से कपड़े फटेंगे या नहीं ? जो मूर्ख हैं वे नये कपड़ों का नुक़सान कर बैठते हैं। जो बुद्धिमान् हैं वे पुराने कपड़ों से काम चलाते हैं।"

मालूम होता है, हमारी इस युक्ति का जवाब हमारी स्त्री के पास कोई न था, क्योंकि उन्होंने उसी समय मशीन मँगवाकर उन कपड़ों की मरम्मत शुरू कर दी।

इधर हमने बाज़ार जाकर ज़ेम्बक के दो डिब्बे ख़रीद लिये कि चोट लगने पर उसका उसी समय इलाज किया जा सके। इसके बाद बाहर जाकर एक खुला मैदान तलाश किया, ताकि दूसरे दिन से साइकिल-सवारी का काम शुरू किया जा सके।

(२)

अब यह सवाल हमारे सामने था कि अपना उस्ताद किसे बनावें। पहले तो यह सोचा कि बिना उस्ताद के सीखो। हमारे लड़के ने क्या किसी की शागिर्दी की थी। कहता था, मैंने तो ऐसे ही सीख लिया। एक बार गिरा, दो बार गिरा, तीसरी बार गिरने की नौबत ही नहीं आई। मगर फिर सोचा कि वह लड़का है, हम तो लड़के नहीं हैं। आदमी जो काम सीखना चाहे, क़ायदे से सीखे; नहीं तो नुक़सान उठाता है। इसलिए यह तो निश्चय कर लिया कि किसी को उस्ताद बनावें। मगर यह निश्चय न कर सके कि किसे बनावें। इसी उधेड़-बुन में बैठे थे कि तिवारी लक्ष्मीनारायण आ गये और बोले—"क्यों भाई, हो जाय एक बाज़ी शतरंज की। ज़रा आवाज़ दो लड़के को। शतरंज और मुहरे उठा लावे।"

हमने सिर हिलाकर जवाब दिया "नहीं साहब! आज तो जी नहीं चाहता।"

तिवारी ने अपने घुटे हुए सिर से टोपी उतारकर हाथ में ले ली और सिर पर हाथ फेरकर बोले—"हम तो इतनी दूर से चलकर आये हैं कि एक-दो बाज़ियाँ खेलेंगे, तुमने कह दिया, जी नहीं चाहता।"

"यदि जी न चाहे तो कोई क्या करे?"

यह कहते कहते हमारा गला भर आया। तिवारी जी का दिल पसीज गया। हमारे पास बैठकर बोले—"अरे भाई, मामला क्या है? स्त्री से झगड़ा तो नहीं हो गया?"

हमने कहा—"तिवारी भैया, क्या कहें? सोचा था, लाओ, साइकिल की सवारी ही सीख लें। मगर अब कोई ऐसा आदमी नहीं दिखाई देता जो हमारी सहायता करे। बताओ, है कोई ऐसा आदमी तुम्हारे ख़याल में।"

तिवारी जी ने हमारी तरफ़ बेबसी की आँखों से ऐसा देखा, मानो हमको कोई ख़ज़ाना मिल रहा है, और वे ख़ाली हाथ रहे जाते हैं। बोले—"मेरी मानो तो यह रोग न पालो। अब इस आयु में साइकिल पर चढ़ोगे? और फिर यह भी कोई सवारियों में सवारी है कि डंडे पर उकड़ू बैठे हैं, और पाँव चला रहे हैं। अजी लानत भेजो इस ख़याल पर, और आओ एक बाज़ी खेलो। कहने लगे, साइकिल चलाना सीखेंगे। क्या ताँगे टूट गये हैं?"

मगर हमने भी कच्ची गोलियाँ नहीं खेली थीं। साफ़ समझ गये कि तिवारी ईर्ष्या की आग में फुका जाता है। मुँह फुलाकर हमने कहा—"भई तिवारी, हम तो ज़रूर सीखेंगे। कोई आदमी बताओ।"

"आदमी तो ऐसा है एक। मगर वह मुफ़्त नहीं सिखायेगा। फ़ीस लेगा। दे सकोगे?"

"कितने दिन में सिखा देगा?"

"यही दस-बारह दिन में!"

"और फ़ीस क्या लेगा हमसे?"

"औरों से पचीस लेता है। तुमसे बीस ले लेगा हमारी ख़ातिर!"

हमने सोचा—दस दिन में सिखायेगा, और बीस रुपये फ़ीस लेगा। दस दिन—बीस रुपये। बीस रुपये—दस दिन। अर्थात् दो रुपये रोज़ाना, अर्थात् साठ रुपये महीना, और वह भी एक-दो घंटे के लिए। ऐसी तीन-चार ड्यूटियाँ मिल जायँ तो ढाई-तीन सौ रुपया महीना हो गया। हमने तिवारी जी से तो इतना ही कहा कि जाकर मामला तय कर आओ, मगर जी में ख़ुश हो रहे थे कि साइकिल चलाना आ जाय तो एक ट्रेनिङ्ग स्कूल खोल दें, और तीन-चार सौ रुपया मासिक कमाने लगें।

इधर तिवारी जी मामला तय करने गये, उधर हमने यह शुभ समाचार जाकर श्रीमती जी को सुना दिया कि कुछ दिनों के बाद हम एक ऐसा स्कूल खोलनेवाले हैं जिसमें तीन-चार सौ रुपया महीना की आमदनी होगी।

श्रीमती जी बोलीं—"तुम्हारी इतनी आयु हो गई, मगर वह मुआ ओछापन न गया। पहले आप तो सीख लो, फिर स्कूल खोल लेना। मैं तो समझती हूँ कि तुम सीख ही न सकोगे; दूसरों को सिखाना तो दूर की बात है।

हमने बिगड़ कर कहा—"यह तुममें बड़ी बुरी आदत है कि हर काम में टोक देती हो। हमने बड़े बड़े सीख लिये हैं तो हम क्यों न सीख सकेंगे? और पहले तो शायद सीखते, शायद न सीखते, मगर अब जब तुमने टोका है तब ज़रूर सीखेंगे। तुम भी क्या कहोगी!"

श्रीमती बोलीं—"मैं तो चाहती हूँ, तुम हवाई जहाज़ चलाओ; यह बाईसिकिल क्या चीज़ है? पर तुम्हारे स्वभाव से डर लगता है। एक बार गिरोगे तो देख लेना, बाईसिकिल वहीं फेंक-फाँक कर चले आओगे।" फिर धीरे से यह भी कह दिया—"भगवान् किसी को स्त्री न बनाये। बात करना भी पाप हो गया—अब हम हर काम में टोकनेवाले हो गये। हमें क्या पड़ी है? सीखो, न सीखो। सीखोगे, अपने लिए; न सीखोगे, अपने लिए। हमें क्या मतलब?"

इतने में तिवारी जी ने बाहर से आवाज़ दी। हमने जाकर देखा, उस्ताद साहब खड़े हैं। भद्दी-सी शक्ल-सूरत, मोटी गर्दन, गले में काला तागा, मैली धोती, पाँव में कसूरी जूता, जो पहलवान लोग पहनते हैं, छोटी छोटी आँखें। पहले तो मन में आया, कह दें, हमें यह उस्ताद पसन्द नहीं। पर फिर सोचा, हमें साइकिल सीखना है, हमें इनकी शक्ल-सूरत से क्या काम। यह सोचकर हमने शौक़ विद्यार्थियों के समान श्रद्धा से हाथ बाँधकर प्रणाम किया, और चुपचाप खड़े हो गये।

तिवारी जी—"यह तो बीस पर मानते ही न थे। बड़ी मुश्किल से मनाया है। पर पेशगी लेंगे। कहते हैं, पीछे कोई नहीं देता।"

हम—"अरे भई, हम देंगे। दुनिया लाख बुरी है, मगर फिर भी भले आदमियों से ख़ाली तो नहीं है। यह बीस रुपया तो चीज़ ही क्या है? हम अपना धर्म लाखों के लिए भी न गँवावें। बस, एक बार हमें साइकिल चलाना सिखा दें, फिर देखें, हम इनकी क्या क्या सेवा करते हैं।"

मगर उस्ताद साहब नहीं माने, बोले—"फ़ीस पहले लेंगे।"

हम—"और यदि आपने नहीं सिखाया तो—"

उस्ताद—"नहीं सिखाया तो फ़ीस लौटा देंगे।"

हम—"और यदि फ़ीस नहीं लौटाई तो—"

उस्ताद—"अब इस 'तो' का जवाब तो मेरे पास है नहीं, मगर इतना कह सकता हूँ कि ऐसी बेइमानियाँ मुझे बदनाम न कर देंगी।"

इस पर तिवारी जी ने कहा—"अरे साहब! क्या यह तिवारी मर गया है? शहर में रहना हराम कर दूँ, बाज़ार में निकलना बन्द कर दूँ। फ़ीस लेकर भाग जाना कोई हँसी-खेल है?"

जब हमें विश्वास हो गया कि इसमें कोई धोखा नहीं है तब हमने फ़ीस के रुपये लाकर उस्ताद की भेंट कर दिये और कहा—"उस्ताद, कल सवेरे सवेरे ही आ जाना। हम तैयार रहेंगे। हमने इस काम के लिए कपड़े भी बनवा लिये हैं। और अगर गिर पड़े तो घाव पर लगाने के लिए ज़ेम्बक भी ख़रीद लिया है। और हाँ, हमारे पड़ोस में जो मिस्त्री रहता है उससे साइकिल भी माँग ली है। आप सवेरे ही चले आवें तो हरि का नाम लेकर शुरू कर दें।

तिवारी जी और उस्ताद ने हमें हर तरह से तसल्ली दी, और चले गये। इतने में हमें याद आया कि एक बात कहनी भूल गये। नंगे पाँव भागे, और उन्हें बाज़ार में जा लिया। वे हैरान थे। हमने हाँफते हाँफते कहा—"उस्ताद, हम शहर के पास नहीं सीखेंगे, लारेंस-बाग़ में जो मैदान है, वहाँ सीखेंगे। वहाँ एक तो भूमि नर्म है, चोट कम लगती है। दूसरे वहाँ कोई देखता नहीं है।

(३)

अब रात को आराम की नींद कहाँ? बार बार चौंकते थे और देखते थे कि कहीं सूरज तो नहीं निकल आया। सोते थे तो साइकिल के सपने आते थे। एक बार देखा कि हम साइकिल से गिरकर ज़ख़्मी हो गये हैं, अस्पताल में अँगरेज़ हमारा आपरेशन कर रहा है और हमारी स्त्री रो रोकर कह रही है कि मैं विधवा हो गई। दूसरी बार, देखा कि हम ज़मीन पर खड़े हैं, और हमारी साइकिल आसमान पर चल रही है। फिर ऐसा मालूम हुआ कि हमारे उस्ताद ने हमें गोद में उठाकर उछाल दिया। दूसरे क्षण में देखा तब हम साइकिल पर सवार हैं, साइकिल आपसे आप हवा में चल रही है और लोग हमारी तरफ़ आँखें फाड़ फाड़कर देख रहे हैं। एकाएक एक देवता ने आकर हमारे कंधे पर हाथ रख दिया, और

हम ज़मीन पर गिर पड़े। तब हमारी आँख खुल गई—देखा, यह सब सपना था। हम चारपाई पर हैं, और हमारी स्त्री हमारा कंधा हिला हिलाकर जगा रही है।

उठकर देखा। दिन निकल आया था। जल्दी से जाकर वे पुराने कपड़े पहन लिये, ज़ैम्बक का डिब्बा हाथ में ले लिया और नौकर को भेजकर मिस्त्री साहब से साइकिल मँगवा ली। इसी समय उस्ताद साहब भी आ गये और हम भगवान् का नाम लेकर लारेंस-बाग़ की ओर चले। लेकिन अभी घर से निकले ही थे कि बिल्ली रस्ता काट गई, और एक लड़के ने छींक दिया। क्या कहें, हमें कैसा क्रोध आया उस नामुराद बिल्ली पर और उस शैतान लड़के पर। मगर क्या करते? दाँत पीसकर रह गये! एक बार फिर भगवान् का पावन नाम लिया, और आगे बढ़े। पर बाज़ार में पहुँच कर देखा कि हर आदमी जो हमारी तरफ़ देखता है, मुस्कराता है। अब हम हैरान थे कि बात क्या है! सहसा हमने देखा कि हमने जल्दी और घबराहट में पाजामा और अचकन दोनों उलटे पहन लिये हैं, और लोग इसी पर हँस रहे हैं। सिर मुँड़ाते ही ओले पड़े।

हमने उस्ताद से माफ़ी माँगी, और घर लौट आये। अर्थात् हमारा पहला दिन मुफ़्त में गया।

दूसरे दिन निकले। हमारे-घर के पास जो लाला साहब रहते हैं वे सामने आ गये और मुस्करा कर बोले—"कहिए, कहाँ जा रहे हैं?"

ये लाला साहब यों तो बहुत भले आदमी हैं, लेकिन इनकी एक आदत बहुत बुरी है। जिससे मिलते हैं उसी से पूछते हैं, कहाँ चले। कई बार समझाया कि जब कोई काम पर निकले और उससे 'कहाँ' पूछा जाय तो वह काम कभी नहीं होता और जिसका काम बिगड़ जाता है वह 'कहाँ' पूछनेवाले को गालियाँ देता है। मगर लाला साहब पर ज़रा असर नहीं होता। इस समय हमने उनसे बचने का कितना यत्न किया, किस किस तरफ़ मुँह मोड़ा, मगर उनकी 'कहाँ' की तोप से कौन बच सकता है। महात्मा जी ने सामने आकर गोला दाग़ ही तो दिया।

हमने जल-भुन कर जवाब दिया—"नरक को जा रहे हैं। आप भी चलेंगे क्या?"

लाला साहब—"अरे! मैंने तो पूछा था कि आप कहाँ जा रहे हैं।"

हम—"और मैंने प्रार्थना की है कि नरक को जा रहे हैं। दो आदमियों की जगह ख़ाली है। अगर आप न पूछते तो आपका क्या बिगड़ जाता—दुनिया में कौन-सी कमी रह जाती?"

लाला—"भगवान् जानता है, मुझे मालूम न था कि आप किसी काम के लिए जा रहे हैं!"

हम—"मानो हम बेकार घूमा करते हैं।"

लाला—"अजी जनाब! आप भी क्या बातें करते हैं? मैं आपकी शान में ऐसी गुस्ताख़ी कर सकता हूँ? मेरा मतलब यह था—"

हम—"कि इनसे 'कहाँ' न पूछा तो प्रलय हो जायगा। ज़रा सोचिए, आपसे कितनी बार हमने निवेदन किया है कि हमें इस 'कहाँ' से डर लगता है। मगर आपको यह ऐसा रोग लगा है कि पीछा ही नहीं छोड़ता। आज हो साइकिल चलाना सीखने जा रहे थे। यह देखिए, पुराने कपड़े और ज़ैम्बक का डिब्बा और ये उस्ताद साहब और यह साइकिल, लेकिन इस 'कहाँ' ने आज का दिन भी ख़राब कर दिया। आपने तो मुस्कराकर पूछ लिया—कहाँ, हमारा दो रुपये का नुक़सान हो गया।"

उधर उस्ताद साहब ने साइकिल की घंटी बजाकर हमें अपने पास बुलाया और बोले—"मैं एक गिलास लस्सी पी लूँ। आप ज़रा साइकिल को थामिए।"

लाला साहब ने यह अवसर पाया तब प्राण लेकर भाग निकले, वर्ना हम उनसे उस दिन काग़ज़ लिखा लेते कि अब फिर किसी से 'कहाँ' नहीं पूछेंगे।

(४)

उस्ताद साहब लस्सी पीने लगे तब हमने साइकिल के पुर्ज़ों की ऊपर-नीचे से परीक्षा शुरू कर दी, और लाला जी से जो बद-मज़गी हो गई थी उसे मिटाने के लिए मुँह में गुनगुनाने लगे—

भगवान ने सैकल भी अजब चीज़ बनाई!

फिर कुछ जी में आया तब उसका हैंडल पकड़कर ज़रा चलने लगे। मगर दो ही क़दम गये होंगे कि ऐसा मालूम हुआ, जैसे साइकिल हमारे सीने पर चढ़ी आती है। अब तो हमें पूरा विश्वास हो गया कि यह सब लाला जी के 'कहाँ' का प्रभाव है, वर्ना बेजान साइकिल में यह साहस कहाँ कि हमारे जैसे पुरुष-सिंह पर धावा बोल दे। इस समय हमारे सामने यह गम्भीर प्रश्न था कि क्या करना चाहिए। युद्ध-क्षेत्र में डटे रहें या हट जायँ? सोच-विचार के बाद यही निश्चय हुआ कि यह लोहे का घोड़ा और फिर लाला जी का 'कहाँ' इसके साथ! इनके सामने हम क्या चीज़ हैं? बड़े बड़े वीर योद्धा भी नहीं ठहर सकते। इसलिए हमने साइकिल छोड़ दी, और भगोड़े सिपाही बन कर मुड़ गये। पर दूसरे क्षण में साइकिल अपने पूरे ज़ोर से हमारे पाँव पर गिर गई और हमारी राम-दुहाई बाज़ार के एक सिरे से दूसरे सिरे तक गूँजने लगी। उस्ताद जी लस्सी छोड़कर दौड़ आये और दयावान् लोग भी जमा हो गये। सबने मिल-मिलाकर हमारा पाँव साइकिल से निकाला। भगवान के एक भक्त ने ज़ैम्बक का डिब्बा भी उठाकर हमारे हाथ में दे दिया। दूसरे ने हमारी बग़लों में हाथ डालकर हमें सँभाला और सहानुभूति से पूछा—"चोट तो नहीं आई? ज़रा दो-चार क़दम चलिए। नहीं लहू जम जायगा।"

हम बेशर्मों के समान खड़े हो गये, और हमने अपने शरीर का सारा भार पाँव पर डाल कर देखा कि पाँव ज़ोर खाता है या नहीं। उस्ताद ने साइकिल को अच्छी तरह देख कर कहा—"यह तो टूट गई, बनवानी पड़ेगी।"

और यह हम पहले से ही जानते थे। यह लाला जी के ख़ूनी 'कहाँ' की तासीर थी। इस तरह दूसरे दिन हम और हमारी साइकिल अपने घर से थोड़ी दूरी पर ज़ख़्मी हो गये। हम लँगड़ाते हुए घर लौट आये, साइकिल को ठोंक पीट कर ठीक करने के लिए मिस्त्री की दूकान पर भेज दिया।

मगर हमारे वीर हृदय का साहस और धीरज देखिए—अब भी मैदान में डटे रहे। कई बार गिरे, कई बार शहीद हुए, घुटने तुड़वाये, कपड़े फड़वाये, पर क्या मजाल, जो जी छूट जाय। आठ-नौ दिन में साइकिल चलाना सीख गये। लेकिन अभी तक उस पर चढ़ना नहीं आता था। कोई परोपकारी पुरुष सहारा देकर चढ़ा देता तो फिर लिये चले जाते थे। हमारे आनन्द की कोई सीमा न थी। नाचते थे, मार लिया मैदान हमने! दो चार दिन में पूरे मास्टर बन जायँगे, इसके बाद प्रोफ़ेसर और इसके बाद प्रिंसिपल—फिर ट्रेनिंग कालेज, और तीन-चार सौ रुपया मासिक। तिवारी जी देखेंगे, और ईर्ष्या से जलेंगे।

उस दिन उस्ताद ने हमें साइकिल पर चढ़ा दि[illegible] सड़क पर छोड़ दिया कि लिये जाओ: अब [illegible] गये।

अब हम साइकिल चला रहे थे, और दिल [illegible] फूले न समाते थे कि आख़िर हमने सिंहगढ़ [illegible] ही लिया। मगर हाल यह था कि कोई आदमी [illegible] गज़ के फ़ासिले पर भी होता तो हम गला [illegible] कर चिल्लाना शुरू कर देते—साहब! ज़रा बाईं [illegible] जाइएगा। हम नये सवार हैं, और साइकिल हमारे [illegible] नहीं है। दूर फ़ासिले पर कोई गाड़ी दिखाई देती [illegible] हमारे प्राण सूख जाते। कभी कभी ऐसा ख़याल [illegible] यह गाड़ी सिर्फ़ हमें अपनी लपेट में लेने के [illegible] रही है। उस समय हमारे मन की जो दशा हो[illegible] हमारा परमेश्वर ही जानता। जब गाड़ी निकल [illegible] कहीं जाकर हमारी जान में जान आती।

सहसा सामने से तिवारी जी आते दिखाई [illegible] हमने उन्हें भी दूर से ही अल्टीमेटम दे दिया [illegible] तिवारी! बाईं तरफ़ हो जाओ, वर्ना साइकिल तुम्हें [illegible] चढ़ा देंगे। तुमसे बड़ा मूज़ी और कौन मिलेगा!

तिवारी जी ने अपनी छोटी छोटी आँखों [illegible] तरफ़ देखा और मुस्कराकर कहा—"ज़रा एक [illegible] सुनते जाओ।"

हमने एक बार हैंडल की तरफ़, दूसरी बार [illegible] की तरफ़ देखकर जवाब दिया—इस समय कैसे [illegible] सकते हैं? देखते नहीं हो, साइकिल पर सवार हैं [illegible] लगे, एक बात सुनते जाओ।

"अरे भाई! साइकिल चला रहे हैं, साइकिल [illegible]

तिवारी—"तो क्या जो साइकिल चलाते हैं [illegible] की बात नहीं सुनते? बड़ी ज़रूरी बात है। ज़[illegible] आओ।"

हमने लड़खड़ाते हुए साइकिल को सँभाल[illegible] जवाब दिया—"उतरे आये तो फिर चढ़ायेगा कौन [illegible] चलाना सीखा है, चढ़ना नहीं सीखा।"

तिवारी जी चिल्लाते ही रह गये, हम आगे निक[illegible] इस समय हमें उनकी बेबसी पर जो मज़ा आया उ[illegible] बयान करें! जी चाहता था, एक बार लौटकर उ[illegible] फिर देख आवें।

इतने में सामने से एक ताँगा आता नज़र आया। हमने उसे भी दूर से ही डाँट दिया—"बाईं तरफ़ भाई! अभी नया चलाना सीखा है।"

ताँगा बाईं तरफ़ हो गया। हम अपने रास्ते चले जा रहे थे। एकाएक पता नहीं, घोड़ा भड़क उठा या ताँगेवाले को शरारत सूझी, जो भी हो, ताँगा हमारे सामने आ गया। हमारे हाथ-पाँव फूल गये। ज़रा-सा हैंडल घुमा देते तो हम दूसरी तरफ़ निकल जाते। मगर बुरा समय आता है तब बुद्धि पहले भ्रष्ट होती है। उस समय हमें ख़याल ही न आया कि हैंडल घुमाया भी जा सकता है। उस समय तो ऐसा मालूम हुआ कि विधाता ने हमारी साइकिल के लिए वही रास्ता नियत कर दिया है जिस पर ताँगा आ रहा था।

क्षण भर में हमारे जीवन की सारी घटनायें हमारी आँखों में फिर गईं, और दूसरे क्षण में हम और हमारी साइकिल दोनों ताँगे के नीचे थे।

जब हम होश में आये तब हम अपने घर में थे, और हमारी देह पर कितनी ही पट्टियाँ बँधी थीं। हमें होश में देखकर श्रीमती जी ने कहा—"क्यों? अब क्या हाल है? मैं कहती न थी, साइकिल चलानी न सीखो। उस समय तो किसी की सुनते ही न थे।"

हमने सोचा, लाओ सारा इलज़ाम तिवारी जी पर लगा दें, और आप साफ़ बच जायँ। बोले—"यह सब तिवारी जी की शरारत है।"

श्रीमती जी ने मुस्कराकर जवाब दिया—"यह तो तुम उसको चकमा दो जो कुछ जानता न हो। उस ताँगे पर मैं ही तो बाल-बच्चों को लेकर घूमने निकली थी कि चलो सैर भी कर आयेंगे, तुम्हें साइकिल चलाते भी देख आयेंगे।"

मैंने निरुत्तर होकर आँखें बन्द कर लीं।

उस दिन के बाद फिर कभी हमने साइकिल को हाथ नहीं लगाया।

———

देखा

लेखक, श्रीयुत कुँवर सोमेश्वरसिंह, बी० ए०, एल-एल० बी०

इस रंगमंच पर कितनों को आते-जाते देखा।
फूटी तक़दीरें देखीं, जीवन भर गाते देखा॥
हँसते हँसते जो आये, आँसू बरसाते देखा।
दानी को अपना सूना, अञ्चल फैलाते देखा॥
यौवन की मादक हाला, तन्मय मन पीते देखा।
लेकिन उनकी भी मधुमय, प्याली को रीते देखा॥
उठ उठकर फिर फिर मैंने, गिरनेवालों को देखा।
गिरने के बदले हँस हँस, मरनेवालों को देखा॥

देखा जलनेवालों को, ठंडी विभूति बन जाते।
प्रेमी-मन की विह्वलता, आँसू में आ छन जाते॥
शिशु का भोलापन देखा, अभिमान अमित यौवन का।
सौन्दर्य-सिन्धु में देखा, बहता बेड़ा जीवन का॥
चिर-तृप्ति अनोखी देखी, सन्तुष्ट जनों का जीवन।
देखी अतृप्ति की ज्वाला, तीखी तृष्णा की तड़पन॥
बन बन लाखों को सहसा, निरुपाय बिगड़ते देखा।
भूले-भटकों को फिर से, निज राह पकड़ते देखा॥

देखी सबकी इच्छायें, सबके जीवन की माया।
आश्चर्य कभी अपने को, पर देख नहीं मैं पाया॥

युद्ध से पहले और अब

लेखक, श्रीयुत अवनीन्द्रकुमार विद्यालङ्कार

जर्मनी का भाग्य-विधाता हर हिटलर समय-असमय योरप और संसार को याद दिलाता रहता है कि जब तक उसको उसके उपनिवेश वापस नहीं मिल जायँगे तब तक योरप और विश्व में शान्ति नहीं हो सकती। इससे सहसा यह जानने की इच्छा होती है कि जर्मनी अपने छीने गये उपनिवेशों को क्यों वापस माँगता है, वे कहाँ हैं और इस समय उनकी क्या स्थिति है।

आज से २२ साल पहले जर्मनी का साम्राज्य एशिया, अफ़्रीका और प्रशान्त महासागर के द्वीपों में फैला हुआ था। इनका क्षेत्रफल १०,००,००० वर्गमील होता था। मगर इन उपनिवेशों में जर्मन लोगों की आबादी २५ हज़ार से ज़्यादा कभी नहीं हुई। पिछले १८ सालों में बहुत-से जर्मन इनको छोड़कर चले गये हैं।

चीन में 'क्या-चाऊ' किसी समय समृद्धि की ओर तेज़ी से बढ़ रहा था। वहाँ स्कूल खुले हुए थे। जर्मन-विश्वविद्यालय की स्थापना की भी चर्चा थी। प्रतिभाशाली और बुद्धिमान् जर्मन-युवक सुदूर पूर्व के इस प्रदेश में अपनी महत्त्वाकांक्षाओं और सुमधुर कल्पनाओं को पूर्ण-रूप देने की इच्छा रखते थे।

१९१४ के बाद इसे जापान ने विजयी के रूप में ले लिया। मगर बाद में उसने इसे चीन को लौटा दिया। जर्मन लोगों का यहाँ केवल १५ साल राज्य रहा और यह उस प्रदेश के इतिहास में फ़ुटनोट के समान है। जर्मनी के प्रशान्त महासागर में कुछ द्वीप थे। राष्ट्र-संघ ने ये द्वीप जापान को प्रदान किये थे। वे उसी के अधिकार में हैं और वह न जर्मनी को, न राष्ट्र-संघ को ही लौटाने को तैयार है। सामरिक दृष्टि से ये द्वीप जापान के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

उक्त द्वीपों के सिवा प्रशान्त महासागर में जर्मनी का महत्त्वपूर्ण देश न्यू गायना में 'कैसर विलियमलैण्ड' था। यह देश समृद्ध था, पर अनुन्नत और अविकसित था। बर्लिन से बहुत दूर होने के कारण इस पर भले प्रकार शासन भी नहीं हो सकता था। पर जब से आस्ट्रेलिया के शासनादेश (मैण्डेट) में आया तब से इसकी उन्नति तेज़ी से होनी शुरू हुई। १९२४ में विदेशियों की संख्या यहाँ २६२ थी। अब ५,४५३ है, जिसमें ३,०२६ ब्रिटिश और ४०४ जर्मन हैं।

समोआ के जर्मन-उपनिवेश में, जो अब राष्ट्र-संघ की ओर से न्यूज़ीलेंड को दिया गया है, ३०० से अधिक जर्मन कभी नहीं हुए।

विशाल जर्मन-उपनिवेश-साम्राज्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाग दक्षिण-पश्चिम अफ़्रीका और टंगानिका है। स्मट्स बोथा-द्वारा विजय करने के समय इन प्रदेशों में जर्मन लोगों की आबादी क्रमशः १२,००० और ४,००० थी।

दक्षिण-पश्चिम अफ़्रीका राष्ट्र-संघ की ओर से दक्षिण-अफ़्रीका की यूनियन गवर्नमेंट को मिला। ३,४८९ व्यक्तियों को अपनी राष्ट्रीयता चुनने का अधिकार दिया गया। इनमें से ३,२६१ ने ब्रिटिश राष्ट्रीयता को स्वीकार कर लिया। उस समय से इसकी आबादी बढ़कर ३२,००० हो गई है। 'यूनियन' से लोग यहाँ बसने के लिए आ रहे हैं। रेलवे लाइन बिछ गई है। धारा-सभा की स्थापना भी हो गई है।

दक्षिण-अफ़्रीका की यूनियन-सरकार इसको उन्नत और विकसित करने की भरसक कोशिश कर रही है। इसने न केवल पूँजी ही लगाई है, किन्तु कठिनाई के समय इस प्रदेश का घाटा भी सहा है।

टंगानिका का शासन सीधे ब्रिटिश सरकार के हाथों में है। ब्रिटिश सिण्डीकेट तथा अन्य अँगरेज़ों की विशाल पूँजी के अलावा सार्वजनिक कामों व रेलवे लाइनों के विस्तार में ८०,००,००० पौंड ब्रिटिश सरकार के लगे हैं।

टंगानिका, केनिया और युगाण्डा को एक में मिलाकर इन संयुक्त-प्रदेशों का शासन एक सूबा में करने की तजवीज़ बहुत दिनों से चल रही है। इन प्रदेशों के अँगरेज़ चाहते

हैं कि दक्षिण के समान पूर्व में भी यूनियन गवर्नमेंट क़ायम हो जाय। मगर भारतीय इस प्रस्ताव का विरोध करते आये हैं, क्योंकि केनिया के गोरों का बर्ताव उन्हें विश्वास दिलाता है कि वे भविष्य में उनके प्राप्त अधिकारों को भी छीन न लें।

टंगानिका अपना ख़र्च निकालकर हर साल ब्रिटिश सरकार को बचत दे रहा है। युद्ध के पहले से अब वहाँ योरपीयों की आबादी दुगुनी हो गई है और इस समय ८,२१७ है।

कैमेरून और टोगोलैण्ड में १९१४ में जर्मनों की आबादी २,००० के लगभग थी। इसका अधिकांश फ्रांस को दे दिया गया है। फ्रेंच-पश्चिम-अफ़्रीका की समृद्धि बढ़ाने में यह प्रदेश महत्त्वपूर्ण भाग ले रहा है।

इस वर्णन से स्पष्ट है कि अँगरेज़ लोग जर्मन-उपनिवेशों को किसी भी हालत में जर्मनी को नहीं लौटावेंगे। प्रधान मंत्री मिस्टर बाल्डविन ने इस बात को कामंस सभा में स्पष्ट भी कर दिया है कि इँग्लेंड प्राप्त जर्मन-उपनिवेशों को किसी भी हालत में लौटाने को तैयार नहीं है। इसका कारण उपर्युक्त वर्णन के पढ़ने से स्पष्ट हो गया होगा।

इसका यह अर्थ है कि जर्मनी अपने खोये हुए प्रदेशों को पाने और नये प्रदेशों को पाने के यत्न में लड़ाई की तैयारी बराबर करता रहेगा।

गीत

लेखिका, श्रीमती तारा पाँडे

मेरा मन उन्मन रहता क्यों ?
प्रिय को उर में धारण कर फिर—
सूनापन अनुभव करता क्यों ?
मेरा मन उन्मन रहता क्यों ?

मिथ्या है व्यवहार जगत का
सत्य एक आधार बना अब—
इन्द्र-धनुष के रंगों सी यह—
क्षण भर की झूठी ममता क्यों।

झिलमिल से तारक-दीपों में
जब उलझे हों प्राण व्यथा से—
आँसू के छोटे जीवन-सी—
प्रिय तेरी यह आकुलता क्यों ?

गायक की मुखरित वीणा जब
गाती है मृदु-राग निरन्तर—
अपने उर की व्याकुलता को
उस वीणा में तू भरता क्यों ?

जग की निर्मल ज्वालाओं से
छार छार है मेरा जीवन—
औरों के दुख को लेकर अब
यह भीषण क्रन्दन करता क्यों ?

जीवन का चिर-अमर सत्य जो—
पाना था पा लिया प्रेम में
अपने में ही देख उसे रे—
इधर-उधर भ्रम में फिरता क्यों।

व्यत्यस्त रेखा शब्द पहेली

[CROSSWORD PUZZLE IN HINDI]

५००) पारितोषिक रूप में

३००) शुद्ध पूर्तियों पर २००) न्यूनतम अशुद्धियों पर

नियम :—

(१) नीचे जो वर्ग दिया गया है उसकी सम्पूर्णतया शुद्ध पूर्ति होने पर ३००) का पारितोषिक दिया जायगा। वर्ग-पूर्तियाँ एक से अधिक शुद्ध होंगी तो उन पूर्ति करनेवालों में ३००) का पारितोषिक बराबर बराबर बाँट दिया जायगा। इसी प्रकार २००) का पारितोषिक उन पूर्ति करनेवालों में बाँटा जायगा जो न्यूनतम अशुद्धियाँ करेंगे। वर्ग-निर्माता ने वर्ग की शुद्ध-पूर्ति लिखकर एक लिफ़ाफ़े में बन्द कर दी है और उस पर मोहर लगाकर रख दी है। उनकी यह 'शुद्ध-पूर्ति' ही निर्णय का आधार होगी। उत्तर-स्वरूप में जो कोष्ठ-पूर्तियाँ इस शुद्ध-पूर्ति से अक्षरशः मिलती होंगी, वही सम्पूर्णतया शुद्ध मानी जायँगी।

(२) वर्ग के रिक्त कोष्ठों में ऐसे अक्षर लिखने चाहिए जिससे निर्दिष्ट शब्द बन जाय। उस निर्दिष्ट शब्द का संकेत अङ्क-परिचय में दिया गया है। प्रत्येक शब्द उस घर से आरम्भ होता है जिस पर कोई न कोई अङ्क लगा हुआ है और इस चिह्न (■) के पहले समाप्त होता है। अङ्क-परिचय में ऊपर से नीचे और बायें से दाहनी ओर पढ़े जानेवाले शब्दों के अङ्क अलग अलग कर दिये गये हैं, जिनसे यह पता चलेगा कि कौन शब्द किस ओर को पढ़ा जायगा।

(३) प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए, जिससे उनके पढ़ने में किसी प्रकार की शङ्का अथवा द्विविधा न हो। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगड़ कर या काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

[illegible]

वर्ग-पूर्ति के लिए ।।) फ़ीस देनी होगी, जो मनीआर्डर [illegible] आनी चाहिए। फ़ीस कार्यालय में नक़द भी जमा [illegible] जा सकती है। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति, [illegible] पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर [illegible] अपनी अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-[illegible] भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं। [illegible] आर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग नम्बर १, इं[illegible] प्रेस, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(५) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर रसीद नत्थी होकर आना अनिवार्य है। रसीद न [illegible] पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी। लिफ़ाफ़े की [illegible] ओर अर्थात् पीठ पर पूर्ति करनेवालों के नाम और [illegible] संख्या लिखनी आवश्यक है।

(६) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि जितनी पूर्ति-संख्यायें भेजनी चाहे, भेजे। किन्तु प्र[illegible] वर्गपूर्ति सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म पर हो[illegible] चाहिए और उसकी नियत फ़ीस अर्थात् ।।) प्रति वर्ग [illegible] के हिसाब से भेजनी चाहिए। इस प्रतियोगता में [illegible] व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। वर्ग [illegible] की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी।

(७) जो वर्ग-पूर्ति कार्यालय में २० अगस्त तक [illegible] पहुँचेगी वह जाँच में नहीं शामिल की जायगी। [illegible] निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा [illegible] मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती प[illegible] के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करने[illegible] सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता अशुद्धता [illegible] जाँच कर सकें।

(८) १ नम्बर वर्ग के समस्त शब्द 'संक्षिप्त-हिन्दी-शब्दसा[illegible] [illegible] नाम के कोषों में मिल सकते [illegible]

अङ्क-परिचय

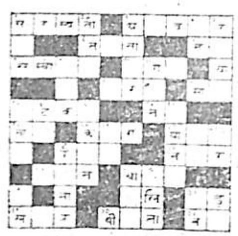
बायें से दाहिने

१—विद्या देनेवाली
३—कुसमय
६—यह कार्य दृष्टि रखने से अच्छा होता है
७—गहना
८—सिद्धि के दाता
१०—इसकी आवाज़ युद्ध का पता देती है
१२—अग्नि से बहुधा वस्तुएँ ऐसी हो जाती है
१३—मास
१४—अन्दाज़
१७—आकाश
१९—लोहे से बनती है
२०—अक्सर सिर के ऊपर रहता है
२२—भिक्षुक
२४—ज्योतिषशास्त्र का एक अंग
२५—व्यापार को लाभदायक है
२६—धनी मनुष्यों का, बहुत आश्चर्यजनक होता है
२७—जितना छोटा उतना ही निर्भय
३०—यह अचर है
३१—समुद्र में यह वस्तु सदैव पाई जाती है
३२—बहादुरी
३३—यदि सच्चे हों तो सर्वक प्रिय होते हैं

ऊपर से नीचे

१—बहुत पढ़े लोग ऐसे अब कम होते हैं
२—लड़ना खूब है
३—अपमान
४—उलझ जाय तो जल्दी न सुलझे
५—सारथी
९—इससे प्रकाश भी होता है
११—चलना
१४—अकाल में इसका दृश्य असहनीय होता है
१५—हठ
१६—श्री रामचन्द्रजी के भाई
१८—डरावनी
२१—समय का भाग
२३—राज्य की आमदनी इससे होती है
२४—लाल रंग का
२७—बहुधा पेड़ों पर छाये रहते हैं
२८—एक गोपी का नाम
२९—पानी से सम्बन्ध रखता है
३०—इसकी संख्या पहले से अब कम है

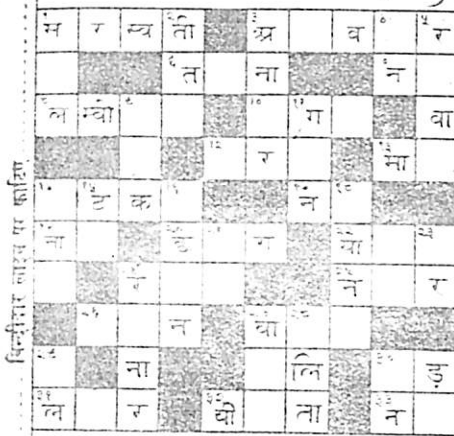




अपनी याददाश्त के लिए वर्ग पूर्ति की नक़ल यहाँ कर लीजिए। और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

निर्दिष्ट लाइन पर काटिए

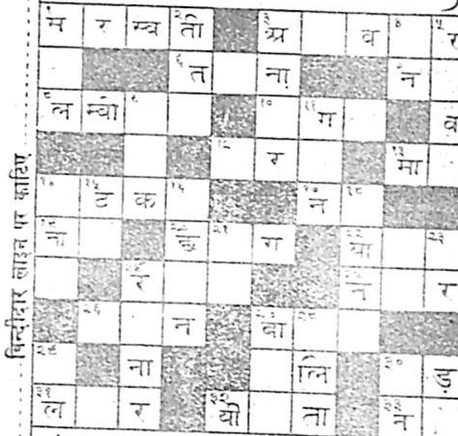
वर्ग नम्बर १ फ़ीस ।।)



मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा।
पूरा नाम........................
पता........................
पूर्ति नं०........................

निर्दिष्ट लाइन पर काटिए

वर्ग नम्बर १ फ़ीस ।।)



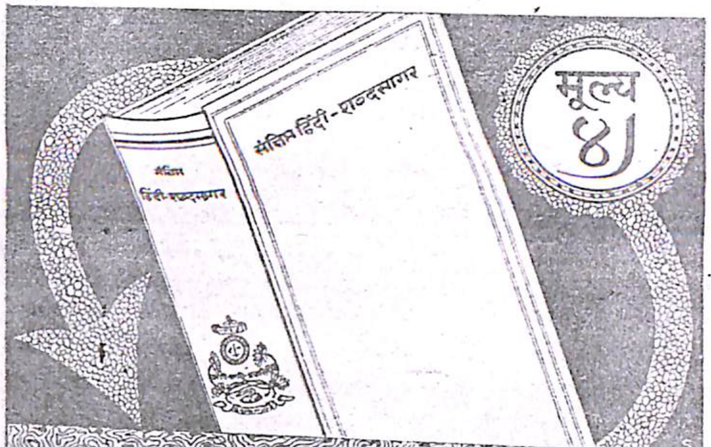
मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा।
पूरा नाम........................
पता........................
पूर्ति नं०........................

नोट—रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा रहित और पूर्ण हैं।

इन वर्गों की पूर्तियाँ लिफाफे में भेजिए पर ।।) फीस प्रत्येक अवस्था में मनिआर्डर से आना चाहिए। और रसीद पूर्तियों के साथ। और किसी रूप में फ़ीस स्वीकार न की जायगी।

इसे काट कर लिफाफे पर चिपका दीजिए

मैनेजर वर्ग नं० १
इंडियन प्रेस,
इलाहाबाद



भारतीय ग्रामों में स्वास्थ्य और सफ़ाई

लेखक, श्रीयुत शंकरसहाय सकसेना एम० ए०, एम० काम०

हमारे ग्रामों में स्वास्थ्य और सफ़ाई का समुचित प्रबन्ध न होने से वहाँ के निवासियों का नाना प्रकार के रोगों से जो भीषण संहार हो रहा है वह एक जानी हुई बात है। इस लेख में लेखक महोदय ने उस सबका वर्णन करते हुए बंगाल के अनुकरण पर एक योजना बताई है जिसके कार्य में परिणत हो जाने पर बहुत अधिक लोक-कल्याण हो सकता है।

साधारणतः हम भारतवासियों की यह एक धारणा बन गई है कि हमारे गाँवों में मनुष्यों का स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहता है। गाँवों में रोग और महामारी बहुत कम होते हैं, क्योंकि वहाँ मनुष्यों को खुली हवा तथा सूर्य का प्रकाश यथेष्ट मिलता है। किन्तु वस्तु-स्थिति इससे नितान्त भिन्न है। वर्षा के उपरान्त तनिक गाँवों में जाने का कष्ट उठाइए तो आपको जो दृश्य देखने को मिलेगा वह अत्यन्त दुखदायी होगा। आपको सर्वत्र जूड़ी और बुख़ार फैला हुआ दिखाई देगा। किसी भी ग्रामीण से आप पूछ लीजिए। अवश्य ही वह उन दिनों कुछ दिनों के लिए रोगग्रस्त होता है। बंगाल-आसाम में तो मानो ये दिन प्रलय के होते हैं। धान की फ़सल खड़ी रहती है, किन्तु काटनेवाले नहीं जुड़ते। मलेरिया का ऐसा भीषण प्रकोप होता है कि गाँव के गाँव ही उसके कारण शैया पकड़ लेते हैं। केवल साधारण ज्वर का ही गाँवों में आधिक्य हो, यह बात नहीं है। प्लेग, हैज़ा, हुकवार्म, चेचक, काला आज़ार तथा अन्य प्रकार के भीषण रोगों का प्रकोप गाँवों में कुछ कम नहीं होता। बात यह है कि हम शिक्षितवर्ग के लोगों का गाँवों से ऐसा सम्बन्ध-विच्छेद हो गया है कि हम गाँवों की वास्तविक परिस्थिति से बिलकुल अनभिज्ञ हैं। हम केवल कल्पना के द्वारा गाँवों के विषय में अपनी धारणा बना लेते हैं। गाँवों में जब बीमारियाँ फैलती हैं तब नगर-निवासियों तथा सरकारी कर्मचारियों का ध्यान भी उधर आकर्षित नहीं होता। गमनागमन के साधनों का अभाव, गाँवों के विषय में हमारे समाचार-पत्रों का मौन-धारण, चिकित्सा के साधनों का गाँवों में नितान्त अभाव तथा ग्रामीणों के अशिक्षित होने के कारण अपनी कष्ट-कहानी को ... तक ही रखने की आदत ही उपर्युक्त भ्रम के फैलने का मुख्य कारण है। यदि आज ग्रामीण संगठित होते, ... पास भी पत्र और प्लेटफ़ार्म होते तो सरकार, डिस्ट्रिक्ट ... और नगरनिवासी शिक्षित जन-समुदाय गाँवों के ... की ओर से इतना उदासीन कदापि न रह सकते।

इस सम्बन्ध में आल इंडिया मेडिकल कान्फ्रें... वह प्रस्ताव जो उक्त सम्मेलन ने १९२४ और १९... पास किया था, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और हमा... की स्वास्थ्य-सम्बन्धी समस्या पर पूरा प्रकाश ... है। १९२४ और १९२६ में अखिल भा... मेडिकल रिसर्च वर्कर्स ने निम्नलिखित प्रस्ता... किया था—

"इस सम्मेलन का विश्वास है कि उन रोगों ... दूर किये जा सकते हैं, प्रतिवर्ष देश में पचास ... लाख मृत्युएँ होती हैं। ऐसे रोके जा सकनेवाले ... भारतवर्ष में प्रत्येक मनुष्य वर्ष में दो या तीन ... लिए काम करने के अयोग्य हो जाता है, यही ... उसकी कार्य-क्षमता भी बीस प्रतिशत घट ... भारतवर्ष में उत्पन्न हुए बच्चों में से केवल पचास ... ही कमाने योग्य हो पाते हैं जब कि थोड़ा-सा प्रब... से उनकी संख्या ८० से ९० प्रतिशत तक बढ़ाई जा ... है। इस सम्मेलन का विश्वास है कि ये आँकड़े ... प्रकार भी अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं हैं, फिर भी भूल ... की सम्भावना का ध्यान रखते हुए हम यह निश्... कह सकते हैं कि इन रोके जा सकनेवाले रो... होनेवाली जीवन तथा कार्यक्षमता की हानि के ... भारतवर्ष को प्रतिवर्ष कई अरब रुपये की हानि ...

पड़ती है। इस भयंकर आर्थिक हानि के अतिरिक्त प्रतिवर्ष लाखों स्त्री-पुरुषों को घोर कष्ट भी उठाना पड़ता है।

"इस सम्मेलन का विश्वास है कि इस भयंकर जनशक्ति की हानि अपेक्षाकृत थोड़े से व्यय से रोकी जा सकती है। सम्मेलन की राय में यह स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक है, जिसका सुधार होना अत्यन्त आवश्यक है। इस सम्मेलन का यह भी विश्वास है कि भारत की निर्धनता का सबसे महत्त्वपूर्ण कारण रोके जा सकनेवाले रोगों-द्वारा होनेवाली कार्य-क्षमता की हानि ही है, अतएव धन की कमी इस आवश्यक सुधार के मार्ग में बाधक नहीं होनी चाहिए।"

ध्यान रहे ऊपर दिया हुआ प्रस्ताव साधारण डाक्टरों की सभा का नहीं है। भारत के जो प्रमुख डाक्टर चिकित्सा-विषयक अनुसन्धान कर रहे हैं उनके सम्मेलन ने यह प्रस्ताव पास किया है। इससे हमारे ग्रामों में स्वास्थ्य और सफ़ाई की समस्या की गुरुता स्पष्ट समझ में आ जाती है।

किसी किसी प्रान्त में कुछ भयंकर रोगों ने स्थायी रूप से अड्डा जमा लिया है, जो प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में ग्रामीणों को मृत्यु के कराल गाल में पहुँचा देते हैं, और असहाय ग्रामीण इसको दैवी कोप समझकर चुपचाप सहन करते रहते हैं। वे समझते हैं कि इनका कोई उपचार ही नहीं है। क्रमशः वे पूर्णतः भाग्यवादी बन गये हैं। यह सब कुछ होते हुए भी हमारे गाँवों में चिकित्सा का कोई भी प्रबन्ध नहीं है, डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के पास इस आवश्यक कार्य के लिए पैसा नहीं है, सरकार इस ओर से उदासीन है, क्योंकि ग्रामीणों में अपने अधिकारों की जानकारी उत्पन्न नहीं हुई है और वे आन्दोलन नहीं कर सकते।

अब तनिक ग्रामों की सफ़ाई के विषय में सुनिए। गाँवों में जाकर देखिए तो गन्दगी सर्वत्र पाइएगा। यदि किसी रास्ते पर आप जा रहे हों, हवा में दुर्गन्ध आने लगे, मक्खियाँ अधिक उड़ती हुई दिखलाई दें, तो समझ लेना चाहिए कि गाँव समीप आ गया है। और आगे बढ़िए। कूड़ा और गन्दगी के ढेर दिखलाई दें अथवा ताल या तलैया मिले जिसका जल दूषित हो गया हो, जिसके चारों ओर मल पड़ा हो, तो समझ लेना चाहिए कि हम गाँव की सीमा पर हैं। बस्ती के अन्दर ठीक ठीक रास्ते नहीं होने, सारे गाँव में धूल और मक्खियों का बाहुल्य होता है। वर्षा के दिनों में तो गाँव का रास्ता दलदल बन जाता है, और जाड़े गरमी में इतनी धूल होती है कि गाड़ियों के निकलने तथा गाँव के पशुओं के एक साथ चलने समय सारा ग्राम धूल से ढँक जाता है। घरों में नालियाँ न होने के कारण घरों का गन्दा पानी वायु को दूषित करता रहता है।

भारतीय ग्रामों में अधिकांश घरों में शौचगृह नहीं होते। गाँव के स्त्री पुरुष खेतों में खुले मैदान में अथवा ताल के किनारे शौच को जाते हैं। इसका यह फल होता है कि तालाब का पानी जो अंग को साफ़ करने के काम में भी लाया जाता है, अत्यन्त गन्दा तथा दूषित हो जाता है। उसी जल को गाँव के ढोर पीते हैं, जिस के फल-स्वरूप ढोरों में पेट और मुँह की बीमारियाँ फैलती हैं। खेतों और मैदान में शौच जाने की प्रथा से भी स्वास्थ्य को भयंकर हानि पहुँचती है। अधिकांश ग्रामीण जूता नहीं पहनते, और जो जूता पहनते भी हैं वे गाँव में चलते-फिरते समय तथा खेतों में काम करते समय तो जूता कभी नहीं पहनते हैं। नंगे पैर चलने से मल पैरों के सम्पर्क में आता है, जिसमें एक प्रकार का कीटाणु उत्पन्न हो जाता है, जिसे हुकवार्म कहते हैं। भारतीय ग्रामों में हुकवार्म-रोग की अधिकता इसी कारण है। यह रोग कीटाणु के पैरों द्वारा मनुष्य-शरीर में प्रवेश कर जाने पर होता है, जिसके फलस्वरूप रोगी को ज्वर हो आता है। मल के सूख जाने पर वह मिट्टी के कणों के साथ मिल कर हवा के साथ उड़ता है, कुओं और तालाबों के जल में, स्त्री-पुरुष, बच्चों और पशुओं की आँखों में तथा भोजन-सामग्री में पड़कर उन्हें ख़राब करता है।

ग्रामों में जगह जगह ग्रामीण गोबर तथा कूड़े के ढेर लगाकर खाद तैयार करते हैं। बरसात में इसके कारण बड़ी गंदगी फैलती है। मक्खियों के तो ये उद्गमस्थान होते हैं। मक्खियाँ उस गंदगी पर बैठ कर उसे अपने परों तथा पैरों के द्वारा ले जाती हैं और पशुओं तथा बच्चों की आँखों और भोजन-सामग्री पर बैठकर उस गंदगी को वहीं छोड़ देती हैं। इन्हीं कारणों से ग्राम-निवासियों और विशेषकर बच्चों की आँखें अधिकतर ख़राब दिखाई देती हैं। ग्रामीण अपने मकान बनाने के लिए तथा वर्षा के उपरान्त प्रतिवर्ष मकानों की मरम्मत करने के लिए गाँव के समीप से ही मिट्टी खोद लेते हैं। इसका फल यह होता कि गाँव के चारों ओर तालाब-तलैयाँ अथवा छोटे छोटे गड्ढे बन जाते हैं। वर्षा का जल इनमें भर जाता है। यही नहीं, बिखरे हुए छोटे छोटे खेतों की समस्या ने भी हमारे गाँव में उग्र रूप धारण कर लिया है। इसके कारण बहुत-सी अनावश्यक मेड़ें पानी के प्राकृतिक बहाव में बाधक होती हैं। रेलों, नहरों और सड़कों के बनाने में भी ऐसी भयंकर भूल हो गई है कि उनके कारण भी भिन्न भिन्न प्रान्तों में पानी का प्राकृतिक बहाव रुक गया है। इसका यह फल होता है कि वर्षा के उपरान्त ग्रामों में भीषण मलेरिया-ज्वर फैलता है। मलेरिया का कीटाणु रुके हुए पानी में उत्पन्न होता है, अतएव जब तक गाँव के आस-पास के गड्ढे और तालाब भर न दिये जायँ अथवा रुके हुए पानी की समस्या हल न की जाय तब तक मलेरिया से पिंड नहीं छूट सकता। ऊपर लिखे कारणों तथा चिकित्सा के साधनों के अभाव ने बहुत-से भयंकर रोग स्थायी रूप से भारतीय ग्रामों में जम गये हैं।

अब प्रश्न यह है कि गाँवों के स्वास्थ्य तथा सफ़ाई की समस्या कैसे हल की जा सकती है। इसके अतिरिक्त ग्रामों में बच्चे उत्पन्न करने का कार्य अधिकतर नीच जाति की अशिक्षित गंदी दाइयाँ करती हैं, इससे भी माता तथा बच्चे के स्वास्थ्य को बहुत हानि पहुँचती है। इस सम्बन्ध में जो अवैज्ञानिक तथा अस्वास्थ्यकर रस्में प्रचलित हो गई हैं उनके कारण जो भयंकर क्षति देश को पहुँच रही है वह भी अकथनीय है। अधिकतर मातायें तथा बच्चे मर जाते हैं। माताओं के स्वास्थ्य में स्थायी रूप से कोई ख़राबी आ जाती है और बच्चों के स्वास्थ्य पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है।

प्रान्तीय सरकारों के पास इस कार्य के लिए पैसा नहीं है। नवीन शासन-विधान का भयंकर आर्थिक बोझ प्रान्तों का रीढ़ तोड़ देगा, अतएव यह आशा करना कि हमारी प्रान्तीय सरकारें यह कार्य पूर्णरूप से कर सकेंगी, स्वप्न-तुल्य है, अतः हमें यह देखना है कि हमारे सार्वजनिक कार्य-कर्ता तथा ग्रामवासी स्वयं अपनी दशा को किस प्रकार सुधार सकते हैं।

बंगाल की ऐंटी मलेरिया समितियाँ—इस दिशा में बंगाल के अन्तर्गत एक सफल प्रयोग हुआ है। बंगाल में मलेरिया-ज्वर का भीषण प्रकोप होता है। वहाँ प्रति वर्ष बहुत बड़ी संख्या में मनुष्य मरते हैं और कहीं तो मलेरिया के कारण गाँव के गाँव उजड़ गये हैं। अभी तक विशेषज्ञों की सम्मति थी कि मलेरिया के कीटाणु रुके हुए पानी में उत्पन्न होकर अपने जन्मस्थान से आठ मील तक जा सकते हैं। सरकार का विश्वास है कि मलेरिया के रोकने में अत्यधिक व्यय होगा, साथ ही जनता का यह विश्वास था कि यह रोग तभी रोका जा सकता है जब कोई बड़ी योजना तैयार की जाय। इसी कारण ग्रामीण इस विषय में हताश हो चुके थे।

किन्तु डाक्टर गोपालचन्द्र चटर्जी ने अनुसंधान करके यह पता लगाया कि मलेरिया का कीटाणु अपने जन्मस्थान से आध मील से अधिक दूर नहीं जा सकता और सरकारी विशेषज्ञों का मत भ्रमपूर्ण है। यह खोज कर चुकने के उपरान्त उन्होंने प्रान्त में इस रोग से युद्ध करने के अभिप्राय से ऐन्टी मलेरिया सहकारी समितियों की स्थापना की। प्रान्त भर में इस आन्दोलन का संचालन करने के लिए उन्होंने एक सेन्ट्रल को-आपरेटिव ऐन्टी मलेरिया सोसायटी लिमिटेड भी स्थापित की। क्रमशः ग्राम-समितियों की संख्या बढ़ती गई और आज बंगाल में लगभग ७०० ऐन्टी मलेरिया समितियाँ सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं।

ग्राम-समितियाँ अपने अपने गाँवों में मलेरिया तथा अन्य रोगों के रोकने का उपाय करती हैं। समितियों के सदस्यों को चार आने से लेकर एक रुपया मासिक चन्दा देना पड़ता है। प्रत्येक समिति एक वैद्य अथवा डाक्टर को कुछ मासिक वेतन देकर रखती है, जो सदस्यों के घरों पर बिना फ़ीस लिये जाता है और रोगियों की चिकित्सा करता है। प्रान्तीय सरकार इन समितियों को सेन्ट्रल सोसायटी के द्वारा कुछ आर्थिक सहायता भी देती है। इन समितियों ने बहुत-से अस्पताल तथा स्कूल खोल रक्खे हैं। कुछ अस्पताल तो ऐसे हैं जो सर्व-साधारण को दवा देते हैं और कुछ ऐसे भी हैं जो केवल समिति के सदस्यों को ही दवा देते हैं।

जब किसी क्षेत्र में कुछ समितियाँ स्थापित हो जाती हैं तब उनकी देख-भाल करने के लिए ग्रूप-समिति स्थापित

कर दी जाती है। कहीं ग्रूप-समिति ही चिकित्सक रखती है, जो उस क्षेत्र की समितियों के सदस्यों की चिकित्सा करता है और जब मलेरिया, चेचक, काला आज़ार, हैज़ा अथवा प्लेग का प्रकोप बढ़ता है तब वह उसके रोकने का उपाय करता है।

ग्राम-समितियाँ वर्षा से पूर्व गाँव के समीपवर्ती सब गड्ढों, खाइयों तथा पोखरों को भर देती हैं। नाले और नालियाँ ठीक कर दी जाती हैं, ताकि कहीं पानी रुक न सके। खेतों के बहाव भी ठीक कर दिये जाते हैं। फिर भी वर्षा में यदि कहीं पानी रुक जाता है तो वहाँ समिति मिट्टी का तेल छुड़वाती है, जिससे मलेरिया के कीटाणु उत्पन्न ही न हो सकें। समिति प्रत्येक सदस्य को एक छपी हुई पुस्तिका देती है, जिसमें वह प्रति सप्ताह यह लिखता है कि उसके घर के लोग कितने दिनों के लिए बीमार पड़े। इन पुस्तकों के द्वारा गाँव में मलेरिया घट रहा है या नहीं, यह मालूम हो जाता है।

लेखक की योजना—भारतवर्ष में रोके जा सकनेवाले रोगों के कारण मनुष्य-जीवन तथा कार्य-शक्ति का जो भयंकर नाश हो रहा है, यह सहकारी स्वास्थ्य-समितियाँ स्थापित करके रोका जा सकता है। प्रत्येक गाँव में एक स्वास्थ्य-रक्षक-समिति की स्थापना की जाय। गाँववालों को समिति के लाभ समझाकर वे उसके सदस्य बना लिये जायँ। प्रयत्न यह होना चाहिए कि गाँव के प्रत्येक घर का एक व्यक्ति सदस्य बने। प्रत्येक सदस्य को चार आना मासिक चंदा देना होगा। जो लोग बहुत निर्धन हों और चार आना मासिक चन्दा न दे सकें उनसे चंदा न लिया जाय, चंदे के बदले में वे सदस्य समिति का महीने में एक दिन कार्य कर दिया करें। यदि कोई सदस्य चाहे तो अपना चंदा अनाज के रूप में भी दे सकता है। किन्तु चन्दा देनेवाले तथा काम करनेवाले सदस्यों में कोई अन्तर नहीं होना चाहिए। सब प्रकार के सदस्यों के अधिकार एक ही हों।

सब सदस्यों की एक साधारण सभा हो। प्रत्येक सदस्य को केवल एक ही वोट देने का अधिकार हो। प्रयत्न यह किया जाय कि प्रत्येक सदस्य समिति के कार्य में भाग ले। साधारण सभा प्रतिवर्ष बजट पास करे तथा समिति का वार्षिक प्रोग्राम निर्धारित करे। साधारण सभा अपने वार्षिक अधिवेशन में पाँच सदस्यों की एक पंचायत, उसका सरपंच, दो मंत्री, एक कोषाध्यक्ष का भी निर्वाचन करे। दोनों मन्त्री समिति के कार्य को आपस में बाँट लें। जो सदस्य चन्दा न दें उनसे मन्त्री समिति का निम्नलिखित काम करवावे—गाँव के समीपवर्ती सब गड्ढों को पाटना, नालों तथा खेतों के बहाव को ठीक करना, वर्षा समाप्त हो जाने पर जहाँ जहाँ पानी रुक जाय वहाँ वहाँ मिट्टी का तेल छुड़वाना, औषधालय में काम करवाना तथा समय पड़ने पर उनको समिति के कार्य से अन्य स्थानों पर भेजना इत्यादि।

समिति चिकित्सक की सलाह से कुछ ओषधियों का संग्रह करे, जो साधारण रोगों में काम आ सकें। बहुत-सी ओषधियाँ तो ग्राम के समीपवर्ती स्थानों में ही मिल जायँगी। चिकित्सक की सलाह से वे सब ओषधियाँ एकत्र कर ली जायँ। चिकित्सक को जहाँ तक हो सके, गाँव में उत्पन्न होनेवाली ओषधियों का ही उपयोग करना चाहिए। यही नहीं, चिकित्सक मन्त्री को उन ओषधियों की जानकारी भी करा दे। ओषधियों को बाँटने का काम दूसरे मन्त्री के हाथ में रहे। समिति गाँव के आवश्यकतानुसार गाँव से कुछ दूरी पर थोड़े-से गड्ढे खुदवावे। ये गड्ढे ६ या ७ फ़ुट गहरे हों, उनके चारों ओर अरहर की आड़ खड़ी कर दी जाय तथा गड्ढे के मुँह पर लकड़ी के दो तख़्ते रख दिये जायँ। यही गाँव के शौचगृह हों। इनसे दो लाभ होंगे—एक तो गाँव में सफ़ाई रह सकेगी, दूसरे अभद्रता भी न होगी। गाँववालों को मैदान में शौच जाने की हानियाँ बताकर वे इन 'पिट-लैट्रिन्स' में शौच जाने को बाध्य किये जायँ। कुछ शौच-गृह स्त्रियों के लिए पृथक् कर दिये जायँ।

समिति एक मेहतर नौकर रक्खे, जो गाँव का कूड़ा इनमें डाल दिया करे और गाँव की गलियों को साफ़ रक्खे। सदस्य अपने घरों को स्वयं साफ़ करते ही हैं, वे अपने घर के बाहर की भूमि को भी साफ़ रक्खें। उन्हें गड्ढों में खाद बनाने के लाभ समझाये जायँ और गड्ढों में खाद तैयार करने को उत्साहित किये जायँ। प्रत्येक किसान दो गड्ढे तैयार करे—एक में से जब खाद निकाली जाय तब दूसरे में गोबर तथा कूड़ा भरा जाय। किसान प्रति दिन गोबर, भूसा-चारा जो पशुओं के पास बच रहता है, गड्ढों में डाल दिया करे। इससे दो लाभ होंगे। एक

तो गंदगी दूर होगी, दूसरे उत्तम खाद तैयार होगी। समिति शौचगृहों में तैयार की हुई खाद को बेच दे।

समीपवर्ती चार-पाँच गाँवों की समितियाँ मिलकर एक सामूहिक समिति बनावें। प्रत्येक ग्राम-समिति उसमें अपने प्रतिनिधि भेजे। बड़ी समिति एक चिकित्सक तथा एक शिक्षित दाई नियुक्त करे। इन कर्मचारियों को निजी प्रैक्टिस की आज्ञा नहीं होनी चाहिए। नर्स का यह कार्य हो कि वह बड़ी समिति से संबंधित गाँवों में बच्चा जनाने का काम करे। समिति प्रत्येक सदस्य से बच्चा जनाने की फ़ीस आठ आने ले। जो लोग समिति के सदस्य न हों उनसे एक रुपया फ़ीस ली जाय। चिकित्सक बीच के गाँव में रहे और प्रतिदिन दो गाँवों में जाकर वहाँ जो भी बीमार हों उन्हें देखे और दवा दे। प्रत्येक गाँव में तीसरे दिन डाक्टर जाया करे। इस बीच में समिति का मन्त्री वह दवा जो चिकित्सक बतला जाय, रोगियों को देता रहे। यदि किसी रोगी को देखने के लिए चिकित्सक को उसके घर जाना पड़े तो उस सदस्य से समिति दो आना फ़ीस ले और जो सदस्य न हों उनसे फ़ीस दुगुनी ली जाय और दवा मुफ़्त न दी जाय।

चिकित्सक का मुख्य कार्य केवल चिकित्सा करना ही न होगा, वरन रोगों से बचने का उपाय बतलाना भी उसका कर्तव्य होगा। सप्ताह में एक दिन प्रत्येक गाँव में चिकित्सक व्याख्यान देकर बतलावे कि रोग क्यों उत्पन्न होते हैं और उनसे बचने के क्या उपाय हैं। इसी प्रकार समिति की नर्स गाँवों के छोटे बच्चों तथा उनकी माताओं और गर्भवती स्त्रियों का निरीक्षण करे और उनको बच्चों के लालन-पालन करने तथा गर्भवती स्त्रियों को किस प्रकार रहना चाहिए, इसकी शिक्षा दे। जब कभी समीपवर्ती स्थान में मेला अथवा बाज़ार लगे तब बड़ी समिति के पदाधिकारियों को वहाँ विशेषकर स्वास्थ्य-संबंधी प्रचार करना चाहिए।

ये सामूहिक समितियाँ मिलकर तहसील-समिति का संगठन करें। तहसील-समितियों का कार्य केवल ग्राम-समितियों की देख-भाल करना, स्वास्थ्य-रक्षा-संबंधी प्रचार करना तथा ज़िले के स्वास्थ्य-विभाग के कर्मचारियों से लिखा-पढ़ी करके जब कभी उस तहसील के किसी [illegible] बीमारी फैल रही हो, उसे रुकवाने का प्रयत्न करना [illegible] बड़ी समितियों तथा ग्राम-समितियों के प्रतिनिधि [illegible] समिति में जायँगे। इस प्रकार संगठन हो जाने से [illegible] मेडिकल अफ़सर तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के अधिकारि[illegible] गाँवों में बीमारी फैलने के समय सरलतापूर्वक [illegible] दी जा सकती है और उनसे सहायता मिल सकती है।

प्रत्येक प्रान्त में एक प्रान्तीय स्वास्थ्य-रक्षक [illegible] का संगठन होना चाहिए, जो ग्रामों में कार्य करने [illegible] दाइयों तथा चिकित्सकों को शिक्षा दे, आन्दोल[illegible] नेतृत्व ग्रहण करे तथा प्रचार-कार्य करने के लिए [illegible] प्रकाशन करे। प्रान्तीय समिति को इन दाइयों में [illegible] इस समय गाँवों में कार्य करती हैं, स्वस्थ, चतुर [illegible] आयुवाली दाइयों को छाँट लेना चाहिए और उन्हें वृत्ति देकर दाई के कार्य की वैज्ञानिक शिक्षा दि[illegible] अपने अपने गाँवों में भेज देना चाहिए। सामूहिक [illegible] इन्हीं दाइयों को नौकर रक्खें। चिकित्सक भी [illegible] चाहिए जो ग्रामीण हों और गाँवों में रहना पसंद [illegible] आरम्भ में तो भिन्न भिन्न आयुर्वेदिक विद्यालयों से [illegible] हुए युवक छाँट लिये जायँ तथा उन्हें कुछ दि[illegible] आवश्यक शिक्षा देकर गाँवों में भेज दे। इसके [illegible] गाँवों में रहनेवाले अथवा जो गाँवों में रहना पसंद [illegible] शिक्षित नवयुवकों को प्रान्तीय समिति एक आ[illegible] विद्यालय स्थापित करके गाँवों के लिए उपयोगी [illegible] तैयार करे।

प्रान्तीय सरकार प्रान्तीय समिति को आवश्यक[illegible] आर्थिक सहायता दे सकती है। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड [illegible] का आधा वेतन देकर आन्दोलन की सहायता कर[illegible] है। इस प्रकार यदि संगठित ढंग पर सहकारिता [illegible] का उपयोग स्वास्थ्य-रक्षा-आन्दोलन के लिए [illegible] जाय तो ग्रामों में स्वास्थ्य-रक्षा की समस्या हल हो [illegible] है। प्रान्तीय संस्था एक पत्रिका प्रकाशित करे, [illegible] छपवावे, चित्र तथा फ़िल्म तैयार करावे तथा [illegible] लैन्टर्न के लिए स्लाइड तैयार कराकर गाँवों में भे[illegible]

उपन्यास

लेखक, श्रीयुत कुँवर राजेन्द्रसिंह

उपन्यास भी रेल और हवाई जहाज आदि की तरह आधुनिक सभ्यता का एक आवश्यक अङ्ग है। और इन्हीं वस्तुओं की तरह इसका भी एक मनोरञ्जक इतिहास है। जिसका इस लेख में कुँवर साहब ने बड़े सुन्दर ढङ्ग से परिचय दिया है।

आधुनिक दृष्टि से उपन्यास साहित्य है और साहित्य उपन्यास है। यदि उपन्यास को शब्दों की टकसाल भी कहें तो भी ठीक होगा। इसी से यह मालूम होता है कि उपन्यास के पात्रों की तरह शब्द भी अपना काम करके हटते जाते हैं और उनका स्थान दूसरे लेते जाते हैं। यहीं शब्द अपने नये रंग और रूप में दिखलाई देते हैं और यहीं उनके सामर्थ्य का पता चलता है। यहाँ यह भी पता चलता है कि कितने दिनों तक किस शब्द ने साहित्य-संसार का मनोरञ्जन किया और बाज़े बेचारे—'हसरत है उन गुंचों पर जो बे-खिले मुरझा गये'। इससे भाषा की स्थिति-स्थापकता का पता चलता है। एक अँगरेज़ विद्वान् का कहना है कि यदि गूढ़ विषय की ही पुस्तकें सदैव पढ़ी जायँ तो मस्तिष्क की नूतनता और प्रफुल्लता जाती रहती है और इस वजह से उपन्यासों का पढ़ना आवश्यक है। बहुत ऐसे भी हैं जिनकी राय उपन्यासों के खिलाफ़ है। एक यह बात भी है कि काल्पनिक घटनाओं का वर्णन अत्यन्त मनोहर होता है—"धूल की तरह सूखी सत्यता" आनन्ददायिनी नहीं मालूम होती है। बस, यही भेद है जो स्वकीया और परकीया में है—एक में सीधा-सादा प्रेम और दूसरे में हाव-भाव की पूर्ण छटा। क्या यह सुनना पसन्द आयेगा—'प्राननाथ करुनायतन सुन्दर सुखद सुजान' या 'सबहीं सो प्यारे प्रान प्रानन से प्यारे पति पति हूँ से प्यारे बृजपति आज आवेंगे।' अस्तु, उपन्यासों से सभी तरह के मनुष्यों की सेवा होती है। किसी को ट्रेन के सफ़र में इसकी ज़रूरत होती है, किसी को बग़ैर इसके नींद नहीं आती। किसी को बग़ैर इसके शौचगृह में जाना बेकार होता है, किसी को सिवा इसके और किसी विषय की पुस्तक हाथ में लेना नहीं पसन्द है। साहित्य का और कौन अङ्ग है जिसका इतना घनिष्ट सम्बन्ध मनुष्य के जीवन से हो। उन लोगों की संख्या बेशक कम है जो उपन्यास केवल इस उद्देश से पढ़ते हैं कि भाषा के नित्यप्रति के परिवर्तनों से परिचित रहें।

उपन्यास लिखने की प्रथा अपने देश की पुरानी नहीं है। सच तो यह है कि किसी भी प्राचीन भाषा में इसकी प्रथा नहीं थी। संस्कृत, अरबी और फ़ारसी—किसी में पुराने उपन्यास शायद नहीं मिलेंगे। प्राचीन समय के लेखक उपन्यास लिखना समय का अपव्यय समझते थे। तब शायद दिल बहलाने या समय का 'वध' करने की इतनी आवश्यकता नहीं थी और न शायद भाषा में इतनी जल्दी जल्दी परिवर्तन ही होते होंगे। ख़ैर, कुछ भी हो, उपन्यास लिखने की प्रथा उस समय नहीं थी। पुरानी बात जाने दीजिए। अभी तीस-पैंतीस बरस पहले अपने यहाँ उपन्यास पढ़ने का इतना शौक़ नहीं था।

उपन्यास का अर्थ हिन्दी-विश्वकोष में यह लिखा है—"उपकथा, सुनने और पढ़नेवाले का दिल ख़ुश करने के लिए बनाकर लिखा हुआ क़िस्सा"। उपन्यास का अनुवाद अँगरेज़ी में 'नॉवेल' होगा। यह शब्द १४६० से अँगरेज़ी-भाषा में प्रयुक्त हुआ है। १६०० तक इस शब्द का प्रयोग केवल कभी कभी होता था। लैटिन-भाषा में इसे 'नोवेलस' कहते हैं, जो उस भाषा के 'नोवस' शब्द से बना है, जिसका अर्थ नवीन है। १६१६ में अँगरेज़ी-भाषा में नावेल शब्द का अर्थ नवीन, तरुण, ताज़ा, विरल था। १७२७ में इसका अर्थ 'अभिनव उत्पत्ति' था। ख़बरों के अर्थों में भी इसका प्रयोग हुआ है। जिन अर्थों में नावेल (उपन्यास) का आज-कल प्रयोग होता है उसका यह अर्थ १६४३ में उसे प्राप्त हुआ। इस तरह की एक और गद्य-रचना का नाम 'फ़िक्शन' है। इसका अर्थ है—"बनाना, आविष्कार करना, कोई वस्तु जो कल्पित की गई हो; आविष्कृत वर्णन या बयान, ख़ास कर नावेल"। स्थूल दृष्टि से नावेल और फ़िक्शन में अन्तर नहीं है, और जो अन्तर है वह बहुत सूक्ष्म है। नावेल की कथा यथार्थता और कल्पना, दोनों पर या दोनों में से

किसी एक पर अवलम्बित हो सकती है, पर फ़िक्शन में कोरी कल्पना होती है। नावेल का अर्थ 'नया' है और फ़िक्शन के अर्थ 'कल्पना और बनावटी' हैं। बस, यही अन्तर दोनों में है। प्रसिद्ध उपन्यास लेखक डिकेंस ने अपना जीवन-चरित नावेल के ढंग पर लिखा था। जिसका नाम 'डेविड कापरफ़ील्ड' है। वह उपन्यास कहलाता है, फ़िक्शन नहीं। उन्होंने एक यथार्थता का नये ढंग से वर्णन किया है और जो कुछ वर्णन किया है वह कोरी कल्पना नहीं है।

अब ज़रा यह देखना है कि अँगरेज़ विद्वान अपनी भाषा के नावेलों के विषय में क्या कहते हैं। १८७१ में उनके यहाँ के एक लेखक ने लिखा था कि इँग्लैंड को आधुनिक नावेलों का जन्मस्थान होने का उचित मान अभी तक नहीं प्राप्त हुआ है। अँगरेज़ी-भाषावाले उसे उपन्यास कहते हैं जिसका क़िस्सा बहुत छोटा न हो, चाहे वह इतिहास की दृष्टि से सत्य हो या न हो। अपने यहाँ भी जब 'क़िस्सा' का लाक्षणिक भाव में प्रयोग होता है तब उसके अर्थ उस वर्णन के हो जाते हैं जो लम्बा-चौड़ा हो और जिसमें यथार्थता पर पूर्ण ध्यान न दिया गया हो। यह कहावत हो गई है कि 'ये क़िस्सेवाली बातें हैं' या यह 'एक क़िस्सा है' या 'यह क़िस्सा काहे ख़त्म होगा'। अँगरेज़ी-भाषा के उपन्यासों में पहले व्यंग्य का अच्छा प्रयोग होता था। बहुत तो यह कहते हैं कि उपन्यास के द्वारा ही व्यंग्य का ठीक प्रयोग हो सकता है, परन्तु किसी उपन्यास में केवल उसी व्यंग्य का प्रयोग उचित समझा जाता था जिसका उद्देश धार्मिक या राजनैतिक सुधार हो। यदि व्यंग्य का पुराना इतिहास देखा जाय तो मालूम होगा कि सुधार ही सदैव व्यंग्य का उद्देश रहा है। उपन्यास का केवल उद्देश यह है कि लोगों का मनोरञ्जन प्राकृतिक दृश्यों के पूर्ण वर्णन से हो। १८वीं शताब्दी तक साहित्य-क्षेत्र में उपन्यास का कोई स्थान नहीं था। इसकी उन्नति इतनी शीघ्र और आश्चर्य-जनक हुई है कि १९वीं शताब्दी में साहित्य का यह प्रमुख अङ्ग समझा जाने लगा। शायद यही हाल सभी देशों का है। जहाँ उपन्यास लिखने और पढ़ने की प्रथा अभी कुछ दिन पहले नहीं थी, वहाँ भी अब यह धूम है कि किसी किताब बेचनेवाले की दूकान में सिवा उपन्यासों के और पुस्तकें बहुत कम दिखलाई देती हैं। मुझे वे दिन याद हैं जब अपनी हिन्दी में क़िस्सों की इनीगिनी चार-छः किताबें थीं—जैसे, क़िस्सा हातिमताई, सिंहासनबत्तीसी, बैतालपचीसी, गुलबकावली, इत्यादि। फिर 'छबीली भठियारी' और 'साढ़े तीन यार' ऐसी पुस्तकें बाज़ार में आईं और ख़ूब बिकीं। पहले अर्द्ध-शिक्षित घरों में किष्किन्धाकाण्ड की बड़ी क़द्र थी। उनके विश्वासानुसार केवल इसी काण्ड के पढ़ने से पुण्य होता था या यही काण्ड रामायण भर में पढ़ने के योग्य था। वर्षाऋतु में लोग देहात में आल्हा पढ़ते थे। अब उपन्यास का अखण्ड राज्य है। अब न कहीं आल्हा दिखलाई देता है और न किष्किंधाकाण्ड। उनके पास भी जो 'राम' को 'रम' लिखते हैं, दो-एक उपन्यास होंगे, जो स्वार्थ की सजीवमूर्ति हैं उन्हें भी उपन्यास पढ़ने का अवसर मिल जाता है, और उनको भी जो और किसी पुस्तक से कोसों दूर भागते हैं। मैं प्रायः अपने मित्रों से पूछा करता हूँ कि वे किस तरह उपन्यास पढ़ते हैं। कुछ का तो यह कहना है कि उन्हें केवल क़िस्से से मतलब है। उनको इससे कुछ मतलब नहीं है कि भाषा कैसी है, वार्तालाप कैसा है, पात्रों में स्वाभाविकता है या बनावट, दृश्य प्राकृतिक हैं या नहीं—वे जैसे अँगरेज़ी की एक कहावत है "प्रवाह के साथ बहते हैं।" कुछ अवश्य ऐसे हैं जिनका ध्यान किसी दृश्य के वर्णन पर तो नहीं, परन्तु भाषा, वार्तालाप और विशेषतः यौगिक वाक्यों पर रहता है, और कुछ ऐसे भी हैं जो केवल वार्तालाप ही पढ़ते हैं और क़िस्सा समझने में अनुमान से काम लेते हैं। परन्तु उनकी संख्या अधिक नहीं है जो आद्योपान्त बिना एक शब्द छोड़े पढ़ते हैं। कुछ ऐसे हैं जो उपन्यास बन्द करते ही भूल जाते हैं कि उसमें क्या लिखा था और महीने दो महीने के बाद उसी उपन्यास को उसी चाव से पढ़ सकते हैं। उनकी संख्या अधिक है, जो एक दफ़े एक उपन्यास को पढ़कर फिर कभी उसे नहीं पढ़ पाते हैं, क्योंकि उन्हें क़िस्सा इतना याद रहता है कि प्रतीक्षा जाती रहती है, जो मनोरंजन का मुख्य कारण है। बहुतों को उपन्यास के नाम से चाहे पूरा क़िस्सा न याद आये, पर उसकी बाह्य रेखायें याद आ जाती हैं। मेरे एक मित्र उपन्यास पढ़ते पढ़ते सो गये। लैम्प सिरहाने जलता रहा। आपने उसी उपन्यास का एक भयावह दृश्य स्वप्न में

देखा। हाथ-पैर फेंके होंगे, जिससे लैम्प गिर गया। कुशल हुआ कि वह गिरकर बुझ गया, नहीं तो आप स्वयं एक भयानक प्राकृतिक दृश्य बन जाते। बस, आप दूसरे ही दिन उस उपन्यास की प्रशंसा में लम्बे-चौड़े गीत गाने लगे कि इतना अधिक उन पर प्रभाव पड़ा कि स्वप्न में भी वही दृश्य देखे थे। ऐसे भी हैं जो उपन्यासों की सफलता ऐसे प्रभावों से जांचते हैं। स्वर्गीय बाबू देवकीनन्दन के चन्द्रकान्ता उपन्यास ने अपनी हिन्दी-भाषा की बड़ी सेवा की है। यह मैं अपने अनुभव से कह रहा हूँ कि चन्द्रकान्ता ने बहुतों को हिन्दी पढ़ा दी।

पहले दफ़े ऐसे लिखे हुए क़िस्सों को वाल्टर ने नाॅवेल कहा था। यह भी कहा जाता है कि एलेकज़ेंडर के सामने से ही उपन्यासों की प्रथा की नींव पड़ने लगी थी। सन् ईसवी की दो शताब्दियों के पहले अरिस्टाइड्स ने छः भागों में अपनी एक पुस्तक लिखी थी, और वहीं से आधुनिक उपन्यासों की जड़ जमती है। छठी शताब्दी में लाॅंगस ने जो ग्रीस देश का रहनेवाला कहा जाता है, एक भोगात्मक देहाती क़िस्सा लिखा था, जो उपन्यास कहा जा सकता है। लैटिन-भाषा में एप्यूलियस का 'गोल्डन एस' उपन्यास ग्रीस की एक पुस्तक का अनुवाद है। यदि पेटरोनियस की पुस्तक 'सटायरिकन' को अद्भुत घटना कह कर टाल न दें तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि रोमवालों को यह कला अच्छी तरह मालूम थी कि रहन-सहन के तरीक़ों का उपन्यास में व्यंग्यपूर्वक कैसे वर्णन किया जा सकता है। उसके और उपन्यास इससे भी अच्छे थे, यद्यपि आदि प्रत्येक वस्तु की बेडौल होती है।

इटली में पुराने क़िस्सों का एक संग्रह है (१०० में से केवल ६६ प्राप्त हुए हैं)। वह १३वीं शताब्दी के अन्त में लिखा गया था और तभी से समस्त योरप में उस तरह के साहित्य का प्रचार हुआ। यह पता नहीं है कि उन क़िस्सों का लेखक कौन है। सब क़िस्से एक ढंग के नहीं हैं—किसी का विषय पौराणिक है, किसी का धार्मिक, किसी में वीर कविता है और किसी में अपवादक। इटली के प्रथम उपन्यास-लेखक की पहली पुस्तक १६४० में प्रकाशित हुई थी। उसके बाद ने फिलोकोपो नाम की पुस्तक लिखी गई और उसके ९ वर्षों के बाद 'डिकैमरन'। डिकैमरन का अँगरेज़ी में अनुवाद हो गया है। इसमें छोटे छोटे क़िस्से उपन्यास के ढंग से लिखे हुए हैं। इस पुस्तक का शिष्ट समाज में बहुत आदर नहीं है, क्योंकि भाषा की सभ्यता पर बहुत ध्यान नहीं रक्खा गया है। लड़कों के हाथ में देने योग्य यह पुस्तक नहीं है। दक्षिण-इटली का पहला उपन्यास-लेखक जिसके उपन्यासों का बहुत बड़ा प्रभाव समस्त योरप पर पड़ा था, टुमैस्को गार्डेटो था। उसने किसी का अनुकरण नहीं किया, उसने जो कुछ लिखा है वह उसी का है। उसका 'नावोलीनो' नामक उपन्यास १४७६ में नेपिल्स में प्रकाशित हुआ था। यह पाँच भागों में विभाजित है और प्रत्येक भाग में दस क़िस्से हैं। पहले शायद छोटे क़िस्से उपन्यास के ढंग पर लिखने की प्रथा थी। फिर क़िस्से लिखने की प्रथा बढ़ी और थोड़े दिनों तक कोई महत्त्वपूर्ण उपन्यास नहीं लिखा गया। १८ वीं शताब्दी के अन्त में जो उपन्यास निकले जिनमें लेखन-कला पर अच्छा ध्यान दिया गया था, उनकी बड़ी प्रशंसा है। १९वीं शताब्दी के चतुर्थ भाग में इटली में प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक पैदा हुए।

फ़्रांस पर इटली के उपन्यासों का प्रभाव १४५० तक कुछ नहीं पड़ा। सबसे पहले ऐंटोवाइन डिलासेल ने बुकेशियो के ढंग पर उपन्यास लिखा। थोड़े दिनों तक उपन्यास का प्रचार फ़्रांस में नहीं हो पाया, क्योंकि यह वही समय था जब जनता की रुचि छोटी कहानियों की तरफ़ थी। १५५० तक गद्य में स्वतंत्रता से क़िस्से लिखने की प्रथा नहीं थी। उस भाषा में बहुत अच्छे क़िस्से लिखनेवाले हो गये हैं, परन्तु उनके लिखे हुए क़िस्सों से उपन्यास की कला को कोई बड़ी सहायता नहीं मिली। कोई पचास साल बाद १६१० में एक पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसे उपन्यास लिखने की ओर प्रथम उद्योग कह सकते हैं। यद्यपि इसमें अनर्थक और असंगत बातें हैं, तथापि लेखक के कला-कौशल का पता चलता है। इसमें अच्छी तरह से लोगों के चरित्रों का चित्र खींचा गया है। उसके बाद और भी अच्छे अच्छे लेखक हुए, जिनकी रचनाओं से उपन्यास-कला को संवर्धित होने में बड़ी सहायता मिली। परन्तु ये सब तैयारियाँ भर हो रही थीं। वास्तव में प्राचीन समय का सबसे बड़ा उपन्यास-लेखक मार्गरेट डिलावर्जिनी हुआ है। उसने अपने देश में क्या, अन्य देशों में भी ख्याति प्राप्त की।

मैड्मिजिल डिलाफ़ेटी योरप की प्रथम गद्य-लेखिका हुई है, जिसने जहाँ तक सम्भव था, प्रकृति से अपना पूरा वास्ता रक्खा और उस समय के सभ्य पुरुषों के तरीक़ों और वार्तालापों का पूरा नक़शा खींचा। वाल्टेर का दूसरा रंग था। उसके उपन्यासों में व्यंग्य की अधिकता होती थी। रूसो ने भी उपन्यास लिखे हैं। उसका यह उद्देश था कि जनता के मनोरञ्जन के साथ साथ ऊँचे विचार भी उसके मस्तिष्क में पहुँच जायँ।

१८३० के मध्य से वह समय आया जब बिलकुल काल्पनिक उपन्यास लिखे जाने लगे। एलेकज़ेंडर ड्यूमा फ़्रांस का प्रसिद्ध लेखक हुआ और उसके पात्र सब साहसी होते थे। जार्ज सैन्ड के काल्पनिक उपन्यासों की भी बड़ी प्रशंसा है। उसके बाद बालज़क ने जीवन की तसवीर अपने उपन्यास में ऐसी खींची कि सजीवता आ गई। उसका यह उद्देश था कि उपन्यास में मानव-समाज का पक्षपात-रहित चित्र होना चाहिए, और इस कार्य में उसे पूर्ण सफलता मिली। गुस्टावा फ़्लैबर्ट भी उस देश का बड़ा उपन्यास-लेखक हुआ है और उसके उपन्यास मैडम बबारी का अँगरेज़ी में अनुवाद हो गया है। उपन्यास अच्छा है। १८७१ में ज़ोला ने ख्याति प्राप्त की और १८८० में मुपासाँ ने। मुपासाँ के क़रीब क़रीब सब उपन्यासों का अँगरेज़ी में अनुवाद हो गया है। इसकी रचनाओं का अनुवाद हो जाने से अँगरेज़ी-साहित्य का बड़ा लाभ हुआ है।

यदि लेटिन के क़िस्सों के अनुवाद पर ध्यान न दिया जाय तो इँग्लैंड में उपन्यास लिखने की प्रथा का प्रारम्भ १४७० से होता है। पहला पद्य-उपन्यास-लेखक उस देश का सर टामस मेलोर हुआ है। उसका पहला उपन्यास 'लि मार्टीडि आर्थर' समाप्त होने के १५ वर्ष बाद १४८५ में प्रकाशित हुआ था। उसका भी लिखने का ढंग अपना था। उसकी बड़ी प्रशंसा यह है कि रूपकमय लेखन-कला से उसने अपना सरोकार नहीं रक्खा और एक सजीव शैली का आविष्कार किया, जो मनोभावों को प्रकट करने में समर्थ थी। परन्तु इन सब गुणों के होते हुए भी उसमें आधुनिक उपन्यासों का ढाँचा नहीं था। उसके बाद इस ओर बड़ा उद्योग हुआ और प्रत्येक लेखक ने इस कला के विकास में बड़ी सहायता की। किसी ने पुराना ढंग रक्खा और किसी ने बिलकुल नये ढंग से काम लि[...] डेनियल डिफ़ो को इस ओर बड़ी सफलता प्राप्त [...] विशेषतः उसके राबिंसन क्रूसो ने उसका नाम अ[...] दिया है, यद्यपि उसका क़िस्सा वर्णनात्मक है। १[...] आलिवर गोल्डस्मिथ (प्रसिद्ध कविता 'डिज़र्टेड विले[...] रचयिता) ने एक नाॅवेल लिखा। इसका नाम [...] विकार आफ़ दि वेकफ़ील्ड'। इसकी गणना अँगरे[...] उच्च कोटि के साहित्य में है। 'डिज़र्टेड विलेज' [...] उपन्यास ने गोल्डस्मिथ का नाम साहित्य-संसार में [...] कर दिया। जेन आस्टिन का उपन्यास 'सेंस एण्ड [...] लिटी' १८११ में प्रकाशित हुआ था और सर [...] स्काट का 'वेवरली' १८१४ में। चार्ल्स डिकेंस [...] पुराने रास्ते छोड़ दिये और अपना रास्ता अलग [...] और उसी पर चलकर जो सफलता उसे प्राप्त हुई उस[...] बहुतों ने देखा होगा, पर उसका सम्पादन बहुत [...] कर पाया होगा। स्थानाभाव के कारण बहुत बड़े उ[...] लेखकों के नाम छूट गये हैं, जैसे थैकरे इत्यादि। उ[...] के इतिहास पर प्रोफ़ेसर जार्ज सेंट्सबरी ने बड़ी योग्य[...] एक पुस्तक लिखी है, जिसका नाम 'दि इँग्लिश [...] है। मुझे इस पुस्तक से भी इस लेख के लिखने में [...] सहायता मिली है। पुस्तक अध्ययन करने के योग्य [...]

अमरीका का और देशों की अपेक्षा साहित्य [...] राज्य-परिवर्तन के पहले अमरीका में नाॅवेल नहीं [...] जाते थे, क्योंकि साहित्य की इस उपशाखा की उ[...] वहाँ माँग नहीं थी। यह नितान्त स्वाभाविक है कि [...] साथ ज़्यादा होगा, बहुत कुछ उसी का ढंग आ [...] पहले अमरीका के उपन्यासों का ढंग वही था जो [...] उपन्यासों का। वहाँ के लिखनेवाले ह्यूम, [...] फ़ीलिंडग के पथ के पथिक थे। १८०० से वहाँ उ[...] लिखने की प्रथा चली, और किसी किसी ने डेनियल [...] का अनुकरण किया। वहाँ के लेखकों में जेम्स [...] कूपर का बड़ा नाम है। शायद उसमें ईश्वर-प्रदत्त [...] थी। अमरीका के उपन्यासों में अभी तक यथार्थ [...] भावों की मात्रा अधिक नहीं है। अब वहाँ भी नये [...] उपन्यास लिखे जा रहे हैं। पुरानी कमी अब [...] रही है।

स्पेन में १५वीं शताब्दी से गद्य में वर्णनात्मक

लिखने प्रारम्भ हुए। पहले वीर पुरुषों का चरित उन लेखों का विषय होता था। वहाँ भी शनैः शनैः उपन्यास की लेखन-कला का विकास हुआ और वहाँ की जनता की रुचि के अनुसार उपन्यास लिखे जाने लगे। जर्मनी में उपन्यास लिखना देर में प्रारम्भ हुआ। वहाँ के प्रथम उपन्यास-लेखक का समय १६२५ कहा जाता है। वहाँ के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक का नाम गेटे है। वह सब कुछ लिख सकता था और जो कुछ लिखा वह उस देश के साहित्य का प्रमुख अंग हो गया। पहले जर्मनी के उपन्यास-लेखक कवि कहला सकते थे, क्योंकि वे उसी ढंग पर गद्य भी लिखते थे। १९वीं शताब्दी में वहाँ कोई बड़ा उपन्यास-लेखक नहीं हुआ है।

योरप के मध्य और पूर्वीय देशों में केवल रूस में उपन्यास-लेखकों ने पहले से ही अपना नया रास्ता निकाला था, परन्तु १९वीं शताब्दी में प्रायः वहाँ के भी लेखक सर वाल्टर स्काट का ही अनुकरण करते थे। यह हाल १८३४ तक रहा जब तक गोगोल ने पुराने तरीक़ों का पूर्ण बहिष्कार नहीं कर दिया। तब से वहाँ के उपन्यासों में यथार्थता होने लगी, परन्तु कल्पना का अभाव रहा है। टाल्सटाय स्वयं एक श्रेष्ठ उपन्यास-लेखक थे और उनके समय से जो उपन्यास लिखे जाने लगे वे योरप के १९ वीं शताब्दी के अच्छे उपन्यासों में समझे जाते हैं।

चीन में १३ वीं शताब्दी से उपन्यासों का पता चलता है, परन्तु यह पता नहीं चलता कि यह प्रथा वहाँ कहाँ से पहुँची थी। उस समय के जो उपन्यास मिलते हैं उनमें स्वभावतः पुरानापन है। उनमें लड़ाइयों और मुसाफ़िरों के साहस का वर्णन है। १७ वीं शताब्दी में जो उपन्यास वहाँ लिखा गया था वह वास्तव में उपन्यास था। यह भी पता नहीं चलता है कि यह किसका लिखा हुआ है।

जापान में गद्य लिखने की प्रथा का पता १० वीं शताब्दी से चलता है, परन्तु सबसे प्रथम उपन्यास लिखनेवाली उस देश की एक स्त्री हुई है। उसका नाम मुरासकी नोशिकीबू है। उसने अपना उपन्यास १००० में समाप्त किया था। संसार का यही प्रथम उपन्यास कहलाता है। यद्यपि उसके बाद उपन्यास लिखने की प्रथा उस देश में वैसी प्रचलित नहीं हुई जैसा कि और देशों में, तथापि अब वहाँ भी अच्छे लिखनेवाले हैं।

नवीन रहस्य!

लेखक, श्रीयुत श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम० ए०

नहीं मिला मेरा प्रियतम कवि!
नभ के दिव्य सितारों में।
देखा नहीं कभी उस सुख को,
मुक्ता के इन हारों में॥
खोजा हरित, सौम्य उपवन की,
सुन्दर, पुलकित कलियों में।
ऊषा के शीतल पत्तों पर,
तुहिन-बिन्दु की "फलियों" में॥
तप्त कपोलों पर आँसू की,
बूँदें भी देखीं गिरती।
बुद् बुद् की मंजुल अवली को,
निर्झर से झरझर झरती॥
श्रावण की वर्षा का गौरव,
भली भाँति मैंने गाया।
किन्तु कहीं भी उस स्वरूप का,
दर्शन, ज्ञान नहीं पाया॥
गया अन्त में एक खेत पर,
जहाँ कृषक करता था श्रम।
ज्यों ही देखे बिन्दु भाल पर,
दूर हुआ मेरा सब भ्रम॥
स्वेद-कणों में प्रियतम की कवि!
मुझको सुखमय झलक मिली।
इस रहस्य की प्रखर ज्योति से,
मेरी जीवन-कली खिली॥

हिन्दू-स्त्रियों का अपहरण और क़ानून

लेखक, श्रीयुत दत्तात्रेय बावले, एम० ए०, एल-एल० बी०

हिन्दू-स्त्रियों का अपहरण रोकने के लिए क़ानून से क्या मदद मिल सकती है। यह इस लेख में लेखक महोदय ने बड़े सुन्दर ढङ्ग से दिखाया है और संक्षेप में कुछ ऐसे क़ानूनों का भी परिचय दिया है।

अपने गत लेख में हमने गुंडों-द्वारा भगाई जानेवाली हिन्दू-स्त्रियों की विषम समस्या का विश्लेषण करते हुए यह बताने की चेष्टा की थी कि हिन्दू-समाज की अनेक कुप्रथायें व अंध-विश्वासों तथा हमारी निर्बलताओं व आत्म-सम्मान की कमी आदि स्वयं अपने ही अनेक दोष हमारे इस जातीय कलंक के मुख्य कारण हैं। जब तक हम इनका निराकरण नहीं करते तब तक हम अपने जातीय सम्मान की पूर्णतः रक्षा नहीं कर सकेंगे। किन्तु हिन्दू-समाज के पुनःसंगठन होने तक इस प्रकार की लज्जा-जनक घटनाओं के निराकरण करने के लिए अन्य सामयिक उपायों की उपेक्षा करना बुद्धिमत्ता नहीं है। इस प्रकार का एक महत्त्वपूर्ण उपाय क़ानून की सहायता लेना है। वर्त्तमान लेख-द्वारा हम सर्वसाधारण का ध्यान भारत के भिन्न भिन्न क़ानूनों में पाये जानेवाले उन मुख्य साधनों की ओर आकर्षित करना चाहते हैं जिनके द्वारा इस प्रकार की दुःखद घटनाओं को बहुत कुछ कम किया जा सकता है। इनका अवलंबन करके जहाँ पुलिस व न्यायालयों के द्वारा गुंडों को उचित दंड दिलाया जा सकता है, वहाँ उनके चंगुल में फँसी हुई अभागिनी स्त्रियों की भी रक्षा की जा सकती है। स्वयं स्त्रियों को भी अपने सम्मान की रक्षा के लिए क़ानून में अनेक अधिकार प्राप्त हैं, जिनसे अनभिज्ञ होने के कारण हमारी असहाय देवियाँ अन्याय व अत्याचार का शिकार बन जाती हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि अपनी मूर्खता-पूर्ण व आत्मघातक मनोवृत्ति के कारण हिन्दू ऐसे अवसरों पर क़ानून व सरकार की सहायता लेना अपनी बेइज़्ज़ती व बदनामी समझते हैं। रोगी होने में उन्हें लज्जा का अनुभव नहीं होता, किन्तु उसका उपचार करने में उन्हें अपमान का अनुभव होता है। अपनी बहन-बेटियों का अपहरण जिस कायरता व नपुंसकता का द्योतक है उसका अनुभव तक करने की जिनमें क्षमता न हो उनका उसके निराकरण करने में लज्जा का अनुभव करना कितना उपहासास्पद है यह कहने की आवश्यकता नहीं है। हमारी ये पीड़ित बहनें विधर्मियों व विजातियों के चंगुल में फँसकर न केवल हमारी बेइज़्ज़ती व आत्मगौरव-हीनता को चिरस्थायी ही करती हैं, अपितु गुंडे-बदमाशों को हमारी ओर से निर्भय बनाकर, अप्रत्यक्ष रूप से हिन्दू-स्त्रियों को भगाने व अपमानित करने के लिए उत्साहित होने का कारण बनती हैं।

किन्तु उपर्युक्त दूषित मनोवृत्ति के होने पर भी हमारा यह विचार है कि वास्तविक क़ानूनी उपायों से अनभिज्ञ होना भी हमारे सामाजिक कार्यकर्ताओं, पीड़ित स्त्रियों व उनके सम्बन्धियों की किंकर्तव्य-विमूढ़ता का एक कारण है। इन उपायों को जानने से एक और लाभ यह होगा कि हम इस विषयक वर्त्तमान क़ानूनों को अधिक उपयोगी बनाने तथा उनमें आवश्यक वृद्धि करने के लिए प्रेरणा व आन्दोलन कर सकेंगे। पूने की हिन्दू-महासभा के स्वागताध्यक्ष श्रीयुत केलकर ने अपने भाषण में धर्मपरिवर्तन के सम्बन्ध में इसी प्रकार के क़ानूनी संरक्षण की आवश्यकता का निर्देश किया है।

हिन्दू-स्त्रियों के अपहरण व अपमानित होने की समस्या से सम्बन्ध रखनेवाले उपयोगी विधानों मुख्यतः तीन क़ानूनों में प्राप्त होते हैं, अर्थात् भारतीय दंड-विधान ज़ाब्ता फ़ौजदारी व गार्जियन एंड वार्ड्स एक्ट। इन तीनों पर हम क्रमशः उनकी उपयोगी धाराओं-सहित विचार करेंगे।

भारतीय दंड-विधान—भारतीय दंड-विधान में जो अधिकार जनता को प्राप्त हैं उन्हें हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम वे जिनका उपयोग करके गुंडों द्वारा अपमानित व पीड़ित की जानेवाली देवियाँ अपनी

रक्षा कर सकती हैं। दूसरे वे जिनका उपयोग करके सामाजिक कार्यकर्त्ता, सम्बन्धी व अभिभावक गुंडों को उचित दंड दिलाकर इस प्रकार की स्त्रियों को वापिस पा सकते हैं व उनकी रक्षा कर सकते हैं।

प्रत्येक सभ्य देश की क़ानून-व्यवस्था का यह एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है कि आत्मरक्षा के लिए किया गया कोई भी अपराध दंडनीय नहीं है। हमारे देश में भी दंड-विधान की धारा '९६' के द्वारा इस सर्वमान्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। आत्म-रक्षा का अधिकार केवल शरीर व सम्पत्ति तक ही सीमित नहीं है। अपितु उसमें स्त्री-जाति के सम्मान व सतीत्व-रक्षा का पवित्र अधिकार भी सम्मिलित है। अपने इस अधिकार की रक्षा में यदि उन्हें किसी आततायी का प्राणान्त करने की भी आवश्यकता पड़े तो क़ानून इस प्रकार की हत्या के लिए उन्हें कोई दंड नहीं देता। भारतीय दंड-विधान (१) की धारा १०० में स्पष्ट कहा गया है कि यदि कोई (क) व्यभिचार करने की इच्छा से, (ख) अस्वाभाविक वासना की पूर्ति के लिए अथवा (ग) ज़बर्दस्ती या बहकाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की इच्छा से किसी स्त्री या लड़की पर आक्रमण करे तो ऐसी अवस्था में यदि अपने रक्षार्थ आक्रमणकारी को जान से भी मारना अनिवार्य हो तो ऐसा करना क्षन्तव्य है। इसी प्रकार हत्या-सम्बन्धी धारा ३०० में भी उपर्युक्त प्रकार की हत्या 'हत्या' नहीं मानी गई। यदि भारतीय स्त्रियों में पर्याप्त साहस व उचित आत्म-सम्मान हो तो क़ानून इससे अधिक उन्हें क्या अधिकार दे सकता है। आर्य-ललनाओं ने अपने सम्मान व सतीत्व की रक्षा का जो उच्च आदर्श रक्खा है भारतीय इतिहास का प्रत्येक पाठक भली प्रकार जानता है। यदि हमारी बहनें अपने पास उपयुक्त साधन रखकर आक्रमणकारियों का मुक़ाबला करने लगें तो उन्हें अपमानित करने का दुःसाहस कौन कर सकता है? इस प्रकार के गुंडों में स्वभावतः ही नैतिक साहस का अभाव होता है, अतः यदि हमारी रमणियाँ ज़रा भी साहस से काम लेने लगें तो उनके तेज के सम्मुख ये कापुरुष कभी ठहर नहीं सकेंगे, उनके प्राणान्त की आवश्यकता का प्रश्न ही दूर है।

भारतीय दंड-विधान की दूसरे प्रकार की धाराओं से इन अभागी स्त्रियों के अभिभावक आदि लाभ उठा सकते हैं। बहुधा लोग यह समझते हैं कि स्वेच्छा से ले जाई गई स्त्रियों के लिए कुछ नहीं किया जा सकता, किन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं है। प्रथम तो ऐसी स्त्रियों की इच्छा बहुधा प्रभावित व क्षणिक होती है, दूसरे उनकी वास्तविक इच्छा क्या है, यह हम तब तक नहीं जान पाते जब तक उन्हें स्वतन्त्रता-पूर्वक उसे प्रकाशित करने का अवसर प्राप्त न हो। इस विषय में पुलिस आदि पर विश्वास करना कठिन है, नाबालिग़ अर्थात् १६ और यहाँ तक कि १८ वर्ष की आयु तक इच्छा का प्रश्न ही नहीं है। और बहुधा यही उमर होती है जब लड़कियाँ भगाई जाती हैं, अतः अदालत की सहायता से उनके सम्बन्धी उन्हें ज़बर्दस्ती वापिस ला सकते हैं। १६ या १८ वर्ष से अधिक होने पर इच्छा का प्रश्न विचारणीय है। और यदि वह इच्छा 'स्वतन्त्र' व अन्तिम हो तो उसमें हमें हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है। ऐसे अवसरों पर व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में बाधा डालने का प्रयत्न अनुचित है। किन्तु अनुभव यह बताता है कि इस प्रकार की घटनायें सौ में चार-पाँच से अधिक नहीं होतीं। अन्य अवसरों पर ऐसी घटनायें स्वेच्छा से नहीं होतीं, प्रयत्न करने पर इस प्रकार की बहनें पतन के मार्ग से बचाई जा सकती हैं। और कम-से-कम जिन दुष्टों के कारण उनका सम्मान व धर्म संकट में पड़ा उन्हें तो उचित दंड अवश्य ही दिलाया जा सकता है। जिसका नैतिक प्रभाव अन्य लोगों पर भी पड़े बिना न रहेगा। इस विषय में दंड-विधान की निम्नलिखित धाराओं से सहायता ली जा सकती है—

(१) सार्वजनिक स्थानों में स्त्रियों के सम्मुख, गंदे व अश्लील शब्दों अथवा व्यवहारों के द्वारा उन्हें अपमानित करने का यत्न करनेवालों को धारा २९४ के अनुसार तीन मास तक का कारावास व जुर्माना हो सकता है। इतना ही नहीं धारा ५०९ के अनुसार स्त्री-सुलभ भावनाओं को ठेस पहुँचाने के लिए कहा गया शब्द आवाज़कशी, इशारा और किसी प्रकार का प्रदर्शन तक दंडनीय है। इसी प्रकार स्त्रियों के एकान्त की अवहेलना करना भी जुर्म है।

(२) बल का प्रयोग करके अथवा बल-प्रयोग की धमकी देकर किसी स्त्री की लज्जा या भावना पर आघात करने की इच्छा से उसे स्पर्श आदि करने के लिए धारा ३५४ के अनुसार दो वर्ष तक की सज़ा हो सकती है।

(३) यदि कोई व्यक्ति किसी देवी को जिसकी आयु १६ वर्ष से कम हो अथवा जिसका दिमाग़ ठीक न हो वह चाहे किसी भी उम्र की क्यों न हो, बिना उसके सम्बन्धी या अभिभावक की आज्ञा से कहीं ले जाय अथवा किसी स्त्री को चाहे वह किसी उम्र की क्यों न हो बिना उसकी इच्छा के ब्रिटिश भारत से बाहर (रियासतों आदि में भी) ले जाय तो उसे दंड-विधान की ३६३ धारा के अनुसार सात वर्ष तक की सज़ा हो सकती है।

(४) इसी प्रकार किसी स्त्री को चाहे वह बालिग़ हो या नाबालिग़, इस उद्देश से ले जाया जाय कि उसे अपनी इच्छा के विरुद्ध किसी से विवाह करने या अनुचित सम्बन्ध रखने के लिए विवश किया जाय या विवश होना पड़े तो ऐसे व्यक्ति के लिए ३६६ धारा में १० वर्ष तक के कारागार व जुर्माने का विधान है।

(५) यदि कोई व्यक्ति स्वयं या अन्य किसी के साथ अनुचित सम्बन्ध रखने के उद्देश से १८ वर्ष से कम आयु की किसी लड़की को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने या अन्य कोई कार्य करने के लिए फुसलावे, चाहे वह किसी भी उपाय से क्यों न हो तो उसे दंड-विधान की धारा ३६६ ए० के अनुसार १० वर्ष की सज़ा व जुर्माना हो सकता है।

(६) सन् १९१० में स्त्रियों के बढ़ते हुए व्यापार को बंद करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय आयोजन हुआ था। उसकी पूर्ति के लिए हमारे दंड-विधान में भी धारा ३६६ बी का समावेश किया गया है, जिसके अनुसार व्यभिचार आदि अनैतिक उद्देश से अन्य देशों व रियासतों से २१ वर्ष से न्यून आयुवाली स्त्री को लानेवाले के लिए १० वर्ष के लिए जेल हो सकती है।

(७) धारा ३६७ में किसी स्त्री को दासत्व या अनुचित उद्देश से भगानेवाले के लिए भी १० वर्ष की सज़ा का विधान है।

(८) इसी प्रकार १८ वर्ष से कम उम्र की लड़की को व्यभिचार, वेश्यावृत्ति आदि के लिए बेचने, किराये आदि पर देने पर भी ३७२ धारा के अनुसार दस वर्ष की क़ैद हो सकती है। और जो व्यक्ति इस किसी लड़की को ख़रीदे या ले उसे भी धारा ३ अनुसार इसी दंड का भागी होना होगा।

भारतीय दंड-विधान में विवाहित स्त्री-पुरुषों के भी इस प्रकार के अपराधों के विरुद्ध अनेक अधिका हैं। जो 'हिन्दू-ला' सरकार-द्वारा स्वीकृत व हिन्दु लिए माननीय है, उसके अनुसार विवाह एक संस्क जो यावत् जीवन नहीं टूट सकता। हमारे यहाँ की प्रथा न होने के कारण हिन्दू स्त्री या हिन्दू प प्रकार भी एक-दूसरे से अपना सम्बन्ध-विच्छेद न सकता। ईसाई, मुसलमान आदि होकर हिन्दू त्याग करने पर भी हिन्दू स्त्री इस बन्धन से छुटका पा सकती। कुछ मतभेद होने पर भी हिन्दू-विव चिरस्थायी होना सर्वसम्मत है, अतः विवाहित हिन्दू स्त्री का अन्य किसी के साथ विवाह करना, दंड की धारा ४९४ के अनुसार दंडनीय है और जो धोखा आदि नाजायज़ तरीक़े से ऐसा विवाह करे धारा ४९६ दंडनीय समझती है।

(९) उपर्युक्त प्रकार से विवाह न करने पर भी जो विवाहित के साथ बिना उसके पति की अनुचित सम्बन्ध रक्खे उसके लिए धारा ४ वर्ष की सज़ा का विधान है।

(१०) स्त्री-अपहरण के सम्बन्ध में सबसे अधिक उ प्रसिद्ध धारा ४९८ है। इसके द्वारा उन गु पर्याप्त दंड दिलाया जा सकता है जो विवाहित को भगा कर या बहका कर ले जाते हैं अ उन्हें छुपा या बंद करके रखते हैं। उनमें सम्बन्ध की इच्छा से उपर्युक्त प्रकार के कार्य को करने पर दो वर्ष तक की सज़ा हो स इस धारा में स्त्री की उम्र व यहाँ तक कि इच्छा से भी कोई अन्तर नहीं होता। अपराधी को दंड दिलाने के उद्देश से

भारतीय दंड-विधान की उपर्युक्त धाराओं के अतिरिक्त स्त्रियों व लड़कियों को वापस पाने के लिए ज़ाब्ता की निम्नांकित धाराओं से सहायता ली जा सकती

(११) दंड-प्रणाली की धारा १०० के अनुसार फ़र्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट को यह अधिकार है कि

यह मालूम हो या बताया जाय कि किसी व्यक्ति को चाहे पुरुष हो या स्त्री, कहीं बंद करके रक्खा गया है या अनुचित तौर पर छिपाया गया है तो वह उसे ढूँढ़ कर अपने सम्मुख उपस्थित करने के लिए तलाशी या 'सर्च वारंट' निकाल कर उसे स्वतंत्र कर दे अथवा उसके सम्बन्धियों आदि के सिपुर्द कर दे।

(१२) धारा ५५२ में एक और उपयोगी साधन है। इस धारा के अन्तर्गत डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट आदि अनुचित कार्य के लिए भगाई गई या बंद की गई किसी स्त्री अथवा १६ वर्ष से कम उम्र की लड़की को स्वतन्त्र करने या उसके पति, माता-पिता, या अन्य अभिभावकों के सिपुर्द करने की आज्ञा दे सकता है।

उपर्युक्त दोनों धाराओं को कार्यान्वित करने के लिए अदालत पुलिस आदि की सहायता लेकर आवश्यक हो तो बल प्रयोग भी कर सकती है।

(१३) बहुधा यह देखा जाता है कि हिन्दू पति बहुविवाह, मनोमालिन्य, आदि के कारण अपनी स्त्रियों की अवहेलना करते हैं व उन्हें घर से निकाल कर या घर में भी उनकी आवश्यकताओं की उपेक्षा करते हैं, और परिणाम-स्वरूप अपने विवाह आदि के लिए उन्हें दुर्जनों के चंगुल में फँसना पड़ता है। ऐसी परित्यक्ता स्त्रियों के लिए ज़ाब्ता फ़ौजदारी की ४८८ धारा अत्यंत उपयोगी है। इसके द्वारा पति को स्त्री के भरण-पोषण के लिए १००) मासिक तक देने के लिए बाध्य किया जा सकता है।

दंड-विधान व दंड-प्रणाली के अतिरिक्त गार्जियन एंड वार्ड्स एक्ट की धारा २५ भी इस विषय में महत्त्वपूर्ण है। अपहृत हिन्दू-स्त्रियों के सम्बन्ध में बालिग़ या नाबालिग़ का प्रश्न बहुधा उठता है। ऐसे अवसरों पर यदि म्युनिसिपल दफ़्तर आदि में जन्म-तिथि न मिले या अन्य कोई पक्का सबूत न हो तो बड़ी कठिनता होती है। दुर्भाग्य से बहुधा माता-पिता की उपेक्षा से ठीक ठीक आयु के गवाह देना कठिन हो जाता है। इस विषय में डाक्टरों के प्रमाण-पत्र उपयोगी हो सकते हैं, किन्तु उनका आश्रय लेकर कभी कभी अपराधी भी बच जाते हैं। डाक्टर का प्रमाण-पत्र अनुमान-मात्र है, अतः केवल उसी से सन्तुष्ट होकर हमें अदालत में गये बिना निराश न होना चाहिए। दंड-विधान व दंड-प्रणाली के साधनों का यथोचित उपयोग करने के लिए भी आयु का प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। उपर्युक्त धारा २५ के अनुसार १८ वर्ष तक की आयु तक लड़की या लड़के अपने माता-पिता व अन्य सम्बन्धियों के पास रहने के लिए विवश किये जा सकते हैं अथवा किसी सार्वजनिक संस्था में रक्खे जा सकते हैं।

अपहरण की गई हिन्दू-स्त्रियों की भिन्न भिन्न अवस्थाओं में सहायता करने तथा अपराधियों को दंड दिलवाकर इस लज्जाजनक प्रवृत्ति को रोकने के लिए ऊपर जिन क़ानूनी उपायों का संक्षेप में वर्णन किया गया है वे केवल रुग्ण हो जाने पर ओषधि व उपचार करने के समान हैं, किन्तु बुद्धिमान् व दूरदर्शी लोगों का यह काम कि वे ऐसा प्रयत्न करें कि दुबारा वह रोग न होने पावे, तभी हो सकता है जब हम रोग के मूल कारणों को दूर करें। हिन्दू-स्त्री-अपहरण की समस्या का उचित प्रतीकार तभी हो सकता है जब हम जर्जर हिन्दू-समाज में से उन सब अन्धविश्वासों, मूर्खताओं व अत्याचार-मूलक सामाजिक प्रथाओं को निर्मूल कर दें जिनके कारण ऐसी घटनायें सम्भव होती हैं। पुलिस व अदालत की सहायता पर कायरों के समान निर्भर रहने से हम कभी अपनी रक्षा न कर सकेंगे। संसार में निर्बलों की सहायता सरकार तो क्या, ईश्वर भी नहीं करता।

अज्ञात दिशा की ओर

मिसेज़ बोस एक परम सुन्दरी रमणी हैं। उनसे भी अधिक सौन्दर्य उनकी एकमात्र पुत्री रेखा में उमड़ता आ रहा था। अपने को हताशगञ्ज का ज़मींदार कहकर इन पर प्रभाव डालने के बाद अहीन्द्र ने अपने मित्र निर्मल 'चौधरी' का इनसे परिचय कराया और उसके सम्बन्ध में बतलाया कि ये कोचभूम के प्रिंस हैं। इधर मिसेज़ बोस तथा निर्मल परस्पर एक दूसरे की ओर विशेष रूप से आकर्षित हो गये, किन्तु अहीन्द्र की आसक्ति रेखा पर ही अधिक थी। एक बार ये लोग कलकत्ता छोड़कर देहात में गंगा जी के तट पर एक बँगले में कुछ समय बिताने के लिए गये। वहाँ भ्रमण के समय एकान्त पाकर अहीन्द्र ने रेखा से प्रणय निवेदन किया, किन्तु रेखा ने उसका प्रत्याख्यान कर दिया। बाद को रेखा के जी में आया कि अहीन्द्र यदि इस प्रकार मेरे प्रेम में अधीर हो रहा है तो मैं उसके साथ विवाह करके क्यों न उसके जीवन को सुखी बनाऊँ। परन्तु अहीन्द्र उसके साथ विवाह करने पर सहमत नहीं था, वह उसके साथ गुप्त रूप से ही प्रेम का सम्बन्ध रखना चाहता था। इससे रेखा को बड़ी विरक्ति हुई।

अनुवादक—श्रीयुत ठाकुरदत्त मिश्र

सातवाँ परिच्छेद

बाहर का विश्व

दोपहर भर रेखा अशान्ति का ही अनुभव करती रही। वह कभी एक किताब खोलती और उसके पन्ने उलटने लगती, बाद को उसे मूँद कर रख देती, और दूसरी किताब उठाती। किन्तु उसमें भी उसका जी न लगता, उलट-पलट कर वह उसे भी रख देती। उसका मन किसी प्रकार भी स्थिर न हो पाता। चारों दिशाओं से कर्मचक्र का एक घरघर शब्द, विभिन्न प्रकार का बड़े ज़ोर का कोलाहल हवा के साथ मिल कर बहता हुआ आ रहा था। इधर रेखा को ऐसा लगता था कि चारों ओर मानो प्रकृति के प्राणों का स्पन्दन बन्द हो गया है, पेड़-पौधे भी मानो आज सब जमकर पत्थर हो उठे हैं।

उसके हृदय को मानो कोई ज़ोर से दबा कर पकड़े हुए था। बँगले से मिला हुआ एक छोटा-सा बग़ीचा था। रेखा उठ कर उस बग़ीचे में गई। तीन-चार बार बग़ीचे में घूम-फिरकर वह फाटक के पास आई और वहीं खड़ी होगई। सामने एक रास्ता था। उसके दोनों बग़ल छाया के लिए वृक्ष लगे हुए थे। वे वृक्ष दोनों ही ओर से शाखायें फैला कर सारे रास्ते को ढँके हुए थे। रास्ते के एक किनारे पर फूस की एक झोपड़ी थी। उसके आगे बाँस का कोट था। उस कोट के पास एक छोटा-सा पानी का गड्ढ था। चहारदीवारी से घिरे बग़ीचे का बाहरी प्रदेश ऐसा मनोमुग्धकारी वेश धारण करके उसे पुकार रहा था, कि वह मुग्ध होकर आवेश में आगई और दबे पाँव से चल चल कर वह रास्ते में आई। बाद को वह सीधे रास्ते से चलने लगी। मस्तक के ऊपर वृक्षों की डालियों पर चिड़ियाँ महोत्सव मना रही थीं। उनकी विचित्र रागिणी से इस तरह की पुलक झर झर कर गिर रही थी कि उसके स्पर्श से रेखा का तप्त हृदय शीतल हो उठा। रास्ते से चल कर ज़रा दूर आगे बढ़ने के बाद उसने देखा कि उस रास्ते से एक पतली-सी गली निकल कर एक ओर को चली गई है। वह गली क्या थी, मानो बड़े रास्ते का एक हाथ था और रक्त मांस के सूख जाने के कारण वह यों ही शीर्ण भाव से फैला हुआ था। रेखा ने बड़े रास्ते को छोड़ दिया। वह पूर्ववत् उद्विग्न भाव से उस पगडंडी से ही होकर चली।

पगडंडी के दोनों बग़ल पुराने मकानों के खंडहर थे, बग़ीचे थे, झाड़ियाँ थीं, जंगल थे, पानी के गड्ढे थे और तालाब थे। ये सब बहुत ही बेतरतीब से इधर-उधर बिखरे थे, फिर भी उनका वैचित्र्य देखकर रेखा का हृदय शीतल हो गया। चलते चलते कभी वह ठमक कर खड़ी हो जाती और लुभाये हुए नेत्रों की दृष्टि उठाकर चारों ओर देख लेती। बाद को मन्थर-गति से फिर चलना आरम्भ करती।

इसी प्रकार चलते चलते एक स्थान पर जाकर एकाएक रेखा की दृष्टि और गति रुक-सी गई।

पगडंडी के बग़ल नागफनी के बेड़े से घिरे हुए एक ग्राम के पास एक छोटा सा पोखरा था। उसी पोखरे के पास बैठी हुई एक देहाती स्त्री बर्तन मल रही था। रेखा खड़ी होकर उसे देखने लगी। उस छोटे काम में लगी होने पर भी उस तरुणी के मुख और नेत्रों में ऐसे आनन्द की दीप्ति प्रज्वलित हो रही थी कि देखकर मुग्ध हो जाना पड़ता था। रेखा बड़ी देर तक खड़ी रही तब कहीं उसकी ओर तरुणी की दृष्टि गई, चारों आँखों का मिलन हुआ। माथे पर का घूँघट और भी खींचकर तरुणी पहले की ही तरह बर्तन मलती रही। रेखा के मन में आया कि वह जाकर उससे बातचीत करे। लेकिन वह जाय किस बहाने से उसके पास !......

मन अधीर हो उठा। रेखा पोखरे के पास गई। वह उस तरुणी के बिलकुल समीप जाकर खड़ी होगई। धूप के मारे जलती हुई हवा के कारण पोखरे से एक तरह की बहुत तेज़ कीचड़ की गन्ध आ रही थी, किन्तु उस ओर तरुणी का ध्यान तक न था। रेखा चुपचाप खड़ी रही। तरुणी बर्तन धोने का काम समाप्त कर चुकी। तब वह धुले हुए बर्तन लेकर घर की ओर चली। अब रेखा से न रहा गया। उसने अपने आप ही उसके साथ बातचीत शुरू की। उसने तरुणी से कहा—क्या तुम मुझसे मेल करोगी बहन ? तुमसे बातचीत करने के लिए ही मैं यहाँ आई हूँ।......

तरुणी अवाक् हो गई। चकित भाव से चारों ओर ताक कर उसने मस्तक का घूँघट और भी खींच लिया। बर्तन का बोझा लिये हुए स्थिर होकर खड़ी भर रही। संसार भर की लज्जा उस समय उसे घेरे हुए थी, परन्तु उस लज्जा के बीच उसकी स्वच्छन्द भाव-भंगी कहीं ज़रा भी दबने नहीं पाई।

बर्तनों का बोझ यों ही हाथ में लिये उसे निष्पन्द भाव से खड़ी देखकर रेखा ने हँस कर कहा—इसी तरह खड़ी रहोगी ? मुझे देखकर क्यों लज्जित हो रही हो ? मैं तो पुरुष नहीं हूँ भाई!...चलो, घर चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।

तरुणी ने कुछ कहा नहीं। वह चुपचाप आगे की ओर चल पड़ी। रेखा ने भी उसका अनुसरण किया।

एक ख़ूब लिपे पुते और झकझकाते हुए आँगन में जाकर तरुणी खड़ी हो गई। आँगन के चारों ओर मिट्टी के ऊँचे चबूतरे थे और उन्हीं चबूतरों पर घास-फूस से छाये हुए कमरे बने थे।

आँगन के बीच में ईंट से बना हुआ एक ऊँचा-सा तुलसी का चबूतरा था। चारों ओर ऐसी स्निग्ध शान्ति थी कि रेखा का बाक़ायदा सजा-सजाया हुआ विलास-कुञ्ज भी उसके सामने मात था। इतनी शान्ति तो उसे उस विलास-भवन में दुर्लभ थी। रेखा आँगन में ही खड़ी रही।

चबूतरे के एक किनारे पर बर्तन रख कर तरुणी घर के भीतर घुसी। ज़रा देर बाद ही वह फिर बाहर निकल आई। इस बार वह अकेली ही भीतर से नहीं निकली, साथ में वह एक प्रौढ़ा को भी लिये आई। बाहर आते ही प्रौढ़ा ने एक बार रेखा की ओर देखा और हँसकर वह कहने लगी—आओ बिटिया, आओ ... ।...

रेखा ने घूम कर देखा। वह तरुणी प्रौढ़ा के पीछे खड़ी हुई घूँघट की ओट से उसी की ओर ताक रही थी। उसकी दृष्टि में इतना अधिक कौतूहल था कि उसके पलक तक नहीं हिल रहे थे। कैसी सरल एवं मधुर अभ्यर्थना का भाव देदीप्यमान हो रहा था उसके उन दोनों नेत्रों में !

प्रौढ़ा ने चबूतरे पर एक चटाई बिछा दी। चटाई बिछा कर उसने कहा—आओ बिटिया...

रेखा ने कहा—आइए, इस आँगन में ही न बैठें।

प्रौढ़ा ने कहा—बहुत अच्छा, आँगन में ही सही। चटाई उठाकर वह आँगन में आई और रेखा के पास ही बिछा दी।

अपने जूते खोल कर रेखा ने रख दिये। वह चटाई पर बैठ गई।......

प्रौढ़ा और तरुणी उसे ध्यानपूर्वक देखने लगीं। इन सबके जीवन-यात्रा की यह सहज और सरल धारा देखकर और उसके साथ अपनी जीवन-धारा की कृत्रिमता की तुलना करके रेखा कुण्ठित हो रही थी ! ब्लाउस, बाडीज़, जूता, मोज़ा, पिन-ब्रूच का यह कृत्रिम बन्धन ! यह सब एक साड़ी के घेरे के सामने क्षण भर के लिए लज्जित हो उठे। प्रौढ़ा और तरुणी रेखा का जूता-मोज़ा तथा वेश-भूषा देखकर विस्मय से अवाक् हो उठे थे, यह बात तो उनके मुख-मण्डल का भाव देखकर ही रेखा भली भाँति समझ

गई थी। वह मानो कहीं की एक जन्तु-विशेष थी, जो उन लोगों की सरलता में दख़ल देने के लिए कहीं से आकर कूद पड़ी थी।

बाद को बातचीत शुरू हुई। तरुणी प्रौढ़ा की पुत्रवधू है। पुत्र कलकत्ते में नौकरी करता है। रोज़ खा-पीकर दफ़्तर जाता और साँझ को घर लौटता है। प्रौढ़ा का स्वामी जूट की मिल में काम करता है। वे दोनों पिता-पुत्र मिल कर जो कुछ उपार्जन करते हैं उसी से उनकी छोटी-सी गृहस्थी चलती है। इस निर्धन-परिवार की आवश्यकतायें भी तो परिमित ही हैं। नौकरी के सिवा तालाब से मछलियाँ मिल जाती हैं, बग़ीचे में कुछ तरकारियाँ मिल जाती हैं। उनको किसी भी वस्तु का अभाव नहीं है।

रेखा ने एक लम्बी साँस ली। कितनी नाम-मात्र की आय से कितनी सरलता के साथ इनका जीवन व्यतीत हो रहा है ! कोई आडम्बर नहीं, कोई चिन्ता नहीं, साथ ही किसी प्रकार का दुःख भी नहीं है। इस तरह जीवन व्यतीत करनेवाले कितने लोग हैं !

रेखा ने कहा—आपकी बहू से मुलाक़ात करने आई हूँ। अभी निरी लड़की तो है ! पोखरे में बर्तन मल रही थी। देखा......

प्रौढ़ा ने कहा—बड़ी अच्छी बहू है ! पूरी लक्ष्मी है ! मुझे कुछ करने नहीं देती। कितना कहती हूँ कि तुम्हारा अभी लड़कपन है, तुम इतना क्यों हैरान होती हो, लेकिन वह सुनती ही नहीं। वह स्वयं रसोई बनाती है, चौका-बर्तन करती है, कपड़े धोती है, झाड़ू-बुहारू करती है !... हम लोग ग़रीब आदमी हैं, नौकर-चाकर रखने का सामर्थ्य तो है नहीं ! ग़रीब को तो अपने हाथ-पैर का ही सहारा होता है बेटी। लेकिन हमारी लक्ष्मी बहू इस सब के लिए कुछ ख़याल नहीं करती। वह कभी बाप के यहाँ भी नहीं जाती। सोचती है कि कहीं हमारी सास को कष्ट न हो। बड़े भाग्य से यह बहू मिली है।

प्रौढ़ा ने कहा—तुम दोनों एक अवस्था की हो। बैठ कर मज़े में गपशप करो। मैं तब तक चलती हूँ, एक बार चौपायों को देख आऊँ। एक बार फिर उन्हें चारा देना होगा न !

प्रौढ़ा चली गई। तब रेखा ने तरुणी की ओर दृष्टि फेरी। तरुणी का शरीर उस समय भी संसार भर की लज्जा से अभिभूत था। वह चुपचाप खड़ी थी। रेखा ने उठकर उसका हाथ पकड़ लिया और कहा—बैठो भाई ! मैं तुमसे मुलाक़ात करने आई हूँ।...

तरुणी बैठ गई। उसका हृदय धकधक कर रहा [illegible]

रेखा ने पूछा—तुम्हारा नाम क्या है ?

मुग्ध एवं विस्मयपूर्ण दृष्टि से रेखा की ओर ताक [illegible] उसने कहा—चुन्नी।

रेखा ने कहा—कैसा सुन्दर नाम है ! तुम्हें [illegible] भी ख़ूब है।!

बाद को बहुत-सी बातें हुईं। चुन्नी के पिता [illegible] उस पार हैं। उसके दो भाई और एक बहन हैं। उन सबमें बड़ी है। बाप साग-तरकारी बेचकर अपना [illegible] चलाता है।...उसका पति उसे बहुत ही प्यार [illegible] है। उसके लिए वह तरह तरह की चीज़ें लाया कर[illegible] पिछले साल पूजा के समय उसने उसके लिए ढाक[illegible] साड़ी, कमीज़ और जाकेट ख़रीद दिया था। स्वा[illegible] दफ़्तर जाता है तब चुन्नी खिड़की के रास्ते निकल[illegible] तालाब के किनारे बैठी बैठी बर्तन मला करती है औ[illegible] तक उसकी दृष्टि पड़ती है तब तक वह स्वामी को ही ताकती रहती है। यह बात कहते कहते चुन्नी मानो [illegible] से गड़ी जा रही थी।...तो भी इतने सुख की बात [illegible] के इस गुह्यातिगुह्य आनन्द की वार्ता, स्वयं अपनी [illegible] से आई हुई इस संगिनी से कहना वह नहीं भूल[illegible] देर में ही रेखा को हृदय के अत्यन्त समीप पाकर [illegible] इस तरह घुल घुल कर उससे बातें करने लगी, मा[illegible] कितने दिन की उसकी सहचरी है। रेखा मानो [illegible] की ही उसकी गुड़िया खेलने की प्रधान सहचरी है।

चुन्नी के इस साधारण जीवन के छोटे छोटे सु[illegible] वृत्तान्त सुनते सुनते रेखा का हृदय आनन्द से औ[illegible] हो उठा। परन्तु एक गुप्त वेदना उसके अन्तःकर[illegible] किसी कोने में मानो काँटे की तरह चुभ कर उसे [illegible] कर रही थी। रेखा के मन में यही बात आती कि [illegible] में विलास-ऐश्वर्य से परिपूर्ण अपना यह कृत्रिम [illegible] त्याग कर इसी तरह का सरल एवं स्वाभाविक [illegible] व्यतीत कर पाती...इस साधारण से सुख को ही [illegible] एक मात्र आधार समझ कर हृदय में धारण कर पा[illegible] तो आज की यह अत्यधिक अशान्ति, यह असह्य

हृदय में लेकर उसे इस तरह छटपटा कर मरना न पड़ता। रेखा ने एक लम्बी साँस ली।

रेखा की ओर ताक कर चुन्नी ने कहा—अपने पति का हाल तो तुमने नहीं बतलाया भाई!......

"पति!" रेखा का हृदय धक से हो गया। हृदय की आह को दबा कर उसने कहा—मेरा तो विवाह हुआ नहीं है।...

"विवाह नहीं हुआ है!" बहुत ही चकित भाव से चुन्नी ने रेखा की ओर देखा। रेखा उसके मन का भाव ताड़ गई। उसने कहा—मैं पढ़ती-लिखती हूँ।

उसकी बात समाप्त भी नहीं हुई कि चुन्नी ने कहा—तुम लोगों के यहाँ इतनी अवस्था में भी विवाह नहीं होता? मेरा जब विवाह हुआ था तब मैं सात वर्ष की... कहते कहते चुन्नी एकाएक लज्जित होकर रुक गई। विवाह के दिन से लेकर आज तक उसके जीवन के जितने भी दिन व्यतीत हुए हैं उन सबके एक एक क्षण भी स्मृति ऐसे विचित्र रंग में मन में उदित हो आई कि उसकी दीप्ति से और सब अदृश्य हो गया।

रेखा ने कहा—हम लोग ब्राह्म नहीं हैं। शायद तुम अपने मन में यही समझ रही होगी।...यह नहीं है...परन्तु पढ़ना-लिखना होता है तो विवाह विलम्ब से किया जाता है।

बाद को इधर उधर की और भी बहुत-सी बातें हुईं। वातचीत करते करते दिन कहाँ का कहाँ चला गया। धूप बहुत ही कम हो गई।

समय अधिक व्यतीत होते देखकर रेखा ने कहा—अब तो आज्ञा दो भाई, आज चलती हूँ। कल फिर आऊँगी। अब रोज़ रोज़ आया करूँगी। भमक्ष तो नहीं होगी?

मस्तक हिलाकर तरुणी ने सूचित किया—नहीं। प्रौढ़ा ने आकर कहा—नहीं भाई, यह तो ठीक नहीं है। तुम कुछ खाये बिना ही चली जाओगी? ऐसा तो मैं कभी नहीं होने दूँगी। परन्तु तुम्हें खाने को ही क्या दूँ? मुझ ग़रीब के यहाँ कौन-सी ऐसी है, चीज़ जिसे तुम खा सकोगी?

रेखा ने हँसकर कहा—आप अपनी चुन्नी को क्या खाने को देती हैं?

प्रौढ़ा ने कहा—यह मूढ़ी (लाई) खाती है। कभी खीरा के साथ, कभी गरी के साथ।

रेखा ने कहा—मुझे भी यही दीजिए। यह तो बड़ी अच्छी चीज़ है।

प्रौढ़ा प्रसन्न होकर लाई लेने के लिए भीतर गई। चुन्नी अवाक् हो गई। इतने बड़े आदमी की लड़की है, पुरुषों की तरह जूता मोज़ा पहनती है......यह लाई खायगी।

प्रौढ़ा ने लाई लाकर दी। रेखा ने ख़ूब जी भरकर खाया। खा चुकने के बाद उसने कहा इतना उत्तम आहार मुझे और कभी नहीं मिला। आपके यहाँ मैं कल फिर आऊँगी। कल मेरा लाई खाने का निमन्त्रण रहा। बाद को प्रौढ़ा और चुन्नी दोनों से विदा लेकर रेखा घर की ओर लौटी।

× × ×

वहाँ बनावटी ठाट-बाट था। तरह तरह के निरर्थक बन्धनों का अन्त नहीं था। माँ ने आकर कहा—चाय पीओगी?

और ज़रा-सा सैंडविच दे जाने को न कह दूँ?

रेखा ने गम्भीर होकर कहा—नहीं।

मा अवाक् हो गई। लड़की को सैंडविच से अरुचि हो गई? सैंडविच मिल जाने पर तो रेखा और किसी चीज़ की इच्छा ही नहीं करती! मा ने कहा—तो क्या तू इसी तरह उपवास करेगी?

रेखा ने कहा—उपवास तो कर नहीं रही हूँ। एक जगह खा आई हूँ।

मा अवाक् हो गई। उसने कहा—तू भला खाने कहाँ गई थी और खाया ही क्या? ज़रा बतलाओ तो!

रेखा ने कहा—मैं घूमने के लिए निकली थी। एकाएक एक ग़रीब के घर पहुँच गई। उसके यहाँ माँग कर लाई खा आई हूँ, खीरा और गरी के साथ......

"लाई!" मा मानो आकाश पर से गिर पड़ी।

विस्मय से उसकी दोनों आँखें विस्फारित हो उठीं।

रेखा ने कहा—हाँ लाई! और यह लाई खाकर मैं इस प्रकार तृप्त हुई हूँ, इसे खाकर मैं इस प्रकार सुखी हुई हूँ कि तुम्हारा प्लेट में सजाया हुआ ग्रेवी कटलेट या सैंडविच पुडिंग खाकर कभी इस प्रकार सुख का अनुभव नहीं कर सकी हूँ।

इस समय रेखा बहुत ही आवेश में आ गई थी। यह

प्रसङ्ग उपस्थित हो जाने पर अपने लोगों की कृत्रिम जीवन-धारा की इन कृत्रिम प्रथाओं के सम्बन्ध में बहुत-सी कटु बातें कहने के लिए उसका मन भी अधीर हो उठा। किन्तु बड़े प्रयत्न से उसने अपने मन को रोक लिया। यहाँ पर मन की सारी बातें प्रकट करने का काम ही क्या था? कोई फल या लाभ तो होने को था नहीं।

मा ने कहा—शायद तुम दोपहर को ही निकल गई थीं। मैं समझती थी कि तुम सो रही हो। तुम्हारा शरीर ख़राब है।

रेखा ने कहा—शरीर नहीं ख़राब है मा, मन ख़राब है। मुझे कुछ अच्छा नहीं लग रहा है।

मा उस समय भी वैसे ही विस्मित भाव से रेखा की ओर ताक रही थी।

रेखा ने कहा—मेरे मन में कौन कौन-सी बातें आ रही हैं, जानती हो?

मा ने कहा—कौन-सी बातें?

रेखा ने कहा—यह सब लेस के पर्दों के बन्धन तोड़ कर फेंक दूँ। यह मेज़-कुर्सी हटा दूँ। यह मोटर, यह वेश-भूषा, सब छोड़-छाड़ कर दूर दिगन्त के पार किसी मैदान में भाग जाऊँ।...वहाँ साफ़-सुथरी पोशाक और बनी-ठनी बातों के फेर में मन पर किसी प्रकार का आघात न सहना पड़ेगा।.. मन की सच्ची बात को छिपा कर किसी की चुपड़ी-चुपड़ी बातें भी न सुननी पड़ेंगी।

मा ने कहा—तू कहीं पागल तो नहीं हो गई है? यह सब क्या बक रही है?

रेखा ने कहा—क्या बक रही हूँ, यह मैं स्वयं भी नहीं समझ पाती हूँ। मेरे मन में बड़े ज़ोर का तूफ़ान मचा हुआ है। इस समय केवल यही इच्छा हो रही है कि इस तूफ़ान में सब कुछ टूट कर चूर चूर हो जाय।

मा का आश्चर्य भंग हो गया। उसके स्थान पर भय ने अड्डा जमाया। वह सोचने लगी कि रेखा यह सब क्या कह रही है। इन सब बातों का मतलब? रेखा के पास आकर मा ने धीरे स्वर से कहा—समझ गई हूँ बेटी। मुझसे जो कहती रही हो, वही न? मिस्टर सिनहा के प्रेम में पड़ गई हो तुम?

रेखा आग की तरह जल उठी। तीव्र प्रतिवाद के स्वर में उसने कहा—नहीं। झूठी बात है। मैं किसी के प्रेम में नहीं पड़ी हूँ। किसी दिन पड़ना भी नहीं चाहती हूँ। ये जितने पुरुष हैं, सब पाखंडी हैं, स्वार्थी हैं। अपने सुख को ही ये सब कामना की एक-मात्र वस्तु समझते हैं। ये लोग समझते हैं कि स्त्रियाँ पुरुषों के मनोविनोद की सामग्री हैं। पुरुष की इच्छा से ही वे चलेंगी-फिरेंगी, पुरुष की इच्छा से ही सारे काम-काज करेंगी। ये सब बातें कहते कहते चुन्नी की वह मधुर मूर्ति उसके सामने उदित हो आई। वह सोचने लगी कि उसके मुख-मण्डल पर कैसी तृप्ति, कैसे स्वाभाविक आनन्द की रेखा वर्तमान थी। ढाके की एक साड़ी और एक क़मीज़ जाकेट मिल जाने पर ही वह किस प्रकार आनन्दित हो उठी थी! आनन्दित क्यों न हो उठती? उसके जीवन के आगे पीछे कितना प्रेम चन्द्रमा की किरणों के समान बहुत मधुर एवं उज्ज्वल प्रकाश फैलाये हुए था।

आठवाँ परिच्छेद

सावन का मेघ

रात्रि के अन्धकार ने जब समस्त भूमण्डल पर अपनी काले रंग की चादर फैला दी—तब रेखा खिड़की के पास जाकर बैठी। चारों दिशायें उसे ख़ूब जकड़ कर पकड़े हुए थीं, इससे उसका दम घुटने लगा था। उसका मन दुश्चिन्ता के भार से कातर एवं व्यथित हो रहा था। उसके नेत्रों से जल की धारा भी प्रबल वेग से बह रही थी।

इतने दिनों तक तरुण जीवन की कितनी ही आकांक्षायें उसके हृदय में जाग्रत हो रही थीं। कितने प्रकार के सुखों का स्वप्न वह देखा करती थी। परन्तु आज एकाएक जो यह दुश्चिन्ता, यह दुर्भावना आकर उसके यौवन-काल की सारी आशाओं का अन्त करने पर उद्यत हो गई है यह किसका अभिशाप है, किसके दुष्कर्म का फल है। इस अवस्था में इस प्रकार की दुश्चिन्ता की तो कोई कल्पना तक नहीं कर सकता! मन का भार हलका करने की उसकी कितनी इच्छा थी, लेकिन वह हलका होता नहीं था। किसका भय, किस प्रकार का संशय आज इस तरह उसके जीवन को चूर्ण-विचूर्ण किये दे रहा है! दो दिन पहले जिस स्वाभाविक और बहुत ही स्वच्छन्दतापूर्ण आनन्द की धारा में उसका जीवन तैरता जा रहा था वह स्वच्छ धारा आज एकाएक सूख गई और उसका जीवन लुढ़कता हुआ

प्रचण्ड मरुभूमि में जा पड़ा है ! वह आनन्द की चमक और हँसी की लहर आज कहाँ गई ? तरुण वय में जो आलोक-शिखा हृदय को इस प्रकार उज्ज्वल कर रखती है वह भी तो बुझ चुकी है। उस दिन जब चन्द्रमा की अमृतमय किरणों की सुधाधारा से सारी पृथिवी ओतप्रोत थी, अदम्य सुख से हृदय उच्छ्वसित हो उठा था, वही समय था जब कि अहीन्द्र ने अधीर भाव से रेखा से अपनी प्रणय-याचना की थी। कैसे व्याकुलतामय स्वर में उसने रेखा के कान के पास मुँह ले जाकर कहा था कि मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, तुम्हें चाहता हूँ। उसके उस प्रणय-निवेदन ने सुख-स्वप्न की मधुर रागिणी की तरह पर-हृदय को मादकता से परिपूर्ण कर दिया था ! उस समय रेखा को ऐसा लगा था, मानो मैं उपन्यास की कोई नायिका हूँ, यौवन की महिमा के गौरव से राजकुमारी के समान ही ऐश्वर्यशालिनी हूँ और अहीन्द्र मेरा राजकुमार नायक है। कल्पना के विभिन्न प्रकार के रंगों ने इस जीवन को ऐसे अनुपम रंग से रँग दिया था, किन्तु उसी में तो उसकी दूकानदारी की बात थी। दायित्व नहीं, बन्धन नहीं, केवल एक व्यवसाय, एक दूकानदारी का आयोजन था। इस आयोजन ने ही काले रंग की मसी के प्रलेप के समान ही उस रंग को काला कर दिया। इस कठोर बात के आघात से वह सुख-स्वप्न की रागिणी विच्छिन्न होकर न जाने कहाँ अदृश्य हो गई ? यह बात उसने क्यों कही ? उसने कितनी ही पुस्तकें पढ़ी हैं ; किसी भी पुस्तक में तो ऐसा नायक नहीं मिला, जिसने इस तरह की कठोर बात कह कर नायिका के हृदय पर पत्थर की-सी चोट पहुँचाई हो।... सभी पुस्तकों में तो यह प्रणय-निवेदन विवाह के मङ्गल-शङ्ख से ध्वनित हुआ है, विचित्र कुसुम की प्रगाढ़ सुगन्धि से चारों दिशायें व्याप्त हो उठी थीं...इस विवाह में आपत्ति क्या है ?

रेखा मन ही मन सोचने लगी कि मैं पढ़ना-लिखना जानती हूँ, गाना-बजाना जानती हूँ, किसी भी युवक के जीवन को सुखी बनाने में, किसी भी तरुण जीवन की लालसाओं को पूर्ण करने में मैं सर्वथा समर्थ हूँ। मेरा सुमधुर संग पाकर कोई भी सुन्दर युवा धन्य हो सकता है। मेरी बातचीत, मेरी कण्ठ-लहरी...! अहीन्द्र भी तो उसकी भूरि भूरि प्रशंसा कर चुका है ! तो फिर...!

बार बार सोच कर भी रेखा यह निश्चय न कर सकी कि विवाह करने में अहीन्द्र को आपत्ति क्यों है ? तो क्या वह इसलिए पीछा खींच रहा है कि आगे चल कर उसे मेरे भी व्यय का भार वहन करना पड़ेगा ? भार वहन करने का तो अर्थ है रुपये-पैसे खर्च करना, वस्त्र-आभूषण का प्रबन्ध करना तथा अन्यान्य प्रकार की विलास की सामग्रियाँ एकत्र करना। परन्तु इन सब वस्तुओं की तो रेखा को कोई कामना है नहीं ! दायित्व नहीं, केवल प्रेम...! यह तो मिट्टी के बिना ही पृथ्वी से कोई संसर्ग न रख कर अन्तरिक्ष में प्रासाद तैयार करने के समान ही असम्भव जान पड़ता है ! आधार के बिना तो कोई वस्तु नहीं खड़ी की जा सकती ! वृक्ष और लतायें भूमि पर उगती हैं और भूमि में जड़ जमाती हैं, तभी वे बड़ी हो पाती हैं, और फल-फूल कर अपने को सुसज्जित करने में समर्थ हो पाती हैं। उसी मिट्टी, उसी भूमि का संसर्ग यदि छूट जाय तो इन वृक्षों और लताओं की दुर्दशा की सीमा न रहे। प्रेम यदि दायित्व को ही खूब ज़ोर से न पकड़े रहा तो वह प्रेम ही कैसा ? जब लेना हो तो देने के लिए भी तो तैयार रहना चाहिए !... तो ?

इस बात ने रेखा के आजन्म के संस्कार के मूल पर बड़े ज़ोर से आघात किया था ; इसी से तो उस दिन बाण की चोट खाये हुए मृग के समान अहीन्द्र के पास से हट कर वह भाग गई थी।...विवाह नहीं, विवाह का बन्धन नहीं, दोनों ही आदमी मुक्त रहेंगे, स्वाधीन रहेंगे, केवल प्रेम का ही खेल खेलेंगे...यह तो बहुत ही तीव्र, बहुत ही कठिन परिहास है।

इस बात का मतलब ? उसके माथे का रक्त ज़ोर से प्रवाहित हो उठा। नारी क्या केवल पुरुष के भोग-विलास की ही सामग्री है ? क्या वह पुरुष के हाथ का खिलौना ही भर है, कि जब उसकी इच्छा होगी, उसे लेकर खेलेगा, बाद को तबीयत ऊबते ही उसे फेंक कर चला जायगा। इतना बड़ा अपमान ! नारी-जाति के लिए इससे बढ़ कर लज्जा की बात और क्या हो सकती है ? वह सुख-दुख की संगिनी नहीं है, मित्र नहीं है...वह केवल मोह जाग्रत करने का, भोगस्पृहा को उत्तेजित करने का साधन भर है। काम-काज के भार से जिस समय क्लान्त हो उस समय नारी अपना हृदय चीर कर उसमें से भरी हुई यौवन-सुरा

का उसे पान करावे, जिससे उसकी सारी क्लान्ति दूर हो जाय। इसका अर्थ तो यह हुआ कि पुरुष के ही लिए उसका जीना है, हँसना है, रोना है...सभी कुछ है। और जो इस रस को सदा सुरक्षित रखती आवे उसकी ओर तुम ज़रा-सा दृष्टि फेर कर देखो भी न ! उसके लिए तुम्हारा जीना नहीं है, हँसना-रोना भी नहीं है !... वाह ! यह कैसा अच्छा विधान है !

मा ने आकर पुकारा—रेखा !...

रेखा ने कोई उत्तर नहीं दिया। अपने स्वप्न में वह इस तरह मग्न थी कि मा की पुकार उसके कान तक नहीं पहुँची।

रेखा के कन्धे पर हाथ रख कर मा ने कहा—चुपचाप अकेले बैठी बैठी क्या कर रही हो ? आओ न, ज़रा सा दो एक गाने तो गाओ...मुझे गाना सुनने की बड़ी इच्छा हो रही है।

मा के स्पर्श से रेखा चौंक-सी पड़ी। बाद को उसने मा की ओर देखा। मा को गाना सुनने की इच्छा हो रही है, ठीक बात है। इससे तुम्हें गाना ही पड़ेगा। तुम केवल दूसरों की तृप्ति के लिए ही हाथ-पैर हिलाओ, चलो-फिरो, काम-काज करो ! अहीन्द्र आकर अपना शौक़ पूरा करने के लिए दो दण्ड लोट पड़ेगा, इधर-उधर की बातें बनावेगा, उसके लिए भी अपने को तैयार रक्खो। इस समय मा को गाना सुनने की इच्छा हुई है, इससे गाने लग पड़ो। यह तो बड़े मज़े का जीवन है !

रेखा का समस्त अन्तःकरण गरज उठा। विद्रोह के सुर से हृदय भर उठा। नहीं, नहीं, तुम्हारी क्षणिक तृप्ति के लिए अपने आपको भूलकर वह अब तुम लोगों का मन न बहलाती फिरेगी ! रेखा ने कहा—इस समय गाने को जी नहीं चाहता है मा।...मुझे तुम ज़रा देर तक अकेले में ही रहने दो।

मा चुपचाप खड़ी रही। रेखा ने मा की ओर देखा। मा ने कहा—क्या कर रही हो अकेली ?

रेखा ने कहा—जो भी करती होऊँ, अकेले में ही मुझे अच्छा लगता है......

मा चली गई। मा को रेखा ध्यानपूर्वक देखने लगी। मा का इस तरह का ठाट, उसका इस तरह का शृङ्गार रेखा की दृष्टि में आज बहुत ही गर्हित जान पड़ने लगा...

मा विधवा है,—तो भी वे इस तरह का ठाट क्यों क हैं ? यह तो उसके स्वर्गीय पिता की स्मृति के प्रति अवज्ञा है ! आज यह पहला दिन था जब मा का तरह का ठाट, इस तरह का बनाव-शृंगार रेखा को ही बुरा, बहुत ही बेतुका मालूम पड़ा। क्यों इस त सजावट वे करती हैं ?

एकाएक उसी क्षण एक निर्मम संशय रेखा के स्थल में छुरी के समान धँस गया ! उसने क्या इ गोद में जन्म ग्रहण किया है ! यह विलास-आड जिससे वह दूर भागना चाहती है, उसके प्रति मा की दुधमुँहे बच्चे की तरह की अन्ध ममता है !...

रेखा का शरीर थर्रा उठा ! कौन जानता है यदि छुटपन में ही माता-पिता को खो बैठी हो, और उसे अनाथिनी के रूप में पड़ी पाकर उठा लाये हों तरह की भी तो बहुत-सी कहानियाँ वह पढ़ चुकी है। यदि किसी दुर्भागिनी के गर्भ में ही उसका जन्म हो...यदि इस मा ने ही......

एक हीन संशय से उसका हृदय अत्यन्त ही लित हो उठा। पुस्तकों में पढ़ी हुई, बायस्कोप में हुई, सैकड़ों ही नहीं, बल्कि हज़ारों कहानियाँ आ सजीव मूर्ति धारण करके उसकी दृष्टि के समक्ष आ उठीं। यदि ऐसा हो ...? तो क्या इसी लिए विवाह करने पर सहमत नहीं है...? इसी लिए क्या उसकी मा के पास रोज़ रोज़ आकर इस तरह भीड़ रहते हैं ? तो क्या इसी लिए साहस करके...... चित्त बहुत ही दुःखी हुआ। मारे अवसाद के, मारे के वह धरती में गड़ी-सी जा रही थी। ऐसी उपाय...? किन्तु उसे यही बात कौन बतला देगा कौन है, कहाँ से आई है ? आगे चलकर उसकी दशा होगी ? रेखा के मन में इसी प्रकार तरह शङ्कायें उदित हो रही थीं। एकाएक उसे ऐसा पड़ने लगा कि इस सुविशाल भूमण्डल में नितान्त ही असहाय है। दुनिया में तमाम आदमी भरे हैं, परन्तु उससे क्या ? उसका तो साथी नहीं है ! उसकी दृष्टि में तो पृथ्वी ही उसका अपना कोई नहीं है, जो उससे वास्तविक सके, उसके प्रति सच्ची सहानुभूति प्रकट कर सके।

नेत्रों से सावन की धारा के समान टप टप आँसू गिरने लगे।

एकाएक एक शब्द ने उसे सचेत कर दिया। वह उठकर खिड़की के पास खड़ी हो गई। उसने देखा कि एक मोटर आकर खड़ा हुआ है; अहीन्द्र और निर्मल लौट कर आये हैं और उसकी मा बड़े आदर के साथ उनकी अभ्यर्थना करने के लिए दौड़ी जा रही है! अहीन्द्र......उसका हृदय काँप उठा। पता नहीं कि वह आकर फिर कौन कौन-सी बातें कहेगा? रेखा ने निश्चय कर लिया कि वह कुछ भी कहे, आज उससे यह प्रश्न अवश्य ही करेगी कि मेरे साथ विवाह करने में उसे आपत्ति क्यों है। मैं कौन हूँ, जो अहीन्द्र को इस तरह मेरा अपमान करने का साहस हो रहा है।

उन सबकी गपशप और हँसी-ठट्ठा में योग न देकर रेखा एक कोने में ही पड़ी रही। उस गपशप और हँसी ठट्ठा के बीच में उसे बार बार यह जान पड़ता कि इस अर्थहीन बात के साथ उसके हृदय का योग कहीं भी नहीं है। इतनी बड़ी पृथ्वी में वह अकेली है, बिलकुल अकेली है, उसको सहारा देनेवाला, उसका साथी संगी कोई नहीं है।...... केवल उस ग़रीब के कुटीर में उस छोटी बहू के संग ने ही उसके शून्य जीवन की एक दिशा को कैसे प्रकाश के उच्छ्वास, कैसे गन्ध और वर्ण से परिपूर्ण कर दिया था! भाग्य की ही बात थी जो उस दिन ज़रा देर के लिए उसका संग रेखा पा गई थी, नहीं तो इतनी बड़ी शून्यता लेकर उसके लिए जीवित रहना तो बहुत ही कष्टकर हो जाता, एक बहुत बड़ा जंजाल हो जाता!...

तो भी अधीर प्रतीक्षा के साथ वह अवसर खोजने लगी। अहीन्द्र से आज वह एक बात पूछेगी ही...... उसके अपने चारों ओर जो जटिल समस्या इस तरह तिमिर वाष्प से घनीभूत होकर बढ़ उठी है, उस समस्या की मीमांसा तो उसे करनी ही पड़ेगी! छाती मज़बूत करके वह पूछेगी...उसकी मीमांसा जितनी भी कठिन हो....उसके लिए वह तैयार होगी ही, भला-बुरा सहने के लिए वह छाती ठोंककर खड़ी होगी। सत्य की अपेक्षा तो यह संशय उसके हृदय को और भी अधिक व्यथित करता है। इन लोगों के सामने विचलित होकर अपना अपमान वह किसी तरह भी न होने देगी।

रेखा ने अलग से आहार कर लिया। बाद को भोजन आदि से निवृत्त होने पर वह बग़ीचे के एक कोने में चली गई। वहाँ एक बेंच पड़ा था। वह उसी बेंच पर बैठकर अलस दृष्टि से वृक्षों और लताओं की हरियाली देखने लगी। वह इस तरह निस्तब्ध भाव से बैठी थी, मानो उसके बिलकुल चेतना ही नहीं है।

एकाएक अहीन्द्र के कण्ठ-स्वर से उसकी निस्तब्धता भंग हो गई। अहीन्द्र ने पुकारा—रेखा...

शून्य अलस मन एक ज़रा-सी हिल्लोल से चकित हो उठा। रेखा ने केवल गर्दन घुमाकर अहीन्द्र की ओर देखा।

अहीन्द्र ने कहा—तुम बहुत उदास मालूम पड़ रही हो रेखा!

रेखा ने कहा—हाँ।

अहीन्द्र ने कहा—कुछ पीड़ा तो नहीं कर रहा है?

रेखा ने कहा—नहीं।

उत्तर बहुत छोटा था। किन्तु उसके साथ ही तूफ़ान के समान एक बहुत ही लम्बी साँस ठेलकर निकल आई।

अहीन्द्र ने रेखा की ओर देखा। एक प्रकार की वेदना से उसका हृदय भी धक से हो उठा।...बेंच के हत्थे पर रेखा का सुन्दर हाथ...! अहीन्द्र ने वह हाथ अपने हाथ में ले लिया और स्नेहपूर्वक उसे पकड़ा और दबा कर उसने कहा मेरी बात से तुम्हें कष्ट मिला है रेखा...?

अहीन्द्र की ओर एकबारगी दोनों ही नेत्रों की दृष्टि डालकर रेखा मुहूर्त भर स्थिर होकर बैठी रही। बाद को उसने कहा—आपसे एक बात पूछूँगी।...ठीक ठीक उत्तर दीजिएगा न?

अहीन्द्र ने कहा—दूँगा।

रेखा ने कहा—आपने जो मुझे मित्र के रूप में स्वीकार किया है यह क्या मुँह की कोरी बात है, केवल...? या सचमुच ही आप मेरे मित्र...?

अहीन्द्र ने कहा—यह सन्देह क्यों कर रही हो रेखा? मैं तुम्हारा मित्र ही हूँ!

रेखा ने कहा—यदि ऐसी बात है तो आप मुझे सच सच जवाब दीजिएगा। समझ रखिए कि आपके इस जवाब के ही ऊपर मेरा भविष्य निर्भर है!

अहीन्द्र ने कहा—कहो...

रेखा ने कहा—यदि वह सत्य बहुत ही कठोर हो, निर्मम हो, कुत्सित भी हो तो भी उसे मिथ्या की आड़ में छिपाने की कोशिश तो न कीजिएगा?

अहीन्द्र ने कहा—नहीं, मैं सच्ची ही बात कहूँगा।

रेखा ने कहा—ये भला, ये मिस्टर बोस कौन थे?—जिन्हें मैं अपना पिता समझती हूँ? क्या उन्होंने मेरी मा के साथ सचमुच ही विवाह किया था...या यों ही...?

अहीन्द्र ज़रा-सा कुण्ठित हो गया। उसने मुँह नीचा कर लिया।

रेखा ने कहा—नहीं, बतलाइए, इसमें कुण्ठित होने की कोई बात नहीं है। आप कह चुके हैं कि मैं सचसच बतलाऊँगा।

अहीन्द्र ने पूछा—यह बात जानने की क्या आवश्यकता है रेखा?

रेखा ने कहा—आवश्यकता है।

अहीन्द्र ने कहा—तो सच्ची ही बात सुनोगी......

अहीन्द्र ने एक लम्बी साँस ली। आह भर कर उसने रेखा की ओर देखा। रेखा के दोनों ही नेत्रपल्लव आँसुओं से भीगे हुए थे। विषाद के मारे चेहरा उतर गया था। वह दीन भाव से बैठी हुई थी।...अहीन्द्र ने कहा—मिस्टर बोस एक नामी बैरिस्टर थे।...

रेखा ने अधीर उच्छ्वास से कहा—वह परिचय मैं नहीं चाहती हूँ। क़ानूनी सलाह के लिए मैं लालायित नहीं हूँ।

रेखा का उस समय का कण्ठस्वर सुनकर अहीन्द्र चौंक उठा। वह फिर कहने लगा—तुम्हारी मा के साथ... उनका विवाह...नहीं हुआ था...।

रेखा का सारा शरीर थर थर काँप उठा। अहीन्द्र के कण्ठ स्वर ने मानो उसे वज्रपात की गर्जना के समान चौंका दिया। मुहूर्त भर के लिए मानो वह अपनी चेतना खो बैठी। आँखों के सामने का उजाला प्रकृति की श्यामवर्ण की शोभा, सभी कुछ निमेषमात्र में स्याही के गाढ़े प्रलेप के समान मसीमय हो उठा। ज़ोर करके उसने अपने इस भाव का संवरण किया। तब वह फिर बोली...तो...तो...? रेखा की आँखों के कोरों में आँसू डबडबा आये।

अहीन्द्र ने कहा—तुम्हारी मा थीं उनके एक पड़ोसी की विधवा पुत्री...बोस के साथ उनका प्रगाढ़-प्रेम हो गया।...बोस ने उन्हें लाकर अपनी गृहलक्ष्मी के आसन पर बैठाया!...बोस उस समय विलायत-लौटे थे!

रेखा चुप बैठी रही। उसमें जितनी भर चेतना थी उस सबको निमेषमात्र में हरण करके मानो किसी ने उसे एक गाढ़ पत्थर की मूर्ति के रूप में परिवर्तित कर दिया था।...उसकी खोपड़ी इस तरह भन्ना रही थी, दिमाग़ में इस तरह का चक्कर आ रहा था! कभी कभी तो जान पड़ता, मानो घूमते घूमते चक्कर का वेग न सह सकने के कारण फट कर इसी दम चूर चूर हो जायगा!...

कई क्षण तक चुप रहने के बाद रेखा ने कहा—मेरी मा जब बोस के साथ चली आई हैं तब मेरा जन्म हुआ है...या मैं पहले ही पैदा हो चुकी थी।

"बाद को...तुम बोस की ही पुत्री हो...!"

"हूँ!" रेखा और कुछ नहीं बोली।

अहीन्द्र ने कहा—इस विषय को समाज चाहे कितनी ही गर्हित दृष्टि से क्यों न देखे, किन्तु व्यक्तिगत रूप से मैं तो इसे वैसा देखता नहीं हूँ...

"यह तो आपके हृदय की असीम उदारता है।"

अहीन्द्र ने रेखा की ओर देखा। बाद को उसने कहा—तुम्हारी मा तथा मिस्टर बोस ने परस्पर एक-दूसरे के साथ विवाह अवश्य नहीं किया था, किन्तु मिस्टर बोस जब तक जीवित रहे तब तक वे तुम्हारी मा को ऐसे प्रगाढ़ प्रेम के बन्धन से आबद्ध किये हुए थे कि उस प्रेम का कण-मात्र प्राप्त कर सकने पर कितनी ही विवाहिता स्त्रियाँ अपने आपको धन्य मान सकती हैं।...तुम लोगों की स्वच्छन्दता के लिए हर तरह की निन्दा से तुम्हें पृथक् रखने के लिए बोस ने अपने पुराने बन्धु-बान्धवों, आत्मीय-स्वजनों तथा समाज आदि का परित्याग कर दिया था। और अपने इस त्याग के लिए एक दिन भी उन्होंने पश्चात्ताप नहीं किया था।

रेखा ने कहा—यह उनकी असीम कृपा थी मिस्टर सिंह! अपनी सौन्दर्य-पिपासा को अबाध रूप से निवृत्त करने के लिए अपने चारों ओर इस निरापद दुर्ग का निर्माण करके वे बैठे थे, यह भी उनकी अत्यधिक उदारता का द्योतक है!...परन्तु मेरे जीवन को वे कैसी काजल

की कोठरी में डाल गये हैं !...हानि क्या है? आख़िर मैं स्त्री ही हूँ न?

इस बात से अहीन्द्र ज़रा-सा सहम गया। उसने कहा—क्यों आक्षेप कर रही हो रेखा?...

"क्यों कर रही हूँ?...कातर एवं निराशामयी दृष्टि से रेखा ने अहीन्द्र की ओर देखा। वह कहने लगी—आप क्या समझ सकेंगे मेरे हृदय की वेदना को!...फिर,... आप बतला सकते हैं...आज मेरा स्थान कहाँ है? परिचय ही क्या है?

अहीन्द्र ने कहा—मनुष्य का परिचय मनुष्य स्वयं है। जन्म का इतिहास या पिता-पितामह की नामावली ही तो मनुष्य का वास्तविक परिचय नहीं है रेखा!

रेखा ने कहा—नहीं है? अच्छा, तो आप तो मुझसे प्रेम करते हैं। उस दिन कम-से कम यही बात आप मुझसे कह रहे थे और आप मुझे इस पर विश्वास करने को भी कह रहे थे।... सच कहती हूँ न?

अहीन्द्र ने कहा—इस बात का भी तुम्हें विश्वास दिलाना होगा, रेखा?...मैं तुमसे प्रेम करता हूँ, सचमुच प्रेम करता हूँ...इस समय भी। तुम विश्वास करो।...

रेखा ने अहीन्द्र की ओर देखा। वह कहने लगी—प्रेम करते हैं!......क्या आप--मेरे साथ विवाह कर सकते हैं?

अहीन्द्र ने कहा—विवाह ही क्या प्रेम का एकमात्र निदर्शन है रेखा?...हमारा और तुम्हारा यह प्रेम ऐसा सबल, ऐसा दृढ़ नहीं है कि वह संसार के समस्त बन्धनों को तुच्छ करके अपने को सार्थक, चरितार्थ कर सके!...

रेखा ने कहा—आप पुरुष हैं, इसी से यह बात कहने में आप समर्थ हो सके हैं।...नारी प्रेम के लिए सब कुछ परित्याग कर सकती है, अपना अस्तित्व पर्य्यन्त!...किन्तु मैं अपनी आँख से जो कुछ देखती हूँ...रेखा चुप हो गई।

"क्या देखती हो रेखा?"

रेखा ने अहीन्द्र की ओर घूम कर देखा, देखकर कहा—बड़ी भयङ्कर विवशता!...इसके अतिरिक्त किसी दिन यदि मेरे भी सन्तान हो गई, और संयोगवश वह सन्तान कन्या ही हुई...तो यही यातना उसे भी भोगनी पड़ेगी, जो यातना मैं भोग रही हूँ!...इस इतने बड़े समाज में उसका अपना कहीं ठिकाना न होगा, कोई आश्रय न होगा!...इसी तरह सबको छोड़कर एकान्त में उसे रहना पड़ेगा! हृदय की वेदना छिपाये रहकर, यह तुच्छ प्रमोद-हँसी की लीला लेकर...। नहीं, नहीं, नहीं...और कोई यह सब लेकर अपने जीवन को सार्थक समझ सकता है, किन्तु मैं तो ऐसा नहीं समझ सकती। विश्व के इस आनन्द-मेला में योगदान करने के अधिकार से वञ्चित होकर...इस तरह...? कभी नहीं। आप यह बात कह सकते हैं, क्योंकि आप पुरुष हैं।...प्रमोद पिपासित पुरुष हैं! आज अन्ध-मोह में एक दुर्बल नारी को वश में करके उसके द्वारा इच्छानुकूल आनन्द का उपभोग करेंगे, जिससे आपकी पिपासा की निवृत्ति होगी, और आपकी उस पिपासा का मूल्य देगी नारी, अपनी लज्जा, मान-मर्य्यादा, एवं समस्त नारीत्व को ही पीस कर चूर्ण करके! नहीं...मिस्टर सिंह, मैं अकेली ही रहूँगी...बड़े सुख से रहूँगी!...जिस प्रेम में कोई दायित्व नहीं है, उसे मैं न वहन कर सकूँगी! अपनी इस दुर्भागिनी माँ को मैं देख तो रही हूँ...! इतनी बड़ी लज्जा को धारण करके...किस तरह इस प्रमोद, इस हँसी-ठट्ठा के पीछे आज दिन भी ऐसे व्याकुल भाव से दौड़ती है कि उसे सोचकर मैं अवाक् हो जाती हूँ।...

अहीन्द्र ने कहा—तुम चाहे मुझे कितनी ही दूरी पर क्यों न खदेड़ दो रेखा, किन्तु समझ रक्खो कि उस दशा में भी मैं तुमसे प्रेम करता रहूँगा और चिर दिन तक करता रहूँगा।...किन्तु समाज में यदि रहना है तो उसके नियमों की भी अवहेलना नहीं की जा सकती। मैं जानता हूँ कि तुम निर्मल हो, तुम निष्पाप हो, तुम पवित्र हो।...

रेखा ने विरक्तिपूर्ण स्वर से कहा—रहने दीजिए, आज इस तरह की स्तववाणी सुनाने से काम न चलेगा! आप मुझसे प्रेम करते हैं? मालूम है आपको प्रेम का मतलब? इस प्रेम के लिए क्या आप कुछ त्याग कर सकते हैं? नहीं।...समाज...? उसे भी आप नहीं त्याग सकते?

अहीन्द्र ने कहा इससे तुम्हें भी लज्जा में पड़ना पड़ेगा रेखा।...दस आदमी कहेंगे,...मैं वह सब समझता हूँ। और समझता हूँ, इसी लिए तुम्हें इतनी घोर कुत्सा के मध्य में खींचकर नहीं ले जाना चाहता हूँ।...पृथ्वी के कर्कश कोलाहल से अपने इस प्रेम को मैं दूर रखना चाहता हूँ।

रेखा ने कुछ कहा नहीं। उसके दोनों नेत्रों में आँसू डबडबा आये।

कुछ समय तक स्तब्ध रहने के बाद अहीन्द्र ने कहा—तो हम लोगों का यह प्रेम...?

रेखा ने कहा—मुझे क्षमा कीजिएगा, मैं उसे नहीं परिपूर्ण कर सकूँगी।...प्रेम की ओर मेरा झुकाव है भी नहीं!...ओह...कैसा यह दुर्भाग्य है!...रेखा उच्छ्वसित आवेग से रो पड़ी।

अहीन्द्र ने पुकारा—रेखा...

रेखा ने कहा—इसकी अपेक्षा तो यदि मैं [ग़रीब] पिता की ही गोद में जन्म लिये होती, एक टूटे हुए [...] में भी! यह विलास, यह ऐश्वर्य तो मैं कभी चाह[ती नहीं] हूँ। इसके लिए मैं न तो कभी भिखारिणी थी [और न] आज ही हूँ।

संध्या और उषा

लेखक, श्रीयुत कमलकुमार शर्मा

संध्या और उषा—दो बहनें। सूर्योदय की किरणों ने जब प्रथम प्रथम पृथ्वी का स्पर्श किया तब दोनों का जन्म हुआ। वे दोनों हँसती-खेलती अपने दिवस व्यतीत कर रही थीं। पहाड़ की मृदुल घास पर सोतीं, चमेली के फूल इकट्ठा करतीं और झरने का संगीत सुनती थीं। इस प्रकार उनके दिन बड़ी हँसी-खुशी में कट रहे थे। जगत् में और भी कुछ है, वे यह नहीं जानती थीं और न जानने को उत्सुक थीं। वे यह नहीं चाहती थीं कि कोई दूसरा उनके बीच आकर खड़ा हो। वे अपने में ही तन्मय थीं। हर रोज़ की तरह उस दिन भी वे एक पर्वत पर बैठी हुई माला गूँथने में तल्लीन थीं। पास ही एक झरना अपना संगीत सुनाता हुआ किसी अपरिचित देश की ओर आगे बढ़ रहा था। सहसा उनके सामने आई एक दिव्य पुरुष की मूर्ति—एक ज्योतिर्मय पुरुष। उसने कहा—तुम दोनों में से क्या एक मुझे अपनी माला पहना देगी? दोनों बहनों ने यह सुना। उल्लास और उत्साह के साथ एक-स्वर से कह उठीं—हाँ, अवश्य गले में माला डाल देंगी। फिर अपनी अपनी माला लेकर उसे पहनाने को आगे बढ़ीं। नहीं नहीं, दोनों नहीं, कोई एक। दोनों बहनें ठिठककर खड़ी हो गईं। माला कौन पहनाये? फिर परस्पर एक-दूसरे की ओर देखा, साथ साथ एक दफ़े उन्होंने ज्योतिर्मय पुरुष की ओर भी देखा। [...] से आँखें नीचे झुक गई। यही उनकी प्रथम [...] हुई। अब वे भागीं—दोनों दो भिन्न भिन्न दिशा[ओं की] ओर दौड़ीं।

वहीं से उनके लुकने-छिपने का खेल प्रारम्भ [हुआ।] तब से आज तक यह खेल चला ही आ रहा है, [...] ही नहीं पाता। संध्या प्रकट होती है जब [...] कोलाहल शान्त होने को आता है। शान्त, सौम्य [भाव] से वह उस दिव्य पुरुष को खोजती है। जब [...] खोजते थक जाती है तब निराश होकर अंधकार [...] जाती है। उसके हाथ की माला ज्यों की त्यों उस[...] में ही रह जाती है।

और उषा आती है जब रात्रि कट जाती है। पृथ्वी आँखें फाड़ फाड़कर आशा, उमंग, उत्सा[ह...] उल्लास से वह उस दिव्य पुरुष को चारों ओर खोज[ती है...] निराश होकर दिन की प्रखर रोशनी में अपने को [...] देती है।

ऐसे ही दिन व्यतीत हो जाता और रात्रि काली चादर ओढ़े आती है। रात बीत जाती है [...] निकल आता है। यही चक्र चला करता है। मिलन किसी का नहीं हो पाता है—शायद हो भी न[...]

भारत में कोयले का व्यवसाय

लेखक, श्रीयुत सीतलासहाय

भारत में कोयले की खानें ज़्यादातर बङ्गाल और बिहार में हैं। सिगरेनी (हैदराबाद) और मध्यप्रान्त में भी कुछ खानें हैं, लेकिन उनमें अधिक कोयला नहीं निकलता है। १९३२ में दो करोड़ टन कोयला यहाँ की खानों से निकला। उसमें से एक करोड़ १८ लाख टन बिहार की खानों से और ५७ लाख टन बङ्गाल की खानों से निकला। मध्य-प्रान्त की खानों से उस वर्ष ११ लाख टन कोयला निकला था। बाक़ी आसाम, बिलोचिस्तान, मध्य-भारत, हैदराबाद, पञ्जाब और राजपूताना के आँकड़े ७२ हज़ार टन और १८ हज़ार टन के बीच में ही रह जाते हैं। इसके मुक़ाबिले १९३० में केवल बिहार की खानों से १ करोड़ ५० लाख टन कोयला निकला था और बङ्गाल की खानों से ६३ लाख टन। पिछले वर्ष जितना कोयला निकला उसको यदि रुपये के रूप में प्रकट करें तो यह कहना पड़ेगा कि १९३२ में ६ करोड़ ८० लाख रुपये का कुल कोयला निकला था। उसमें से ३ करोड़ ३२ लाख रुपये का माल बिहार का था, और १ करोड़ ६२ लाख रुपये का बङ्गाल का और १९२९ में ९ करोड़ २६ लाख रुपये के माल में से ५ करोड़ ५२ लाख रुपये का बिहार का और २ करोड़ ५० लाख रुपये का बङ्गाल का। बिहार के कोयले का ५ करोड़ ५२ लाख रुपये से गिरकर ३ करोड़ ३२ लाख रुपये तक पहुँच जाना, और बङ्गाल के कोयले का २ करोड़ ५० लाख से घट कर १ करोड़ ६२ लाख रुपये तक आ जाना क्रमशः ४० और ३३ प्रतिशत की कमी का सूचक है।

भारत में कोयले का व्यवसाय ख़ूब चल सकता है। प्राकृतिक सुविधायें हमारे लिए अनेक हैं, लेकिन हमें विदेशी कोयले से ज़ोरदार मुक़ाबिला करना पड़ता है। विलायती कोयले पर गवर्नमेंट ने केवल १० आने फ़ी टन चुङ्गी लगा रक्खी है। इस व्यवसाय को कोई विशेष प्रोत्साहन नहीं। अनेक कठिनाइयों का ज़रूर सामना है। ब्रिटेन ही ज़्यादातर इस देश में अपना कोयला बेचता है। वहाँ की ब्रिटिश गवर्नमेंट अपने देश के कोयले की विदेशी बिक्री बढ़ाने के लिए अनेक कृत्रिम उपायों का प्रयोग करती है और बहुत काफ़ी राजकीय सहायता देती है।

इस संघर्ष के मुक़ाबिले के लिए राजकीय सहायता का अभाव होते हुए भी कोयले के भारतीय व्यवसाय में लागत के कम करने का ज़ोरदार प्रयत्न हो रहा है। १९३२ में फ़ी टन लागत ३।=) एक पाई थी, १९३३ में यह घटकर ३=)॥ रह गई है। लेकिन इस प्रयत्न और किफ़ायत पर भी हिन्दुस्तान में विलायती कोयले की बिक्री की मात्रा में ६० प्रतिशत और क़ीमत में ४२ प्रतिशत वृद्धि हुई है।

भारत के कोयले का व्यवसाय यद्यपि २० वर्ष पहले की अपेक्षा अब बहुत उन्नत है, तो भी जैसा ऊपर दिखाया गया है पिछले वर्ष के आँकड़े बताते हैं कि वह अब नीचे जा रहा है। १९३० में भारतीय कोयले की सालाना उपज २,३८,०३,०४८ टन थी, अब अर्थात् १९३३-३४ में १,९७,८९,१६३ टन है, अर्थात् मात्रा में क़रीब १४ फ़ी सदी की कमी हो गई है। १९३० की उपज की क़ीमत ९,२६,२५,२२३) आँकी गई थी और १९३३-३४ की उपज ६,११,८६,०८३) थी। अर्थात् दामों में क़रीब ३३ प्रतिशत की कमी हो गई है। योरपीय महायुद्ध के समय इस व्यवसाय को अन्य व्यवसायों के समान प्रोत्साहन तो मिला ही था, लेकिन मई १९२६ की ब्रिटेन की कोयले की हड़ताल ने इस व्यवसाय पर विशेष अच्छा असर डाला था। इस हड़ताल के कारण ब्रिटेन के कोयले का हिन्दुस्तान में आना तथा अन्य स्थानों को भी जाना असम्भव हो गया था। हिन्दुस्तानी व्यवसाय ने इस समय अवसर से फ़ायदा उठाकर अपनी स्थिति बेहतर कर ली और अपनी उपज ख़ूब बढ़ा ली।

मिस्टर जे० कोटमैन 'इण्डियाइन' १९२७-२८ में पृष्ठ २०० में लिखते हैं—

इँग्लेंड के कोयले की हड़ताल कुछ हद तक इस बात के लिए ज़िम्मेदार कही जा सकती है कि यहाँ के (हिन्दुस्तान के) कच्चे माल का विदेशों में जाना कम हो गया,

लेकिन कोयला बेचनेवाले अन्य देशों के समान हिन्दुस्तान का कोयले का निर्यात-व्यापार हड़ताल के ज़माने में स्थायी रूप से बढ़ गया और जिन चन्द बाज़ारों को हिन्दुस्तान के व्यवसाय ने उस समय पा लिया उन्हें आज तक अपने ही क़ब्ज़े में रख छोड़ा है। लेकिन १९३३-३४ की वार्षिक रिपोर्ट यह है कि विदेशी कोयले का आयात पिछले साल की अपेक्षा मात्रा में ६० प्रतिशत और क़ीमत के ४२ प्रतिशत बढ़ा है।

कोयले का विदेशी व्यापार

नीचे का नक़शा भारत में विदेशी कोयले के आयात का है।

टन में

	कोयला	+	कोक	=	जोड़ कोयला
१९२७-२८	२,६३,०००		११,०००	=	२,७४,०००
१९३१-३२	५६,०००		१२,०००	=	६८,०००
१९३२-३३	३५,०००		१२,६००	=	४७,६००
१९३३-३४	५६,०००		×	=	५६,०००

१९२१ में १५,०१,१८७ टन विदेशी कोयला हिन्दुस्तान में आया था।

नीचे के आँकड़े भारत में विदेशी कोयले का आयात प्रकट करते हैं।

नक़द

	कोयला	+	कोक	=	कुल जोड़
१९२७-२८	५८ लाख		४½ लाख	=	६२½ लाख
१९३१-३२	११ लाख		१२ हज़ार	=	११ लाख १२ हज़ार
१९३२-३३	६ लाख		१२ हज़ार	=	६ लाख १२ हज़ार
१९३३-३४	९ लाख		×	=	×

नोट—१९२१ में ५,८५,०५,०००) का विलायती कोयला इस देश में आया था। लेकिन अगर हम १९२७ के आँकड़ों से ही तुलना करें तो १९३२-३३ में यह व्यापार दशांश रह गया था।

भारतीय बाज़ार में विदेशी कोयला के बेचनेवाले कारख़ाने ज़्यादातर अँगरेज़ी हैं। ब्रिटेन और ब्रिटिश-साम्राज्य के अन्तर्गत देश ही हिन्दुस्तान में ज़्यादातर कोयला* और कोक बेचते रहे हैं। १९२१-२२ में ६ करोड़ के कोयले के व्यापार में ५ करोड़ का व्यापार ग्रेटब्रिटेन का और ब्रिटिश-साम्राज्यान्तर्गत देशों का था।

१९३०-३१ में ३५ लाख के व्यापार में ३३ लाख का व्यापार इन्हीं देशों का अर्थात् ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया और दक्षिण-अफ़्रीका का था। १९३२-३३ में ६ लाख के व्यापार में ३ लाख का व्यापार ब्रिटेन का, २ लाख का दक्षिणी अफ़्रीका का और १ लाख का आस्ट्रेलिया का था।

ब्रिटेन का यह व्यापार, इस देश में उत्तरोत्तर कम होता गया—जैसा निम्नलिखित नक़शे से ज़ाहिर होता है :—

ब्रिटेन का हिस्सा रुपये में

	कोयला	+	कोक	=	जोड़
१९२१-२२	×		×		२,०८,४२,०००
१९२५-२६	×		×		३०,८७,०००
१९३०-३१	×		×		६,३६,०००
१९३१-३२	५,००,०००	+	६२,०००	=	५,६२,०००
१९३३-३४	३०,००,०००	+			×

१९१३ का अर्थात् युद्ध के पहले का औसत प्रतिवर्ष ४१,३३,०००) था।

इस हिसाब से १९३१ में ब्रिटिश व्यापार १९२१ की अपेक्षा घटकर रुपये में =) हो गया है।

* इस लेख में कोयला और कोक के बजाय हम केवल एक शब्द कोयला ही इस्तेमाल करेंगे। पाठकगण दोनों समझें।

ब्रिटिश कोयले का व्यापार केवल हिन्दुस्तान में ही नहीं, सारे संसार में कम पड़ गया है।

दिसावर के बाज़ार हाथ में रखने की ब्रिटेन ने पूरी पूरी कोशिश की। निर्यात-व्यापार को कृत्रिम साधनों से राजनैतिक सहायता दी। घर के बाज़ार में इसी उद्देश से कोयले का भाव बढ़ा दिया। फिर भी सफलता नहीं हुई। स्थिति की विचित्रता यह है कि ग्रेट ब्रिटेन स्वयं अब पहले से कम कोयला इस्तेमाल करता है; अर्थात् स्वदेशी बाज़ार में भी उसके कोयले की माँग घट गई है। १९३१ में १८,३८,००,००० टन ब्रिटिश कोयला ब्रिटेन में बिका था और १९३४ में केवल १६,१५,००,००० लाख टन। पहले ४ करोड़ टन कोयला ब्रिटिश कुटुम्बों में इस्तेमाल होता था, लेकिन अब अँगरेज़ गृहणियाँ गैस और बिजली इस्तेमाल करती हैं। निर्यात-व्यापार में कमी का कारण यह है कि बाहर के मुल्क ब्रिटेन का कोयला नहीं ख़रीदते। ब्रिटिश जहाज़ भी कम चलते हैं। अब इँग्लेंड अपने कोयले का ७५ प्रतिशत स्वयं इस्तेमाल करता है। १९१३ में ९,८३,००,००० टन कोयला इँग्लेंड ने विदेशों में बेचा था। १९३३ में यह मात्रा घटकर ५,६६,००,००० टन रह गई थी और १९३४ में ५,७०,००,००० टन। १९१३ की ब्रिटिश कोयले की कुल पैदावार २८,२१,००,००० टन थी। १९३३ में यह उपज केवल २०,५०,००,००० टन रह गई थी और १९३४ में २१,८५,००,००० टन। १९२८ में इस व्यवसाय से ब्रिटेन में ९,५२,००० आदमी रोज़ी कमाते थे। १९३४ में केवल ७,९८,००० आदमी इससे अपनी जीविका कमा रहे थे।

१९१३ की अपेक्षा १९३३ में इस व्यवसाय की उपज में २८ प्रतिशत की कमी आगई थी और १९३४ में २४ प्रतिशत की।

ब्रिटिश क़ौम का उद्योग

ब्रिटिश क़ौम हिन्दुस्तानियों के समान क़िस्मत पर रोनेवाली नहीं है। अपने व्यवसायों में इतना भयङ्कर आकस्मिक पतन देखते हुए भी वह निराश नहीं हुई। कोयले के व्यवसाय को फिर उन्नत करने से लिए वह बहुत ज़ोर के साथ प्रयत्नशील है। ब्रिटिश कोयले के व्यवसाय के सामने मुख्य समस्या यह है कि पिछले चन्द बरसों से ब्रिटिश कोयले की माँग कम पड़ गई है; युद्ध के बाद से जर्मनी, बेलजियम, रूस, फ्रांस आदि देशों ने अपने अपने यहाँ कोयला पैदा करना शुरू कर दिया है और ब्रिटिश कोयला उन देशों में जाकर महँगा पड़ता है। अब माँग बढ़ाने का तरीक़ा यह है कि उपज का ख़र्च कम किया जाय, जिससे माल सस्ता पड़े और भाव घटे। ख़र्च कम करने के लिए चन्द विशेषज्ञों की राय में यह ज़रूरी मालूम होता है कि जितनी खानें इस समय अलग अलग काम कर रही हैं उन सबका कारबार संयुक्त रूप से चलाया जाय और कोयला निकालने में वैज्ञानिक साधन विशेष रूप से काम में लाये जायँ। इस प्रकार काम करने से विशेषज्ञों का मत है कि ब्रिटिश कोयला कम पड़ने में पड़ेगा और वैदेशिक लाग-डाँट का मुक़ाबिला कर सकेगा। ब्रिटिश राष्ट्र इस प्रयोग के लिए तत्पर है।

१४ मई १९३६ के 'टाइम्स' में प्रकाशित हुआ है—"गवर्नमेंट कोयले के व्यवसाय का संगठन नये ढंग से करना चाहती है। बोर्ड आफ़ ट्रेड और कोल माइन्स कमीशन को पूरा अधिकार होगा कि वह कोयले की खानों को उनके मालिकों से छीनकर संयुक्त रूप से चलावे।" खानों के मालिकों को उज्र दारी करने का हक़ होगा और वे बोर्ड आफ़ ट्रेड के सामने अपील कर सकेंगे। अगर बोर्ड आफ़ ट्रेड को यह यक़ीन हो जायगा कि संयुक्त करने की योजना कोयले की उपज और बिक्री की दृष्टि से राष्ट्र के लिए हितकर है तो बोर्ड इस हुक्म का मसविदा पार्लियामेंट के पास भेजेगा। अगर २१ दिन के अन्दर पार्लियामेंट ने इस हुक्म को रद न कर दिया तो इसके मुताबिक़ अमलदरामद शुरू हो जायगी। पहले तो पुनः-संगठन ही होगा, अर्थात् चन्द कोयले की खानें मिला दी जायँगी और एक कम्पनी बन जायगी जो इनका संयुक्त रूप से प्रबन्ध करेगी। लेकिन खानों के मालिकों को पुनःसंगठन के होने के पहले इस बात का अधिकार होगा कि अगर वे सब लोग स्वेच्छा से अपनी खानों का संयुक्तरूप से प्रबन्ध करने के लिए तैयार हो जायँ तो कम्पनी के बनाने की आवश्यकता न रहेगी। अगर मालिकों ने स्वेच्छा से खानों का मिलाना पसन्द नहीं किया तो गवर्नमेंट की ओर से प्रबन्ध की शर्तें तय कर दी जायँगी।

युद्ध और ब्रिटिश व्यवसाय

दुनिया इस बात को मानती है कि योरपीय महायुद्ध

में अँगरेज़ लोग विजयी रहे। लेकिन यह धारणा केवल अंशतः ही सही है। राजनैतिक दृष्टिकोण से यह बात कुछ हद तक सच मानी जा सकती है, परन्तु आर्थिक दृष्टि से तो बिलकुल ग़लत है। वास्तव में योरपीय महायुद्ध ने ब्रिटिश क़ौम के व्यावसायिक प्रभुत्व को भयङ्कर धक्का पहुँचाया है। इस युद्ध के बाद से ऐसी राजनैतिक और व्यावसायिक शक्तियाँ स्वतंत्र रूपसे काम करने लग गई हैं कि क़रीब क़रीब सभी ब्रिटिश व्यवसायों की जड़ें हिल गई हैं, और ख़ास ख़ास ब्रिटिश व्यवसायों को तो इतना ज़ोरदार धक्का पहुँचा है कि अब शायद वे कभी अपना पुराना गौरव नहीं पा सकेंगे। एक अँगरेज़ अर्थशास्त्रज्ञ लिखते हैं—

"१० वर्ष पहले की अपेक्षा ब्रिटिश खान-व्यवसाय में काम करनेवालों की संख्या आज क़रीब क़रीब आधी रह गई है। लोहा, जहाज़ और जहाज़ी इंजीनियरी के व्यवसाय में आज की अपेक्षा १९२३ में दुगुने आदमी काम करते थे। कारबार की सबसे ज़्यादा कमी उन व्यवसायों में आई है जिन्हें 'वज़नी व्यवसाय' कहते हैं, जैसे कोयला, लोहा, फ़ौलाद, जहाज़ इत्यादि का व्यवसाय। इन व्यवसायों का असाधारण रूप से पतन हुआ है। सिक्के की क़ीमत में तबदीली का लिहाज़ रखते हुए भी हमारा निर्यात अर्थात् वैदेशिक व्यापार युद्ध के पूर्व की अपेक्षा आज आधे से ज़्यादा नहीं। रुई, ऊन, लोहा, फ़ौलाद और जहाज़-निर्माण आदि पुराने और मुख्य ब्रिटिश व्यवसायों में ही सबसे ज़्यादा ह्रास हुआ है। व्यवसाय में लगी हुई ब्रिटिश जनता का तृतीय भाग पहले वैदेशिक बाज़ार की माँग पूरी करने में लगा रहता था, आज केवल पञ्चमांश इस कार्य में लगा है। पहले हमारी सम्पूर्ण उपज का तृतीयांश विदेशों में बिकता था, आज केवल पञ्चमांश बिकता है।" (जान हिलटन; ३१-१-३४ के लिसनर में)

युद्ध के पहले ब्रिटेन भारतवर्ष में प्रतिवर्ष औसतन ५१,१३,६०,०००) की कपड़े की चीज़ें बेचता था। इस देश में ब्रिटिश लोहे और फ़ौलाद की सालाना औसत-बिक्री १२,९०,८७,०००) की थी और ४१,३३,००,०००) का कोयला और कोक तथा २९,९२,०००) की चमड़े की चीज़ें बिकती थीं। युद्ध के बाद जब [illegible] कपड़े की मिलें काफ़ी खुल गईं, ताता-से लोहे के कारख़ाने क़ायम हो गये, कोयले की खानें बिहार और बङ्गाल चलने लगीं, हमारा स्वदेशी व्यवसाय पनपा और ब्रिटेन इन मालों की बिक्री देश में बहुत कम हो गई। १९३३ में ब्रिटिश कपड़े की बिक्री केवल १५,३७,४३,०००) की लोहे की ४,९३,५३,०००) की, चमड़े की ३०,१४,००० और कोयले और कोक की केवल ३,९४,०००) की इसका मतलब यह हुआ कि ब्रिटेन में बने हुए लोहे और चमड़े की बिक्री इस देश में रुपये में केवल रह गई, और कोयले की बिक्री रुपये में केवल ६ पैसे।

हमारा प्वाइंट निम्नलिखित वाक्यों से स्पष्ट हो है। व्यापार के लार्ड कामश्नर १९३२-३३ की वार्षिक रिपोर्ट में लिखते हैं—

"यह नोट करने की बात है कि १९१३-१४ में का बना हुआ जितना कपड़ा हिन्दुस्तान में इस्तेमाल ७५ प्रतिशत विदेशों से आता था और २५ प्र हिन्दुस्तानी मिलों का था। इसके मुक़ाबिले में १९३ में मिल का जितना कपड़ा हिन्दुस्तान में खपा, उस ८० फ़ी सदी हिन्दुस्तानी मिलों का था और २० प्र विलायती। इस २० प्रतिशत में ब्रिटिश कपड़ा आ ज़्यादा नहीं था, अर्थात् ब्रिटेन ने भारत की माँग में दशांश ही पूरा किया।"

युद्ध के पहले भारतवर्ष की कपड़े की मिलों की सालाना उपज १,१६,४३,००,००० गज़ थी। १९३ में ३,१६,९०,००,००० गज़ हो गई थी, अर्थात् क़रीब तिगुनी।

संरक्षण

हिन्दुस्तानी व्यवसायों के इतिहास के अध्य एक बात अकाट्यरूप से निष्पन्न होती है। वह यह कि जब पश्चिमीय विदेशों पर व्यावसायिक आपत्ति आ चाहे उसका कारण युद्ध हो या घरेलू व्यावसायिक कु हिन्दुस्तान को फ़ायदा हो गया। हमारे समस्त व्य को उत्तेजना तभी मिली जब योरपीय राष्ट्र सङ्कट में अगर योरपीय महायुद्ध न हुआ होता और वि चीज़ों का हिन्दुस्तान में आना कृत्रिम रूप से बन्द [illegible] गया होता तो शायद भारत के राष्ट्रीय दल और शा में आज तक यह वाद-विवाद चलता ही रहता कि के लिए संरक्षण कल्याणकर है या स्वतन्त्र

(ईश्वर न करे) आज अगर योरप में महायुद्ध छिड़ जाय तो वह संरक्षण जिसके लिए भारत का राष्ट्रीय दल व्यवस्थापक सभा में जी तोड़कर कोशिश कर रहा है (और नहीं पा रहा है); हमें आप ही आप बिना माँगे मिल जायगा और भारतीय व्यवसायों को विशेष उत्तेजना मिल जायगी। हमारे कहने का अभिप्राय यह नहीं है कि भारतीयों को आज से ही योरप में युद्ध छिड़ने के लिए ईश-प्रार्थना आरम्भ कर देनी चाहिए। हमने केवल स्थिति की दुर्भाग्यपूर्ण विचित्रता दिखाई है।

हमारा कर्तव्य

कोयले का व्यवसाय अनेक दृष्टियों से हमारा एक महत्त्वपूर्ण व्यवसाय है। इसमें इस समय ५० करोड़ के क़रीब पूँजी लगी है और २० लाख आदमी अपनी जीविका कमाते हैं। प्रयत्न यह होना चाहिए कि इस व्यवसाय में हिन्दुस्तानी पूँजी और लगे और उपज तथा बिक्री बढ़े। इस वस्तु के लिए विदेशों पर हम क्यों आश्रित रहें? भारतीय कोयला विदेशों में बेचा जाय और भारत में सम्पत्ति की वृद्धि का कारण हो।

आवश्यकता इस समय यह है कि आगामी व्यावसायिक सभाओं में राष्ट्रीय विचार के व्यावसायिक लोग अधिक से अधिक संख्या में जायँ, जिनका मुख्य उद्देश यह हो कि भारतीय व्यवसायों को हर प्रकार से राजकीय संरक्षण दिलाया जाय। राष्ट्रीय दल का एक हिस्सा साम्यवाद की चर्चा ज़रूर करता है, लेकिन व्यावसायियों को पूर्ण विश्वास रखना चाहिए कि विदेशी व्यवसाय के मुक़ाबिले में राष्ट्रीय दल स्वदेशी व्यवसाय की बराबर मदद करेगा।

तिकड़मी तमस्सुक

लेखक, श्रीयुत गाङ्गेय नरोत्तम शास्त्री

कितने तिकड़मबाज़, सीधे सुजनों को ठगें।
मानो कलि-महराज, मूर्तिमान छलहित फिरें॥
ऐसी घटना एक, लिखी सत्य 'गाङ्गेय' ने।
रख कुछ हास्य-विवेक, पढ़ें समुद सहृदय सुधी॥

मनकि बाबू नादिहन्द राय वल्द फ़र्ज़ीहत राय, क़ौम हड़पूपन्थी, पेशा चलतापुर्ज़ा, साकिन मौज़े सत्यानाशपुर, परगने हरामपुर, ज़िला चौपटाबाद का हूँ। मैंने अपनी बड़ी हाजत रफ़ा करने यानी ऐशो-आराम से ज़िन्दगी बसर करने के लिए महाजन बाबू सिद्ध राय वल्द बदबक्त राय, मौज़े मुलाहिज़ापुर, परगने सूदपुर, ज़िला अहमक़-नगर से ५००) पाँच सौ रुपये क़र्ज़ लिये हैं। बाद सलाह-मशवरे के चण्डाल-चौकड़ी साथ, मैं इकरार करता हूँ कि इस रुपये का फ़ी सदी सूद गाली-गलौज, धक्कम-धक्का, जूती-पैजार, माह ब माह ता ज़िन्दगी अदा करता जाऊँगा। अगर किसी महीने सूद नहीं दे सका तो दूने लट्ठम-लट्ठ के ज़रिये दरसूद भी अदा कर दूँगा। अगर ऐसा न करूँ तो महाजन मज़कूर को अख़्तियार होगा कि बज़रिये नालिश कुछ और भी अपना रुपया फूँक कर मेरी भागेभूत की लँगोटी में लगी धूल की कुलः-मनकुलः जायदाद से अपना कुल मूल-सूद, पाई पाई, हब्बा-हब्बा, वसूल कर लेवें। इसमें मुझे व मेरे बच्चों को और मेरी बीवी के बच्चों को भी कोई उज्र नहीं है और न आइन्दा होगा। इसलिए यह तमस्सुक लिख दिया कि बाद लड़ाई-झगड़े के मामला पेश होने पर शहद लगाकर चाटने के काम आये। और रुपये देने की 'सनक' की 'सनद' रहे।

दस्तख़त—बाबू नादिहन्द राय
पाँच सौ रुपये सदा के वास्ते लिए
सो सही बक़लम ख़ुद

तारीख़—मौजमारी, महीना—मालउड़ाऊ, साल—मालपचाऊ।

गवाह—ढपोलसंख, वल्द गपोड़संख, क़ौम—ख़ुशामदी, पेशा—गप-शप, गड़बड़-सड़बड़, मौज़े अलहदीपुर, परगने—चटोरपुर, ज़िला—खिसकन्ताबाद।

वर्त्तमान शिक्षा-पद्धति और बेकारी

लेखक, श्रीयुत रामनारायण 'यादवेन्दु', बी० ए०, एल-एल० बी०

सर तेजबहादुर सप्रू ने जो अति परिश्रम से अपनी प्रसिद्ध बेकारी की रिपोर्ट प्रकाशित की है उसका महत्त्व सरकार तथा देश के प्रसिद्ध प्रसिद्ध विशेषज्ञ सभी स्वीकार करते हैं। उसकी विशेषता के सम्बन्ध में बाबू सीतलासहाय का एक लेख हम यथासमय प्रकाशित कर चुके हैं। अब यह उसी विषय का दूसरा लेख है। रिपोर्ट में इन प्रान्तों की शिक्षा-प्रणाली का जो महत्त्वपूर्ण विवेचन किया गया है श्री यादवेन्दु जी ने उसी का इसमें क्रमपूर्वक वर्णन किया है।

देश में बढ़ती हुई शिक्षितों की बेकारी ने यह सिद्ध कर दिया है कि बेकारी की भीषणता का एक मौलिक कारण शिक्षा-प्रणाली के दोष हैं। प्रचलित शिक्षा-पद्धति इस युग के लिए सर्वथा व्यर्थ सिद्ध हो चुकी है; इसलिए देश के प्रमुख शिक्षा-विज्ञों की एक-स्वर से यही माँग है कि शिक्षा-प्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया जाय।

शिक्षा का यथार्थ में उद्देश क्या है? शिक्षा मानव की मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक शक्तियों का पूर्ण विकास कर उसे किसी देश का आदर्श नागरिक बनाती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि नागरिक को अपना जीवन व्यावहारिक रूप से, व्यष्टि और समष्टि के लिए उपयोगी बनाना अनिवार्य है। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि नागरिक जीवन के सुधार व विनाश में अर्थ-प्रणाली का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसलिए बेकारी की समस्या को सुलझाने के लिए यह आवश्यक है कि देश के लिए ऐसी आर्थिक योजना निर्माण की जाय जिससे अर्थ का सम-विभाजन किया जा सके और देश के प्रत्येक नागरिक को अपने जीवन के विकास के लिए समान सुविधायें और सहायता राज्य और समाज की ओर से मिल सकें।

जितना आर्थिक योजना का बेकारी के प्रश्न से घनिष्ठ सम्बन्ध है, उससे कहीं अधिक सम्बन्ध शिक्षा की पद्धति से है।

'यू० पी० बेकारी-कमिटी' ने बेकारी को दूर करने के लिए स्पष्ट शब्दों में रिपोर्ट में अनेक स्थानों पर इस बात पर अधिक ज़ोर दिया है कि शिक्षा जीवनोपयोगी बनाई जाय। युवकों-युवतियों को ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे वे अपने जीवन में उसका उपयोग कर उसे अधिक उच्च, विकसित और सुखप्रद बना सकें। दूसरे देशों में शिक्षा और रोज़गारी में निकट सम्बन्ध स्थापित कर उसे अधिक जीवनोपयोगी बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। परन्तु भारत में इस बेकारी के प्रश्न और शिक्षा-प्रणाली का सम्यक् रीति से अध्ययन ही नहीं किया गया। आज से दो वर्ष पूर्व विश्वविद्यालय-परिषद् में भाषण करते हुए लार्ड विलिङ्गडन ने भी कहा था—

"विद्यार्थियों के दृष्टिकोण से यह हृदय-विदारक है कि बहुत-से नवयुवक जिन्होंने सफलतापूर्वक शिक्षा-सोपान पर पदार्पण करके उच्च पदवियाँ और सम्मान प्राप्त किये हैं, अनेक आपदायें और दुःख उठाने पर भी अपने जीवनोपार्जन के साधन प्राप्त करने में असमर्थ रहते हैं। यह निःसन्देह शिक्षा-विभाग के अधिकारियों के हाथों में है कि वे शिक्षा-योजना का इस प्रकार निर्माण करें कि विद्यार्थियों की मनोवृत्ति अपनी शिक्षा और योग्यता के अनुकूल व्यवसायों को ग्रहण करने की ओर हो जाय।"

यू० पी० बेकारी-कमिटी ने एक सूचना प्रकाशित कर शिक्षित बेकार नवयुवकों से विवरण प्राप्त करने का प्रयत्न किया था। ऐसा विश्वास है कि सभी नवयुवकों ने अपने सम्बन्ध में कमिटी को विवरण भेजने का प्रयत्न नहीं किया। इतने पर भी ३,१११ शिक्षित युवकों ने अपनी बेकारी के विषय में सूचनायें भेजीं। इनमें से २६ एम० ए० और एम० एस-सी०, १३१ बी० ए०, बी० एस-सी०, ४९ इन्टर्मीडियेट, ९४९ हाईस्कूलपरीक्षोत्तीर्ण, १,६४३

वर्नाक्यूलर-परीक्षा पास, ५३ टेक्निकल प्रमाण-पत्र-प्राप्त युवक और २६० ओरिएंटल डिप्लोमा-प्राप्त युवक हैं। इन सब युवकों ने १९२८ से १९३४ के पाँच वर्षों की अवधि में अपनी परीक्षायें पास की हैं।

इन पदवियों को प्राप्त करने में कितना धन व्यय होता है, इसका विचार करने पर शिक्षा की व्यर्थता और भयङ्करता अधिक उग्ररूप में हमारे सामने उपस्थित होती है। जो छात्र केवल विश्वविद्यालयों में संयुक्त-प्रान्त में पढ़ते हैं उनकी संख्या निर्धारित की जाय तो १०,००० से कम नहीं होगी। सर तेजबहादुर सप्रू की सम्मति में एक नवयुवक विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने में ५०) मासिक व्यय करता है। इस प्रकार एक वर्ष में ६०,००,००० रुपये प्रति-वर्ष इन छात्रों पर व्यय होते हैं। विगत पाँच वर्षों में इन १० हज़ार नवयुवकों के माता-पिताओं ने प्रायः ३ करोड़ रुपये इनकी शिक्षा पर ख़र्च किये! और परिणाम में क्या मिला? जीवन-विघातिनी बेकारी। मिस्टर हाकिन्स के कथनानुसार ऐसे अनेक ग्रेजुएट हैं जिन्होंने विवश होकर पुलिस में कान्स्टेबुल की नौकरी स्वीकार की। कुछ चपरासी भी बन गये हैं। ऐसे भी ग्रेजुएट नवयुवक हैं जो गलियों में दूध बेच कर अपने पापी पेट की ज्वाला शान्त करते हैं। अभी उस दिन की बात है, एक आई० सी० एस० आफ़िसर ने सर तेजबहादुर सप्रू से कहा कि मेरे पास कालेज का तृतीय वर्ष का एक छात्र आया और कहने लगा—"कृपया मुझे कोई नौकरी दीजिए।" उत्तर मिला—"मेरे आफ़िस में क्लर्की की कोई जगह ख़ाली नहीं है।" अब आप देखिए प्रार्थी ने क्या उत्तर दिया—"क्या चपरासी की नौकरी के लिए भी मुझे स्थान न मिलेगा?" सौभाग्य से उस बी० ए० के छात्र को चपरासी की नौकरी मिल गई।

क्या इस स्थिति से यह प्रकट नहीं होता कि समाज को प्रचलित शिक्षा की कोई आवश्यकता नहीं है? यह शिक्षा व्यक्ति, समाज और शासन इन तीनों के लिए सर्वथा अनुपयोगी और व्यर्थ सिद्ध हो चुकी है। इसलिए शिक्षितों की बेकारी को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि जहाँ शिक्षा-प्रणाली में आवश्यक परिवर्तन किये जायँ, वहाँ साथ-साथ विद्यार्थियों और उनके संरक्षकों, अभिभावकों तथा सरकार इन तीनों के दृष्टिकोण और नीति में घोर परिवर्तन भी वाञ्छनीय है।

बेकारी-कमिटी की रिपोर्ट में शिक्षा-प्रणाली में सुधार के सम्बन्ध में यथेष्ट विचार किया गया है। उसको तीन विभागों में विभाजित कर १ प्राथमिक, २ माध्यमिक और ३ विश्वविद्यालय की शिक्षा पर अलग अलग विचार किया गया है, इसके अतिरिक्त औद्योगिक, व्यावसायिक और 'टेकिनकल' शिक्षा पर भी। यहाँ हम उन विभागों के अनुसार प्रत्येक का अलग अलग उल्लेख करते हैं—

प्राथमिक शिक्षा

संयुक्त-प्रान्त में सन् १९२६ में एक क़ानून स्वीकृत किया गया था, जिसके अनुसार ग्रामों में प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए प्रयत्न किया जा रहा है। इस क़ानून की धारा ३ के अनुसार ज़िला-बोर्ड प्रान्तीय सरकार से यह प्रार्थना कर सकता है कि ज़िले में या उसके किसी एक भाग में लड़कों की शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय। इस प्रार्थना पर विचार कर सरकार यह घोषणा प्रकाशित कर सकती है कि अमुक ज़िले या उसके किसी भाग में लड़कों को अनिवार्य शिक्षा दी जाय। परन्तु सरकार उसी अवस्था में यह घोषणा कर सकती है जब उसे यह विश्वास हो जाय कि बोर्ड के आधे सदस्यों ने अनिवार्य शिक्षा के सम्बन्ध में प्रस्ताव पास किया है और सरकार को यह विश्वास है कि बोर्ड इसका समुचित एवं सन्तोषप्रद प्रबन्ध कर सकता है।

यू० पी० में सन् १९१९ में इसी प्रकार का एक क़ानून पास हुआ, जिसके अनुसार म्यूनिसपल बोर्ड की सीमा के अन्तर्गत लड़कों को अनिवार्य शिक्षा दी जा सकती है।

इस समय ८५ म्यूनिसपल बोर्डों में से केवल ३६ बोर्ड ही ऐसे हैं जिन्होंने अपने नगर में या उसके किसी एक भाग में लड़कों के लिए अनिवार्य शिक्षा प्रचलित की है और ४८ ज़िला-बोर्डों में से केवल २५ बोर्ड ही ऐसे हैं जिनके अन्तर्गत ग्रामों में लड़कों की शिक्षा अनिवार्य है। सन् १९३३-३४ में संयुक्त-प्रान्त में प्राइमरी स्कूलों* की कुल संख्या १९,२१४ और उनमें पढ़नेवाले लड़कों की ११,६७,२६५ थी।

प्रान्तीय शिक्षा-विभाग के डायरेक्टर श्री एच० आर० हेरप साहब ने प्राथमिक शिक्षा की उन्नति के प्रश्न पर जो

* इन स्कूलों में सरकारी, ज़िला बोर्ड, म्यूनिसपल बोर्ड तथा सहायता प्राप्त एवं सहायता से वंचित सभी स्कूल सम्मिलित हैं।

प्रकाश डाला है उससे वस्तुस्थिति का पता लग जाता है। आपका कथन है—

"इन प्रान्तों में शिक्षोन्नति के मार्ग में पर्याप्त फंड का अभाव ही मुख्य कारण है। मेरी अनुमति में प्रायः १८ लाख लड़के और ३० लाख लड़कियाँ ६ से ११ वर्ष की हैं, जिनके शिक्षा के लिए किसी भी प्रकार का प्रबन्ध नहीं है। मेरा यह भी विचार है कि यह अशिक्षित जन-समूह मनुष्य-संख्या के प्रतिव्यक्ति की औसतन सम्पति की अभिवृद्धि में सबसे बड़ा नहीं तो एक महान बाधा है। प्राथमिक शिक्षा की यह आवश्यकता सबसे महान आवश्यकता है। इस दिशा में अधिक उन्नति के लिए इस समय फंड नहीं मिल सकता।"

प्राइमरी शिक्षा के सम्बन्ध में बेकारी-कमेटी ने जो प्रस्ताव प्रस्तुत किये हैं वे बहुत ही आवश्यक और महत्त्वपूर्ण हैं।

१—यद्यपि प्राथमिक शिक्षा का ध्येय निरक्षरता का नाश करना है, तथापि उसका प्रमुख उद्देश लड़कों को इस योग्य बना देना है कि वे श्रेष्ठ किसान और ग्रामीण जातियों के अधिक उपयोगी सहायक बन सकें। इस समय जिस प्रकार की प्राइमरी शिक्षा का प्रचलन है उसमें दो बड़े दोष हैं। पहला यह कि यह शिक्षा ग्रामीण आवश्यकताओं को दृष्टिकोण में रख कर नहीं दी जाती, दूसरा यह कि इन स्कूलों में पढ़नेवाले लड़कों की आयु-अवधि बहुत कम है।

२—इसलिए कमिटी यह सिफ़ारिश करती है कि प्राइमरी शिक्षा ग्रामोपयोगी बनाई जाय। आज-कल के क़ानून के अनुसार ११ वर्ष तक की आयु के लड़कों को अनिवार्य शिक्षा दी जाती है। परन्तु यह आयु कम है, इसलिए इसे बढ़ाकर [illegible] वर्ष की अवधि कर दी जाय। यदि आयु अवधि बढ़ा दी गई तो इससे प्राथमिक शिक्षा बहुत कुशल हो जायगी और बहुत-से अध्यापकों को नौकरी भी मिल सकेगी।

३—कमिटी की यह दृढ़ सिफ़ारिश है कि समस्त प्रान्त में प्राइमरी और युवक-शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय। ऐसा किये बिना आर्थिक संकट दूर नहीं हो सकता। रेडियो और ब्राडकास्टिङ्ग का उपयोग प्राइमरी शिक्षोन्नति में कहाँ तक समुचित साधन बन सकता है इस पर भी विचार करना चाहिए।

माध्यमिक शिक्षा

माध्यमिक शिक्षा का क़ानून सन् १९२१ में स्वीकृत किया गया था। इसी के अनुसार इन प्रान्तों में इन्टर-मीडियेट और हाईस्कूल की परीक्षाओं के पाठ्यक्रम और परीक्षाओं का प्रबन्ध इन्टरमीडियेट बोर्ड के अधीन है।

केवल चार श्रेणियों की शिक्षा के लिए शिक्षा-विभाग उत्तरदायी है। वे हैं हिन्दी-मिडिल, अँगरेज़ी-मिडिल, हाई-स्कूल-परीक्षा, और इन्टरमीडियेट। संयुक्त-प्रान्त में केवल ७४८ वर्नाक्यूलर-मिडिल-स्कूल हैं। इनका प्रबन्ध म्यूनिसपल और ज़िला-बोर्डों के द्वारा होता है। ६४७ स्कूलों का प्रबन्ध ज़िला-बोर्डों, ३१ स्कूलों का प्रबन्ध म्यूनिसपल बोर्डों के द्वारा होता है। वर्नाक्यूलर-फ़ाइनल-परीक्षा में अब ३५,००० परीक्षार्थी बैठते हैं, जिनमें से ६० % प्रति पास होते हैं। मिडिल-स्कूल के प्रति लड़के का ख़र्च [illegible] मासिक पड़ता है। फ़ीस ।=) आना प्रति मास है।

अँगरेज़ी मिडिल स्कूलों की संख्या १०१ है। ये स्कूल किसी परीक्षा के लिए नहीं पढ़ाते, प्रत्युत हाईस्कूल परीक्षा के कोर्स की तैयारी करते हैं। इनमें १२,००० छात्र शिक्षा प्राप्त करते हैं।

२०३ हाईस्कूल संयुक्त-प्रान्त में हैं। ४८ स्कूलों का सरकार-द्वारा, ४ स्कूलों का म्युनिस्पल-बोर्ड-द्वारा, [illegible] का सरकारी सहायता-प्राप्त सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा, ३ स्कूलों का रजिस्टर्ड संस्थाओं-द्वारा (जिन्हें सरकारी सहायता नहीं मिलती) संचालन होता है। इनमें ८४,[illegible] छात्र पढ़ते हैं। हाई-स्कूल-परीक्षा में १४,००० सम्मिलित हुए, जिनमें से ८,००० पास हो गये।

इस प्रान्त में ३४ इन्टरमीडियेट कालेज हैं। इनमें [illegible] सरकारी, २४ सहायता-प्राप्त तथा २ सहायता-रहित। इनमें ६,००० छात्र हैं। ५,००० छात्र इन्टरमीडियेट परीक्षा में सम्मिलित होते हैं। ३,००० पास हो जाते हैं।

अध्यापकों के शिक्षण के लिए ६ संस्थायें हैं। [illegible] कालेज ग्रेजुएटों को शिक्षण देते हैं। इन कालेजों की पदवी एल० टी० या बी० टी० है। ३ स्कूलों में स्कूल-परीक्षोत्तीर्ण छात्र शिक्षण प्राप्त करते हैं। इन्हें [illegible] टी० की पदवी मिलती है।

इस प्रकार रिपोर्ट में शिक्षा-प्रणाली का दिग्दर्शन कराकर उसके सम्बन्ध में कमिटी ने निम्नलिखित सिफ़ारिशें की हैं—

(१) हाईस्कूल-परीक्षा के लिए दो प्रकार के सार्टीफ़िकेट होने चाहिए। एक प्रमाणपत्र-द्वारा यह प्रमाणित हो कि माध्यमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम समाप्त कर लिया है और परीक्षोत्तीर्ण छात्र औद्योगिक, व्यापारिक तथा कृषि-स्कूलों में प्रविष्ट होने के योग्य है। दूसरे प्रमाणपत्र-द्वारा यह प्रमाणित होना चाहिए कि परीक्षोत्तीर्ण छात्र आर्ट (कला) या सायंस (विज्ञान) के इन्टर्मीडियेट कालेज में भर्ती होने के योग्य है।

(२) इन्टर्मीडियेट का पाठ्यक्रम, यदि हाई स्कूल का पाठ्यक्रम १ वर्ष कम कर दिया जाय, ३ वर्ष का कर देना चाहिए। इन्टर्मीडियेट का पाठ्यक्रम चार प्रकार का होना चाहिए— (१) औद्योगिक, (२) व्यापारिक, (३) कृषि, (४) कला और विज्ञान।

(३) कमिटी की यह सम्मति है कि इन्टर्मीडियेट पाठ्य-क्रम में विविध विषयों की क्रियात्मक शिक्षा सम्मिलित की जानी चाहिए।

(४) ऐसी संस्थाओं की स्थापना की जानी चाहिए जो लड़कों को उनके भावी जीवनोपार्जन-सम्बन्धी व्यवसायों के सम्बन्ध में परामर्श दें।

औद्योगिक और व्यावसायिक शिक्षा

सन् १९०७ की नैनीताल-कान्फ़रेंस के बाद सरकार ने इस प्रान्त में औद्योगिक शिक्षा की ओर कुछ ध्यान दिया है। सन् १९१० में केवल ४ सरकारी संस्थायें थीं जिनमें उद्योग-धन्धों की शिक्षा का प्रबन्ध था। इस समय कानपुर के हरकोर्ट-बटलर-इन्स्टीट्यूट के अतिरिक्त २४ सरकारी स्कूल हैं, जिनमें उद्योग-शिक्षा दी जाती है। ८६ संस्थायें ऐसी हैं जिन्हें सरकारी सहायता मिलती है। ७,३८,००० रुपये प्रतिवर्ष औद्योगिक शिक्षा पर व्यय किये जाते हैं।

इस सम्बन्ध में बेकारी-कमिटी ने जो जाँच-पड़ताल की और उससे जो निष्कर्ष निर्धारित किये हैं वे संक्षेप में इस प्रकार हैं—

(१) संयुक्त-प्रान्त में औद्योगिक और व्यावसायिक शिक्षा की सबसे अधिक आवश्यकता है।

(२) स्वेरवाट-कमिटी ने जो सिफ़ारिशें की हैं उनसे बेकारी-कमिटी पूर्णतया सहमत है—

(१) औद्योगिक शिक्षण के लिए पर्याप्त सुविधायें दी जायँ।

(२) साधारण स्कूलों में जो औद्योगिक शिक्षा दी जाय वह ऐसी होनी चाहिए जिससे छात्रों में औद्योगिक बुद्धि का आविर्भाव प्रारम्भिक अवस्था में हो जाय।

(३) ऐसा प्रबन्ध किया जाय जिससे फ़र्म, कारख़ाने आदि में छात्र उचित फ़ीस देकर शिक्षण प्राप्त कर सकें।

(४) कारीगरों के लड़कों की शिक्षा के लिए प्राथमिक औद्योगिक स्कूल स्थापित किये जायँ।

(३) औद्योगिक शिक्षा का पुनर्संगठन और पुनर्निर्माण इस प्रकार से किया जाय जिससे छात्रों को अधिक सुविधायें और योग्यता प्राप्त हो सके।

(४) कमिटी की सम्मति में नवीन औद्योगिक और व्यावसायिक स्कूलों की स्थापना ही पर्याप्त नहीं है और न वर्तमान स्कूलों का पुनर्संगठन ही यथेष्ट हो सकता है। जब तक ऐसा कोई प्रबन्ध नहीं किया जायगा जिससे टेक्निकल स्कूलों से निकले हुए छात्र नये धन्धों के कार्यों में लग न जायँ तब तक बेकारी की समस्या हल नहीं हो सकती। यदि इन स्कूलों की उपज की ठीक प्रकार से सन्तोषप्रद खपत नहीं हुई तो सरकार और समाज के सामने नवीन कठिनाइयाँ प्रस्तुत हो जायँगी।

(५) प्रान्त के कतिपय भागों में व्यवसाय-पथप्रदर्शक अधिकारियों की नियुक्ति उद्योग-विभाग-द्वारा की जानी चाहिए। इस अधिकारी-वर्ग में उद्योग-शिक्षकों तथा विविध उद्योगों के प्रतिनिधियों की नियुक्ति होनी चाहिए। इन अधिकारियों को केवल मात्र औद्योगिक शिक्षा को ही प्रोत्साहन न देना चाहिए, प्रत्युत स्थानीय तथा आस-पास की शिक्षा-संस्थाओं और उद्योगों में प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए। यही नहीं, इन स्कूलों से निकले छात्रों को इन उद्योगों में रोज़गारी प्राप्त कराने में सहायता देनी चाहिए।

(६) सरकार के उद्योग-विभाग को इस संबंध में आवश्यक सूचनाओं को प्रकाशित कर उद्योगों में दिलचस्पी रखनेवाली जनता का हितसाधन करना चाहिए।

विश्व विद्यालय की शिक्षा

इन प्रान्तों में पाँच विश्व-विद्यालय हैं—आगरा, लखनऊ, इलाहाबाद, हिन्दू-यूनीवर्सिटी बनारस, मुसलिम-यूनीवर्सिटी अलीगढ़। सन् १९३३-३४ में ७,८६७ छात्र इन विश्व-विद्यालयों में शिक्षा पा रहे थे। संयुक्त-प्रान्त की जन संख्या ४,८४,०८,७६३ है। सन् १९३२ में विश्व-विद्यालयों में १०,६८७ छात्र थे। सन् १९३२-३३ में १,३९७ छात्रों ने 'आर्ट' और 'सायंस' में उपाधियाँ प्राप्त कीं। इन छात्रों या स्नातकों में क़ानून या मेडिकल या इंजीनियरिङ्ग के स्नातक सम्मिलित नहीं हैं। इस प्रकार यूनीवर्सिटियों के छात्रों का जन-संख्या से अनुपात १:५५३५ का है और स्नातकों का जन-संख्या से अनुपात है १:३४८०९। अर्थात् ३४,८०९ व्यक्तियों में १ ग्रेजुएट है। इन आँकड़ों का अध्ययन करने के बाद हम इस परिणाम पर कदापि नहीं पहुँचते कि जन-संख्या की दृष्टि से ग्रेजुएटों की संख्या बहुत अधिक है। परन्तु बेकारी की समस्या तो इन आँकड़ों से कूतना उचित नहीं। वास्तव में प्रश्न तो यह है कि यूनीवर्सिटी की डिग्री प्राप्त करने के बाद ये ग्रेजुएट जीविकोपार्जन में कहाँ तक समर्थ होते हैं। बेकारी की भीषणता का अनुभव इसी विचार-सरणि-द्वारा हो सकता है। यूनीवर्सिटी की फ़ीस बढ़ा दी जाय, इस प्रश्न पर कमिटी के सदस्यों में मतभेद है। कमिटी ने इस विषय में अधिक विस्तार से जाँच नहीं की है; अतः कोई सिफ़ारिश करना भी संभव नहीं।

विश्व-विद्यालय की शिक्षा के सम्बन्ध में प्रयाग-विश्व-विद्यालय के वाइस चान्सलर पंडित इक़बाल नारायण गुर्टू ने अपने वक्तव्य में कुछ ज्ञानवर्द्धक और मनोरंजक बातें लिखी हैं। हम संक्षेप में उन्हें यहाँ देते हैं—

"जर्मन-विश्व-विद्यालयों में सन् १९२४ में ६०,००० छात्र थे। सन् १९३० में १ लाख तक संख्या हो गई। ऐसा अनुमान किया जाता है कि विगत ७५ वर्षों में जहाँ अमरीका की जन-संख्या तिगुनी हो गई, वहाँ यूनीवर्सिटियों में छात्रों की संख्या १४ गुनी अधिक हो गई। पिछले २० वर्षों में अमरीका के विशाल विश्व-विद्यालयों की अतिशय वृद्धि हुई है। फ़्रांस के विश्व-विद्यालयों की भी यही दशा है। जर्मन-विश्वविद्यालयों के छात्रों का जन-संख्या से अनुपात १:६१०, स्काटलेंड के विश्वविद्यालयों के छात्रों का जन-संख्या से अनुपात १:४५५ तथा संयुक्त-राष्ट्र (अमरीका) के छात्रों और जन-संख्या का अनुपात १:१२५ का है।"

बेकारी कमिटी की यह दृढ़ सम्मति है कि विश्वविद्यालयों में छात्रों की संख्या में न्यूनता करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उच्च शिक्षा अधिक क़ीमती बना दी जाय अथवा मनमाने ढंग से कम छात्र भर्ती किये जायँ। ये दोनों ही ढंग किसी भी दशा में सन्तोषप्रद फल नहीं प्रदान कर सकते।

(१) कमिटी इस परिणाम पर पहुँची है कि विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करनेवाले छात्रों की संख्या बहुत अधिक बढ़ गई है।

(२) विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करनेवाले छात्रों की संख्या में न्यूनता करने के लिए स्वेच्छापूर्वक कम भर्ती करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि कमिटी की (१) माध्यमिक शिक्षा-संबन्धी, (२) टेक्निकल व औद्योगिक शिक्षा-सम्बन्धी तथा (३) निम्नस्थ सरकारी नौकरी के लिए आयु-अवधि कम कर देने के सम्बन्ध में सिफ़ारिशें कार्यान्वित की गईं तो विश्वविद्यालयों में प्रवेश के इच्छुक छात्रों की संख्या स्वतः कम हो जायगी।

(३) यूनीवर्सिटी में छात्रों का प्रवेश करते समय बड़ी सावधानी और सख़्ती से काम लेना चाहिए। जिन छात्रों ने इन्टर्मीडियट या हाईस्कूल की परीक्षा तृतीय श्रेणी में पास की हो उनको भर्ती करना अनिवार्य न माना जाय। यदि तृतीय श्रेणी किसी अनिवार्य कारण अथवा रोग अथवा स्वास्थ्यहीनता के कारण मिली हो तो उस पर विचार कर छात्र ले लिया जाय।

(४) कमिटी केवल ज्ञान के लिए शिक्षा प्राप्त करने की प्रवृत्ति को बुरा नहीं समझती। परन्तु वैज्ञानिक और व्यावसायिक शिक्षा पर ही अधिक ज़ोर दिया जाय।

(५) विश्वविद्यालयों के विज्ञान-विभाग में, धनाभाव के कारण, एक परिमित सीमा तक ही कार्य होता है। प्रयाग, बनारस और अलीगढ़ की यूनीवर्सिटियों में

कुछ उद्योग-वेत्ताओं ने उद्योग-सम्बन्धी समस्यायें जाँच और परीक्षा के लिए भेजी हैं। विज्ञान-विभागों के परीक्षण-कार्य और उद्योगों में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया जाना चाहिए। उद्योगों की आवश्यकताओं को दृष्टि में रख कर 'रिसर्च' की जानी चाहिए। इस कार्य से देश के आर्थिक विकास में बहुत सुधार हो सकता है। कमिटी की यह राय है कि यूनीवर्सिटी के विज्ञान-विभाग को जो धन-सम्बन्धी सहायता सरकार-द्वारा की जाय तब उसका एक निश्चित भाग उद्योग-सम्बंधी रिसर्च के लिए सुरक्षित रख दिया जाय। उसके लिए यूनीवर्सिटी की 'सीनेट' या 'कोर्ट' में विविध उद्योगों के हितों का प्रतिनिधित्व अतीव आवश्यक है।

(६) सब विश्वविद्यालयों को परस्पर मिलकर एक समान स्टैंडर्ड का निश्चय कर लेना चाहिए, जिससे परस्पर प्रतिस्पर्द्धा न होने पावे।

(७) एक परामर्शदायिनी समिति का निर्माण किया जाय, जो शिक्षा-मंत्रि-मंडल को विश्वविद्यालयों में 'रिसर्च' के प्रोत्साहन के निमित्त आर्थिक सहायता के सम्बन्ध में परामर्श दे और उस समिति में धन्धे, व्यवसाय, व्यापार, उद्योग तथा कृषि के प्रतिनिधि भी हों।

(८) ब्रिटेन में भारतीय छात्र अपनी शिक्षा के निमित्त ९.७½ लाख रुपये प्रतिवर्ष व्यय करते हैं। २५०० विद्यार्थी ब्रिटेन में शिक्षा पाते हैं। लन्दन के श्री सुवर्ण एस० सिंह का कथन है कि बहुत कम विद्यार्थी ऐसे हैं जो ज्ञानोपार्जन के हेतु इँग्लैंड जाते हैं अथवा अपने विषय में पांडित्य या प्रवीणता प्राप्त करने की इच्छा से जाते हैं। अधिकांश विद्यार्थी वहाँ 'डिग्री' प्राप्त करने की लालसा से जाते हैं, जिससे भारत के बाज़ार में उनका मूल्य अधिक हो जाय। लन्दन तथा दूसरे शहरों के पी० एच० डी० अथवा डी० एस० सी० नौकरियाँ प्राप्त करने में विफल रहते हैं।

अतः विदेशों में उन्हीं विद्यार्थियों को शिक्षा प्राप्त करने जाना चाहिए जिनका विद्यार्थी-जीवन भारत में बहुत ही शानदार रहा हो। जो वास्तव में ज्ञान प्राप्त कर अपने देश में उसका प्रकाश करने के लिए लालायित हों वही विदेशों में जाकर अपना धन व्यय करें। कमिटी की यह राय है कि यदि ९.७½ लाख रुपये भारतीय विश्व विद्यालयों की शिक्षा के सुधार में व्यय किये जायँ तो स्थिति में बहुत सुधार हो सकता है।

संरक्षकों एवं छात्रों को व्यवसायों के सम्बन्ध में परामर्श

विदेशों में शिक्षितों की बेकारी ने मनोवैज्ञानिकों का ध्यान एक बड़े महत्त्वपूर्ण प्रश्न की ओर आकर्षित किया है। छात्रों और उनके अभिभावकों को परामर्श देने की आवश्यकता का अनुभव बड़े बड़े विद्वान् मनोवैज्ञानिकों को होने लगा है। जब छात्र स्कूल में पढ़ने के लिए जाता है तब माता-पिता के लिए यह आवश्यक है कि वह किसी मनोविज्ञान के प्रोफ़ेसर से अपने पुत्र की मानसिक परीक्षा कराकर यह निश्चय करे कि वह अपने भावी जीवन में किस व्यवसाय को ग्रहण करने की योग्यता रखता है। क्या उसकी मानसिक शक्तियाँ इस योग्य हैं कि वे विश्वविद्यालय की शिक्षा को ग्रहण कर सकेंगी? क्या उसका मानसिक विकास कला के क्षेत्र में चमत्कार दिखला सकेगा? क्या उसका मस्तिष्क विज्ञान की शिक्षा ग्रहण करने के योग्य है? क्या उसका मस्तिष्क उद्योग-धन्धे, व्यवसाय, व्यापार अथवा कृषि आदि को भली भाँति विकसित करने में कुछ सहायक बन सकता है? इन और ऐसे ही अनेक प्रश्नों पर विचार कर माता-पिता व उसके पुत्र को परामर्श प्राप्त करना चाहिए।

स्कूलों के मुख्याध्यापकों को चाहिए कि वे प्रारम्भ से अपने छात्रों की मानसिक शक्तियों का अध्ययन करें। ऐसा करने से वे उनके माता-पिताओं को सच्ची और हितप्रद सलाह दे सकेंगे।

यदि हमारे स्कूलों में वर्तमान मनोवैज्ञानिक पद्धतियों के अध्ययन में कुशल तथा प्रवीण अध्यापक न मिलें तो इँग्लेंड से इस प्रकार के मनोवैज्ञानिक बुला लिये जायँ और वे हमारे स्कूलों के अध्यापकों को शिक्षण दें।

विविध विश्वविद्यालयों में शिक्षा-मनोविज्ञान तथा परीक्षणात्मक मनोविज्ञान-सम्बन्धी खोज के लिए यथेष्ट प्रबन्ध होना चाहिए।

उपसंहार

सरकार की नीति

(१)

विगत मार्च २ व ३ सन् १९३६ को लखनऊ में

संयुक्त प्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौंसिल में यू० पी० बेकारी कमेटी की रिपोर्ट पर जो वाद-विवाद, बहस और भाषण हुए उनसे यह स्पष्ट हो गया है कि सरकार और समाज दोनों ही बेकारी की भीषणता को स्वीकार करते हैं।

परन्तु सरकार बेकारी को एक 'सबसे अधिक गम्भीर समस्या' स्वीकार करती हुई भी उसके निवारण के लिए कोई कारगर और कुशल साधन काम में लाने को तैयार नहीं है।

बेकारी-कमिटी की रिपोर्ट में जो सिफ़ारिशें की गई हैं वे कई भागों में विभाजित की जा सकती हैं।

(१) कतिपय सिफ़ारिशें ऐसी हैं जो उसी समय मनोवाञ्छित फल प्रदान कर सकती हैं जब शिक्षित युवकों, उनके अभिभावकों और माता-पिताओं की मनोवृत्ति में मौलिक और क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जाय। शिक्षित नवयुवकों को डाक्टरी, वकालत आदि जैसे व्यवसायों के पीछे पागल न हो जाना चाहिए, सरकारी नौकरियों को अपना अन्तिम ध्येय न बनाना चाहिए। इनके अतिरिक्त और अनेक व्यवसाय और अर्थोत्पादक धन्धे हैं जो कम सम्माननीय और कम लाभदायक नहीं हैं।

(२) रिपोर्ट में ऐसी भी अनेक सिफ़ारिशें हैं जो केवल भारत-सरकार-द्वारा ही कार्यरूप में परिणत की जा सकती हैं। मुद्रानीति, विनिमय, आयात-निर्यात-कर आदि ऐसे प्रश्न हैं जिनका नियमन भारत-सरकार के हाथों में है। प्रान्तीय सरकार इनके सम्बन्ध में भारत-सरकार से सिफ़ारिश कर सकती है।

(३) तीसरी प्रकार की सिफ़ारिशें वे हैं जिन्हें प्रान्तीय सरकार कार्य-रूप में परिणत कर सकती है। प्रान्तीय सरकार-द्वारा कार्यान्वित होने योग्य इन सिफ़ारिशों में से कुछ ऐसी हैं जिनके लिए नवीन व्यय की आवश्यकता नहीं है। उदाहरणार्थ, शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन करने के लिए जो सिफ़ारिशें की गई हैं उनके लिए धन की आवश्यकता नहीं है। प्रान्तीय सरकार को इन और ऐसी सिफ़ारिशों को कार्यरूप में लाने के लिए शीघ्र प्रयास करना चाहिए। बहुत समय तक इनकी परीक्षा में समय लगाना व्यर्थ के लिए एक लँगड़ा बहाना ढूँढ़ना है। शिक्षा-सचिव तथा उनके अधीनस्थ अफ़सरों का यह कर्तव्य है कि वे शिक्षा-सम्बन्धी ऐसी सिफ़ारिशों को चुन लें और उन्हें शीघ्र ही [illegible] लाने का प्रयत्न करें।

कुछ सिफ़ारिशें ऐसी हैं जिनको कार्यान्वित [illegible] निमित्त नवीन आय की आवश्यकता है।

अस्तु, यदि सरकार बेकारी को दूर करना [illegible] तो उसे बड़ी लगन और उत्साह से इस बुराई को [illegible] में सभी उचित उपायों का प्रयोग करना चाहिए।

समाज का कर्त्तव्य

(२)

बेकारी-कमिटी की रिपोर्ट पर [illegible] करते हुए [illegible] कौंसिल में सर [illegible] ने जवहादुर सप्रू ने कहा है [illegible] है कि यह समस्या ऐसी है जिसका समाधान किसी [illegible] या विदेशी सरकार के द्वारा उस समय तक सम्भव [illegible] जब तक सरकार और भारतीय समाज अति अधिक [illegible] से इसका समाधान न करें। हमें अपना दृष्टि-कोण [illegible] बदल देना होगा।"

इन शब्दों में इस बात पर ज़ोर दिया गया [illegible] बेकारी को दूर करने का सारा दायित्व केवल सर[illegible] पर ही नहीं है, समाज भी इसके लिए उत्तरदायी [illegible] साहब ने आगे कहा है—

"अगर मैं ६० वर्ष का न होता, परन्तु २० वर्ष [illegible] और मुझे यह मालूम होता कि समाज ने जिसका [illegible] सदस्य हूँ और सरकार ने जिसकी मैं एक प्रजा हूँ [illegible] यह असम्भव कर दिया है कि मैं स्वनोचित [illegible] से इतना प्राप्त कर सकूँ कि मुझे दिन में दो [illegible] मिल जाय, तो क्यों मेरी विचार-धारा वैसी न होती [illegible] कि आज-कल के नवयुवकों की है। इसलिए मैं [illegible] कि इस राजनैतिक असन्तोष, इस सरकार-विरोधी [illegible] का उत्तरदायित्व उन्हीं पर है जो आज पदों को [illegible] किये हुए हैं, जो इस कौंसिल में सम्मिलित हैं, जिन्होंने नवयुवकों के प्रति अपने कर्त्तव्य की अवहेलना [illegible] यह समय इस मामले में आन्दोलन करने का है [illegible] हम उस बाढ़ में बह जायँगे, जो मुझे स्पष्ट दिखला[illegible] है, जिससे यह प्रान्त जलमग्न हो जायगा यदि इस [illegible] प्रौढ़ व्यक्ति उन समस्याओं में कोई दिलचस्पी [illegible] जिनका सम्बन्ध नवयुवकों से है।"

पाठकों के पत्र

ठाकुर गोपालशरणसिंह

इस मास (जुलाई) की 'सरस्वती' में ठाकुर गोपालशरणसिंह की जो सुन्दर कविता प्रकाशित हुई है उसके लिए मैं 'सरस्वती' के एक पाठक की हैसियत से उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

कहाँ जावें, किसको सुनावें दुःख-गाथा निज,
कौन सुनता है दुःखियों की त्रिभुवन में ॥

ठाकुर साहब ने इन पंक्तियों में जो बात कही है उसे अबीसीनिया के पराजित सम्राट् हेल सिलासी ने योरप के सभ्य राष्ट्रों के सामने अपनी सहायता की विफल अपील के द्वारा साकार रूप दे दिया है। मेरा ख़याल है कि ये पंक्तियाँ उस दुःखी सम्राट् के पास भेजी जायँ तो उन्हें बहुत कुछ सान्त्वना मिल सकती है। कविता का एक उद्देश दुःखी हृदय को शान्ति प्रदान करना भी है और इस दृष्टि से ठाकुर साहब की यह कविता अनुपम है।

—भालचन्द्र शर्मा, कानपुर

हिन्दू-स्त्रियों का अपहरण

हिन्दू-स्त्रियों के अपहरण के सम्बन्ध में श्रीयुत दत्तात्रय बापले का लेख अधिकांश पाठकों ने पढ़ा होगा। लेखक महोदय ने इसके बहुत-से कारण बताये हैं। वे सब ठीक हो सकते हैं। पर मेरी राय में इसका मुख्य कारण यह है कि हिन्दू-स्त्री को आर्थिक स्वाधीनता नहीं है। पिता की जायदाद में लड़की का कोई हक़ नहीं और विधवा होने पर पति की जायदाद में भी उसे कुछ नहीं मिलता। इस सम्बन्ध में जब तक उपयुक्त क़ानून नहीं बनेंगे तथा स्त्रियों को आर्थिक स्वाधीनता प्रदान करने के और भी उपाय नहीं सोचे जायँगे तब तक हिन्दू-स्त्रियों का विधर्मियों के हाथ में जाना रुक नहीं सकेगा।

—रामनारायण खत्री, दिल्ली

नोट—इस सम्बन्ध में हमें एक पत्र श्री लक्ष्मीनारायणसिंह (बांके) का भी प्राप्त हुआ है। आप लिखते हैं—"इस विषय में अभी और भी बातें विचारणीय हैं। क्या कोई महानुभाव इस पर व्यापक दृष्टि डालकर हिन्दू-जनता का उपकार करेंगे?"

काँटों की इच्छा

इस मास (जून) की 'सरस्वती' में मैंने कण्टक शीर्षक कविता बड़ी दिलचस्पी से पढ़ी। कवि ने लिखा है कि फूल इसलिए तोड़े जाते हैं कि उनकी मालायें बनाई जायँ और किसी विजयी के उर में डाली जायँ। पर यदि काँटों के जिह्वा होती तो वे फूल तोड़नेवालों से चिल्ला कर कहते कि मुझे भी ले चलो और उस विजयी के गले में डालो। शायद इस इच्छा से कि फूलों को मलिन करनेवाले उस विजयी के उर में चुभ कर वे उसे समुचित दंड दे सकें। पर काँटों की यह इच्छा कविता से स्पष्ट नहीं होती। क्या कवि महोदय उसे स्पष्ट करने की कृपा करेंगे।

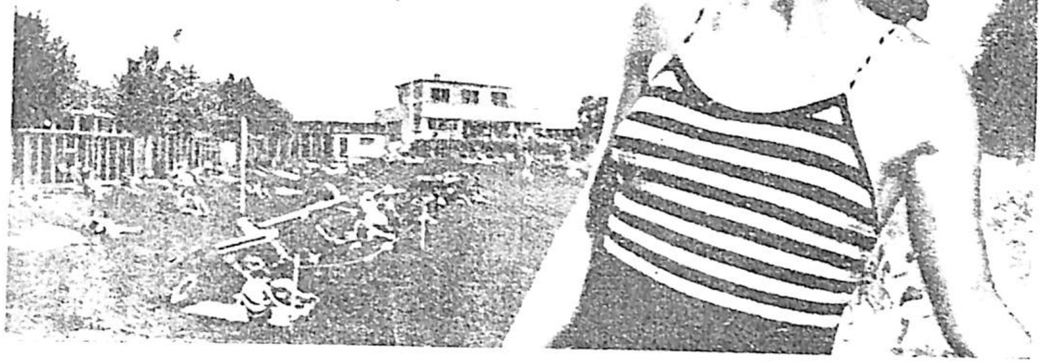
—एक कविता-प्रेमी।

बधाई

मुझे उपन्यास और कहानियों से अत्यधिक प्रेम है। इधर 'सरस्वती' में कई सुन्दर कहानियाँ निकली हैं और एक मज़ेदार धारावाहिक उपन्यास भी छपने लगा है। इस सबके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ। अन्य पत्रों में मुझे कतिपय नामी लेखकों की कहानियाँ पढ़ने को मिली हैं, पर अधिकांश में उनके नाम के सिवा मुझे उनमें कोई रस नहीं मिला। यह हर्ष की बात है कि आप इन नामों के पीछे नहीं पड़ते और चुनकर अच्छी ही कहानी छापते हैं। उदाहरण के लिए मैंने श्री पृथ्वीनाथ शर्मा का कहीं नाम भी न सुना था, पर उनकी 'उदयअस्त' कहानी 'सरस्वती' में पढ़ी तब तबीयत ख़ुश हो गई। श्री दुर्गादास भास्कर और श्री मोहनलाल नेहरू की भी मैंने कहानी-लेखक के रूप में बहुत प्रशंसा नहीं सुनी, पर उनकी भी कहानियाँ ग़ज़ब की होती हैं। मेरा तो ख़याल है कि हिन्दी में अच्छी कहानियों का अभाव नहीं है। अभाव है अच्छे समालोचकों का, जो अच्छी कहानियों को जनता के सामने लावें।

—रामनगीनासिंह, जयपुर-राज्य

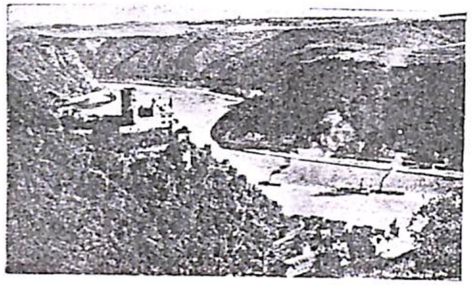
जर्मनी का प्रसिद्ध नगर म्युनिच और अन्य नगर



लेखक, श्रीयुत हरिकेशव घोष

लिपज़िग में मेरे मित्र बाबू बनवारीलाल ने, योरपीय कारख़ानों के भ्रमण से थक जाने के कारण, लन्दन जाने की इच्छा प्रकट की। हमने उनको रोकने की चेष्टा की पर हमें सफलता नहीं मिली। लगभग एक महीने के इस नीरस साथ के लिए उन्होंने हमें बहुत कुछ बुरा भला कहा। वे योरपीय शहरों का नागरिक जीवन देखने आये थे और हमारे कार्य्य-क्रम से स्वभावतः ऊब गये थे। इसलिए एक दिन हमने उन्हें लिपज़िग स्टेशन पर पेरिस और कैले जानेवाली पश्चिम की गाड़ी से रवाना किया। जर्मनी में हमारा कार्य्य-क्रम लम्बा था। हमें कुछ और औद्योगिक केन्द्र देखने थे, ख़ास कर म्युनिच और राइनलैंड जिसका कि जर्मनी को बड़ा गर्व है। लिपज़िग के होटल ने, जहाँ हम ठहरे थे, हमारा कार्य्य-क्रम बनाने में बड़ी सहायता की। परन्तु निश्चित दिन को हम रवाना न हो सके क्योंकि श्रीयुत दास गुप्त के एक मित्र ने हमें गेटे क्लब में ख़ास तौर से आमंत्रित किया। यह प्रबुद्ध जर्मन विद्वान् के एक नमूना थे, पोशाक की ओर से बिलकुल लापरवाह परन्तु प्रथम श्रेणी के कवि। इनका भाषा-सम्बन्धी ज्ञान भी आश्चर्यजनक था। ये विशुद्ध उच्चारण के साथ अँगरेज़ी बोल सकते थे। औसत दर्जे के जर्मनों के लिए, जो सरलता से अपने स्वर पर क़ाबू नहीं पा सकते यह एक चमत्कार ही था।

लिपज़िग का गेटे क्लब जर्मन विद्वानों का बड़ा ही प्रिय आश्रय-स्थल है। यह क्लब वास्तव में एक बहुत बड़े और अत्यन्त पुराने मकान के नीचे के भाग में एक विश्राम-गृह है। यहाँ गेटे प्रायः आया करते थे और वर्तमान संतति से उनकी स्मृति का सान्निध्य स्थापित करने के लिए उनके समय की बहुत सी कुर्सियाँ आदि सुरक्षित रक्खी गई हैं। यहाँ बहुत-से प्रसिद्ध व्यक्तियों ने हमारा स्वागत किया और एक घंटे तक हमने अपने देश के महान् संस्कृत के कवियों के सम्बन्ध में बातें कीं। अतिथियों में कई एक प्राच्यविद् भी थे। उनका प्राच्य साहित्य का इतना अध्ययन था कि उन्होंने हमें चकित कर दिया। इसमें सन्देह नहीं कि उनमें से अधिकांश प्राच्य दर्शन का मर्म नहीं समझते थे। तथापि उन्हें इस विषय का यथेष्ट ज्ञान था। हमारे महान् कवि रवीन्द्रनाथ जर्मनी के साहित्यिक मनुष्यों में बहुत विख्यात हैं। उनकी बहुत सी पुस्तकें जर्मन-भाषा में अनूदित हो गई हैं। महात्मा गांधी भी बहुत विख्यात हैं।

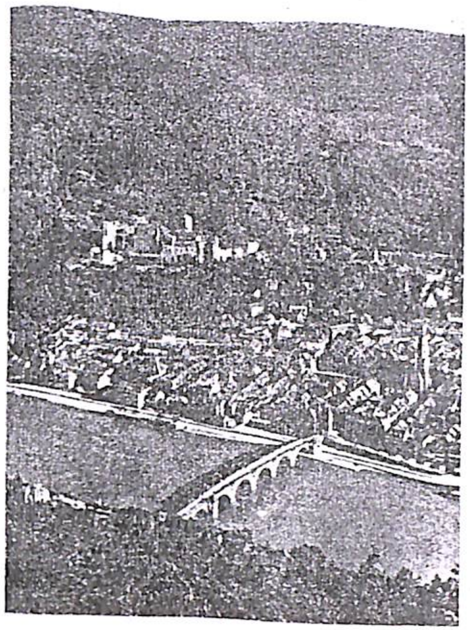


[राइनलैंड का एक दृश्य ।]

पर कांग्रेस से उनके अलग हो जाने से उनकी प्रसिद्धि कुछ कम हो गई है। एक प्रसिद्ध प्रकाशक ने मुझसे गीताञ्जलि की बिक्री के बारे में पूछा। मैंने टाल जाने की कोशिश की क्योंकि भारतवर्ष में पुस्तकों की इतनी कम बिक्री है कि उनका ज़िक्र न करना ही अच्छा है। केवल जर्मन-भाषा में गीताञ्जलि की ५०,००० प्रतियाँ बिक चुकी हैं और लगभग १० योरपीय भाषाओं में वह प्रकाशित हो चुकी है। लिपज़िग में मैंने यह अनुभव किया कि यदि हमारी आर्थिक स्थिति सुधर जाय और लोगों के लिए पुस्तकावलोकन विलास की वस्तु न रह कर आवश्यकता और संस्कृति का एक अङ्ग बन जाय तो भारतवर्ष में भी पुस्तक-प्रकाशन का कार्य्य बहुत अच्छा हो सकता है। आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि वहाँ कुछ लोकप्रिय पुस्तकों की १० लाख से अधिक प्रतियाँ प्रतिवर्ष बिकती हैं। और वहाँ के पत्र पत्रिकाओं की तो कुछ बात ही न पूछिए। सम्पूर्ण जर्मनी में प्रत्येक व्यक्ति उन्हें पढ़ता है। अकेले लिपज़िग नगर में दो लाख से अधिक मनुष्य पुस्तक-प्रकाशन-कार्य्य और इससे सम्बन्ध रखनेवाले व्यवसायों में लगे हैं।

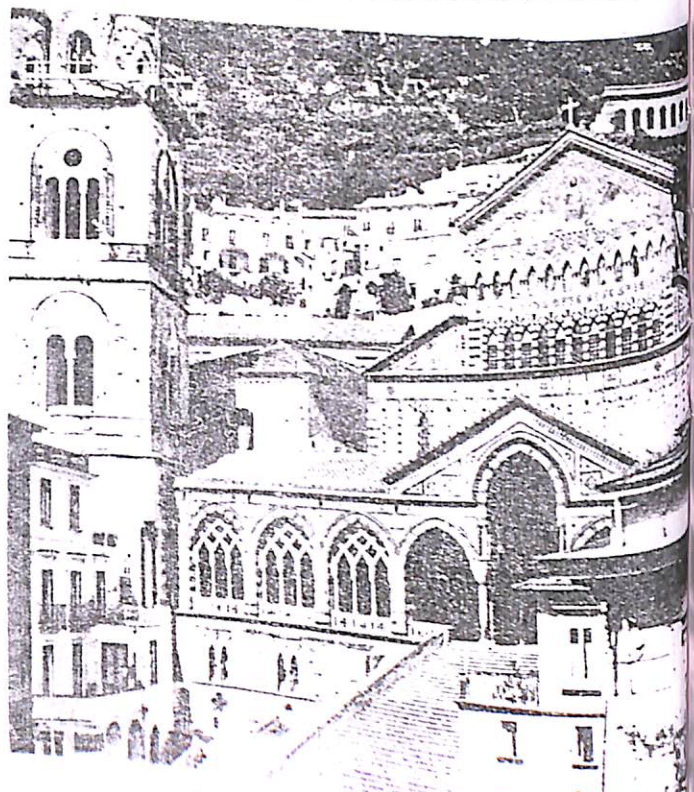
लिपज़िग अपनी वसन्तकालीन प्रदर्शनी के लिए प्रसिद्ध है। उस समय यहाँ योरप के समस्त भागों से लगभग २५ हज़ार यात्री जमा होते हैं। ये नवीन आविष्कार और टेकनिकल उद्योगों की विभिन्न शाखाओं की उन्नति देखने आते हैं। अमरीका, आस्ट्रेलिया, और दक्षिणी अमरीका की रियासतों से बड़े बड़े ख़रीदार यहाँ प्रतिवर्ष आते हैं। यहाँ के बड़े बड़े कारबारियों से माल भेजने के लिए लम्बे चौड़े-इक़रारनामे करते हैं। मुद्रण-व्यवसाय-सम्बन्धी तो इस नगर में योरप की सबसे बड़ी प्रदर्शनी लगती है।

एक दिन प्रातःकाल जब मैं होटल से बाहर आ रहा था, मेरी एक नवयुवक बङ्गाली विद्यार्थी से भेंट हुई। यह विद्यार्थी मेरे कलकत्ते के एक मित्र के दामाद थे और स्थानीय विश्वविद्यालय में वनस्पतिशास्त्र का अध्ययन कर रहे थे। इन्हें यह समाचार मिला था कि मैं लिपज़िग में हूँ इसलिए ये मुझसे मिलने आये थे। ये दो दिन मुझे खेल और सन्ध्या के लोकप्रिय विश्राम-स्थान दिखाने ले गये। सम्पूर्ण महाद्वीप में ग्रीष्मकाल का जनता इतना आनन्द लेती है कि ऊपर से देखने से यह नहीं जान पड़ता कि यह देश अर्थ-संकट से पीड़ित है। सन्ध्या-समय सर्वत्र उपवनों और स्नान के केन्द्रों में प्रमुदित जन-समूह देख पड़ता है

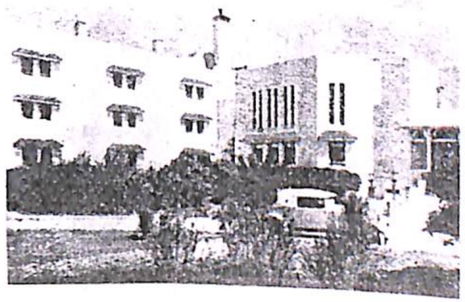


[पहाड़ के ऊपर से हाइल्डेलबर्ग शहर का एक दृश्य ।]

नवयुवक लोग टेनिस खेलते हुए नज़र आते हैं। मज़दूर स्त्रियाँ भी खुले मैदानों में खेल का आनन्द लेती हुई देख पड़ती हैं। सम्पूर्ण वायुमंडल ही आमोद-प्रमोद से पूर्ण प्रतीत होता है। कहीं किसी महामारी का नाम नहीं, बड़े बूढ़े तक टहलने के लिए निकलते हैं और प्रति-संध्या को उपवनों के शीतल समीर का आनन्द लेते हैं। पाइन के वृक्ष पंखा-सा झल कर इस बल-वर्द्धक वायु की वृद्धि करते हैं और विश्रामगृह प्रमुदित युवकों और युवतियों से पूर्ण दिखाई पड़ते हैं। एक दिन जब मैं अपने नवयुवक मित्र के साथ एक बाग़ में घूम रहा था, स्थानीय विश्वविद्यालय-छात्राओं का एक दल हमारी ओर आकृष्ट हो गया। वे हमारे देश के सम्बन्ध में हमसे प्रश्न करने लगीं। उन्हें हमारे देश का अत्यल्प ज्ञान था। उनका ख़याल था कि हमारा देश धन-धान्य से पूर्ण है और उसमें बहुत ही धनी मनुष्य



[११ वीं शताब्दी की एक इमारत ।]



[होटल जिसका मार्ग मैं भूल गया था ।]

निवास करते हैं। योरप के लोगों में हमारी ... दशा के बारे में यह ग़लतफ़हमी इसलिए ... हमारे कुछ राजा और रईस जो इस महाद्वीप की ... करते हैं, होटलों और विश्राम-गृहों में अपार धन ... है। प्रत्येक भारतीय जो साफ़ा बाँधता है, अपार धन ... स्वामी समझा जाता है। प्रत्येक भारतीय बड़ा धनी ... जाता है।

हाइल्डेलबर्ग जर्मन के एक शहर में मुद्रण-यंत्र ... वाले एक कारख़ाने में मुझे थोड़ा-सा काम था। ... लिए एक दिन सुबह के सुहावने समय में एक्सप्रेस ... इस नगर की लम्बी यात्रा के लिए रवाना हो गया ... मार्ग अधिकांश में राइनलैंड होकर गया था। राइन ... की महानदी है और एक अत्यन्त उपजाऊ प्रदेश ...



[मेले में किसान स्त्रियाँ।]



[राइन के तट पर संगमरमर की मूर्ति।]

बहती है। इस नदी के दोनों किनारों पर बहुत-से बड़े बड़े औद्योगिक नगर स्थित हैं। औद्योगिक जर्मनी के लिए यह नदी एक बड़े जलमार्ग का भी काम देती है। नदी के दोनों किनारों पर अंगूर के सुन्दर बाग़ हैं और इन्हीं स्थानों में प्रसिद्ध जर्मन अंगूरी शराब के मुख्य कारखाने हैं। ऐसे एक स्थान पर हमने संगमरमर की एक सुन्दर मूर्ति घोड़े की पीठ पर देखी। इसके एक हाथ में अंगूर और दूसरे में प्याला था।

६ घंटे की यात्रा के बाद सन्ध्या-समय मैं हाइल्डेलबर्ग पहुँचा। मैंने वहाँ के कारख़ाने को अपने आने के सम्बन्ध में पहले ही सूचित कर दिया था इसलिए उनका एक आदमी मुझसे स्टेशन पर मिलने आया। उसने उसी समय मुझे स्टेशन के सामने एक होटल में ठहराया। वहाँ मैंने दूसरे दिन प्रातःकाल तक आराम किया। सारे जर्मनी में ख़ास ख़ास होटलों में अँगरेज़ी बोली जाती है। इससे यात्रियों को बड़ी सुविधा होती है। नहीं तो भोजन और अन्य सुविधाओं के सम्बन्ध में यात्रियों को होटल के कर्मचारियों से कहने में बड़ी कठिनाई होती। इस होटल का प्रधान अभ्यर्थनाकारी भारत में पाँच वर्ष रह चुका था इसलिए उसे एक भारतीय को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरी सुविधाओं की ओर उसने ख़ास तौर से ध्यान दिया। लम्बी यात्रा के बाद मैं थक गया था इसलिए उसने मेरे लिए गर्म पानी से स्नान करने की व्यवस्था कर दी। दिन में बहुत अधिक गर्मी थी इसलिए इस स्नान से मुझे बहुत



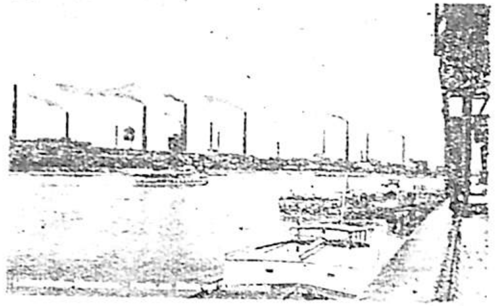
[म्युनिच शहर का एक दृश्य।]

आराम मिला। उसी दिन सन्ध्या को होटल के विश्राम-गृह में स्थानीय साहित्यिक क्लब की एक बड़ी बैठक हुई। ३० के लगभग व्यक्ति उपस्थित थे। ये सब ४० वर्ष से ऊपर थे और साहित्यिक प्रतीत होते थे। सभापति महोदय जो स्थानीय विश्वविद्यालय के प्रधान थे बहुत ही लोकप्रिय व्यक्ति प्रतीत होते थे। बहुत-सी स्त्रियाँ भी उपस्थित थीं।

सबेरे जल-पान के बाद, जिस कारख़ाने में मुझे कुछ काम था, मैं उसमें ले जाया गया। मैंने उनका कारख़ाना भी देखा। दोपहर के भोजन के पहले मैंने अपना काम समाप्त कर दिया। उसके पश्चात् कारख़ाने के डाइरेक्टर ने नगर से तीन मील एक पहाड़ी पर एक शान्तिमय सराय में अपने साथ भोजन करने के लिए आमंत्रित किया। यह अत्यन्त सुन्दर स्थान था जहाँ से नीचे के छोटे नगर का सम्पूर्ण सुन्दर दृश्य दिखाई पड़ता है। हाइल्डेलबर्ग का विश्व-विद्यालय बहुत प्रसिद्ध है और इँगलेंड और अमरीका के विद्यार्थी प्रतिवर्ष यहाँ आते रहते हैं। भोजन के पश्चात् डाइरेक्टर महोदय मुझे हाइल्डेलबर्ग का प्राचीन 'कैसिल' दिखाने ले गये। यह 'कैसिल' पहाड़ी की चोटी पर एक सुन्दर स्थान में स्थित है। यह प्राचीन स्मृति-चिह्न बहुत अच्छी तरह सुरक्षित है और इसे देखकर यात्रीगण मध्य-काल के वैभव का अनुमान कर सकते हैं। इस छोटे नगर में प्रतिवर्ष हज़ारों यात्री आते हैं और पर्वत के छायादार वृक्षों के नीचे शान्तिपूर्वक कई दिवस व्यतीत करते हैं।

हाइल्डेलबर्ग में दो दिन ठहरने के पश्चात् मैं अपने मित्र श्रीयुत दास गुप्त से मानहाईम नगर में जा मिला। यह एक बड़ा व्यापारिक नगर है। राइन नदी नगर के बीच से बहती है और उसके दोनों किनारों पर बड़े बड़े कारख़ाने हैं। नगर के निकट कुछ प्राकृतिक स्नानागार बने हैं। वहाँ गठिया आदि से पीड़ित लोग ग्रीष्मकाल में प्रायः स्नान करने आते हैं। यहाँ ११वीं शताब्दी की कई कारुकार्यमय इमारतें अभी तक मौजूद हैं।

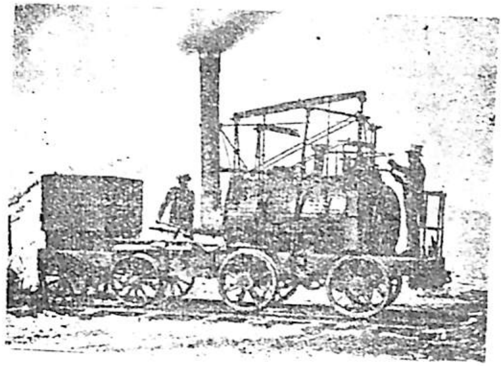
मेरा काम केवल दो घंटे का था और मैं अपने मित्र का साथ नहीं दे सकता था क्योंकि वे एक फ़र्म के साथ व्यस्त थे। इसलिए मैं स्वयं बाहर घूमने निकला। जर्मन एक शब्द भी नहीं बोल सकता था इसलिए कुछ घंटों इधर-उधर घूमने के बाद घर लौटते समय मैं राह भूल गया। बड़ी कठिनाई के बाद मैं एक टैक्सी ड्राइवर से कठिनाई



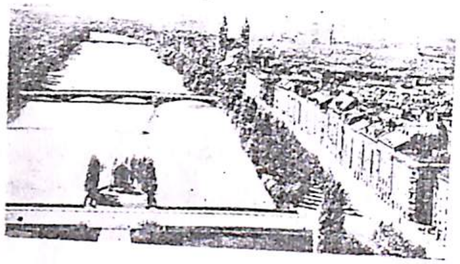
[राइन के किनारे कारख़ानों का एक दृश्य।]



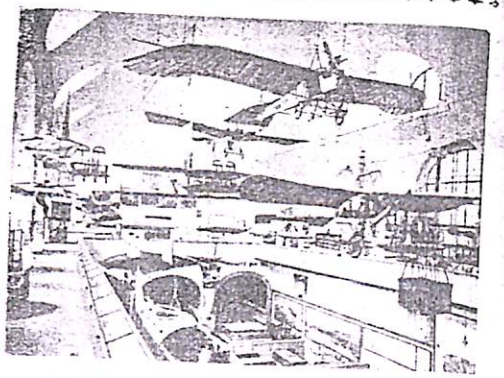
[राइन के जलमार्ग का एक दृश्य।]



[१८१३ में बना जर्मनी का पहला रेल का इंजिन जो म्युज़ियम में अभी तक रक्खा है।]



[नहर के किनारे म्युनिच का प्रसिद्ध म्युज़ियम।]



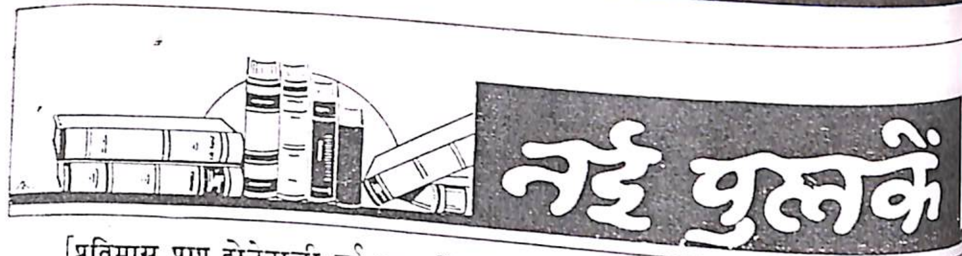
[म्युज़ियम में हवाई जहाज़-सम्बन्धी क्रमविकास का एक विभाग।]

समझा सका कि मुझे कहाँ जाना है। वह तुरन्त मुझे स्टेशन ले गया। चूँकि यह होटल शहर का एक प्रसिद्ध होटल था और उसकी बनावट अतीव आधुनिक तरीक़े की थी। इसलिए मोटरवाला जल्दी मेरा गन्तव्य स्थान समझ गया। होटल इस स्टेशन के प्रधान-द्वार के ठीक सामने था। श्रीयुत दास गुप्त मेरे आसरे में बहुत चिन्तित हो रहे थे और सोचते थे कि मैं कहाँ चला गया। होटल के पोर्टर ने कहा कि मैं सड़कों का एक मानचित्र अँगरेज़ी में आसानी से प्राप्त कर सकता था। ख़ैर, बहुत थक जाने के कारण हमने जल्दी खाना खाया और म्युनिच की लम्बी यात्रा के लिए रेल पर सवार हुए। यह आयतन और प्रसिद्धि में जर्मनी का तीसरा शहर है और शिक्षा का एक विख्यात केन्द्र है।

वर्ष के इस विशेष अवसर पर म्युनिच में 'आक्टोबर मेला' की धूम मची थी। यह एक प्रकार से आस-पास के ज़िलों के किसानों का मेला था जो खलिहान उठ जाने के बाद शहर में दिल बहलाने आते हैं। किसान-स्त्रियाँ अपनी देशी पोशाक से स्थान को बड़ा मनोमोहक बना देती हैं। नगर में ख़ूब भीड़ थी, और कई जगह भटकने के बाद हमें एक दूसरे दर्जे के होटल में मुश्किल से एक कमरा मिला। उत्सव प्रतिदिन आधी रात तक होते रहते हैं। म्युनिच 'मदिरा' के व्यवसाय का एक बहुत बड़ा केन्द्र है। बड़े बड़े ख़ेमों में जिनमें दो दो हज़ार मौज मनानेवाले जमा होते हैं, गिलासों से नहीं बल्कि बड़े बड़े शीशे के लोटों से शराब पीते हैं और सब चिन्तायें छोड़ हँसते, परिहास करते और नाचते हैं, देखने ही लायक़ होता है। कभी कभी इतनी अधिक भीड़ होती है कि बीस क़दम जाने में आधा घंटा से अधिक लग जाता है। रात को हम यह मेला देखने गये और दो घंटे बाद वापस आ गये।

म्युनिच को अपने संसार के सर्वश्रेष्ठ 'टेकनिकल म्युज़ियम' के लिए गर्व है। ज्योतिष, पदार्थविज्ञान, रसायन, यंत्र-निर्माण, आवागमन, और टेकनिकल विभाग के सैकड़ों अन्य विषयों की प्रदर्शनी वस्तुएँ यहाँ इकट्ठी की गई हैं। राष्ट्र की देशभक्ति का यह एक स्मरणीय उदाहरण है। हज़ारों आदमियों—विद्वान्, इंजीनियर, कलाकार, व्यापारी और संस्था ने सेवा या धन के रूप में इसके लिए स्वेच्छापूर्वक त्याग किये हैं। प्रदर्शनी की इमारत ९ एकड़ भूमि में है और उसको घूम कर देखने में लगभग ९ मील चलना पड़ता है। इस संग्रहालय का उद्देश ऐतिहासिक दृष्टि से स्वाभाविक और पारिभाषिक विज्ञान का क्रम-विकास इस प्रकार बतलाना है कि वह सर्वसाधारण की समझ में आ जाय। इसके पुस्तकालय में विज्ञान और टेकनोलाजी पर २ लाख प्राचीन और नवीन पुस्तकें संग्रहीत हैं।

दो विभाग देखने में हमें तीन घंटे से अधिक मिले। शिक्षा की दृष्टि से यह संग्रहालय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यहाँ प्रतिदिन अपने अध्यापकों के साथ हज़ारों विद्यार्थी यहाँ आते हैं और अध्यापकगण उन्हें यह बतलाते हैं कि साइंस की क्रमोन्नति कैसे हुई। यहाँ शताब्दियों से मनुष्य की इस श्रम-साध्य उन्नति का क्रमविकास देखकर नवयुवकों के हृदय में बड़ा उत्साह पैदा होता है।



नई पुस्तकें

[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथासमय प्रकाशित होगा।]

१-२—ज्ञानमण्डल, काशी, की २ पुस्तकें—

(१) **हिन्दी-शब्द-संग्रह**—सम्पादक, श्री मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव और श्रीराजवल्लभसहाय, प्रकाशक, ज्ञान-मण्डल पुस्तक-भण्डार, काशी हैं। सजिल्द पुस्तक का मूल्य ४) तथा सादी का ३॥) है।

(२) **ट्राटस्की की जीवनी**—अनुवादक, श्री रामदास गौड़, एम० ए० और श्रीराजवल्लभसहाय हैं। सजिल्द पुस्तक का मूल्य २) तथा सादी का १॥=) है।

३—**प्रभावती** (उपन्यास)—लेखक, श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', प्रकाशक, सरस्वती-पुस्तक-भण्डार, आर्य-नगर, लखनऊ हैं और मूल्य २) है।

४—**सौन्दर्य-विज्ञान**—लेखक, श्री हरिवंशसिंह शास्त्री, प्रकाशक, श्री काशी-विद्यापीठ, बनारस छावनी है। मूल्य ॥।) है।

५—**उर्दू-हिन्दी-कोष**—सम्पादक, एम० वि० जम्बुनाथन, एम० ए०, बी० एस-सी०, प्रकाशक, एम० वि० शेषाद्रि एण्ड कम्पनी, बलेपेट, बंगलौर सिटी हैं। मूल्य ३) है।

६—**तरंगिणी** (कविता)—रचयिता, पंडित किशोरीदास बाजपेयी शास्त्री, प्रकाशक, सुन्दर-साहित्य-सदन, हरिद्वार हैं। सादी का मूल्य १॥) तथा जिल्दवाली का २) है।

७—**वाटिका-तत्त्व-प्रकाश**—लेखक व प्रकाशक, मुंशी रघुनाथमल राय, रिटायर्ड असिस्टेंट सुपरिंटेंडेंट, रेवन्यू डिपार्टमेंट, जोधपुर हैं। मूल्य १॥) है।

८—**पतितोद्धारक-जैन-धर्म**—लेखक, बाबू कामताप्रसाद जैन, एम० आर० ए० एस०, प्रकाशक, श्री मूलचन्द किसनदास कापड़िया, गांधीचौक, सूरत हैं। मूल्य १) है।

९-११—काशी-पुस्तक-भण्डार, चौक, बनारस सिटी, की तीन पुस्तकें—

(१) **कांग्रेस का इतिहास**—लेखक, कांग्रेस के नेतागण और विद्वान हैं। मूल्य १) है।

(२) **फ़ासिज़्म**—लेखक, श्री रघुनाथसिंह, एम० एल-एल० बी० हैं। मूल्य १) है।

(३) **साम्यवाद का बिगुल**—लेखक, श्री ...नन्द, आचार्य नरेन्द्रदेव, श्रीप्रकाश, श्रीजयप्रकाश ... मेह दामोदरस्वरूप, और श्री ... मूल्य १) है।

१२—**अखिल मनुष्य-जाति** ... की दृष्टि है—लेखक, महर्षि शिवव्रतलाल, एम० ए०, ... दीवान वंशधारीलाल, प्रकाशक, ...-कार्यालय ... और मूल्य ॥।) है।

१३—**अन्तर्नाद** (कविता)—लेखक व ... चतुर्वेदी रामचन्द्र शर्मा, अध्यापक, श्री अहल्या ... स्कूल, खरगोन (होल्कर राज्य) हैं और मूल्य ॥) है।

१४—**मकरन्द** (कविता)—लेखक, श्री ... प्रकाशक, श्री जी० पी० कुलश्रेष्ठ, मेरी ... मूल्य ।=) है।

१५—**वन-संगीत** (प्रथम भाग)—लेखक श्री ... संन्यासी, आचार्य मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल, चित्तौड़ ... मूल्य =)॥ है।

१६—**रँगरेज़ की लड़की** (एकांकी-नाटिका) ... व प्रकाशक श्री अक्षयवट त्रिपाठी, तुलसी-मन्दिर, काशी हैं और मूल्य ।) है।

१७—**श्री हरि-संकीर्तन-माला**—लेखक व प्रकाशक, श्री बदरीलाल अग्रवाल, ...नपुरा, ...

१८—**दैवी नाव** (प्रथम खण्ड)—संपादक ... महानन्द जी, सिद्धान्तालंकार, प्रकाशक, वैदिक ... मंडल, अलीगढ़ हैं। मूल्य -) है।

१९—**ओ३म् संकीर्त्तन**—लेखक, श्री ...नन्द, प्रकाशक, वैदिक-साहित्य-प्रचारिणी सभा, ... और मूल्य)। है।

२०—**झाबुआ में कौन्सिल शासन** ...

श्री कन्हैयालाल दौलतराम वैद्य, प्रधान मंत्री, झाबुआ-राज्य-प्रजा-परिषद, १३९, मीडोज़ स्ट्रीट, फ़ोर्ट बम्बई हैं।

२१—मारवाड़ी सार्वजनिक पुस्तकालय और निःशुल्क वाचनालय, करमियांग का चतुर्थ-वार्षिक कार्य-विवरण—प्रकाशक, श्री लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, "हिन्दी रत्न", मंत्री, मारवाड़ी सार्वजनिक पुस्तकालय, करमियांग हैं।

१—हस्त-सञ्जीवनम—मूल लेखक श्रीयुत मेघ-विजय गणि, प्रकाशक, श्री गणेशदत्त ज्योतिषी, पियरी-कलाँ, काशी हैं। मूल्य—नहीं लिखा है।

प्रस्तुत पुस्तक भारतीय सामुद्रिक शास्त्र (हस्त-रेखा-विज्ञान) का एक प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ है। इसके रचयिता जैनाचार्य श्रीयुत मेघविजय गणक हैं। श्रीयुत गणेशदत्त जी पाठक ने इस पुस्तक का सम्पादन दो प्रतियों के आधार पर किया है एवं विषय को स्पष्ट करने के लिए संस्कृत टीका तथा हिन्दी में अर्थ भी दे दिये हैं। हस्त-रेखाओं के द्वारा नष्ट जन्मपत्र का उद्धार, व्यापार में लाभ-हानि-विचार, आयुनिर्णय, तिलविचार आदि अनेक ज्ञातव्य विषय बड़े ऊहापोह के साथ ग्रन्थकार ने अपने इस ग्रन्थ में लिखे हैं। सम्पादक महोदय ने हस्त चित्र तथा कुण्ड-लियाँ देकर पुस्तक को परम उपयोगी बना दिया है। अन्त में उन्होंने पाश्चात्य पद्धति के अनुसार सामुद्रिक शास्त्र का संक्षिप्त परिचय भी दे दिया है। हिन्दी-भाषा में सभी श्लोकों की विशद व्याख्या नहीं की गई है जिससे केवल हिन्दीज्ञ महानुभावों के लिए पुस्तक अनेक स्थानों पर बोधगम्य नहीं हो सकती। हाथ के बत्तीस लक्षणों के चित्र भी अस्पष्ट तथा अनुपयोगी ही-से हैं, क्योंकि जैसे लक्षणों के चित्र दिये गये हैं वे वास्तविक जगत् में नहीं मिलते। इन संकेतोंवाले हाथों के वास्तविक चित्र देने से तथा हिन्दी व्याख्या को और अधिक विस्तृत तथा स्पष्ट करके लिखने से पुस्तक असंस्कृतज्ञ सर्वसाधारण लोगों के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होगी।

पाश्चात्य तथा भारतीय सामुद्रिक विज्ञान में, विशेषतया रेखाओं के निर्णय में बड़ा भेद दीखता है। इसका भी स्पष्टीकरण यदि किया जाता तो बड़ा अच्छा होता। पुस्तक का सम्पादन बड़े परिश्रम से किया गया है। भारतीय सामुद्रिक शास्त्र के अनेक प्राचीन ग्रन्थ हमारी उदासीनता और अज्ञान से लुके पड़े हैं। पाठक जी ने इस ग्रन्थ का उद्धार और सम्पादन करके वस्तुतः इस उपेक्षित शास्त्र की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया है। क्या ही उत्तम हो यदि पाठक जी इस शास्त्र के अन्यान्य प्राचीन ग्रन्थों को भी प्रकाशित करके इस उपयोगी शास्त्र की रक्षा करें। सामुद्रिक शास्त्र का यह ग्रन्थ सर्वथा संग्रहणीय है।

२—सती शान्तिदेवी—लेखक, डाक्टर बालमुकुन्द चतुर्वेदी, प्रकाशक, पंडित मदनमोहन चतुर्वेदी, बंगाली-घाट, मथुरा हैं। मूल्य ।) है।

पुनर्जन्म का सिद्धान्त हिन्दू-धर्म में सर्वमान्य है। किन्तु अन्य कितने ही धर्मों में पुनर्जन्म स्वीकार नहीं किया जाता। शान्तिदेवी नामक बालिका ने अपने पूर्वजन्म की अनेक बातें और परलोक-सम्बन्धी कई तथ्यों को विश्वसनीय तथा प्रामाणिक पुरुषों के सामने प्रकट करके तथा अपने पूर्वजन्म के पति, देवर, श्वशुर, और पुत्र आदि सम्बन्धियों को पहचान कर पुनर्जन्म के सिद्धान्त की सत्यता को प्रमाणित कर दिया है। इस पुस्तक में लेखक ने शान्तिदेवी की इन्हीं सब बातों तथा मनोरंजक घटनाओं का सरल भाषा में क्रम-वार संकलन किया है। मुख-पृष्ठ पर बालिका का चित्र तथा पुस्तक में उसके पूर्वजन्म के पुत्र, पति, देवर और श्वशुर महोदयों के चित्र दिये गये हैं। शान्तिदेवी के पूर्वजन्म के पति पंडित केदारनाथ चतुर्वेदी ने पुस्तक में वर्णित सभी बातों के सत्य होने का साक्ष्य दिया है। पुस्तक के पिछले भाग में कुछ तुकबन्दियाँ और भजन भी जोड़ दिये गये हैं। पुस्तक यदि और अधिक वैज्ञानिक ढंग पर लिखी जाती तो उत्तम होता। पुनर्जन्म की इस जीती-जागती साक्षी कुमारी शान्तिदेवी की चमत्कारपूर्ण घटनाओं का वैज्ञानिक अध्ययन तथा लोकरंजन दोनों ही के लिए उपयोग हो सकता है। पुस्तक उपादेय है।

—कैलाशचन्द्र शास्त्री

३-सदाचार, शिष्टाचार और स्वास्थ्य—लेखक, श्री भाई दयाल जैन, बी० ए०, बी० टी०, प्रकाशक, हिन्दी-भवन, हास्पिटल रोड, लाहौर हैं। पृष्ठ-संख्या ७२ और मूल्य ।=) है।

यह पुस्तक अपने नाम के अनुसार तीन परिच्छेदों में विभक्त है। प्रथम परिच्छेद में सदाचार-सम्बन्धी बातों

का विवरण दिया गया है। दूसरे परिच्छेद में विद्यालय, खेल के मैदान, भोजन करते समय तथा अन्य अवसरों पर जिस प्रकार शिष्टतापूर्ण आचरण मनुष्य के लिए उपयोगी हो सकता है उसका विवेचन किया गया है। तीसरे परिच्छेद में स्वास्थ्य-सुधार पर प्रकाश डाला गया है। यह पुस्तक जन-साधारण के लिए विशेष उपयोगी है। इसको पढ़कर बालक, युवा और वृद्ध सभी अपने आचरण और स्वास्थ्य का भली भाँति सुधार कर सकते हैं और समाज की बुराइयों को दूर करने में भी समर्थ हो सकते हैं। पुस्तक की भाषा सरल, सुपाठ्य और छपाई सुन्दर है।

४-५—श्रीसम्पतलाल जी लूणावत की दो पुस्तकें—

(१) महासती मृगावती—लेखक महोदय ने ३३ पृष्ठों की इस छोटी-सी पुस्तक में कौशाम्बी की रानी मृगावती के 'दिव्य' चरित का चित्रण किया है। इसके पढ़ने से प्राचीन भारतीय युवतियों के गौरव और सम्मान का परिचय मिलता है, इसके साथ ही प्राचीन भारतीय चित्रकारी की निपुणता का भी। मृगावती का चरित भारतीय नारियों के लिए आदर्श कहा जा सकता है। यह पुस्तक जैन-धर्म से विशेष सम्बन्ध रखती है, तथापि स्त्रियों के लिए यह एक उपयोगी पुस्तक है। भाषा भी सरल और सुबोध है। छपाई भी सुन्दर है। कई स्थलों पर आवश्यकतानुसार मृगावती के चित्र भी दिये गये हैं। मूल्य केवल ≡) है।

(२) महासती सुन्दरी—८४ पृष्ठों की इस पुस्तक में महासती सुन्दरी के चरित्र का वर्णन किया गया है। इसने जिस प्रकार अपने उद्धार के साथ अपने सारे कुटुम्ब के कल्याण का ध्यान रक्खा है, वह वास्तव में भारतीय स्त्रियों के लिए आदर्श है। इसका आचरण अनेक आपत्तियों के आने पर भी पवित्र बना रहा। लेखक महोदय ने इसे पंडिताऊ ढंग से लिखने का प्रयत्न किया है, जिससे पढ़ते समय पाठकों का चित्त ऊबने-सा लगता है। इसमें जैन-धर्म के सिद्धान्तों का भी बीच बीच में निरूपण किया गया है, जो पुस्तक को धार्मिक बना देता है। तो भी पुस्तक स्त्रियों के लिए उपयोगी है और इसे पढ़कर वे अपने आचरण को भली-भाँति सँभाल सकती हैं। इसकी घटना को पढ़कर पाठक के हृदय में महासती सुन्दरी के प्रति विशेष श्रद्धा उत्पन्न हुए बिना नहीं रह सकती। इसमें भी कई मौक़ों पर सुन्दर चित्रों का समावेश भी किया गया है। मूल्य केवल ॥) है। दोनों पुस्तकों के मिलने का पता—श्रीसम्पतलाल लूणावत, निहाल धर्मशाला, सरदारपुरा, फलोदी (मारवाड़

६—आरोग्य और आनन्दमय जीवन बनाने के उपाय—लेखक, व प्रकाशक, श्रीशिवदत्त शर्मा, उपयोगी ग्रन्थभण्डार, उज्जैन हैं। पृष्ठ-संख्या ६८ और मूल्य ।=) है।

शर्मा जी ने इस छोटी-सी पुस्तक में मानव-जीवन के सुखी बनाने के विषय पर पूर्ण रीति से प्रकाश डाला है। उन्होंने स्वयं अपनी शारीरिक कमज़ोरियाँ—जिन नियमों के बल पर सुधारी हैं उन्हीं का इसमें अधिकतर विवेचन किया है। उनका कथन है कि 'अच्छा खाना और खूब मेहनत करना यही आरोग्यता का मूल मंत्र है'। इस पुस्तक में कसरत करने के ढंगों, प्रातःकाल उठने के फ़ायदों, शारीरिक बीमारियों के दूर करने के उपायों, शारीरिक सफ़ाई तथा अनेक प्रकार के आसनों आदि पर काफ़ी प्रकाश डाला गया है। इन सबका अभ्यास हो जाने पर मनुष्य अपने शरीर को बलिष्ठ और परिश्रमी तथा अपना जीवन सुखमय बना सकता है। मानव-जीवन-सुधार की दृष्टि से यह पुस्तक उपयोगी है। इसकी भाषा सरल और मुहावरेदार है, विषय रोचक तथा सुपाठ्य है। अपने जीवन को सुखी रखने के इच्छुकों को इसे एक बार ज़रूर पढ़ना चाहिए।

—गंगासिंह

७—भारतीय चित्रकला—लेखक, श्रीयुत नानालाल चमनलाल मेहता, आई० सी० एस०, प्रकाशक, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, हैं। इसका मूल्य ६) है।

इस पुस्तक के रचयिता श्रीमान् मेहताजी भारतीय चित्रकला के मार्मिक विद्वान् हैं। उन्होंने भारतीय चित्रकला पर अँगरेज़ी में एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी है। उनकी यह हिन्दी-रचना उससे स्वतन्त्र है। इसमें उन्होंने बाबर के समय से लेकर १८५० तक की भारतीय चित्रकला तथा तत्कालीन चित्रकारों तथा उनके आश्रयदाताओं का विशद वर्णन किया है। उन्होंने भारतीय चित्रकला-सम्बन्धी प्राचीन साहित्य का प्रारम्भ में वर्णन करते हुए यह भी बताया है कि मुसलमानों के आगमन के पहले यहाँ इस कला का कहाँ तक विकास हो चुका था। यह पुस्तक ६ प्रकरणों में विभक्त है। पहले प्रकरण में संस्कृत साहित्यगत चित्रकला-

सम्बन्धी प्रकरणों या स्वतन्त्र पुस्तकों का परिचय देते हुए बताया गया है कि यहाँ इस कला ने कहाँ तक शास्त्रीय रूप ग्रहण कर लिया था। दूसरे प्रकरण में 'प्राचीन चित्र-परम्परा' के शीर्षक में भारतीय चित्रकला के इतिहास तथा उस पर पड़नेवाले भिन्न भिन्न प्रभावों की विवेचना की गई है। तीसरे प्रकरण में इस्लामी सभ्यता और चित्रालेखन का वर्णन किया गया है। इसके बाद मुग़लों के समय की चित्रकला पर प्रकाश डाला गया है। तदुपरान्त दो प्रकरणों में हिन्दू चित्रकला और उसके प्रान्तीय उपभेदों का वर्णन किया गया है। इस प्रकार इस पुस्तक में भारतीय चित्र-कला के इतिहास का बड़े अच्छे ढंग से दिग्दर्शन कराया गया है। इसमें उन्होंने मुग़लकाल तथा उसके बाद के जिन चित्रकारों का वर्णन किया है उनमें से अनेक के चित्रों के नमूने से भी पुस्तकान्त में दे दिये हैं। ऐसे चित्रों की संख्या ४२ है, जिनमें १० चित्र रंगीन भी हैं। इन चित्रों के दे देने से पुस्तक और भी अधिक उपयोगी हो गई है। हिन्दी में यह अपने विषय की कदाचित् पहली पुस्तक है, इसके साथ ही यह प्रामाणिक भी है। चित्रकला के प्रेमियों को इस पुस्तक का अवश्य संग्रह करना चाहिए।

८—कर्तव्य-शिक्षण (हिन्दू-ला)—लेखक व प्रकाशक, 'चिकित्सक-चूड़ामणि पंडित विश्वेश्वरदयालु जी वैद्यराज', सम्पादक अनुभूतयोगमाला, बरालोकपुर, इटावा हैं। पृष्ठ-संख्या १४६ और मूल्य ।।।) है।

चिकित्सक-चूड़ामणि जी ने इस पुस्तक की रचना विशेष उद्देश से की है। उनका कहना है कि इस समय देश में जो अशान्ति फैली हुई है उसका कारण 'वास्तविक शिक्षा' का अभाव है। अतएव शान्ति की स्थापना के उद्देश से उन्होंने यह पुस्तक लिखी है। उनकी सभ्यसमाज से यह भी प्रार्थना है कि वे 'ऐसी पुस्तकों को शिक्षा-कोर्सों में नियुक्त करें'। उनकी यह भी राय है कि हमें 'गवर्नमेंट से प्रार्थना करके प्राचीन रीति के अनुसार न्याय करने के लिए बाध्य करना चाहिए'। और वह प्राचीन रीति नीति क्या है, वह सब उन्होंने अपने इस 'हिन्दू-ला' में लिख दी है। उनके इस हिन्दू-ला में जो दण्ड-विधान है उसका एक नमूना 'चोरों को हाथी के पैरों के नीचे कुचलवा देना' है। लेखक महोदय नई सभ्यता के यहाँ तक विरोधी हैं कि वे 'विज्ञान' को भी त्याज्य समझते हैं! वे स्त्रियों को भी समानता का अधिकार नहीं देना चाहते। ऐसे ही मनोभावों की प्रेरणा से उन्होंने अपने इस 'हिन्दू-ला' में हिन्दू-धर्मशास्त्र के आधार पर सदाचार और न्याय-विधान का अति संक्षेप में निरूपण किया है, परन्तु इस बात का उल्लेख नहीं किया है कि उनका यह 'कर्तव्य-शिक्षण' किस किस स्मृति का सारांश है। यदि ऐसा कर देते तो कम से कम प्राचीनतावादी इसे एक प्रामाणिक पुस्तक समझकर इसका संग्रह तो करते। पुस्तक अच्छी नहीं छपी है। काग़ज़ भी अच्छा नहीं लगाया गया है।

९—स्तोत्र-रत्नावली—श्रद्धालु हिन्दुओं में संस्कृत के स्तोत्रों का बहुत अधिक प्रचार है। ऐसे लोग अपने इष्टदेव के स्तव आदि का पूजाकाल में अवश्य पाठ करते हैं। परन्तु उनमें से कितने ही संस्कृत के न जानने से उन स्तोत्रों का अर्थ नहीं समझ पाते। प्रसन्नता की बात है, गोरखपुर के गीताप्रेस ने यह स्तोत्र-रत्नावली हिन्दी-अनुवाद-सहित प्रकाशित की है। इसमें विनय के ५, शिव के ६, देवी के ६, विष्णु के ७, राम के ७, कृष्ण के १३, भिन्न भिन्न देवों के १० स्तोत्र और ९ प्रकीर्ण-स्तोत्र संकलित किये गये हैं। इनमें प्रायः सभी स्तोत्रों का भक्त लोगों में प्रचार है। अब इनके हिन्दी-अनुवाद-सहित प्रकाशित हो जाने से इनकी उपयोगिता और भी बढ़ गई है। स्तोत्र-प्रेमियों को इस संग्रह से लाभ उठाना चाहिए। इसका मूल्य केवल ।।) है। इसमें (विष्णु, शिव, राम और कृष्ण के) ४ रङ्गीन चित्र भी दिये गये हैं। छपाई अच्छी और काग़ज़ साधारण है।

१०-११—श्रीयुत महेशचंद्रप्रसाद, एम० ए०, की दो पुस्तकें—

(१) प्रबोधचन्द्रोदय नाटक—यह संस्कृत का एक प्रसिद्ध नाटक है। इसकी रचना श्रीकृष्ण मिश्र ने की है। ये चन्देल-नरेश महाराज कीर्तिवर्मा के आश्रय में रहते थे। जब उन्होंने चेदि-नरेश परमपराक्रमी महाराज कर्णदेव को पराजित कर अपने राज्य को स्वतन्त्र किया था, कदाचित् उसकी स्मृति में ११ वीं सदी के अन्त में इस नाटक की रचना हुई थी। इस नाटक में ६ अंक हैं। यह एक अध्यात्म-विषयक नाटक है। इसमें दिखाया गया है कि महामोह प्रबल होकर विवेक को देश से निकाल देता है, पर अन्त में विवेक की जीत होती है। इसमें अनीश्वरवाद के विचारों का ख़ासा उपमर्दन होने से इसके उत्तर में 'ज्ञानसूर्योदय' नाम के संस्कृत-नाटक की रचना श्रीवादिचन्द्र सूरि ने की थी। इससे भी इस नाटक के महत्त्व का प्रमाण मिलता है। इसके पहले तीन अंकों में तत्कालीन समाज के दोषों का दिग्दर्शन कराया गया है। परन्तु अनुवादक महोदय ने इसके तीसरे अंक में देश में एकता की तूती बोलते देख कर 'कुछ उलट फेर' कर दिया है, जिससे मूल के उक्त दोष-दिग्दर्शन का रस जाता रहा। तथापि इस उलट-फेर से नाटक की विशेषता में अन्तर नहीं आने पाया है। अनुवादक महोदय ने इसके अनुवाद में काफ़ी परिश्रम किया है और इसके संस्कृत के पद्यों का भी उन्होंने भिन्न भिन्न छन्दों में ही अनुवाद किया है। प्राचीन साहित्य-प्रेमियों को इस महत्त्वपूर्ण नाटक का संग्रह करना चाहिए। इसका मूल्य ।।) है। छपाई-काग़ज़ भी सुन्दर है।

(२) जातकमाला—यह भी संस्कृत की एक प्राचीन रचना है। इसके प्रणेता आर्यशूर हैं। ये ईसा की दूसरी सदी में मौजूद थे। जातकों में बुद्धदेव के पूर्वजन्म की कथाओं का वर्णन रहता है। ये सभी कथायें उपदेशपरक होती हैं। इस जातकमाला में भी वही सब बातें लिखी गई हैं। अनुवादक महोदय ने इस 'माला' में ३४ जातकों में से १० जातकों का अनुवाद संकलित किया है। उनका यह अनुवाद भी गद्यपद्यमय है, पद्य ब्रजभाषा में विभिन्न छन्दों में हैं। बौद्ध-साहित्य के प्रेमियों को यह पुस्तक अधिक रुचिकर प्रतीत होगी। पृष्ठ-संख्या ८४ और मूल्य ।।।) है।

उपर्युक्त दोनों पुस्तकों के मिलने का पता—श्री महेशचन्द्रप्रसाद एम० ए०, देवाश्रम, आरा (ई० आई० आर०)

१२—चारु चयन—यह मुंशी माधवराम की रचनाओं का संग्रह है। मुंशी जी का जन्म कोई अढ़ाई सौ वर्ष हुए, मारवाड़ के मेड़ता में हुआ था। वे हिन्दी, उर्दू और संस्कृत के पण्डित थे। उन्होंने प्रसिद्ध वृन्द कवि से कविता-रचना की शिक्षा पाई थी। वे जोधपुर-राज्य की ओर से दिल्ली के शाही दरबार में नियुक्त थे। ऐसे ही उच्च पद पर रहते समय उन पर जोधपुर-नरेश का कोप हुआ और वे जेल में डाल दिये गये, जहाँ वे २ वर्ष तक क़ैद रहे। अपने इसी बन्दी-जीवन में उक्त मुंशी जी ने 'शक्तिभक्ति-प्रकाश' नामक काव्य की रचना की, जिसमें उन्होंने देवी के
सम्बन्ध में अपनी भक्ति-भावना का काव्योचित ढङ्ग से
किया है। दुःख की बात है, उनकी यह भव्य रचना आज
लब्ध नहीं है, उसके केवल १४० पद्य प्राप्त हैं, जिन्हें
के प्रसिद्ध हिन्दी-प्रेमी पण्डित हनूमान जी शर्मा ने
रणों में विभक्त कर 'चारु चयन' के नाम से प्रकाशित
है। प्रत्येक प्रकरण में स्थल स्थल पर शर्मा जी ने
जी के पद्यगत भावों की व्याख्या कर दी है, जिससे
का आशय समझने में पूरी सहायता मिलती है।
के भक्तों को इस 'चारु चयन' का अवश्य संग्रह
चाहिए। चौमूँ के श्रीमान् ठाकुर देवीसिंह जी की
से यह बिना मूल्य के वितरणार्थ छपवाया गया
पण्डित हनूमान शर्मा, चौमूँ, जयपुर को लिखने से
प्राप्त होता है।

१३—इन्स्टालमेंट—लेखक श्रीयुत भगवती-
वर्मा, प्रकाशक, लीडर-प्रेस, प्रयाग, हैं। पृष्ठ-संख्या
और मूल्य १) है।

कविवर श्रीयुत भगवतीचरण वर्मा हिन्दी के
पर्याप्त रूप से परिचित हैं। कविता की तरह वे
लेखन में भी सिद्धहस्त हैं। इस संग्रह में उनकी
कहानियाँ दी गई हैं। इसकी सभी कहानियाँ मानव
की कठिन समस्याओं के सुलझाने का सफल प्रयत्न
है। कुछ कहानियों में राष्ट्रीय भावनाओं और
कार्यकर्ताओं की मनोवृत्ति पर भी सुन्दर ढङ्ग से
किया गया है। इसके अतिरिक्त गृहस्थ-जीवन
सामाजिक कुरीतियों और व्यर्थ के ढोंगों पर भी काफ़ी
कई कहानियों द्वारा डाला गया है। कहानियों की भाषा
ही सरल और नागरिक बोल-चाल की होते हुए भी
त्यिक है। इन कहानियों में हमें 'उत्तरदायित्व'
कहानी सबसे उत्तम जान पड़ती है। वास्तव में
मानवीय मनोविकारों का बहुत अच्छा विश्लेषण
गया है। कहानियों के पाठकों को वर्मा जी के इस
का अवश्य अवलोकन करना चाहिए।

१४—अनुराग—(सचित्र मासिक पत्र) सम्पादक
भगवतप्रसाद 'सनातन', प्रकाशक, 'अनुराग' कार्यालय,
बुढ़ाना दरवाज़ा, मेरठ हैं। पृष्ठ-संख्या ५०
मूल्य ३) तथा एक प्रति का मूल्य ।) है। इस
इसका ५ वाँ अंक हमारे सामने है। इस अंक में

२ कवितायें और ९ लेख हैं। इस पत्र के प्रकाशन का मुख्य उद्देश नागरिक शिक्षा का प्रचार करना है। इसकी ओर यह बड़ी सतर्कता से अग्रसर हो रहा है। इस अंक में भी शिक्षा-विषयक कई लेख प्रकाशित हुए हैं। पत्र सुन्दर तथा भाषा सरल और सुपाठ्य है।

१५--**अच्छे भैया (बच्चों का पत्र)**—संपादक, श्री रामपदार्थ शिक्षार्थी और श्री रामकिशोर अग्रवाल, प्रकाशक इंडियन बुक एजेन्सी, ८३ नं० कामताप्रसाद कक्कड़ रोड, इलाहाबाद हैं। वार्षिक मूल्य १।) और एक प्रति का मूल्य ¬)॥ है। यह बच्चों के लिए निकला है और सचित्र है। इसके लेखों आदि की भाषा सरल होती है। छपाई भी सुन्दर है। छोटे बच्चों के लिए उपयोगी है।

१६--**कल्याण का भक्तांक**--'कल्याण' का 'भक्तांक' दूसरी बार छापकर प्रकाशित किया गया है। इस दूसरे संस्करण में पुराने चित्र बदलकर नये सुन्दर चित्र लगाये गये हैं। छपाई आदि भी पहले से सुन्दर है। पर दाम वही ३॥) रक्खा गया है। इस भक्तांक में ७७ लेख हैं। जिनमें अधिकांश में भक्तों का चरित वर्णित है। इनके सिवा २१ कवितायें हैं। ५५ चित्रों में २३ रंगीन चित्र हैं।

१७—**मिथिला-मिहिर**—मिथिला-मिहिर मैथिली भाषा का एक पुराना साप्ताहिक है। यह २९ वर्ष से दरभंगा-नरेश की संरक्षता में दरभंगा से निकल रहा है। इस समय इसके सम्पादक साहित्याचार्य पण्डित सुरेन्द्र झा 'सुमन' हैं। हाल में इसका विशेषांक पुस्तक रूप में निकला है। यह विशेषांक 'मिथिलांक' है। यह दो खंडों में विभक्त है। हिन्दी-खंड में ५० से ऊपर हिन्दी के लेख और कवितायें हैं तथा मैथिली-खंड में ४० के लगभग मैथिली के लेख और कवितायें हैं। अधिकांश लेख अधिकारी विद्वानों के लिखे हुए हैं। इसके पढ़ने से मिथिला की प्राचीन तथा आधुनिक संस्कृत का बहुत कुछ परिचय मिल जाता है। मैथिलों को तो इसका अवश्य ही संग्रह करना चाहिए। पृष्ठ-संख्या १९१+९९=२९० और मूल्य २) है।

१८—**श्रेय का 'श्रीमद्भागवतांक'**—वृन्दावन के 'भजनाश्रम' से गत दो वर्ष से 'श्रेय' नाम का निम्बार्क-सम्प्रदाय का एक धर्म-सम्बन्धी मासिक पत्र निकल रहा है। इसके सम्पादक आचार्य श्री बाल-कृष्ण गोस्वामी तथा श्री इन्द्र ब्रह्मचारी हैं। इसमें कृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी पांडित्य-पूर्ण लेख निकलते हैं। अपने तीसरे वर्ष के प्रवेश पर इसका यह विशेषांक निकला है। इसमें १०६ लेख हैं। इसके अधिकांश लेखों के द्वारा श्रीमद्भागवत के रहस्यों का उद्घाटन किया गया है तथा उनके महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। इसमें ३२ चित्र भी दिये गये हैं, जिनमें ७ रंगीन हैं। पृष्ठ-संख्या ३८० और मूल्य १॥≡) है। कृष्णभक्तों को तथा श्रीमद्भागवतपुराण के प्रेमियों को इस अंक से अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

१९—**मेरी अबीसीनिया-यात्रा**—लेखक पंडित कन्हैयालाल आर्योपदेशक आर्य्य विद्यासभा काशी। पृष्ठ-संख्या ७२, मूल्य ॥)

लेखक महोदय ने आर्य्यसमाज के प्रचार के सिलसिले में विदेशों की बहुत यात्रा की है। इटली और अबीसीनिया का युद्ध आरम्भ होने से पहले आप अबीसीनिया गये थे। प्रस्तुत पुस्तक में आपने अबीसीनिया, उसका पूर्व इतिहास, उसकी वर्तमान अवस्था आदि बातों का बड़े सुन्दर ढंग से वर्णन किया है। अबीसीनिया के रास्ते में जो देश आये हैं उनका भी आपने वर्णन किया है। अबीसीनिया में बहुत-से हिन्दुस्तानी बस गये हैं। उनसे भी आपको मिलने का अवसर मिला है। आपने उनकी स्थिति पर भी प्रकाश डाला है। पुस्तक सामयिक है।

जाग्रत नारियाँ



नवविधान और महिलायें

भारत के नवीन शासन-विधान में महिलाओं का भी एक स्थान होगा। उसके अनुसार देश के शासन को सुन्दर बनाने में वे भी बहुत कुछ योग दे सकेंगी। आवश्यकता इस बात की है कि हमारी देवियाँ अपने इस उत्तरदायित्व को समझें। गत ११ जुलाई को बम्बई में महिलाओं की एक सभा हुई थी। उसमें भाषण करते हुए पंडित हृदयनाथ कुँजरू ने कहा है—

यदि आप लोगों को अधिकार प्राप्त हुए हैं तो आप पर उत्तरदायित्व का भार भी आया है। नये विधान के अन्तर्गत ६० लाख स्त्रियों को वोट देने का अधिकार मिला है और जब आप अपना वोट देने जायँ तो आप योग्य उम्मीदवार को ही—चाहे वह पुरुष हो अथवा स्त्री—अपना वोट दें, जो आपके अधिकारों के लिए लड़े। महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए स्वयं महिलाओं ने ही बहुत काम किया है। आप अपनी तुलना पाश्चात्य देशों में रहनेवाली अपनी बहनों से कीजिए। आप अपने अधिकारों के लिए आन्दोलन कीजिए और उन पर डटी रहिए। अपने घरों में अपना प्रभाव व्यापक बनाइए और अपने बच्चों का विवाह कम आयु में मत कीजिए।

आशा है, कुँजरू जी की बातों पर स्त्रियाँ समुचित ध्यान देंगी।

इँग्लेंड में भारतीय छात्रायें

पाठकों को पता होगा कि श्रीमती दत्त की अध्यक्षता में भारतीय छात्राओं का एक जत्था योरप का पर्य्यटन कर रहा है। जब ये छात्रायें बम्बई में जहाज़ पर सवार हुई थीं तब हमने उनका चित्र 'सरस्वती' में प्रकाशित किया था और उनकी यात्रा की सफलता की आशा प्रकट की थी। हमें प्रसन्नता है कि भारतीय छात्राओं की यह यात्रा खूब सफल रही और उन्हें शिक्षा-सम्बन्धी बहुत-से अनुभव हुए। भारत के हाई कमिश्नर सर फ़ीरोज़खाँ नून ने इंडिया आफ़िस में इनका स्वागत करते हुए कुछ महत्त्वपूर्ण बातें कही हैं, जिनका सारांश यह है—

"इँग्लेंड में मुझे सबसे अधिक खेद यहाँवालों में भारत के प्रति अज्ञान को देखकर होता है। शायद इसमें हमारी ही ग़लती है और अब हमीं को इसे सुधारना भी चाहिए। भारत से आनेवाले अपने देश की सेवा ब्रिटेन को अपनी उस प्राचीन सभ्यता का परिचय देकर कर सकते हैं जिसका हमें अभिमान है। आप इँग्लेंड और योरप के लोगों से खूब मिलिए और उनमें जो भी अच्छी बातें हों उन्हें अपने में लाने का प्रयत्न करिए। इस तरह हमारी सभ्यता और संस्कृत का कोष दिनों दिन बढ़ता ही जायगा। ब्रिटेन के लोगों को प्रभावित करने का सर्वोत्तम उपाय अपने सदाचरण का उदाहरण उनके आगे पेश करना है।"

प्रत्येक भारतीय स्त्री को जिसे योरप की यात्रा करने का अवसर मिले, सर फ़ीरोज़ के इस सदुपदेश का ध्यान रखना चाहिए। वास्तव में यही एक तरीका है जिससे हम भारतीय विदेशियों को प्रभावित कर सकते हैं।

लाहौर की एक घटना

गत ९ जुलाई को स्कूल बन्द होने पर लड़कियाँ अपने घरों को जा रही थीं। मार्ग में एक सिक्ख युवक ने एक लड़की को ज़ोर से कन्धे से धक्का दे दिया। उस लड़की ने अपने आपको गिरने से बचाकर तुरन्त एक मुक्का उस युवक की पीठ पर मारा। साथवाली लड़की ने फ़ुर्ती से अपने पाँव का जूता उतार कर उसकी पीठ पर रसीद किया। अभी पीछे की दो लड़कियाँ बढ़कर अपनी बहनों का अनुकरण करने ही लगी थीं कि वह युवक भागकर बाज़ार में चला गया। दूसरे दिन उन लड़कियों को स्कूल के मैनेजर साहब ने एक एक रुपया इनाम दिया।

लाहौर की इन छात्राओं की हम प्रशंसा करते हैं। इस प्रकार की घटनायें ऐसे ही प्रतीकार से रुक सकती हैं।



["हेमप्रभा गुप्ता ला० कन्हैयालाल बैङ्कर की कन्या ने पञ्जाब यूनीवर्सिटी की सन् १९३६ की मैट्रीक्युलेशन परीक्षा में उत्तीर्ण हुई। समस्त कन्याओं के मध्य में प्रथम पद प्राप्त किया है। यह कन्या देवसमाज गर्ल्स हाई स्कूल फ़ीरोज़पुर की ओर से परीक्षा में प्रविष्ट हुई थी।"]



[कुमारी सावित्री देवी अग्रवाल। बाबू रामकुमारलाल जी की पुत्री हैं और "विहारी बंगाली गर्ल्स स्कूल" की प्रथम छात्रा हैं जो कि डबल प्रमोशन पाकर इन्टरमिडिएट में आई हैं।]



[हार्डिञ्ज कालेज की डाक्टर मिस काशीबाई नौरंगे बी० ए०, एल० एम० एस० और डाक्टर मिस सुलोचना श्रीखंडे एम० बी० बी० एस० हाल ही में चिकित्सा-शास्त्र की उच्च शिक्षा प्राप्त करने विलायत गई हैं।]

चित्र-संग्रह



पंडित फ़तेहचन्द्र जिन्होंने गत मास में इँग्लैंड में हुए 'सर्व-धर्म-सम्मेलन' में भाग लिया था।



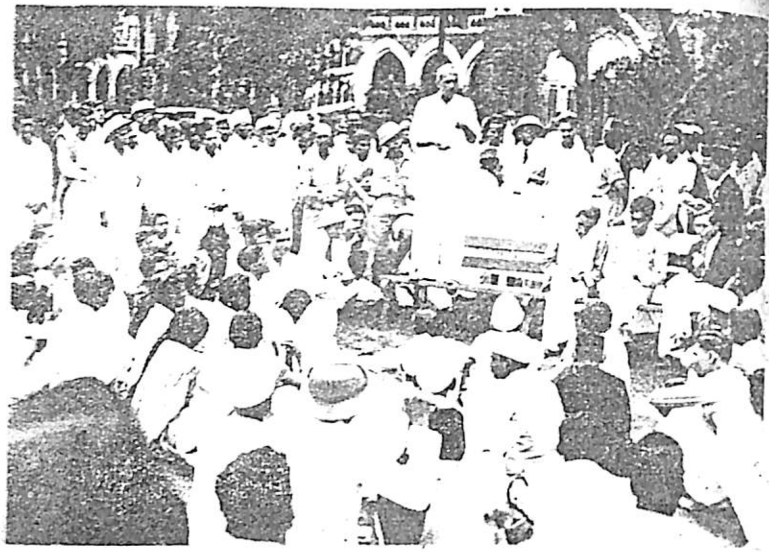
आदिस अबाबा में 'मुहम्मद अली स्टोर्स' नामक दूकान के संचालकगण। अब भारत आ गये हैं। पिछले अबीसीनिया युद्ध में इन लोगों की भी बड़ी क्षति हुई है।



मा और बेटा—'लिटिल लार्ड फ़ांटलेरय' नामक चित्र-पट का एक दृश्य।



प्रसिद्ध अभिनेता एडी कैंटर—'स्ट्राइक' नामक चित्रपट में।



卐

卐 卐

इस वर्ष बम्बई-विश्वविद्यालय मैट्रिक की परीक्षा में बहुत अधिक [विद्]यार्थी फ़ेल हुए हैं। इसके विरोध [में] विद्यार्थियों ने वहाँ बड़ी बड़ी सभायें [कीं] जिनमें का एक दृश्य यह है।

卐 卐

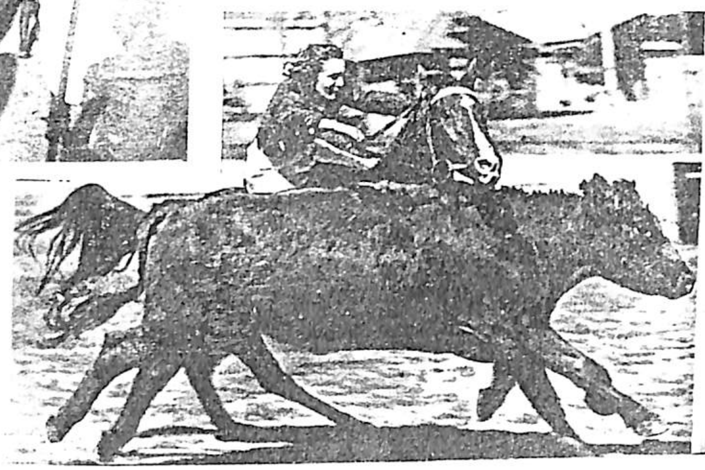
卐



卐

पिछले दिनों विश्राम-लाभ के लिए महात्मा गांधी मैसूर के नन्दीपर्वत पर गये थे। यह चित्र पर्वत से उतरते समय का है। श्रीमती ब्रजलाल नेहरू, श्रीमती कस्तूर बाई, काका कालेलकर और सरदार पटेल भी उनके साथ हैं।

卐



सिडनी (आस्ट्रेलिया) में हाल में [ए]क 'कैटिल ड्रैफ्टिंग शो' हुआ था। उस [प्र]तियोगिता में भाग लेनेवाली एक युवती।

卐

卐 卐



卐

卐 卐

ओलिम्पिक खेल (बर्लिन) में भाग लेने के लिए जानेवाली भारतीय हाकी टीम के सदस्य।

卐 卐

卐

卐

卐 卐



त्रिपुरा (बङ्गाल) के हिज़ हाइनेस महाराज साहब और महारानी साहबा। आप लोग हाल में विलायत गये हैं। महाराज ने वहाँ एक हिन्दू-मन्दिर बनवाया है।

卐 卐

卐



प्रयाग के फलोत्पादक संघ ने हाल में फलों को सुरक्षित रखने के तरीक़े बताने की एक कक्षा खोली थी। उसमें सफल हुए प्रथम विद्यार्थियों का जत्था, जिन्हें श्री सी० वाई० चिन्तामणि ने प्रमाण-पत्र दिये। चिन्तामणि जी की दाहनी ओर संघ के सभापति श्री कैलाशनाथ काटजू हैं।

कुछ इधर-उधर की

हमारे देश के जो लोग इँग्लेंड की सैर करके आते हैं वे उसे स्वर्ग बताते हैं। पर एक इटालियन पत्रकार जो आजकल इँग्लेंड से अपने देश के एक पत्र को समाचार भेज रहा है, उस देश की दूसरी ही तस्वीर पेश करने में लगा हुआ है। उसका कहना है कि अँगरेज़ों के समान असभ्य क़ाम संसार में शायद ही दूसरी हो। अँगरेज़ों के रसोईघरों की गन्दगी वह वर्णन से बाहर बताता है। उसका कहना है कि जहाँ अँगरेज़ लोग बैठकर खाना खाते हैं, वहाँ इतनी बदबू होती है कि बिना नाक पर रुमाल बाँधे उधर से कोई निकल नहीं सकता। उसकी समझ में इँग्लेंड एक ऐसा देश है जहाँ का आसमान ख़ाकी है, जहाँ रात-दिन कारख़ानों का धुवाँ प्रत्येक वस्तु को काला करता रहता है, जहाँ सफ़ेद भेड़ भी जाय तो काली हो जाय। वह देश उसकी समझ में सभ्य मनुष्यों के रहने लायक़ नहीं है।

× × ×

पाश्चात्य देशों में समाचार-पत्रों का संपादन ऐसे ही दृष्टि-कोण से होता है। अपने विरोधी का वे सदैव भद्दा चित्र अंकित करते हैं। इसके जवाब में इँग्लेंडवाले क्या कहते हैं, ज़रा उसका भी नमूना देखिए। एक अँगरेज़ी पत्र में छपा है—"जेनरेल बोडोलियो गैस के ज़ोर से अबीसीनिया फ़तह करके लौटे हैं। मुसोलिनी की प्रसन्नता की सीमा नहीं है। वह दौड़ कर जेनरल बुडोलियो को अपनी बाहों में भर लेता है और बार बार उनका मुँह चूमता है। पर बजाय प्रसन्नता प्रकट करने के जेनरल बोडोलियो उदास हो जाते हैं और मुँह फेर लेते हैं। भेंट के बाद ही एक आदमी जेनरल से पूछता है—आप बीमार-से दिखते हैं। क्या अबीसीनियनों पर आपने जो गैस चलाई थी उसका कुछ असर आप पर भी पड़ा है? बोडोलियो उसे धीरे से जवाब देता है—जी नहीं, मुसोलिनी ने लहसुन खा रक्खा है। उसके मुँह से ऐसी दुर्गन्धि निकलती है कि उसके क़रीब खड़ा भी नहीं हुआ जाता।"

× × ^ ×



अपने तन के जानि कै, जोबन-नृपति प्रवीन।
स्तन मन नैन नितंब को, बड़ो इजाफा कीन॥

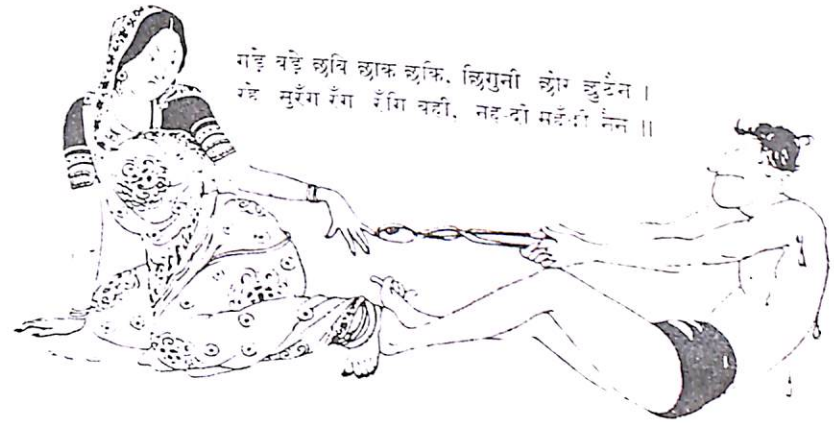
× × × ×

वायना के एक समाचार-पत्र में एक विचित्र विज्ञापन प्रकाशित हुआ है। वह इस प्रकार है—"जिनके बच्चे नहीं हैं वे दम्पती मेरा बच्चा जो अभी गर्भ में है, ख़रीद कर मा-बाप बनने का शौक़ पूरा कर सकते हैं। बच्चे के मा-बाप बहुत स्वस्थ और सुन्दर हैं और वह भी स्वस्थ और सुन्दर ही पैदा होगा। मूल्य ५,००० शिलिङ्ग।" रूटर का कहना है कि अभी तक इस विज्ञापन के उत्तर में कोई माँग नहीं आई है।

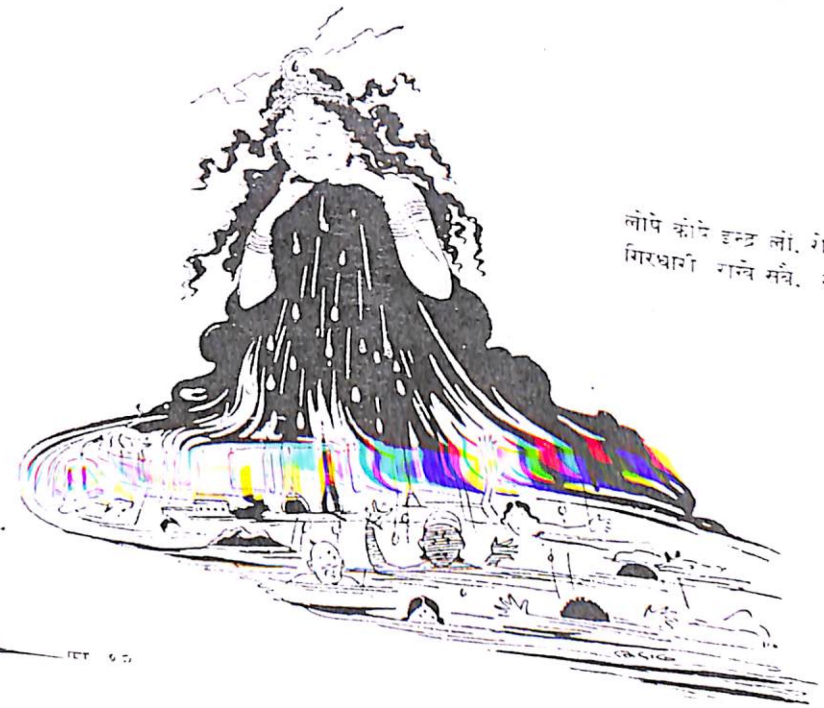
× × × ×

श्री केदारनाथ जी के बिहारी के दोहों पर कुछ व्यङ्ग्य चित्र यहाँ और प्रकाशित किये जाते हैं। दूसरे चित्र के भाव पर ज़रा ग़ौर कीजिए। नायिका की छिगुनी के मेहँदी से रँगे हुए नाख़ून की नोक पर नायक की आँखें जम गई हैं। वे किसी तरह नहीं हटतीं। चित्र में देखिए ऐसे नेत्रों की बदौलत बेचारे नायक की मुसीबत। पहले का भाव स्पष्ट है। तीसरे चित्र में आँसुओं-द्वारा ... प्रलय का दृश्य है। जिन दोहों पर ये चित्र बनाये गये उनके साथ ये यहाँ प्रकाशित किये जाते हैं।

× × × ×



गड़े बड़े छबि छाक छकि, छिगुनी छोर छुटैं न।
रहे सुरँग रँग रँगि वही, नह-दी महँदी नैन॥



लोपे कोपे इन्द्र लौं, रोपे प्रलय अकाल।
गिरधारी राखे सबै, गो गोपी गोपाल॥



अवध के ज़िलों के नाम

अ...नों के नामों का अध्ययन एक मनोरञ्जक विषय है। पर इस ओर अभी बहुत कम लोगों का ध्यान गया है। प्रसन्नता की बात है कि डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा, एम० ए०, डी० लिट० (पेरिस) ने 'हिन्दुस्तानी' में उपर्युक्त शीर्षक से एक छोटा-सा निबन्ध प्रकाशित कराकर इस ओर अन्य लेखकों का ध्यान आकर्षित किया है। यहाँ हम उनका उक्त लेख उद्धृत करते हैं—

अपने देश में स्थानों के नामों का अभी तक अध्ययन नहीं किया गया है। अनेक नामों के सम्बन्ध में जनश्रुतियाँ और किंवदंतियाँ मिलती हैं किन्तु इनका भी कोई संग्रह अभी तक मौजूद नहीं है। अवध के ज़िलों के नामों का यह अध्ययन केवल दिग्दर्शन कराने के निमित्त है। इसकी अधिकांश सामग्री का मूलाधार गज़ेटियर की जिल्दें हैं। नामों के पीछे छिपे हुए इतिहास की खोज न करके केवल नामों की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रचलित मतों का निर्देश इस सम्बन्ध में किया गया है।

अवध का उपप्रांत १२ ज़िलों में विभक्त है। यह ज़िलों का विभाग १८५६ ईसवी में अवध पर अँगरेज़ों का क़ब्ज़ा हो जाने के बाद हुआ था, यद्यपि इसका मूलाधार मुस्लिमकालीन विभाग था, जो इससे बहुत मिलता-जुलता था। लेकिन इससे यह तात्पर्य नहीं है कि इन ज़िलों के नगरों का निर्माण भी अँगरेज़ी काल में हुआ। इन १२ नगरों में से प्रत्येक १८५६ के पहले मौजूद था। यह अवश्य है कि इनमें से अनेक नगर ज़िले के मुख्य नगर-स्वरूप चुने जाने के बाद विशेष समृद्धि प्राप्त कर सके। लखनऊ और फ़ैज़ाबाद मुस्लिम काल में ही अवध के प्रधान नगर थे। अवध के इन १२ ज़िलों के नामों की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में नीचे अकारादि क्रम से उपलब्ध सामग्री संक्षेप में दी गई है। कुछ की व्युत्पत्ति तो स्पष्ट है किन्तु अधिकांश के सम्बन्ध में संदेह बाक़ी रह जाता है। इस क्षेत्र के भावी कार्यकर्ताओं को यह अनुगंता प्रोत्साहक होनी चाहिए।

१—बहराइच—ऐतिहासिक दृष्टि से यह नाम 'भर' जाति के नाम पर पड़ा था। 'आयच' प्रत्यय की व्युत्पत्ति अस्पष्ट है। जनश्रुति के अनुसार इस नगर का मूल नाम 'ब्रह्मायच' था, किन्तु इतिहास तथा ध्वनिविज्ञान से इसकी पुष्टि नहीं होती।

२—बाराबंकी—इस नाम में 'बारा' सर्वसम्मति से बारह का विकृत रूप माना जाता है। 'बंकी' अंश 'बांके' अथवा 'बनकी' (छोटा वन) अर्थवाला समझा जाता है। अर्थात् १२ बांके या १२ छोटे छोटे वन। इन १२ बांकों के सम्बन्ध में एक किंवदंती प्रसिद्ध है, जो गज़ेटियर में विस्तार से वर्णित है। इस नाम का 'भरों के वन' अर्थ से सम्बन्ध जोड़ना बहुत संतोषजनक नहीं होगा।

३—फ़ैज़ाबाद स्पष्ट ही फ़ारसी तत्सम नाम है। इस नगर के प्राचीन भाग का अयोध्या नाम अभी तक मिट नहीं सका है।

४—गोंडा नाम की व्युत्पत्ति 'गोंठ' या पशुओं के व्रज से मानी जाती है, क्योंकि इस स्थान पर एक हिन्दू राजा की 'गोंठ' प्रारंभ में थी।

५—हरदोई नाम प्रसिद्ध साधु 'हरदेव' के नाम पर पड़ा, ऐसी एक किंवदंती है। 'हरदेव' उपनाम एक जागीरदार का भी बतलाया जाता है, जिनका मुख्य नाम हरनकरन था।

६—खेरी नाम की कोई व्युत्पत्ति पुस्तकों में नहीं मिलती है। छोटे खेरे से इस नगर का नाम पड़ सकता है। अवधी के विशेषज्ञ और खेरी के रहनेवाले डाक्टर बाबूराम सक्सेना के अनुसार इसका सम्बन्ध 'खैर' शब्द से होना चाहिए।

७—लखनऊ—यह आश्चर्य की बात है कि अवध की राजधानी के नाम की व्युत्पत्ति अनिश्चित है। नाम का पूर्वार्द्ध लखन, लक्ष्मण का विकृत रूप है, किन्तु एक दूसरी जनश्रुति के अनुसार एक प्रसिद्ध भवननिर्माता लखना के नाम पर नगर का नाम पड़ा है। 'ऊ' का 'ऊ' होना ध्वनिविज्ञान के अनुसार सम्भव नहीं है।

८—प्रतापगढ़ राजा प्रतापसिंह के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। इस नाम की व्युत्पत्ति असंदिग्ध है।

९—रायबरेली—जनश्रुति के अनुसार यह नगर भरों ने बसाया था और इसका नाम प्रारंभ में भरौली या बरौली था जो बिगड़ कर बाद को बरेली या बरेली हो गया। राय शब्द एक निकटवर्ती गाँव राही का विकृत रूप बतलाया जाता है जो बरेली नाम की अन्य बस्तियों से पृथक् करने के लिए इस नाम के साथ जोड़ दिया गया है। क्योंकि यह नगर बहुत दिनों कायस्थ ज़मींदारों के हाथ में रहा था इसलिए यह रायबरेली कहलाने लगा, ऐसा एक दूसरा मत भी इस सम्बन्ध में है।

१०—सीतापुर नाम की व्युत्पत्ति स्पष्ट ही है।

११—सुल्तानपुर नाम सुल्तान अलाउद्दीन ग़ोरी के समय में पड़ा था। इस बस्ती का प्राचीन नाम कुशपुर बतलाया जाता है।

१२—उन्नाव—राजा उनवंत के नाम पर पड़ा, ऐसा प्रसिद्ध है, किन्तु ध्वनिविज्ञान की दृष्टि से यह व्युत्पत्ति संदिग्ध मालूम होती है।

ऊपर के संक्षिप्त विवेचन से कुछ रोचक निष्कर्ष निकलते हैं—

(क) किसी भी नाम पर अँगरेज़ी प्रभाव नहीं मिलता। स्थानों के नामों पर अँगरेज़ी प्रभाव अभी कम पड़ा है।

(ख) फ़ैज़ाबाद स्पष्ट ही मुसलमानी नाम है और सुल्तानपुर आधा तीतर आधा बटेर है। इस तरह की प्रवृत्ति नामों के सम्बन्ध में बराबर पाई जाती है।

(ग) सीतापुर विशुद्ध संस्कृत नाम है। प्रतापगढ़, हरदोई और लखनऊ में भी संस्कृत मूल रूप स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं।

(घ) अन्य नामों—बहराइच, बाराबंकी, गोंडा, खेरी, रायबरेली और उन्नाव—की व्युत्पत्ति बहुत स्पष्ट नहीं है। बहराइच, बरेली और बाराबंकी नाम भरों के नाम पर पड़े ऐसा माना जाता है, गोंडा और खेरी नाम इन स्थानों की प्रकृति पर पड़े। उन्नाव नाम के सम्बन्ध में संदेह ऊपर प्रकट किया जा चुका है।

वास्तव में अवध के ज़िलों के इन १२ नामों में से अधिकांश की व्युत्पत्ति अभी संदिग्ध है और इनकी विशेष खोज होने की आवश्यकता है। इन नामों के पीछे कितना इतिहास छिपा पड़ा है, यह तो पृथक् ही विषय है।

पत्र-लेखन-कला

पत्र लिखना भी एक कला है। सच्चे हृदय से लिखे गये पत्र का पानेवाले पर प्रभाव पड़ता है। इस सम्बन्ध में पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी ने रोमाँ रोलाँ और टाल्सटाय के पत्र-व्यवहार का ज़िक्र करते हुए 'विशाल भारत' में एक लेख लिखा है और हिन्दी के लेखकों को इस सम्बन्ध में सत्परामर्श भी दिये हैं। आपके लेख का आरम्भिक अंश इस प्रकार है—

सन् १८८७—

२२ वर्ष का एक फ़रासीसी युवक पेरिस की एक मामूली गली में अपने छोटे-से कमरे में बैठा हुआ है। वह कला और गान-विद्या का प्रेमी है। अभी हाल में ही टाल्सटाय की पुस्तक "What is to be done ?" (हमारा कर्तव्य क्या है ?) छपी है। इस पुस्तक में टाल्सटाय ने कला सम्बन्धी प्रचलित विचारों पर काफ़ी ज़ोरदार आक्षेप किये हैं। इस पुस्तक को पढ़कर इस युवक की मानसिक स्थिति डाँवाडोल हो गई, क्योंकि अब तक वह टाल्सटाय को अपना आदर्श मानता रहा है। उसने मन में सोचा कि चलो, टाल्सटाय को एक चिट्ठी ही लिख दें, वह महान लेखक मेरे जैसे मामूली युवक के पत्र का उत्तर तो भला क्यों देने लगा। उसने टाल्सटाय को एक पत्र भेज दिया, जिसमें उसने अपनी शंकायें लिखी थीं, और कुछ दिनों तक उत्तर की प्रतीक्षा भी की, फिर इस बात को भूल ही गया। कुछ सप्ताह इसी प्रकार बीत गये। एक दिन शाम के वक्त वह अपने कमरे को लौटा, तो क्या देखता है कि फ़रासीसी भाषा में एक लम्बी चिट्ठी कहीं से आई है।

उसको खोलने पर मालूम हुआ कि यह तो टाल्सटाय का पत्र है! यह पत्र ३८ पृष्ठ का था, या यों कहिए कि एक छोटा-सा ट्रेक्ट ही था। उस अपरिचित साधारण युवक को टाल्सटाय ने 'प्रिय बन्धु' लिखा था। पत्र के प्रारम्भिक शब्द थे —"तुम्हारी पहली चिट्ठी मुझे मिली। उसने मेरा हृदय द्रवित हो गया। पढ़ते-पढ़ते आँखों में आँसू आ गये।" इसके बाद टाल्सटाय ने अपने कला-सम्बन्धी विचार उस पत्र में प्रकट किये थे—"दुनिया में वही चीज़ क़ीमती है, जो मनुष्यों के पारस्परिक सम्बन्ध को दृढ़ करे, जो उनमें भ्रातृभाव स्थापित करे, और सच्चा कलाकार वही है, जो अपने सिद्धान्तों तथा विश्वासों के लिए त्याग और बलिदान करने के लिए तैयार हो। सच्चे पेशे की पहली शर्त कला का प्रेम नहीं, बल्कि मानव-जाति से प्रेम है। जिनके हृदय में मनुष्य-जाति के प्रति प्रेम है, वे ही कभी कलाकार की हैसियत से उपयोगी कार्य करने की आशा कर सकते हैं।" टाल्सटाय के विस्तृत पत्र का सारांश यही था।

इस पत्र ने उस युवक के हृदय पर बड़ा भारी प्रभाव डाला। सबसे महत्त्वपूर्ण बात उसे यह जँची कि इस विश्व-विख्यात महापुरुष ने मेरे जैसे एक अपरिचित युवक को इतनी लम्बी और सहृदयतापूर्ण चिट्ठी भेजी है। और तब से उस युवक ने यह निश्चित कर लिया कि यदि कोई आदमी अपने संकट के समय में अन्तरात्मा से कोई पत्र भेजेगा तो मैं अवश्य ही उसका उत्तर दूँगा, क्योंकि संकटग्रस्त मनुष्य की सेवा ही कलाकार का सर्वोत्तम गुण है।

इस घटना को आज ४९ वर्ष होने आये। इन ४९ वर्षों में उस युवक ने जो आज रोमाँ रोलाँ के नाम से संसार में प्रसिद्ध हो चुका है, हज़ारों ही चिट्ठियाँ लिखी हैं और सहस्रों ही व्यक्तियों के लिए पथप्रदर्शक का काम किया है। टाल्सटाय की उस एक चिट्ठी ने जो बीज बोया था वह आज वटवृक्ष के रूप में लहलहा रहा है। रोमाँ रोलाँ के लिखे हुए हज़ारों ही पत्र जो साहित्यिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, संसार के भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के पास सुरक्षित हैं। जिस दिन टाल्सटाय ने उस पत्र के लिखने में अपने समय के कुछ घंटे व्यय किये थे, उन्होंने स्वप्न में भी यह ख़याल न किया होगा कि आगे चलकर मेरा यह पत्र इतना सफल होगा।

इस घटना से पत्र-लेखन-कला का महत्त्व प्रकट होता है। क्या ही अच्छा हो, यदि हम लोग—ख़ास तौर से हिन्दी-लेखक और सम्पादक—इस बात को हृदयंगम कर लें। पत्र-लेखन-कला पर अधिक लिखने के पहले एक बात स्पष्ट कर देने की आवश्यकता है, वह यह कि जो आदमी बज़ात ख़ुद अच्छा नहीं है, वह अच्छा पत्र-लेखक हर्गिज़ नहीं बन सकता। कृत्रिम ढंग से लिखे हुए पत्रों की पोल बड़ी आसानी से खुल जाती है। जिस तरह कोई कुशल व्यापारी रुपये को हाथ में लेते ही खरे और खोटे सिक्के की पहचान कर लेता है, उसी तरह किसी सुसंस्कृत आदमी के लिए स्वाभाविक और बनावटी पत्रों में भेद करना कोई मुश्किल बात नहीं है। इसके सिवा बने हुए पत्र काग़ज़ी नाव की तरह हैं, जो चल नहीं सकते। काठ की हाँड़ी की तरह केवल एक बार आप उनसे काम ले सकते हैं। अच्छा पत्र-लेखक बनना अत्यन्त कठिन है। अन्य क्षेत्रों में तो आपको थोड़े से आदमियों का मुक़ाबला करना पड़ता है; पर यह क्षेत्र तो ऐसा है जिसमें दुनिया आपकी प्रतिद्वन्द्विता के लिए खड़ी है, क्योंकि चिट्ठियाँ तो लाखों-करोड़ों ही आदमी नित्यप्रति लिखा करते हैं।

दक्षिण भारत में छुआछूत

अखिल भारतीय हरिजन-सेवक-संघ के अध्यक्ष सेठ घनश्यामदास बिड़ला हाल में अपना दौरा समाप्त करके लौटे हैं। दक्षिण-भारत में छुआछूत की वर्तमान स्थिति के बारे में उन्होंने एक वक्तव्य समाचार-पत्रों में प्रकाशित कराया है। उसका एक महत्त्वपूर्ण अंश हम नीचे उद्धृत करते हैं—

मुझे यह दिखाई दिया कि हरिजन-सेवक-संघ के पिछले साढ़े तीन वर्षों के कार्यों से हरिजनों और सवर्णों के दृष्टिकोण पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है। दक्षिण-भारत में छुआछूत बहुत भीषण रूप से है, पर मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि ट्रावन्कोर ने पिछले कुछ वर्षों में इस दिशा में बहुत उन्नति की है और अब वहाँ छुआछूत दक्षिण-भारत में प्रचलित छुआछूत को देखते हुए बहुत ही थोड़ी रह गई है। सभी सड़कें प्रत्येक हिन्दू के लिए खुली हैं। राज-दरबार के उत्सवों में हरिजनों को सम्मिलित होने की पूर्ण स्वतन्त्रता है।

कोचिन-राज्य में केवल मन्दिर-प्रवेश पर ही प्रतिबन्ध नहीं है, बल्कि मन्दिरों के तालाबों, कुओं पर भी प्रतिबन्ध है, और साथ ही मन्दिरोंवाली सड़कों तथा कुछ ख़ास स्कूलों में भी हरिजनों के लिए रोक लगी हुई है। परन्तु मैसोर में तो इससे भी अधिक रोक हरिजनों पर है। वे दरबार के किसी उत्सव में सम्मिलित नहीं हो सकते। मैं मैसोर के महाराज से जो कि बड़े सहानुभूतिपूर्ण शासक हैं, मिला था और उनसे तथा दीवान से इस सम्बन्ध में बातें की थीं और मुझे आशा है कि थोड़े ही समय में हरिजनों के विरुद्ध कोई भेदभाव नहीं रह जायगा, ख़ास कर राज-महल के कार्यों में।

परन्तु प्रधान प्रश्न मन्दिर-प्रवेश का है जो समस्त भारत में समान रूप से है। एक बार हरिजनों को मन्दिरों में प्रवेश होने की सुविधा प्राप्त होने पर केवल मन्दिरों की सड़कों, कुओं, तालाबों का प्रश्न ही स्वतः हल न हो जायगा, बल्कि ऊँच और नीच का समस्त दृष्टिकोण ही बदल जायगा, जिसके कारण छुआछूत जारी है। इसलिए मन्दिर-प्रवेश के प्रश्न ने ठीक ही बहुत विकट रूप धारण कर लिया है, विशेषतः ट्रावन्कोर में। ट्रावन्कोर और आस-पास के देशी राज्यों के सवर्ण हिन्दुओं को यह भय हो रहा है कि यदि मन्दिरों में शीघ्र ही हरिजनों को जाने की सुविधा नहीं प्राप्त होगी तो यह ख़तरा है कि हरिजन लोग बहुत बड़ी संख्या में अन्य धर्म ग्रहण कर लेंगे। सौभाग्य से केरल में और विशेषतः ट्रावन्कोर में बहुत-से सवर्ण हिन्दुओं की बहुत ज़ोरदार सम्मति मन्दिर-प्रवेश के पक्ष में है। ५० हज़ार सवर्ण हिन्दुओं के हस्ताक्षर से एक आवेदन-पत्र मैसोर के महाराज के समक्ष उपस्थित करने को तैयार किया गया है। पिछले कुछ महीनों से ट्रावन्कोर में एक ज़ोरदार आन्दोलन मन्दिर-प्रवेश के पक्ष में चल रहा है। महाराज ट्रावन्कोर और राजमाता बहुत उदार और उन्नत विचार के हैं। ट्रावन्कोर में रहते समय मुझे उन लोगों से दो बार मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मैंने उनको सब मामला समझाया और मुझे यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि उन्हें सवर्ण हिन्दुओं की इस इच्छा के प्रति बड़ी सहानुभूति है कि हरिजन मन्दिरों में स्वतन्त्र रूप से प्रविष्ट किये जायँ। इसमें निस्सन्देह कुछ कठिनाइयाँ भी हैं, पर मुझे यह विश्वास करने का कारण है कि ये कठिनाइयाँ [illegible] हो जायँगी और बिना अनुचित विलम्ब के नतीजे [illegible] जनक निकलेंगे। मन्दिर-प्रवेश के सम्बन्ध में [illegible] राज्य-द्वारा नेतृत्व करने से, जो हिन्दू-धर्म के [illegible] में युगनिर्माणकारी दिवस होगा, मुझे आशा है कि [illegible] पास के अन्य देशी राज्य भी उनका अनुसरण [illegible]। यद्यपि मन्दिर-प्रवेश का प्रश्न हल होने पर [illegible] छूत क़ानूनी रूप से वर्जित हो जायगी, पर इसका [illegible] नहीं होगा कि समस्त समाज से छुआछूत दूर हो गई। [illegible] बात सुधारकों के प्रयत्न पर निर्भर रहेगी। इस प्रकार [illegible] सामने बहुत बड़ा कार्य करने को है और वह [illegible] तब शुरू होगा, जब मन्दिर हरिजनों के लिए खुल [illegible]

सरकार और आयुर्वेद

आयुर्वेदीय चिकित्सा-पद्धति भारतीयों के [illegible] के अनुकूल है और अल्प-व्ययसाध्य भी है। [illegible] की बात है कि सरकार से इसे उतना प्रोत्साहन [illegible] मिला जितना कि मिलना चाहिए। आयुर्वेद-सम्[illegible] में इसकी शिकायत बराबर सुनने में आती है। [illegible] में जो बंगाल प्रान्तीय आयुर्वेद सम्मेलन हु[illegible] उसके सभापति महामहोपाध्याय कविराज [illegible] सेन ने अपने भाषण में इसका उल्लेख इस [illegible] किया है—

गत २५ वर्षों से आयुर्वेद तथा आयुर्वेदिक पद्[illegible] चिकित्सा की सरकार से स्वीकृति के लिए प्रयत्न [illegible] रहा है। फल-स्वरूप मदरास, युक्त-प्रान्त तथा [illegible] स्वीकृति मिल गई है और आयुर्वेद कालेज तथा [illegible] सरकार-द्वारा खोले गये हैं, परन्तु बंगाल में आ[illegible] संस्थायें सरकारी सहायता से वंचित हैं तथा [illegible] आयुर्वेदिक पद्धति की स्वीकृति नहीं हुई है। अन्[illegible] के लोग शक्ति भर सरकार की सहायता पाने की [illegible] करते रहे हैं, परन्तु इस प्रान्त में उनके भाइयों का [illegible] हो रहा है।

यदि हम दृढ़ निश्चयी होकर उसे अपने पूर्व [illegible] पद पर आसीन कराने का प्रयत्न नहीं करते तो [illegible] का भविष्य अंधकारमय है। यदि बंगाल में बुद्धि[illegible]

इधर अपना ध्यान आकर्षित नहीं करते तो थोड़े से कविराजों के त्याग के बल पर यह कार्य दुःसाध्य से सुसाध्य नहीं किया जा सकता। आयुर्वेद-शास्त्र की निधियाँ धीरे-धीरे इस देश से निकल रही हैं। अर्धशिक्षित तथा अपूर्ण शिक्षित कविराजों की संख्या में वृद्धि हो रही है। अतः संभावना इस बात की है कि इस प्राचीन तथा स्वदेशी पद्धति से लोगों की सहानुभूति हट जायगी। व्यापक सहानुभूति एवम् विश्वासपूर्ण सहयोग से ही, यह बुराई दूर होगी। अतः मैं बहुत ही विनम्रतापूर्वक आप सबसे प्रार्थना करता हूँ कि आप एक होकर इस ध्येय की प्राप्ति में आगे बढ़ें।

देशी चिकित्सा-प्रणाली

'प्रताप' अपने एक सम्पादकीय नोट में लिखता है—

बम्बई के सुप्रसिद्ध डाक्टर जीवराज मेहता ने ऐलोपैथिक चिकित्सा-प्रणाली की आलोचना करते हुए कहा है कि इससे ग़रीब लोगों को अधिक लाभ नहीं पहुँचता, क्योंकि ऐलोपैथिक दवाइयाँ बहुत महँगी पड़ती हैं। इस सम्बन्ध में डाक्टर मेहता ने आयुर्वेदिक और यूनानी चिकित्सा-प्रणाली की प्रशंसा करते हुए यह भी कहा है कि वैद्य और हकीम ऐसी दवाइयाँ बताते हैं जिन्हें ग़रीब लोग आसानी से ख़रीद सकते हैं। डाक्टर मेहता ने यह सलाह दी है कि मेडिकल कालेजों में अगर छात्रों को ऐलोपैथिक के साथ-ही-साथ आयुर्वेद और यूनानी की भी शिक्षा दी जाय तो चिकित्सा-विज्ञान की उन्नति के साथ-ही साथ यह भी लाभ हो कि डाक्टर लोग ग़रीबों के लिए सस्ती और उपयोगी घरेलू दवाओं के नुस्ख़े लिखना जान जायँ। डाक्टर मेहता भारत के सर्वश्रेष्ठ ऐलोपैथिक डाक्टरों में से एक हैं। उनकी सम्मति के अधिकार-पूर्ण होने के सम्बन्ध में सन्देह करने की कोई गुञ्जाइश नहीं है। डाक्टर मेहता ने जो विचार प्रकट किये हैं उनसे कर्नल बकले ऐसे व्यक्तियों के कथन का थोथापन ज़ाहिर हो जाता है, जो देशी चिकित्सा-प्रणाली की निन्दा करने में नहीं हिचकते।

श्री मैथिलीशरण गुप्त का सन्देश

कविवर श्री मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी ५० वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में निम्न वक्तव्य प्रकाशित किया है—

मेरे मित्रों ने मेरी सेवाओं की जो प्रशंसा की है उसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। उनकी कृपा से मेरा हृदय अभिभूत हो गया है। मुझे अपनी भावनाओं को प्रकट करने के लिए शब्द नहीं मिल रहे हैं। मैं तो केवल भगवती सरस्वती के मन्दिर का विनम्र पुजारी हूँ। मैंने अपनी ही भावनाओं के अनुसार सरस्वती देवी की पुनीत वेदी पर अपनी भेंट समर्पित की है। मैंने कभी महान बनने की आकांक्षा नहीं की। मैं अपने मित्रों को विश्वास दिलाता हूँ कि जो कुछ भी मुझे थोड़ी-बहुत सफलता मिली है उसके अभिमान से मैं कभी आत्म-विस्मृत नहीं हुआ हूँ।

मातृभाषा हिन्दी का भाण्डार इस समय साहित्य के ग्रन्थ-रत्नों से भरा हुआ है। हिन्दी-साहित्य के इस पुनरुज्जीवन-काल से यद्यपि संयोगवश ही मेरे अपर्याप्त प्रयत्नों का सम्बन्ध हो गया है, फिर भी मुझे इससे असीम सन्तोष ही होता है। हिन्दी आज उन सभी गुणों से अलङ्कृत है जिनके बल पर वह विश्व की साहित्यिक भाषा की अगली श्रेणी में समासीन हो सकती है। आशा और उत्कर्ष से भरे हुए मैं हिन्दी के भविष्य का इस समय अस्पष्ट दर्शन कर रहा हूँ।

अपनी इस ५० वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में मैं विनम्र प्रार्थना करता हूँ कि सूर, तुलसी और कबीर की यह भाषा एक बार फिर पीड़ित और संघर्षण-रत मानवता को शाश्वत शान्ति और सौम्य का सन्देश दे।

सम्पादकीय नोट

योरप का भयंकर भविष्य

राष्ट्र-संघ की बैठक में स्वयं उपस्थित होकर उस दिन अबीसीनिया के सम्राट् ने बड़ा महत्त्वपूर्ण भाषण किया है। उनके भाषण से प्रकट होता है कि उनके साथ न्याय भी नहीं किया गया है। उन्होंने न्याय के नाम पर बड़ी गम्भीरता के साथ न्याय किये जाने तथा मदद पाने के लिए राष्ट्र-संघ से अपील की। परन्तु राष्ट्र-संघ ने उनकी करुण अपील का कोई समुचित उत्तर देना तो अलग रहा, उसने अब इटली के विरुद्ध लगाई गई आर्थिक दण्ड-व्यवस्था को भी उठा लेने तक की घोषणा कर दी है। यह सच है कि उसने अबीसीनिया पर इटली का अधिकार नहीं स्वीकार किया है। परन्तु इससे क्या बनता-बिगड़ता है? उसने मंचूरिया पर भी तो जापान का अधिकार अभी तक नहीं स्वीकार किया है। परन्तु यह बात कौन नहीं जानता कि आज मंचूरिया चीन का नहीं है, किन्तु जापान के क़ब्ज़े में है। सो वही हाल अबीसीनिया का भी है। इन एक तरह की दो घटनाओं से संसार के सभी छोटे-बड़े स्वाधीन राज्य विशेष रूप से चिन्तित हो उठे हैं। यहाँ तक स्वीज़रलैंड जैसा परम शान्तिप्रिय राज्य जिसके पास कोई स्थायी सेना भी नहीं है, आज आत्मरक्षा की सामरिक व्यवस्था करने के लिए लाखों रुपये ख़र्च कर रहा है। और यही वह अवस्था है जिसको आज योरप के बड़े बड़े राजनीतिज्ञ अपने हाथ में नहीं कर पा रहे हैं। योरप के कुछ राज्य अपनी अवस्था को उन्नतोन्मुख समझकर अपना तदनुसार प्रभाव भी बढ़ाना चाहते हैं और उनकी इस लालसा को योरप की प्रमुख शक्तियाँ भयावह समझ रही हैं। ऐसे ही असन्तोष और अविश्वास के फेर में पड़ा हुआ योरप सीधा मार्ग नहीं पा रहा है, इसके विपरीत वह अधिकाधिक चक्कर में पड़ता जा रहा है। अबीसीनिया के झमेले से अपने को लज्जाजनक ढङ्ग से मुक्तकर उस राइनलैंड के जर्मनप्रवेश की समस्या के हल करने का प्रय[त्न] आरम्भ ही किया था कि दरे दानियाल और डैंज़िग के सवा[ल] उठ खड़े हुए। दरे दानियाल के प्रश्न के सम्बन्ध में अप[ने] विचार प्रकट करते हुए मुसोलिनी ने भी इस बात का संके[त] किया है कि पिछले दिसम्बर में भूमध्य-सागर के तटवर[्ती] देशों ने सहायता का जो आश्वासन ग्रेट ब्रिटेन को दिया था उसके रहते तथा रूस के जहाज़ों के भूमध्यसागर में प्रवे[श] करने का अधिकार पाते देखकर वह अब अपने जहाज़ी बे[ड़े] को बढ़ायेगा। डैंज़िग को वहाँ के जर्मन नाज़ी नाज़ी जर्मन[ी] के हवाले कर देना चाहते हैं और उनका यह काम संधि [के] विपरीत होता है। इस प्रकार योरप के राजनीतिज्ञों की कठि[-] नाइयाँ घटने के स्थान में बढ़ती ही जा रही हैं। ऐसी दशा [में] ब्रिटेन और फ्रांस के सूत्रधार जिस धैर्य के साथ स्थिति [को] सँभालने का यत्न कर रहे हैं, यद्यपि उसके लिए आज [वे] अपने अपने देश में निन्दा के पात्र बन रहे हैं, तो भी [वे] निस्सन्देह प्रशंसार्ह हैं, क्योंकि उनके संयम के कारण संसार-व्यापी महायुद्ध का ज्वालामुखी कम से कम उभड़ने तो नह[ीं] पा रहा है। परन्तु यह अवस्था बहुत अधिक समय त[क] स्थिर नहीं रह सकती, क्योंकि सब्र और शील की भ[ी] सीमा है। यदि ब्रिटेन तथा फ्रांस बराबर दबाये ही जा[ते] रहेंगे और उनके स्वार्थों पर भी बराबर चोट पर चोट पहुँचाई जाती रहेगी तो वही कहाँ तक समाई करेंगे। आख़िर उन्हें म्यान से तलवार निकालनी ही पड़ेगी और तब जो देवासुर-संग्राम होगा उसमें योरप की सारी सभ्यता तथा संस्कृति धूल में मिल जायगी। दुःख की बात है, व[ह] दिन अधिकाधिक निकट आता दिखाई दे रहा है।

मुसोलिनी की कूटनीति

जर्मनी और आस्ट्रिया का जो महत्त्वपूर्ण समझौता (जिसमें इटली भी शामिल है), इसी जुलाई के पहले पखवा[ड़े] में हुआ है उसने योरप के महायुद्ध के बाद के सारे सम[...]

झौतों को एक प्रकार से महत्त्वहीन बना दिया है। इस नये समझौते ने जर्मनी, इटली, आस्ट्रिया और हंगरी को एक सुदृढ़ दल में संगठित कर दिया है। महायुद्ध के पहले भी इनका यह दल क़ायम था, परन्तु युद्ध-काल में इस दल से इटली अलग हो गया था। अब वह इस दल में खुद फिर शामिल ही नहीं हुआ है, किन्तु उसी के प्रयत्न से यह दल फिर नये सिरे से अस्तित्व में आया है। और यह काम करके इटली के मुसोलिनी ने यह प्रमाणित किया है कि मेकियावेली की जन्मभूमि का पानी आज भी वैसा ही चोखा बना हुआ है।

इस नये कूटनीति के पैतरे से सबसे अधिक महत्त्व की यह बात हुई है कि लोकार्नो और स्ट्रेसा की सन्धियों का सारा महत्त्व जाता रहा और पश्चिमी योरप से पूर्वी तथा दक्षिणी योरप के छोटे-बड़े राज्य बहुत दूर जा पड़े हैं। यही नहीं, फ़्रांस ने रूस से जो नई सन्धि की है उसका भी उत्तर इस समझौते से हो जाता है।

अब रही बात युद्ध की, सो उसके लिए अभी कोई तैयार नहीं है। यद्यपि फ़्रांस की योरप के कई राज्यों से घनिष्ठ मित्रता है, तो भी वह ब्रिटेन को अपने साथ रक्खे बिना कोई साहस-पूर्ण कार्य करने को तैयार नहीं होगा। और ब्रिटेन तो ऐसा कोई काम करने को आज तैयार ही नहीं है। वह तो अभी तक विश्वशान्ति और निशस्त्रीकरण के ही फेर में पड़ा हुआ था। परन्तु अब जब अबीसीनिया के मामले में उसको बार बार मुँह की खानी पड़ी तब उसकी भी आँखें खुली हैं।

अबीसीनिया के ही प्रश्न के सम्बन्ध में ब्रिटेन के वैदेशिक मंत्री को पदत्याग तक करना पड़ा। यही क्यों, उसकी प्रेरणा से इटली के विरुद्ध जो आर्थिक प्रतिबन्ध लगाये गये थे उन्हें भी अबीसीनिया के हार जाने पर उठा लेना पड़ा है तथा इटली का विरोध-भाव देखकर उसने भूमध्य सागर में जो सामरिक आयोजन किया था उसे तक भङ्ग कर देना पड़ा है तथा इटली का आक्रमण होने पर फ़्रांस, तुर्की आदि से सक्रिय सहायता के जो वचन उसने लिये थे उन सबसे भी उन राष्ट्रों ने अपने आपको शीघ्र ही मुक्त कर लिया है। और यह सब ब्रिटेन को करना पड़ा है इटली का रोष देखकर। ग्रेट ब्रिटेन जैसे संसार के प्रमुख शक्तिशाली राष्ट्र के लिए यह स्थिति गौरव-वर्द्धक नहीं हुई। अतएव अब वह अपनी चौमुखी सामरिक तैयारी में संलग्न हुआ है।

उधर फ़्रांस और जर्मनी की बड़े महत्त्व की राजनैतिक भिड़न्त हो रही है। फ़्रांस उसे राजनैतिक दाँव-पेंचों से परास्त करना चाहता है, पर जर्मनी उसके फन्दों में नहीं फँसना चाहता। वह अपने को काफ़ी बलवान् समझता है और अपने उपयुक्त मर्यादा और प्रतिष्ठा की माँग कर रहा है। राइनलेंड में सेना भेजकर उसने संसार को बता दिया है कि जर्मनी अब पहले जैसा ही स्वाभिमानी राष्ट्र हो गया है और अब वह ऐसी कोई भी बात करने या सुनने को तैयार नहीं है जिससे उसकी हेठी होती हो। इन दोनों राष्ट्रों में इस समय ऐसा ही संघर्ष है। फ़्रांस को साहस नहीं होता कि वह जर्मन को सन्धियों के भंग करने का दण्ड दे। जर्मनी अब ऐसा ही शक्ति-सम्पन्न है। नहीं तो पोयाँकारे के समय में एक बार इसी फ़्रांस ने राइनलेंड में अपनी सेनायें भेज दी थीं और जब तत्कालीन जर्मन-सरकार ने उसकी शर्तें मान लीं तब कहीं फ़्रांस की सेनायें वहाँ से महीनों बाद वापस बुलाई गई थीं। परन्तु न फ़्रांस में अब पोआँकारे हैं, न जर्मनी में उनके समय की निर्बल सरकार है। इसी से जर्मनी के उग्ररूप दिखलाने पर आज फ़्रांस क़ानूनी बातचीत करना ही श्रेयस्कर समझता है।

और अब जब मुसोलिनी की कूटनीति ने जर्मनी के पक्ष को अधिक प्रबल बना दिया है तब फ़्रांस के भी कान खड़े हो गये हैं और वह भी ब्रिटेन की भाँति विक्षुब्ध हो उठा है। वास्तव में इस समय मुसोलिनी के 'डंडावाद' की जीत हुई है। देखना है कि वह भविष्य में अपने इस मैदान में कब तक ठहर सकता है।

मियाँ सर फ़ज़लेहुसेन का देहावसान

पंजाब के मियाँ सर फ़ज़लेहुसेन का इसी जुलाई के पहले सप्ताह में स्वर्गवास हो गया। अभी अभी वे पंजाब के एक बार फिर शिक्षा-सचिव बनाये गये थे और अगला चुनाव लड़ने के लिए पंजाब में अपने 'यूनियनिस्ट दल' का वे नये सिरे से सङ्गठन करने में बड़ी मुस्तैदी से संलग्न थे। वे ठोस कार्य करनेवाले लोकनेताओं में से थे। उन्होंने आजीवन मुसलमानों की सेवा की है और उनके हित के लिए सरकार से मिलकर मुसलमानों के स्वत्वों को सदा के लिए स्पष्ट करवा लिया है। द्वैधशासन-प्रणाली को सफल बनाने में उन्होंने सरकार की पूरी सहायता की। उन्होंने प्रान्तीय सरकार एवं केन्द्रीय सरकार के मंत्रिमण्डलों में बड़ी शान के साथ १५ वर्ष तक अपने उत्तरदायित्व का सफलतापूर्वक निर्वाह किया। आज मुसलमानों में साम्प्रदायिकता का जो इतना अधिक ज़ोर है उसको इस स्थिति तक पहुँचाने में सर फ़ज़लेहुसेन का कम हाथ नहीं रहा है। ऐसे ज़बर्दस्त कार्यकर्ता के उठ जाने से मुसलमानों की वास्तव में अपार क्षति हुई है और सो भी ठीक उस समय जब नये शासनविधान के अनुसार नया चुनाव होने जा रहा है। इसमें सन्देह नहीं, वे एक बड़े बुद्धिमान, कार्यदक्ष और अध्यवसायी नररत्न थे और अपने दृष्टिकोण से उन्होंने तन-मन से मुसलमान-जाति की अपरिमित सेवा की है।

वे वास्तव में मुसलमानों के एक बड़े ज़बर्दस्त नेता थे। मुस्लिम-लीग के संस्थापकों में भी वे एक थे। पंजाब की यूनियनिस्ट पार्टी का भी उन्हीं ने संगठन किया था। मुसलमानों में उनके प्रयत्नों से शिक्षा का अच्छा प्रचार हुआ है। उन्होंने १५ वर्ष तक उच्च से उच्च पदों पर रहकर अपनी जाति की तथा सरकार की भलाई की। पंजाब में ५५ फ़ी सदी के हिस्साबाँट की नींव उन्हीं ने रक्खी थी। वे १९२१ से सम्प्रदायवाद के पक्के समर्थक हो गये थे।

उनका जन्म सन् १८७७ में बटाला में हुआ था। वे लड़कपन से ही तीक्ष्णबुद्धि और अध्यवसायी थे। स्कूल और कालेज की शिक्षा समाप्त कर उन्होंने विलायत में क़ानून का अध्ययन किया और बैरिस्टर हो गये। स्वदेश लौटकर वे स्यालकोट में प्रैक्टिस करने लगे। बाद को लाहौर चले आये और पंजाब-हाईकोर्ट में बैरिस्टरी करने लगे।

१९०७ में वे इस्लामिया-कालेज में प्रोफ़ेसर नियुक्त किये गये। कुछ समय तक वे उसके प्रिंसिपल भी रहे। पंजाब-विश्वविद्यालय के सन् १९०९ से १९२० तक फ़ेलो और १९१२ से १९२१ तक उसके सिंडीकेट के सदस्य भी रहे।

उनका राजनीति में प्रत्यक्ष प्रवेश सन् १९१६ से हुआ है जब वे पंजाब की प्रान्तीय राजनैतिक कान्फ़रेंस के सभापति चुने गये थे और उन्होंने उन दिनों कांग्रेस का पूरा साथ

दिया था। १९२० से १९३० तक वे पंजाब की व्यवस्था सभा के तीन बार सदस्य चुने गये। उन्हें पंजाब की सरकार ने १९२१ में शिक्षा-मंत्री का पद दिया। बाद १९२६ में वे सरकारी दल के नेता बनाये गये।

सन् १९२७ में वे राष्ट्र-संघ के प्रतिनिधि जेनेवा भेजे गये। १९३२ में जो प्रतिनिधि-मण्डल दक्षिण-अफ़्रीका को भेजा गया था उसके एक सदस्य भी थे। वहाँ से लौटने पर वे गवर्नर जनरल की कौंसिल के सदस्य बनाये गये। इसके सदस्य पहले भी वे अस्थायी रूप से वे हो चुके थे। अभी हाल में उन्हें पंजाब के शिक्षा-मन्त्री का पद फिर दिया गया था और लोगों को आशा थी कि नये शासन-विधान के कार्य में परिणत होने पर पंजाब-सरकार के वही प्रधान मंत्री बनेंगे। परन्तु विधाता को यह मंज़ूर नहीं था और उनकी मृत्यु हो गई। निस्सन्देह उनकी मृत्यु से मुसलमान-जाति का एक बहुत बड़ा नेता उठ गया है।

अमरीका का स्वर्णगढ़

गत ५ वर्ष से भारत का सोना विदेशों को ढोया जा रहा है और अभी उसका क्रम बन्द नहीं हुआ। आज भी प्रतिसप्ताह ५० लाख रुपये के मूल्य का सोना बाहर भेजा जाता है। पिछले ५ वर्षों में भारत से कम से कम २,७५,००,००,००० रुपये का सोना बाहर भेजा जा चुका है। इस प्रकार भारत अपने स्वर्ण-भाण्डार से रिक्त होता जा रहा है। उधर संसार के शक्तिशाली राष्ट्र अपने स्वर्ण-भाण्डार बढ़ाते जा रहे हैं। यहाँ तक कि से फ़्रांस और संयुक्त-राज्य को अपने स्वर्ण-भाण्डार सुरक्षित रखने के लिए आधुनिक ढंग के अभिनव भवन निर्माण करने पड़े हैं। फ़्रांस का सोना तो पेरिस में ज़मीन के नीचे बनाये गये एक सुदृढ़ और सो भी अभेद्य भवन में रक्खा गया है। यदि पेरिस एक बार शत्रुओं के अधिकार में चला भी जाय तो भी उस ख़ज़ाने के शत्रुओं से अपनी और अपने ख़ज़ाने की रक्षा २ महीने तक सफलतापूर्वक कर सकते हैं। फ़्रांस की तरह अमरीका के संयुक्त-राज्य ने भी अपने स्वर्ण-भाण्डार की व्यवस्था अभिनव ढंग से की है, जिसका विवरण में इस प्रकार दिया गया है—

यह क़िला पहाड़ियों से घिरे एक स्थान में केन्टकी में बन रहा है जो सामरिक दृष्टि से भी उपयुक्त है। इसकी रक्षा के लिए घोड़सवार, तोपख़ाना और पलटन के दस्ते रहेंगे। चोरों की युक्तियाँ न चलने देने के लिए प्रत्येक ज्ञात वैज्ञानिक उपाय का उपयोग किया गया है। आग लगने या भूकम्प होने पर सारे दुर्ग को जलमय कर देने का भी उपाय किया गया है।

अमरीका का आधे से अधिक सोना, जिसकी मालियत ६ अरब डालर के लगभग होगी, इस क़िले में रक्खा जायगा। इस विशाल स्वर्णराशि को न्यूयार्क और फ़िलाडेल्फ़िया के वर्तमान तहख़ानों से निकाल कर वहाँ तक ले जाने के लिए जो बन्दोबस्त किया जानेवाला है वह भी एक बेजोड़ बात होगी। ४० या ५० स्पेशल ज़र्री (आमर्ड) ट्रेनें इस स्वर्णराशि को केन्टकी पहुँचावेंगी। उनकी रवानगी गुप्त रक्खी जायगी। लाइन पर फ़ौजी सिपाहियों का पहरा रहेगा। हर एक ट्रेन में सम्भवतः ५ बड़े डिब्बे रहेंगे और एक एक डिब्बे में कोई १ हज़ार पौंसे अर्थात् २८० लाख डालर का सोना रहेगा।

यह दुर्ग देखने में मध्यकाल की गढ़ियों जैसा लगता है। इसका घेरा १०० फ़ुट मुरब्बा है। चारों कोनों पर बीच में लोहे के छड़ देकर सीमेंट से बनाई हुई चार इमारतें होंगी, जिनमें सम्भवतः तोपें रक्खी जायँगी। बाहरी इमारत के बीच में एक भीतरी इमारत होगी। उसमें खिड़कियाँ नहीं हैं और सारी इमारत एक चट्टान-सी मालूम होती है, जिसके भीतर प्रवेश करना असम्भव है।

क़िले के चारों ओर घोड़सवार दस्ते का पहरा रहेगा जिसके पास मेशीनगन आदि समयोचित युद्ध-सामग्री होगी।

एक ये देश है जहाँ स्वर्ण का संग्रह इतनी लगन के साथ किया जा रहा है, एक हमारा देश है जहाँ सोने को बाहर अधिक-से-अधिक मात्रा में भेजते रहना ही लाभदायक समझा जा रहा है।

मैक्ज़िम गोर्की का स्वर्गवास

रूस के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री मैक्ज़िम गोर्की की मृत्यु हो गई। मृत्यु के समय ये ६८ वर्ष के थे। ये संसार-प्रसिद्ध लेखक थे। इनकी रचनाओं से रूस की कायापलट हो गई है। हिन्दी में इनके 'मदर' नामक उपन्यास का अनुवाद हो चुका है। आधुनिक रूस की रचना में इन्होंने अपनी रचनाओं से पूरी सहायता की है। रूसियों ने भी इनका अपने राष्ट्र के सर्वश्रेष्ठ लेखक के रूप में समुचित रूप से सम्मान किया है। इनका प्रारम्भ का जीवन कैसा था, इसका वर्णन इन्होंने बहुत थोड़े शब्दों में ख़ुद ही किया है। इन्होंने लिखा है—"१८७८ में मैंने एक जूता बनानेवाले की अपरेंटसी की। १८७९ में मैं एक डिज़ाइन बनानेवाले का अपरेंटिस हो गया। १८८३ में मैं एक माल लादनेवाले जहाज़ में टहलुआ हो गया। १८८३ में मैंने एक रोटी बनानेवाले की नौकरी की। १८८४ में मैं पोस्टर लगाने का काम करने लगा। १८८५ में रोटी बनाने का कारबार ख़ुद उठाया। १८८६ में घुमक्कड़ गवैयों की एक मण्डली में गवैये का काम किया। १८८७ में मैंने फेरी में सेब बेचे। १८८८ में मैंने आत्महत्या करने का प्रयत्न किया। १८९० में एक वकील के दफ़्तर में नक़ल नवीस हो गया। १८९१ में मैंने एक छोर से दूसरे छोर तक रूस की पैदल यात्रा की। १८९२ में मैं रेलवे के एक वर्कशाप में मज़दूरी करने लगा। उसी वर्ष मैंने अपनी पहली कहानी छपाई।"

गोर्की ने अपनी पहली कहानी २४ वर्ष की अवस्था में लिखी थी, फिर उनकी क़लम ऐसी उठी कि उनके मरते दम तक बराबर चलती ही रही। यहाँ तक कि उसने उन्हें अमर बना दिया। अपने राजनैतिक विचारों के कारण वे १९०५ में जेल में डाल दिये गये। १९०६ में वे संयुक्त-राज्य (अमरीका) गये। इस यात्रा के अनुभवों का उन्होंने अपने उपन्यासों में विशेष रूप से वर्णन किया है। इसके कई वर्ष बाद वे रूस में राजनैतिक आन्दोलन करने लगे। १९१७ के विप्लव के समय वे पेट्रोग्राड के एक पत्र के सम्पादक थे। प्रारम्भ में उन्होंने बोलशेविकों का विरोध किया, परन्तु बाद को उसके समर्थक हो गये। उन्होंने कई राजनैतिक नाटक भी लिखे हैं। गोर्की के इस संक्षिप्त परिचय से उनकी शक्ति और प्रतिभा का पर्याप्त ज्ञान हो जाता है। ऐसे साहित्यकार के निधन से रूस की ही नहीं, सारे संसार की भारी क्षति हुई है।

सर गणेशदत्तसिंह का शिक्षा-प्रेम और डलमिया जी की उदारता

बिहार की प्रान्तीय सरकार के मंत्री सर गणेशदत्तसिंह की उदारता का परिचय समय समय पर बराबर मिलता रहा है। वे अपने प्रान्त के निर्धन विद्यार्थियों के लिए सदा मुक्तहस्त रहे हैं और उनकी सहायता करने की उत्कट कामना कभी कम होती नहीं दिखाई देती है। इधर उन्होंने ऐसी कुछ योजनाओं पर विशेषज्ञों से विचार-विनिमय किया था कि प्रान्त के असमर्थ तथा योग्य विद्यार्थियों की कैसे सहायता की जाय ताकि वे इच्छित शिक्षा प्राप्त कर सकें। परन्तु खेद की बात है कि कोई कारगर योजना नहीं बन सकी। तो भी वे निराश नहीं हुए, और इस प्रकार के उपकार के कार्य में वे बराबर लगे ही रहते हैं। हाल में उन्होंने अपने प्रान्त के सेठ जयदयाल डलमिया को इस कार्य में मदद देने के लिए खड़ा किया है। उन्होंने शिक्षा-विभाग के द्वारा इस बात का पहले पता लगाया कि स्कूल-कालेजों में ऐसे कितने लड़के हैं जिनको सहायता की ज़रूरत है। उन्हें ऐसे २६ लड़के बताये गये और यह भी कि उनके लिए सात हज़ार रुपये की ज़रूरत होगी। यह रक़म उन्होंने डलमिया जी से माँगी जो उन्हें तत्काल मिल गई। तब उन्होंने उसकी माँग सरकार से की। उसने भी उनके अनुरोध पर सात हज़ार रुपये की मंज़ूरी दे दी। इस पर उन्होंने सेठ जी के रुपये वापस कर दिये और सरकार से प्राप्त धन से २६ छात्रों में से २३ छात्रों की सहायता की व्यवस्था कर दी।

परन्तु उनकी इस प्रवृत्ति का उक्त सेठ जी पर बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा उन्होंने भी सर गणेशदत्तसिंह की प्रेरणा से एक ट्रस्ट क़ायम कर दिया है। इस ट्रस्ट से उन्हें दो हज़ार रुपया प्रतिमास दो वर्ष तक मिलेगा। इस धन से वे बिहार-प्रान्त के असमर्थ छात्रों की सहायता और दो वर्ष तक करेंगे। इस प्रकार सर गणेशदत्तसिंह अपने प्रान्त में शिक्षा-प्रचार का अत्यधिक और सो भी बड़ी सावधानी के साथ प्रयत्न कर रहे हैं। उनका यह प्रयत्न एक आदर्श प्रयत्न है। यदि अन्य प्रान्तों के भी मंत्री उनका अनुकरण करें तो वे भी उन्हीं की भाँति लोक का कल्याण कर कीर्ति के भागी हों।

डाकुओं के उन्मूलन का एक नया प्रयत्न

सशस्त्र डाकुओं से निःशस्त्र जनता अपनी रक्षा कदापि नहीं कर सकती है और न वह मौक़े पर पुलिस से ही आवश्यक सहायता पा सकती है। फल यह होता है कि डाकू आते हैं और जिसे चाहते हैं उसे मारपीटकर लूट ले जाते हैं और सारा गाँव यह सब दृश्य चुपचाप बैठा देखता रहता है। यदि किसी गाँव के कुछ साहसी पुरुष डाकुओं का मुक़ाबिला करने को आगे भी आते हैं तो बुरी तरह मार डाले जाते हैं। कदाचित् ही वे उन्हें मार भगाने में समर्थ होते हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि सरकार डाकुओं का नाम-निशान मिटा देने का विशेष प्रयत्न एक ज़माने से करती चली आ रही है, परन्तु रक्तबीज की तरह ये बार-बार उत्पन्न होते ही जा रहे हैं और इनके अत्याचारों से संयुक्त-प्रांत और पंजाब के लोगों का जान-माल कभी ख़तरे से ख़ाली नहीं रहता। इस सम्बन्ध में हमने सरकार को बार बार सलाह दी है कि वह उन भूभागों में जहाँ डाके बहुत अधिक पड़ते रहते हैं, विश्वसनीय सद्गृहस्थों को गोली-बारूद तथा बन्दूक़ रखने की आज्ञा दे दे ताकि वे पुलिस की अनुपस्थिति में डाकुओं से अपनी तथा अपने ग्रामवासियों की रक्षा कर सकें। प्रसन्नता की बात है कि पंजाब की सरकार को यह बात सूझ गई है और वह डकैतियों के रोकने के लिए वैसी ही एक योजना का प्रयोग भी करने जा रही है। उसने फ़िरोज़पुर के उन गाँवों में लोगों को अस्त्र शस्त्र रखने की आज्ञा दे दी है जहाँ डाकों की धूम मची रहती है। इस ज़िले के जिन स्थानों में डाकू-चोर छिपे रहते हैं, वहाँ के कई एक गाँवों के कोई सौ आदमियों को शस्त्र देने की उसने व्यवस्था की है। जिनके पास लाइसेंस होंगे उन्हें सरकार गोली-बारूद मुफ़्त देगी, पर वह उन पर समुचित नियंत्रण रक्खेगी। जिन गाँवों में किसी के पास लाइसेंस नहीं होगा, वहाँ विश्वास-योग्य व्यक्तियों को सरकार अपने पास से शस्त्रास्त्र देगी। मुफ़्त की गोली-बारूद इसी शर्त पर उन्हें दी जायगी कि वे डाकुओं के विरुद्ध सरकार को मदद देने को सदा तैयार रहें। क्या ही अच्छा होता यदि पंजाब की सरकार की इस योजना का अनुकरण हमारे प्रान्त में भी होता। इसमें सन्देह नहीं है कि यह योजना सोलहो आने सफल होगी। डाकुओं के बढ़े-चढ़े हौसले इसी लिए हैं कि अपने

शिकार की निर्बलता को वे जानते हैं और अब जब वे जान जायँगे कि उनके शिकार अपनी रक्षा कर लेंगे तब उनको भी डाका डालने का एकाएक साहस नहीं होगा।

नया निर्वाचन और कांग्रेस

नये शासन-विधान के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रान्तों में जो नया निर्वाचन होगा वह अब तक के सभी ऐसे निर्वाचनों से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण होगा। पहली बात तो यही है कि इस निर्वाचन में देश की एक बहुत बड़ी संख्या भाग लेगी। यह ठीक है कि मतदाताओं का एक बड़ा अंश अपने इस अधिकार के मूल्य या महत्त्व से अवगत भी नहीं है, तथापि वोट देनेवाले बहुत बड़ी संख्या में वोट देंगे और इस संख्या का संगठन करना वास्तव में एक बड़ा काम होगा। इस बार के चुनाव में जान पड़ता है कि वोट प्राप्त करने के लिए घोर परिश्रम उन लोगों को भी करना पड़ेगा जो अभी तक अपने समर्थकों के संगठित दल की सहायता से प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं की सदस्यता को अपनी बपौती-सा बनाये हुए थे। बात यह है कि अब निर्वाचक-मण्डल का क्षेत्र पहले से कहीं अधिक बढ़ गया है और जो लोग अभी तक अपने कुछ समर्थकों की सहायता से ही अपने सदस्य चुने लिये जाने के लिए पर्याप्त समझते थे उनको अपने समर्थक-दलों को छोड़कर जनता के समूह की सहायता लेनी पड़ेगी। फिर यह भी एक बात हुई है कि लखनऊ-कांग्रेस ने भी इस बार के चुनाव में पूरा पूरा भाग लेने का निश्चय किया है। कांग्रेस का एक दल दो बार पहले भी असेम्बली और प्रान्तिक कौंसिलों के चुनाव लड़ चुका है, परन्तु उन अवसरों पर कांग्रेस ने नहीं, उसके एक दल-मात्र ने ही चुनाव में भाग लिया था। परन्तु इस बार तो स्वयं कांग्रेस ही चुनाव लड़ने जा रही है। पिछले दिनों वर्धा में उसकी कार्य-समिति की एक बैठक हुई थी। उसने इस कार्य का सम्पादन करने के लिए एक कमिटी की नियुक्ति कर दी है, जिसके सभापति सरदार वल्लभ भाई पटेल और मंत्री बाबू राजेन्द्रप्रसाद तथा पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त बनाये गये हैं। यह समिति सारे देश के चुनाव का सञ्चालन करेगी। इसका दफ़्तर बम्बई में रहेगा। इस सिलसिले में सरदार वल्लभ भाई पटेल ने जो वक्तव्य प्रकाशित किया है उससे प्रकट होता है कि कांग्रेस बड़े आयोजन के साथ इस बार का चुनाव लड़ेगी और कदाचित् वह अपने मुस्लिम, अछूत आदि उम्मेदवार भी खड़ा करेगी। यदि वह इतने व्यापक रूप के साथ चुनाव-संग्राम में शामिल होगी तो इसमें सन्देह नहीं है कि उसे आशातीत सफलता प्राप्त होगी।

यह सच है कि कांग्रेस के उम्मेदवारों का कम विरोध नहीं होगा। यह भी जान पड़ता है कि उसके मुसलमान, सिक्ख, व्यावसायिक तथा भूस्वामी उम्मेदवारों को जीत जाने की उतनी आशा नहीं है। मुसलमानों आदि का बहुत दृढ़ संगठन बहुत पहले से हो चुका है। जो कुछ जीत होगी गैर मुस्लिम क्षेत्रों में ही होगी, क्योंकि गैर मुस्लिम दलों का एक तो उन क्षेत्रों की जनता पर उतना प्रभाव नहीं है, दूसरे उनका कोई सुदृढ़ संगठन भी नहीं है। परन्तु यह स्पष्ट है कि कांग्रेस भी सरलता से नहीं जीत जायगी। इसके लिए उसे घोर परिश्रम करना पड़ेगा। इसी से सरदार पटेल ने अपने वक्तव्य में इस बात की घोषणा की है कि गाँव गाँव कांग्रेस की स्थापना होगी, जिससे वोटरों से कांग्रेस का प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित हो जाय। इस प्रकार कांग्रेस चुनाव-संग्राम में ठोस कार्य करने के लिए अपना देशव्यापी संगठन करने का उपक्रम कर रही है। ऐसे भारी आयोजन के आगे मुसलमान, सिक्ख और कुछ कुछ अछूत निर्वाचक-मण्डलों को छोड़कर सर्वत्र कांग्रेस के उम्मेदवारों की ही जीत होगी। लक्षण और परिस्थिति भी ऐसी ही है।

संसार की दो गुप्त संस्थायें

संयुक्त-राज्य और जापान संसार के ६ प्रमुख महाशक्तिशाली राष्ट्रों में गिने जाते हैं। संयुक्त-राज्य में प्रजातंत्र और जापान में पार्लियामेंटरी राजतंत्र के अनुसार शासन होता है। परन्तु आश्चर्य की बात है कि इन दोनों राज्यों में एक ऐसी संस्था का अस्तित्व है जो समय समय पर क़ानून और व्यवस्था को उठाकर एक ओर रख देती है और सार्वजनिक बातों में मनमाने ढङ्ग से हस्तक्षेप कर गुज़रती है। संयुक्त-राज्य में ऐसी एक संस्था का नाम कू-क्लक्स-क्लान था। और अब उसके स्थान में 'ब्लैक लीजन' नामक संस्था अस्तित्व में आ गई है।

यह एक गुप्त संस्था है और इसके सदस्य नक़ाब पहने रहते हैं। इसका उद्देश कैथोलिकों, यहूदियों और हबशियों के प्रति घृणा रखना तथा उनका नाम-निशान मिटा देना है। और अपने उद्देशों की पूर्ति करने के लिए उसके सदस्यों को सेनापति की आज्ञा पर नर-हत्या तक करने को तैयार रहना पड़ता है। इस संस्था की सदस्य-संख्या बहुत बड़ी-चढ़ी है। मिचिगन-रियासत में वे १,३५,००० हैं। इनके सिवा ६० लाख सदस्य और हैं, जो सारे संयुक्त-राज्य में इधर-उधर बिखरे हुए हैं। इस संस्था का एक यह भी उद्देश है कि संयुक्त-राज्य में नानाशाही की स्थापना की जाय। इस संस्था के अस्तित्व का पता वहाँ की सरकार को है। यह कैसे कैसे अत्याचार करती है, यह सब उसे व्योरेवार मालूम है। वह इसका उन्मूलन करना चाहती है, परन्तु कुछ कर नहीं पाती। इसका संगठन गुप्त ही रक्खा जाता है। इसके सदस्य इसका रहस्य न खोलने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध रहते हैं और जो व्यक्ति अपनी प्रतिज्ञा को भङ्ग करता है वह तुरन्त मार डाला जाता है। इसके सदस्य आजीवन होते हैं। ये लोग उग्र राष्ट्रीयतावाद का प्रचार करते हैं। इन लोगों की शक्ति बहुत बढ़ गई है। वहाँ के निरपेक्ष नागरिक जब इनके हाथों में पड़ जाते हैं तब उनकी बड़ी दुर्गति की जाती है।

जापान की गुप्त संस्था संयुक्त-राज्य की उक्त संस्था से भी अधिक शक्ति-सम्पन्न है। उसके नेता महामहिमशाली तोयामा की उम्र इस समय ८० वर्ष के लगभग होगी। उनके नेतृत्व में इसका बल इतना अधिक बढ़ गया है कि उसकी बातें वहाँ की सरकार को भी मंज़ूर करनी पड़ती हैं। उस संस्था का एकमात्र उद्देश यह है कि जापान के साम्राज्य की वृद्धि हो और जो लोक-नेता उसके मार्ग में बाधा डालें वे तत्काल साफ़ कर दिये जायँ।

सो संयुक्त-राज्य और जापान के शासन-चक्र इन गुप्त संस्थाओं के भय से प्रभावित रहते हैं और जब इन महाशक्तिशाली देशों का यह हाल है तब अन्य देशों में कहाँ कहाँ क्या क्या लोगों पर बीत रही है, इसका कोई ठिकाना नहीं। प्रजातंत्र और साम्यवाद की बातें ऐसी परिस्थिति में कोरी गप्पें ही प्रतीत होती हैं।

साहित्य की रचना

हिन्दी में नूतन साहित्य-रचना की आज कैसी ... है, उसकी ओर हमारे समालोचकों का उतना ध्यान ... रहता है जितना व्यक्तिवाद के प्रचार की ओर। हिन्दी ... इस उन्नत युग में यह अवस्था कहाँ तक लोक... सिद्ध हो रही है, यह तो हम नहीं जान सकते, पर ... ज़रूर जानते हैं कि इस मनोवृत्ति से साहित्य का ... नहीं हो रहा है। व्यक्तिवाद साहित्य-क्षेत्र में इधर ... समय से इतना अधिक प्राधान्य प्राप्त कर गया है कि ... से बड़े साहित्यकार तक उसके फेर में पड़ गये हैं, और ... इस प्रवृत्ति ने वास्तविक साहित्य की रचना को ... रोक दिया है और उसके स्थान में ग्राम्य व्यञ्जना का ... बढ़ा दिया है। उन्हें इस बात की परवा नहीं है कि ... राष्ट्र का बौद्धिक संस्कृति का प्रतिरूप है, और ... ग़लत मार्ग ग्रहण करेगा तो उससे राष्ट्र का अपभ्रंश ... व्यक्तिवाद के प्रचारक हमारे ये अभिनव आलोचक ... लेखक इस बात की ज़रा भी परवा नहीं कर रहे हैं ... अपने नवयुवकों के आगे उपयुक्त आदर्श नहीं उपस्थित ... रहे हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि सभी ... पुस्तकें धड़ाधड़ लिखी जा रही हैं और लोगों के सामने ... का कोई स्टैंडर्ड नहीं रह गया है। हममें अब ... अभाव हो गया है और हम व्यक्तिवादपरक ... आलोचनाओं में ही वास्तविक सरसता का ... करते हैं। तभी तो ऐसे लेखकों और आलोचकों ... समय ज़ोर बढ़ गया है—तभी तो महत्त्वपूर्ण सा... का दिन-प्रति-दिन ह्रास सा होता जा रहा ... में साहित्यकार जनता का गुरु है और यदि ... रुचि को इतना गिरा देंगे तो इसका एक भयं... णाम यह होगा कि वे अपने साथ और भी ... डूबेंगे। यह कितने खेद की बात है कि ... चाहिए कि हम अन्य प्रान्तीय भाषाओं की प्र... देखते हुए अपने साहित्य निर्माण कार्य को अधि... उत्तरोत्तरोन्मुख बनाये रक्खें, जहाँ हमें उनके साहित्य... उनकी उत्कृष्ट रचनाओं की चर्चा करके अपने ... की प्रतिभा को उत्तेजन देना चाहिए ताकि वे भी ... के अनुरूप राष्ट्र-भाषा के भाण्डार को अधिकाधिक ... करने में समर्थ हो सकें, वहाँ वे उनके लिए 'कुलि...

बुलबुल' का ग्राम्य आदर्श उपस्थित कर रहे हैं। ऐसी दशा में साहित्य के अभ्युदय की बात कैसे सम्पन्न हो सकती है? हिन्दी के प्रगल्भ और तीक्ष्ण आलोचक अपनी इस मनोवृत्ति की ओर यदि ध्यान देने की कृपा करेंगे और अपनी प्रवृत्ति को संयमित करने की ओर सावधान होंगे तो निस्सन्देह अपने इस काम से हिन्दी का अपार हित करने में समर्थ होंगे। क्या ही अच्छा होता यदि हमारे साहित्य के ये प्रहरी कुछ समय के लिए अवकाश ग्रहण कर लेते।

योरप के कुछ बे-घर-बार के लोग

योरपीय महायुद्ध में नरसंहार और धन-विनाश ही नहीं हुआ है, किन्तु उसके कारण योरप का अधिकांश छिन्न-भिन्न भी हो गया है। यही कारण है कि वहाँ के कई देशों में अल्पसंख्यक जातियों का प्रश्न भी उठ खड़ा हुआ है। आस्ट्रिया आदि पराजित राज्यों के जो भाग आज दूसरे देशों में शामिल कर लिये गये हैं उनके निवासी भिन्न जाति के होने के कारण उस देश की प्रधान जाति के अन्तर्भुक्त कैसे हो सकते हैं? इन्हीं लोगों की अल्प संख्या उन देशों में इस समय राजनीति का विकट प्रश्न बन बैठी है और इसमें सन्देह नहीं है कि योरप की वर्तमान अव्यवस्था का एक कारण यह प्रश्न भी है और यह प्रश्न भी भविष्यद् योरपीय महायुद्ध का एक कारण हुआ। परन्तु इस समस्या का एक भीषण रूप उस प्रार्थना-पत्र से प्रकट होता है जो मध्य-योरप के एक बड़े दो वर्गों की ओर से राष्ट्र-संघ के समक्ष उपस्थित किया जाने-वाला है। उसमें इस बात की शिकायत की जायगी कि मध्य-योरप में लोगों की एक ऐसी बड़ी संख्या अस्तित्व में आ गयी है जिसका अब अपना कोई देश नहीं है, इसलिए उन्हें कहीं कोई भूभाग या टापू मिलना चाहिए जहाँ जाकर वे बस जायँ और उसे अपना देश मान लें। यह कथा उस महान देश की है जहाँ के निवासी संसार के अन्य लोगों को सभ्यता की शिक्षा देने का अपना नैसर्गिक अधिकार मानते हैं। यह वास्तव में एक आश्चर्य की बात है कि उन्हीं के भाई-बन्धु आज इस तरह विताड़ित हैं कि वे योरप के किसी भी भाग को अपना 'स्वदेश' नहीं कह सकते।

बे-घर-बार के उक्त समूह की जन-संख्या दो लाख बीस हज़ार है। इस संख्या में स्त्री, पुरुष और बाल-बच्चों सबकी संख्या है। इनके तीन प्रतिनिधि हंगरी की राजधानी बुडापेस्ट से पैदल चल चुके हैं और वे जेनेवा जाकर राष्ट्र-संघ के दफ़्तर में अपना प्रार्थनापत्र देंगे। उनके पास एक पैसा नहीं है। वे पहले पुराने आस्ट्रिया-हंगरी की प्रजा थे। उनमें एक प्रतिनिधि वेना में शिक्षक था। अब वह रूमानिया की प्रजा है। दूसरा उज़बोडिड में मज़दूर था। अब युगोस्लाविया की प्रजा है। तीसरा ब्राटिस्लावा में क्लर्क था। अब ज़ेकोस्लोवेकिया की प्रजा है। अपने सम्बन्ध में विश्वास न करा सकने के कारण ऐसे अज्ञात-कुल-शील लोग उधर के देशों से पकड़ पकड़कर देश की सीमा के बाहर कर दिये जाते हैं। और इस प्रकार वे जहाँ जाते हैं वहाँ से निकाल बाहर किये जाते हैं, यहाँ तक कि ऐसे देश-बहिष्कृतों की संख्या लाखों तक पहुँच गई है। अस्तु एक रात को उक्त तीनों व्यक्ति जुगोस्लेविया और हंगरी की सीमा पर मिले और राष्ट्र-संघ को प्रार्थना-पत्र देने के लिए अपने जैसे देश-बहिष्कृतों के हस्ताक्षर संग्रह करने की एक योजना बनाई। तीन वर्ष के भीतर उन्होंने ६,००० हस्ताक्षर लिये हैं। उनके पास इस बात के प्रामाणिक आँकड़े हैं कि मध्य और पूर्व योरप में २,२०,००० ऐसे लोग हैं जो किसी भी देश के नहीं हैं। देखना है कि राष्ट्र-संघ के कर्णधार अपने इन सभ्य भाइयों का कैसे उद्धार करते हैं।

सम्राट् एडवर्ड

यह दुःख की बात है कि सम्राट् अष्टम एडवर्ड के ऊपर गत १६ जुलाई को जब वे फ़ौजी जुलूस के साथ हाइड पार्क से लौट रहे थे, एक आदमी ने पिस्तौल चलाने की दुष्ट चेष्टा की। परन्तु उसका प्रयत्न तुरन्त विफल कर दिया गया और वह पकड़ा गया। सम्राट् अष्टम एडवर्ड विलायत में और विलायत से बाहर भी इतने लोकप्रिय हैं कि उन पर कोई आक्रमण करेगा, इसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। कहते हैं कि आक्रमणकारी ने अपने बयान में कहा है कि उसका उद्देश हत्या नहीं, केवल विरोध-प्रदर्शन था। इस घटना से सम्राट् की लोकप्रियता का और भी एक प्रमाण मिला है। यदि पुलिस न बचाती तो भीड़ शायद उस आदमी को उत्तेजना में क़त्ल कर डालती। उस दिन इँग्लैंड में ही नहीं, सारे संसार में यही चर्चा रही और सब ओर से समवेदना और बधाई के तार होते होते डाक तारवाले परेशान हो गये।

ग्रेट ब्रिटेन में ऐसी घटना इधर ५० वर्ष बाद घटी है। महारानी विक्टोरिया पर पाँच बार ऐसे आक्रमण हुए थे, पर वे दोनों विफल गये थे। और आक्रमण करनेवाले प्रत्येक बार पकड़े गये थे और उन्हें सज़ायें दी गई थीं। पर कहते हैं, महारानी विक्टोरिया इतनी उदार थीं कि उन्होंने प्राण-दण्ड किसी को नहीं देने दिया और दो-एक को तो उन्होंने अपने ख़र्च से आस्ट्रेलिया भिजवाया था। सम्राट् सप्तम एडवर्ड पर भी एक बार एक युवक ने जब वे प्रिन्स आफ़ वेल्स थे, आक्रमण किया था, पर उन्हें कोई क्षति नहीं पहुँची। सम्राट् पंचम जार्ज पर कभी कोई आक्रमण नहीं हुआ था। हमें विश्वास है कि इस प्रकार की यह अन्तिम घटना है और हमें प्रसन्नता है कि सम्राट् इससे बाल बाल बच गये।

बाबू मैथिलीशरण गुप्त

बाबू मैथिलीशरण गुप्त उन कवियों में हैं जिन्होंने हिन्दी का मुखोज्ज्वल किया है। उनकी साहित्यिक सेवायें कभी भुलाई नहीं जा सकतीं। उनकी 'भारत-भारती' का प्रवेश गाँव गाँव में हो गया है और उनका 'साकेत' एक



[बाबू मैथिलीशरण गुप्त]

ऐसा काव्य है जो किसी भी उत्तम काव्य की समकक्षता में रक्खा जा सकता है। पंडित वेंकटेशनारायण तिवारी ने गत २४ जुलाई को मनाई जानेवाली उनकी ५० वीं वर्षगाँठ के अवसर पर स्थानीय सार्वजनिक सभा में भाषण देते हुए यह ठीक ही कहा है कि जब तक हिन्दी रहेगी तब तक 'साकेत' रहेगा और जब तक 'साकेत' रहेगा तब तक गुप्त जी का नाम अमर रहेगा। इस शुभ अवसर पर हम भी गुप्त जी के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हैं। ईश्वर उन्हें दीर्घायु करे ताकि वे हिन्दी की और भी श्रीवृद्धि करते रहें।

डा० अम्बेडकर का दोषारोपण

महात्मा गांधी हरिजन में लिखते हैं—

वेद, उपनिषद्, स्मृतियाँ और रामायण तथा महाभारत-सहित सारे पुराण हिन्दुओं के शास्त्र हैं। लेकिन यह ऐसी सूची नहीं है जिसमें कोई घटा-बढ़ी हो न हो सकती हो। हर एक युग और शताब्दी तक ने इसमें वृद्धि की है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि छपी हुई या हस्तलिखित मिलनेवाली हर एक चीज़ शास्त्र नहीं है। उदाहरण के लिए, स्मृतियों में बहुत-सी ऐसी बातें हैं जिन्हें ब्रह्मवाक्य हर्गिज़ नहीं माना जा सकता। इस प्रकार स्मृतियों से डा० अम्बेडकर ने जो बहुत-से उद्धरण दिये हैं उन्हें प्रामाण्य नहीं माना जा सकता। यथार्थतः जो शास्त्र कहे जाते हैं उनका सम्बन्ध मूलतत्त्वों से ही हो सकता है और वे उसी हृदय को अपील कर सकते हैं, जिसके ज्ञान-नेत्र खुल गये हों। ऐसी किसी बात को ब्रह्मवाक्य नहीं माना जा सकता जिसकी तर्क-बुद्धि-द्वारा परीक्षा न हो सके या आध्यात्मिक रूप में जिसका अनुभव न किया जा सकता हो। और फिर, शास्त्रों का परिष्कृत संस्करण आपके पास हो तो भी आपको उनकी व्याख्या की ज़रूरत तो पड़ेगी ही।

वर्ण और आश्रम का जात-पाँत से कोई सम्बन्ध नहीं है। वर्ण-व्यवस्था से तो हमें यही शिक्षा मिलती है कि हममें से हर एक को अपने क़दीमी काम-धंधे के द्वारा अपनी जीविका कमानी चाहिए। यह हमारे अधिकारों को नहीं बल्कि कर्त्तव्यों को स्पष्ट करती है। इसमें तो आवश्यक रूप से उन्हीं काम-धन्धों का उल्लेख है जो हमें केवल मानव-हित की ओर ही ले जाते हैं। इसका यह भी अभिप्राय है कि कोई काम-धन्धा न तो बहुत नीच है और न कोई बहुत ऊँचा। सभी अच्छे जायज़

और दर्जे में बिलकुल समान हैं। आध्यात्मिक शिक्षा देनेवाले ब्राह्मण से लेकर मैला उठानेवाले भंगी तक के सब काम समान हैं और ईश्वर के सामने उन सभी का समान महत्त्व है—और, ऐसा मालूम पड़ता है कि, एक समय ऐसा था जब मनुष्यों को उन सबका समान ही प्रतिफल मिलता था। दोनों को अपने गुज़ारे भर के लिए मिलने का हक़ था, उससे अधिक नहीं। और गाँवों में तो वस्तुतः अभी भी इस सुन्दर नियम-प्रवृत्ति की थोड़ी बहुत धुँधली-सी रेखायें नज़र आती हैं। ६०० की आबादी के गाँव में रहते हुए, मुझे यह नहीं मालूम पड़ता कि मुख़्तलिफ़ काम धन्धे करनेवालों की—यहाँ तक कि ब्राह्मणों की भी—कमाई में परस्पर कोई भेद हो। यह भी मैं देखता हूँ कि गिरावट के इन दिनों में भी ऐसे सच्चे ब्राह्मण मौजूद हैं जो स्वेच्छापूर्वक उनको दी जानेवाली भिक्षा पर निर्वाह करते हुए उनके पास जो आध्यात्मिक निधि है उसे उदारतापूर्वक दूसरों को प्रदान कर रहे हैं। वर्ण-व्यवस्था का उसके उस हास्यजनक विकृत चित्र से निर्णय करना ग़लत और अनुचित है, जो कि हमें उन लोगों के जीवन में मिलता है, जो दावा तो यह करते हैं कि हम अमुक वर्ण के हैं किन्तु उसके एकमात्र प्रवर्त्तक नियम का खुले तौर पर भंग कर रहे हैं। वर्णव्यवस्था में ऐसी कोई बात है ही नहीं जिससे अस्पृश्यता को आधार मिलता हो। हिन्दू-धर्म का तो सार इसमें है कि वह सत्य को ही एकमात्र ईश्वर मानता है और अहिंसा को उसने मानव-जाति के लिए अटल नियम के रूप में साहस के साथ स्वीकार किया है।

अपने योग्यतापूर्ण भाषण में विद्वान् डाक्टर ने अपने मामले को ज़रूरत से ज़्यादा सिद्ध किया है। लेकिन जिस धर्म में चैतन्य, ज्ञानदेव, तुकाराम, तिरुवल्लुवर, रामकृष्ण परमहंस, राजा राममोहन राय, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, विवेकानन्द तथा अन्य बहुत-से ऐसे लोग हुए जिनके नाम आसानी से लिये जा सकते हैं, क्या, जैसा डा० अम्बेडकर के भाषण में सिद्ध किया गया है उसमें कोई अच्छाइयाँ बिलकुल हैं ही नहीं? किसी धर्म का निर्णय उसके सबसे बुरे नमूनों से नहीं बल्कि उसकी सर्वोत्तम कृतियों से ही किया जा सकता है। क्योंकि उसे और एकमात्र उसे ही ऐसा स्टैण्डर्ड माना जा सकता है जिससे आगे न जा सकें तो भी उस तक पहुँचने की तो हम आकांक्षा करें ही।

चित्र-परिचय

सरस्वती के इस अङ्क में जो रङ्गीन चित्र प्रकाशित किये गये हैं उनमें पहला बुद्ध और गौतमी का है। गौतमी एक विधवा नारी थी। उसकी अन्तिम आशा उसका शिशु था, जिसकी मृत्यु से वह अधीर हो उठी थी। भगवान् बुद्ध से उसने कहा—"मेरे पुत्र को जीवित करो, चाहे जैसे हो।" बुद्ध ने उससे कहा—"अच्छा। पर पहले मुझे उस घर से एक मुट्ठी भस्म ले आओ जिसमें कभी कोई मृत्यु न हुई हो।" गौतमी सर्वत्र खोज आई, पर उसे ऐसा घर न मिला और उसे ज्ञान हुआ कि मृत्यु से सभी पीड़ित होते हैं। दूसरों के दुःख सुनकर उसे अपना कष्ट भूल गया। उसने बुद्ध को इस ज्ञान-प्रदान के लिए धन्यवाद दिया। यही भाव इस चित्र में श्री वाणीकान्त दास ने अङ्कित किया है।

दूसरा चित्र मालिन का है। इसके चित्रकार श्री उपेन्द्रकुमार मित्र हैं। आज कृषक-युवतियाँ अपने खेतों और बागों से ख़ाली हाथ और मलिनमुख लौटती हैं। पर क्या कभी ऐसा समय आ सकता है जब ये युवतियाँ प्रकृति का उपहार लेकर प्रसन्न-वदन घर को लौटें जैसा कि किसी समय में लौटती थीं? अपने उसी स्वप्न को इस चित्र में चित्रकार ने अङ्कित करने का प्रयत्न किया है।

भूल-सुधार

'सरस्वती' के गताङ्क में श्री सीतलासहाय जी के 'शीशे के व्यवसाय' शीर्षक लेख में 'बड़गड़' और 'लोहगारा' का नैनीताल के निकट होना छप गया है। वास्तव में नैनी होना चाहिए। ये स्थान नैनी (इलाहाबाद) के पास हैं। पाठक सुधार कर पढ़ने की कृपा करें।



मञ्जरी-प्रदान
कादम्बरी में वर्णित पुण्डरीक और महाश्वेता का प्रथम सम्मेलन।



सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्र श्रीनाथसिंह

सितम्बर १९३६ } भाग ३७, खंड २ संख्या ३, पूर्ण संख्या ४४१ { भाद्रपद १९९३

उच्छ्वास

लेखक, ठाकुर गोपालशरणसिंह

थोड़े दिन के लिए रहा वह जीवन का उल्लास,
थोड़ा-सा प्रकाश करके ही हुआ विलीन प्रकाश।

क्यों हो गया विराग जहाँ था सदा अतुल अनुराग ?
स्नेह बहुत बढ़ गया इसी से क्या बुझ गया चिराग ?

क्या देखा क्या सुना सुमन ने क्या भोगा सुख-भोग ?
ज्यों ही खिलने लगा खोल मुख त्यों ही हुआ वियोग।

चला नहीं कुछ भी वश आया काम न कोई यत्न,
यह देखते ही तो भी खो गया हृदय का रत्न।

कितनी ही मृदु साधें मन की कितने ही आनन्द,
लेता गया साथ में अपने एक मञ्जु लघु चन्द।

छोड़ मुलायम गोद लता की और सुनहली डाल,
क्यों मिट्टी की सेज सुमन ने की पसन्द विकराल ?

कहाँ गया तज मान सरोवर वह लघु मृदुल मराल ?
किसके साथ करें क्रीड़ा अब सरोजनी के बाल ?

खिलीं अनेक लतायें सुख से फूले फूल अनन्त,
पर आता जीवन-कानन में दो ही बार वसन्त।

मुरझा गईं लतायें सूखे पादप वृन्द रसाल,
पावस में आया है कैसे यह भीषण तप-काल ?

छिपा प्रकाश हो गया दिन भी निपट अँधेरी रात,
बनकर भाप उसासें उर की लाई हैं बरसात।

जीवन या मृत्यु ?

हिन्दू-समाज इस समय नाना 'वादों' और विभिन्न 'आदर्शों' की शिक्षा पाकर अपनी प्राचीन 'आर्यसंस्कृति' से विमुख होता जा रहा है। इस परिस्थिति का इस लेख में सुन्दर ढङ्ग से विवेचन करते हुए पाण्डेय जी ने बताया है कि इसके परिणाम-स्वरूप हिन्दुओं का विनाश होगा। लेखगत विचार वास्तव में महत्त्वपूर्ण और मनन के योग्य हैं।

लेखक, श्रीयुत रामप्रसाद पाण्डेय, एम० ए०

भारतवर्ष अनेक शताब्दियों से पराधीन है। विगत कई सौ वर्षों से यह अन्य देशों के सामने कायर और निर्बल गिना जाता है। यहाँ के निवासी कादर तथा निकम्मे कहे जाते हैं। यहाँवाले उतने उद्योगी और परिश्रमशील भी नहीं हैं, जितने योरप अथवा अमरीकावाले हैं। इसकी एक उपपत्ति भी ढूँढ़ निकाली गई है। कहा जाता है कि भारत की आब-हवा ही ऐसी है जिसमें लोग बलिष्ठ और परिश्रमशील नहीं हो सकते। यहाँ गर्मी अधिक पड़ती है, जिससे वर्ष के दो-तीन महीने तो कोई कुछ कर ही नहीं सकता।

कैसी विनोदकारी यह आधुनिक सूझ है! लोगों के आचार और जीवन का सम्बन्ध सर्वथा उनकी भौगोलिक परिस्थिति से जोड़ दिया गया है। जैसे मनुष्य केवल एक भौतिक प्राणी है और जैसे घी गर्मी पाकर पिघलकर पतला और सर्दी पाकर जमकर कड़ा हो जाता है, वैसे ही मनुष्य भी एक जलवायु में सबल और दूसरे में निर्बल हो जाता है। हमारे जो पण्डित और प्रधान इस बात को जल्दी मान लेते हैं वे कभी इस बात पर नहीं ध्यान देते कि अपने कम-से-कम दस सहस्र वर्ष के इतिहास में हम केवल गत सात-आठ सौ ही वर्षों से निर्बल हो गये हैं। इसके पहले नौ हज़ार वर्ष से ऊपर तक भारत एक स्वतंत्र बलशाली राष्ट्र था, जिसकी दूसरे सुदूर देशों तक में बड़ी धाक थी। पश्चिम में रोम-साम्राज्य से लेकर पूर्व में चीन और जापान तक अभी बौद्धकाल में भी लोग हमारी वीरता और कला-कौशल के क़ायल थे। रोम के देशभक्त शिकायत करते थे कि भारतीय वस्तुओं के पीछे साम्राज्य का बहुत धन वहाँ चला जाता है। आवश्यकता पड़ने पर यूनान में भी यहाँ के वीर सैनिक जाते थे और अपनी वीरता का वहाँ के लोगों को परिचय देते थे। इधर हिन्द-महासागर के पूर्व-दक्षिण के द्वीप हमारे उपनिवेश थे। स्वतः देश के भीतर की शासन-व्यवस्था भी अत्यंत प्रशंसनीय थी। लोगों में परस्पर मेल था, सभी मिल-जुलकर एक राष्ट्रीय जीवन व्यतीत करते थे। ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल और उद्योग-धन्धों में ही लोगों का अधिक समय बँटा रहता था।

उस समय जलवायु कोई दूसरा नहीं था। यही देश था और यही आब-हवा थी। कदाचित् कोई और बात रही होगी, जिससे उस समय हम बली थे और आज नहीं हैं। सच बात यह है कि मनुष्य केवल भौतिक पुतला नहीं है। उसके जीवन का बनना-बिगड़ना अधिकांश में उसके विचार और आदर्शों पर निर्भर है। जीवन के आदर्श जैसे होते हैं, जीवन भी वैसा ही हो जाता है। अतीत काल में हमारे पूर्व-पुरुषों का आदर्श हमारे आदर्शों से कुछ भिन्न था, जिसके कारण उनके जीवन में अधिक वीरता और क्रियाशीलता थी। आज हमारे निकम्मे आदर्श हमको निकम्मा और बलहीन बनाते जा रहे हैं। जीवन के प्रत्येक विभाग में हमारे विचार गिरते और अयुक्त होते चले जा रहे हैं। इससे हमारा जीवन भी अवनत होता जाता है। भारत के विचारशील लोगों को आदर्शों के निर्माण में अधिक सतर्क होना चाहिए। सभी दिल खोलकर गहरा विचार करें और देखें कि हम अपने ऊँचे आसन से जो कुछ कह रहे हैं उसका देश के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

धर्म के नाम पर जो कुछ कहा जाता है उसका हिन्दुओं पर बहुत प्रभाव पड़ता है। अतः धर्माचार्यों को बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है। धर्म के क्षेत्र में आज बड़ी धींगा-धींगी मची हुई है। हमारे मुसलमान भाई अथवा ईसाई भाई क्या करते हैं, हम नहीं देख सकते।

यह उनका काम है। परन्तु हिन्दू पंडित और हिन्दू आचार्य जो कुछ कर रहे हैं उसे हम उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देख सकते हैं। धर्म के नाम पर समाज के जो टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं उसका विरोध हो रहा है और अब सनातनधर्मी पंडित भी कहने लगे हैं कि वर्ण-व्यवस्था कुछ विकृत दशा को प्राप्त हो गई है, उसे अधिक युक्तियुक्त आधार पर संगठित करना चाहिए। महामना मालवीय जी सनातनी पंडितों को समझाने पर तुले हुए हैं और उनकी अवश्य सुनी जायगी।

परन्तु भक्ति और उपासना को लेकर इधर कई वर्षों में अनेक संस्थायें उत्पन्न हो गई हैं, जो धार्मिक जाग्रति के साथ साथ कुछ निष्क्रियता-पूर्ण आदर्श भी जनता के सामने रखती जा रही हैं। इसका विरोध करने की आवश्यकता है। यदि इन आदर्शों को लोगों ने अपना लिया तो हमारी गिरी हुई अवस्था और भी गिर जायगी।

शुद्ध वैदिक अथवा भागवत धर्म की उतनी चर्चा नहीं होती, जितनी नाम-जप, कीर्तन, एकान्त-वास, कामिनी-काञ्चन का त्याग आदि-आदि विषयों की। सर्वथा यही घोषित किया जा रहा है कि विषय-सुखों को त्यागो, विराग का रसास्वादन करो, नाम-जप में लग जाओ और भगवान् का साक्षात्कार प्राप्त करो। लोगों से मिलना-जुलना और समाचार-पत्रों का पढ़ना प्रायः अनिष्टकारी समझा जाता है। उक्त बातें थोड़े में यह सिखलाती हैं कि कैसे मरा जाय। तो क्या यही सनातन-धर्म है, क्या हमारे धर्म में यही सिखाया गया है कि हम जल्दी-से जल्दी आत्म-हत्या किस भाँति करें? उसका उत्तर यह है कि बात ऐसी नहीं है। जीवन का सबसे पहला और सबसे आख़िरी, सबसे बड़ा और सबसे महत्त्वपूर्ण विषय यह है कि हम कैसे जियें, हमारा जीवन कैसे स्थित रहे। हमारा धर्म स्पष्ट रूप से जीवन की कला है और जीवन का विज्ञान है। वह हमें जीना बतलाता है, मरना नहीं। आज उसके मौलिक उपदेश भुला दिये गये हैं और [illegible] उनकी जगह बेतुकी बातें कही जाती हैं। स्वतः धर्म-शब्द की व्युत्पत्ति ही जीवन-धारण करना है। जिसके सहारे हम अपने को धारण करते हैं, जिसके सहारे हमारा यहाँ अभ्युदय होता है और दूसरे लोक में परमसुख की उपलब्धि होती है वही धर्म है।

(१) अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।
(२) विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा संभूत्याऽमृतमश्नुते।
(३) स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः
(४) साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः।

उपनिषद् और गीता के ये वचन जीवन के [illegible] तथा उसकी सार्थकता की ओर संकेत करते हैं। [illegible] पारिवारिक और सामाजिक जीवन को पूर्ण करके ही अपनी आध्यात्मिक पूर्ति कर सकते हैं। आत्मज्ञान [illegible] ईश्वर की प्राप्ति के लिए कोई ऐसा कम दूरी का [illegible] नहीं है जिसके द्वारा हम उसे और कुछ न करते हुए [illegible] कुछ न जानते हुए साध सकते हैं। मार्ग एक ही [illegible] विज्ञान-सहित ज्ञान के ही द्वारा वह ध्येय साध्य है। [illegible] पन्था विद्यते अयनाय।

जिनकी समाज में प्रतिष्ठा है, जिनके पास प्रचार साधन हैं, उनको जाति को यह सिखलाना है कि जीवन [illegible] सभी अंग, सभी कर्तव्यों की पूर्ति-द्वारा, परिपूर्ण [illegible] जायें और सर्ग अर्थात् सृष्टि पर विजय प्राप्त करके [illegible] भीतर की आत्मा का अनुभव किया जाय।

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः॥

जब तक मनुष्य मनुष्य है तब तक वह अपूर्ण [illegible] सकता है। परन्तु अपूर्ण रहना एक बात है और [illegible] रहना दूसरी बात है। दोनों में दूर रहा जा सकता [illegible] जब तक निर्दोष नहीं हुआ जायगा तब तक आ[illegible] जीवन की आशा नहीं की जा सकती। जो उप[illegible] चरित्र की ओर ध्यान न देकर ईश्वर-दर्शन की बात [illegible] कर देता है वह हिन्दू-संस्कृति का गला घोंटता है। [illegible] संस्कृति तथा अहिन्दू-संस्कृति में यह बड़ा भेद है कि [illegible] ध्यात्मिकता के लिए चारित्रिक निर्दोषता अत्यन्त आ[illegible] मानी गई है। जो [illegible] भगवान् के लौकिक नियमों का उ[illegible] करके उसकी सहायता पर ही अवलम्बित रहकर उ[illegible] चाहते हैं वे अपने को धोखा देते हैं। ईश्वर के [illegible] और कोई सत्पूह हो या न हो, परन्तु अज्ञान महान् [illegible] है। उसके रहते हुए उस मार्ग में कोई अग्रसर न[illegible] सकता है। यह हमारी संस्कृति का परम संदेश है। [illegible] भूलना आत्महत्या के समान है।

संसार की किसी जाति में ऐसी बात नहीं देखने में आती है कि अपना मौलिक धार्मिक ग्रंथ तो ताक पर रख दिया जाय और केवल साधु-संतों की बात आप्त-वचन मान ली जाय। हमारे समाज के एक अङ्ग में इस समय यही प्रवृत्ति ज़ोर पकड़ रही है। साधु-सन्त और आचार्यों की उपादेयता इस विषय में है कि वे हमें मौलिक वेद-वेदांत को समझायें। उनकी स्वतन्त्र रचनायें सहायक ग्रंथ की श्रेणी में आनी चाहिए, वेदोपनिषद् अथवा गीता अथवा स्मृतियों की जगह पर वे नहीं आ सकती हैं। अपने मौलिक ग्रंथों से डरने से और अन्य ग्रंथों को धर्मग्रन्थ समझने से भ्रांति फैल रही है। जो हिन्दू-धर्म और अध्यात्म के मार्ग में हैं वे स्मृति तथा गीतोपनिषद् का अभ्यास क्यों नहीं करते? उन्हें पढ़ सकने पर भी उन्हें क्यों नहीं अपनाते? उपदेशक लोग भी उन्हीं को अनिवार्य क्यों नहीं कहते हैं, अपनी आध्यात्मिक टोली अलग बनाने का उद्योग क्यों कर रहे हैं? अन्य ग्रंथों से धार्मिक ग्रंथों की विशेषता इस बात में है कि ये सभी के लिए हैं, इनके सभी अधिकारी हैं। स्वामी शङ्कराचार्य आदि में मौलिक ग्रंथों की रचना करने की अपार शक्ति थी, किन्तु उन सभी ने प्रधानतया प्रस्थानत्रयी पर बल दिया, जो उनकी सुविस्तृत टीकाओं से सिद्ध होता है। ऐसा करने से आध्यात्मिकता के सच्चे रूप का प्रसार होगा। वेदोपनिषद् के अधिक प्रचार से लोग देखेंगे कि झाँझ-करताल बजाना और जपों का विज्ञापन करना उपासना के विरुद्ध है। उपासना में अधिक शांति चाहिए। उसका साधन शांति-साधन ही होता है।

यदि भक्ति के अभिमानी उपदेशक और लेखक यह कहें कि उनकी सभी बातें, उनके सभी उपदेश विरक्त लोगों के लिए हैं, हमारे जैसों के लिए नहीं हैं, तो अत्यन्त विनयपूर्वक मुझे यह निवेदन करना है कि विरक्तों के लिए उन संस्थाओं के लिए आवश्यकता नहीं है जो गृहस्थों द्वारा, गृहस्थों के धन से, गृहस्थों के मध्य में संचालित की जा रही हैं। विरक्तों को विजन वन में रहस्य की बातें करनी चाहिए। उन्हें हमारे बीच ऐसी बात का प्रचार नहीं करना चाहिए जिससे हम विचलित हों। और जो यहाँ बोलता है उससे अवश्य हम यह आशा रखते हैं कि वह विशेषतया नवयुवकों और गृहस्थों के हित की बात कहे। नैतिक और धार्मिक मार्ग में चलने के लिए पहले सभी गृहस्थों को स्त्री और धन त्यागने की आवश्यकता नहीं है, वरन प्रधानरूपेण यह जानने की आवश्यकता है कि उनका सदुपयोग कैसे किया जाय, उनके संग अच्छे ढङ्ग का सम्बन्ध कैसे स्थिर रक्खा जाय। इसे प्रवृत्ति-मार्ग कहिए अथवा हीनमार्ग, किन्तु सामान्यतः स्वाभाविक मार्ग यही है। लोग पूरा इस विषय की ओर ध्यान नहीं देते कि हिन्दुओं के सभी देव अपनी देवियों के सङ्ग कल्पित किये गये हैं, कोई विरक्त नहीं है। बड़ी आसानी से लोग भगवान् कृष्ण को पूर्णावतार कह देते हैं, परन्तु उस कल्पना का क्या रहस्य है, यह नहीं सोचते। उस पर ध्यान देने से दृष्टि-बिन्दु में अवश्य परिवर्तन हो जायगा। हमारा यह दृढ़ विचार है कि भगवान् की यदि यहाँ ही प्राप्ति नहीं हो गई तो आगे नहीं हो सकती। जो चैतन्य रूप है वह जानकर प्राप्त किया जा सकता है - वह त्रैराशिक के नियमों के द्वारा पकड़ में नहीं आ सकता है। उसकी प्राप्ति के लिए एक राशि का ही नियम है। वह कहीं हमसे अथवा लोक से न्यारे नहीं, प्रत्युत हमारे लिए तो लोक के ही सम्बन्धों में, धन्धों में है, हमीं में है। इसके ऐसे स्वरूप पर ध्यान देने से दौड़-धूप की आवश्यकता नहीं रह जायगी, संसार छोड़ने की आवश्यकता नहीं रह जायगी, प्रत्युत उसको और अधिक जानने की आवश्यकता प्रतीत होगी।

आज से दो वर्ष हुए इसी 'सरस्वती' में मैंने सहशिक्षा पर एक लेख लिखा था। उसका कुछ लोगों ने समर्थन किया, परन्तु श्री सन्तराम जी ने उसका घोर विरोध किया। मैं उनकी पंजाबी परिस्थिति को स्मरणकर समझ गया कि उन्हें किस बात का भय हुआ। वहाँ तक कुछ नहीं। दो-तीन महीने हुए एक प्रतिष्ठित धार्मिक पत्र के प्रसिद्ध सम्पादक ने शिक्षा पर एक लेख लिखा। उसमें अनेक बातें कहीं। परन्तु यह पढ़कर मुझे बड़ा कौतूहल हुआ कि उनकी राय में सहशिक्षा ही भयकारक नहीं है, वरन उन्होंने वर्तमान शिक्षा को भी कन्याओं के लिए अत्यन्त अहितकर कहकर उन्हें सर्वथा अशिक्षित रखने की ही राय दी। इस राय के पीछे वही विकृत भक्ति और उपासना की चिन्ता छिपी है। ऐसे विचारों से हिन्दू-संस्कृति की रक्षा नहीं, उलटे उसका विनाश अवश्यम्भावी है। आदर्शों के दूषित होने का यह

ज्वलंत उदाहरण है। नीति-अनीति क्या है, पाप-पुण्य क्या है, नैतिक जीवन कब आरम्भ होता है, आदि विषय हैं, जिन पर विचारशीलों को ध्यान देना चाहिए। क्या नवजात मार्जारी अथवा गायों की तरह रखकर हिन्दू महिलायें उन्नति के मार्ग में अग्रसर की जायँगी? यह माना कि आधुनिक शिक्षा सर्वथा निर्दोष नहीं है, परन्तु उसका यह अर्थ नहीं कि उसको हमारी कन्यायें ग्रहण ही न करें, मूर्ख और अपढ़ बनी रहें। मूर्खता दूसरी जातियों में शाश्वत सुख का कारण भले ही मानी जाय, यहाँ नहीं है। मूर्खता से बढ़कर हमारे लिए कोई अवगुण नहीं है। जो बालकों को शिक्षा हित करती है वह कन्या को अहित नहीं कर सकती। मानवीय आवश्यकतायें दोनों की समान हैं। दोनों में मस्तिष्क है, बुद्धि है, विचार है, जो परिष्कृत होना चाहिए। स्त्री-शिक्षा की हमारे बीच यों ही कमी है। उस पर यदि किसी मान्य व्यक्ति का ऐसा आदेश निकल जाय तो समाज रसातल को जाने की तैयारी में लग जायगा। हमारे धार्मिक लेखक अन्धाधुन्धी की आध्यात्मिकता छोड़ें और दिल खोलकर विचार करें। शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ कहना हो तो समाज-शास्त्र का अध्ययन करें, तब उस पर कुछ कहें। शीघ्रता में पड़कर ईश्वर-दर्शन कराने की धुन में अनाप-शनाप न बक जायँ। ऐसी बातों का धीरे-धीरे दुष्परिणाम होने लगता है। परवशता में अथवा पर्दे में रखकर और पढ़ाई-लिखाई से वञ्चित कर जो पुरुष स्त्रियों को संयम सिखाना चाहते हैं उनकी विचार-धारा बड़ी दूषित प्रतीत होती है। उन्हें सोचना चाहिए कि समझ और स्वतंत्रता के बाद ही नैतिकता आरम्भ होती है। जो आज़ाद रहकर संयम करता है अथवा करती है वही नैतिक प्राणी है। संयम के नाम पर जीवों को दासता और अज्ञानता में नहीं रखना चाहिए।

यह सब लिखने का यह तात्पर्य है कि हमारे जीवन के आदर्श कुछ दूषित हीन-से दिखाई देते हैं। वे हमें मृत्यु का पाठ पढ़ाते हैं। परन्तु हमारी आवश्यकता दूसरी है। हमें जीना सीखना है, मरना नहीं। जिनमें विद्या और उपकार की वृत्ति है उनसे आशा यह की जाती है कि वे हमारी इस आवश्यकता को पूरी करें; वे यह बतलायें कि हम अच्छी तरह से कैसे रहें। क्षेत्र पारिवारिक हो या सामाजिक, शिक्षा-सम्बन्धी हो या साधना-सम्बन्धी, परन्तु चिन्ता सदा जीवन की पूर्णता के लिए होनी चाहिए। जिस हिन्दू-संस्कृति का अभिमान है उसका ठीक स्वरूप जानना चाहिए। कल्पित संस्कृति की रक्षा करना पानी पीटने के तुल्य है। हिन्दू-जाति यों ही मर रही है। उसे इस मार्ग में निष्णात होने की आवश्यकता नहीं है। उपदेशक-गण जीवन सिखावें, मृत्यु कदापि नहीं। समाज का मुख्य प्रश्न है जीवन, न कि मृत्यु।

जिज्ञासा

लेखक, श्रीयुत अरुण

वारिद-बिन्दुओं के मिस खोजने
को धरती पर व्योम है आया॥
पावक ने शशि के उर को कर
दग्ध है तारक-लोक बसाया॥
ऊँची उड़ान भरी मग-धूलि ने,
पाई समीर ने कम्पित काया॥
नाथ! तुम्हें पहचानने को किस
तत्त्व ने कौन-सा रूप बनाया?

स्वर्ण उषा में हूँ ध्यान में देखता
अश्रु निशा के वियोग के मारे॥
सान्ध्य-उपासना में मुझको नित
घूरते लाल हो बादल सारे॥
शान्त-निशा में पुकारता हूँ तुम्हें
तो हँसते हैं अशान्त हो तारे॥
जान सका हूँ नहीं कि हैं कौन-से
स्वागत के पल नाथ! तुम्हारे?

साहित्यिक संस्मरण

लेखक, श्रीयुत गोपालराम गहमरी

'जासूस' के प्रवर्तक तथा सम्पादक श्रीयुत गोपालराम गहमरी यद्यपि बहुत वृद्ध हो गये हैं, तथापि उनकी लेखनी अविराम गति से चली जा रही है। वे हमारी हिन्दी के जीवित इतिहास हैं। इस लेख में उन्होंने परम हिन्दी-प्रेमी स्वर्गीय राजा रामपालसिंह के सम्बन्ध में अपने संस्मरण लिखे हैं। हिन्दी के अन्य महारथियों के सम्बन्ध में भी हम उनके संस्मरण अगले अंकों में छापेंगे।

(१)

कालाकाँकर (प्रतापगढ़) के माननीय भूपाल राजा रामपालसिंह जैसे राजनीति के क्षेत्र में सर्वप्रिय थे, वैसे ही हिन्दी के भी बड़े प्रेमी थे। जब वे विलायत गये तब उनकी धर्मपत्नी रानी साहब ने भी साथ ही चलने की विनय की। राजा साहब ने बहुतेरा समझाया, लेकिन उनको धीरज नहीं हुआ और बराबर यही कहती रहीं कि जैसे रघुकुलतिलक पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र ने अपनी सीता को वनगमन के समय भी साथ लिया था, वैसे ही आपके साथ मैं भी चलूँगी। आप मुझे मत त्यागिए।

निदान तत्रभवान राजा रामपालसिंह ने उनको साथ लिया। बम्बई तक तो रानी साहब का कुशल से बीता, लेकिन जहाज़ पर सवार होते ही उन्होंने अन्न-जल त्याग दिया। वे समुद्र की बीमारी का शिकार हुई और बीमारी यहाँ तक बढ़ी कि अदन पहुँचते पहुँचते उन्होंने नश्वर देह त्याग किया। लेकिन प्राणान्त होते समय राजा साहब से निवेदन कर दिया था कि उनका शव-संस्कार गङ्गातट पर ही किया जाय।

उसी अन्तिम प्रार्थना के अनुसार राजा साहब ने रानी साहब का शव सुरक्षित रखने का प्रबन्ध अदन में कर दिया और वे विलायत को चले गये। विलायत में राजा साहब १४ वर्ष रहे। लगातार चौदह वर्ष एक ही बार जाकर उन्होंने वहाँ नहीं बिताये थे। कई बार में उन्होंने चौदह वर्ष का विलायत का प्रवास पूरा किया था। पहले उनका लन्दन में रहना होता था। वहाँ से वे 'हिन्दोस्तान' नाम का अँगरेज़ी और हिन्दी में साप्ताहिक पत्र निकालते थे। हिन्दी का स्नेह वहाँ भी उन्होंने नहीं छोड़ा। लन्दन में शतरंज खेलनेवाली एक कमिटी है, जिसके द्वारा बिछे हुए शतरंज के सामने बैठी हुई एक पुतली शतरंज के मोहरे चलाती है। उसमें एक हज़ार रुपये या ऐसे ही कुछ नियत धन की बाज़ी की हार-जीत होती है। राजा रामपालसिंह शतरंज के बड़े पक्के खेलाड़ी थे। कालाकाँकर में भी उनके समान खेलनेवाला कोई नहीं मिला। राजा साहब से जो शतरंज खेलता वह हार जाता तब वे उसको १०) या उससे अधिक इनाम देते थे। राजा साहब को शतरंज में हारते कभी नहीं सुना गया। विलायत में उस पुतली से खेलने में राजा साहब हार गये। उनको इसकी बड़ी ग्लानि हुई। राजा साहब ने कमिटी को फिर खेलने के लिए चैलेंज दिया, साथ ही कहा कि बाज़ी १,००,०००) की लगे।

यह ख़ास रक़म की थी। कम्पनी ने विशेष अधिवेशन करके इतनी बड़ी रक़म की बाज़ी मंज़ूर कर ली और राजा साहब उस पुतली से खेले और खेलकर उससे जीत गये। जीत जाने पर उसी दिन वे लन्दन से रवाना हो गये, और उन्होंने उससे फिर कभी नहीं खेला, साथ ही लन्दन में रहना भी छोड़ दिया। स्वदेश लौट कर उन्होंने रानी साहब का विधिवत् संस्कार किया, और 'हिन्दोस्थान' नाम का दैनिक पत्र निकाला।

हिन्दी में तब यही एक दैनिक पत्र था। साप्ताहिक और मासिक तो बहुत-से निकलते थे, लेकिन दैनिक यही एक था। कानपुर से 'भारतोदय' नाम का एक दैनिक कुछ सप्ताह निकलकर अस्त हो गया था। जिन दिनों की बात मैं कहता हूँ, उन दिनों प्रयाग से 'हिन्दी-प्रदीप', वृन्दावन से 'भारतेन्दु', लखनऊ से 'रसिक-मित्र', कलकत्ते से 'धर्मदिवाकर', मिर्ज़ापुर से 'आनन्दकादम्बिनी', भागलपुर से 'पीयूष-प्रवाह' और 'मोतीचूर' नाम के मासिक निकल रहे थे। साप्ताहिकों में 'सारसुधानिधि' और 'उचित वक्ता' तथा

'भारतमित्र' कलकत्ते से निकलते थे। पटने से 'विहारबन्धु', बेतिया से 'चम्पारण्य चन्द्रिका', इलाहाबाद से 'प्रयाग-समाचार' और बनारस से 'भारतजीवन' का प्रकाशन होता था।

राजा रामपालसिंह 'हिन्दोस्थान' के लिए एक हज़ार रुपया मासिक व्यय करते थे। उनका कहना था कि जब तक भारतवर्ष में दस रुपया सालाना देकर एक भी ग्राहक हिन्दोस्थान का पढ़नेवाला रहेगा तब तक 'हिन्दोस्थान' जारी रक्खेंगे। राजा साहब बड़े सत्यप्रिय थे। 'हिन्दोस्थान' के माथे पर "सत्यश्रमाभ्यां सकलार्थसिद्धिः" का ही मोटो रहता था। खाने पीने में राजा साहब बिलकुल स्वतन्त्र थे। छूत-छात का कुछ भी भेद-भाव नहीं रखते थे। राजा साहब हिन्दी के शब्दों का स्पेलिङ्ग वैसा ही करना पसन्द करते थे, जैसा लोगों के मुँह से उच्चरित होता है। उनका कहना था कि राजभाषा (अँगरेज़ी) सबको सीखनी चाहिए। इसी लिए घर बैठे हिन्दी जाननेवालों को अँगरेज़ी सीखने के लिए उन्होंने 'सेल्फ़टीचिंग-बुक' नाम की एक बड़ी पुस्तक लिखी थी।

राजा साहब के दरबार में उस समय हिन्दी के अच्छे सुलेखक और कवि थे। बाबू शशिभूषण चटर्जी हिन्दोस्तान के सम्पादन में उनको सहायता देते थे। माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय बी० ए० पास करके ला अटेंड करते थे। वे भी सप्ताह में एक बार कालाकाँकर पधारते थे। रविवार को दिन भर रहकर रात में ही चले आते थे। सिराथू से गङ्गातट जाकर नाव पर गङ्गा पार होने पर कालाकाँकर मिलता था। हमको अच्छी तरह याद है, एक बार मालवीय जी को नाव पर ही प्यास लगी। उन्होंने माँझियों को नाव को रेत पर लगाने की आज्ञा दी। जब नौका रेत पर लगाकर गङ्गाजल दिया गया तब उन्होंने नाव से उतरकर जलपान किया। रेल के सफ़र में भी हमने सुना था, प्यास लगने पर रेल में बैठकर नहीं, प्लेटफ़ार्म पर उतरकर पानी पीते थे।

राजा रामपालसिंह ने मालवीय जी महाराज से हिन्दी का एक ज़ोरदार लेखक बुलाने को कहा। मालवीय जी ने बाबू बालमुकुन्द गुप्त को बुलवाया। गुप्त जी गुरियानी रोहतक-ज़िला के रहनेवाले थे और लाहौर के 'कोहेनूर' नामक उर्दू साप्ताहिक उर्दू-पत्र का सम्पादन करते थे, जिसको उन्होंने आगे चलकर दैनिक कर दिया था। जो उर्दू-फ़ारसी साहित्य के अच्छे लेखक थे, लखनऊ 'अवधपंच' में बराबर 'मिस्टर हिन्दी' के नाम से लिखा करते थे। जब बाबू बालमुकुन्द गुप्त कालाकाँकर पधारे तब वे हिन्दी भी वैसी ही शान से लिखते थे। पंडित प्रतापनारायण मिश्र भी सहायक सम्पादक आये। इटावावाले चौबे गुलाबचन्द और पंडित गो... चौबे भी सहकारी सम्पादक थे। मैं भी सहायकों में पहुँचा। उस समय राजा रामपालसिंह के दरबार में 'नवरत्नकमिटी' सी हो गई थी। राजा साहब ... करते थे, हिन्दी में अग्रलेख लिखते थे और सप्ताह ... हिन्दी हिन्दुस्तान के अग्रलेखों का सार ... अँगरेज़ी हिन्दोस्तान में छापते थे; साथ ही इलाहाबाद 'पायोनियर', कलकत्ते के 'स्टेट्समैन' और लाहौर 'सिविलमिलिटरी गज़ेट' आदि ऐंग्लोइण्डियन पत्रों का तोड़ जवाब दिया करते थे। 'पायनियर' को 'पायको...' और 'कटरा कंटेम्पोरी' 'स्टेट्समैन' को 'बालबाज़ार का म्पोरी' कहा करते थे। बङ्गाली अख़बार का 'हिन्दोस्थान' में अवतरण भी उद्धृत किया करते थे। राजा साहब प्रान्त के काँगरेसमैनों के अगुआ थे। लखनऊ के बाबू ... प्रसाद वर्मा, प्रयाग के पंडित अयोध्यानाथ, पंडित ... मोहन मालवीय आदि धुरन्धर वक्ताओं का सहयोग ... सन् १८८८ के प्रयागवाले कांग्रेस-अधिवेशन में ... बहुत काम किया था। चौथी कांग्रेस के सभापति यूल का अभिभाषण हिन्दी में पहले-पहल राजा ... सिंह ने ही प्रकाशित किया था। राजा साहब ने उस ... कांग्रेस के काम में लीन होकर युक्त-प्रदेश, राजपूताना ... पंजाब का दौरा करके कांग्रेस का महत्त्व लोगों को ... तरह समझाया था। उस समय की एक घटना याद ... उदयपुर में जब महाराना साहब से मिलने गये तब ... में बूट पहने ही चले गये। महाराना साहब को ... पहुँची तब उन्होंने हुक्म दिया कि अगले द्वार पर ... का फ़र्श लगवा दो। उसी समय आगे आनेवाले ... काम किये हुए सुन्दर मख़मल का फ़र्श बिछवा दिया ... जब उसमें राजा रामपालसिंह जाने लगे तब खुद ... गये और नौकरों से बूट खोलने का हुक्म दिया ... सेवक ने बूट उतार दिया तब आप आगे बढ़े।

राजा साहब अँगरेज़ों की पोशाक की बड़ाई करते थे। वे कहते थे कि पैंट और हैट इनकी पोशाक में बहुत बढ़िया चीज़ें हैं। राजा साहब कहा करते थे कि अँगरेज़ों से मार-पीट करके जो लोग उन पर हतक की नालिश करने जाते हैं वे लोग अनाड़ी हैं। अँगरेज़ मार खाकर किसी पर नालिश कभी नहीं करते और जिसको मारते हैं यह अगर उन पर मानहानि की नालिश करता है तो वे हँसते हैं।

राजा साहब अँगरेज़ों के इस गुण की बड़ाई करके कहते थे कि जब मारपीट की तब मान की मरम्मत के लिए अदालत में जाना नादानी है।

राजा साहब कहते थे कि उन्होंने ज़िन्दगी भर में एक ही साहब को देखा जो मार खाने पर अदालत में नालिश करने गया। राजा साहब का इलाहाबाद में एक राजा होटल स्टेशन के पास ही था। उसमें एक रात को एक साहब ठहरा था। राजा साहब भी उस रात को अपने होटल के एक कमरे में थे। राजा साहब रात के एक, दो और तीन तीन बजे तक गाना-बजाना किया करते थे। "दिन को सोवें, रात को जागें"—यह पद्य बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने उन्हीं के लिए कहा था। बग़लवाले कमरे में जो साहब बहादुर थे वे एक बजे रात को बाहर निकलकर कुवाच्य कहने लगे कि कौन नींद में ख़लल करता है। राजा साहब ख़बर पाकर निकले और उनकी गाली सुनकर गुस्से से अधीर हो गये। वहीं पछाड़कर साहब की ख़ासी मरम्मत की और नौकरों को हुक्म दिया कि उसके पलँग पर ले जाकर डाल आओ। दूसरे दिन साहब ने नालिश की कि जिसने उनको मारकर बेदम कर दिया था उसके मुँह से शराब की बू आती थी। राजा साहब की ओर से जवाब लगाया गया कि वे तो शराब पीते ही नहीं। इसी पर मुक़द्दमा ख़ारिज हो गया और वह देखने को दो सिपाही छः महीने के वास्ते तैनात हुए कि राजा साहब शराब पीते हैं या नहीं। यह मामला ख़ुद अपनी ज़बान से राजा साहब बतलाकर कहते थे कि उसके सिवा और किसी को हिन्दुस्तानी से मार खाकर अदालत में जाते उन्होंने नहीं देखा। हिन्दुस्तानी को मारकर अदालत में तो बहुतेरे अँगरेज़ गये।

राजा साहब सत्य के बड़े पक्षपाती थे। सत्यनिष्ठ कवि पंडित प्रतापनारायण मिश्र का उनके दरबार में प्रतिष्ठा पाना राजा साहब के सत्य-प्रेम का ही प्रमाण था। पंडित प्रतापनारायण मिश्र के सत्सङ्ग से राजा साहब एक 'भाषा-पिङ्गल' लिख रहे थे। भिखारीदास का पिङ्गल देखकर कहा करते थे कि इस पिङ्गल को समझने और सहायक बनाने के लिए बहुत बड़ा पाण्डित्य दरकार है। श्रीजगन्नाथप्रसाद भानु का 'छन्दप्रभाकर' उन दिनों निकला था। उसकी वे प्रशंसा करते थे, ऐसा ही पिङ्गल हो, लेकिन सस्ता होना चाहिए। राजा साहब का हृदय करुणार्द्र रहता था। बभ्रुवाहन नाम का नाटक मैंने लिखा था, जो 'हिन्दोस्थान' में क्रमशः प्रकाशित हुआ करता था। उसको रोज़ सुना करते थे। अर्जुन का सामना करते समय बभ्रुवाहन की वीरता की बातें और उसकी माता चित्राङ्गदा का उपदेश सुनकर उनकी आँखें भर आती थीं और आँसू पोंछ कर कहते थे—"तुमने क्षत्रियत्व का भाव अच्छा उतारा है।" कभी यह भी कहते थे कि अगर हमारी रानी जीवित दशा में विलायत तक पहुँचतीं तो हमारे जीवन का सोता दूसरी ही ओर को जाता। जो हिन्दीप्रेमी राजा साहब को अपनी असमर्थता बतलाकर 'हिन्दोस्थान' माँगता उसको वे बेदाम 'हिन्दोस्थान' दिया करते थे। साप्ताहिक और मासिक पत्रों से दैनिक 'हिन्दोस्थान' परिवर्तन में बराबर जाता था। मूल्य के विचार से परिवर्तन न करने की सङ्कीर्णता वहाँ नहीं थी।



गुरु की खोज

गोविन्दवल्लभ पन्त

पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त हिन्दी के ख्याति-प्राप्त लेखकों में हैं। अपनी इस कहानी में उन्होंने अनुराग का रहस्य बड़े मार्मिक ढंग से अंकित किया है।

राजा साहब के जन्म-दिवस की बात है। मैं भी पुरस्कृत होने के लालच से अपना यन्त्र सँभाल कर गायकों के दल में जा मिला था।

अपनी बारी आने पर मैंने तार छेड़ा। मस्तिष्क स्वच्छ और स्वर ठीक अपने स्थान पर जमा हुआ था। स्थायी आरम्भ हुआ।

कुछ देर की विस्मृति में न जाने क्या हो गया था। मैंने देखा, राजा साहब छाती पर हाथ रक्खे आँखें बन्द किये हुए थे और सारी सभा!—उसका हृत्कम्पन मेरे गीत में ताल दे रहा था!

जिस समय मेरा अभिमान जागा और मैंने अपने मन में विचार किया कि ये सब मेरे गीत से विमोहित हो गये हैं, ठीक उसी समय मेरे हाथ से स्वर का सिरा छूट गया, ताल का चक्र टूट गया। यह सब समझकर भी मैंने गीत को नहीं बन्द किया और स्वर के अलङ्कारों में अपनी त्रुटि को छिपाने लगा।

राजा साहब ने आँखें खोलकर विरक्ति दिखाई। मेरी हाथ ढीला और स्वर धीमा पड़ गया। उन्होंने नाराज़ होकर आज्ञा दी—"गीत बन्द कर दो।"

मैंने काँपकर सम से पहले ही गीत को रोक लिया। देखा, सारी सभा मुझ पर तिरस्कार की बरसा कर रही है।

राजा साहब ने कुछ रुपये मेरी तरफ़ बढ़ाते हुए कहा—"गायक, अपने गुरु का नाम बता सकते हो?"

मैंने रुपये सँभालकर नम्रता-पूर्वक जवाब दिया—"नहीं महाराज!"

"क्यों?"

"क्योंकि उनका कोई अस्तित्व ही नहीं है।"

"अर्थात् तुमने यह विद्या किसी गुरु से नहीं सीखी।"

"यही बात है महाराज!"

"तुम्हारी विद्या के अपूर्ण रहने का कारण भी यह है। जाओ, किसी गुरु से सीखकर फिर कभी राज-सभा में गाने का साहस करना।"

उस तिरस्कार के साथ मिला हुआ वह राजा के रुपये का भार मेरा मस्तक नत कर मुझे राज-सभा के बाहर खींच ले गया।

आधे से अधिक रुपयों-द्वारा मैंने अपने जाड़े के कपड़े बनवाये, चौथाई रुपयों से मैंने अपने ऋण से उद्धार पाया और शेष रुपये कहीं खो गये।

• रुपयों के समाप्त होने पर फिर मुझे राजा साहब के तिरस्कार की स्मृति हुई और मैं गुरु की खोज में चला।

महाराज के सङ्गीत-गुरु का यश दिशा-विदिशाओं में फैल रहा था। जाकर पहले उन्हीं का द्वार खटखटाया।

बड़ी कठिनता से उन्होंने दर्शन देकर कहा—"क्या चाहते हो?"

"गुरु की खोज में हूँ। कृपा कीजिए तो इन चरणों की सेवा कर नाद का भेद समझूँ।"

"लेकिन मेरे पास समय कहाँ है ?"

"कलावन्त के पास समय नहीं है ? यह आश्चर्य की बात है महाराज! समय के ऊपर अधिकार रखनेवाले का ही नाम कलावन्त है।"

"हो सकता है। पर मैं कलावन्त कहाँ हूँ ?"

"गुरुता अभिमान के ऊपर स्थापित नहीं है। आप कलावन्त हैं या नहीं, इसे जगत् जानता है, आप नहीं।"

सङ्गीताचार्य हँसे, कुछ विचार किया, फिर कहने लगे—"राग का भेद समझने आये हो ? कभी अनुराग भी किया है ?"

जीवन के वर्ष सहसा पीछे की ओर लौटकर सामने आये। वह मुख याद पड़ा जिसे कभी संसार में सुन्दरतम समझा था।

लेकिन मैंने उत्तर दिया—"नहीं, महाराज!"

"तब जाओ पहले अनुराग करना सीखो, फिर मेरे पास आना।"

वह सुन्दर मुख मिस ज्योत्स्ना का था। अनुराग के साथ उसी की स्मृति जाग उठी। सिनेमा की नटी थी। चार-पाँच फ़िल्मों में मैं उसके साथ नायक का पार्ट भी कर चुका था। वह अनेक गुणों से विभूषित थी, उसमें एक अनोखा आकर्षण था। सोचा था, उसी के साथ अभिनय करते-करते दिन बीत जायँगे। पर ऐसा नहीं हुआ।

मिस ज्योत्स्ना के साथ मेरे प्रायः अनुराग के ही दृश्य हुआ करते थे। कल्पना के जगत् में किया गया वह प्रेम जब वास्तव जगत् में जड़ पकड़ने लगा तब डायरेक्टर चन्द्र ने मुझे पहले खल नायक की भूमिका दी और बाद को मालिकों से मेरी झूठी शिकायतें करके फ़िल्म-कम्पनी से ही मेरी नौकरी छुड़ा दी।

मुझ पर चरित्रहीनता का दोष लगाया गया था। उस समय सिनेमा के नाम से मुझे घृणा हो गई थी। और जिस ज्योत्स्ना को जीवन का आलोक समझता था उसे भी फूटे हुए दीपक की भाँति छोड़ आया। कम्पनी का त्याग करते समय उससे नहीं मिला, और कभी उसके देखने का भी मोह नहीं हुआ।

इसके बाद फिर किसी दूसरी कम्पनी में नौकरी की खोज करते हुए नहीं गया। संसार के पथ में अकेला था, किसी के पालन-पोषण की चिन्ता थी नहीं। सोचने लगा, कहीं सङ्गीत का ट्यूशन कर लूँगा, दिन कट जायँगे।

गुरु की खोज ने फिर अनुराग के पथ में लाकर रख दिया और अनुराग फिर ज्योत्स्ना के निवास की ओर ले जाने लगा।

मन का अभिमान बोल उठा—"हैं! जायगा ?...... फिर उसी ज्योत्स्ना के समीप जायगा ?"

"किन्तु ज्योत्स्ना अनुपम है।"

"उसने भी तेरा अपमान किया है। न जा।"

"मैं उस अपमान को अपने अनुराग से धो डालूँगा। अवश्य जाऊँगा।"

अनेक दिनों तक इसी उधेड़-बुन में पड़ा रह गया। अन्त में उसी की विजय हुई और मैं एक दिन ज्योत्स्ना के बँगले की ओर चल पड़ा।

छुट्टी का दिन था। अपने शयन-कक्ष में अकेली ही एक डेकचेयर में पड़ी हुई ज्योत्स्ना कोई पुस्तक पढ़ रही थी। सामने टी-टेबुल पर एक फूल-दान में ताज़े रक्खे हुए कुछ दोहरे कारोनेशन के लाल-धवल फूल अपनी हलकी सुगन्धि पवन में फैला रहे थे।

ज्योत्स्ना मुझे आते हुए देखकर मुख ढँकने के लिए पुस्तक पढ़ने लगी या पुस्तक पढ़ते-पढ़ते उसका मुख ढँक गया था, मैं कह नहीं सकता। अभिनेत्री के हृदय की थाह लेना साधारण बात नहीं है।

द्वार पर पहुँचकर ज्योत्स्ना का ध्यान आकर्षित करने के लिए मैंने सरब पदों के साथ कमरे में प्रवेश किया। पर वह पूर्ववत् आँखों के आगे पुस्तक किये पढ़ती रही।

मैं भी तो एक्टरी कर चुका था। अब नीरव-निश्चल होकर पास ही पड़ी हुई एक कुर्सी पर बैठ गया। ज्योत्स्ना का मुख वहाँ से बिलकुल पुस्तक की ओट में था। मैं आते समय भी उसके मुख को लक्ष्य नहीं कर सका था।

इसी प्रकार अनेक क्षण दीर्घतम होकर बीत गये। ज्योत्स्ना की तल्लीनता देखकर संशय होने लगा, कहीं वह सो तो नहीं गई है। परन्तु जितनी दृढ़ता के साथ जैसी सीधी उसने पुस्तक पकड़ रक्खी थी, उसे देखकर जान पड़ता था, वह जागती ही है।

जो वादा किया है उसके अनुसार मेरा पुराना हिसाब साफ़ कीजिए। मैं तभी नये कन्ट्रेक्ट का नाम लूँगी।"

मैनेजिंग डायरेक्टर ने कहा—"लो, यह चेक लिखा रक्खा है।"

ज्योत्स्ना ने मृदु हास्य के साथ धन्यवाद दिया। चेक अपने बटुए में रखकर उठ खड़ी हुई।

मैनेजिंग डायरेक्टर ने कहा—"कन्ट्रेक्ट !"

"हाँ, इसकी एक कापी मुझे दीजिए। आज रात को मैं इस पर विचार करूँगी।"

मैनेजिंग डायरेक्टर ने आश्चर्य के साथ कहा—"इतने अविश्वास से पूर्ण पहले कभी नहीं देखा था [illegible]!"

इसी समय तार के चपरासी ने आकर एक पीला लिफ़ाफ़ा ज्योत्स्ना को दिया। ज्योत्स्ना कुछ हटकर उसे पढ़ने लगी।

मैंने उसके निकट जाकर पूछा—"क्यों ज्योत्स्ना, कुशल तो है ?"

उसने तुरन्त ही तार मोड़ कर रख लिया और कहने लगी—"कोई चिन्ता की बात नहीं है।"

"तार किसका है ?"

"ऐसा ही एक प्राइवेट।"

मैं चुप रह गया।

ज्योत्स्ना ने फिर कंट्रेक्ट में दस्तख़त नहीं किये। मैनेजिंग डायरेक्टर को यह बात बहुत चुभी। ज्योत्स्ना ने इसकी कुछ भी परवा न कर कौशल-पूर्वक विदा लेते हुए मुझसे कहा—"तुम न चलोगे ?"

"क्यों नहीं ?"

हम दोनों स्टूडियो से विदा हुए।

मार्ग में मैंने फिर ज्योत्स्ना से कहा—"विचारों में अद्भुत शक्ति है ज्योत्स्ना !"

तार पाने के बाद से ज्योत्स्ना किसी गहरी चिन्ता में विलीन हो गई थी। उसने साधारण रीति से उत्तर में कहा—"होगी।"

"परन्तु विचारों में एकता और स्थिरता का होना आवश्यक है।"

"है !!"

"मैं तुमसे सच-सच कहता हूँ ज्योत्स्ना! यदि मनुष्य के पास दृढ़ इच्छा-शक्ति है तो वह जीवधारियों को क्या, विशाल पर्वतों को भी हिला सकता है।"

अपने ही मंसूबों में डूबी हुई ज्योत्स्ना ने उसी तरह कहा—"हाँ।"

"मेरा ही उदाहरण लो। तुम्हारे मेरे प्रति जो भाव थे उन्हें मैंने किस प्रकार बदल डाला। केवल दृढ़ इच्छा-शक्ति के ही प्रताप से न ?"

इस बार ज्योत्स्ना के अधरों पर मुसकान फूट पड़ी और वह खिलखिलाकर हँसने लगी।

"हँसने की कोई बात नहीं है ज्योत्स्ना! यह मनोवैज्ञानिक तथ्य क्या इस प्रकार मज़ाक़ में उड़ा देने की चीज़ है ?"

"कभी नहीं।"

"फिर ?"

"ऐसे ही हँस पड़ी। यदि तुम्हें अरुचिकर हुआ हो तो क्षमा करो।"

"ऐसी चतुर और इतनी सुन्दर ज्योत्स्ना! मैं फिर कहता हूँ, तुम्हारा यह अनुराग मैंने बड़ी तपस्या के बाद प्राप्त किया है।"

"तुम जो भी कहो, मैं उसका प्रतिवाद न करूँगी। यहाँ अब हम विदा होंगे। मैं इस मार्ग से जाऊँगी।"

"उधर कहाँ ?"

"मुझे यह चेक भुनाना है।"

"बैंक बंद हो गया है।"

"तो इससे क्या ? ज्वेलर को मुझे कुछ रुपये देने हैं। यह चेक देकर बाक़ी रुपये उससे ले लूँगी। इसके बाद मकान-मालिक के पास जाना है। कब से बँगले का किराया रुका हुआ है।" यह कहकर ज्योत्स्ना ने एक टैक्सीवाले को इशारा किया।

वह गाड़ी में बैठकर जाने लगी। मैंने घर की ओर बढ़ने से पहले कहा—"कल को स्टूडियो को जाते वक्त तुम्हारे यहाँ होकर ही आऊँगा, साथ-साथ चलेंगे।"

उसने क्षीण हँसी के साथ मेरी ओर देखा। उसके अधरों की गति से जान पड़ा, उसने उत्तर भी दिया, पर दूरी और गाड़ी के शब्द के कारण मैं कुछ सुन न सका।

घर पहुँचकर मैंने विजय के उल्लास से वीणा उठाई

और बड़ी देर तक गाता रहा। गीत इतने रस का पहले कभी नहीं ज्ञात हुआ था।

रात भर पूर्वोक्त फ़िल्म के ही स्वप्न देखता रहा।

दूसरे दिन खा-पीकर ज्यों ही ज्योत्स्ना के बँगले पर पहुँचा, देखा, सारा बँगला सूना पड़ा है। मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। बीच के कमरे में कुछ आवाज़ सुनाई पड़ी। दौड़कर वहाँ गया। एक नौकर झाड़ू दे रहा था। मेरे पहुँचते ही वह रुक गया।

मैंने जाते ही उससे पूछा—"मिस ज्योत्स्ना कहाँ हैं?"

"वे मकान छोड़ कर चली गईं।"

"कहाँ?"

"बम्बई को।"

"कब?"

"आज सुबह साढ़े पाँच बजेवाली गाड़ी से सरकार!"

"सच कह रहे हो? क्या वे चली गईं?"

"झूठ बोलने से मतलब ही क्या है? यह खाली बँगला ही कह रहा है।"

"वे इतनी जल्दी क्यों चली गईं?"

"ठीक-ठीक आप ही लोग जानें सरकार! हम मज़दूर आदमी क्या जानें? मकान-मालिक ने झाड़-पोंछकर सफ़ेदी करने का हुक्म दिया है। वही कर रहे हैं।"

हिम की बनी हुई प्रतिमा की तरह मेरा अनुराग अल्प काल में ही मिट्टी में बह गया। मैंने दीर्घ श्वास लेकर उस शून्य कक्ष में उदास दृष्टि डाली। फ़र्श पर कुछ पीले काग़ज़ के टुकड़े पड़े थे। उनको उठाकर देखा। तार के टुकड़े थे। एक हिस्से में तारघर की मुहर का एक भाग था। उसमें पहले दिन की तारीख़ थी। सोचने लगा शायद यह वही तार है जिसे ज्योत्स्ना ने मुझसे छिपाया था।

सावधानी से सब टुकड़ों को एकत्र कर उठा लाया। बाहर आकर सोचने लगा, किधर जाऊँ। साढ़े नौ हो चुके थे। स्टेशन जाना व्यर्थ ही था।

स्टूडियो में पहुँचकर मैनेजिंग डायरेक्टर साहब से सारी कथा कही। वे बोले—"उसके रङ्ग-ढङ्ग से मुझे इस बात का आभास बहुत पहले मिल चुका था। जिस दिन डायरेक्टर चन्द्र हमारी कंपनी से चले गये, मैं समझता था, मिस ज्योत्स्ना भी उनकी सहयात्री होगी।"

"लेकिन वह तब नहीं गई?"

"हाँ, उसका वेतन मैंने रोक रक्खा था। और उसी को वसूल करने के लिए वह यहाँ रुकी थी।"

"फिर आपने कल उसका पूरा हिसाब क्यों दे दिया?"

"कंपनी को तुम्हारी आवश्यकता प्रतीत हुई। तुम्हारा आना यहाँ असम्भव समझा गया था। ज्योत्स्ना ने तुम्हें कंपनी में ले आने का वादा किया था, अगर उनका पूरा हिसाब कर दिया जाय। तुम्हारे यहाँ आ जाने से हमने सोचा था, ज्योत्स्ना तुम्हारे समानान्तर अभिनय करना पसन्द करेगी और कहीं न जायगी।"

"अब 'अनुराग' का क्या होगा?"

"'अनुराग' तैयार होगा। तुम्हारे उपयुक्त कोई दूसरी तारिका खोज ली जायगी।"

हठात् मुझे कुछ याद आया। मैंने जेब से वे तार के टुकड़े निकाले और मेज़ पर उस "ज़िग सॉ" की पहेली को हल करने लगा।

मैनेजिंग डायरेक्टर बोले—"यह क्या है?"

"वही कलवाला तार।"

"बड़ी आसानी से वह जुड़ गया था। उसमें लिखा था—"पहली गाड़ी से बम्बई चली आओ। यह सुनहरा अवसर न खोना—चन्द्र।"

मैनेजिंग डायरेक्टर उसे पढ़कर बोले—"कृतघ्न चन्द्र!" फिर कुछ रुक कर मुझसे कहने लगे—"तुमको याद है, यह चन्द्र किस हालत में हमारी कंपनी में आया था।"

"जी हाँ, इसके पैर में एक फटी चप्पल और कन्धे पर एक मैली चादर थी।"

"हाँ, हमने इसे आश्रय दिया, काम सीखने का अवसर दिया और डायरेक्टर मशहूर किया।"

"बाज़ारू कुत्ता! चार अधिक ग्रासों की छाया में यह पुराने ऋण को दवा देना चाहता है।"

तुम्हें कंपनी से हटा देने के लिए इसने कैसी नीच चाल चली थी। ज्योत्स्ना तुम्हारे गुणों पर ज़रूर आकृष्ट थी। तुम्हारे विरुद्ध उसको इसी ने बहकाया है।"

जगत् बड़ा उदास मालूम देने लगा।

मैनेजिंग डायरेक्टर फिर बोले—"मिस ज्योत्स्ना ने समझा है, हम उसके बिना 'अनुराग' तैयार नहीं कर सकते। उसे पूरा विश्वास है, हम उसकी ख़ुशामद करेंगे और मनमाना वेतन देंगे। नहीं, ऐसा कदापि न होगा।"

उसी दिन से रिहर्सल आरम्भ हुआ। ज्योत्स्ना का रिक्त स्थान एक दूसरी अभिनेत्री ने लिया।

जाते समय मैंने मैनेजिंग डायरेक्टर से कहा—"लेकिन मेरा हृदय कहता है, ज्योत्स्ना फिर यहाँ आवेगी"।

वे बोले—"पर हम उसे बुलाने नहीं जायँगे"।

"वह बिना बुलाये ही आवेगी।"

"नहीं, कभी नहीं आयेगी। मुझे इन ऐक्टर-ऐक्ट्रेसों से चौथाई सदी से मतलब पड़ रहा है। मैं इनकी आदतों से खूब परिचित हूँ।"

पन्द्रह-सोलह दिन के बाद मुझे कुछ याद आया और मैं गुरुदेव के दर्शन को चला।

वे ताज़ा दैनिक पत्र पढ़ रहे थे। मुझे देखते ही कहने लगे—"बहुत दिनों में दिखाई पड़े।"

"हाँ, महाराज!"

"कहो, कैसे आये?"

"उसी पुरानी इच्छा को लेकर।"

"अनुराग किया?"

"हाँ।" मैंने विनत वदन होकर कहा।

"किससे?"

मैंने दबी ज़ुबान से कहा—"एक सिनेमा की नटी से"।

गुरुदेव ने हँसकर कहा—"एक सिनेमा की नटी से!... कुछ तत्त्व प्राप्त किया?"

"नहीं, महाराज!"

"तो जा, फिर अनुराग कर।" कहते हुए गुरुदेव ने पढ़ते-पढ़ते दैनिक पत्र बन्द कर मेरे निकट भूमि पर फेंक दिया।

पत्र के मुखपृष्ठ ने मेरी दृष्टि आकर्षित की। उस पर बड़े-बड़े अक्षरों में छपा था—"मिस ज्योत्स्ना और डायरेक्टर चन्द्र का विवाह हो गया।" नीचे उनकी तसवीरें छपी थीं। यह देखकर मेरा हृदय धड़कने और माथा घूमने लगा।

गुरुदेव ने डाँटकर कहा—"नहीं सुना?"

"सुना महाराज, पर अब नहीं।" मैंने स्थिरता-पूर्वक कहा।

"अवश्य। अब फिर।"

"अब किससे?"

"राग से ही अनुराग कर मूर्ख!"

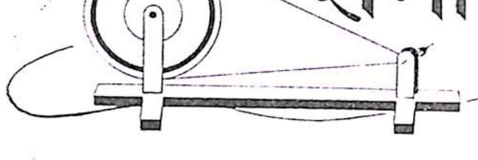
मानो मेरे मस्तक पर से बड़ी भारी व्यथा का पर्वत हट गया था। "गुरुदेव की जय हो!" कहकर मैंने उनके चरणों में सिर रख दिया।

उन्होंने आशीर्वाद देते हुए कहा—"तू हर साँस में सीखने की इच्छा रखता हुआ जी, अभिमान छोड़ सदा लघु ही बना रह। तुझे गुरु मिल जायगा।"

जागृति-गीत

लेखक, श्रीयुत प्रणयेश शुक्ल

उठ, सवेरा हो गया!
चेतना जागी, निशा का कूच डेरा हो गया!
उठ, उषा का प्यार जागा,
दिवस का आधार जागा।
उठ, नया उल्लास लेकर,
उठ, नया संसार जागा॥
नभ-पटल पर ज्योति-घन का मंजु फेरा हो गया!
खोल उन्मीलित नयन निज,
खिल रहे वे मलिन-सरसिज।
स्वर्ण-पंख प्रसार, उड़-उड़,
गगन-गुञ्जित कर रहे द्विज॥
किरन-तूली चल गई, उन्मुख चितेरा हो गया!
उठ, उड़े उन्मुक्त अलिदल,
उठ, लुटाते सुमन परिमल।
त्वरित बाधाहीन गति से,
कर रही वह सरित कल-कल॥
कह रही जीवन-लहर अब राज्य मेरा हो गया!
उठ, सवेरा हो गया!



शेगाँव का सन्त

लेखक, श्रीयुत श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम० ए०

कुछ ही महीने पहले शेगाँव को कौन जानता था? वर्धा से लगभग पाँच मील दूर इस छोटे-से गाँव में किसी प्रकार का आकर्षण न था। नीची, ऊँची, पथरीली और कहीं कहीं पानी बरसने पर कीचड़ से सनी ज़मीन पर चलकर इस गाँव में जाना कौन पसन्द करता था। लेकिन दो महीने में ही शेगाँव तो एक तीर्थ-स्थान बन गया है। जो कोई वर्धा में आता है वह शेगाँव जाने को पहले सोचता है। वहाँ मोटर, ताँगा, साइकिल वगैरह का जाना तो बहुत मुश्किल है ही, लेकिन किसी सवारी पर बैठकर इस स्थान पर जाना वर्जित भी है। अधिकतर तो लोगों को पैदल चलकर ही जाने की ठान लेनी पड़ती है। अगर कोई विशेष बात हुई तो सेठ जमनालाल जी की 'बैल-मोटर' गाड़ी माँग ली जाती है। लेकिन यह दौड़-धूप क्यों? केवल इसलिए कि महात्मा जी ने अपना डेरा इस गाँव में डाल लिया है। हाल में यह अफ़वाह उड़ गई थी कि महात्माजी येरप जा रहे हैं। लेकिन अब तो उनका येरप शेगाँव में ही निश्चित रूप से बन गया है।

× × × × ×

एक दिन मैंने भी शेगाँव की यात्रा करना ठान लिया। साथ में सेठ जमनालाल जी, महादेव देसाई, और जामिया-मिलिया, देहली, की एक जर्मन-महिला भी थीं। महिला-आश्रम की कुछ बहनों की भी एक टोली आगे आगे चली। वर्षा-ऋतु होने के कारण हम लोगों के पास कुछ छाते और बरसातियाँ भी थीं। एक थैले में कुछ भुने हुए चने भी रख लिये थे। तीर्थ-यात्रा का सब साज पूरा था। रास्ते भर हम लोग मनोविनोद करते हुए गये। एक स्थान पर तो काली मिट्टी इतनी मुलायम थी कि हमारे पैर क़रीब एक फ़ुट अन्दर धुस गये। चप्पलों और जूतों को बड़ी कठिनाई से बाहर निकाला। बेचारी जर्मन-महिला के तो मोज़ों और जूतों का पूछना ही क्या! कीचड़ होने के कारण सबको जूते या चप्पल अपने अपने हाथ में ही लेने पड़े। जर्मन बाई ने काफ़ी हिम्मत से काम लिया। उनका हृदय शेगाँव और महात्मा जी को देखने के लिए इतना उत्सुक था कि रास्ते की कठिनाई से उनके चेहरे पर किसी तरह की म्लानता नहीं आई। वे बड़ी हिम्मत से हम लोगों के साथ बराबर मुस्कराती हुई चलती रहीं। मुझे तो उनका साहस और प्रेम देखकर काफ़ी आश्चर्य हुआ।

लगभग डेढ़ घंटे के बाद हम लोग महात्माजी की झोपड़ी के पास पहुँचे। यह झोपड़ी शेगाँव से कुछ दूरी पर बनी हुई है। झोपड़ी के चारों ओर बाँस का हाता है। दूर से देखने में यह बड़ा सुन्दर प्रतीत होता है। यह छोटी, साधारण, लेकिन सुडौल झोपड़ी बाँस और खपरैल से पटी हुई है। चारों ओर छोटा बरामदा बना हुआ है। अन्दर एक बड़ा कमरा है, जिससे लगे हुए रसोई और स्नानघर बने हुए हैं। इस बड़े कमरे के एक कोने में महात्माजी बैठे थे। कुछ लिखने-पढ़ने का काम चल रहा था। हम लोगों को देखकर वे मुस्कराये। "अच्छा, जमनालाल जी भी आये हैं। अगर तुम रोज़ इसी प्रकार यहाँ आओ तो बदन काफ़ी हलका हो जायगा।" यह कह कर वे खिलखिलाकर हँस पड़े।

"हाँ, यहाँ आने का यही तो प्रसाद मिलेगा।" सेठ जी ने मुस्करा कर कहा।

× × ×

महात्मा जी से जर्मन-महिला (जिनको 'अप्पा जान' कहते हैं) का परिचय कराया गया।

"आप हिन्दुस्तान में कितने दिन से हैं?"

"क़रीब चार साल से।"

"अच्छा, तब तो आपको कीचड़ और धूल की काफ़ी आदत पड़ गई होगी।" महात्मा जी ने हँस कर कहा।

"जी हाँ। हम लोग भी तो अपनी जामिया-मिलिया को अब एक गाँव में ही ले जा रहे हैं।"

"यह तो बड़ी ख़ुशी की बात है! हम सबको अब 'गँवार' बनना ही पड़ेगा"। महात्माजी ने मुस्कराकर कहा।

"अभी तो आप यहाँ कुछ दिन रहेंगी न?"

"जी हाँ, मैं तो कुछ सीख कर ही जाना चाहती हूँ।"

"अच्छा, तो आपको मेरा और मीरा का जिसकी झोपड़ी यहाँ से क़रीब डेढ़ मील पर है, मेहमान ज़रूर रहना पड़ेगा। आप जब चाहें तब यहाँ आ सकती हैं।"

"इस कृपा के लिए मैं आपकी बहुत शुक्रगुज़ार हूँ।"

× × × ×

महात्माजी को पास से देखने का मेरा यह पहला ही अवसर था। मैं तो उनकी आनन्दमय खिलखिलाहट को सुनकर दङ्ग रह गया। मेरा विचार था कि महात्मा जी काफ़ी गम्भीर और चुपचाप रहते होंगे। लेकिन उनकी बच्चों की तरह भोली और दिलखुली हँसी को देखकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ। 'महात्माओं' की तरह मुँह फुला कर बैठना तो वे सह नहीं सकते। उनका तो यह कहना है कि मैं बिना हँसी और मज़ाक के जिन्दा ही नहीं रह सकता। एक एक बात में मज़ाक और विनोद भरा रहता है और अपनी सहृदय हँसी से वे सब लोगों में एक प्रकार का जीवन डालते रहते हैं।

× × × ×

थोड़ी देर के बाद एक बड़ी मूछोंवाला बूढ़ा आदमी अन्दर आया। बाद में मालूम हुआ कि वह शेगाँव का पटेल था। गाँधी जी ने उससे हँसकर पूछा—"भाई पटेल, तो क्या मुझको अब दाढ़ी बढ़ानी पड़ेगी?"

"नहीं महात्मा जी, नाई तो आपके पास हमेशा आने को तैयार है?"

"लेकिन मैं अपनी दाढ़ी उस नाई से कैसे बनवा सकता हूँ?"

"क्या वह मेरे लड़कों की भी हजामत बनाने को तैयार है? मैं तो यहाँ का सबसे बड़ा हरिजन हूँ, और मेरा कुटुम्ब भी है!"

काशी पटेल ने मुस्करा दिया। लेकिन महात्मा जी उसको छोड़नेवाले थोड़े ही थे।

"काशी पटेल, तुम्हीं बतलाओ। अगर तुमको एक ऐसी जगह बुलाया जाय जहाँ तुम्हारे लड़के को जाने मनाही हो, तो तुम क्या करोगे?"

"महात्मा जी, आप बेचारे पटेल को फन्दे में डा[...] हैं"। जमनालाल जी ने मुस्कराकर कहा।

"तो जब तक वह नाई मेरे हरिजन-कुटुम्ब की [...] मत बनाने को तैयार नहीं होता, मैं उसकी सेवा [...] स्वीकार कर सकता हूँ?"

काशी पटेल फिर मुस्कराकर चुप हो गया।

"जमनालाल जी, अगर पटेल को यह विश्वास [...] जाय कि छुआ-छूत हटाने से वह सीधा स्वर्ग को जा[...] तो यह समस्या अभी हल हो जाय!" महात्मा जी [...] हँसकर कहा। हम सब लोग भी हँस पड़े।

"आप तो महात्मा हैं। जो चाहें वह कर सकते [...] लेकिन हम लोग तो......" काशी पटेल ने हाथ [...] हुए कहा।

"बापू जी! काशी पटेल, को आपका विश्वास [...] ही है। उनको तो स्वर्ग जाने का भरोसा कोई और [...] दिलावे तो काम चले"। जमनालाल जी ने मज़ा[...] कहा।

......पटेल नमस्कार करके बाहर चला गया। [...] का लालच तो, सचमुच, बड़ी बुरी बला है।

× × ×

मुझे बाद में यह जानकर बड़ा दुःख हुआ [...] महात्मा जी के बहुत कुछ कहने पर भी शेगाँव के [...] छुआ-छूत दूर करने को तैयार नहीं हैं। शुरू में तो [...] का नाई महात्मा जी के पास रोज़ आया करता था। [...] जब से उन्होंने अपने हरिजन-परिवार का राग छेड़ा, [...] आना बहुत कम हो गया। यह जानकर कि महात्मा [...] एक हरिजन लड़के का पकाया खाना खाते हैं, गाँव [...] लोग तो शायद उनको भ्रष्ट ही समझने लगे होंगे। [...] बेचारे नाई की हिम्मत उनके पास आने की कैसे पड़े! [...] संकोचवश काशी पटेल के द्वारा आने को तैयार रहने [...] सँदेशा कभी कभी भेजता रहता है। लेकिन महात्मा [...] हमेशा से हठी रहे हैं। उन्होंने भी ठान लिया है कि [...] तक छुआ-छूत दूर न होगी, वे यहाँ के नाई से [...] लेंगे। इसी लिए आजकल उनकी सेवा 'सेफ्टी-रेज़र' [...] जाता है।

यह भी पता चला कि शेगाँव में सेठ जमनालाल जी का एक निजी कुआँ है। उन्होंने गाँव के हरिजनों को उसका इस्तेमाल करने की इजाज़त दे दी। लेकिन उनका निजी कुआँ होने पर भी वहाँ के सवर्ण हिन्दुओं ने बड़ा शोर-गुल मचाया। आख़िरकार इस बारे में जमनालाल जी को चुप ही रहना पड़ा।

गाँव के लोगों का यह मूढ़ विश्वास और पक्षपात कैसे हटे? महात्माजी की भी लोग सुनने को तैयार नहीं हैं। उनके ख़ुद गाँव में आकर एक झोपड़ी में रहने का वहाँ के लोगों पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा! यह तो बड़े दुख की बात है। लेकिन महात्माजी तो बड़ी शान्ति से काम करते हैं। उनको इस बात से किसी प्रकार की निराशा नहीं है। वे तो कह देते हैं—"भाई, यह तो हमारा ही दोष है। हमने अपने हरिजन भाइयों के साथ वर्षों से इतना बुरा बर्ताव किया है कि हिन्दू-धर्म का यह कलंक आसानी से नहीं छूटेगा। हमने इतने दिनों से गाँववालों की कुछ भी परवा नहीं की। उनको नई ज्योति देने का कभी प्रयत्न नहीं किया। फिर हम एक ही दिन में उनको बदल देने की आशा कैसे कर सकते हैं?"

× × ×

"और मेरा तो एक और भी विचार है। हमारे काम करने का प्रचार करने की विधि में भी कोई ग़लती हो सकती है। मैं समझता हूँ कि अगर गाँवों में सामाजिक सुधार करना है तो पहले अलग अलग लोगों के विचार बदलने से काम न चलेगा। हमको उन्हीं के समाज-संगठन के द्वारा काम करना चाहिए। इस प्रकार अगर हम गाँवों के पंचायत-संगठन को सुधारें और फिर पंचों के द्वारा अपने विचारों का प्रचार करें तो हमारा काम काफ़ी आसान हो जायगा। शुरू में तो लोग पंचायत के कहने से ही बुरी प्रथाओं को छोड़ेंगे। बाद में धीरे धीरे उनके निजी विचारों का परिवर्तन हो जायगा।"

× × ×

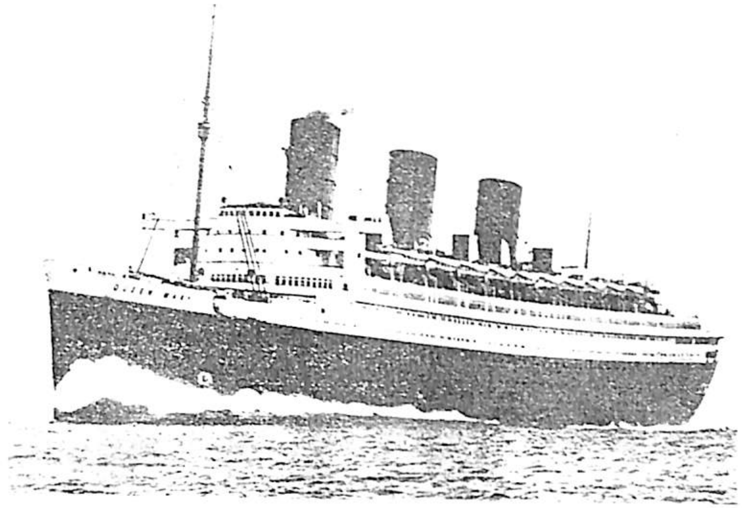
महात्माजी के जीवन की सादगी का मुझ पर बहुत प्रभाव पड़ा। उन्होंने अपने आपको गाँव के जीवन में मिला दिया है। जो कुछ चीज़ इस्तेमाल करते हैं वह जहाँ तक होता है, गाँव से ही लेते हैं। फल इत्यादि वहाँ नहीं मिलते, अतएव उन्होंने ज्वार की रोटी खाना शुरू कर दिया है। हाथ से बने काग़ज़ का प्रयोग करते हैं। उनका कमरा भी बहुत ही सादा है। किसी प्रकार का बनावटी दिखावा नहीं है। लेकिन सादगी के माने भद्दापन नहीं है। उनकी झोपड़ी में एक कला है जिसको सब लोग शायद समझ भी नहीं सकते। मैं तो उनके कुटीर को एक जीती-जागती कविता कहूँगा। उसमें कितने गंभीर और भावपूर्ण विचारों की व्यंजना है। भारत की मुख्य समस्या का सजीव चित्र है। अब तो महात्माजी ने फ़ाउन्टेनपेन का व्यवहार भी छोड़ दिया है। मामूली क़लम से ही अपना काम करते हैं। हमारी जर्मन-महिला तो उनकी सादगी को देखकर बिलकुल हैरान हो गई। कहाँ पश्चिम का भोग-विलास, और कहाँ महात्माजी का इतना सरल जीवन!

× × ×

महात्मा जी शेगाँव में जाकर क्यों बस गये हैं? कुछ लोगों का विचार है कि गाँव में बैठकर उन्होंने कोई अच्छा काम नहीं किया। इससे उनके काम में हर्ज होगा। लेकिन ऐसा विचार करना भारी भूल है। गाँव में बसकर महात्मा जी यह दिखलाना चाहते हैं कि अब केवल लेक्चरबाज़ी और लिखने का समय गया। कभी कभी गाँवों में जाकर व्याख्यान देने से कुछ काम नहीं निकलेगा। जब तक हम गाँवों में बसकर वहाँ के लोगों से एक न हो जायँगे तब तक हम अन्दर से सुधार नहीं कर सकते। उनकी झोपड़ी इसी विचार की सजीव मूर्ति है। अगर वह एक तीर्थस्थान बन गई है तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। लेकिन इस तीर्थस्थान पर जाकर केवल महात्मा जी के दर्शन करने से तो कुछ पुण्य नहीं होगा। अगर वहाँ जाकर हम भी अपना ध्यान गाँवों की ओर ले जायँ और उनकी सेवा में लग जायँ, तो हमारा वहाँ का जाना सफल सिद्ध हो सकता है।

ब्रिटेन का क्वीन मेरी जहाज़

लेखक,
प्रोफ़ेसर कन्हैयालाल 'साक़िब', एम० ए०



ग्रेट ब्रिटेन आज भी जहाज़ बनाने की कला में सबसे आगे है, यद्यपि इस कला में फ़्रांस, जर्मनी इटली, संयुक्त-राज्य और जापान आदि भी बहुत उन्नति कर गये हैं। महायुद्ध के पहले ब्रिटेन ने टाइटैनिक नाम का एक विराट् जहाज़ बनाया था, जो पहली ही यात्रा में डुबो दिया गया। अब उसने 'क्वीन मेरी' नाम का एक वैसा ही जहाज़ बनाया है। इस लेख में उसी का कुछ परिचय दिया गया है।

अँगरेज़ी में एक कहावत है कि इँग्लिस्तान 'नौ-बल' की जननी है। सामुद्रिक शक्ति में अँगरेज़-जाति ने समय समय पर भिन्न भिन्न प्रकार से अपनी महत्ता को दुनिया के सामने उपस्थित किया है। यहाँ हम उसकी जहाज़ बनाने की क्षमता का उल्लेख करेंगे।

टाइटैनिक जो इस शताब्दी के आरम्भ में अनगणित अमूल्य जानों को अपनी पहली ही यात्रा में अपने साथ ले डूबा था, दुनिया का सबसे बड़ा जहाज़ माना गया है। वह जहाज़ अँगरेज़ों ने ही बनाया था और अभी उसके जलमग्न होने की स्मृति लोगों के हृदयों में बसी हुई है कि इसी बीच में इस सजीव वीर जाति ने उसी जैसा 'क्वीन मेरी' नाम का एक दूसरा जहाज़ बनाकर दुनिया के सामने उपस्थित कर दिया है। पिछले कुछ महीनों में अँगरेज़ी पत्र-पत्रिकायें इस विराट् जहाज़ के गुण-वर्णन में मग्न रही हैं। हमारे देश के अँगरेज़ी जाननेवाले लोगों ने भी इस जहाज़ के बारे में अख़बारों में बहुत कुछ पढ़ा होगा। शायद हिन्दी तथा उर्दू की पत्र-पत्रिकाओं ने इस विशाल जहाज़ का चित्र देकर ही सन्तोष कर लिया होगा। इसका कारण भी स्पष्ट है। भारतवर्ष का अपना कोई नौ-बल नहीं है। दूसरे देशों की यात्रा करना हमारे प्राचीन धर्म के अनुसार अभी तक निषिद्ध भी रहा है इसके विपरीत जो लोग समुद्र-यात्रा करते रहे हैं, इ पुराने विचार के अनुसार लौटने पर उन्हें कई प्रकार प्रायश्चित्त करने पड़ते रहे हैं। ऐसी दशा में यदि य समुद्र-यात्रा की ओर लोगों का अनुराग न रहा हो तो क्य आश्चर्य है? यद्यपि वर्तमान काल में लोग इस निषेध व उपेक्षा कर समुद्र-यात्रा करने लगे हैं, तो भी देशाटन प्रति अनुराग इतनी जल्दी भारतीयों के हृदयों में कै अङ्कुरित हो सकता है? हमारे लोग केवल यात्रा के विचा से यात्रा करने के अभी अभ्यासी नहीं हुए हैं। यह बात त योरपीय जातियों में ही अधिक मात्रा में पाई जाती है औ यात्रा के गुणों से वे ही लोग परिचित हैं। यही कारर है कि आज योरप में जहाज़ बनाने की कला अपने उन्न के शिखर पर आसीन है।

अच्छा तो जिस 'क्वीन मेरी' की प्रशंसा तथा उसक

गुण-कीर्तन सहस्र मुखों से हो रहा है और जो सारे संसार की दृष्टि को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है, आओ तनिक हम भी देखें कि उस वैभवशाली जहाज़ में क्या क्या विशेषतायें हैं। उसका वर्णन करने से पहले उस देश के दो और जहाज़ों के साथ उसका यहाँ हम मुक़ाबिला करेंगे। सन् १६२० ईसवी में इँग्लेंड में 'मे-फ़्लावर' नाम का एक जहाज़ बना था। वह ९५ फ़ुट लम्बा था और उसमें १८० टन का भार उठाने की शक्ति थी। उसमें १०२ यात्री यात्रा कर सकते थे। अपने समय का वह सबसे बड़ा जहाज़ था। इस सम्बन्ध में उसकी तथा उसके जैसे दूसरे बड़े जहाज़ों की ख्याति चिरकाल तक बनी रही। यहाँ तक कि सन् १८४० में 'ब्रिटेनिक' नामक जहाज़ ने सब रिकार्ड मात कर दिये। इस जहाज़ में १,१५० टन का भार उठाने की शक्ति थी। अपने कर्मचारियों के अतिरिक्त जिनकी संख्या ९० थी, वह जहाज़ केवल ११५ यात्री ले जा सकता था। इस काल में भी 'मे-फ़्लावर' की ख्याति जैसी की तैसी बनी रही, क्योंकि अटलांटिक महासागर को इसने पार कर लिया था और इँग्लिस्तान के उन अशान्त निवासियों को जो अपना देश छोड़ने के लिए बाध्य हो गये थे और जिन्होंने अमरीका में जाकर शरण ली थी, अमरीका तक पहुँचानेवाला जहाज़ यही था।

'ब्रिटेनिक' के पश्चात् जहाज़ बनाने की कला में शीघ्रता से उन्नति होती रही और इसके ९६ वर्ष पीछे सन १९३६ में 'क्वीन मेरी' बनकर तैयार हो गया। यह जहाज़ १,०१८ फ़ुट लम्बा है और इसमें ८०,७७३ टन का भार ले जाने की शक्ति है। इस जहाज़ में इसके १,१०० कर्मचारियों के सिवा २,१४० यात्री यात्रा कर सकते हैं। इस विचार से यदि देखा जाय तो 'ब्रिटेनिक' और 'मे-फ़्लावर' ये दोनों जहाज़ 'क्वीन मेरी' के एक बड़े खाने के कमरे के कोने में समा सकते हैं। चाल का यह हाल है कि जहाँ 'ब्रिटैनिक' १४½ दिन में न्यूयार्क पहुँच सकता था, 'क्वीन मेरी' केवल चार दिन में जा सकता है। जहाँ सन् १६२० वाला 'मे-फ़्लावर' स्वयं १८० टन का भार उठाने के योग्य था, आज 'क्वीन मेरी' के एक एक लंगर का ही भार १६ टन है, और इस प्रकार के तीन लंगर इस जहाज़ में हैं।

'क्वीन मेरी' की बनावट का अनुमान आगे दी हुई संख्याओं से लग सकेगा।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, इसके तीन लंगर में से प्रत्येक का भार १६ टन है। लोहे की जिस ज़ंजीर के साथ ये लंगर लगे हुए हैं वह ९९० फ़ुट लम्बी है और उसका वज़न १४५ टन है। 'क्वीन मेरी' के नाम का प्रत्येक अक्षर ३ फ़ुट लम्बा है।

इसके जिन छिद्रों से इसका धुआँ निकलता रहता है उनकी संख्या २,००० है और उनमें २,५०० घनफ़ुट शीशा लगा हुआ है। इस जहाज़ में तीन ही फ़नल हैं और प्रत्येक फ़नल में से तीन बड़े से बड़े क़द के रेलगाड़ी के इंजन साथ साथ आ-जा सकते हैं।

समय आ पड़ने पर यात्रियों को बचाने के लिए इसमें २४ 'लाइफ़ बोट' हैं, जो बिजली से चलते हैं, और इनमें से प्रत्येक में १४५ यात्री बैठ सकते हैं। जैसा कि ऊपर हम लिख आये हैं, इसमें २,१४० यात्री यात्रा कर सकते हैं, तो भी दुर्घटना होने पर इसमें २,४८० आदमियों के बचाने का प्रबन्ध किया गया है।

इसमें बिजली की ४ मशीनें हैं, जो एक बड़े शहर को काफ़ी बिजली पहुँचा सकती हैं। इसमें बिजली के ३,००० बल्ब लगे हुए हैं।

साधारण टेलीफ़ोन के अतिरिक्त इसमें ५०० निजी टेलीफ़ोन लगे हुए हैं। जहाज़ के यात्री दुनिया के किसी हिस्से से बातचीत कर सकते हैं।

इसके बिजली के तार यदि सीधे रक्खे जायँ तो ४,००० मील तक जा सकते हैं। इसके बनाने में १० करोड़ पेंच तथा मेख़ें प्रयोग में लाई गई हैं। इसमें ४०,००० टन लोहे की चादरें काम में लाई गई हैं। इस जहाज़ के केवल बाहरी भाग के रँगने के लिए ७०,००० गैलन वार्निश और रङ्ग लगा है। इसमें दो एकड़ से अधिक स्थान खेल के मैदान के लिए छोड़ दिया गया है, जहाँ टेनिस, फ़ुटबाल आदि खेल खेले जाते हैं। इसमें १२ खन या डेक हैं। इसमें ४ प्रोपेलर हैं, जो जहाज़ को चलने में सहायता देते हैं। इनमें से प्रत्येक का भार ३५ टन है।

जो कपड़ा जहाज़ की कुर्सियों तथा पर्दों में लगाया गया है यदि वह सीधा बिछा दिया जाय तो वह १३ मील तक जायगा। और जो क़ालीन जहाज़ में बिछाये गये हैं यदि वे इसी भाँति बिछा दिये जायँ तो ६ मील तक बिछेंगे। इस जहाज़ के बनाने में २७,००० आदमियों ने भाग लिया है।

जहाज़ में यात्रियों को आराम पहुँचाने के लिए जो वस्तुएँ रक्खी गई हैं इनका ब्योरा भी सुनिए। यात्रियों के उपयोग में आने के लिए इस जहाज़ में ५०,००० शीशे के गिलास आदि, १६,००० छुरी-काँटे, २१,००० मेज़पोश, ५,००० कम्बल, ८५,००० बिस्तरपोश, ३,००० झाड़न, २,१०,००० तौलिये और ९२,००० छोटे रूमाल एकत्र किये गये हैं।

अब ज़रा यात्रियों का भी ब्योरा सुन लीजिए। जहाज़ के अपने १,१०० कर्मचारियों के सिवा तीसरे दर्जे में यात्रियों की संख्या ८५०, पहले दर्जे (केबिन) के यात्रियों की संख्या ७७६ और टूरिस्ट क्लास के यात्रियों की संख्या ७८४ होगी। इन आदमियों के भोजन का उपयुक्त प्रबन्ध भी जहाज़ में किया गया है। यदि संयोग-वश जहाज़ कहीं मार्ग में रुक जाय तो यात्री भूखों न मरने पावें, इसकी पहले से ही समुचित व्यवस्था कर ली गई है। यों चार दिन में तो निस्सन्देह अटलांटिक सागर को पार करके न्यूयार्क पहुँच जायँगे, परन्तु मार्ग में इन चारों के लिए भी तो कुछ चाहिए। इस सबकी भी इस जहाज़ में चोखी व्यवस्था की गई है। इसका ब्योरा यह है—

जनरल स्टोर २,००,००० पैकेट, शिकार ५,००, सिगरेट २०,००० पैकेट, दियासलाई २५,००० डिबियाँ, शराब १४,५०० बोतल, ड्राफ़्ट ६,००० गैलन, बीयर २०० ड्राम, बीयर २०,००० बोतल, सोडा-वाटर १२... बोतल, २२ प्रकार के बिस्कुट १००० पौंड, चाय, ... काफ़ी ४,००० पौंड, दूध २,००० गैलन, मलाई ... गैलन, शक्कर २०,००० पौंड, मक्खन १०,००० ... अंडे ५०,०००, अचार ३,५०० पौंड, डिब्बों में बन्द ... ६,५०० पौंड, मुरब्बे आदि ३,८०० पौंड, दही ... पौंड, आइस क्रीम ६,००० पौंड, ताज़ा मांस ५... पौंड, बेकन १,००० पौंड, मुर्ग़ियाँ २०,०००, ताज़ा ... ३०,००० पौंड, ताज़ा सब्ज़ी ५,००० पौंड, आलू ५... पौंड, आटा ३५,००० पौंड, अखरोट-बादाम ६०... इत्यादि इत्यादि।

महारानी मेरी ने अपने नाम पर इस जहाज़ का ... रखने की आज्ञा २६ अप्रेल १९३४ को दी थी और ... अपना झण्डा (चिह्न) जो आपके महल पर लहराता ... प्रदान किया है। यह झण्डा देश का है और ... है। जब पहले-पहल यह जहाज़ समुद्र में डाला गया ... स्वर्गीय महाराज जार्ज ने कहा था—"आज हम ... सबसे अधिक वैभव-सम्पन्न जहाज़ दुनिया के ... उपस्थित करते हैं।" २७ मई सन् १९३६ को यह ... न्यूयार्क के लिए चल पड़ा और अपनी यह पहली ... पूरी करके ब्रिटेन लौट आया है। इस विशाल ... जहाज़ के लिए ब्रिटेन लोगों को बड़ा नाज़ है। यह ... लिए स्वाभाविक भी है।

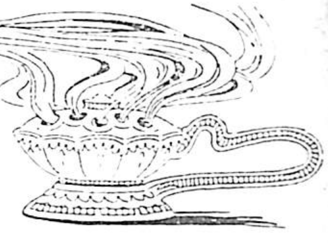
प्रतीक्षा

लेखक, प्रोफ़ेसर मनोरञ्जन, एम० ए०

विद्युत् की दीपशिखा-सी
अति उज्ज्वल, अस्थिर प्रतिपल,
मेरे इस जीवन-नभ में
सहसा तुम आतीं चञ्चल ॥
लघु यौवन की मदिरा पी
कुछ हँसती, कुछ इठलाती
मेरी इस अँधियाली को
तुम आलोकित कर जातीं।

वह उज्ज्वल दिव्य विभा लख
आँखें सहसा झिप जातीं,
जब तक सँभलें तब तक तुम
फिर अन्तर्हित हो जातीं।
बस इसी लिए मैं पथ ...
रहता नित पलक बिछा...
क्या जाने कब इस नभ ...
तब दिव्य ज्योति आ जा...

मानव



(१)

सुन्दर हैं विहग, सुमन सुन्दर,
मानव, तुम सबसे सुन्दरतम !
निर्मित सब-की तिल-सुषमा से
तुम निखिल सृष्टि में चिर निरुपम ।

(२)

यौवन-ज्वाला से दीपित तन,
मृदु त्वच, सौन्दर्य-प्ररोह अङ्ग,
न्योछावर जिन पर निखिल प्रकृति
छाया-प्रकाश के रूप-रङ्ग !

(३)

धावित इन नील-शिराओं में
मदिरा से मादक रुधिर धार:
आँखों में दो लावण्य-लोक,
स्वर में निसर्ग-सङ्गीत-सार !

(४)

पृथु उर, उरोज ज्यों सर, सरोज,
दृढ़ बाहु प्रलम्ब प्रेम-बन्धन,
पीनोरु स्कन्ध जीवन-तरु के,
कर, पद, अंगुलि, नख, शिख शोभन !

(५)

यौवन की मांसल स्वस्थ-गन्ध,
नव युग्मों का जीवनोत्सर्ग,
आह्लाद अखिल, सौन्दर्य अखिल,
आः, प्रथम, प्रेम का मधुर स्वर्ग !

(६)

आशा अभिलाष, उच्चाकाङ्क्षा,
उद्यम अजस्र, विघ्नों पर जय,
विश्वास, असत्-सत् का विवेक,
दृढ़ श्रद्धा, सत्य-प्रेम अक्षय !

(७)

मानसी-भूतियाँ ये अमन्द,
सहृदयता, त्याग, सहानुभूति,—
जो स्तम्भ सभ्यता के पार्थिव,
संस्कृति स्वर्गीय—स्वभाव-पूर्ति !

(८)

मानव का मानव पर प्रत्यय,
परिचय, मानवता का विकास,
विज्ञान-ज्ञान का अन्वेषण,
सब एक, एक सबमें प्रकाश !

(९)

प्रभु का अनन्त वरदान तुम्हें
उपभोग करो प्रतिक्षण नव-नव:
क्या कमी तुम्हें है त्रिभुवन में
यदि बने रह सको तुम मानव !

लेखक,
श्रीसुमित्रानन्दन पन्त

एकाङ्की नाटक

रंगीन सपना

लेखक, श्रीयुत लक्ष्मीनारायण मिश्र

संध्या। बत्ती जलने में अभी थोड़ी देर है। ऊपर आकाश में अभी लाली देख पड़ती है। नगर के बाहर लम्बा उद्यान है, जिसमें होकर सड़कें चारों ओर निकल गई हैं। एक ओर दूर तक मैदान है जो दूब से हरा हो रहा है। मैदान में एक ओर जहाँ साधारणतः और कोई जाना न चाहेगा, श्यामलाल, चित्त, ऊपर आकाश की ओर मुँह किये पड़ा है। श्यामलाल यों युवक तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन उसकी युवावस्था के दिन अभी चले भी नहीं गये हैं। उसका शरीर अधिक मांसल न होते हुए भी स्वस्थ है। उसकी आँखें प्रायः बन्द हैं। पैरों के कभी कभी हिल पड़ने से उसका सफ़ेद पाजामा कभी कभी हिल पड़ता है। कमीज़ के दो बटन खुले रहने से छाती का कुछ भाग देख पड़ता है।

रामनाथ का प्रवेश ! रामनाथ की अवस्था। सम्भवतः वे तीस वर्ष के हो रहे हैं। लम्बा, गोरा, इकहरा शरीर है। लम्बे बाल पीछे की ओर घूमे हुए, चञ्चल चमकीली आँखें हैं। वह क्षण भर रुककर श्यामलाल की ओर एकटक देखता हुआ मुस्करा पड़ता है। जैसे हँसी रोकने की प्रतिक्रिया में उसका सारा शरीर हिल उठता है। धीरे-धीरे पैर रखकर आगे बढ़ता है और श्यामलाल के पैताने खड़े होकर उसके मुँह की ओर ध्यान से देखता है।]

रामनाथ—स्वप्न का स्वर्ग और कल्पना का सुख—...

[श्यामलाल चौंककर उठ बैठता है और उसकी ओर देखने लगता है] मिथ्या है जी......

श्यामलाल—तुम......

रामनाथ—कदाचित् तुम्हें सन्देह और विस्मय हो रहा है। इसके लिए कारण भी है। तुम शायद अभी सपना देख रहे थे!

श्यामलाल—किस बात का ...

रामनाथ—शीशे में अपना मुँह देख लो। देखो तो तुम्हारी आँखें तुम्हीं से कुछ कहती हैं या नहीं। और तुम नहीं मानते। तुम सपना नहीं देख रहे थे। लेकिन मैं यह कैसे मान लूँ। जब तुम्हारा पाप मुझे......

श्यामलाल—(बात काटकर) ए...मेरा पाप ? लेकिन तुम्हारा उपदेश। मैंने तो तुमसे कल कह दिया।

रामनाथ—मुझे याद नहीं रहा। ऐसी बात तो नहीं है। और यह जानते हुए कि मेरा उपदेश इस स्थिति में तुम्हें पसन्द भी नहीं पड़ेगा, अपनी इच्छा से तुम्हारे सिर आ पड़ा हूँ। इसलिए कि मैं तुम्हें बचाना चाहता हूँ और इसके लिए......

श्यामलाल—इसलिए कि तुम मेरा पाप जानते हो। लेकिन तुम्हारी यह पाप की परिभाषा ठीक नहीं है। और फिर ईश्वर ने मेरे लिए भी तो एक निश्चित पथ...

रामनाथ—(उत्तेजित स्वर में) बिलकुल नहीं। ईश्वर उनकी आड़ नहीं आता जो अपनी इच्छा को—अपनी प्रवृत्ति को उसका संकेत समझते हैं। ईश्वर तो उनका विश्वास है, जो सबल हैं, जो अपने लिए कुछ नहीं चाहते, जो अपनी प्रवृत्तियों के शासक हैं, दास नहीं। सपने के रंगीन बादल बरसते नहीं......जो यह नहीं जानता वह ईश्वर का नाम क्यों ले ?

श्यामलाल—ईश्वर के संबन्ध में मेरी अपनी धारणा जो...

रामनाथ—वह संसार की धारणा के प्रतिकूल है। तुम्हारा अपना मन जिस लालसा में पड़कर छटपटा रहा है उसे तुम अपने ईश्वर की प्रेरणा समझते हो। इस युग के सभी प्रवृत्तिवादी ईश्वर के नाम पर ऊधम मचाते हैं। अपने विकार, अपने अभाव का सम्बन्ध ईश्वर से जोड़कर तुम आसानी से छुट्टी ले लेते हो।

श्यामलाल—(आवेश में)—अच्छा...

रामनाथ—(मुस्कराकर) जैसे ईश्वर का अभिशाप तुम्हारी

आँखों से निकल रहा है। क्षण भर में तुम्हारी आँखें लाल होगईं। रंग-मंच पर तुम अच्छे अभिनेता उतरते, लेकिन ईमानदार जो नहीं हो......

श्यामलाल—और तुम मुझे ईमानदारी सिखाने आये हो...

रामनाथ—हाँ, यदि तुम मानो। तुम आज भी नहीं गये।

श्यामलाल—नहीं......

रामनाथ—और सम्भवतः कल भी नहीं जाओगे। आज या कल उसका मर जाना भी निश्चित है। और उसके बाद जो काम तुम्हें करना चाहिए था वह करेगा तुम्हारा छः साल का लड़का......

श्यामलाल—क्या करेगा ?

रामनाथ—श्मशान-यात्रा और शवदाह। उसके समाप्त होने पर दस दिन के विशेष कर्म......

श्यामलाल—व्यर्थ है यह सब। इससे होता क्या है ?

रामनाथ—सम्भव है, व्यर्थ हो। इतना तो निश्चित है, उसकी लाश तुम्हारे घर में सड़ती तो रहेगी नहीं। कुत्तों और गीदड़ों का भोजन भी शायद न बने। कहीं न कहीं उसे ठिकाना तो देना ही होगा। दाह और अपने प्रचलित कर्मकांड यदि व्यर्थ हों तो क़ब्र में रखकर ऊपर से स्मारक-स्तम्भ लगा दो। कुछ न कुछ करना तो होगा तुम्हें। (मुस्कराते हुए) और नहीं तो अच्छा हो जिस प्रकार प्राचीन मिस्र में ममी की व्यवस्था थी वही प्रबन्ध कर दो।

श्यामलाल—(क्रोध में उठते हुए) चुप रहो। मैं अपनी स्त्री के शव को सन्दूक़ में बन्द कर रक्खूँ ?

रामनाथ—ऐं...स्त्री ? तुम्हारी स्त्री ? मैं तो समझता था, जवानी के दस वर्ष उसके साथ कटे। दो बच्चे भी पैदा हुए और अब तुम जीवनमुक्त हो गये। उसके लिए तुम्हारा अभी कोई कर्तव्य बाक़ी है, इसका ध्यान तुम्हें होता तो अब तक तो तुम कम-से-कम दस दिन पहले घर पहुँच गये होते। कम-से-कम तार मिलने पर तो ज़रूर ही चले गये होते। इतने बड़े संसार में कदाचित् कोई भी उस ठोस धातु का नहीं बना है, जिसके तुम बने हो। जिस स्त्री के साथ तुम्हारे सबसे सुन्दर दिन, वास्तव में सपने के दिन तो वही थे, बीत गये वह मर रही है और तुम यहाँ कुमारी चन्द्रा के प्रेम में...बस, थोड़े दिनों में तुम्हें पता चलेगा कि उसे प्रेमी और पति की ज़रूरत तो है ही नहीं, वह तो तुम्हें अपने व्यवसाय और प्रसिद्धि का साधन बना रही है। जिस दिन उसे विवाह करना होगा तुमसे अधिक योग्य, संभ्रान्त और सुन्दर पुरुष उसे मिलेगा।

श्यामलाल—लेकिन तुमने यह कैसे समझ लिया कि मैं उसे प्रेम करता हूँ या उससे विवाह करना चाहता हूँ ? मैंने तो केवल व्यवसाय में उसकी साझेदारी की है। डाक्टरी की उपाधि लेकर आनेवाले नये डाक्टरों के लिए किस दुर्गति का सामना करना पड़ता है, यह तो तुम जानते नहीं। मैं ही साल भर दूकान खोले बैठा रहा। दो हज़ार तो मुझे केवल दूकानभाड़ा और साधारण व्यवस्था में ख़र्च कर देने पड़े। पिछले छः महीने तो मेरे दीवालिएपन के रहे हैं। अब किसी प्रकार यह सूरत निकली तब यह उपद्रव खड़ा हुआ। जहाँ उधर आठ घंटे में एक भी रोगी मेरे पास नहीं आया, इधर तब से हर घंटे आठ रोगियों का पड़ता तो पड़ जाता है। और मुझे आशा थी, पिछला घाटा इसी साल पूरा भी हो जाता !

रामनाथ—हूँ...यदि यही है तो फिर इस समय तुम्हारी दूकान बन्द क्यों है ? और तुम यहाँ हरे मख़मल पर लेट कर कवित्व और स्वप्न की साधना क्यों कर रहे हो ? तुम्हारी दूकान से कम-से-कम दस आदमियों को मैंने लौटते देखा है, जिनके हाथ में दवा के पुर्ज़े थे।

(उसकी ओर ध्यान से देखने लगता है)

श्यामलाल—इसी तरह। आज जी न लगा। कुछ तबीअत भी भारी रही।

रामनाथ—इसके कारण दो हो सकते हैं—कुमारी चन्द्रावती का न रहना और शायद स्त्री की बीमारी भी। लेकिन तुम्हारा यह जी न लगना ! वास्तव में व्यवसाय की सफलता की ओर भी तुम्हारा ध्यान नहीं है। इसी लिए अब मेरा अनुमान सही है...(रुककर) तुम रंगीन सपनों की दुनिया बना रहे हो और दूसरी ओर वह जो तुम्हारा संसार था, जिसके तुम थे, अपना दम तोड़ रहा है।

श्यामलाल—तो फिर चलूँ दूकान खोलने......

रामनाथ—कुमारी चन्द्रावती खड़ी थीं वहाँ......।

श्यामलाल—(बात काटकर) कहाँ ?—(उद्वेग में उसकी ओर देखने लगता है।)

रामनाथ—वहीं दूकान की सीढ़ी पर...उन्होंने मुझसे तुम्हारे बाबत पूछा भी...मैंने कहा, मुझे नहीं मालूम...।

श्यामलाल—और भी कुछ कहा उन्होंने......।

रामनाथ—कहा तो था, बड़े सुन्दर जीव हैं। उन्हें डाक्टर की अपेक्षा कवि या गायक या चित्रकार होना चाहिए था। डाक्टरी के लिए तो ठोस बुद्धि की आवश्यकता है।

श्यामलाल—(जैसे कुछ सोचते हुए) लेकिन इस समय कानपुर से कौन-सी गाड़ी आती है।

रामनाथ—सम्भव है, कानपुर न जाकर काशी गई रही हों या उसी तरफ़ और कहीं......।

श्यामलाल—लेकिन उन्होंने तो......।

रामनाथ—तुमसे कानपुर जाने के लिए कहा था। लेकिन कोई आवश्यकता नहीं कि वे तुमसे सदैव सच कहें।

श्यामलाल—तुमने उनसे और कुछ तो नहीं कहा ?

रामनाथ—मुझे झूठ बोलने की आदत नहीं है।

श्यामलाल—अच्छा तब...।

रामनाथ—तुम मुझसे क्या पूछना चाहते हो ? तुम्हारे विवाहित होने के बारे में, तुम्हारे बच्चों के बारे में और तुम्हारी स्त्री के बारे में मैंने उनसे कुछ कहा या नहीं ? यही न ?

श्यामलाल—(कुछ सोचते हुए) हाँ यही...।

रामनाथ—कहा तो मैंने, मैं झूठ नहीं बोलता। तुम तो कह रहे थे, मैं पाप की परिभाषा ठीक नहीं करता। फिर इस तरह पीले क्यों पड़ गये ? व्यक्ति जब समाज की सतह के ऊपर उठता है उस समय पाप की परिभाषा अवश्य ही दूसरी होती है, लेकिन हम समाज के मङ्गल और उसकी व्यवस्था के विचार से पाप की एक ही परिभाषा जानते हैं। इसलिए कि हमको, हमारे परिवार, मित्र और शत्रु सबको एक ही साथ एक ही नाव में बैठना पड़ता है। इसलिए हम पाप की एक ही परिभाषा करते हैं। यदि अब तक तुम चन्द्रावती को अपनी परिस्थिति—अपनी सचाई का पता न दे पाये तो तुमने भूल की। और फिर वही तुम्हारा प्रेरक ईश्वर तुम्हें उचित प्रेरणा भी देगा।

श्यामलाल—भाई, मैं तुमसे क्षमा चाहता हूँ। कि[...] मेरी रक्षा...।

रामनाथ—तुम्हारी ! तुम्हारे बाप की नहीं ! तुम [...] से खिसक जाओ। सीधे अपने घर और फि[र] भूलकर भी कुमारी चन्द्रावती से न मिलना। [...] रक्षा का इससे बढ़कर दूसरा साधन इस समय [...]

श्यामलाल—क्यों क्या ?...(उसकी साँस तेज़ हो जा[ती है])

रामनाथ—किनारे पहुँच चुके हो। नीचे गहरा कु[...] आगे बढ़ने में अब कल्याण नहीं। (आगे [...] बाहर सड़क की ओर देखते हुए) आ रही हैं [...] रही हैं। इस ओर इन पेड़ों की आड़ में [...] जाओ। प्रस्तुत बुद्धि से काम लो।

[श्यामलाल थोड़ी दूर तक चलकर फिर वहीं [...] बैठ जाता है। चन्द्रावती का प्रवेश। चन्द्रावती [...] की ओर बढ़ती है।]

चन्द्रावती—(हँसती हुई) आप यहाँ हैं ! मैं आपके [...] गई और फिर वहाँ न मिलने पर आप अनु[मान] नहीं कर सकते कि कितनी जासूसी करनी पड़ी। [...] (श्यामलाल की ओर देखती हुई) कौन है ! [...] श्यामलाल जी...वही तो (रामनाथ को वहीं [...] श्यामलाल के पास पहुँचती है। उसके कन्धे [पर हाथ] रखकर) मालूम हो रहा है, आप सो रहे हैं।

(चन्द्रावती पूर्ण युवती और सुन्दरी है। उसकी [...] लम्बी और प्रभावोत्पादक है। ओंठ पतले, ना[क ...] ललाट भी पतला है। कोरदार रेशमी साड़ी [...] कामदार देशी जूता।)

(रामनाथ का प्रस्थान)

श्यामलाल—नहीं...मैं...।

चन्द्रावती—(उसके सामने खड़ी होकर) इस सम[य] दवाख़ाना बन्द कर रक्खा है। व्यवसाय तो [...] नहीं चल सकेगा। जो ग्राहक आज लौटे हैं [...] तक तो नहीं आयँगे।

श्यामलाल—आप कानपुर नहीं गई थीं...

चन्द्रावती—(हँसती हुई) इसी लिए शायद [आपने] दूकान बन्द कर दी। तो शायद आप जान[ना चाहेंगे] कहाँ गई थी। मैं आपके घर गई थी। दो [...] दो रात वहीं रही हूँ। कल दो बजे दिन [...]

मृत्यु हो गई। संध्या तक दाह-संस्कार हो गया। और आज सबेरे की गाड़ी से मैं आ रही हूँ। मैंने वहाँ लोगों से कह दिया कि आपकी आज्ञा से मैं आई हूँ। यह भी कह दिया कि व्यवसाय के झंझटों में आपको अवसर नहीं मिला। इस तरह आपके सम्बन्ध में कोई अपवाद नहीं रहा। आपकी स्त्री मेरी ओर निराशा और सन्देह की दृष्टि से देखती रहीं। मैं जो दवा पिलाती थी वह भी उन्होंने इच्छा से नहीं लिया।

श्यामलाल—अपशब्द भी तो कहा होगा उसने आपको...।

चन्द्रावती—आपके भीतर अभी तक पश्चात्ताप की लौ नहीं उठी। इन दो दिनों में और रात को भी मैंने सब देखा आपके चित्र को लेकर कभी देखती कभी अपने सिर पर रख लेती। उस बेचारी ने तो मुझे कोई उलाहना नहीं दिया। लेकिन भीतर ही भीतर मेरा मन मुझे स्वयं दोष दे रहा था। आप अपने कर्तव्य से विमुख रहे और उसका फल उठाना पड़ा मुझे। लेकिन मुझे पता क्या था कि इस आधी अवस्था निकल जाने पर आप अभी किशोरावस्था के सपने देख रहे हैं? आपने मुझ पर कभी यह नहीं प्रकट होने दिया कि आप विवाहित हैं और आपके दो बच्चे भी हैं। आपका चरित्र मेरे लिए सदैव रहस्य रहा। मैं तो समझती थी कि आप केवल डाक्टर ही नहीं, दार्शनिक भी हैं।

[श्यामलाल उठकर एक ओर चल पड़ता है। चन्द्रावती बढ़कर उसका हाथ पकड़ लेती है।]

श्यामलाल—आप मुझे क्षमा करें—

चन्द्रावती—मैं तो आपको क्षमा कर दूँगी। लेकिन आपकी आत्मा आपको क्षमा करेगी? आपकी कोटि के लोग बुराई करने और क्षमा माँगने के लिए पैदा ही होते हैं। इसमें आपका कोई दोष नहीं। आप तो सब कहीं ईश्वर की प्रेरणा देखते हैं। शायद यह भी उसी की प्रेरणा थी।

श्यामलाल—मैं इस समय तर्क करना नहीं चाहता।

चन्द्रावती—तर्क करने के लिए कुछ होना भी चाहिए। और फिर अब तर्क न करो, प्रायश्चित्त करो। अपना बोझ—अपनी आत्मा का बोझ उतार डालो।

श्यामलाल—किस तरह...।

चन्द्रावती—मनुष्य बनकर। स्त्री तो गई, दो बच्चे हैं। उनके प्रति जो अपना कर्तव्य समझो उसे करो। मैं तुम्हारी सहायता करने को तैयार हूँ। अपने रंगीन सपने को सदैव के लिए दूर फेंको। मनुष्य बनो।

श्यामलाल—रंगीन सपने का मतलब क्या है आपका—

चन्द्रावती—महोदय, आप डाक्टर हैं, मैं भी डाक्टर हूँ। आपने मेरा सहयोग इस डाक्टरी के व्यवसाय की उन्नति के लिए नहीं किया था और न तो उसका अर्थ यह था कि आप इस पेशे में धन कमाना चाहते हैं। आपके मन में तो एक प्रकार की आसक्ति—एक तरह की लालसा काम कर रही थी। आप मुझे चाहते थे। अब हमारी साझेदारी समाप्त हो गई।

श्यामलाल—यह तो मैं भी समझ रहा हूँ।

चन्द्रावती—(उत्तेजित होकर) यह तुम भी समझ रहे हो? और अगर मैं तुमसे विवाह करूँ?

(श्यामलाल धरती की ओर देखता है) अभागे पुरुष। तुम्हारा ध्यान यहाँ तक पहुँच गया। अब भी तुम्हारे मन में मेरे प्रति आसक्ति बनी है। यदि तुम पुरुष होते तो कह बैठते कभी नहीं...सम्भव नहीं। (उसकी ठुड्डी ऊपर उठा कर) विवाह अब तुम्हारे जीवन का सबसे बड़ा कलंक होगा। उसकी वह निराश और सन्देह-पूर्ण आँखें अब भी मेरे भीतर गड़ रही हैं। (अलग हटकर) मैंने निश्चय किया है, यह व्यवसाय—डाक्टरी का पेशा छोड़ दूँगी।

श्यामलाल—तब क्या करोगी?

चन्द्रावती—वही जो तुम्हारी स्त्री करती थी। यही मेरा प्रायश्चित्त होगा। और तुम, दूकान की साख जम ही गई है। मन लगाकर यदि तुमने उसे चलाया तो किसी दिन यहाँ के नामी डाक्टर हो जाओगे। (ताली का गुच्छा आगे बढ़ाते हुए) यह लो। दूकान के आज से तुम अकेले मालिक हो, उसमें मेरा कोई स्वत्व नहीं।

श्यामलाल—(ताली का गुच्छा लेकर) तुमको भी तो कुछ करना होगा। नहीं तो फिर—

चन्द्रावती—(मुस्कराती हुई) इस तरह के व्यवसाय में खतरा है। तुम्हारी स्त्री ने केवल तुमसे विवाह किया था। उसका कोई स्वतन्त्र पेशा नहीं था। मैं भी

विवाह करूँगी और उसमें तुम्हें निमन्त्रित करूँगी। बस, अब तुम जाओ। नहीं, एक शब्द नहीं।

[श्यामलाल—का प्रस्थान। चन्द्रावती घूमकर उधर देखती है जहाँ रामनाथ खड़ा था। रामनाथ इस समय वहाँ नहीं है। वह उसी ओर बढ़ती है और वह जहाँ खड़ा था वहीं बैठकर साड़ी के नीचे से एक लिफ़ाफ़ा निकालकर खोलती है। अपने घुटनों पर पत्र को मोड़-खोलकर पढ़ने लगती है। रामनाथ का दूसरी ओर से प्रवेश। वह आगे बढ़ता हुआ चन्द्रावती के पीछे जाकर खड़ा होता है।]

रामनाथ—तो शायद यह प्रेम-पत्र है?

चन्द्रावती—(उसी तरह बैठी हुई) जनाब...तो आप उड़ कहाँ गये थे?

रामनाथ—(गम्भीर मुद्रा में) लिफ़ाफ़े पर रंगीन फूल और काग़ज़ की कोर पर भी...इसी लिए मैंने कहा, यह कोई प्रेम...।

चन्द्रावती—(उसी तरह गर्दन घुमाकर उसकी ओर देखती हुई) तो शायद आपने भी इन रंगीन फूलों का उपयोग किया है। क्यों...।

रामनाथ—शायद मुझे शपथ लेने को तो न कहा जायगा।

चन्द्रावती—और अगर कहा जाय...।

रामनाथ—तब तो मैं कह दूँगा...किया है।

चन्द्रावती—(जैसे चौंककर) किया है? एँ?

रामनाथ—(उसे पकड़कर जल्दी से उठाते हुए) क्या हुआ? बिच्छू तो नहीं काट गया तुम्हें? उठो...उठो...।

चन्द्रावती—(अलग हटती हुई) नहीं तो...बिच्छू कहाँ देख पड़ा तुम्हें?...।

रामनाथ—तब फिर इस तरह तड़प क्यों उठीं? (उसकी ओर देखकर मुस्करा पड़ता है)।

चन्द्रावती—तुम्हें क्या हो गया है?

रामनाथ—कुछ तो नहीं। तुम्हें क्या हो गया? अपना प्रेम-पत्र मैं स्वीकार करता हूँ, लेकिन यह भी स्वीकार करता हूँ कि वह सब रंगीन सपना था। (मुस्कराते हुए) हम लोगों के वे दिन भी तो होते हैं—वे दिन रंगीन सपनों के और मेरे वे दिन तो बीत गये बर्षों पहले। श्यामलाल की बुराई तो इतनी ही थी कि वे बत्तीस वर्ष बीत जाने पर भी अभी बाईस के बने रहे। और इसी लिए उनके रंगीन सपने भी बने रहे। नहीं तो फिर......।

चन्द्रावती—(मुस्कराकर) तो फिर उन्हीं के नहीं, रंगीन सपने सबके होते हैं।

रामनाथ—अवश्य। मनुष्य की प्रकृति नहीं बदली जा सकती। अधिक से अधिक उसका ज्ञान हो सकता है। पशु-मनुष्य यह सब नहीं जानता था, इसलिए वह भला भी था और सुखी भी। लेकिन मनुष्य-पशु को क्या कहना है? (विश्वास और गंभीर मुद्रा में) रंगीन सपने मेरे भी रहे...तुम्हारे भी रहे होंगे।

चन्द्रावती—हिश्......।

रामनाथ—तुम अपने को नियम का अपवाद मत बनाओ। तुम्हारे भी रंगीन सपने रहे, इसे अस्वीकार कर तुम स्वयं अपने को अस्वीकार कर रही हो। लेकिन इसमें कोई बुराई नहीं है। हम समझदार बनें, फिर तो इन सपनों का मूल्य हमारे लिए बहुत अधिक है।

चन्द्रावती—मूल्य अधिक है या पछतावा अधिक है?

रामनाथ—तो क्या पछतावे का कोई मूल्य नहीं? लेकिन इसमें पछतावा के लिए जगह भी कहाँ है? कम से कम मुझे नहीं देख पड़ती।

चन्द्रावती—नहीं देख पड़ती?

रामनाथ—बिलकुल नहीं जी। वह तो उस समय का, हमारी उस अवस्था का वास्तविक लक्षण है। प्रकृति में इतनी चतुराई से वह बीज हमारे भीतर बो दिया गया है जिसका न उगना ही चिन्ता और विस्मय का कारण है, उग आना तो उसका स्वभाव है।

चन्द्रावती—(पत्र उसकी ओर बढ़ाती हुई) इसे पढ़ो तो...।

रामनाथ—(थोड़ी देर तक ध्यान से पत्र पढ़ने के बाद) वाह...यही दिया था?

चन्द्रावती—नहीं...।

रामनाथ—तब...इस पर तिथि तो आज की ही है।

चन्द्रावती—दूकान बन्द थी आज। दरवाज़े के भीतर क़दम रखते के साथ ही मेरी नज़र मेज़ पर इस लिफ़ाफ़े पर पड़ी। तिथि तो मैंने पढ़ ली। यह भी मैंने समझ लिया कि इसमें क्या होगा? उस स्त्री की आँखों में एक प्रकार का अविश्वास, एक प्रकार का सन्देह जो मुझे देख पड़ा—जैसे वह कहना

चाहती थी कि मैंने उसे निर्वासित किया है। अगर उसने कह दिया होता...लेकिन उसने नहीं कहा। और इसके लिए उसे कितना युद्ध करना पड़ा अपने ही साथ, यह भी मैंने देखा। मैंने निश्चय किया इसका प्रतिकार मुझे करना होगा और अब तो उसका प्रतिकार हो भी गया।

रामनाथ—(जिसकी आँखें अभी तक उस पत्र पर लगी हैं) मेरे हृदय और मेरी आत्मा में जो आग जल रही है उसे क्या तुमने अभी तक नहीं देखा ? तो क्या तुम सचमुच निष्ठुर हो ?...तुम अपने एक स्पर्श से उसे बुझा सकती हो। (चन्द्रावती की ओर देखकर मुस्कराते हुए) तो क्यों नहीं इस आग को बुझा देती ?

चन्द्रावती—बुझा तो दिया...।

रामनाथ—सचमुच...।

चन्द्रावती—साझेदारी आज समाप्त हो गई। अब तो वे अकेले दूकान के मालिक हैं। उनका यह रंगीन सपना अब नहीं रहा। शायद अब तक वह आग भी न होगी।

रामनाथ—(जैसे कुछ सोचते हुए) और तुम दूसरी दूकान खोलोगी।

चन्द्रावती—नहीं। मैंने इधर इन दो दिनों में अनुभव किया है कि स्त्री का कोई स्वतन्त्र पेशा और कोई अपना अलग व्यवसाय नहीं होना चाहिए। श्यामलाल की स्त्री का कोई अलग व्यवसाय नहीं था न, इसलिए उसका कुछ बिगड़ा भी नहीं और वह अपना सब कुछ सुरक्षित अपने साथ लेती गई। (रामनाथ का हाथ पकड़कर) आ रहा है समझ में ?

रामनाथ—(उसकी ओर ध्यान से देखकर) तो तुमने अपना हिस्सा भी श्यामलाल को दे दिया ?

चन्द्रावती—हाँ। मुझे इसी में अपना कल्याण देख पड़ा। और फिर मैं दूकान पर सौदा बेचूँ ? तुम्हें अच्छा लगेगा यह ?

रामनाथ—(प्रसन्नता में उछलते हुए) नहीं कभी नहीं। (उसके कन्धे पर हाथ रखकर) दूकानदारी के लिए मैं बनाया गया हूँ। तुम नहीं (दोनों एक दूसरे को देखकर मुस्करा पड़ते हैं।)

जग अज्ञान

लेखक, श्रीयुत सुरेन्द्रदेव वालूपुरी

१

क्या जाने किसके जीवन में कितना कितना भेद भरा है,
गत जीवन की भूलों का पछताव भरा है खेद भरा है;
जग की चमक-दमक में किनका लहू भरा है, स्वेद भरा है,
किस हँसनेवाले पुतले के उर में कितना छेद भरा है;

× × ×

कब किसने मरते मरते पी ज़हर प्राप्त अमरत्व किया रे।
पिघल पिघल उठता किस सूनेपन में किसका कुलिश हिया रे॥

२

जिसे समझने में इस जग की स्वारथ-बुद्धि समर्थ नहीं है,
कैसे कह देते हो उस पागलपन में कुछ अर्थ नहीं है ?
किसे पता किस एक ठेस ने पागलपन का सृजन किया है ?
किसे पता किस एक याद ने किसको अक्षय जलन दिया (?) है ?

× × ×

कौन घाव नासूर बना बैठा है किसके भग्न हृदय में ?
कौन आग धू धू जलती रहती है किसके स्वर्ण निलय में ?

३

किस भिखारिणी के अंचल में कब नीलम औ लाल भरे थे ?
किस सौन्दर्य-विहीना के अधरों पर अरुण प्रवाल धरे थे ?
अरे हमारे चर्म-चक्षु को जैसी दुनिया दीख रही है,
क्या निश्चय है वस्तु वही है, सत्य वही है, ठीक वही है ?

× × ×

तनिक किसी के अन्तर्जग में आँसू ले घुस पातीं आँखें।
धन्य मानता पूरी होतीं शत शत जीवन की अभिलाषें॥

प्रस्तर-युग के अवशेषों का काल-निर्णय

जुलाई की 'सरस्वती' में सिंघनपुर के रेखा-चित्रों के सम्बन्ध में एक सचित्र लेख छपा है। उस लेख में बताया गया है कि वे रेखा-चित्र १०-२० हज़ार वर्ष पुराने हैं। इस लेख में लेखक महोदय ने अपनी अध्ययनशीलता और बहुज्ञता का परिचय देते हुए उनके काल-निर्णय के सम्बन्ध में एक विचारणीय समस्या उपस्थित की है।

लेखक, श्रीयुत विशम्भरनाथ

विगत जुलाई की 'सरस्वती' में श्रीयुत ज्वालाप्रसाद मिश्र का 'प्रस्तर-युग की अमिट विभूतियाँ' नामक एक लेख छपा है। पुरातत्त्व के इस महत्त्व-पूर्ण विभाग पर प्रकाश डालना अत्यन्त आवश्यक है। भारत की इन कतिपय खोजों पर कुछ योरपीय विद्वानों ने महत्त्व-पूर्ण लेख लिखे हैं, किन्तु विषय की गम्भीरता को देखते हुए वह सब यथेष्ट नहीं है।

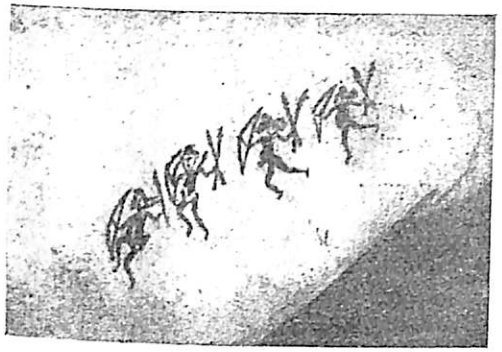
प्रस्तर-युग मानव-सभ्यता के विकास का प्रथम चरण है और उस समय के हमारे उन आदि-पूर्वजों के अनुभव हमारी अतुलनीय सम्पत्ति हैं। किन्तु प्रस्तर-युग का युग भी एक दीर्घ युग है। संसार के पुरातत्त्ववेत्ताओं ने उसे दो मुख्य भागों में विभक्त किया है। वे हैं—(१) दूरवर्ती प्रस्तर-युग (Palæolithic period) (२) समीपवर्ती प्रस्तर-युग (Neolithic period)। किन्तु आधुनिक अन्वेषणों के परिणाम-स्वरूप ये दोनों युग भी कई भागों में विभक्त किये गये हैं। प्रस्तर-युग के बाद ताम्र-युग आता है और उसके पश्चात् लौह-युग। पत्थर, ताँबे और लोहे के इन टुकड़ों में सभ्यता के विकास की आश्चर्यजनक और अकथनीय कहानी छिपी हुई है। इसी दृष्टि-कोण से भारत के आदि-पुरुष के विकास के सम्बन्ध में हमें भी यहाँ विचार करना है।

भारत का दो भागों में स्वाभाविक वर्गीकरण करनेवाली विन्ध्य-मेखला है। इस कठिन वर्गीकरण के कारण एक युग तक दक्षिणी और उत्तरी भारत के विकास में कोई सामञ्जस्य स्थापित नहीं हो पाया। विन्ध्याचल और सतपुड़ा की गहन वनश्रेणियाँ जब इस समय तक दुरूह हैं तब उस समय तो सर्वथा अगम्य ही रही होंगी। इसी लिए जब उत्तर और दक्षिण में सभ्यतायें फैलीं और फूलीं,

मध्यप्रान्त का यह पार्वत्य प्रदेश अपने गोंड और मोयर और प्रधान आदि असभ्य जातियों को अपने अं... लिये हुए अपरिवर्तनशील ही बना रहा। इतिहासज्ञों... मत है कि अगम्य वनों में बसनेवाला मध्यप्रान्त का मनुष्य ही भारत का आदि-मनुष्य—'आदि-द्राविड़' है।

इतिहासवेत्ताओं के अनुसार द्राविड़-जाति भी ... के बाहर से आई। मानव-जाति विशेषज्ञ थर्स्टन ने लिखा... "भारत के मूल-निवासी आदि-द्राविड़ थे, न कि ... के अधिक सभ्य और संस्कृत द्राविड़। आदि-द्रा... द्राविड़ों की तुलना में छोटे कद और चौड़ी नाक के... थे। इस विश्वास के लिए गम्भीर कारण हैं कि... आदि-द्राविड़-जाति से सिंहल के 'वेद्द', सेलेबस के 'तो... सुमात्रा के 'बातिन' और सम्भवतः आस्ट्रेलिया के 'आ... निवासियों' का जातीय सम्बन्ध है।

दक्षिण और उत्तर में द्राविड़ आदि-द्राविड़ों में स... घुल-मिल गये। यहाँ तक कि युगों के प्रवाह में भाषा... उनकी एक हो गई। देश के मध्य-भाग के आदि-द्रा... पहाड़ों की दुरूह कन्दराओं में अन्तर्धान हो गये। कि... भाषा के परिवर्तन को वे भी न रोक सके। इस लेख... लेखक की पितामही को बड़ा आश्चर्य हुआ था जब उ... अपना ग्राम कभी न छोड़नेवाले अपने गोंड नौकर... रामेश्वरम् में एक द्राविड़ सज्जन से हिलमिल कर... करते देखा था। अब केवल भाषा-विशेषज्ञों को धातु-नि... करते हुए बलूचिस्तान के अन्तर्गत ब्राहुई में द्राविड़... की धातुएँ और उत्तर-भारत की मुंडा-जाति की भाषा... आस्ट्रिक भाषा की धातुएँ अधिक संख्या में दिखाई... हैं। कुछ विशेषज्ञों का अनुमान है कि ब्राहुई ही प... से आनेवाली द्राविड़-जाति का अवशिष्ट स्मारक चिह्न... किन्तु हाल अपनी 'दि ऐंशियन हिस्ट्री आफ़ नियर ईस्ट'... लिखते हैं—"द्राविड़-जाति भारत से टक्कर खाकर प... मीय एशिया, दक्षिणी योरप और स्पेन तक पहुँच गई।



[धनुष-बाणधारी नृत्यमग्ना स्त्रियाँ]

इसमें कोई सन्देह नहीं कि सभ्यता के प्रथम चरण में स्पेन से लेकर आस्ट्रेलिया तक आदि-निवासियों में मिलती-जुलती एक जाति और एक विचार-धारा के प्रमाण मिलते हैं। दूरवर्ती प्रस्तर-युग में संसार का मध्य-भाग हिमाच्छादित था। क्रमशः हिम का जल में और जल का स्थल में परिवर्तन हुआ। स्वर्गीय डाक्टर हीरालाल के अनुसार तो भारत के लौह-युग तक में मध्यप्रान्त का छत्तीसगढ़ अच्छा ख़ासा समुद्र था। इसी विचार के अनुसार वे लंका को मध्यप्रान्त के अन्तर्गत ही केन्द्रित करते थे।

कहने का तात्पर्य यह है कि यदि स्पेन, भारत, सुमात्रा और आस्ट्रेलिया में प्रस्तर-युग के अवशिष्ट चिह्नों में कुछ आश्चर्यजनक समानता मिलती है तो उसके लिए यथेष्ट कारण हैं। किन्तु यहाँ हमें 'इन साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका' के विद्वान् लेखक की निम्न सम्मति ध्यान में रखनी होगी—

"संसार के इतिहास में प्रस्तर-युग से किसी विशेष काल का निश्चयात्मक निर्णय नहीं हो सकता। किन्तु एशिया के इतिहास में प्रस्तर-युग का वही अर्थ है जो अफ़्रीका के इतिहास में है। इससे एक जाति-विशेष का उसके धातु-ज्ञान के अनुभव का निर्णय होता है। इस प्रकार कई तरह के पत्थरों से उस समय औज़ार और हथियार बनाये गये हैं। प्रस्तर-युग मनुष्य की उस समय की उन्नति का परिचायक है जब उसने अपने वातावरण से सम्बन्धित वस्तुओं से अपनी आवश्यकता की वस्तुओं का निर्माण किया। इसलिए यह स्पष्ट है कि कुछ जातियों का प्रस्तर-युग समाप्त हुए एक युग बीत चुका और कुछ जातियों की उन्नति-धारा से ज्ञात होता है कि उनका प्रस्तर-युग अभी कल ही समाप्त हुआ है।"

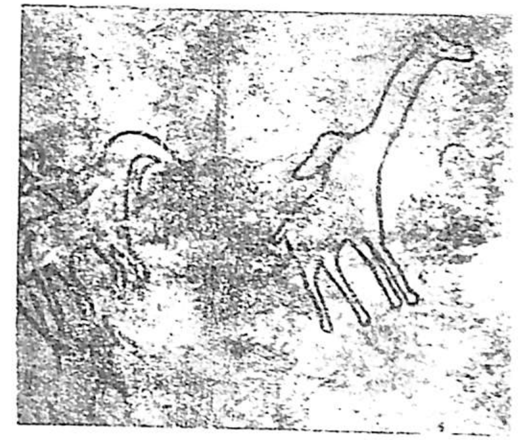
यहाँ एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि उत्तर-भारत में प्रस्तर-युग के बाद ताम्र-युग आता है और उसके पश्चात् लौह-युग। किन्तु दक्षिण-भारत में ताम्र-युग का सर्वथा अभाव है। वहाँ के निवासियों ने प्रस्तर-युग के बाद सीधे लौह-युग में प्रवेश किया। भारत में लौह-युग के पूर्व पीतल का भी पता नहीं चलता। इसका अर्थ यह है कि ऋग्वेद की धातु ताँबा ही थी। केम्ब्रिज-हिस्ट्री के अनुसार ऋग्वेद में लोहे का वर्णन नहीं है। किन्तु यजुर्वेद और अथर्ववेद में लोहा 'श्यामायशम्' के नाम से आता है। आर्यों ने ही दक्षिण-भारत को लोहे का उपयोग सिखाया और लोहे के अस्त्र-शस्त्रों के कारण उत्तर-भारत ने दक्षिण-भारत पर राजनैतिक विजय प्राप्त की।

'इम्पीरियल गज़ेटियर' के अनुसार भारत में प्रस्तर-युग की सम्भावनाओं की ओर सबसे पहले एक फ्रेंच विद्वान् ले मेसूरी ने सन् १८६१ में लोगों का ध्यान आकर्षित किया था। ले मेसूरी के बाद कई विद्वान् लेखकों ने इस विषय पर लिखा और महत्त्वपूर्ण खोजें कीं। भारत-सरकार का पुरातत्त्व-विभाग ऐतिहासिक काल के स्मारकों में ही व्यस्त है। उसे इन पूर्वैतिहासिक काल की खोजों के लिए समय ही नहीं। तब भी उक्त विभाग के अलेक्ज़ेंडर और कार्लाइल ने इस सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है।

एक अँगरेज़ अन्वेषक हैकट को नर्मदा की उपत्यका में भूतरा के पास दूरवर्ती प्रस्तर-युग के कुछ औज़ार मिले। इसके अतिरिक्त उन्हें जल-हाथी (Hippopotamus) और अन्य लुप्त प्राय पशुओं की हड्डियाँ और ढाँचे भी प्राप्त हुए। गोदावरी की उपत्यका में वाइन को दूरवर्ती प्रस्तर-युग की पत्थर की एक चौखट भी प्राप्त हुई। एक दूसरे सज्जन ब्रूस फ़ुट को दूरवर्ती प्रस्तर-युग के अनेक औज़ार मदरास शहर और गुण्टूर-ज़िले में प्राप्त हुए। भारत के दूरवर्ती प्रस्तर-युग के जिन पशुओं के अवशेष मिलते हैं वे भारत से अब सर्वथा लुप्त हो गये हैं।

समीपवर्ती प्रस्तर-युग से सम्बन्धित औज़ार, अस्त्र-शस्त्र, चित्रकारी और शिल्पकारी आदि बहुत-सी सामग्री का अन्वेषण हुआ है। कार्लाइल को ग़ाज़ीपुर में गंगा के गर्भ से मछलियों की हड्डियों के बने हुए चिकने और पालिश किये हुए बाण प्राप्त हुए हैं। काकबर्न को बुन्देलखण्ड में बाँदा में अपने मकान के समीप उसी युग की बहुत-सी सामग्री मिली, जिनमें टूटे हुए हथियार और चाक़ू भी थे। रोहरी (सिन्ध) में भी समीपवर्ती प्रस्तर-युग की बहुत-सी सामग्री मिली है। आग जलानेवाले चकमक पत्थर के गढ़े हुए टुकड़े भी हज़ारों की संख्या में प्राप्त हुए हैं। इलाहाबाद से तीस मील दूर विन्ध्य-श्रेणी में कार्लाइल को कुछ मिट्टी के बर्तन भी प्राप्त हुए हैं। किन्तु कार्लाइल ने यह नहीं लिखा है कि ये चाक पर के बनाये हुए हैं या हाथ के। दक्षिण में भी समीपवर्ती प्रस्तर-युग की बहुत-सी सामग्री प्राप्त हुई है। मदरास-प्रान्त में बेलारी-ज़िले में मिट्टी के अनेक बड़े बड़े भीटे हैं। इनमें समीपवर्ती प्रस्तर-युग के बहुत-से औज़ार और हथियार मिले हैं। मिर्ज़ापुर के दक्षिण में भी कोन की पहाड़ियों से समीपवर्ती प्रस्तर-युग की अलभ्य सामग्री प्राप्त हुई है। मिर्ज़ापुर शहर के निकट एक क़ब्र खोदने पर उस युग के कुछ मिट्टी के बर्तन निकले हैं। मदरास के निकट पल्लावरम में रेतीली मिट्टी के बने हुए छः फ़ुट लम्बे और ढाई फ़ुट ऊँचे शव रखने के सन्दूक़ (ताबूत) मिले हैं। इस तरह के सन्दूक़ बग़दाद के निकट भी मिले हैं, जो तुलनात्मक दृष्टि से बेबिलोन और असीरिया के सभ्यता-विकास को भारत के साथ जोड़ते हैं। किन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण खोज मध्य-प्रान्त के बालाघाट-ज़िले के गंगेरिया नामक ग्राम में हुई है। यहाँ बड़े यत्न से सुरक्षित एक गड्ढे में ताँबे के ४२४ औज़ार मिले हैं, जिनका वज़न ८२९ पौंड है। इसी क़िस्म के औज़ार आयर्लेंड में भी प्राप्त हुए हैं। इन सामग्रियों से समीपवर्ती प्रस्तर-युग का बहुत कुछ ज्ञान होता है।

इसके अतिरिक्त 'रेखांकित चित्रकारी' से तो उस युग की बातों पर और भी अधिक प्रकाश पड़ता है। मिर्ज़ापुर में जो रेखा-चित्र मिले हैं उनमें गैंडे के आखेट का भी एक चित्र है। गैंडा आजकल यहाँ नहीं होता, किन्तु लगभग चार शताब्दी पूर्व वह विन्ध्या की इस उपत्यका में पाया जाता था। कैमूर में जो चित्र प्राप्त हुए हैं उनमें हिरन के शिकार का भी एक चित्र है। शिकारियों के हाथों में कँटीले बर्छे हैं, जो ताम्र-युग के प्रतीत होते हैं। सिंघनपुर के रेखा-चित्रों में, जिनका वर्णन मिश्र जी ने जुलाई की



[होशङ्गाबाद के इन चित्रों में ज़िराफ़ की सी आकृति है यद्यपि ज़िराफ़ भारतवर्ष में कभी नहीं थे।]

'सरस्वती' में किया है, कंगारु की तरह के एक पशु का चित्र है। वहाँ के अंकित घोड़े, हिरन और स्पेन में कागुल नामक स्थान के रेखा-चित्रों में आश्चर्यजनक समानता है। स्पेन के चित्र भी समीपवर्ती प्रस्तर-युग के हैं। हर्बर्ट कुहन नामक जर्मन पुरातत्त्ववेत्ता ने सिंघनपुर के और स्पेन के चित्रों का तुलनात्मक वर्णन किया है। 'आर्कियालाजिकल सर्वे आफ़ इंडिया' की वार्षिक रिपोर्ट (१९१७–१८, भाग १, पृष्ठ २५) में होशंगाबाद की पहाड़ी में बने हुए इसी तरह के चित्रों में ज़िराफ़ का उल्लेख किया गया है।

अपने बन्धु पंडित मनोहरलाल मिश्र, एम० एस-सी०, एल-एल० बी० के आग्रह से होशंगाबाद की आदमगढ़ पहाड़ी के रेखा-चित्रों को हमने अत्यन्त सावधानी और ग़ौर से देखा है। इस विषय में नीचे लिखी चीज़ें विशेष उल्लेखनीय हैं—

१—रेखा-चित्र ऊँची पहाड़ी पर पूर्वीय रुख़ बने हुए हैं ताकि सूर्य के प्रकाश से उन पर काई न पड़ने पावे। चित्रों का पूर्वीय रुख़ तो प्रायः हर समीपवर्ती प्रस्तर-युग के पेनल का रहता है। (अजन्ता और एलोरा की गुफाओं का भी पूर्वीय रुख़ है।)

२—चित्र पहले सफ़ेद रंग से बनाये गये हैं, बाद को उनमें लाल रंग भरा गया है। (मध्य-प्रान्त के गोंड, भील,



[एक सेनानायक का यह आश्चर्यजनक चित्र होशङ्गाबाद के पास की चट्टानों में सुरक्षित है। यह लगभग ५,००० वर्ष पूर्व का अनुमान किया जाता है।]

ओसबर्न अपनी पुस्तक 'स्पेन आफ़ दि ओल्ड स्टोन एज' में लिखते हैं—

"चित्रों से भरी हुई ये पहाड़ियाँ उनके घर नहीं थे। ये पवित्र स्थान थे, जहाँ धार्मिक कर्मकाण्ड सम्पादित होते थे। चित्रों में शिकारी-समूह को देखते हुए यह स्पष्ट है कि उन दिनों भोजन ही जीवन की प्रधान समस्या थी।"

४—जुलूस में घुड़सवार और पैदल दोनों हैं। कुछ घोड़ों पर ज़ीन भी हैं और लगाम भी हैं। अस्त्र-शस्त्रों में तलवार, ढाल, तीर, कमान, बर्छी और गदा हैं। तलवारें सीधी और टेढ़ी दोनों हैं। कुछ लोगों की तलवारें कमर में खुसी हैं। सैन्य-परिचालन और व्यूह-रचना का ज्ञान भी इन चित्रों से प्रकट होता है। युद्ध के दृश्यों में आक्रमण आमने-सामने से होता है।

मोयर आज भी इन्हीं दोनों रंगों से अपने मकानों के सामने त्योहारों के दिन रेखा-चित्र अंकित करते हैं। युक्त-प्रान्त में स्त्रियाँ भादों में हरछठ के अवसर पर जो रेखा-चित्र बनाती हैं वे भी इन्हीं से मिलते-जुलते हैं।)

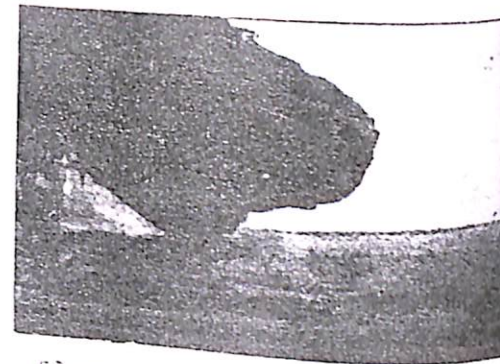
३—होशंगाबाद की लम्बी-चौड़ी पहाड़ी इन रेखा-आकृतियों से भरी हुई है। लगभग एक हज़ार आकृतियाँ हैं। सबके सब पेनल शिकार में जानेवाले एक बृहत् समूह के हैं। बाज़ बाज़ युद्ध के पेनल भी हैं। इसी तरह के बने हुए स्पेन के रेखा-चित्रों के सम्बन्ध में एच० एफ़०

५—सिर की पोशाक में पगड़ी है। कुछ के सिरों पर कलगी भी है। कुछ के सिर की टोपी अँगरेज़ी फ़ौज के कमांडिंग अफ़सर से मिलती-जुलती है। कुछ की पीठ पर सैनिक का 'किट' भी दिखाई देता है। कुछ के पैर में पट्टी बँधी होने का भी आभास मिलता है।

६—पशुओं में घोड़ा, गाय, दक्षिण की ओर एक हाथी और उत्तर के पेनल में जिराफ़ से मिलता-जुलता

एक जानवर भी है। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के लेख में इस जिराफ़ का ख़ास तौर पर उल्लेख किया गया है। हाथी पर महावत की धुँधली आकृति भी है।

७—विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन चित्रों में किसी देवी-देवता के चित्र का आभास नहीं। चित्रों में कहीं पहियेदार गाड़ी भी नहीं है। इससे यह स्पष्ट है कि उस समय स्थानीय क्षेत्र कृषि की अवस्था में नहीं था। एक जगह स्वर-ताल पर धनुषबाण लिये हुए नाचती हुई स्त्रियों के भी चित्र का आभास मिलता है। बहुत-से रेखा-चित्रों में आधुनिक ज्ञान की भी छाप है।



[होशङ्गाबाद में वह स्थान जहाँ ये चित्र पाये गये हैं।]

महेंजोदारो और हरप्पा को देखने का अवसर हमें मिला है। किन्तु वहाँ की चित्रकारी और इन रेखांकित चित्रों में बहुत बड़ा अन्तर है। महेंजोदारो और हरप्पा के जो रेखा-चित्र हैं उनमें विद्वानों को ब्राह्मी-लिपि का आभास मिलता है। कीश में प्राप्त सुमेरियन रेखा-चित्र भी इसी वर्णमाला का परिचय देते हैं।

वास्तव में मध्य-प्रान्त भारत की सभ्यता के विकास में अत्यन्त पिछड़ा हुआ रहा है। लेखक के मध्य-प्रान्त के अपने ग्राम में आज भी कुम्भकर्ण और मेघनाद की पूजा होती है। यहाँ के आदि-द्राविड गोंड, भील और प्रधान जंगलों में झोपड़े डालकर रहते हैं। उन्हें देखकर इनसाइक्लोपीडिया के लेखक के शब्दों में यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि 'इनका प्रस्तर-युग अभी उस दिन समाप्त हुआ है।' श्री ज्वालाप्रसाद जी के लेख में उद्धृत श्री दत्त और श्री घोष की तरह इन चित्रों का काल-निर्णय करते समय इनको दस हज़ार और बीस हज़ार वर्ष पुराने ठहराने का हमें साहस नहीं होता। क्या पटना म्यूज़ियम के क्यूरेटर श्री मनोरंजन घोष अपने काल-निर्णय के प्रतिपादन में कुछ गम्भीर युक्तियाँ पेश करेंगे? श्री ज्वाला-प्रसाद जी यह स्वीकार करते हैं कि सिंघनपुर के कुछ चित्र आधुनिक हैं। यदि आधुनिक हैं तो वे कब ... चित्र जोड़े गये? अब भी क्या रायगढ़ के आस-पास के लोग ... इन चित्रों में कब उस तरह के चित्र अंकित कर सकते हैं? क्या खुदाई करने पर वहाँ समीपवर्ती प्रस्तर-युग के कुछ औज़ार मिले हैं? क्या यह सम्भव नहीं है जब सह्याद्रि पर्वत पर अजन्ता और एलोरा का निर्माण हो रहा था उस समय सिंघनपुर और होशंगाबाद निकटवर्ती प्रस्तर-युग के अन्धकार में हों।

होशंगाबाद के कुछ चित्रों को तो वर्षा ने धूमिल कर दिया है। इन आकृतियों के इतने बड़े ... को देखकर ऐसा भासित होता है कि किसी उदार कला-प्रेमी गोंड नृप ने अपने शिल्पियों से इन्हें अंकित कराया है। व्यक्तिगत प्रयत्न के परिणाम तो ये मालूम नहीं होते।

अच्छा होता यदि मिश्र जी प्रकृति के वर्णन के अतिरिक्त सिंघनपुर के चित्रों का कुछ विस्तृत वर्णन करते, जिससे पुरातत्त्व के विद्यार्थी को एक निश्चित परिणाम पर पहुँचने में सहायता मिलती। क्या सिंघनपुर की चित्रकला के विशेषज्ञ इस सम्बन्ध में अधिक रोशनी डालने की कृपा करेंगे? क्या राजा चक्रधरसिंह जी चित्रों के पेनल प्रकाशित करने की योजना करेंगे?

हर्ष की बात है कि स्वर्गीय राय बहादुर डाक्टर हीरालाल के आग्रह पर मध्यप्रान्त का पुरातत्त्व-विभाग होशंगाबाद के रेखाचित्रों के सम्बन्ध में विशेष उद्योग के साथ अन्वेषण कर रहा है। हम बड़ी उत्सुकता के साथ इन चित्रों के काल निर्णय की प्रतीक्षा करेंगे।

मध्य-प्रान्त के इन स्थानों से मिलते-जुलते चित्र मलाया द्वीप-समूह में लमन्त जाँग और मक्कसर की गुफाओं में भी प्राप्त हुए हैं। चीन, जापान और तिब्बत में भी समीपवर्ती प्रस्तर-युग के अवशेष मिलते हैं। मानव-सभ्यता के विकास में यह एक स्वाभाविक घटना है।

प्रयाग

लेखक—श्रीयुत नरेन्द्र

१

मैं बन्दी बन्दी मधुप, और यह गुञ्जित मम स्नेहानुराग,
संगम की गोदी में पोषित शोभित तू शतदलयुत प्रयाग !
विधि की बाहें गङ्गा-यमुना तेरे सुवक्ष पर कंठहार,—
लहराती आतीं गिरि-पथ से, लहरों में भर शोभा अपार !

देखा करता हूँ गङ्गा में उगता गुलाब-सा अरुण प्रात,
यमुना की नीली लहरों में नहला तन उठती नित्य रात !
गङ्गा-यमुना की लहरों में कण-कण में मणि नयनाभिराम
बिखरा देती है साँझ हुए नारङ्गी रँग की शान्त शाम !

तेरे प्रसाद के लिए, तीर्थ ! आते थे दानी हर्ष जहाँ
पल्लव के रुचिर किरीट पहन आता अब भी ऋतुराज वहाँ !
कर दैन्य-दुःख-हेमन्त-अन्त वैभव से भर सब शुष्क वृन्त
हर साल हर्ष के ही समान सुख-हर्ष-पुष्प लाता वसन्त !

स्वर्णिम मयूर-से नृत्य किया करते उपवन में गोल्ड मोहर,
कुहुका करती पिक छिप छिप कर तरुओं में रत प्रत्येक प्रहर !
भर जाती मीठी सौरभ-से कड़वे नीमों की डाल डाल,
लद जाते चलदल पर असंख्य नवदल प्रवाल के जाल लाल !

'मधु आया', कहते हँस प्रसून, पल्लव 'हाँ' कह कह हिल जाते
आलिङ्गन भर, मधु-गंध-भरी बहती समीर जब दिन आते !
शुचि स्वच्छ और चौड़ी सड़कों के हरे-भरे तेरे घर में,
सबको सुख से भर देता है ऋतुपति पल भर के अन्तर में !

मधु के दिन पर कितने दिन के !—आतप में तप जल जाता सब,
तू सिखलाता, कैसे केवल पल भर का है जग का वैभव !
इस स्वर्ण-परीक्षा से दीक्षा ले ज्ञानी बन मन-नीरजात,
शीतल हो जाता, आती है जब सावन की सुख-सरस रात !

जब रहा-सहा दुख धुल जाता, मन शुभ्र शरद्-सा खिल जाता—
यों दीपमालिका में आलोकित कर पथ विमल शरद् आता !
ऋतुओं का पहिया इसी तरह घूमा करता प्रतिवर्ष यहाँ,
तेरे प्रसाद के लिए, तीर्थ ! आते थे दानी हर्ष जहाँ !

ख़ुसरू का बाग़ सिखाता है, है धूप-छाँह-सी यह माया,
वृक्षों के नीचे लिख जाती है यों ही नित चञ्चल छाया !
वह दुर्ग !—जहाँ उस शान्ति-स्तम्भ में मूर्त्तिमान अब तक अशोक,
था गर्व कभी, पर आज जगाता है उर उर में क्षोभ-शोक !

तू सीख त्याग, तू सीख प्रेम, तू नियम-नेम ले अज्ञानी—
क्या पत्थर पर अब तक अङ्कित यह दया-द्रवित कोमल वाणी ?—
जिसमें बोले होंगे गद्‌गद वे शान्ति-स्नेह के अभिलाषी—
दृग भर भर शोकाकुल अशोक: सम्राट्, भिक्षु औ' संन्यासी !

उस पत्थर पर अङ्कित है क्या ? क्या त्याग, शान्ति, तप की वाणी ?
जिससे सीखें जीवन-संयम, सर्वत्र-शान्ति सब अज्ञानी !
संदेश शान्ति का ही होगा, पर अब जो कुछ वह लाचारी—
बन्दी बलहीन ग़ुलामों की जड़मूक बेबसी बेचारी !

दुख भी हलका हो जाता है अब देख देख परिवर्त्तन-क्रम,
फिर कभी सोचने लगता हूँ यह जीवन सुख-दुख का संगम !
बेबसी सदा की नहीं, सदा की नहीं ग़ुलामी भी मेरी,
हे काल क्रूर, सुन ! कभी नहीं क्या करवट बदलेगी तेरी ?

२

यह जीवन चञ्चल छाया है, बदला करता प्रतिपल करवट,
मेरे प्रयाग की छाया में पर, अब तक जीवित अक्षयवट !—
क्या इसके अजर-पत्र पर चढ़ जीवन जीतेगा महाप्रलय ?
कह, जीवन में क्षमता है यदि तो तम से हो प्रकाश निर्भय !

मैं भी फिर नित निर्भय खोजूँ शाश्वत प्रकाश, अक्षय जीवन,
निर्भय गाऊँ, मैं शान्त करूँ इस मृत्युभीत जग का क्रन्दन !
है नये जन्म का नाम मृत्यु, है नई शक्ति का नाम ह्रास,—
है आदि अन्त का, अन्त आदि का यों सब दिन क्रम-बद्ध ग्रास !

प्यारे प्रयाग ! तेरे उर में ही था यह अन्तर-स्वर निकला,
था कंठ खुला, काँटा निकला, स्वर शुद्ध हुआ, कवि-हृदय मिला !
कवि-हृदय मिला, मन-मुकुल खिला, अर्पित है जो श्री चरणों में,
पर हो न सकेगा अभिनन्दन मेरे इन कृत्रिम वर्णों में !

ये कृत्रिम, तू सत्-प्रकृति-रूप, हे पूर्ण-पुरातन तीर्थराज !
क्षमता दे, जिससे कर पाऊँ तेरा अनन्त गुण-गान आज !
दे शुभाशीस, हे पुण्यधाम ! वाणी कल्याणी हो प्रकाम—
स्वीकृत हो अब श्री चरणों में बन्दी का यह अन्तिम प्रणाम !

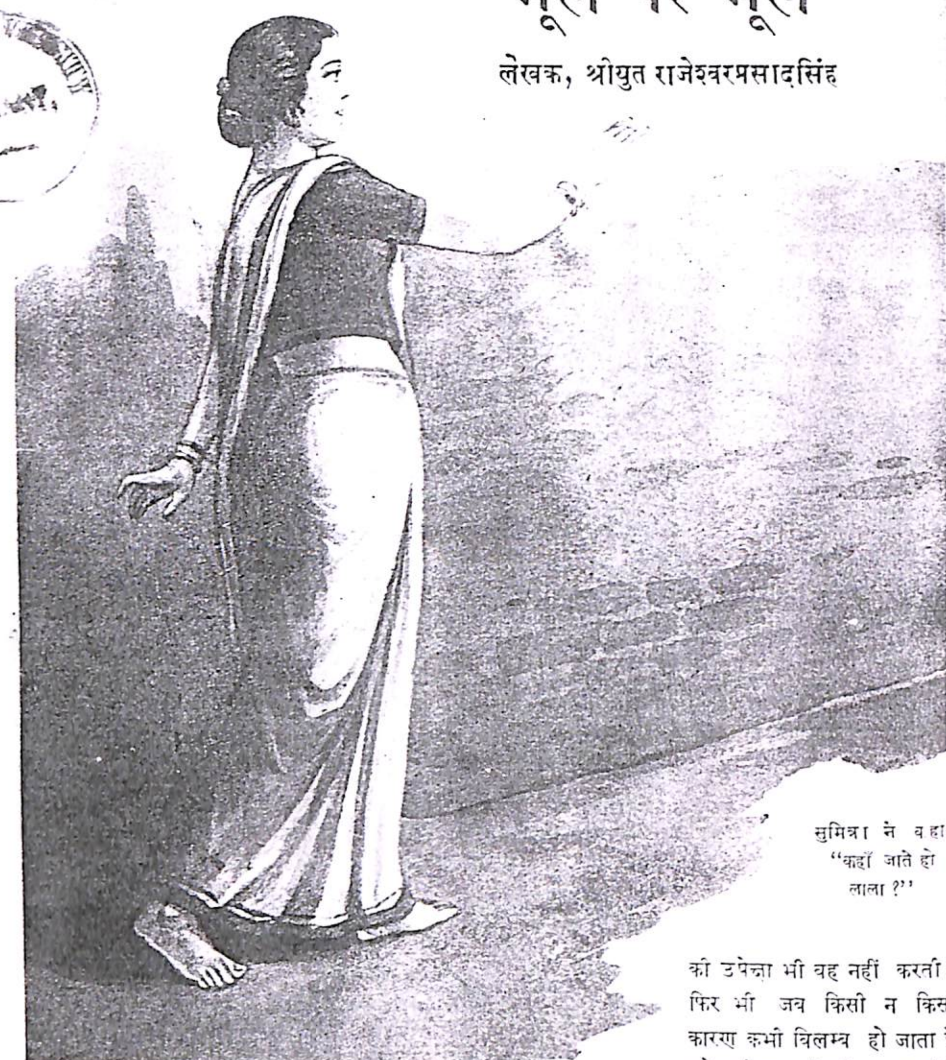
तेरे चरणों में शीश धरे आये होंगे कितने नरेन्द्र,
कितने ही आये, चले गये, कुछ दिन रह अभिमानी महेन्द्र !
मैं भी नरेन्द्र, पर इन्द्र नहीं, तेरा बन्दी हूँ, तीर्थराज !
क्षमता जिससे कर पाऊँ तेरा अनन्त गुण-गान आज !!

—

राजेश्वरप्रसाद जी कल्पना-लोक की अपेक्षा समाज [illegible]वित चित्र अंकित करने में सिद्धहस्त हैं। उनकी इस कहानी में पहले के दो प्रेमियों की मनोदशा का चित्रण है।

भूल पर भूल

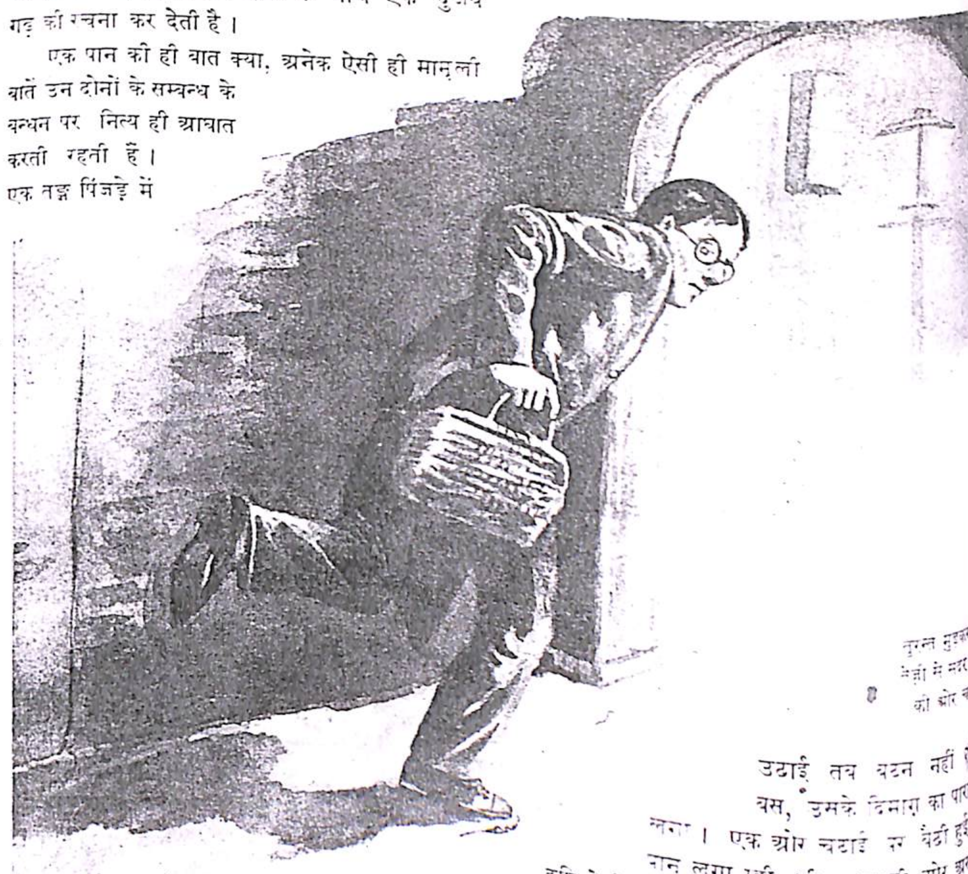
लेखक, श्रीयुत राजेश्वरप्रसादसिंह



सुमित्रा ने कहा—"कहाँ जाते हो लाला ?"

महेश चाहता है कि ज्यों ही वह भोजन या नाश्ता करके उठे, ललिता तुरन्त पान पेश करे। ललिता पत्नीत्व के उत्तरदायित्व से अनभिज्ञ नहीं है, कर्तव्यनिष्ठा की उपेक्षा भी वह नहीं करती। फिर भी जब किसी न किसी कारण कभी विलम्ब हो जाता है और महेश आपे से बाहर होने लगता है तब युग युग से प्रताड़ित नारीत्व की कथा मानो उसके व्यक्तित्व के द्वारा विद्रोह का झण्डा ऊँचा कर देती है। उस समय एक साधारण-सी प्रतीत होनेवाली घटना भयंकर रूप धारणकर उन दोनों के बीच एक दुर्जेय गढ़ की रचना कर देती है।

एक पान की ही बात क्या, अनेक ऐसी ही मामूली बातें उन दोनों के सम्बन्ध के बन्धन पर नित्य ही आघात करती रहती हैं। एक तङ्ग पिंजड़े में



तुरन्त मुड़कर … तेज़ी से सदर … की ओर …

बन्द दो विभिन्न स्वभाव वाले पक्षियों की भाँति शांतिपूर्वक एक साथ रहने में वे असमर्थ हैं। किन्तु उस कारागार से निकलकर स्वतंत्र हो जाने के लिए जिस नीति की आवश्यकता है उसका दोनों में अभाव है।

आज की ही बात ले लीजिए। सबेरे जब महेश ने ट्रंक से धुली हुई कमीज़ निकाली थी तब उसने देखा था कि कई बटन टूट गये हैं। उसी समय ललिता से नये बटन लगा देने की उसने ताक़ीद कर दी थी। किन्तु भोजन कर चुकने के बाद जब पहनने के लिए उसने कमीज़ उठाई तब बटन नहीं [illegible] बस, उसके दिमाग़ का पारा [illegible] लगा। एक ओर चटाई पर बैठी हुई [illegible] पान लगा रही थी। उसकी ओर [illegible] दृष्टि से देखकर झल्लाई हुई आवाज़ में उसने कहा—[illegible] तुमने अभी तक नहीं लगाये !

"अभी लगाये देती हूँ।"

"लगाये देती हूँ ! यहाँ देर हो रही है, और तुम्हें फ़िक्र ही नहीं है। इसी लिए मैंने सबेरे ही कह दिया [illegible] लेकिन तुम्हारी तो हर काम को टाल देने की आदत [illegible]

"कुछ बैठी तो थी नहीं। काम ही कर रही [illegible] कह रही हूँ कि अभी टाँके देती हूँ, लेकिन बात [illegible] बिगड़े बिना तो तुमसे रहा ही नहीं जाता।"

"मेरा मिज़ाज ख़राब है, और तुम सीधी-सादी [illegible]

"सीधी न होती तो पता चलता। दिन भर [illegible] लगी रहती हूँ, फिर भी मुँह सीधा नहीं रहता।"

"तुम काम में लगी रहती हो, और मैं [illegible] रहता हूँ !"

"इस घर में जब से आई, मेरी क़िस्मत फूट गई !"

"तेरे साथ शादी करके मैंने भी सख़्त ग़लती की !"

"तो फिर निकाल क्यों नहीं देते ?"

"ज़्यादा ज़बान लड़ायेगी तो अभी मज़ा चखा दूँगा।"

बस, कमरे में भयावह सन्नाटा छा गया। दोनों मन ही मन अपने अपने दुर्भाग्य को कोसने लगे। पान पति के सामने रखकर, किसी न किसी तरह बटन टाँककर, ललिता तेज़ी से कमरे के बाहर निकल गई। कपड़े पहनकर, पान खाकर, छड़ी लेकर महेश दफ़्तर चला गया।

सारे दिन इस साधारण घटना की छाया, वृहत् आकार धारणकर, उसके मन पर भारी बोझ की तरह लदी रही। संध्या के समय जब महेश दफ़्तर से घर लौटा तब भी वह उद्विग्न था। उसे देखते ही उसकी भाभी ने कहा—लाला जी ! कुछ सुना ?

"क्या ?"

"माधुरी आ रही है।"

उसके चेहरे पर पड़ी हुई मलिनता की छाया हट गई। प्रसन्न होकर वह बोला—सच कहती हो, भाभी ?

"बिलकुल सच।"

"कब आयेगी ?"

"आज रात को नौ बजे की गाड़ी से।"

"बड़ी अच्छी ख़बर है।"

"तो मिठाई खिलाओ।"

"तुम्हारी बहन है। मिठाई तो तुम्हें बाँटनी चाहिए।"

"और, तुम्हारी वह कोई नहीं है ?"

"यह मैं कैसे कहूँ ?"

"हार गये न, लाला !" हँसकर वह बोली।

महेश भी हँसने लगा।

"अच्छा, लाला जी, ज़रा स्टेशन जाकर उसे लिवा लाना।"

"अच्छा।" मुस्कराता हुआ वह सीढ़ियों की ओर बढ़ा।

वह आ रही है—वही जिसने यौवन के आरम्भ-काल में उसके जीवन में आकर उसके व्यक्तित्व पर अपने व्यक्तित्व का अमिट प्रभाव छोड़ दिया था। कितने साल बीत गये, कितनी ऋतुएँ आईं और चली गईं, वह स्वयं भी कितना बदल गया, किन्तु शान्त रूप और सरल स्वभाव-वाली वह माधुरी आज भी उसके हृदय के सर्वोच्च आसन पर आसीन है। उसकी प्रौढ़ता, उसका ज्ञान उसे उस आसन से हटा नहीं सका। वही आज आ रही है ! उसका मन मस्ती से थिरक रहा था मयूर की भाँति जो गगन-मण्डल में उमड़ती हुई घटाओं को देखकर, पर फैलाकर, मस्ती से नाचने लगता है।

ऊपर अपने कमरे में पहुँचकर उसने देखा, एक कोने में चटाई पर विषाद की मूर्ति बनी हुई ललिता निश्चल बैठी हुई है। उपेक्षा का जो भाव मन में लिये हुए वह घर लौटा था वह अब दूर हो चुका था। कुर्सी पर बैठकर मीठे स्वर में उसने कहा—मेरी धोती कहाँ है ?

ललिता निस्तब्ध रही।

"लल्ली !"

"जहाँ हो, ले न लो।"

"तुम्हीं दे दोगी तो क्या कोई हर्ज हो जायगा ?"

"मैं तो कोई काम ही नहीं करती। फिर मुझसे कोई काम करने को क्यों कहते हो ?"

"मैंने तो यह नहीं कहा था कि तुम कोई काम ही नहीं करतीं।"

"तुम हर काम को टालती हो, इसका मतलब क्या है ?"

"इसका मतलब कुछ नहीं है।"

"कहने के समय जो मन में आता है, बक जाते हो, और बाद में कहते हो कि मैंने तो कुछ कहा ही नहीं था !"

"अरे बाबा ! तुम जीतीं, मैं हारा। अब तो ख़ुश हो ?"

"मेरी ख़ुशी या नाख़ुशी से तुम्हें क्या मतलब है ?"

महेश ने कोई उत्तर न दिया। तब ललिता उठी और दूसरे कमरे से धोती ले आई। कुर्सी के हाथ पर धोती रखकर वह फिर चटाई पर जा बैठी। सुलह हो गई।

यों भी जब कभी उसे कहीं जाना होता था, वह रेलवे-स्टेशन पर ठीक वक्त ही पर पहुँचता था। किन्तु आज वह आध घंटा पहले ही स्टेशन पर पहुँच गया। रेलवे-स्टेशन पर मनोरंजन तथा अध्ययन के सामान का अभाव नहीं रहता। देखनेवाली आँखों को वहाँ बहुत-कुछ देखने को मिल जाता है। विद्युत्-प्रकाश से आलोकित प्लैटफ़ार्म पर पूरी चहल-पहल थी। विभिन्न संप्रदाय, जाति तथा रंग

के यात्री, खोंचेवाले, फेरीवाले, कुली और अपने बड़प्पन में चूर कर्मचारी गाड़ी का इन्तज़ार कर रहे थे। किन्तु महेश को मनोरञ्जन के किसी बाह्य साधन की आवश्यकता न थी। वह तो एक ही चित्र अपने भीतर, बाहर, चारों ओर देख रहा था। और वह चित्र था उसी का जिसका स्वागत करने के लिए वह इस समय वहाँ उपस्थित था। उस चित्र को लेकर भाँति भाँति की जो कल्पनायें उसके मस्तिष्क में उठ रही थीं उन्हीं में वह तल्लीन था।

सीटी देती, भक-भक भक-भक करती हुई गाड़ी आ पहुँची। अर्ध-चेतना की दशा भंग हो गई। कल्पना-लोक से उसे प्रत्यक्ष जगत् में आना पड़ा। चौंककर, बेंच छोड़ कर, वह उठ खड़ा हुआ। गाड़ी रुकी। सब झपटे। वह भी लपका। कर्ण-कटु शोर मच गया। चढ़ते-उतरते हुए मुसाफ़िरों की रेल-पेल, धक्कम-धक्का सहता हुआ वह एक-एक डिब्बा देखने लगा। आगे के सारे डिब्बे देख आया, किन्तु वह दिखाई न दी। तब वह मुड़कर तेज़ी से पीछे चला। उसे दूर जाना नहीं पड़ा। इंटर के एक डिब्बे के सामने वह खड़ी थी। एक नवयुवक कुली से सामान उतरवा रहा था। वह डिब्बे की ओर देख रही थी। समीप पहुँचकर वह बोला—माधुरी !

सिहरकर, मुड़कर, माधुरी ने उसकी ओर देखा, और हाथ जोड़कर नमस्कार किया। उसने भी हाथ जोड़े।

"मज़े में रहीं ?"

एक क्षण रुककर, अवरुद्ध कण्ठ से वह बोली—जी...हाँ।

महेश को ऐसा जान पड़ा, जैसे उससे कोई भारी भूल, कोई भारी अपराध हो गया है। माधुरी के चेहरे की ओर वह ध्यान से देखने लगा।

"और आप ?"

एक दीर्घ निःश्वास खींचकर लड़खड़ाती हुई आवाज़ से उसने कहा—किसी...तरह...जीता हूँ।

"आदाब अर्ज़ !" नवयुवक ने समीप आकर कहा।

"बंदगी !"

"यह मेरे देवर हैं।" माधुरी ने परिचय दिया।

"अच्छा ! आप पढ़ते हैं ?"

"जी हाँ।"

"किस इयर में।"

"फ़र्स्ट इयर में।"

"बड़ी ख़ुशी की बात है।"

कुली ने सामान उठाया। सब फाटक की ओर चले। बाहर निकलकर वे एक ताँगे पर सवार हुए। नवयुवक ताँगेवाले के बग़ल में बैठ गया, महेश माधुरी के। ताँगा चल पड़ा। महेश ने कहा—

"ग्यारह साल बीत गये।"

"हाँ।"

"तुम तो वह सब भूल गई होगी ?"

"जो बात असम्भव है वह सम्भव कैसे हो सकती है ?"

"यह तो ठीक कहती हो।"

संतोष की साँस खींचकर वह निस्तब्ध हो गया। माधुरी भी निस्तब्ध बैठी रही।

पच्चीस मिनट में वे घर पहुँच गये। मिलने-भेंटने की महत्त्वपूर्ण क्रिया आरम्भ हुई। थोड़ी देर में जब सब शान्त होकर बैठ गईं तब महेश ने कहा—देखो, भाभी, ख़ैरियत से लिवा लाया न ?

"धन्यवाद। मैं तो डर रही थी कि इसे लेकर कहीं.....!"

"इरादा तो था, भाभी।"

"फिर क्यों चूक गये ?"

"तुम्हारे डर से।"

सुमित्रा हँस पड़ी। वह भी हँसने लगा। माधुरी मुस्कराई। ललिता को यह दिल्लगी पसन्द नहीं आई। महेश ऊपर चला गया।

(२)

ऊपर अपने कमरे में पहुँचकर, सिगरेट जलाकर, आरामकुर्सी पर लेटकर, वह उसी मज़ाक की बात सोचने लगा। भाभी की चोट बड़े मौक़े की थी, लेकिन उसके जवाब में वह बात न थी। हाज़िरजवाबी हर आदमी में कहाँ होती है ? शायद यह भी एक ईश्वरीय देन है। कैसी शक्ति है इस गुण में ! कमरे में आकर ललिता पति के उत्फुल्ल मुखमण्डल की ओर गम्भीर भाव से देखने लगी। दो-तीन क्षणों में जब उसे उसके आगमन का ज्ञान हुआ तब महेश ने मुस्कराती हुई आँखों से उसकी ओर देखा।

"आज तो ऐसे ख़ुश हो, जैसे कहीं गड़ा हुआ ख़ज़ाना पा गये हो !"

चोट खाकर, गम्भीर होकर, ललिता के चेहरे की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखकर वह बोला—इसका मतलब ?

"इसका मतलब क्या तुम नहीं समझते ?"

"तुम्हारा इशारा माधुरी की तरफ़ है न ?"

"हाँ, हाँ, उसी की तरफ़ है जिसकी तारीफ़ करते तुम्हारी ज़बान नहीं थकती।"

"जो तारीफ़ के लायक़ है उसकी तारीफ़ करनी ही पड़ती है।"

"सारा ज़माना तारीफ़ के लायक़ है। अगर कोई नहीं है तो वह मैं हूँ।"

"तुम तारीफ़ के लायक़ नहीं हो, इसका एक सबूत तो यही है कि तुम एक ऐसी स्त्री से डाह करती हो जिसे तुम अभी नहीं जानतीं।"

"इसमें क्या शक है ? मैं नालायक़ हूँ, मैं डाह करती हूँ, मुझमें सारे संसार के अवगुण भरे हैं। फिर जब मैं ऐसी बुरी हूँ तब मेरे साथ शादी करने की क्या ज़रूरत थी ?"

"यह मेरे वश की बात नहीं थी।"

"तब जो बात तुम्हारे वश की हो उसे अब कर डालो।"

"बस, ख़ामोश रहो।"

क्रोध से काँपती हुई ललिता तेज़ी से कमरे के बाहर चली गई। नई सिगरेट जलाकर महेश कश पर कश खींचने लगा। एक झगड़ा समाप्त होते ही दूसरा आरम्भ हो गया। इस तरह कैसे काम चलेगा ? नित्य की इस कुढ़न, इस जलन का कहाँ अन्त होगा ? जिस स्त्री में सहनशीलता का ऐसा अभाव है उसके साथ किस तरह निर्वाह किया जायगा ? गहन वेदना उसके मन में उमड़ पड़ी।

ग्यारह साल पहले की स्मृतियाँ जाग पड़ीं। एक दृश्य सामने आया। सुमित्रा के मायके से वापस आने की सूचना पाकर वह भीतर गया। दालान में खड़ी हुई सुमित्रा चादर उतार रही थी, और उसके समीप खड़ी थी एक नवयुवती। कौतूहलपूर्ण दृष्टि से महेश ने नवयुवती की ओर देखा। नवयुवती ने एक बार उसकी ओर देखकर सिर झुका लिया

"नमस्ते, भाभी !" महेश ने समीप जाकर कहा।

"नमस्ते !" मुड़कर सुमित्रा ने उत्तर दिया। उसने कहा—"देखो, लाला जी, तुम्हारे लिए दुलहिन लाई हूँ।"

झेंपकर नवयुवती दीवार की ओर देखने लगी। सिर झुकाकर महेश मुस्कराने लगा।

"तुम्हें पसन्द है ?"

"जब तुम पसन्द करके लाई हो तब मुझे नापसन्द कैसे हो सकती है ?"

"तब इसके साथ शादी करोगे ?"

"क्यों न करूँगा ?"

"वचन दे रहे हो लाला, पीछे इनकार न कर जाना।"

"इनकार करनेवाला आदमी मैं नहीं हूँ।"

"बस, ठीक है। माधुरी ! तू भी तो इन्हें देख ले। दूल्हे के सामने इतना लजाने से काम न चलेगा।"

माधुरी सिमट कर दीवार से चिपक गई। सुमित्रा हँसने लगी। महेश भी मुस्कराने लगा।

इस तरह हँसी हँसी में किया गया वह प्रस्ताव महेश के दिल में घर कर गया। उसी दिन एकान्त में वह माधुरी से मिला। माधुरी भी उससे मिलने के लिए कम उत्सुक न थी। थोड़ी ही देर में दोनों घुल-मिल गये ! तब उसने कहा—मेरे साथ शादी करोगी माधुरी ?

"यह क्या मेरे वश की बात है ?"

"किन्तु यदि यह तुम्हारे वश की बात होती तो ?"

"तो मैं क्यों इनकार करती ?"

प्रणय के इस आश्वासन से उसे कितना संतोष प्राप्त हुआ था ! दिन-प्रतिदिन एक-दूसरे के प्रति दोनों की आसक्ति बढ़ती गई। माधुरी को महेश में आदर्श पुरुष का दर्शन प्राप्त होता था, और महेश को माधुरी में आदर्श नारी का। उन दोनों के पारस्परिक भावों से चतुर सुमित्रा अनभिज्ञ न थी। केवल मनोविनोद के लिए छेड़ी हुई अपनी 'स्कीम' को सफल होती देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न थी। अन्त में बिदाई-जुदाई का दुर्दिन आ ही पहुँचा। अनिर्वचनीय मनोव्यथा के आँसू बहाकर, एक-दूसरे को पत्र लिखने का वचन देकर, दोनों जुदा हुए। माधुरी अपने घर चली गई। महेश के दुःख का पारावार न था। कई दिनों के बाद जब उसे माधुरी का प्रथम पत्र प्राप्त हुआ तब उसे कुछ शान्ति मिली। उसने भी तुरन्त उत्तर दिया। पत्र-व्यवहार जारी रहा।

दो मास के बाद माधुरी के पिता ने महेश के पिता को पत्र लिखकर माधुरी के साथ महेश के विवाह का प्रस्ताव किया। पूरी तरह जाँच-पड़ताल करके महेश के पिता ने माधुरी के पिता को लिखा—"आपकी लड़की के साथ अपने लड़के की शादी करने में मुझे कोई उज्र नहीं है, लेकिन आप यह तो लिखिए कि आप कितना देंगे।" माधुरी के पिता ने धन्यवाद देकर पूछा कि वे कितना लेंगे। महेश के पिता ने तीन हज़ार माँगे। माधुरी के पिता दो हज़ार देने को राज़ी हुए। महेश के पिता इतने पर राज़ी नहीं हुए। माधुरी के पिता ने अधिक देने में अपनी असमर्थता प्रकट की। महेश के पिता ने लिखा—"जितना कह चुका हूँ, उससे कम न लूँगा। आपने फ़िज़ूल मेरा और अपना समय नष्ट किया।" माधुरी के पिता ने उत्तर दिया—"मैं नहीं जानता था कि जनाब का वक़्त इतना क़ीमती है, वर्ना उसे नष्ट करने का हर्गिज़ साहस न करता। क्या रुपया-पैसा ही सब कुछ है, इंसानियत, मुरौअत कोई चीज़ नहीं ?" बस, दो-एक कड़े ख़त और आये-गये और प्रस्ताव रद हो गया। महेश और माधुरी के ऊपर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। महेश ने माधुरी को लिखा—"पिता जी बड़े ज़िद्दी आदमी हैं। ख़ैर, वे नहीं मानते तो न मानें। मुझे इसकी पर्वाह नहीं है। मेरी राय तो यह है कि हम दोनों कहीं निकल चलें। इतने बड़े संसार में हमें कहीं-न-कहीं आश्रय अवश्य मिल जायगा। बोलो, माधुरी, तुममें साहस है ?" माधुरी ने उत्तर दिया—"आपका प्रस्ताव तो बिलकुल ठीक है, किन्तु आप पुरुष हैं और मैं स्त्री हूँ। समाज में स्त्री की स्थिति पुरुष से भिन्न होती है। पुरुष को हमारा समाज आसानी से माफ़ कर देता है, किन्तु स्त्री के प्रति ऐसी उदारता दिखाना उचित नहीं समझता। समाज की उपेक्षा और निन्दा सहन कर सकने की शक्ति मैं अपने में नहीं पाती। फिर, हमारे उस कृत्य के कारण हमारे कुटुम्बवालों को जिस विकट अपमान का सामना करना पड़ेगा उसकी कल्पना करती हूँ तब जी घबरा जाता है। आपके बिना मुझे भी सारा संसार सूना दिखाई देता है, किन्तु यदि मेरे भाग्य में दुःख झेलना बदा है तो मुझे उसे शान्तिपूर्वक झेलना चाहिए। आप अब मुझे भूल जाने की कोशिश कीजिए। मैं भी आपको भूल जाने का प्रयत्न करूँगी।" यह पत्र जब महेश को मिला तब उसकी रही-सही आशा भी जाती रही। माधुरी को उसने फिर कोई पत्र नहीं लिखा। धीरे-धीरे माधुरी के आदेश के औचित्य को उसे स्वीकार करना पड़ा। ज्यों-ज्यों समय बीतने लगा, उसकी मनोवेदना का भार भी हलका होने लगा। उसी साल माधुरी का विवाह दूसरी जगह हो गया। कई वर्ष तक महेश इनकार करता रहा, किन्तु अंत में उसे भी विवाह करना ही पड़ा। उसे कुढ़ाने जलाने के लिए ललिता उसकी जीवनसंगिनी बनकर आ पहुँची।

यह नीरस, शुष्क, जड़वत् जीवन ! यह 'अनचाहे' का संग ! क्या रक्खा है ऐसे जीवन में ? किन्तु यदि माधुरी उस समय उसके प्रस्ताव का विरोध न करती, उससे सहमत हो जाती तो ? कैसा सुन्दर होता वह जीवन, शैल-शिखर की भाँति उच्च, गंगा-जल की भाँति पवित्र ! समाज सदैव तो उन दोनों की उपेक्षा न कर सकता।

"बाबू जी !" कमरे में आकर नौकर ने कहा।

"क्या है ?"

"खाना खाने चलिए।"

"जाकर कह दो कि इस वक़्त मैं खाना न खाऊँगा।"

"बहुत अच्छा।" नौकर चला गया।

वह फिर विचारों में मग्न हो गया। दो मिनट के बाद सुमित्रा ने कमरे में प्रवेश किया।

"खाना खाने चलो, लाला !"

"मैं इस वक़्त न खाऊँगा।"

"क्यों ?"

"तबीअत ठीक नहीं है।"

"तबीअत ठीक नहीं है या और कोई बात है ?"

वह निस्तब्ध रहा।

"मैं पहले ही समझ गई थी। इस वक़्त क्यों झगड़ा हुआ ?"

"एक बेमतलब की बात पर। उसका मिज़ाज ऐसा ख़राब है कि मैं तो हैरान हो गया हूँ।"

"तो क्या तुम्हारे भोजन न करने से उसका मिज़ाज ठीक हो जायगा ?"

"नहीं।"

"तुम समझदार हो, वह नासमझ है। मौक़े पर डाँट-फिटकार और मौक़े में समझाने-बुझाने से ही वह ठीक हो सकती है। लड़कर, रूठ जाने से यह काम नहीं हो सकता

"क्या मैं समझाता-बुझाता नहीं ? लेकिन उसके दिमाग़ में तो कूड़ा भरा है।"

"कूड़े को देखकर झल्लाने से तो वह साफ़ नहीं हो सकता। सब से जुटकर साफ़ करने से ही वह साफ़ हो सकता है। उठो, चलो।"

महेश उठकर सुमित्रा के साथ नीचे चला गया।

(३)

दूसरे दिन की बात है। सवेरे का समय था। आराम कुर्सी पर लेटा हुआ महेश समाचार-पत्र पढ़ रहा था। माधुरी ने कमरे में प्रवेश किया। उसे देखकर महेश उठ बैठा।"

"आओ, बैठो।"

माधुरी चटाई की ओर बढ़ी।

"नहीं, नहीं, इस पर बैठो।" एक कुर्सी की ओर संकेत करके वह बोला।

माधुरी कुर्सी पर बैठ गई।

"बहन कहाँ है ?"

"नीचे होंगी।" उसके माथे पर सिकुड़न पड़ गई।

महेश के चेहरे की ओर देखकर माधुरी ने कहा—उनसे आपकी नहीं पटती क्या ?

"नहीं। तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?"

"दीदी कहती थीं।"

"ऐसी बदमिज़ाज औरत से किसी की नहीं पट सकती।"

माधुरी निस्तब्ध रही।

"कल की ही बात ले लो। जानती हो, कल रात को क्यों झगड़ा हुआ था ?"

माधुरी ने उसके चेहरे की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा।

"इसलिए कि मैं तुम्हारे आने से ख़ुश था !"

अप्रसन्नता की छाया माधुरी के मुखमण्डल पर आई और चली गई। कई क्षणों तक चुप रहकर वह बोली—अपनी ख़ुशी आप ज़ाहिर न होने देते तो क्या हर्ज हो जाता ?

"अपनी ख़ुशी की कोई बात मैंने उससे नहीं कही थी।"

"तो आपके चेहरे ने कह दिया होगा !"

"मुझे ख़ुश देखकर उसे चिढ़ने की तो ज़रूरत न थी।"

"उनका नाख़ुश होना बिलकुल स्वाभाविक था।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि कोई स्त्री यह नहीं चाहती कि उसका मर्द किसी दूसरी स्त्री को देखकर ख़ुश हो।"

गम्भीर दृष्टि से वह उसके चेहरे की ओर देखने लगा, कितनी उदारहृदया है माधुरी !

"एक बात पूछूँ माधुरी ?"

"पूछिए।"

"तुम यहाँ क्यों आई हो ?"

"सच कह दूँ ?"

"बिलकुल सच।"

"आपको एक बार देखने के लिए।"

"धन्यवाद।"

"क्या देखा तुमने ?"

"देख रही हूँ कि आप बहुत दुःखी हैं।"

"और तुम ?"

"जड़ मशीन की तरह शारीरिक आवश्यकतायें पूरी करने को यदि सुख कह सकते हैं तो मैं सुखी हूँ ! किन्तु वास्तव में क्या यह सुख है ?"

दोनों कई क्षणों तक खोये हुए से बैठे रहे।

"माधुरी।"

"जी हाँ।"

"एक बात मैं अक्सर सोचता हूँ।"

"कौन-सी बात ?"

"यही कि यदि आज से ग्यारह साल पहले तुमने मेरे उस प्रस्ताव का विरोध न किया होता तो कदाचित् हमारे जीवन की धारायें एक होकर सुख के निस्सीम मार्ग पर बहती होतीं !"

"यह तो मैं मानती हूँ कि उस समय मुझसे भयङ्कर भूल हो गई थी।"

"यह भी जानती हो कि हमारी कठिनाइयाँ कैसे हल हो सकती हैं ?"

"जानती हूँ।"

"कैसे ?"

"आपके उसी प्रस्ताव से।"

"तब क्या कहती हो माधुरी ?"

"आपके प्रश्न का उत्तर आसानी से नहीं दिया जा सकता।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि हम दोनों के बीच में दो अन्य व्यक्ति आ गये हैं।"

"तब ?"

"विचार करने के लिए समय चाहिए।"

"कब तक जवाब दे सकोगी ?"

"कल तक।"

"अच्छी बात है, विचार कर लो। मैं तो बहुत विचार कर चुका हूँ और पूरी तरह तैयार हूँ।"

"अच्छा, अब जाती हूँ।"

"जाओ।"

माधुरी की दशा उस समय उस भटके हुए पथिक की-सी हो गई थी जो अन्धकार में मार्ग खोज रहा हो !

सन्ध्या के समय दफ़्तर से घर लौटकर जब महेश अपने कमरे में पहुँचा तब उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। ललिता बेहद ख़ुश थी। पति के हाथ से छड़ी लेकर तेज़ी से कोने में रखकर वह धोती ले आई। महेश उसकी ओर प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखता रहा। जब वह धोती पहनने लगा तब ललिता ने मुस्कराकर कहा—बड़ी अच्छी स्त्री है माधुरी !

"यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?"

"आज दोपहर में बड़ी देर तक वह मुझसे बातें करती रही। उसके विचार बड़े ऊँचे हैं। मैंने उसके बारे में जो कुछ सोचा था वह बिलकुल ग़लत था।

"सब बातों को अच्छी तरह तौलने के बाद किसी के बारे में राय क़ायम करनी चाहिए।"

"ठीक कहते हो।"

दूसरे दिन सवेरे फिर माधुरी उस कमरे में आई। उसका चेहरा उतरा हुआ था, आँखें लाल थीं। महेश ने चिन्तित स्वर में पूछा—तबीअत ख़राब है क्या ?

"नहीं।" कुर्सी पर बैठकर उसने कहा।

"तब क्या रात में देर तक जागती रहीं ?"

"रात भर जागती रही।"

"क्यों ?"

"विचार करती रही। इस समय आपको उत्तर देने आई हूँ।"

"तैयार हो ?"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि दो बसे हुए घरों में आग लगा देना मैं उचित नहीं समझती !"

"माधुरी ! माधुरी !"

"उस समय तो हमारा अपराध क्षमा करने के योग्य होता, किन्तु अब तो वह अक्षम्य हो जायगा।"

"आज फिर भारी भूल कर रही हो माधुरी।"

"जानती हूँ कि भूल कर रही हूँ, और इसके लिए हम दोनों को भारी मूल्य चुकाना होगा।"

"मैं क्या करूँ ?"

"पत्थर के बन जाओ !"

"माधुरी ! इस हाड़-मांस के शरीर में एक दिल भी तो आन्दोलन कर रहा है।"

"अभ्यास से वह भी क़ाबू में आ जायगा।"

"और तुम क्या करोगी ?"

"किसी न किसी तरह दिन कट ही जायँगे।"

"माधुरी ! माधुरी !"

प्रबल वेग से आँखों में आते हुए आँसुओं को रोकती हुई उठकर वह तेज़ी से कमरे के बाहर चली गई। महेश ने हाथों में मुख छिपा लिया। अकथनीय वेदना उसके हृदय में हाहाकार कर रही थी।

संध्या के समय जब वह दफ़्तर से वापस आया तब सुमित्रा ने कहा—माधुरी तो चली गई, लाला।

"चली गई ! कहाँ ?"

"अपने मायके।"

"क्यों ?"

"कहती थी कि जी घबरा रहा है, जाऊँगी। मैंने बहुत रोका, लेकिन वह नहीं मानी।"

"कब गई ?"

"बीस मिनट हुए होंगे।"

तुरन्त मुड़कर महेश तेज़ी से सदर दरवाज़े की ओर चला।

"कहाँ जाते हो, लाला ?"

"अभी आता हूँ।" दो क्षण में वह गली में था।

सड़क पर पहुँचकर एक इक्के पर सवार होकर उसने इक्केवाले से कहा—तेज़ी से स्टेशन चलो।

"कौन टेसन चलूँ बाबू जी ? कछपुरवा ?"

"हाँ। जल्दी चलो।"

इक्का तेज़ी से चल पड़ा।

स्टेशन के प्लेटफ़ार्म पर पहुँचकर महेश ने देखा, माधुरी एक ओर अपने ट्रंक पर बैठी है और उसका देवर अमरनाथ पास ही खड़ा है। समीप पहुँचकर अमरनाथ को इकन्नी देकर उसने कहा—ज़रा पान तो ले आइए बाबू अमरनाथ।

"बहुत अच्छा।" अमरनाथ पान लाने चला गया।

"जा रही हो, माधुरी ?"

"हाँ।"

"क्यों ?"

"मैं डर गई।"

"मुझसे ?"

"आपसे अधिक अपने से।"

"अब कब आओगी ?"

"जब आप मुझे यह लिखेंगे कि अपने दिल पर आपने पूरी तरह क़ाबू पा लिया है।"

"अच्छी बात है। यही सही।"

अमरनाथ पान लेकर आ गया। गाड़ी भी आ गई। गाड़ी पर सवार होकर, हाथ जोड़कर, माधुरी ने कहा—क्षमा माँगती हूँ ?

"क्षमा ! तुमने कौन-सा अपराध किया है माधुरी ?"

मुख मोड़कर माधुरी रूमाल से अपनी आँखें पोंछने लगी।

गाड़ी चल पड़ी। महेश की आँखों से आँसुओं की लड़ियाँ बह निकलीं।

गीत

लेखिका, श्रीमती तारा पांडे

सखि, यह जग है अति सुन्दर !

ये नभ की दीपावलियाँ हैं अश्रु-बिन्दुओं की छाया,
रजनी की अँधियाली में है काले केशों की माया
मेरे ही इंगित पर बहता री सखि, यह निर्मल निर्भर !

सखि, यह जग है अति सुन्दर !

केवल एक गान से ही सब विहगों का स्वर है कूजित,
मेरे ही कलरव से सारा वन-उपवन यह है गूँजित।
एक फूँक से हिल उठता री यद्यपि अति विशाल भूधर !

मैं अविनाशी, मैं असीम हूँ, अजर-अमर मैं हूँ साकार,
उस असीम से इस सीमा का आज हो गया साक्षात्कार,
मेरी दृढ़ता और 'पवित्रता' से उज्ज्वल है हिमगिरिवर !

सखि, यह जग है अति सुन्दर !

क्षुब्ध संसार

लेखक, श्रीयुत सीतलासहाय

संसार के अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र की स्थिति प्रतिदिन बिगड़ती ही जा रही है। संसार के छोटे-ब
सभी स्वतन्त्र राष्ट्र आत्मरक्षा या संसार की शान्ति-रक्षा के नाम पर सामरिक तैयारी में संल
हैं। कोई कहता है, योरप में ही महायुद्ध छिड़ेगा, कोई कहता है, चीन में उसका सूत्रपात होगा
उसका आरम्भ चाहे जहाँ हो, इस बार वह वास्तव में संसार-व्यापी होगा। इस लेख में लेख
महोदय ने इस परिस्थिति का भौगोलिक दृष्टिकोण से परिचय देते हुए उन सम्भावनाओं क
ओर स्पष्ट संकेत किया है, जो पाठकों के लिए विशेष रूप से रुचिकर प्रतीत होगा।

राजनैतिक ज्योतिषियों की भविष्य वाणी है कि जिस प्रकार अबीसीनिया ने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में गर्मी पैदा की है, चीन भी अन्तर्राष्ट्रीय संसार को शीघ्र ही क्षुब्ध करने वाला है।

अबीसीनिया की पराजय, उसके नरेश हेलसलासी का स्वदेश-त्याग और राष्ट्र-संघ की इस महत्त्वपूर्ण दुर्घटना के प्रति अक्षम्य उदासीनता आदि बातें यह प्रमाणित करती हैं कि इस संसार में साम्राज्यवाद आज भी एक प्रबल, प्रचलित और प्रभावशाली सिद्धान्त है। मनुष्य-मात्र की समता और भ्रातृत्व का आदर्श आदर्श-मात्र ही है, जिसके [illegible] में आने के लिए अभी समय चाहिए।

साम्राज्यवाद का विस्तार—पृथ्वी का [illegible] ५ करोड़ २० लाख वर्गमील है, जिसमें से ३ करो[ड़] [illegible] लाख वर्गमील, अर्थात् ६६ [illegible] प्रतिशत भू-भाग साम्रा[ज्यवादी] राष्ट्रों के क़ब्ज़े में है। बाक़ी १ करोड़ ८० लाख व[र्गमील] अर्थात् ३४% प्रतिशत ऐसा है जो स्वाधीन क[हा जा] सकता है। सम्पूर्ण पृथ्वी की आबादी २ अरब ७ करो[ड़] [illegible] इसमें से १ अरब २० करोड़ मनुष्य, अर्थात् [illegible] प्रतिशत साम्राज्यवादी क़ौमों की प्रजा हैं। [illegible] ४३% प्रतिशत आज़ाद हैं। यह सब सम्मिलित [illegible] प्रकार है—

साम्राज्य	क्षेत्र-फल वर्गमील	धरातल का भाग प्रतिशत	सम्पूर्ण पृथ्वी की आबादी का भाग प्रतिशत
ब्रिटेन	१,३०,४२,८९६	२५·२१	२३·९४
रूस	८२,४१,९२१	१५·९३	८
फ्रांस	४६,४१,४०७	८·९९	५·०१
अमरीका	३७,३८,४३७	७·२३	६·६५
इटली	९,९२,९४४	१·९२	२·२७
बेल्जियम	९,२९,७७५	१·८	·८५
जापान	७,२३,२९२	१·४०	६·२६
हालैंड	८,००,५६९	१·५५	३·३४
पुर्तगाल	८,४८,०६६	[illegible]	·३६
साम्राज्याधीन	३,३१,६७,३०३	६५·६७	५७·०६
स्वतंत्र	१,९७,७५,४५६	३४·३३	४२·९४
	५,२७,४२,७६३	१००	१००

कुल पृथ्वी की आबादी—२,०७,३३,४४,२१८
साम्राज्याधीन —१,१८,३०,९३,८९७
स्वतंत्र — ८९,०२,५०,३२१

नौ क़ौमें जिनका अपना क्षेत्रफल धरातल का केवल १४% प्रतिशत है और जिनकी आबादी मनुष्य-मात्र की आबादी का केवल २३% प्रतिशत है, ५७% प्रतिशत मनुष्यों पर और ६७% प्रतिशत धरातल पर राज्य कर रही हैं। अगर रूस और अमरीका को हम इस समूह से निकाल दें तो पता चलता है कि सात क़ौमें जिनकी अपनी आबादी मनुष्य-मात्र की आबादी का ११% है और जिनके देशों का क्षेत्रफल केवल १½% है, ४२% पृथ्वी-मण्डल पर शासन कर रही हैं।

इँग्लेंड जिसका क्षेत्रफल ९४,७२८ वर्गमील है, १,३३,५५,००० वर्गमील के साम्राज्य पर अर्थात् अपने से १३९ गुने भू-भाग पर शासन करता है। केवल अफ़्रीका में ही मिस्र और दक्षिण-अफ़्रीका को छोड़कर उसके पास २२ प्रदेश हैं। फ़्रांस का साम्राज्य उसके क्षेत्रफल से २२ गुना बड़ा है। उसकी अपनी आबादी केवल ४ करोड़ २० लाख है, लेकिन उसका शासन १० करोड़ २० लाख ७७ हज़ार आदमियों पर है। नन्हा-सा बेलजियम अपने से ८३ गुने साम्राज्य का मालिक है। वर्तमान अबीसीनिया-युद्ध के पहले इटली का साम्राज्य उसकी मातृभूमि से केवल ८ गुना बड़ा था। अब दस गुना बड़ा हो गया है। इनका ब्योरा इस प्रकार है—

नाम देश	क्षेत्रफल	पृथ्वी के क्षेत्रफल का अंश	पृथ्वी की आबादी का अंश प्रतिशत
बेलजियम	११,७७५ वर्गमील	·०२३ प्रतिशत	·४
हालेंड	१२,५७९ "	·०२४ "	·४
इँग्लेंड	८८,७४५ "	·१७ "	२·१७
जापान	१,४७,५९२ "	·२९ "	३·२९
इटली	१,१९,७१३ "	·२३ "	२·०५
फ़्रांस	२,१२,६५९ "	·४१ "	२·०२
अमरीका	३०,२६,७८९ "	५·८५ "	५·९२
योरपीय रूस	३५,१३,२२८ "	६·७९ "	६·४५
	७१,६९,०७०	१३·८६	२३·०३

सच तो यह है कि इटली जिसकी साम्राज्य-पिपासा ने इस समय संसार के क्षुब्ध राजनैतिक सागर को क्षुब्धतर कर दिया है, साम्राज्यवादी क़ौमों के समाज में कोई हैसियत ही नहीं रखता, और जर्मनी जिसकी सैनिक तैयारियों से योरपीय राष्ट्र अनिद्रित रहा करते हैं, साम्राज्यवादी राष्ट्रों के वर्ग से ख़ारिज हो चुका है। असल में साम्राज्यवादी क़ौमें केवल चार हैं। वे ब्रिटिश, फ्रेंच, जापान और अमरीकन हैं। इन्हीं के बीच पृथ्वी का आधा हिस्सा और मनुष्यों की आधी आबादी बँटी हुई है। इटली के पास धरातल का केवल २ प्रतिशत भाग और आबादी का भी इतना ही भाग है। जर्मनी के पास आज कुछ भी नहीं है। पिछले महायुद्ध में उसका साम्राज्य अङ्ग-भङ्ग कर दिया गया।

पृथ्वी का राजनैतिक नाटक अपनी शक्ति और विस्तार को बढ़ाने के लिए इन अल्प सम्पन्न या असम्पन्न क़ौमों के प्रयत्नों का अभिनय है।

अफ़्रीका में साम्राज्यवाद—हब्श देश के नरेश हेलसेलासी की पराजय के बाद १ करोड़ १५ लाख वर्गमील के विशाल महाद्वीप अफ़्रीका में केवल ४० हज़ार वर्गमील के लाइबेरिया-प्रजातन्त्र को छोड़कर ज़मीन का एक चप्पा भी ऐसा नहीं बचता जो स्वतन्त्र कहा जा सके। इतिहास के कठोर न्यायाधीश ने अफ़्रीका की सम्पूर्ण जनता को राजनैतिक स्वाधीनता के अयोग्य क़रार दे दिया है। अफ़्रीका का जो अङ्गच्छेदन सैकड़ों वर्षों से धीरे धीरे हो रहा था, अबीसीनिया-युद्ध को उसकी पूर्णाहुति समझनी चाहिए। भयंकर आशावादी भी आज ऐसी आशा नहीं रखता कि अफ़्रीका की काली क़ौम कभी स्वाधीन हो सकेगी। मालूम होता है कि अफ़्रीकन क़ौम का ज़माना ख़त्म हो गया। ब्रह्मा ने जिस उद्देश से उसकी रचना की थी वह शायद पूरा हो गया है। दुनिया को अब उसकी ज़रूरत नहीं है। नई परिस्थिति में अधिक

कुशल राष्ट्रों के सामने वह अपना अस्तित्व नहीं क़ायम रख सकती। उसका लोप हो जाय, यही कालदेवता का हृदय-हीन निर्णय मालूम होता है।

यह कठोर फ़तवा केवल अफ़्रीका की काली क़ौमों के लिए ही नहीं है। समस्त ऐसी क़ौमों के लिए भी है जो अपने को परिस्थिति के अनुकूल सुदृढ़ और कुशल बनाने में असमर्थ रहेंगी। एशिया का सबसे महत्त्वपूर्ण राष्ट्र चीन जो 'स्वर्गीय साम्राज्य' कहलाता था, समय की अपेक्षा का निरादर करने के अपराध से आज विच्छिन्न है, श्री-हीन है और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र को क्षुब्ध करने का कारण बन रहा है।

अफ़्रीका इस समय पाँच मुख्य साम्राज्यवादी योरपीय क़ौमों के अधीन है। वे हैं ब्रिटिश, फ्रेंच, इटालियन, बेलजियन और पुर्तगीज़। इनमें ब्रिटिश सबसे अधिक शक्तिशाली हैं।

अफ़्रीका में ब्रिटिश साम्राज्य—अगर हम मिस्र और दक्षिण-अफ़्रीका का लिहाज़ न करें तो भी अफ़्रीका में ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार ४० लाख वर्गमील के क़रीब है। कहने की आवश्यकता नहीं कि ब्रिटिश जाति ने अपनी शासन-नीति प्रत्येक देश में समय और परिस्थिति के अनुसार निर्धारित की है। बसूटोलेंड में जिसका क्षेत्रफल ११,७१६ वर्गमील है, गोरी जाति के लोगों को ज़मीन ख़रीदने का हक़ नहीं है। केनिया में 'ऊँचा हार' अर्थात् ऊँची ज़मीन केवल गोरों के लिए ही रक्खी गई है। एशियाइयों और भारतवासियों के लिए नीचे की ज़मीन है। हम पत्रों में पढ़ते रहते हैं कि ४० हज़ार एशियाई और १२ हज़ार अरब केनिया में ऊँचाहार पर अधिकार पाने के लिए कैसे बराबर आन्दोलन करते रहते हैं।

बेचुआनालेंड और स्वीज़ीलेंड में अँगरेज़ लोग नहीं बसे हैं और सुमालीलेंड में तो ब्रिटिश राज्य विदेशी पादरियों को भी दाख़िल नहीं होने देता।

युद्ध के बाद से जर्मन-पूर्वी अफ़्रीका जो अब टैंगानीका कहलाता है, अँगरेज़ी साम्राज्य में शामिल कर लिया गया है। इसका क्षेत्रफल ३७ लाख वर्गमील के क़रीब और आबादी ५० लाख है। इस प्रदेश में ३२ हज़ार एशियाई हैं और ८ हज़ार योरपीय। इस सुन्दर प्रदेश के लिए जर्मन लोग आज भी बहुत लालायित हैं। उगंडा की असली बस्ती बातुओं की है, जो क़रीब ३६ लाख हैं। किन्तु ९४ हज़ार वर्गमील के इस देश में १४ हज़ार एशियाई और दो हज़ार योरपीय रहते हैं। ये सारे देश व्यवसाय के लिए बहुत बढ़िया देश हैं। जंज़ीबार वास्तव में ब्रिटिश साम्राज्य का अंग नहीं कहा जा सकता, क्योंकि जंज़ीबार में सुलतान भी हैं, लेकिन ये सुलतान महोदय ब्रिटिश रेज़ीडेंट की इच्छाओं के विरुद्ध कभी नहीं जाते। इसलिए यहाँ की २३ लाख जनता के वास्तविक शासक ब्रिटिश रेज़ीडेंट ही हैं। जंज़ीबार में लौंग बहुत होती है। गोल्ड-कोस्ट-उपनिवेश में अब जर्मन-उपनिवेश टोगोलेंड भी शामिल कर लिया गया है। इस प्रदेश के जंगलों में बहुत क़ीमती माल पैदा होता है। यहाँ रबर की ख़ूब उत्पत्ति होती है। यहाँ गोरी क़ौमें नहीं बसती, केवल व्यापार करती हैं। उत्तरी और दक्षिणी रोडेशिया में कुछ अँगरेज़ और योरपीय बसे हैं। यहाँ की भूमि उर्वरा और आबोहवा साधारण रूप



[आज का अफ़्रीका]
(योरप के भिन्न भिन्न राज्यों के अधिकार में)

से अनुकूल है। लेकिन यहाँ धन-संचय करने की अनेक सुविधायें हैं।

यद्यपि ब्रिटिश प्रधान सचिव बाल्डविन ने यह वक्तव्य निकाल दिया है कि ब्रिटिश गवर्नमेंट जर्मनी को उसके पुराने उपनिवेश वापस नहीं करेगी, तथापि योरपीय राजनीतिज्ञ और विशेषकर फ्रांस इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं है कि उनका यह वक्तव्य अपरिवर्तनीय है।

अफ्रीका में फ्रांस—अफ्रीका में फ्रांस का ४२ लाख वर्गमील भूमि पर अधिकार है। ९ बड़े बड़े प्रदेश इसके क़ब्ज़े में हैं, जिनमें ट्यूनिस, मरक्को, अलजीरिया विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अलजीरिया २,२२,५८० वर्गमील का है। इसकी आबादी ५०,७०,००० है, जिसमें ८ लाख फ्रांसीसी हैं और १,५८,००० अन्य गोरी क़ौमें हैं। इस देश को फ्रेंच-साम्राज्य में शामिल हुए १०६ वर्ष गुज़रे। इस बीच में फ्रांस ने यहाँ ४ हज़ार मील पक्की सड़कें और ३ हज़ार मील रेलवे बना ली है। मरक्को भी जिसका क्षेत्रफल २,३१,५०० वर्गमील है, इतने ही दिन से फ्रांसीसी साम्राज्य के संरक्षण में है। इसकी आबादी का दशांश फ्रेंच है और पश्चिमी दृष्टि-कोण से नई सभ्यता की अनेक सुविधायें यहाँ पिछली शताब्दी में पैदा हो गई हैं। ट्यूनिस की आबादी क़रीब २६ लाख है और क्षेत्रफल ५० हज़ार वर्गमील है। इसमें २ लाख हब्शी बसते हैं। अधिकांश अरब और बद्दू हैं। यहाँ ९० हज़ार के क़रीब फ्रांसीसी हैं और इतने ही इटालियन। १८८१ में फ्रांसीसियों ने इस देश को तुर्कों से छीन लिया था। तब से यह फ्रांसीसी-साम्राज्य का अङ्ग है। इसके अलावा भी अफ्रीका में फ्रांसीसियों के अनेक अधीन देश हैं।

सहारा का मशहूर रेगिस्तान फ्रांसीसियों के ही अधिकार में है। इसका क्षेत्रफल १५ लाख वर्गमील है।

फ्रांस भी बड़ी महान् साम्राज्यवादी क़ौम है। उसने अपने उपनिवेशों में विशेष सम्पत्ति लगाई है और उन्हें उन्नत करने का प्रयत्न करती है। प्रोफ़ेसर कूपलैंड लिखते हैं—

"अँगरेज़ों ने नहीं बल्कि फ्रांसीसियों ने एकीकरण को अपनी औपनिवेशिक नीति का स्तम्भ बनाया है। इनका यह मार्ग युक्ति-सिद्ध और सिद्धान्तानुकूल है। ये अपने उपनिवेशों को फ्रांस का ही एक हिस्सा समझते हैं और वहाँ के रहनेवालों को संभवनीय फ्रेंचमैन।"

अफ्रीका में इटली—अफ्रीका में इटली का प्रथम पदार्पण १८७० में हुआ था। इसने इस वर्ष रहीयता के सुलतान से असब का बन्दरगाह ख़रीदा। १८८० में इस बन्दरगाह पर इटलीवालों ने अपनी फ़ौज उतार दी। १८८५ में इरीट्रिया के मुख्य बन्दरगाह मसावा पर इटली की सेना ने ज़बर्दस्ती क़ब्ज़ा कर लिया। १८८७ से १८९६ तक अबीसीनिया से इटली का युद्ध चलता रहा। १८९३ में इटलीवालों ने असमरा पर क़ब्ज़ा कर लिया। हाल के अबीसीनिया-युद्ध में असमरा ही मारशल बडौलियों का केन्द्र रहा है। लेकिन १८९५-१८९६ में अबीसीनिया के भूतपूर्व सम्राट् मेनलिक ने इटली को कई दफ़ा हरा दिया और इसलिए उसका अबीसीनिया पर अधिक क़ब्ज़ा न हो सका। लेकिन इरीट्रिया इटली का आश्रय-स्थान और गढ़ बना रहा। इरीट्रिया पाकर इटली बहुत प्रसन्न नहीं हुआ, क्योंकि यही प्रदेश पृथिवी का सबसे गर्म प्रदेश है। इसकी आबादी क़रीब ६० लाख है। इसमें ४ लाख योरपीय हैं। इटालियन सुमालीलैंड की आबादी १० लाख है। इसमें केवल डेढ़ हज़ार योरपीय हैं। इटालियन लिबिया में ३० प्रतिशत अरब हैं, ४०% हब्शी, २३% यहूदी और ७ प्रतिशत योरपीय हैं। इस देश को इटली ने १९११-१२ में तुर्की से छीना था। किन्तु इटली अपने अफ्रीकन साम्राज्य से सन्तुष्ट नहीं है। सिनियर मुसोलिनी ने एक दफ़ा अपने भाषण में कहा था—"हम लोग रेगिस्तानों का संग्रह करते करते आजिज़ आ गये हैं।" इटली उर्वरा भूमि चाहता है। इटली के पास अब चार देश अफ्रीका में हो गये हैं। इरीट्रिया, इटालियन सुमालीलैंड, लिबिया और अबीसीनिया। प्रथम तीन देशों का क्षेत्रफल १२,६७,७३५ वर्गमील है।

अफ्रीका में बेलजियम के दो देश हैं। एक बेलजियम कांगो और दूसरा आंदा और पुरुंदी। इनका क्षेत्रफल ९,२०,६०० वर्गमील है। अफ्रीका में पुर्तगाल का सम्पूर्ण क़ब्ज़ा ९,२७,२९२ वर्गमील पर है।

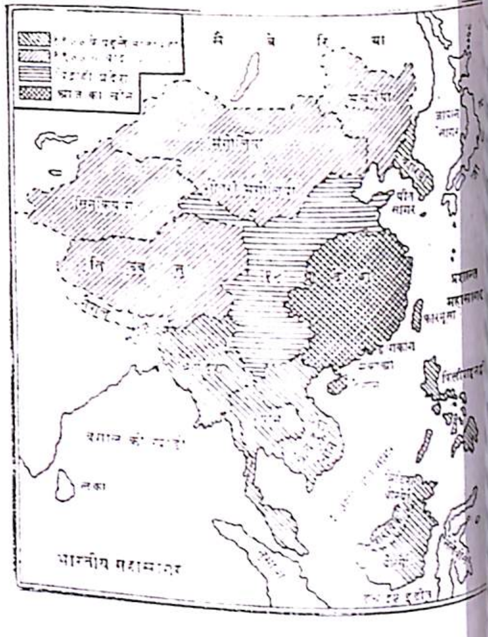
चीन—अब चीन की कहानी सुनिए। बहुत मनोरंजक कथा है। नई सभ्यता के सामने यहाँ की पुरानी सभ्यता का दब जाना एक बहुत शिक्षाप्रद कहानी है। पश्चिमी

राष्ट्रों के संघर्ष में पूर्व के विख्यात से विख्यात देश निर्जीव शव के समान धरातलशायी हुए हैं। इतिहास के प्रत्येक विद्यार्थी को इसका अध्ययन करना और वैज्ञानिक कारण मालूम करना चाहिए।

चीन बहुत प्राचीन और विशाल साम्राज्य है। इसका विस्तार एक हज़ार वर्ष पहले प्रशान्त महासागर से काले समुद्र तक और आर्कटिक समुद्र से हिमालय तक था। इसमें ब्रह्मदेश, स्याम, तिब्बत इत्यादि देश शामिल थे।

चीन का विच्छेद—१५१६ में पुर्तगालियों ने कैन्टन में चीनियों से पहला संग्राम किया और चीनियों को हराकर मकाऊ पर स्थायी रूप से क़ब्ज़ा कर लिया। २७ वर्ष के बाद अर्थात् १७५३ में स्पेन ने फ़िलीपाइन द्वीपों पर क़ब्ज़ा कर लिया, जो आज अमरीका के पास है। १८ वीं शताब्दी के मध्य में 'ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी' ने कैन्टन में व्यापार शुरू किया। यह कम्पनी ख़ास तौर से अफ़ीम का व्यापार किया करती थी। १८४० में अफ़ीम के २० हज़ार बक्स जिन्हें ब्रिटिश व्यापारियों ने बिक्री के लिए रवाना किये थे, चीनियों ने लूट लिये। ब्रिटिशों और चीनियों में इस बात को लेकर झगड़ा शुरू हो गया। २८ जून १८४० को ब्रिटिश जलसेना ने कैन्टन को घेर लिया। युद्ध हुआ। परिणाम यह निकला कि हरजाने के तौर पर ब्रिटिश ने हाँगकाँग बन्दरगाह पर क़ब्ज़ा कर लिया और ८ करोड़ रुपये तावान वसूल किये। ऊपर से कैन्टन, शंघाई, अमाय, फ़ूचू, निगंचू इत्यादि बन्दरगाह भी वैदेशिक व्यापार के लिए खुलवा लिये। यही नहीं, ब्रिटिशों ने अधिकतम रियायत पाने का वचन भी ले लिया। १८४४ में चीन के साथ अमरीका का भी सुलहनामा हुआ। इसमें ख़ास बात यह तय की गई कि अमरीकन, फ्रांसीसी, ब्रिटिश, जापानी प्रजा चीन में चीनी क़ानून के अधीन नहीं, बल्कि अपने अपने देश के क़ानून के अधीन समझी जाय।

१८५० में चीन में मंचूरियन वंश को सिंहासनच्युत करने के लिए ज़ोरदार विद्रोह उठ खड़ा हुआ था और यह विद्रोह १८६४ तक चला। चीनी राज्य-व्यवस्था इस बीच स्वभावतः कमज़ोर हो गई थी। २ करोड़ आदमी गृह-युद्ध में क़त्ल हो चुके थे। इसी मौक़े पर फ्रांस और ग्रेट ब्रिटेन ने संयुक्त रूप से १८५७ में दूसरा अफ़ीम-युद्ध शुरू



[आज का चीन]

(पहले का एक महासाम्राज्य आज छिन्न-भिन्न हो रहा है)

किया। हाँगकाँग के निकट कौलून नगर ब्रिटिशों ने लिया। चीन के ११ और बन्दरगाह विदेशी व्यापार के लिए खोले गये।

इस घटना के १० वर्ष के अन्दर ही फ्रांस ने कोचीन चीन पर क़ब्ज़ा कर लिया और इस बहाने से कि अनाम निवासियों ने फ्रांसीसी पादरियों के ख़िलाफ़ बलवा किया है, फ्रांस ने अनाम के प्राचीन राज्य पर भी आक्रमण कर दिया। टाँगकिंग पर १८८४ में उनका क़ब्ज़ा हो गया। १८८६ में इन समस्त जीते हुए प्रदेशों को एकत्र कर फ्रांसीसियों ने उन्हें अपने साम्राज्य का अंग बना लिया और उनका 'फ्रेंच इण्डोचाइना' नाम रख दिया।

१ जनवरी १८८६ को ब्रह्म देश ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया गया। स्याम को चीन से निकालकर इँगलैंड और फ्रांस ने आपस में बाँट लिया। १८९४ में साम्राज्य-वाद के होनहार बालक जापान ने अपना उद्योग शुरू किया। इससे १ अगस्त १८९४ को चीन के ख़िलाफ़

की घोषणा करके फ़ारमोसा और लियोतुंग-प्रायद्वीप पर क़ब्ज़ा कर लिया। इसने इस अवसर पर ६० करोड़ रुपये का तावान भी चीन से वसूल किया।

इसके बाद ही कोरिया ने चीन से अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी। पहले यह जापान के संरक्षण में कुछ दिनों तक रहा, फिर उसी के अधीन हो गया। रूस ने इसी ज़माने में मंचूरिया में रेलवे बनाने का इजारा चीनी सरकार से हासिल किया। फ्रांस ने भी इसी के बाद यूनन रेलवे बनाने का और जर्मनी ने शांटुंग में रेलवे बनाने का अधिकार चीनी गवर्नमेंट से प्राप्त किया। फिर ब्रिटिश, फ्रेंच और बेलजियन बैंकरों ने मिल कर पेकिंग-हांगको-रेलवे बनाने का हक़ हासिल किया।

१८९६ में चीन में बाक्सर-विद्रोह आरम्भ हुआ। बाक्सर लोग चीनी थे, जिन्होंने योरपीय पादरियों के ख़िलाफ़ बग़ावत की थी। इन्होंने अनेक पादरियों को मार डाला था और उनके साथ अत्याचार किये थे। १९०० में योरपीय शक्तियों ने मिलकर बाक्सरों को सज़ा देने के लिए फ़ौजें भेजीं। विद्रोह दबा दिया गया। १ अरब ४० करोड़ रुपये का तावान चीनियों से वसूल किया गया। इसी अवसर पर चीनी गवर्नमेंट को पेकिंग में विदेशी सेना रखने की इजाज़त देनी पड़ी और रेलवे बनाने की नई रियायतें भी योरपीय शक्तियों ने हासिल कर लीं।

१९११ में 'मांचू-राजघराने' को क्रान्तिकारियों ने सिंहासन से च्युत कर दिया, और उसके बाद चीन में लम्बा गृह-युद्ध शुरू हुआ। १९१४ में जब योरपीय महायुद्ध आरम्भ हुआ, जापान ने शैंटुंग पर जो अभी तक जर्मनी का था, क़ब्ज़ा कर लिया। जापान की शक्ति चीन में इतनी बढ़ गई कि १९१७ में अमरीका को स्वीकार करना पड़ा कि चीन पर जापान का विशेष अधिकार है।

वरसई की सुलहपरिषद् ने जापान के आस-पास जितने जर्मन-प्रदेश थे, जापानियों को दे दिये।

तिब्बत और सिंक्यांग आज पूर्ण से रूप से चीन से स्वतंत्र हैं ही। और मंगोलिया सोवियट के प्रभाव-क्षेत्र में है। १९३१ से जापान ने चीन की ५ लाख वर्गमील भूमि जिसमें मंचूरिया, जेहोल, अन्तरीय मंगोलिया शामिल हैं, अपने क़ब्ज़े में कर ली। इस प्रदेश के निकल जाने से चीन की $\frac{1}{3}$ आबादी उसके हाथ से निकल गई। अब जापान की माँग यह है कि चीनी गवर्नमेंट मंचूकाऊ के निकटस्थ पाँच प्रान्तों को और स्वतन्त्र कर दे। इस प्रकार वह चाहार, सुइयुआन, शान्सी और होपेई आदि प्रदेशों को भी हज़म कर जाना चाहता है। अब चीन का विशाल 'स्वर्गीय साम्राज्य' नारकीय साम्राज्य होकर रह जायगा।

एशिया के प्रायद्वीप में चीन का साम्राज्य बहुत पुराना था। यह विशाल साम्राज्य कला, विज्ञान, साहित्य, और दर्शन-शास्त्र में बहुत प्रौढ़ था। परन्तु आज वह स्वर्गीय साम्राज्य जीवनहीन शरीर के समान आत्मरक्षा के लिए भी असमर्थ है और रौरव नरक का जीवन व्यतीत कर रहा है। इसकी सभ्यता में आज से हज़ार बरस पहले घुन लग गया था। संघर्षों में इसकी कमर टूट गई है।

यहूदी क़ौम भी एशियाई क़ौम है। इस क़ौम का दावा था और है कि परमपिता के हम ख़ास तौर से प्रिय हैं। इस क़ौम में ईसाइयों के मतानुसार भगवान् ने स्वयं हज़रत ईसा के रूप में शरीर-ग्रहण किया। इसका आज क्या हाल है? हज़ारों वर्षों से यह क़ौम निर्वासित है, अपमानित है और पराधीन है।

संसार के इतिहास में अनेक देश ऐसे हैं जिन्होंने अपने जीवन का आधार प्राचीन सभ्यता पर रक्खा और नवीन सभ्यता के सामने पस्त हो गये।

नवीन सभ्यता में जीवन-संचारिणी कौन-सी शक्ति है और प्राचीन सभ्यता में प्राणघातक क्या विष है? क्या कोई पाठक पथप्रदर्शन करेंगे?

बाली में हिन्दू-संस्कृति

लेखक, श्रीनाथसिंह

बालीद्वीप में हिन्दू-धर्म का प्रवेश कब और कैसे हुआ, यह निश्चय के साथ नहीं बताया जा सकता है। पर इसमें सन्देह नहीं कि वहाँ के निवासी 'हिन्दू' हैं। हिन्दूत्व उनका राष्ट्रीय धर्म है। वहाँ जो इस धर्म को छोड़ देता है वह उसके साथ ही अपनी जातीयता भी गँवा देता है। बाली में आज भी कदाचित् ही कोई ऐसा बालक निकले जिसने राम की कथा न सुनी हो, ब्रह्मा, विष्णु और महेश का नाम जिसकी ज़बान पर न हो। परन्तु यह सब होते हुए भी बाली के लोगों को यह पता नहीं है कि बाली के अतिरिक्त कहीं और भी हिन्दू-धर्म का अस्तित्व है। वे यह भूल गये हैं कि राम अयोध्या के राजा थे और राम की कथा को भारतवर्ष के यात्री वहाँ ले गये थे। उन्होंने राम को भी अपना बना लिया है। वे राम को ईश्वर का वह अवतार मानते हैं जो बाली में ही हुआ है। राम की कथा में आने वाले भौगोलिक नाम उनकी समझ में बाली के स्थानों के ही प्राचीन नाम हैं। हनूमान् भी उनके देश के ही कोई आश्चर्यजनक वानर थे।

बाली के लोग संस्कृत बोलते हैं, संस्कृत में लिखे हुए हमारे धर्म-ग्रन्थों के श्लोक पढ़ते हैं। परन्तु वह संस्कृत इतनी बिगड़ गई है और उन श्लोकों में भी उनकी भाषा का उच्चारण इस तरह समा गया है कि हम उनके स्वर को सुनकर यह नहीं कह सकते कि वे संस्कृत-मिश्रित भाषा बोलते हैं। आज जो लोग उनकी प्राचीन संस्कृतियों के सूत्र खोजने वहाँ जाते हैं वे यह नहीं समझ पाते कि वे जिन संस्कृत श्लोकों का पाठ करते हैं वे हिन्दुओं के किन ग्रन्थों से लिये गये हैं। इसका एकमात्र कारण यह है कि हम भारतीयों ने अपने इन प्राचीन सहधर्मियों से सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया है। हमारी धार्मिक संस्थाओं—आर्य्यसमाज और



[यह मूर्ति बाली की कला पर हिन्दू-प्रभाव का एक अच्छा नमूना है। ऐसी मूर्तियाँ जावा में भी बहुत मिली हैं।

हिन्दू महासभा आदि को जैसे अभी अपने घर से बाहर सिर निकालकर यह देखने की आवश्यकता ही नहीं प्रतीत हुई कि हमारी क्या-क्या निधियाँ कहाँ-कहाँ बिखरी पड़ी हैं। आर्य्यसमाज ने कुछ प्रचारक जहाँ-तहाँ अवश्य भेजे हैं, पर उसने भी कुछ ऐसे विद्वान् उन देशों में नहीं भेजे जहाँ हिन्दू-धर्म के चिह्न मौजूद हैं, ताकि उनसे हम फिर से अपना पुराना सम्बन्ध स्थापित करें।

यह सौभाग्य की बात है कि बाली के रम्य पर्वतों, स्वच्छ सलिला सरिताओं, चंचल निर्झरों और हरित कुसुमित वनों ने सभ्य संसार को अपनी ओर आकृष्ट किया है और आमोद-प्रिय यात्रियों के साथ-साथ बहुत-से पुरातत्त्ववेत्ता और इतिहास के विद्वान् भी वहाँ जाने लगे हैं।

भारत की भाँति बालीद्वीप भी पराधीन है और आजकल हालैंड के अधिकार में है। हालैंड के एक चित्रकार श्रीयुत नीवेंकैंप ने बाली के कुछ प्राकृतिक दृश्यों के ऐसे सजीव चित्र अंकित किये हैं कि उन चित्रों ने योरप के सैलानियों के हृदय में बाली की सैर करने की इच्छा उत्पन्न कर दी। उन्हीं दिनों जर्मनी के एक चिकित्सक



[एक शेर की मूर्ति, जो हिन्दू-काल में किसी स्तूप की प्रहरी रही होगी ।]

डाक्टर क्रौज़ ने वाली की यात्रा की और वहाँ से अगणित फोटोग्राफ ले आये और उन्हें समाचारपत्रों में छपाया। इसका परिणाम यह हुआ कि योरप के लोग वाली का भ्रमण करने को लालायित हो उठे। आज वाली विश्व का एक यात्रा-केन्द्र बन गया है और किसी का संसार-पर्यटन तब तक पूरा नहीं कहा जा सकता जब तक वह वाली में कम-से-कम चौबीस घंटे मोटर में न बितावे। यह सच है कि वाली का वैज्ञानिक और ऐतिहासिक अध्ययन इसी गति से नहीं बढ़ा। तथापि इधर भी लोगों का ध्यान गया है। हालेंड की सरकार ने १८७४ ईसवी में ही डाक्टर एच० नूब्रोनर वानडर टुर्क को वहाँ की भाषा, साहित्य और संस्कृति का अध्ययन करने के लिए नियुक्त किया था। इन डाक्टर महोदय ने, शिक्षित वाली-निवासियों की सहायता और अपने अथक परिश्रम से एक विशाल शब्द-कोष तैयार किया। इस ग्रन्थ से अन्य लोगों को वाली और जावा का प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य पढ़ने में बड़ी सहायता मिली और मिल रही है। सन् १९२८ में डच रेज़िडेंट ने वाली-साहित्य का एक विशाल पुस्तकालय स्थापित किया और डच-सरकार की सहायता से सन् १९३१ में वहाँ एक विशाल संग्रहालय भी स्थापित हो गया है। इस पुस्तकालय और संग्रहालय की सहायता से वहाँ के साहित्य और संस्कृति का अध्ययन अब बहुत कुछ सरल हो गया है।

वाली में प्रचलित हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों का समालोचनात्मक अध्ययन अभी बहुत कम हुआ है। यदि कुछ भारतीय विद्वान् वाली की यात्रा करें और इस पुस्तकालय और संग्रहालय की सहायता से वे वाली के ग्रन्थों की छान-बीन करें तो बहुत-सी ज्ञातव्य बातें जो अन्धकार के गर्त में पड़ी हैं, प्रकाश में आ जायँ और हमें अपने प्राचीन सांस्कृतिक वैभव का एक और भव्य स्वरूप देखने को मिल जाय।

इस सम्बन्ध में सबसे अधिक खोज हालेंड के एक पुरातत्त्ववेत्ता डाक्टर विलेम एफ़ स्टुटरहेम ने की है। ये डच-सरकार की ओर से सन् १९२५ में ख़ास तौर से इसी कार्य के लिए वाली में नियुक्त किये गये थे। इन्होंने बहुत-सी आश्चर्य्यजनक बातें मालूम कीं और सन् १९३४ में डच-भाषा में एक पुस्तक प्रकाशित की, जिसमें यह दिखाया है कि प्राचीन वाली की कला पर भारत ने किस हद तक प्रभाव डाला है। इस पुस्तक का अँगरेज़ी में भी अनुवाद हो गया है, और इस लेख का आधार इनकी पुस्तक का यही अँगरेज़ी अनुवाद* है।

वाली में इस समय जो हिन्दू-धर्म प्रचलित है वह बिलकुल वैसा नहीं है जैसा कि भारतवर्ष का है। शताब्दियों के अलगाव के कारण उसमें भिन्नता का आ जाना स्वाभाविक है। इस प्रकार वाली की वर्तमान संस्कृति वास्तव में दो संस्कृतियों के मेल से बनी है। प्राचीन वाली-संस्कृति और हिन्दू-संस्कृति के मिश्रण की झलक उनके चित्रों, मूर्तियों और अन्य रचनात्मक कलाओं में स्पष्ट दिखाई देती है।

वाली के जो लोग गाँवों में रहते हैं और जिन्होंने हिन्दू-धर्म का कभी नाम नहीं सुना है उनका रहन-सहन देखने से यह पता चलता है कि हिन्दू-धर्म के इस द्वीप में पहुँचने से पूर्व यहाँ एक प्रकार की सभ्यता थी, जो द्वीप-निवासियों की अपनी थी। उस सभ्यता में राजा का कोई स्थान न था। देश के शासन की कोई केन्द्रीय व्यवस्था न थी। लोग गाँवों में रहते थे और प्रत्येक गाँव स्वाधीन होता था। गाँव से बाहर वे किसी से किसी तरह का सम्बन्ध नहीं रखते थे। गाँव के भीतर व्यक्ति को कोई स्वाधीनता न थी। जैसे हमारे शरीर का कोई अङ्ग शरीर से पृथक् अपना कोई

*Indian Influences in Old-Balinese Art. by Dr. W. F. Stutterheim

अस्तित्व नहीं रखता, वैसे ही वाली के निवासी अपने अपने ग्राम-संघों के अङ्ग होते थे। एक व्यक्ति की सम्पत्ति सारे गाँव की सम्पत्ति मानी जाती थी और एक व्यक्ति का स्वार्थ सारे गाँव का स्वार्थ होता था। यहाँ तक कि एक व्यक्ति के बालबच्चों पर भी सारे गाँव का अधिकार होता था और ये बच्चे गाँव के भावी अङ्ग माने जाते थे। हमारे शरीर में जैसे अलग अलग अङ्ग अलग अलग कार्य्य करते हैं—दिल का काम दिमाग़ नहीं सँभाल सकता और हाथ का काम पैर नहीं ले सकते, वैसे ही वाली के गाँवों में अलग अलग लोग अलग अलग काम करते थे। लोहार का काम लोहार का ही लड़का कर सकता था और पुरोहित की जगह उसका बेटा लेता था। ये लोग ईश्वर को नहीं, अपने पूर्वजों की आत्मा को पूजते थे। उनका ख़याल था कि उनके पूर्वज पर्वतों और नदियों के उद्गम-स्थानों पर रहते हैं, वहीं से पानी बरसाते हैं और फ़सल उगाते हैं। प्रत्येक मास में एक बार ये पूर्वज पर्वतों से नीचे उतरकर उनके बीच में आते थे और इनकी समस्यायें सुलझाते थे। कहा जाता है कि ये बूढ़ों के शरीर में प्रवेश कर जाते थे और जो कुछ कहना होता था उन्हीं से कहलवाते थे। उस दिन ख़ूब नाच-गान, मंत्र-पाठ और बलिदान होता था। उनके इस धर्म के बीच में बिना किसी विरोध के हिन्दूधर्म कैसे पहुँच गया, इसका वहाँ के इतिहास में कोई उल्लेख नहीं मिलता। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि हिन्दूधर्म वहाँ ईसा की प्रथम शताब्दी में पहुँचा। फिर यह भी ध्यान देने की बात है कि यहाँ शैवधर्म का प्रचार हुआ। बौद्धमत के प्रचारक वहाँ पहुँचे थे, पर शैवमत तो जैसे वहाँ अपने आप उत्पन्न हो गया हो। हिन्दू वहाँ केवल व्यापार के उद्देश से गये थे। वे किनारों पर बस गये और सम्भवतः वहीं से अपने धर्म का प्रचार आरम्भ किया। शीघ्र ही वहाँ छोटे छोटे राज्य स्थापित हो गये, जिनमें हिन्दू राजा राज करने लगे। फिर तो वहाँ राजा वही हो सकता था जिसमें हिन्दू रक्त होता था। हिन्दुओं की वर्ण-व्यवस्था भी वहाँ न जाने कैसे पहुँच गई? आज वहाँ की जनता अपने आपको शूद्र कहने में ज़रा भी संकोच नहीं करती। वहाँ जो हिन्दू अब से २,००० वर्ष पहले पहुँचे थे उनके वंशजों की संख्या सम्पूर्ण जन-संख्या की केवल सात प्रतिशत



[यह अपूर्ण मूर्ति किसी देवता या देवी की है। बहुत सम्भव है, चतुर्भुजी तारा की हो। वाली की कला इस पर स्पष्ट है।]

है, तो भी ये बड़े आदर से देखे जाते हैं और
(ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) कहलाते हैं। कुछ भी हो,
निश्चित है कि हिन्दुओं ने ईसा की दूसरी शताब्दी में
पहुँचकर राजा की स्थापना की और पूर्वजों की
साथ साथ उनके सामने अपने देवता भी पूजने को
रक्खे। इन हिन्दू-देवताओं और उनके पूर्वजों की
में कुछ इतनी समता थी कि उन्होंने इस नवीन
को अविरोध स्वीकार कर लिया। आख़िर हिन्दू
भी तो उनके पूर्वजों की भाँति ही हिमालय जैसे
पर्वतों पर रहते थे और जन-कल्याण के लिए
लेते थे। हिन्दू देवता उन्हें कुछ इतने भव्य प्रतीत हुए
उनके सामने उनके पूर्वज उन्हें तुच्छ प्रतीत हुए।
में हिन्दूधर्म के प्रवेश और प्रसार का कदाचित् यही
है। उन दिनों वहाँ जो राजा हुए वे राम की ही



[जावा की कला से प्रभावित (१० वीं से १३ वीं शताब्दी) वाली की कला। यह मूर्ति अब वेहुल के पवित्र जलाशय के पास रक्खी है।]



[यक्ष हारीत—लगभग १००० ईसवी की वाली की मूर्ति-निर्माण-कला का एक नमूना। कहते हैं, यह स्त्री बौद्ध मत ग्रहण करने से पूर्व अपने बच्चों को मार कर खा जाया करती थी। वाली में आज भी जिन ग़रीब माताओं के बहुत सन्तानें होती हैं और वे उनका पालन नहीं कर सकतीं उन्हें हारीत कहते हैं।]

ईश्वर के अवतार घोषित किये गये और मानव-धर्म-शास्त्र के अनुसार वहाँ जन-शासन आरम्भ हुआ। नगरों में और शिक्षितों में इस प्रकार हिन्दूधर्म का प्रभाव पड़ा। परन्तु दूर के गाँवों में पूर्वजों की पूजा होती रही है। यह अन्तर आज भी बना हुआ है। राज्य-व्यवस्था स्थापित होने पर भी ग्राम-संघों की स्वाधीनता बनी रही। बाहरी मामलों में राजा को चाहे जो करने की पूरी स्वाधीनता थी। कोई शत्रु वाली पर चढ़ाई करता या राजा को किसी से युद्ध करना होता तो गाँवों के नवयुवक उसकी सेना में भर्ती होकर युद्ध करने जाते थे। पर यदि राजा गाँवों के भीतरी मामलों में कुछ बोलता तो वे उसी से युद्ध करने पर आमादा हो जाते और गाँव से उसको निकाल बाहर करने की कोशिश करते। इस प्रकार उनकी प्राचीन संस्कृति और हिन्दुओं के द्वारा प्रविष्ट की गई नई संस्कृति दोनों एक दूसरे की सहायक सिद्ध हुईं और आगे उनका पारस्परिक सहयोग से संयुक्त विकास हुआ और हिन्दूधर्म वालीद्वीप में विविध स्वरूपों में प्रकट हुआ। नाटक, कहानी, साहित्य, चित्र-कला और मूर्ति-निर्माण सब पर हिन्दूधर्म की छाप लगी।

जावा की भाँति वाली का भी इतिहास पूर्ण नहीं है। राजाओं के केवल कुछ परवाने मिलते हैं, जो प्रायः लगान-सम्बन्धी हैं। इन परवानों से हमें केवल राजाओं के नामों और तारीख़ों का ज्ञान होता है। अधिक-से-अधिक इनसे हम एक बात जान सकते हैं कि संस्कृत-भाषा का वहाँ बड़ा मान था और वहाँ के राजाओं और निवासियों में संस्कृत नाम धारण करने की बड़ी इच्छा रहती थी। बहुत



[त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) —१३ वीं और १४ वीं शताब्दी। यह मूर्ति सम्भवतः वाली के एक राजा की है।]



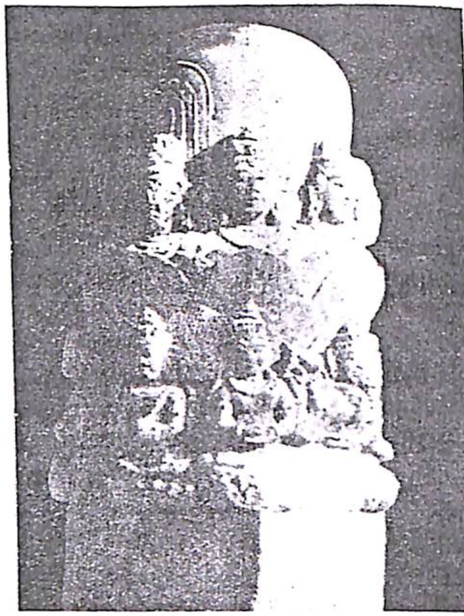
[एक स्त्री अपने हाथों में मनुष्य की लघु आकार की एक मूर्ति लिये है, जिसके शरीर से पहले नदी निकली थी। इसका क्या अर्थ है, यह अभी अज्ञात है।]

से स्थानीय नामों का उच्चारण उन लोगों ने इसलिए बिगाड़ दिया था कि वे संस्कृत नाम प्रतीत हों।

शैव और बौद्धमत का प्रचार एक साथ हुआ। बहुत-से ऐसे गीत मिलते हैं जिनमें शिव और बुद्ध दोनों का गुणगान है। धीरे धीरे ये दोनों मत ऐसे मिल गये कि शिव और ध्यानी बुद्ध की मूर्ति में अन्तर खोजना मुश्किल हो गया। यहाँ तक कि पुरातत्त्ववेत्ताओं ने भी भूलें कीं और उन्होंने शिव की मूर्तियों को बुद्ध की मूर्ति समझा। धीरे धीरे बौद्धमत शैवमत में मिलता गया और अन्त में उसका सर्वथा लोप हो गया। ७३२ ईसवी में जावा में संजय नाम का एक बड़ा प्रबल राजा हुआ। इसने वाली और सुमात्रा पर भी अपना आधिपत्य स्थापित किया और पूर्वी भारत के कुछ भागों तक भी इसने अपने साम्राज्य का विस्तार किया। इसने अपने समय में जावा और वाली में नागरी-लिपि का प्रचार किया। पर इसके बाद दक्षिण-भारत की एक लिपि प्रचलित हुई। दसवीं शताब्दी में जावा के शासक निर्बल पड़ गये और वाली स्वाधीन हो गया। स्वाधीन वाली के एक शासक केसरीवर्मदेव ने अशोक की भाँति प्रस्तर-स्तम्भों पर कुछ लेख खुदवाये। ऐसा एक स्तम्भ वाली में अब भी मौजूद है। इस लेख में नागरी और दक्षिण-भारत की दोनों लिपियाँ प्रयुक्त हुई हैं। भाषा संस्कृत और वाली दोनों हैं। इस लेख में वाली के बाहर भी दूर तक राजा की विजय का उल्लेख है। ९६२ ईसवी में एक दूसरे राजा चन्द्रभसिंह वर्मदेव ने वाली की एक



[भगवान् नृसिंह-द्वारा हिरण्यकश्यप का वध (१३ वीं या १४ वीं शताब्दी)]



[कमल पर स्थित एक शिवलिङ्ग जिसमें शिव की आठ प्रतिमायें हैं।]

नदी में बाँध बँधवाकर एक विशाल ताल बनवाया और उसे तीर्थस्थल का नाम दिया। आज दिन भी वहाँ प्रतिवर्ष वैसे ही मेला लगता है, जैसे हरद्वार और प्रयाग में। सम्पूर्ण बाली के निवासी इस पवित्र तीर्थ में स्नान करने आते हैं।

जावा में उन दिनों तंत्रशास्त्र का बड़ा प्रचार था। बाली के एक राजा ने जावा के तत्कालीन राजा महेन्द्रदत्त की पुत्री से ब्याह किया। यह राजकुमारी बाली में गुणप्रिय-धर्मपत्नी के नाम से विख्यात हुई। इस रानी की तंत्रशास्त्र में बड़ी रुचि थी, इसलिए इसके साथ बाली में जावा से कितने ही हिन्दू और बौद्ध-तांत्रिक आये और बहुत-सी तांत्रिक साधनायें प्रचलित कीं, जो आज दिन भी वर्तमान हैं। इस ब्याह से राजा के ईर्लङ्ग नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो बड़ा प्रभावशाली हुआ। इसका भी विवाह जावा की एक राजकुमारी से हुआ और इसी सिलसिले में यह जावा का भी राजा हो गया। बाली का यही एक ऐसा हिन्दू राजा है, जिसका कुछ विस्तृत इतिहास मिलता है। इस राजा के जय-पराजय और पराक्रम की कहानियाँ संस्कृत और बाली की देशी भाषा में लिखी हैं। उस हस्तलिखित ग्रन्थ की मूल प्रति अब कलकत्ता के म्यूज़ियम में आ गई है और वह उस म्यूज़ियम की एक अमूल्य निधि है। पदवी के साथ इस राजा का नाम था—श्री महाराज श्री लोकेश्वर धर्मवंश ईर्लङ्गान्तविक्रमोत्तुङ्गदेव। बाली के साहित्य में इस राजा की विष्णु से तुलना की गई है और लक्ष्मी और सरस्वती इसकी सहचारियाँ अङ्कित की गई हैं। इस राजा के बाद भी १४ वीं शताब्दी तक जावा और बाली में हिन्दुओं का राज्य रहा। हिन्दूधर्म के बाद इन द्वीपों में इस्लाम का प्रचार हुआ। जावा में बहुसंख्यक लोग मुसलमान बने और बाली में भी आज-कल कुछ मुसलमान हैं। पर बाली में इस्लाम की जड़ कभी

नहीं जमी और अब भी वहाँ जो मुसलमान हैं वे विदेशी और देश के शत्रु समझे जाते हैं।

बाली में रामायण और महाभारत की कथाओं के प्रचार के साथ-साथ चंडी और शिवलिङ्ग की सर्वत्र पूजा होती है और भारत की ही भाँति मन्दिरों के आस-पास निम्नलिखित शब्द सुनाई पड़ते हैं। मेरु, रत्न, मंडप, पुष्प, बकुल, कुसुम, गोपुर, तोमतीर्थ, मंत्र, धूप, घंटा, सूर्याचिंन, श्राद्ध और प्रसाद। इन शब्दों का वही अर्थ और प्रयोग है जो यहाँ भारत में है।

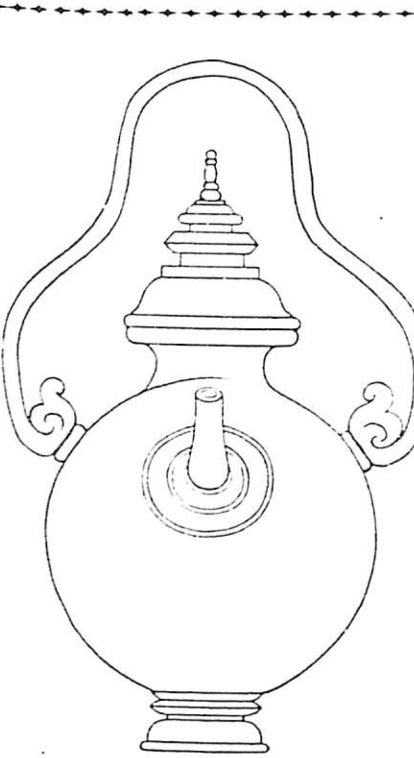
बाली की प्राचीन मूर्तियाँ बहुत कम ऐसी हैं जो सुरक्षित हों। एक तो वहाँ का जल-वायु ही उनके अनुकूल नहीं है, दूसरे जिस वस्तु की वे बनी हैं वह संगमरमर जैसी स्थायी नहीं है। अधिकतर मूर्तियाँ ज्वालामुखी पर्वतों के गर्भ से निकली राख की चट्टानों के पत्थर की हैं। आज दिन भी वहाँ यह कार्य्य ऐसे ही पत्थर पर किया जाता है। बहुत-सी मूर्तियों में रक्षा के लिए एक प्रकार का सीमेंट लगा मिलता है। मूर्तियों को खोदकर निकालने में या एक जगह से दूसरी जगह उन्हें ले जाने में बड़ी सावधानी करनी पड़ती है, क्योंकि ज़रा-सा धक्का लगने पर भी उनके टूट जाने का डर रहता है। पत्थर की मूर्तियों के अतिरिक्त काँसे और लकड़ी की मूर्तियाँ भी मिलती हैं। पर लकड़ी की कदाचित् ही कोई ऐसी मूर्ति हो जिसे मौसम या दीमकों ने न बिगाड़ डाला हो। कपड़ों पर उन दिनों वहाँ सुन्दर चित्र भी अङ्कित किये जाते थे और मन्दिरों में टाँगे जाते थे। पर उन चित्रों में से अब एक भी पास नहीं है। प्राचीन ग्रन्थ यदि फिर फिर न लिखे जाते तो आज वे भी अप्राप्त होते। यदि वे यों ही छोड़ दिये जायँ तो वहाँ का जल-वायु ऐसा है कि बड़े से बड़े मन्दिर को ईंट-पत्थर के ढेर में परिवर्तित हो जाने में कुछ ही वर्ष लगेंगे।

बाली में हिन्दू-सभ्यता के जो प्राचीन चिह्न मिलते हैं वे या तो ग्रन्थों के रूप में हैं या प्रस्तर की मूर्तियों के रूप में। ग्रन्थों का जब अनुवाद होगा तब बहुत-सी बातें प्रकाश में आयेंगी। अभी तो हमें सिर्फ़ मूर्तियों का ही अवलोकन कर संतोष करना पड़ेगा। इन मूर्तियों के शीघ्र नष्ट होने का यह भी एक कारण है कि ये मन्दिरों के अन्दर न रक्खी जाकर उनके ऊपर मंडपों पर बैठाली या खड़ी



[चतुःकाय भैरव (इसका काल अज्ञात है)]

की जाती थीं या बाहर की दीवारों के सहारे खड़ी जाती थीं। सभी मूर्तियाँ देवताओं की नहीं हैं। अधि… राजाओं की हैं, जिनमें देवत्व की कल्पना की गई… वहाँ के बहुत-से वर्तमान ग्रामीण यह भूल गये हैं कि… मूर्तियाँ उन्हीं के पूर्वजों की बनाई हुई हैं। वे सोचते हैं कि… आकाश से गिरी हैं और उनमें जादू का प्रभाव है।… लिए वे भय से उनकी पूजा और रक्षा करते हैं, … उन पर कोई मुसीबत न आ पड़े। बहुत-सी मूर्तियों के… समूह मिलते हैं जिनमें एक पुरुष होता है और शेष स्त्रि… इसका कारण कदाचित् यह है कि एक राजा के कई… होती थीं और सम्भवतः उन्हीं की याद में ये मूर्तियाँ… हैं। बाली में भी भारतवर्ष की भाँति सती की प्रथा… लित थी, जो डचों ने बन्द की। अधिकांश मूर्तियों… सम्बन्ध हमारे पौराणिक आख्यानों से है, जैसे सागर… नृसिंह और अर्जुन का तप इत्यादि। आठवीं से… शताब्दी के बीच में जो मूर्तियाँ बनी हैं उनमें हिन्दू…



[कमण्डलु ([illegible] वीं शताब्दी का धातु के काम का एक नमूना)]

विशुद्ध छाप है। इसका कारण कदाचित् यह हो सकता है कि उन दिनों हिन्दुओं का बाली से या तो सीधा या जावा की मार्फ़त सम्बन्ध था। इस समय में बाली पर जावा का शासन भी था। दसवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी के बीच की जो मूर्तियाँ मिलती हैं वे आठवीं शताब्दी की-सी उच्च कोटि की नहीं हैं। उनकी पद्धति वही है, पर भाव उस काल का भी है जब बाली में हिन्दूधर्म नहीं पहुँचा था। इसका कारण कदाचित् यह हो कि इस काल में बाली जावा से स्वाधीन हो गया था और उसने स्वयं अपनी कला को हिन्दूकला के सहारे विकसित किया। इसमें सन्देह नहीं कि बाली की मूर्ति-निर्माण-कला गुप्तकाल की हिन्दू-मूर्ति-निर्माण-कला को नहीं पा सकती। पर इसका कारण यह है कि बाली की कला सर्वथा किसानों के बीच में विकसित हुई है। उनके राजा भी एक प्रकार से किसान ही थे। कला की दृष्टि से नहीं, यदि हम इस दृष्टि से देखें कि इन मूर्तियों के द्वारा उन्होंने अपनी राष्ट्रीय भावना को किस प्रकार व्यक्त किया है तो हम इनका महत्त्व समझ सकते हैं।

बाली ने हिन्दूत्व को उतना नहीं अपनाया था, जितना जावा ने अपनाया था। उसने हिन्दूत्व को अपनाते हुए भी अपना अस्तित्व क़ायम रक्खा। यह इस बात का एक उदाहरण है कि जो लोग हिन्दू नहीं हैं उन पर भी हिन्दू-संस्कृति का कहाँ तक प्रभाव पड़ सकता है। इस दृष्टि से बाली की यह कला महत्त्वपूर्ण है। बाली भारत का एक ऐसा शिष्य है जिसने गुरु की अक्षरशः नक़ल नहीं की, बल्कि उसके द्वारा प्राप्त ज्ञान से उसने अपना स्वाधीन मार्ग खोज निकाला।

तुम न आये

लेखिका, श्रीमती [illegible]नेशनंदिनी

यौवन-प्रभात में रूप के ललित तन्त्र को लिखकर मैं साधना करती रही किन्तु तुम न आये,

जीवन-प्रौढ़ में, ज्ञान के कलित यन्त्र को चला मैं तुम्हारी उपासना करती रही परन्तु तुम न आये, न आये,

मगर जब रात और दिन के अधर मिले, और अन्धकार गिरिशिखरों पर फैला और समुद्र-तट पर आत्म-विभोर ज्वार का चढ़ाव आया तब मैंने एकनिष्ठ हो प्रेम का कलित-पत्र पढ़ा और तुम तारों के भाँति प्रकाश में मेरा हृदय-द्वार खटखटा रहे थे!

यौवन-प्रभात में रूप के ललित तन्त्र को लिखकर साधना करती रही पर तुम न आये......!

धारावाहिक उपन्यास

अज्ञात दिशा की ओर

मिसेज़ बोस एक परम सुन्दरी रमणी हैं। उनसे भी अधिक सौन्दर्य्य उनकी एकमात्र पुत्री रेखा में उमड़ता आ रहा था। अपने को हताशगञ्ज का ज़मींदार कहकर इन पर प्रभाव डालने के बाद अहीन्द्र ने अपने मित्र निर्मल 'चौधरी' का इनसे परिचय कराया और उसके सम्बन्ध में बतलाया कि ये कोचभूम के प्रिंस हैं। इधर मिसेज़ बोस तथा निर्मल [illegible] एक दूसरे की ओर विशेष रूप से आकर्षित हो गये, किन्तु अहीन्द्र रेखा पर आसक्त था। एक बार वे लोग कलकत्ता छोड़कर देहात में गंगा जी के तट पर एक बँगले में कुछ समय बिताने के लिए गये। वहाँ भ्रमण के समय एकान्त पाकर अहीन्द्र ने रेखा से प्रणय-निवेदन किया, किन्तु रेखा ने उसका प्रत्याख्यान कर दिया। बाद को रेखा के जी में आया कि अहीन्द्र यदि इस प्रकार मेरे प्रेम में अधीर हो रहा है तो मैं उसके साथ विवाह करके क्यों न उसके [illegible] को सुखी बनाऊँ। परन्तु अहीन्द्र उसके साथ विवाह करने पर सहमत नहीं था, वह उसके साथ गुप्त रूप से ही प्रेम का सम्बन्ध रखना चाहता था। इससे रेखा को बड़ी विरक्ति हुई। और इस वायु-मण्डल से उसे घृणा-सी हो गई। अन्त में शान्ति-लाभ करने के विचार से वह घूमने के लिए निकली और एक निर्धन परिवार की सुखमय गृहस्थी देखकर बहुत प्रसन्न हुई। इस परिवार की विचार-धारा से रेखा इतना अधिक प्रभावित हुई कि पहले के समस्त व्यक्तियों के संसर्ग से छुटकारा लेकर इन निर्धन व्यक्तियों के ही समान जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया।

अनुवादक, श्रीयुत ठाकुरदत्त मिश्र

नवाँ परिच्छेद

उस दिन रेखा ने इन दोनों आमोद-पिपासु व्यक्तियों से अपने आपको बिलकुल ही अलग रक्खा। दूसरे वक़्त रह रहकर उसके मन में यही एक बात आती कि इस तरह तो रहा भी नहीं जाता! यह तो एक प्रकार से स्वेच्छा से ही अपने आपको बन्दी करके रखना है। उसने अपने मन में कहा—मैंने कोई ऐसा अपराध नहीं किया है, जिसके कारण अपने आपको इस प्रकार से छिपा कर रक्खूँ? तो...!

परन्तु उन लोगों का इस तरह का खिलखिलाकर हँसना, मुस्करा मुस्कराकर बातें करना, उसे बहुत बुरा लग रहा था। मा के ऊपर उसे बड़ा क्रोध आया। मन ही मन वह कहने लगी—निर्लज्जा नारी, क्या समझ कर तुम इन लोगों के साथ इस तरह हँसी-ठट्ठा करती-फिरती हो? ...बोस के साथ तुम्हारा विवाह नहीं हुआ तो न सही। तुमने उनसे प्रेम तो किया था, चाहे वह एक ही दिन, एक ही घंटे के लिए, क्यों न किया हो। वे भी तो तुमसे प्रेम किया करते थे। निस्सन्देह प्रेम किया करते थे। अन्यथा वे एक तुच्छ नारी के लिए और सब कुछ छोड़कर अकेले ही शहर के एकान्त कोने में निर्वासन का दण्ड क्यों सहते रहते? उनकी स्मृति का भी क्या कोई मूल्य नहीं है? इसके सिवा इन लोगों से इस तरह बातचीत करने की ही क्या आवश्यकता है?......सोचते सोचते उस जगह की चहारदीवारी और दीवारों से घिरी हुई वह थोड़ी-सी जगह उसे असह्य-सा मालूम पड़ने लगी। छाती के ऊपर एक बन्धन के समान चहारदीवारी का घेरा गिरा-सा पड़ रहा था, जिसके बोझ से मानो वह दबी-सी जा रही थी।...इसकी अपेक्षा उस पोखरे का घाट, उस कुटीर का साफ़-सुथरा आँगन, वह खुले हृदय का संयोग...वह सब तो बहुत ही मधुर है जी! वह मानो मुक्ति के समान अपनी विपुल शान्ति लिये हुए पड़ा है। रेखा उठी। उसने उठकर सिर पर एक चादर डाल ली और वहाँ से निकल पड़ी। सूर्य उस समय पेड़-पौधों का आवरण भेदकर विदा की करुणामयी दृष्टि-रूपी किरणें पृथ्वी पर फेंक रहे थे।

गाँव के रास्ते में देहाती स्त्रियाँ कमर में घड़ा दबाये

हुए घाट पर जा रही थीं। वे सब एक-दूसरे से प्रेमपूर्वक बात-चीत और हँसी-मजाक़ कर रही थीं। उनका कण्ठ-स्वर भी मधुर और सरल था। रेखा ने अपने मन में कहा—क्या ही अच्छा होता यदि वह आज उन लोगों के दल में अनायास मिल सकती! हृदय का अत्यधिक आग्रह लेकर वह चुपचाप एक बग़ल खड़ी हो गई। स्त्रियाँ बात-चीत करते करते रास्ते से मुड़कर उसकी आँखों की आड़ में चली गईं। रेखा ने सोचा कि अभी ही वे लौटेंगी और लौटकर घर जायँगी। घर पहुँचकर अपने काम-काज में लग जायँगी। और वह? उसके तो घर नहीं है, सुख नहीं है, जलते हुए विष की ज्वाला से रात-दिन अपने आपको जलाते रहने के सिवा और कोई उपाय भी नहीं है। कौन-सा ऐसा अशुभ कर्म उससे बन पड़ा है जिसके कारण यह सौन्दर्य्य-सम्पत्ति लेकर भी उसका जीवन तरुण अवस्था में ही जलकर राख होने जा रहा है? जीवन के पथ में यही तो उसकी यात्रा का आरम्भ है! इस समय भी कितना लम्बा रास्ता उसके सामने पड़ा है!

रेखा के अन्तःकरण में आहों का ढेर-सा लगा हुआ था। उसका भार उसके लिए असह्य-सा हो उठा था। उस कुटीर का वह सरल आह्वान! उसका हृदय भावों से विह्वल हो उठा। आह भर कर वह आगे की ओर चली!

सड़क के किनारे किनारे जो वृक्ष लगे थे उन पर बैठी हुई चिड़ियाँ कलरव कर रही थीं। विश्व तो निःस्व है नहीं। तब? यह जो उसका विपुल ऐश्वर्य्य चारों ओर फैला हुआ है और संसार के कितने ही प्राणी उसका उपभोग करके धन्य हो रहे हैं। तो कौन-सी ऐसी बात है जिसके कारण रेखा ही इतनी अधिक विरक्ति की ज्वाला से अपने आपको जला रही है? उसे क्या इन सबका उपभोग करने का अधिकार नहीं है? हाय रे हतभागिनी नारी! परन्तु उसका अपराध क्या है?

खिन्नता के मारे उसका मन भारी हो गया। उसके पैर भी नहीं आगे बढ़ना चाहते थे। पास ही एक नाले के पास एक बँधा हुआ पुल था। पुल के पास खूब घने बाँस थे। गोधूलि का ज़रा ज़रा-सा अँधेरा अस्तप्राय सूर्य्य की किरणों की साँसों के सहारे आ-आकर वहाँ पर अपना प्रभाव जमाने का प्रयत्न कर रहा था।

शून्य उदास मन लेकर बड़ी देर तक रेखा चुपचाप उसी पुल पर बैठी रही। उसकी दृष्टि के सामने से होकर गाँव की वे स्त्रियाँ फिर निकलीं, और पानी लिये अपने अपने घर को चली गईं। निर्धन किसान बैलों को दौड़ाते हुए चले गये। मज़दूर लोग भी समस्त दिन का काम-काज समाप्त करके बातचीत करते हुए अपने अपने घर की ओर लौटे। परन्तु रेखा उस समय इस तरह भावावेश में थी कि ये सब उसके सामने से किसी लोक की स्वप्नच्छाया के समान आते हुए चले गये। मस्तक के ऊपर से होकर समस्त दिन अन्तरिक्ष में विचरण करते रहने के कारण थकी हुई चिड़ियाँ उड़ गईं और अपने अपने घोंसले में जाकर बैठीं। आस-पास के पेड़ों में जो घोंसले थे, चिड़ियाँ आकर उनमें बैठीं, और कलरव करने लगीं। बाद को एकाएक कहीं से संसार भर की मिट्टी-धूल और खर-पतवार उड़ाती हुई प्रबल वेग से आँधी आई। साथ ही उसने ज़ोर का धक्का देकर रेखा की चेतना को भी जगा दिया। चौंक कर रेखा ने देखा तब बड़े ज़ोर की आँधी चल रही थी। गोधूलि का धुँधला उजाला मेघों के प्रगाढ़ अन्धकार में डूबकर अदृश्य हो गया था। मुहूर्त भर में ही बड़ी बड़ी बूँदें पड़ने लगीं। रेखा तेज़ी से पैर बढ़ाती हुई घर की ओर लौटी। वही घर है, जहाँ शान्ति का लेश भी नहीं है। जो घर उसे नागपाश में आबद्ध किये हुए है! उस घर की ओर ताकने से भी शरीर काँप उठता है, पैरों की शक्ति जाती रहती है। फिर भी उसी घर में जाकर मस्तक गाड़ना पड़ेगा! इसके सिवा और कोई उपाय ही नहीं रह गया है।

देखो, बरामदे में जो उजाला जल रहा है वह प्रगाढ़ रात्रि के काले अन्धकार को भेदकर मानो रेखा की ही ओर विद्रूप के कटाक्ष चला रहा है। व्यङ्ग्यमय स्वर में ही मानो वह कह रहा है, कहो न, आख़िर फिर लौटकर आई हो न, आख़िर मेरी ही शरण लेनी पड़ी न। एक लम्बी साँस लेकर रेखा आई और घर में प्रविष्ट हुई। सामने के ही कमरे में बैठी हुई मा अहीन्द्र और निर्मल से बातें कर रही थीं। रेखा आकर एक बार उसी कमरे के दरवाज़े पर ज़रा देर के लिए खड़ी हो गई, और तुरन्त ही वहाँ से हट आई।

मा ने उसके शरीर की झलक देखते ही प्रश्न किया—भीग आई हो? अरे भाई, तुमसे तो पार पाना कठिन है।

गँवारों की तरह गली गली घूमने गई थी। जब बादल उठते देखा था तब तो लौट ही आना था! यह कह-कर मा उठकर आई और रेखा के शरीर पर हाथ रखकर कहने लगी—भीगे कपड़े पहने है! जल्दी से यह सब उतार दे। नहीं तो बाद को कहीं तबीयत न ख़राब हो जाय। मुझे तो इसी की चिन्ता में रात-दिन व्यग्र रहना पड़ता है। जाओ।

कातर आग्रह से दृष्टि को परिपूर्ण करके रेखा ने मा की ओर देखा। उसके मन में यह बात आई कि मा से कह दे—इन लोगों को यहाँ से भगा दो। क्या समझकर तुम इन लोगों से हँसी-ठट्ठा किया करती हो? किस दृष्टि से ये लोग तुम्हें देखते हैं? ये सब बातें वह सोच ही रही थी कि उसके हृदय में फिर आग धधक उठी, बिजली की तरह तेज़ी के साथ वह वहाँ से चली गई।

वहाँ से हटकर रेखा सीधा अपने कमरे में गई। वर्षा हो रही थी। बिजली की लपलपाती हुई अग्निशिखा अपनी बड़े ज़ोर की गड़गड़ाहट से आकाश के वक्षःस्थल को चीर रही थी और अत्यधिक रोष के मारे वह रह रहकर दमक उठती थी। रेखा ने शरीर को चित करके बिस्तरे पर डाल दिया और वह यों ही चुप होकर मस्ट मारे पड़ी रही। उसका हृदय एकदम शून्य था उसे किसी बात का ज्ञान नहीं था, मानो चेतना ही नहीं थी। समस्त इन्द्रियों को एकाग्र करके वह आकाश का वही हृदय-विदारक रुदन सुनने लगी। आकाश निरन्तर रुदन करता रहा—झम झम...झम झम झम...मानो वह उन्हीं मा-बेटी की दुर्दशा पर विचार करके रो रहा था।

कुछ देर तक पड़ी रहने के बाद वह उठी। उसने भीगे हुए कपड़े खोल डाले। सूखे कपड़े पहनकर खिड़की की ओर ताकती रही। चारों ओर घोर अन्धकार था। बाहर को कोई भी चीज़ दिखाई नहीं पड़ रही थी। रेखा ने सोचा कि मा को इस संसर्ग से वह खींचकर लावेगी ही। ये लोग यहाँ किस लिए आते हैं और क्या चाहते हैं? यहाँ...उसकी खोपड़ी भन्ना उठी। क्या चाहते हैं, यह बात मन में आते ही क्षोभ और दुःख के मारे उसका हृदय मानो विदीर्ण-सा होने लगा। रेखा ने सोचा कि मेरी मा के साथ मेरे पिता का क्या सम्पर्क था, यह बात अहीन्द्र को मालूम है। उसे यह भी मालूम है

कि इस तरह के सम्पर्क को समाज घृणा की दृष्टि से देखता है। तो भी ये लोग निस्सङ्कोच भाव से यहाँ आया करते हैं। इनका इस तरह का दुस्साहस तो असह्य है!

रेखा नीचे उतर आई। वह कमरा, वह उजाला, कमरे को सुसज्जित करनेवाली तरह तरह की रंग-बिरंगी बत्तियाँ! उस कमरे में आराम से बैठकर गपशप करते ये तीन आदमी! उसकी मा...!.. अहीन्द्र और निर्मल किसी विचित्र भावभङ्गी से रेखा की मा को ताक रहे थे। उस समय उनकी दृष्टि में मानो करुणा थी, घृणा थी, पिपासा थी। दोनों ही युवकों की दृष्टि में इन तीन प्रकार के भावों का एक अपूर्व सम्मिश्रण था। और रेखा की मा? वह भी निर्लज्ज दृष्टि से उन दोनों की ओर ताकती हुई उन्हीं से बातचीत कर रही थी। रेखा ने सोचा कि कमरे में घुस जाऊँ। परन्तु मन में यह भाव आते ही, मानो किसी ने उसके दोनों पैरों को ज़ोर से दबाकर पकड़ लिया। चौखट के पास लकड़ी-सी होकर वह खड़ी रही।

मा ने कहा—तो कल ही बन्दोबस्त कीजिए मिस्टर चौधरी। मोटर पर सवार होकर आराम से बीस-पचीस मील घूम आया जाय। वहीं चलकर पिकनिक की जायगी।

निर्मल ने कहा—यह तो बहुत ही अच्छा होगा।

अहीन्द्र ने कहा—रेखा भी चलेगी न?

मा ने कहा—ज़रूर।

अहीन्द्र ने कहा—किन्तु मुझे सन्देह होता है। जब से हम लोग आये हैं तभी से रेखा कुछ खिंची सी अलग ही अलग रहती है। शायद उसका मन नहीं लगता है।

मा ने कहा—नहीं, नहीं, वह तो रत्ती भर की लड़की है। उसका मन ही अभी क्या है? फिर उसके लगने न लगने की कौन-सी बात है?

रेखा क्रोध से उबलने लगी, तो भी स्थिर होकर खड़ी रही।

अहीन्द्र ने कहा—उसके रङ्ग-ढङ्ग में बहुत बड़ा परिवर्तन आता पड़ता है मिसेज़ बोस।

मा ने कहा—परिवर्तन!

अहीन्द्र ने कहा—मुझे तो ऐसा ही लगता है!

मा ने अहीन्द्र की ओर देखा। बाद को उसने

कर कहा—आपने शायद उससे कुछ कहा था किसी दिन।

अहीन्द्र ज़रा देर तक मलिन भाव से दीवार की ओर ताकता रहा, बाद को वह कहने लगा—कहा तो था। यदि आप आज्ञा दें तो रेखा का भार ग्रहण करने के लिए मैं तैयार भी हूँ।

मा ने हँसकर कहा—यह तो रेखा का सौभाग्य है। आपका आश्रय प्राप्त करने की कोई भी कामना कर सकती है।

मुस्कराकर निर्मल ने कहा—हलो ओल्ड डेको माई कॉंग्रेचुलेशंस ! (ख़ुर्राट गधे, मेरी बधाई लीजिए)।

अहीन्द्र ने कहा—किन्तु रेखा तो मुझसे असंतुष्ट है।

मा ने कहा—वाह, ऐसा भी कहीं हो सकता है? वह तो तुम्हारी सहचरी है।

अहीन्द्र ने कहा - ऐसा ! परन्तु इसमें एक अड़चन है। रेखा चाहती है कि मैं उसके साथ विवाह कर लूँ। परन्तु जानती तो हो मिसेज़ बोस, उसके साथ विवाह कर लेने पर देश में बड़ी हलचल मच जायगी। अन्यथा वह तो इन्द्र की परी है!

क्रोध से रेखा का सारा शरीर जल उठा। वह मन ही मन कहने लगी—शैतान! नारी को तुम लोग इस तरह की सुलभ, विलास की सामग्री समझते हो। इस तरह की सहानुभूति, इस तरह का अनुराग केवल उसके रूप और तरुण यौवन के लिए है। हा! राम! राम!

रेखा अब न खड़ी रह सकी। उसका सारा शरीर थरथर काँपने लगा। लड़खड़ाती लड़खड़ाती वह सीधे अपने कमरे को लौट गई। कमरे में जाकर वह बिस्तरे पर लेट गई और आँसुओं के सागर में कूद पड़ी। बाहर उस समय किसी प्रकार का भी कलरव नहीं था। केवल ज़ोर की वर्षा हो रही थी, मानो व्यथित प्रकृति आर्त स्वर से रुदन कर रही थी। प्रकृति तथा रेखा की सम्मिलित अश्रुधारा से प्लावित होकर आज यदि पृथिवी जलमग्न हो जाती, उस पर जितनी लज्जा, जितनी ग्लानि, जितनी वेदना है, उसे भी वह अपने साथ ही ले डूबती!

बड़ी देर तक इसी तरह पड़ी रहने के बाद आवाज़ आई, खाने आती हो? मस्तक उठाकर रेखा ने देखा। दरवाज़े के पास बेरा खड़ा था।

रेखा ने कहा—जाकर कह दो, मैं नहीं खाऊँगी।

बेरा ने कहा—मा जी ने कहा है कि वे सब बैठे हैं।

रेखा ने कहा—मा जी से कह दो कि मैं नहीं खाऊँगी। मेरा जी अच्छा नहीं है। मेरे लिए किसी को बैठे रहने की ज़रूरत नहीं है।

बेरा चला गया। रेखा एक कोच पर बैठ गई।

ज़रा देर के बाद अहीन्द्र ने आकर पुकारा—मिस !

मस्तक उठा कर रेखा गर्ज उठी। बहुत ही उग्र स्वर में उसने कहा—नीच, पाखण्डी, लम्पट कहीं का! रेखा की दृष्टि उस समय इतनी तीक्ष्ण थी, मानो उसमें बिजली भरी थी।

अहीन्द्र ने कहा—क्या तुम्हें कुछ क्लेश है?

क्रोधमयी दृष्टि से अहीन्द्र की ओर ताककर रेखा ने कहा—मुझे क्लेश है या नहीं, इससे आपका क्या मतलब?

अहीन्द्र चकित भाव से क्षण भर खड़ा रहा। बाद को वह कहने लगा—अप्रसन्न हो मिस! अकेली हो इसलिए। क्या करूँ? मिसेज़ बोस ने कहा था, इससे बैठ ही जाना पड़ा। परन्तु मेरा चित्त तुम्हारी ही ओर लगा था। जी में आता था कि किस तरह दौड़कर तुम्हारे पास आ जाऊँ।

रेखा ने तीक्ष्ण दृष्टि से अहीन्द्र की ओर देखा। तीव्र स्वर से उसने कहा—आपकी असीम कृपा है, अपार ममता है! इसके लिए धन्यवाद है। परन्तु यहाँ से आप चले जाइए। मेरे सामने आप न रहिए, एक क्षण भी नहीं। अपनी ग्लानि, अपनी लज्जा लेकर मैं आराम से रहूँगी। आपकी सहानुभूति की आशा करनेवाली मैं नहीं हूँ।

अहीन्द्र अवाक् होकर खड़ा रहा। रेखा ने फिर [illegible] आरम्भ किया—केवल इतनी ही दया मुझ पर कीजिए कि यहाँ से चले जाइए। इतने से ही मैं कृतार्थ हो जाऊँगी। आपसे मैं इतनी ही भिक्षा माँग रही हूँ।

ज़रा देर तक और खड़ा रहकर अहीन्द्र भौचक्का-सा होकर चला गया।

बड़ी रात को रेखा उठी। वर्षा उस समय रुक गई थी। निर्मल आकाश पर चन्द्रमा उदित हो आया था। अपनी स्निग्ध किरणों से उसने पृथिवी को फिर शीतल कर दिया। रेखा आकर खिड़की के पास खड़ी हो गई।



उर्वशी का उद्धार

[चित्रकार—श्रीयुत शैलेन्द्रकुमार मित्र

बग़ीचे में अन्धकार था। पेड़-पौधों के बीच बीच में चन्द्रमा का प्रकाश था। बग़ीचा मानो अँधेरे-उजाले में कौतुकवश लुका-छिपी का खेल खेल रहा था। रेखा ने मुग्ध दृष्टि से चारों ओर देखा। कैसी विपुल शान्ति थी, कैसी अत्यन्त गम्भीर निस्तब्धता थी! कहीं किसी प्रकार का कोलाहल नहीं था, द्वेष नहीं था, कलरव नहीं था। यह पृथिवी ऐसी ही सुन्दर जान पड़ती थी। ज़रा ही देर पहले जब काली काली घटायें छाई हुई थीं, झम झम पानी बरस रहा था और हाथ फैलाकर टटोलने पर भी कहीं कुछ सूझ नहीं पड़ता था, यह पृथिवी केवल बहुत ही बड़ा कारागार जान पड़ती थी। उस समय रेखा के मन में बार बार यही बात आती थी कि किस तरह अन्धकार से घिरे हुए इस कारागार से मुक्ति प्राप्त करूँ। इस समय चन्द्रमा के प्रकाश से प्रकाशमान, सुख और शान्ति से परिपूर्ण तथा श्रान्ति का अपहरण करनेवाली अर्द्ध-निशा की यह मूर्ति देखकर उसके जी में आया, मानो एक दुःस्वप्न की छाया हट गई है। यह पृथिवी तो वास्तव में कारागार है नहीं, रहने की ही यह जगह है। रेखा ने एक लम्बी साँस ली। वह शान्ति की साँस थी। बाद को एक ऐसा लोभमय कौतुक उसके हृदय में उत्पन्न हुआ कि वह अर्द्धरात्रि की उसी खिली हुई हँसी की ओर मुग्ध दृष्टि से ताकती रह गई!

एकाएक......वह क्या! रेखा ने ध्यान से देखा पेड़ के नीचे! बेंच के ऊपर...! आदमी! हाँ, दो आदमी। कौन है...? क्या कर रहे हैं...? मेघ के आवरण को भेद कर चन्द्रमा फिर प्रकाशमान हो उठा। उसके उज्ज्वल प्रकाश में रेखा ने स्पष्ट देखा, उसकी मा और...और...वह निर्मल! मा दोनों बाहुओं के घेरे में निर्मल को घेरे है!

रेखा की छाती में मानो किसी ने छुरी भोंक दी। असह्य! बड़े वेग से जाकर वह कोच पर बैठ गई। ऐसी स्निग्ध निर्मल रात्रि! हाय रे आदमी! उसे भी कालिमा पोत कर इस तरह भद्दी और काली किये डाल रहे हो! उसकी मा......!

कोच पर लेटकर उसने सोचा कि जिस तरह भी हो सकेगा, मा को इस निर्लज्ज अभिसार के बीच से खींच लाकर मैं उसकी रक्षा करूँगी ही। किन्तु किस तरह मा को यह मन मन सचेत किया जाय?

रेखा फिर उठी। उठकर खिड़की के पास आई बग़ीचे की ओर देखने लगी—वह देखो! वे दोनों अ अभी बैठे...! नीचे के कमरे में उस समय भी दीपक रहा है। नौकर चाकर? नहीं, इस समय भी तो सब सोये नहीं हैं। इन सबके सामने मा इस तरह...छिः! लज्जा के मारे उन लोगों के सामने मुँह दिखाने का भ और कोई उपाय नहीं है!

यौवन के उस पार बहुत दूरी पर बैठकर इस भी यह निर्लज्ज आचरण! रेखा ने आज समझ लिया किसलिए कलकत्तेवाले मकान में नित्य इतने लोगों भीड़ एकत्र हुआ करती है! और ये ही दो आदमी तरह कृपा-परवश होकर एकाएक शहर के बाहर इस एक स्थान में वास करने के लिए इतने व्याकुल हैं, लालायित हैं, इसका कारण क्या है? पिता के साथ का विवाह भी नहीं हुआ। इस दायित्वहीन लिप्सा के में ही उसने आकर दर्शन दिया है, इतना बड़ा दु सिर पर लेकर...! हाय रे हतभागिनी!

दसवाँ परिच्छेद

रेखा जिस कमरे में रहा करती थी उसके पास एक दूसरा कमरा था। उसी कमरे में दासी सोया थी। रेखा ने उसे पुकारा—लखिया!

"हाँ बिटिया रानी" कहती हुई लखिया दौड़कर और रेखा के पास खड़ी हो गई।

रेखा ने कहा—यहाँ मैं अकेली हूँ। न जाने क्यों नहीं आ रही है। क्या तू ज़रा देर तक इस कमरे में सकेगी? मेरे साथ बातचीत करेगी?

लखिया ने उत्तर दिया—बैठ क्यों न सकूँगी बि रानी?

रेखा ने कहा—किन्तु सोये बिना तुझे कष्ट तो होगा? कहीं तेरा सिर न दर्द करे!

लखिया अवाक् हो गई। बिटिया रानी ने उसे कोई भी ऐसी कटु बात नहीं कही थी जिसके कारण उ ख़िलाफ़ उसे किसी प्रकार की शिकायत करने का कारण होता, तो भी वह इस बात की कल्पना कर सकी थी कि किसी दिन मेरे प्रति वे इतनी सहानु प्रकट कर सकेंगी। धनवान् की कन्या, इतने विभव के में रह कर, जो इस तरह सुख-सुविधा के साथ दिन

करती है,...पैसा देकर लोग नौकर-नौकरानी रखते हैं इसी मतलब से कि हमें किसी प्रकार का कष्ट न हो, हमें जब कभी जिस बात की ज़रूरत पड़े, उसके लिए वे दौड़ पड़ें। ये लोग तो सदा आज्ञा देने के ही आदी होते हैं। उनकी आज्ञा का पालन करने में पैसे के बल पर ख़रीदे हुए कङ्गाल दास-दासियों को किस प्रकार की असुविधा या कष्ट होगा, इस बात पर ध्यान ही कौन देता है? इसी लिए अवाक् होकर वह ज़रा देर तक रेखा की ओर ताकती रही। बाद को वह कहने लगी—मेरे कष्ट या आराम की कौन-सी बात है बिटिया रानी? मालिक की सुविधा और आराम का ध्यान तो हमें पहले रखना पड़ेगा न! और इसी लिए हम यहाँ रक्खी गई हैं।

इस बात से रेखा ने अपने अन्तःकरण में ज़रा-सा कष्ट का अनुभव किया। उसने कहा—लखिया, क्या मैंने किसी दिन तुझे ऐसा हुक्म दिया है?

जीभ काटकर लखिया ने कहा—नहीं, नहीं, बिटिया रानी। मैं यह तो कह नहीं रही हूँ। और हुक्म क्यों न दोगी बिटिया रानी? बड़े आदमी लोग नौकर-चाकर हुक्म देने के ही लिए रखते हैं न? मैं यह नहीं कह रही हूँ, बिटिया रानी!

रेखा ने सोचा, बड़े आदमी! हाँ हम लोग बड़े आदमी ही तो हैं! रुपया है—आमोद-प्रमोद की सामग्रियाँ ख़रीदने के लिए ख़ूब रुपया है। परन्तु किस कर्म से यह रुपया आया है? आज भी क्या देने पर यह रुपया आ रहा है!

रेखा का हृदय धक से हो उठा। लखिया के मुँह की ओर ताक कर वह अपने मन में कहने लगी—इसकी अपेक्षा तो इस ग़रीब नौकरानी की ही तरह समस्त दिन कठिन परिश्रम करने के बाद मोटा अन्न खाकर और फटे-पुराने कपड़े पहनकर दिन काटना अधिक अच्छा था, अधिक सुखकर था। इसका-सा भी भाग्य यदि मेरा होता!

रेखा ने कहा—आ लखिया, आ। तेरे साथ बातचीत करूँ। अपने आपको मालिक समझकर मैंने कभी तेरा तिरस्कार तो नहीं किया! तेरा तिरस्कार मैं करूँ ही क्यों? तू भी मनुष्य है, मैं भी मनुष्य हूँ। आज मेरे पास पैसा है, इसलिए तू मेरे यहाँ आकर मेरी नौकरी, मेरी सेवा-टहल कर रही है। कल कहीं यदि ये पैसे मेरे हाथ से निकल जायँ और तू पैसेवाली हो जाय तो कल ही मुझे आकर तेरी सेवा-टहल करनी पड़े।

जीभ काटकर लखिया ने कहा—ऐसी बात मत कहो बिटिया रानी।

रेखा ने कहा—अच्छी बात है। न कहूँगी। जाने दो यह बात। इतना कहकर रेखा चुपचाप लखिया के मुँह की ओर ताकने लगी। बाद को उसने कहा—अच्छा लखिया, हम लोग जो इस तरह बड़े आदमी हैं, इससे तुझे ईर्ष्या नहीं होती? क्या तू भी बड़ा आदमी होने की कामना नहीं करती?

लखिया ने भयभीत-सी होकर रेखा की ओर देखा। उसने मन ही मन कहा—बिटिया रानी यह बात जान कैसे गईं। रोज़ घड़ी घड़ी ये लोग तरह तरह का हुक्म चलाते रहते हैं और मुँह की बात समाप्त होने से पहले ही लखिया को हाज़िर हो जाना पड़ता है, चाहे उसके शरीर में कैसा ही क्लेश क्यों न हो या उसे कितनी ही थकावट क्यों न लगी हो। इस तरह दौड़ते-दौड़ते हैरान हो जाने पर उसने दो-एक बार मन ही मन यह अवश्य कहा था कि तुम लोगों को भी कैसी नवाबी सूझी है। उठते बैठते एक न एक हुक्म लगा ही रहता है। कभी दो मिनट का भी समय नहीं मिलता कि ज़रा शान्ति से लेट कर कमर तो सीधी कर लूँ। उसके मन में यह बात भी आई थी कि कौन-सा उपाय करके मैं भी तुम लोगों की तरह की हो सकती हूँ। आज रेखा की बातें सुनते ही उसे वह बात याद आ गई और वह सोचने लगी कि यह बात बिटिया रानी को मालूम कैसे हो गई।

रेखा ने कहा—परन्तु क्या तू यह नहीं जानती कि ये रुपये और गहने कपड़े ही सब कुछ नहीं हैं न? हमारा हृदय कितना कंगाल बना रहता है सदा!...तुम लोगों की दरिद्रता तो थोड़े-से रुपये मिल जाने पर दूर हो जाती है, तुम लोग हँसने-खेलने लगते हो। किन्तु हम लोगों का हृदय इतना निर्धन है, इतना दरिद्र है कि इसकी दरिद्रता इस जन्म में नहीं दूर की जा सकती, उसे दूर करने का कोई उपाय नहीं है।

लखिया इस बात का अर्थ नहीं समझ सकी। वह अवाक् ही बैठी रही।

रेखा ने उससे कहा—लखिया, क्या तुझे घृणा नहीं आती हम लोगों को देखकर?

"घृणा! बिटिया रानी, आज तुम पागल तो नहीं हो गई हो? मालिक को देखकर किसी को घृणा आती है?"

रेखा ने उत्तेजनामय स्वर में ही कहा—अवाक् होकर ताकती क्या है लखिया? हाँ, घृणा ही! तू तो यहाँ बहुत दिनों से है और हम लोगों के इस जीवन को देख रही है! तुच्छ पैसे के लिए इस घर में रहने में तुझे घृणा नहीं होती लखिया? मेरी मा के पास इस तरह दासीपन करने में?

इतने पर भी लखिया जब कुछ नहीं बोली और विस्मय के मारे वह हक्का-बक्का बनी खड़ी रही तब रेखा ने कहा—अच्छा, यह बात जाने दे। तू अपने देश का या अपने घर का कुछ हाल बतला सकती है? तू अपने एकान्त घर का, अपने कुटुम्ब का हाल बतला। बतला न रे! तेरी उस छोटी-सी गृहस्थी के सुख का हाल सुनने की मेरी बड़ी इच्छा है। देखूँ, यही सब सुनते सुनते यदि मुझे ज़रा-सी निद्रा आ जाय। मुझे तो इतनी अधिक ग्लानि हो रही है! इस तरह का भाव यदि अपने हृदय से दूर न कर सकी तो अब मेरे दिन भी प्रायः समाप्त हो चले हैं, यह बात मैं अच्छी तरह समझ रही हूँ। इस तरह आदमी जीवित नहीं रह सकता। कभी नहीं। शरीर के ऊपर कितने ही गहनों-कपड़ों का भार लादकर मन की इस दाह की ज्वाला क्या कभी रोकी जा सकती है? यह असम्भव है, कभी हो ही नहीं सकता।

इन सब बातों से लखिया ने केवल इतना ही समझा कि रेखा के मन में शान्ति नहीं है। किन्तु उसके विस्मय की भी सीमा नहीं रही। इतने सुख, इतने विभव के बीच में रहनेवाली, माता की एक-मात्र कन्या! उसके मन में दुख का भाव कैसे आ सकता है, यह बुद्धि से परे है। बड़े आदमी के विचार भी विचित्र होते हैं। किसी प्रकार का दुख नहीं है, तो भी शौक़ के मारे दुख की सृष्टि कर ली। यह तो बहुत ही अद्भुत बात है। ख़ास कर बिटिया रानी को तो देखा है। कैसी हँसी की झलक के समान वह संसार में हँसती-खेलती फिरती है!

क्षण भर स्तब्ध रहने के बाद रेखा ने कहा—अब यहाँ रहना अच्छा नहीं लगता लखिया।

लखिया को अब जवाब देने लायक़ बात मिल गई। इससे उसके हृदय में बहुत कुछ स्थिरता आई। वह कहने लगी—मा से कहती क्यों नहीं हो बिटिया रानी? सच पूछो तो भाई मुझे भी यहाँ अच्छा नहीं लगता। साँझ होते ही अँधेरा हो जाता है। इतना सन्नाटा हो जाता है कि डर के मारे कमरे से बाहर पैर तक रखने का साहस नहीं होता। सच तो है भैया, घर-बार छोड़कर कब तक बाहर पड़े रहेंगे इस निर्जन बन में? उस दिन जब गङ्गा जी में नहाने गई थी, ज़रा-सा ही बच गई, नहीं तो डूबकर मर ही जाती बिटिया रानी। मैं क्या जानती थी कि ज्वार का अन्त हो जाने पर भाटा भीतर ही भीतर इतने ज़ोर से खींचता है। जैसे ही मैंने डुबकी मारी, मुझे तो चार-पाँच क़दम की दूरी पर अथाह जल की तरफ़ खींच कर ले गया।

ये सब बातें रेखा के कान तक भी नहीं पहुँच सकीं। लखिया के मुँह की ओर ताक कर उसने पूछा—तू कितने दिनों से नौकरी करती फिरती है लखिया?

लखिया ने कहा—मैं तो बराबर ही नौकरी करती आ रही हूँ बिटिया रानी।

रेखा ने पूछा—क्या तेरा विवाह नहीं हुआ? लड़के बच्चे नहीं हैं?

लखिया का हृदय धक से हो उठा। एक लम्बी साँस लेकर वह कहने लगी—ब्याह तो हुआ है बिटिया रानी।

रेखा ने कहा—हाँ, ठीक तो कहती है। तेरे मस्तक में भी तो सिन्दूर लगा है! तब तू अपने स्वामी के पास क्यों नहीं जाती?

लखिया की आँखें आँसुओं से भीग गईं। उसने कहा—उपाय नहीं है बिटिया रानी।

"क्यों?" रेखा ने आश्चर्यमयी दृष्टि से लखिया की ओर देखा।

लखिया ने कहा—उनको बड़ा दुःख है बिटिया रानी। पक्षाघात के कारण पंगु होकर वे घर में पड़े हैं। मेरी एक विधवा ननँद है, वही उनकी सेवा करती है। दो लड़के हैं। वे भी थोड़ा बहुत देखते-सुनते हैं। घर में रोज़ी-रोज़गार करनेवाला दूसरा कोई है नहीं, इससे नौकरी करने के लिए मुझे ही शहर में आना पड़ा। कलकत्ते में आकर पहले मैं बङ्गाली बाबुओं के यहाँ काम किया करती थी। परन्तु वे सभी घर-गृहस्थीवाले थे। इससे वे तनख़्वाह ही कितनी दे

सकते थे ! बाद को मैं एक बाबू के बग़ीचे में काम करने लगी थी। वे गृहस्थ नहीं थे, इससे स्वभावतः उनके यहाँ आमदनी कुछ अधिक हो जाती थी। मुझे भी पैसे की ज़रूरत थी। इतना अधिक पवित्रता के ही फेर में पड़े रहने से कहाँ तक चलेगा बिटिया रानी ? पहले कुछ दिनों तक अवश्य बहुत बुरा मालूम पड़ता था, अपने आप पर कुछ घृणा-सी आती थी। परन्तु कोई उपाय भी तो नहीं था। उसके यहाँ से साहब—तुम्हारे बाबू जी—मुझे अपने यहाँ ले आये। उन बाबू से साहब की जान-पहचान थी। परन्तु मेरे अभाग्य से साहब की मृत्यु हो गई ! उस समय तुम दस वर्ष की थीं। इतने ही दिन की रही हो न बिटिया रानी ?

"हाँ !" रेखा ने एक लम्बी साँस ली। उसने मन ही मन कहा—हाय रे लखिया, वहाँ काम करने में तुझे अपने आप पर घृणा आती थी ! और तुझे क्या इस बात का पता नहीं है कि यह घर भी।

रेखा काँप उठी। उसने अपने मन में कहा—यह एक मूर्ख और नीच जाति की दासी है। यह भी जिस वस्तु को घृणा की दृष्टि से देखती है, मेरी मा उसे गौरव समझ कर, बड़प्पन की एक वस्तु समझ कर, मस्तक पर धारण किये फिरती है ! यह मूर्ख-नारी, पक्षाघात से पीड़ित स्वामी की सेवा-शुश्रूषा करने तथा उसकी दवा-दारू का प्रबन्ध करने के लिए उसे छोड़कर यहाँ कितनी दूर आई है, दोनों लड़कों के मुँह की ओर भी नहीं देखा। अपने ही अभाव की ओर यदि वह विशेष रूप से ध्यान देती तो और भी बहुत-से ऐसे उपायों का अवलम्बन वह कर सकती थी, जिनसे बहुत-से रुपये प्राप्त कर सकती। परन्तु यह उसने नहीं किया। अपने रोगग्रस्त स्वामी की स्मृति हृदय में धारण करके उसे किसी न किसी प्रकार ज़रा-सी सुविधा पहुँचाने के विचार से इसने अपने जीवन का ही बलिदान कर दिया है। उसे सुखी करने के लिए अपने जीवन के समस्त प्रकार के सुखों, समस्त प्रकार की आशाओं, आकांक्षाओं का अन्त कर दिया है। इसके हृदय में कितनी दया है ! इसका हृदय कितना उच्च, कितना विशाल है ! वही विशाल और उच्च हृदय लेकर उसे कठोर परिश्रम के अन्तराल में छिपाये हुए जाँता के समान काम-काज पीसे डाल रही है। अपने सुख की ओर, अपनी सुविधाओं की ओर एक क्षण के लिए भी यह दृष्टिपात नहीं करती। इस नीच जाति की स्त्री की तुलना में हम लोग। कितने तुच्छ हैं, कितने छोटे हैं !

रेखा ने कहा—उन सबको देखने के लिए तुम्हारा हृदय विकल नहीं होता ?

लखिया ने कहा—विकल होने से काम चलेगा बिटिया रानी ? दूर का रास्ता है, रेल के किराये का ख़र्च है, और वहाँ जाकर जितने दिन रहूँगी, उतने दिन पैसा न मिलेगा, ऊपर से ख़रीद कर खाना-पहनना पड़ेगा। इससे उन लोगों को कष्ट ही तो होगा। इससे तो यह कहीं अच्छा है कि यहाँ पड़ी पड़ी कुछ कमाती रहूँ और जो कुछ पैसे बचा सकूँ, उन्हें भेज दूँ। इससे उन लोगों की ज़रा आराम से कट जायगी। लखिया ने एक लम्बी साँस ली।

वेदना और करुणा से रेखा का हृदय एकदम ही पिघल गया। उसने मन में कहा—कैसे त्याग से लखिया ने अपने हृदय को परिपूर्ण कर रक्खा है ! इसे एक तुच्छ दासी समझकर सदा ही हेय दृष्टि से देखती रही हूँ, पशु के समान ही इसके साथ भी व्यवहार करती रही हूँ। यह बात कभी मेरे ध्यान में भी नहीं आ सकी कि इस देह के आवरण में कितनी बड़ी साध्वी स्त्री की कितनी सेवा, कितनी स्नेह-ममता से भरा हुआ माता का हृदय नीरव भाव जाग्रत होकर बैठा है। आज इस बात पर विचार करके लखिया के प्रति श्रद्धा से रेखा का हृदय परिपूर्ण हो उठा। वह अवाक् हो गई। जिन समस्त व्यक्तियों को अवज्ञा का पात्र समझकर वह स्वयं तथा उसी के समान आमोद-प्रमोद एवं ऐश्वर्य के दर्प से सब कुछ भूले हुए प्राणी अत्यधिक दम्भ से सदा ही मटरगस्त करते फिरते हैं, मनुष्यत्व के ऐश्वर्य एवं गौरव से वे कितने धनी हैं ? ये बड़े आदमी कहलानेवाले लोग इन निर्धन व्यक्तियों, नौकरी-चाकरी करके पेट पालनेवालों के समीप कितने कङ्गाल हैं, कितने अभागे हैं ! आज रेखा मानो दिव्य दृष्टि से यह बात देख सकी।

रेखा ने कहा—क्यों लखिया, तुझे यदि कोई रुपये दे तो क्या तू देश जाकर उन सबको देख आवेगी ?

सहानुभूति के इन शब्दों ने जाकर लखिया के हृदय के अत्यन्त ही कोमल स्थान पर अतर्कित भाव से आघात किया। इस आघात के कारण लखिया अपने नेत्रों का जल

न संवरण कर सकी। वह कहने लगी—एक बार देखने की तो बहुत ही इच्छा है बिटिया रानी। कितने दिनों से जी लगा है। परन्तु वहाँ जाने में जो कुछ बाधा है वह तो पहले ही बतला चुकी हूँ।

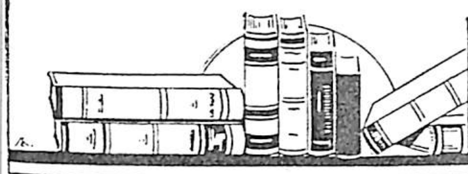
रेखा ने कहा—अच्छा, मैं तुझे सौ रुपये दूँगी। तू वहाँ जाकर महीने भर रह न आ।

कृतज्ञता के आवेग से लखिया का रोम रोम पुलकित हो उठा। वह उस समय इतनी अधिक भाव-विह्वल थी कि अपने आपको किसी प्रकार सँभाल ही न सकी। रेखा के दोनों चरणों के ऊपर उसने अपने आपको लुढ़काकर गिरा दिया।

रेखा ने कहा—किन्तु लखिया, क्या तू जब देश जाने लगेगी, तब मुझे भी अपने साथ ले जा सकेगी ?

यह बात सुनकर लखिया ने मन ही मन कहा—ऐसा भी कहीं सम्भव है ? रेखा, यों ही मज़ाक के लिए कह रही है, मुझे बना रही है। मुहूर्त भर पहले लखिया ने अपने हृदय में जो दीपक जलाकर चारों दिशाओं को प्रकाशमान कर लिया था वह फुर करके बुझ गया। इस तरह का मज़ाक उसे खल गया। उसने कहा—तमाशा कर रही हो बिटिया रानी !

"तमाशा" ! रेखा ने कहा—इस तरह की बातें लेकर भी आदमी कहीं तमाशा कर सकता है ? मैं सच कह रही हूँ लखिया, तुझे सौ रुपये दूँगी। कल सबेरे ही मुझसे ले लेना। तू महीने भर की छुट्टी लेकर घर हो आ। आहा, रोगी स्वामी है, दो दो लड़के हैं। वे भी तुझे देख लेने के लिए विकल होंगे। मा को देखने के लिए वे कितने उत्सुक होंगे ? परन्तु मुझे सचमुच इस बात की इच्छा हो रही है लखिया कि मैं तुम लोगों से मिलूँ-जुलूँ, तुम्हारे घर में जाकर दो दिन रहूँ ! तेरा छोटा-सा घर है, छोटा कार-बार है, वहाँ बहुत थोड़ा सुख मिल सकता है ! परन्तु साथ ही वहाँ दुःख भी बहुत थोड़ा [illegible] सकता है लखिया ! हम लोगों को देखती है कि [illegible] है, घोड़ा है, मोटर है। इससे तू समझती है कि इन को बड़ा आराम है, बड़ा सुख मिलता है। यही [illegible] है न ? किन्तु शायद तू यह नहीं जानती कि जहाँ बहु[illegible] होता है, वहाँ दुःख भी विकराल रूप धारण करके हुआ करता है। मुझे इस सुख से अरुचि हो गई है [illegible] मुझे अच्छा नहीं लगता है ! इसी से जी में आता [illegible] तुम लोगों के दुःख में ही जाकर दो दिन निवास [illegible] इसमें मुझे सुख न मिलेगा तो इतना दुःख भी न [illegible] हम लोगों के ये सफ़ेद कपड़े देखकर तुम लोगों को [illegible] नहीं करना चाहिए। कपड़े और गहना-गाड़ी में सु[illegible] है लखिया। सुख तो आदमी के मन में होता है। [illegible] इतना परिश्रम करके तू काम-काज करती है और [illegible] भर काम करने के बाद तनख़्वाह मिलने पर घर भेज[illegible] उस दिन तुझे कितना सुख मिलता होगा ? वह [illegible] जीवन में हम लोगों को कभी नहीं प्राप्त हो सकता। [illegible] ही झंझटों के पीछे हम लोग रात-दिन इस तरह [illegible] रहते हैं कि हमें स्नेह-ममता प्रदर्शित करने की भी [illegible] नहीं मिलती। इसका प्रमाण खोजने के लिए दूर जा[illegible] ज़रूरत नहीं है। मेरी मा को देख और इधर [illegible] आपको देख। देख ले ! मेरी मा अपनी ही हँसी-[illegible] अपने ही आनन्द के पीछे रात-दिन पागल रहती [illegible] देखो न, आज मुझे कितना क्लेश हो रहा है, कि[illegible] व्याकुल हूँ, नींद तक नहीं आ रही है ! मा ने क्या [illegible] बार भी मेरी ख़बर ली है ? क्या उन्हें इस बात की [illegible] भी चिन्ता हुई है कि मेरी लड़की ठीक से सो रही है [illegible] नहीं ? क्या तू भी इस तरह निश्चिन्त होकर बैठ स[illegible] थी ? कभी नहीं। मा का हृदय है न ?



नई पुस्तकें

[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथासमय प्रकाशित होगा।]

गङ्गा-पुस्तक-माला-कार्यालय, २९-३०, अमीनाबाद-पार्क लखनऊ से प्रकाशित १७ पुस्तकें—

(१) **रतिरानी**—लेखक, श्रीयुत रसिकेश, मूल्य १।।) है।

(२) **मञ्जरी**—अनुवादक, श्रीयुत रूपनारायण पाण्डेय। मूल्य १।) है।

(३) **काम-विज्ञान**—लेखक, श्रीयुत दीनानाथ व्यास 'विशारद'। मूल्य १) है।

(४-५) **भारत में बाइबिल भाग १ और २**—अनुवादक, श्रीयुत संतराम बी० ए० और प्रत्येक भाग का मूल्य १।।) है।

(६) **गेहूँ की खेती**—लेखक, श्रीयुत बी० एस० निगम, एल० ए० जी०, बी० एस-सी०। मूल्य १) है।

(७) **दुलारेदोहावली**—(पद्य) प्रणेता, श्रीयुत दुलारेलाल भार्गव। मूल्य ।।) है।

(८) **खाँजहाँ**—लेखक, श्रीयुत रूपनाराण पाण्डेय। मूल्य १=) है।

(९) **फिर निराशा क्यों?**—लेखक, श्रीयुत गुलाबराय एम० ए०। मूल्य ।।।) है।

(१०) **भारत-गीत**—लेखक, श्रीयुत श्रीधर पाठक। मूल्य ।।=) है।

(११) **कृष्णाकुमारी**—अनुवादक, श्रीयुत रूपनारायण पाण्डेय। मूल्य १) है।

(१२) **उषा**—(पद्य) लेखक, श्रीयुत शिवदास गुप्त 'कुसुम'। मूल्य ।।=) है।

(१३) **आत्मार्पण**—लेखक, श्रीयुत द्वारकाप्रसाद गुप्त। मूल्य ।।।) है।

(१४) **सौंदरानन्द-महाकाव्य**—लेखक, श्रीयुत रामदीन पाण्डेय, एम० ए०, बी०, एड्। मूल्य ।।) है।

(१५) **अचलायतन**—अनुवादक, श्रीयुत रूपनारायण पाण्डेय। मूल्य ।।) है।

(१६) **एशिया में प्रभात**—अनुवादक, ठाकुर कल्याणसिंह शेखावत, बी० ए०। मूल्य ।।) है।

(१७) **भवभूति**—अनुवादक, श्रीयुत ज्वालादत्त शर्मा। मूल्य ।।=) है।

१८-१९—मंत्री, श्री विजयधर्मसूरि जैन-ग्रन्थमाला उज्जैन के द्वारा प्रकाशित २ पुस्तकें—

(१) **अर्हत्-प्रवचन**—(गुजराती) संग्राहक व अनुवादक, मुनिराज श्री विद्याविजय जी। मूल्य ।=) है।

(२) **मेरी मेवाड़-यात्रा**—लेखक, मुनिराज श्री विद्याविजय जी। मूल्य ≡) है।

२०—**काव्य में अभिव्यञ्जनावाद**—लेखक, श्रीयुत लक्ष्मीनारायणसिंह 'सुधांशु' एम० ए०, प्रकाशक, युगान्तर साहित्य-मंदिर, भागलपुर सिटी हैं। मूल्य २।।) है।

२१—**लाला लाजपतराय जी की आत्मकथा**—(प्रथम भाग) संपादक, श्रीयुत भीमसेन विद्यालङ्कार, प्रकाशक, नवयुग-ग्रन्थमाला, मोहनलाल रोड, लाहौर हैं। मूल्य १।।) है।

२२—**हिन्दी-वाक्य-विश्लेषण**—लेखक, श्रीयुत लक्ष्मीकान्त पाण्डेय, प्रकाशक, श्रीयुत बैजनाथ जी विशारद, अध्यापक मिडिल स्कूल, हिराजपट्टी, पो० आ० मधुबन, ज़िला आज़मगढ़ है। मूल्य ।।) है।

१—**गुजरात और उसका साहित्य**—लेखक, श्रीयुत कन्हैयालाल मुंशी, प्रकाशक, लाँङ्गमेन्स ग्रीन एंड कम्पनी हैं। मूल्य ६) है।

यह पुस्तक अँगरेज़ी में लिखी गई है! और कदाचित् इस कारण कि ऐसा करने से लेखक महोदय भारत के एक प्रान्तीय साहित्य को अन्य प्रान्तीय प्रमुख साहित्यों के

ही साथ रखकर नहीं वरन विश्व-साहित्य के सामने रख कर पाठकों को उसका पूर्ण दिग्दर्शन करा सकें। यदि बात ऐसी ही है तो लेखक महोदय अपने उद्देश में पूर्ण रूपेण सफल हुए हैं।

लेखक महोदय ने गुजरात और उसके साहित्य के इतिहास को स्वाभिमान के साथ लिखा है। परन्तु इसके साथ ही एक इतिहासज्ञ और आलोचक के वैज्ञानिक दृष्टिकोण अथवा सत्य को उन्होंने बराबर अपने सामने बनाये रक्खा है और अपने प्रान्त और उसके साहित्य को विश्व-साहित्य में एक गौरव का स्थान दिया है, जिसके कारण भारतीय इतिहास और वाङ्मय के विद्यार्थी के लिए इस ग्रन्थ के महत्त्व को भूल जाना नितान्त असम्भव होगा।

लेखक महोदय में आत्मविश्वास है और वे वैज्ञानिक विश्लेषण करने की भी क्षमता रखते हैं। उनके इन गुणों का आभास विशेष रूप से उन स्थलों पर मिलता है जहाँ उन्होंने गुजरात की विशेषता और उसके महत्त्व का प्रतिपादन किया है। उन्होंने गुजरात के इतिहास को—कहना तो चाहिए सांस्कृतिक इतिहास को—दो प्रतिद्वन्द्वी नहीं तो दो विभिन्न शक्तियों की क्रिया और प्रतिक्रिया का फल बतलाया है—(१) गुजरात की प्रान्तीयता तथा उसकी प्रान्तिक संस्कृति और (२) भारत की सभी प्रान्तीय संस्कृतियों की जननी आर्य-संस्कृति का सर्वव्यापी प्रभाव। वैसे तो सभी प्रान्तों के विषय में यही बात थोड़े या बहुत सत्य के साथ कही जा सकती है, लेकिन गुजरात के विषय में यह बात विशेष रूप से सत्य है, क्योंकि गुजरात तो क़रीब क़रीब हमेशा ही राजनैतिक सीमाओं के कारण छिन्न-भिन्न रहा है और जो शक्ति इस प्रान्त को प्राचीन काल से ही एक सूत्र में बाँधे रही है वह उसकी संस्कृति ही है। गुजरातियों की प्रान्तीयता महाराष्ट्र और बंगाल की भाँति उग्र नहीं है। इसका कारण लेखक महोदय ने यह बतलाया है कि गुजराती लोग उपजाऊ और धन-धान्य-पूर्ण भूमि के अधिवासी होने के कारण जहाँ वाणिज्य-प्रधान व्यवसाय रहा है, स्वभाव से ही विनम्र होते हैं। इसका प्रभाव उनकी संस्कृति, और संस्कृति से उनके साहित्य पर पड़ना अवश्यम्भावी ही था, क्योंकि साहित्य तो जीवन का ही प्रतिबिम्ब है।

लेखक महोदय ने अपने इस ग्रन्थ में गुजरात का प्रारम्भ-काल से आज तक का इतिहास अंकित करने का प्रयत्न किया है। अतएव हमें इस ग्रन्थ में इतिहास की सर्वमुखी धाराओं के अगणित चित्रों की आशा न करके कुछ ही, और वह भी रेखा-चित्रों की ही आशा करनी चाहिए। पुस्तक जेल में लिखी गई थी, और यह परिस्थिति ग्रन्थ की रचना के लिए आवश्यक सामग्री प्राप्त करने में बाधक हुई है।

गुजरात-प्रान्त पर उसके भूगोल का क्या प्रभाव पड़ा, राजनैतिक शक्तियों ने उसके सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन पर क्या प्रभाव डाला, इन सभी विषयों का जो किसी भी साहित्य के इतिहास के लिए परमावश्यक हैं, इस ग्रन्थ में बड़े ही अच्छे ढंग से विवेचन किया गया है।

लेखक महोदय पाश्चात्य साहित्य के पूर्ण वेत्ता हैं, इसलिए वे भारतीय साहित्य के साथ क्या, विश्व-साहित्य के साथ गुजराती-साहित्य की स्वगत तुलना करते हुए उसके महत्त्व को समझाने में पूरी तरह सफल हुए हैं। प्रधान साहित्यकारों के शब्द-चित्रों के कारण पुस्तक की उपयोगिता और सुन्दरता और भी बढ़ गई है। लेखक महोदय स्वयं एक प्रसिद्ध साहित्यिक हैं। अपने विषय में लिखने की दिक़्क़त उन्हें अवश्य ही पेश आई होगी, जैसा कि स्वाभाविक भी है। वह स्थल डाक्टर तारापुरवाला की सुयोग्य और सुचारु लेखनी के द्वारा लिखा गया है। गुजरात के सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन और उसके साहित्य पर महात्मा गांधी का कितना महत्त्व-पूर्ण प्रभाव हुआ है, इन बातों का भी विवेचन लेखक महोदय ने यथास्थान सफलता के साथ किया है। प्राचीन और अर्वाचीन गुजराती-साहित्य की विभिन्न धाराओं ने किस प्रकार उस प्रान्त और समस्त भारत के सांस्कृतिक भाण्डार को भर दिया है और आज भी वे किस गति-विधि से बह रही हैं, इन सब महत्त्वपूर्ण विषयों को जानने के लिए यह ग्रन्थ बड़े काम का है। सौभाग्य की बात हो यदि भारत के प्रत्येक प्रमुख साहित्य के इस प्रकार इतिहास लिखे जायँ। कम से कम राष्ट्रभाषा हिन्दी के विद्वानों का ध्यान इधर अवश्य जाना चाहिए। ऐसे ग्रन्थों के लिखे जाने से भारतीय वाङ्मय और विश्व-साहित्य में हिन्दी का जो महत्त्वपूर्ण या अमहत्त्वपूर्ण स्थान है, शीघ्र ही निर्दिष्ट हो सकेगा और हम हिन्दी-भाषा-

भाषी—जैसा पंडित जवाहरलाल नेहरू भारतीय राजनीति के सम्बन्ध में कहते हैं—अपने साहित्य को विश्वसाहित्य के 'पर्सपेक्टिव' में रखकर उस पर ठीक ठीक विचार कर सकेंगे।

जैसे बंगाली विद्यापति को अपना कहते हैं, वैसे ही गुजराती मीरा को, किन्तु इन दोनों बातों से मध्यकालीन भारतीय साहित्य और संस्कृति में व्रज और उसकी भाषा तथा साहित्य का जो महत्त्वपूर्ण स्थान प्रतिपादित होता है वह सभी को विदित है। यदि इस ग्रन्थ में भी इस विषय पर 'आवश्यक प्रकाश' डाला जाता तो ज़्यादा अच्छा होता।

अनेक सुन्दर और आवश्यक चित्र और मानचित्र होने से पुस्तक की शोभा और उपादेयता कई गुना बढ़ गई है, पुस्तक की छपाई और सफ़ाई की तारीफ़ में कुछ भी कहना अनावश्यक है।

—नगेन्द्र

२—**हिन्दी-शब्द-संग्रह**—सम्पादक श्री मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव और श्री राजवल्लभसहाय, प्रकाशक, काशी-विद्यापीठ, बनारस कैंट। पृष्ठ-संख्या ६८२। मूल्य सजिल्द का ४) और अजिल्द का ३॥) है।

यह हिन्दी का एक कोष है और यह इसका द्वितीय संस्करण है। सम्पादकों ने अपने वक्तव्य में लिखा है कि इसे उन्होंने पहले से भी अधिक उपयोगी बनाने की चेष्टा की है। लगभग साढ़े पाँच हज़ार शब्द इसमें और बढ़ाये गये हैं। कुल शब्दों की संख्या ४१,६७३ है। अधिकांश शब्दों के अर्थ के साथ उनके प्रयोग के भी उदाहरण प्राचीन या नवीन ग्रन्थों से दिये गये हैं। इससे यह कोष और भी उपयोगी हो गया है। ऐसा सुन्दर शब्दकोष तैयार करने के लिए इसके सम्पादक और प्रकाशक बधाई के पात्र हैं।

३—**रेणुका—(काव्य)**—लेखक, श्रीयुत दिनकर, पुस्तक-भण्डार लहेरिया सराय, दरभंगा हैं। पृष्ठ-संख्या १०३, मूल्य साधारण तथा राजसंस्करणों का क्रमशः २॥) तथा ३) है।

'रेणुका' में कविवर दिनकर जी की छब्बीस कविताओं का संग्रह है। पुस्तक की भूमिका में श्रीयुत माखनलाल चतुर्वेदी ने कवि की कृति तथा कला का संक्षिप्त किन्तु मार्मिक विवेचन किया है। रेणुका की कवितायें अपने काव्योचित गुणों के कारण सहृदयों का समुचित आदर प्राप्त करेंगी, यह हम भी निःसंकोच होकर कह सकते हैं। श्रीयुत दिनकर जी की ये कवितायें उनकी स्वाभाविक प्रतिभा, कला की प्रौढ़ता तथा उनकी सुकुमार भावुकता की छाप से अंकित हैं। कवि की हृदय-तंत्री से भारत के भव्य अतीत के गौरव-गीत प्रतिपद पर झंकृत होकर हमारे इस युग के दीनतापूर्ण इतिहास की गम्भीर वेदना को करुण तथा मर्म-स्पर्शी भाषा में अभिव्यक्त कर रहे हैं। भूमिका-लेखक के शब्दों में "'दिनकर' से इतिहास अपनी सम्पूर्ण वेदनाओं को लेकर बोलता है।" भाव, भाषा तथा रस तीनों ही दृष्टियों से ये कवितायें उत्कृष्ट हैं, किन्तु करुण-रस कवि का अपना सर्वस्व है। कहीं कहीं छन्दोभङ्ग, यतिभङ्ग आदि की दो-चार त्रुटियाँ भी रह गई हैं।

करुण-रस कवि को कितना और क्यों प्रिय है, इसको उनकी 'उत्तर में' नामक कविता की इन पंक्तियों में देखिए—

तुम कहते—तेरी कविता में,
कहीं प्रेम का स्थान नहीं।
आँखों के आँसू मिलते हैं,
अधरों की मुस्कान नहीं॥

किन्तु कवि इसका उत्तर यों देता है—

जीवन ही है एक कहानी,
घृणा और अपमानों की।
नीरस मत कहना समाधि,
है हृदय-भग्न अरमानों की॥

और भी—

हँस न सका तो क्या? रोने में,
भी तो है आनन्द यहाँ।
कुछ पगलों के लिए मधुर है,
आँसू ही के छन्द यहाँ॥

इन कविताओं में कवि का अपना व्यक्तित्व और वैशिष्ट्य स्पष्टता से अंकित है तथा गम्भीर से गम्भीर भावों की अभिव्यंजना प्रसादपूर्ण शैली में हुई है। विश्व के वैभवों तथा सुखों की क्षणभंगुरता की ओर बार बार कवि का ध्यान जाता है, तो भी वसुन्धरा-माता का सौन्दर्य और सुख उसकी कवि-दृष्टि से ओझल होकर उसके काव्य को एकपक्षीय नहीं बनाता। जहाँ कवि एक ओर विश्व में अमरत्व न पाकर कहता है कि—

जगती में मादकता देखी, लेकिन अक्षय तत्त्व नहीं।
आकर्षण में तृप्ति और सुन्दरता में अमरत्व नहीं॥

अथवा—

रोते जग की अनित्यता पर, सभी विश्व को छोड़ चले।
कुछ तो चढ़े चिता के रथ पर, कुछ क़ब्रों की ओर चले॥

अतएव—

मैं न कहूँगा इस भूतल पर,
जीवन, यौवन, प्रेम गँवाकर।
वायु उड़ाकर ले चल मुझको,
जहाँ-कहीं इस जग से बाहर॥

वहाँ 'विश्व-छवि' पर मुग्ध कवि कहता है—

किसी लोभ से इसे छोड़ दूँ, यह जग ऐसा स्थान नहीं।
और बात क्या? बहुधा मैं चाहता मुक्ति-वरदान नहीं॥
इच्छा है सौ-सौ जीवन पा इस भूतल पर आऊँ मैं।
वनी पत्तियों की हरियाली से अपने नयन जुड़ाऊँ मैं॥

'रेणुका' में ऐसी ही सुन्दर कवितायें हैं। सहृदय पाठकों को चाहिए कि 'रेणुका' के काव्य-कणों के सौन्दर्य, उनमें प्रवाहित होनेवाले रस तथा उनके हृदय-स्पर्शी करुण क्रन्दनों की गंभीर काकली का रसास्वादन करें। ग्रन्थ की छपाई, गेट-अप तथा भावपूर्ण चित्र सुन्दर हैं। इसके लिए कवि और प्रकाशक दोनों ही बधाई के पात्र हैं।

४ **हिन्दी में अर्थशास्त्र और राजनीति साहित्य**—लेखक, श्रीयुत दयाशंकर दुबे और श्री भगवानदास केला, प्रकाशक, भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन हैं। मूल्य ॥।) है।

हिन्दी में अर्थशास्त्र तथा राजनीति-शास्त्र पर प्रकाशित पुस्तकों का इस पुस्तक में वर्णनात्मक परिचय दिया गया है। लेखक महोदयों ने यथाशक्ति प्रयत्न किया है कि उक्त विषयों के सभी हिन्दी-ग्रन्थों का परिचय इसमें आ जाय। इस प्रकार इस ग्रन्थ में अर्थशास्त्र की १४१ तथा राजनीति की २११ पुस्तकों एवं ७३ ट्रैक्टों का संक्षिप्त वर्णन—लेखक, प्रकाशक तथा उनके प्रकाशित संस्करणों का हाल—दिया गया है। इस एक ग्रन्थ से हमें अपने साहित्य में अर्थशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र के क्षेत्र में [illegible] प्रयत्नों तथा उनके ग्रन्थों की लोकप्रियता का दर्पणवत् चित्र देखने को मिलता है। हिन्दी-साहित्य के अन्य अंगों पर भी यदि इसी प्रकार वर्णनात्मक सूची-ग्रन्थ तैयार किये जायँ तो बड़ा उत्तम हो। लेखक महोदयों ने इसमें मार्ग-दर्शक का काम किया है। पुस्तक अर्थशास्त्र तथा राज[...] शास्त्र से रुचि रखनेवाले सज्जनों तथा हिन्दी-पुस्त[...] के लिए विशेष उपयोगी है।

५—**आर्यसमाज किस ओर?**—लेखक, श्री [...] हैं। पृष्ठ-संख्या, १६० और मूल्य १) है। पता—स[...] सरस्वती-सदन, मसूरी (संयुक्त-प्रान्त)।

लेखक ने इस पुस्तक को लिखकर आर्य-सम[...] ध्यान उसकी उन त्रुटियों और दोषों की ओर आ[...] किया है जिनके कारण उसका बल क्रमशः क्षीण [...] वह केवल एक साम्प्रदायिक संस्था में परिणत हो गय[...] आर्य-समाज के वैयक्तिक और सामूहिक जीवन क[...] निर्बलताओं को देखकर आर्य-धर्म के प्रेम से परिपूर्ण [...] के हृदय ने खरे खरे शब्दों में, यथासमय, आर्य-[...] के सम्मुख उसके प्राणहारी रोगों तथा उनके दूर कर[...] उपायों का वर्णन करके आर्यसमाजियों का सच्चा [...] किया है। पुस्तक की प्रस्तावना श्रीयुत सत्यदेव विद्या[...] ने लिखी है और इसमें उन्होंने समाज का राजनी[...] मार्ग से मुँह मोड़ने तथा आचार-प्रधानता से [...] प्रचार-प्रधानता की ओर झुकने की प्रवृत्ति का [...] विवेचन किया है। पुस्तक की भाषा ओजस्विनी, [...] समालोचना कटु होते हुए भी सत्य है। आर्य-समा[...] हितैषियों तथा अनुरागियों को इस पुस्तक का शान्त [...] निष्पक्ष भाव से मनन करना चाहिए। नीतिकार ने "[...] वस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः" कहकर एक [...] सच्ची बात कही है। यदि आर्य-समाज की मोह-निद्रा [...] अप्रिय किन्तु पथ्य वचनों के कशाघातों से टूट जा[...] निःसन्देह लेखक का प्रयत्न सफल और समाज का भ[...] उज्ज्वल होगा।

६—**लाला देवराज जी**—लेखक, श्रीयुत स[...] विद्यालङ्कार हैं। मूल्य ।<) है। पता—संचालक, सरस्[...] सदन, मंसूरी, (यू० पी०)।

[illegible] के आर्य-कन्या-महाविद्यालय के प्र[...] श्रीयुत लाला देवराज जी का यह संक्षिप्त जीवन[...] है। लाला जी स्वयं एक कर्मशील संस्था-स्वरू[...] विरुद्ध परिस्थितियों से निराश होना वे जानते [...] थे। स्त्रियों की शिक्षा जिस समय पञ्जाब में अनी[...] निन्दनीय कर्म समझी जाती थी उस समय लाल[...]

ने इस पुण्य कार्य का प्रारम्भ किया था। जिन कठिनाइयों में उन्होंने अपने अदम्य उत्साह से जनता के विरोध और आर्थिक विघ्न-बाधाओं पर विजय पाई और अन्त में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की उस सबका संक्षिप्त वर्णन इस पुस्तक में दिया गया है। लाला जी के व्यक्तित्व तथा उनकी साहित्यिक और सामाजिक सेवाओं का चित्रण इसमें सरल भाषा में किया गया है और अनेक गण्यमान्य व्यक्तियों की कन्या-महाविद्यालय पर दी गई सम्मतियों का भी उल्लेख है। लाला जी और उनके कार्यों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करने के लिए यह एक उपयोगी पुस्तक है।

७-१२ कबीर-धर्मवर्द्धक-कार्यालय, सीयाबाग़, बड़ौदा की छः पुस्तकें

(१) **कबीर साहब का साखी ग्रन्थ**—संग्रहकर्ता, श्रीमान् महन्त बालकदासजी साहब हैं। पृष्ठ-संख्या-६७+४४७+१६८ और मूल्य ३) है।

कबीरदास की साखियों का परिचय हिन्दी भाषा-भाषी जनता को देने की आवश्यकता नहीं है। लगभग ८५ शीर्षकों में महाकवि की साखियों का इसमें सङ्कलन किया गया है। यह ग्रन्थ लोक-परलोकोपयोगी नाना तत्त्वों का विशद विवेचन करनेवाला है और साहित्यज्ञों और सन्तों का प्रिय-ग्रन्थ है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में सात खण्डों में विभक्त अवतरणिका है, जिसमें सन्त कबीर के पारिवारिक तथा अलौकिक घटनाओं का युक्ति-प्रौढ़ विवेचन किया गया है। प्रारम्भ में प्रकाशक महोदय ने 'साखी' शब्द के अर्थ का निर्णय किया है। साखियों के कठिन पदों और स्थलों पर महन्त विचारदास जी ने विरल टिप्पणियाँ लिखी हैं, जिनसे पाठकों को अर्थ समझने में पर्याप्त सहायता मिल सकती है। पुस्तक के अन्त में वर्णक्रम से साखियों की १६८ पृष्ठव्यापी अनुक्रमणिका दे देने से पाठक सरलता से साखियों को ढूँढ़ सकते हैं। पुस्तक की छपाई शुद्ध तथा सुन्दर है। कबीरपन्थियों तथा हिन्दी-साहित्यज्ञों को इसका संग्रह करना चाहिए।

(२) **पवनस्वरोदय**—लेखक, श्रीयुत मोतीदास हैं। पृष्ठ-संख्या १५ और मूल्य ~)॥ है।

यह पुस्तक स्वरोदयशास्त्र-सम्बन्धी है। अनेक ग्रन्थों के मतों तथा कबीर-मत के सिद्धान्तों का अध्ययन करके इस पुस्तक की रचना दोहों में की गई है। श्वास की गति के आधार पर शकुन, फल-विचार, मृत्यु-समय-निरूपण आदि विषयों का इसमें वर्णन किया गया है। कहीं कहीं दोहों में छन्दोभङ्ग है। परन्तु विषय का विवेचन स्पष्ट तथा भाषा सरल है। स्वरोदयशास्त्र के प्रेमी इससे लाभ उठा सकते हैं।

(३) **दुर्लभयोग**—इस छोटी-सी पुस्तक में कबीर साहब के दुर्लभयोग, तत्त्वस्वरोदय तथा तीसा जंत्र नामक ट्रैक्ट सम्मिलित हैं। दुर्लभयोग में अनहदनाद तथा ज्योति-निरञ्जन के दर्शन का वर्णन है और सद्गुरु से 'सत्-नाम' सीखने का उपदेश है। अन्त में साधु-संगति, गुरु, ज्ञान-धन, धैर्य, धर्म, संतोष और सत्यनाम का स्मरण और भजन ही मोक्ष के उपाय बतलाये गये हैं। 'तत्त्वस्वरोदय' में चन्द्र और सूर्य नाड़ियों में स्वर (श्वास) के द्वारा फला-देश, कालादि के विचार का वर्णन है। पञ्चतत्त्व के साधन के मन्त्र और जप-संख्या दी गई है तथा उनसे भिन्न भिन्न कार्य सिद्ध होना बतलाया गया है। स्वास्थ्य तथा गर्भ-धारण-सम्बन्धी अनेक बातों का वर्णन भी इसमें किया गया है, जिनके वैज्ञानिक विवेचन की आवश्यकता है। तीसरी पुस्तक में नैतिक उपदेशप्रद सुन्दर पदों का संग्रह है। दो उदाहरण देखिए—

त्याग जु ऐसा कीजिए, सब कुछ एकै बार।
सब प्रभु का मेरा नहीं, निश्चय किया विचार॥
मन ठहरा तब जानिए, अन-सुझ सभी सुझाय।
ज्यों अँधियारे भवन में, दीपक बारि दिखाय॥

इस पुस्तक का मूल्य ~)॥ है।

(४) **ज्ञानस्वरोदय**—कबीर साहब की यह छोटी-सी पुस्तक भी स्वरोदयशास्त्र से सम्बन्ध रखती है। इसमें अजपा जाप सोहं की साधना तथा पञ्चतत्त्व की साधना के द्वारा आत्म-साक्षात्कार का वर्णन भी है। चन्द्र अथवा सूर्य नाड़ियों में श्वास की गति के द्वारा प्रश्नों का फलाफल तथा पञ्चतत्त्वों के आधार पर वर्षफल-निर्णय की विधि, गर्भ-परीक्षा, संग्रामपरीक्षा आदि अनेक उपयोगी विषयों का इसमें वर्णन है। साधक और स्वरोदय-शास्त्र-रसिकों के लिए यह उपयोगी है। इस ३२ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य =)॥ है।

(५) **सदुपदेश मणिमाला**—लेखक, श्रीमहन्त शम्भु-दास जी इन्दौरी हैं।

इस पुस्तक में कबीर-पन्थ के अनुसार शुद्ध आचरण, सत्य, अहिंसा आदि सद्गुणों का धारण, परा-विद्या की श्रेष्ठता और आत्म-दर्शन के लिए शिष्य होने की आवश्यकता आदि विषयों पर कबीर साहब की शैली में दोहों में सदुपदेश किया गया है। पुस्तक ट्रैक्ट रूप में बाँटने के लिए विशेष उपयोगी है। मूल्य)॥ है।

(६) **गुरुमहिमा तथा बृहत-लघुपूनो प्रकाश**—इसमें १ गुरुमहिमा, २ बृहत् तथा लघुपूनो प्रकाश, ३ बरसाइत-माहात्म्य तथा ४ सदुपदेश-मणिमाला नामक छोटे छोटे चार ट्रैक्ट एक साथ प्रकाशित किये गये हैं। ये पुस्तकें कबीरपन्थियों के काम की हैं। कविता की दृष्टि से इनमें कबीर की भाषा तथा शैली का अनुकरण है और स्थान स्थान पर दोहा-छन्द का भी ठीक निर्वाह नहीं हुआ है किन्तु वक्तव्य समझने में कोई कठिनता नहीं होती। इसका मूल्य ।=) है।

१३—**तरङ्गिणी की कुछ तरंगें**—लेखक, श्रीयुत किशोरीदास जी वाजपेयी कनखल, हरिद्वार हैं।

सम्मेलन की रजतजयन्ती के उपलक्ष में मित्रों को भेंटरूप में यह पुस्तक लेखक ने समर्पित की है। इसमें व्रज-भाषा में विभिन्न विषयों पर दोहे कहे गये हैं। ये दोहे सुन्दर, सरस तथा ध्वनिप्रधान हैं और शब्द तथा अलङ्कारों से अलंकृत हैं। इनमें शैली के विचार से विहारी की कला का आभास मिलता है। लेखक का वर्णन-क्षेत्र खूब विस्तृत है और उक्तियाँ चमत्कार-पूर्ण तथा मार्मिक हैं। जहाँ-तहाँ कुछ दोहे कला की दृष्टि से साधारण कोटि के भी हैं। आशा है, सहृदय पाठक 'तरंगिणी' के प्रसादपूर्ण सरस प्रवाह का आनन्द लेंगे। हिन्दी में अपने ढङ्ग की यह एक उत्तम रचना होगी। पाठकों के विनोदार्थ इसके दो-एक पद्य नीचे दिये जाते हैं।

को जाने अम्बेडकर, माँगत सुविधा कौन।
साँस लेन जब देत हम, बन्द करत नहिं पौन॥
दिल्ली! लखे अनन्त हैं, राजनीति के खेल।
कहुँ साँची केते मिले तोकौं वीर पटेल॥

१४—**यज्ञे पशुवधो वेदविरुद्धः**—संपादक तथा प्रकाशक श्री नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ हैं।

गत वर्ष कलकत्ते के कालीघाट के कालीमन्दिर में पशुओं की बलिदानप्रथा के विरुद्ध जयपुर-निवासी पंडित रामचन्द्र शर्मा ने सत्याग्रह किया था। उस समय पशु-बलि के समर्थक तथा विरोधी विचार रखनेवालों में एक ख़ासा आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था। इस पुस्तक में शास्त्री जी ने प्रमाणों तथा प्रौढ़ युक्तियों से पशु-बध को वेद-विरुद्ध सिद्ध किया है। पशुओं के दूध, घृत आदि से यज्ञ करना बतला कर उनके मांस इत्यादि के वैदिक विधान को 'प्रक्षिप्त' बतलाया है। अजा, वपा आदि पदों के प्रसिद्ध अर्थों को छोड़कर यौगिक (निरुक्ति-सिद्ध) अर्थों- द्वारा उनके अर्थ भिन्न किये गये हैं। शास्त्री जी ने ब्राह्मणग्रन्थों को वेद नहीं माना है। आर्यसामाजिक सिद्धान्तों के अनुसार केवल संहिताभाग को वेद स्वीकार किया है और उनके प्रमाणों-द्वारा ही हिंसा और पशु-बध को वेद-विरुद्ध सिद्ध किया है। पुस्तक लेखक से, महाविद्यालय, ज्वालापुर (यू० पी०) के पते से, बिना मूल्य मिल सकती है।

१५—**जैमिनी-दर्शन**—लेखक, श्रीयुत गुप्तनाथसिंह, बी० ए० हैं। पृष्ठ-संख्या १२१ है। पता—साहित्यमन्दिर, भभुआ (बिहार) है। मूल्य नहीं लिखा।

भ्रान्ति-भंजन-ग्रन्थमाला की यह पहली पुस्तक है। इसमें आर्य- मिशनरी श्रीयुत महता जैमिन का परिचय दिया गया है और यह बतलाया गया है कि वे आत्म-विज्ञापन-कला में कितना निपुण हैं। लेखक ने इसे प्रवासी-प्रचारकों को अपने गम्भीर उत्तरदायित्व को सोचने तथा प्रवासी भाइयों को सतर्क करने के उद्देश से लिखा है। पुस्तक की भाषा व्यङ्ग्यपूर्ण तथा चटपटी है। इसमें आर्यमिशनरी जी के ग्रन्थों से मनोरञ्जक उद्धरण संकलित किये गये हैं, जो ऐसे क्रम से सजाये गये हैं कि पाठकों को इस पुस्तक के पढ़ने में एक उपन्यास का-सा आनन्द आता है। इस रचना के द्वारा लेखक ने यह भी बताया है कि धर्मप्रचार और देश-सेवा के नाम पर वित्तैषणा और यशो-लिप्सा की कुप्रवृत्तियाँ मनुष्य को क्या बना देती हैं और ऐसे व्यक्ति, श्रद्धालु प्रवासी भारत-वासियों की श्रद्धा तथा अज्ञान से कैसे लाभ उठाते हैं।

१६—**मूर्तिपूजा की आवश्यकता**—लेखक, पंडित के० भुजबली शास्त्री, प्रकाशक, जैन-युवक मण्डल, धामपुर (बिजनौर) हैं। मूल्य ~) है। फ़ी सैकड़ा ५) है।

इस छोटे से ट्रैक्ट में मूर्तिपूजा पर किये जानेवाले आक्षेपों का उत्तर तथा अन्य सम्प्रदायों में किसी न किसी

रूप में मूर्त्ति-पूजा दिखलाकर, मन की एकाग्रता तथा मानसिक शुद्धि के लिए इसका उपयोगी होना सिद्ध किया गया है। भगवान् की मूर्त्ति के कारण गृह में भूत, प्रेतादि की बाधाओं की निवृत्ति भी बतलाई गई है। ट्रैक्ट रूप में बाँटने के उद्देश से ही यह पुस्तक लिखी गई है और उस दृष्टि से उपयोगी भी है।

कैलासचन्द्र शास्त्री, एम० ए०

१७—**कल्पी**—लेखक व प्रकाशक, श्री भगवती-प्रसाद 'पान्थरी' टेहरी, गढ़वाल हैं। पृष्ठ-संख्या ८३ और मूल्य ॥=) है।

इस नाटक के पुरुष पात्रों में महाराज रघुनाथसिंह (तंजोर के राजा), उनके मंत्री दीक्षित और रत्ना, विदूषक, भिखारी और कृष्ण प्पा आदि तथा स्त्री-पात्रों में महारानी काल्पी, इला और विलासिनी नाम की एक दुष्ट स्त्री है। महाराज के शत्रु सोलागा के राजा विलासिनी को अपनी बेटी के रूप में महाराजा के वध के लिए सिखा-पढ़ाकर भेजते हैं। इसके प्रभाव से राजा अपनी साध्वी रानी काल्पी को व्यभिचारिणी समझकर उसे त्याग देते हैं। विलासिनी उनको विष देने का प्रबन्ध करती है। विदूषक-द्वारा राजा को यह हाल मालूम हो जाता है और विलासिनी की उसी विष से मृत्यु होती है। राजा को काल्पी बड़े विलाप के बाद मिलती है और नाटक सुखान्त समाप्त हो जाता है।

इस नाटक में तीन अंक हैं। प्रथम कुछ बड़ा है, द्वितीय उससे छोटा है, पर तृतीय सबसे बड़ा है। यह नाटक खेलने में रोचक सिद्ध हो सकता है। इसमें कोई ऐसी भद्दी बात नहीं आने पाई है जो स्त्री-पुरुषों के सामने दिखाई न जा सके। इसमें काल्पी का चरित एक आदर्श सती के रूप में चित्रित किया गया है। इला का चरित भी आज-कल की स्त्रियों के लिए आदर्श ही है। नाटक की भाषा पात्रों के अनुकूल होते हुए भी मुहावरेदार और विशुद्ध है। यह नाटक स्त्रियों के लिए विशेषकर उपयोगी होगा।

१८—**साहित्य-सुषमा**—सम्पादक, श्रीयुत नन्ददुलारे वाजपेयी और श्रीयुत लक्ष्मीनारायण मिश्र, प्रकाशक, तरुण-भारत-ग्रंथावली-कार्यालय, दारागंज, प्रयाग हैं। पृष्ठ-संख्या १६८ और सजिल्द पुस्तक का मूल्य १॥) है।

यह एक निबन्ध-संग्रह है। इसमें हिन्दी-साहित्य के वर्तमान धुरंधर लेखकों के भिन्न भिन्न विषयों के १२ निबंधों का संग्रह किया गया है। बाबू श्यामसुन्दरदास का "काव्य साहित्य के उपकरण", श्री सुमित्रानन्दन पंत का "छन्द-साधना", श्री प्रेमचन्द्र जी का "उपन्यास", बाबू मैथिली-शरण जी गुप्त का "कल्पना और यथार्थ" आदि विषयों पर विद्वत्तापूर्ण लेख इसमें संकलित किये गये हैं। इसके अतिरिक्त हिन्दी के अन्य विद्वानों के भी निबन्ध संग्रह किये गये हैं। लेखों की भाषा विद्वत्तापूर्ण और उच्च कोटि की है, पर विषय की आवश्यकता के अनुसार उनमें कहीं गंभीरता और कहीं सरलता आती गई है। निबन्ध-गत भाव सुन्दर और हृदयग्राही हैं। गद्य-साहित्य के विद्यार्थी इससे बहुत कुछ सीख सकते हैं।

१९—**भारत का कहानी-साहित्य**—सम्पादक व संग्राहक, डाक्टर धनीराम प्रेम, प्रकाशक, रतन पब्लिशिंग हाउस, हिन्दू कालोनी, बम्बई नं० १४ हैं। पृष्ठ-संख्या १८४ और सजिल्द पुस्तक का मूल्य १॥) है।

इस पुस्तक में भारत की प्रान्तीय भाषाओं के कहानी-लेखकों की उत्तम कहानियों का संग्रह किया गया है। इसके पढ़ने से पाठकों को भारत के कहानी-साहित्य का परिचय मिल सकता है। हिन्दी की पाँच, बँगला की दो, मराठी की दो, गुजराती की दो, उर्दू की दो तथा कनाडी, तेलगू, तामिल और मलयालम की एक एक कहानी का संग्रह किया गया है। इसकी सभी कहानियाँ उत्तम और उच्च कोटि की हैं। अन्य भाषाओं की कहानियों के अनुवाद की भाषा सरल और स्पष्ट है। इसके पढ़ने से हमें इस बात का भी ज्ञान होता है कि कहानी-लेखन-कला में हिन्दी के कहानी-लेखक अन्य प्रान्तों से पीछे नहीं हैं। कहानी के प्रेमियों के लिए यह पुस्तक बड़े महत्त्व की है।

—गंगासिंह

जाग्रत नारियाँ



गृहलक्ष्मी

लेखिका—श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित

"क्या तुम यह जानना चाहोगे कि वास्तव में भद्रोचित क्या है? तब किसी भद्र महिला से पूछो।" इन शब्दों में गेटे ने स्त्री के मनुष्य को सभ्य बनाने के परम्परा-गत कर्तव्य को व्यक्त किया है।

भारत में स्त्री और जीवन में उसके कर्तव्य के सम्बन्ध में यही धारणा प्रचलित थी। स्त्री गृह की देवी—गृह-लक्ष्मी थी। उसका शुद्धाचरण सुख और समृद्धि-प्रदायक होता था और यदि वह अपने लिए निश्चित किये गये पथ से च्युत हो जाती थी तो केवल वही नहीं, उसका परिवार भी देवताओं का कोपभाजन होता था। जब वह होश सँभालती थी तभी से उसको यह शिक्षा मिलने लगती थी। इसलिए भारतीय स्त्री का अपने कर्तव्य का गम्भीरता-पूर्वक पालन करना और अपने तईं परिवार और विशेषकर पति की सेवा के लिए अर्पित कर देना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

उसे अपने जीवन में कोई स्वाधीनता नहीं थी। वह अपने पिता की, फिर अपने पति की सम्पत्ति होती थी और आगे चलकर वह अपने पुत्रों के प्रति इसी विनय और भक्ति का प्रदर्शन करती थी। समस्त उद्देशों और कार्यों में वह गुलाम थी। परन्तु यह गुलामी का मार्ग उसने स्वेच्छापूर्वक ग्रहण किया था। उसके चेहरे पर पीढ़ियों की सेवा का चिह्न अङ्कित है। वह सौंदर्य्ययुक्त, गौरव-मय और शान्तिपूर्ण है। परन्तु उसका सौन्दर्य्य और [illegible]भाव इस संसार से परे की वस्तु है। यह एक ऐसी संन्यासिनी की शान्ति है जो अपने मठ में बन्द यावज्जीवन अपने इष्टदेवता की सेवा में संतोषपूर्वक संलग्न रहती है।



[इस लेख की लेखिका, श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित]

परन्तु आज भारत में हम इस प्रकार का सन्तोष सौन्दर्य्य नहीं चाहते। हम असन्तोष चाहते हैं असन्तोष जो हमें स्वाधीनता—सामाजिक स्वाधीनता की ओर ले जाय। हम ऐसे नहीं चाहते जिनके चेहरों पर मृत्यु की श

अङ्कित हो। भारत स्वाधीन स्त्रियाँ चाहता है। स्त्रियाँ जो जीवित हैं और जिनके चेहरे ज्ञान और सफलता से प्रफुल्लित हैं। हम ऐसी वीर स्त्रियाँ चाहते हैं जो बहुसंख्यक कुरीतियों के बन्धनों को तोड़कर बाहर निकल पड़ें और इस दृढ़ भावना के साथ आगे बढ़ें कि इसी में देश का कल्याण है।

जिन स्त्रियों ने इन बातों पर अभी तक विचार नहीं किया है उन्हें अब करना पड़ेगा। वे अब वहाँ पहुँच गई हैं जहाँ दो मार्ग विभिन्न दिशाओं को जाते हैं। उनमें उन्हें अपना चुनाव करना ही होगा और भारत की भावी उन्नति उनके इसी चुनाव पर निर्भर है।

हमें चाहिए कि हम बाह्य बातों पर समय नष्ट न करके वास्तविकता की ओर ध्यान दें। हम अपने सम्मान को वास्तविक बनायें ताकि हम उसे अपने बच्चों को सौंप सकें और इस प्रकार अपनी अपेक्षा अधिक अच्छी पीढ़ी की सृष्टि कर सकें।

भारत को अपने उद्धार के लिए भगीरथ प्रयत्न करना है और जब तक प्रत्येक पुरुष और स्त्री उसकी सहायता के लिए आगे नहीं आता तब तक कोई सफलता नहीं प्राप्त हो सकती। भारत की स्त्रियों ने अपने परिवार के लिए जो कुछ उन्हें करना चाहिए, उससे कहीं अधिक किया है। अब उन्हें देश के लिए भी जो कुछ वे कर सकें करना चाहिए। हमारी स्त्रियाँ केवल गृहलक्ष्मी ही नहीं, देश-लक्ष्मी भी बनें और जो कुछ भी असुन्दर है उसका सामना करें। वे संसार को दिखा दें कि भारतीय स्त्री का सौंदर्य्य इस बात में है कि वे जो ठीक समझती हैं उसी को साहस के साथ करती हैं। और यह सच भी है, कि हमारी स्त्रियों का उपयुक्त कार्य्य में लग जाना ही हमें विजय प्रदान करायेगा।

क्या स्त्रियाँ युद्धाग्नि को भड़कावेंगी ?

युद्ध की तैयारियाँ हो रही हैं और जान की स्त्रियाँ युद्धाग्नि को और भड़का-

हुई और उसके युद्ध-विरोधी आन्दोलन में स्त्रियों ने प्रमुख रूप से भाग लिया तब योरप के बहुत-से विद्वानों ने यह अनुमान किया कि अब संसार में चिरशान्ति की स्थापना हुए बिना नहीं रह सकती। पर इस निर्णय पर पहुँचने के लिए वह समुचित समय न था। तब क्या पुरुष, क्या स्त्री सभी युद्ध से थक गये थे और विश्राम चाहते थे। अब उस विश्राम का अन्त ज्यों ज्यों निकट आ रहा है, स्त्रियाँ भी अपने युद्ध-विरोधी आन्दोलन से उदास होती जा रही हैं।



[कुमारी सरवर खा० मुगासेठ—आप एक पारसी महिला हैं और हाल में ही आक्सफ़ोर्ड-विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त करके लौटी हैं।]

शक्तिशाली इटली ने जब निर्बल अबीसीनिया पर चढ़ाई की तब इटली की नवयुवतियों ने अपने देश के सैनिकों को उसी मुस्कुराहट के साथ विदाई दी जिस मुस्कुराहट के साथ प्राचीन युद्ध-प्रिय जातियों में स्त्रियाँ अपने पुरुषों को युद्ध-क्षेत्र के लिए विदा किया करती थीं। एक भी इटालियन स्त्री ने नहीं कहा कि निर्बल पर इस प्रकार न चढ़ना चाहिए। फिर जब इटली के ये सैनिक विजयोन्मत्त होकर

को एक-दूसरे पर गिर गिर पड़ती थीं। कालेजों की अविवाहिता और सुशिक्षिता लड़कियों तक ने गैस के ज़ोर से जीतकर वापस आनेवाले इन सैनिकों का आलिङ्गन किया और अपने चुम्बनों की बौछार से उनकी युद्ध-क्षेत्र की सारी सलवटें और थकान बहा दीं। इसके पहले ये स्त्रियाँ युद्ध कोष में सहायता देने के लिए अपने विवाह की अँगूठियाँ गलवा चुकी थीं।

कौन कह सकता है कि इटली की स्त्रियाँ युद्ध के सम्बन्ध में इस प्रकार का मनोभाव न रखतीं तो वहाँ युद्ध की इतनी उत्तेजना फैलती? योरप के अन्य राष्ट्रों की स्त्रियाँ भी इटली की स्त्रियों की इस युद्ध-भावना का अनुकरण कर रही हैं। इँग्लेंड जो शान्ति की स्थापना और निरस्त्रीकरण में सबसे आगे था, आज फिर युद्ध की आशङ्का से त्रस्त हो उठा है और उसने तेज़ी से हथियार बनाने आरम्भ कर दिये हैं। कहना नहीं होगा कि यह तैयारी वहाँ की स्त्रियों की युद्ध-पुकार को शान्त करने के लिए ही आरम्भ हुई है। इँग्लेंड के जो बड़े बड़े नेता युद्ध से बचना चाहते हैं, स्त्रियों के वाक्‌बाणों के शिकार हो रहे हैं। फ्रांस और जर्मनी में भी कुछ ऐसी ही स्थिति पैदा हो रही है। रूस की स्त्रियाँ और भी आगे बढ़ गई हैं। वे पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा भिड़ाकर युद्ध-क्षेत्र में जाने को लालायित खड़ी हैं। अकेले मास्को नगर में आज ऐसी १,७५,००० रण-चंडियाँ तैयार बैठी हैं। इन सब बातों से यह स्पष्ट है कि योरप की स्त्रियों में एक प्रलयङ्कर युद्ध देखने की इच्छा फिर जाग उठी है और इस लहर से शेष संसार कदाचित् ही बच सकता है।



[श्रीमती राजकुमारी मिश्रा, 'रमा' जिनकी सुन्दर कविता नीचे दी गई है।]

मैं हूँ नहीं मधुमाधवी, नव मल्लिका-बकुलावली।
नव-नेह-नन्दन में पली, त्यों कल्पलतिका की कली॥
गुन गा रहे हो क्यों मधुप! मैं तो न मालति-फूल हूँ।
उजड़े हुए अनुराग के वर बाग़ की बस, धूल हूँ॥१॥

मैं हार हूँ न किसी गले का, त्यों हृदय-आधार हूँ।
जो सार है संसार का, वह भी न स्वर्गिक प्यार हूँ॥
मनुहार इतनी क्यों मधुप! मैं शूल हूँ, न कि फूल हूँ।
चुभती रहे जो आँख में, वह प्रेम-पथ की धूल हूँ॥२॥

कुछ इधर उधर की

मुसीबत आ पड़ने पर जो मनुष्य घबराता नहीं और बुद्धि से काम लेता है वह प्रायः उस मुसीबत से बच जाता है। इसका एक ताज़ा उदाहरण लीजिए। धरौंवा गाँव (पटना) के एक राजपूत ज़मींदार ने एक जङ्गली सूअर को मार डाला, क्योंकि वह उसका खेत ख़राब करता था। घायल सूअर पास की ही एक मस्जिद में घुस गया और मर गया। यह बात नमाज़ के लिए जमा हुए मुसलमानों को असह्य प्रतीत हुई। वे तुरन्त उस ज़मींदार को मस्जिद में पकड़ लाये और उसके आगे एक गाय करके कहा—"इसे भी क़त्ल करो, नहीं हम तुम्हारी जान ले लेंगे।" राजपूत पर धर्म-संकट आ उपस्थित हुआ, गाय मारे या अपनी जान दे। अन्त में उसने कहा—"मैं गाय मार सकता हूँ, पर राजपूत हूँ, इसलिए तलवार से मारूँगा।" मुसलमानों ने उसे तलवार लाकर दी। तलवार पाते ही वह मुसलमानों पर टूट पड़ा और उन्हें मारता-काटता, निकल भागा।

× × ×

प्रायः देखा गया है कि साँप आदि हिंसक जन्तु मनुष्य को देखते ही उस पर आक्रमण कर बैठते हैं। इसका कारण कदाचित् यह है कि वे मनुष्य से डरते हैं और अपने जी में सोचते हैं कि यदि वे मनुष्य पर हमला नहीं करेंगे तो वही उन पर हमला करेगा और उन्हें मार डालेगा। हिंसक जन्तुओं के दिल में यह भय दूर न हो तो वे मनुष्य पर आक्रमण कदापि न करें। यह हम उन घटनाओं के आधार पर कहते हैं जो ऐसे पशुओं को महात्माओं या छोटे बच्चों के निकट आने से हमें अपनी ओर आकृष्ट करती हैं। इसका एक ताज़ा उदाहरण गत १५ अगस्त का मुरादाबाद का है। सिविल लाइन्स में एक ६ महीने का बच्चा अपनी मा के पास सो रहा था। रात को वह लुढ़कता लुढ़कता बेले के एक पौधे के पास पहुँच गया। सुबह माता जागी तब देखा कि बच्चा सो रहा है और उस पर एक साँप फन काढ़े पहरा दे रहा है। लोगों ने साँप को हटाकर बच्चे को उठा लिया। उसे कोई हानि नहीं पहुँची थी।

× × ×



लाज गहो बेकाज कत, घेरि रहे घर जाहिं।
गोरस चाहत फिरत हौ, गोरस चाहत नाहिं॥

× × × ×

भादों की अष्टमी को आधी रात के घने अंधकार में वसुदेव ने नवजात श्रीकृष्ण को लेकर यमुना को पार किया था। कथा यह है कि श्रीकृष्ण का चरण-स्पर्श कर यमुना उथली हो गई थीं। यह कथा कृष्ण के भक्तों को आज भी आनन्द देती है। एक पत्रकार का अनुमान है कि इसी कथा से उत्साहित होकर गत अष्टमी के दिन दिल्ली की चार स्त्रियाँ आधी रात को यमुना नहाने गईं। स्नान किये बिना उनका व्रत पूरा नहीं हो सकता था। वे गहरे पानी में घुसती चली गईं। चमेली नाम की स्त्री आगे थी। वह यमुना की धारा में बह चली। उसे बचाने के लिए उसकी एक सहेली ने उसकी साड़ी पकड़ी। पर वह भी धारा में पड़ गई। तब शेष दो स्त्रियाँ सहायता के लिए आगे बढ़ीं और वे भी बह चलीं। इस प्रकार वे चारों यमुना में डूब गईं। सुबह नहानेवालों को घाट पर उनमें से दो लाशें मिलीं, दो का पता नहीं चला। उन स्त्रियों के लिए किसके हृदय में सहानुभूति न होगी।



ताहि देखि मन तीरथनि, विकटनि जाय बलाय।
जा मृगनैनी के सदा, बेनी परसत पाय॥

× × ×

× × × ×

हमारे देश में बेकारी बढ़ती जा रही है। कितने ही नवयुवक जो वकील, डाक्टर, व्यापारी, नेता और सैनिक हो सकते हैं, इसके शिकार होकर जीवन से निराश हो उठते हैं और आत्म-हत्या कर बैठते हैं। गत १३ अगस्त को लाहौर की पुलिस ने एक ऐसे ही नवयुवक पर मामला चलाया है। उसका अपराध यह है कि उसने भूख और ग़रीबी से तङ्ग आकर रावी के पुल से कूदकर आत्महत्या करने की चेष्टा की थी। ऐसी चेष्टा न करता तो धीरे धीरे घुल घुल कर मरता। पर वह स्वाभाविक मौत समझी जाती। भूखों की समस्या में व्यक्ति की नहीं, समूह और सरकार की समस्या है। इस ओर जितनी ही जल्दी ध्यान दिया जाय, उतना ही अच्छा।

× × × ×

पाश्चात्य देशों में यह क़ायदा है कि लोग पशुओं को जो अतिशय कष्ट से पीड़ित होते हैं, मार देते हैं ताकि उन्हें कष्ट से मुक्ति मिल जाय। ... वर्ष हुए महात्मा गांधी से भी एक बछड़े का कष्ट न देखा गया था और जब उन्हें यह निश्चय हो गया कि वह किसी प्रकार जीवित न रह सकेगा और कष्ट ही ... तब उन्होंने उसे इन्जेकशन दिला दिया ताकि उसे

शान्ति मिल जाय। मनुष्य अपने कुटुम्ब के लोगों को भी असाध्य रोग से ग्रस्त होने पर इसी प्रकार मार डालें या नहीं, यह प्रश्न क़ानून के पण्डितों और सरकारों के तय करने का है। यदि इसका क़ानून बनाकर लोगों को ऐसा करने का अधिकार दे दिया जाय तो बहुत-से लोग उसका दुरुपयोग भी कर सकते हैं। कदाचित् इसी लिए किसी देश में ऐसा क़ानून नहीं है। पर इधर लाहौर में लक्ष्मीनारायण नामक एक व्यक्ति ने अपनी स्त्री को तलवार से मार डाला है और पुलिस को आत्म-समर्पण करते हुए कहा है—"मेरी स्त्री पिछले ५ वर्षों से क्षय से पीड़ित थी। इधर उसका कष्ट बहुत बढ़ गया था। मुझसे देखा नहीं जाता था। इसलिए उसके कहने से मैंने उसे मार डाला। इसकी सूचना मैंने अपने ससुर को भी तार-द्वारा दे दी है।" भारतवर्ष की अदालतों के लिए यह अपने ढङ्ग का पहला मामला होगा। इस सम्बन्ध में जज के फ़ैसले की लोग उत्सुकता-पूर्वक प्रतीक्षा करेंगे।

× × × ×

बम्बई में कोलाबा-ज़िले में एक गाँव में काशीनाथ सखाराम पिलनकर नामक १२० वर्ष का एक बुड्ढा आदमी रहता है। इसके चार ब्याह हो चुके हैं। दूसरी स्त्री से इसके एक लड़की है, जिसकी उम्र इस समय ८० वर्ष है। इसकी चौथी स्त्री अभी जीवित है और ४० वर्ष की है। काशीनाथ अभी पूर्ण स्वस्थ है और दाँत से बादाम तोड़ सकता है। उसने कभी पान या तम्बाकू नहीं खाया और न शराब पी है। सिर्फ़ नमक से वह दाँत माँजता है। इसके इतने स्वस्थ और दीर्घजीवी होने के ये भी कारण हो सकते हैं। यदि स्वास्थ्य-विज्ञान के आचार्य ऐसे स्वस्थ और दीर्घजीवी व्यक्तियों की जीवन-चर्या का अध्ययन करें और उन कारणों का पता लगावें जिनसे इनका स्वास्थ्य इतने समय तक क़ायम रहा है तो जनसाधारण का बहुत उपकार हो सकता है, क्योंकि वे सहज ही स्वस्थ और दीर्घजीवी बनने का तरीक़ा सोच-समझ सकते हैं।

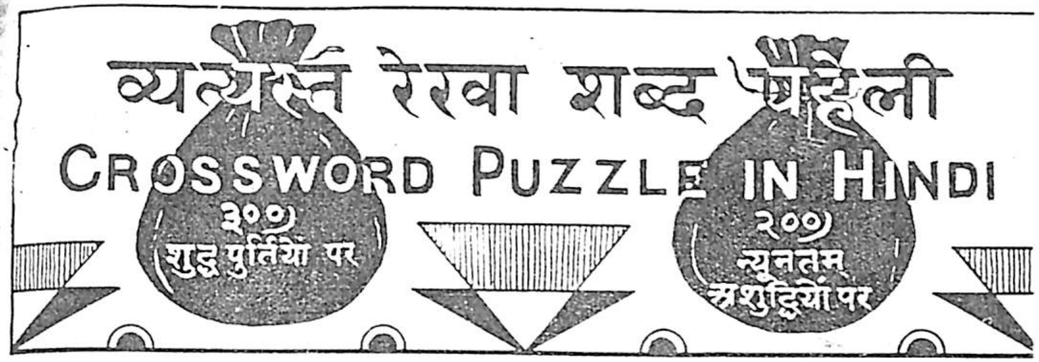
× × ×

कुछ समय हुआ सूर्य-ग्रहण के अवसर पर काशी से दो स्त्रियों के ग़ायब होने का सनसनी-पूर्ण समाचार प्रकाशित हुआ था। कहा यह गया था कि मुँगेर-ज़िले के कोई जयकृष्ण शुक्ल अपनी मा और पत्नी के साथ ग्रहण नहाने आये थे। स्टेशन पर एक पंडा उन्हें मिला और पंडे के घर जाने के लिए उन्होंने बग्घी की। इस बीच में मालूम हुआ कि उनका छाता स्टेशन पर रह गया है। अतएव उसे ढूँढ़ने वे स्टेशन के भीतर गये। वहाँ से जब लौटे तब देखा कि सास-पतोहू गाड़ी के साथ ग़ायब हैं। तत्काल उन्होंने पुलिस को ख़बर दी। सारा बनारस क्षुब्ध हो उठा। पुलिस ने सरगर्मी से जाँच की। पर कुछ पता न चला। लोग पंडों पर और पुलिस पर अपना रोष प्रकट कर ही रहे थे कि अब समाचार मिला है कि जयकृष्ण ने झूठी रिपोर्ट लिखाई थी। उसने अपना नाम भी ग़लत लिखाया था। उसकी स्त्री और मा घर पर मौजूद हैं। वे बनारस आई ही नहीं थीं। जयकृष्ण अब पुलिस की हिरासत में है और उस पर झूठी रिपोर्ट लिखाने का मुक़द्दमा चलाया जायगा। काशी की जनता और पुलिस को इस प्रकार परेशान करने में उसका क्या उद्देश था, यह भी एक रहस्य की बात है, जो शायद आगे खुले। पर काशी की पुलिस प्रशंसा के योग्य है, जिसने असलियत का पता लगाकर जनता की एक बड़ी चिन्ता और यात्रियों का एक बड़ा भय दूर कर दिया।

× × × ×

'सरस्वती' के इस अङ्क में भी हम श्री केदरनाथ शर्मा के बिहारी-सम्बन्धी दो व्यंग्य-चित्र इस स्तम्भ में प्रकाशित कर रहे हैं। उनका अर्थ स्पष्ट है।

व्यत्यस्त रेखा शब्द पहेली
CROSSWORD PUZZLE IN HINDI



नियम :—(१) आगे जो वर्ग दिया गया है उसकी सम्पूर्णतया शुद्ध पूर्ति होने पर ३००) का पारितोषिक दिया जायगा। वर्ग-पूर्तियाँ एक से अधिक शुद्ध होंगी तो उन पूर्ति करनेवालों में ३००) का पारितोषिक बराबर बराबर बाँट दिया जायगा। इसी प्रकार २००) का पारितोषिक उन पूर्ति करनेवालों में बाँटा जायगा जो न्यूनतम अशुद्धियाँ करेंगे। वर्ग-निर्माता ने वर्ग की शुद्ध-पूर्ति लिखकर एक लिफ़ाफ़े में बन्द कर दी है और उस पर मोहर लगाकर रख दी है। उनकी यह 'शुद्ध-पूर्ति' ही निर्णय का आधार होगी। उत्तर-स्वरूप में जो कोष्ठ-पूर्तियाँ इस शुद्ध-पूर्ति से अक्षरशः मिलती होंगी, वही सम्पूर्णतया शुद्ध मानी जायँगी।

(२) वर्ग के रिक्त कोष्ठों में ऐसे अक्षर लिखने चाहिए जिससे निर्दिष्ट शब्द बन जाय। उस निर्दिष्ट शब्द का संकेत अङ्क-परिचय में दिया गया है। प्रत्येक शब्द उस घर से आरम्भ होता है जिस पर कोई न कोई अङ्क लगा हुआ है और इस चिह्न (▓) के पहले समाप्त होता है। अङ्क-परिचय में ऊपर से नीचे और बायें से दाहनी ओर पढ़े जानेवाले शब्दों के अङ्क अलग अलग कर दिये गये हैं, जिनसे यह पता चलेगा कि कौन शब्द किस ओर को पढ़ा जायगा।

(३) प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगड़ कर या काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(४) इस प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए प्रत्येक वर्ग-पूर्ति के लिए ॥) फ़ीस देनी होगी, जो हर हालत में मनीआर्डर से आनी चाहिए। फ़ीस कार्यालय में नक़द भी जमा की जा सकती है। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति, [illegible] द्वारा अपनी अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं। मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग नम्बर २, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(५) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद नत्थी होकर आना अनिवार्य है। रसीद न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी। लिफ़ाफ़े की दूसरी ओर अर्थात् पीठ पर पूर्ति करनेवालों के नाम और पूर्ति-संख्या लिखनी आवश्यक है।

(६) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्ति-संख्यायें भेजनी चाहे, भेजे। किन्तु प्रत्येक वर्गपूर्ति सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए और उसकी नियत फ़ीस अर्थात् ॥) प्रति वर्गपूर्ति के हिसाब से भेजनी चाहिए। इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। वर्गपूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। इंडियन प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे।

(७) जो वर्ग-पूर्ति २० सितम्बर तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में नहीं शामिल की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २० ता० को तीन बजे तक और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता अशुद्धता को जाँच कर सकें।

(८) २ नम्बर वर्ग के समस्त शब्द 'संक्षिप्त हिन्दी-शब्दसागर' अथवा 'बाल-शब्दसागर' नाम के कोषों में मिल सकते हैं।

अङ्क-परिचय

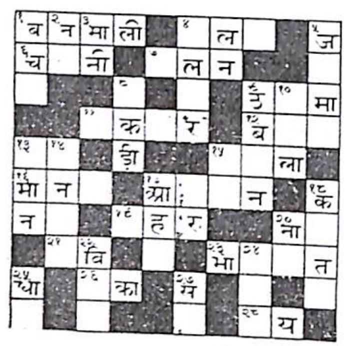
बायें से दाहिने

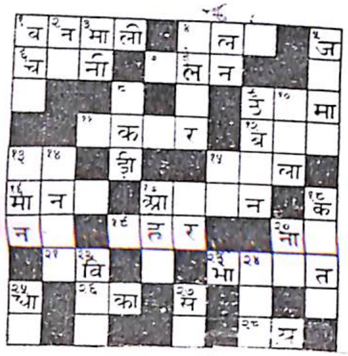
१—कृष्ण
४—इसकी उत्पत्ति जल से हुई है
६—भण्डार में प्राय: रक्खी हुई मिलती है
७—इसका प्रभाव मनुष्य के व्यवहार पर अवश्य पड़ता है
९—उदाहरण
११—भारतवर्ष के एक प्रसिद्ध राजा का नाम
१२—समीप स्थान
१३—यदि अब न होगा तो फिर सब कभी न होगा
१५—पतीला
१६—विचार-शक्ति इसका गुण है
१७—अबाई
१९—शास्त्र कहता है, इसकी उत्पत्ति समुद्र से हुई है
२०—स्त्री
२१—सूर्य
२३—बहुतेरे मनुष्य इस पुस्तक की पूजा भी करते हैं
२६—दो पैसे
२८—सत्य इसका आधार है

ऊपर से नीचे

१—जो व्यवसायी मनुष्य इस पर ध्यान नहीं रखते उन्हें पछताना अवश्य पड़ता है।
२—चौराहे या गलियों में इसकी प्रतीक्षा में प्राय: भीड़ लग जाती है
३—अभिमानी
४—इसका, पानी घर है
५—विजयी के कण्ठ में डालते हैं
८—पेट भरने में मदद देती है
९—इसे शरीर पर मलते हैं
१०—पागल
१३—सब मनुष्य वैयक्तिक रूप से ऐसे नहीं
१४—वन में फिरनेवाले
१७—ऐसा हो जाने से आराम किञ्चिन्मात्र भी नहीं मिलता
१८—इसको देखकर मनुष्य के जीवन का पता लगा लेते हैं
२०—तरनी
२२—रूख
२४—इसे छू नहीं सकते
२५—इसका जमना ही अच्छा
२७—सबके साथ ऐसा व्यवहार करना असम्भव है

नोट—रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा-रहित और पूर्ण हैं।

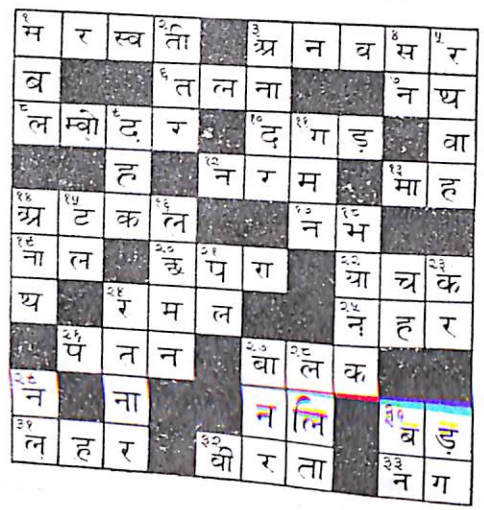




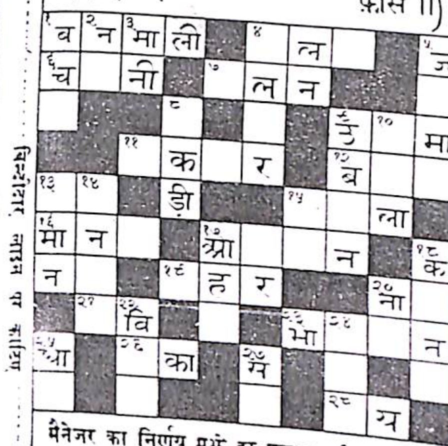
अपनी यादगाश्त के लिए वर्ग २ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ कर लीजिए। और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

वर्ग नं० १ की पूर्ति

इससे अपने उत्तर की जाँच कीजिए और पृष्ठ २९३ पर छपे फ़ार्म को भर कर भेजिए।



वर्ग नं० २ फ़ीस ।।)



मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा

पूरा नाम ....

पता ....

पूर्ति नं० ....

निशानदार लाइन पर काटिए

वर्ग नं० २ फ़ीस ।।)



मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा

पूरा नाम ....

पता ....

पूर्ति नं० ....

निशानदार लाइन पर काटिए

इनाम के लिए इसे भेजिए

वर्ग नं० १

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० १ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति

नं०.........में { कोई अशुद्धि नहीं है। / एक अशुद्धि है। / दो अशुद्धियाँ हैं। / तीन अशुद्धियाँ हैं।

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए।

हस्ताक्षर

पता

नोट—

(१) कृपया इस फ़ार्म की ख़ानापुरी करके १० सितम्बर तक अवश्य भेजिए। उसके बाद कोई शिकायत नहीं सुनी जायगी। तीसरी पंक्ति में आवश्यक वाक्य को रहने दीजिए। शेष काट दीजिए।

(२) हमारे पास इस फ़ार्म के पहुँचने के बाद सरस्वती का जो अङ्क छपेगा उसमें इनाम पानेवालों का नाम प्रकाशित होगा।

(३) नई पूर्तियाँ भेजनेवालों की सुविधा के लिए हम दो कूपन अन्यत्र और दे रहे हैं।

इसे काट कर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

मैनेजर वर्ग नं० २

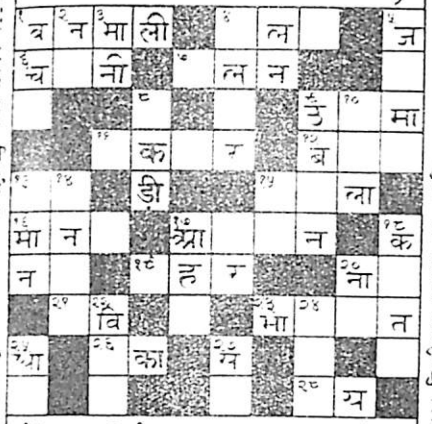
इंडियन प्रेस,

इलाहाबाद

५००) में दो पारितोषिक

इनमें से एक आप कैसे प्राप्त कर सकते हैं यह जानने के लिए पृष्ठ २९१ पर दिये गये नियमों को ध्यान से पढ़ लीजिए। आप के लिए दो और कूपन यहाँ दिये जा रहे हैं।

वर्ग नं० २ फ़ीस ।।)



चिन्हदार लाइन पर काटिए

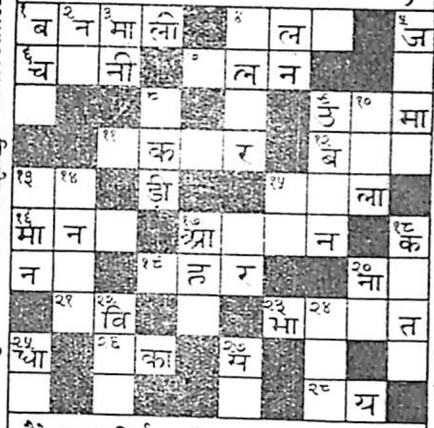
मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा

पूरा नाम ....

पता ....

पूर्ति नं० ....

वर्ग नं० २ फ़ीस ।।)



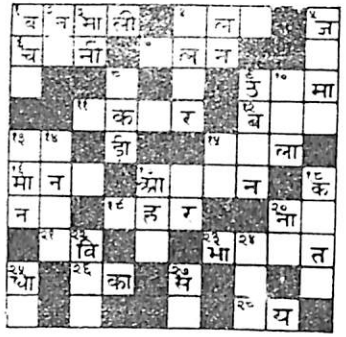
चिन्हदार लाइन पर काटिए

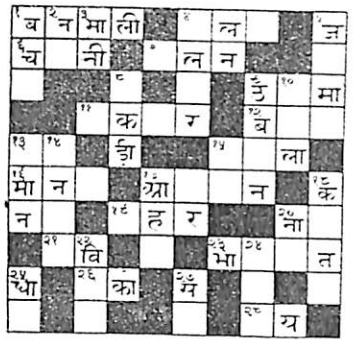
मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा

पूरा नाम ....

पता ....

पूर्ति नं० ....





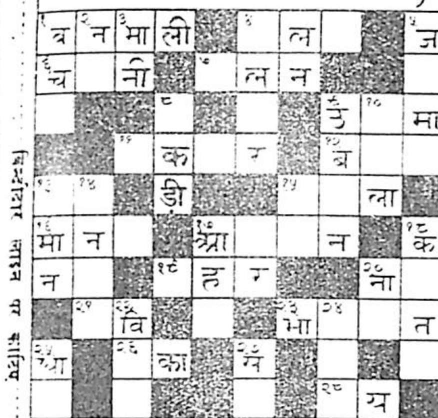
अपनी याददाश्त के लिए वर्ग २ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ कर लीजिए, और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

५००) में दो पारितोषिक

इनमें से एक आप कैसे प्राप्त कर सकते हैं यह जानने के लिए पृष्ठ २९१ पर दिये गये नियमों को ध्यान से पढ़ लीजिए। आप के लिए दो और कूपन यहाँ दिये जा रहे हैं।

चिन्हीदार लाइन पर काटिए

वर्ग नं० २ फ़ीस ।।)



मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा

पूरा नाम ....

पता ....

पूर्ति नं० ....

चिन्हीदार लाइन पर काटिए

वर्ग नं० २ फ़ीस ।।)

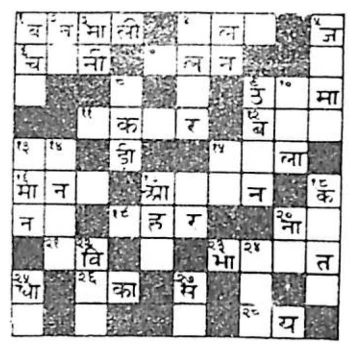


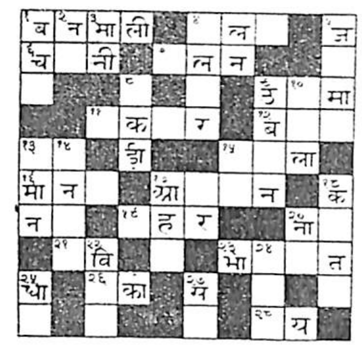
मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा

पूरा नाम ....

पता ....

पूर्ति नं० ....





अपनी याददाश्त के लिए वर्ग २ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ कर लीजिए, और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।



बम्बई के महिला-विश्वविद्यालय के कनवोकेशन के अवसर पर लिया गया एक चित्र। (बाईं से दाहनी ओर बैठे हुए लोग)—लेडी ठाकुरसी, सर मनुभाई मेहता, श्री एस० एस० पटकर, प्रोफ़ेसर करवे और लेडी मेहता। दीक्षान्त भाषण श्रीयुत मेहता ने किया था।

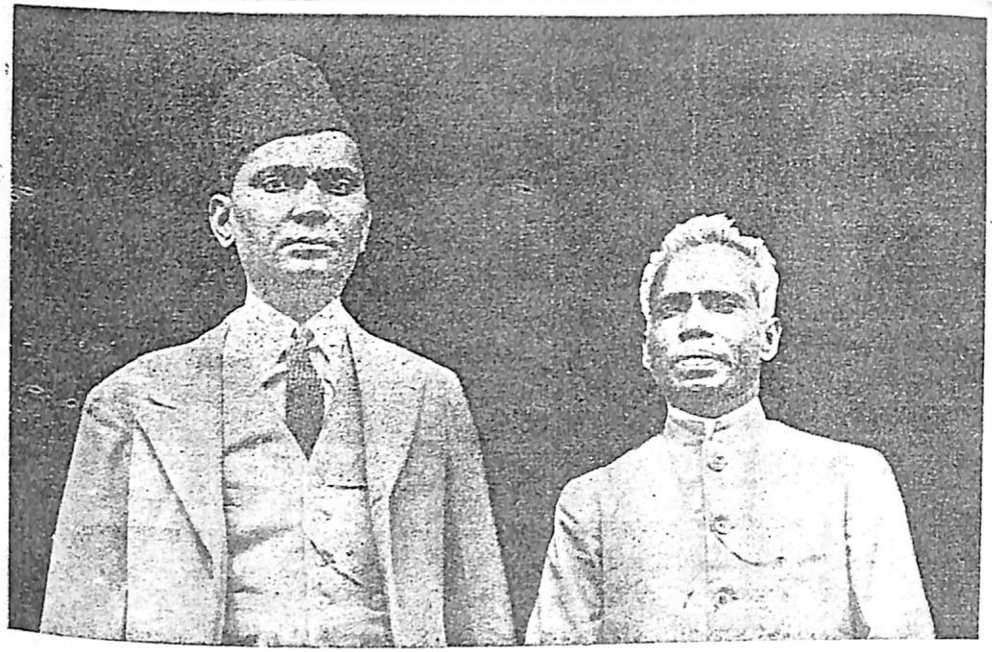


लन्दन ज़ू का एक चिंपांज़ी—दर्शकों के हाथ से अधिक फल खा जाने के कारण बीमार पड़ गया है। इसलिए उसे दवा खानी पड़ रही है।

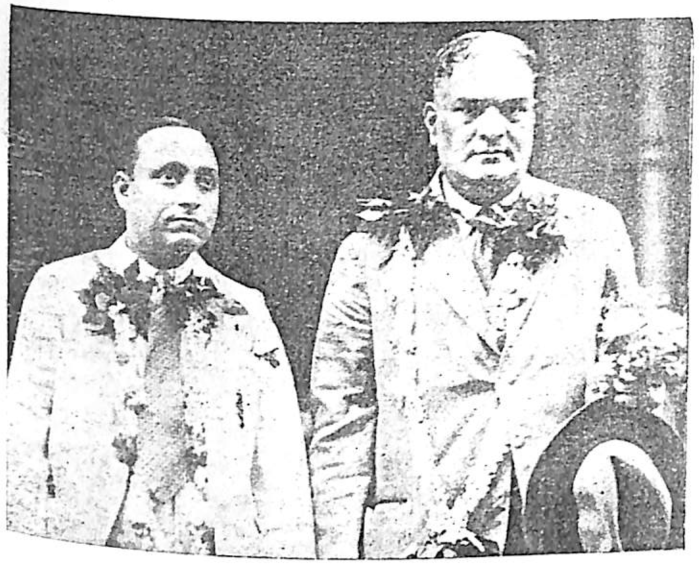
चित्र-
संग्रह



इंडिया कौंसिल
नये सदस्य
बहादुर ए०
मुदालियर—आप
स्त्री और बच्चों के
हाल में इँगलैंड गये हैं



श्रीयुत नेलयावठे चेट्टी और राव साहब फुलाई जेनेवा की मज़दूरों की अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ़रेंस में भाग लेने के बाद स्वदेश वापस आ गये हैं।



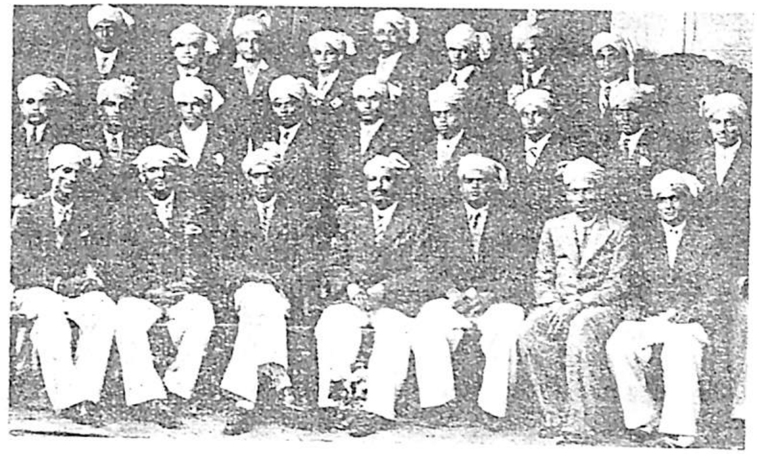
डाक्टर ए० एन० मुकर्जी (दाहनी ओर)—आप ग्लासगो (ब्रिटेन) में होनेवाली अन्तर्राष्ट्रीय होमियोपैथिक कान्फ़रेंस में भाग लेने गये हैं।



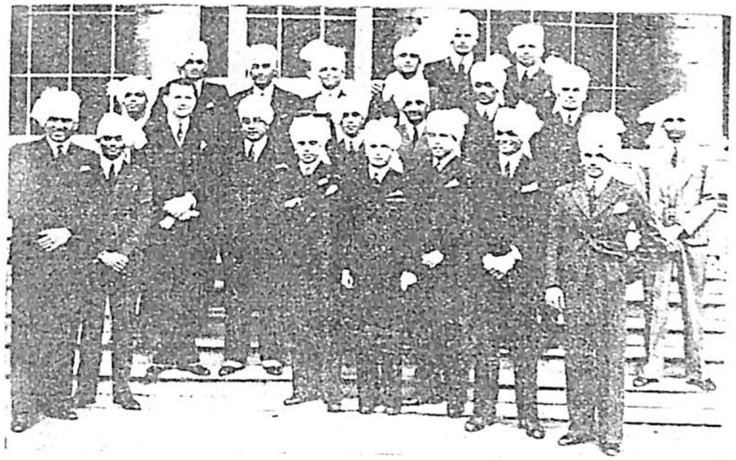
पोलो के प्रसिद्ध खिलाड़ी हिज़ हाइनेस महाराज जयपुर—आज-कल आप इँगलैंड में हैं।



अमरावती के रघुनाथराव जापान में धनुष चलाने की कला का प्रदर्शन करके भारत लौटे हैं।



बर्लिन के ओलम्पिक खेलों में भाग लेनेवाले भारतीय खिलाड़ी।



बकिंघम पैलेस में क्रिकेट के भारतीय खिलाड़ी जिनसे सम्राट् ने भेंट की।



बड़ौदा के दीवान सर वी० टी० कृष्णमाचारियर



लाहौर के डा० [illegible] मित्र, विलायत



सामयिक साहित्य

एक पिता को महात्मा गांधी का उपदेश

दहेज के कारण लड़कियों को प्रायः उपयुक्त वर नहीं मिलते। पढ़ी-लिखी लड़कियों के लिए और भी कठिनाई होती है। इस सम्बन्ध में एक बङ्गाली पिता के पत्र का उत्तर देते हुए महात्मा गांधी ने उन्हें लिखा है कि वे जात-पाँत का ख़याल छोड़कर विवाह करें तो दहेज के प्रश्न से तो बच ही सकते हैं, लड़की को उपयुक्त वर भी मिल सकता है। नीचे हम यह पत्र-व्यवहार 'हरिजन' से उद्धृत करते हैं—

एक सज्जन ने अपनी कष्ट-कहानी से भरा हुआ एक लम्बा पत्र भेजा है, जिसमें वे लिखते हैं—

"मैं (६७ बरस की उम्र का) एक स्कूल-मास्टर हूँ और मेरी सारी ज़िन्दगी (४६ साल) इसी काम में बीती है। मैंने बंगाल के एक ऐसे ग़रीब किन्तु बहुत सम्मानित कायस्थ-परिवार में जन्म लिया है, जो किसी समय अच्छा सम्पन्न था, लेकिन बाद में ग़रीबी ने ग्रस लिया। परमात्मा की कृपा से मुझे ७ लड़कियों और २ लड़कों के पिता होने का सौभाग्य प्राप्त है। इनमें से सबसे बड़ा लड़का २० बरस का होकर गत अक्टूबर में चल बसा, और रोने-पीटने के लिए हमें असहाय और दुखी छोड़ गया। वह एक होनहार युवक था, और अपनी ज़िन्दगी में केवल एक उसी से मुझे कुछ आशा थी। जो ७ लड़कियाँ हैं, उनमें से ५ का तो ब्याह हो ही चुका है, पर छठी और सातवीं (जिनकी उम्र १६ और १८ साल की है) अभी भी ब्याहने को हैं। मेरा छोटा लड़का ११ बरस का नाबालिग़ है। ६०) मेरी तनख़्वाह है, जिसमें गुज़र ही बहुत मुश्किल से होती है। बची हुई रक़म के नाम मेरे पल्ले एक पैसा भी नहीं, बल्कि क़र्ज़दार होने के कारण अकिंचन से भी बदतर मेरी हालत है। छठी लड़की के लिए लड़का तो तय कर लिया है, लेकिन ब्याह का ख़र्च ९००) से कम न होगा, जिसमें ३००) तो ज़ेवर और दान-दहेज़ में ही चले जायँगे। कनाडा की 'सन लाइफ़ एश्योरेंस' कम्पनी में मेरा २,०००) का आजीवन-बीमा है। १९१४ में मैंने बीमा कराया था। इस कम्पनी ने मुझे ४००) का क़र्ज़ देना मंज़ूर कर लिया है। लेकिन यह तो ज़रूरी रक़म की सिर्फ़ आधी ही है; बाक़ी आधी के लिए मेरे पास कोई उपाय नहीं है। मैं बहुत ही असहाय स्थिति में हूँ। क्या आप यह आधी रक़म देकर लड़की के इस ग़रीब पिता की मदद नहीं कर सकते ?"

इस तरह के जो बहुत-से पत्र मेरे पास आते रहते हैं उनमें से यह एक है। ऐसे पत्र ज़्यादातर हिन्दी में लिखे होते हैं। लेकिन अँगरेज़ी शिक्षा से लड़कियों के मा-बापों की हालत सुधर जाती हो सो बात भी नहीं है। बल्कि कई मामलों में तो इस दृष्टि से उनकी हालत और भी बदतर हो गई है, क्योंकि अँगरेज़ी पढ़ी-लिखी लड़की के लिए जैसा वर चाहिए उसका बाज़ार-भाव भी उतना ही बढ़ा-चढ़ा होता है।

इस बंगाली पिता के जैसे मामलों में तो आवश्यक रक़म की क़र्ज़ या किसी दूसरे रूप में व्यवस्था करने के बजाय सबसे अच्छी मदद यही हो सकती है कि माता-पिता को समझा-बुझाकर इस बात के लिए प्रेरित किया जाय कि वे अपनी लड़की के लिए वर का सौदा न करके उसके लिए किसी लड़के का चुनाव करें, या ख़ुद लड़की को ऐसा वर चुन लेने का मौक़ा दें, जो प्रेम के लिए ही उससे ब्याह करे न कि रुपये के लिए। इसका अर्थ यह हुआ कि स्वेच्छापूर्वक पति चुनने की प्रवृत्ति बढ़ाई जाय। जाति और प्रान्त की यह दुहरी दीवार टूटनी ही चाहिए। क्योंकि अगर भारत एक और अखण्ड है तो निश्चय ही उसमें ऐसे कृत्रिम भेदभाव नहीं रहने चाहिए जिनसे परस्पर खान-पान और ब्याहशादी का व्यवहार न रखनेवाले अनगिनती छोटे-छोटे दल बन जायँ। इस निर्दय प्रथा का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं। ऐसी दलील करने से काम नहीं चलेगा कि इसकी शुरूआत व्यक्तियों से नहीं हो सकती,

इसलिए जब तक सारा समाज परिवर्तन करने के योग्य न हो जाय तब तक उन्हें प्रतीक्षा ही करते रहना चाहिए। क्योंकि कभी कोई ऐसा सुधार नहीं हुआ जिसके लिए पहले कुछ साहसी व्यक्तियों ने ख़ुद समाज में प्रचलित निर्दय रस्म-रवाजों के खिलाफ़ बग़ावत न की हो। और स्कूल-मास्टर की लड़की अगर विवाह को एक पवित्र सम्बन्ध के बदले, जैसा कि वह निश्चित रूप से है, बाज़ारू सौदा मानने से इनकार कर दे तो भला उससे इन मास्टर साहब पर क्या मुसीबत आ जायगी ? इसलिए मैं उन्हें यही सलाह दूँगा कि वह साहसपूर्वक ब्याह के लिए क़र्ज़ या भीख माँगने का विचार छोड़ कर अपनी लड़की की सलाह से उसके लिए किसी उपयुक्त पति का चुनाव करें, फिर वह चाहे किसी भी जाति या प्रान्त का हो, और इस प्रकार उन चार सौ रुपयों को भी बचा लें, जो अपने आजीवन बीमे से वे पा सकते हैं।

बम्बई में अत्यधिक गो-वध क्यों होता है ?

बम्बई में इस वर्ष २८ हज़ार गायें काटी गईं। यही औसत और वर्षों का भी समझना चाहिए। इसका कारण यह है कि दूध की बहुत माँग होने के कारण जो व्यापारी वहाँ दूर के स्थानों से गायें ले आते हैं वे उन्हें जब वे दूध देना बन्द कर देती हैं, चारे की महँगी के कारण खिला नहीं सकते, दूसरे रेल का किराया भी बहुत होने से वे उन्हें यथास्थान वापस नहीं भेज सकते। फलतः वे गायें क़साइयों के हाथ पड़ जाती हैं। इस गो-वध में बड़ी कमी हो जा सकती है यदि सरकार वहाँ कुछ गोचर-भूमि छोड़ दे या रेलवे कम्पनियाँ उनकी वापसी के किराये में कमी कर दें। इस सम्बन्ध में बम्बई के मारवाड़ी चेम्बर आफ़ कामर्स के उपसभापति श्री बेगराज गुप्त ने एक पत्र वायसराय महोदय के पास भेजा है। पत्र भेजने का कारण यह है कि इधर वायसराय महोदय ने दूध की समस्या पर विचार करना आरम्भ किया है। पत्र का एक ज्ञातव्य अंश यहाँ दिया जा रहा है, जिस पर देश-व्यापी आन्दोलन होने की आवश्यकता है।

बम्बई नगर की जन-संख्या ल[...] इस अनुपात से इस नगर में दूध [...] बढ़ती हुई है।

नगर में कुल ४,००,००० पौंड [...] दूध देने के लिए गायें और भैंसे [...] दिल्ली और दक्षिण-पञ्जाब से यहाँ [...] तक दूध देनेवाले मवेशियों की संख्य[...] तक थी। सन् १९२८-२९ में बम्बई [...] २८,८०० मवेशी उतारे गये। गत [...] संख्या कुछ अधिक बढ़ी होगी।

नगर के तबेलों में १६,००० गायें [...] हैं। २,००० मवेशी ऐसे हो सकते हैं [...] पैलिटी को ज्ञान न हो और ८,००० [...] रहते होंगे। फिर सब मिला कर केवल [...] जितने प्रतिवर्ष यहाँ आते हैं।

यदि यह मान लिया जाय कि प्रति[...] भैंसें यहाँ बाहर से आती हैं और उनमें [...] जाती हैं, तो भी ८ वर्षों में २ ल[...] चाहिए।

परन्तु प्रश्न यह है कि इतनी गायें [...] जाती हैं। इसका उत्तर आपको बं[...] क़साईख़ानों के आंकड़ों से मिलेगा, जिस[...] आवेदन-पत्र के साथ भेजता हूँ।

सन् १९३५-३६ में १५,००० भैंसें अ[...] काटी गईं। यह बात जग-विख्यात है कि [...] मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए हानिकार[...] और इसे कोई मांसप्रेमीवर्ग पसन्द [...] फिर भी भैंस का मांस बहुत बड़े परिमा[...] सस्ता होने के कारण ख़रीद कर खाते हैं [...] सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है [...] काटने के लिए यहाँ नहीं भेजी जातीं।

गत वर्ष २८,००० गायें क़त्ल की [...] कितनी ही बूढ़ी हो गई थीं। और क्या [...] यहाँ भेजी गई थीं ?

यह मान लिया जाय कि इनमें से [...] की समय के पूर्व मृत्यु हो जाती है।

इसलिए हम इस परिणाम पर सहज[...]

कि २५,००० दूध देनेवाले मवेशी, ऐसी अवस्था में जिनमें से प्रत्येक ४,०००-५,००० पौंड प्रतिवर्ष दूध दे सकते हैं, क़साई की छुरी के नीचे अपनी भरी जवानी के समय में ही काट डाले जाते हैं।

बम्बई की डेरियों के मालिकों को दूध के लिए सबसे अच्छी नस्ल के मवेशी भारत के उन ज़िलों से अपने बच्चों-सहित भेजे जाते हैं जो अच्छी नस्ल के लिए ख्यात हैं। इस प्रकार तरुण और बीच की अवस्था के हज़ारों मवेशी गत १० वर्षों से छुरी के घाट उतारे जा रहे हैं। इस अनियमित वध का जो भीषण परिणाम होगा उसका अनुमान बयान करने की अपेक्षा अधिक विचारणीय है।

जब तक बम्बई नगर और उपनगरों में मवेशियों के लिए चरागाह थे तब तक अधिकांश भैंसों का दूध सूख जाने के बाद भी वे रक्खी जाती थीं और भैंसें भी दूसरा ब्यान होने के ३-४ मास पूर्व तक कुछ न कुछ परिमाण में अवश्य दूध देती रहती थीं। इससे उनमें दूध न देने के समय का ख़र्च बहुत अधिक नहीं अखरता था। बाक़ी भैंसें रेल का अधिक भाड़ा न होने के कारण चरागाहों में भेज दी जाती थीं। परन्तु महायुद्ध के १० वर्षों के अन्दर ही तबेलों का ख़र्च बढ़ गया, गोचर-भूमि ग़ायब हो गई और रेल का किराया इतना अधिक हो गया कि कोई मवेशियों को भेज ही न सके।

सन् १९१९ में ६ भैंसों को ले जानेवाले एक डिब्बे का किराया ५० रुपया था। परन्तु १९२२ में यह किराया ९२) हो गया। आजकल ।-) फ़ी मील प्रति डिब्बे का है। जब तक वे मवेशी दूध देते हैं, तब तक तो वे इतने अधिक ख़र्च पर भेज दिये जाते हैं, परन्तु जब उनका दूध सूख जाता है तब उन्हें भेजना बड़ा-ख़र्चीला पड़ता है। यह कहने से मेरा मतलब रेल का किराया घटाने के लिए नहीं है। परन्तु मैं हृदय से यह प्रस्ताव करूँगा कि यदि सूखी गाय और भैंसों को मुफ़्त या नाम-मात्र के किराये पर वापस भेज दिया जाय तो देश के सर्वोत्तम पशुओं का जो धारावाहिक नाश हो रहा है, वह रुक जायगा।

उचित उपाय यह है कि जिस समय कोई आदमी, अपनी भैंस और गाय भेजे उस समय वापसी टिकट-सहित उससे किराया वसूल कर लिया जाय, परन्तु वापसी का किराया या तो हो ही नहीं, यदि हो तो नाम-मात्र का होना चाहिए, जिससे उन लोगों को वापस भेजने में, कुछ भी आपत्ति या कठिनाई न रह जाय। इस योजना से रेलवे कम्पनियों की कोई बड़ी हानि होने की सम्भावना नहीं है। ग़ैर सरकारी रूप से जाँच करने पर मालूम हुआ है कि जिन डिब्बों में भैंसे बम्बई लाई जाती हैं वे ख़ाली वापस जाते हैं। यह बात आज भी सत्य होगी। इस सम्बन्ध में यदि कुछ कठिनाई भी पड़े तो देश-हित की दृष्टि से उसे पार करना चाहिए। मेरे बोर्ड को विश्वास है कि श्रीमान् इस प्रस्ताव के क्रियात्मक भाव को पसन्द करेंगे। यदि श्रीमान् कम्पनी का ध्यान देश के धन की बरबादी की ओर आकृष्ट करें तो मेरे चेम्बर को पूर्ण विश्वास है कि वह श्रीमान् के कथन को अवश्य स्वीकार कर लेगा।

मैं अपने चेम्बर की ओर से कुछ प्रस्ताव करना चाहता हूँ। हमारे देश में पहले साँड़ छोड़ने की प्रथा थी। परन्तु ३० वर्षों से इस प्रणाली का पालन करना गोचर-भूमि के अभाव में असम्भव-सा होगया है। फिर साँड़ फ़सल को नष्ट करते हैं। इससे किसानों को बड़ा कष्ट होने लगा और वे लोग उन्हें कांजीहौस में भेजने लगे, जिससे वे कितने ही दिनों तक भूखे रहकर मर जाते हैं। इन कठिनाइयों से पिछली प्रणाली को हम क़ायम नहीं रख सके।

ऊपर की बात से यह स्पष्ट हो गया है कि केवल बैल रखने से काम न चलेगा, परन्तु पोषण और उनके उपयोग का भी प्रबन्ध करना चाहिए। इसके लिए मैं निम्नलिखित प्रस्ताव करता हूँ—

(१) म्युनिसिपेलिटियों को आदेश किया जाय कि अमुक संख्या में साँड़ रक्खे जायँ।

(२) उनका ख़र्च ग्रामोद्धार फ़ण्ड से दिया जाय।

(३) और ग्रामों में गोचर-भूमि छोड़ी जाय।

अन्त में मैं प्रार्थना करूँगा कि श्रीमान् मेरे इन प्रस्तावों पर सहानुभूति-पूर्वक विचार करेंगे।

शारदा एक्ट में तरमीम की ज़रूरत

श्रीयुत भुवनेश्वर दास ने असेम्बली में शारदा-एक्ट में कुछ ऐसे परिवर्तन करने के सम्बन्ध में एक बिल पेश किया है जिससे उक्त एक्ट का प्रभाव बढ़े और वह बाल-विवाहों को रोकने में समर्थ हो।

इसका समर्थन 'हिन्दुस्तान' ने अपनी एक सम्पादकीय टिप्पणी में इस प्रकार किया है—

बाल-विवाहों को रोकने की हमारे यहाँ कितनी आवश्यकता है, इसे सभी समझदार आदमी मंज़ूर करते हैं। कुछ साल पहले दीवान बहादुर हरबिलास सारडा के प्रयत्न से इसके लिए एक क़ानून भी बन चुका है। इस क़ानून के बनने पर स्वभावतः यह आशा की गई थी कि अब बाल-विवाह की बुराई रुक जायगी, मगर ऐसा हुआ नहीं। उलटे शायद इस बीच में वह किसी क़दर बढ़ी ही है; क्योंकि इस ख़याल से कि शायद आगे सख़्ती से इस पर अमल हो, लोग जल्दी-से-जल्दी अधिक-से-अधिक बाल-विवाह कर डालने के लिए तुल पड़े। कुछ उत्साही समाज-सुधारकों ने यह देखा तब इसमें रुकावट डालने की कोशिश की, लेकिन सरकारी मशीनरी ने तो तत्परता नहीं दिखाई और बाल-विवाह करनेवालों ने अपनी बचत के लायक़ क़ानून की कमज़ोरियों को ढूँढ़ लिया। ब्रिटिश-भारत की सीमा से हटकर निकटवर्ती किसी रियासत की सीमा में होनेवाले विवाहों की तादाद भी कम नहीं रही, जहाँ उन पर रुकावट डालनेवाला कोई क़ानून नहीं है। आख़िर यह सोचा गया कि क़ानून में ही ऐसे सुधार होने चाहिए कि ऐसा गड़बड़ सम्भव न रहे। इसी उद्देश से श्री भुवनेश्वर दास ने असेम्बली में एक बिल पेश किया है, जिस पर असेम्बली के सितम्बर-अधिवेशन में विचार होगा। समझदार भारतवासी स्त्री-पुरुष सभी उसका समर्थन कर ही रहे हैं। यह ख़ुशी की बात है कि ब्रिटिश कामनवेल्थ लीग ने भी उसके पक्ष में आवाज़ उठाई है। उसकी ओर से वाइकाउण्टेस नैन्सी एस्टर, मिसेज़ कार्बेट एशबी, मिस रथबोन, लार्ड लोथियाँ आदि के हस्ताक्षरों से 'टाइम्स' (लन्दन) में एक पत्र प्रकाशित हुआ है, जिसमें वर्तमान क़ानून की तीन मुख्य ख़ामियाँ बताते हुए श्री दास के बिल का पास होना समाज-सुधार की दिशा में आवश्यक बताया गया है। उनका यह कहना निस्सन्देह सही है कि धार्मिक प्रथाओं में हस्तक्षेप न करने के नाम पर सरकार को उसका समर्थन करने में हिचकिचाना नहीं चाहिए, उसका समर्थन करके वह सब दलों के प्रगतिशील भारतीयों और भारतीय महिला-आन्दोलन की सहायता ही करेगा। हम चाहते हैं कि सरकार उनकी इस सलाह पर अवश्य ध्यान दे कि अगर वह ख़ुद उसका समर्थन न भी करे तो कम-से-कम असेम्बली के निर्वाचित सदस्यों के स्वतन्त्रतापूर्वक किसी निर्णय पर पहुँचने में कोई बाधा तो न डाले।

कांग्रेस और हिन्दी

गुजरात की प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटी ने बम्बई में होनेवाली अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस-कमेटी की बैठक में यह प्रस्ताव पेश करने का निश्चय किया है कि कांग्रेस अपनी सारी कार्य्यवाहियों में हिन्दी-भाषा का ही प्रयोग करे। गुजरात एक अहिन्दी भाषी प्रान्त है। इस दृष्टि से यह प्रस्ताव और भी अधिक महत्त्व-पूर्ण है। गुजरात को इस निश्चय पर बधाई देते हुए 'वर्तमान' ने एक अग्र लेख प्रकाशित किया है जिसका एक अंश इस प्रकार है—

हम हिन्दी को राष्ट्रभाषा जैसा उच्च स्थान प्रदान करते हैं, परन्तु अफ़सोस की बात है कि अब भी हम ग़ाफ़िल हैं और उससे भी बढ़कर हैं हमारी राष्ट्रीय संस्था के नेतागण। अपने अपने वक्तव्य नेतागण हिन्दी में न लिखकर अँगरेज़ी में लिखते हैं। अ० भा० कां०-कमेटी आज भी अपने सारे सर्कुलर अँगरेज़ी में ही निकालती है और उन्हें प्रान्तीय तथा ज़िला-कमिटियों के पास भेजती है। पत्रों में प्रकाशनार्थ भेजी गई सूचनायें तक हिन्दी के स्थान में अँगरेज़ी में ही आती हैं। राष्ट्रीय संस्था का जब ऐसा हाल है तब अन्य संस्थाओं के लिए क्या कहा जाय! इन बातों से तो यह भी प्रतीत होता है कि अभी हमारे नेताओं में भी स्वदेशी की सम्पूर्ण भावना नहीं व्याप्त हुई है। यह देश की निरन्तर गुलामी का एक पक्का सुबूत है। अपनी राष्ट्र-भाषा को जब तक प्रधान स्थान नहीं दिया जायगा तब तक हमारी राष्ट्रीय संस्था देश के अन्तःस्थल की जनता तक अपने विचार नहीं पहुँचा सकेगी। अब बम्बई की बैठक में जो प्रस्ताव पेश होने जा रहा है उस पर प्रत्येक स्वदेश-प्रेमी को अपनी राय स्पष्ट करनी होगी और इस प्रस्ताव को पास कराकर कार्यरूप में परिणत करना होगा। जब हमारे सभी नेता अँगरेज़ी को गौण स्थान देने लगेंगे तब स्वयं हिन्दी का चलन बढ़ जायगा। अधिक अच्छा तो यह हो कि अ० भा० कां०-कमेटी अपनी राष्ट्र-भाषा का भी प्रचार करने का अपने प्रोग्राम में कोई स्थान रक्खे। आगामी कांग्रेस-

अधिवेशन की स्वागत-कमिटी को भी अभी से अपनी सारी कार्यवाही हिन्दी में ही करना चाहिए। हमें पूर्ण विश्वास है कि जब केवल एक व्यक्ति महात्मा गांधी ने हिन्दी को इतना बढ़ा दिया है तब जब देश के सारे नेता उसका प्रयोग करने लगेंगे तब अवश्य उसका उद्धार हो जायगा। जिस समय भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक के निवासी हिन्दी-भाषी बन जायँगे उस समय उनमें राष्ट्रीय भावों का प्रचार करना भी आसान हो जायगा।

युद्ध का ख़तरा और समीप

श्रीयुत इन्द्र विद्यावाचस्पति ने उपर्युक्त शीर्षक से अर्जुन में एक लेख लिखा है, जिसमें उन्होंने योरप की वर्तमान डाँवाडोल स्थिति पर बड़े सुन्दर ढङ्ग से विचार किया है। उनके लेख का एक अंश हम नीचे उद्धृत करते हैं—

स्पेन का विद्रोह योरप के बारूद-घर में चिनगारी की तरह गिरा। वह असल क्या है? साम्यवाद और सत्तावाद का संघर्ष है। स्पेन की वर्तमान सरकार साम्यवादी है, और विद्रोही-दल सत्तावादी है। स्वभाव से रूस और फ़्रांस की सहानुभूति स्पेन की सरकार के साथ है, और जर्मनी तथा इटली की सहानुभूति विद्रोहियों के साथ। प्रतीत होता है कि ये चारों शक्तियाँ गुप्तरूप से अपने अपने पक्ष को मदद भी दे रही हैं, यद्यपि प्रत्यक्ष में सब इनकार कर रही हैं, और मदद देने का आरोप विरोधी पक्ष पर लगा रही हैं।

स्पेन के विद्रोह का योरप की राजनीति पर बहुत गहरा असर पड़ रहा है, और पड़ेगा। मान लीजिए कि सरकार की जीत हुई, और विद्रोही हार गये तो फ़्रांस का एक गहरा मित्र पैदा हो जायगा, जिससे वह जर्मनी तथा इटली के विरुद्ध पूरी सहायता ले सकेगा। इसी प्रकार यदि परिणाम उलटा हुआ और विद्रोहियों की जीत हो गई तो स्पेन में फ़ासिस्ट सरकार की स्थापना हो जायगी, जिससे जर्मनी तथा इटली का दल बहुत बलवान् हो जायगा।

इस प्रकार स्पेन का विद्रोह साम्यवाद के विरोध में सत्तावाद का विद्रोह है। स्पेन के समाचारों ने सारे योरप को चंचल बना दिया है। कई वर्षों से योरप में युद्ध की जो चर्चा चल रही थी, स्पेन की ख़बरों ने उसे तेज़ कर दिया है। यदि योरप शीघ्र ही न सँभला तो मालूम

युद्ध न होगा

योरप की राजनैतिक स्थिति पर जिनकी दृष्टि है और जो राजनीति के पण्डित माने जाते हैं उनका कहना है कि योरप में किसी भी क्षण युद्ध आरंभ हो जा सकता है। पर विश्वविख्यात लेखक श्री बर्नार्डशा इसके सर्वथा विरुद्ध मत रखते हैं। वे कहते हैं योरप में अब कदापि युद्ध नहीं छिड़ सकता! इस सम्बन्ध में आपने लंदन के डेली एक्सप्रेस में एक लेख भी लिखा है जिसका सारांश नीचे हम 'भारत' से उद्धृत करते हैं?

मुख्यतः श्री मुसोलिनी तथा श्री हिटलर की ही बातों के कारण महायुद्ध की आशंका की जाती है, परन्तु इन दोनों में से कोई भी महायुद्ध नहीं चाहता। सच बात तो यह है कि इन दोनों को इस बात का विश्वास है कि महायुद्ध होगा नहीं, इसी लिए वे बार बार युद्ध की धमकी देकर अपना काम निकाल लेते हैं। श्री मुसोलिनी ने अपने शासन के प्रारम्भ से लेकर एबीसीनिया-विजय तक, जो बार-बार सभ्य संसार के लोकमत की उपेक्षा करने का साहस किया है, उसका कारण उनका यह विश्वास ही है कि युद्ध होगा नहीं और वे धमकी चाहे जितनी दे लें उन्हें लड़ना नहीं पड़ेगा। इसी प्रकार श्री हिटलर भी वारसेल्स की सन्धि की अधिकांश शर्तों को एक एक करके रद्दी की टोकरी में फेंकने का साहस इसी लिए कर सके हैं क्योंकि वे जानते हैं कि मित्रराष्ट्र उनके इस कृत्य से नाराज़ भले ही कितने ही हों, परन्तु वे युद्ध की घोषणा नहीं करेंगे। भविष्य का युद्ध भूतकाल के युद्धों से बहुत भिन्न प्रकार का होगा। पहले राजनीतिज्ञ सैनिकों को तो कटने-मरने के लिए रणक्षेत्र में भेज देते थे, और स्वयं घर पर बेफ़िक्री से बैठे रहते थे, परन्तु अब जब युद्ध होगा तब अपने घरों पर बैठे हुए लोगों की जान भी वायुयानों तथा विषैली गैसों के कारण उतने ही ख़तरे में रहेगी जितनी कि रणक्षेत्र में लड़नेवाले सैनिकों की। अतः अब राजनीतिज्ञ लोग युद्ध की घोषणा करने का साहस आसानी से नहीं कर सकते। अब तो सभ्य राष्ट्र एबीसीनिया जैसे पिछड़े हुए राष्ट्रों से ही युद्ध करने का साहस करेंगे, जिनके पास वायुयान नहीं हैं या न होने के बराबर हैं।

हिन्दू-धर्म के विरुद्ध मुसलमानों का मिथ्या-प्रचार

महात्मा गाँधी "हरिजन" में लिखते हैं :—

एक सज्जन ने मेरे पास एक तबलीग-सम्बन्धी पैम्फ्लेट भेजा है। असली उर्दू में है, जिसका यह गुजराती तर्जुमा है। इस गुजराती पैंफलेट के अनुवादक तथा प्रकाशक शेख़ उमरभाई मोहम्मदभाई हैं, और यह अहमदाबाद में छपा है। जिन सज्जन ने मेरे पास यह भेजा है उनके पत्र से मैं कुछ भाग उद्धृत कर रहा हूँ :—

"आपके पास मैं एक पैम्फ़लेट भेज रहा हूँ, जिसे एक स्थानीय मुस्लिम ने प्रकाशित किया है। स्पष्ट ही उन्होंने इसे इस विचार से प्रकाशित किया है कि हरिजनों को इस्लाम ग्रहण कर लेने का प्रलोभन दिया जाय, और हिन्दुओं के ख़िलाफ़ उनमें घृणा के भाव फैलाये जायँ। इस पैम्फ़लेट में हिन्दू-धर्म और हिन्दू-संस्कारों के बारे में ऐसी-ऐसी बातें लिखी गई हैं जो न सिर्फ़ सरासर झूठी हैं, बल्कि हमारे मुल्क की साम्प्रदायिक तनातनी को और भी ज़्यादा बढ़ा सकती हैं।

"हाल में मैंने उत्तर-भारत के दो लड़कों को बचाने का प्रयत्न किया है। उनका पता लगाकर उनके रिश्तेदारों के साथ, जो उनकी तलाश में आये हुए थे, उन लड़कों को घर भेजवा दिया है। अभी हाल में हरिजन लड़कियों तक को इस्लाम ग्रहण कर लेने का लोभ दिया गया है।

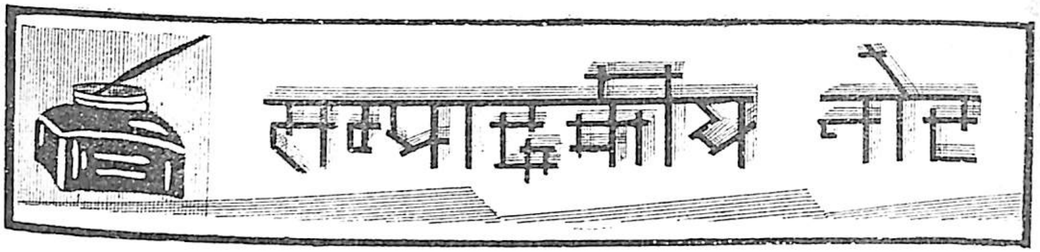
"कृपाकर आप इस पैम्फ़लेट को एक बार पढ़ जाइए, और फिर हमें कोई ऐसा रास्ता सुझाइए, जिससे ये ग़रीब और अपढ़ हरिजन ऐसे झूठे और द्वेष की आग भड़कानेवाले पैम्फ़लेटों के जाल में न फँसें।"

मैं दुःख के साथ इस पैम्फ़लेट को पढ़ गया। जैसा कि भेजनेवाले सज्जन ने इसके बारे में लिखा है, यह काफ़ी शरारत से भरा हुआ है। पिता और पुत्र, दो हरिजनों के संवाद के रूप में यह लिखा गया है। पिता के कहने से लड़का हिन्दू-शास्त्रों को पढ़ता है और उनका मज़ाक़ उड़ाता है। हिन्दुओं की हर एक पवित्र चीज़ का ऐसा वाहियात व्यंग्य चित्र खींचा गया है कि जिसे देखकर हिन्दू-धर्म और सवर्ण हिन्दुओं के प्रति घृणा का भाव भड़क उठे। स्वामी श्रद्धानन्द जी तक का पवित्र नाम इस मुबाहसे में घसीटा गया है; और उनके मुँह से ऐसे ऐसे शब्द कहलाये गये हैं जो, मैं जानता हूँ, उन्होंने कभी न कहे होंगे। इसी एक वाक्य को लीजिए। कोई भी भला मानस अपने आदमियों के बारे में ऐसा नहीं लिखेगा, "कुछ हिन्दू गोबर से लिपे हुए चौकों में खाने बैठ जाते हैं, गोया वे झाड़ फिरने बैठे हों। बुरा हो ऐसे खानेवालों का।" सारा पैम्फ़लेट तोड़ी-मरोड़ी हुई बातों से भरा हुआ है; और उसमें हरिजनों को ऐसी-ऐसी आर्थिक आशायें दिखाई गई हैं जो कभी पूरी नहीं हो सकतीं—ख़ास कर जब सामूहिक रूप से हरिजनों को अपने बाप-दादाओं का धर्म छोड़ देने के लिए प्रलोभन दिया जाता है। जो मौलवी हरिजन के लड़के को मुसलमान बनाता है वह कहता है कि "मैं ख़ुद पहले चमार था, पर मुसलमान हो जाने से मेरी शादी एक शरीफ़ मुस्लिम ख़ान्दान की लड़की से हुई।" नव-मुस्लिम उस प्याले से पानी पीता है जिससे कि वह मौलवी पीता है और जो बाक़ी पानी बचता है उसे सारी मजलिस पीती है। एक मुंशी जी के आलीशान मकान में अब उसे दावत दी जाती है। खाने का कमरा ख़ुशबू से महक रहा है। "हरेक लुक़मा अमरत है, हरेक शर्बत आबेज़िन्दगी है," और जो अभी-अभी तक हरिजन था उसके आगे हुक्का रक्खा जाता है, और फिर उसे सारी मजलिस पीती है।

यह देखकर कितना दुःख होता है कि लोगों को फुसलाने के लिए धर्म असंस्कृत भौतिकवाद की निचाई तक घसीटा जाता है, लाखों-करोड़ों मानव प्राणियों की चिरपोषित भावनायें इस तरह पैरों तले कुचली जाती हैं।

पैम्फ़लेट भेजनेवाले सज्जन ने मुझसे पूछा है कि शरारत भरे प्रचार का मुक़ाबला किस तरह किया जाय। एक उपाय तो मेरे पास यह है कि इस तरह झूठ-मूठ बदनाम करनेवाले कुत्सित प्रचारकार्य की तरफ़ ज़िम्मेदार मुसलमानों का ध्यान खींचा जाय। वह ख़ुद इस पैम्फ़लेट की तरफ़ स्थानीय मुसलमान लीडरों का ध्यान आकर्षित कर सकते हैं। और, दूसरा और सबसे महत्त्वपूर्ण उपाय यह है कि हिन्दू-धर्म की आन्तरिक शुद्धि की जाय। जब तक हिन्दू-समाज में यह अस्पृश्यता का ज़हर बना रहेगा तब तक बाहर से उस पर इस तरह के हमले होते ही रहेंगे।

—'हरिजन सेवक'



योरप का भविष्य

यह एक प्रकट बात है कि योरप अब शीघ्रता के साथ महायुद्ध की ओर बढ़ता जा रहा है। वहाँ के देश युद्ध के उपकरणों से अपने को सज्जित करने में तो लगे ही हैं, इसके साथ ही वे अपनी गुटबन्दियाँ भी करने में पीछे नहीं हैं। फ्रांस और रूस की मित्रता ने इटली को जर्मनी का मित्र बना दिया है, और यही दो गुट जान पड़ता है, अगले महायुद्ध में एक दूसरे से युद्ध करेंगे। इटली और जर्मनी के साथ इस समय आस्ट्रिया, हंगरी और पोलेंड ही दिखाई देते हैं। उधर फ्रांस के साथ ज़ूगो-स्लाविया, रूमानिया और ज़ेकोस्लोवेकिया एवं बालकन के राज्य हैं। परन्तु वास्तव में इस समय परिस्थिति कुछ दूसरी हो गई है और योरप में दो प्रकार के विचारों में भारी संघर्ष हो रहा है। हिटलर और मुसोलिनी के नेतृत्व में फ़ैसिस्ट-वाद वहाँ फैले हुए वर्गवाद का उन्मूलन करने को तुल गया है ऐसी परिस्थिति में कौन कह सकता है। कि योरप के राजतंत्र-प्रधान राष्ट्र फ्रांस के साथ होकर जर्मनी और इटली से इसलिए युद्ध करेंगे कि वर्गवाद वहाँ फले-फूले ? यह तो अपने हाथों अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारने के समान होगा। इस दृष्टिकोण से विचार करने पर यह भी अनुमान किया जा सकता है कि भावी युद्ध में जापान और कदाचित् ग्रेटब्रिटेन भी जर्मनी और इटली का ही पक्ष लेंगे। यह वास्तव में एक क्लिष्टकल्पना है, परन्तु राजनीति के क्षेत्र में असम्भव बातें भी सम्भव हो जाती हैं। अतएव इस समय यद्यपि यह बात निश्चयपूर्वक कोई नहीं कह सकता कि मौक़े पर कौन कौन राष्ट्र किस किस पक्ष में लड़ेगा, तथापि यह प्रकट है कि इस बार फ़ैसिस्ट राज्यों का कम्युनिस्ट राज्यों से ही युद्ध होगा और इस महायुद्ध में योरप के ही नहीं, शेष संसार के अन्य सभी राज्यों को भाग लेना पड़ेगा और यह युद्ध पिछले महायुद्ध से भी अधिक लोक-संहारक होगा।

योरप की सामरिक प्रवृत्ति

गत १५ वर्ष से राष्ट्र-संघ इस प्रयत्न में रहा है कि सभी देश अपना अपना सामरिक बल इतना कम कर दें कि किसी को किसी के आक्रमण का भय ही न रह जाय और इस प्रकार संसार में शान्ति का राज्य क़ायम हो जाय। परन्तु इस सम्बन्ध में जो भगीरथ प्रयत्न किया गया वह सब का सब व्यर्थ गया और आज वे राष्ट्र भी आत्मरक्षा के नाम से बड़ी शीघ्रता के साथ अपना अपना सामरिक बल बढ़ाने में संलग्न हो गये हैं जो अभी तक उसके घटाने के पक्के समर्थक थे। इससे प्रकट होता है कि योरप में हवा किस दिशा को बह रही है। यहाँ हम योरप के भिन्न भिन्न राज्यों के सामरिक बल के जो आँकड़े दे रहे हैं उनसे यह तो प्रकट ही होगा कि महायुद्ध के पहले से इस समय सभी देशों की सैन्य-संख्या बढ़ी-चढ़ी है, साथ ही यह विचित्र बात भी प्रकट होगी कि निःशस्त्रीकरण के सम्बन्ध में योरप में एक ब्रिटेन को छोड़कर जो कुछ किया गया है वह उतनी सच्चाई के साथ कभी नहीं किया गया है। और चाहे जो कुछ हो, वास्तविक बात यही है कि योरप के राज्यों ने अपना सामरिक बल कभी एक दिन के लिए भी कम नहीं होने दिया है। उक्त आँकड़े 'माडर्न रिव्यू' ने दिये हैं, जो इस प्रकार हैं—

ये आँकड़े भी अन्दाज़ से ही संग्रह किये गये हैं। योरप के राज्यों में कुछ की सैन्य-संख्या उनके यहाँ दिये गये आँकड़ों से अधिक भी हो सकती है। ऐसी दशा में कौन नहीं कह सकता कि योरप में महायुद्ध का छिड़ जाना केवल समय की अपेक्षा है।

देश	स्थायी सेना	रिज़र्व सेना	युद्ध के पहले	वायुयान
ब्रिटेन	३,३७,०००	१०,००,०००	४,१४,०००	१,७५०
रूस	१३,००,०००	२५,००,०००	१,०८,०००	३,०००
जर्मनी	६,००,०००	१०,००,०००	७,१८,०००	२,८००
फ्रांस	६,८४,०००	४०,००,०००	९,७५,०००	४,०००
इटली	९,७९,०००	१२,५०,०००	२,९३,०००	३,३००
पोलेंड	२,७३,०००	७,००,०००	१,९२,०००	८००
बेलजियम	६७,०००	६,००,०००	३०,०००	१५०
आस्ट्रिया	७०,०००	२,००,०००	५७,०००	अज्ञात
बलगेरिया	२३,२००	३३,०००	५२,०००	अज्ञात
हंगेरी	३५,०००	३५,०००	६६,०००	अज्ञात
यूगोस्लेविया	१,४०,०००	१,५०,०००	१,५३,०००	५८०
ज़ेकोस्लोवेकिया	१,५०,०००	२,४०,०००	७४,०००	६८७
ग्रीस	६७,०००	७०,०००	६७,०००	११९
हालेंड	६०,०००	७५,०००	३५,०००	३२
रूमानिया	१,८०,०००	२,००,०००	१,६०,०००	८२०
स्पेन	१,८०,०००	१,८०,०००	८६,०००	५००
स्वीट्ज़रलेंड	४५,०००	४,५०,०००	३,६००	२४०

स्पेन का गृह-युद्ध

स्पेन में इस समय भयानक गृह-युद्ध छिड़ा हुआ है। पिछली फ़रवरी के चुनाव में वहाँ लोकप्रिय राजनैतिक दलों की जीत हुई थी, अतएव लिबरल-दल की सरकार की स्थापना हुई। परन्तु इस दल पर साम्यवादियों और वर्ग-वादियों का अधिक प्रभाव होने से नई सरकार ने प्रजातन्त्र की रक्षा करने, भूमि-सम्बन्धी क़ानून बनाकर उसे किसानों को देने और शिक्षा का सारा प्रबन्ध पादरियों के हाथों से लेकर अपने हाथ में करने का प्रबन्ध किया। इससे वहाँ के ज़मींदार और पादरी असन्तुष्ट हो गये। इधर नई सरकार ने सेना में भी अपने दल के लोगों को ऊँचे पदों पर नियुक्त कर प्रचलित प्रथा में परिवर्तन करना चाहा। भूत-पूर्व बादशाह अलफ़ोंसो के समय से अब तक सेना के अधिकारी अपनी कमिटियों-द्वारा संगठित रहते थे। इस नई व्यवस्था से उनके उस संगठन के टूट जाने की सम्भावना स्पष्ट दिखाई देने लगी। फलतः इन फ़ौजी कमिटियों ने सरकार के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह कर दिया। इनके पक्ष में सारी घुड़सवार सेना, तोपख़ाना और अधिकांश पैदल सेना हो गई। इनके सिवा सभी राजतन्त्रवादी दलों ने भी इनका साथ दिया और वे भी मिलीशिया-सेना में संगठित हो गये। साथ ही स्पेन के स्वर्गीय तानाशाह प्रीमो के पुत्र का दल भी विद्रोही सेना के पक्ष में हो गया। इधर सरकार के पक्ष में पुलिस और सिविल गार्ड के दल थे। सारी जल-सेना, वायु-सेना और कुछ पैदल-सेना भी उसके पक्ष में थी। सशस्त्र साम्यवादी और वर्गवादियों की मिलीशिया सेना के सिवा साम्यवादी व्यवसाय-संघ जिसकी सदस्य-संख्या १६ लाख है और आतंकवादी व्यव-साय-संघ जिसकी सदस्य-संख्या ६ लाख है, सरकार की

सहायता करने को तैयार हुए। इस प्रकार स्पेन में प्रजातन्त्रवादियों और राजतन्त्रवादियों में अपने अपने हितों की रक्षा के लिए संहारक युद्ध प्रारम्भ हुआ। इस समय दोनों पक्ष बड़ी दृढ़ता के साथ भीषण युद्ध कया, एक-दूसरे का संहार कर रहे हैं, जिससे उस विपन्न देश में चारों ओर त्राहि त्राहि मची हुई है। कुछ लोगों का कहना है कि विद्रोहियों को इटली और जर्मनी से भीतरी सहायता मिल रही है और वहाँ के सरकारी पक्ष की फ्रांस और रूस सहायता कर रहे हैं। यद्यपि प्रकट रूप से अभी ऐसा कुछ नहीं है, तथापि यदि ऐसा प्रकट होगा तो उस समय योरप में महासमर का छिड़ जाना आश्चर्य नहीं होगा। इसी से फ्रांस इस बात का प्रयत्न कर रहा है कि योरप के प्रमुख राज्य स्पेन के इस गृह-युद्ध से निरपेक्ष रहने की घोषणा कर दें। उसे अपने इस प्रयत्न में काफ़ी सफलता मिली है और अब ऐसा जान पड़ता है कि योरप के राष्ट्र इस युद्ध से दूर रहेंगे। परन्तु इस प्रयत्न का प्रभाव स्पेन के गृह-युद्ध पर कुछ भी नहीं पड़ा है, और वह भीषण से भीषणतर होता जा रहा है।

पेलेस्टाइन की विकट समस्या

पेलेस्टाइन क्षेत्रफल में किसी मध्यम श्रेणी के भारतीय ज़िले के बराबर भी न होगा। जन-संख्या भी उसकी कलकत्ते की आबादी से कम है। तो भी एशिया का यह भूभाग संसार के इतिहास में सबसे अधिक महत्त्व का स्थान रखता है और आज भी उसका वह स्थान ज्यों का त्यों बना हुआ है। पिछले महायुद्ध में तुर्की के हार जाने पर उसके अन्य कतिपय प्रान्तों के साथ साथ उसका यह प्रदेश भी उसके हाथों से निकल गया और एक बड़े लम्बे-चौड़े समय के बीत जाने पर उस पर ईसाइयों की सत्ता क़ायम हुई। राष्ट्र-संघ की ओर से तुर्की के अन्य प्रान्तों के साथ पेलेस्टाइन का भी शासनाधिकार अँगरेज़ों को सौंपा गया। और अँगरेज़-सरकार ने युद्ध के समाप्त होने के बाद ही यहूदियों को यह वचन दे दिया था कि वह पेलेस्टाइन को यहूदियों की राष्ट्र-भूमि बनने में सहायता करेगी। अपनी उस प्रतिज्ञा के अनुसार अँगरेज़-सरकार ने वहाँ यहूदियों के बसने की समुचित व्यवस्था कर दी। परन्तु अँगरेज़-सरकार की यह कार्रवाई वहाँ के अरबों को रुचिकर नहीं प्रतीत हुई। अरबों की संख्या पेलेस्टाइन में वहाँ के यहूदियों से बहुत अधिक है और वे यह नहीं चाहते कि बाहर से आकर यहूदी लोग वहाँ अधिक संख्या में हो जायँ और उनको अल्प संख्या में परिणत कर दें। सन् १९२० में अँगरेज़-सरकार ने वहाँ की शासन-व्यवस्था अपने हाथ में ली थी। तब से वहाँ अब तक चार सशस्त्र विद्रोह हो चुके हैं। परन्तु वर्तमान विद्रोह पिछले विद्रोहों की अपेक्षा कहीं अधिक संगठित, व्यापक तथा भयानक है। इसमें छोटे-बड़े सभी श्रेणी के अरब शामिल हैं। अरबों की माँग है कि उनके देश में यहूदियों का बाहर से आकर बसना एकदम बन्द किया जाय, तभी वे तलवार रक्खेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि यहूदियों ने आकर पेलेस्टाइन को कुछ का कुछ बना दिया है। और यही देखकर अरब लोग डर गये हैं कि यदि यहूदियों का वहाँ आकर बसना जारी रहा तो उनकी वहाँ संख्या ही नहीं अधिक हो जायगी, किन्तु देश की माली स्थिति में तथा संस्कृति में भी यहूदी लोग प्राधान्य प्राप्त कर जायँगे। इस बात से अरब यहूदियों के शत्रु हो गये हैं। इसी से इन विद्रोहों में यहूदियों की बार बार भारी क्षति हुई है और वे जान से मारे गये हैं तथा उनकी सम्पत्ति विनष्ट की गई है। इस परिस्थिति ने अँगरेज़-सरकार के आगे पेलेस्टाइन में बड़ी पेचीदा समस्या उपस्थित कर दी है, जिसका हल वह आज तक नहीं ढूँढ़ सकी है। एक ओर वह अरबों को खुश रखना चाहती है, दूसरी ओर वह यहूदियों से अपना वचन भी नहीं तोड़ना चाहती। इस समय उसने पेलेस्टाइन की अवस्था की जाँच करने के लिए एक शाही कमीशन नियुक्त करने की घोषणा की है। परन्तु अभी वहाँ शान्ति की स्थापना नहीं हुई है। देखना है, अँगरेज़ सरकार पेलेस्टाइन की इस विकट समस्या को कैसे सुलझाती है।

स्याम की अवस्था

स्याम के बादशाह ने सिंहासन त्याग कर दिया है और वे अब इँग्लेंड में एकान्तवास कर रहे हैं। उनके स्थान में उनका पुत्र स्याम का बादशाह घोषित किया गया है, जो अभी बालक है और स्वीज़लेंड में शिक्षा पा रहा है। स्याम का शासन इस समय वस्तुतः वहाँ के प्रधान नेता कर्नल फिया बहोल बलबुहसेन के हाथों में है। इन्होंने

१९३३ के जून के विद्रोह में सफलता प्राप्त कर १९३२ के जून के विद्रोह के नेता फिआ मानोपकर्ण नीतिधान और फिया श्रीविसरवाच को पदच्युतकर शासनाधिकार अपने हाथों में ले लिया था। तब से ये स्याम के सर्वेसर्वा बने हुए हैं और अपने वैदेशिक मंत्री लुअंग प्रादित मनुधम के सहयोग से ख़ूबी के साथ स्याम के शासन-प्रबन्ध का सञ्चालन कर रहे हैं।

इनके प्रबन्धकाल में स्याम का सम्बन्ध जापान से अधिक बढ़ गया है, जिससे इधर-उधर यह आरोप किया जाने लगा है कि स्याम की वैदेशिक नीति योरप-विरोधी हो गई है। यहाँ तक कि उसके वैदेशिक मंत्री को इस सम्बन्ध में हाल में सफ़ाई देनी पड़ी है। उन्होंने कहा है कि स्याम आज जापानी माल अधिक परिमाण में ख़रीद कर रहा है, इसका कारण जापान के माल का सस्तापन है। अन्य राष्ट्र भी तो जापानी माल अधिक मात्रा में ख़रीद रहे हैं। ऐसी दशा में यह कहना कि स्याम अपनी वैदेशिक नीति में ब्रिटिशों या फ्रेंचों का विरोधी हो गया है, सरासर निराधार है। स्याम एक स्वाधीन देश है। वह अपने मित्रों को नाराज़ नहीं करना चाहता और न अपनी स्वाधीनता को ही जोखिम में डालना चाहता है।

संयुक्त-प्रान्त की भीषण बाढ़ें

प्रत्येक वर्ष वर्षा-ऋतु में अति वृष्टि के कारण कहीं न कहीं नदियों में भयानक बाढ़ें आकर देश के किसी न किसी भाग में धन-जन की अपार हानि करती ही रहती हैं। इस बार इन बाढ़ों ने संयुक्त-प्रान्त में भीषण रूप धारण किया है। संयुक्त-प्रान्त के सिवा बङ्गाल के नदिया-ज़िले की तथा दामोदर की बाढ़ें भी भीषण रही हैं। मध्यप्रदेश के भी कई भूभागों में तथा दक्षिण-भारत के एल्लोर-तालुक़े में भी बाढ़ों ने ग़ज़ब ढाया है। वास्तव में इस तथा ऐसे दूसरे दैवी प्रकोपों से यह देश वर्ष-प्रतिवर्ष पीड़ित ही रहता है और उनसे उसका निस्तार होना आज तक सम्भव नहीं हो सका। कदाचित् भविष्य में भी न हो सके।

परन्तु इस साल संयुक्त-प्रान्त में जो भीषण बाढ़ आई है, लोगों का कहना है कि ऐसी बाढ़ इधर ४०-४५ वर्ष से नहीं आई है। राप्ती, घाघरा, गोमती और गङ्गा ने भी जहाँ-तहाँ उमड़ उमड़कर अनर्थ किया है। गोरखपुर-ज़िले में राप्ती ने महेवा-बाँध को तोड़कर कोई २० वर्ग भूभाग में ३० गाँवों को जलमग्न कर दिया, जि हज़ार आदमी बेघर-बार हो गये हैं। उस निवासी यह नहीं जानते थे कि उक्त सुदृढ़-बाँध की रात को टूट जायगा और उनका राप्ती की में सर्वस्व विनष्ट हो जायगा। इस अवसर पर अधिकारियों ने आपद्ग्रस्तों की सहायता करने तत्परता दिखाई और उन्होंने नौकाओं का समुचित करके हज़ारों आदमियों को जलमग्न भूभाग से नि सुरक्षित स्थानों में पहुँचाया। यहाँ नहीं, राप्ती ने जाकर बस्ती-ज़िले में खलीलाबाद-तहसील में ५० दिये। यहाँ भी काफ़ी धन-जन की हानि हुई है। की सहायक रोहिणी ने भी गोरखपुर-ज़िले की महा तहसील में २० गाँव जलमग्न कर दिये।

इधर गोमती में दो बार बाढ़ आ चुकी है, और बाढ़ ने अब तक का सारा रेकार्ड तोड़ दिया है। तथा सीतापुर में गोमती के तटवर्ती भूभागों के कि गाँव इसकी बाढ़ में तबाह हो गये हैं। आगे गोमती ने जौनपुर-ज़िले में भी खेती-बारी को काफ़ी पहुँचाई है। उसकी सहायक सई नदी भी उसमें पी रही है। गङ्गा ने भी अवध की ओर उन्नाव के भूभागों के अनेक गाँवों को जलमग्न किया है और ज़िले की सफ़ीपुर और पुरवा तहसीलों के तटवर्ती को विशेष हानि पहुँचाई है।

इन बाढ़ों से संयुक्त-प्रांत में कहाँ कितनी भीषण हुई है, इसका निश्चयपूर्वक अन्दाज़ तो अभी नहीं कि सकता है, पर यह स्पष्ट है कि जलमग्न भूभागों की खेती नष्ट हो गई है तथा वहाँ के निवासियों में अनेक जानें ही नहीं गई हैं, उनका सारा माल-असबाब ही विनष्ट हो गया है, किन्तु उसके साथ उनके अधिकांश भी विनष्ट हो गये हैं। प्रान्तीय सरकार को विपद्ग्रस्त समुचित सहायता के लिए विशेष प्रयत्न करना चाहिए।

नासिक का सैनिक स्कूल

हिन्दुओं में सामरिकता का भाव पुनर्जाग्रत करने विचार से नागपुर के प्रसिद्ध हिन्दू-नेता डाक्टर मुंजे ना में एक फ़ौजी स्कूल खोलने की व्यवस्था कर रहे हैं।

स्कूल की इमारतें बनाने तथा स्कूल-सम्बन्धी आवश्यक सामग्री जुटाने में कोई दो लाख रुपया व्यय होगा। इसके सिवा १ लाख रुपया स्कूल के स्थायी कोष में जमा किया जायगा, जिसका केवल सूद ही स्कूल के काम में ख़र्च होगा। इस प्रकार इस स्कूल की स्थापना के लिए तीन लाख रुपये की अभी माँग है।

इस स्कूल में १० वर्ष की उम्र से लेकर १५ वर्ष की उम्र तक के लड़के भर्ती किये जायँगे। स्कूल में ७ दर्जे होंगे। अँगरेज़ी, विज्ञान और गणित की शिक्षा इस स्कूल में हाईस्कूलों की अपेक्षा अधिक ऊँची दी जायगी। इसमें शिक्षा पाये हुए लड़के अन्त में मेट्रिकुलेशन की परीक्षा में बैठ सकेंगे। शिक्षा अँगरेज़ी के द्वारा दी जायगी। हिन्दी, गुजराती, मराठी और संस्कृत की शिक्षा के लिए विशेष प्रबन्ध रहेगा।

स्कूल में भर्ती होने की फ़ीस ५) होगी। वही लड़के स्कूल में भर्ती किये जायँगे जिन्हें डाक्टरों का बोर्ड पास करेगा। पहले ४ दर्जे तक प्रत्येक लड़के को प्रतिमास २५) फ़ीस देनी पड़ेगी। ५ वें, ६ ठे और ७ वें दर्जे की फ़ीस प्रति मास प्रति लड़का ३०) होगी। इस प्रकार स्कूल की फ़ीस की आय से यह स्कूल स्वावलम्बी बनाया जायगा।

इस स्कूल का नाम 'दि-भोंसला मिलिटरी स्कूल' होगा। इसमें पढ़नेवाले लड़कों को स्कूल के होस्टलों में रहना होगा, जहाँ से वे अनुमति के बिना कहीं आ-जा नहीं सकेंगे। इस स्कूल में सभी उपकरणों से युक्त एक व्यायामशाला, तैरने के लिए एक तालाब और घोड़े की सवारी का अभ्यास करने के लिए एक उपयुक्त मार्ग रहेगा। व्यायाम-सम्बन्धी एवं सैनिक शिक्षा सभी लड़कों के लिए अनिवार्य होगी। देशी तथा पाश्चात्य व्यायाम, खेलकूद, तैराकी, घुड़सवारी, कुश्ती, लाठी और तलवार बाक्सिंग (मुक्केबाज़ी) और जिजुत्सु आदि सभी बातों की शिक्षा ग्रहण करनी पड़ेगी। इसी प्रकार सैनिक शिक्षा में उन्हें बन्दूक़ चलाना तथा क़वायद आदि करना एवं हथियारों के रखने एवं साफ़ करने आदि की बातों की उपयुक्त शिक्षा भी दी जायगी।

इस प्रकार डाक्टर मुंजे के अति विज्ञापित स्कूल का यह अभिनव रूप होगा। इसमें सन्देह नहीं कि उनका यह स्कूल अपने ढङ्ग का एक नया स्कूल होगा, परन्तु इससे साधारण श्रेणी के लड़के सब तरह योग्य होते हुए भी लाभ नहीं उठा सकेंगे। क्या ही अच्छा होता यदि स्कूल के सञ्चालक प्रत्येक कक्षा में कम-से-कम ५ लड़कों से फ़ीस न लेकर उन्हें मुफ़्त ही शिक्षा देने की व्यवस्था कर देते। परन्तु कदाचित् यह बात सैनिकता की भावना के प्रतिकूल हो। ख़ैर, इस कार्य के लिए डाक्टर मुंजे सर्वथा बधाई के योग्य हैं। हम उनकी इस प्रयत्न में सफलता चाहते हैं।

संयुक्त-प्रांत में दूध देनेवाले पशुओं की कमी

संयुक्त-प्रांत के घरेलू पशुओं की जो गणना १९३५ में की गई है उसकी रिपोर्ट से प्रकट होता है कि इस प्रांत में ५७,२६,२४९ गायें और ४०,६०,८७७ भैंसें हैं, जो दूध देती हैं। पहले की अपेक्षा गायों की संख्या रिपोर्ट के साल और भी कम हो गई है। परन्तु भैंसों की संख्या बढ़ी है और उनकी वृद्धि से दूध के परिमाण में कमी नहीं हो पाई है। तो भी इनसे जितना दूध प्राप्त होता है वह प्रान्त के निवासियों के लिए काफ़ी नहीं है। दूध की कमी लखनऊ और बनारस के ज़िलों में अधिक है। इन दोनों नगरों की जो आबादी है उसके लिहाज़ से ज़िलों का क्षेत्र-फल परिमित है और उसमें गोचरभूमि भी उतनी नहीं है। उधर झाँसी की कमिश्नरी में गोचरभूमि बहुत बड़े दायरे में सुलभ है। बाँदा-ज़िले में दूध देनेवाले पशुओं की संख्या भी अन्य ज़िलों की अपेक्षा अधिक है। वहाँ प्रति हज़ार आदमी पीछे ४१४ दूधवाले पशु हैं।

रिपोर्ट में बताया गया है कि दूध देनेवाली गायों की संख्या में ३·६ फ़ी सदी और भेड़ों की संख्या में ७·३ फ़ी सदी की कमी गत पाँच वर्षों में हुई है। यह भी बताया गया है कि इस प्रान्त में जितना दूध होता है वह औसतन प्रति आदमी केवल एक पाव पड़ता है। साथ साथ यह भी कि गोचरभूमि में भी ४ फ़ी सदी की कमी हो गई है।

फलतः साधारण गृहस्थ मैदान के ज़िलों में गोचर-भूमि के अभाव के कारण दूध देनेवाले पशुओं को नहीं पाल सकते, जिसका भयङ्कर परिणाम यह हुआ है कि दूध का अभाव हो गया है और प्रान्त के निवासी निर्वीर्य तथा क्षीणकाय होते जा रहे हैं। यह अवस्था चिन्ताजनक है और इस ओर लोकनेताओं का भी ध्यान जाना चाहिए। इस बात का प्रबन्ध होना चाहिए कि प्रत्येक गाँव के पशुओं के चरने के लिए प्रत्येक गाँव में समुचित व्यवस्था की जाय।

इधर पशुओं की नस्ल बढ़ाने की व्यवस्था में बहुत कुछ सुधार किया गया है। इस ओर सरकार ने काफ़ी ध्यान दिया है। मथुरा, खीरी, झाँसी और नैनीताल के ज़िलों में उसने विशेष 'फ़ार्म' खोल दिये हैं, जिनमें २२,२८६ साँड़ और ८१,३९४ भैंसें हैं। पर उन्नाव, हरदोई और बाराबङ्की के ज़िलों में इन साँड़ों और भैंसों की बहुत अधिक कमी है। पशुओं की वृद्धि के लिए गोचर-भूमियों की बड़ी आवश्यकता है। इस प्रान्त में तराई और बुन्देलखण्ड में तो पशुओं के चरने के लिए बड़े बड़े भूभाग सुलभ हैं, परन्तु अन्यत्र गोचर-भूमियों की बहुत अधिक कमी है, और केवल वर्षा-ऋतु में तथा उसके बाद कुछ दिनों तक ही पशुओं को घास चरने को मिलती है। इसका एक कारण प्रान्त का जलवायु भी है। मैदान के ज़िलों में सारे वर्ष के लिए अच्छी गोचर-भूमि मिल ही नहीं सकती। एक हज़ार पशुओं के पीछे कुल ३६९ एकड़ गोचर-भूमि का औसत इस प्रान्त में है। और जहाँ काफ़ी गोचर-भूमियाँ हैं भी, वहाँ उनकी सुरक्षा की व्यवस्था नहीं है।

ऐसी दशा में यदि पशुओं का ह्रास हो जाय तो क्या आश्चर्य है? और पशुओं के इस ह्रास का एक कारण यहाँ के निवासियों की ग़रीबी भी है। अन्यथा उन पशुओं की यहाँ क्यों कमी होने पाती जो उनके जीवन-धारण के ही नहीं, उनकी सम्पन्नता और उनके स्वास्थ्य दोनों के मुख्य साधन हैं। परन्तु यह दुर्भाग्य की बात है कि वास्तव में बात ऐसी ही है। वायसराय महोदय ने पशुओं की नस्ल सुधारने तथा उनकी संख्या के बढ़ाने की जिस आयोजना का श्रीगणेश किया है यदि वह सफल हो गई तो उससे निस्सन्देह इस देश की दरिद्र प्रजा का बड़ा उपकार होगा।

जापान की जन्म-संख्या में वृद्धि

जापान की जन-संख्या दिन-प्रति-दिन बढ़ती ही जा रही है। परन्तु वहाँवाले सन्तान-निग्रह का आन्दोलन करने के स्थान में अपनी बढ़ती हुई जन-संख्या को अन्य देशों में खपाने और उनके भरण-पोषण की उपयुक्त व्यवस्था करने के लिए जापान के साम्राज्य के विस्तार की ही बात ध्यान में रखते आये हैं। जापान स्वाधीन ही नहीं, अति शक्तिशाली भी है, अतएव वह अपनी बढ़ती हुई जन-संख्या को देखकर क्यों घबराने लगा। १९३५ के साल में वहाँ १९३२ की अपेक्षा १०,२८,६२३ आदमियों की वृद्धि हुई है। गत वर्ष जापान में २१,९०,६८१ बच्चे पैदा हुए थे। १९३४ की अपेक्षा १९३५ में १,४६,८७४ बच्चे अधिक पैदा हुए। और मृत्यु ११,६२,०५८ मनुष्यों की हुई। अर्थात् १९३४ की अपेक्षा १९३५ में २,५२८ आदमी कम मरे। मतलब यह कि जापान में मृत्यु-संख्या घट रही है और जन्म संख्या बढ़ रही है। इससे यह बात भी प्रकट होती है कि जापानी लोग स्वस्थ और नीरोग भी हैं। ऐसी दशा में जापान का प्रबल होना सर्वथा स्वाभाविक है।

डाक-विभाग की कर्तव्यपरायणता

भारत-सरकार का डाक-विभाग एक बहुत ही व्यवस्थित और कर्तव्यपरायण विभाग है। परन्तु यहाँ के डाक-विभाग को अन्य देशों की अपेक्षा लिपियों की बहुलता के कारण कहीं अधिक असुविधा झेलनी पड़ती है। इस कठिनाई को हल करने के लिए भारतीय डाक-विभाग ने बम्बई, कलकत्ता, मदरास, लाहौर, लखनऊ और नागपुर में अपने विशेष दफ़्तर खोल रक्खे हैं। ये 'डेड-लेटर-आफ़िस' कहलाते हैं। जो चीज़ें ग़लत पतों के कारण या पतों की लिपियों के न जानने के कारण यथास्थान नहीं पहुँचाई जा सकतीं वे सब इन्हीं दफ़्तरों को भेज दी जाती हैं, जहाँ से वे या तो यथास्थान पहुँचा दी जाती हैं या भेजनेवाले को लौटा दी जाती हैं। पिछली मार्च में ख़त्म होनेवाली छमाही में उक्त छहों दफ़्तरों में ३५,००,००० चीज़ें भेजी गईं, जिनको यथास्थान पहुँचाने के लिए इन दफ़्तरों की सहायता की आवश्यकता हुई।

इन दफ़्तरों से उक्त ३५ लाख चीज़ों में साढ़े बारह लाख चीज़ें यथास्थान फिर भेजी गईं, १५ लाख भेजनेवालों के पास इसलिए लौटा दी गईं कि या तो उनके पहुँचाने के स्थान का पता काफ़ी नहीं था या वह पढ़ा नहीं जा सका। कोई ४ लाख चीज़ों का कोई निश्चय न हो सका कि किसने भेजा और कहाँ को भेजा, अतएव वे

इन दफ़्तरों में जमा कर दी गई। उक्त छमाही के भीतर डाकघरों से ५८,५०,००,००० चीज़ें सर्वसाधारण को पहुँचाई गईं। इस संख्या को देखते हुए इन दफ़्तरों में जमा कर दी जानेवाली चीज़ों की संख्या नगण्य-सी है।

लिपियों और भाषाओं की बहुलता की कठिनाई को इन दफ़्तरों ने प्रशंसनीय रूप से दूर किया है। इन दफ़्तरों में विशेष शिक्षा प्राप्त दो सौ कर्मचारी नियुक्त हैं, जिन्हें ३१ भाषाओं और ४२ लिपियों में लिखे गये पते पढ़ने पड़ते हैं।

जर्मनी की एक विचित्र व्यवस्था

जर्मनी के हर हिटलर अपने राष्ट्र को स्वस्थ और सबल बनाने के लिए तत्सम्बन्धी सारे उपायों में एक भी उपाय उठा नहीं रखना चाहते। उन्होंने कुछ वंश-जात रोगों का उन्मूलन करने के लिए एक नया क़ानून बना दिया है। इसके अनुसार वैसे रोगी वहाँ जन-शक्ति से रहित किये जा रहे हैं, ताकि वे रोगी सन्तान ही न उत्पन्न कर सकें। इस व्यवस्था के अनुसार वहाँ जो गणना की गई है उसमें कुल १२ लाख, अर्थात् सारी जन-संख्या में २ फ़ी सदी ऐसे रोगी व्यक्ति मिले हैं। इन्हीं के साथ इनके रोगों को निःशेष कर देने के लिए सारे देश में कोई २५० बोर्ड स्थापित किये गये हैं, जो उन १२ लाख रोगियों को जनन-शक्ति से रहित बना देंगे। उन्होंने अब तक ८५ हज़ार व्यक्तियों को वैसा करने के लिए सूचना ही नहीं दी है, किन्तु उनमें ७५ फ़ी सदी वैसे बना भी दिये गये हैं। शेष २५ फ़ी सदी अपील करने पर छोड़ दिये गये हैं, वे जननशक्ति से नहीं वञ्चित किये गये। और इस उपाय का प्रयोग वहाँ केवल पुरुषों पर ही नहीं हो रहा है। स्त्रियाँ तथा लड़के एवं लड़कियाँ भी वन्ध्या एवं जननशक्ति से रहित बनाये जा रहे हैं। १९३४ में २८ हज़ार स्त्रियाँ वन्ध्या बना दी जाने के लिए छाँटी गई थीं। और इस विषय के इस क़ानून का जर्मनी में कड़ाई के साथ प्रयोग हो रहा है। यह व्यवस्था वास्तव में अभिनव है। देखना है कि इससे जर्मन-राष्ट्र का कहाँ तक हित होता है। यदि यह व्यवस्था उपयोगी सिद्ध होगी तो आश्चर्य नहीं है कि इसका प्रचलन अन्य देशों में भी हो और इस प्रकार संसार के भिन्न भिन्न राष्ट्र अधिक स्वस्थ तथा सबल बनाये जाने लगें।

बच्चों पर दूध का परीक्षण

वाइसराय लार्ड लिनलिथगो के आदेशानुसार शिमला की म्यूनिसिपेलिटी ने अपने यहाँ के स्कूलों के ४२ बच्चों को मुफ़्त दूध देने की व्यवस्था की थी। इस व्यवस्था को उसने गत मई के महीने से कार्य का रूप दिया था। इसके फलस्वरूप इस अल्पकाल में ही उन दूध पानेवाले बच्चों के वज़न में और ऊँचाई में आश्चर्यजनक वृद्धि ही नहीं हुई है, किन्तु उनमें अधिक चेतनता का सञ्चार हुआ है एवं वे एक प्रकार से खिल-सा उठे हैं। यही नहीं, जिन साधारण शारीरिक कष्टों के कारण वे स्कूल के अस्पताल में प्रायः आते रहते थे उनसे भी वे बचे रहे। इस सम्बन्ध में जो लेखा उक्त म्यूनिसिपेलिटी ने रक्खा है उससे प्रकट होता है कि लड़कियों के वज़न में जो वृद्धि हुई है उसका औसत ५·२५ पौंड है। इसी प्रकार उनके क़द में जो वृद्धि हुई है उसका औसत ०·७८ इंच है। परन्तु लड़कों का यही औसत वज़न में ३·९२ पौंड और ऊँचाई में ०·८ इंच है। इस गत दो महीने के ही परीक्षण से यह बात भले प्रकार सिद्ध हो गई है कि बच्चों के लिए दूध कितनी अधिक आवश्यक वस्तु है। यह वास्तव में बड़े परिताप की बात है कि उसी वस्तु का उन्हें सर्वथा अभाव है। यह प्रकट है कि सरकार देश के सभी बच्चों को मुफ़्त दूध नहीं दे सकती है, तथापि इस योजना के अधिकाधिक व्यापक रूप धारण कर जाने पर इससे देश का अपूर्व लाभ होगा। ऐसी दशा में 'दूध पिओ' के आन्दोलन को देश के नेताओं को अब अपने हाथ में लेना चाहिए। तभी उक्त योजना व्यापक एवं सार्थक सिद्ध होगी। और देशवासियों के, विशेष कर हिन्दुओं के स्वास्थ्य की दुरवस्था को देखते हुए दूध पिओ का आन्दोलन बहुत ही अधिक वाञ्छनीय है।

भूल-सुधार

इस मास की 'सरस्वती' में २३२ पृष्ठ पर श्री सुमित्रानन्दन पन्त की एक कविता छपी है। उसके दूसरे छन्द की चौथी पंक्ति पाठक इस प्रकार पढ़ें—

छाया-प्रकाश के रूप रङ्ग



ज्ञानोदय

चित्रकार—श्रीयुत [illegible]



सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

आक्टोबर १९३६ | भाग ३७, खंड २ संख्या ४, पूर्ण संख्या ४४० | आश्विन १९९३

समाधान

लेखक, श्रीयुत सरदार नर्मदाप्रसादसिंह

सुख के स्वप्न का अवसान हुआ,
    व्यथा-वारिधि का थका नाविक हूँ।
प्रिय वासना भूत के भस्म का ले,
    नव व्योम अनन्त में चातक हूँ॥
इस दीनता में निज वेदना से,
    किसी के सुख का यदि साधक हूँ।
बड़ भाग भले हँस लें हँस लें,
    अब हास्य ही का उत्पादक हूँ॥

उपालंभ ही में अवलम्ब मिला,
    त्यों विराग में राग अराधना है।
घृणा ही सख्य का शुभोद्यापन है,
    अरु व्यंग ही में सद्भावना है॥
हतभाग्य अकेतन विस्मृत हूँ,
    त्यों तिरस्कृत हूँ पर सान्त्वना है॥
घृणा में, हँसी में, अरु व्यंग में भी,
    उसी मूर्त्ति की समान उपासना है॥

सुख में इस दुख का ह्रास रहा,
    दुख में चिर शान्ति की साधना है।
भव में इस अन्त के अंकुर थे,
    अब अन्त में उद्भव भावना है॥
उदै में निशि की घटा घेरे रही,
    पर रैन में बासर वासना है॥
इसी वेदना में समवेदना है,
    इसी ताड़ना में मनो-कामना है॥

पर-राष्ट्र-नीति

लेखक, श्रीयुत राममनोहर लोहिया

मनुष्य का आपसी रिश्ता उसे कुटुम्ब में इकट्ठा करता है, पंचायत और जाति के नाते में बाँधता है, एक देश, राष्ट्र अथवा राज्य की उसे एकता देता है। कुटुम्ब, जाति या राष्ट्र का सम्बन्ध काफ़ी मज़बूत सम्बन्ध होता है, इतना मज़बूत कि आदमी सामूहिक फ़ायदे के लिए अपना निजी नुक़सान सहने के लिए राज़ी होता है, कभी कभी तो जान भी न्योछावर कर देता है।

इन सब सम्बन्धों के अलावा एक और सम्बन्ध है, जिसे हम अक्सर भूल जाया करते हैं। वह है मनुष्य का मनुष्य से सम्बन्ध—आदम-जाति का सम्बन्ध। चाहे वह चीनी हो या हिन्दुस्तानी, नीग्रो हो या अँगरेज़, है तो आदमी ही। एक दूसरे के साहित्य, विज्ञान और कला से लाभ उठाने की संभावना है, एक दूसरे के देश की अच्छी बातों का मनन कर खुद और अच्छा बनने की संभावना है, एक दूसरे के गले लगकर सारी दुनिया को शान्तिमय उन्नति की ओर ले जाने की संभावना है।

लेकिन यह नहीं हो पाता। अक्सर युद्ध होते हैं। पिछली ४ बरस की लड़ाई में तो एक करोड़ से भी अधिक आदमी मरे और जब गोला और गैस नहीं भी बरसते रहते तब भी कम से कम उनके लिए तैयारियाँ तो होती रहती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार या संधि-क़रारों की भी यही उद्देश्य रहता है कि किसी तरह देश की राजनैतिक और फ़ौजी ताक़त बढ़ती रहे, जिससे व्यापार का फ़ायदा कहीं कम न हो जाय। मतलब यह कि आदम-जाति का आपसी सम्बन्ध शान्ति, उन्नति और प्रेम की बुनियाद पर नहीं, बल्कि युद्धमय स्वार्थ पर ही अब तक जमा हुआ है।

इसी सम्बन्ध को पर-राष्ट्र-नीति कहते हैं। एक राज्य या राष्ट्र में संगठित समाज का किसी दूसरे समाज के साथ की नीति को पर-राष्ट्र-नीति कहते हैं। यों तो चाहे बतौर मिसाल के इक्के-दुक्के अँगरेज़ या नीग्रो या हिन्दुस्तानी कहीं सफ़र में एक-दूसरे से मिल भी जायँ, शायद दोस्ती भी हो जाय, लेकिन समस्त अँगरेज़-जाति का समस्त नीग्रो या हिन्दुस्तानी जाति के साथ व्यावहारिक सम्बन्ध तो उसके राष्ट्र की पर-राष्ट्र-नीति से ही मुताबिक़ होता है।

इस पर-राष्ट्र-नीति की बुनियाद जैसा कि वर्तमान संसार और मानवीय इतिहास अच्छी तरह बताता है, युद्धमय स्वार्थ है, और यह बिलकुल स्वाभाविक भी है। अगर हम राष्ट्र या राज्य की उत्पत्ति और क्रमविकास का अध्ययन करते हैं तो हमें राष्ट्र की सबसे बड़ी ज़रूरत यह मालूम होती है कि अपने को उत्तरोत्तर मज़बूत बनावे। जब से आधुनिक राष्ट्र बने हैं, और सोलहवीं सदी में फ़्रांस, स्पेन और इँगलिस्तान बन ही चुके थे, तभी से उन्हें अपनी सत्ता, अपनी एकता और बाहरी हमलों से अपनी ज़मीन की रक्षा के लिए जी-तोड़ परिश्रम करना पड़ा है। पहले तो अँगरेज़ों को स्पेन के जहाज़ी बेड़े अर्मेडा का सामना करना पड़ा, उसे हराने के लिए ताक़त बढ़ानी पड़ी, और फिर इस डर से कि कहीं और हमला न हो, अपनी राज्य-सत्ता को सिर्फ़ क़ायम ही नहीं रखना पड़ा, वरन उत्तरोत्तर बढ़ाना भी पड़ा। अपनी फ़ौज को बढ़ाते रहना, ख़ास ख़ास राष्ट्रों से समय समय पर दोस्ती करते रहना जिससे दुश्मन का अकेले सामना न करना पड़े, दूसरे देशों पर अपनी राज्य-सत्ता का आधिपत्य जमाना जिससे वहाँ के जान और माल भी अपनी हिफ़ाज़त के काम आवें, यह सब कार्रवाइयाँ आधुनिक राष्ट्रों को करनी पड़ी हैं और अब भी करनी पड़ती हैं।

अगर किसी राष्ट्र ऐसा करता नहीं, फूलता-फलता नहीं, तो ख़त्म हो जाता है। मुक़ाबिले और मुठभेड़ की दुनिया में रहकर कोई दूसरा चारा भी नहीं है।

मुक़ाबिले और मुठभेड़ के आधुनिक संसार को जब हम समझने की कोशिश करते हैं तब हमें पर-राष्ट्र-नीति का सबसे बड़ा पाया मिलता है—साम्राज्य और ग़ुलाम-राज्य

का पारस्परिक सम्बन्ध। हिन्दुस्तान के पैंतीस करोड़, अफ़्रीका के छः करोड़, अन्य देशों और द्वीपों के बाशिन्दों की कोई पर-राष्ट्र-नीति है तो वह अँगरेज़ी राज्य से साम्राज्य-सम्बन्ध है। इन्डो-चीन तथा उत्तरी पश्चिमी अफ़्रीका का इसी तरह फ़्रांस से सम्बन्ध है। जावा सुमात्रा का हालैंड के साथ है। और चीन के पैंतालिस करोड़ तो अँगरेज़ी राज्य, अमरीका, फ़्रांस, जापान के साम्राज्य-सम्बन्ध से गुँथे हुए ही हैं, मानो चीन का राष्ट्रीय और साम्यवादी आन्दोलन काफ़ी मज़बूत हो गया है। मतलब यह कि दुनिया का आधे से भी ज़्यादा हिस्सा, एक अरब (१०० करोड़) से भी ज़्यादा लोग, सिर्फ़ एक पर-राष्ट्र-नीति जानते हैं और वह है साम्राज्य की सेवा करना, उसकी जान और माल से हिफ़ाज़त करना। इन्हीं में अमरीका के संयुक्त राष्ट्र के एक करोड़ से अधिक नीग्रो लोग भी शामिल हैं। इन सबों के लिए मानवता का सम्बन्ध सिर्फ़ एक अर्थ रखता है—साम्राज्य ग़ुलाम-सम्बन्ध। अगर ये लोग दूसरे देश के निवासियों के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं, उनके साहित्य, विज्ञान, कला और व्यापार से अपनी तरक़्क़ी करना चाहते हैं, तो उन्हें साम्राज्य के तंग, निचले और अक्सर बन्द दरवाज़े के सिवा और कोई मार्ग नहीं।

दुनिया का आधे से ज़्यादा हिस्सा तो यों ही चला गया। बाक़ी हिस्से की पर-राष्ट्र-नीति की बुनियाद, जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं, युद्धमय स्वार्थ है। दुनिया के बड़े राष्ट्र हमेशा इसी फ़िक्र में रहते हैं कि किसी तरह साम्राज्य का विस्तार करें, व्यापार बढ़ावें, अपनी ताक़त और शान दूसरों से ऊँची रक्खें। इसी लिए इनमें समय समय पर मेल-अनमेल, जोड़-बेजोड़ हो जाया करता है। आजकल इन राष्ट्रों के मेल-अनमेल की नीति एक ख़ास तरह की मालूम होती है। एक तरफ़ तो फ़्रांस, रूस, स्पेन जैसे राष्ट्र और दूसरी तरफ़ जर्मनी और इटली जैसे राष्ट्र हैं। इँगलिस्तान की अवस्था छछूँदर जैसी है। फ़्रांस आदि का दल राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में प्रगतिशील माना जाता है। यह कैसे? आख़िर फ़्रांस का भी साम्राज्य है, उसे भी अपनी रक्षा के लिए ताक़त बढ़ानी पड़ती है।

फ़्रांस प्रगतिशील है या नहीं, इसे समझने के लिए हमें रूस की पर-राष्ट्र-नीति पर नज़र दौड़ानी होगी। यह तो शायद सभी मानेंगे कि रूस की पर-राष्ट्र-नीति की नींव

इस लेख के लेखक श्रीयुत लोहिया बर्लिन के पी० एच० डी० हैं। इस... ये कांग्रेस के वैदेशिक विभाग के... हैं। इन्होंने पर-राष्ट्र-नीति के... नैतिक रूप का इस लेख में बहुत... सरल ढंग से विश्लेषण किया है... रोचक और बोधगम्य है।

दुनिया के और राष्ट्रों जैसी नहीं है। रूस को... ज़रूरत नहीं, न ज़रूरत है उसे ऐसे व्यापार और... धन्धे की जिसकी बुनियाद पर-शोषण है। इस... यह है कि रूस की राष्ट्रीय नींव ही बिलकुल अलग... उसमें और अमरीका या इँगलिस्तान में कोई... नहीं। पन्द्रहवीं सदी से अब तक आधुनिक राष्ट्र... हैं। फ़्रांस, इँगलिस्तान, अमरीका, जर्मनी, इटली, आदि ऐसे ही राष्ट्र हैं। उनकी सबसे बड़ी बुनियाद... निजी विकास, वैयक्तिक पूँजी, वैयक्तिक उद्योग-धंधे... राष्ट्रों में ज़मीन, कल-कारख़ाने, पूँजी समस्त राष्ट्र के... किन्तु कुछ व्यक्तियों के अधीन हैं। पर रूस में... राष्ट्रीय या सामाजिक सम्पत्ति हैं। इस तरह सब... उद्योग-धंधों में लगाने पर जो नफ़ा होता है वह सारे... के काम आता है। और देशों की तरह कुछ... आदमी इस नफ़े के बड़े हिस्से को अपना नहीं बना... इस बात की गुंजाइश नहीं कि पहले तो अपना... धनी बने, फिर और देशों के समाज पर वहीं... सवार हो जायँ। इसी लिए आधुनिक दुनिया में... अकेला राष्ट्र है, जिसकी पर-राष्ट्र-नीति की बुनियाद... स्वार्थ नहीं है।

लेकिन फ़्रांस कैसे प्रगतिशील हुआ? उसकी... तो वही है जो जर्मनी या इँगलिस्तान की है। बात तो... है, लेकिन फ़्रांस की मौजूदा सरकार और अधिकांश... अगर इस नींव को तोड़ना नहीं चाहती या तोड़ नहीं... तो भी कम से कम इसके नतीजे और ख़ून...

तो प्रकट नहीं होने देगी। फ्रांस से और रूस से विश्व-शान्ति के लिए एक समझौता भी हुआ है। इसी लिए यह कहा जाता है कि तुलनात्मक दृष्टि से फ्रांस प्रगतिशील है। लेकिन इस सिलसिले में कोई अन्तिम राय कह देना ग़लत होगा। आसार को हम लक्षण नहीं मान सकते। अब फ्रांस की सरकार का इन्डो-चीन या मोरक्को के साथ कैसा बर्ताव होगा, खुद अपने देश के ग़रीब मज़दूर और किसान को कैसे आर्थिक हक़ देगी और विश्व-शान्ति की रक्षा के लिए कैसे उपाय काम में लावेगी, इसका उत्तर तो आज नहीं दिया जा सकता।

मानवता का सम्बन्ध आज साम्राज्य, गुलाम और युद्ध-व्यापार की बुनियाद पर रची हुई राष्ट्रनीति के कुत्सित रंग से रँगा हुआ है। किस समय में संसार इस कलंक को मिटा सकेगा, कहना मुश्किल है। लेकिन यह ज़रूर कहा जा सकता है, दुनिया के एक अरसे से भी ज़्यादा लोग जाग तो ज़रूर गये हैं, खुद मज़बूत साम्राज्यवादी राष्ट्रों के मज़दूरों और ग़रीबों के ख़ास ख़ास गिरोह भी इनसे गले मिलना चाहते हैं। कलंक का मिटना अब सदियों का काम नहीं, वर्षों का ही रह गया है। वह समय ज़रूर आवेगा जब मानवता का सम्बन्ध मनुष्य का सबसे बड़ा सम्बन्ध होगा। वह प्रेम, बराबरी, मित्रता, दया और सहानुभूति की भावनाओं को जगावेगा, जिसमें राष्ट्र और राष्ट्र में लड़ाई की गुंजाइश न होगी।

गीत

लेखक, श्रीयुत वन्देअली फ़ातमी

चकित-सा मैं देखता हूँ,
भ्रमित-सा मैं देखता हूँ,
प्रकृति की यह रूप-रेखा अंकित-सा मैं देखता हूँ।

सुधा बरसाता सुधाकर,
विष वही बनती जलज पर;
प्राण फिर उसकी प्रभा को भ्रमित-सा मैं देखता हूँ।

प्रेम-विष जिस पर चुवा है,
वही इन्दीवर हुआ है;
औ' उसे भव-दृष्टि में भी कलित-सा मैं देखता हूँ।

वहि मिलता प्राण जिससे,
वारि मिटती प्यास जिससे;
किंतु गंगा में, चिता में अहित-सा मैं देखता हूँ।

प्रकृति का यह रूप लोहित,
और उस पर जीव मोहित;
वाक् तो जित, मौन को क्यों अजित-सा मैं देखता हूँ।

चल चुका हूँ यद्यपि इतना,
कोई कहता, 'और इतना';
पास लक्ष्यस्थान है पर थकित-सा मैं देखता हूँ।

लिखित-सा मैं देखता हूँ,
तड़ित-सा मैं देखता हूँ;
उस अनन्ता सस्मिता को प्रकृत-सा मैं देखता हूँ?

मेरी शिलाँग-यात्रा

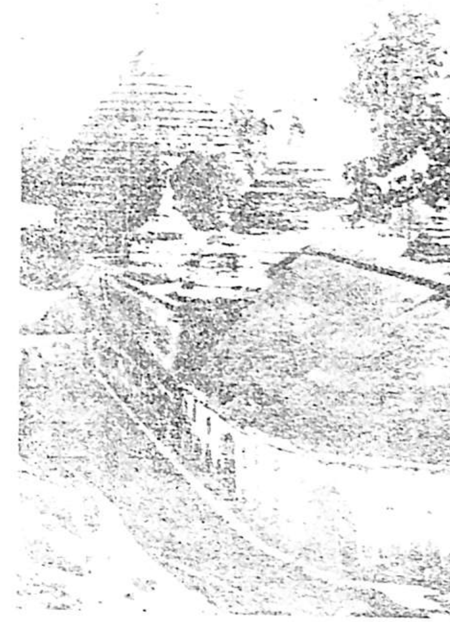
लेखक, बाबू सङ्गमलाल अग्रवाल, एम० ए०, एल-एल० बी०, एडवोकेट

बाबू सङ्गमलाल प्रयाग के एक प्रमुख नागरिक हैं। यहाँ का प्रसिद्ध 'महिलाविद्यापीठ' इन्हीं के अथक परिश्रम का फल है। अपने अवकाश का समय ये इसी की उन्नति में लगाते रहते हैं। इसी सिलसिले में इन्होंने हाल में आसाम की यात्रा की थी। इस लेख में वहाँ की सामाजिक स्थिति पर आपने बड़े सुन्दर ढङ्ग से प्रकाश डाला है।

(१)

महात्मा गांधी ने सन् १९२६ में आसाम का दौरा किया था। उस समय उन्होंने कविन्वमय भाषा में आसाम का बड़ा सुन्दर बयान किया था। उसी समय से मेरी इच्छा आसाम और ब्रह्मपुत्रनद के जिसका वर्णन मैं भूगोल में पढ़ा करता था, देखने की थी। सन् १९३४ में आसाम से कुछ लड़कियाँ प्रयाग के 'महिला-विद्यापीठ' में हिन्दी का अध्ययन करने आईं। उनके सम्पर्क से आसाम मेरे अधिक निकट आ गया और उसके देखने की इच्छा और अधिक प्रबल हो गई। हिन्दुस्तान में केवल आसाम ही एक ऐसा प्रान्त था जिसका भ्रमण मैंने नहीं किया था। इस कमी को पूरा करने की भी इच्छा बहुत दिनों से थी। फलतः आसाम-प्रान्त देखने का सौभाग्य मुझे गत जून की छुट्टियों में प्राप्त हो गया।

रेलगाड़ी में मुझे एक आसामी सज्जन मिल गये। उन्होंने आसाम के इतिहास का अच्छा अध्ययन किया है, वे अपने प्रान्त से अच्छा प्रेम करते हैं और उसके निवासी होने का उनको गर्व है। आसाम के सम्बन्ध में



[कामाख्या का मन्दिर। इसका सबसे नये का भाग ५,००० वर्ष का पुराना है।]

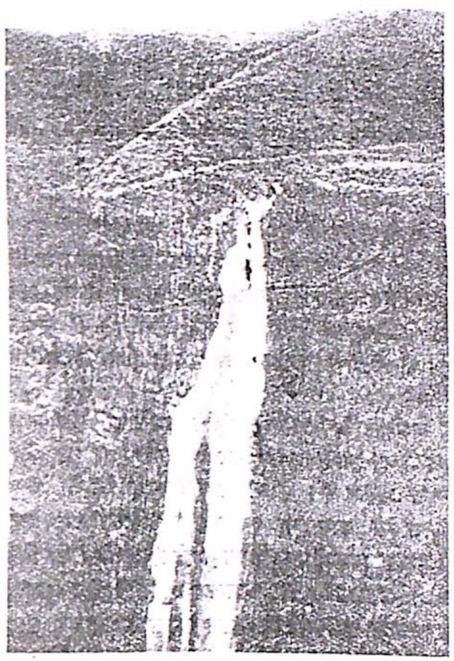
मैंने उनसे कई बातें पूछीं। उन्होंने बतलाया कि आसाम शब्द का अर्थ 'बिना जीता हुआ' है। मुसलमानों के समय में इस प्रान्त को मुसलमानी राज्य में सम्मिलित करने के लिए कई प्रयत्न किये गये, लेकिन सभी असफल हुए। अँगरेज़ों ने भी इसको कौशल से ही अपने अधिकार में किया है।

बातचीत के सिलसिले में मैंने उनसे कहा कि उत्तर भारत में कामाख्या या कामरूप के सम्बन्ध में कई किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। लोगों की धारणा है कि जो मनुष्य कामरूप या कामाख्या जाता है वह फिर लौटकर वापस नहीं आता। वहाँ जादू का बड़ा ज़ोर है। वहाँ की स्त्रियाँ आदमी को दिन में भेड़ा बनाकर रखती हैं और रात को फिर आदमी बना लेती हैं। उनके वश में मनुष्य इतना हो जाता है कि इच्छा होने पर भी वह अपने देश को नहीं लौट सकता। यह सुनकर आसामी सज्जन बहुत

होते। मैंने उनसे उत्तर-भारत में इस धारणा के प्रचलित होने का कारण पूछा। यही प्रश्न मैंने आसाम पहुँचकर और कई आदमियों से भी किया। उन लोगों की बातचीत से तथा जो मैंने स्वयं वहाँ देखा उससे मुझे इस निर्मूल धारणा का कारण यह मालूम हुआ कि रेलगाड़ी के चलने के पहले संयुक्त-प्रान्त और बिहार के वे ही लोग आसाम जाते थे जिनको अपने घर में कोई ठिकाना नहीं होता था और बड़े कष्ट का जीवन व्यतीत करते थे। उनको आसाम पहुँचने में सालों लग जाते थे। मार्ग में बहुत नदियों के कारण बड़ी दिक्कतें उठानी पड़ती थीं। वहाँ पहुँचकर अनेक रोगों का शिकार होना पड़ता था। इसलिए बहुत कम आदमी जाते थे और जो थोड़े लोग जाते भी थे वे लौटकर नहीं आते थे। इसके अतिरिक्त संयुक्त-प्रान्त में दिन भर परिश्रम करने के बाद भी पेट भर भोजन उनको नहीं मिलता था। आसाम की भूमि बहुत उप-



[बीडन-जल-प्रपात—शिलांग]



[बिशप-प्रपात—शिलांग]

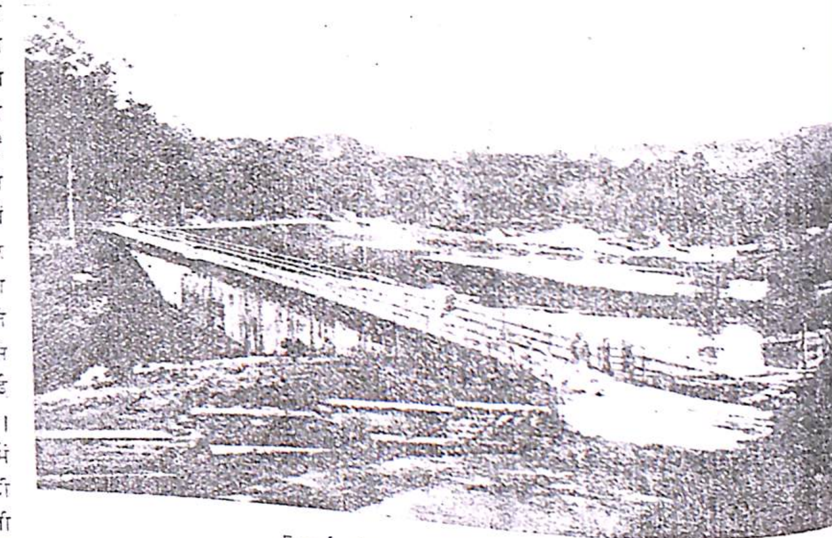
जाऊ है। धान केवल छिड़क देने से ही फसल तैयार हो जाती है। जोतने-बोने का कष्ट ही नहीं उठाना पड़ता। वहाँ की स्त्रियाँ भी इतनी मेहनती होती हैं कि उनके पुरुषों को बहुत कम काम करना पड़ता है। ऐसी दशा में जब बिना मेहनत के भोजन मिले और गृहस्थी का समस्त सुख भी प्राप्त हो तो 'देश' को कौन लौटना पसन्द करेगा? आसाम में अब भी ऐसे मारवाड़ी हैं जो सालों तक अपने देश को नहीं लौटते। उत्तर भारत में भेड़ बनाने की निर्मूल धारणा का यही कारण मालूम होता है। जादू की बात केवल कपोलकल्पित है।

(२)

अमीन गाँव तक रेलगाड़ी जाती है। उसके बाद स्टीमर से ब्रह्मपुत्र को पार करके आसाम के प्रसिद्ध नगर गोहाटी में पहुँचना होता है। गोहाटी को आसाम-प्रान्त

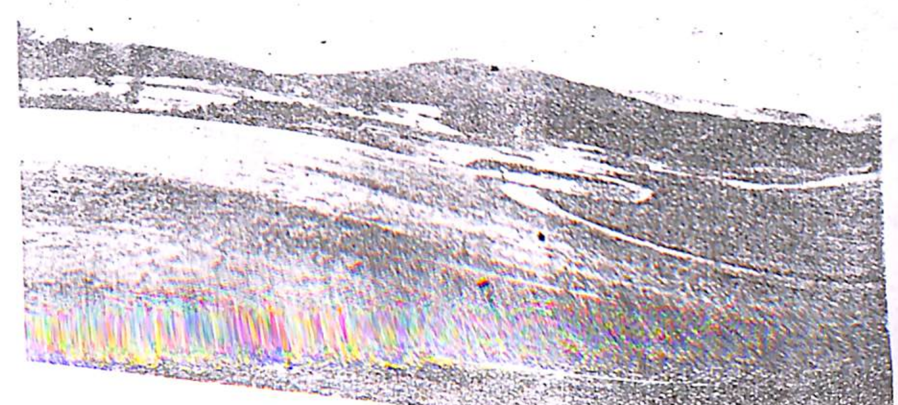
का फाटक कह सकते हैं। अमीन गाँव के स्टेशन पर उतरते ही सुन्दर पहाड़ियाँ और हरी-भरी ज़मीन चारों ओर दृष्टिगोचर होती है। ऐसा मालूम होने लगता है, जैसे कश्मीर का कोई सुन्दर भाग हो।

स्टीमर में बम्बई की प्रसिद्ध श्रीमती अमृतकुँवर तथा उनके पति से भेंट हो गई। स्टीमर से किनारे पर उतरते ही आसाम के प्रमुख कांग्रेसी नेता और गोहाटी म्युनिसिपल्टी के चेयरमैन श्री गोपीनाथ जी बारडोली तथा श्री चाँदमल जी सरावगी रईस और म्युनिसिपल कमि-
लीलाधर जी बरुआ इत्यादि के दर्शन हुए। मेरे
का प्रबन्ध वहाँ के लोगों ने श्री चाँदमल जी के



[वार्ड-झील और उसका बाँध—शिलांग]

किया
आप
की 'सु
था लि
नाम की
धनी मा
उर्म के
हैं। ये
आपका
की
प्रान्त
एजेंट
कहा
कि इन
के
की
लाल

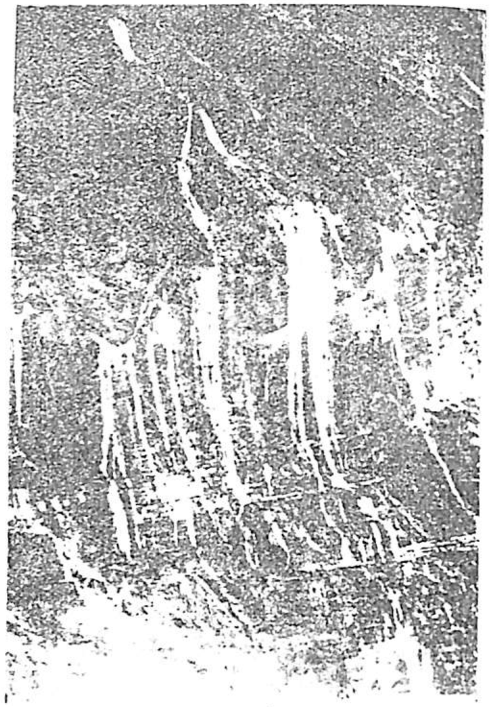


[गोल्फ़ के खेल का मैदान—शिलांग]

वार्षिक है। प्रान्त भर में इनकी दूकानें हैं। इन लोगों ने मेरा बड़ा स्वागत किया और मुझको घर का आराम दिया।

(३)

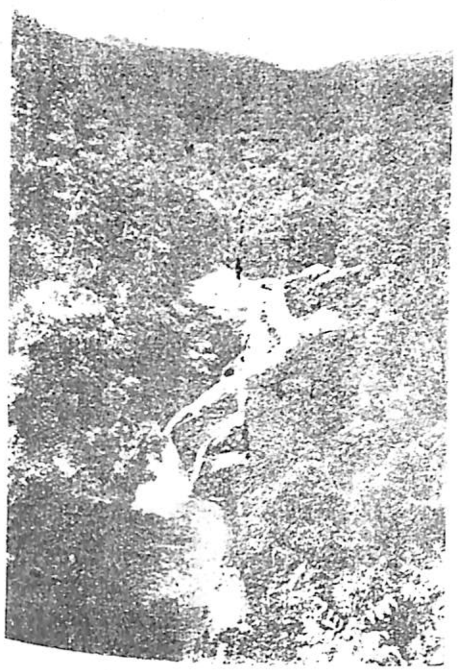
जाते समय मैं एक ही दिन गौहाटी में ठहरा। गौहाटी में इतने पुराने दर्शनीय मन्दिर हैं कि इसको 'मन्दिर का नगर' कह सकते हैं। इसका सबसे प्रसिद्ध मन्दिर कामाख्या-देवी का है। यह भारत का एक बहुत प्रसिद्ध मन्दिर है। एक ऊँची पहाड़ी पर बना हुआ है। मन्दिर के चारों ओर का दृश्य बहुत ही मनोरम है। मन्दिर का सबसे पुराना भाग २,००० वर्ष के लगभग का बना है। गत ५०० वर्षों में भक्त लोगों ने कुछ इमारतें और बना दी हैं। मन्दिर का भीतरी भाग बहुत ही अन्धकारपूर्ण और सँकरा है। दीपक रात-दिन जलता रहता है। मन्दिर में कोई मूर्ति नहीं है। केवल स्त्री के गुह्यांग का चिह्न है, जिसकी पूजा होती है। कहा जाता है कि सती के



[चेरापूँजी का ससमई जल-प्रपात—१८०० फ़ुट]

मरने पर जब महादेव जी बहुत व्याकुल हुए तब उनके शव को लेकर वे भारतवर्ष में घूमे। शव के भिन्न भिन्न भाग ५१ स्थानों में गिरे और वे सब स्थान तीर्थ बन गये। कामाख्या में शव का गुह्यांग गिरा था। उसी की यहाँ इस मन्दिर में पूजा होती है।

इस मन्दिर के पंडे-पुजारी उत्तर भारत में गये हैं और अब भी अच्छी हिन्दी बोलते हैं। उत्साही नवयुवकों ने यात्रियों की सुविधा के लिए यहाँ दो वाचनालय खोल रक्खे हैं। आसामियों में वैष्णवों की संख्या अच्छी है। वे इस मन्दिर के भीतर नहीं जाते।

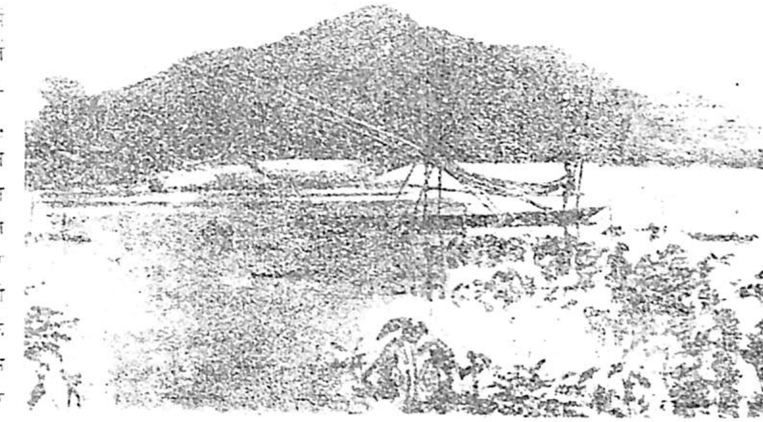


[स्प्रेड ईगल-प्रपात—शिलांग]

(४)

तीसरे पहर महिला-विद्यापीठ में पढ़नेवाली लड़कियों के घर गया। एक विद्यार्थिनी के घर को छोड़कर शेष के घर मिट्टी के थे और फूस से छाये हुए थे। उनके चारों

और काफ़ी गन्दगी थी। हरिजनों के सम्बन्ध में यहाँ कुछ विचित्र बातें मालूम हुईं। संयुक्त-प्रांत में चमार, मेहतर, डोम इत्यादि को हरिजन कहते हैं। मल्लाहों या मछली मारनेवालों को हरिजन नहीं कहते। पर आसाम में मछुए ही सबसे छोटी जाति के समझे जाते हैं। उनसे छोटी जाति वहाँ और कोई नहीं होती और वही लोग आसाम के



[गौहाटी में कामाख्या पहाड़ी के पास मछुए मछली का शिकार कर रहे हैं।]

हरिजन हैं। आसामी लोग मेहतर और अहीर का काम नहीं करते। इनके काम यहाँ बहुत नीच समझे जाते हैं। ये दोनों काम अन्य प्रान्तों के लोगों के हाथ में हैं। मेहतर



[ब्रह्मपुत्र नद के बीच में उमानंद नाम का एक सुन्दर द्वीप है। यहाँ शिवरात्रि को मेला होता है। एक लेखक ने इसकी प्रशंसा में इसे 'मयूरद्वीप' लिखा है।]

मध्यप्रान्त से आते हैं और अहीर बिहार से। हिन्दी के प्रचार में ये लोग भी बहुत सहायता कर रहे हैं।

आसामी साधारणतः सीधे और ग़रीब होते हैं औ खेती और बुनाई का काम करके जीवन-निर्वाह करते हैं यहाँ का व्यापार मारवाड़ियों के हाथ में है। ये लोग गाँ गाँव फैले हुए हैं। ये उ गाँवों में भी मिलते जहाँ शहरी आसामी नहीं जाते, क्योंकि गाँव मलेरिया, काल आज़ार इत्यादि के केन हैं। ये डोरी-लोटा लेक आते हैं और अप अध्यवसाय, असाधार मितव्ययिता, साहनी कष्टसहिष्णुता व्यापार-कुशलता कारण थोड़े ही समय गाँव के सबसे बड़े धन आदमी हो जाते हैं यद्यपि ये लोग सम समय पर धन से प्रान्त वासियों की सहायता करते रहते हैं, तो भी अब इनक पहले के अनुसार आदर नहीं है। आसाम का शिक्षि

समुदाय इनको शोषण-कारी समझता है और इनके विरुद्ध बराबर आन्दोलन करता रहता है। इनके हितों के प्रतिकूल अब यहाँ कुछ क़ानून भी बन गये हैं। यहाँ इस समय 'आसाम आसामियों के लिए' की पुकार गूँज रही है और कांग्रेस का विरोधीदल इसी पुकार के बल पर कौंसिल का आगामी चुनाव लड़ने का प्रयत्न कर रहा है।



[खसिया स्त्रियाँ घास ले जा रही हैं। साधारण स्त्रियों का यह यहाँ प्रधान व्यवसाय है।]

(५)

कुछ हरिजन-कुटुम्बों में विचित्र बात दिखलाई पड़ी। साधारण हिन्दू इनकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं देता। ईसाई और मुसलमान इनको अपने में मिलाने का घोर यत्न कर रहे हैं और सफल भी हो रहे हैं। एक हरिजन-कुटुम्ब में दो लड़कियाँ हैं। उनकी पढ़ने तथा आत्मोन्नति की प्रबल इच्छा है। बाप कुछ काम नहीं करता। माता मज़दूरी करके गुज़र करती है। कुछ दिन इन लोगों ने ईसाई-स्कूल में पढ़ा और कुछ दिन मस्जिद के मकतब में। दोनों ही जगह ये अपनी इच्छा के विरुद्ध गईं, क्योंकि साधारण स्कूल में फ़ीस इत्यादि का व्यय ये लोग नहीं दे सकती थीं। लड़कियाँ अपने पिता के साथ साहस करके आसाम के शिक्षा-सचिव से भी छात्रवृत्ति के लिए मिलीं, किन्तु कुछ फल नहीं हुआ। लड़कियों की उम्र १२-१४ वर्ष की है। यद्यपि यह कुटुम्ब हिन्दू-धर्म नहीं छोड़ना चाहता, किन्तु हरिजन भी नहीं बना रहना चाहता। उनमें से एक लड़की गत वर्ष से प्रयाग के महिला-विद्यापीठ में निःशुल्क भोजन, स्थान और शिक्षा पा रही है। दूसरी लड़की में महत्त्वाकांक्षा बहुत है। उसने क़ुरान की आयतें सुस्वर सुनाईं। गाना भी गाया। आवाज़ अच्छी है। ऊँची से ऊँची शिक्षा पाने के लिए विकल है। हम लोगों



[खसिया बालिकायें नृत्य कर रही हैं। यह पहाड़ी नृत्य है।]



[खसिया कुली खाने के लिए सुपारी तैयार कर रहे हैं।]

की धारणा यह हुई कि यदि इसकी शिक्षा का प्रबन्ध शीघ्र नहीं किया जायगा तो यह ईसाइयों या मुसलमानों के हाथ में पड़ जायगी। यह लड़की भी इस वर्ष प्रयाग के महिला-विद्यापीठ में आगई है और निःशुल्क भोजन, स्थान और शिक्षा पा रही है। इसके ख़र्च का भार 'चुन्नीलाल शालिग्राम फ़र्म' के मालिक श्रीयुत नेमचन्द जैन ने एक वर्ष के लिए अपने ऊपर लिया है। ऐसी और भी लड़कियाँ हैं जिनका प्रबन्ध होना भी आवश्यक है।

(६)

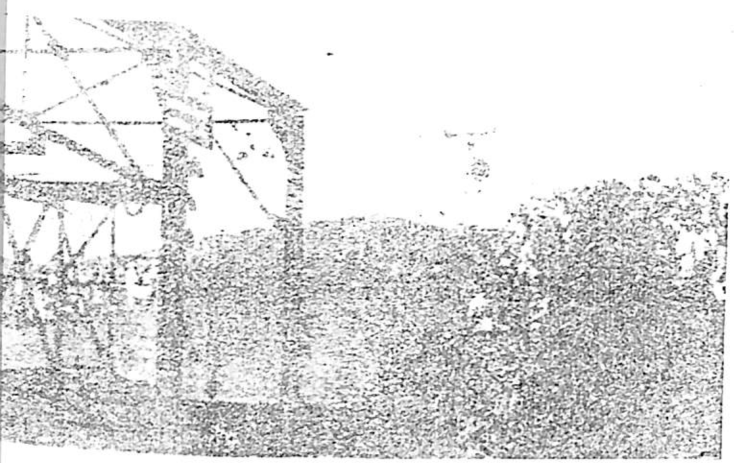
गौहाटी से शिलांग मोटर से जाना पड़ता है। यद्यपि रास्ता केवल ६५ मील है, तो भी अन्य पहाड़ी स्थानों की अपेक्षा किराया बहुत अधिक है। एक ही मोटर चलाने ... के रास्ता है ... शिलांग तक ... बहुत ही ... आकर्षक है। हरे-भरे पहाड़ दिखलाई पड़... देवदार के ... भरमार है।

शिलांग ... की ऊँचाई ... पहाड़ी स्थानों ... इसकी विशेषता ... कि यहाँ मैदान लंबे-चौड़े हैं। जैसे काश्मीर के श्रीनगर में ... मैदान दोनों का आनन्द मिलता है, वैसे ही ... में है। शिलांग को श्रीनगर का छोटा भाई कह...



[चेरापूँजी—संसार में यहाँ सबसे अधिक पानी बरसता है। सन् १८६१ में यहाँ ९०३ इंच पानी बरसा था।]

यहाँ का वायु स्वास्थ्यकर है। नदी और यहाँ ... और झरनों का दृश्य मनोरम है। यहाँ का ...



[चेरापूँजी का रस्से का पुल। लोग पुल पर होकर जा रहे हैं।]

...या भर में
...कर यह स्थान
...लूम हुआ।
...हाँ का जल
...और क़ाबिज़
...यहाँ नहीं
...दोष है।
...आसाम की
...धानी है और
...-वायु ऐसा है
...गवर्नर बारहों
...ने यहीं रहते
...यह बात किसी
...पहाड़ी स्थान
...नहीं पाई
...। चेरापूँजी
...से थोड़ी ही
..., जहाँ साल
...४०० इंच
...से अधिक
...बरसता है,
...ता है।

दूसरे नम्बर का है। कश्मीर को मुझको सब पहाड़ी स्थानों से सुन्दर



[शिलाँग का गनर-जलप्रपात]

किन्तु शिलाँग में पानी बहुत कम

(७)

शिलाँग के चारों ओर खसिया लोगों की बस्ती है। ये लोग बहुत सुन्दर होते हैं। इनकी स्त्रियाँ बहुत ही सुन्दर और परिश्रमी होती हैं और घर और बाहर का सब काम वे ही करती हैं। पुरुष [illegible] होने का काम करते हैं। यह पिछड़ी हुई जाति है। इन लोगों के धर्म में भी हिन्दूपन बहुत है। सन् १८४१ में ईसाई-धर्म का यहाँ प्रचार हो रहा है। ५०-६० वर्ष तक इन लोगों को बहुत सफलता नहीं हुई, किन्तु गत ३० वर्षों में वे आशातीत सफल हुए हैं। खसिया लोगों की आबादी २,८१,१२६ है, जिसमें ईसाइयों की संख्या ६०,००० है। यहाँ ईसाई-धर्म

का इतना अधिक प्रचार हो गया है कि प्रत्येक बड़े गाँव में एक गिरजाघर है। यदि रविवार के दिन इन गाँवों में कोई घंटों की आवाज़ तथा बाइबिल लिये हुए पुरुषों और स्त्रियों के जाने का दृश्य उसको प्रतीत करायेगा कि वह योरप के किसी भाग में भ्रमण कर रहा है। खसिया साधारणतया निर्धन होते हैं, किन्तु जो ईसाई हो गये हैं वे बहुत ही सम्पन्न और सभ्य हैं। साधारण खसिया फूस की झोपड़ी में रहता है, किन्तु ईसाई खसिया पक्के घरों में रहता है, अच्छे वस्त्र पहनता है, स्वच्छता का



[चेरापूँजी की ओर का मार्ग—डमपेप।]



[खसियों का ग्राम्य जीवन]

प्रेमी है और धनी है। ईसाई होना सभ्यता का लक्षण है। जो ईसाई नहीं है वह असभ्य है।

मैंने इन लोगों में ईसाई-धर्म के प्रचार के कारण का अन्वेषण किया तब मालूम हुआ कि हिन्दुओं की ओर से कोई प्रयत्न उनको हिन्दू-धर्म में रखने का नहीं किया गया और जहाँ थोड़ा-बहुत काम हुआ भी, वहाँ ईसाई गाँव का गाँव हिन्दू हो गया। यदि १५ वर्ष तक लगातार इनमें धर्म का प्रचार तथा शिक्षा और औषधियों का प्रबन्ध किया जाय तो तीन चौथाई ईसाई हिन्दू-धर्म में फिर लौट आ सकते हैं। क्या हिन्दू-महासभा इस ओर ध्यान देगी?

(८)

इस यात्रा में मुझको हिन्दी-प्रचार और महिला-विद्यापीठ-सम्बन्धी बातों के जानने का अच्छा अवसर मिला। आसाम प्रान्त में हिन्दी-प्रचार का कार्य दक्षिण-भारत की तरह संगठित नहीं है। कुछ स्थानों में हिन्दी के पढ़ाने



[योरपीय ईसाई महिलायें बंगाली, आसामी और खसिया के वेष में। ये खसिया लोगों में ईसाई-धर्म के प्रचार में तल्लीन हैं।]

हैं। आसाम में मारवाड़ी, बिहारी और संयुक्त-प्रान्तीय लाखों की संख्या में फैले हुए हैं और प्रान्त भर का अधिकांश व्यापार और वाणिज्य उन्हीं के हाथ में है। आसामियों को उनके सम्पर्क में बहुत आना पड़ता है। वे हिन्दी समझ लेते हैं और टूटी-फूटी हिन्दी बोल भी सकते हैं। शहर के मुसलमान की बात तो कुछ कहनी ही नहीं, गाँव का मुसलमान भी हिन्दुस्तानी बोलता है। शिक्षित आसामियों को नागरी-अक्षर के प्रचार की बहुत कम आवश्यकता है, क्योंकि आसामी स्कूल कलकत्ता-विश्वविद्यालय से सम्बन्ध होने के कारण सातवीं कक्षा से दसवीं कक्षा तक प्रत्येक विद्यार्थी को संस्कृत पढ़ाते हैं और संस्कृत-पुस्तकें प्रायः नागरी-अक्षरों में ही छपती हैं। इस प्रकार प्रत्येक हाईस्कूल और कालेज का विद्यार्थी नागरी-अक्षरों से बहुत कुछ परिचित होता है।

हिन्दी-प्रचार के लिए धन, सङ्गठन और अच्छे कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है। गौहाटी की हिन्दी-सभा ने मेरे कहने पर एक आसाम प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का सङ्गठन करने का निश्चय किया है और दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार सभा की परीक्षाओं के ढङ्ग पर स्वतन्त्र हिन्दी-परीक्षायें स्थापित करने का भी प्रस्ताव स्वीकार किया है। इन दोनों कामों के लिए उनको अनुभवी और उत्साही कार्यकर्ताओं

...के केन्द्र हैं, किन्तु उनमें आसामियों की संख्या अधिक नहीं है। कार्यकर्ताओं की भी बहुत कमी है। कांग्रेस के थोड़े से काम करनेवाले हैं, जिनमें हिन्दी-प्रचार के लिए पर्याप्त उत्साह है। किन्तु उनके पास कांग्रेस का इतना अधिक काम रहता है कि वे हिन्दी-प्रचार के लिए बहुत थोड़ा समय निकाल सकते हैं। दक्षिण-भारत की अपेक्षा आसाम में हिन्दी-प्रचार का कार्य बहुत ही सुगम है। आसामी भाषा बँगला की अपेक्षा हिन्दी के अधिक निकट है। इस पर सोलहवीं शताब्दी के वैष्णव धर्म का अधिक प्रभाव पड़ा है और ब्रजभाषा के हिन्दी पद वहाँ आज भी गाये जाते



[आसाम का शिवसागर तालाब। इसका घेरा २ मील है। विशेषज्ञ इसको देखकर हैरान हो जाते हैं कि तालाब का बीच का भाग ऊँचा है और पानी से ढँका है।]

...पर काम करनेवाले धुनी हिन्दी-प्रचारकों की आवश्यकता है। यदि दक्षिण-भारत की तरह पाँच वर्ष लगकर आसाम में हिन्दी-प्रचार का काम किया जाय तो दक्षिण-भारत से चौगुनी सफलता यहाँ हो सकती है। इसके लिए प्रारम्भ में बाहर से धन आसाम भेजना होगा। आसाम के मारवाड़ियों से भी हिन्दी-प्रचार के लिए कुछ धन मिल सकता है। यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि हिन्दी-प्रचार का काम कांग्रेसवालों के सहयोग से अधिक सफल हो सकता है।

आसाम के शिक्षित लोगों में प्रयाग के महिला-विद्यापीठ के विभिन्न कार्यों की जानकारी बढ़ रही है और यहाँ के लोग बड़ी संख्या में अपनी कन्याओं को शिक्षा के लिए प्रयाग भेजने को उत्सुक हैं, किन्तु धनाभाव से असमर्थ हैं। इस वर्ष आसाम से आनेवाली लड़कियों की संख्या गत वर्ष से दुगुनी हो गई है।

एकाकीपन का भार

लेखक, श्रीयुत रामदुलारे गुप्त

निशा जब अन्धकार में लीन
सोचती चुप कुछ अपनी बात,
ऊब उठता रह रह एकान्त
देखकर गिरता पीला पात;
और जब सूनेपन की श्वास
पैठ अपने में रुकता जाय.

तारिकायें जीवन का ...
आँकतीं, आँख खोल चुप...
—तभी, एकाकीपन का भार
व्यथा-सा, करवट लेता जाग,
सिहर कर जीवन से कुछ ऊब
और भरता मैं ठंडी साँस!...

हिन्दू-अन्तर्वर्ण-विवाह

लेखक, डाक्टर भगवानदास, एम० एल० ए०

बाबू भगवानदास जी ने हिन्दू-अन्तर्वर्ण-विवाह-सम्बन्धी विधान का जो प्रस्ताव लेजिस्लेटिव असेम्बली में किया है उसकी ओर सर्वसाधारण का ध्यान आकर्षित करने के लिए उन्होंने एक लेखमाला अँगरेज़ी पत्रों में प्रकाशित की है। यह लेख उसी लेखमाला का सार है, जिसे हमने 'आज' से सङ्कलित किया है।

यह विधान* अक्षरशः वही है जो सन् १९२८ में श्री विट्ठल भाई पटेल ने पेश किया था, पर जिस पर वोट लेने की नौबत नहीं आई। उन महान् देशभक्त के क़ानून का ज्ञान और अनुभव मुझसे कहीं अधिक था। बाद में वे असेम्बली के सभापति हुए, जिस पद पर उन्होंने ऐसी योग्यता से कार्य किया कि वह पद शोभित और अलंकृत हुआ। मैंने यही उचित समझा कि उन्हीं के विधान का अनुसरण करूँ और उसमें कोई परिवर्तन न करूँ।



[डाक्टर भगवानदास]

मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि हिन्दू-समाज के कितने ही प्रभावशाली अंग इस विधान को नापसन्द करते हैं। उन्हें मैं सम्मानपूर्वक और और बिना किसी प्रकार के लेश-मात्र अनादर की सूचना के 'अपरिवर्ती' कह सकते हैं। मैं उनकी इस इच्छा का पूरी तरह सत्कार करता हूँ कि वे जिस प्रकार अब तक रहते आये हैं उसी प्रकार रहने पावें, और उनके सामाजिक प्रबन्ध और कार्य-क्रम में किसी प्रकार की दिक्कत न पेश होने पावे। उनकी इस आकांक्षा में इस विधान से किसी प्रकार का विघ्न न होगा।

बिल के विरोधी सज्जन [illegible] केवल इतना भी मान लेंगे कि श्री विट्ठलभाई पटेल [illegible] और हिन्दू-समाज की सेवा करने की सच्ची अभिलाषा से प्रेरित थे, [illegible] भी [illegible] ऐसा ही है, तो इस विधान पर सार्वजनिक चर्चा और बहस [illegible] से सहज होगी।

संस्कृत-शास्त्रों का कहना है—क़ानून और रवाज को देश-काल और स्थिति के अनुसार बदलना चाहिए। मनुष्य की कोई कार्य-प्रणाली ऐसी नहीं हो सकती जिससे सबका लाभ हो और जिसका परिणाम अच्छा ही हो। अतएव जब किसी विशेष क़ानून के बुरे परिणाम अच्छे परिणामों को दबाने लगते हैं तब दूसरे क़ानून बनाने पड़ते हैं। यह नया क़ानून इसी तरह आगे चलकर देश-काल के परिवर्तन से हानिकर होने लगता है और उसे फिर बदलना पड़ता है। इससे हम देखते हैं कि कोई समता, कोई अन्तिम रूप, कोई अपरिवर्तनीयता कहीं भी किसी क़ानून में नहीं है। इसलिए हम रीतियों और आचारों में भेद देखते हैं।'

हिन्दू-धर्मशास्त्रों ने धर्म-व्यवस्थापन के सिद्धान्तों को स्पष्ट कर दिया है, और उनमें देशकालानुसार परिवर्तन, विरोधी भाव के समन्वय, समझौते आदि की पूरी गुंजायश रक्खी है। मानव-संसार की सबसे पुरानी क़ानून की पुस्तक मनुस्मृति में स्पष्ट रूप से कहा है कि धर्म, क़ानून, अधिकार और कर्तव्य के परस्पर बाँधनेवाले नियम मनुष्य जाति की अवस्था के अनुसार बदलते रहते हैं।

* इस विधान का नाम 'हिन्दू-विवाह वैलिडिटी ऐक्ट' होगा। हिन्दुओं का कोई भी विवाह केवल इस कारण ग़ैर क़ानूनी न समझा जायगा कि विवाहित स्त्री और पुरुष एक ही वर्ण के नहीं हैं—चाहे इसके ख़िलाफ़ भी कोई रवाज हो या हिन्दुओं के क़ानून का अर्थ इसके विपरीत लगाया गया हो।

सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग में मनुष्यों के धर्म दूसरे दूसरे होते हैं।

'नास्ति सवर्ण-विवाह' के नियम का सख़्ती से पालन करने का दूसरी स्थिति में चाहे कुछ ही फ़ायदा हुआ हो, अब तो हिन्दू-समाज में बहुत-से लोगों का यह निश्चित मत हो रहा है कि इसकी 'अति' हो गई है और इससे अब हानि हो रही है, और ये लोग ऐसे हैं जो किसी प्रकार अविवेकी, जल्दबाज़, अथवा अपरिपक्व बुद्धि के नहीं कहे जा सकते।

भारतीय पण्डित मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु चित्तरञ्जन दास और जीवित महात्मा गांधी और श्री राजगोपालाचारी जैसे बड़े बड़े देशभक्त और नेता जिनकी उदार बुद्धि, और आत्म-त्याग में किसी को सन्देह नहीं हो सकता, इन सबकी यही राय है कि इस प्रकार सख़्ती के साथ 'नास्ति सवर्ण-विवाह' का प्रचार उचित नहीं है, और उन्होंने यह मत ही नहीं रक्खा, बल्कि अपने विचार के अनुसार उन्होंने इसका अनुसरण भी किया, और बड़े अच्छे उदाहरण देश के सामने उपस्थित किये। नागरिकों की अन्य श्रेणियों में भी ऐसे विवाह समय समय पर होते आ रहे हैं और अब अधिक संख्या में हो रहे हैं। अतः इस विधान को उन सब लोगों का आशीर्वाद प्राप्त होने की आशा हो सकती है जो यह मानते हैं कि सत्य और कुशल सदा इसी में है कि मध्यमा वृत्ति का अवलम्बन किया जाय, और भूल तथा भय सदा अति का आश्रय लेने में रहता है।

हिन्दू-रूढ़ियाँ और सामाजिक जीवन के नियम अति की ओर जा रहे हैं। जिन लक्ष्यों के लिए उनकी सृष्टि हुई थी, ठीक उनके उलटे परिणाम वे उत्पन्न कर रहे हैं। आरम्भ में उनकी सृष्टि समाज-व्यवस्था की एक सम्पूर्ण योजना के अंग के रूप में हुई थी। वे इस उद्देश से बनाये गये थे कि ऐसा वातावरण उत्पन्न कर सकें जिसके द्वारा कुटुम्बों के और इस प्रकार सारे समाज के हित और सुख की वृद्धि हो सके।

भारतीय रस्म-रवाज यद्यपि आरम्भ में सामाजिक संघटन के वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आश्रित थे, धीरे धीरे कुछ अंगों पर बहुत ज़्यादा ज़ोर दिये जाने और दूसरे अंगों की उपेक्षा होने से वर्तमान जाति-भेद में परिवर्तित हो गये हैं। इस व्यवस्था की अत्यधिक कठोरता हिन्दू-धर्म और भारतीय जनता के हिन्दू-अंश के [illegible] ह्रास का, और फलतः अप्रत्यक्ष रूप से अन्य अंशों के भी ह्रास का, मुख्य कारण है। जो वर्ण-व्यवस्था सबको आपस में बाँधे रखने की, केन्द्र की ओर खींचे रखनेवाली शक्ति थी, वह आज सबको अलग अलग करने की और केन्द्र से दूर फेंक देनेवाली शक्ति बन गई है। सबमें मेल कराने के बदले वह सबको सबका विरोधी बना रही है।

यदि ठीक दवा समय से न दी गई तो इन रूढ़ियों और रवाजों की दिन दिन बढ़ती जानेवाली कठोरता हिन्दू-समाज-शरीर की मृत्यु का कारण होगी। जो मानव-समुदाय इस समय हिन्दू-समाज के नाम से पुकारा जाता है वह और उसकी सनातन-प्रसिद्ध [illegible] हिन्दू-धर्म (ईश्वर न करे) मिट भी जाय तो भी नष्ट न होगी, पर आध्यात्मिक संस्कृति तथा सभ्यता के कुछ बहुमूल्य तत्त्व तथा समाज-संघटन के उत्तम सिद्धान्त बहुत दिनों के लिए लुप्त हो जायँगे, जिससे सारी मानव-जाति की भारी क्षति होगी।

वर्ण-व्यवस्था के मौलिक सिद्धान्तों की ओर लापरवाही करने, उसके अर्थ का अनर्थ करने, उसके कुछ अंशों पर अत्यधिक ज़ोर देने और दूसरे अंशों को भुला देने, बलवान् और चालाकों के सब अधिकारों को पकड़ने और कर्तव्यों से परहेज़ करने से ही जो कर्मानुसार विभाजित वर्ण-व्यवस्था बिगड़कर आज उसका स्वांग मात्र रह गया है, और अन्य बहुत-सी ख़राबियों के साथ विवाह-सम्बन्धी ये ख़राबियाँ उत्पन्न हो गई हैं जिनको दूर करने के लिए हम लोग इस नये उपस्थित विधान के रूप में नये क़ानून के बनवाने का यत्न करने के लिए मजबूर हुए हैं।

इस विधान से कोई विवश नहीं किया जाता है कि वह अपने वर्ण अथवा उपवर्ण के बाहर विवाह करे, परन्तु ऐसा करनेवालों को वह जातिच्युत किये जाने से केवल रक्षा करेगा। किसी के लिए यह लाज़िमी न होगा कि ऐसे किसी व्यक्ति के साथ वह सामाजिक सम्बन्ध रक्खे ही जिसने इस प्रकार का विवाह किया हो। पर यदि कोई प्रकट रूप से यह घोषणा करेगा कि अन्तर्वर्ण-विवाह करने के कारण कोई स्त्री या पुरुष जाति-च्युत हो गया है और सम्बन्ध रखने योग्य नहीं है तो उस पर मान-हानि का मुक़दमा चल सकेगा और वह अदालत में अपराधी और दंडनीय समझा जायगा।

इस विधान से कुछ और लाभ भी होंगे। (१) युवा और युवती की साथ साथ पढ़ाई का कालेजों में जो प्रचार अब चला है और देश में बढ़ता जा रहा है उससे बहुत-से सुखदायी विवाह हो सकेंगे, और अनाचार की घृणा-जनक भूल, मन और शरीर को नंगा करनेवाले और आजीवन हृदय में चोर और शोक-शंकु बैठा देनेवाले कार्य न होंगे और तरह तरह की बीमारियाँ विशेषकर युवतों को न भोगनी पड़ेंगी। (२) युवतियों की आत्म-हत्यायें और दूसरी खराबियाँ जो अब शादी के समय बड़े बड़े दहेज़ माँगने के कारण हो रही हैं वे कम हो जायँगी, और शिक्षित युवा और युवती स्वतंत्र रूप से अपना स्वयं वरण कर सकेंगे, और वर्ण के नाममात्र से अनुचित रूप से बँधे न रहेंगे। याद रहे कि यह बहुत दहेज़ माँगने की प्रथा, कुछ तो आर्थिक संकट के कारण और कुछ आधुनिक सभ्यता की धनलोलुपता के भाव के कारण उत्पन्न हुई है।

मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि धर्म के किसी आवश्यक सिद्धान्त का अथवा धर्म-शास्त्र के किसी मौलिक आदेश का बिना विरोध किये, यह विधान उस समाज को सामाजिक जीवन और संघटन के बहुमूल्य सिद्धांतों को फिर दे सकेगा जिसे अब हिन्दू-समाज कहते हैं, जिसे वास्तव में मानव-समाज कहना चाहिए, और जिसने इन सिद्धान्तों को काल के प्रवाह में धीरे धीरे बहा और भुला दिया है।

जो लोग धर्मशास्त्र के शब्दों को बहुत मानते हैं वे भी अन्तर्वर्ण-विवाह का समर्थन प्राचीन ग्रन्थों में विशेष कर पुराणों में पावेंगे। मैं भी बहुत विनीत भाव से धर्मशास्त्र के शब्दों का आदर करता हूँ, यदि शास्त्र वास्तव में प्राचीन हों और ऐसे समय के हों जब भारतवर्ष स्वाधीन था और ऋषिजन शास्त्रकार थे, तथा उनके शब्दों का अर्थ धर्मशास्त्र के मुख्य अंग निरुक्त और मीमांसा के अनुसार ठीक तरह लगाया जाय। जो लोग बुद्धिवादी और साधारण समझदारी पर भरोसा करनेवाले हैं उनके लिए तो किसी दलील की आवश्यकता ही नहीं है।

स्मृतियों में आठ प्रकार के विवाहों की चर्चा है और दाय की दृष्टि से बारह-या उससे भी अधिक प्रकार के पुत्र माने जाते हैं। और आज भी हम देखते हैं कि बहुत-से अन्य प्रकार के विवाह के तरीक़े भी जारी हैं। उदाहरणार्थ, जाटों में श्वसुर का विधवा पतोहू से विवाह होना एक हाईकोर्ट-द्वारा हाल में जायज़ ठहराया गया है। मुझसे यह भी कहा गया है कि जाटों में एक स्त्री के कई पतियों का एक ही समय में होना भी जायज़ माना जाता है, और कभी कभी दो-तीन भाइयों के बीच एक ही विवाहिता स्त्री होती है। कुछ समुदायों में विधवा सास के साथ दामाद का विवाह होना जायज़ है। किन्हीं किन्हीं पहाड़ी हिंदू जातियों में पत्नियों का विनिमय भी होता है। यह एक ओर हद से गुज़रे 'अति' के उदाहरण हैं। साथ ही इसके दूसरी ओर उच्च जातियों में दूसरे प्रकार की 'अति' मिलती है। मुझसे दो मित्रों ने कहा है जो—ब्राह्मणवर्ण के पञ्चगौड़ उपवर्ण के सरयूपारी उप-उपवर्ण के त्रिवेदी और त्रिपाठी उप-उप-उपवर्ण के हैं—कि उनमें और पवित्रतम दल हैं जो पंक्तिपावन कहलाते हैं, जो अवध के कुछ ज़िलों में रहते हैं, और जिनमें अति क्षुद्र निस्सार हेतुओं से इतने लोग जातिच्युत कर दिये गये हैं, और विवाह-सम्बन्ध के योग्य इतने थोड़े कुल रह गये हैं कि अब विवाह सगोत्र में होने लगा है—'केवल दूध का विराव किया जाता है', अर्थात् एक माता का दूध पीनेवाले भाई-बहनों का ब्याह आपस में नहीं किया जाता है। मैंने दोस्तों से सुना है कि इसी तरह मुसलमानों में क़ुरैशी, मिलकी और सय्यद समुदाय हैं जो यथा-सम्भव यही प्रयत्न करते हैं कि अपने समुदाय के भीतर ही विवाह करें। दक्षिण में मालाबार के समुद्रतट के प्रदेश में मातृपरम्परा से दाय का अधिकार मिलता है, और वहाँ पर उच्च श्रेणी के ब्राह्मणों के विवाह-सम्बन्धी नियमों में उत्तर के ब्राह्मणों के नियमों से बहुत अन्तर है।

रस्मों की यह अनन्त विभिन्नता जो बुद्धि को चकरा देती है, प्रस्तावित विधान से उन लोगों के लिए बहुत सरल हो जायगी जो इससे लाभ उठाना चाहेंगे। जो ऐसा नहीं करना चाहते वे बिना रोकटोक के अपनी विशेष रीति के अनुसार कार्य करने और कौटुम्बिक जीवन का निर्वाह करने के लिए स्वतन्त्र रहेंगे।

इस स्थान पर एक व्यावहारिक प्रश्न का उत्तर दे देना चाहिए। बीच बीच में मुझसे पूछा गया है कि "एक वर्ण की स्त्री जब दूसरे वर्ण के पुरुष से विवाह करेगी, तब विवाह के बाद उसका तथा उसके लड़कों का वर्ण क्या

होगा"। सीधा और स्पष्ट उत्तर इसका यह है कि जिस तरह वह अपना गोत्र बदलकर पति के गोत्र की हो जायगी, उसी तरह वह अपना वर्ण भी बदलकर पति के वर्ण की हो जायगी, और लड़के भी पिता के ही वर्ण के होंगे और कर्मकाण्ड-सम्बन्धी धर्मकृत्य के लिए तथा पुरातन धर्म-व्यवस्थापक मनु ने भी यही कहा है—"यो भर्ता सा स्मृतांगना", जो पति है वही पत्नी भी है। इस प्रमाण से जो वर्ण पुरुष का है वही वर्ण उस स्त्री का भी हो जायगा जो उसके साथ विवाह करेगी और जिससे वह विवाह करेगा।

इस विधान का प्रस्ताव करके मैं कोई नये [illegible] के चलाने का प्रयत्न नहीं कर रहा हूँ। मैं वास्तव में उस [illegible] पाटी के पुनरुद्धार का यत्न कर रहा हूँ जो मानवी [illegible] के पहले इस देश में वास्तव में जारी थी, जब [illegible] जनता का जीवन अधिक सुखी, सप्राण, सबल, [illegible] स्वराज्यवान् था।

स्त्री-पुरुष की परस्पर कामना और विवाह के संबंध में, विगत बीस-तीस वर्षों में पाश्चात्य देशों में इतने लेख और ग्रन्थ निकले हैं कि ऐसा प्रतीत होता है कि कोई भारी आमूल उलट-पलट हो रहा है। पर ध्यान से देखने से यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि इस सब अनंत लिखाई में, एक ही प्रश्न के दो परस्परविरोधी उत्तरों में से, एक का या दूसरे का प्रतिपादन किया जा रहा है; अर्थात् किस प्रकार स्वार्थपूर्ण आनन्द का और कर्तव्य-[illegible] पर आश्रित सन्तान-पालन का समन्वय हो—किस प्रकार दम्पति-रति का और संतति-प्रीति का समन्वय हो।

बुद्धिमानी इसी में है कि वैयक्तिक जीवन के तथा सामाजिक, सामूहिक, राष्ट्रीय जीवन के सभी अंगों की क्रियाओं को बीच के रास्ते पर रक्खा जाय, और दोनों ओर की 'अतिकोटि' बचाई जाय।

भारत में अन्तर्वर्ण-विवाह की रुकावट की कड़ाई 'अति' को पहुँच गई है और इससे शिक्षित समुदायों में भी इसके विरुद्ध विद्रोह-सा हो रहा है। यदि यह विद्रोह बुद्धिसंगत और शिष्ट प्रकारों से शान्त नहीं किया जायगा और समय से उपयुक्त रियायतें न की जायँगी तो हिन्दू-समाज में घोर उत्पात मचने का और समाज के नष्ट हो जाने का भय है। "रसरी उतनिहि तानिए जो नहिं नावै टूट"। शिक्षा, देशाटन और जीविका की आवश्यकताओं के दबाव से अंतर्वर्ण-विवाह बढ़ रहे हैं। बहुत लो[ग] दिनों के लिए अपने घरों से दूर दूर प्रदेशों में [illegible] हैं। विवाहित स्त्री-पुरुष अपने रिश्तेदारों से और [illegible] लोगों से जिनसे साधारणतः उनका संबंध था, [illegible] हैं। यदि कोई कारगर तरीक़े नहीं निकाले जाते [illegible] यह विधान निकालने का यत्न कर रहा हूँ, जिससे लोग सामाजिक व्यूहन में अपना उपयुक्त स्थान [illegible] सकें, तो अवश्य ही इनके कारण समाज-शरीर [illegible] दुष्परिणाम उत्पन्न होंगे, जैसे रोगी, दुर्बल और [illegible] के शरीर में पैदा हो जाते हैं, जब उनमें कोई बाहरी [illegible], असात्म्य, अजरणीय, अग्रहणीय, पदार्थ प्रवेश [कर] रह जायँ और निकालकर दूर न किये जा सकें [illegible] अजीर्ण और अनुपयोगी द्रव्य शरीर में बड़ा [illegible] उत्पन्न करते हैं। इसलिए उचित है कि इनका [illegible] करके इनका समाज-शरीर में परिणमन कर लिया जा[य]।

उपर्युक्त विधान किसी प्रकार से भी वर्णव्यवस्था [का] विरोध नहीं करता, प्रत्युत स्वभाव, गुण (जीविका), [कर्म के] अनुसार सच्ची वर्णव्यवस्था का ही समर्थक है। [यह] विधान स्वप्न में भी यह नहीं चाहता कि उत्कृष्ट का [illegible] से विवाह हो, बल्कि यही चाहता है कि उत्कृष्ट [का उत्कृष्ट] से, समान का समान से विवाह हो।

अन्तर्वर्ण-विवाह के इस प्रश्न से अस्पृश्यता [का] भी सम्बन्ध है। अस्पृश्यता मल का गुण है, [illegible] मनुष्य का। धर्माभिमानी लोगों के अस्पृश्यता-विषयक [illegible] में विज्ञान का अंश इतना ही है कि स्पर्श उन लोगों [का] अनुचित है जो मलिन हैं, अथवा संक्रामक [illegible] रोगों से पीड़ित हैं। पर मनुष्य चाहे जैसा निर्मल, नीरोग और शुभ्र हो, यदि उसका जाति-वर्ण-नाम ऐसी जाति का है जो प्रचलित प्रथा से अस्पृश्य है तो [उसे] छूना न चाहिए—यह केवल 'मूढ़ग्राह' है, और [illegible] आदमियों का अपने लिए ऐसे जाति-वर्ण-नाम [illegible] पकड़े रहना—यह और भी घोर 'मूढ़ग्राह' है!

मैंने अपने एक अँगरेज़ मित्र से सुना है कि उनके [illegible] में जब, चालीस-पचास वर्ष हुए, यह बात पहले [illegible] वैज्ञानिकों को मालूम हुई कि मैले हाथों में लगे हुए रोगाणु [illegible] से रोग, स्पर्श-द्वारा, एक शरीर से दूसरे शरीर में [संक्रमण] करते हैं तब वैज्ञानिकों ने कहा कि आटा तथा अन्य [illegible]

पदार्थ हाथ से गूँधे या अन्य प्रकार से छुए न जाने चाहिए। ज्यों ही यह बात कही गई, त्यों ही खाद्य पदार्थ बनानेवाले अपनी जिन्सों पर इस मज़मून के पुर्ज़े लगाने लगे—'हाथ नहीं लगाया गया।' मेरे मित्र को यह जानने की इच्छा हुई कि देखें, गूँधने आदि का काम ऐसे कारख़ानों में अन्य किस प्रकार किया जाता है, जहाँ डबल रोटी, बिसकिट आदि खाद्य बनाये जाते हैं। वे एक कारख़ाने में गये तो क्या देखा कि वहाँ मज़दूर अपने पैरों से गूँध रहे हैं। डाक्टरों ने हाथ लगाने को मना किया था, पैरों के बारे में तो कुछ नहीं कहा था!

जहाँ बुद्धि का अभाव होता है या सदाचार का स्थान अहंकार ग्रहण करता है या धोखा देने, बहकाने और ठगने की प्रवृत्ति होती है या स्वत्वों या अधिकारों को भोगने और कर्तव्यों को टालने की इच्छा होती है, वहाँ ऐसा अर्थ का अनर्थ सदा हुआ ही करता है। वर्णव्यवस्था की भी यही दशा हुई है।

आज जाति और उपजाति की पंचायतों के मुखिया भूल गये हैं कि उनका कर्तव्य अपनी अपनी सीमा के भीतर अपनी बिरादरी की सेवा-सहायता करना है। उसकी जगह वे भोजन, विवाह और छूआछूत के मामलों में उनकी राय से ज़रा भी प्रतिकूल काम करनेवालों को जातिच्युत करके, अपनी अधिकार-शक्ति का रस ले रहे हैं। सर्वत्र अधिकार का अर्थ हो गया है दुःख देने का अधिकार न कि सुख देने का।

मैं तो कोई नई बात भी नहीं कहता। जिसको दृढ़ विश्वास से मानता हूँ कि वही परम पुरानी बात है उसी को आपके सामने कहता हूँ। आदिकाल के वेद-पुराण-सम्मत तात्त्विक धर्म का शुद्धरूप से पुनः प्रतिष्ठापन चाहता हूँ। चारों ओर रहन-सहन बदल रहा है और वह निर्मर्यादता, उच्छृङ्खलता, स्वच्छन्दता की ओर जा रहा है। उस सब की दशा में, सच्ची वर्णव्यवस्था के प्रतिष्ठापन का यत्न, मेरी अत्यन्त क्षुद्र शक्ति भर कर रहा हूँ, और इस कार्य में सब विचारशील सज्जनों से सहायता की प्रार्थना करता हूँ।

ज़रूर इस विधान के भी दुरुपयोग का भय है। किस असामान्य पदार्थ के दुरुपयोग का भय नहीं है।

सभी कार्यों में कुछ गुण रहते हैं, कुछ दोष। इन्द्वमय संसार है। एक समय में उसी कार्य से गुण अधिक निकलते हैं, दूसरे समय में दोष अधिक। मर्यादास्थापक शासक का और उसके परामर्शदाता निःस्वार्थी अनुभवी विद्वानों का यह काम है कि सदा सावधान होकर देखते रहें कि किस मर्यादा से, जिससे पहले गुण अधिक निकलते थे अब दोष अधिक पैदा होने लगे हैं, और तब उसको बदल कर दूसरी मर्यादा का स्थापन करें। लेजिस्लेचर का एकमात्र यही कर्तव्य है। सो अब चातुर्वर्ण्य की मर्यादा के तीन हज़ार उपोपोपोपर जातियों में बिखर जाने से निश्चयेन ऐसी दशा आ गई है कि यदि चातुर्वर्ण्य का सर्वथा नाश इष्ट न हो, उसे बचाना मंज़ूर हो, तो यह नया विधान स्वीकार करना चाहिए।

कुछ सज्जनों ने यह सूचना की है कि उपन्यस्त विधान में ऐसी शर्त बढ़ा देनी चाहिए जिससे एक पत्नी के जीवनकाल में इस विधान के अनुसार दूसरी स्त्री से विवाह न हो सके तथा यह भी कि विशेष विशेष कारणों से विवाह-सम्बन्ध का विच्छेद भी हो सके। बम्बई-प्रान्त के एक सज्जन का एक लेख प्रयाग के 'लीडर' अख़बार में निकला था, जिसमें उन्होंने यह कहा है कि बम्बई-प्रान्त में कई ऐसे विवाह हुए हैं जिनमें पहले बाल्यावस्था में ब्याही अनपढ़ पुराने चाल की सीधी-सादी पत्नी मौजूद है, पर उनके पतियों ने नई 'ग्रेजुएट' (बी० ए० आदि पास) स्त्रियों के लोभ में पड़ कर इनसे ब्याह कर लिया है, और पहली पत्नियों का त्याग कर दिया है, जिससे वे घोर कष्ट में पड़ी हैं। इस बात पर मैंने बुद्धिभर, शक्तिभर, ध्यान दिया; मित्रों से भी सलाह की; अन्त में मेरा विचार यही स्थिर हुआ कि उपन्यस्त विधान में विवाह-विच्छेद, एक-विवाह आदि की शर्त बढ़ाने से कोई लाभ न होगा, प्रत्युत हानि होगी।

विवाह-सम्बन्ध तोड़ने या न तोड़ने का निश्चय स्त्री-पुरुष के शुभचिन्तकों और रिश्तेदारों की पंचायत पर ही छोड़ना चाहिए; कचहरियों पर नहीं। जब ऐसी पंचायत निर्णय कर दे कि स्त्री का दोष नहीं, और पुरुष ऐसा नालायक है कि उसके साथ स्त्री का रहना असम्भव है और स्त्री के जीवन-निर्वाह के लिए पुरुष को इतना इतना मासिक या वार्षिक देना चाहिए, और पुरुष इस फ़ैसले को न माने, तब स्त्री अदालत में भले ही उसी फ़ैसले के

भरोसे नान नफ़क़ा की नालिश कर सकती है, और मुद्दईलह को जब तक कोई विशेष हेतु उस पंचायती फ़ैसले के विरुद्ध मालूम न हो, उसी के अनुसार डिग्री देना चाहिए।

हिन्दू-समाज में एक ही दो नहीं, बहुत-से अनाचार हो रहे हैं। सत्तर-अस्सी वर्ष पहले तक, बङ्गाल के कुलीन ब्राह्मणों में, पुरुषों के पचास पचास और सौ-सौ स्त्रियों से विवाह होते थे। मुझे याद है कि युवावस्था में मैंने, पचास वर्ष पहले, एक हिन्दी-पुस्तक में पढ़ा था कि कुछ समय पहले एक कुलीन के अस्सी और नब्बे के बीच भी विवाह हुए थे। ऐसे भाग्यशाली महात्माओं की जीविका ही यह होती थी कि श्वसुरालयों में दो-दो, चार-चार, आठ-आठ दिन ठहरते हुए, भोजन करते हुए, अपनी उम्र बिता दें। पत्नियाँ, पति के घर में नहीं, पिताओं के घरों में ही रहती थीं। काल के प्रवाह से यह सब अनाचार बन्द होते जाते हैं और उनके स्थान पर नये प्रकार के दुराचार पैदा होते जाते हैं।

आज-कल भी राजाओं की, नवाबों की रियासतों में जो घोर पाप हो रहे हैं तथा उससे स्यात् कुछ कम मात्रा में अन्य धनाढ्य घरों में, मठों में, तीर्थस्थानों में हो रहे हैं, वह सब थोड़ा-सा ही दर्याफ़्त करने से मालूम हो जाता है अथवा यह कहना चाहिए कि सभी मध्यवयस्क आदमियों को विदित है ही। गाँव गाँव में, शहर शहर में, तरह तरह के व्यभिचार, कुछ स्त्रियों के आरम्भ किये, कुछ पुरुषों के आरम्भ किये, हो रहे हैं। नये प्रकार की प्रच्छन्न वेश्यायें भी बड़े शहरों में बढ़ रही हैं, बल्कि सिनेमा आदि के प्रभाव से पुराने चाल की, तौर्यत्रिक में, वाद्य, गीत, नृत्य में प्रवीण वाराङ्गनायें कम हो रही हैं। इन सब पापों के परिशोध का यत्न करना नितान्त आवश्यक है। पर उपन्यस्त विधान में इन सबके सम्बन्ध में शर्त बढ़ाना तो स्पष्ट ही किसी को भी उचित और सुप्रशस्त नहीं जान पड़ेगा। मेरी प्रार्थना है कि उक्त द्वितीय विवाह को भी इसी कोटि में डालना चाहिए और इसके परिशोध का यत्न अलग करना चाहिए, सो भी पूर्वापर को बहुत विचार करके।

मेरी क्षुद्र बुद्धि में तो यही बैठा है कि जिस स्वार्थ-बुद्धि, भेद-बुद्धि, परस्पर द्रोह-बुद्धि, मिथ्या-बुद्धि से आज तीन सहस्र खण्डों में यह 'हिन्दू' नामक समाज छिन्न-भिन्न हो रहा है वह दूषित बुद्धि ही इन सब उपर्युक्त दोषों और रोगों का एकमात्र निदान कारण है, और उस शोधन से वर्णाश्रम-धर्म का शोधन होकर सब रोग शांत होंगे—जहाँ तक ऐसा शांत होना सम्भव है; क्योंकि सब दुःख, शोक, पाप संसार से उठ जायगा, यह तो 'न भूतो, न भविष्यति'।

जिन कुल-कुटुम्बों में अन्तर्वर्ण-विवाह की चर्चा स्वप्न में भी नहीं हुई है उनसे कितनी ही विधवायें या अविवाहिता कुमारियाँ प्रतिवर्ष हज़ारों की ही संख्या में अपने ही घर के पुरुषों द्वारा भ्रष्ट होकर, घरों से घोर निर्दयता से निकाल दी जाती हैं और जीते-जी तरह तरह के नरकों में झोंक दी जाती हैं। इनकी यातना के आगे उन स्त्रियों की संख्या कितनी है और उनका दुःख क्या है, जिनके पतियों ने दूसरा विवाह कर लिया है।

यदि अन्तर्वर्ण-विवाह का रिवाज देश में फैले तो धीरे धीरे ऐसी भयङ्कर घटनायें भी कम हो जायँगी।

तत्काल मेरा प्रयत्न यही है कि हिन्दू-समाज में अन्तर्वर्ण विवाह की धर्म्यता और पत्नी का पति के वर्ण का धारण कर लेने की धर्म्यता स्वीकार कर ली जाय, 'जात-बाहर' करने की प्रथा बन्द हो, परस्पर सौमनस्य बढ़े। यदि यह सिद्ध हो गया तो क्रमशः अन्य सब दोष आपसे आप घट जावेंगे।

अन्तर्वर्ण-विवाह का नाम लेते ही 'अपरिवर्तनवादी' सज्जनों का तत्काल ध्यान यही हो जाता है कि यह तो ऊँच-नीच को एक करना चाहता है, उत्कृष्ट स्त्री या पुरुष का सम्बन्ध निकृष्ट पुरुष या स्त्री से कराना चाहता है, इसलिए पुनः पुनः यह बात दुहरानी-तिहरानी पड़ती है कि ऐसी मन्शा इस विधान की स्वप्न में भी नहीं है। यह तो सुतरां-नितरां सच्चे उत्कृष्ट का (केवल वर्ण नाम से ही नहीं) सच्चे उत्कृष्ट से ही सम्बन्ध चाहता है और तत्रापि यह किसी से स्वप्न में भी ऐसा नहीं कहता कि तुम ख़ाहम-ख़ाह ऐसा ऐसा विवाह करो, बल्कि केवल इतना ही कहता है कि यदि कभी कदाचित् किसी किसी स्त्री-पुरुष ने परस्पर स्नेह-प्रीति से मन मिलने के कारण विवाह कर लिया तो चाहे उनके वर्णनाम भिन्न भी रहे हों, तो भी उस विवाह को धर्म्य ही जानो, उन दोनों को जातिच्युत करने का यत्न मत करो और पत्नी का वही नाम-वर्ण भी मानो जो पति का है।

३१ मई, और १७ ज्येष्ठ के 'आज' में एक मुक़दमे की रिपोर्ट प्रकाशित हुई है, जिसका फ़ैसला २८ अप्रैल सन् १९३६ को ब्रिटिश साम्राज्य के सबसे बड़े न्यायालय प्रिवी कौंसिल ने किया है। इस मामले में 'हिंदू' कहलानेवाले, 'हिंदू-धर्म' के माननेवाले, 'धर्म' का बाना बाँधनेवाले लोगों में प्रचलित रूढ़ियों और रस्म-रवाजों का जिनका उल्लेख किया जा चुका है, ऐसा विचारकारक प्रदर्शन होता है कि उसकी मुख्य बातों का निर्देश यहाँ नितान्त आवश्यक और प्रयोजक है।

मुसम्मात जग्गो का पहला विवाह बैजनाथ से हुआ। दोनों वैश्य वर्ण की एक ही उपजाति के थे, यह उस रिपोर्ट से स्पष्ट है, यद्यपि उस उपजाति का नाम नहीं दिया गया है। बैजनाथ मर गया। जग्गो ने अपने देवर, यानी बैजनाथ के छोटे भाई शिवनाथ से ब्याह कर लिया। पर शिवनाथ का एक विवाह इसके पहले भी हो चुका था और उस ब्याह की स्त्री जीवित थी। दोनों सौतों में रोज़ झगड़ा होने लगा। ऊबकर शिवनाथ ने जग्गो का त्याग कर दिया। जग्गो ने निक्कूलाल से सगाई कर ली। निक्कूलाल वैश्य वर्ण की कसौंधन उपजाति का था। जग्गो की उपजाति दूसरी थी। निक्कूलाल की मृत्यु के बाद उसकी अपनी उपजाति की स्त्री से उत्पन्न पुत्र गोपीकृष्ण और जग्गो से उत्पन्न पुत्र श्रीकृष्ण में निक्कूलाल की सम्पत्ति के आधे हिस्से के लिए झगड़ा हुआ।

गोपीकृष्ण का कहना था कि जग्गो का निक्कूलाल से जो ब्याह हुआ था वह धर्मानुकूल, या जायज़ नहीं था, क्योंकि (१) ब्याह के समय जग्गो का पहला पति जीवित था और (२) जग्गो और निक्कूलाल एक ही उपजाति के नहीं थे, इसलिए जग्गो का लड़का श्रीकृष्ण निक्कूलाल की सम्पत्ति का वारिस नहीं हो सकता।

प्रिवी कौंसिल के विचारपतियों ने राय दी है कि निक्कूलाल से जग्गो का विवाह जायज़ है, यद्यपि इस ब्याह के समय उसका पहला पति जीवित था। विचारपतियों ने स्पष्ट लिखा है—यद्यपि "विवाह द्विजों में गिने जानेवाले वैश्यवर्ण की दो भिन्न उपजातियों के व्यक्तियों में हुआ है," फिर भी "विवाह-सम्बन्धी हिंदू-विधि जिन धर्मशास्त्रों से ठहराई जाती है उनमें एक ही वर्ण की दो उपजातियों में परस्पर विवाह का निषेध कहीं नहीं पाया जाता और न कोई पहले की ऐसी नज़ीर या साधारण सिद्धान्त ही है जिसके अनुसार ऐसा विवाह निषिद्ध माना जाय।"

मथुरा-प्रांत में चौबे उपजाति में भगिनी-विनिमय से विवाह अक्सर होता है, अर्थात् एक सज्जन की बहन दूसरे सज्जन से ब्याही गई तो दूसरे सज्जन की बहन पहले सज्जन से ब्याही गई। दोनों सज्जन परस्पर साले भी और बहनोई भी होते हैं। अब जैन-समाज में भी 'जन्मना वर्ण' माना जाता है, यद्यपि महावीर जिन का और प्राचीन जैनाचार्यों का मत 'कर्मणा वर्ण' का ही था।

इसके दुष्फलों में एक सुफल यह हुआ है कि नाम से एक उपवर्णवाले जैन और वैष्णव 'हिन्दू' कुलों में विवाह-सम्बन्ध अक्सर होता है: यद्यपि दोनों उपधर्मों की विवाह-पद्धतियों में बहुत भेद है, पर प्रायः वरपक्ष की पद्धति से विवाह हो जाता है। 'सिक्खों' के एक वर्ग के साथ भी 'हिन्दुओं' के विवाह-सम्बन्ध इस प्रकार के होते हैं।

जब इन सब प्रकारों को, व्यवहारों को, 'सर्वमहा मेदिनी' के ऐसा सर्वसह 'हिन्दू-धर्म,' 'सनातन-धर्म' 'मानव-धर्म' बर्दाश्त कर रहा है, बल्कि ख़ुशी से ढो रहा है, तब फिर अन्तर्वर्ण-विवाह में वधू का वर्ण-परिवर्तन होकर वर के वर्ण में सम्मिलित हो जाने को और उस विवाह को धर्मानुकूल मान लेने को क्यों अति भार मानें ?

अन्त में मैं हिंदू-समाज के सब, अंगों और वर्गों से प्रार्थना करता हूँ कि हृदय से इस उपन्यस्त विधान का समर्थन करें, क्योंकि इससे हिन्दुत्व और हिन्दू-समाज के उस सुधार, संस्कार और पुनर्जीवन का सूत्रपात होगा, जो उन्हें विनाशकारी, सर्वांगव्यापी, भेदबुद्धिरूप, परस्पर द्रोहरूप महारोग से बचा सकता है, और उनको नया जीवन दान कर सकता है और अपने समाज के भीतर तथा अन्य समाजों और धर्मों और सम्प्रदायों के साथ शान्तिपूर्वक रहने की शक्ति दे सकता है।

इन बातों पर शान्त मन से 'मानव' (हिन्दू) धर्म और 'हिन्दू' समाज के जीर्णोद्धार के भाव से आप सब सज्जन, गंभीर विचार करके यदि आपको निश्चय हो जाय कि मैं किसी दुर्भाव से प्रेरित नहीं हूँ, यदि आपको निश्चय हो जाय कि सचमुच इस उपन्यस्त विधान से हिन्दू-समाज और धर्म का कल्याण ही होगा, तो दिल खोलकर प्रसन्न हृदय से इसको आशीर्वाद दीजिए।

सूक्तियाँ

लेखक, श्रीयुत रामचरित उपाध्याय

(१)

न उपजे धन लेकर हाथ में,
कब परत्र गया तन साथ में ?
कृति करो जग में स्थिर हो कथा,
मचलते चलते तुम हो वृथा ॥

(२)

सुख नहीं मिलता दुख के बिना,
नरक की जननी अपकीर्ति
न मन में डरिए परिणाम से,
मरण हो रण हो प्रण के लि

(३)

झपटना पहले फिर मारना—
द्विरद को, यह केहरि की क्रिया।
न मिलके लड़ते वर वीर हैं,
कपट का पट कायर धारते ॥

(४)

खल नहीं करता उपकार है,
सुजन से अपकार न हो सका।
न कजहंस हुआ सम हंस के,
न घन-सा घनसार हुआ कभी ॥

(५)

विविध दण्डविधान बनाइए,
न जग हो अति दुर्जन के लि
स्ववश में रखिए पर साधु को,
विनय से नय से भय से नहीं

(६)

तनय वीर मिला जिसको, उसे—
भुवन में कहिए वर पुत्रिणी।
क्षति न जो गुन-हीन रहे वधू,
न जननी जन नीच जने कभी ॥

(७)

न जिसको जग से समता हुई,
न भय है जिसको परलोक से।
बुध नहीं वह है, उस मूढ़ की—
मुखरता खरता-सम जानिए ॥

(८)

अखिल विश्व जिसे अपना हुआ,
अनय भी जिसको सपना हु
बस बिना अवतार लिये वही,
पुरुष ही रूप-हीन मुकुन्द है।

(९)

मिल गई यदि लोमश-आयु तो,
कुछ न लाभ हुआ धन के बिना।
दुखद जीवन से सुख-सिन्धु है,
निधन ही धन-हीन मनुष्य का ॥

माँ बाप ने उसे अकेली रहने के लिए छोड़ दिया था पर उसकी भेंट एक परदेशी से हो गई और वह........

परदेशी

लेखक, श्रीयुत जैनेन्द्रकुमार

(१)

दो पगडंडियों का संधिस्थल। ज़रा पीछे एक कुटी। एक पगडंडी से एक स्त्री जा रही है। दूसरी से एक पुरुष आता है।

पुरुष—भद्रे, मैं दूर से आता हूँ। मुझे प्यास लगी है।

महिला—[पुरुष की ओर देखती है।]

पुरुष—यहाँ पानी मिलेगा?

महिला—पानी? [देखती है]

पुरुष—मैं प्यासा हूँ।

महिला—मेरे हाथ फँसे हैं। आँचल में फूल हैं। मैं अभी आकर पानी दूँगी। वहाँ छाँह में बैठें।

पुरुष—फूल कहाँ लिये जाती हो?

महिला—वह सामने देवालय दीखता है। वहाँ मैं इनको चढ़ाकर अभी लौट कर आती हूँ।

पुरुष—भद्रे, मुझको प्यास लगी है। फूल मुझको दे जाओ और पानी ला दो।

महिला—कहती हूँ, मैं अभी आती हूँ। देर नहीं लगाऊँगी।

पुरुष—नहीं। फूल मुझे दे दो और पानी ला दो। फिर फूल ले लेना।

महिला—बहुत प्यास लगी है? तनिक देर ठहर जाओ। मैं अभी लौट कर आती हूँ।

पुरुष—नहीं। फूल मुझको दे दो और पहले पानी ला दो। मैं बहुत दूर से आ रहा हूँ।

महिला—बटोही, मैं सवेरे ही भगवान् को फूल चढ़ाती हूँ। आज देर हो गई है। मेरा जी अच्छा नहीं था। कहती तो हूँ, मैं अभी आती हूँ। तब तक तुम छाँह में सुस्ताओ। बहुत दूर से आ रहे हो!



पुरुष—लाओ मुझे दो फूल। मैं चढ़ा दूँगा।
महिला—नहीं, नहीं।
पुरुष—मैं बहुत अच्छी तरह देवता पर फूल चढ़ाऊँगा।

पुरुष—भद्रे, मैं प्यासा हूँ। वे कौन देवता हैं जो फूल चाहते हैं? मैं पानी चाहता हूँ। उससे ज़्यादा वे फूल चाहते हैं?

महिला—बटोही, तुम कैसी बात करते हो। मुझे जाने दो।

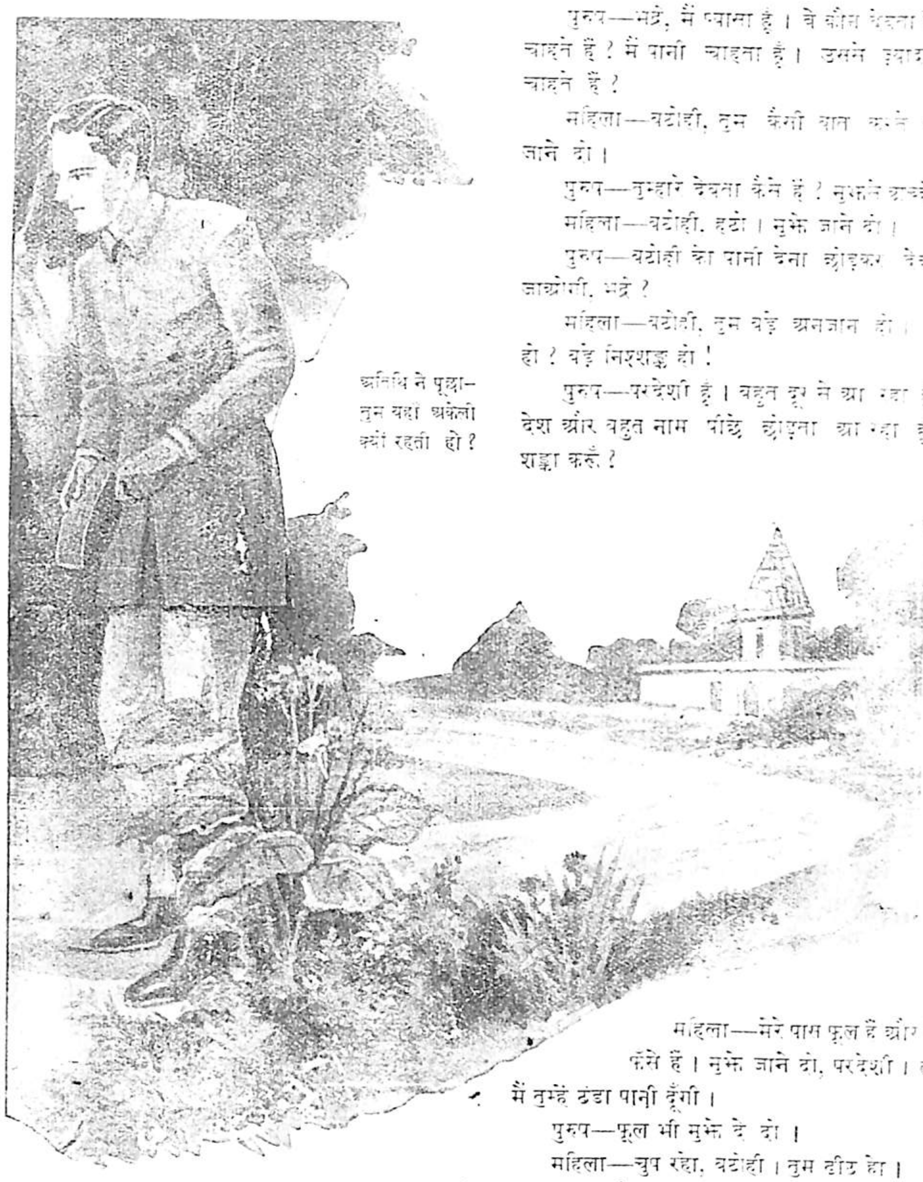
पुरुष—तुम्हारे देवता कैसे हैं? मुझसे अच्छे हैं?

महिला—बटोही, हटो। मुझे जाने दो।

पुरुष—बटोही को पानी देना छोड़कर देवता पूजने जाओगी, भद्रे?

महिला—बटोही, तुम बड़े अनजान हो। तुम कौन हो? बड़े निश्शङ्क हो!

पुरुष—परदेशी हूँ। बहुत दूर से आ रहा हूँ। बहुत देश और बहुत नाम पीछे छोड़ता आ रहा हूँ। तुमसे शङ्का करूँ?



अतिथि ने पूछा—तुम यहां अकेली क्यों रहती हो?

महिला—मेरे पास फूल हैं और मेरे हाथ फँसे हैं। मुझे जाने दो, परदेशी। लौट कर मैं तुम्हें ठंडा पानी दूँगी।

पुरुष—फूल भी मुझे दे दो।

महिला—चुप रहो, बटोही। तुम ढीठ हो।

पुरुष—मैं प्यासा हूँ, भद्रे।

महिला—प्यासे हो तो मैं नहीं जानती।

महिला—तुम कैसे बटोही हो! भलो, मुझे जाने दो। [जाना चाहती है]

पुरुष—देवता को तुम कब से जानती हो? क्या वे प्यासे हैं? सुनता हूँ, इस लोक के देवता पत्थर होते हैं।

महिला—चुप रहो, बटोही।

पुरुष—तो मैं चुप रहूँ और चला जाऊँ, यह तुम कहती हो?

महिला—नहीं—नहीं, यह नहीं। पर अभी बैठो। मैं शीघ्र आऊँगी।

पुरुष—नहीं, मैं चला ही जाता हूँ।

महिला—मैं बहुत जल्दी लौट आऊँगी। सच, देर नहीं होगी। कह तो रही हूँ।

पुरुष—जैसे मैं चलता चला आ रहा हूँ, वैसे ही यहाँ से भी चलता चला जाऊँगा। जाओ, तुम देवता के पास जाओ।

महिला—बटोही, तुम अच्छे नहीं हो। मैं कहती हूँ, मैं अभी आ जाऊँगी।

पुरुष—हाँ, तुम जाओ। मैं अपनी बाट चला जाऊँगा। मुझे तो चलना ही है।

महिला—प्यासे जाओगे?

पुरुष—क्या उपाय है? तुम तो देवालय जा रही हो।

महिला—हाँ, मैं देवालय जा रही हूँ।

पुरुष—तो जाओ।

महिला—लेकिन तुम बैठो।

पुरुष—नहीं भद्रे, तुम जाओ, मैं भी जाता हूँ।

महिला—तो—बहुत प्यासे हो?

पुरुष—बहुत? नहीं—

महिला—तो लाती हूँ पानी। लो—[महिला ने फूलों-भरा आँचल बढ़ाया कि परदेशी फूल ले। परदेशी यों ही खड़ा रहा।]

महिला—अब लो इन्हें। मैं पानी लाऊँ।

पुरुष—कहाँ लूँ? मेरे पास कोई वस्त्र तो नहीं है।

महिला—तो क्यों माँगते थे?

पुरुष—कितने फूल हैं? अँजली में आ जायँगे?

महिला—नहीं आयेंगे।

पुरुष—तब इतने फूल बताओ कैसे लूँ?

महिला—उत्तरीय में ले लो।

पुरुष—उत्तरीय में? अच्छा लाओ।

महिला—लेकिन एक बात है। तुम यहीं रहना, इसी जगह। और इन्हें ख़राब मत करना। ये पूजा के काम के हैं। और तुम सावधान नहीं हो।

पुरुष—मैं यहीं रहूँगा। ख़राब नहीं करूँगा, मैं सावधान रहूँगा।

महिला—बटोही, फिर तुम पानी पीकर चले जाओगे?

पुरुष—नहीं तो क्या—

महिला—कहाँ जाओगे?

पुरुष—पता क्या कि कहाँ कहाँ जाऊँगा।

महिला—पता नहीं है, कहाँ कहाँ जाओगे। अच्छा, खाना कहाँ पाओगे? बस्ती में?

पुरुष—खाना! बस्ती! क्यों?

महिला—बहुत दूर से आ रहे मालूम होते हो। ज़रा विश्राम करके जाना।

पुरुष—लेकिन तुम तो देवालय जाओगी।

महिला—देवालय से तुरन्त ही लौट आऊँगी।

पुरुष—अच्छा। [पुरुष अपने उत्तरीय में फूल ले लेता है। महिला जाती है। पुरुष मुस्कराता रह जाता है। कुछ देर बाद महिला एक पात्र में जल लेकर आती है।]

महिला—लो।

पुरुष—ये भी तो तुम लो। [पुरुष महिला के ऊपर फूल बिखेर देता है। फिर हाथ बढ़ाकर पात्र लेता है। लेते लेते तक में पात्र महिला के पैरों के पास गिर जाता है। महिला अप्रसन्न होती है, कुछ प्रसन्न भी होती है।]

महिला—तुम बड़े ख़राब हो जी। मैं और फूल कहाँ से लाऊँगी?

पुरुष—और फूल क्यों लाओगी?

महिला—देवता की पूजा कैसे होगी?

पुरुष—और वह पूजा किसकी हुई है?

महिला—तुम देवता हो? आये बड़े देवता!

पुरुष—तुम तो हो! तुम पर फूल भी बिखरे, जल भी चढ़ गया।

महिला—चुप रहो।

पुरुष—रुष्ट हो? अच्छा मुझे क्षमा करो। लो, फूल मैं उठाये देता हूँ। [पुरुष झुककर महिला के पैरों पर और आस-पास पड़े हुए फूलों को इकट्ठा करता है।]

महिला—हैं! हैं! धरती के फूल!

पुरुष—तो क्या हुआ? हैं तो फूल हैं।

महिला—ये अब किस काम के रह गये हैं?

पुरुष—ये अब बड़े काम के हो गये हैं।

महिला—मैं अब ख़ाली हाथ देवालय कैसे जाऊँ?

पुरुष—मत जाओ।

महिला—तुम बड़े दुष्ट हो।

पुरुष—दुष्ट हूँ तो मैं अपनी राह जाता हूँ। जाऊँ?

महिला—ज़रा विश्राम करके जाना।

पुरुष—अच्छा [दोनों कुटी की ओर चलकर जाते हैं।]

(२)

महिला अकेली रहती है। उसकी अभी नई उम्र है। बस्ती से बाहर अलग अपने आप रहती है।

अतिथि ने पूछा—तुम यहाँ अकेली क्यों रहती हो? माता-पिता नहीं हैं?

महिला—हैं। उन्होंने मुझे अकेले रहने को छोड़ दिया है।

पुरुष—वे बस्ती में रहते हैं? उन्होंने तुम्हें अकेले रहने को क्यों छोड़ दिया है?

महिला—हाँ, बस्ती में रहते हैं। बस्ती में भले आदमी रहते हैं। मैंने सुना है, मैं भली नहीं हूँ। इस वास्ते उन्होंने छोड़ दिया है।

पुरुष—तुम क्यों भली नहीं हो?

महिला—ठीक मैं नहीं जानती। कुछ दिन हुए, एक कुमार आया था। वह मुझे एक उद्यान में मिला था। वह बहुत अच्छा था और वह याद नहीं रखता था कि दुनिया भी है। मैं भी तब दुनिया को भूल जाती थी। मैं रोज़ उद्यान जाती थी कि कहीं कुमार मिल जाय। मा ने कहा—"वह भला नहीं है। तू वहाँ मत जाया कर। वह लड़का बड़ा ख़राब है।" मैंने कहा—"अम्मा जी, वह ख़राब नहीं है।" उन्होंने कहा—"चल दूर हो, अब वहाँ मत जाना।" मैं वहाँ नहीं गई। पर दिन मुझे फीका लगता था और रात को नींद कठिनाई से आती थी। किसी भी काम में जी नहीं लगता था। सब सूना-सूना लगता था। पर मा-बाप की आज्ञा तोड़कर मैं जाना नहीं चाहती थी। मा-बाप मुझे चाहते थे और

मेरी भलाई चाहते थे। ऐसे कई दिन बीत गये पर पत्थर-सा बैठा जाता था। मैं क्या करूँ? मुझे दिखाई दिया कि कुमार हमारी खिड़की की रहा है। मैं खिड़की के पास नहीं गई, पर दूर से देखती रही। कुमार वहाँ बहुत देर तक खड़ा र थककर वह टहलने लगता था। फिर वहीं आ हो जाता था। मुझे उस पर बड़ी दया आई। बड़ा बुरा मालूम हुआ। मैंने खिड़की के प कहा—"कुमार, तुम चले जाओ।" कुमार ने व मर रहा है।" मैंने कहा—"कुमार, मेरा जी अम्मा जी नाराज़ होती हैं। तुम चले जाओ।" कहा—"मेरा जी बड़ा व्याकुल है। ऐसे मैं कैसे ि मैं फिर नहीं बोल सकी। मेरी आँखों में आँसू कुमार भी रोने लगा। तब मुझसे सहा नहीं ग में लौट आई। अम्मा जी को इस बात की सूच उन्होंने कहा—"तू वहाँ कुमार से बातें करती थी? ख़राब आदमी है।" मैंने कहा—"अम्मा, कुमा नहीं है।" उसके बाद कई दिनों तक मैं देखती कुमार आता है। पर मैं खिड़की पर नहीं जा मेरा मन भीतर से भर भर आता था, पर मैं रो थी। सोचती थी, अम्मा जी कहती हैं कि वह है, और मैं कोई बुरा काम नहीं करूँगी। मेरा म से उसी घड़ी की बाट देखता रहता था जब कुमा था। पर जब वह घड़ी पास आ जाती तब मैं घ थी। उससे पहले मैं बार बार खिड़की के पास जा मैं जानती थी कि कुमार जब नहीं है तब खिड़की जाने में बुराई नहीं है। उसमें ज़ायदा कुछ नहीं हर्ज भी कुछ नहीं था। और मेरा मन बहल पर जब कुमार वहाँ दिखाई दे जाता तब मैं भा थी और फिर खिड़की के पास नहीं जाती थी। तब चित्त की हालत कैसी रहती थी। फिर मुझे पता, क्या हुआ। एक दिन मेरी मा ने मुझे ब काया और कहा—"निकल जा मेरे यहाँ से, कुल मा मुझे बहुत प्यार करती थी। पर जब वह कि कुमार बुरा आदमी है तब मुझे बुरा लगता कहती थी, कुमार बुरा नहीं है। इस पर वह मुझे थी। तब मैं ज़ोर से कहती थी, कुमार, बहुत अ

तुम्हीं बताओ, मुझको कुमार अच्छा लिखता था तब मैं उसको बुरा कहा जाता हुआ कैसे सह सकती थी ? मैं सब मैं सह लेती थी, पर कुमार के सामने नहीं होती थी। एक दिन मुझे मा ने धक्का देकर घर से बाहर कर दिया। बाहर खड़ी खड़ी मैं सोचने लगी, क्या करूँ। मैं मा के मन को जानती थी। मुझसे उनको जो बड़ा कलेश पाता था। मैं उनको दुख देना नहीं चाहती थी। मैं कैसे कहती कि मा, मुझे भीतर ले लो। मैं यह नहीं कह सकती थी और मैं चली आई। तभी से मैं यहाँ रहती हूँ। बटोही, मैंने सच-सच बात कह दी है। अब तुम देख लो कि मैं खोटी नहीं हूँ। कुमार फिर मुझे नहीं मिला। न जाने वह कहाँ हो ! बटोही, मुझे अकेलापन अच्छा नहीं लगता है। देखो परदेशी, तुम्हें बस्ती के लोग यहाँ आने के लिए मना नहीं करेंगे। मुझे वे बहुत खोटी-खोटी बातें कहते हैं। पर मैं नहीं चाहती कि तुम्हें भी कोई खोटी बात कहे। तुम परदेशी हो। तुम्हें लोगों की खोटी बात की परवा न हो, तो परदेशी, तुम कुछ रोज़ यहाँ रह कर चले जाना। मेरा जी लग जायगा। यहाँ कौन कब आता है।

पुरुष—मैं समझा।

महिला—तुम क्या समझे परदेशी, और तुम चुप क्यों हो गये ?

पुरुष—कुछ नहीं। ... देखो, मैं प्रवासी हूँ। मुझको खरा-खोटा नहीं छूता। मैं यहाँ कुछ रोज़ रहूँगा।

महिला—परदेशी, तुम किस देश के वासी हो ? तुम्हें खरा-खोटा क्यों नहीं छूता ?

पुरुष—मैं अनेक देश-देशान्तरों में घूमा हूँ। पर यह तुम लोगों का देश न्यारा है। और सब जगह तो ऐसे खरे-खोटे की बात नहीं है। भद्रे, क्या तुमको पक्का मालूम है कि तुम खोटी हो ?

महिला—हाँ, मैं ऐसा ही जानती हूँ। नहीं तो लोग मुझे क्यों दुरदुराते ?

पुरुष—एक और लोक भी है। इस तुम्हारे लोक से वह अगला है। वहाँ सब उलट जाता है। जो यहाँ दुरदुराया जाता है, वहाँ उसका आदर होता है। यहाँ का दुखी वहाँ सुख पाता है। तुम उस लोक के बारे में कुछ नहीं जानतीं ?

महिला—क्या परलोक ?

पुरुष—हाँ, परलोक।

महिला—मैंने सुना है, परलोक होता है। पर मैं कुछ जानती नहीं। सुना है, यहाँ से लोग वहाँ जाते हैं।

पुरुष—जो सुना है वह मिथ्या नहीं है। अच्छा, तुम कुमार को पहचानती हो ?

महिला—परदेशी, तुम कैसी बात करते हो ? कुमार को नहीं पहचानूँगी ?

पुरुष—लेकिन सच, पहचानती हो ? [महिला देखती है। देखती है कि जो सामने है वह कुमार ही तो है !]

महिला—तुम ! परदेशी !

पुरुष—भद्रे, क्या आश्चर्य है ? मैं ही तो हूँ।

महिला—तुम बड़े खराब हो !

पुरुष—मैं परदेशी हूँ रानी, मैं प्रवासी हूँ। [महिला देखती है। देखती है कि सामने कुमार नहीं, परदेशी ही तो है।]

(३)

[एक पर्वत-शिखर। नितान्त हिममंडित। पुरुष बादल के एक घोड़े की अयाल थामे खड़ा है। घोड़े के मुख में फेन है, देह में विद्युत्। पुरुष अपार दूर तक बिछी पृथ्वी को देख रहा है। वह प्रतीक्षा में है। उसे शायद कहीं दूर जाना है।]

[महिला का प्रवेश]

महिला—आखिर तुम पा गये।

पुरुष—आओ। देखो, मेरी यात्रा प्रस्तुत है।

महिला—तुम रात न जाने कहाँ विलीन हो गये। मैं खोजती फिरी। मैं रात सोई नहीं। जो यंत्र तुमने मुझे अपने हृदय में धारण करने को दिया था उससे मैंने तुम्हारा पता बहुत पूछा। उसने भी कुछ नहीं बताया। अब सवेरे आखिर उसने बताया कि तुम यहाँ हो। मैं भागी आ रही हूँ। परदेशी, तुम्हें क्या हुआ है ? तुम्हें ऐसा नहीं चाहिए। मुझे तुमने बेहाल कर दिया।...तुम क्या कहीं जा रहे हो ?

पुरुष—हाँ, मैं जा रहा हूँ।

महिला—कहाँ जा रहे हो ?

पुरुष—तुम्हें क्या बताऊँ, भद्रे। अपने भ्रमण पर चला जा रहा हूँ।

महिला – कब लौटोगे ?

पुरुष—छिः ! छिः ! कैसी बात करती हो ?

महिला—नहीं लौटोगे ?

पुरुष—कैसी बच्ची ऐसी बात करती हो ! अरे लौटना कहीं होता है ?

महिला—मुझे छोड़कर चले जाओगे ?

पुरुष—देखो, यह घोड़ा मुझे ले जाने के लिए आ पहुँचा है। देखो यह कितना बेताब है। जो घड़ी जाने की बँध गई है उसी पल यह मुझे उड़ा ले जायगा। क्षण भर की देर न होगी। मैंने कहा न था भद्रे कि मैं परदेशी हूँ, प्रवासी हूँ। कूच का समय आया तब मैं क्या ठहरूँगा ? इसमें तुम चिन्ता क्यों करती हो ?

महिला—अरे परदेशी, क्या तुम जानते हो, मेरी क्या हालत है ? तुमने मुझे ममता में क्यों डाला ? हाय ! मैं सर्वस्व गँवा बैठी और तुम जा रहे हो।

पुरुष—भद्रे, दुनिया की जैसी बातें न करो। कोई कुछ नहीं गँवा सकता, और क्लेश तो भूल है। सबके कूच का पल बँधा है, और मैं तो प्रवासी हूँ।

महिला—परदेशी, निठुराई मत करो। मेरी हालत देखो। मैं तुम्हारा नाम भी तो नहीं जानती। मैं क्या करूँगी ? कैसे करूँगी ?

पुरुष—नाम-धाम दुनियादारी की बातें हैं। और मैं परदेशी हूँ। मेरा नाम क्या होगा ?

महिला—ओ परदेशी, मुझे ठगकर तुम कहाँ जाते हो ? मैं ठगी गई, और मैंने बुरा नहीं माना। पर अब तुम जाते कहाँ हो ? मेरा सब कुछ तुम्हारा है। वह छोड़कर मत जाओ। छूटकर मैं कहाँ की रहूँगी ?

पुरुष—भद्रे, दुख मत करो। देखो, यह क्षण अन्तिम है। घोड़ा सुम पटक रहा है। जाने का पल अब आया, अब आया। पर क्या तुम्हें दुखी देखते हुए जाना होगा ? रानी, हँसो कि मैं जाता हूँ। क्या हमने परस्पर कम सुख जाना है ? उसको जी में बसाकर हम किस दुख को चुनौती नहीं दे सकते ? क्या उस सुख को हम इतना हलका बना दें कि कोई भी दुख उस पर भारी हो जाय ? हमारा संयोग सब वियोगों से सत्य है। संयोग क्षणकालिक था, वियोग चिरकालिक है। फिर भी संयोग ही सत्य है।

महिला—परदेशी, तुम्हारी बात से मुझे डर होता है। तुम कौन हो ? तुम्हारा क्या नाम है ? नाम मुझे बताते जाओ। इतना सहारा तो मुझे दो।

पुरुष—मैं परदेशी हूँ, नाम-धाम सब पीछे छोड़ता जाता हूँ। अनन्त नाम मैंने धारे हैं, पर वे अलग ही रहे हैं। नामातीत परदेशी को तुम क्या याद रक्खोगी ? उसे परदेशी ही जानो। याद कुछ मत रक्खो। याद दुख है। वे संयोग-सुख के क्षण ही अपने साथ शाश्वत बनाकर रहो जो हमने अपने को परस्पर खोकर पाये हैं।

महिला—ओ निर्दय ! निर्मम !

पुरुष—रानी, क्या अपने ही सुख के प्रति हम अकृतज्ञ बनें ? तुम्हारा सुहाग उन्हीं सुख के क्षणों में है जो अमर है। मैं तुममें ही रहता हूँ। उसी तुममें से अब आगे बढ़ा जा रहा हूँ। तुम्हें कैसे बताऊँ कि तुमसे कितना जीवन लिये जा रहा हूँ ! पर उसकी बात नहीं करूँगा, कह कर उसे हलका नहीं करूँगा।

महिला—हाय, मैं क्या करूँ ? तुम बड़े निठुर हो।

पुरुष—निठुर ? रानी तुम नहीं जानतीं।

महिला—तब मुझे छोड़ क्यों जाते हो, राजा ? मत जाओ, मत जाओ।

पुरुष—रानी, रोओ नहीं। हँसो कि मैं जाता हूँ। देखो, तुम्हारी उन दिनों की हँसी मेरे भीतर अब भी जीवित है। वह चाँदनी-सी तुम्हारी हँसी मुझसे खोई नहीं जायगी। उसी को थाम कर मैं तुम्हारे रोने को हँसकर सह जाता हूँ। मत रोओ, रानी। रोना कृपणता है।

महिला—मैं नहीं जानती थी तुम ऐसे हो।

पुरुष—रानी,—

महिला—मैं जान रही हूँ, तुमने मुझे खिलौना समझा। हाय ! मैं क्या करूँ ?

पुरुष—[घोड़े पर चढ़ने को उद्यत होकर] रानी, मैं यह नहीं सहना चाहता। क्या वह तुम्हारी प्रतिमा मैं अपने भीतर फीकी होने दूँ जो मग्न है और स्निग्ध है, जो खिलते फूल की तरह मेरे भीतर सदा खिलती ही जायगी ? नहीं, वह प्रतिमा मुझसे नहीं छिन सकती। रानी, तुम वही हो। यों विलाप करनेवाली अबला तुम नहीं हो। उठो, प्रसन्न होओ। माता को प्रसन्न रहना चाहिए।

महिला—माता की बात करते तुमको दया क्यों नहीं आती ? अरे, उसका बच्चा किसे अपना बाप कहेगा, यह तक क्या वह मा जानती है ?

पुरुष—भद्रे, यह क्या कहती हो ?

महिला—क्या कहती हूँ? यह पूछते हुए तुम लजाते क्यों नहीं हो?

पुरुष—ओह! मैं समझा। तुम्हारी दुनिया में पिता का नाम ओढ़े हुए बच्चे होते हैं। यह कैसी तुम्हारी दुनिया है?

महिला—ओ परदेशी, कैसी निर्लज्ज-सी बात करते हो?

पुरुष—बिना बाप के नाम के बच्चे क्या यहाँ होते ही नहीं? यह जगत् क्या इतना अभागा है?

महिला—बेहया मत बन जाओ, परदेशी।

पुरुष—यह कैसी तुम्हारी अभागी दुनिया है? मा यहाँ इसलिए दुखी होती है कि मा है! छिः! छिः! यह कैसी निकम्मी बात है।

महिला—परदेशी, मैं नहीं जानती, तुम किस लोक की बात करते हो। मुझे अपनी सुध नहीं है। मुझे कुछ नहीं चाहिए। मैंने तुम्हें पाया, यह बहुत पाया। तुम जाते हो? अच्छा जाओ। तुम मेरे लिए बहुत हो। तुम्हें पाकर मैं अपने भाग्य पर शङ्कित हो जाती थी। मैं क्या इतने के योग्य थी? अगर तुम जाते हो तो मैं उस भाग्य को कोसूँगी नहीं। तुम जाओ। पर मैं सोचती थी, कहीं तुम ठहर जाओ तो कैसा हो। लेकिन मैं भाग्य से अपनी याचना से इतना अधिक पा चुकी हूँ कि और कुछ भी उससे माँगने का मेरा मुँह नहीं है। मैं नहीं सोचती कि मैं दिन कैसे काटूँगी। नहीं। मैं कोई स्वार्थ की बात नहीं सोचती। मैंने सब तुम पर वार दिया। अब क्या मैं यह सोचूँ कि तुम मेरे लिए क्या छोड़कर जा रहे हो?'

पुरुष—धन?

महिला—नहीं, नहीं। धन मुझे नहीं चाहिए।

पुरुष—भद्रे, धन—

महिला—नहीं, नहीं। मुझे नहीं चाहिए।

पुरुष—भद्रे, धन मैल है और प्रेम निर्मल है। रानी, यह मैल तुम्हारी दुनिया का शाप है। मैं परदेशी हूँ, मैं उस मैल से मैला नहीं हूँ। मैं—

महिला—नहीं, मैं वह कुछ नहीं सोचती। पर मेरा बच्चा दुनिया का अपमान न सहेगा। तुम दुनिया को नहीं जानते। मैं अपमान को उसे छूने नहीं दूँगी।

पुरुष—अपमान! रानी तुम नहीं जानतीं। दुनिया का अपमान विनीत मस्तक पर स्वीकार करने से पवित्र बनता है। वह सम्मान हो जाता है। तुम यह समझो। भली भाँति पहचान लो। और सुनो, तुम्हारा बिना बाप का बच्चा दुनिया का राजा होगा। ऐसा राजा होगा जिसके पैरों तक दुनिया का मुकुट नहीं पहुँच सकेगा। रानी, यह ब्रह्माण्ड बड़ा है और तुम्हारी दुनिया बहुत क्षुद्र है।

महिला—नहीं, नहीं, नहीं। तुम नहीं जानते। मैं अपने बच्चे का अपमान नहीं सहूँगी। मैंने दुनिया का सब खोटा सुना। पर अपने बच्चे का खोटा नहीं सहूँगी। ऐसा ही होगा तो मैं उसे जनमते ही मार दूँगी।

पुरुष—ओह! ऐसी तुम्हारी मूढ़ दुनिया! वह अपने चलन से मा के दिल में बच्चे के लिए ऐसे हिंस्रभाव पैदा कर सकती है! रानी, यह तुम क्या कहती हो?

महिला—तुम नहीं जानते—तुम नहीं जानते परदेशी।

पुरुष—मैं तुम्हारी दुनिया को नहीं जानता। पर तुम्हारी दुनिया भी बड़ी दुनिया को नहीं जानती, रानी!

महिला—परदेशी, तुम कौन हो? तुम्हें देखकर मेरी आँख झिपती है। मुझे बच्चे के बाप का नाम नहीं चाहिए। पर बताओ, तुम कौन हो। मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ। तुम जाओ, मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ। तुम चले ही जाओ। यह दुनिया भी तुम्हारे योग्य नहीं है। मैं यहाँ जैसे-तैसे रह लूँगी, पर तुम जाओ। तुम वहाँ के लिए हो, जहाँ कलह नहीं है। तुम जाओ, लाख बरस जिओ और सदा राजा रहो, मेरे राजा। मैं आज अपने सौभाग्य को स्वीकार करती हूँ। उसको लेकर लोक का अपमान भी स्वीकार करूँगी। अपने महा-सौभाग्य की बात को भीतर लेकर विनीत रहूँगी और मेरे राजा, तुमसे कहती हूँ, हटूँगी नहीं।

पुरुष—तुम्हारा पुत्र निष्कलुष हो, प्रेम से दृढ़ हो और जीवन में जयी हो।

महिला—पर मुझे बता जाओ, तुम कौन हो। मुझे अपने लिए बता जाओ—[पुरुष का चरण-रज लेती है।]

पुरुष—मैं—[बिजली तड़पती है। बादल का घोड़ा निनाद करता है, पुरुष कूदकर उस पर सवार होता है।] समझो, मैं देवदूत हूँ।

[घोड़े को एड़ लगाकर वह उड़ चलता है। महिला, स्तम्भित देखती रहती है।]

क्या आज का किसान अधिक समृद्ध है

लेखक, श्रीयुत अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

समय-बे-समय हमारे शासक प्रायः यह कहते रहते हैं कि भारतवर्ष उत्तरोत्तर समृद्धि के पथ पर अग्रसर हो रहा है। असेम्बली के अधिवेशन में पिछले बजट के वाद-विवाद के समय भारत-सरकार के अर्थ-सदस्य सर जेम्स ग्रिग ने कहा था कि ब्रिटिश शासन की बदौलत इस देश से अकाल का नाम लुप्त हो गया है और किसान की आमदनी बढ़ गई है। वर्तमान वाइसराय लार्ड लिनलिथगो की अध्यक्षता में आज से दस साल पहले एक कृषि-कमीशन खेती और किसानों की अवस्था की जाँच के लिए यहाँ आया था। उस कमीशन ने भी इस बात की पुष्टि की थी कि अकाल का नाम इस देश में अब लोग भूलते जा रहे हैं: भारतीय खेती की उन्नति के लिए ब्रिटिश शासकों ने जितना कार्य किया है, उतना इस देश के पहले के शासकों ने नहीं किया, सिंचाई की उत्तम व्यवस्था और माल के इधर-उधर भेजने के साधनों की वृद्धि के कारण 'अकाल' शब्द का अर्थ बदल गया है और खेती की पैदावार पहले से बहुत बढ़ गई है।

भारत के किसान आज कितना ग़रीब हो गये हैं, उनकी इस ग़रीबी का असली कारण क्या है, यह सब प्रामाणिक आँकड़े देकर इस लेख में बताया गया है।

यह सच है कि सिंचाई से जितना लाभ पंजाब को हुआ है, उतना भारत के अन्य किसी प्रान्त को नहीं पहुँचा है। यहाँ की नहर-व्यवस्था संसार के आश्चर्यों में से एक है और पंजाब के आर्थिक जीवन में इसका महत्त्व हर एक स्वीकार करता है।

पंजाब में सबसे अधिक भूमि नहर से सींची जाती है। सारे ब्रिटिश भारत में १९२१-२२ से १९२५-२६ के पाँच वर्षों में औसतन २,६६,००,००० एकड़ ज़मीन सींची गई। इसमें अकेले पंजाब की ही १,०४,००,००० एकड़ ज़मीन है। फलतः नहर से सींची गई ज़मीन में सारे भारत में १५० करोड़ रुपये की और पंजाब में ५७ करोड़ रुपये की अधिक फ़सल हुई। नहर से सींची जानेवाली ज़मीन उत्तरोत्तर पंजाब में बढ़ती जा रही है। [illegible] में [illegible] एकड़ थी और [illegible] में बढ़कर १,०४,००,००० हो गई। [illegible] में पंजाब में [illegible] की कुल [illegible] एकड़ थी, जिसमें नहर से सींची हुई एक तिहाई था। [illegible] नहर से सींची ज़मीन में ५९ रुपये और बिना सींची हुई ज़मीन में [illegible] करोड़ का अनाज पैदा हुआ।

यह भी है कि अब [illegible] को खेती लगी है। बीज [illegible] और उत्तम बोया जाने लगा है। सबके फलस्वरूप [illegible] की पैदावार और किसान की [illegible] भी बढ़ गई है। इधर सरकार [illegible] भूमि-कर के रूप में अपना लेना [illegible] दिया है। १८५५ से पहले सरकार [illegible] निकालकर बची हुई आमदनी में से [illegible] लेती थी। १९२२ में पंजाब में यह [illegible] गया कि ख़र्च निकालकर बची हुई [illegible] दनी में से २५ प्रतिशत से अधिक न [illegible] जाय, साथ ही बन्दोबस्त ४० साल [illegible] लिए कर दिया गया। खेती की कुल पैदावार का [illegible] इस समय ५ प्रतिशत बैठता है। क्या भारत के पहले [illegible] शासक ने इतनी कम मात्रा में भूमि की उपज [illegible] भूमि-कर कभी लिया है?

मनु ने लिखा है कि राजा भूमि की उपज का [illegible] ६ठा व १२वाँ भाग ग्रहण कर सकता है। आपत्ति [illegible] समय यदि राजा एक चौथाई ले ले तो भी उसे दोष [illegible] दिया जा सकता। अर्थशास्त्र ने भी भूमि की पैदावार [illegible] ६ठा भाग लेने का राजा को अधिकार दिया है। [illegible] उद्दीन ख़िलजी भूमि की कुल पैदावार का आधा [illegible] करता था। अकबर सरीखा उदार शासक कुल पैदावार [illegible] एक तिहाई लेता था।

मुग़ल-शासक इतना अधिक भूमि-कर क्यों लेते [illegible] इसका उत्तर मूरलैंड ने यह कहकर दिया है कि वे [illegible] रूप में राक्षस थे। [illegible] मूरलैंड के इस कथन से मालूम होता [illegible] कि इस देश के प्राचीन शासक अत्याचारी थे और [illegible]

ए खेतिहरों से अधिक से अधिक मात्रा में भूमि-कर करते थे।

परन्तु उस समय राज्य की आय का मुख्य स्रोत भूमि-ही था। आज-कल के समान इन्कमटैक्स, चुंगी, र आदि प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर प्रजा पर नहीं दूसरे भूमि-कर वसूल करनेवाले भी कठोर नहीं थे। इस ने 'मेमायर आफ़ गाज़ीपुर डिस्ट्रिक्ट' नाम की किताब में लिखा है कि 'आमिल किसानों का दोस्त था। वह ज़रूरत होने पर किसानों को पेशगी रुपया था और उसे धीरे धीरे क़िश्तों में वसूल करता था। अपनी नाप-तौल में ठीक और न्यायपूर्ण रहता था। के मालिक को वह सदा प्रसन्न रखता था। जब कभी को क्षति पहुँचती थी, वह नुक़सान का तख़मीना लगा-अपने उच्च अधिकारियों को फ़ौरन रिपोर्ट करता था। फ़सल पूरी होती थी तब आमिल को उचित माल-ी वसूल करने का आदेश दिया जाता था।' इसका अर्थ है कि फ़सल अच्छी न होने पर पूरी मालगुज़ारी वसूल की जाती थी। आमिल मालगुज़ारी कड़ाई से बल्कि प्रेम से वसूल करता था और फ़सल का मौसम जाने के बाद तक वह मालगुज़ारी वसूल नहीं करता था। इस प्रसंग में हमें यह न भूलना चाहिए कि र के समय प्रचलित भूमि-कर-पद्धति शेरशाह के समय लित भूमि-कर-पद्धति ही कुछ थोड़े फेर-फार के साथ लित थी।

दूसरी बात उस समय राजा और किसान के बीच में तीसरा दलाल, एजेण्ट और ज़मींदार नहीं था। आमिल एक किसान से अपना प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखता था और न का मालिक ज़मींदार नहीं था, बल्कि किसान था। प्रकार मालगुज़ारी ज़मींदार व उसके कारिन्दे किसान हीं वसूल करते थे, बल्कि राजकर्मचारी सीधे किसान लगुज़ारी लेते थे। रैयतवारी-पद्धति उस समय प्रच-थी। अकबर और जहांगीर के समय खेती की फ़सल और किसान में बँटती थी, आज के समान तीन में —गवर्नमेंट, ज़मींदार और किसान में नहीं। इसका प्रभाव पड़ता है और यह कितना महत्त्वपूर्ण अन्तर है, हम आगे चलकर देखेंगे।

तीन सौ साल में भूमि की शक्ति घट गई है। अकबर के समय 'पोलाज' ज़मीन (औसतन उत्तम, मध्यम और ख़राब ज़मीन) से १२ मन ३८ सेर गेहूँ और इतना ही चावल उपजता था। संयुक्त-प्रान्त में जहाँ की उपज आईन-अकबरी में दी हुई है, १२ मन ३१ सेर गेहूँ और १० मन १३ सेर चावल उपजता था।

इस समय खेती का विस्तार हो गया है। उस समय केवल अच्छी ज़मीन ही जोती जाती थी, जिसका भूमि-कर भारी था। दूसरी बात यह है कि निकम्मी ज़मीन नहीं जोती जाती थी। इसके अतिरिक्त उस समय अपनी जीविका के लिए एकमात्र खेती पर निर्भर रहनेवालों की संख्या बहुत कम थी। दूसरी बात यह थी कि आज की अपेक्षा सारी ज़मीन का एक बहुत थोड़ा-सा भाग खेती पर आश्रित था। इससे स्पष्ट है कि उस समय जोत के खाते आज के समान छोटे छोटे नहीं थे।

आज पंजाब में ५६ प्रतिशत खेतिहरों में से प्रत्येक के पास पांच पाँच एकड़ ज़मीन है। बम्बई को छोड़कर शेष प्रान्तों में प्रति किसान के पास इससे भी कम ज़मीन जोत के लिए है। पंजाब के दो हज़ार गाँवों की जाँच से पता चला है कि ५८ प्रतिशत जोत के खाते ५ एकड़ से कम हैं। यह सब जानते हैं कि हमारे उत्तराधिकार के क़ानून के कारण ज़मीन बराबर के टुकड़ों में बँटती रहती है। डाक्टर मैन के कथनानुसार पूना-ज़िले में १,७७१ में जोत के खाते का औसतन परिमाण ४० एकड़ था। १४४ साल बाद १९१५ में वह ७ एकड़ रह गया। जन-संख्या की वृद्धि के साथ साथ जोत के खाते घटते जाते हैं, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। जोत के खाते का परिमाण किस प्रकार घटता जाता है, यह नीचे दिये हुए पंजाब के आँकड़ों से स्पष्ट हो जायगा—

नाम ज़िला	१८९४ एकड़	१९२२ एकड़
हिसार	१२·४	७·७
रोहतक	४·६	३·०
गुड़गांव	३·७	२·४
करनाल	४·७	३·१
अम्बाला	२·७	१·७
शिमला	१·३	१·१
काँगड़ा	२·१	१·२

नाम ज़िला	१८९४ एकड़	१९२२ एकड़
होशियारपुर	१·२	·९
जालन्धर	१·६	१·२
लुधियाना	२·९	२·१
फ़िरोज़पुर	६·९	४·४
लाहौर	५·०	३·६
अमृतसर	५·०	३·६
गुरदासपुर	२·०	१·६
सियालकोट	१·१	१·३
गुजरांवाला	४·४	२·९
गुजरात	२·८	१·८
शाहपुर	५·३	५·०
जेहलम	३·६	१·०७
रावलपिण्डी	३·०	१·३
मिण्टगुमरी	६·७	१०·६
झंग	५·२	४·७

(नहर-द्वारा सिंचाई होने के कारण अब बहुत-सी भूमि जोती जाने लगी है)

इससे स्पष्ट है कि भूमि पर निर्वाह करनेवालों की संख्या बढ़ने के साथ साथ जोत के खाते घटते जा रहे हैं। जिस परिमाण में आबादी और भूमि पर आश्रितों की संख्या बढ़ रही है, उसी मात्रा में जोत की भूमि नहीं बढ़ रही है। इसलिए यह मानना होगा कि मुग़ल-कालीन किसान आज के किसान से अधिक बड़े खाते पर खेती करता था और उसके खाते की औसतन उपज आज से ज़्यादा थी। इसलिए अकबर के समय में अधिक परिमाण की ज़मीन पर खेती करनेवाले किसान के लिए कुल फ़सल का $\frac{1}{3}$ देना सरल था और इस पर भी वह खेती करता रह सकता था। मगर छोटे परिमाण की ज़मीन पर खेती करनेवाले किसान के लिए आज यह सम्भव नहीं है।

यहाँ तक का विवेचन यह मान कर किया गया है कि ब्रिटिश शासन और मुग़ल-शासन में ज़मींदार-पद्धति नहीं थी। मगर हम जानते हैं कि संयुक्त-प्रान्त, बङ्गाल, बिहार में सर्वत्र ज़मींदार हैं। जिस पंजाब के बारे में ख़याल किया जाता है कि वहाँ ज़मींदारी-प्रथा नहीं है और किसान स्वयं ज़मीन के मालिक हैं उसकी वस्तुस्थिति इसके विपरीत है। यहाँ भी ज़मीन कोई जोतता है और ज़मीन का मालिक कोई और है। बँटाई-पद्धति पर खेती होती है। बँटाई में ज़मींदार $\frac{1}{3}$, $\frac{1}{2}$ व $\frac{1}{4}$ लेता है—ज़्यादातर $\frac{1}{2}$ लेता है। इस पद्धति का प्रभाव किसानों पर क्या पड़ा है, इसका वर्णन मिस्टर स्टीवर्ट ने अपनी 'सम एस्पेक्ट्स आफ़ बटाई कल्टीवेशन इन दि लायलपुर डिस्ट्रिक्ट आफ़ दि पंजाब' में किया है।

मिस्टर स्टीवर्ट ने १९२३-२४ में १८ खेतिहरों की अवस्था की जाँच की थी। उनकी जाँच से प्रकट होता है कि इनमें से दो-एक एक स्क्वायर (२५ किल्ला = एक स्क्वायर: १ किल्ला = $1\frac{1}{8}$ एकड़) और शेष आधे आधे स्क्वायर पर खेती करते हैं। खेत की आधी पैदावार ज़मीन का मालिक ले लेता है, क्योंकि उसने अपनी ज़मीन किसानों को जोतने को दे रक्खी है। भूमि-कर और जल-कर (५-८ रु० प्रति एकड़) ज़मींदार और किसान आधा आधा चुकाते हैं। खेती के अन्य सब ख़र्च बीज, बैल, रखाई, औज़ार आदि का अकेले किसान को उठाना पड़ता है। हिसाब लगाने से मालूम हुआ कि ज़मींदार को २५) से ४०) तक प्रति एकड़ आमदनी होती है, यानी औसतन ३०) प्रति एकड़ उसको आमदनी होती है। किसान को इसके मुक़ाबिले में १४) से ३१) प्रतिएकड़ आमदनी होती है, यानी औसतन १९≡) खेतिहर को आमदनी होती है। इसका स्पष्ट अर्थ हुआ कि ज़मींदार को औसतन प्रति एकड़ जब ३०) आमदनी होती है तब खेतिहर को केवल १९≡) होती है।

इससे स्वभावतः एक प्रश्न उठता है कि क्या आज के किसान की चाहे वह नहरवाली ज़मीन क्यों न जोतता हो, आज से ३०० साल पहले अकबर के ज़माने के किसान से अच्छी हालत है। आज प्राइवेट लगान उत्पन्न हो गया है और वह बढ़ता जाता है। आज किसान को $\frac{1}{2}$ बँटाई और भूमि-कर देना पड़ता है। उस समय के किसान को केवल भूमि-कर ही देना पड़ता था। भूमि-कर लेनेवाला राज्य हो या ज़मींदार, किसान के पास जो बच रहता है वही उसका है और उसी को हमें देखना चाहिए।

भारत के अन्य प्रान्तों की अपेक्षा पंजाब के किसान ख़ुशहाल हैं। पंजाब में भी लायलपुर के किसान ज़्यादा

ख़ुशहाल हैं। यदि लायलपुर के ज़िले में बँटाई पर जोतने-वाले किसान की अकबर-काल के किसान से तुलना करें तो क्या परिणाम सामने आता है?

लायलपुर में एक एकड़ में साधारण रूप से १,२०० पौंड व १४·६३ मन प्रति एकड़ गेहूँ उत्पन्न होता है। अकबर के समय पोलाज ज़मीन में १२·९६ मन गेहूँ उत्पन्न होता था। बँटाई देनेवाले आज के किसान और भूमि-कर देने-वाले अकबर-युग के किसान का ख़र्च निकालकर बची हुई आमदनी प्रोफ़ेसर ब्रजनारायण के मत में इस प्रकार होगी—

लायलपुर का बँटाई किसान

जोती गई ज़मीन (नहरी पानी की) १० एकड़
गेहूँ की पैदावार प्रतिएकड़ १४·६३ मन
कुल पैदावार १४६·३ मन
क़ीमत ५) प्रतिमन ७३२)
ज़मींदार और किसान के बीच बराबर बराबर बँटा ख़र्च—

(१) भूमि और जल-कर ११) प्रतिएकड़	११०)
(२) कमीन्स ५) एकड़	५०)
योग	१६०)

ज़मींदार की बची हुई आय और खेतिहर की कुल आमदनी प्रत्येक की २६०)
वे ख़र्च जो अकेला किसान उठाता है।

(१) बीज २) प्रतिएकड़—	२०)
(२) बैल, हल और औज़ार —	१०॥)
प्रतिएकड़—	१०५)
योग	१२५)

किसान की बची हुई आमदनी १६१)

अकबर के समय का किसान

जोती गई ज़मीन (बारानी) १० एकड़
गेहूँ की पैदावार प्रतिएकड़ १२·९६ मन
कुल पैदावार १२९·६ मन
क़ीमत ५) प्रतिमन ६४८)

खेती का ख़र्च

भूमि-कर	२१६)
कमीन्स	५०)
बीज	२०)
हल, बैल, औज़ार	१०५)
कुल ख़र्च	३९१)
किसान की आमदनी	२५७)

इससे प्रकट है कि लायलपुर के खेतिहर से अकबर के समय के किसान के पास खाने-पहनने के लिए अधिक बचता था।

भारत के सबसे अधिक ख़ुशहाल ज़िले का किसान भी ग़रीब है। उसकी कमाई पर पहले कुछ प्रकाश डाला जा चुका है। मिस्टर स्टीवर्ट के १८ किसानों में से २ स्क्वायर (२८ एकड़) जोतनेवाले की प्रतिदिन की आमदनी १=)॥ और १) ५ पाई है। शेष आधा स्क्वायर (१४ एकड़) जोतनेवाले १६ किसानों में से ८ की ।-)। से ॥-)१ पाई है। शेष ८ की ॥=) से ऊपर है, मगर १) से कम है। इन सबकी साल की (१ जून १९२३ से ३१ मई १९२४ तक की) औसत आमदनी मिस्टर स्टीवर्ट के अनुसार १९≡) पड़ती है।

पंजाब के किसान के पास औसतन जोत का खाता ५ एकड़ से ज़्यादा नहीं है। यदि नहरी और ग़ैर-नहरी ज़मीन की उपज की औसतन आमदनी १९≡) ही मान लें तो एक किसान को बँटाई और भूमि-कर देने के बाद साल में ९६) आमदनी होती है। जो इससे कम जोतते हैं उनकी आमदनी कम होगी। यह पड़ता है प्रतिमास ८) और प्रतिदिन ।)। अर्थात् मिस्टर स्टीवर्ट की जाँच के

हिसाब से एक पंजाबी किसान की प्रतिदिन की आमदनी चार आने से ज़्यादा नहीं पड़ती।

सरकारी अधिकारी खेती की उन्नति और नहरों के प्रसार से बढ़ी हुई पैदावार का ज़िक्र करके बताते हैं कि देश समृद्ध हो रहा है। मगर किसी जाति की उन्नति पैदावार की वृद्धि से नहीं जानी जा सकती। इसके जानने के लिए यह देखना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति की कितनी आमदनी है। प्रोफ़ेसर ब्रजनारायण ने एक पंजाबी किसान की प्रतिदिन की औसतन आमदनी ॥-) बताई है। और इस परिणाम पर जिस रीति से पहुँचे हैं वह इस प्रकार है—

खेती के सहारे पंजाब में जीनेवालों की संख्या १९२१ की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट के अनुसार इस प्रकार है

१ जोती गई ज़मीन के लगान से जिनकी आमदनी है	... ८,८६,४२३
२ खेती करनेवाले साधारण किसान	... ९९,२३,७६५
३ ज़मींदारी के मैनेजर, एजेण्ट, लगान वसूल करनेवाले, क्लर्क आदि	... ११,२६१
४ फ़ार्म के नौकर	... ३,९१,६६५
५ खेतों में मज़दूरी करनेवाले	... ५,४८,८१८
योग	१,१७,५६,९३२

लैंड-रिकार्ड के डाइरेक्टर की रिपोर्ट के अनुसार पंजाब की कुल मालों की पैदावार इस प्रकार है—

	(करोड़ रुपयों में)
१९२५-२६	... १०९·३
१९२६-२७	... ९१·१
१९२७-२८	... ८२·०

१९२५-२६ का साल स्टैंडर्ड साल माना जाता है, इसलिए इसी साल की पैदावार के आधार पर प्रतिव्यक्ति की आमदनी निश्चित करना ठीक होगा।

१९२५-२६ की प्रधान फ़सलों की पैदावार की क़ीमत १०९·३ करोड़ रुपया ठहराई गई है। इसमें भूसा नहीं शामिल है। इसलिए यदि भूसा और छोटी फ़सलें, मूँग, मेंट, तम्बाकू की आमदनी जोड़ें तो प्रोफ़ेसर साहब के अनुसार परिणाम इस प्रकार होगा—

१९२५-२६ की फ़सल	क़ीमत करोड़ रु[...]
प्रधान फ़सल	१०९·३
भूसा	... १५·०
छोटी फ़सलें	... ७·१
	१३१·४

१९२५-२६ में सरकार ने कुल ४५७ लाख रुपये कर में वसूल किये। आबपाशी का सरकारी दावा ८ करोड़ रुपया का था, मगर वसूल ४·४ करोड़ ही [...] इसके अतिरिक्त कुओं से ३,७०,००,००० एकड़ ज़[...] सींची गई। कृषि-कमीशन के हिसाब से कुएँ से एक [...] सींचने में साल में २२) ख़र्च पड़ता है। इसलिए [...] से सींचने में २२) प्रतिएकड़ के हिसाब से ख़र्च [...] ८·१४ करोड़ रुपये

मिस्टर स्टीवर्ट के कथनानुसार बीज पर प्रतिए[...] २।) ख़र्च पड़ता है। अच्छा बीज बोने या गन्ने के [...] पर प्रति एकड़ २=) ख़र्च बैठता है। प्रोफ़ेसर ब्रजनारा[...] ने ग़ैर नहरी ज़मीन के लिए प्रतिएकड़ १॥) बीज का [...] लगाया है। औसतन प्रतिएकड़ बीज पर २) [...] पड़ता है।

एक ज़मींदार को, यदि वह अपने आप खेती करे [...] मिस्टर स्टीवर्ट के मतानुसार बैल रखने में प्रतिएकड़ १[...] ख़र्च पड़ता है। बँटाई पर जोतनेवाले किसान को, क्यों[...] वह अच्छा खाना नहीं खिलाता, बैल रखने में ९) [...] १०) ख़र्च बैठता है। हम बैल का ख़र्च प्रतिएकड़ ९॥) मा[...] लेते हैं। १) औज़ार आदि पर लगता है। हमारा यह [...] ज़्यादा नहीं है। क्योंकि मिस्टर भल्ला ने होशियारपुर [...] आर्थिक जाँच करके लिखा है कि बैल रखने में साल [...] १०॥।=) प्रतिएकड़ ख़र्च पड़ता है। इस तरह १९२५-२[६] में खेती करने में कुल ख़र्च इस प्रकार हुआ—

१९२५-२६ में खेती पर ख़र्च

	करोड़ रुपयों में
मालगुज़ारी	५·४७
आबपाशी	४·४
कुएँ से सिंचाई	८·१४
बीज	५·११
हल, बैल और अन्य औज़ार	३०·८७
कुल ख़र्च	५३·९९

कुल आमदनी में से ख़र्च निकालकर १९२५-२६ में
ी से आमदनी हुई ७७·४ करोड़ रुपया ।

खेती करनेवालों की कुल संख्या १,१७,५६,९३२
इसलिए प्रतिव्यक्ति वार्षिक आमदनी ६६।) हुई ।
१,१७,५६,९३२ खेती करनेवालों में से वस्तुतः खेती
नेवालों की संख्या ३८,६०,९०० और खेती पर आश्रित
वालों की ७८,९६,०३२ है । इसलिए ७७·४ करोड़
ये की सालाना बची हुई आमदनी के हिसाब से प्रति-
सान और उसके साथ दो आश्रितों की सालाना आमदनी
९·२ रुपया हुई । यह मासिक पड़ती है १६·६ रुपया
र दैनिक ॥-) पड़ती है ।

इससे मालूम होगा कि पैदावार की मात्रा ज़रूर बढ़
है, मगर आमदनी बहुत कम होगई है ।

किसान की ग़रीबी का कारण महाजन बताये जाते हैं,
एव सब प्रान्तों में महाजनों पर प्रतिबन्ध लगाये जा रहे
और किसान महाजन के चंगुल से बचाये जा रहे हैं ।
र किसान की ग़रीबी का वस्तुतः कारण महाजन नहीं
। बैल, कुएँ से सिंचाई और खेती के उपकरणों पर
ी हुई पूँजी पर मिस्टर स्टीवर्ट ८ प्रतिशत और मिस्टर
ला ९ प्रतिशत सूद लगाते हैं । इसके अतिरिक्त पञ्जाब
किसान वार्षिक ४-५ करोड़ रुपया महाजन को देते हैं ।
खेती के ख़र्च में नहीं शामिल किया गया है । इस पर भी
क पञ्जाबी किसान की आमदनी जिसके ऊपर दो आश्रित
क्तियों का भी ख़र्च है, प्रतिदिन ॥-) है । इसलिए
सान की ग़रीबी का मुख्य कारण महाजन नहीं है, बल्कि
फ़ेसर ब्रजनारायण के शब्दों में खेती पर जीविका के लिए
ुमार लोगों का आश्रित होना है ।

इस पर कहा जायगा कि आबादी की वृद्धि के लिए
ज़िम्मेवार हैं । मगर विदेशी अर्थशास्त्री मिस्टर डालिङ्ग
सरीखे या १९३१ की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट लिखनेवाले सर हाटन जैसे व्यक्ति जन-संख्या की वृद्धि जिस वेग से बढ़ी बताते हैं, वस्तुतः उस तीव्र वेग से आबादी नहीं बढ़ रही है । मिस्टर डालिङ्ग कहते हैं कि भारत में शादी जल्दी हो जाती है और जन-संख्या की भयानक वृद्धि ही यहाँ की ग़रीबी का मुख्य कारण है, क्योंकि ५० साल में १०,००,००,००० आबादी बढ़ गई है । १८७२ में भारत की आबादी २०,६०,००,००० थी । १९२१ में ३१,९०,००,००० हो गई, यानी ११,३०,००,००० बढ़ गई । १९३१ में बढ़कर यह ३५ करोड़ हो गई है ।

यह ठीक है कि भारत में जल्दी शादी हो जाती है । मगर यह ख़याल करना कि भारत की आबादी तेज़ी से बढ़ रही है, बड़ी भारी भूल है । अगर भारत की उत्पत्ति का रेट ज़्यादा है तो उसकी मौत का रेट भी संसार में सबसे ऊँचा है । हमारी आबादी का नियन्त्रण रोग और मृत्यु करती है । प्रोफ़ेसर ब्रजनारायण के मतानुसार १८७१-१९२१ के अन्दर वास्तविक वृद्धि ५,४०,००,००० करोड़ अर्थात् २० प्रतिशत हुई है । इसके मुक़ाबिले योरप की ३०,७७,००,००० से ४४,९७,००,००० की वृद्धि हुई, अर्थात् योरप की आबादी में ४६ प्रतिशत वृद्धि हुई है । यही बात जन-संख्या-परिषद् में गत वर्ष मदरास-यूनिवर्सिटी के अर्थशास्त्र के अँगरेज़ प्रोफ़ेसर ने भी डाक्टर राधा-कमल मुकर्जी के जवाब में कही थी । वस्तुतः फ़्रांस को छोड़कर योरप के अन्य देशों की अपेक्षा भारत की आबादी धीमी गति से बढ़ रही है । इसलिए भारतीय किसान की ग़रीबी का मुख्य कारण देश की आबादी का बढ़ना नहीं, अपितु ज़मीन पर जीविका के लिए अत्यधिक लोगों का आश्रित होना है ।

आधुनिक फ़िल्म के ढङ्ग का एक एकाङ्की नाटक

श्रीमती का तलाक़

लेखक, पण्डित मोहनलाल नेहरू

दृश्य—एक बड़ा मैदान है । इधर-उधर दरख़्त हैं । मैदान में छोटी-छोटी घास लगी है । दरियाँ ज़मीन पर बिछी हैं । एक तरफ़ औरतें कुछ चादरें ओढ़े, कुछ बुर्क़े पहने मुँह ढँके, कुछ मुँह खोले बैठी हैं । दूसरी तरफ़ मर्द हैं । किसी किसी के साथ औरतें भी हैं । इनमें से कोई कोई सिर खोले फूल जूड़ों में लगाये, कुछ बाल कटाये हैं । सामने एक तख़्त बिछा है । बड़ा तकिया क़ालीन पर रक्खा है । लड़के और लड़कियाँ वालंटियर बिल्ले लगाये इधर-उधर घूम रहे हैं । उस मैदान में भीड़ के पीछे खोंचेवाले बैठे हैं । मिट्टी के तेल की डिबरी उनके खोंचों पर लगी हैं । वे अपनी आवाज़ें अलग लगा रहे हैं "नैनकली बालू की भुनी ।" "चाय गरम ।" "पान बीड़ी सिगरेट !" सभी वक्ता के आने का इन्तज़ार कर रहे हैं और आपस में ज़ोर ज़ोर से बातें कर रहे हैं । काफ़ी शोर-ग़ुल है । राष्ट्रीय झण्डा फहरा रहा है ।

सभी वालंटियर पुकार रहे हैं और हाथ से इशारा कर रहे हैं—"भाइयो, शान्ति से बैठो !" "बहनो, शान्ति से बैठो !" "माताओ, ज़रा धैर्य धरो !" "वह देखो मोटर आ रहा है ।"

बहुत-से लोग खड़े होकर देखने लगते हैं । वालंटियर फिर हाथ से बैठने का इशारा करते हुए चिल्लाते हैं । मोटर का हार्न बजता है । कुछ वालंटियर दौड़ जाते हैं ।

"बैठो" ! "बैठो" ! "बैठिए" ! "सावधान हो जाइए" ! काफ़ी शोर-ग़ुल है ।

लोग बैठने लगते हैं । एक मोटी स्त्री रेशमी साड़ी पहने सिर खोलकर, जूड़े में फूल लगाये, माथे पर लाल टीका अधेड़ अवस्था की सबसे आगे है । उसके पीछे एक युवक २०-२२ वर्ष की अवस्था का मूँछ-दाढ़ी घोटे, खादी की धोती-कुर्ता पहने, गांधी-कैप सिर पर रक्खे, पैर में चप्पल पहने है । उसके पीछे लड़के-लड़कियाँ वालंटियर जो बाहर भाग गये थे, आते हैं । स्त्री की कुर्ती आधे आस्तीन की है । ये दोनों तख़्त पर जाकर बैठते हैं और वालंटियर पीछे खड़े हो जाते हैं । सभा-नेत्री खड़ी होती है । तालियाँ बजती हैं ।

सभा-नेत्री—मैं आपसे क्षमा चाहती हूँ कि हमें आने में कुछ देर हो गई । कारण मोटर बिगड़ गया था । रास्ते में आधा घंटा ख़राब हो गया । आज की कारवाई शुरू होती है । पहले वंदे मातरम् गाया जायगा ।

[वह बैठती है । तालियाँ बजती हैं, लड़कियाँ आगे तख़्त पर आकर खड़ी हो जाती हैं और हाथ जोड़कर गाती हैं । दर्शक सब खड़े हो जाते हैं । गीत ख़त्म होने पर बैठते हैं । ताली नहीं बजनी चाहिए ।]

एक स्त्री दूसरी अँगरेज़ स्त्री से कहती है—"यह हमारा क़ौमी गीत है । जब यह गाया जाता है, सबको खड़ा होना चाहिए ।"

अँगरेज़ स्त्री—"ओह ! तुम्हारा क़ौम ! हम ख़ाली अपने 'गॉड सेव दि किंग' में खड़ा होता है । सब वाही-तबाही में नहीं ।"

"नहीं मेम साहब, वाही-तबाही नहीं......"

"वेल ! चुप मारो । देखो, वह मोटा औरट बोलटा है ।"

सभानेत्री जो अभी तक मुख्य वक्ता से फुस-फुस कर रही थी, खड़ी होती है । वह बोलती है—

"उपस्थित सज्जनो और देवियो ! मेरे व्याख्यान तो आप रोज़ ही सुना करती हैं । आज मैं आपका समय न लेकर अपने मित्र ब्रह्मदत्त जी से प्रार्थना करूँगी कि वे हमें स्त्रियों के हक़ों के बारे में शिक्षा दें । उनके नाम से तो हमारा स्त्री-समाज ख़ूब परिचित है । उन्होंने हमारी उन्नति के वास्ते ज़मीन और आसमान एक कर रक्खा है और हमारे छिने हुए कुल अधिकार वापस दिलाने का बीड़ा उठाया है । मगर कोई उन्नति उस समय तक नहीं हो सकती जब तक हम उसका भार पुरुषगण पर छोड़े रहेंगी । हमें यह दिखा देना है कि हम अब मर्दों का खिलौना नहीं रहीं । हमारी आँखें खुल गई हैं । हम किसी का हक़ नहीं दबाना चाहतीं, परन्तु अपना छिना हुआ हक़

वापस लेने पर तुली हैं। हम उन पुरुषों के अनुगृहीत हैं जो हमें ऊँचा उठने में सहायता दे रहे हैं। ब्रह्मदत्त जी का व्याख्यान आप ध्यानपूर्वक सुनें।

[बैठती है और ब्रह्मदत्त खड़े होते हैं। देर तक ताली बजती रहती है। वे हाथ जोड़े गर्दन झुकाये मुसकराते रहते हैं।]

ब्रह्मदत्त—सज्जनो तथा देवियो, यह तो अब मानी हुई बात है कि स्त्रियों के सारे ही हक़ छीने जा चुके हैं। किसी भी क्षेत्र में उन्हें पैर धरने तक की जगह नहीं रही है। जहाँ वे महाभारत के ज़माने में स्वतन्त्र थीं, वहाँ आज वे समाज के बंधनों से जकड़बंद हो रही हैं। मैं उन सभी विषयों पर यथासमय अपने विचार प्रकट करूँगा। मगर आज का विषय एक ही होगा। वह बड़ा ही महत्त्व-पूर्ण है। स्त्री और पुरुष दोनों ही पर लागू होगा। वह विषय है हिन्दू-विवाह-विच्छेद या तलाक़।

दुनिया भर में कम-से-कम इस विषय में दोनों पक्षों को समानाधिकार है। कुछ हालतों में विवाह-विच्छेद हो सकता है और फिर दोनों ही स्वतंत्र हो जाते हैं। याद रहे कि वहाँ विवाह भी स्त्री-पुरुष अपनी मर्ज़ी से करते हैं। जब अपनी इच्छा से सम्बन्ध जोड़ा हुआ टूट सकता है तब हिन्दू-विचारों ने क्या पाप किया है, कि दूसरों का जोड़ा हुआ सबंध न तोड़ सकें। जिस किसी भी स्त्री या पुरुष के साथ हमारे मा-बाप हमें बाँध दें, हम जन्म भर के वास्ते क्यों बँध जायँ?

यों तो हिन्दू-महिलाओं पर होनेवाले अत्याचारों की कहानियाँ बड़ी ही दारुण और कलेजा फाड़नेवाली हैं, पर इन अत्याचारों का स्वरूप और भी भयानक हो जाता है जब हम यह देखते हैं कि पति के परित्याग पर भी पत्नी उसे परित्याग नहीं कर सकती। यह सच है कि पुरुष भी तलाक़ नहीं दे सकता, परन्तु उसे सारी सुविधायें मौजूद हैं। मेरे तजरुबे में कितने ही उदाहरण आये हैं, जहाँ स्त्री या पुरुष एक-दूसरे से असंतुष्ट हैं। उनके घर वास्तव में नरक हैं, जिनसे समाज उन्हें निकलने नहीं देता। मैं केवल दो उदाहरण आपको सुनाता हूँ।

दृश्य—रेलवे-स्टेशन। लोग गाड़ी का इंतज़ार कर रहे हैं। प्लेटफ़ार्म पर बहुत आदमी इधर-उधर घूम रहे हैं। उनमें एक अँगरेज़ी कपड़ों में साफ़्ट फ़ेल्ट हैट लगाये डाक्टर रामावतार हैं। कोई ३०-३२ वर्ष की अवस्था है। दाढ़ी-मूँछ घुटी है। मेवे-मिठाईवाले एक लाइन लगाये बैठे हैं। कुली दूसरी तरफ़ रेल का इंतज़ार कर रहे हैं। चहल-पहल है। एक मेवेवाला—संतरे दिखाऊँ सरकार। संतरा क्या चीनी है! दूसरा—एक रुपये के चौंसठ लीजिए हुज़ूर। गाहक—नहीं भाई नहीं चाहिए। तीसरा—खिलौना है बाबू जी, आख़िर क्या देंगे? गाड़ी आती है। डाक्टर उधर दौड़कर एक ड्योढ़े दर्जे के पास जाता है। ब्रह्मदत्त उतरता है। खादी की धोती-कुर्ता पहने है। कुली दौड़कर नीचे का ट्रंक-बिछौना उतारता है। डाक्टर इस बीच में आ पहुँचता है।

रामावतार—हलो! ओल्ड ब्वाय! [हाथ पकड़ते हुए] बरसों बाद मुलाक़ात हुई।

ब्रह्म०—हेलो! इट इज़ यू! मैं तो तुम्हारी इस वेष-भूषा में तुम्हें पहचान ही न सका!

[प्लेटफ़ार्म से बाहर आते हुए]

रामा०—भाई जान, मेरा पेशा ऐसा है कि इस तरह सुसज्जित न रहूँ तो कोई टके को न पूछे। क्या मुझे खादी के कपड़ों में आनंद नहीं आता? और फिर ये भी देशी ही कपड़े हैं।

ब्रह्म०—मेरा यह मतलब नहीं है। मैंने तुम्हें इस पोशाक में पहले नहीं देखा था, इसलिए कहा।

[स्टेशन के बाहर आ जाते हैं। कुली मोटर पर पीछे की सीट पर असबाब रख देता है। रामावतार खुद ही चलाता है। बँगले की बरसाती में मोटर आकर खड़ा होता है, बरामदे में कुछ गमले रक्खे हैं। मोटर के ठहरने पर बनियाइन और ऊँची धोती पहने चौकीदार टोपी सँभालता हुआ आता है और सामने खड़ा हो जाता है। दोनों मित्र बरामदे में चले जाते हैं। बिजली के लैंप जल रहे हैं। एक तरफ़ गेस्ट-रूम है। उसी में वे जाते हैं। डाक्टर चिक उठाता है। भीतर जाकर ब्रह्मदत्त सजा हुआ कमरा देखकर]

ब्रह्म०—भाई, मुझ ग़रीब को इस ठाट की क्या ज़रूरत थी? मेरे बाप-दादा भी कभी ऐसे कमरे में नहीं रहे।

रामा०—ठाट क्या है! मामूली ज़रूरत की चीज़ें हैं। अच्छा हाथ-मुँह धो डालो। खाना तैयार होगा। हमारी श्रीमती इन्तज़ार में होंगी। इसी कमरे में जल्दी आना।

[जिस कमरे की तरफ़ इशारा करता है उसके दरवाज़े

के पीछे शन्नोदेवी खड़ी झाँक रही है और बातें सुन रही है। पति को उधर आते देख लपककर दूसरी तरफ़ चली जाती है। कमरा ड्राइंग रूम है। सोफ़ा और तीन-चार कुर्सियाँ पड़ी हैं। तीन-चार छोटी छोटी मेज़ें रक्खी हैं। दीवार पर दो-तीन चित्र टँगे हैं। मेज़ों पर फूलदान। शन्नोदेवी २२ वर्ष की एक सुन्दर स्त्री है। रेशमी साड़ी और उसी रंग की स्लीव लेस फतुही, पैर में चप्पल मख़मली, सिर खुला, माथे पर लाल टीका, एक हाथ में साड़ी के रंग की चूड़ियाँ बहुत-सी हैं। रामावतार ड्राइंग रूम में घुसता है। ब्रह्मदत्त दरवाज़े पर आकर कान लगा देता है।

रामा०—अच्छा आप यहीं मौजूद हैं! क्या आपसे मैं यह आशा कर सकता हूँ कि दो-चार दिन जब तक ये यहाँ रहें, आप ज़रा शान्ति से कट जाने दें, फूहड़पन की बात कम-से-कम इनके सामने तो न हो?

शन्नो०—[ज़रा तिरस्कारभरी आवाज़ से] और क्या मैं भी आपसे आशा कर सकती हूँ कि मुझे आप कम-से-कम उतने ही दिन अपने बराबरवाला समझें, मुझसे बातचीत उसी तरह करें जैसे दूसरों से करते हैं? ज़रा दो-चार दिन तो घूमना छोड़ दें।

रामा०—तुम तो इसी तरह की बातें करती रहती हो। इसी से तो जी जला रहता है। सीधी बात तो कभी करती ही नहीं।

शन्नो०—और आप! ज़रा अपनी तरफ़ भी तो देखो।

[ब्रह्मदत्त दरवाज़े से हटकर खाँसता है]

रामा०—वह आ रहा है। चुप रहो।

[ब्रह्मदत्त भीतर जाता है। शन्नोदेवी से नमस्कार करता है। शन्नो भी मुसकराकर नमस्कार करती है]

रामा०—माई वाइफ़ (मेरी स्त्री हैं)।

ब्रह्म०—गृहस्वामिनी को प्रणाम। मेरा सौभाग्य है कि आप जैसी देवी के मैंने दर्शन पाये। मैं इस घड़ी को जन्म भर नहीं भूल सकता। मैं आपके पति का सहपाठी था। हमारी पुरानी मित्रता है।

शन्नो०—मुझे मालूम है। मैं आपके भाषण हमेशा अख़बारों में पढ़ा करती हूँ। वास्तव में आप हमारी जाति की उन्नति के वास्ते बड़ा परिश्रम कर रहे हैं।

ब्रह्म०—नहीं, मैं तो अपने धर्म का पालन कर रहा हूँ।

[रसोइए का प्रवेश—नंगे बदन, चोटी लटकती हुई, जनेऊ गले में पड़ा है, सिर नंगा है। शन्नोदेवी रामावतार नाक सिकोड़ लेते हैं]

रसोइया—सरकार थालियाँ परसी रक्खी हैं। हो रही हैं। [जाता है]

रामा०—चलो भाई, खाने के बाद अपने धर्म व्याख्यान करना। हमारी श्रीमती पहले से ही तुम्हारे धर्म चेली हैं। मुझे तो भूख लगी है।

शन्नो०—महाशय जी, आपने देखा, हमारे नौकर बदतमीज़ होते हैं। कितना ही समझाया, डाँटा, फिर कि कुर्ता-टोपी पहनकर सामने आया करो, नहीं मान और हम स्वराज्य चाहते हैं!

रामा०—यह नहीं कि कपड़े न हों। मैंने खुद पुराने कपड़े दिये हैं। मगर ये लोग निरे पाजी होते हैं। जब कभी कोई मेहमान आता है, उसके सामने नंगे ही हैं। मैले कपड़े भी उसी दिन के वास्ते रख छोड़ते हैं।

ब्रह्म०—भाई, धुलाई में भी तो पैसा लगता है। ख़र्च होता है।

शन्नो०—भाई जी, शायद आप यह नहीं जानते नाज इतना सस्ता है कि दो रुपये में दो मियाँ-बीबी भर सकते हैं, बाक़ी जमा करते हैं।

रामा०—कहते हैं, घर भेजना होता है। क्यों साहब, इनके कुनबे को क्यों पालें? वे लोग मेहनत-मज़दूरी नहीं करते? बात यह है कि कामचोर लोग हैं। मुफ़्त मिले तो क्यों मेहनत करें?

ब्रह्म०—भाई, वे भी आदमी हैं। मूर्ख-गँवार हैं उन्हें सिखाना होगा। मगर उन्हें ख़ाली पेट ही तो नहीं है। हम जैसे वे भी आदमी हैं।

शन्नो०—अच्छा चलिए। भोजन तो कर लीजिए यहीं बहस कीजिएगा।

रामा०—हाँ, चलो। मगर इसमें बहस ही क्या! मोरी के कीड़े को सफ़ाई नहीं सिखा सकते।

[सब जाते हैं दूसरे कमरे में]

[यहाँ दृश्य फिर बदल जाता है। वही सभा का मैदान भीड़ जमा है। ब्रह्मदत्त मंच पर खड़ा है। लोग चुप बैठे हैं]

ब्रह्म०—मैं अपने एक मित्र के घर चार रोज़ ठहरा। काम समाप्त होने पर मैंने घर लौटने की ठानी। अपने कमरे के दरवाज़े पर—

[दृश्य बदलता है। रामावतार के घर में गेस्ट-रूम के दरवाज़े पर ब्रह्मदत्त दरवाज़ा खटखटा रहा है। ड्राइंग रूम में रामावतार बैठा है। किताब हाथ में है।]

रामा०—कम इन (भीतर आओ)।

[ब्रह्मदत्त भीतर जाता है]

रामा०—हेलो!

ब्रह्म० भाई, मैं आज जाऊँगा तुम्हें अधिक कष्ट देने की ज़रूरत नहीं।

रामा०—कष्ट कैसा? शन्नो! शन्नो! मुझे तो तुम्हारे आने से बहुत ही ख़ुशी हुई। शन्नो!

[शन्नोदेवी अपने ड्रेसिंग-रूम में बड़े शीशे के सामने खड़ी शृंगार कर रही है। कभी कंघी करती है, कभी टीका लगाती है, कभी पाउडर ज़्यादा हो जाने पर रूमाल से साफ़ करती है। लिपस्टिक लगाती है]

शन्नो०—अभी आई।

[शृंगार करना ख़त्म करके जाती है]

रामा०—ये आज जाने को कहते हैं।

शन्नो०—वाह! मैं आज कभी नहीं जाने दूँगी। कल जाइएगा।

ब्रह्म०—यहाँ का सब काम ख़त्म हो गया।

शन्नो०—इससे क्या होता है? हमारा अभी जी नहीं भरा।

[टेलीफ़ोन में घंटी आती है। डाक्टर वहाँ जाकर रिसीवर कान में लगाता है। दोनों उसी तरफ़ देखते हैं]

रामा०—हेलो! मैं हूँ डाक्टर रामावतार, कहाँ?... फ़तेहपुर...अच्छा, क्या हुआ?...ओहो! कितना टेम्परेचर है...१०५। इतना तेज़, अच्छा, नौ बजेवाली गाड़ी से चल दूँगा। आप स्टेशन पर सवारी लावें। इस वक्त सिर पर ठंडे पानी की पट्टी रक्खी जाय। मेरे आने तक कोई दवा न दी जाय।

[टेलीफ़ोन बन्द करके]

रामा०—फ़तेहपुर के एक तालुक़दार बीमार हैं। मेरे मरीज़ हैं। मुझे फ़ौरन आने को कहा है। अब तुम परसों जाओगे। क्यों शन्नो? देखो ख़ातिर ख़ूब करना। [घड़ी देखकर] साढ़े आठ तो बज चुके। मैं जाता हूँ। परसों सुबह मोटर स्टेशन पर भेज देना या ख़ुद हवा खाती हुई चली आना। इन्हें भी लेती आना। अच्छा, अब देर होती है। गुड बाई! [जाता है कुछ देर दोनों चुप रहते हैं]

ब्रह्म०—मेरी वजह से आपको और डाक्टर साहब को बहुत कष्ट हुआ। आज तो मुझे आपने व्यर्थ ही रोक लिया।

[शन्नो कुछ कहना चाहती है, मगर हिम्मत नहीं पड़ती। कभी कुछ उठाती है, कभी कुछ! आँखें ज़मीन पर गड़ी हैं। कुर्सी पर इधर-उधर हिलती है]

शन्नो०—वाह! कष्ट कैसा? मेरे वास्ते तो ये चार दिन बड़े ही सौभाग्य के थे। नहीं तो मैं तो यों ही अकेली पड़ी सड़ा करती हूँ।

ब्रह्म०—यह आप क्या कहती हैं?

शन्नो०—नहीं, सच कहती हूँ। मैं बड़ी दुखी रहती हूँ। डाक्टर साहब तो रात-दिन घर से ग़ायब ही रहते हैं।

ब्रह्म०—उनका पेशा ही ऐसा है कि दम दम पर जाना पड़ता है।

शन्नो०—ठीक है। मगर वे उसी काम से जाते तो रोना क्या था? बहाना वही है। यों अपना मुँह काला करते फिरते हैं।

ब्रह्म०—श्रीमती जी, आप धोखे में हैं। आप ऐसी सुन्दर स्त्री पाकर कौन ऐसा अभागा होगा जो दूसरा दरवाज़ा ढूँढ़े?

शन्नो०—मर्दों की यही करतूतें हैं। वे इस पाँच वर्ष के वैवाहिक जीवन में मुझसे ऊब गये हैं। कहते लज्जा आती है। शायद पाँच वर्ष में पाँच रातें पूरी घर पर काटी होंगी। मैंने दो-एक दफ़े पकड़ा भी। क़समें खाते हैं कि वैसा न करेंगे, किन्तु फिर वही हरकतें रहती हैं।

[दृश्य बदलता है। रामावतार बेग लेकर बाहर जाने को तैयार है। ड्रेसिंग-रूम में चाय पी रहा है। शन्नो आती है। सादी सफ़ेद साड़ी पहने है। हाथ चूड़ियों से ख़ाली है। ज़रा गुस्से में है।]

शन्नो०—किधर की यात्रा है? अब तो शायद आपके कल दर्शन होंगे।

रामा०—नहीं तीन-चार 'काल' हैं। यह लिस्ट टँगवा दो। मैं नौ बजे तक लौट आऊँगा। तुम मोटर पर सैर कर आना। आज सिनेमा देख आओ।

शन्नो०—मेरी फ़िक्र आप क्यों करते हैं। मुझे तो यहीं सड़ना बदा है। सैर-सपाटे तो आपके वास्ते हैं।

रामा०—तुम तो हरदम जली-कटी बातें करती हो। कभी कभी तो इन्हीं बातों के डर से मैं सड़क पर ही बैठा रहता हूँ।

शन्नो०—ऐसे ही तो आप महात्मा हैं। कहिए, पराई औरतों पर डोरे डालता हूँ।

रामा०—अच्छा यही सही। तुम इसी में ख़ुश हो तो यही सही। [जाता है]

[दृश्य—रामावतार का दवाख़ाना। वह मरीज़ देख रहा है। कुछ देर में कम्पाउंडर को बुलाकर कहता है।]

रामा०—रात हो गई है। अब मैं जाता हूँ। दो-तीन 'काल' अभी बाक़ी हैं। कल ९ बजे आऊँगा।

[दृश्य—एक गली। सन्नाटा है। कभी कभी कोई आदमी निकल जाता है। गली में एक बड़े मकान का फाटक है। उस पर रोशनी हो रही है। दरबान कोई नहीं है। अँधेरे में एक तरफ़ बुर्क़ा ओढ़े शन्नो छिपी खड़ी है, उसी दरवाज़े की तरफ़ देख रही है। डाक्टर रामावतार आता है। अँगरेज़ी कपड़े पहने है। सिर पर साफ़्ट हैट, हाथ में बेग है। दरवाज़े पर आकर खटखटाता है। एक जवान नौकरानी निकलती है। वह साफ़ कपड़े पहने है। गले में झूठे मोतियों का हार है। फ़ुर्तीली बहुत है। पैर नंगे हैं।]

रामा०—ओहो! संतो आज तो बड़े ठाट हैं। क्या बात है? मालकिन तो अच्छी हैं।

सन्तो [ज़रा मुसकराती हुई]—हाँ बाबू जी, सब अच्छा है। आज तो मालिक भी दिसावर गये हैं। कलकत्ते। तोका मालकिन याद करत रहीं। आप चलो। हम आधे घंटा में आवत हैं।

[वह बाहर जाती है, डाक्टर भीतर]

[शन्नो उसके पीछे दौड़कर पुकारती है]

शन्नो०—ए बहन, ज़रा तो सुने जाओ। यह किसका घर है?

सन्तो [तुनक कर]—काहे! काहे पूछत हो? कुछ मालिक से नाता जोड़े चाहत हो का, जस वह दहजरा हमार मलकिन से जोड़े है?

शन्नो०—नहीं बहन! ख़फ़ा क्यों होती हो? हमने कुछ बुरा किया तो माफ़ करो। लो, यह जुर्माना लो।

[एक रुपया देती है। रुपया लेकर कमर में रखते हुए]

सन्तो—नाहीं बीबी बुराई कछो नाही है। हम ज़रा जलदियान रहे। तोहका चीन्हा नाहीं। यह मेवालाल ठेकेदार का घर है। बड़ा सूम मनई है। बीबी यही दहजरा डाक्टर उसकी मेहरिया का भ्रष्ट किहिस है। अच्छा अब जावत हैं।

[दृश्य बदलता है। मेवालाल के घर में एक कमरा! ज़मीन पर चाँदनी बिछी है, तकिये रक्खे हैं। दीवार पर कुछ तस्वीरें टँगी हैं, कोने में पलँग पड़ा है, उस पर पार्वतीदेवी लेटी है। २३, २४ वर्ष की अवस्था है। बहुत सुंदर नहीं। फिर भी अच्छी है। माथे पर लाल टीका है, सिंगार-पिटार किये है। साड़ी सूती कढ़ी हुई है, हाथों में चूड़ियाँ, बदन पर गहना है। डाक्टर रामावतार आता है। सीधा पलँग तक आता है। बेग मेज़ पर रखकर स्टेथेस्कोप निकालता है। कान में लगाकर उसके पास पाटी पर जा बैठता है। वह उठ बैठती है। साड़ी का पल्ला नीचे गिर जाता है। बिना आस्तीन की लोनेक फतुही पहने है। स्टेथेस्कोप को कान से खींच लेती है और हँसती है। हाथ पकड़ कर आराम से बिठाती है।]

पार्वती—इस समय यह ढोंग क्यों? वे कुछ माल लेने कलकत्ते गये हैं। नौकर छुट्टी में गये हैं। इस मुई संतिया को मैंने बाज़ार भेज दिया है। एक घंटे का काम बता दिया है। बीमारी तो ख़ाली तुम्हें देखने की है।

[एक दूसरे का हाथ पकड़ लेते हैं।]

[दृश्य बदलता है। दरवाज़े के पीछे खड़ी शन्नो झाँकती है। क्रोध से नथने फूले हैं। फिर दृश्य बदलकर वही कमरा। डाक्टर घड़ी देखता है।]

रामा०—उफ़! साढ़े आठ बज गये। अब चलता हूँ, फिर मिलूँगा। आज अपनी श्रीमती से नौ बजे का वादा करके आया हूँ।

पार्वती—ऊँह! बैठो भी! नौ बजे जाना; कह देना मरीज़ ने रोक लिया था।

[दोनों हँसते हैं, दरवाज़े पर खटका होता है। पार्वती चादर ओढ़ कर लेट जाती है, कराहने लगती है। डाक्टर स्टेथेस्कोप कान में लगाकर फिर खड़ा हो जाता है। बुर्क़ा ओढ़े शन्नो का प्रवेश।]

पार्वती—यह कौन चुड़ैल मेरे घर में घुसी आ रही है? चल दूर हो मुँहजली। [उठ बैठती है।]

रामा०—तुम ख़फ़ा न होओ। शायद यह रास्ता भूल गई है। आप किसे चाहती हैं? मेवालाल जी बाहर गये हैं।

शन्नो०—मैं आपको चाहती हूँ।

[रामावतार आवाज़ पहचान कर एक-दम सफ़ेद पड़ जाता है। शन्नो बाहर चली जाती है। वह सिर पकड़ कर कुर्सी पर बैठ जाता है। पार्वती उठती है। उसके सिर पर हाथ फेरती है]

पार्वती—कौन थी यह चुड़ैल जो तुम पर मानो जादू कर गई ?

रामा०—ग़ज़ब हो गया। वह मेरी स्त्री थी। मुझे क्या मालूम था कि वह इस तरह मेरे पीछे पड़ी हुई है। शिक्षित स्त्री से विवाह करना ख़तरनाक है। फिर कहो, थोड़ा ही पढ़ी है। कहीं ग्रेजुएट होती तो आफ़त ही होती।

[दृश्य बदलता है। शन्नो अपने ड्राइंग रूम में ब्रह्मदत्त से कह रही है।]

शन्नो०—मगर आप समझेंगे कि डाक्टर साहब कुछ शरमाये ! नहीं उन्होंने घर आते आते दूसरा ही ढङ्ग निकाला, उलटा चोर कोतवाल को डाँटेवाला मसला हुआ। मर्दों की यही करतूत है।

[दृश्य फिर बदलता है। रामावतार का ड्राइंग रूम। शन्नो अकेली टहल रही है, ग़ुस्से में है। प्रवेश—रामावतार हाथ में बेग लिये मुसकराते हुए।]

रामा०—कहिए आपके मित्र मेवालाल आज नहीं मिले। आप भी छुपी रुस्तम निकलीं। मैंने भी कैसा पकड़ा ?

शन्नो०—[ग़ुस्से में] मैंने आपकी सब हरकतें देखी हैं। मुझ पर इलज़ाम लगाते हुए शर्म नहीं आती ?

रामा०—देखो, तुम्हारी ये हरकतें अच्छी नहीं। रात में पराये घरों में जाना किसी शरीफ़ औरत का काम नहीं। कोई सुने कि तुम मेवालाल के घर नौ बजे रात को पाई गईं तो क्या कहेगा ?

शन्नो०—[घबरा कर] कहेगा क्या ? मैं तो आपको पकड़ने गई थी।

रामा०—कौन मानेगा औरत की बात मर्द के ख़िलाफ़ और ख़ास कर जब पकड़नेवाला उसका ही पति हो ? [सिर पकड़ कर बैठ जाती है और रोती है] रोने की कोई बात नहीं। मैं किसी से कहने थोड़े ही जाऊँगा, तुम अपनी हरकतें छोड़ दो। मैं वादा करता हूँ कि मैं भी तुम्हारी सेवा में तत्पर रहूँगा। [उठ कर चली जाती है। रामावतार उसकी तरफ़ देखकर मुसकराता रहता है।]

[दृश्य बदलता है। ब्रह्मदत्त लेक्चर दे रहा है]

ब्रह्मदत्त—भाइयो तथा बहनो ! क्या ऐसी हालत से यह अच्छा नहीं कि तलाक़ हो जाय ? वे डाक्टर मेरे दोस्त हैं। मैंने उन्हें समझाया। अब दोनों दम्पति प्रकट रूप से मेल से रहते हैं। मगर जब दिल नहीं मिले तब ज़ाहिरदारी किस काम की, तलाक़ हो जाना ही बेहतर है।

अब एक दूसरी कहानी सुनिए, जहाँ पुरुष असंतुष्ट है। वे भी मेरे मित्र हैं। उनका नाम कृष्ण और उनकी स्त्री का राधा है—कम-से-कम इस कहानी के वास्ते।

[दृश्य बदलता है। कृष्ण अपनी बैठक में आराम-कुर्सी पर बैठा है। छोटी मेज़ पर एक बोतल शराब, एक ग्लास, सोडा की कुछ बोतलें रक्खी हैं। वे कभी कभी एक घूँट पीकर रख देते हैं और सोच में पड़ जाते हैं। ब्रह्मदत्त का प्रवेश]

ब्रह्म०—कृष्ण, तुमने यह क्या लत लगाई है ? मुझसे वादा भी किया कि छोड़ दोगे, मगर फिर वही देखता हूँ [हाथ से ग्लास छीनता है]

कृष्ण—ठहरो, शायद तुमसे छिपाना अच्छा नहीं। न पियूँ तो क्या करूँ ? दफ़्तर से क्या लौटता हूँ, मानो नरक में आ जाता हूँ ?

ब्रह्म०—यह तो तुम कितने ही दफ़े कह चुके हो। सभी शराब के लती ऐसा कहते हैं। क्या नरक में शराब ज़रूर पीनी होती है ?

कृष्ण—मेरी किसी से तुलना नहीं हो सकती। मैं बड़ा दुखी हूँ, तुम अभी लड़के हो। क्या जानो ?

ब्रह्म०—कुछ कहो भी। समझने की तो अक़्ल है। यों तो दुनिया में सभी अपने दुःख को सबसे बड़ा समझते हैं।

कृष्ण—यह तो तुम जानते ही हो कि मेरी स्त्री एक धनवान पुरुष की लड़की है।

[दृश्य। कृष्ण की बारात। वह दुलहा बना घोड़े पर बैठा है। आरायश, आतशबाज़ी, बाजे-गाजे, ऊँट-घोड़े, भीड़-भाड़। बरात चढ़ रही है। फिर दृश्य बदलता है। कृष्ण ससुराल में। मसनद पर कृष्ण दुलहा बना बैठा है। उसके श्वसुर और पिता भी मौजूद हैं। नाच-रंग का सामान है। नाचनेवालियाँ और साज़िंदे हुक्म का इंतज़ार कर रहे हैं। महफ़िल में भीड़ जमा है। एक तरफ़ चिकें पड़ी हैं। उसके पीछे औरतें हैं। कृष्ण के श्वसुर धोती-

अचकन पर छोटी-सी महाजनी पगड़ी लगाये हैं। पान-इलायची बाँटा जा रहा है। सभा में हिन्दू-मुसलमान सभी हैं। पान बाँटनेवाला मुसलमान को ख़ुद ही उठाकर पान देता है।

इधर नाच रंग है, दूसरी तरफ़ बराती भूख से व्याकुल हैं।]

एक बराती—

किस आफ़त में फँसे आकर, अजब यह कारख़ाना है,
न बिस्तर है बिछाने का, न सर पर शामियाना है।

दूसरा०—कैसा ख़ीमा कैसा डेरा, पेड़ों पर अब लेओ बसेरा।

तीसरा०—पूरी मालें कैसी कैसी रोटियाँ, नोचकर खा जाओ अपनी बोटियाँ।

चौथा०—का कहि तोसे मोरे भैय्या, खान रहे हम सेर सवैया
घर का छोड़ बराते आयेन, चबेन लोन न कोई दिवैया।

[फिर दृश्य बदल कर नाच-गान होता है। फिर दृश्य बदल कर बरातियों की दशा का दृश्य सामने आता है। फिर नाच का दृश्य तायफ़ा बदलते समय नाचनेवाली दुलहे को सलाम करती है।]

नाच०—ख़ुदा हज़ूर की जोड़ी सलामत रक्खे। इनाम की बंदी भी मुस्तहक़ है [पास जाती है, दुलहा शर्म से आँखें नीची करता है। उसका बाप कहता है—]

बाप—अच्छा सबको मिलेगा। घबराओ मत।

[दृश्य बदलता है, कृष्ण का घर। राधा गाल फुलाये, सिर पर फटी साड़ी पहने, पैर नंगे, खाने का सामान लाकर मेज़ पर रख रही है। चाय के प्याले, तश्तरी फल-मिठाई से सजा रही है। कृष्ण अँगरेज़ी पोशाक में सुसज्जित कचहरी से आता है।]

कृष्ण०—उफ़ ! मैं तुमसे पचासों दफ़े कह चुका कि कम-से-कम बालों में कंघी तो कर लिया करो। कपड़ों की भी कमी नहीं है। यह फटा-पुराना क्यों पहनती हो ? मेरी बदनामी होती है।

रा०—हमको क्या करना है ? घर-गृहस्थी की औरत को सिंगार-पिटार क्या करना ? देखो तुम्हारे वास्ते कैसी कैसी स्वादिष्ट चीज़ें बनाई हैं। [illegible] रसोई से हटी है ? [illegible] क्या हम

कृ०—मुझे इस बात से बड़ी चिढ़ है। मैं तुम्हें सतगामिन नहीं बनाना चाहता। सच कहता हूँ, फिर करोगी तो घर से भाग जाऊँगा।

रा०—[रोते रोते] हम तो इतना जान मरें। उसका इनाम है !

कृ०—[ज़रा धीमी आवाज़ में] मुझे फूहड़पन नफ़रत है। बस, उसे छोड़ दो।

[दृश्य बदलता है। ब्रह्मदत्त और कृष्ण बातें कर रहे

रा०—एक दफ़े की हो तो हो, बरसों समझाया, फूहड़पन नहीं गया। फूहड़पन की भी हद नहीं।

[राधा असबाब के कमरे में बैठी है, चारों तरफ़ फैले हैं, कोई नहाया हुआ है, कोई खुला पड़ा है। की साड़ी का पल्ला सोने रहा है। कृष्ण का प्रवेश]

रा०—ज़रा मदद कर दो, तह करा दो, मैं थक जाती हूँ। कोई मदद करनेवाला नहीं है।

कृ०—[व्यंग्य से] तो दूसरा विवाह कर लूँ ? मदद करनेवाली मिल जायगी। तुम उधेड़-बुन कर यह सजाती रहेगी।

रा०—तुम तो यों ही ठट्ठा किया करते हो।

[कृष्ण तह कराने में हाथ बँटाता है]

[घर की अँगनाई का दृश्य, कूड़ा चारों तरफ़ फैला झाड़ू बीच में पड़ी है। बरामदे में कुर्सियाँ कोई सीधी कोई टेढ़ी रक्खी हैं, कृष्ण कचहरी से आता है। ही क्रोध चढ़ आता है।]

कृ०—कहाँ गया वह कम्बख़्त भोला ? आज हड्डी-पसली तोड़ूँगा। चारों तरफ़ दलिद्दर ला रक्खा है [रसोई कलछी हाथ में लिये नंगे पैर पसीना टपकता हुआ निकलती है।]

रा०—उसे तो हमने दही लेने को भेजा है। ही होगा।

कृ०—कुर्सियाँ टेढ़ी-मेढ़ी लगा गया है। झाड़ू में डाल गया है।

रा०—तुम ज़रा जल्दी आ गये। वह दम भर आ जायगा। सब ठीक क देगा।

[आगामी अङ्क में समाप्त

मारकीसन नस्ल की मृत्यु-समस्या

लेखक, श्रीयुत धर्मवीर, एम० ए०

लाला तरलोकनाथ जीवन के विषय में हिन्दुस्तानी मनोवृत्ति का एक प्रकार से मूर्तिमान् नमूना हैं। पाँव में जामेशाही जूती, नीचे धोती, ऊपर कुर्ता, सिर पर पगड़ी और गले में दुपट्टा—ये सब चीज़ें उस मनोवृत्ति को जतलाती हैं जिसका जीवन के बारे में यह ख़याल है कि मनुष्य को ज़िंदगी की यह क़ैद काटनी ही है। इसलिए जिस किसी तरह यह क़ैद जल्दी कट जाय वही अच्छा। जब तरलोकनाथ से पूछा जाता है, क्यों लाला जी, क्या हाल है, तब झट बनावटी हँसी बनाकर कह देते हैं—महाराज, जो दम गुज़रे सो ही वाह-वाह !

तरलोकनाथ का यह वाक्य सुननेवाले पर ख़ूब असर करता है। इस वाक्य के अंतस्तल में काम करनेवाले भाव का विश्लेषण करने से मालूम होता है कि ऐसा कहनेवाले के दिल में जीवन के प्रति जहाँ लापरवाही है, वहाँ शायद कुछ घृणा भी है। यह घृणा उस गुलाम की-सी है जिसको बड़ा भारी पत्थर बग़ैर किसी मज़दूरी या पारिश्रमिक के ज़बर्दस्ती उठाना पड़ता है। मज़दूर चाहता है कि किसी प्रकार हम जीवन से मुक्त हो जायँ, छुट्टी पावें, मर जायँ तो यह वज़न तो न उठाना पड़े, मुसीबत न झेलनी पड़े। परन्तु जीवन का अन्त इच्छा-मात्र से नहीं हो सकता। गुलाम चाहता है कि मर जायँ, लेकिन उसका मालिक इसकी इजाज़त क्यों देगा। यही हालत इन तरलोकनाथ की है। वे चाहते हैं कि इस जीवन से किसी प्रकार मुक्ति मिले। परन्तु घरवाले, पत्नी और बच्चे इसकी इजाज़त नहीं देते। जब वे ख़याल करते हैं कि ऐसा नहीं हो सकता तब लापरवाह-सा हो जाते हैं और कहने लगते हैं—"अच्छा, चलो जिस किसी तरह यह जीवन व्यतीत हो जाय वही अच्छा।"

यह मनोवृत्ति किस प्रकार पैदा हुई है, इसके बारे में इतिहासज्ञों, दर्शनवेत्ताओं और मनोविज्ञान के पंडितों के विचार भिन्न भिन्न हैं। लेकिन ऐसा मालूम होता है कि वेदांत की एक झूठी शिक्षा ने जिसमें माया का ज़िक्र आता है, इस मनोवृत्ति के बनाने में बहुत मदद दी है। शहरों से सैकड़ों मील दूर छोटे-से गाँव में बैठा हुआ दूकानदार भी जब हुक्का पीते हुए या धूप में बैठे हुए माया की फ़िलासफ़ी छाँटने लगता है तब उसका एक मतलब यह है कि माया का यह विचार हिन्दू-शरीर का एक आवश्यक अंग बन गया है।

क्या यह मनोवृत्ति जाति के सुस्वास्थ्य का चिह्न है? मुझे इसमें संदेह है। और जीव-विद्या का हर एक विद्यार्थी इस विचार के साथ सहमत होगा कि यह मनोवृत्ति किसी जाति की सेहत की निशानी नहीं हो सकती। इस विचार की पुष्टि करनेवाला उदाहरण पालिनेशिया की मारकीसन नस्ल है

अमरीका और एशिया के दर्मियान प्रशांत महासागर फैला हुआ है। इस महासागर की गिनती संसार के दो-तीन बड़े समुद्रों में होती है। इसमें छोटे-छोटे सैकड़ों द्वीप हैं। मिडवे, हवाई, मार्शल, फ़ैनिंग, गिल्बर्ट, फ़ीनिक्स, माल्डेन, स्टारबक, एलिस, सैंटाक्रूज़, ताहिती, समोआ, मारकीसन, लो, कुक, टोंगा आदि—ये सभी द्वीप पालिनेशिया में सम्मिलित हैं।

इनमें दो प्रकार की नस्लें आबाद हैं। एक पीले रंग की जो एशिया की कई नस्लों से मिलती-जुलती है, दूसरी काले रंग की जो अफ़्रीका की नीग्रो-नस्ल से समता रखती है। आज से क़रीब सौ साल पहले इनमें से मारकीसन लोगों की आबादी एक लाख साठ हज़ार थी। परंतु अब ये सिर्फ़ इक्कीस सौ रह गये हैं। यही नहीं, एक अमरीकन लेखक श्री ब्राउन* की राय है कि हवाई से लेकर ताहिती तक के सभी द्वीपों में पालिनेशियन लोग मर रहे हैं। और कोई ताज्जुब न होगा अगर ये लोग जल्द ही संसार से मिट जायें।

* एफ़० जी० ब्राउन-कृत "हाउंड शेडोज़ इन सौथ सीज़"। प्रकाशक, सेंचुरी कंपनी, न्यूयार्क।

प्रश्न होता है कि वह कौन-सी बीमारी है या वे कौन-से कारण हैं जिनसे इस नस्ल का ख़ात्मा इतनी जल्दी हो रहा है।

मारकीसन लोगों के इतिहास का ज़रा ध्यान से अध्ययन करने पर मालूम होता है कि अठारहवीं सदी से पहले जहाँ ये लोग मछलियाँ आदि पकड़कर या थोड़ी-बहुत खेती-बारी करके अपना पेट भरते थे, वहाँ उसके साथ ही ये हर एक काम में खेल को बहुत महत्त्व देते थे। अपनी झोपड़ियों से बाहर बच्चे, बूढ़े और नवयुवक, स्त्रियाँ और पुरुष भिन्न-भिन्न प्रकार के खेलों में भाग लेते थे। ये खेल अक्सर इनके कामों में ही सम्मिलित होते थे। उदाहरणार्थ तीरंदाज़ी, मछलियाँ पकड़ना, कबूतर पकड़ना। इन बातों को इन्होंने अपने लिए बहुत रोचक बना लिया था। दिन में जब कभी ये इन कामों में संलग्न होते तब मैच या मुक़ाबिले की सूरत में गाँव के सब लोग आपस में ही पार्टियाँ बना लेते और मुक़ाबिला शुरू कर देते। इससे इनमें जीत-हार का विचार उत्पन्न हो जाता। इनमें इस बात की इच्छा भी होती कि प्रतिस्पर्द्धी से ज़्यादा मछलियाँ पकड़ी जायँ, जंगली कबूतरों को जल्दी पकड़कर प्रतिस्पर्द्धी दल को पराजित किया जाय, इत्यादि।

इनके अतिरिक्त ये लोग ख़ालिस खेल भी खेलते। कुश्ती ये लड़ते। मुक्केबाज़ी इनमें होती। लकड़ियों से ये हाकी खेलते। फ़ुटबाल का ढंग भी इनका अपना था। इनके अतिरिक्त इनमें दौड़ें होतीं। तेज़ चलने के मुक़ाबिले होते। छोटी-छोटी कश्तियों को समुद्र में डालने के बाद उनको तेज़ चलाने का मुक़ाबिला भी इनके लिए बड़े दिलचस्प खेल थे। लेकिन सबको हँसानेवाला खेल इनका समुद्र के किनारे पर रेंगना था। हरी-हरी घास पर मुक़ाबिला करनेवाली स्त्रियाँ और पुरुष एक लंबी क़तार में लेट जाते। सरदार इधर ढोल पर चोट करता और उधर घास पर लेटे हुए मनुष्य पलटा खाने लगते। कई बार ये मीलों तक इसी तरह चले जाते। नेज़ा फेंकना भी सबके लिए आकर्षणकारी था। मुर्ग़े लड़ाना भी इनको बहुत पसंद था।

दिन को ये लोग अपने-अपने काम में मशग़ूल रहते। लेकिन जब शाम को अपनी-अपनी झोंपड़ी में वापस आते तब कुछ देर आराम करने के बाद फिर खेलों में लग जाते। कहीं नाच हो रहे हैं तो कहीं गीत गाये जा रहे हैं। कई मर्द-औरतें आपस में कंकड़ों से जूआ ही खेलने लग जाते। कुछ और एक दूसरे से पहेलियाँ सुनने-सुनाने में लग जाते हैं। बड़े-बूढ़ों के मुख से निकली हुई कहानियाँ भी मनोरंजन की सामग्री प्रस्तुत करतीं। परन्तु इन सबसे अधिक सर्वप्रिय वे नृत्य थे जिनके साथ गीत भी गाये जाते थे।

लेकिन अब एक सौ बरस के बाद इनकी क्या दशा है? ये लोग उन खेलों से घृणा करने लग गये हैं। इस घृणा का मुख्य कारण ईसाइयत है, जिसने इनके अंदर यह ख़याल डाल दिया है कि ये खेल हबशीपन की निशानी हैं; यदि तुम सभ्य बनना चाहते हो तो इन जंगली आदतों से विदा लो।

सन् १७९७ में, अर्थात् अठारहवीं सदी के अन्त या उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में, पहला ईसाई-मिशन इन लोगों के अन्दर दाख़िल हुआ। ये लोग अँगरेज़ थे। उसके बाद एक सौ वर्ष तक योरप के विभिन्न देशों के अनेक मिशन इन द्वीपों में अपना अपना प्रचार-कार्य करते रहे। इनकी मज़हबी शिक्षा का असर यह हुआ कि कुछ मारकीसन भी पादरी बन गये। कुछ-एक ने पढ़ना-लिखना भी सीख लिया। इनमें से अधिकतर ने योरप के मिशनरियों की नक़ल में कोट-पतलून भी पहन लिये। परन्तु सबसे अधिक घातक प्रभाव यह हुआ कि इनकी आबादी धीरे-धीरे कम होने लगी।

मारकीसन लोग वही हैं जो एक सौ साल पूर्व थे। नस्ल वही है जो एक शताब्दी पहले वहाँ आबाद थी। इन द्वीपों की आबहवा में कोई अन्तर नहीं आया। खान-पान भी लगभग वैसा ही है। सवाल होता है कि जब प्रायः सभी बातें ज्यों की त्यों हैं तब आबादी क्यों मर रही है।

जैसा कि पहले बताया गया है, विदेशी ईसाई-शिक्षा ने इन लोगों के दिलों में जीवन के एक आवश्यक अंग के लिए घृणा उत्पन्न कर दी है। वे खेल जिनको ईसाइयत ने बर्बरता या असभ्यता की निशानी बतलाया, वास्तव में मारकीसनों के लिए जीवन का स्रोत थे। ईसाई-शिक्षा ने इन लोगों को अमृत या आबेहयात से हटाकर मृत्यु की ओर कर दिया। एक सदी पहले जहाँ मारकीसन लोग

दिन और रात का बड़ा भाग जीवनदायक खेलों में व्यतीत करते, वहाँ अब ईसाई स्वामियों ने इनको उधर से हटाकर योरप की रीति-नीति में लगा दिया। ये रीति-रवाज स्वयं योरप के लोगों के लिए लाभकारी होंगे, परन्तु मारकीसन लोगों के लिए ये विष-तुल्य सिद्ध हुए हैं। इस समय भी इन द्वीपों के निवासी अपने पुराने धन्धों को करते हैं, लेकिन अब तो निरा कोल्हू का बैल चलता है। तेल अच्छा निकलता है या बुरा, थोड़ा निकलता है या बहुत, इन बातों की बैल को परवा नहीं! हर बात में हँसी, हर काम में आनंद, यह आदत अब कहीं देखने में नहीं आती। बस इसी घुन ने मारकीसन नस्ल को अन्दर ही अन्दर से खा लिया है। इसका फल यह है कि वह बढ़ी नहीं, बल्कि कम होते-होते इस समय मरने को है।

× × ×

हिन्दुस्तानियों को आम तौर पर, और हिन्दुओं को ख़ास तौर पर, अपनी वर्तमान अवस्था की तरफ़ ज़रा ध्यान देना चाहिए। उन्हें देखना चाहिए कि कहीं उनमें भी मौत के ये कीड़े तो नहीं आ घुसे।

संसार की जीवित जातियों में, योरप, अमेरिका और जापान के लोगों में, इस समय कई नैतिक कमज़ोरियाँ देखने में आती हैं। जहाँ स्त्री को पुरुष के बराबर अधिकार मिलने से वह कई बातों में उन्नति कर रही है, वहाँ सामाजिक संगठन ढीला पड़ जाने से वहाँ के समाज में नैतिक पतन आ गया है। तलाक़ ज़ोरों पर हैं, अपहरण की घटनायें पहले से कहीं ज़्यादा होती हैं, बदमाशों के अड्डे दिन प्रतिदिन बढ़ते चले जा रहे हैं, भोग-विलास ज़्यादा ही ज़्यादा निकलते चले आ रहे हैं। यदि मनुष्य इन बातों को ही देखे तो कह सकता है कि ये लोग तो अपनी क़ब्रें आप ही खोद रहे हैं और अगर ये जल्दी ही मर गये तो इससे किसी को अचम्भा न होगा।

लेकिन नहीं, इन जातियों में मौत की तरफ़ ले जानेवाली बातों के अतिरिक्त जीवन के अंश भी हैं और जीवन के ये अंश ही हैं जो इनको मृत्यु से परे करते हैं। योरप, अमेरिका और जापान की इन जातियों के व्यक्ति समुद्रों, पहाड़ों, चट्टानों, कंदराओं, नदियों, झीलों, जंगलों, आकाश आदि सभी संकटमय स्थानों एवं प्रदेशों में ख़तरों की तलाश में फिरते रहते हैं। वहाँ इनको तरह-तरह की मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। इससे इनमें वह जीवन उत्पन्न होता है जो इनकी नैतिक निर्बलताओं पर प्रभुत्व पा लेता है।

जानवर का जीवन एक तरह दो मूल-तत्त्वों का सम्मिश्रण है—एक आराम की इच्छा, दूसरा संकट की खोज। दोनों का परस्पर संघर्ष होता रहता है। जिस पशु, मनुष्य या जाति में पहला मूलतत्त्व दूसरे पर विजय पाता है वह मौत की तरफ़ बढ़ती चली जाती है। लेकिन जिस पशु, मनुष्य या जाति में दूसरा मूलतत्त्व पहले पर ग़ालिब आता है उसका जीवन न केवल दीर्घायु होता है, बल्कि उसमें नया रंग भी आ जाता है।

जिस जाति के व्यक्ति खेती-बारी या हल चलाने से घृणा करते हैं, दूकानों में बैठकर आराम से सौदा तौलना चाहते हैं, देहात को छोड़कर शहरों में आना चाहते हैं, सभ्यता के आरम्भ में उत्पन्न हुई कलाओं—लोहार, तरखान और जुलाहे के काम से नफ़रत करते हैं, नौकरी के पीछे मारे-मारे फिरते हैं, उन्हें यह क्योंकर मालूम हो सकता है कि संकट के अन्दर जीवन के बीज कैसे छिपे होते हैं।

जिस जाति के बच्चों को एक-आध रात घर से बाहर गुज़ारने में मुसीबत नज़र आती हो, जिनको शिकार का नाम भयभीत बनाता हो, जो जंगली जानवर को देखने से काँपते हों, उनको क्या मालूम कि जीवन किसे कहते हैं! वे तो बस अहिंसा का जाप जप कर सो जायँगे। यह नींद उनके लिए नींद न होगी, बल्कि मौत होगी।

इस मृत्यु को वे यदि जीवन में तब्दील करना चाहते हैं तो उन्हें चाहिए कि देहात से प्रेम करें, खेती-बारी को अपना पेशा बनावें, हफ़्ते के आठ दिन, महीने के बत्तीस दिन और साल के तीन सौ छाछठ दिन उस ख़तरे की तलाश में गुज़ार दें, जो जीवन का चश्मा है।

व्यंग्य

लेखक, श्रीयुत कुँवर राजेन्द्रसिंह

अपनी भाषा का शब्द होने की वजह से व्यंग्य का अर्थ और प्रयोग हम ऐसों को भी मालूम है जो निष्कपटता से कह सकते हैं, 'कवित विवेक एक नहिं मोरे'। भाषा फीकी रहती है यदि उचित स्थान और मात्रा में व्यंग्य की चाट न हो। अँगरेज़ी के एक बड़े व्यंग्य-लेखक जुविनल ने लिखा है कि "व्यंग्य न लिखना कठिन है।" उनका यह कथन ख़ूब है। चाहे गद्य हो या पद्य, कुछ अवसर ऐसे आ जाते हैं जब व्यंग्य का प्रयोग अनिवार्य हो जाता है—लेखक उसकी सहायता लेने को बाध्य हो जाता है। उसी के साथ यह भी सत्य है कि ऐसे भी अवसर होते हैं जब व्यंग्य का प्रयोग किसी भी दृष्टि से उचित नहीं होता। हेनरी एटवेल का कहना है कि व्यंग्य मित्रता को क्रोध से बढ़कर शत्रु है। इसका प्रयोग करने में बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिए। पोप इँग्लेंड का प्रसिद्ध कवि था। उसने कहा है कि यद्यपि व्यंग्य मेरा अस्त्र है, तो भी मैं उतना अदूरदर्शी नहीं हूँ कि उन्मत्त आदमियों की तरह उससे सबको घायल किया करूँ। ठीक है, 'बावरि कोऊ देति है मनचाहन हथियार।'

कुछ ऐसे भी हैं जिनका यह मत है कि व्यंग्य और विनोद में थोड़ा अन्तर है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। विनोद का क्षेत्र वार्तालाप है, और वहीं उसका चमत्कार दिखलाई देता है। वहाँ व्यंग्य से अधिक तीक्ष्ण बुद्धि की आवश्यकता होती है, क्योंकि प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता है। इसे अँगरेज़ी में 'विट' कहते हैं और उर्दू में शा[...] 'हाज़िरजवाबी' कहते हैं। इन शब्दों में दो भाव हैं—एक प्रत्यक्ष, दूसरा अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष में प्रश्न[...] उत्तर होता है और अप्रत्यक्ष में वह कड़ी चुटकी होती जो बहुत दिनों तक भुलाने से भी नहीं भूलती। माना जा सकता है कि विनोद को व्यंग्य से सहायता [...] मिलती है, परन्तु इन दोनों के बीच में सीमाबन्दी [...] रेखा रहती है। व्यंग्य का उद्देश विनोद से पृथक् [...] व्यंग्य का मुख्य उद्देश सुधार है। चर्चिल ने लिखा [...] कि व्यंग्य गुणों का मित्र है। उन्हीं का यह भी कहना [...] है कि व्यंग्य जब असत्यता के परों पर उड़ता है तब [...] अल्पजीवी होता है और उसका दंश अशक्त होता है। प[...] जब सत्यता उसकी सहचारी बन जाती है तब उसका [...] गहरा होता है और दीर्घकाल तक बना रहता है। श[...] चाहे जितने मुलायम हों, किसी को अपने दोषों और त्रुटियों के विषय में कुछ भी सुनना नहीं पसन्द होता है।

हिन्दी-भाषा की कविता में व्यंग्य पर बहुत कु[...] लिखा मिलता है। संलक्ष्यक्रम उसे कहते हैं, जहाँ व्यं[...] समझने के लिए किसी और पद की आवश्यकता हो [...] इसके तीन भेद बतलाये गये हैं—(१) शब्द-शक्ति (२) अर्थ-शक्ति और (३) शब्दार्थ-शक्ति। फिर शब्द[...] शक्ति के दो भेद किये गये हैं—(१) वस्तु से वस्तुव्यंग्य और (२) वस्तु से अलंकारव्यंग्य। अर्थशक्ति के भी तीन भेद हैं—(१) स्वतःसम्भवी, (२) कवि प्रौढ़ोक्ति और (३) कविनिबद्ध वक्तृत्व। स्वतःसम्भवी के भी चार भे[द] किये गये हैं—(१) वस्तु से वस्तुव्यंग्य, (२) अलङ्कार[...] से अलङ्कारव्यंग्य, (३) अलङ्कार से वस्तुव्यंग्य और [...]

(४) वस्तु से अलङ्कारव्यंग्य। कविप्रौढ़ोक्ति और कविनिबद्ध वक्तृत्व के भी चार चार भेद हैं। शब्दशक्ति और अर्थ-शक्ति के मिलने पर जो व्यंग्य निकले उसे शब्दार्थशक्ति कहते हैं। उपर्युक्त व्यंग्य को उत्तम काव्य कहते हैं। मध्यम काव्य के व्यंग्य के आठ भेद हैं—(१) अगूढ़, (इसके भी दो भेद हैं। प्रथम अर्थान्तर संक्रमित, द्वितीय अत्यन्त तिरस्कृत), (२) अपराङ्ग, (३) तुल्यप्रधान, (४) अस्फुट, (५) काकुक्षिप्त, (६) वाच्य-सिद्धाङ्ग, (७) सन्दिग्ध और (८) असुन्दर। किसी विषय को समझने के लिए हमारे आचार्यों ने पूर्ण उपयोग किया है, चाहे समझने-वाला थक जाय, पर समझानेवाला नहीं थकता। गुरु की यही निष्कपट इच्छा होनी चाहिए कि जो वह जानता है वह सब सीखनेवाले को बतला दे। फ़्रैडी (बिजली के आविष्कारकर्ता) के एक चरित-लेखक ने उनकी तुलना न्यूटन (जिन्होंने आकर्षण-शक्ति का पता लगाया है) से करते हुए लिखा है कि न्यूटन जिस सीढ़ी के द्वारा परमोच्च शिखर पर पहुँचे थे उसको हटा लिया था कि उनके पीछे कोई और न चढ़ आवे। परन्तु फ़्रैडी ने अपनी सीढ़ी को वहीं रोक दिया ताकि जो चाहे उसे काम में लाये। फ़्रैडीवाली इच्छा हमारे देश के विद्वानों की थी। बुरे दिन आते ही यह इच्छा उत्पन्न हुई कि जो कुछ अपने को मालूम है वह अपने ही तक रह जाय। इसी का परिणाम यह है कि अब हमको कुछ भी नहीं मालूम है—जो कुछ जो जानता था वह अपने साथ लेता गया, क़िस्सा ख़त्म हो गया। एक अपने छोटे दस्तख़तों में 'एस' लिखते थे। उनके एक मित्र ने कहा कि इस शब्द को पूर्ण करने के लिए एक 'एस' और बढ़ा दिया कीजिए। एक एस के बढ़ने से उसके अर्थ धोबियों के वाहन के हो जाते हैं। बड़ी बात तो दूर रही, यदि इसी का अर्थ किसी अध्यापक से स्कूल बन्द होने के बाद पूछिए तो कह देगा कि चार बजने के बाद वह पढ़ाने के लिए नौकरी नहीं पाता। स्वार्थ-रहित विद्या-दान के दिन गये!

उपहास को अवश्य व्यंग्य से बड़ी सहायता मिलती है, परन्तु व्यंग्य और कटाक्ष के बीच में भी सीमाबन्दी रेखा है। व्यंग्य का अर्थ जहाँ सुधार है, वहाँ यह भी उसका उद्देश है कि वार गुप्त हो। कटाक्ष का केवल काम यह है कि वार भरपूर हो, घाव गहरा लगे। एक उर्दू का शेर है—'छुरी का तीर का तलवार का तो घाव भरा, लगा जो ज़ख़्म ज़बाँ का रहा हमेशा हरा।' यह कटाक्ष है। लक्ष्मण जी के मुँह से तुलसीदास जी ने कहलवाया है—'कोटि कुलिस सम वचन तुम्हारा, बृथा धरहु धनु बान कुठारा।' अस्तु चाहे विनोद हो, चाहे उपहास हो, चाहे व्यंग्य हो या कटाक्ष हो, अब तो प्रेस-ऐक्ट की कृपा से सब पर पानी पड़ गया है। स्वतन्त्रता से कुछ लिखना हथकड़ियों की झन्कार पर गीत गाना है। और अगर कहीं कोई राजनैतिक विषय हुआ तो शब्दों की वह खींच-खाँच की जाती है कि उन्हीं बेचारों का हृदय जानता होगा, और उनके वे अर्थ लगाये जाते हैं जो लिखनेवाले के ध्यान में स्वप्न में भी न आये होंगे।

अँगरेज़ी-भाषा में व्यंग्य का इतिहास है। उस पर एक स्वतंत्र पुस्तक लिखी गई है। अँगरेज़ी विद्वानों का कहना है कि व्यंग्य वह है जिसके द्वारा हम अपने विलास या घृणा के भावों को पर्याप्त रूप से प्रकट करते हैं। परन्तु उन्होंने यह शर्त रक्खी है कि व्यंग्य में सरसता की मात्रा इतनी हो कि पहचाना जा सके। यह भी एक शर्त है कि उसमें साहित्य का स्वरूप हो। यह बिलकुल ठीक है जैसा कि वे लोग कहते हैं कि बिना सरसता के व्यंग्य गाली-गलौज है और बिना साहित्यिक स्वरूप के वह मसख़रापन है। पहले बेशक व्यंग्य का उस समय प्रयोग होता था जब किसी के अवगुणों पर आक्षेप करने का अभिप्राय होता था। तब तक साहित्य से इसका कोई सम्बन्ध नहीं समझा गया। व्यंग्य को प्रतिष्ठा तब से प्राप्त हुई है जब से इसका उद्देश सुधार करना हुआ। इसका महत्त्व और भी बढ़ गया जब से साहित्य का वह एक अङ्ग समझा जाने लगा। व्यंग्य के जो पुराने विवरण मिलते हैं उनसे पता चलता है कि पहले इसका प्रयोग अपना बदला लेने के अभिप्राय से दूसरों को जली-कटी सुनाने में होता था। फिर यह सार्वजनिक जीवन का एक तत्त्व समझा जाने लगा। कहा जाता है कि पहले व्यंग्य से देहाती उत्सवों में गँवारों का मनोरञ्जन होता था और जब उन उत्सवों के नाटक बने और उनमें भी व्यंग्य को स्थान मिला तब से इसका और साहित्य का सम्बन्ध स्थापित हो गया। मालूम होता है कि पहले वह मध्यम

दर्जे की कविता समझी जाती होगी जिसमें व्यंग्य का प्रयोग होता होगा, क्योंकि कहा यह जाता है कि अरिस्टोफ़ेनिज़ ने अपने सुखान्त नाटकों में अपनी उत्तम कविता में व्यंग्य के भावों को स्थान दिया है। कविता और व्यंग्य को सम्मि-लित करने का श्रेय उन्हीं को प्राप्त है।

असंस्कृत ढंग का व्यंग्य बहुत दिनों से इटली में प्रचलित था। उसका प्रयोग एक प्रकार के पद्य में होता था, और उस पद्य में कामुक विषयों का वर्णन होता था और वहाँ के देहात के लोग नई फ़सल के तैयार होने के समय मस्त होकर गाते थे। अपने देश में भी यह कहा जाता है कि जो ग्यारह महीने भूखों मरते हैं वे भी चैत के महीने में उन्मत्त हो जाते हैं। वही एक महीना होता है जब सबके पास कुछ न कुछ खाने को होता है। रहिमन ने ख़ूब कहा है—"रहिमन पूँछन पेट सों क्यों न भयो तू पीठि, भूखे मान बिगारहू भरे बिगारहु दीठि।" पेट भरा हो और निगाह न बिगड़े, यह केवल महात्माओं का काम है। ग्रीस में पहले व्यंग्य का प्रयोग असमर्यादाशील नाटकों से होता था। उन्हें वे लोग सेटुराइ (Saturae) कहते थे, जिसका अर्थ अँगरेज़ी-भाषा में 'मिश्रित' या 'अनेक प्रकार के विषय के लेखों का संग्रह' है। सेटुरा लाक्स (Satura lanx) से बना है, जिसका अर्थ उस भाषा में वह है जो उस साल के नये फलों से भरी हो।

रोम देशवालों ने व्यंग्य-शब्द के नाम का आविष्कार किया था। उनके यहाँ भी बहुत दिनों तक व्यंग्य को साहित्य की दृष्टि से कोई महत्त्व नहीं मिला। उस देश का वास्तव में व्यंग्यलेखक गेएस लूसीलियस हुआ है। उसका काल सन् ईसवी से १०३-१०४ वर्ष पहले है। उसकी कविता बहुत कुछ खो गई है, उसके केवल कुछ अंश मिलते हैं। होरेस और सिसरो इत्यादि का कहना है कि वह कवि था। किसी नये विषय पर लिखकर सफलता प्राप्त करना साधारण बुद्धि का काम नहीं है। फिर होरेस ने इस कला में कमाल दिखलाया। उसने व्यंग्य को ऊँचे शिखर पर पहुँचा दिया। अब इसका नया रङ्ग और रूप हुआ और अब यह साहित्य का सहचर समझा जाने लगा।

अब और देशवालों का भी ख़याल इधर गया और लोगों ने व्यंग्य का प्रयोग संस्कृत-रीति से प्रारम्भ किया। इस अस्त्र के हाथ में आते ही पादरियों पर वार शुरू हुआ। उस समय वही अत्याचारों के केन्द्र थे। सभी को उनके प्रतिकूल कुछ न कुछ कहना था। आवश्यकतानुसार भाषा विस्तृत होती है—अब व्यंग्य के निषङ्ग में सैकड़ों शर थे। एक ही शिकार और सैकड़ों तीर! शिकारों की भी खोज बढ़ी और इरेस्मस ने अन्धविश्वासों और अज्ञानता पर हमले किये। ज़िन्दगी हो तो ऐसी हो। जितने आक्षेप, वार और हमले होते हैं, उतनी ही अन्धविश्वासों की आयु में वृद्धि होती जाती है। इन्हें न तो इन्फ़्लुएंज़ा आवे, न हैज़ा और न ताऊन। मालूम होता है कि यह 'त्रिकुटचूर्ण' इस भारतवासियों के ही वास्ते बना है।

फिर व्यंग्य ने राजनीति और धर्म पर शर-संधान प्रारम्भ किया। वहाँ क्या? वहाँ भी धर्म पर जो कुछ कोई कहा चाहे, कह सकता है, धर्म बदलने की धमकी दे सकता, धर्म बदल कर अपना मतलब बना सकता है, पर दूसरे विषयों पर कुछ लिखना आग से खेलना है। १७वीं शताब्दी में नाटक लिखने की प्रथा बड़े ज़ोरों से प्रचलित हुई। नाटककारों में से अधिकांश लेखक अच्छे व्यंग्य-लेखक थे। १८वीं शताब्दी व्यंग्य की शताब्दी कहला सकती है। इसमें व्यंग्य ने बड़ी उन्नति की। यह इसी समय की कहावत है जो स्वयंसिद्ध समझी जाती थी कि उपहासता सभ्यता की असली पहचान है। इससे पूर्ण पता चलता है कि उस समय व्यंग्य का कैसा आदर रहा होगा। वाल्टेर के पहले वैसा प्रसिद्ध कोई व्यंग्य-लेखक नहीं हुआ था। लेसिंग ने (यह जर्मनी का रहनेवाला था) व्यंग्य को और भी उन्नतिशील बना दिया। जब उसने समालोचना में इसकी सहायता ली तब से यह समालोचना का भी सहकारी हो गया और इस ओर भी इसका प्रयोग बराबर होने लगा। व्यंग्य बेचारा तो दूर रहा, अब तो समालोचना में ख़ूब जली-कटी सुनाई जाती है। कहा जाता है कि प्रसिद्ध कीट्स कवि की कड़ी समालोचना असह्य थी और यही उसकी अकाल-मृत्यु का कारण समझी जाती है। बायरन भी अपने समय का बड़ा व्यंग्य-लेखक था। उसने एक बार कहा था कि "चाहे ठीक हो या ग़लत, तुर्क मेरा विषय है और व्यंग्य मेरा गीत।" अँगरेज़ी भाषा के विद्वानों का यह कहना है कि यदि 'सार्टररिसार्टस' व्यंग्य मान लिया जाय तो कार्लायल की गणना बहुत बड़े व्यंग्य-लेखकों में होगी।

कहा जाता है कि जेम्स रसेल लोवेल का व्यंग्य उच्च कोटि का है। वही अब उसका नमूना समझा जाता है। आधुनिक लेखकों में बर्नार्ड शा प्रसिद्ध व्यंग्य-लेखक हैं। सामाजिक त्रुटियों और कुरीतियों पर उनके लेख होते हैं।

प्रोफ़ेसर एच० वाकर ने एक पुस्तक लिखी है, जिसका नाम इँग्लिश सैटायर एंड सेटारिस्ट्स है। पुस्तक बड़ी योग्यता से लिखी गई है। इसमें यह दिखलाया गया है कि व्यंग्य का शनैः शनैः कैसे विकास और विस्तार हुआ। अपनी पुस्तक की भूमिका में उन्होंने लिखा है कि रोमन देशवालों का यह कहना ठीक है कि उन लोगों ने व्यंग्य का आविष्कार किया है, यद्यपि बहुत कुछ उनके साहित्य का रङ्ग ग्रीस देश का है, क्योंकि उस देश में व्यंग्य का कोई विशेष स्वरूप नहीं था। होमर की कविता में व्यंग्य मिलता है। यह सम्भव है कि उस समय व्यंग्य का कोई सर्वमाननीय स्वरूप न हो। प्रोफ़ेसर वाकर का कहना है कि वायबिल में भी व्यंग्य मिलता है। यह भी उनका कहना है कि किसी देश का व्यंग्य उतना ही पुराना है, जितना उस देश का साहित्य। यद्यपि यह कहा जाता है कि व्यंग्य का प्रयोग केवल गद्य में अच्छी तरह हो पाता है, तथापि सुइफ़्ट और बायरन ने अपनी कविता में पूर्णरूप से व्यंग्य का प्रयोग किया है। हमारे देश की कविता में भी उच्च कोटि का व्यंग्य मिलेगा, और यह हम लोगों का ख़याल नहीं है कि कविता का क्षेत्र व्यंग्य की आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त नहीं है। देखिए कितना सुन्दर व्यंग्य है—"दास सुभाय ही पृकृति हीं मैं कहा गुन नैनन पान खवाये हैं"।

अँगरेज़ी व्यंग्य का जन्म १२ वीं शताब्दी में हुआ था, क्योंकि क़रीब क़रीब १४ वीं शताब्दी तक तीन भाषायें इँग्लेंड में बोली जाती थीं। जब से इँग्लेंड को अपनी भाषा मिली तभी से उस देश के विद्वानों ने साहित्य की ओर ध्यान दिया, और साहित्य के साथ स्वभावतः व्यंग्य की उन्नति प्रारम्भ हुई। पहले व्यंग्य एक मोटा डंडा कहलाता था, जिससे वार किया जाता था न कि वह अस्त्र जिसकी काट तेज़ और तीक्ष्ण हो। उस समय इँग्लेंड में जो विद्वान् होते थे वे लैटिन-भाषा में लिखते थे, और अपनी अँगरेज़ी-भाषा में वही लिखते थे जो और किसी भाषा में नहीं लिख पाते थे। यही कारण होगा कि बहुत दिनों तक व्यंग्य भी पुराने ढंग पर लिखा जाता रहा होगा।

प्रथम एडवर्ड के समय में जो व्यंग्य लिखा गया था उसका विषय गिरजा, बड़े घरों की स्त्रियों का अभिमान, बड़े आदमियों के अमलों, बादशाह के धज़ीरों की लोलुपता, करों का बोझ इत्यादि होते थे। द्वितीय एडवर्ड से इँग्लेंड बहुत ही असन्तुष्ट था और इस वजह से व्यंग्य को और ऊँचा उड़ने का मौक़ा मिला।

अँगरेज़ों के साहित्य के इतिहास में १५वीं शताब्दी कोई स्मरणीय शताब्दी नहीं है—उसमें केवल एक ही लेखक, चासर, हुआ है। यद्यपि यह सत्य है कि उस समय उसके जोड़ का तो क्या, कोई दूसरे नम्बर का भी लेखक नहीं था। चासर और उसके बाद व्यंग्यलेखकों की कविता का प्रचार इँग्लेंड से अधिक स्काटलेंड में हुआ। बहुत कम ऐसे कवि हुए हैं जिनको अपने देश में ख्याति प्राप्त हुई है। हम लोगों में से कितने हैं जिन्होंने कालिदास का शकुन्तला नाटक और रवीन्द्रनाथ की गीताञ्जलि पढ़ी है।

यों तो गद्य और पद्य दोनों में व्यंग्य का प्रयोग होता था, पर पुराने इँग्लेंड के लेखकों का तो यह कहना था कि गद्य ही व्यंग्य के लिए उचित क्षेत्र है। परन्तु महारानी एलिज़ाबेथ के ज़माने में वहाँ व्यंग्य-पद्य का उत्थान हुआ। उस समय के लेखक प्रायः पद्य में ही व्यंग्य लिखते थे। प्रकृति के नियमानुसार पतन के दिन आये और प्रथम जेम्स की हुकूमत के अन्त से और उसके बीस वर्ष पश्चात् तक लोग व्यंग्य को भूल-सा गये थे। उत्तम व्यंग्यलेखकों में ड्रायडेन और पोप का बड़ा नाम है, और फिर वैसा ही नाम बायरन और बर्न को प्राप्त हुआ।

१९वीं शताब्दी में व्यंग्य के विषय भी समय के साथ बदले और अब राजनीति पर इसकी कड़ी दृष्टि थी। कहा जाता है कि यह समय व्यंग्य के योग्य नहीं था। शायद कारण यह है कि कोई बड़ा व्यंग्य लिखनेवाला इस शताब्दी में पैदा नहीं हुआ, क्योंकि बायरन की मृत्यु से इस समय तक कोई उच्च कोटि का व्यंग्य गद्य या पद्य में नहीं लिखा गया है।

यह व्यंग्य के इतिहास की बाह्यरेखा है। इस लेख के लिखने में काव्यप्रभाकर, इंसायक्लोपीडिया ब्रिटैनिका और प्रोफ़ेसर वाकर की उपर्युक्त पुस्तक से बड़ी सहायता मिली है।

कुसुम और समीर

लेखक, श्रीयुत रंभाग्रज

प्रथम दृश्य

उपवन में सुंदर प्रभात

(बालारुण की स्वर्ण-किरणें हरित उपवन में उल्लास बिखेर रही हैं। नव विकसित प्रसूनों के सौरभ से समस्त उपवन सुरभित है। पत्रों और तृणों पर तुहिन-बिन्दु-कण झलक रहे हैं। एक मंजुल कलिका अपने संपुट अधरों को खोल रही है।

प्रातःसमीर का प्रवेश।

उसकी मृदुल हिलोरों से लतिकायें हिल उठती हैं और पत्रों का सुप्त मर्मर संगीत जाग्रत हो उठता है। समीर उस कलिका से अठखेलियाँ करने लगता है।)

कली (समीर के स्पर्श का अनुभव करती हुई आश्चर्य से)—
कौन ?
समीर : समीर।
कली— यहाँ ?
समीर (विनय से) : आया हूँ देवि, तुम्हारे पास।
कली : क्यों ?
समीर (पूर्ववत्)—हूँ एक भिखारी,
कली (सहानुभूति दिखाती हुई)—मुझसे करो न धन की आश।
मैं न कुबेर, वहाँ जाओ; रत्नों का है भंडार।
वे धनहीन न;
समीर (विरक्ति से) : तो क्या ?
कली— दीनों को देंगे न विसार।
समीर (सोचता हुआ)—किन्तु
कली : कहो
समीर (रुककर): मुझको न चाहिए रत्न !
कली (आश्चर्य से)— कहो क्या चाह ?
समीर—उसके अगणित रत्नों औ' धन की न मुझे परवाह।
वहाँ न जाऊँगा,
कली (आश्चर्य से): फिर ?
समीर धन भी पाकर चाह अपूर्ण।
आह, नहीं धन से मेरी अभिलाषा होगी पूर्ण।
इसी लिए आया हूँ तुम तक,
कली— है मुझसे क्या का
समीर (दीनता प्रकट करता हुआ):—
भिक्षा-पात्र देवि भर दो
कली— क्या दूँ ?
समीर— ममता अभिराम।
देवि, प्रेम का एक भिखारी ! धन है तुझे
कली (भय और सुसमर्थता से)—
आह !
समीर— निराश करो मत मुझको,
कली (जिज्ञासापूर्वक)— तुम्हें चाहिए प्यार
समीर—हाँ, मैं प्रेमभिखारी,
कली— जीवन प्रेम-हीन निस्सार।
समीर—तुमको पा मैं भूल सकूँगा सभी व्यथा का
कली— पर,
समीर (प्रसन्न-सा हो)—क्या ?
कली (चिंतित-सी)—जीवन भर तुम मुझको सदा
प्यार ?
समीर—प्रण करता हूँ,
कली— मेरी ममता देना तुम न बिसार।
समीर (उत्सुक हो)—
स्वीकृत है मम विनय,
कली— किया मैंने प्रियतम स्वीकार।
पर न दुखाना मुझे,
समीर— नहीं कोमल है मेरा प्यार।
पूर्ण दिवस भर छोड़ रहा था मैं दुख का निः
प्रेयसि !
कली— प्रियतम !
समीर (अपार सुख का अनुभव करता हुआ)—
अब तो भर लो अधरों में मधु
(कली खिल उठती है।)

द्वितीय दृश्य

वही उपवन—मध्याह्नवेला।

(कली अब कुसुम है। भीषण अंधड़ का प्रवेश। कुसुम के हृदय में भय का संचार होता है।)

अंधड़ (तीव्र गति से बहता हुआ अस्थिर हो)—
कुसुम!
कुसुम (न पहिचानकर): कौन?
अंधड़— तुम मुझे शीघ्र ही भूलीं। हाय,
कुसुम (पहचानती है: आश्चर्यपूर्वक)— समीर!
अंधड़—हाँ, प्रेयसि!
कुसुम— पर दीख रहे क्यों अस्थिर और अधीर?
नव कोमल थे।
अंधड़— अब?
कुसुम (भय से)— भीषण दिखता वह कोमल तन।
(उड़ती हुई चीज़ों को इंगित कर—)
ये क्या?
अंधड़— तृण औं पत्र जर्जरित
कुसुम— करते तुम्हें कुरूप।
कुसुम (आश्चर्य से)—
तुम अस्थिर हो, चंचल हो; कैसा परिवर्तन आज?
अंधड़—प्रेयसि,
कुसुम— बोलो,
अंधड़ (उद्विग्न-सा)— छोड़ो बातें करो न मुझसे लाज।
कुसुम—तुम्हें न समझी।
अंधड़— अभी तुम्हें आया हूँ करने प्यार।
मेरे साथ चलो,
कुसुम— क्यों?
अंधड़— दिखलाऊँ निज स्नेह-दुलार।
कुसुम—(आश्चर्य से)—
यह परिवर्तन!
अंधड़— स्वाभाविक है; आओ मेरे साथ।
कुसुम—क्यों तब बोलो? कहाँ मुझे जाना होगा अब नाथ?
अंधड़—नीरव निर्जन में
कुसुम— न वहाँ भय, तुम हो देव न चोर।
अंधड़—इस उपवन से दूर
कुसुम— कहो तो क्यों, बोलो किस ओर?
अंधड़—आह! चलो तुम साथ शीघ्र ही सूने पथ में प्राण।
किसी शैल की ओर, किसी को हो मत जिसका ज्ञान।
और वहाँ मैं प्रिये, करूँगा तुमको जी भर प्यार।
कुसुम (आश्चर्य से)—
फिर क्यों मेरी चाह? 'पृथकता' देता प्रेम विसार।
कहीं रहें हम दूर, पास, पर याद करेंगे रोज
एक दूसरे की: रवि को लख खिलता नित्य सरोज।
अंधड़ (क्रोधपूर्वक):
व्यर्थ! अनर्गल!
कली (आश्चर्य से)— मेरी बातें!
समीर— हाँ, मत करो विलम्ब।
चलो,
कुसुम (भय से)— नहीं।
समीर (शासनपूर्वक)— चलना होगा,
कुसुम (पश्चात्ताप कर)— निष्ठुरता का प्रतिबिम्ब
तब दीखा न!
(विनय से दीन हो) हाय मत लूटो मुझको हे प्राणेश!
मैं हूँ कोमल कुसुम, न मुझको यों तोड़ो हृदयेश।
अंधड़ (क्रोध से)—
पतिता!
कुसुम (ग्लानि से)—
मैं? या स्वयं पतित तुम?
अंधड़— चुप रह महाकठोर!
कुसुम (दुखपूर्वक)—
आह!
अंधड़— तुझे चलना होगा मैं ले जाऊँ जिस ओर!
(अंधड़ कुसुम को तोड़कर उड़ा ले जाता है।)

तृतीय दृश्य

एक मरुस्थल—सूर्यास्त के समय।

(अंधड़ तप्त मरुस्थल में कुसुम को गिरा कर चला जाता है। संध्या का प्रवेश।)

सन्ध्या (कुसुम की दयनीय दशा देख)—
तप्त मरुस्थल में सोई हो कौन?

कुसुम (करुण स्वर में)— कुसुम हूँ दीन।
(संध्या को देख)
देवि, कौन तुम
संध्या— मैं संध्या,
कुसुम— मैं व्यथिता, आश्रयहीन!
सन्ध्या (सहानुभूति दिखाती हुई)—
किस निष्ठुर ने पतन तुम्हारा किया—
कुसुम— कठोर समीर
अंधड़, बन कर आया;
सन्ध्या— उससे मिली तुम्हें यह पीर।
वह पापी था।
कुसुम—(दुखपूर्वक)—अब उपाय क्या?
सन्ध्या— आओ व्यथिता दीन!
पापी जग से जो लुटता, मुझमें होता है लीन॥
(अंधकार फैलता है। कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता।)

फूल

लेखक, श्रीयुत कुँवर हरिश्चन्द्रदेव वर्मा 'चातक', कविरत्न

बैठ फूलकुंज में लिखूँगा फूल के ही गीत—
सचमुच फूल-सा न कोई हमें प्यारा है।
छवि का विकास जैसा होता इसमें है वैसा—
मिलता न और कहीं ढूँढ़ जग हारा है।
तन, मन, प्राण, सभी इसके सुकोमल हैं—
बहती इसी के उर में ही रस-धारा है।
फूल-सी उँगलियाँ हों तो भी नहीं तोड़ो इसे—
चोट लगने से डरे, काँपता बिचारा है।

आज ही तो आँख इसकी है खुली डाली पर
अभी लाज भरी दृष्टि भी न कहीं डाली है।
चन्द्र-किरणों ने अभी इसको छुआ भी नहीं—
देखी नहीं जी भर प्रभात की भी लाली है।
शीतल समीर का न स्वाद अभी पाया कुछ—
बजते सुनी न पल्लवों की मृदु ताली है।
मधु-पात्र ख़ाली, मान जाओ अभी तोड़ो नहीं।
सोचो एक बार इसका भी कोई माली है!

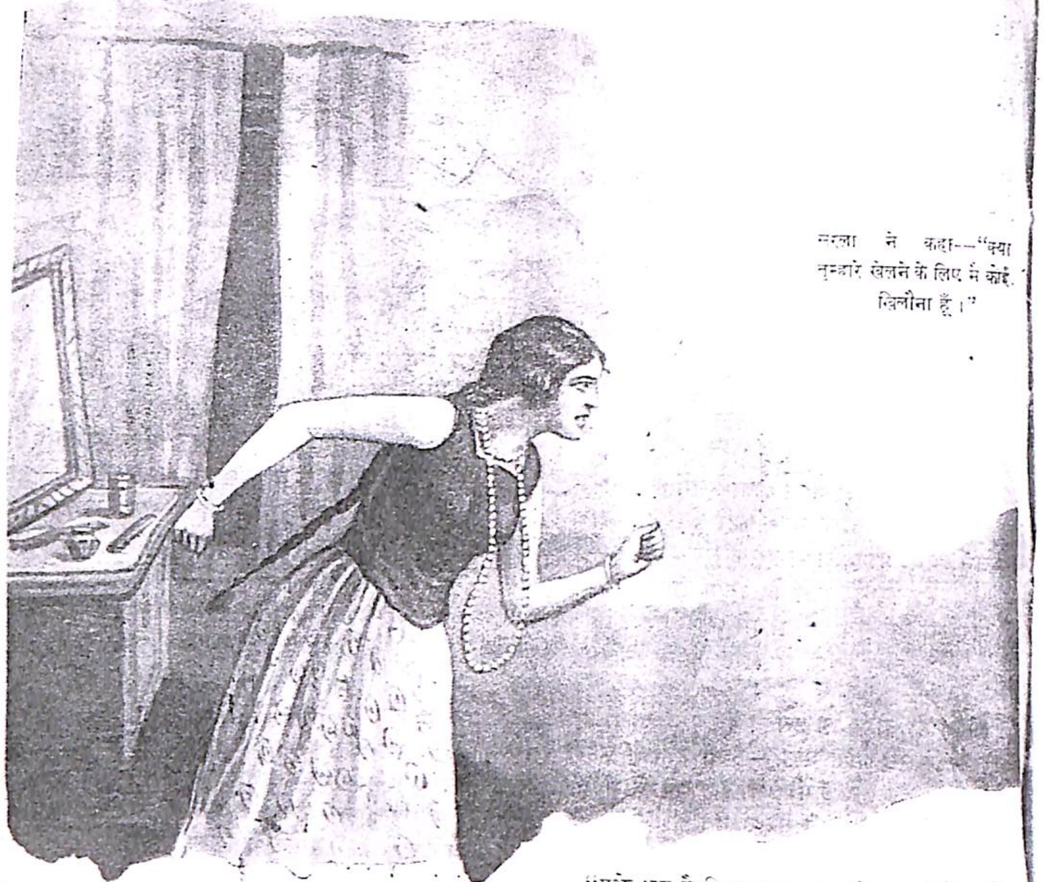
तोड़ना तुम्हें हो इष्ट तोड़ना तो उस काल—
जब मधुपों ने मधु लूट लिया सारा हो।
म्लान मुख देख के न पास भी फटकते हों—
मिलता न कोई जब इसको सहारा हो।
सिर धुनता हो पल्लवों से फोड़ने के लिए—
खो के सुध-बुध जब बावला बिचारा हो।
पर अभी मेरे सामने न तुम तोड़ो इसे—
कौन जाने फूल-सा किसी का कोई प्यारा हो!

तोड़ लिया तुमने न मेरा कुछ माना कहा—
भाग जाओ निठुर! दया न तुम्हें आयेगी।
सूनी पल्लवों की सेज बिलखा करेगी हाय!
बुलबुल फूल के न गीत अब गायेंगी।
पतिआयेगी न भोली लतिका किसी को अब—
खिली हुई चाँदनी न मन को लुभायेगी।
देखना तुम्हारे इस क्रूर व्यवहार से ही—
छवि मर जायगी सुगन्ध उड़ जायेगी।

सरल प्रेम की कहानी

अभिनेत्री

लेखक, श्रीयुत राजेश्वरप्रसादसिंह



सरला ने कहा—"क्या तुम्हारे खेलने के लिए मैं कोई खिलौना हूँ।"

सुन्दरी सरला की ओर सहानुभूतिसूचक दृष्टि से देखकर, गम्भीरता से सिर हिलाते हुए लक्ष्मी-फ़िल्म-कम्पनी के सुयोग्य मैनेजर रोबिन बनर्जी ने कहा—मुझे इस बात का खेद है, सरला, कि इस समय मुझे तुमसे एक ऐसे विषय पर बात करनी पड़ेगी जो अत्यन्त अप्रिय है।

आश्चर्य से चकित होकर सरला ने पूछा—वह अप्रिय विषय क्या है, रोबिन बाबू?

"मुझे भय है कि अब यह कम्पनी तुम्हारी सेवाओं से लाभ नहीं उठायेगी।"

सरला सहम गई। उसके सुन्दर, उत्फुल्ल मुखमण्डल पर मलीनता दौड़ गई। अप्रसन्नतापूर्ण स्वर में वह बोली—इसका कारण?

"लोगों की यह राय है कि सवाक् चित्रपटों में अभिनय करने के योग्य तुम नहीं हो।"

"और आपकी राय भी वही है जो और लोगों की है?"

"बहुमत के सामने एक व्यक्ति की राय क्या है, सरला? 'धन की माया' के विषय में हमारी जो आशायें थीं उन पर पानी फिर जा रहा है। हर जगह से निराशाजनक रिपोर्टें आ रही हैं। यह निश्चित है कि यह फ़िल्म असफल रहेगी, और इससे कम्पनी की भारी हानि होगी।

"और इस असफलता की सारी ज़िम्मेदारी मेरे ऊपर है?"

"सारी ज़िम्मेदारी न सही, कुछ तो है ही।"



जब मैनेजर के कमरे में उसने प्रवेश किया था, उसी समय सरला का माथा ठनका था।

किन्तु ऐसी कड़ुई बात सुनने की उसे आशंका नहीं थी। किसी ने उसके मन में कहा, मामला अब हद से बाहर हो चुका है। किन्तु आशा की एक क्षीण रेखा के सहारे उसने कहा—मैंने तो कुछ उठा नहीं रक्खा था, रोबिन बाबू!

"इसमें कोई शक नहीं कि तुमने पूरी कोशिश की थी, किन्तु बोल-पट में अभिनय करनेवाली अभिनेत्री से जिन गुणों की आशा की जाती है उनका परिचय तुम न[...] सकीं। जिन आलोचकों की सम्मतियाँ आदरणीय [...] सब तुम्हारे खिलाफ़ हैं। पब्लिक पर भी तुम्हारा [...] अच्छा नहीं पड़ा। तुम खुद देखो।"

मेज़ का एक ड्रार खोलकर उसमें से अख़बार[...] कुछ कतरनें निकालकर मैनेजर ने उसके सामने फेंक[...] उत्सुकता से एक कतरन उठाकर वह पढ़ने लगी। [...] लिखा था—

"लक्ष्मी-फ़िल्म-कम्पनी का पहला बोल-पट 'ध[न की] माया' अत्यन्त निम्नकोटि का फ़िल्म है। हालीउ[ड के] लिए बोल-पट उतना ही नया है, जितना हमारे लि[ए।] वहाँ की प्रारम्भिक कृतियाँ जिस ऊँचाई पर [पहुँच] गई हैं, वहाँ तक हमारे बोल-पट शायद क[भी] पहुँच पायेंगे। कुछ दिन हुए, किसी ने कहा 'भारतीय सिनेमा-व्यवसाय अपने बाल्यकाल [में] नहीं, पागलपन की अवस्था में [है]।' हार्दिक खेद-सहित हमें इस सम[्मति] का समर्थन करना पड़ रहा है।

"इस फ़िल्म की कहानी [...] ही रही है, जैसा इसका रेकाडि[ंग] और ऐक्टिंग के विषय में इ[तना] कह देना बहुत होगा कि इस फ़ि[ल्म] में पार्ट करनेवाले अभिनेता त[था] अभिनेत्रियाँ हमें तो उन नि[...] बटोहियों के समान दृष्टि-गोचर हो[ती] हैं जो किसी अज्ञात स्थान [पर] पहुँचकर मार्ग भूल गई हों! ऐ[से] लोगों के होश-हवास कैसे दुरुस[्त] रह सकते हैं? नायक तथ[ा] नायिका के पार्ट करनेवालों को ह[ी] ले लीजिए। बेचारे श्यामकृ[...] ने हर बार बड़ी सावधानी से निशाना साधा, लेकिन चू[क] गये। और सरलादेवी में न तो वाणी का ओज है और [न] वह आत्म-विश्वास जो हम उनमें सदा देखते आये हैं। अवाक् चित्र-पटों में सरलादेवी ने जिस अद्भुत अभिन[य-] कौशल का प्रदर्शन किया है उसके प्रति हमारे हृदय में इत[ना] अनुराग है कि हमें यह कहने में किञ्चित्-मात्र भी हिचक न[हीं]

है कि या तो वे अपनी कला को अवाक् चित्र-पटों में ही सीमित रक्खें, नहीं तो रजत-पट से अवकाश ग्रहण कर लें, ताकि हमारे हृदयों में उनकी वही मधुर स्मृतियाँ बनी रहें जो अभी तक विद्यमान हैं। यह आवश्यक नहीं है कि जो अभिनेत्रियाँ तथा अभिनेता अवाक् चित्र-पटों में चमक चुके हैं वे बोल-पटों में भी प्रतिभासम्पन्न सिद्ध हों। कला की मर्यादा की रक्षा के निमित्त ही विवश होकर हमें यह इशारा करना पड़ा है। हमें आशा है कि जो विवेकशील हैं वे हमारी स्पष्टवादिता से दुखी न होंगे, बल्कि इससे लाभ उठायेंगे। फ़ोटोग्राफ़ी संतोषजनक है। अपने अगले अंक में हम इस चित्र की विस्तृत आलोचना प्रकाशित करेंगे।"—'दि स्क्रीन'।

सरला की आँखों में आँसू छलक आये—नैराश्य, विषाद तथा रोष के आँसू। कतरन मैनेजर के सामने फेंककर, मुख मोड़कर, वह अपने भावावेग को नियंत्रण में लाने का प्रयत्न करने लगी।

"निस्सन्देह इतने दिनों का सुखद सम्बन्ध विच्छेद करने में हमें अकथनीय दुःख का अनुभव हो रहा है, किन्तु जब इसी में हम सबकी भलाई है तब आगा-पीछा करना वास्तविकता से मुख मोड़ना है। इसी लिए मेरा यह अप्रिय कर्त्तव्य है कि मैं तुमसे इस बात का अनुरोध करूँ कि तुम इस्तीफ़ा दे दो, ताकि हमें मजबूर होकर.........!"

सरला अब अधिक न सुन सकी। वह उठकर तेज़ी से कमरे के बाहर हो गई।

(२)

किसी न किसी तरह घर पहुँचकर वह सीधे अपने सुसज्जित शयनागार में गई। भीतर से दरवाज़ा बंद करके वह बिस्तरे पर गिर पड़ी और फूट फूटकर रोने लगी। यहाँ उसे एकान्त में तूफ़ान की तरह उठे हुए भावावेग को रोकने की आवश्यकता न थी। अभी तक रुकी हुई दुःखद भावनायें स्वतन्त्र होकर ताण्डव-नृत्य करने लगीं। उसकी मनोवेदना का वारापार न था। एक भावुक युवती के लिए इससे अधिक दुःख की क्या बात हो सकती है कि उसे यह बतलाया जाय कि जिस कार्य के सम्पादन में उसने अपनी सम्पूर्ण योग्यता से काम लिया था वह निंदनीय सिद्ध हुआ। "लोगों की यह राय है कि तुम बोल-पटों में अभिनय करने के योग्य नहीं हो"—मैनेजर के ये कठोर शब्द कानों में गूँज-गूँजकर उसके आन्दोलित हृदय पर चोट कर रहे थे।

बड़ी देर के बाद जब उसका हृदय कुछ शान्त हो गया तब आँखें पोंछकर वह बिस्तरे से उतरी, और सिगरेट जलाकर आरामकुर्सी पर लेटकर कश खींचकर, धुआँ फेंककर, धुएँ की ऊपर उठती हुई लहर को विचारपूर्ण दृष्टि से देखने लगी। अब क्या करना चाहिए? यह बात तो निश्चित ही है कि लक्ष्मी-फ़िल्म-कम्पनी अब उसे अपने यहाँ नहीं रखना चाहती। इसलिए इस्तीफ़ा तो उसे दे ही देना चाहिए। विचार पक्का हो गया। उठकर वह कमरे से बाहर निकली। सेविका गुलाब सामने आई।

"चाय ले आऊँ, बाई जी?" स्वामिनी के मुख-मण्डल की ओर चिन्ताग्रस्त दृष्टि से देखकर उसने पूछा।

"अभी नहीं, गुलाब। कुछ देर के बाद पिऊँगी।"

आगे बढ़कर उसने पुस्तकालय में प्रवेश किया। दरवाज़ा बंद करके वह मेज़ के सामने जा बैठी, और इस्तीफ़ा लिखने लगी। एक घंटे की मेहनत के बाद यह त्याग-पत्र तैयार हुआ—

"प्रिय रोबिन बाबू,

उस खेदजनक परिस्थिति के कारण जिससे आप स्वयं परिचित हैं, मैंने सिनेमा-संसार से अवकाश ग्रहण करने का निश्चय कर लिया है। यह मेरे लिए असीम दुःख का विषय है कि अब आपकी प्रतिष्ठित कम्पनी की सेवा न कर सकूँगी। आप लोगों ने सदैव मेरे प्रति जिस शालीनता का परिचय दिया है उसके लिए अनुगृहीत हूँ।"

सरलादेवी।"

एक बार फिर पत्र को सावधानी से दोहराकर, एक लिफ़ाफ़े में उसे रखकर, लिफ़ाफ़े पर पता लिखकर, उसने घंटी बजाई। एक मिनट में एक सेवक ने कमरे में प्रवेश किया। पत्र उसे देकर सरला ने कहा—इसे रोबिन बाबू के पास ले जाओ। उन्हीं को देना, और किसी को नहीं। अगर जवाब दें तो लेते आना।

सिर झुकाकर सेवक चला गया। तब एक दीर्घ-निःश्वास खींचकर वह उठी, और उधर उस आलमारी के समीप गई। आलमारी खोलकर ह्विस्की की बोतल उठाकर, एक गिलास में थोड़ी-सी ह्विस्की उँडेलकर, सोडा मिलाकर, पीकर, सिगरेट जलाकर, आलमारी बंदकर, एक आरामकुर्सी पर लेट कर, वह विचारों में मग्न हो गई। समाप्त हो गया आज उसके जीवन का वह अध्याय जिसकी रचना दस वर्ष के कठिन परिश्रम से हुई थी, जिसमें उसकी महत्त्वाकांक्षाओं तथा सफलताओं का इतिहास अंकित था। एक साधारण अभिनेत्री की स्थिति से बढ़ते बढ़ते वह लोकप्रियता, प्रसिद्धि, सम्मान के सर्वोच्च सिंहासन पर आसीन हो गई थी। अपना जादू उसने संसार पर चलाया था, और मंत्रमुग्ध होकर संसार ने उसे अपनी बहुमूल्य निधियाँ अर्पित की थीं। किन्तु उसके भाग्य में यह दुर्दिन देखना भी बदा था। कितना चंचल है मनुष्य का भाग्य! सचमुच उसे वहाँ रहने का कोई अधिकार नहीं है, जहाँ उसकी आवश्यकता नहीं है। निःसन्देह मूक चित्र-पटों में वह अब भी पार्ट कर सकती है, किन्तु आगे बढ़ कर पीछे हटना कितना अपमानजनक है। किसी अभिनेता अथवा अभिनेत्री के लिए इससे बढ़कर बुद्धिमानी का कोई कार्य नहीं हो सकता कि सम्मान के उच्च आसन से गिराये जाने के पहले ही वह रंग-मंच से अलग हो जाय। सत्य जब यही है तब इससे मुख मोड़ने से क्या लाभ होगा?

अब क्या करना होगा? जिस ढंग से अब तक रहती आई है, उसी ढंग से क्या आगे भी वह रह सकेगी? कदापि नहीं, क्योंकि अपनी संतोषजनक स्थिति को स्थायी समझ लेने के कारण किफ़ायत से चलना उसने आवश्यक नहीं समझा था। यदि वह किफ़ायत से चलती तो एक अच्छी-ख़ासी रक़म आज बैंक में उसके नाम जमा होती। किन्तु वह तो अपने वेतन का अधिकांश उन अनावश्यक वस्तुओं पर ख़र्च कर देती थी जिनका उसकी दृष्टि में आज कोई मूल्य न था। किन्तु अब पछताने से क्या मिलेगा? दुःखद परिस्थिति का साहस के साथ सामना करने से ही काम चलेगा। वह निर्धन है, निराश्रय है। सारा माल-असबाब बेच देना होगा, नौकरों को अलग कर देना होगा, यह घर ख़ाली कर देना होगा, पृथ्वी के किसी ऐसे अज्ञात कोने में जाकर रहना होगा जहाँ उसे कोई न जानता हो, और जीवन के शेष दिन कुढ़-कुढ़कर काटने होंगे।

निस्सन्देह उसके अनेक प्रेमी थे, और उनमें कई अविवाहित भी थे। किसी न किसी गुण के कारण वह उन सबको पसन्द करती थी, किन्तु किसी से विवाह कर लेना असम्भव था। गिरधरलाल! हाँ, गिरधर को वह सबसे अधिक पसंद करती थी, किन्तु वह निर्धन था, और उसका चरित्र भी ठीक नहीं था।

सहसा उसकी अन्तर्दृष्टि के सम्मुख एक स्वस्थ, सुन्दर युवक की छायामूर्ति आ उपस्थित हुई। ग्यारह वर्ष पूर्व उस युवक से उसका परिचय हुआ था। उस समय वह निरी नवयुवती थी, और अभिनेत्री बनने के चक्कर में थी। एक जलसे में विनयशंकर ने पहले-पहल उसे देखा था, और वहीं उससे परिचय प्राप्त किया था। दूसरे ही दिन उस जल्दबाज़ युवक ने एक एकान्त स्थान पर उसे अपने प्रेम का परिचय दिया था, और सरला ने हँसकर उसका उपहास किया था। फिर तो वह उसके पीछे ही पड़ गया। वह नित्य उससे मिलने, और उसका और अपना अमूल्य समय नष्ट करने लगा। यही कारण था उसके पराजय का।

नित्य के अनुसार एक दिन जब अपने कमरे में एक बड़े शीशे के सामने खड़ी हुई वह अभिनय का अभ्यास कर रही थी, विनय उसके घर आया। लापरवाही में उसने कमरे का दरवाज़ा खुला छोड़ दिया था, इसी से विनय को कमरे में चुपचाप घुस आने का मौक़ा मिल गया था। धीरे से प्रवेश करके वह उसे चकित करने के लिए उसके पीछे जा खड़ा हुआ। शीशे में उसकी शक्ल देखकर सरला चौंक पड़ी। फिर उसे क्रोध आ गया। उसकी ओर मुड़कर वह उसे खरी-खोटी सुनाने लगी। वह हँस पड़ा, और उसे पकड़ने के लिए आगे बढ़ा। वह और भी चिढ़ गई। उसे धक्का देकर उसने कहा—यह लड़कपन अपने पास रक्खो! क्या तुम्हारे खेलने के लिए मैं कोई खिलौना हूँ?

गम्भीर होकर वह फ़र्श की ओर ताकने लगा। उसके आत्म-सम्मान पर चोट लगी। जिसे वह प्यार करता था उसी के मुख से ऐसे अपमानजनक शब्द सुनने की उसे आशा न थी। दो-तीन क्षणों तक निस्तब्ध रहकर सरला ने फिर कहा—तुम्हें इस बात का क्या अधिकार है कि तुम मेरे मार्ग में बाधायें उपस्थित करो?

धीरे से दृष्टि उठाकर, सरला के चेहरे की ओर

देखकर, उसने कहा—मुझे कोई अधिकार नहीं है, मैं यह मानता हूँ। मुझसे बड़ी भूल हुई। माफ़ करो। किन्तु यह अनधिकार चेष्टा करने का अधिकार क्या तुमने मुझे नहीं दिया था ?

"दिल्लगी बुरी नहीं होती, लेकिन जब वह हद से आगे बढ़ जाती है तब घृणित हो जाती है।"

"मैं मानता हूँ कि मुझसे सख्त ग़लती हुई, लेकिन कोई बुरा भाव मेरे मन में नहीं था। सच्चे हृदय से मैं तुम्हें प्यार करता हूँ!"

"वह कोरी भावुकता मुझे नहीं चाहिए। प्रेम के अतिरिक्त मुझे अन्य वस्तुओं की आवश्यकता है। मैं पहाड़ की चोटी पर पहुँचना चाहती हूँ, आकाश में उड़ना चाहती हूँ, मैं धन, प्रसिद्धि तथा लोक-सम्मान चाहती हूँ, और जो वस्तु मेरे मार्ग में बाधा उपस्थित करेगी उसे ठुकरा दूँगी!"

"यह कहने के लिए मुझे क्षमा करो, सरला, कि प्रेम-सम्बन्धी तुम्हारे विचार भ्रमपूर्ण हैं। प्रेम, यदि वह सच्चा है तो, बाधायें उपस्थित नहीं करता, सहायता करता है!"

"प्रेम चाहे कुछ करता हो या न करता हो, आपका प्रेम चाहे सच्चा हो या झूठा हो, कृपा करके अपना प्रेम आप अपने पास रखिए! मुझे, आपके प्रेम की आवश्यकता नहीं है!"

"तब इसका मतलब यह है कि अब तुमसे कभी न मिलूँ?"

"जी हाँ!"

मुड़कर विनय कमरे से बाहर हो गया। सरला के जी में आया कि उसे वापस बुला ले, किन्तु यह अनुचित प्रतीत हुआ। उबलती हुई वह जाकर एक कुर्सी पर बैठ गई।

किन्तु आज तो वह निरी बालिका नहीं है। आज तो ग्यारह वर्ष के सांसारिक अनुभव का बोझ उसके सिर पर लदा हुआ है। आज वह जानती है कि उस समय उसने भूल की थी। विनय की एक साधारण ग़लती के कारण आपे से बाहर हो जाना सर्वथा अनुचित था। विनय अब कहाँ है, क्या करता है, कौन जाने ?

(३)

सिनेमा-संसार से सरला के अवकाश ग्रहण करने की बात सारे शहर में फैल गई। दूसरे दिन प्रातःकाल ही उसके अनेक प्रशंसकों, संवाददाताओं और तमाशबीनों ने उसका घर घेर लिया। किन्तु उसने किसी से मिलना स्वीकार नहीं किया। बीमारी का बहाना करके वह अपने शयनागार में पड़ी रही। लोग निराश होकर चले गये।

सारे दिन उसने किसी से भेंट नहीं की, किन्तु संध्या के समय जब गिरधरलाल आया तब वह उससे मिलने से इनकार नहीं कर सकी। हाथ में एक पत्रिका लिये हुए वह अपने ड्राइंग-रूम में एक कौच पर लेटी हुई थी। अजीब शान से गिरधरलाल ने कमरे में प्रवेश किया। सरला उठ बैठी, और वह उसकी बग़ल में जा बैठा।

"तुमने यह क्या कर डाला, सरला? मेरे आश्चर्य का तो ठिकाना ही नहीं है। आख़िर बात क्या हुई?"

"और कोई चारा नहीं था।" विषाद-भरे स्वर में उसने उत्तर दिया।

"क्या कम्पनीवालों ने तुम्हें इसके लिए मजबूर कर दिया था?"

"हाँ, उन लोगों ने मुझे इस्तीफ़ा देने के लिए मजबूर किया था।"

"बड़े शैतान हैं! ऐसा उन लोगों ने क्यों किया?"

"अपने पहले बोल-पट में उन लोगों को जो आशायें थीं वे पूरी होती दिखाई नहीं देतीं, और उनका ख़याल है कि इसका कारण मैं हूँ।"

"भाड़ में जायँ वे लोग! किसी दूसरी कम्पनी में क्यों नहीं चली जातीं?"

"नहीं, यह असम्भव है। मैंने पक्का इरादा कर लिया है कि अब किसी कम्पनी में काम न करूँगी।"

"तब क्या करोगी?"

"यह मैं अभी नहीं कह सकती।"

"कौन जानता था कि एक दिन तुम अपने पेशे से इस तरह अलग हो जाओगी? बड़े अफ़सोस की बात है! मैं तो कहीं का न रहा। अब किसे तंग करूँगा, किससे मदद लूँगा?"

"दुनिया बहुत बड़ी है, और तुम चालाकों के सरदार हो! ऐसे आदमियों की हमेशा जीत ही रहती है!"

"प्यारी सरला! एक बात कहूँ?"

"कहो।"

"मेरे साथ शादी कर लो!"

"यह नामुमकिन है, गिरधर। यह बात पागलपन से कम न होगी। तुम तो पहले से ही कंगाल थे, अब मैं भी कंगाल हो गई! और बातों को जाने दो, यही क्या कम है?"

"यह तो ठीक है, लेकिन हमारा काम किसी न किसी तरह चल ही जायगा।"

"यह बेवकूफ़ी का ख़याल दिल से दूर कर दो, गिरधर। जो बात नामुमकिन है वह नामुमकिन है।"

इसी तरह दोनों देर तक बातें करते रहे। भोजन के बाद भी देर तक बातें होती रहीं।

"अब मैं सोऊँगी।" सरला ने अन्त में उठकर कहा।

"क्या मैं यहाँ रात काट सकता हूँ?"

"शौक़ से रहो।"

"धन्यवाद।"

एक सेवक को बुलाकर और गिरधर के सोने का इन्तज़ाम करने की आज्ञा देकर वह कमरे से बाहर हो गई।

"सरकार! सरकार!" दूसरे दिन बड़े तड़के ही गुलाब उसके शयनागार का दरवाज़ा खटखटाने लगी।

"क्या है रे?" जागकर, खीझभरे स्वर में उसने पूछा।

"ग़ज़ब हो गया, सरकार! जल्दी दरवाज़ा खोलिए।"

तुरन्त उठकर सरला ने दरवाज़ा खोला, और कौतूहल-पूर्ण स्वर में पूछा—क्या बात है गुलाब?

"घर में चोरी हो गई!"

"चोरी हो गई! कब? कैसे?"

"रात में हुई होगी। चलकर देखिए।"

"चल, देखूँ तो।"

दोनों एक ओर चली गईं।

जिस कमरे में नक़दी और गहने रक्खे रहते थे उसका ताला टूटा हुआ था, तिजोरी खुली पड़ी थी, एक पत्र के अतिरिक्त उसमें कुछ नहीं था। उस पत्र में लिखा था—

"प्यारी सरला,

अपने पेशे से अलग होकर तुमने मेरी उम्मीदों पर पानी फेर दिया। तुमसे अब मैं क़र्ज़ न ले सकूँगा। आशा थी कि मेरे साथ शादी कर लोगी, लेकिन वह उम्मीद भी अब तुम्हारे पीछे पड़े रहना फ़िज़ूल है! यह तो [illegible] हो कि मैं पक्का मुफ़लिस हूँ। इसलिए तुम्हारे गहने लेता जाता हूँ। तुम क्या करोगी? जो तुमने मुझसे कहा था, वही दोहराता हूँ, 'दुनिया [illegible] है, और तुम चालाकों के सरदार हो!' पुलिस [illegible] न देना, क्योंकि यह बिलकुल फ़िज़ूल होगा। पुलिसवाले कार्रवाई शुरू करेंगे तब तक [illegible] सैकड़ों मील दूर पहुँच जाऊँगा।

"मुझे माफ़ करना [illegible] दोस्ती का [illegible] अब तुम्हें कभी तङ्ग न करूँगा। [illegible] नमस्कार!

तुम्हारा निराश प्रेमी,
गिरधरलाल।"

सरला क्रोध से काँपने लगी। उसने पत्र [illegible] दिया। बिना एक शब्द भी कहे हुए वह उस [illegible] बाहर हो गई। नौकर आश्चर्य से ताकते रह गये।

ड्राइंग-रूम में पहुँचकर सरला एक सोफ़े [illegible] पड़ी। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे—असीम [illegible] तथा विवशता के आँसू! विविध भावों से आन्दो[illegible] बड़ी देर तक सचिन्त बैठी रही। फिर, आँखें [illegible] फ़र्श की ओर शून्य दृष्टि से ताकने लगी।

बड़ा अच्छा हुआ कि उस शैतान से [illegible] गुण्डा, चोर, लुच्चा! इसके अतिरिक्त उससे [illegible] आशा की जा सकती थी? पुलिस को इत्तला दे[illegible] है, फ़िज़ूल शोर-शराबा होगा। उसने ठीक [illegible] उसे पकड़ पाना असम्भव है। वह पकड़ भी [illegible] वह यह देख सकेगी कि वह जेल जाय? नहीं [illegible] कदापि न होगा!

संध्या समाप्त हो रही थी। रात आ रही थी [illegible] विचारों में खोई हुई वह अपने बिस्तरे पर पड़ी [illegible] नाश हो गया। इस संसार में अब उसके [illegible] आशा नहीं है, यहाँ रहना वृथा है। अपमा[illegible] जीवित रहने से मर जाना ज़्यादा अच्छा है। [illegible] निरर्थक जीवन का अन्त ही कर देना चाहिए, [illegible] से जल्द। आज रात को? ज़रूर, ज़रूर!

गुलाब दबे-पाँव कमरे में आई और अपनी

के समीप गई। उसके हाथ में एक तश्तरी थी, और तश्तरी में एक कार्ड था। सरला ने कार्ड उठाकर देखा। उस पर अंकित था—'विनयशंकर'! आश्चर्य से वह चकित रह गई। क्या यह सम्भव है? वह स्वप्न तो नहीं देख रही है? क्या वह सचमुच आया है? वही जिसके साथ आज से ११ वर्ष पूर्व उसने भद्दा व्यवहार किया था! अकथनीय आनंद उसके हृदय में प्रवाहित होने लगा। विषाद की छाया हट गई, उसका मुखमण्डल चमकने लगा।

"उन्हें ड्राइंग-रूम में बैठाओ। मैं अभी आती हूँ।"

"बहुत अच्छा, बाई जी।" मुस्कराकर, सिर झुकाकर, गुलाब चली गई।

पाँच मिनट के बाद जब उसने ड्राइंग-रूम में प्रवेश किया तब एक सुन्दर, स्वस्थ युवक ने उठकर, हाथ जोड़ कर, उसे नमस्कार किया। नमस्कार का उत्तर देकर, मुस्कराकर, सरला ने कहा—आख़िर आप आ ही गये!

कुछ शर्माकर वह मुस्कराया।

"आराम से बैठिए।" एक सोफ़े की ओर संकेत करके सरला ने कहा।

"धन्यवाद!" वह बैठ गया।

"इस सम्मान के लिए अनुगृहीत हूँ!" उसकी बग़ल में बैठकर सरला ने कहा।

"आपने मुझसे भेंट करना स्वीकार किया, इसके लिए मैं भी अनुगृहीत हूँ!"

विनय के शब्दों में जो मीठी चुटकी थी, उसका उचित असर पड़ा। सरला ने एक दीर्घ निःश्वास खींचा।

"कितने सालों के बाद आज मुलाक़ात हुई है! अपना सारा हाल तो सुनाइए।"

"ग्रेजुएट होने के बाद मैं इँग्लेंड चला गया, और वहाँ से बैरिस्टर होकर लौटा। अब वकालत करता हूँ, और वकालत चलती भी है।"

"यह तो बड़ी ख़ुशी की बात है!"

"ग्यारह साल पहले मैंने तुम्हारे इच्छानुसार तुमसे कभी न मिलने का प्रण किया था। अपने प्रण का पालन तो मैं करता रहा, लेकिन तुम्हारी खोज-ख़बर रक्खे बिना मुझसे नहीं रहा जाता था। कल तक मैं अपने प्रण पर डटा था, और मेरा इरादा था कि सदैव डटा रहूँगा। लेकिन कल जब सिनेमा-संसार से तुम्हारे अलग होने की ख़बर मैंने समाचार-पत्रों में पढ़ी तब एक बार तुमसे फिर भेंट करने की प्रबल इच्छा मेरे हृदय में उत्पन्न हो गई। मैं लाचार हो गया। इसलिए इस समय हाज़िर हुआ हूँ।"

"तुम्हारे आने से मैं बहुत ख़ुश हूँ। उस समय एक बेवक़ूफ़ लड़की थी, लेकिन आज मैं अपने को अक़्लमंद औरत समझती हूँ!"

"सरला! आज भी मैं तुम्हें उसी तरह प्यार करता हूँ, जैसे ग्यारह साल पहले करता था!"

"मैं भी विश्वास करती हूँ कि अपने हृदय के एकान्त में तुम्हें सदा प्यार करती रही हूँ!"

वह सुन्दर सुयोग जिसकी प्रतीक्षा में वह आज तक कौमार्य-व्रत धारण किये बैठा था, अंत में इस तरह आ ही गया। उसने उसे कर-पाश में बाँध लिया। उस समय उन दोनों के प्रताड़ित हृदय, एक होकर, एक ही रस में डूब गये।

गीत

लेखक, श्रीयुत 'ललाम'

गुणी, तुम कैसे गाते गान?
मैं अवाक्, केवल सुनता हूँ तेरी मीठी तान।
सुर-प्रकाश तव, भुवन भुवन में,
सुर-समीर तव, व्याप्त गगन में,
सुर-सुरधुनि, पाषाण तोड़ती—
व्याकुल वेग, वही त्रिभुवन में।
अभिलाषा है, मैं भी छेड़ूँ वही अनोखी तान।

गुणी! तुम जैसे गाते गान।
वह स्वर अपने कंठ न पाता,
कुछ कहना है, कहा न जाता,
हार मान कर चुप हो जाता,
केवल हृदय अश्रु टपकाता।
चारों ओर हमारे तुमने ताना गान-वितान।
गुणी, तुम कैसे गाते गान?

—(गीताञ्जलि के एक गीत का अनुवाद)

हिन्दू-स्त्रियों के अपहरण के मूल-कारण

लेखक, श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०

जुलाई की 'सरस्वती' में एक सज्जन ने हिन्दू-स्त्रियों के अपहरण पर कुछ प्रकाश डाला है। उनके बतलाये हुए कारणों में बहुत कुछ सत्यांश है। परन्तु उन कारणों के सिवा और भी कारण हैं। जब तक वे कारण न दूर किये जायँगे, इस सामाजिक व्याधि के दूर होने की आशा नहीं है।

नारी-अपहरण का स्त्री-मनोविज्ञान से गहरा सम्बन्ध है। इस शास्त्र की अवहेलना करके हम इस रोग से मुक्त नहीं हो सकते। प्रकृति ने स्त्रियों और पुरुषों में काम-प्रवृत्ति इतनी प्रबल रक्खी है कि कड़े धार्मिक अनुशासनों और कठोर राजनैतिक दण्डों के होते हुए भी जब जब उनको आपस में अमर्यादित रूप से मिलने-जुलने का अवसर मिलेगा, वे अवश्य ही सभी मर्यादाओं और बाधाओं को ठुकराकर मनोविकारों का शिकार हो जायँगे। यह किसी एक देश, किसी एक जाति या किसी एक युग की बात नहीं है। सभी देशों, सभी जातियों और सभी युगों में ऐसा होता रहा है, आज होता है और आगे भी होता रहेगा। मानव-प्रकृति ही ऐसी है। इँग्लेंड बड़ा सुसभ्य और शक्ति-शाली देश है। पर क्या वहाँ स्त्रियों का अपहरण नहीं होता? विलायत के किसी दैनिक पत्र को उठाकर देखिए। आपको पता लगेगा कि ख़ुद लंदन में ऐसे अनेक अड्डे बने हुए हैं, जहाँ गुंडे भोली-भाली लड़कियों को उड़ाकर बंद कर देते हैं और उनसे व्यभिचार कराते हैं। मुसलमानों में अपहरण की घटनायें हिन्दुओं से कुछ कम नहीं होतीं। मनुष्य-प्रकृति सर्वत्र एक-सी है।

परन्तु वर्तमान हिन्दू-समाज का मुस्लिम और क्रिश्चियन-समाज से अन्तर है। उन समाजों में नारी-अपहरण से थोड़ी-सी सामाजिक अशान्ति के सिवा और कोई बड़ी हानि नहीं होती। परन्तु हिन्दू-नारी का अपहरण हिन्दू-समाज की घोर हानि ही नहीं, वरन एक प्रकार से उसकी मृत्यु है। मुसलमान स्त्री अपहृत होने पर भी मुसलमान ही रहती है, वह हिन्दू बनकर हिन्दू-धर्म में खप नहीं सकती। भारत में हिन्दू और मुसलमान इकट्ठे रहते हैं। इसलिए उनका एक दूसरे की स्त्रियों को भगाना एक बहुत साधारण बात है। कड़े सामाजिक बंधन, धार्मिक भय, और राजदण्ड का शासन इसको किसी बड़ी हद तक रोक नहीं सकता। भारतीय अमरीका और योरप से गोरी स्त्रियाँ लाते हैं। अमरीका में नीग्रो लोगों से इतनी घृणा होते हुए भी वहाँ गोरा और काला रक्त मिल ही जाता है। तिलक-धारी ब्राह्मणों का मुसलमानिनों और भङ्गिनों से सम्बन्ध हो ही जाता है। मनुष्य की प्रवृत्ति ही ऐसी है। काम का वेग सभी बन्धनों को तोड़ डालता है। कहने का आशय यह है कि यह दुष्कृत्य पूर्णरूप से बंद नहीं हो सकता। हाँ, इसका मर्यादा से अधिक बढ़ जाना भयावह है, जिस प्रकार दिन में दो बार शौच होना तो बुरा नहीं, परन्तु अतिसार लग जाना एक भारी रोग है। हिन्दुओं के लिए इस ओर ध्यान देना अत्यावश्यक है, नहीं तो उनकी राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक मृत्यु अवश्यम्भावी है। तो फिर करना क्या चाहिए?

कुछ लोगों की धारणा है कि हिन्दू-स्त्री की आर्थिक पराधीनता ही इन अपहरणों का कारण है। परन्तु अनुभव इस बात का समर्थन नहीं करता। स्त्रियों को स्वाधीन बनाने के लिए आप क्या करेंगे? यही न, आप उनको अध्यापिका बना देंगे, डाक्टरनी बना देंगे, नर्स बना देंगे या क्लार्क बना देंगे। परन्तु मैंने ७०) मासिक पानेवाली तीन बच्चों की माता एक हिन्दू-विधवा को एक ३०) मासिक पानेवाले विवाहित मुसलमान हेड कान्स्टेबल के साथ भागते देखा है। यह युवती लाहौर के एचीसन-स्त्री-अस्पताल में नर्स का काम सीखती थी। उन दिनों उससे विवाह करने को कहा गया। उसने सतीत्व का ढोंग रचकर विवाह करने से इनकार कर दिया। यहाँ से पास करके वह क्वेटा के निकट चमन में नौकर हो गई। वहाँ एक मुसलमान हेड कान्स्टेबल ने उसे अपने यहाँ बच्चा जनाने के लिए बुलाया और गाँठ-साँठ कर ली। वह उसकी स्त्री बनने के लिए तैयार हो गई। जब उस स्त्री के संबंधियों को पता लगा तब वे बहुत घबराये। उसे समझा-बुझाकर बड़ी मुश्किल से वे लाहौर ले आये। हमारे जात-पाँत-तोड़क-मंडल से कहा गया कि इसके लिए कोई वर दो। परन्तु शर्त यह रक्खी

गई कि कोई डाक्टर हो और वह दो-तीन सौ रुपया पाता हो। जब हमने वर पेश किया तब वह स्त्री बड़ी लज्जा दिखाती हुई बोली—अब तो मुझे विवाह ही नहीं करना है; वह मुझसे भूल हो गई थी। यह देखकर उसके संबंधी शान्त हो गये। परन्तु इसके कुछ ही दिनों के बाद वह चुपके से भागकर उसी मुसलमान के पास चली गई। जो तीन-सौ रुपये मासिक से कम कमानेवाले हिन्दू पुरुष के साथ विवाह करने को तैयार नहीं थी वह ३०) मासिक पानेवाले कांस्टेबल की दूसरी स्त्री या रखैल बनकर रहने के लिए सहर्ष चली गई!

कुछ वर्ष हुए, लाहौर में एक डाक्टर की रूपवती विधवा, लाखों रुपये की स्वामिनी होकर भी, पड़ोस में रहनेवाले एक मुसलमान युवक के साथ भाग गई थी और हिन्दुओं के पूरा प्रयत्न करने पर भी वापस नहीं आई।

थोड़े दिन हुए, मुझे एक बीस वर्ष की युवती से मिलने का मौका मिला। वह पंजाब के एक इंजीनियर की विधवा थी और एक मुसलमान के साथ भाग आई थी। वह विधवा बड़ी मुश्किल से उसके हाथ से निकाली गई थी। वास्तव में उस मुसलमान युवक ने इसे एक वर्ष रखकर छोड़ दिया था और एक दूसरी मुसलमान स्त्री से विवाह कर लिया था। मेरे पूछने पर युवती ने कहा—मेरे रहने का कोई प्रबन्ध कर दीजिए और कम से कम मुझे ३०) मासिक दीजिए। यदि आप मेरा प्रबन्ध नहीं कर देंगे तो मैं फिर उन्हीं के पास 'माडल टाऊन' में चली जाऊँगी। वे बड़े कृपालु हैं। मैं तो चाहती हूँ कि वे मुझे चाहे ४) मासिक ही देते रहें, केवल मेरी पीठ पर हाथ रक्खे रहें। बस, मैं उन्हीं की दासी बनकर रहना चाहती हूँ। क्या हुआ, जो उन्होंने दूसरा विवाह कर लिया; उसे भी रक्खें, मुझे भी रक्खें। मैं उसकी ऐसी बातें सुनकर दंग रह गया। मैंने कहा—इससे तो तुम ३०) मासिक माँगती हो, परन्तु उससे ४) मासिक लेकर ही सन्तुष्ट होने को तैयार हो! वह बोली—मैं तो उनके पास से आना ही नहीं चाहती थी। उन्होंने मुझे एक अलग मकान भी ले दिया था। परन्तु मालूम नहीं, अब उनके मन में क्या समा गया, जो उन्होंने मेरे पास आना छोड़ दिया।

बात वास्तव में यह है कि स्त्री और पुरुष की प्रकृति में बड़ा भारी अन्तर है। स्त्री में लज्जा और संयम पुरुष की अपेक्षा बहुत अधिक है। उसे प्रेम-पाश में फँसाकर गिराने के लिए पुरुष को बहुत यत्न करना पड़ता है। परन्तु जब एक बार स्त्री में गिरावट आ जाती है तब फिर वह अपने को सँभाल नहीं सकती। वह आँखें बन्द करके वासना की आग में कूद पड़ती है और जिस पुरुष के संसर्ग में वह आ जाती है उसे फिर वह आसानी से नहीं छोड़ सकती। उसके जूते खाती हुई भी वह उसी के साथ रहती है। मैंने अँगरेज़ स्त्रियों को खानसामों और बहरों के साथ भागकर उनके घरों में गोबर पाथने, रोटी बनाने और उनके बर्तन मलते देखा है। जालन्धर में मैंने एक हिन्दू कुँजड़े को देखा। वह किसी गोरे सार्जेंट की स्त्री को भगा लाया था। वह घूँघट निकालती थी, उसकी रोटी बनाती थी और मार भी खाती थी। कोई दो बरस हुए, मेरे एक सिक्ख अछूत मित्र कलकत्ता से उन्नीस वर्ष की एक अति रूपवती अँगरेज़ कुमारी भगा लाये थे। कलकत्ता में अँगरेज़ों ने उनको दण्ड दिलाने की बहुत चेष्टा की, परन्तु उस कुमारी ने कोर्ट में साफ़ कह दिया कि मैं स्वेच्छा से उससे विवाह करना और उसके साथ रहना चाहती हूँ। इस पर उन लोगों को चुप रह जाना पड़ा। अब वह बड़े ही साधारण ढंग से रहती है, पंजाबी बोलती है और देशी खाना खाती है। उक्त सरदार साहब में न कोई रूप है, न यौवन है और न कोई विशेष धन ही। फिर भी गोरी बीबी उनके सिरों पर मुग्ध है, हालाँकि पहले की भी उनकी एक बीबी मौजूद है, और यह बात उनकी नई गोरी बीबी भी जानती है।

इसी प्रकार एक तिवारी जी हैं। साधारण हिन्दी के सिवा और कुछ पढ़े-लिखे नहीं, कमाते भी कुछ नहीं। पर उनकी स्त्री एक अँगरेज़ महिला है। वह नौकरी करके पैसा कमाती है। आप खाती है, पति को खिलाती है, रोटी बनाती है, बर्तन माँजती है, और सास-देवर की भी सहायता करती है। सुना है, इस अँगरेज़ महिला की माता बहुत धनाढ्य है। वह चाहती है कि मेरी बेटी हिन्दू पति को छोड़कर मेरे पास रहे, मैं उसे अपनी जायदाद की अधिकारिणी बना दूँगी। परन्तु 'तिवारिन बीबी' रूखी-सूखी खाकर तिवारी जी के साथ ही रहना पसंद करती है।

मुसलमानों ने नारी-प्रकृति को खूब समझा और

उसका उपयोग भी किया है। हिन्दुओं में गुण्डा आदि के मनुष्यों के लिए कोई स्थान नहीं। सुसभ्य, सुशिक्षित और संभ्रान्त व्यक्ति दूसरों की बहू-बेटियों को उड़ाना तो दूर, उन पर कुदृष्टि डालना भी बुरा समझता है। मुसलमानों में हिन्दू-स्त्रियों का अपहरण करनेवाले प्रायः कुँजड़े, बूचड़, दरबार, लोहार, बढ़ई आदि श्रमजीवी और शिल्पी लोग ही होते हैं। सेठ और [illegible] मुसलमान भी ऐसा काम करने से झिझकते हैं। परन्तु हिन्दुओं में शिल्पी और श्रमजीवी शूद्र और नीच समझकर [illegible] और [illegible] जाते हैं। इसलिए यह वर्ग हिन्दुओं [illegible] यह प्रायः सारे का सारा मुसलमान हो [illegible] है। इसी [illegible] मुसलमान हिन्दू-स्त्रियों पर हाथ डालने का साहस करते हैं। बस, वे इनके पंजे में फँस जाती हैं और फिर निकल नहीं सकतीं। कहावत भी है—[illegible] जिसके अधिकार में आ जाय उसी की हो जाती है [illegible] इसके अतिरिक्त कोई पतिता स्त्री अपनी भूल का प्रायश्चित्त [illegible] करना चाहे तो हिन्दू-समाज उसे दुबारा ग्रहण करने के लिए तैयार नहीं होता और आजीवन उस पर कलंक का टीका लगा ही रहता है। इसलिए कोई भी स्त्री एक बार मुसलमान हो जाने पर दुबारा हिन्दू होने की इच्छा नहीं करती, चाहे उसे वहाँ कितना ही कष्ट क्यों न हो। इसके विपरीत मुसलमानों में वही पतिता [illegible] पवित्र होकर उनमें खप जाती है।

गुजरात में एक कहावत है—'ब्राह्मणी रँडि, तुर्क नो घर माँडि।' अर्थात् जब कोई ब्राह्मणी विधवा होती है तब वह किसी दूसरी जाति के हिन्दू के साथ विवाह न करके सीधी मुसलमान का ही घर बसाती है, क्योंकि वह जानती है कि हिन्दुओं में रहते हुए पुनर्विवाह या जात-पाँत-तोड़क विवाह करने के कारण उस पर सदा उँगली उठती रहेगी। मुसलमान हो जाने पर एक बार में ही सारा दूषण समाप्त हो जायगा।

मनु आदि ने यह जो लिखा है कि बचपन में पिता, जवानी में पति और बुढ़ापे में पुत्र स्त्री की रक्षा करें, स्त्री अरक्षित कभी न रहे, यह स्त्री-जाति पर कोई लाञ्छन नहीं है; वरन उसकी प्रकृति का गम्भीर अध्ययन करके निकाला हुआ एक तथ्य है। इसकी अवहेलना करने से स्त्री और पुरुष दोनों जातियों का अपकार होता है।

मनु ने लिखा है—

नैता रूपं परीक्षन्ते नासां वयसि संस्थितिः।
सुरूपं वा विरूपं वा पुमानित्येव भुञ्जते॥
पौंश्चल्याच्चलचित्ताच्च नैस्नेह्याच्च स्वभावतः।
रक्षिता यत्नतोऽपीह भर्तृष्वेता विकुर्वते॥
[illegible] प्रजापतिनिसर्गजम्।
परमं यत्नमातिष्ठेत् पुरुषो रक्षणं प्रति॥

अर्थात् स्त्रियाँ न पुरुष की सुन्दरता को परख न उसकी आयु को देखती हैं, चाहे सुन्दर हो या कुरूप, पुरुष [illegible] है। [illegible] ने स्त्रियों का [illegible] इसलिए [illegible] यत्न के साथ [illegible] करना [illegible]

स्त्रियों की [illegible] चापलूसी [illegible] वाले, [illegible] में स्त्री और पुरुष के [illegible] और [illegible] हुए भी अपने को [illegible] में [illegible] वाले [illegible] सम्मति के लिए मनु उसके साथ [illegible] शायद मुझे [illegible] कहें, अनुभव बताता है कि मनु की बात सत्य है। जो भी इसकी अवहेलना करता है उसे पीछे से रोना ही पड़ता [illegible]

पंजाब में एक मुसलमान नेता हैं। उनकी एक आई० सी० [illegible] से मित्रता थी। [illegible] मुसलमान [illegible] अपनी बीबी [illegible] को पर्दे में [illegible] रखते थे, पर [illegible] महाशय को [illegible] 'बलायती' [illegible] उनके मुसलमान मित्र का आतिथ्य सत्कार किया करती थी। परिणाम [illegible] हुआ? नेता साहब उस हिन्दू स्त्री को ले भागे। [illegible] उन्होंने दिखलाने के लिए तो उसका 'निकाह' [illegible] साहिब के साथ कर दिया, पर वास्तव में रक्खा [illegible] पास ही। आई० सी० एस० महाशय रोते रह गये।

जहाँ जहाँ भी स्त्रियों की स्वतंत्रता और पुरुष स्त्री की समानता के नाम पर ऐसी मूर्खता की गई है पश्चात्ताप के आँसू गिराने के सिवा और कुछ भी [illegible] नहीं हुआ। मेरे इस्माईलपुरी के एक हिन्दू [illegible] ने पहले तो अपनी स्त्री और पुत्री को एक मुसलमान [illegible] के घर आने जाने की छुट्टी दे दी, फिर जब वह लड़[illegible] अफ़सर से चिपट गई तब वे रो-रोकर हाय हाय करने लगे। अब क्या हो सकता था? लड़की ने खुद ही आने से [illegible] कर दिया। लड़की अशिक्षित नहीं, अच्छी पढ़ी-लिखी [illegible]

इसमें संदेह नहीं कि अनमेल विवाह, विधवा-विवाह का निषेध, सासों का बहुओं के साथ दुर्व्यवहार और पतियों का पत्नियों को अपने पिता के यहाँ से रुपये लाने के लिए तंग करना आदि बहुत-सी कुरीतियों से दुःखी होकर भी कई स्त्रियाँ घर से भाग जाती हैं, और इन कुरीतियों को जितनी जल्दी हो सके रोक-थाम होनी चाहिए। परन्तु ये बुराइयाँ कुछ ऐसी नहीं जो केवल हिन्दू-समाज में ही हों। मुसलमानों में ये दुर्गुण हिन्दुओं से कम नहीं हैं। मुसलमानों में भी सैयद और राजपूत आदि कई जातियाँ विधवाओं का पुनर्विवाह नहीं करतीं। परन्तु हिन्दुओं में एक और बड़ी ख़राबी फैल रही है। हमारे कुछ पत्र और पत्रिकायें हिन्दू-स्त्रियों के सामने हिन्दू-समाज का ऐसा घिनौना चित्र खींचती हैं, मानो सारी दुनिया की क्रूरता, नृशंसता, अन्याय, व्यभिचार सब हिन्दुओं में ही पुंजीभूत हो रहा है, और हिन्दू-स्त्रियों पर बड़ा भारी अत्याचार हो रहा है। इससे हमारी अनुभवहीन, कच्ची अक्ल की भावुक लड़कियों में व्यर्थ ही हिन्दू पुरुषों के प्रति घृणा उत्पन्न होती है और वे मुस्लिम आदि दूसरे समाजों को जिनका उन्हें ज्ञान नहीं होता, अच्छा समझने लग जाती हैं और ज़रा-सा भी बहाना मिलने पर भाग जाती हैं, पीछे से चाहे अपनी भूल का अनुभव होने पर उन्हें रोना ही पड़े। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि इस गये-बीते समय में भी हिन्दू के समान स्त्री का सम्मान करनेवाला, पत्नीभक्त और प्रेमी पति दूसरा कोई नहीं। हिन्दू पत्नी अब भी अपने घर की रानी है। हिन्दुओं में बहुविवाह की मनाही न होते हुए भी रीति एक ही विवाह की है। हज़ार में यदि कोई एकआध दूसरा विवाह करता भी है तो वह बहुत ही लाचारी की हालत में। परन्तु मुसलमानों में यह आम रवाज है। हाल में उनकी एक पत्रिका में एक शिकायत छपी थी कि आज-कल मुसलमान ग़ैरमुसलमान बनने लगे हैं, क्योंकि वे अपनी लड़की का सम्बन्ध करने के पूर्व पूछने लगे हैं कि पुरुष के पहली कोई स्त्री तो मौजूद नहीं। मुसलमान स्त्रियाँ अपने पतियों से इतनी तङ्ग हैं कि यदि हिन्दू पुरुष उनको ग्रहण करने को तैयार हों तो वे सहर्ष उनके साथ विवाह करने के लिए राज़ी हो जायँ। वे अपनी हिन्दू बहनों की स्वतंत्रता को ईर्ष्या की दृष्टि से देखती हैं। पर बेचारी करें क्या, विवश हैं। पिछले दिनों पंजाब की मुसलमान स्त्रियों में एक लहर-सी चल गई थी। वे ईसाई होकर 'तलाक़' प्राप्त कर लेती थीं और अपने अत्याचारी मुस्लिम पति से छुटकारा पाकर किसी दूसरे से विवाह कर लेती थीं। इस पर मुस्लिम-समाज बहुत चिन्तित हो उठा था। अब तक भी मुसलमान देवियों को अपने छुटकारे के लिए इसी उपाय का अवलम्बन करना पड़ता है।

परन्तु मुसलमान लोग अपनी स्त्री-पत्रिकाओं में मुसलमान पति की कभी निन्दा नहीं करते। कुछ वर्ष हुए 'चाँद' में मुंशी ज़हूरबख़्श ने 'समाज का अग्निकुण्ड' शीर्षक से कई कहानियाँ लिखकर हिन्दू-पतियों की निन्दा और मुसलमान पति की बड़ाई करना आरम्भ किया था। उनके निन्दात्मक लेखों को तो हिन्दू-स्त्रियाँ पढ़ सकती थीं। परन्तु यदि कोई हिन्दू लेखक मुसलमान पतियों के विरुद्ध कुछ लिखे तो उसका लेख मुसलमान स्त्रियों के हाथ तक नहीं पहुँच सकता। मैंने ज़हूरबख़्श जी की कहानियों के सम्बन्ध में 'चाँद' में लिखा। इस पर वे तिलमिला उठे और बोले कि हम तो हिन्दी की सेवा कर रहे हैं, उसका पुरस्कार हमें यह मिल रहा है: अब हम हिन्दी-सेवा ही नहीं करेंगे। इसके अतिरिक्त उन्होंने मेरे सम्बन्ध में लिखा कि यह नगण्य जाति का नगण्य जीव इस्लाम का क्या बिगाड़ सकता है। मैंने उसका उत्तर लिखकर भेजा कि यदि आप हिन्दी-सेवा का मूल्य हिन्दू-स्त्रियों के अपहरण के रूप में लेना चाहते हैं तो ऐसी सेवा को रहने दीजिए: आप एक मुसलमान होकर हिन्दी लिखने लगे तो क्या बड़ा उपकार हो गया: पंजाब में सहस्रों हिन्दू उर्दू की सेवा कर रहे हैं। परन्तु खेद है कि 'चाँद' के हिन्दू सम्पादक ने मेरा उत्तर न छापा, क्योंकि हिन्दी-जगत् को वे एक मुसलमान की सेवा से वंचित नहीं करना चाहते थे! मुझे मुसलमानों से कोई गिला नहीं, मुझे तो उन हिन्दुओं से शिकायत है जो एक ओर हिन्दू-स्त्रियों के बड़े हितचिन्तक बनते हैं और दूसरी ओर मुसलमानों की कहानियों आदि के द्वारा उनमें इस्लाम का प्रोपेगण्डा करने में सहायता देते हैं।

मैं अपने अनुभव से कहता हूँ कि जितनी हिन्दू-स्त्रियाँ भागकर मुसलमानों में जाती हैं उनमें से अधिकांश पीछे से बहुत पछताती हैं। परन्तु रोने-पीटने, चीखने-चिल्लाने

के सिवा फिर वे अपनी मुक्ति का कोई उपाय नहीं कर सकतीं। वे मुर्ग़ियों की तरह दरबे में बंद कर दी जाती हैं और वे पर्दे के अन्दर क़ैद हो जाने से बाहर के संसार को अपना दुख-दर्द नहीं सुना सकतीं और भीतर ही भीतर घुल घुलकर मर जाती हैं।

कुछ वर्ष हुए, मैं लाहौर के चंगड़ मुहल्ला में रहता था। मेरे साथ एक मुसलमान फोटोग्राफ़र ने भी आकर एक मकान किराये पर लिया। एक दिन मैं सो रहा था कि आधी रात के समय मुझे अत्यन्त हृदयद्रावक स्वर में किसी स्त्री के रोने की ध्वनि सुनाई दी। मैं चौंककर उठ पड़ा। वह बेचारी कोई दो घंटे तक हाहाकार करती रही। उसे निर्दयतापूर्वक पीटने का शब्द मुझे स्पष्ट सुनाई दे रहा था। सबेरे उठकर मैंने पता लिया तब मालूम हुआ कि उस फोटोग्राफ़र की दो स्त्रियाँ हैं। एक तो जन्म की मुसलमान है और दूसरी हिन्दू से मुसलमान हुई है, जो पहले एक बूढ़े हिन्दू दूकानदार की थी। वह स्त्री दो-चार हज़ार रुपये का माल लेकर उसके घर भाग आई थी। मुक़द्दमा हुआ था। अदालत ने हिन्दू पति को उसकी स्त्री दिला दी थी, परन्तु उस समय उस पर भूत सवार था। वह फिर भागकर मुसलमान के पास आ गई। पहले दो-चार महीने तो उस लाये हुए रुपये पर ख़ूब गुल-छर्रे उड़ते रहे। परन्तु अब वह रुपया चुक गया है, घर में चूहे दौड़ रहे हैं। इश्क़ का भूत भी अब उतर चुका है। इसलिए रोज़ जूता-पैज़ार होता है। अब यह स्त्री कहीं जा भी नहीं सकती। एक तो वह इसे बाहर पाँव रखने नहीं देता, दूसरे इसे हिन्दू ग्रहण करने को तैयार नहीं। बस, बेचारी नरक में पड़ी सड़ रही है।

हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों में अनमेल विवाहों की संख्या बहुत अधिक है। क़ब्र में पैर लटकाये हुए बुड्ढे भी नवयुवती कुमारिकाओं, वरन बालिकाओं तक से विवाह कर लेते हैं। उनका समाज इसमें कोई पाप नहीं देखता। मुझे एक हिन्दू नर्स ने बताया कि हमारे साथ दो-तीन मुसलमान युवतियाँ भी नर्स का काम सीखती थीं। वे रोया करती थीं कि उनके पति उनके साथ बहुत दुर्व्यवहार करते हैं। परन्तु उनके पास अपने बचाव का कोई उपाय नहीं। इसी लिए वे नर्स बनने यहाँ चली आई हैं।

इसमें तनिक भी झूठ नहीं है कि जिस प्रकार मुस्लिम स्त्री की रक्षा के लिए मुसलमान लोग पल भर में सहस्रों की संख्या में एकत्र हो जाते हैं और अदालत और पुलिस की भी परवा न करके उसे छीन ले जाते हैं, वैसे हिन्दू बिलकुल नहीं करते। ऐसे अवसरों पर हिन्दू युवक दुम दबाकर भाग जाते हैं या हिन्दू-स्त्री को संकट में देखकर भी पास खड़े हँसते रहते हैं। वास्तव में देखा जाय तो इसमें युवकों का उतना दोष नहीं। उनकी कायरता और दुर्बलता का मूल कारण हिन्दुओं की वर्ण-व्यवस्था है। एक मुसलमान अपने को एक बड़ी भारी जाति का एक अंग अनुभव करता है। वह समझता है कि सात करोड़ मुसलमान उसके भाई हैं, विपत्ति में वे उसकी सहायता करेंगे। इसलिए वह अपने को एक नहीं, सात करोड़ समझता है। इसके विपरीत हिन्दू अपने को अकेला समझता है। उसने कभी २२ करोड़ को अपना भाई अनुभव किया ही नहीं। वह तो अपने को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, चमार या कहार समझता है, हिन्दू नहीं। हिन्दू का भाई-चारा केवल उसकी अपनी ही छोटी-सी बिरादरी है। उसके सिवा वह किसी दूसरे हिन्दू के यहाँ न खा-पी सकता है और न ब्याह-शादी कर सकता है। इसलिए लड़ाई-झगड़े के मौक़े पर वह अपने को अकेला और कमज़ोर पाता है, और जान बचाकर भाग जाता है। हमारे नई रोशनी के जो बाबू लोग हिन्दू-स्त्रियों को उलाहना दिया करते हैं कि वे अँगरेज़ स्त्रियों की तरह स्वतन्त्रतापूर्वक अकेली क्यों नहीं घूमतीं, डरती क्यों हैं, उन्हें गुण्डों का मुक़ाबिला करना चाहिए, वे यह नहीं सोचते कि अँगरेज़ स्त्रियों की निडरता उनके व्यक्तिगत शारीरिक बल में नहीं, वरन उनकी जाति के सामूहिक बल में है, जिसको वर्ण-व्यवस्था ने हिन्दुओं में से बिलकुल नष्ट कर दिया है। यदि नारी के पीछे उसकी रक्षा करनेवाला समाज का सामूहिक बल न हो तो वह अकेली कुछ भी नहीं कर सकती।

हिन्दुओं में अनमेल विवाहों का कारण भी जात-पाँत का ही बंधन है, क्योंकि हिन्दू को अपनी तंग बिरादरी के भीतर ही विवाह करना पड़ता है, इसलिए अनमेल विवाह और दहेज़ की कुरीति रुक नहीं सकती। यदि वर्ण-भेद की विघातक संस्था न हो तो विधवा-विवाह में भी

बड़ी सहूलियत हो जाय और हिन्दू-विधवाओं को विवाह के लिए मुसलमानों में न जाना पड़े। परन्तु हिन्दुओं की तो अवस्था ही विचित्र है। अछूतों ने कहा कि यदि तुम वर्ण-व्यवस्था को मिटाकर हमें समान सामाजिक अधिकार दो तो हम हिन्दू रह सकते हैं। परन्तु हमारे नेताओं ने उत्तर दिया कि हम तो वर्ण-व्यवस्था छोड़ेंगे नहीं, तुम सिक्ख बन जाओ, उनमें जात-पाँत नहीं!

कुछ वर्ष हुए, एक हिन्दू डाक्टर की स्त्री और साली का एक मुसलमान युवक से अनुचित सम्बन्ध होगया। पहले वे देहरादून में रहती थीं, फिर वहाँ से ब्रह्मदेश चली गईं। ब्रह्मदेश में वह मुस्लिम युवक भी साथ पहुँचा। साली अविवाहित थी। उसे गर्भ रह गया और बच्चा पैदा हो गया। वह उस मुसलमान से खुल्लम खुल्ला लिपट गई। बड़ी मुश्किल से उससे अलग कर वह लाहौर लाई गई। हमारे जात-पाँत-तोड़क-मण्डल को उसके लिए वर ढूँढ़ देने को कहा गया। परन्तु साथ शर्त लगा दी गई कि वह लड़की की जाति का—खत्री—हो। हमने पूछा, यह क्यों? उत्तर मिला कि लड़की ऐसा ही चाहती है। हमने कहा, यदि खत्री लड़की एक जाट से विवाह कर ले तो क्या वह मुसलमान से विवाह कर लेने से भी बुरा है? उत्तर मिला, उसे हिन्दुओं में रहते हुए जात-पाँत तोड़ने से सदा उँगली उठते रहने का भय है।

इसलिए स्पष्ट है कि हिन्दू-स्त्रियों का अपहरण बंद करने के लिए हिन्दुओं की जाति-पाँति का विध्वंस करके उनकी मनोवृत्ति को बदलने की ज़रूरत है। जब इनमें बंधुभाव आ जायगा तब कोई भी दूसरा इनकी स्त्रियों की ओर आँख उठाकर न देख सकेगा और साथ ही ये विधर्मियों को भी अपने में खपाने लगेंगे।

कविं पुराणम्

श्रीयुत शिलीमुख

आओ, मेरे कवि, मैं तुम्हारी पूजा करूँ। मेरे पास धूप, दीप, फूल, पुष्प आदि सब प्रस्तुत हैं।

मैं स्वच्छ हूँ, मैं स्निग्ध हूँ, अनुरक्त हूँ, अभिषिक्त हूँ। आओ, तुम्हारा अभिषेक करूँ, अनुराग का तिलक लगाऊँ, स्नेह का दीपक जलाऊँ और यश का पुष्प चढ़ाऊँ।

मैं तुम्हारे साथ हँसना चाहती हूँ, मैं तुमसे बोलना चाहती हूँ। तुम एक बार तो देखकर मुस्कराये थे, फिर गंभीर हो गये। गंभीर क्यों हो गये? आओ, मेरे साथ हँस-बोलकर खेलो न।

तुम्हारे नेत्रों में चिन्ता है, समाधि है। तुम विमूढ़ हो, तुम विमुग्ध हो। क्या सोचते हो?

तुम विमूढ़ हो, तुम विमुग्ध हो। प्रेम से? या मुझसे घृणा करते हो? मैं ही तो तुम्हारी कविता हूँ।

और मैं निहोरे करती हूँ—मेरे पास आओ, मेरे पास बैठो, मुझसे हँसो, मुझसे बोलो, खेलो। मैं भी खेलूँ।

तुम्हारी इस तल्लीनता का अर्थ क्या समझूँ? तुम्हारे पलक इस बार कुछ हिले तो। तुम फिर मुस्कराये भी। तो क्या अभी तक मुझी को देख रहे थे? मुझी में मग्न थे? मैं कृतार्थ हुई।

तुम्हारे नेत्र कुछ चमक रहे हैं। उन्माद से? हँसी से? या उन्माद की हँसी से? तुम्हारे स्थिर होठ जैसे कुछ बोल रहे हों।

अपने होठों की यह बोली मुझे भी समझाओ ज़रा। यह तुम अपनी उँगली से क्या दिखा रहे हो?

हृदय को टटोलूँ अपने? हाँ, टटोला तो हृदय को। न जाने, कैसा-सा मालूम होता है। कुछ खुशी-सी लगती है। तो क्या तुम्हीं इस अभ्यन्तर में भी बैठते हो?

ओहो! अब तो तुम बहुत जल्दी-जल्दी बोल रहे हो। ज़रा धीरे धीरे, मेरे कवि—जिससे मैं सब कुछ समझ भी तो सकूँ।

मैं विमूढ़ हूँ, मैं विमुग्ध हूँ। कितना सारा दिखाई देने लगा एक-दम। अपने को देखूँ, या तुम्हें देखूँ—कुछ बतलाओ।

अरे! तुम बड़े खिलाड़ी निकले। खेल ही रहे थे तब से? और तुम कहते हो यह सब यथार्थ था!

यथार्थ था सचमुच! मैं समझ गई। कवि और कविता में भेद ही कहाँ है!

धारावाहिक उपन्यास

अज्ञात दिशा की ओर

मिसेज़ बोस एक परम सुन्दरी रमणी हैं। उनसे भी अधिक सौन्दर्य उनकी एकमात्र पुत्री रेखा में [illegible] था। अपने को हलासगञ्ज का ज़मींदार कहकर इन पर प्रभाव डालने के बाद अहीन्द्र ने अपने मित्र निर्मल का इनसे परिचय कराया और उसके सम्बन्ध में बतलाया कि ये कोचबिहार के प्रिंस हैं। इधर मिसेज़ बोस [illegible] परस्पर एक दूसरे की ओर विशेष रूप से आकर्षित हो गये, किन्तु अहीन्द्र रेखा पर आसक्त था। एक [illegible] कलकत्ता छोड़कर देहात में गङ्गा जी के तट पर एक बँगले में कुछ समय बिताने के लिए गये। वहाँ अवसर [illegible] एकान्त पाकर अहीन्द्र ने रेखा से प्रणय-निवेदन किया, किन्तु रेखा ने उसका प्रत्याख्यान कर दिया। बाद [illegible] में आया कि अहीन्द्र यदि इस प्रकार मेरे प्रेम में अधीर हो रहा है तो मैं उसके साथ विवाह करके क्यों [illegible] जीवन को सुखी बनाऊँ! परन्तु अहीन्द्र उसके साथ विवाह करने पर सहमत नहीं था, वह उसके साथ गुप्त [illegible] प्रेम का सम्बन्ध रखना चाहता था। इससे रेखा को बड़ी विरक्ति हुई। और इस वायु-मण्डल से उसे घृणा [illegible] अन्त में शान्ति-लाभ करने के विचार से वह घूमने के लिए निकली और एक निर्धन परिवार की सुखम[illegible] देखकर बहुत प्रसन्न हुई तो सुख-[illegible] की विचार-धारा से रेखा इतना अधिक प्रभावित हुई कि पहले [illegible] व्यक्तियों के संसर्ग से [illegible] और इन निर्धन व्यक्तियों के ही समान जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया। रेखा को सबसे अधिक [illegible] समय हुई, जब उसने अपनी मा को चौधरी के साथ एकान्त में बहुत ही [illegible] अवस्था में देखा। [illegible] उसने इस बात का सङ्कल्प किया कि मा को मैं इस नीच संसर्ग से अवश्य दूर [illegible]

अनुवादक, श्रीयुत ठाकुरदत्त मिश्र

ग्यारहवाँ परिच्छेद

रेखा ने सोचा, यही उसका जीवन है, उसकी मा एक वेश्या-मात्र है; उसके पिता के साथ उसकी मा का कभी विवाह नहीं हुआ। किन्तु बात केवल इतनी ही होती तो वह इस तरह की चिन्ता न करती। यदि वह देखती कि पिता की वह स्मृति निष्कपट भाव से हृदय में धारण किये हुए बैठी है! यह भी नहीं था। मा के विलास, बनाव-शृङ्गार और ठाट-बाट में ज़रा भी कमी नहीं है। अपनी भोगलिप्सा को चरितार्थ करने तथा अपने आपको खूब सजाकर मोहिनी-रूप धारण कर रखने में वह भरसक कुछ उठा नहीं रखती। क्या हाव-भाव और क्या वेश-भूषा, आज भी वह पुरुष-समाज में अपने आपको दूकान पर रक्खे हुए विक्रय की वस्तु के ही समान सजाकर घूमा करती है। इस प्रकार की निर्लज्जता तो अब असह्य हो उठी है। छिः! कल रात को एक [illegible] वह नीचे नहीं उतर पाई, किन्तु मा इन निर्ल[illegible] विलासी आदमियों के ही पीछे इस तरह दीवानी [illegible] उसकी ख़बर तक नहीं ली। और ये सब पुरुष! [illegible] भी यह समझ गये हैं कि हमारी लोने से मढ़ी हुई [illegible] के इशारे पर ही मा नाचती फिरेगी। केवल [illegible] नहीं, मा के सम्बन्ध में तो इन लोगों का यह [illegible] विश्वास है कि नारीत्व का जो कुछ भी कलङ्क है उसे [illegible] में लपेटकर इन लोगों की तृप्ति के लिए वह [illegible] समान उनके मुँह के पास अपने को रख देगी और [illegible] गर्व का ही अनुभव करेगी। इस अवस्था में इस तरह [illegible] अपमान उसे अच्छा भी लगता है!

रेखा मा के इस जीवन से मन ही मन अपने [illegible] की तुलना करने लगी। वह सोचने लगी कि मैं तो [illegible] मैं अभी तक कुछ पा नहीं सकी हूँ, मेरे जीवन की [illegible] पिपासा अभी तक वैसी की वैसी ही बनी है। [illegible] भी किसी के सामने इस तरह अपने आपको समर्पित

र सकती। परन्तु उसकी मा जो इस प्रकार लोगों के पीछे पीछे दौड़ती फिरती है, उसका स्मरण आते ही रेखा लज्जा के मारे मर जाती है। इधर उसकी मा इस प्रकार निःसंकोच भाव से बड़े शौक़ से पुरुषों की वासना की दासी हो रही है। इसी से वह इस प्रकार का विभव, इस प्रकार का ठाट-बाट बढ़ा सकी है। हाय रे! इसकी अपेक्षा तो सर्वथा निर्धन होकर गली गली भिक्षा माँगते फिरना कहीं अधिक अच्छा है, अधिक सुखकर है।

रेखा ने बायस्कोप में इसी तरह का एक चित्र देखा था। वह चित्र उसे स्मरण हो आया। चित्र का विवरण इस प्रकार था। एक विलासिनी मा थी। स्वच्छन्दतापूर्वक अपनी विलास-लिप्सा को चरितार्थ करने के लिए उसने घर छोड़ दिया। सन्तान को फेंककर पति के हृदय में उसने अग्नि जला दी और एक उच्छृङ्खल युवा के साथ वह वंश-मर्यादा को तिलाञ्जलि देकर चल गई। बाद को उस युवा ने उसे त्याग दिया। तब वह विलासिनी पाप के अत्यधिक गहरे पङ्क में निमग्न होने लगी। उसके उद्धार की कोई आशा ही नहीं रह गई। नीच पुरुषों के संसर्ग में रहते रहते वह इस प्रकार कलुषित बन बैठी कि उसे देखकर सभी लोग काँप उठते थे। वह तसवीर देखकर रेखा भी काँप उठी थी। उस समय उसे यह कहाँ मालूम था कि उसकी मा भी ठीक उसी के समान वैसे ही पाप के पङ्क में निमग्न है और इस पाप के ही निमित्त उसने इस तरह अपने सारे अङ्गों को सजा रक्खा है। इसी की बदौलत उसका यह ठाट-बाट, यह वस्त्र-आभूषण और यह धन-विभव है। फिर भी उस तसवीरवाली स्त्री का उद्धार एक दिन हुआ था। एक दिन एकाएक एक पशु के पैर का आघात लगने पर वह स्त्री बहुत ही पीड़ित हो उठी। उस पीड़ा की ही अवस्था में एक दिन स्वप्न में उसे अपने बहुत दिन के परित्यक्त पुत्र की याद आ गई। वैसे ही वह पागल हो उठी। वही धूलि-धूसर और मलिन मूर्ति लेकर वह पुत्र को देखने के लिए दौड़ पड़ी। परन्तु उस समय घर का द्वार बन्द था। लड़के ने भी उसे नहीं पहचाना। वह कितना करुण-मुहूर्त था! अन्त में वह स्त्री दासी होकर उस घर में काम करने लगी। वहाँ उसने इसी आशा से नौकरी की थी कि वह अपने लड़के को देख सकेगी। इस प्रकार स्वामी के घर में दासी का कार्य करके लड़के की सेवा करती हुई अपने जीवन की उस मलिनता को वह धोती रही। परन्तु यह सम्भव हुआ था केवल मनुष्य की कल्पना से रची हुई कहानी होने के ही कारण। यही न? परन्तु इस तरह की कहानी क्या जीवन में कभी सत्य हो सकती है? न सही। रेखा ने सोचा कि मैं तो इसे जीवन में घटित करूँगी ही। वह कल्पना के द्वारा अङ्कित किये हुए चित्र को अपने जीवन में प्रस्फुटित करके ही रहेगी। मा को वह घृणित संसर्ग से खींचकर दूर करेगी, पापमय जीवन से उसका उद्धार करेगी। रेखा ने मन ही मन यह निश्चय कर लिया कि मा को समझाऊँगी। नारी का जीवन सचमुच इतना हेय, इतनी अवहेलना की वस्तु नहीं है कि कोई भी पुरुष आकर इच्छानुसार उससे खेलने लगे, उसे तुच्छ बना दे, नारी जीवन को पद-दलित करके उसका प्राण-रस निकाल ले और उसका पान करके पुरुष केवल अपनी गर्हित तृष्णा निवृत्त करे। न! न!

आहा! वह यदि ऐसा कर सकी तब वह मनुष्य के निवास करने का यह स्थान, यह नीचतापूर्ण और बीभत्स संसर्ग, यह कोलाहल छोड़कर किसी सुदूर वन की गोद में आश्रय ग्रहण करेगी। वहाँ वह एक छोटी-सी झोपड़ी बनावेगी और उसी में स्वयं वह और उसकी दुर्भागिनी मा रहेगी। और कोई वहाँ न आ पावेगा। नदी के जल और वन के फल से दिन कट जायँगे। आह! ठीक मानो एक करुण नाटक के अन्तिम अङ्क के मधुर चित्र के समान ही विचित्र माधुर्य से उनका जीवन परिपूर्ण हो उठेगा। चिड़ियों के गान से स्निग्ध, शान्त तपोवन के समान घने और हरे-भरे पेड़-पौधों के बीच में आनन्द की सीमा-परिसीमा न रहेगी। रेखा प्राचीन काल की ऋषि-कन्याओं के समान पौधों को सींचा करेगी, उसकी मा तपस्या से अपने समस्त पाप तथा मन की सारी ग्लानि धोकर फेंक देगी।

यह रंगीन चित्र अङ्कित करने की मादकता से वह बिलकुल ही विह्वल हो उठी। बड़ी देर के बाद एकाएक नीचे मा का कण्ठ-स्वर सुनाई पड़ा। मा नौकरों को डाँट रही थी। रेखा को क्षोभ हुआ। वह सोचने लगी कि इतनी देर में भी मा को मेरी याद नहीं आई। यह कितने आश्चर्य की बात है? यह बात मन में आते ही उसका हृदय व्यग्र हो उठा। अब उससे न रहा गया। वह

सोचने लगी कि ये अतिथि शायद इस समय भी डटे हुए हैं। ये लोग कितने निर्लज्ज हैं!

किन्तु अधिक विलम्ब करना भी अब ठीक नहीं है। रेखा नीचे उतर आई। मा एक चायदानी लिये उसे ध्यानपूर्वक देख रही थी कि नौकरों ने उसे ठीक ठीक साफ़ किया है या नहीं। रेखा ने पुकारा—मा!

"क्या है रे रेखा? भला तूने यह कहाँ की भलमनसाहत सीख ली है कि दो भले आदमी घर में मेहमान हैं और तू अपने ही घमण्ड में चूर होकर एक कोने में इस तरह पड़ी है। उनकी तुझे ज़रा भी चिन्ता तक नहीं है। इसका मतलब क्या है? छिः!"

क्रोध के मारे रेखा का एड़ी से लेकर मस्तक तक जल उठा। उसने कहा—हाँ, मुझे जो अच्छा मालूम पड़ा वह मैंने किया। स्वयं मेरा भी तो सुख-दुःख है। उनकी बाँदी तो मैं हूँ नहीं कि वे जब कभी आवें, ठोकर खाकर गिर पड़ने पर भी मैं उनके लिए पाद्य-अर्घ्य लेकर दौड़ पड़ूँ।

मा अवाक् होकर लड़की की ओर देखती रह गई।

रेखा ने कहा—तुमसे मुझे कुछ बातें कहनी हैं। वे बातें बहुत ज़रूरी हैं। क्या तुम उन्हें सुन लोगी?

मा और भी आश्चर्य में आकर कन्या की ओर ताकने लगी। मा के मुँह से कोई बात नहीं निकली।

रेखा ने कहा—सुनने भर का अवसर तुम्हें है?

रेखा उत्तेजित हो उठी थी। आवेग से उसके दोनों होंठ काँप रहे थे। मा ने यह बात देख ली। देखकर उसने कहा—क्या तेरा शरीर अभी तक अच्छा नहीं हुआ है?

रेखा ने कहा—नहीं। उसका स्वर तीव्र था।

मा के हृदय में ममता जाग्रत हो आई। वह रेखा के पास आई और उसके मुँह तथा मस्तक पर हाथ फेरने लगी। अन्त में उसने कहा—बात क्या है? तेरे बाल इस तरह खुलकर बिखर तथा उलझ गये हैं। चेहरा भी न जाने कैसा हो गया है, न जाने कब से निद्रा नहीं आई!

रेखा ने कहा—सचमुच मुझे निद्रा नहीं आई है और न शीघ्र उसके आने की सम्भावना ही है—ख़ासकर जब तक इस घर में रहूँगी तब तक। इन लोगों के संसर्ग के कारण यहाँ की वायु ही ऐसी दूषित हो गई है।

बाधा देकर मा ने चिल्लाकर कहा—रेखा! क्रोध से मा का हृदय जल उठा।

रेखा ने कहा—क्रुद्ध हो रही हो क्या? कल रात को बग़ीचे में मैंने तुम्हें देखा था। देखने के विचार से नहीं देखा था—यों ही दृष्टि पड़ गई थी।

मा और भी क्रुद्ध हो उठी। इतना साहस कन्या का कि मा के मुँह पर इस तरह की बात कहे! मा ने कहा—रेखा, यह सब मैं नहीं पसन्द करती। जैसी तुम लड़की हो, वैसे लड़की की ही तरह रहो। तुम्हारे मुँह से इस तरह की बातें सुननी पड़ेंगी, यह मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। मैं मा हूँ—

रेखा ने कहा—यह मेरा दुर्भाग्य है। परन्तु करूँ क्या? ज़रा बतलाओ तो! मुझे भी तो इस तरह की बात मुँह से निकालनी पड़ती है—इतनी अधिक लज्जा की बात, इतने बड़े कलङ्क की बात। इसे मुँह से निकालने में कितना दुःख हुआ है, हृदय को कितनी अधिक वेदना हुई है, क्या तुम यह समझ सकोगी? यदि तुम स्वयं अपनी आँखों से कभी यह देख पातीं...तुम्हारी मा इस तरह का अपमान, इस तरह की निलज्जता अपने मस्तक पर लादे हुए है, नारीत्व को वह इस तरह पद-दलित कर रही है...

"रेखा!" मा गरज उठी।

निमेष भर में ही रेखा शान्त हो गई। उसने कहा—इन सब बातों के सम्बन्ध में यहाँ तुमसे वाद-विवाद करना मैं नहीं चाहती। ये बातें सुनकर नौकर-चाकर ही अपने मन में क्या समझेंगे? परन्तु एक बात है। तुम मुझे जिस तरह समझती हो, उस तरह की अबोध बालिका भी मैं नहीं हूँ। यह जो तुम इस तरह निर्लज्जता की धारा में कूद-कर आनन्द से तैर रही हो, क्या तुम समझती हो कि यह देखकर भी मैं इसमें बाधा न डालूँगी? सुनो, तुमसे मुझे बहुत आवश्यक बात कहनी है। वह जीवन-मरण की बात है। सुन लोगी तो अच्छा ही है, नहीं तो किसी दिन अनुताप करना पड़ेगा।

यह बात कहकर रेखा चलने को उद्यत हुई। मा को उसकी बात सुनने की प्रबल इच्छा हुई। वह कहने लगी—कौन-सी बात?

रेखा ने कहा—वह बात यहाँ कहने के लायक़ नहीं है। यदि तुम्हें सुनने की इच्छा हो तो मेरे कमरे में आओ। एकान्त में तुम्हें बतला सकूँगी।

रेखा चली गई। मा कुछ देर तक तो अवाक् होकर

खड़ी रही। बाद को एक लम्बी साँस लेकर वह बाहर की ओर बरामदे में चली गई।

ज़रा देर बाद आकर मा ने रेखा के कमरे में प्रवेश किया। उस समय रेखा बिस्तरे पर लेटी हुई दुःख-भरे नेत्रों से खुली हुई खिड़की के द्वारा आकाश की ओर ताक रही थी। मा ने आकर कहा—तुम्हें कौन-सी बात कहनी है ?

आग्रह के मारे उच्छ्वसित होकर मा ने रेखा को ज़ोर से पकड़ लिया। बहुत ही गम्भीर और गद्गद स्वर से मा को रेखा ने पुकारा—मा ! मा ! रेखा ने कहा—कल बग़ीचे में जब मैंने तुम्हें देखा था...उस आदमी के साथ... मुझे कितनी लज्जा हुई ! मैंने सोचा कि इसी क्षण आत्म-हत्या कर लूँ।

मा ने कहा—पागलपन छोड़कर तुम्हें जो कुछ कहना हो, कहो।

रेखा ने कहा—यह पागलपन नहीं है। सुनो मा। अपना मन मैं बिलकुल ठीक कर चुकी हूँ। चलो, हम तुम यहाँ से भाग चलें। यह गर्हित संसार त्यागकर—यह निन्दित ऐश्वर्य त्यागकर दूर किसी निर्जन वन में। ऐसे स्थान पर चलें जहाँ हम लोगों के सम्बन्ध की कोई भी बात किसी को मालूम न हो सके। ऐसे ही स्थान पर हम अड्डा जमावें। चलोगी मा ? बताओ। चलो, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। चलो, यहाँ से निकल चलें।

रेखा के दोनों नेत्र कातर हो उठे। उनमें प्रार्थना-सूचक अश्रु उदित हो आये। मा ने यह देख लिया। कहीं से प्रगाढ़ लज्जा आई और मा का कण्ठ रुद्ध कर लिया। मेरा यह कलङ्क और दुर्बलता इस तरह के दीन वेश में कन्या की पकड़ में आ गया है, यह सोचकर मा का भी मस्तक अपने आप ही न जाने क्यों झुक गया। ज़ोर देकर मा ने इस भाव को दबा लिया। उसने रेखा से कहा—किन्तु तेरी एक भी बात मेरी समझ में नहीं आ रही है रेखा !

रेखा ने कहा—इसमें समझाने-बुझाने की कोई भी बात नहीं है। ये लोग तुम्हें किस दृष्टि से देखते हैं और यहाँ किसलिए आया करते हैं, कल रात को इस सम्बन्ध में मुझे जो कुछ ज्ञात हो सका है, मा, वह सब अब न हो पावेगा। वैसी बात मैं कदापि न होने दूँगी। तुम मेरी मा हो। मैं तुम्हारा प्यार करती हूँ और प्यार के कारण किसी दिन किसी प्रकार का भी अभाव न होने दूँगी। तुम केवल यह सब त्याग दो, इन लोगों का संसर्ग छोड़ दो।

मा का हृदय उस समय भी लज्जा और ग्लानि के कारण काँप रहा था ! वह भी तो नारी है और रेखा उसी की कन्या है।

मा ने कहा—सुनो, इसमें बहुत-सी बातें हैं रेखा, जिन्हें तुम जानती नहीं हो ! इस समय उन्हें मैं बताना भी नहीं चाहती। किन्तु अभी तुम केवल इतना ही समझ रक्खो कि तुमने जो कुछ देखा है वह सब भूल जाओ। इसके सिवा ये सब बातें फिर मेरे कानों तक न पहुँच पावें, यह मैं तुमसे कहे देती हूँ। मैं मा हूँ, तुम बेटी हो। बेटी के मुँह से इस तरह की बात, ख़ास कर मा के सम्बन्ध में, शोभा भी नहीं देती रेखा। सुनने में बहुत बुरी मालूम पड़ती है।

रेखा ने प्रार्थनामय स्वर में कहा—नहीं मा, यह नहीं होगा। जो बात सुनने में बुरी मालूम पड़ती है वह देखने में और भी कितनी बुरी मालूम होती है, यही एक बात तुम समझ लो। मैंने यह समझ लिया है कि मेरे यहाँ प्रतिदिन इतने अतिथि क्यों आया करते हैं। जितने लोग यहाँ आते हैं वे सभी लम्पट और विषयी हैं। ये लोग समझते हैं कि नारी पुरुष की आमोद-स्पृहा को चरितार्थ करने का साधन-मात्र है, पुरुष के हाथ के खिलौना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अपनी उद्दाम वासना को चरितार्थ करने के ही लिए ये लोग यहाँ आया भी करते हैं। यही उनकी मित्रता का दाम है ! अस्तु इन सब कुरुचिपूर्ण बातों के सम्बन्ध में तर्क-वितर्क करना मैं नहीं चाहती। ऐसे विषय में तर्क किया भी नहीं जा सकता। तो भी जो हो गया है उसका तो अब कोई चारा नहीं है, परन्तु मैं यह स्पष्ट कहे देती हूँ कि भविष्य में इस तरह की बातें न होने पावेंगी। यहाँ से हम दोनों ही चली जायँगी। कलकत्तेवाले मकान में भी न चलेंगी। चलेंगी किसी सुदूर वन में, किसी गाँव के एक किनारे पर, घास-फूस या पत्तों से बनी हुई किसी झोपड़ी में। तुम्हारे पास हीरा-मोती के जितने भी गहने हैं, उन सबको बेच डालो। उनके बेचने से जो कुछ रुपये मिल सकेंगे उन्हीं से हमारा समय व्यतीत होगा। इस प्रकार पुरुषों की इच्छा पूर्ण

करते रहना, उनकी उन्मादमय भोगलिप्सा को चरितार्थ करने के लिए इस तरह सुरा-पात्र के रूप में अपने आपको उनके सामने अब न रक्खा जा सकेगा। यह सब तुम छोड़ दो और यहाँ चलकर केवल मेरी मा होकर रहो। इसके सिवा तुम्हारा और कोई परिचय न होगा। समझती हो न !

मा के मुखमण्डल पर तथा उसके नेत्रों में क्रोध की रेखा उदित हो आई। वह कहने लगी—इस सम्बन्ध में अभी कल की छोकड़ी के मुँह से नानी-दादी की-सी बातें सुनने को मैं तैयार नहीं हूँ, रेखा। तुम्हारी इस तरह की बात मुझसे नहीं सहन की जा सकती। क्या तुम समझती हो कि केवल इतने से ही समाज हमें मस्तक पर धारण कर लेगा ?

रेखा ने कहा—समाज से हमारा कोई मतलब नहीं है। मैं तो केवल अपने जीवन के ही सम्बन्ध की बातें कह रही हूँ। हम लोग भी तो मनुष्य हैं। मनुष्य जब इस तरह अपने मनुष्यत्व को तिलाञ्जलि दे देता है तब वह मनुष्य नहीं रह जाता। जो भी हो, मैं इन मनुष्यों को एक क्षण भी नहीं सहन कर सकती हूँ। इस स्थान में मुझसे अब एक क्षण न रहा जायगा। जो व्यक्ति हमारी मा के इतने बड़े कलङ्क का मूल है...

मा ने भर्त्सना के स्वर में चिल्लाकर कहा—रेखा !

रेखा ने कहा—तुम कहोगी कि मेरा साहस बहुत अधिक बढ़ गया है। परन्तु यह कोई साहस या धृष्टता नहीं है। मैं तुम्हारी पुत्री हूँ। कोई भी पुत्री माता को मातृत्व के अयोग्य कार्य करते देखना नहीं पसन्द करती, वह देख भी नहीं सकती। मेरी एक ही बात है। यदि तुम यह सब नहीं छोड़ सकतीं तो कोई बात नहीं है, तुम इन्हीं को लेकर रहो। मैं अकेली ही जाऊँगी। परन्तु यदि तुम मुझे चाहती हो तो यह सब तुम्हें छोड़ना होगा। अब तुम अपनी रुचि के अनुसार दो में से एक बात चुन लो—चुन लो। यह कहते कहते वह उत्तेजित हो उठी और उत्तेजित होकर कहने लगी—बताओ, तुम क्या चाहती हो। एक ओर दरिद्रता और मैं हूँ, दूसरी ओर आमोद-प्रमोद के लिए पिपासित इन पुरुषों का दल, धन-विभव, शत शत विकारों से परिपूर्ण यह ऐश्वर्य, यह ठाट-बाट और यह राग-रंग—चुन लो। दो में से एक तुम्हें कौन पसन्द है ?

उत्तेजना के मारे रेखा काँपने लगी। मा बड़ी
तक उसकी ओर ताकती रही। बाद को एक लम्बी स
लेकर उसने कहा—पुस्तकें पढ़ते पढ़ते तुम्हारा दिम
ख़राब हो गया है रेखा।

रेखा का कण्ठ-स्वर ज़रा भी विचलित नहीं हुआ
उसने दृढ़ एवं गम्भीर स्वर में कहा—नहीं मा, मुझे का
ज्ञान है। इन सब बातों से मैं हटनेवाली भी नहीं हूँ।
तो तुम पर किसी प्रकार का दबाव डाल नहीं रही हूँ-
किसी प्रकार का आग्रह भी नहीं कर रही हूँ। तुमसे
कह रही हूँ कि चुन लो। एक ओर मैं हूँ, दूसरी ओ
तुम्हारा यह चञ्चल और उद्दाम आमोद प्रमोद तथा विला
ऐश्वर्य !

"परन्तु कहाँ चलना होगा, यह भी तो बतलाओ।"

"चलने के सम्बन्ध में पहले जैसा कि मैंने कहा
किसी स्थान-विशेष पर चलने का मेरा आग्रह नहीं है
यहाँ से अन्यत्र जाने का मेरा वास्तविक उद्देश भी न
है। मेरा वास्तविक उद्देश है सत्पथ पर चलना। जि
मार्ग पर तुम चल रही हो उस पर से तुम्हें लौटना होगा—
आज ही इसी दम।

"सत्पथ !" इस बात ने मा के हृदय पर बड़े ज़ो
का आघात किया। वैसे ही विद्रूप का अट्टहास एक
उत्थित हो आया। मा ने कहा—सत्पथ ! सत् या अस
बनाकर भगवान् ने किसी वस्तु की सृष्टि नहीं की
रेखा। मेरे लिए कहीं कुछ भी असत् नहीं है। मैं
इस प्रकार सब लोगों के साथ हिल-मिलकर घूम
फिरती हूँ, यह दोष का विषय नहीं है। मेरे चारों ओ
एक चक्र खींचकर समाज ने मुझे एक कोने में क्यों डे
रक्खा है ? यह क्या मेरा दोष है ? मेरा जो हृदय हज़ा
आदमियों के हृदय का साथ पाकर उन लोगों के स्नेह औ
प्रीति में मिलकर अपनी क्षुधा निवृत्त कर सकता उसे
चक्र के भीतर डालकर और एक भँवर की सृष्टि क
उसमें ग़ोते क्यों खिलाये ? इसके अतिरिक्त यह औ
कुछ नहीं है। मैं तो मनुष्य हूँ। मेरे मन में भी हँस
बोलने की इच्छा उत्पन्न होती है। किसके साथ हँ
किसके साथ बात-चीत करूँ ? सगी चाहिए, मित्र चाहिए
परन्तु मेरा साथ देने के लिए, बन्धुता से मुझे तृप्त कर
के लिए, समाज के द्वारा खींचे गये इस चक्र के भय

कोई आवेगा नहीं। स्वभावतः जिन लोगों की छाती चौड़ी है वही आते हैं। किन्तु वे लोग इस संग, इस हँसी का दाम चाहते हैं। मुझे भी कर्त्तव्य के अनुरोध से वह दाम देना पड़ता है। पृथ्वी की चारों ही दिशाओं में लेन-देन का कारबार हो रहा है। स्वामी-स्त्री, माता-पिता और सन्तान तथा भाई-बहन आदि सभी के बीच में यह लेन-देन का कारबार चिरकाल से चला आ रहा है। इस तरह का कारबार त्रेतायुग से लेकर इस घोर कलिकाल तक समान रूप से चला आ रहा है। ऐसी दशा में जब ये लोग मुझे अपना सङ्ग देते हैं, मेरे साथ हँसते-बोलते हैं, तब मैं भी उनका वही दाम देती हूँ जो मेरी शक्ति के अनुरूप है, जो ये लोग चाहते हैं।

रेखा का हृदय विदीर्ण हो उठा। उसके नेत्रों में आँसुओं का स्रोत उमड़ आया। वह सोचने लगी कि उसकी मा कितनी अभागिनी और दुःखिनी है! कातर स्वर से उसने कहा—मा!

मा ने कहा—चुप रहो। मुझे समझाने दो सारी बातें। जब बात उठ ही पड़ी है तब इसमें लज्जा करने की कौन सी आवश्यकता रह गई? अब खुल्लम-खुल्ला हर एक बात स्पष्ट हो जाय, मा-बेटी के बीच में ज़रा भी अन्तर, ज़रा भी भेद न रह जाय। तुमने मुझे जो कुछ समझ रक्खा है, मैं वही हूँ। और आज भी जो मैं इस तरह चलती हूँ उसका भी कारण है। यह सब मैं बतलाती हूँ, सुनो। इसका पहला कारण तो यह है कि मेरे सत्पथ पर चलने का अब कोई उपाय भी नहीं है।

"कोई उपाय नहीं है!" रेखा कम्पित होकर मा की ओर ताकने लगी। कितनी भयङ्कर यह बात है?

मा ने कहा—नहीं, उपाय नहीं है। इस प्रकार यदि मैं न चलूँ तो मस्तक कभी ऊपर की ओर उठा ही न सकूँगी। मेरे पास जो कुछ पूँजी है उसके सहारे पर यह सुख मिल नहीं सकता। यह आचरण यदि मैं छोड़ दूँ तो तुम्हें लेकर भोजन के लिए भी दूसरों के यहाँ दासी का काम करना पड़ेगा। यह जो तुम चिड़िया की तरह, तितली के-से पर फैलाकर घूमती-फिरती हो, यह सब न कर सकोगी। तब तो लोगों के यहाँ हम दोनों को बर्तन मलकर, मसाला पीसकर दिन काटने पड़ेंगे। इसे छोड़कर समाज हम लोगों को दूसरा कोई भी स्थान न देगा। पहले-पहल जब मैंने जीवन आरम्भ किया था तब अच्छी बनकर ही आरम्भ किया था। उस समय अच्छे मार्ग पर ही चला करती थी।

रेखा ने ज़ोर से कहा—मा!

मा ने कहा—नहीं, बात जब उठ पड़ी है तब सभी बातें कहूँगी। एक एक करके सुनती चलो। विवाह होने के बाद जब मैं विधवा हो गई तब भर पेट भोजन नहीं मिलता था। समस्त दिन कठिन परिश्रम करने के बाद कुछ पिता जी ले आते थे और दूसरों के घर में रसोई बनाकर कुछ माता जी उपार्जन करती थीं। इसी से हम लोगों का किसी प्रकार निर्वाह होता था। जिनके यहाँ माता जी भोजन बनाया करती थीं उनके यहाँ साथ में कभी कभी मैं भी जाया करती थी। माता जी की तबीअत ख़राब होने पर मैं रसोई बनाया करती थी। उनके यहाँ एक आदमी आता था। उसी ने पहले-पहल मेरे ऊपर प्यार की दृष्टि डाली। मुझे आशा दी, विश्वास दिलाया और प्यार दिखलाया। उस तरह का प्यार कभी स्वामी से भी नहीं पा सकी। उसका हाथ पकड़कर चली आई। शरीर का कष्ट नहीं सहन करना पड़ा। मन भी प्रेम के लिए कंगाल हो पड़ा था। वही थे मिस्टर बोस—तुम्हारे पिता। उन्होंने मुझे रानी बनाकर रक्खा। किसी दिन किसी प्रकार के अभाव का अनुभव करने नहीं दिया। मुझे निश्चिन्त और प्रसन्न रखने के लिए समाज और बन्धु-बान्धव सब कुछ उन्होंने त्याग दिया। जिस प्रेम में किसी प्रकार का पाप नहीं है वही प्रेम उन्होंने मुझे प्रदान किया। उनके दान के बदले में मैंने भी उन्हें उसी प्रकार का प्रेम प्रदान किया। जब तक वे जीवित रहे, कभी उनका विश्वास भंग नहीं होने दिया।

रेखा ने कहा—वे बहुत ही उदार थे, उच्च थे। तुमने भी जो उनका विश्वास-भंग नहीं होने दिया, यह अपने कर्तव्य का ही पालन किया। किन्तु उनकी मृत्यु हो जाने पर तुमने यह क्या इस तरह का नीच, घृणामय व्यवसाय आरम्भ कर दिया है? उनकी दया की स्मृति को पैरों से रौंद कर, कुचल कर, यह अभिसार—मा ने कर्कश स्वर में चिल्लाकर कहा—रेखा!

आँसुओं के बाष्प से उच्छ्वसित अभिमान के स्वर में रेखा ने कहा—किस साहस से तुम आँखें रँगती हो मा? इस समय तुम कौन हो? कहाँ गिर गई हो?

मा ने कहा—उपाय नहीं है। उपाय था भी नहीं रेखा! अपने आपको खड़ी रखने के लिए इसके अतिरिक्त और कोई उपाय भी नहीं है। इस प्रकार निःसङ्ग, निर्जन भाव से जीवन धारण किये रखना मनुष्य की शक्ति से परे है। हम लोगों के कोई नहीं है, कुछ नहीं है, है केवल यही शरीर! यह शरीर, यह यौवन और रूप! यही हमारी सम्पत्ति है! यही हमारा सर्वस्व है रेखा!

रेखा ने कहा—उस शरीर का यह अपमान, उस रूप की यह लाञ्छना।

मा ने कहा—इसके अतिरिक्त और उपाय क्या है रेखा? नारी ने इस शरीर, यौवन और रूप के मोह से ही चिरदिन पुरुष को अपने वश में रक्खा है। स्वामी-स्त्री के बीच में भी क्या यह नियम चालू नहीं है? स्वामी होकर पुरुष एक नारी को स्त्री के रूप में ग्रहण करता है और उसे अपना सर्वस्व अर्पण कर देता है। इसका क्या कारण है? स्त्री की यह शरीररूपी लता यौवनरूपी मुकुल में खिले हुए पुष्पों से भरी हुई है। उसके मधु का आकण्ठ पान करने की लालसा से ही वह इस प्रकार का त्याग करता है। यह त्याग वह एकमात्र इसी आकांक्षा से करता है कि स्त्री अपने इस शरीर, इस यौवन में और किसी का हाथ न लगने देगी। केवल स्वामी के ही लिए स्त्री नित्य नये रूप, नई दीप्ति से विकसित होकर, अपने आपको सजाकर, स्वामी के सामने डाली के समान, स्वामी के भोग के लिए, स्वामी की तृप्ति के लिए रख देती है।

रेखा ने कहा—कभी नहीं। नारी और पुरुष के बीच में एकमात्र शरीर-सम्बन्धी ही हीन सम्पर्क नहीं है। यदि केवल यही बात होती तो कुरूपा स्त्री को स्वामी न प्यार करता, प्रौढ़ा स्त्री को स्वामी घर से बाहर निकाल देता। स्त्री घर की लक्ष्मी है, पुरुष की सन्तानों की मा है, संसार की शक्ति है, शान्ति है, हँसी है, आँसू है, कर्ममयी अधिष्ठात्री। रेखा के नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लग गई।

मा ने कहा—भूल है रेखा, यह तुम्हारी भूल है। रोओ मत। रो रोकर तुम अपने भाग्य में परिवर्तन न कर सकोगी रेखा। समाज के बाहर मन्त्रहीन प्रेम के उपवन में तुम्हारा जन्म हुआ है, इसलिए समाज तुम्हें ग्रहण न करेगा। इधर तुम्हारा यह नवविकसित जीवन निष्पाप है, निर्मल है, विशुद्ध है। शरीर-विक्रय करने के अतिरिक्त संसार में तुम्हारी और कोई गति नहीं है रेखा। भाग्य फेरने की वस्तु नहीं है। यह जन्म इसी तरह काटना होगा। उपाय नहीं है, उपाय नहीं है।

यह बात सुनकर रेखा काँप उठी। उसके शरीर के रोम रोम खड़े हो गये। उसके आँसू भी रोके नहीं रुकते थे। वह ठीक उसी तरह फूट फूटकर रो रही थी, मानो किसी बच्चे ने ज़ोर की मार खाई हो।

मा ने कहा—उठकर इधर चली आ रेखा। सबके साथ मिल कर बैठ, बातचीत कर। उस दशा में मन का यह भाव दूर हो जायगा। निरर्थक रोओ मत रेखा, उठ आओ।

मा ने बेटी का हाथ पकड़ लिया। रेखा ने मा का हाथ झटककर रुँधे हुए स्वर से कहा—छोड़ दो मुझे। मनुष्य के साथ मिलना-जुलना, बात-चीत करना—यह मुँह लेकर उन लोगों के साथ? कदापि नहीं। नीचतामय घृणा से जिन लोगों का हृदय परिपूर्ण है उनके साथ हँस हँसकर बातें करना मेरे लिए सम्भव नहीं है। मैं इस कमरे से हिलूँगी नहीं। मेरी केवल एक बात है—उन लोगों से कह दो कि वे अभी इसी दम यहाँ से चले जायँ, यह घर छोड़ दें।

मा ने कहा—किन्तु यह मकान तो उन्हीं का है।

रेखा ने कहा—तो इस अनुग्रह, इस प्रसाद का भोग करने की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। तुम अभी यहाँ से चल खड़ी होओ, पहले अपने कलकत्तेवाले मकान में ही सही। बाद को··· ·····रेखा स्तब्ध हो गई। भावी यात्रा के पथ में एक क्षीण रेखा का सन्धान करने के विचार से अपने दोनों ही नेत्रों की दृष्टि शून्य में प्रसारित करके वह चुपचाप बैठी रही।

मा ने कहा—बाद को क्या होगा, सुनूँ तो?

रेखा ने मा की ओर देखा। उसने शान्त स्वर में ही कहा—इतनी बड़ी पृथ्वी में स्थान का अभाव न होगा। परन्तु यहाँ अब इस संसर्ग में मुझसे न रहा जायगा। मेरी तो एक बात है। वह मैंने तुमसे बतला दी। उन लोगों से अब मुलाक़ात न कर सकूँगी। मेरी बातों पर तुम सहमत नहीं होती हो तो न सही, मेरा कोई ज़ोर नहीं है। मैं अकेली ही अपने लिए रास्ता खोज लूँगी।

मा हतबुद्धि होकर कन्या की ओर ताकती रह गई। बाद को मन ही मन बहुत ही विरक्त होकर धीरे धीरे कमरा छोड़कर चली गई।

पाठकों के पत्र

शास्त्री जी की मौलिक (?) कहानी

गत जुलाई की 'सरस्वती' में श्रीयुत चतुरसेन शास्त्री की 'शराब की सुराही में' शीर्षक कहानी प्रकाशित हुई है। उसको पढ़कर सहसा प्रेमचन्द जी की 'परीक्षा' शीर्षक कहानी का स्मरण हो जाता है, जिसमें नादिरशाह ने 'शाही बेगमों का इम्तिहान' लिया है। ऐसा मालूम होता है कि प्रेमचन्द जी के ही मसाले को लेकर शास्त्री जी ने अपनी कहानी की रचना की है और उसमें शराब का प्रकरण घुसेड़कर उसे मौलिक बनाने का विफल प्रयास किया है। शास्त्री जी उतने परिश्रम से कोई अच्छी मौलिक कहानी लिख सकते थे; फिर इसकी क्या ज़रूरत थी ?

—योगेन्द्र मिश्र, मुज़फ़्फ़रपुर

कविवर पन्त जी

सितम्बर १९३६ वाले अंक में कविवर पन्त जी की 'मानव' कविता हिन्दी की एक आदर्श सृष्टि है। निस्सन्देह पन्त जी की ऐसी रचना का आनन्द मर्मज्ञ जनों को ही मिल सकता है—

पृथुउर, उरोज ज्यों सर, सरोज,
दृढ़बाहु प्रलम्ब प्रेम-बन्धन,
पीनोरु स्कन्ध जीवन-तरु के,
कर, पद, अंगुल, नख, शिख शोभन !—

क्या शृङ्खला है ! क्या ऐसा भाव नवीन हिन्दी-साहित्य में मिल सकता है ?

कुँवर नरेशसिंह, शाहपुर

एक उपयोगी लेख

इस मास (अगस्त) की सरस्वती में—'लोक-सेवकों में शिष्टता का अभाव' नाम का एक बहुत ही उपयोगी लेख दिया गया है। आजकल इसी तरह के लेखों की ज़रूरत है, जिनसे लोगों में आत्म-सम्मान का भाव उदय हो, साथ ही Public Servent अपनी ज़िम्मेदारी समझें। कुछ मास पूर्व इस लेख के लेखक महोदय का शायद "ज़ोर से धक्का मारो" शीर्षक लेख भी इसी भाव का बहुत ही सुन्दर था। इस तरह के लेख पढ़ने से लोगों में बहुत-कुछ दृढ़ता आती है।

कृष्णवल्लभप्रसाद नारायणसिंह, गया

× × × ×

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने पर हमें इस बुराई का निदान तथा इलाज शीघ्र ही स्पष्ट हो जाता है। सदियों से पराधीनता एवं ग़ुलामी के बन्धन में जकड़े होने के कारण हमारे हृदय में अपने विजेताओं और उच्चाधिकारियों का अनुचित आतङ्क तथा मिथ्या भय घर कर गया है और हमें अपनी आत्ममर्य्यादा का ख़याल बिलकुल नहीं है। इसी दोष के प्रतिक्रिया-स्वरूप हम अपने भाइयों के साथ अशिष्ट व्यवहार करते और व्यर्थ का अपना रोब गाँठते हैं। ऐसी अवस्था में यदि हम अपने दिल से उक्त अवगुण को निकाल दें तो सभी क्षेत्रों में हम नम्र व्यवहार करना सीख जायँगे। अपनी खोई हुई आत्म-मर्य्यादा यदि हमें पुनः प्राप्त हो जाय तो हम स्वयं दूसरों का सम्मान करने लगेंगे।

लक्ष्मीनारायणसिंह विशारद
बांक (शाहाबाद)

फिर एक महिला ने एक हज़ार के लगभग प्रतिद्वन्द्वियों को हराया

वर्ग नं० २ का नतीजा

प्रथम पुरस्कार ३००) (शुद्ध पूर्ति पर)

श्रीमती रुक्मिणी c/o कौला बाबू स्टेशनमास्टर खुर्जा सिटी

द्वितीय पुरस्कार ५२) (एक अशुद्धि पर)

श्रीमती कमला c/o कौला बाबू स्टेशनमास्टर खुर्जा सिटी

तृतीय पुरस्कार २५) (दो अशुद्धियों पर)

श्रीयुत तारादत्त उप्रेती माधुरी आफ़िस, लखनऊ

चतुर्थ पुरस्कार ७५) (तीन अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित २५ व्यक्तियों में बराबर बराबर बाँटा जायगा। प्रत्येक को ३) मिलेगा

श्रीमती धनरानी c/o कौला बाबू स्टेशनमास्टर खुर्जा सिटी। श्रीमती लक्ष्मी शर्मा ६० पी० बी० कीटगंज, प्रयाग। श्रीयुत आर० एम० सांडल, कक्षा ९ के० आर० कालिज, मथुरा। श्रीयुत हरिवल्लभ 'हरि' अध्यापक नार्मल स्कूल कोटा, (राजपूताना)। श्री रामलखन पाण्डेय कक्षा ९ गवर्नमेंट इंटर कालिज, इलाहाबाद। श्रीयुत आनन्दप्रकाश जौहरी वकील, मु० ज़काती, बरेली। श्रीमती मीना अनद ९३, चौक गंगादास, इलाहाबाद। श्रीमती गोपेश दुलारी आचार्य्य, c/o एस० दास आचार्य्य, ब्यावरा राजगढ़ स्टेट सी० आई०। श्रीमती यशोवती देवी तिवारी १५ कीटगंज, इलाहाबाद। ...नाथसिंह चौहान मुरार, ग्वालियर। श्रीमती योगे- ...३ जानसेनगंज, इलाहाबाद। श्रीयुत ... मोतशिमगंज, इलाहाबाद। ... एण्ड लेबर शिमला। श्रीयुत पालीराम शर्मा c/o सीताराम नेवटिया पोस्ट फरेंदा (गोरखपुर)। श्रीयुत स्थाणुदत्त शर्मा गवर्नमेंट हाई स्कूल कैथल (पंजाब)। श्रीयुत गिरीशप्रसाद शिवपुर, बनारस। श्रीयुत बसन्त मेहता ११, एलगिन रोड प्रयाग। श्रीयुत रामरतनलाल शुक्ल हेडमास्टर हरसूद निमाड़ सी० पी०। श्रीमती दुर्गादेवी तिवारी १५ बख्शी, दारागंज, प्रयाग। कुमारी गंगारानी १७ए, हैमिल्टन रोड प्रयाग। श्रीयुत दयालचन्द्र जैन c/o बाबू कैलाशचन्द जैन, चाहचन्द प्रयाग। श्रीयुत मोहनलाल गुप्त रामप्रसाद बिलडिंग चेतगंज, बनारस। श्रीयुत भोलानाथ टण्डन संकटा मंदिर, बनारस। श्रीयुत चन्द्रेश्वरीप्रसादसिंह शिक्षक एस० सी० एस० सेमिनरी, सोनपुर, सारन। श्रीमती तेजकुमारी c/o से० लालचन्द सेठी विनोद मिल्स उज्जैन।

अङ्क-परिचय

बायें से दाहिने

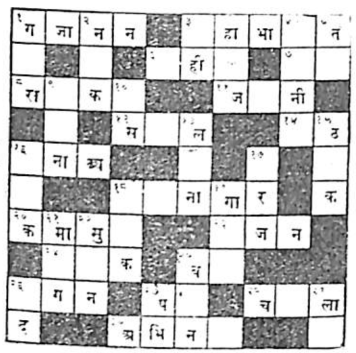
१—गौरीसुत
३—आर्यों का इतिहास इससे मालूम होता है
६—प्राचीन समय से पालन करना ही इसके जीवन की विशेषता है
७—पृथ्वी पर इसकी अधिकता है
८—प्रजा पर राजा लगाते हैं
११—कार्य करने के अनेक उपाय इसे मालूम रहते हैं
१२—धन्य हैं वे व्यक्ति जिनकी कार्य-शैली......होती है
१४—दुष्ट
१६—भारतवर्ष में इनकी संख्या कम है
१८—शयनागार
२०—कमानेवाला
२३—यह क्रिया शुभ मानी जाती है
२४—कोई कोई इससे दूर भागते हैं
२५—इसमें भाँति भाँति के शब्द सुनाई देते हैं
२६—प्राकृतिक सौंदर्य का आभास.. होने से है
२७—सभ्य मनुष्य अवश्य रखते हैं
२८—कभी-कभी हिन्दुस्तानी फ़िल्म में इसका दृश्य दिखलाई देता है
३०—इस प्रकार का खेल विद्यार्थी पहले ठीक नहीं खेल पाते

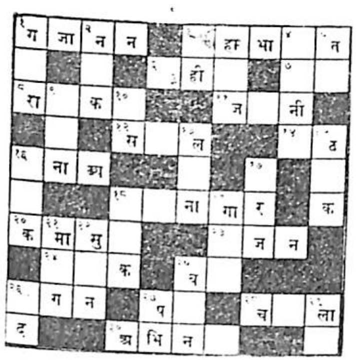
ऊपर से नीचे

१—रस्सी से बाँधकर लटकाया जाता है
२—पृथ्वी पर पाया जाता है
३—पृथ्वी
४—चन्द्रमा
५—मनुष्य के अतिरिक्त निर्जीव वस्तुएँ भी इसे रखती हैं
९—मनुष्य यह काम आँख बन्द करके भी करते हैं
१०—स्वाद
१३—इससे कभी-कभी मानसिक पीड़ा भी पहुँचती है
१५—ऐसी चाल सभी पसन्द नहीं करते
१६—इसके सिरे पर धुआँ कम निकलता है
१७—इसको सुनकर व्यवसायी मनुष्य की शान्तिभङ्ग होना सम्भव है
१८—सौ का संग्रह
१९—इसकी कला सीखना कठिन है
२१—रास्ता
२२—इनका अस्तित्व आनन्द का कारण है
२५—शिथिल होने पर टूटने लगता है
२६—इसका प्रभाव अच्छा नहीं पड़ता
२९—कोई कोई अबला इसके मारे मर गई है

नोट—रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा-रहित और पूर्ण हैं।

अपना याददाश्त के लिए वर्ग ३ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ कर लीजिए। और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।





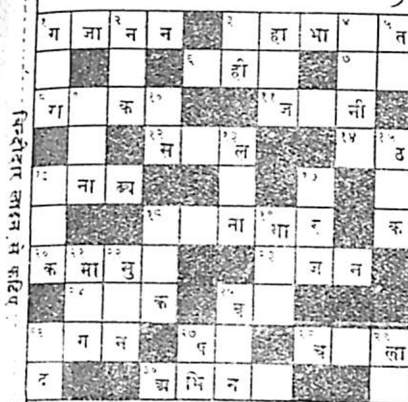
वर्ग नं० २ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर २ की शुद्ध पूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े पर मुहर लगाकर रख दी गई थी यहाँ दी जा रही है। पारितोषिक जीतने वालों का नाम हम अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं।



बिन्दुदार लाइन से काटिए

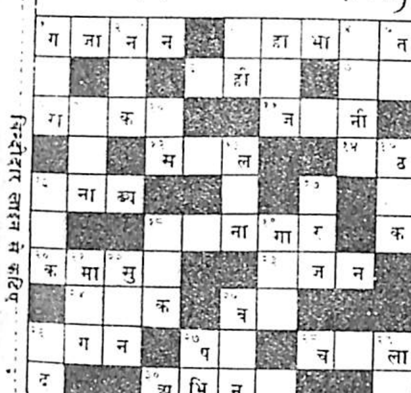
वर्ग नम्बर ३ फ़ीस ।|)



मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा
पूरा नाम ....
पता ....
पूर्ति नं० ....

बिन्दुदार लाइन से काटिए

वर्ग नम्बर ३ फ़ीस ।|)



मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा
पूरा नाम ....
पता ....
पूर्ति नं० ....

जाँच का फ़ार्म

वर्ग नं० २ की शुद्ध पूर्ति और पारितोषिक पानेवालों के नाम अन्यत्र प्रकाशित किये गये हैं। यदि आपको यह संदेह हो कि आप भी इनाम पानेवालों में हैं, पर आपका नाम नहीं छपा है तो १) फ़ीस के साथ निम्न फ़ार्म की खानापुरी करके १५ आक्टोबर तक भेजें। आपकी पूर्ति की हम फिर से जाँच करेंगे। यदि आपकी पूर्ति आपकी सूचना के अनुसार ठीक निकली तो पुरस्कारों में से जो आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा और आपकी फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जिनका नाम छप चुका है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं है।

वर्ग नं० २ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० २ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति

नं०.........में { कोई अशुद्धि नहीं है। / एक अशुद्धि है। / दो अशुद्धियाँ हैं। / तीन अशुद्धियाँ हैं।

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर

पता

बिन्दुदार लाइन पर काटिए

इसे काट कर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

मैनेजर वर्ग नं० ३
इंडियन प्रेस, लि०,
इलाहाबाद

संकेतों पर ध्यान देने से कोई भी पुरस्कार प्राप्त कर सकता है

वर्ग नं० १ में ३००) का पुरस्कार प्राप्त करनेवाली कुमारी शीलादेवी का पत्र



कुमारी शीलादेवी मेहता

वर्ग नं० १ के पुरस्कार विजेताओं में से कइयों ने हमारे पास धन्यवाद के पत्र भेजे हैं और हमारे इस आयोजन पर हर्ष प्रकट किया है। इनमें कुमारी शीला का पत्र बहुत ही बुद्धिमत्तापूर्ण है। इसलिए उसे हम सहर्ष प्रकाशित करते हैं। इससे इन पहेलियों में दिलचस्पी रखनेवालों को यह पता चलेगा कि यह पुरस्कार जीतना कितना आसान है।

११, एलगिन रोड, इलाहाबाद
२५ सितम्बर, १९३६

प्रिय महोदय,

'सरस्वती' ने व्यत्यस्त-रेखा-पहेली-द्वारा हिन्दी-भाषा-भाषियों के सम्मुख एक नई चीज़ उपस्थित कर दी है। यह पहेली वास्तव में अत्यन्त ज्ञानवर्धक मनोरंजन का साधन है। बहुत-से लोग समझते हैं कि पुरस्कार प्राप्त करना भाग्य पर निर्भर है, लेकिन ३००) का पुरस्कार प्राप्त कर मुझे यह निश्चय होगया कि थोड़े से तर्क, विचार तथा संकेत पर भली भाँति मनन करने से कोई भी पुरस्कार प्राप्त कर सकता है।

वर्ग नं० १ में संकेत दिया गया था 'बहुत पढ़े-लिखे लोग ऐसे **अब** कम होते हैं' इसके उत्तर तीन शब्द होते थे—सबल, सफल, सरल। लेकिन ''अब'' शब्द पर ध्यान देने से मुझे विश्वास होगया कि ठीक उत्तर 'सबल' है क्योंकि आज-कल के पढ़े-लिखे लोग सफल या सरल तो बहुत होते हैं पर 'सबल' अब कम होते हैं।

दूसरा संकेत था 'अग्नि से बहुधा वस्तुएँ ऐसी हो जाती हैं' इसके दो उत्तर सम्भव थे 'नरम' और 'गरम' लेकिन 'बहुधा' शब्द पर मेरा ध्यान गया – अग्नि से गरम तो वस्तुएँ सदैव हो जाती हैं, किन्तु नरम बहुधा होती हैं। इसी तरह मैंने अन्य संकेतों पर ध्यान दिया।

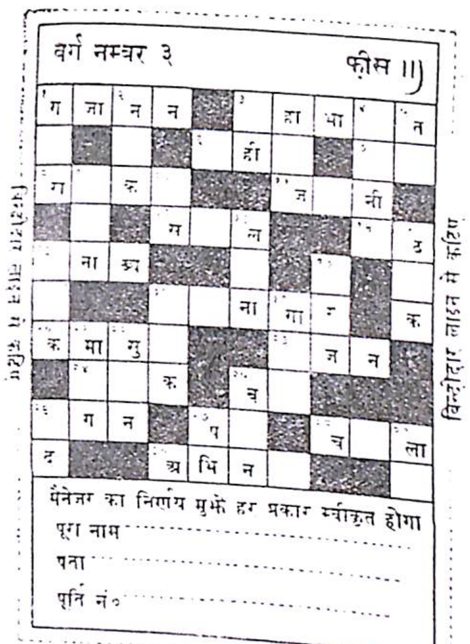
वास्तव में वर्ग-निर्माता ने बड़ी चतुराई से संकेतों का निर्माण किया है। हिन्दी की अन्य पहेलियाँ इसकी बराबरी कभी नहीं कर सकतीं।

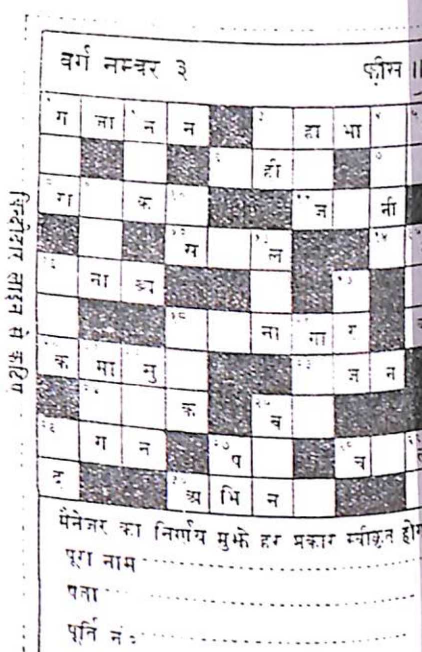
अन्त में मैं 'इंडियन प्रेस' के प्रबन्धक को पुरस्कार देने के लिए धन्यवाद देती हूँ कि उन्होंने मुझे ठीक समय पर यह पुरस्कार भेज दिया।

भवदीया
शीलादेवी

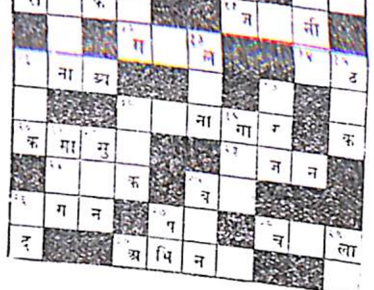
५००) में दो पारितोषिक

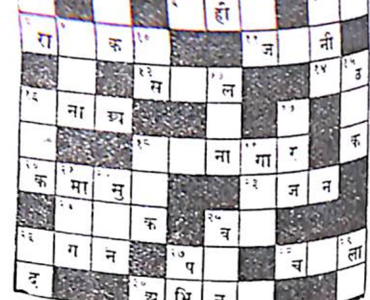
इनमें से एक आप कैसे प्राप्त कर सकते हैं यह जानने के लिए पृष्ठ २८७ पर दिये गये नियमों को ध्यान से पढ़ लीजिए। आप के लिए दो और कूपन यहाँ दिये जा रहे हैं।



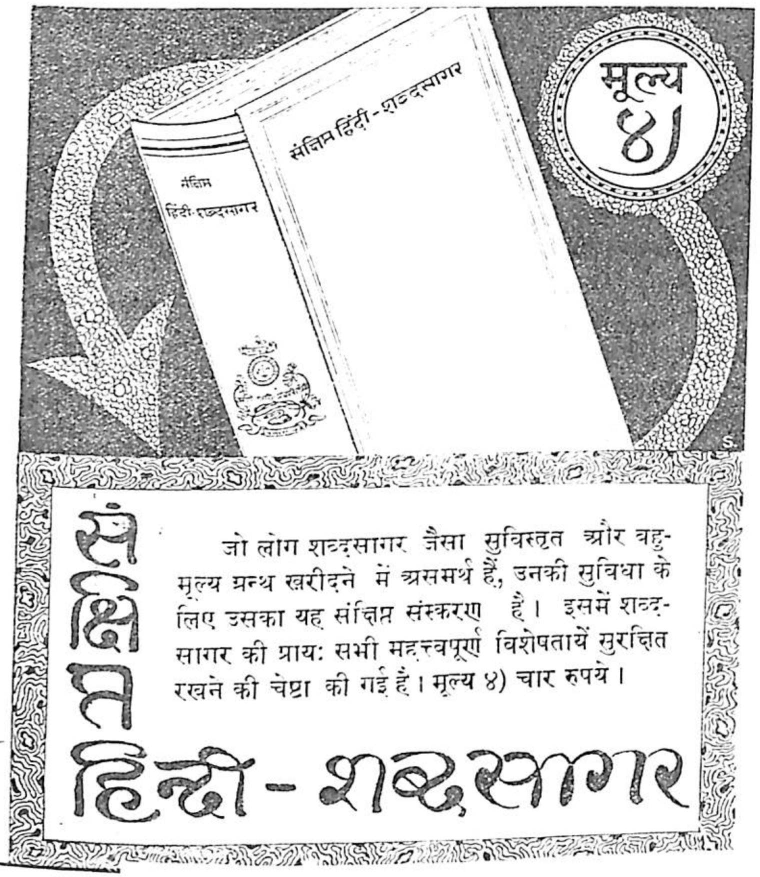


रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा-रहित और पूर्ण हैं।





अपनी याददाश्त के लिए वर्ग ३ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ कर लीजिए, और इसे निर्णय प्रका
होने तक अपने पास रखिए।



नई पुस्तकें

[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथासमय प्रकाशित होगा।]

१—महान् भारत—लेखक, श्रीयुत रामशङ्कर मिश्र, 'साहित्यरत्न', प्रकाशक, दुर्गादास प्रेस, चौक पासियाँ, अमृतसर, हैं। मूल्य ३) है।

२—भारतवर्ष का इतिवृत्त—प्रकाशक, श्रीभारत-धर्म-महामण्डल, शास्त्र-प्रकाशन-विभाग, जगतगंज, बनारस, हैं। मूल्य २) है।

३—काव्यकल्पद्रुम (द्वितीय भाग)—लेखक, सेठ कन्हैयालाल पोद्दार, प्रकाशक, पण्डित जगन्नाथप्रसाद शर्मा, चूड़ीवालों का मकान, मथुरा हैं। मूल्य १॥) है।

४—हिन्दी-गद्य-गाथा—लेखक, श्रीयुत सद्गुरुशरण अवस्थी, एम० ए०, प्रकाशक, सरस्वती-पब्लिशिङ्ग-हाउस, प्रयाग हैं। मूल्य १॥) है।

५—अपराध-चिकित्सा—लेखक, श्रीयुत भगवान-दास केला, प्रकाशक, भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन हैं। मूल्य १॥) है।

६—श्री चैतन्यमहाप्रभु (सचित्र) खंड १,२—अनुवादक, श्री त्रंबकलाल, माणेकलाल शुक्ल, प्रकाशक, सस्तुं साहित्यवर्धक कार्यालय, अहमदाबाद हैं। मूल्य २।) है।

७—तत्त्वार्थ-सूत्र—समन्वयकर्ता, श्री आत्माराम जी महाराज, प्राप्तिस्थान लाला शादीराम गोकुलचन्द्र जैन जौहरी, चाँदनी चौक, देहली हैं। मूल्य २) है।

८—हृदयसागर—लेखक, लाला छैलबिहारीलाल बजाज, हाथरस हैं। मूल्य १) है।

९—मुक्तक (कविता)—रचयिता, श्रीयुत हरिशरण मिश्र, प्रकाशक, सरस्वती-सदन, जबलपुर हैं। मूल्य ॥।) है।

१०—ख़ूनी दारा (उपन्यास)—लेखक, श्रीयुत गोपालचन्द्र चक्रवर्ती शास्त्री, प्रकाशक, चाँद-प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद हैं। मूल्य १।) है।

११—देवकन्या (नाटक)—लेखक, पंडित श्रीकृष्ण मिश्र, एम० ए०, बी० एल०, प्रकाशक, वाणी-मंदिर, मुंगेर, हैं। मूल्य ॥) है।

१२—महात्मा बसवेश्वर के वचन—अनुवादक, श्रीयुत ए० वि० श्रीनिवास मूर्त्ति, श्रीयुत रा० भा० 'विशारद' श्रीयुत एम० सी० शिवानन्द शर्मा व श्रीयुत रा० भा० 'विशारद', प्रकाशक, श्रीयुत एम० एन० शिवप्पा और श्रीयुत एम० एन० नंजप्पा, बंगलोर सिटी हैं। मूल्य ॥।) है।

१३—जपुजी साहिब—कर्त्ता, श्री सोढ़ी तेजासिंह जी, प्रकाशक, गुरुवाणी-पुस्तकालय, गुमरी बाज़ार, लाहौर हैं। मूल्य =)॥ है।

१४-१६—साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी) द्वारा प्रकाशित ३ पुस्तकें—

(१) द्वापर (कविता)—लेखक, श्रीयुत मैथिलीशरण गुप्त और मूल्य १॥) है।

(२) सिद्धराज (कविता)—लेखक, श्रीयुत मैथिली-शरण गुप्त और मूल्य १।) है।

(३) मृन्मयी (कविता)—लेखक, श्रीयुत सियाराम-शरण गुप्त और मूल्य १।) है।

१७-१८—लीडर-प्रेस, इलाहाबाद-द्वारा प्रकाशित दो पुस्तकें—

(१) मोतियों के वंदनवार—लेखिकायें, कुमारी शीला और कुमारी लीला मेहता और मूल्य १।) है।

(२) व्रज-रज (कविता)—ले०, श्रीयुत राय कृष्णदास, प्रकाशक, भारतीभण्डार, और मूल्य ॥) है।

१९-२३—प्रतापनारायण चतुर्वेदी लिखित, भारतवासी प्रेस-द्वारा प्रकाशित ५ पुस्तकें—

(१) स्वामी रामतीर्थ—मूल्य =) है।

(२) स्वामी शङ्कराचार्य—मूल्य ‌-)॥ है।

(३) परमहंस श्री रामकृष्ण देव—मूल्य -)॥ है।

(४) स्वामी विवेकानन्द—मूल्य =) है।

(५) गौतम बुद्ध—मूल्य =) है।

२४—महिला-शिष्टाचार—लेखिका, श्री शान्तिकुमारी अग्रवाल, प्रकाशिका, श्रीमती धर्मिष्ठादेवी माहेश्वरी, c/o श्री लालमणि माहेश्वरी, फ़र्रुख़ाबाद यू० पी० हैं। मूल्य ||) है।

२५—सुदामा-चरित्र—लेखक व प्रकाशक, श्रीयुत विनायकराव भट्ट, सब पोस्ट-मास्टर, छतरपुर सी० आई० हैं। मूल्य =) है।

२६—श्री रूपकलाजी—लेखक, अयोध्या श्री बाबू देवनारायणसिंह, प्रकाशक, सर्चलाइट प्रेस, पटना हैं। मूल्य |) है।

२७—परिभाषा (कविता)—रचयिता, श्रीयुत रघुवीरशरण जौहरी, प्रकाशक, चतुरविहारीलाल आनन्दीलाल पुस्तकालय, उज्जैन (मालवा) हैं। मूल्य |) है।

२८—मकरन्द (कविता)—लेखक, श्रीयुत मधुकुमार, प्रकाशक, श्रीयुत जी० पी० कुलश्रेष्ठ, सोरों, एटा हैं। मूल्य |=) है।

२९—वाशिष्ठ-गीता—लेखक व प्रकाशक, पंडित अम्बाप्रसाद चौबे, जवाहरगंज, जबलपुर हैं। मूल्य -) है।

३०—सूबाहिन्द (कविता)—प्रकाशक, डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा, विश्वविद्यालय, प्रयाग हैं।

३१—चित्रकूट—लेखक, श्रीयुत कुंजलाल 'रत्न', प्रकाशक, आदर्श-ग्रन्थ-प्रकाशक-कार्यालय, पारेश्वर मुहल्ला, झाँसी हैं। मूल्य =) है।

१—रघुवंश—अनुवादक, श्रीयुत रामप्रसाद सारस्वत, एम० ए०, एल० टी० हैं। पृष्ठ-संख्या ३८३, मूल्य १|||) है। पता—गणेशाश्रम बुकडिपो, मदियाकटरा, आगरा।

प्रस्तुत पुस्तक महाकवि कालिदास के रघुवंश-काव्य का पद्यबद्ध अनुवाद है। पुस्तक के प्रारम्भ में कालिदास के काल तथा जन्मभूमि के निर्णय करने का प्रयत्न किया गया है। इस विवेचन में महाकवि कालिदास की जन्म-भूमि कश्मीर बताई गई है तथा वे गुप्त-सम्राट चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के समकालीन सिद्ध किये गये हैं। इसके पश्चात् महाकाव्य रघुवंश की आलोचना तथा सर्ग-क्रमानुसार उसकी कथा संक्षेप में दी गई है। स्थान स्थान पर पाश्चात्य समालोचकों की समालोचनाओं का प्रबल युक्तियों से खण्डन करके रघुवंश महाकाव्य की विशेषताओं तथा त्रुटियों का सुन्दर विवेचन किया गया है। अनुवाद की भाषा बोल-चाल की है। तथापि स्थान स्थान पर संस्कृत-पदों का भी यथेष्ट मात्रा में प्रयोग हुआ है। प्रत्येक श्लोक को प्रायः उतने ही शब्दों में हिन्दी-भाषा में रूपान्तरित करने का प्रयत्न किया गया है। इसी कारण अनुवाद में संस्कृत के पदों तथा समासों का आश्रय लेना अनिवार्य-सा हो गया है। सम्पूर्ण महाकाव्य का हिन्दी में ऐसा पद्यबद्ध में अनुवाद अभी तक उपलब्ध नहीं था। यह कमी इस पुस्तक-द्वारा बहुत कुछ दूर हुई है। अनुवाद में महाकवि कालिदास के भावों की रक्षा का पूरा ध्यान रक्खा गया है और इस कार्य में अनुवादक को काफ़ी सफलता मिली है। पुस्तक के अन्त में कठिन पदों के अर्थ दे दिये गये हैं। पाठकों के विनोदार्थ हम नीचे मूल श्लोक तथा उनके अनुवाद उदाहरण-रूप दे रहे हैं—

क सूर्य-प्रभवो वंशः, क चाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुः दुस्तरं मोहाद्, उडुपेनास्मि सागरम् ॥१॥
कहाँ रवि-कुल! कहाँ मति अति तुच्छ! सिन्धु अपार।
चाहता हूँ मोह-वश, करना उडुप से पार ॥१॥
स्रगियं यदि जीवितापहा, हृदये किं निहिता न हन्ति माम्।
विषमप्यमृतं कचिद् भवेद्, अमृतं वा विषमीश्वरेच्छया॥
यदि हार प्राणहर है, तो उर-गत न मुझे क्यों हनता।
दैवेच्छा से विष अमृत, अमृत भी विष है बनता॥

हिन्दी-काव्य-रसिकों को इस हिन्दी-रघुवंश का संग्रह करना चाहिए।

२—समालोचना-तत्त्व—लेखक, श्रीयुत नलिनीमोहन सान्याल, एम० ए०, प्रकाशक, लाला रामनारायणलाल, पब्लिशर और बुकसेलर, इलाहाबाद हैं। मूल्य १||) है।

इस पुस्तक में समालोचना-तत्त्व, काव्य-रहस्य, कला-तत्त्व और रहस्यवाद-तत्त्व नामक चार विषयों पर लेखक महोदय ने निबन्ध लिखे हैं। इन निबन्धों में पूर्वीय और पश्चिमीय साहित्यज्ञों तथा दार्शनिकों के मतों को उद्धृत करते हुए उन्होंने अपने स्वतन्त्र विचारों को भी स्थान स्थान पर सन्निविष्ट किया है। साहित्यिक विषयों पर लिखे हुए ये सभी निबन्ध उच्च कोटि के हैं और पर्याप्त अध्ययन

तथा चिन्तन के परिणाम हैं। लेखक महोदय ने हिन्दी के कवियों का इनमें यथास्थान उल्लेख किया है तथा उनकी रचनाओं के उदाहरण भी दिये हैं। विश्व-विद्यालय के विद्यार्थियों के लिए इन निबन्धों में जानने योग्य प्रचुर सामग्री मिलेगी और आशा है, वे इनका पूर्ण उपयोग करेंगे।

इन निबन्धों की विषय-प्रतिपादन की शैली दार्शनिक है। भाषा कुछ क्लिष्ट है, परन्तु पाश्चात्य मनोविज्ञान के पारिभाषिक शब्दों का हिन्दी-रूपान्तर तथा विषय को दृष्टि में रखते हुए ऐसा होना अनिवार्य था। कहीं कहीं वाक्यों की रचना में सुधार की आवश्यकता है और छापे की अशुद्धियाँ भी जहाँ-तहाँ हैं।

'छोटी गल्प का स्वरूप' नामक निबन्ध में लेखक महोदय ने लिखा है कि "हिन्दी में छोटी गल्प (गल्पें) लिखी जा रही हैं, किन्तु उपर्युक्त कसौटी पर शायद एक आध ही ठहर सकें।" हिन्दी के गल्प-साहित्य की प्रगति से परिचित सहृदय साहित्य-सेवियों को उक्त सम्मति से सहमत होना, हम समझते हैं, कठिन होगा। ऐसी दो-एक त्रुटियों के होते हुए भी ग्रन्थ का महत्त्व कम नहीं होता। पुस्तक में विचार और मनन करने योग्य प्रचुर सामग्री है। आशा है, साहित्यिक निबन्ध-ग्रन्थों में यह पुस्तक उपयुक्त स्थान प्राप्त करेगी।

३—दि स्टोरी आफ़ मीराबाई—लेखक, श्रीयुत बाँकेबिहारी बी० एस-सी०, एल-एल० बी० हैं। पृष्ठ-संख्या ९६ है। प्रकाशक—गीता-प्रेस, गोरखपुर। मूल्य ||) है।

भक्तिमूर्ति मीराबाई के दिव्य और निर्मल चरित तथा प्रेम-रस में डूबी हुई उनकी पदावलियों से कौन परिचित नहीं है? इस पुस्तक में देवी मीरा की पावन कथा फड़कती हुई अँगरेज़ी में लिखी गई है। बीच बीच में मीरा के पद और उनका अँगरेज़ी अनुवाद दे देने से 'प्रेम की दीवानी' मीरा के हृदय के स्पन्दन का, उसकी उन्मादिनी भक्ति का परिचय पाठकों को सहज में हो जाता है। अँगरेज़ी-भाषा के भक्ति-रस के पिपासु पाठकों को इसका संग्रह करना चाहिए। सुन्दर छपाई, अनेक रंगीन चित्र तथा उत्तम काग़ज़ की दृष्टि से दस आने में यह पुस्तक सस्ती है।

४—आभास (काव्य)—लेखक, श्रीयुत बालकृष्ण राव, पृष्ठ-संख्या ३६ और मूल्य ||) है। प्रकाशक—कृष्णाराम मेहता, लीडर प्रेस, प्रयाग।

श्रीयुत बालकृष्ण राव ने अल्प समय में ही [illegible] काव्य में अच्छी ख्याति प्राप्त की है। 'आभास' [illegible] २९ कविताओं का संग्रह है। इसकी कविताओं में [illegible] की प्रतिभा तथा काव्योचित कला के उपादानों पर प्रौढ़ अधिकार सर्वत्र देख पड़ता है। यद्यपि इसकी कविताओं में भावों की अस्पष्टता है, तो भी इस अ[illegible] का कारण न कवि की शक्तिहीनता ही है और न [illegible] प्रतिभा-दारिद्र्य, किन्तु उसका कारण है ऐसे गम्भीर [illegible] का शब्दों में प्रकट करने की साधना, जो भाषा की [illegible] से परे की वस्तु है। विश्व की दृष्टि में जो अ[illegible] परिपूर्णता तथा सुख की कही जा सकती है उसी [illegible] अव्यक्त वेदना की सुन्दर अभिव्यक्ति कवि ने [illegible] कविता' में इस प्रकार की है—

"जब सुख के निर्मल नयनों में दुख के आँसू
आ जाते हैं, विमल व्योम से तारागण से,
भव्य भावना-भूमि दिव्य छविमय तब होकर
भर देती है मधुर विकलता सजनि, शान्ति में।

× × ×

नव भाषा में, लय में, छविमय शब्द-जाल में
हो जाती है व्याप्त काव्य की मूक रागिणी।

× ×

आ न सकी जो सजनि, मधुरिमा के प्रसार में
केवल वह अस्फुट ध्वनि ही है मेरी कविता।"

भाव, भाषा, कल्पना एवं हृदय की सत्य अनुभू[illegible] का अकृत्रिम चित्र अंकित करने की दृष्टि से इस पु[illegible] की कवितायें सुन्दर हैं। हमें विश्वास है, 'आभास' हि[illegible] काव्य-रसिकों में उचित आदर प्राप्त करेगा।

५—नर-भक्षी बकासुर अथवा बालविवा[illegible] मूल-लेखिका, मिस एलीनोर राथबोन, अनुवादक, डा[illegible] धनीराम प्रेम हैं, पृष्ठ-संख्या ८७ और मूल्य ||) है।

पता—रतन पब्लिशिंग हाउस, बम्बई नं० १४।

मिस राथबोन की पुस्तक में बाल-विवाह तथा [illegible] सभी कुप्रथाओं का वर्णन है जिनसे भारतीय ना[illegible] पीड़ित हैं। इन कुरीतियों के लिए मूल-लेखिका [illegible] अँगरेज़ी शासकों तथा भारतीय समाज दोनों को ही [illegible]

ठहराया है। अनुवादक महोदय ने इस उपयोगी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद करके भारतीय सुधारकों तथा भारतीय नारियों के सामने इन कुप्रथाओं के भयंकर परिणामों को रक्खा है। मूल-लेखिका ने इस विषय की संकलित सामग्री का अधिकांश जोशी-कमिटी की रिपोर्ट से लिया है तथा अपने अनुभवों का भी इसमें समावेश किया है। अनुवाद की भाषा सरल तथा सुबोध है। पुस्तक प्रत्येक भारत-हितैषी नर-नारी तथा समाज-सुधारक को पढ़नी चाहिए।

६—**संघ-व्यायाम और बोधक पत्र**—लेखक, राजरत्न प्रोफ़ेसर माणिकराव हैं। पता—विट्ठल क्रीडा-भवन, बड़ौदा। मूल्य ।) है।

बड़ौदा की 'श्री जुम्मादादा की व्यायामशाला' देश की एक ऐसी प्रसिद्ध संस्था है जिसके कितने ही विद्यार्थी आज विभिन्न संस्थाओं में व्यायाम के शिक्षक के रूप में कार्य कर रहे हैं। इस छोटी-सी पुस्तक में 'संघ-व्यायाम' के प्रचार के लिए लेखक महोदय ने क़वायद के अँगरेज़ी शब्दों का राष्ट्र-भाषा हिन्दी के शब्दों में रूपान्तर दिया है। इन हिन्दी शब्दों में उन्होंने सभी स्थानों पर आज्ञोपयोगी ओज और कड़क लाने का समुचित ध्यान रक्खा है और उन्हें इसमें काफ़ी सफलता भी मिली है। राष्ट्र की सरकारी तथा ग़ैर-सरकारी सभी संस्थाओं में इस संघ-व्यायाम की प्रणाली का प्रचार होना चाहिए। राष्ट्रीय सभा के स्वयं-सेवक-दल तथा अन्य सामूहिक रूप में ड्रिल तथा व्यायाम करनेवाली संस्थायें इस पुस्तक से लाभ उठा सकती हैं। पुस्तक में व्यायाम करने तथा जुम्मादादा की व्यायाम-शाला में प्रविष्ट होने के नियम भी दिये गये हैं।

७—**देवी जी का वरदान**—लेखक, श्रीयुत शक्तीश हैं। पता—ज्ञान-धर्म-प्रचार-ग्रन्थमाला, दारागंज, प्रयाग है। इसका मूल्य ─) है।

लेखक ने इस पुस्तक में दुर्गा-सप्तशती की कथा का सरल और सुबोध हिन्दी में वर्णन किया है। प्रत्येक अध्याय के शीर्षक के नीचे संक्षिप्त रूप में उसकी कथा के दे देने से साधारण लोग भी 'दुर्गा-सप्तशती' के विषय तथा कथानक का परिचय प्राप्त कर सकते हैं। धर्मार्थ बाँटने के लिए भी इस छोटी-सी पुस्तक का अच्छा उपयोग हो सकता है।

—कैलासचन्द्र शास्त्री, एम० ए०

८—**कृष्णाकुमारी**—लेखक, श्री अम्बिकादत्त त्रिपाठी, प्रकाशक, साहित्यसागर-कार्यालय, सुइथांकला, जौनपुर हैं। पृष्ठ-संख्या ४५ और मूल्य ।||) है।

यह कविता-पुस्तक है। इस पुस्तक में उदयपुर की इतिहास-प्रसिद्ध कृष्णाकुमारी की कथा का वर्णन किया गया है। इसमें भारत के तत्कालीन पारस्परिक झगड़ों पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है, जिनके कारण राजपूतों को अपनी लड़कियों के वध जैसे दुष्कर्म भी करने के लिए विवश होना पड़ता था। कृष्णाकुमारी जैसी सुशील, माता-पिता की आज्ञा की अनुगामिनी बालिका का चरित हमारे देश की लड़कियों के लिए आदर्श है। इसकी कवितायें रोचक और उत्साह-वर्धक हैं। सरल और सुबोध भी हैं।

९—**स्त्री-शिष्टाचार**—लेखिका, श्रीमती विशनदेवी, 'नन्दरानी' हैं। पृष्ठ-संख्या ८३ और मूल्य ।|) है। पता—श्री भगवानदास वर्म्मा, सिंह-भवन, ११० सिंहगली, मोहल्ला क़ानूनगोयान, भूड़, बरेली (यू० पी०)।

यह पुस्तक ५ अध्यायों में विभक्त है। पहले अध्याय में हिन्दू-समाज की दशा और दूसरे में भारत के क्षत्रिय-वंश पर प्रकाश डाला गया है। तीसरे में स्त्रियों के कर्त्तव्यों का विवेचन किया गया है। चौथे में भारत की उन्नति के उपाय बतलाये गये हैं। पाँचवें में कुछ भारतीय वीर महिलाओं के चरितों का वर्णन किया गया है। पुस्तक की भाषा शुद्ध तथा पढ़ने में रोचक है। छपाई आदि भी अच्छी है। स्त्रियों के लिए यह पुस्तक विशेष उपयोगी है।

— गंगासिंह

१०-१७—हिन्दी की कुछ नई पत्र-पत्रिकायें—

(१) **गीता-धर्म**—यह अध्यात्म-सम्बन्धी सचित्र मासिक पत्र है। 'कल्याण' के ढंग पर इसका प्रकाशन होता है। पर इसमें एक यह विशेषता है कि इसके संस्थापक स्वामी विद्यानन्द गीता-धर्म के मार्मिक ज्ञाता हैं और उनके अध्यात्म-सम्बन्धी अनुभवों का इसमें काफ़ी समावेश रहता है। इसके आठ अंक निकल चुके हैं और सभी 'विशेषांक' ही निकले हैं, जिनमें व्यासांक को हमने पढ़ा है, जो वास्तव में एक उपयोगी अंक निकला है। इसमें सनातन-धर्म-सम्बन्धी अनेक विषयों के लेख प्रकाशित होते हैं। धर्म-प्रेमियों को इस पत्र का संग्रह करना चाहिए। इसके सम्पादक पंडित पद्मनारायण आचार्य एम० ए० हैं। पृष्ठ-संख्या १०० और वार्षिक मूल्य ४) है। पता—मैनेजर, गीता-धर्म कार्यालय, साक्षीविनायक, काशी।

(२) **कला**—यह अपने नाम के अनुसार एक कला-पूर्ण स्त्रियोपयोगी पत्रिका है। सचित्र और विविध विषय-विभूषित एक उच्च कोटि की पत्रिका है। गृह-विज्ञान, हस्तकौशल, सौन्दर्य, विज्ञान, संगीत जैसे स्त्रियोपयोगी विषयों की इसमें प्रामाणिक चर्चा की जाती है। साहित्य की तो विशेषता है ही। इसका सम्पादन श्रीमती धनराजवती बख़्शी करती हैं। वार्षिक मूल्य ६) है। पता—मैनेजर 'कला', लालबाग़, लखनऊ।

(३) **बिजली**—यह एक साप्ताहिक पत्रिका है। इसका सम्पादन श्रीयुत प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' करते हैं। मुक्त जी सुकवि और सुलेखक हैं। यह बात उनकी 'बिजली' से भी झलकती है। इसमें कहानियों की अधिकता रहती है। मनोरञ्जन की सामग्री के साथ साथ इसमें देश-विदेश की यत्किंचित् चर्चा भी रहती है। अपने ढंग की यह एक नई साप्ताहिक पत्रिका है। इसका वार्षिक मूल्य ३) है। पता—मैनेजर, 'बिजली', बाँकीपुर (पटना)।

(४) **स्वास्थ्य**—यह स्वास्थ्य-सम्बन्धी एक नया मासिक पत्र है। इसमें गवेषणा-पूर्ण शास्त्रीय लेख तो रहते ही हैं, उनके सिवा रोगों के चिकित्सा-सम्बन्धी उपयोगी लेख भी रहते हैं। वैद्यों के लिए यह पत्र बड़े काम का है। दूसरे लोग भी इससे लाभ उठा सकते हैं। इसका वार्षिक मूल्य २) है। सम्पादक श्री भो० गो० कौशिक वैद्य और प्रकाशक बा० सूरजभानु गुप्त, इलेक्ट्रिक प्रेस, मथुरा हैं।

(५) **दीपक**—यह ग्रामोपयोगी पत्र है और वास्तव में एक ग्रामोपयोगी पत्र है। इसका प्रकाशन अबोहर के स्वामी केशवानन्द करते हैं। स्वामी जी ने अबोहर में 'साहित्य-सदन' नाम की संस्था खोलकर अबोहर तथा उसके आस-पास की देहात में पठन-पाठन की ख़ासी प्रवृत्ति लोगों में पैदा की है। अब इस पत्र-द्वारा वे ग्रामों में वास्तविक शिक्षा का प्रचार कर रहे हैं। इसमें ग्रामों के सम्बन्ध के अनेक तरह के उपयोगी लेख प्रकाशित होते हैं। इसके सम्पादक श्रीयुत तेगराम विशारद हैं। इसकी पृष्ठ-संख्या ४५ और वार्षिक मूल्य २) है। पता—प्रबन्धक, साहित्य-सदन, अबोहर (पंजाब)।

(६) **जीवन-सखा**—यह एक नये ढंग का मासिक पत्र है। इसमें भोजन-नियम, व्यायाम, बच्चों का पालन-पोषण, रोगों की सरल प्राकृतिक चिकित्सा इत्यादि स्वास्थ्य-सम्बन्धी और मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर प्रकाश डालनेवाले लेख प्रकाशित होते हैं। भाषा सरल है, जिससे साधारण पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ भी इसके लेखों को पढ़कर लाभ उठा सकती हैं। संपादक श्रीयुत जानकीशरण वर्मा और श्रीकृष्णनन्दनप्रसाद हैं। वार्षिक मूल्य ३) है। पता—श्रीयुत बालेश्वरप्रसादसिंह, नं० ३०, बाई का बाग़, इलाहाबाद।

(७) **दैनिक तेज (उर्दू) का कृष्णाङ्क**- खेद है कि दैनिक तेज (उर्दू) के कृष्णाङ्क का ज़िक्र हम इससे पहले नहीं कर सके। इसमें प्रसिद्ध लेखकों के गद्यपद्यमय लगभग १४० लेख संगृहीत हैं। लिखनेवालों में एशिया, योरप और अमरीका के कतिपय विद्वान् और प्रमुख व्यक्ति भी हैं। तिरङ्गे आवरण के अतिरिक्त इसमें तीन तिरङ्गे और एक सादा चित्र आर्ट पेपर पर है। कृष्ण और सुदामा के मिलन का चित्र बहुत ही भावपूर्ण है। लेखों का विषय बहुत व्यापक है। वे वैदिक काल से लेकर आधुनिक युग तक के हमारे राष्ट्रीय जीवन के विविध स्वरूपों पर प्रकाश डालते हैं। इन सब विशेषताओं के होते हुए भी इस २०० पृष्ठ के सर्वाङ्ग-सुन्दर अङ्क का मूल्य केवल ।=) है। आशा है, उर्दू-प्रेमी इससे अवश्य लाभ उठायेंगे। पता—मैनेजर, तेज, श्रद्धानन्द बाज़ार, दिल्ली।

(८) **दूध-बताशा**—यह बालोपयोगी सचित्र मासिक पत्र है। अच्छा पत्र निकला है। सम्पादक श्रीयुत कुमार हैं। वार्षिक मूल्य २||) है। पता—मैनेजर दूध-बताशा, १६१।१ हरीसन रोड, कलकत्ता।

जाग्रत नारियाँ



यदि स्त्रियों का राज्य होता

पेरिस में होनेवाली अन्तर्राष्ट्रीय महिला-कांग्रेस में लगभग २० देशों की स्त्रियों ने एक सप्ताह तक इस विषय पर वाद-विवाद किया कि यदि स्त्रियों का राज्य होता तो क्या होता।

इस कांग्रेस में इँग्लेंड का प्रतिनिधित्व श्रीमती मेवोन्डो मिडिल्टन ने किया था तथा संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका का प्रतिनिधित्व मज़दूर-विभाग की मंत्री कुमारी फ्रांसेज़ पर्किन्स और व्यवसायी महिलाओं के अन्तर्राष्ट्रीय संघ की अध्यक्षा कुमारी लीना मेडीसन फ़िलिप्स ने किया था।

श्रीमती मिडिल्टन ने कहा कि यदि मैं अपने देश की डिक्टेटर होती तो इँग्लेंड के पेड़ों और ग्रामों पर विशेष ध्यान देती। आपने कहा कि मैं बेकारी दूर करने का भी प्रयत्न करती, परन्तु यह नहीं बतला सकती कि मेरी योजना का रूप किस तरह का होता।

आपने आगे कहा—यदि मैं योरप की डिक्टेटर बना दी जाती तो स्त्री की हैसियत से सबसे पहले मैं स्थायी शान्ति की स्थापना करने का प्रयत्न करती और इसके लिए मैं निम्न नियम बनाती—

(१) आपस की ग़लतफ़हमी हटाने के लिए मैं यह अनिवार्य्य कर देती कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष सभी देशों का भ्रमण करके वहाँ के लोगों से मिले।

(२) भूतकाल के डिक्टेटरों के पदचिह्नों पर चलकर (क्योंकि वे अपनी सन्तान का विवाह-सम्बन्ध अन्य डिक्टेटरों की सन्तान से कर दिया करते थे) मैं प्रत्येक योरपीय राष्ट्र के युवक-युवतियों में से ३ प्रतिशत का सम्बन्ध दूसरे योरपीय राष्ट्र के ३ प्रतिशत युवक-युवतियों से करा देती।



[कुमारी पेरिन जमशेद जी मिस्त्री (बम्बई)। ये प्रथम भारतीय महिला हैं, जिन्होंने गृह-निर्माण-कला में विशेष योग्यता प्राप्त की है और जी॰ डी॰ आर्क॰ की डिग्री प्राप्त की है।]

श्रीमती मिडिल्टन ने आगे कहा कि यदि हम लोगों



[प्रयाग की श्रीमती रामदुलारी जिन्होंने चालीस हज़ार रुपये व्यय करके शहर के बीच में एक अप-टु-डेट धर्मशाला बनवाई है। उसका उद्घाटन हाल में ही लीडर-सम्पादक श्रीयुत सी॰ वाई॰ चिन्तामणि ने किया है।]

का आपस में सम्बन्ध स्थापित हो जाय तो इस समस्या का हल एकबारगी ही हो जाय। यद्यपि हम अपने मामामियों से घृणा तो कर सकते हैं, किन्तु उन्हें गोली नहीं मार देंगे।

कुमारी पर्किन्स ने कहा कि हमें अपनी सफलताओं का महत्त्व उचित से अधिक लगाकर न देखना चाहिए। यदि स्त्रियों को शासनाधिकार मिला तो उनका पहला कार्य पुरुषों को उसमें हाथ बँटाने के लिए निमंत्रण देना होगा। आपने आगे कहा कि स्त्रियाँ तो जीवन की संस्कृति और कला से सम्बन्ध रखनेवाले भाग की ही तरफ़ अधिक झुकेंगी। शिशुओं की रक्षा इत्यादि कार्यों पर वे विशेष ध्यान देंगी। परन्तु मानव-जाति के दूसरे भाग के सहयोग के बिना हम अकेली ही शासन करना नहीं चाहतीं, क्योंकि मानव-समाज का हित पुरुष भी चाहते हैं। ('भारत' से)

लड़कियों को गांधी जी की सलाह

महात्मा गांधी 'हरिजन-सेवक' में लिखते हैं —

एक महिला लिखती है—आपका "ऐसी मुसीबत जिससे बच सकते हैं" शीर्षक मुझे अधूरा-सा लगता है। माता-पिता अपनी लड़कियों की शादी करने का क्यों आग्रह रखते हैं और फिर उसके लिए ऐसी अकथनीय मुसीबतें क्यों उठाते हैं? अगर वे अपनी लड़कियों को भी लड़कों की तरह ऐसी शिक्षा देने लग जायें जिससे कि वे स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी आजीविका भी कमाने लगें तो उन्हें लड़कियों के लिए वर तलाश करने में इतना कष्ट और चिन्तायें न करनी पड़ें। मेरा अपना तो यह अनुभव है कि जब लड़कियों को अपनी मानसिक उन्नति करने का अवकाश मिल जाता है और वे इज़्ज़त के साथ अपना भरण-पोषण करने लायक़ हो जाती हैं तब अगर वे शादी करना चाहती हैं तो उन्हें अपने लायक़ वर तलाशने में कोई कठिनाई नहीं उठानी पड़ती। मेरे कहने का कोई यह अर्थ न लगाये कि लड़कियों को आज-कल की तथोक्त उच्च शिक्षा देने की मैं सिफ़ारिश कर रही हूँ। मैं जानती हूँ कि वह तो हज़ारों लड़कियों के लिए अप्राप्य ही है। मेरा



[कानपुर की श्रीमती अग्नेस शा जिन्हें संयुक्त-प्रान्त की सरकार ने मिलों और कारख़ानों की आनरेरी इन्स्पेक्ट्रेस नियुक्त किया है।]



[डाक्टर कुमारी काशीबाई नौरंग और डाक्टर कुमारी सुलोचना श्रीखण्डे (लेडी हार्डिंग कालेज दिल्ली) चिकित्सा-पद्धति में उच्च शिक्षा प्राप्त करने हाल में विलायत गई हैं।]

तो मतलब यह है कि लड़कियों को उपयोगी ज्ञान के साथ-साथ किसी ऐसे धन्धे की शिक्षा भी दी जाय जिससे उन्हें यह पूरा विश्वास हो जाय कि वे अपने माता-पिता या पति की निरी आश्रिता बनकर नहीं रहेंगी, बल्कि अगर मौक़ा आया तो संसार में अपने पैरों पर खड़ी रह सकती हैं। हाँ मैं तो ऐसी भी कुछ लड़कियों को जानती हूँ जो पति-द्वारा छोड़ दिये जाने पर आज फिर अपने पतियों के साथ सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत कर रही हैं, क्योंकि परित्यक्ता की दशा में उन्हें सद्भाव से स्वाश्रयी बनने तथा अन्य उपयोगी शिक्षा पाने का अवसर मिल गया था। विवाह-योग्य कन्याओं के माता-पिताओं की कठिनाइयों का विचार करते समय, आप सवाल के इस पहलू पर भी ज़ोर दें तो बड़ा अच्छा हो।"

पत्र-भेजनेवाली महिला ने जो भाव प्रकट किये हैं उनका मैं हृदय से समर्थन करता हूँ। मुझे तो एक ऐसे पिता के मामले पर विचार करना था जिसने अपने आप को बड़ी मुसीबत में डाल लिया था—इसलिए नहीं कि उनकी लड़की अयोग्य थी, बल्कि इसलिए कि वे और शायद उनकी लड़की भी वर का चुनाव अपनी जाति के छोटे-से दायरे में ही करना चाहते थे। इस मामले में तो लड़की का सुयोग्य होना ही एक विघ्न साबित हो रहा था। अगर लड़की निरक्षर होती तो हर किसी युवक के अनुकूल अपने को बना लेती। पर चूँकि ख़ुद सुशिक्षिता थी, इसलिए सम्भवतः उसके लिए उतने ही सुयोग्य वर की भी ज़रूरत थी। समाज में दुर्भाग्यवश किसी लड़की की शादी करने के लिए क़ीमत के बतौर रुपये माँगना नीचता और निश्चित रूप से बुराई नहीं मानते। कालेज की अँगरेज़ी शिक्षा को ख़ामख़ा इतना अधिक कृत्रिम महत्त्व प्रदान कर दिया गया है। उसमें तो न जाने कितने पाप छिपे रहते हैं। जिन वर्गों के युवकों में लड़कियों से शादी करने के प्रस्ताव मंज़ूर करने पर क़ीमतें माँगी जाती हैं, बड़ा अच्छा होता अगर उसमें सुयोग्यता की परिभाषा बनाने में कुछ अधिक अक़्ल से काम लिया जाता। ऐसा होता तो लड़कियों के लिए वर ढूँढ़ने की चिन्ता अगर पूरी तरह न भी दूर होती तो कम-से-कम काफ़ी घट जाती। इसलिए पाठकों से मैं सिफ़ारिश करूँगा कि वे इन पत्र-प्रेषक महिला के विचारों पर ज़रूर ग़ौर करें। पर साथ ही, जात-पाँत की इन महान् हानिकारक बाड़ों को भी तोड़ने की उन्हें मैं ज़ोरों से सलाह दूँगा। ये बाड़ें तोड़ने पर चुनाव के लिए एक विशाल क्षेत्र खुल जायगा और यह पैसे ठहराने की बुराई बहुत हद तक अपने-आप कम हो जायगी।

कुछ इधर उधर की

कुछ लोग ऐसे हैं जो दूसरों को शिष्ट भाषा का प्रयोग करने की बराबर सलाह देते रहते हैं। पंडित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी और पंडित रामनरेश त्रिपाठी ऐसे लोगों में अग्रगण्य हैं। नीचे हम इनकी शिष्टशब्दावली का एक नमूना उद्धृत करते हैं।

त्रिपाठी जी के 'रामचरितमानस' की आलोचना लिखते हुए वाजपेयी जी 'विशाल भारत' में लिखते हैं—

"रामायण पढ़ने और सन्दिग्ध तथा वादग्रस्त स्थानों के अर्थ देखने की जब नौबत आई तब ऐसा मालूम हुआ कि उन्होंने (त्रिपाठी जी ने) गुड़ दिखाकर ईंट मार दी अथवा ठग दूकानदार की तरह बढ़िया नमूना दिखाकर घटिया माल दे दिया।"

इस आलोचना का जो उत्तर त्रिपाठी जी ने 'भारत' में छपवाया है उसमें वे लिखते हैं—

"वाजपेयी जी एक चतुर कतरनपंथी संपादक रह चुके हैं। वे किस बिरते पर मुझे अनधिकारी कहते हैं! न तो वे तुलसीदास के प्राइवेट सेक्रेटरी थे, न तुलसीदास की आत्मा ही उनके अन्दर से बोल रही है। अटकलपच्चू बातें वे 'विशाल भारत' के किन मूर्ख पाठकों के लिए लिख रहे हैं।"

शिष्टता के इन दोनों प्रचारकों की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है!

× × × ×

हिन्दी-कविता में आज-कल करुणरागिनी ख़ूब छिड़ी हुई है। विश्वभारती के एक प्रोफ़ेसर ने हिसाब लगाकर देखा है कि ऐसी कविताओं की संख्या ६५ प्रतिशत है। पर कतिपय विद्वानों का कहना है कि यह ९५ प्रतिशत तक हो तो कोई आश्चर्य नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि देश की वर्तमान स्थिति में कवियों का यह निराशापूर्ण करुणगान सर्वथा स्वाभाविक है। तथापि अधिक लोग इस प्रकार की कविता के विरुद्ध हैं और वे कवियों से ऐसी कविताओं की माँग कर रहे हैं जिनमें निराश रुदन नहीं, देश को ऊँचे उठानेवाले आशापूर्ण भाव हों। ऐसे लोग इन रुदन-पंथी कवियों को बड़ी हीन दृष्टि से देखते हैं।

× × × ×

यह प्रसन्नता की बात है कि इन कवियों की सहायता के लिए कानपुर के प्रसिद्ध आशावादी राष्ट्रीय गायक श्री सनेही जी मैदान में आ डटे हैं। अपने इन समकालीन मित्रों को ललकारते हुए सनेही जी ने 'वर्तमान' में एक कविता छपाई है, जिसका तात्पर्य यह है कि रोगी यावज्जीवन रोते रहो और किसी की क़तई परवा न करो। सनेही जी की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

ऐ रोनेवाले! रोये जा, तू रोये जा, तू रोये जा॥
जब दुनिया तुझ पर हँसती हो, फबती पर फबती कसती हो,
इतनी तो तुझमें मस्ती हो, तू अपनी नाव डुबोये जा।
ऐ रोनेवाले! रोये जा, तू रोये जा, तू रोये जा॥१॥
जब वीर समर में लड़ते हों, जीने के लाले पड़ते हों,
दुश्मन के पैर उखड़ते हों, रो रोने में दिन खोये जा।
ऐ रोनेवाले! रोये जा, तू रोये जा, तू रोये जा॥२॥

× × × ×

सनेही जी के उत्तर में श्री अबोध जी 'वर्तमान' में लिखते हैं—

किया अगर परिचय है तो अब अपने साथ लगाये चल।
सो न जाय चिर प्यासी पीड़ा करके कृपा जगाये चल॥
बार-बार पीछे मुड़ मुड़ कर देख न ये गीली आँखें।
ओ मेरे गर्वीले गायक! गाये चल तू गाये चल॥
है तेरा आदेश कि निज पग, पग के साथ मिलाये चल।
भूत भगाकर वर्तमान से हृदय-सरोज खिलाये चल॥
मधु-ऋतु के बढ़ते दिवसों में बन जा अधिक उदारमना।

पी मत स्वयं किन्तु प्यासों को तू दिल खोल पिलाये चल ॥
दिखा नहीं रे ! अपने दिल का गहरा घाव छिपाये चल ।
हैं सुख-दुख आरोह और अवरोह, न जान खपाये चल ॥
खोये चल सब खोये चल तू किन्तु न कुछ भी पाये चल ।
ओ मेरे गर्वीले गायक ! गाये चल, तू गाये चल !

पर नक्कारख़ाने में इस तूती की आवाज़ को कौन सुनेगा ।

× × × ×

'वर्तमान' में एक इंट्रेंसपास महोदय ने विज्ञापन छपवाया है कि उ काम चाहिए । ट्यूशन या स्कूल अध्यापकी मिले तो वे उसे अधिक पसन्द करेंगे । अपनी विशेषताओं का ज़िक्र करते हुए उन्होंने तैरना, घुड़सवारी, मोटरसाइकिल और हाकी, फ़ुटबाल इत्यादि के ज्ञान रखने का ख़ास तौर से ज़िक्र किया है । उन्होंने यह नहीं सोचा कि इन ख़ूबियों का ज़िक्र सुनते ही जो लोग उन्हें अपने लड़कों को पढ़ाने के लिए रखनेवाले होंगे वे भी भड़क जायँगे, क्योंकि इन चीज़ों में तो उनके लड़के स्वयं ही दक्ष होंगे । यदि विज्ञापक महोदय अपनी मनहूसियत, एक जगह पर घंटों बैठे रहने की आदत इत्यादि का ज़िक्र करते तो शायद अधिक कामयाब होते ।

× × × ×

बहुत-से विज्ञापनदाता पाठकों की यह आदत समझ गये हैं कि वे विज्ञापन नहीं पढ़ते, इसलिए उन्हें वे इस तरह छपवाते हैं कि विज्ञापन कदापि न पढ़नेवाले लोग भी कभी कभी धोखा खा जाते हैं और उन्हें पढ़ ही लेते हैं । उदाहरण के लिए अभी हाल में 'स्टेट्समैन' में एक छोटा-सा विज्ञापन छपा था । उसकी पहली लाइन इस प्रकार थी—"प्यारे ईथल ! अब तुम घर लौट आओ ।" इसे पढ़कर हमने अनुमान लगाया कि ईथल नाम का कोई व्यक्ति घर से कहीं भाग गया है और उसके दुःखी सम्बन्धी उसे वापस बुला रहे हैं । परन्तु हमारा भ्रम दूर हो गया जब हमने आगे पढ़ा—"हमने ... ..(एक दवा का नाम) की सहायता से खटमलों और मच्छरों को मार भगाया है ।"

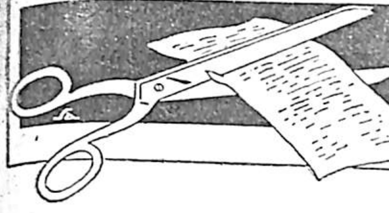
× × × ×

एक कहावत है कि शारीरिक परिश्रम करनेवाले मिट्टी के ढेलों पर भी जैसी गाढ़ी निद्रा का आनन्द लेते हैं, वैसी निद्रा सम्पन्न व्यक्तियों को लाख यत्न करने पर भी नसीब नहीं होती । कलकत्ते के प्रसिद्ध सेठ श्री रामजीदास बाजोरिया जी इस कहावत के एक उदाहरण हैं । आपको बहुत दिनों से उन्निद्र रोग है और नींद लाने के सारे उपाय विफल गये हैं । आपने घोषणा की थी कि जो व्यक्ति आपको निद्रा ला देगा उसे आप २० हज़ार रुपया इनाम देंगे । इस घोषणा को पढ़कर विलायत से एक विशेषज्ञ डाक्टर आपका इलाज करने आ रहे हैं । ऐसी घटनायें हमें यह संकेत करती हैं कि वास्तविक सुख और आनन्द के लिए धन की उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी शारीरिक स्वास्थ्य की ।

× × × ×

सीलोन के निगम्बो नामक स्थान में एक लड़की को ३ व्यक्तियों ने उसके घरवालों की प्रेरणा से कोड़े मार-मार कर स्वर्गलोक पहुँचा दिया । लड़की का दिमाग़ कुछ ख़राब हो गया था, पर घरवालों ने समझा कि उसे भूत लगा है । ये तीनों व्यक्ति चिकित्सक थे । ये चिकित्सक अब पकड़े गये हैं और उन पर हत्या करने का बाक़ायदा मुक़दमा चलाया गया है । परीक्षा करने के बाद डाक्टर ने लड़की के शरीर पर कोड़ों की मार के १९२ दाग़ मालूम किये हैं । इस प्रकार के अन्धविश्वास हमारे देश में भी प्रचलित हैं और रोगियों को ऐसे चिकित्सकों से कष्ट भोगना पड़ता है । क्या अच्छा हो कि लोकोपयोगी क़ानून बनवानेवाले लोग इधर भी ध्यान दें और ऐसे नीम हकीमों से जनता की रक्षा करें ।

× × × ×



सामयिक साहित्य

महात्मा गांधी की विचार-धारा

'हरिजन-सेवक' में श्रीयुत महादेव देसाई 'साप्ताहिक पत्र' शीर्षक से प्रतिसप्ताह एक सुन्दर लेख लिखते हैं और उसमें महात्मा गांधी के समय समय पर प्रकट किये गये विचारों का सङ्कलन करते हैं । हाल में प्रकाशित एक ऐसे ही पत्र का एक सुन्दर अंश यहाँ हम उद्धृत करते हैं—

उस दिन एक पंडित जी सेगाँव पहुँचे । गांधी जी से उनका परिचय कराते समय कहा गया कि इन्होंने शास्त्रों का अच्छा अभ्यास किया है और गीता पर ये क्रम-बद्ध प्रवचन करते हैं । गांधी जी ने उनसे पूछा कि क्या गीता में अस्पृश्यता के पक्ष में कोई प्रमाण मिलता है । पंडित जी के कथनानुसार ऐसा मालूम हुआ कि यह तो अस्पृश्य की परिभाषा पर निर्भर करता है । उन्होंने कहा—"अस्पृश्य तो वह है, जो बुरी-बुरी बातें सोचता है, गंदे या कटु-शब्द मुँह से निकालता है और कुकर्मों में प्रवृत्त रहता है, अर्थात् मन, वचन और कर्म से जो पाप-रत है । गीता के अनुसार अस्पृश्य ऐसा ही व्यक्ति कहा जायगा ।"

"पर इस दृष्टि से विचार किया जाय तो हममें से हर एक अस्पृश्य है । ऐसा यहाँ कौन है जो पाप-रहित हो ? मैं ज़रा पूछ तो लूँ । क्यों तुकड़े महाराज, आप पाप-रहित हैं ?"

"नहीं, किसी प्रकार नहीं ।"

"तब ख़ाँ साहब, कहिए, आप क्या कहते हैं ।" ख़ाँ साहब अब्दुल गफ़्फ़ारख़ाँ आज-कल सेगाँव-आश्रम में ही रहते हैं ।

"मैं भी यही कहूँगा । बे-गुनाह होने का दावा कौन कर सकता है ?" उन्होंने कहा ।

"तब इसका मतलब हुआ कि हम सभी अस्पृश्य हैं । कुछ भी हो, अच्छा तो यही है कि हम अपने को दूसरों से कम पवित्र समझें, क्योंकि जितना हमें अपने बारे में पता है उतना दूसरों के बारे में नहीं, और दूसरों के दोष निकालनेवाले हम होते कौन हैं ?" गांधी जी ने कहा ।

"इसी से तो भक्त सूरदास अपना अन्तर्निरीक्षण करते हुए गा रहे हैं, 'मोसम कौन कुटिल खल कामी ।'"

"किन्तु तब क्या इन त्रिविध पापों से शुद्ध होने के लिए शास्त्रों की सहायता आवश्यक नहीं है ?" पंडित जी ने कहा ।

"हाँ, है ।" गांधी जी ने कहा, "पर मैं ऐसे किसी शास्त्र को प्रामाण्य नहीं मानता जो अस्पृश्यता का समर्थन करता हो, अर्थात् मनुष्यों के विशेष वर्गों को जन्म से अस्पृश्य मानता हो । ऐसा शास्त्र भला हमें पापों से उबारेगा ? अरे, वह तो हमें पाप-पंक में उलटा डुबायेगा ।"

× × × ×

एक दूसरा साधु, जो हरिजनों का नेता है, एक दिन एक विचित्र-सी पहेली लेकर पहुँचा । कूट प्रश्न उसका यह था—"ईश्वर को जब हम जानते ही नहीं तब फिर उसकी सेवा हम कैसे कर सकते हैं ?"

"ईश्वर को हम भले ही न जानें, पर उसकी रची हुई सृष्टि को तो हम जानते हैं ।" गांधी जी ने कहा—"और सृष्टि की सेवा उस सिरजनहार की ही सेवा है ।"

"पर सिरजनहार की समस्त सृष्टि की हम किस प्रकार सेवा कर सकते हैं ?"

"हम केवल परमात्मा की सृष्टि के उस भाग की सेवा कर सकते हैं जो हमारे सबसे अधिक नज़दीक हो और जिसके विषय में हमें अधिक-से-अधिक ज्ञान हो । आरम्भ हम इसका अपने सबसे नज़दीकी पड़ोसी से कर सकते हैं । हमारा आँगन साफ़ है, बस इतने से ही हमें सन्तोष नहीं मान लेना चाहिए । हमें यह भी देखना चाहिए कि हमारे पड़ोसी का आँगन भी साफ़ है न । हम अपने कुटुम्ब की सेवा करें, पर कुटुम्ब के स्वार्थ की ख़ातिर गाँव को क़ुर्बान न कर दें । गाँव की इज़्ज़त-आबरू बनाये रखने

ो हमारी मान-प्रतिष्ठा है। लेकिन हम सबको अपनी-पनी मर्यादायें समझ लेनी चाहिए। जिस दुनिया में म रहते हैं उसका हमें जो ज्ञान है उससे हमारी सेवा-क्ति या योग्यता स्वतः ही मर्यादित है। पर इसे मैं सरल सरल शब्दों में कह दूँ। जितना ख़याल हम अपना ते हैं, अपने पड़ोसी का उससे ज़्यादा ख़याल रक्खें। पने आँगन का कूड़ा-कचरा अपने पड़ोस में डाल देना, ह मानवजाति की सेवा नहीं, असेवा है। इसलिए पने पड़ोसियों की सेवा से ही हमें परमात्मा की सेवा का ारम्भ करना चाहिए।"

भावाल-संन्यासी-केस का फ़ैसला

ढाका में इधर कई वर्षों से भावाल-संन्यासी-स नाम से प्रसिद्ध एक बड़ा ही सनसनीदार मुक़द्दमा ल रहा था। इसका विवरण यथासमय हम सरस्वती' में छाप चुके हैं। एक संन्यासी का यह ावा था कि वह भावाल का द्वितीय राज-ुमार है और उसे उसका राज्य मिलना चाहिए। ाल में इस मुक़द्दमे का फ़ैसला हो गया है और ज ने अपने फ़ैसले में संन्यासी को राजकुमार ोपित कर दिया है और राज्य में से उसे एक तिहाई हस्सा दिलवाया है। इस मुक़द्दमे का संक्षेप विव-ण नीचे हम 'प्रताप' से उद्धृत करते हैं—

भावाल-संन्यासी-केस सन् १९३३ के २७ नवम्बर को ारम्भ हुआ था। तब से लगातार रोज़ इस मुक़द्दमे की शियाँ होती रहीं। मुद्दई की ओर से १,००० और मुद्दा-ेह की ओर से ५०० गवाहों ने बयान दिये।

उक्त मुक़द्दमे के मुद्दई ने यह दावा किया था—

"मैं ढाका के भावालराज्य के स्वर्गीय राजा राजेन्द्र-ारायण राय का द्वितीय पुत्र कुमार रमेन्द्रनारायण ाय हूँ।

"मैं १९०९ में बीमार रहा करता था। उसी साल ाबहवा बदलने के लिए मैं दार्जिलिंग गया। वहाँ मेरी त्नी रानी विभावती देवी, उसके भाई रायबहादुर सत्येन्द्र-ाथ और राजपरिवार के डाक्टर आशु ने मेरी हत्या ा षड्यन्त्र रचा। हत्या करने के इरादे से दवा खिलाने के बहाने मुझे संखिया दे दिया गया। संखिया खा लेने के कारण मैं चेतनाशून्य हो गया। षड्यन्त्रकारियों ने समझा कि मेरी मृत्यु हो गई। इसलिए मेरा शरीर अन्तिम संस्कार के लिए श्मशान ले जाया गया। श्मशान में अचानक तूफ़ान आ गया और ज़ोरों से पानी बरसने लगा। इसके कारण मेरे शरीर के साथ जो लोग श्मशान आये थे वे चिता को जलाये बिना वहाँ से चले गये।

"जिस समय मैं बेहोशी की हालत में चिता पर पड़ा हुआ था, वहाँ पर कुछ नागा संन्यासी आ गये। उन्होंने मेरे देह के शरीर में स्पन्दन होता देख मुझे चिता से उठाया और इस प्रकार मेरा उद्धार हुआ। मैं इन संन्यासियों के साथ भारत और नैपाल के विभिन्न भागों में १३ वर्ष तक घूमता रहा। संखिया के ज़हर के कारण मैं पागल हो गया था। संन्यासियों ने मेरी चिकित्सा की और १९२२ में मुझे अपने जन्म-स्थान, परिवार आदि का होश आया।"

भावाल-संन्यासी-केस की प्रमुख प्रतिवादिनी (मुद्दा-लेह) थीं रानी विभावती देवी, जिनका विवाह स्वर्गीय राजा राजेन्द्रनारायण राय के द्वितीय पुत्र कुमार रमेन्द्र-नारायण के साथ हुआ था। रानी विभावती की ओर से यह जवाबदेही की गई कि मुद्दई मेरा पति नहीं है; वह सुन्दरदास नागा नामक एक पञ्जाबी साधु है और जाल करके भावाल-रियासत को प्राप्त करना चाहता है। मेरे पति भावाल के द्वितीय कुमार १९०९ में दार्जिलिंग में मर गये थे और उनके मृत शरीर का विधिवत् अन्तिम संस्कार भी किया गया था।

उक्त मुक़द्दमे के प्रारम्भ से अन्त तक जनता ने इसमें बहुत अधिक दिलचस्पी ली। बंगाल के समाचारपत्रों ने लगातार २॥ वर्ष तक विस्तारपूर्वक इस मुक़द्दमे की कार्यवाही प्रकाशित की।

इस मुक़द्दमे में दो हज़ार से अधिक दस्तावेज़ वग़ैरह पेश किये गये, जिनमें लगभग १०० फ़ोटो थे। जिन १,५०० गवाहों ने वादी अथवा प्रतिवादी की ओर से बयान दिये उनमें सभी श्रेणियों के व्यक्ति थे। भारतीय सिविल सर्विस के सदस्य, बैरिस्टर, डाक्टर, ज़मींदार, व्यापारी, महाजन, मछुए, सईस आदि लोग गवाहों में शामिल थे। यहाँ तक कि कुछ वेश्याओं तक ने गवाही दी थी। मुद्दालेह की ओर से ढाका के भूतपूर्व कमिश्नर मिस्टर जे० टी० रैन्किन आई० सी० एस० [पेन्शनर] इँग्लेंड से गवाही देने आये थे। गवाही देने के बाद वे अपने इज़हार पर दस्तख़त भी न कर पाये थे कि उनकी मृत्यु हो गई। एक दूसरे गवाह रायसाहब महताब घोष डिप्टीकलक्टर ने गवाही देने के बाद आत्महत्या कर ली। जिस समय इस मुक़द्दमे की सुनवाई हो रही थी, उस समय इसकी कार्यवाही को प्रका-शित करने के लिए ढाका से चार दैनिक समाचार निकाले गये थे। इनमें से एक का नाम 'दैनिक भावाल' था। इस मुक़द्दमे में मुद्दालेह के वकील मिस्टर ए० एन० चौधरी ने २३ फ़रवरी से ४ मार्च तक अथवा लगभग तीन दो महीने और मुद्दई की ओर से मिस्टर बी० सी० चटर्जी ने १ अप्रैल से २० मई तक अर्थात् १ महीना २० दिन तक बहस की थी।

विशेषज्ञ जज मिस्टर पन्नालाल ने ५३२ पन्नों के अपने फ़ैसले में लिखा है—"मैंने पूरी शहादत पर अच्छी तरह से ग़ौर किया है। मुद्दई की शिनाख़्त के बारे में सभी श्रेणियों के ईमानदार स्त्री-पुरुषों ने जो प्रत्यक्ष शहादत दी है, मुझे उस पर विश्वास है। किसी जाली व्यक्ति के बारे में ये लोग झूठी गवाही देंगे, यह मुझे असम्भव मालूम होता है। आरम्भ से अन्त तक मुद्दई का व्यवहार सन्देह-रहित रहा है। मुद्दई के साले रायबहादुर सत्येन्द्र-नाथ बनर्जी ने इस बात को जानते हुए भी कि मुद्दई वास्तव में मँझला कुमार है, उसका विरोध किया। मुद्दई का वापस आना रायबहादुर के लिए बड़ी विपत्ति थी और इसलिए उन्होंने कुमार की मृत्यु सिद्ध करने के लिए अपनी पूर्ण शक्ति लगा दी। रायबहादुर के कहने पर ढाका के कलक्टर ने मुद्दई को जाली व्यक्ति क़रार दे दिया था। यदि मुद्दई जाली होता; तो वह इस घोषणा के आगे टिक नहीं सकता था। कलक्टर की इस घोषणा के कारण लोगों की यह धारणा हो गई थी कि मुक़द्दमा वास्तव में मुद्दई और रानी के बीच में नहीं, बल्कि मुद्दई और सरकार के बीच लड़ा जा रहा है। इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि मुद्दई ने संन्यास की पूरी दीक्षा ली थी और इसलिए वह 'मृतक' के समान है।"

पंडित जवाहरलाल नेहरू और कौंसिलों का चुनाव

कांग्रेस ने इस बार कौंसिलों पर क़ब्ज़ा करने का निश्चय कर लिया है और स्वयं राष्ट्रपति पंडित जवाहरलाल नेहरू ने जिनके बारे में माडरेटों का यह ख़याल था कि वे इस ओर उदासीनता प्रकट करेंगे, व्यापक आन्दोलन आरम्भ कर दिया है। हाल में उन्होंने संयुक्त-प्रान्त के शहरों और गाँवों में दौरा



[पंडित जवाहरलाल नेहरू]

करके कांग्रेस के पक्ष को बहुत प्रबल बना दिया है। यहाँ हम 'हिन्दुस्तान' से उनके एक भाषण के कुछ अंश उद्धृत करते हैं—

स्वराज्य का अर्थ आप यह न समझें कि जैसे देशी राजे और नवाब हमारे देश में हैं हम वैसा ही राज्य चाहते हैं, और न इसका मतलब यह है कि बड़े बड़े ओहदों पर हमारे लोग नौकर हो जायँ। वर्तमान शासन-व्यवस्था में गवर्नर और वायसराय हो जाने पर भी हमारे लोग कुछ नहीं कर सकते। हमारे देशवासी इन पदों पर आज भी हैं। एक खद्दरधारी सज्जन गवर्नर हैं, गांधी टोपी लगाते

हैं। हमें ऐसा राज्य चाहिए, जिसमें हमारा अधिकार हो, जो लोक-तंत्रवाद पर बना हो और जो हमारा विश्वास कर सके।

आज तो सरकार कांग्रेस से चिढ़ रही है। मैंने सुना है कि आगामी चुनाव में वह उम्मीदवारों के विरोध में अपने उम्मीदवार खड़े कर रही है। सरकार को तो ऐसा करना ही है। हर एक विदेशी सत्ता यही करेगी, लेकिन बेशर्म तो हम हैं, जो सरकार के हाथ की कठपुतली बनते हैं। सरकार को ऐसे उम्मीदवार खड़ा करने दीजिए, परन्तु आप उन देशद्रोहियों को हर्गिज़ वोट न दीजिए। कांग्रेस के उम्मीदवार कौंसिल में जाकर आपको सच्चा मार्ग दिखायेंगे।

हमें आज़ादी की जो लड़ाई लड़नी है वह कौंसिलों के भीतर और बाहर दोनों जगह लड़ी जायगी। आपके ज़िले में भी, मैंने सुना है, सरकारी अफ़सर कांग्रेस-विरोधी उम्मीदवार खड़े कर रहे हैं। आप इसका ठीक-ठीक जवाब दीजिए और केवल कांग्रेस-उम्मीदवारों को ही वोट दीजिए।

× × ×

मेरे इस दौरे से ज़िले की समस्त जनता में एक नया जीवन-सा आगया प्रतीत होता है। मुझे इन लोगों तक कांग्रेस का संदेश पहुँचाने का गर्व है। गाँवों और शहरों में जहाँ भी मुझे जाने का मौक़ा हुआ, मैंने महसूस किया कि लोगों पर कांग्रेस का बहुत प्रभाव है। ये लोग सब यह अनुभव करते मालूम होते हैं कि देश की आज़ादी कांग्रेस के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है और इसलिए उसके झण्डे के नीचे जमा होने में अभिमान का अनुभव करते हैं। जनता कांग्रेस को अपनी संस्था समझती है। यद्यपि इसकी बागडोर आज अनेक बड़े नेताओं के हाथों में है, तथापि इससे यह उनकी वैयक्तिक सम्पत्ति हर्गिज़ नहीं कही जा सकती। यह तो राष्ट्र की सम्पत्ति है। जनता का फ़र्ज़ है कि वह प्रत्येक गाँव और मुहल्ले में इसकी शाखायें स्थापित करके इसको अपनाये और इसकी नीति के निर्माण में हाथ बँटाये।

——

उर्दू, हिन्दी और हिन्दुस्तानी

इस वर्ष के आरम्भ में श्रीयुत कृष्णप्रसाद कौल ने 'हिन्दुस्तानी अकेडमी' के वार्षिक अधिवेशन में उपर्युक्त विषय पर एक महत्त्वपूर्ण भाषण किया था, जो अब 'हिन्दुस्तानी' में प्रकाशित हुआ है। उसका एक ज्ञातव्य अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

इस संपूर्ण विवाद का सारांश यह है कि चाहिए तो यह था कि भाषा के प्रश्न पर केवल साहित्यिक दृष्टि से देखा जाता और समय की आवश्यकताओं का ध्यान में रख कर सुधारों को प्रस्तुत करके भाषा की उन्नति का प्रयत्न किया जाता। लेकिन हो यह रहा है कि इस प्रश्न को राजनैतिक झगड़ों में डालकर दलबन्दी का जोश उभारा जाता है, जिससे उर्दू और हिन्दी का विज्ञापन तो अवश्य हो रहा है, लेकिन साहित्यिक भाषा के सुधार और उन्नति में सन्देह है। जहाँ तक सम्मिलित जातीयता का प्रश्न है, यह तो यथार्थ है कि जिन देशों में धर्म, भाषा, वेश-भूषा और खान-पान की एकता प्राप्त है, वहाँ सम्मिलित जातीयता की आकांक्षाओं की पूर्ति में इनसे सहायता मिलती है। लेकिन यह विचार अशुद्ध है कि यह तत्त्व सम्मिलित जातीयता के विचार की पूर्ति के लिए अनिवार्य और आवश्यक है। आधुनिक सभ्यता और संस्कृति के युग में राजनैतिक व आर्थिक उद्देश व आवश्यकतायें ही वास्तव में जातियों को एक सूत्र में बाँधती हैं। सारे संसार में यही हुआ है और हो रहा है। यही हिंदुस्तान में भी होकर रहेगा। इसके लिए उर्दू या हिन्दी को सारे देश की भाषा निर्धारित करने का विचार न आवश्यक है, न उपयोगी। इससे तो देश की वर्तमान बिगड़ी हुई परिस्थिति में और भी अधिक उलझन उत्पन्न होती है। हिंदू और मुसल्मानों में मेल उत्पन्न करने का इस सम्बन्ध में कोई उपाय हो सकता है तो वह यह है कि हमारे स्कूलों में आरम्भ से ही उर्दू और हिंदी की शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय, और जहाँ तक साहित्यिक भाषा के सुधार और उन्नति का प्रश्न है, उर्दू और हिंदी दोनों को क्लिष्ट बनाने के स्थान पर सरल और जन-साधारण के समझने के योग्य बनाने का प्रयत्न किया जाय।

स्वर्गीय डाक्टर संडलेंड

स्वर्गीय डाक्टर संडलेंड अमरीका के एक सुप्रसिद्ध लेखक थे। इन्होंने अमरीका और इँग्लैंड

की जनता के सामने सदैव भारत के पक्ष को बड़े ज़ोरदार तर्कों के साथ उपस्थित किया है। दुःख की बात है कि हाल में इनकी मृत्यु हो गई। इनके स्वर्गवास से भारत का एक सच्चा मित्र उठ गया। इनकी मृत्यु से समस्त भारत दुःखी हुआ है, इसमें सन्देह नहीं इनकी मृत्यु पर शोक प्रकट करने के



[डाक्टर जे० टी० संडलेंड]

लिए बम्बई में एक सार्वजनिक सभा हुई थी। उस में श्रीमती सरोजनी नायडू ने अध्यक्ष के पद से जो भाषण किया है उसमें उन्होंने कहा है—

यदि आप लोगों से अधिक लोगों ने डाक्टर जे० टी० संडलेंड का नाम नहीं सुना है तो इससे डाक्टर संडलेंड की महत्ता, योग्यता और इस देश के प्रति की गई उनकी सेवाओं में कोई अन्तर नहीं आता। सम्भव है कि अधिक लोग उन्हें न जानते हों, पर इस देश में ऐसे हज़ारों आदमी हैं जो डाक्टर संडलेंड के प्रति इस बात के लिए ऋणी हैं कि जब वे अमरीका में डाक्टर संडलेंड के पास गये तब उन्होंने उन लोगों की सहायता की। डाक्टर संडलेंड में भारतीय मामलों में दिल[illegible] स्वर्गीय लाला लाजपतराय ने उत्पन्न की थी और उ[illegible] बाद से अपनी मृत्यु तक डाक्टर संडलेंड ने भार[illegible] मामलों में अत्यधिक दिलचस्पी ली। मैं १९२८ में अमरीका गई थी, डाक्टर संडलेंड से मिली थी। [illegible] समय ८४ वर्ष की अवस्था में भी उनमें बड़ी स्फूर्ति [illegible] कार्य करने की शक्ति थी। भारतीय मामलों पर लिखी उनकी पुस्तक 'इंडिया इन बांडेज' भारत में आने [illegible] रोक दी गई थी। परन्तु यह रोक ही इस बात का प्र[illegible] है कि उनकी पुस्तक की बातें सच हैं। उनकी पुस्तक संसार का एक स्मरणीय ग्रंथ है, परन्तु दुर्भाग्य[illegible] वह यहाँ आने से रोक दिया गया है। खेद की बात [illegible] कि भारतीय जनता यह महसूस नहीं करती कि उस[illegible] बन्धन किस क़दर पींजरे में पैदा होनेवाली चिड़िया [illegible] समान है, जिसे कि बाहर की आज़ादी का कुछ भी ज्ञान [illegible] है और जिसने यह बन्धन अपने माता-पिता से प्राप्त [illegible] है। भारतीय जनता ने भी यह अनुभव नहीं किया [illegible] बन्धन का अर्थ क्या है। परन्तु स्वतन्त्र देश में जन्म ले[illegible] वाले डाक्टर संडलेंड-सदृश मनुष्य ने जिसने स्वतन्[illegible] के इतिहास को पढ़ा है, भारत की पराधीनता की ल[illegible] तथा अपमान को भारतीयों की अपेक्षा अधिक कटुता [illegible] साथ अनुभव किया।

——

भारतीय चाय और पार्लियामेंट के मेम्बर

'इंडियन टी सेस कमेटी' ने 'दी न्यूज़ ए[illegible] विउज़' नाम का एक अत्यन्त मनोरञ्जक औ[illegible] आकर्षक पर्चा प्रकाशित करना प्रारम्भ किया है[illegible] तीसरे पर्चे में कई मनोरञ्जक और ज्ञातव्य बातें [illegible] जिनमें एक यह है—

कुछ समय हुए हाउस आफ़ कामन्स की पाकशाला[illegible] की जाँच की गई थी कि उनमें क्या चीज़ें ज़्यादा पक[illegible] हैं। मालूम हुआ कि २४ घंटे के विविध समय के भोज[illegible] में चाय सबसे अधिक लोकप्रिय पेय है। वहाँ प्रति[illegible] ८०,००० से १०,००० व्यक्तियों को चाय पिलाई जाती है[illegible] सबसे अधिक माँग गर्मी की ऋतु में होती है जब पार्लिया[illegible] मेंट के मेम्बर अपने मित्रों को चाय पिलाते हैं।



सम्पादकीय नोट

ब्रिटेन और संयुक्त-राज्य का मेल

योरप में इस समय चारों ओर कूटनीति का जाल बिछा हुआ है। जो राष्ट्र अपने पड़ोसियों से अभी तक मिलजुलकर शान्तिपूर्वक अपना समय व्यतीत कर रहे थे और किसी से आक्रान्त होने का भय न होने से अपनी सामरिक योजनाओं को अप-टु-डेट रखने से बेपरवाह थे वे भी आज सजग और चिन्तित दिखाई दे रहे हैं। यह बात अब दिन दिन स्पष्ट से स्पष्टतर होती जा रही है कि योरप में अब या तो प्रजातंत्र की तूती बोलेगी या निरंकुश-तंत्र का ही महत्त्व बढ़ेगा—इन दो में से एक ही वहाँ रह सकेगा। प्रजातंत्रवाद के अगुआ फ्रांस और रूस हैं। उधर जर्मनी और इटली निरंकुश-तंत्र के समर्थक हैं। और ये दोनों परस्परविरोधी समूह योरप के भिन्न भिन्न छोटे-बड़े राज्यों को अपने अपने पक्ष में करने को तरह तरह की चालें चल रहे हैं।

परन्तु योरप की प्रधान महाशक्ति ग्रेट-ब्रिटेन ने इस गुटबन्दी से अपने को अलग कर लिया है। यही कारण है कि योरप में युद्ध के बादल मँडरा तो आते हैं, परन्तु बरसने के पहले ही लाचार होकर जहाँ के तहाँ उड़ जाते हैं। तथापि परिस्थिति वहाँ की भीषण हो गई है और ग्रेट-ब्रिटेन उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। उसका यद्यपि फ्रांस और रूस से मेल है, तो भी वह जर्मनी से शत्रुता नहीं मोल लेना चाहता। उधर योरप की गुटबन्दियाँ दृढ़ से दृढ़तर होती जा रही हैं। इसी से वह अब अमरीका के संयुक्त-राज्य से अपना मैत्री-बन्धन और भी मज़बूत कर लेना चाहता है। पिछले महायुद्ध में संयुक्त-राज्य की ही सहायता से विजय प्राप्त हुई थी। इस पाठ को ग्रेट-ब्रिटेन कैसे भूल सकता है? भयावह भविष्य देखकर ही वह संयुक्त-राज्य को अपने पक्ष में करने को विशेष रूप से उत्सुक है। अभी उस दिन लन्दन में स्वाधीनता-दिवस के उत्सव में संयुक्त-राज्य के राजदूत मिस्टर आर० डब्ल्यू० बिन्धम ने अपने भाषण में स्पष्ट रूप से कहा है कि 'अपने देशों की स्वाधीनता की रक्षा हम लोग कन्धे से कन्धा भिड़ाकर लड़कर करेंगे'। इससे यही प्रकट होता है कि भीतर ही भीतर इन दोनों राज्यों में घनिष्ठता बढ़ रही है और आश्चर्य नहीं कि अगले महायुद्ध में ब्रिटेन के साथ संयुक्त-राज्य एक बार फिर युद्ध-क्षेत्र में दिखाई दे। परन्तु वहाँ का लोकमत भी ब्रिटेन का साथ देगा, तथा अपनी सरकार के ब्रिटेन की लड़ाई में सहायता देने से सहमत होगा, इसमें सन्देह है। क्योंकि अभी हाल में वहाँ के एक पादड़ी ने अँगरेज़ों की एक सभा में भाषण करते हुए कहा है कि 'हम लोग सांस्कृतिक दृष्टि से एक जाति के लोग नहीं हैं।' वास्तव में वहाँ की विशाल जन-संख्या में अँगरेज़-जाति के लोग कुछ ही फ़ी सदी हैं। संयुक्त-राज्य के गृहयुद्ध के बाद से योरप के अन्य देशों के लोग वहाँ अधिक संख्या में गये हैं, जिससे वहाँ की लोक-संख्या में मध्य, दक्षिण और पूर्व योरप के लोगों की संख्या कहीं अधिक हो गई है। और ये लोग ब्रिटेन के प्रति स्वाभाविक अनुराग क्यों रक्खेंगे? चाहे जो हो, राजनीति में इन बातों का उतना महत्त्व नहीं है। यदि वहाँ की सरकार ब्रिटेन का पक्ष ग्रहण करने में अपने राष्ट्र का हित समझेगी तो अपने मतानुसार कार्य करने का मार्ग वह खुद निकाल लेगी। और यही सब सोच-समझकर ये दोनों प्रजातंत्रवादी देश भविष्य की भयानक परिस्थितियों के कारण एक दूसरे के अपने आप ही निकट आते जा रहे हैं।

चीन—उन्नति की ओर

छिन्न-भिन्न दुर्दशाग्रस्त चीन की परिस्थिति का पूरा पूरा पता सब किसी को नहीं है। पिछले दिनों ऐसा प्रतीत होने लगा था कि दक्षिण-चीनवालों से नानकिंग की राष्ट्रीय सरकार का युद्ध अवश्य होगा। परन्तु दक्षिण-चीन के विद्रोह का आयोजन अपने आप छिन्न-भिन्न ही नहीं हो गया, वरन पहले का स्वतन्त्र दक्षिण-चीन राष्ट्रीय सरकार की अधीनता में भी आ गया है। यह वास्तव में चीन के सर्वेसर्वा च्यांग-कै-शेक के लिए बड़े गौरव की बात हुई है। दक्षिण-चीन के क्वांगतुंग और क्वांगसी के प्रान्त १९२७ से राष्ट्रीय सरकार से विलग है। परन्तु इन प्रान्तों की स्वतन्त्र-सरकार हाल में भंग हो गई है और राष्ट्रीय सरकार के प्रतिनिधि-रूप में वहाँ का शासन-भार जनरल यू हन-मौ ने अपने ऊपर ले लिया है। ये पहले क्वांगतुंग-प्रान्त की प्रथम सेना के सेनापति और प्रान्तीय सेनाओं के प्रधान सेनापति थे। परन्तु अब इन्होंने राष्ट्रीय सरकार की अधीनता स्वीकार कर ली है और यह घोषित किया है कि ये अब राजनीति में भाग न लेकर सैनिक सुधार करेंगे। इस सिलसिले में ये प्रान्त की स्थिति के अनुसार सेना की संख्या कम कर देंगे और इनके इस कार्य को नानकिंग की सरकार मित्रतापूर्ण समझेगी।

दक्षिण-चीन में जो यह अचानक राजनैतिक शान्ति-पूर्ण क्रान्ति हुई है उसके साथ वहाँ का लोकमत है। इस क्रान्ति को सफल बनाने के लिए वहाँ राष्ट्रीय सरकार को सेनायें नहीं भेजनी पड़ी हैं। वहाँ के सेनापतियों ने अपने आप ही विद्रोह-भावना को छोड़कर राष्ट्रीय सरकार की अधीनता स्वीकार की है। राष्ट्रीय सरकार ने पहले के गवर्नर को अपने पद पर बने रहने दिया है, परन्तु शासन-विभाग के महत्त्वपूर्ण पदों पर उसने अपने आदमियों को नियुक्त कर दिया है। इन लोगों ने नानकिंग से जाकर कैंटन में अपना अपना कार्यभार अपने हाथों में ले भी लिया है।

दक्षिण-चीन के राष्ट्रीय सरकार के नियंत्रण में आ जाने से उसके बल तथा प्रतिष्ठा की वृद्धि हुई है और अब यह प्रतीत होता है कि कुछ ही दिनों में मध्य-चीन के वे प्रान्त भी राष्ट्रीय सरकार की अधीनता स्वीकार करने को बाध्य होंगे जो अभी तक बोल्शेविक चीनियों के हाथ में हैं। ऐसा हो जाने पर ही चीन अपनी बिखरी हुई शक्तियों को एकत्र कर अपने राष्ट्र-निर्माण के कार्य में अग्रसर हो सकेगा और तभी वह जापानियों तथा अन्य बलवान् राज्यों की पकड़ से अपने को मुक्त करने में समर्थ हो सकेगा। लक्षणों से प्रतीत होता है कि चीन-सरकार के सूत्रधार इस ओर से उदासीन नहीं हैं और वे बड़ी सावधानी और धैर्य के साथ अपने लक्ष्य की ओर धीरे धीरे अग्रसर हो रहे हैं।

मिस्र और ब्रिटेन की सन्धि

यह प्रसन्नता की बात है कि मिस्र और ग्रेट-ब्रिटेन के सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर हो गये और मिस्र अब बाक़ायदा एक स्वाधीन राज्य के रूप में अस्तित्व में आ गया। इसके लिए मिस्रवालों ने अब तक जो बलिदान किया है वह अन्त में सार्थक हो गया। कुछ लोगों का कहना है कि इस सन्धिपत्र के लिखे जाने पर भी मिस्र पूर्ण रूप से स्वाधीन राज्य नहीं हो सका है। परन्तु इन लोगों को यह सब कुछ मिस्र की परिस्थिति देखकर ही कहना चाहिए। यदि आज अँगरेज़ लोग अपना डेरा-डंडा उठाकर मिस्र से चले जायँ तो कौन कह सकता है कि कल वही दूसरा अबीसीनिया नहीं बन जायगा। यह कहीं बेहतर है कि मिस्र अँगरेज़ों की सहायता से अपने राष्ट्र का स्वेच्छापूर्वक ऐसा संगठन करने में सफलमनोरथ हो कि अवसर आने पर वह अपनी स्वाधीनता की रक्षा अपने पैरों पर खड़ा होकर कर सके।

१९२२ में जब अँगरेज़-सरकार ने मिस्र को स्वाधीन राष्ट्र स्वीकार किया था तब उसने चार बातों को अपने ही हाथों में रख छोड़ा था। वे थीं—(१) देश की सुरक्षा की व्यवस्था, (२) साम्राज्य के आवागमन के मार्ग पर अधिकार, (३) बाहरी आक्रमण से मिस्र की रक्षा और (४) सूडान का स्वामित्व। और ये संरक्षण मिस्र के तत्कालीन कर्णधार अँगरेज़ों को देने को तैयार नहीं हुए। अतएव आज तक सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर नहीं हो सके। मिस्र के दुर्भाग्य या सौभाग्य से इटली और अबीसीनिया में लड़ाई छिड़ गई, जिसमें इटली की महत्त्वाकांक्षा स्पष्ट से स्पष्टतर हो गई। यही मिस्र और ब्रिटेन में इतनी जल्दी सन्धि हो जाने का कारण हुआ। इस नई सन्धि के अनुसार कैरो में रहनेवाली अँगरेज़ी सेना वहाँ से हटकर इस्माइलिया प्रदेश में रहेगी। नहर के अंचल में रहनेवाली सेना तथा हवाई सेना की शिक्षा के लिए मिस्र-सरकार समुचित सुविधायें प्रदान करेगी। पूर्वी भूमध्यसागर के नौबल की आवश्यकता की पूर्ति के लिए अस्थायी रूप से अलेक्ज़ेंड्रिया बन्दरगाह का अँगरेज़ सरकार यथेष्ट उपयोग कर सकेगी। मिस्र-सरकार अलेक्ज़ेंड्रिया से नहर-अञ्चल को सेनाओं के आने-जाने की पूरी सुविधायें देगी। सूडान की रक्षा में मिस्र की सेना पहले की ही तरह भाग ले सकेगी। मिस्र अपनी सेना आवश्यकतानुसार बढ़ा

सकेगा और उसे अप-टु-डेट करने में अँगरेज़ विशेषज्ञों की सहायता मिलेगी। युद्धकाल में दोनों राष्ट्र एक-दूसरे की सहायता करेंगे। राष्ट्रसंघ का सदस्य होने तथा अन्य देशों की विशेषाधिकार-सम्बन्धी सन्धियों में परिवर्तन कराने में मिस्र-सरकार की अँगरेज़-सरकार पूरी सहायता करेगी। इस प्रकार इस नये सन्धिपत्र से इन दोनों राष्ट्रों में सौहार्द्र की वृद्धि हुई है। भगवान् करे, मिस्र अपने नये रूप में उन्नति करे और उसके गौरव की वृद्धि हो।

ग्वालियर के महाराज का अभिषेकोत्सव

भारत के देशी राज्यों में ग्वालियर अपनी विशेषता रखता है। स्वर्गीय महाराज माधवराव अपने सुव्यवस्थित शासन-प्रबन्ध से उसे अपने गौरवपूर्ण स्थान पर



[ग्वालियर-नरेश महाराज जीवाजीराव।]

पहले जैसा ही अचल बनाये रहे। यही नहीं, वे ऐसा उत्तम प्रबन्ध कर गये थे कि उनके बाद भी ग्वालियर-राज्य का शासन-प्रबन्ध उन्हीं के विधानानुसार सफलतापूर्वक हो रहा है। प्रसन्नता की बात है, अब उनके एकमात्र पुत्र महाराज जीवाजीराव वयस्क हो गये हैं और इसी नवम्बर में अपने राज्य का दायित्व अपने ऊपर लेंगे। भगवान् करे, महाराज जीवाजीराव अपने स्वर्गीय पिता के आदर्श को सामने रखकर अपने जीवनपथ पर अग्रसर हों तथा अपने कर्तव्य-पालन में अपने लोकप्रिय स्वर्गीय पिता से भी बाज़ी मार ले जायँ। हमारी परमात्मा से इस अवसर पर यही हार्दिक कामना है।

बर्लिन का ओलिम्पिक टूर्नामेंट

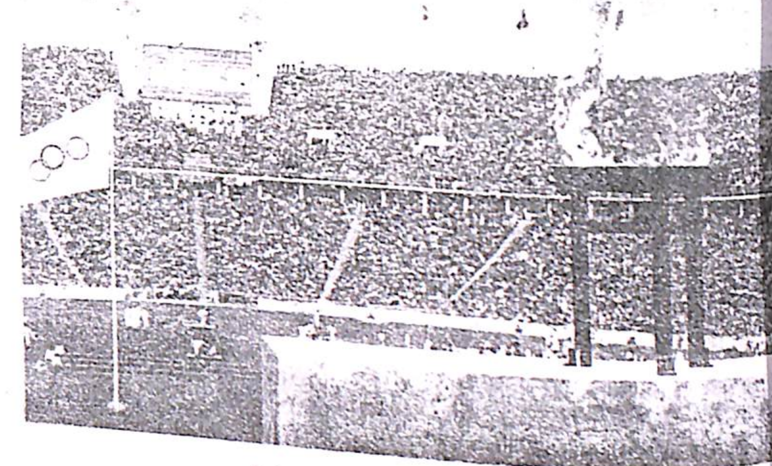
ओलिम्पिक खेलों का अन्तर्राष्ट्रीय टूर्नामेंट इसी अगस्त में बर्लिन में बड़ी धूमधाम के साथ हो गया। जर्मन-सरकार ने इसका बहुत ही सुन्दर प्रबन्ध किया था, जिससे किसी तरह की अव्यवस्था नहीं होने पाई और लाखों दर्शकों ने



[ओलिम्पिक गेम्स का उद्घाटन-समारोह—सबसे नज़दीक हर हिटलर खड़े हैं।]

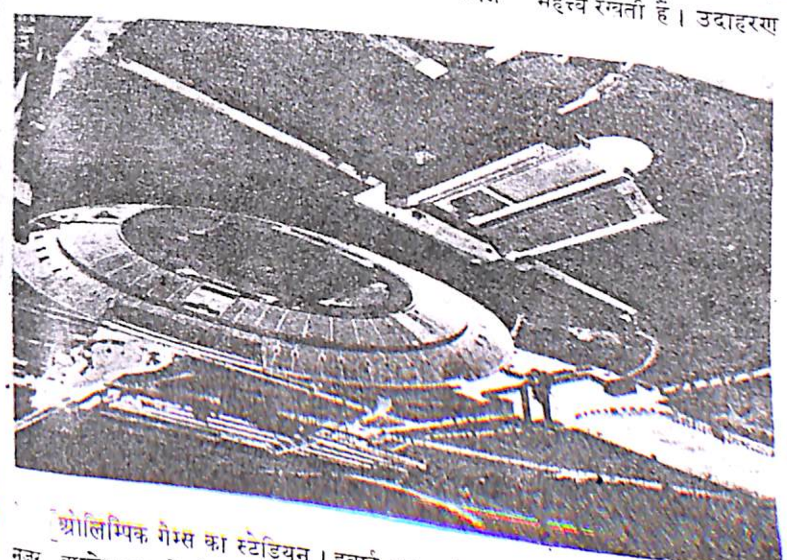
खेलों को बड़ी सुविधा के साथ देखा। ये खेल १५ दिन तक बड़ी सफलता के साथ होते रहे। इनमें संसार की ५० से अधिक जातियों ने भाग लिया। हमारे भारत की प्रसिद्ध

हाकी टीम ने इस टूर्नामेंट में भी अपनी जीतों से भारत का सिर विशेषरूप से ऊँचा किया है। उसने हंगरी की टीम को ५ गोल से, संयुक्त-राज्य की टीम को ७ गोल से, जापान की टीम को ९ गोल से और फ्रांस की टीम को १० गोल से और अन्त में जर्मनी की टीम को ७ गोल से हराया है। उसका खेल आश्चर्यजनक गिना गया है। परन्तु अन्य खेलों में भारतीय लोग अपनी विशेषता नहीं स्थापित कर सके। अगला ओलिम्पिक टूर्नामेंट जापान के तोकिओ नगर में सन् १९४५ में होगा। अतएव भारतीयों को उसके लिए यहाँ की भिन्न भिन्न



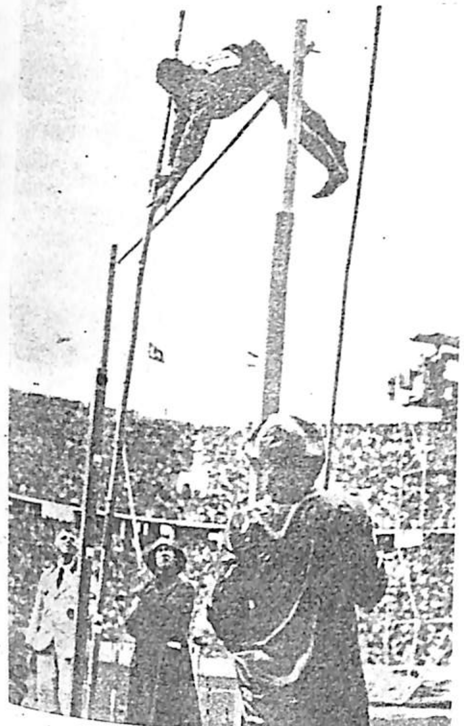
[ओलिम्पिक गेम्स की यज्ञवेदी।]

व्यायाम-शालाओं को अभी से तैयारी शुरू कर देनी चाहिए। यहाँ कई एक ऐसी व्यायामशालायें हैं जो अपना महत्त्व रखती हैं। उदाहरण के लिए अमरावती के हनूमान-व्यायाम-मण्डल को ही लीजिए। इसने बर्लिन में 'इन्टर्नेशनल स्पोर्ट्स स्टूडेंट कांग्रेस' में अपने जो व्यायाम दिखलाये हैं उन्हें १० हज़ार दर्शकों ने देखा और उनकी वहाँ बड़ी प्रशंसा हुई। तलवार चलाने की हस्तलाघवता के लिए इस मण्डल के दो युवकों की तो बड़ी ही प्रशंसा हुई। इनके खेलों को देखकर मण्डल से इस बात का आग्रह किया गया कि ओलिम्पिक टूर्नामेंट की समाप्ति के दिन वह अपने सारे खेलों का प्रदर्शन करे। उसने अपने खेल तदनुसार



[ओलिम्पिक गेम्स का स्टेडियन। हवाई जहाज़ से विहङ्गम दृश्य। बीच में पानी-सा नज़र आनेवाला खेलने का मैदान है। चारों ओर सवा लाख आदमियों के बैठने की जगह है।]

दिखलाये और उनकी प्रशंसा हुई। ऐसी दशा में इस बात का क्यों न प्रयत्न किया जाय कि अन्य भारतीय खिलाड़ी हाकी-टीम की तरह अन्य खेलों की प्रतिद्वन्द्विता में भी

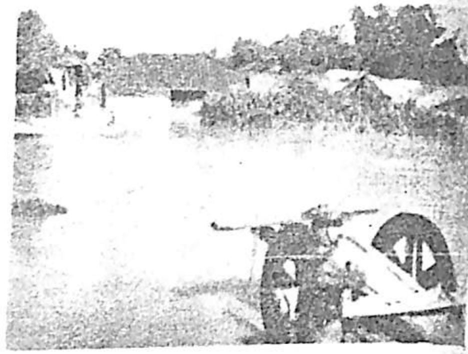


[ओलिम्पिक खेलों में हाई जम्प (ऊँची कूद) का एक दृश्य।]

भाग लेकर सफलता प्राप्त करें। आशा है, इस ओर उत्साही लोग आवश्यक ध्यान देंगे। उपर्युक्त टूर्नामेंट के सम्बन्ध के जो चित्र हम यहाँ दे रहे हैं वे हमें श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वाजोरिया गीता प्रेस, गोरखपुर से मिले हैं। ये उन्होंने 'सरस्वती' के लिए बर्लिन से मँगाये हैं।

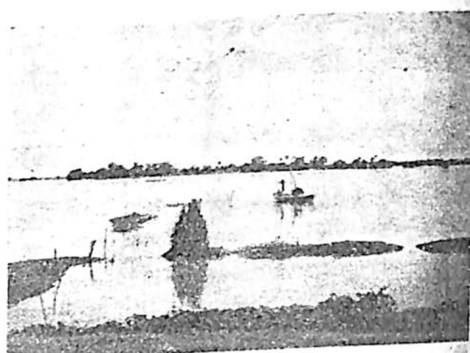
संयुक्त-प्रान्त में जल-वृष्टि से हानि

संयुक्त-प्रान्त की बाढ़ का जो सरकारी विवरण प्रान्तीय गज़ट में छपा है उससे उसकी भयावह व्यापकता का पूरा पता चलता है। इस बार इस प्रान्त में ऐसी भयानक जल-वृष्टि हुई है कि उससे बाढ़ों का जो सिलसिला जून के तीसरे हफ़्ते से शुरू हुआ था वह अभी तक जारी है। अभी हाल में



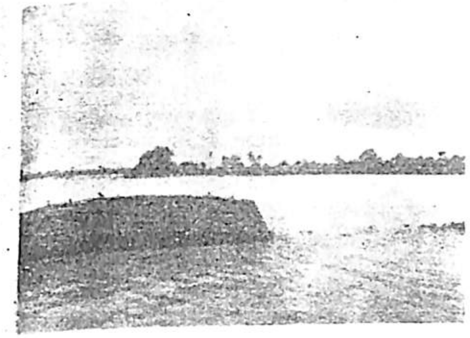
[कौन कह सकता है यह सुन्दर घर किस क्षण पानी बहा ले जायगा।]

बस्ती ज़िले में फिर बाढ़ आई थी। यों तो इन बाढ़ों से सभी जगह थोड़ी बहुत हानि हुई है, परन्तु उसकी चपेट में गोरखपुर बुरी तरह आ गया है। यहाँ हम गोरखपुर की बाढ़ के कुछ चित्र छाप रहे हैं। ये चित्र हमें श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वाजोरिया, गीता प्रेस से प्राप्त हुए हैं। उनसे

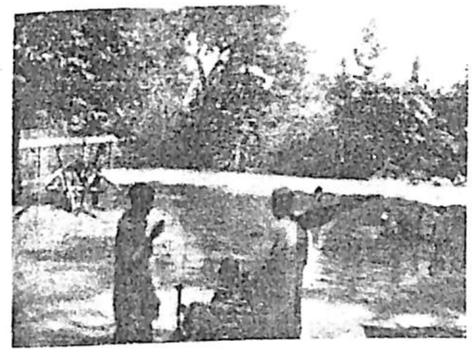


[पानी के बीच में काली जगहें डूबे हुए मकानों के छप्पर हैं।]

पाठक वहाँ की बाढ़ की भीषणता का बहुत कुछ अनुमान कर सकते हैं। परन्तु गोरखपुर आदि बाढ़ों से पीड़ित स्थानों की भीषणता को तो गढ़वाल की हाल की भीषण जलवृष्टि



[एक डूबे घर का बचा हुआ छप्पर, जो पक्षियों का आश्रय बना है।]



[बाढ़ से घिरे हुए लोग।]



[बाढ़-पीड़ित लारियों-द्वारा स्टेशन पहुँचाये जा रहे हैं।]

ने भुला दिया है। वहाँ की महाजलवृष्टि ने एक पहाड़ के कुछ अंश को इस प्रकार ध्वस्त कर दिया कि उसके नीचे



[जलमग्न गाँवों के निवासी नौका-द्वारा बचाये जा रहे हैं।]

तीन गाँव आ गये और एक समूचा गाँव जड़मूल से बह गया। इस दुर्घटना में कहा जाता है, ४०० आदमी अपने प्राण गँवा बैठे हैं। इधर हाल में बिहार के मुज़फ़्फ़रपुर और पटना में भी पाँच-पाँच सौ वर्गमील के भूखण्ड जल-मग्न हो गये हैं। इस प्रकार इस वर्ष जलवृष्टि के कारण इस प्रान्त में तथा बिहार में त्राहि त्राहि मची हुई है।

'सिविल सर्विस' की भर्ती

शिमला में असेम्बली की बैठकें इस बार अधिक ज़ोर-शोर के साथ शुरू हुई हैं, यहाँ तक कि सरकार को पहले ही दिन बेढब हार खानी पड़ी है। बात यह हुई कि सरकार 'भारतीय सिविल सर्विस' में अँगरेज़ों को नामज़द करके भर्ती करना चाहती है, क्योंकि वे लोग उसकी परीक्षा में आवश्यक संख्या में पास नहीं हो रहे हैं। अभी तक 'सिविल सर्विस' में प्रतियोगिता-परीक्षा में पास होनेवाले व्यक्ति ही लिये जाते थे। परन्तु अब सरकार १९१९ के इंडिया एक्ट के विपरीत नामज़दगी की पद्धति का प्रचलन करना चाहती है। और यह बात भारतीयों को तर्क-सम्मत नहीं प्रतीत होती। वे प्रतियोगिता परीक्षा के महत्त्व के एक ज़माने से क़ायल हैं। आज उसका महत्त्व घटते देखकर वे इस बात को कैसे सह सकते हैं? सरकार की यह विषम प्रणाली कि ५० भारतीय प्रतियोगिता परीक्षा-द्वारा

भारत में लिये जायँगे और ५० ब्रिटिश ग्रेट-ब्रिटेन में नामज़दगी से पूरे किये जायँगे। यदि दोनों स्थानों में इस भर्ती का माध्यम प्रतियोगिता-परीक्षा ही बनी रहती तो भारतीयों को इस सम्बन्ध में विरोध करने की वैसी आवश्यकता न प्रतीत होती। परन्तु प्रतिवर्ष ५० ब्रिटिश सिविल सर्विस में लिये ही जायँगे और यदि उतने ब्रिटिश परीक्षा में न पास होंगे तो नामज़दगी के द्वारा वह संख्या पूरी कर ली जायगी। इस असंगति का निराकरण करने के लिए कांग्रेस के नेता श्रीयुत सत्यमूर्ति ने असेम्बली को स्थगित करने का प्रस्ताव उपस्थित किया। इस अवसर पर जो वाद-विवाद हुआ उसमें सरकार की हार हुई है। देखना है कि सरकार इस सम्बन्ध में लोकमत का कहाँ तक आदर करती है।

——

एक उन्नतिशील महन्त

सम्पन्न मठाधीश तथा महन्त चाहें तो समाज के लिए अधिक उपयोगी ही नहीं सिद्ध हो सकते हैं, किन्तु उसके साथ ही काफ़ी यश का भी अर्जन कर सकते हैं। इसका सबसे बढ़िया उदाहरण नासिक के बाला जी के मन्दिर के महन्त जी हैं। इन्होंने अपने मन्दिर के वार्षिकोत्सव को नये ढंग से मनाना शुरू किया है। यह उत्सव प्रतिवर्ष आश्विन के कृष्णपक्ष में होता है। अभी तक इस सिलसिले में वहाँ ग़रीबों को भोजन दिया जाया करता था तथा कथा-वार्ता हुआ करती थी। परन्तु मन्दिर के वर्तमान महन्त जी ने इस उत्सव में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करके उसे अधिक लोकोपयोगी बना दिया है। इस वर्ष उन्होंने इस अवसर पर पुरस्कार-प्रतियोगिता जारी करके उसे और भी महत्त्वपूर्ण बनाने का उपक्रम किया है। प्रतियोगिता के विषय इस प्रकार हैं—(१) वैदिक सूक्तों का मुखस्थ पाठ, (२) सूर्य-नमस्कार-व्यायाम, (३) योग-सम्बन्धी आसन, (४) संगीत, (५) गीता और स्तोत्रों का मुखस्थ पाठ, (६) लड़कियों का चौक पूरना, (७) फूलों और धान्यों से चौक पूरना, (८) निबन्ध-रचना (इस वर्ष 'ग्रामोन्नति की योजना')। इन प्रतियोगिताओं में सफल होनेवाले छात्रों को पुरस्कार दिये जायँगे। महन्त जी के प्रबन्ध में इस अवसर पर बाला जी के मन्दिर में एक प्रदर्शनी भी होने लगी है, जिसमें रक्खी जानेवाली उत्कृष्ट कारीगरी की वस्तुओं पर उनके बनानेवालों को पुरस्कार भी दिया जाता है। और यह सब व्यवस्था नगर-वासियों की एक कमिटी करती है, जिसकी नियुक्ति महन्त जी करते हैं। इसके सिवा प्रबन्ध के लिए स्वयं-सेवकों का भी संगठन किया जाता है, जो उत्सव में शान्ति की व्यवस्था करते हैं। इस प्रकार इस उत्सव को लोकोपयोगी बनाकर बाला जी के महन्त जी वास्तव में एक उपयुक्त कार्य कर रहे हैं। अन्य महन्तों तथा मठाधीशों को चाहिए कि वे भी इन महन्त जी का अनुकरण कर यश के भागी बनें।

——

सूबा हिन्द

कुछ मास हुए डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने सूबा हिन्द पर कवितायें आमंत्रित की थीं और सर्वोत्तम कविता पर ५१) भेंट-स्वरूप देने की घोषणा की थी। इस आमंत्रण के फल-स्वरूप आपको जो कवितायें प्राप्त हुई हैं उनमें से कुछ अच्छी अच्छी छाँटकर आपने अपने वक्तव्य के साथ एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित की हैं। आपके वक्तव्य का एक महत्त्वपूर्ण अंश इस प्रकार है—

"लेखकों में १० संयुक्त-प्रान्त के, ३ बिहार के, ३ राजस्थान तथा मध्यभारत के और २ मध्यप्रान्त के हैं। हिन्दी के किसी भी प्रसिद्ध कवि ने इस विषय पर लेखनी उठाना उचित नहीं समझा। प्रतियोगिता में, विशेषतया इतनी छोटी भेंटवाली प्रतियोगिता में, सम्मिलित होना कदाचित् सम्भ्रान्त कवियों ने अपनी हैसियत के ख़िलाफ़ समझा। भौतिक संसार से सम्बन्ध रखनेवाला विषय भी कदाचित् उनकी प्रतिभा के लिए घातक था। हिन्दी के प्रसिद्ध प्रतिभाशाली कवि भी अपने देश के उत्थान से सम्बन्ध रखनेवाले इस छोटे-से प्रयास में यदि हाथ बँटा सकते तो कितना अच्छा होता। किसी विशेष लेखक की रचना उसके इच्छानुसार प्रतियोगिता से पृथक रक्खी जा सकती थी। विषय का बन्धन तो अनिवार्य था, किन्तु देश के गान में ऊँची से ऊँची उड़ान के लिए स्थान था, यह प्रस्तुत रचनाओं से सिद्ध होता है।"

वास्तव में यह दुःख की बात है कि हमारे प्रसिद्ध कवियों ने इधर ध्यान नहीं दिया। कदाचित् उन्होंने हिन्दी-भाषियों के एक सुसंगठित प्रान्त की आवश्यकता का अनुभव नहीं किया है। पर उनके इस उपेक्षा-भाव से डाक्टर साहब के इस सद् प्रयत्न का महत्त्व कम नहीं होगा। लोकमत उनके पक्ष में क्रमशः प्रबल होता जायगा और एक न एक दिन वे अवश्य सफलता प्राप्त करके आनेवाली पीढ़ी के धन्यवाद के पात्र बनेंगे।

——

मारवाड़ी सार्वजनिक पुस्तकालय कुर्सियाङ्ग

कोई चार वर्ष हुए कुर्सियाङ्ग में कतिपय मारवाड़ी नवयुवकों ने हिन्दी-प्रचार के उद्देश से एक सार्वजनिक पुस्तकालय की स्थापना की थी। इसका चतुर्थ वार्षिक कार्य-विवरण देखने से यह अनुमान किया जा सकता है कि लगन के साथ कोई कार्य किया जाय तो उसमें कैसी सफलता मिल सकती है। यह संस्था प्रतिवर्ष अपने वार्षिक अधिवेशन के समय बाहर के भी विद्वानों और हिन्दी-प्रेमियों को बुलाकर उनके व्याख्यान कराती है, जिससे उसका महत्त्व और भी बढ़ जाता है। इस वर्ष का वार्षिक अधिवेशन बङ्गाल के सर्जन मेजर जेनरल श्री द्वारकाप्रसाद गोयल आई० एम० एस० के सभापतित्व में मनाया गया था और कैप्टन एम० सी० मित्र तथा पादरी फ़ादर पी० वान पेन्सबर्ग के अतिरिक्त सुप्रसिद्ध हिन्दी-लेखक श्री सुदर्शन जी और डाक्टर हेमचन्द्र जोशी भी उपस्थित थे और उनके व्याख्यान हुए थे। हमें आशा है, यह संस्था अपने उत्साही अवैतनिक मंत्री श्री लक्ष्मी अग्रवाल की देख-रेख में क्रमशः उन्नति करती जायगी और अपना कार्य-क्षेत्र भी विस्तृत करती जायगी।



[बाईं ओर से (१) श्रीयुत बी० सी० सेन, (२) कैप्टन एम० सी० मित्र (३) मेजर गोयल (४) सरदार बहादुर दीवान राय (५) श्री गुलाबचन्द्र अग्रवाल (संस्थापक) (६) डाक्टर एच० मुकर्जी सिविल सर्जन।]

——

चीन में एक उपयोगी व्यवस्था

राष्ट्र के सबल बनाने का प्रयत्न करना वास्तव में प्रत्येक देश की सरकार का धर्म है और इस धर्म का यथा-शक्ति पालन सभी देशों की सरकारें करती भी हैं। हाल में चीन के क्यांग-सू प्रान्त की सरकार ने यह आदेश किया है कि विवाह होने के पहले प्रत्येक वर-कन्या को अपनी अपनी डाक्टरी करानी होगी और जो लोग निर्बल और रोगी होंगे उनका विवाह नहीं होने दिया जायगा। 'हिन्दी-मिलाप' का कहना है कि यदि यह नियम भारत के हिन्दुओं में लागू कर दिया जाय तो अन्य लाभों के साथ साथ एक यह लाभ भी होगा कि उनमें विधवाओं की संख्या में बड़ी कमी हो जायगी। परन्तु जहाँ अभी बाल-विवाह नहीं बन्द हुआ है और कुलीनों में शादी-ब्याह ने ख़ासे रोज़ी-धन्धे का रूप धारण कर लिया है, वहाँ ऐसे उपयोगी नियमों के जारी होने की कैसे आशा की जा सकती है?

——

व्यत्यस्त-रेखा-शब्द-पहेली

व्यत्यस्त-रेखा-शब्द-पहेली के साथ उसके नियम भी पिछले दो मास से 'सरस्वती' में बराबर छप रहे हैं। फिर भी बहुत-से पाठक जो इस प्रतियोगिता में भाग लेते हैं,

उन पर पूरा ध्यान नहीं देते। दो-तीन सज्जनों ने हमारे पास प्रवेश-शुल्क टिकट के रूप में भेजे हैं, यद्यपि नियमों में यह स्पष्ट लिखा है कि टिकट नहीं लिये जायँगे। नियम के अनुसार कूपन के साथ मनिआर्डर की रसीद भी आनी चाहिए। इसका अर्थ बहुत-से लोगों ने यह लगाया है कि जो रसीद हमारे कार्य्यालय से जायगी उसे वे भेजेंगे। और जब उस रसीद के जाने में देरी होती है तब वे पत्र लिखते हैं कि जल्दी भेजिए, हमारा जवाब रह जाना चाहता है। वास्तव में उन्हें वह रसीद भेजनी चाहिए जो उन्हें डाकघर से मिलती है, क्योंकि उसी से हमारा तात्पर्य्य है। गत मास में हमने लिखा था कि वर्ग नं० १ का उत्तर मिलाने पर यदि किसी को यह मालूम हो कि उन्हें पुरस्कार मिलना चाहिए तो वे हमें १० सितम्बर तक सूचित कर दें! बाद को ऐसे दावों पर ध्यान नहीं दिया जायगा। इसके उत्तर में बहुत-से लोगों ने वर्ग-नं० २ की भी पूर्तियाँ १० सितम्बर के अन्दर ही भेजने की चेष्टा की। कई सज्जनों ने एयर मेल का सहारा लिया और एक उत्साही प्रतियोगी ने तो बनारस से ख़ास तौर से १० सितम्बर को इसी लिए मोटर-बस से अपने ख़ास आदमी-द्वारा पूर्ति भिजवाई। यदि वे नियमों में देख लेते कि पूर्तियाँ भेजने की अन्तिम तिथि २० सितम्बर है तो उन्हें यह दिक़्क़त न उठानी पड़ती और उत्तर सोचने में भी उन्हें सुविधा होती। कुछ लोगों ने कूपन भेजने के बाद उनमें संशोधन करने के लिए पत्र भेजे हैं और कुछ ने अंक-परिचय के बारे में पूछताछ की है। पर नियम के अनुसार दोनों बातें नहीं हो सकतीं। वर्ग भेज चुकने पर जिन्हें संशोधन की आवश्यकता प्रतीत हो उन्हें दूसरी वर्गपूर्ति भेजनी चाहिए। पूर्ति-नं० क्या बला है, यह भी बहुत-से लोग पूछते हैं। यद्यपि वे थोड़ा ध्यान दें तो आसानी से समझ सकते हैं कि वे जितनी पूर्तियाँ भेजें उन सब पर पहली, दूसरी, तीसरी पूर्ति इत्यादि नम्बर डालना आवश्यक है। जो एक पूर्ति भेजें उन्हें पूर्ति-नं० १ लिखना चाहिए, जो दो पूर्तियाँ भेजें उन्हें पहली पर पूर्ति-नं० १ और दूसरी पर पूर्ति-नं० २ लिखना चाहिए। इसी तरह जितनी भी पूर्तियाँ भेजें, उन पर क्रमशः नम्बर होना चाहिए। स्थानीय लोग जो हमारे कार्य्यालय में प्रवेश-शुल्क जमा करते हैं, उन्हें चाहिए कि घर से वर्गपूर्ति के साथ मैनेजर वर्ग-नं० का पता लिफ़ाफ़े पर लिख कर लावें और जो रसीद मिले उसे पूर्ति के साथ लिफ़ाफ़े में बन्द करके तब लिफ़ाफ़ा दें या पहले शुल्क भेजकर रसीद मँगा लें तब दोनों चीज़ें एक साथ भेजें। बहुत-से लोग केवल पूर्तियाँ भेज देते हैं और मनीआर्डर की रसीद उनके साथ नहीं नत्थी करते। ऐसा भेजने से न भेजना अच्छा है, क्योंकि नियम के अनुसार ऐसी पूर्तियों पर विचार हो ही नहीं सकता। पूर्तियाँ सम्पादक के नाम नहीं, प्रबन्धक वर्ग के पते पर ही आनी चाहिए।

सफ़ाई का ध्यान रखना और भी आवश्यक है। कूपन पर काटकूट नहीं होनी चाहिए और अक्षर साफ़ होने चाहिए। लिफ़ाफ़े पर हिदायत के अनुसार पता भी साफ़ साफ़ लिखना चाहिए और उसकी दूसरी ओर पूर्ति-नं० और अपना नाम लिखना चाहिए। आशा है, इस प्रतियोगिता में दिलचस्पी रखनेवाले पाठक इन बातों पर ध्यान रक्खेंगे।

——

चित्र-परिचय

'सरस्वती' के इस अङ्क में जो दो रङ्गीन चित्र प्रकाशित हो रहे हैं वे दोनों इस प्रान्त के दो ऐसे नवीन कलाकारों की कृतियाँ हैं जिनसे इस दिशा में अभी और बहुत कुछ आशा की जा सकती है। पहला चित्र जो मुखपृष्ठ पर प्रकाशित हुआ है, नैनी के त्रिवेनी-देशी-शुगर-वर्क्स के श्रीयुत सीताराम अग्रवाल का अङ्कित किया हुआ है। इस चित्र में संसार के अज्ञान और मायामोह का अन्धकारमयी रजनी के रूप में नारी का रूप दिया गया है, जो महात्मा बुद्ध के तेज से भगा जा रहा है। कहना नहीं होगा कि श्री सीताराम जी इस भाव को अङ्कित करने में पूर्ण सफल हुए हैं। दूसरा चित्र 'सरस्वती' के पाठकों की सुपरिचित कवियित्री श्रीमती महादेवी वर्मा का अङ्कित किया हुआ है। यह चित्र उन्होंने अपनी एक कविता के भाव पर अङ्कित किया है। वह कविता आपके नव प्रकाशित काव्य-ग्रन्थ 'सांध्य-गीत' में इस चित्र के साथ प्रकाशित हो चुकी है। हिन्दी के लिए यह गौरव की बात है कि उसकी यह श्रेष्ठ कवियित्री अपनी सुन्दर कविता के भावों को आकर्षक रङ्गों में भी व्यक्त करने में सफल हुई है।

——

Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., Allahabad.



महाराज जीवाजीराव सेंधिया अलीजाह बहादुर

इसी दूसरी नवम्बर से आप ग्वालियर-राज्य का शासन-दण्ड ग्रहण कर रहे हैं। इस उपलक्ष्य में ग्वालियर में एक बहुत बड़े राजकीय महोत्सव का आयोजन किया गया है। जिसमें वर्तमान वायसराय महोदय तथा अन्य राजे-महाराजे भी सम्मिलित होंगे।



सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

नवम्बर १९३६ } भाग ३७, खंड २, संख्या ५, पूर्ण संख्या ४४३ { कार्तिक १९९३

गीत

लेखक, श्रीयुत निराला

मैं रहूँगा न गृह के भीतर
जीवन में रे मृत्यु के विवर।

यह गुहा, गर्त प्राचीन, रुद्ध
नव दिक्प्रसार, वह किरण शुद्ध
है कहाँ यहाँ मधु-गन्ध-लुब्ध
प्रिय वायु विमल आलिङ्गनकर?

जीवन का, खो खो दिशा-ज्ञान,
जाने वह जाता कहाँ मुखर?

करता रह रह रे विकल प्राण
उठता जाता । बहु-जन्म गान

दूर, दूरतर, चेतन-सागर
दलमल शत-रश्मि तरङ्ग-सुघर—
पृथ्वी का रे लहरा सुन्दर
दुकूल, सस्वर, आकर्षण भर।



[महाराजा माधवराव सेंधिया]

महाराजा माधवराव सेंधिया

लेखक, ठाकुर सूर्यकुमार वर्मा

संसार में, प्रथम तो उच्च कुल में, जन्म पाना ही दुर्लभ है। यदि भाग्यवश, उच्च कुल में जन्म हुआ भी, तो योग्यता प्राप्त करना कठिन हो जाता है। परन्तु यदि संयोगवश, योग्यता भी प्राप्त हो गई तो कार्यकुशल होना और निरन्तर लोक-कल्याण का ध्यान रखकर कार्य करना तो अधिक कठिन है। जो मनुष्य सत्कुलोत्पन्न होकर, योग्यता सम्पादन करके, लोक-कल्याण-हित का व्रत स्वीकार करके, अपना जीवन सार्थक कर जाते हैं; उनका स्मरण मानव-समाज को, बहुत समय तक बना रहता है और उनके अभाव का अनुभव समय सदा कराया करता है। जो लोग मानव-समाज के कल्याणार्थ, अपना जीवन उत्सर्ग कर देते हैं, वे संसार में अपनी विमल-कीर्ति को ही नहीं छोड़ जाते, वरन अपने पूर्वजों की कीर्ति को भी बढ़ाते हैं। ग्वालियर के महाराज माधवराव साहब सेंधिया ऐसे ही भाग्यशाली पुरुषों में थे, जिन्होंने उच्च कुल में जन्म लिया, योग्यता सम्पादन की, और अपने सुख-दुःख की परवा न करते हुए, अपना सारा जीवन अपनी प्रजा की उन्नति और भलाई में—जिसे आप अपना सच्चा 'अन्नदाता' कहते थे—अर्पण किया। आपकी आजीवन यदि कोई धुन रही तो यही कि ग्वालियर-राज्य की प्रजा सुखी हो, समृद्धिशाली हो, मेरे द्वारा मानव-समाज का हित हो। जो कुछ आपका संकल्प था, जो व्रत आपने लिया था, उसे आपने यथाशक्ति पूरा किया। कितना ही कठिन समय आ उपस्थित हुआ हो, कितना ही विरोध किया गया हो, परन्तु प्रजा-हित की बात, जो आपको स्वयं सूझ गई या आपको सुझाई गई, उसे आपने दृढ़ता-पूर्वक, धैर्य के साथ, किसी की परवा न करते हुए, अवश्य की। आपका सारा जीवन, उन कठिनाइयों से पूरित था, जो एक सुधारक के मार्ग में, पुरानी रूढ़ियों और समाज की हानिकारक प्राचीन पद्धतियों को, तोड़ने तथा उनको हटाकर समयानुसार नये विचारों के प्रचार में उपस्थित होती हैं।

आपका जन्म, ऐसे समय में हुआ जब भारत में पश्चिमी जगत् के विचारों की हिलोरों का वेग, बड़ी तीव्रता के साथ बढ़ रहा था। भारत में, भारतीय भावों, भारतीय विचारों, भारतीय भाषा, भारतीय रहन-सहन, आदि का ह्रास तीव्रता के साथ हो रहा था। यद्यपि उस वेग को रोकना कठिन साध्य था तो भी आपने अपने दृढ़ संकल्प और प्रयत्न से, यथाशक्ति उसे रोका; और भारतीयता का भाव जहाँ तक बना नष्ट नहीं होने दिया। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है, कि वे पाश्चात्य जगत् के उन विचारों के भी पक्ष में न थे, जिनसे भारतीयों का हित हो सकता है; अथवा जिनसे भारतवासी संसार में, अपने लिए उच्च स्थान प्राप्त कर सकते हैं। वे चाहते थे कि 'अपनत्व' बना रहे, और फिर जहाँ से जो वस्तु प्राप्त हो और जिससे समाज तथा भारत-वासियों का हित हो, कल्याण हो, उसे अवश्य ग्रहण करना चाहिए। अतएव आज मैं इस लेख-द्वारा केवल यही बताने का प्रयत्न करूँगा कि माधव महाराज क्या थे और उन्होंने अपना सारा जीवन लोक-हित के कल्याणार्थ किस प्रकार व्यतीत किया।



[ग्वालियर का क़िला]

आपका जन्म २१ आक्टोबर सन् १८७६ को हुआ था। परन्तु दस वर्ष भी व्यतीत न होने पाये कि आपके सर से आपके पिता का साया उठ गया। अतएव आपको गुणज्ञ बनाने की सारी ज़िम्मेदारी, आपकी माता पर आ पड़ी। यद्यपि वे पुराने विचारों की महिला थीं; परन्तु थीं बहुत बुद्धिमती। उन्होंने महाराज की शिक्षा का ऐसा सुप्रबन्ध किया, जिससे उनमें ऐसे गुणों का विकास हुआ, जिनकी एक भावी शासक को अत्यन्त आवश्यकता होती है। मेरा विचार है कि शासन की योग्यता का जो अंकुर, आपकी माता ने, आपके हृदय में बोया, वह समय पाकर अच्छे फल लाया। १८ वर्ष की आयु में, महाराज को, सन् १८९४ में, जब राज्य-शासन के अधिकार प्राप्त हुए तब मध्य-भारत के एजंट टु दी गवर्नर-जनरल, सर डेविड बार ने, भारत-सरकार का ख़रीता देते समय कहा था कि :—"श्रीमान को उच्च अधिकारों के सम्पादन करने की शिक्षा प्राप्त हुई है, अतएव इस अवसर पर जब श्रीमान् राज्याधिकार ग्रहण कर रहे हैं, मेरी हार्दिक इच्छा है कि श्रीमान् इस राज्य का शासन इस प्रकार सम्पादन करें, जिससे श्रीमान् के वंश और नाम की प्रतिष्ठा तथा मर्यादा बढ़े और राज्य व उसके निवासियों को सुख-शांति तथा समृद्धि प्राप्त हो"। उस अवसर पर आपने भी जो उत्तर दिया था वह भी विचार करने योग्य है। आपने कहा था—"आपने कृपाकर इस अवसर पर जो बहुमूल्य उपदेश दिया है, वह मुझे उन कठिनाइयों तथा आपत्तियों से पार होने में सहायक होगा जो एक किशोरवयस्क राज्याधिकारी को आरम्भ में झेलना पड़ती हैं। यद्यपि सफलता प्राप्त करना मेरे हाथ में नहीं है, तो भी इस बात की प्रतिज्ञा करने में मुझे ज़रा-सा भी संकोच नहीं है कि मैं हमेशा सफलता प्राप्त करने के लिए, परिश्रम तथा प्रयत्न अवश्य करता रहूँगा"। उस अवसर पर जो कुछ आपने कहा था, उसे आजन्म निबाहा।

शासन-कार्य

राजा के लिए अपनी प्रजा की दशा अपनी आँखों से देखने की बहुत आवश्यकता है। जब तक आँखों से दशा न देखी जावे, तब तक काग़ज़ी घोड़े दौड़ाने से, अधिक लाभ नहीं होता। अतएव महाराज ने राज्याधिकार प्राप्त होने पर सबसे पहला काम यही किया कि राज्य का

दौरा करके अपनी आँखों अपनी प्रजा की दशा देखी। अपने अधिकारियों तथा कर्मचारियों की, योग्यता की जाँच और परख की। प्रजा की आर्थिक दशा, उनके साथ कर्मचारियों का बर्ताव, व्यापार-व्यवसाय की हालत का प्रत्यक्ष अनुभव किया। दौरे से जो अनुभव आपको प्राप्त हुआ, राज्य की वर्तमान दशा का जो चित्र आपके हृदय पर खिंचा, वह आजन्म आपके हृदय में अंकित रहा। उस समय जो भूमि तैयार हुई, उसी में उत्तम बीज बोया गया। उस समय जो नींव डाली गई, उसी पर ग्वालियर-राज्य की उन्नति का भव्य-भवन निर्माण हुआ। दौरे में जो ज्ञान आपने सम्पादन किया, उसका सबसे पहला फल यह प्राप्त हुआ कि आपने अपने 'अन्नदाताओं' ज़मींदारों तथा काश्तकारों की हालत सुधारने की ओर ध्यान दिया। आपने ज़मीन की सर्वे कराई, बन्दोबस्त किया, और स्वयं भूपति होते हुए, अपनी प्रजा को भूपति के अधिकार प्रदान किये। बक़ाया मालगुज़ारी को माफ़ किया। इस प्रकार अपने अन्नदाताओं के ऋण से उऋण होकर फिर आपने दूसरी ओर ध्यान दिया।

जिस सरलता से मैंने इस लेख में, थोड़े से शब्दों में, इस बात को लिख दिया, उतना सरल इस कार्य को व्यावहारिक स्वरूप देना न था। इस कार्य में बड़ी कठिनाइयाँ थीं। भू-सम्बन्धी प्राचीन परिपाटी का रूपान्तर कर देने के बहुत-से विरोधी थे। परन्तु आपको तो अपने अधिकारों की उतनी चिन्ता न थी, जितनी अपने कृषक-वर्ग को सुखी देखने की इच्छा थी। अतएव आपके शुभ-संकल्प के सामने, विरोधियों को मौन ही होना पड़ा।

राज्य का दौरा करने के साथ ही साथ, आपने ब्रिटिश भारत में जाकर वहाँ की शासन-प्रणाली को जानने का प्रयत्न किया। ब्रिटिश भारत के सरकारी दफ़्तरों में किस प्रकार काम होता है, इसका भी आपने निरीक्षण किया। अतएव ब्रिटिश भारत में अनुभव प्राप्त करके, आपने शासन की कार्य-प्रणाली का भी चोला बदल दिया। अपने कर्मचारियों के लिए "गाइड-बुक" नाम की एक किताब लिखी, जिसमें सरकारी दफ़्तरों का कार्य किस प्रकार होना चाहिए, इसके नियम दिये गये हैं। दफ़्तर की लिखा-पढ़ी के लिए "कारस्पोन्डेन्स मेन्यूअल," हिसाब-किताब के लिए "अकाउन्ट मेन्यूअल," सेक्रेटरिएट दफ़्तर के लिए "सेक्रेटरिएट मेन्यूअल" निर्माण कराई, और राज्य के सरकारी दफ़्तरों के काग़ज़-पत्रों की देखभाल के लिए इन्स्पेक्टर जनरल रेकार्ड नियत किया। इस प्रकार बाहर और भीतर की व्यवस्था लगाकर, आपने आगे क़दम बढ़ाया।

राज्य में आने और जानेवाले माल पर, कस्टम ड्यूटी में, इस प्रकार संशोधन किया, जिससे प्रजा की कठिनाइयाँ और संकट दूर हुए, तथा राज्य की आमदनी बढ़ी। व्यापार-व्यवसाय में भी उन्नति हुई। राज्य में प्रजा के आवागमन के लिए, पक्की सड़कें बनवाई और रेलें निकलवाई। व्यापारी-मंडल के विचार जानने के लिए, 'चेम्बर आफ़ कामर्स' की स्थापना की। ज़िलों तथा परगनों के निवासी प्रजा के विचार जानने के लिए 'ज़िला बोर्ड' तथा 'परगना बोर्ड' क़ायम किये, और उन्हें यह अधिकार दिये गये कि वे अपने ज़िला तथा परगना की उन्नति के लिए स्थानीय दशा को ध्यान में रखकर योजना तैयार करके दरबार में विचारार्थ भेजें। आबपाशी के लिए कई बन्ध करोड़ों रुपया लगाकर बनवाये जिससे हज़ारों बीघा ज़मीन में आबपाशी होकर कृषि की पैदावार में उन्नति हुई। कृषि-विभाग खोलकर, खेती पेशा करनेवालों को, अच्छा बीज मिलने और किस ज़मीन में, क्या बोने से, पैदावार बढ़ सकती है, सहायता पहुँचाई। शिक्षा की उन्नति के लिए महकमे तालीम के बजट में हर साल कुछ न कुछ धन आप हमेशा बढ़ाते रहे। देवस्थानों को पूजित बनाये रखने के लिए—फिर वे चाहे हिन्दुओं के हों, या मुसलमानों के, ईसाइयों के हों, तथा सिक्खों या जैनियों के—अलावा माफ़ी के औक़ाफ़ फंड क़ायम करके पंद्रह लाख रुपया प्रदान किया, जिसमें इस समय तीस लाख रुपया मौजूद है, और क़रीब पैंतीस सौ देवस्थानों को एक लाख साठ हज़ार रुपया सालाना फंड के सूद से सहायता दी जाती है। शासन-विभाग से, ज्युडिशियल विभाग को अलग करके, प्रजा को न्याय-प्राप्ति में सुविधा कर दी। ब्रिटिश भारत में, क़रीब ५० वर्ष के आन्दोलन से जो काम अब तक न हुआ, वह कार्य आपने बिना किसी ख़ास माँग के, स्वतः उचित समझ कर आज से बहुत समय पहले किया। आपके इस कार्य की प्रशंसा भारत के प्रायः प्रसिद्ध प्रसिद्ध सभी राजनीतिज्ञ लोगों ने उस समय की थी। स्वर्गीय एनी बेसेंट ने तो

अपने व्याख्यानों में, कई स्थानों पर आपके इस कार्य की मुक्तकंठ से प्रशंसा की थी।

शासन के प्रबन्ध तथा न्याय-विभाग में, समय की गति देखते हुए सुधार करने के पश्चात्, आपके ध्यान में सबसे महत्व-पूर्ण बात एक प्रतिनिधि-मंडल स्थापित करने की आई, जिससे शासन-कार्य में, सलाह-मशविरा मिल सके, और प्रजा के विचार मालूम होने में सहायता पहुँचे। आपकी यह सदा हार्दिक इच्छा रही कि हमारे प्रजा के किसी अंग में असन्तोष न पैदा हो। आपने अपने एक भाषण में, असन्तोष के कारणों का उल्लेख करते हुए, कहा था :—

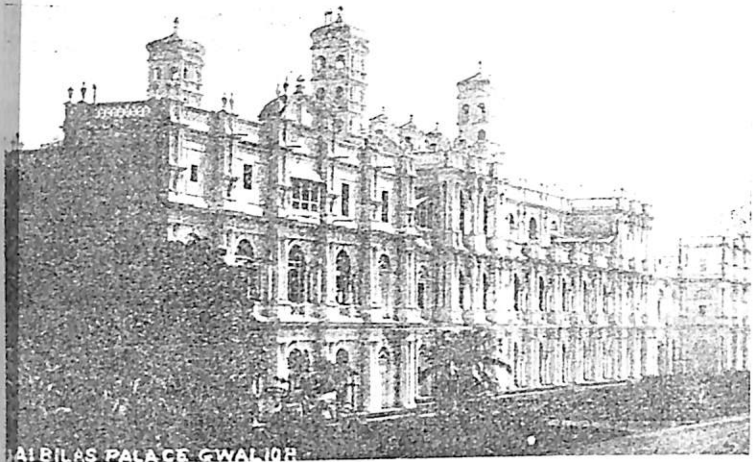
"डिसकन्टेन्ट (असन्तोष) दुनिया में उसी वक़्त अपना सर उठाता है, जब वक़्त पर इन्साफ़ नहीं मिलता। वाजिब माँग की सुनवाई नहीं होती, लोगों के हक़ का ख़याल बजानिब गवर्नमेंट नहीं रहता। सबों के साथ एक-सा इज़्ज़त-आबरू का बर्ताव नहीं किया जाता। सरविस में जगह बराबर तक़सीम नहीं होती। जब गवर्नमेंट कोई ग़ैरवाजिब काम कर गुज़रती है, और उसको नोटिस में लाने पर बख़याल प्रेस्टिज वग़ैरह बदलती नहीं, तभी डिसकन्टेन्ट हो जाने का अन्देशा रहता है। इसलिए बख़याल इसके कि डिसकन्टेन्ट का होना भी गवर्नमेंट के लिए एक जोखिम की बात है, यह सिफ़ारिश की जाती है, कि वह तरीक़ा अख़्त्यार करना चाहिए, जिससे डिसकन्टेन्ट न हो। यानी जो वजह ऊपर बताये गये हैं और जो अकसर डिसकन्टेन्ट के बायस होते हैं उनको रफ़ा किया जावे तो उम्मीद है डिसकन्टेन्ट पैदा न होगी।"

प्रतिनिधि-मंडल का नाम आपने रक्खा था "मजलिस आम"। इस मजलिस में प्रजा से चुने हुए लोग ही आते हैं। चुनाव साम्प्रदायिक ढंग पर नहीं होता, प्रत्येक समुदाय में से लोग चुने जाते हैं। ज़मींदार, व्यापारी, वकील, म्यूनिसिपालटीज़, जागीरदारान, धार्मिक संस्था औक़ाफ़, आदि से चुनाव होता है। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक वर्ग के प्रतिनिधि, फिर वे चाहे जिस जाति के तथा सम्प्रदाय के हों, चुन कर आ सकते हैं। इस प्रथा से जहाँ साम्प्रदायिक विष से मजलिस को पाक रक्खा गया, वहाँ प्रत्येक वर्ग को अपने वर्ग के हानि-लाभ का विचार रखकर अपने अपने वर्ग के विचारों को सामने लाने का मौक़ा दिया गया। आप बहुत बड़े दूरदर्शी थे। यदि आपको कुछ समय और मिलता और आप संसार में रहते तो मजलिस को, उन्नति करने का अधिक मौक़ा मिलता। परन्तु मजलिस की स्थापना के चार वर्ष पश्चात् ही आपका स्वर्गवास हो गया और मजलिस को, समय की गति को ध्यान में रखते हुए, विकास का अवसर न आया। आपकी अनुपस्थिति में, आपके स्थान पर जिस कौंसिल आफ़ रीजेन्सी ने काम किया, उनके लिए यह सम्भव न था, कि वह मजलिस में कोई मौलिक सुधार करती। परन्तु हम अपने वर्तमान महाराज साहब से आशा करते हैं, कि आप अवश्य अपने पूजनीय स्वर्गीय पिता के लगाये हुए इस वृक्ष की जड़ों को इतना मज़बूत करेंगे कि सामयिक आँधी के झकोरे उसे किसी प्रकार हानि न पहुँचा सकें।

अपूर्व साहस

जहाँ आप राजनीति में निपुण थे वहाँ साहस भी अपूर्व था। प्रत्येक ख़तरे का मुक़ाबिला करने के लिए आप सदा तैयार रहते थे। सन् १९०३ की बात है, आप स्पेशल ट्रेन से बम्बई से आ रहे थे। आपके साथ अन्य कर्मचारियों के अलावा आपके भांजे सरदार बाला साहब शितोले भी थे। शितोले साहब उस समय बालक थे। आंबी स्टेशन के पास, आपकी गाड़ी का एक दूसरी गाड़ी को टकराने का अचानक संयोग आगया। उस अवसर पर एक मिनट की देरी सर्वस्व स्वाहा करने को तैयार थी। परन्तु आपकी समय-सूचकता, धैर्य तथा साहस ने, इस ख़तरे से आपकी रक्षा की। आप शितोले साहब को बग़ल में दबा कर चलती ट्रेन से कूद पड़े। आपके कूदने की देर थी कि दोनों गाड़ियाँ लड़ गईं। यदि उस अवसर पर आप यह अपूर्व साहस न दिखलाते तो जो घटना घटित होती उसको सोच कर ही हृदय काँप जाता है। जब रेलवे के उच्चाधिकारियों ने इस घटना से होनेवाली हानि के सम्बन्ध में, क्षतिपूर्ति का प्रश्न किया तब कहा जाता है, आपने हँस कर उत्तर दिया कि ईश्वर को धन्यवाद दीजिए, उसने बड़ी दया की, बस यही सबसे अधिक क्षतिपूर्ति है। परन्तु रेलवे के अधिकारियों ने कृतज्ञतास्वरूप, दो सैलून आपको भेंट किये।

आपके साहस की शिकार सम्बन्धी अनेक घटनायें सुनाई पड़ती हैं परन्तु इग्लैंड में, एक अवसर पर जिस अपूर्व साहस का परिचय आपने दिया वह इतिहास के



[जयविलास महल (लश्कर)]

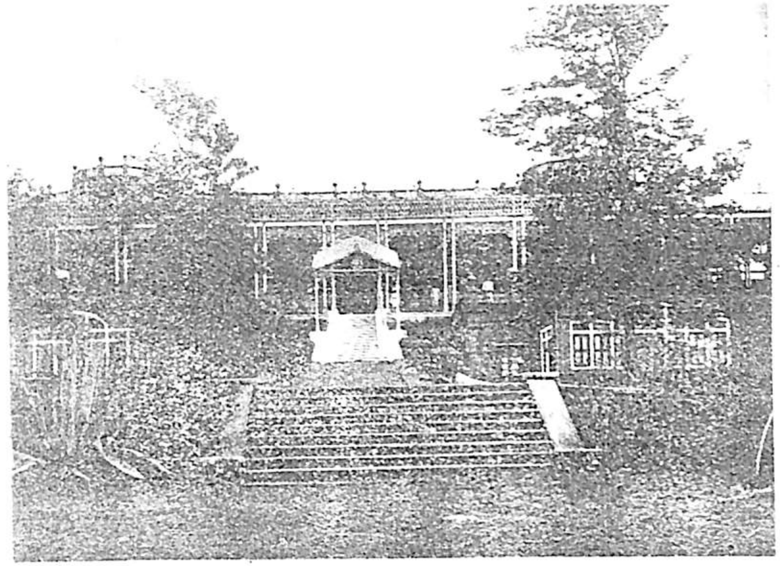
ग्रों में सुवर्णाक्षरों में लिखा हुआ है। हरलिंघम स्थान में टेंट पेकिंग (खूँटी उखाड़ने) का काम हो रहा था। आप भी उसमें शरीक़ हुए। आपकी सवारी के लिए जो घोड़ा लाया गया वह आपका निज का न था। आप उसके स्वभाव से वाक़िफ़ न थे। जब आप घोड़े पर सवार हो खूँटी उखाड़ चुके तब घोड़े ने ऊधम मचाना आरम्भ किया। घोड़ा इतना अधिक बिगड़ा कि वह आपको लेकर उस ओर भागा, जिधर बच्चे और स्त्रियाँ बैठी थीं। उपस्थित जनता यह दृश्य देख घबड़ा गई। क्योंकि क्षणमात्र में घोड़ा भीड़ पर जाकर गिरता व बहुतों की जानें जातीं। परन्तु आप तनिक भी विचलित न हुए। जब घोड़ा भीड़ के समीप पहुँचा तब आपने उसे अपने निज कौशल से रोका और जो दुर्घटना क्षण भर में होनेवाली थी वह असम्भव हो गई; और चारों ओर वाह वाह और तालियों की गूँज आने लगी। इस घटना से, आपके जिस साहस का परिचय मिला, उससे आपको "हीरो आफ़ हरलिंघम" की उपाधि प्राप्त हुई। घोड़े पर बैठना और निशाना लगाने में आप अपूर्व थे।

सैनिक योग्यता

सैनिक योग्यता तथा सैनिक प्रेम के लिए ग्वालियर-राज्य सदा से प्रसिद्ध है। अतएव आपका सैनिक प्रेम स्वाभाविक था। सैनिक कार्यों में, आपको बहुत दिलचस्पी भी थी। ग्वालियर की सेना का संगठन आपने इस ढंग से किया कि उसका मुक़ाबिला अच्छी से अच्छी सेना से किया जाता है। आप प्रत्येक वर्ष, कम-से-कम एक माह के लिए; फ़ौजी कैम्प बना कर, अपनी फ़ौज का कार्य देखते थे। उस अवसर पर नक़ली लड़ाइयाँ होती थीं और आप उस समय यह ज्ञान प्राप्त करते थे कि हमारी सेना में क्या कमी है और उस कमी को जाँच कर उसे पूरा करने का आप प्रयत्न करते थे। आपको स्वयं भी युद्ध-क्षेत्रों में जाने का शौक़ था। चीन में जब युद्ध हुआ था तब आप स्वयं पधारे थे। दक्षिण-अफ़्रीका के बोअर-युद्ध में, आप स्वयं तो न जा सके परन्तु ग्वालियर की सेना ने वहाँ जाकर भी काम किया और नाम पाया। योरप के महाभारत में तो ग्वालियर की सेना ने बहुत अच्छा नाम पाया था।

स्वदेशी से प्रेम

आप भारत की प्राचीन संस्कृति को बनाये रखने के बहुत पक्षपाती थे। आप बहुधा कहा करते थे—"जिसे अपने देश की बनी चीज़ों, देश के पहिनाव, देश की भाषा, देश के रस्म-रिवाज, से प्रेम नहीं, उसे देश से प्रेम कैसा! स्वदेश-प्रेमी तो वही है, जिसे उपरोक्त बातों से प्रेम हो।" अतएव स्वदेशी वस्तुओं के निर्माण के लिए ग्वालियर में अनेक कारख़ाने आपने खुलवाये। कपड़ा बनाने के कारख़ाने, चमड़ा से बननेवाली चीज़ों के कारख़ाने, धातु-लोहे, पीतल आदि-से बननेवाली चीज़ों के कारख़ाने, चीनी मिट्टी से बननेवाले पदार्थों का कारख़ाना, चमड़ा पकाने का कारख़ाना, निब बनाने का कारख़ाना, वग़ैरह खोले गये और बहुत-सा धन बतौर क़र्ज़ या सहायता



[माधवविलास महल शिवपुरी]

कल कारख़ाना खोलने के लिए सरकारी तौर पर लोगों को प्रदान किया गया।

स्वदेशी वस्तुओं के निर्माण में, प्रोत्साहन के अतिरिक्त प्राचीन रस्म-रिवाज को बनाये रखने के लिए आपने ... रिगुलेशन' ... के अनुसार ... दरबार ... त्योहारों के अवसर पर प्रत्येक क़ौम के ... को जाने का आदेश दिया गया। आपके इस आदेश का प्रत्यक्ष लाभ तो यह हुआ कि लोगों में एकता का भाव बढ़ा और दरबारों तथा त्योहारों की शान बढ़ गई, लोगों में अपनत्व का भाव जाग्रत हुआ। स्वदेशी ढंग से कपड़े बनानेवाले लोगों को रोज़गार मिला। पगड़ी, अंगरखा, दुपट्टे का लोप हुआ जाता था, उसकी कुछ न कुछ रक्षा हुई।

हिन्दी-प्रेम

आप यद्यपि मराठे थे, आपकी मातृ-भाषा मराठी थी, इस पर भी आपने देश की भाषा को ही अपनाया। आपने उसे राज-भाषा ही नहीं बनाया स्वयं जो कुछ लिखा हिन्दी में ही लिखा। आपने ज़मींदारों तथा काश्तकारों के हित के लिए जो पुस्तक "ज़मींदार-हितकारिणी" लिखी, वह हिन्दी में ही लिखी, "चन्द ज़रूरी नसीहतें," "शेर का शिकार," के अलावा एक वृहत् राजनीति-शास्त्र "दरबार-पालसी" ग्यारह जिल्दों में लिखी, वह भी हिन्दी में ही लिखी। आपके शासन के आरम्भिक काल में, ग्वालियर-राज्य के दफ़्तरों और अदालतों में कहीं मराठी, कहीं हिन्दी, कहीं उर्दू, कहीं अँगरेज़ी में काम होता था और इससे अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित होती थीं। अतएव आपने देश की स्थिति को ध्यान में रखकर, प्रजा की भाषा, हिन्दी को राज-भाषा स्वीकार करके आज्ञा प्रदान की कि प्रत्येक दफ़्तर तथा अदालत में कुल कार्य हिन्दी-भाषा में हुआ करे। भाषा के सम्बन्ध में, एक अवसर पर आपने अपने भाषण में कहा था—"एडमिनिस्ट्रेशन में, उसी ज़बान को तरजीह देना चाहिए जो उस मुल्क की हो। मसलन—जहाँ मुल्क की अँगरेज़ी ज़बान हो, वहाँ अँगरेज़ी, जहाँ हिन्दी हो वहाँ हिन्दी, रखना चाहिए; वर्ना ख़ौफ़ है कि आयन्दा चलकर ज़माने में, मुल्क की ज़बान लापता न हो जाय। क्योंकि आज-कल हिन्दुस्तानियों की यह हालत है कि वे सिवाय अँगरेज़ी बोलने के और कोई बात पसन्द नहीं करते। याद रहे, जिस मनुष्य को, अपनी नेशनिलिटी, अपने मज़हब, अपने रस्म-रिवाज और ज़बान पर नाज़ न हो; तो वह इन्सान ही क्या! मेरा हरगिज़ यह मक़सद नहीं है कि कोई अँगरेज़ी ज़बान सीखे ही नहीं बल्कि मेरी तो ख़्वाहिश यह है कि जहाँ तक हो सके इन्सान को हर ज़बान सीखना चाहिए; मसलन हिन्दी, उर्दू, मराठी, अँगरेज़ी, फ्रेंच, फ़ारसी,

अरबी, संस्कृत, वग़ैरह वग़ैरह। मगर इनका इस्तेमाल मौक़े पर करना चाहिए। मसलन जब हिन्दुस्तानी लोगों में बैठें तो हिन्दी में बातचीत करें। मराठों में बैठें तो मराठी में। लेकिन आज-कल हालत यह हो रही है कि कोई बात करे हिन्दी में तो जवाब मिलता है अँगरेज़ी में। इसके मायने क्या? बैठे तो हैं मराठों में और बोलते हैं अँगरेज़ी! क्या साहब लोग जो उर्दू या मराठी या फ्रेंच जानते हैं वे ऐसा करते हैं? हरगिज़ नहीं। अगर फ्रेंच जानते भी हैं तो कभी वे अपने आपस में सिवाय अँगरेज़ी के कोई दूसरी ज़बान नहीं बोलते। क्या वजह है कि हिन्दुस्तान के लोग, इस तर्ज़ को अख़्त्यार न करें।"

यदि यथार्थ में देखा जावे तो आज-कल हमारी दशा ऐसी हो रही है कि अपनी मातृ-भाषा को हम भूल जाते हैं। मातृ-भाषा को भूलना, देश को भूलना है। एक विद्वान् का कथन है कि 'यदि किसी देश को ग़ुलाम बनाना हो तो सबसे पहले उस देश की ज़बान को मिटा देना चाहिए'। क्योंकि मातृ-भाषा के नष्ट हो जाने से, उस देश की संस्कृति नष्ट हो जाती है और संस्कृति नष्ट हो जाने से, स्वदेशाभिमान स्वतः नष्ट हो जाता है। अतएव माधव महाराज के ये विचार प्रत्येक स्वदेश-प्रेमी तथा स्वदेशाभिमानी मनुष्य के मनन करने के योग्य ही नहीं, उनको आचरण में, व्यवहार में, लाने की परमावश्यकता है।

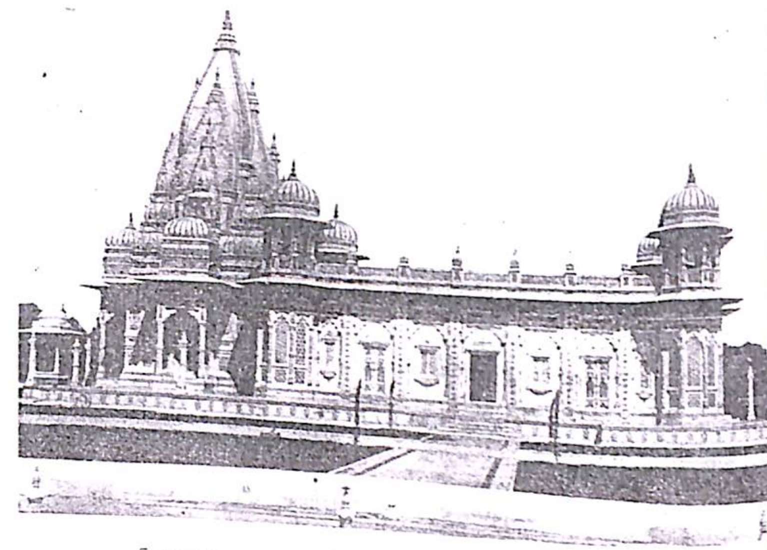
ग्राम-सुधार

भारत-सरकार तथा महात्मा गांधी जी का ध्यान ग्राम-सुधार की ओर अब दो तीन साल से गया है, मगर आपका ख़याल आज से बीस साल पहले गया था। आप कहा करते थे कि जब तक ग्रामीण जनता का सुधार न होगा, उनकी आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति सुधारी न जायगी तब तक देश का सुधार हो नहीं सकता। इस उद्देश की पूर्ति के लिए आपने ग्वालियर-राज्य में "ज़मींदार-हितकारी सभा" स्थापित की। इस सभा के लिए अच्छा वेतन देकर एक चीफ़ उपदेशक तथा हर तहसील के लिए एक एक उपदेशक नियत किया जिन्हें माक़ूल तनख़्वाह दी गई। क़रीब चालीस उपदेशक राज्य भर में काम करते थे। आरम्भ में, उपदेशकों को शिक्षा दिलाई गई कि वे गाँवों में जाकर किस प्रकार अपना कार्य आरम्भ करें। आपने इन्हीं उपदेशकों की जानकारी बढ़ाने के उद्देश से, "ज़मींदार-हितकारी" नाम की बहुत बड़ी पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में ३७ अध्याय हैं और ग्राम-सुधार की प्रायः सब बातें इसमें आगई हैं। खेती की उन्नति किस प्रकार करना, ग्राम-निवासियों का स्वास्थ्य किस प्रकार ठीक रक्खा जा सकता है, उनकी माली हालत कैसे सुधारी जा सकती है; इन सब बातों को ख़ूब विस्तार के साथ उसमें समझाया गया है। प्रत्येक बात को समझाने के लिए पुस्तक में, बहुतायत से सुन्दर चित्र भी दिये गये हैं। किताब 'सरस्वती' के आकार की लगभग ४०० पृष्ठ की है जिसमें क़रीब १४० हाफ़टोन आर्ट पेपर पर, पूरे साइज़ के चित्र हैं और मूल्य नाममात्र साढ़े तीन रुपया रक्खा गया है। केवल इस पुस्तक को पढ़ लेने से ही, ग्राम-सुधार की प्रायः सब बातें जानी जा सकती हैं।

आपने ज़मींदार-हितकारिणी सभा के एक सालाना जलसे पर सभा की क़ायमी तथा उपदेशकों के नियत करने का उद्देश यह बतलाया था—"रिआया से मेरा यही कहना है कि जब तुम मेहनत से काम करके और उसूलों की पाबन्दी से, सोना बन सकते हो तो मिट्टी के क्यों बने रहो! मेरी कोशिश तो यह है कि आप ख़ुशहाल हों और दौलतमन्द बनें; जिससे रियासत भी सरसब्ज़ हो। दर असल काश्तकार व ज़मींदार ही देश के 'अन्नदाता' हैं। जब तक ये अन्न पैदा करके न दें, यह चमन कहाँ से नज़र आ सकता है। हम इस सभा के ज़रिये से काश्तकारान व ज़मींदारान की हालत ऊँचे दर्जे पर पहुँचाना चाहते हैं। मुझे उम्मीद है, सभा के उपदेशकों से हमारे काश्तकार व ज़मींदारान चमकेंगे नहीं; बल्कि उनको अपना हितचिंतक समझ कर उनसे लाभ उठावेंगे।" उसी अवसर पर आपने उपदेशकों को भी सम्बोधन करते हुए कहा था—"जब उपदेशक किसी विषय पर लेक्चर दें तो बाद देने लेक्चर ज़मींदारान व काश्तकारान से यह भी दरियाफ़्त करें कि वे कही हुई बातों को समझे या नहीं; और बतलाये हुए मुफ़ीद रास्ते पर चलने में क्या तरद्दुद है। अगर कोई तरद्दुद उनको हो तो रफ़ा करें ताकि वह बतलाई हुई बातों की आज़मायश तो कर ही लें। उपदेशकों को इस बात का हर वक़्त इतमीनान करते रहना चाहिए कि उन तरकीबों पर ज़मींदारान व काश्तकारान ने ठीक तौर पर अमल किया या नहीं। अगर किसी ज़मींदार या काश्तकार को, किसी

बात का शुबहा हो तो उपदेशकों को चाहिए कि भाईचारे के तौर पर उनको समझा कर उनका शुबहा दूर करें और तब उनको ज़हन-नशीन करा दें।"

उपदेशकों को आपने हिदायत दी थी कि गाँवों में जाकर वहाँ लोगों के साथ [illegible] तौर पर बर्ताव न करें। गाँववालों के बीच में बैठकर उन्हीं का-सा रहन-सहन बना कर, उन्हें उन्नति की बातें समझावें। उन पर यह प्रभाव डालें कि हम लोग सरकारी मुलाज़िम नहीं, तुम्हारे शुभचिन्तक हैं और तुम्हारी ही भलाई चाहते हैं।



[महाराजा माधवराव सेंधिया का स्मारक (छतरी) शिवपुरी]

भवन-निर्माण

आपको मकान बनवाने का भी बड़ा शौक़ था। प्रजा-हित के लिए लश्कर में टाउनहाल, मेमोरियल मार्केट, गोपालमंदिर, मोहम्मद शफ़ी मसजिद, सिक्खगुरुद्वारा, बनवाकर यह साबित कर दिया कि हिन्दू, मुसलमान, सिख, सब आपके लिए बराबर थे। शिवपुरी पहले एक छोटा-सा क़स्बा था। उसे आपने अपना ग्रीष्म-निवास बनाया और वहाँ पर एक महल ही नहीं बनवाया सेक्रेटरिएट की एक भव्य इमारत भी बनवाई जहाँ गर्मी के दिनों में [illegible] गवर्नमेंट के दफ़्तर रहते थे। शिवपुरी में, अपनी माता श्रीमती जीजा महाराज की स्मृति में एक विशाल छत्री बनवाई जो भारत की अन्य प्रसिद्ध इमारतों के समान एक क़ाबिलेदीद इमारत है। ग्वालियर तथा शिवपुरी के होटल की इमारतें, कलकत्ता तथा बम्बई के बड़े से बड़े होटलों की इमारतों का मुक़ाबिला करती हैं। कहा जाता है, शिवपुरी के निर्माण में एक करोड़ रुपये से ऊपर ख़र्च हुआ है। शिवपुरी जल-वायु की दृष्टि से ही नहीं, अपनी प्राकृतिक शोभा के लिए भी एक बहु[illegible] ही सुन्दर स्थान है। इनके अलावा और भी सैक[illegible] इमारतें प्रजा की आसायश को ध्यान में रखकर, ज़िल[illegible] में सरकारी दफ़्तरों, स्कूलों आदि के लिए बनवा[illegible] और सड़कों का तो राज्य में, आपने जाल ही बिछा दिया[illegible] जिन स्थानों पर पहले जाना अत्यन्त कठिन काम था, ज[illegible] जाना लोग कालेपानी जाना समझते थे, वहाँ सड़कों [illegible] निर्माण से, महीनों का रास्ता दिनों में नहीं, घंटों में त[illegible] होने लगा है।

शिकार

शिकार का भी आपको बहुत शौक़ था, पर[illegible] व्यसन न था कि दिन-रात शिकार में ही लगे रहें[illegible] शिकार के लिए जंगल में जा-बजा आपने शिकारगा[illegible] बनवायें और महकमे शिकारख़ाने का ऊँचे पैमाने [illegible] प्रबन्ध किया। ग्वालियर में आपके ज़माने में देश-विदे[illegible] से बहुत-से लोग शिकार खेलने आया करते थे। भार[illegible] का शायद ही ऐसा कोई वाइसराय हो जो ग्वालियर शिक[illegible] खेलने न आया हो और आपके प्रबन्ध से प्रसन्न न हु[illegible] हो। स्वयं सम्राट् एडवर्ड सप्तम तथा सम्राट् जार्ज पंचम

ग्वालियर आकर शिकार खेला था और वर्तमान सम्राट् अष्टम एडवर्ड भी जब प्रिन्स आफ़ वेल्स थे, ग्वालियर शिकार के लिए आये थे। महाराजा का निशाना अचूक था। शिकार में कई ऐसे अवसर आये कि शेर ने समीप आकर हमला करना चाहा, और मालूम होने लगा कि अब कुछ हानि होना चाहती है; महाराज ने तुरन्त एक ही गोली से शेर का काम तमाम कर दिया। एक अवसर पर आप हिरन के शिकार को गये थे, मगर झाड़ी में से बजाय हिरन के शेर निकल आया। उस अवसर पर आपके साथ दो आदमी और थे, दोनों ने यह भयानक दृश्य देख, एक पास की झाड़ी में शरण ली। परन्तु आपको वहाँ से एक पग इधर-उधर करने तक का मौक़ा न था। इस भयानक अवसर पर, आप तनिक भी विचलित तथा भयभीत नहीं हुए। आप अपनी बंदूक़ को शेर के सामने करके उसकी दृष्टि से दृष्टि मिला, खड़े हो गये। सम्मुख प्रत्यक्ष काल को देख, शेर भी गुर्राता हुआ अपने प्राणों को बचा, बजाय हमला करने के मुख मोड़ जंगल की ओर चला गया। परन्तु इतने में ही, उसी समय एक शेरनी उसी झाड़ी में से निकल कर आ गई, और आप पर हमला करना चाहा। इस अवसर पर भी बिना इधर-उधर डिगे, आप बंदूक़ ताने, आगे खड़े रहे; और शेरनी भी भाग गई। जब यह संकट टल गया, और आपके साथी झाड़ी से निकल कर आपके पास आये, तब उन्हें देखकर आप बिना किसी प्रकार की नाराज़ी का भाव दिखाये हुए, बहुत ज़ोर से हँसे, और कहा कि परमात्मा ने बड़ी ख़ैर की। आज उसने मुझे जीवदान दिया।

धार्मिक विचार

आपके धार्मिक विचार बहुत उदार थे। यद्यपि आप परम शिव-भक्त थे, परन्तु तो भी आपको किसी सम्प्रदाय तथा मत से द्वेष न था। शिव-भक्त होते हुए भी, आपने एक बहुत विशाल गोपाल-मंदिर बनवाया, मसजिद बनवाई, गुरुद्वारा बनवाया; और थियासोफ़िकल लाज की सुन्दर इमारत बनाने में सहायता दी। आप बहुधा कहा करते थे—"रास्ते जुदा जुदा हैं, मगर मंज़िल मक़सूद एक है"। सरकारी देवालय गोरखी में जितने धार्मिक उत्सव होते थे, आप स्वयं जाते थे और राज्याधिकारियों तथा कर्मचारियों को जाने के लिए बाधित करते थे। ईद के अवसर पर नमाज़ के बाद, मुसलमान लोगों को दरबार की ओर से मुबारकबाद देने के लिए, मसजिद में, ज़िलों में सूबा, तहसीलों में तहसीलदार वग़ैरह को जाने का आपने प्रबन्ध किया था। धार्मिक संस्थाओं की सहायता तथा निगरानी के लिए महकमे माफ़ी तथा वक़्फ़ कमेटियाँ क़ायम कीं। आपने राज्य के माफ़ीदारों के सम्बन्ध में अपनी पालिसी में लिखा है—"इनके साथ पालिसी यह होना चाहिए, कि इनको जिस काम के लिए माफ़ी दी जाती है, उस काम से ये वाक़िफ़ हैं या नहीं, और उस काम को ठीक अंजाम देते हैं या नहीं। अगर ये लोग अपने धर्म-कार्य करने में अयोग्य हैं; तो इनके बालकों को शिक्षा देकर योग्य बनाया जावे। क्योंकि ये ही लोग प्रजा को धर्म पर क़ायम रखने के लिए मुझे उचित जान पड़ते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को उसके धर्म पर क़ायम रखना, राजा का मुख्य कर्तव्य है। जब ये लोग योग्य होंगे तभी दूसरों को सदुपदेश दे सकेंगे, और दूसरों पर उनका अच्छा प्रभाव पड़ेगा। इस कारण, इन माफ़ीदारों पर इस विचार से विशेष ध्यान रखना चाहिए कि ये लोग विद्वान् बनें, और योग्य हों; जिससे जन-समाज में, इनका मान हो, आदर-सत्कार हो; इनके उपदेशों से प्रजा लाभ उठावे और राज्य-भक्त बने, जिससे राजा तथा प्रजा दोनों का कल्याण हो।"

आपके उपर्युक्त वाक्य में धार्मिक सहनशीलता का कितना उदार भाव है। आप यह नहीं कहते कि जिन माफ़ीदारों को माफ़ी मिलती है यदि वे अयोग्य हों, तो उनकी माफ़ी बन्द कर दी जावे, बरन आप यह आदेश देते हैं कि उनके बालकों को काम के योग्य बनाया जावे।

आपको ईश्वर-भजन तथा पूजा-पाठ में भी श्रद्धा थी। प्रतिवर्ष भाद्रमास में, गणेशोत्सव के अवसर पर एक सप्ताह निरंतर दो घंटे श्रीगणेश जी की झाँकी के सामने खड़े रह कर आप भजन करते थे। नित्य प्रातःकाल पार्थिव पूजा करते थे। प्रतिवर्ष मृग-नक्षत्र का आरम्भ होते ही, राज्य के कल्याणार्थ विद्वान् ब्राह्मणों-द्वारा जप तथा अनुष्ठान कराते थे। समय समय पर महलों में विद्वान् ब्राह्मणों की कथायें करवाते थे। उज्जैन में अपनी माता के नाम पर धर्मशाला बनवा कर सदावर्त स्थापित किया था, जहाँ पर यात्रियों को तीन दिन तक अन्न-दान दिया जाता है। उज्जैन में, हर बारहवें साल सिंहस्थ का मेला क्षिप्रा नदी के किनारे होता है, उस अवसर पर एक मास तक प्रायः आठ नौ लाख साधुओं को भोजन देने की व्यवस्था आपने की थी। आप स्वयं व्रत करते थे। श्रावण में सोमवार तथा आषाढ़ी एकादशी का व्रत आप सदा रहते थे। कभी कभी सत्यनारायण का व्रत भी रहते थे। उस दिन आप जल नहीं पीते थे, परन्तु यदि गर्मियों के दिनों में अधिक आवश्यकता ही हुई तो गंगाजल पीते थे। शिवरात्रि को कभी कभी जागरण भी करते थे। आपके इन धार्मिक कार्यों का लोगों पर बड़ा अच्छा असर पड़ता था।

परिश्रमी तथा विनोदी

आप बड़े परिश्रमी थे। काम करते कभी थकते न थे। जब दफ़्तर में काम करने बैठते तब भूख-प्यास सब भुला देते थे। जब घोड़े पर कहीं बाहर जाते, सहज बीस पचीस मील चले जाते थे। शिकार में दिन-रात पैदल घूमते हुए भी नहीं थकते थे। जिस काम के पीछे पड़ते थे, उसे बिना पूरा किये कभी नहीं छोड़ते थे, वर्तमान ग्वालियर आपके ही अनन्त परिश्रम का फल है। छोटा-से-छोटा परिश्रम का काम करने में आप कभी लज्जा का अनुभव नहीं करते थे। काम करने में कभी-कभी आपके साथी घबड़ा जाते थे परन्तु महाराज कभी नहीं घबड़ाते थे। कभी किसी ने आपके मुँह से यह नहीं सुना कि काम करते-करते आप उकता गये हों। आपको काम की शिकायत न थी, आपको समय की शिकायत थी कि समय कम है। आप बहुधा कहा करते थे कि "मनुष्य-जन्म थोड़े समय का है, इस थोड़े समय में, जितना ज़्यादा हो सके, काम कर लो, वर्ना पछताना पड़ेगा। आप बड़े विनोदी थे। आपको मुँह लटकाये बहुत कम देखा गया। हमेशा हँसते ही रहते थे। विनोदपूर्वक हँसी-मज़ाक करना आपका विशेष गुण था। ग्रामीणों से मिलने में आपको बड़ा आनन्द आता था। एक बार आपने एक ग्रामीण दूधवाले से पूछा कि "भाई, तुम दूध तो रोज़ ख़ूब पीते होगे। उसने जवाब दिया, महाराज, दूध कहाँ से पिऊँ, अगर दूध पिऊँ तो बाल-बच्चे कहाँ से पालूँ। हाँ, अलबत्ता सूखी रोटियाँ थोड़े-से दूध में भिगो कर खा लेता हूँ।" महाराज इस उत्तर से बहुत प्रसन्न हुए, और उसे कुछ पारितोषिक दिया।

छुट्टियों में, बहुधा पिकनिक में जाते थे। वहाँ स्वतः भोजन पकाते थे, साथियों को भोजन बनाना सिखलाते थे। आप बहुधा कहा करते थे कि छुट्टियों में काम को भूल जाना चाहिए। एक सप्ताह काम करने की थकावट आमोद-प्रमोद में दिन बिता कर दूर करना चाहिए। सुना जाता है, एक दिन पिकनिक में, आपने एक अफ़सर को बाजरा की रोटी पकाने का आदेश दिया। उस बिचारे को कभी बाजरा की रोटी बनाने की बात तो दूर, खाने का भी मौक़ा न आया था। उसने आटे में पानी डाल कर आटा गूँधना चाहा, मगर जब उससे रोटी न बनी, तब आप खिलखिला कर ख़ूब हँसे और कहा—"हज़रत, जब आपको ग़रीबों का खाना—बाजरे की रोटी—बनाना नहीं आता तब उनका दुःख-दर्द क्या सुनते होगे।" उनके विनोद की सैकड़ों कहावतें प्रसिद्ध हैं। परन्तु इस लेख में उनके देने की गुंजायश नहीं।

उदारता

आप बड़े उदार थे। ग्वालियर की जितनी बड़ी बड़ी संस्थायें हैं, वे तो प्रायः सबकी सब आपकी उदारता से चल रही हैं, परन्तु बाहर की संस्थाओं को भी आपने उदारतापूर्वक दान दिया। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की आपने कई बार अच्छी सहायता की। आप उसके संरक्षक भी थे। अलीगढ़-मुसलिम यूनिवर्सिटी को कई लाख का दान दिया। इसी प्रकार बनारस-यूनिवर्सिटी को भी कई लाख रुपया प्रदान किया। जापान में जब भयंकर भूकंप आया था, और जापान में बहुत तबाही फैली, तब आपने हज़ारों की सहायता की। योरपीय महायुद्ध के अवसर पर रोगियों तथा घायलों के लाने ले जाने के लिए कई लाख रुपया ख़र्च करके एक जहाज़ "लायलटीशिप" आपने प्रदान किया। मानव-समाज की सेवा में आप जाति, पाँति, धर्म और देश का भेद नहीं मानते थे। असहायों की सहायता करना ही आप अपना कर्तव्य समझते थे।

सादा जीवन

आपका निजी जीवन बहुत सादा था। तड़क-भड़क की पोशाक पहनना आपको पसन्द न था। ग्वालियर के बाहर जब कभी आप जाते, तो आप वहाँ अपनी सादी

पोशाक में निकलते, और स्वतः बहुत-सी चीज़ें ख़रीदते। आप कहा करते थे, कि "इस प्रकार कार्य करने में ज्ञान बढ़ता है, और लाभ भी बहुत होता है।" अभिमान का भाव आपमें न था। बहुत बड़े मिलनसार थे। छोटे-से-छोटे मनुष्य से, मिलने में आपको संकोच न था। आपने एक अवसर पर कहा था—"आज-कल लोग ऊँचा ओहदा पा जाने में ही अपनी शान समझते हैं। उन्होंने स्वाभाविक हँसी को दबा कर उसके बदले मुसकरा देना, स्वाभाविक स्थिति को छिपाकर सबसे अच्छे भाग को सामने रखना, वस्तुतः हम जैसे नहीं हैं उससे अधिक बड़े और अच्छे होने का ढोंग रचना, अपने विचार, चाल-ढाल, आचरण, पोशाक और धन-ऐश्वर्य को अच्छा समझना, ग़रीब लोगों को चतुराई से ठग लेना, ग़रीबी पोशाकवाले मनुष्य को देखते ही मुँह फेर लेना, उसके सभ्यता-पूर्ण प्रश्न का उत्तर न देना, अपरिचित की ओर उदासीन भाव से देखना और जब वह बातचीत शुरू करे तब न बोलना ही सभ्यता, बड़प्पन और शराफ़त की निशानी आज-कल के लोगों ने समझ रक्खी है।" आपके उपर्युक्त विचार साधारण लोगों के ही नहीं, वर्तमान समय में बहुत-से राजा-महाराजाओं तथा रईसों के लिए भी मनन करने योग्य हैं।

उपसंहार

उच्च विचार, आदर्श शासक, नीतिज्ञ, गुणज्ञ, उदार होने पर भी आप यही कहा करते थे कि मनुष्य परिपूर्ण नहीं हो सकता। उसमें त्रुटियों का होना स्वाभाविक है। अतएव अपने को सर्वोच्च समझकर दूसरों के विचारों तथा राय की परवाह न करना बहुत बड़ी ग़लती है। आपने एक अवसर पर कहा था—"अगर कोई यह कहे, मैं अपने काम में ग़लती नहीं करता तो मेरी राय नाकिस में, उसे कभी काम करनेवाला आदमी नहीं समझना चाहिए। औरों का तो ज़िक्र ही क्या, मैं अपने बारे में ही कहता हूँ कि ईश्वर जाने मैंने अपने इस हुक्मरानी के ज़माने में, कितनी ग़लतियाँ की होंगी। अपनी ग़लती को मान लेना किसी काम को उत्तम रूप से सम्पादन करने का शुभ चिह्न है।"

जिस योग्यता, उदारता, सहनशीलता तथा धीरतापूर्वक आपने ग्वालियर-राज्य का शासन तीस वर्ष तक किया इसका पता ग्वालियर-राज्य की वर्तमान दशा से लगता है। आपने अपनी शक्ति भर ग्वालियर-राज्य की ख़ूब उन्नति की। और अब आशा की जाती है, "बाप से बेटा सवाई," हमारे प्रिय महाराज जीवाजीराव साहब सेंधिया, जिनको इसी मास में राज्य के अधिकार प्राप्त हुए हैं, अपने पूजनीय पिता के मार्ग का अनुकरण करते हुए, ग्वालियर-राज्य की प्रजा को सुखी तथा समृद्धिशाली बनावेंगे।

मैंने अपनापन खो डाला केवल उसको पाने में

लेखक, श्रीयुत रवीन्द्र, बी० ए०

जलने में मुझको सुख मिलता,
उसको मुझे जलाने में।
मैंने अपनापन खो डाला,
केवल उसको पाने में॥

मधु अभिलाषायें रोती हैं,
मेरे मानस के कोने में।

मैंने हँसना रोना सीखा,
उनके ही हँसने रोने में॥

मेरे इस सूने से उर में,
आशाओं ने छिपना सीखा।
जलना-घुलना फिर आहों में—
जा तारों में मिलना सीखा॥

दो पत्र

नागपुर का साहित्य-सम्मेलन एक महत्त्वपूर्ण घटना है। क्योंकि वहाँ राजनैतिक नेताओं ने जमा होकर इस विषय पर रायें प्रकट की थीं कि हमारा साहित्य और भाषा कैसी होनी चाहिए। इस लेख में लेखक ने उन्हीं प्रश्नों पर दो दृष्टिकोणों से दो मज़ेदार पत्र लिखे हैं।

लेखक, श्रीयुत सीतलासहाय

यह मेरा दुर्भाग्य है कि मेरे दो मित्र सनकी हैं और यह मेरी अक्षम्य धृष्टता है कि मैं आज 'सरस्वती' के पाठकों से इन दोनों मित्रों का परिचय कराने जा रहा हूँ।

सरदार सन्तसिंह—आपका निवासस्थान पंजाब है और शिक्षा भी पंजाब की है। अपने प्रान्त के प्रसिद्ध राजनैतिक कार्यकर्ता हैं और गरमतम पार्टी के मेम्बर हैं। इनका हृदय खद्दर के सफ़ेद कपड़े के समान हर प्रकार के रंग को बहुत शीघ्रता से ग्रहण कर लेता है। इनके विचारों से मैं पूर्णरूप से सहमत नहीं हूँ और ये भी मेरे विचारों से काफ़ी मतभेद रखते हैं, तथापि हम एक दूसरे के मित्र हैं। इनमें मिश्नरी स्पिरिट काफ़ी ज़ोरदार है। मुझे अपने विचारों का बनाने के लिए इनकी ओर से अनेक प्रयत्न होते रहते हैं। बम्बई से कभी ये मेरे पास अपनी चुनी हुई किताबों का एक सेट भेज देते हैं, कभी किसी विलायती अख़बार में किसी अच्छी पुस्तक का विज्ञापन देखते हैं तो मुझे लिखते हैं कि इसे मँगाकर पढ़ो। लेकिन इस सम्बन्ध में ये जिस सबसे सरल और सस्ते साधन का प्रयोग उदारतापूर्वक प्रायः करते रहते हैं वह यह है कि मुझको विचारपूर्ण लम्बे लम्बे ख़त लिखकर भेजते रहते हैं।

दूसरे हैं ठाकुर गनपतसिंह। अवध के रहनेवाले हैं। इनका ज़्यादातर समय गाँवों में ही बीतता है। शहर से—इसलिए जीवन की नफ़ीस चीज़ों से—दूर रहते रहते इनकी बुद्धि मेरे मतानुसार कुछ कटु और कुछ एकांगी होगई है। ये नीरस, शुष्क, किन्तु विचारशील पुरुष हैं। सरदार सन्तसिंह के समान ये भी मेरे पास सामाजिक प्रश्नों के बारे में अक्सर ख़त भेजा करते हैं।

इन दोनों सज्जनों के पिछले पत्र अभी हाल में ही मुझे मिले हैं 'सरस्वती' के पाठकों के मनोरंजनार्थ इन्हें मैं विनय के साथ यहाँ उद्धृत करता हूँ।

पोलिटिकल क्लब
लाहौर, १-९-३६

माई डियर एस० एम०,

मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम आज-कल की देश की अनेक सार्वजनिक शक्तियों का उदय और विकास अच्छी तरह अध्ययन कर रहे होगे। तुमने एक बात देखी होगी, महात्मा गांधी अब साहित्य की ओर झुक रहे हैं और हिन्दी-साहित्य की धारा को अपने तरीक़े से चलाना चाहते हैं। हिन्दी को 'हिन्दुस्तानी' बनाना चाहते हैं। उर्दू ज़बान के मुहावरों से तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओं से इस हिन्दुस्तानी ज़बान को सम्पन्न करना चाहते हैं। इसे मैं एक महत्त्वपूर्ण घटना मानता हूँ। जो राजनैतिक नेता अपने नेतृत्व तथा सिद्धान्त को और राष्ट्रीय शक्ति के विकास को केवल भाषणों पर ही छोड़ देना चाहता है, सफल नहीं हो सकता। साहित्य बड़ी शक्तिशाली चीज़ है। अगर साहित्य एक ओर जाय और राजनैतिक धारा दूसरी ओर तो परिणाम यह होता है कि ये दोनों एक-दूसरे के प्रभाव और ज़ोर को रोक देते हैं, और क़ौम आगे बढ़ने के बजाय वहीं की वहीं खड़ी रह जाती है।

महात्मा गांधी का तो सिद्धान्त यह रहा है कि राष्ट्रीय सिद्धान्तों का प्रचार चरित्र-बल से किया जाय। इसलिए उन्होंने 'सत्याग्रह-आश्रम' और 'उद्योग-मन्दिर' खोले, साहित्य-प्रकाशन पर ज़ोर नहीं दिया। यदि वे अपनी देख-

क्षेत्र में लेखकों को भी ट्रेन करते, जैसे सत्याग्रह-आश्रम में वे कार्यकर्ता ट्रेन करते थे, तो उनके सिद्धान्त उनके बाद भी ज़िन्दा रह सकते। लेखनी के मुक़ाबिले चरित्र से सिद्धान्तों का वैसा स्थायी प्रचार होना कठिन है। लेकिन साहित्य-द्वारा सिद्धान्तों का प्रचार साधारण मस्तिष्क का भी आदमी कर सकता है और सिद्धान्तों की एक सुन्दर तस्वीर अपनी भावी संतान के आगे अंकित कर जा सकता है। जो योग्य होते हैं, बाद को वे उससे फ़ायदा उठा लेते हैं, जैसे टाल्सटाय ने किया। हम साम्यवादी ऐसी भूल नहीं करेंगे। हम अपनी प्रान्तीय पार्टी में यह प्रस्ताव रखनेवाले हैं कि साम्यवाद के सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए साहित्य और साहित्यिक दोनों अच्छी तरह काम में लाये जायँ, अपने समाचार-पत्र निकाले जायँ, अपना प्रकाशन-विभाग हो और अपनी पार्टी के आदमियों को बाक़ायदा साहित्यिक बनाने का प्रयत्न हो।

विगत २४ अप्रेल को नागपुर में महात्मा गांधी ने 'साहित्य-परिषद्' के सामने जो भाषण किया है उसे आपने पढ़ा ही होगा। उन्होंने हिन्दी-साहित्य के सामने अपने मतानुसार एक उच्च आदर्श रक्खा है। वे कहते हैं—"हिन्दी-साहित्य में से काम-उत्तेजक साहित्य निकालो, शृङ्गार कम करो, साम्प्रदायिकता मिटाओ, जातीयता का विष दूर करो।" किन्तु एक बात रह गई। हिन्दी-साहित्य से आध्यात्मिकता भी कम होनी चाहिए। हिन्दी-साहित्य इस समय अगर एक ओर शृङ्गार-रस से पीड़ित कहा जा सकता है तो दूसरी ओर वह वैराग्य और शान्त रस का तो बहुत भयंकर शिकार हो रहा है।

भारतवर्ष में अध्यात्म की ओर लोगों की प्रवल रुचि पाई जाती है। पारलौकिक विषयों से सांसारिक विषयों की अपेक्षा उनको ज़्यादा प्रेम है। 'विष्णुसहस्रनाम' और 'हनुमानचालीसा' की पुस्तकें 'हिन्दी की खेती' या 'पपीता की काश्त' की अपेक्षा ज़्यादा बिकती हैं। 'कल्याण' में प्रकाशित 'गीता में आत्मा का स्वरूप' शीर्षक लेख लोग बहुत चाव से पढ़ते हैं और समझते हैं, किन्तु 'विनिमय की दर' या 'सोने की सिक्का-नीति' आदि विषय पर न तो लेख लिखे जाते हैं, न छापे जाते हैं और न लोगों की समझ में ही आते हैं। भारतवर्ष में परलोक को इहलोक की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया जाता है। इस प्रवृत्ति ने जनता में एक ऐसी स्थिति पैदा कर दी है कि वह सांसारिक उन्नति में वैज्ञानिक ढंग से संलग्न होने के लिए सहज ही असमर्थ होगई है। आश्चर्य यह है कि ये दोनों रस अर्थात् शृङ्गार और शान्त-रस प्रकट रूप से एक दूसरे के विरुद्ध होते हुए भी जहाँ तक हिन्दी-साहित्य का सम्बन्ध है, चिरकाल से एक-दूसरे के गले में हाथ डाले चले आ रहे हैं। शृङ्गार और शान्ति का यह स्नेह-बन्धन हिन्दी, उर्दू और संस्कृत सभी में पाया जाता है। स्वदेशी साहित्य ने भारतीय जनता को यह शिक्षा दी है कि या तो गुफ़ा में बैठकर राम-नाम जपना चाहिए या परकीया और अभिसारिका की चिन्ता में ज़िन्दगी गुज़ार देनी चाहिए। उर्दू के कवि एक साँस में 'बेसबातीये-दुनिया' का रोना रोते हैं, और दूसरी साँस में माशूक़ की बेवफ़ाई और वस्ल की वादाख़िलाफ़ी की शिकायत करते हैं। अर्वाचीन मनोविज्ञान तो यह कहता है कि वैराग्य और शान्त-रस शृङ्गार-रस का केवल रूपान्तर है। प्राचीन साधु-सन्त और शान्त-रस के उपासक अपने जीवन में विशेष प्रबल शृङ्गार-रस के शिकार थे, जैसे तुलसीदास। गांधी जी स्वयं इस सिद्धान्त के प्रमाण हैं। शृङ्गार वीर्य का चित्र है, वैराग्य पतन का। शायद आपको यह पता हो कि सोवियट रूस में अध्यात्म-शास्त्र की किताबों का छापना क़ानून के विरुद्ध माना जाता है। कैंट, प्लेटो, डेकार्टेस स्पेन्सर, शोपनहार, विलियम जेम्स, स्पिनोज़ो, निट्शे, रस्किन और टाल्सटाय की किताबों का प्रकाशित करनेवाला रूस में जेल भेज दिया जाता है। हिन्दुस्तान में भी ऐसा ही होना चाहिए। सूरसागर, भक्तमाल, प्रेमसागर, सुखसागर इत्यादि पुस्तकों का छपना बन्द कर देना चाहिए।

रामकृष्णाश्रम, नई दिल्ली, के स्वामी सर्वदानंद जी ने ७ मार्च को देहरादून में 'जीवन का उद्देश' विषय पर एक भाषण किया है। तुमने पढ़ा ही होगा। उन्होंने कहा है—

"जीवन स्पष्ट है। एक ग़लतफ़हमी है। इसका उद्देश है वास्तविक ज्ञान का विकास और अमरतत्त्व की प्राप्ति। नौजवान आदमी के लिए दुनिया आशापूर्ण और गुलाब के फूल के समान हो सकती है। बाद को जब सहारा जाता रहता है, दुनिया आनंद-वाटिका नहीं, बल्कि आँसू बहाने का क्षेत्र हो जाती है।

"उस परमात्मा को समझो। वह अनंत और अनादि-शक्ति जो सर्वव्यापी है, दुनिया की हर एक शक्ति में जान डाल रही है। अनंत का केन्द्र हमारे हृदय में है। उसकी परिधि सर्वत्र है। हृदय में जो अनन्त शक्ति छिपी हुई है उसमें मिल जाओ, जैसे नदी समुद्र से मिल जाती है। जिसने अनंत को समझा, जीवन के उद्देश को प्राप्त कर लिया। पुरुषार्थ को पा लिया।"

क्या ही सुन्दर मार्मिक बकवास है! ख़ैरियत यही है कि इस देश में स्वामी जी के बताये हुए प्रोग्राम पर चलने के लिए तैयार होनेवालों की संख्या बहुत ज़्यादा नहीं है। उनकी भी भरती काफ़ी नहीं होती। जब हमारा पेट मलाई या और मिठाई से खूब भरा हुआ होता है, शब्दों का आडम्बर जैसा स्वामी जी ने उपर्युक्त भाषण में रचा है, बहुत आसानी से रचा जा सकता है।

हिन्दू-जनता के सामने इस समय यह समस्या नहीं है कि परमात्मा से कैसे मिला जाय या उस अनंत शक्ति में तल्लीन किस प्रकार लीन हुआ जाय। समस्या उसके सामने दूसरी है, जिसे स्वामी जी ने अपने लिए अपने ढंग से हल कर लिया है। किन्तु जनता की यह समस्या हल नहीं हुई है। मैं उक्त स्वामी जी पर कोई व्यक्तिगत आक्षेप नहीं करता। मेरा आक्षेप तमाम ऐसे लोगों पर है जो मुफ़्त में खाते हैं और हिन्दुस्तान की दरिद्र जनता को अनंत में लीन हो जाने का उपदेश करते हैं। इस बात को मैं अभी तक नहीं समझ सका हूँ कि अगर कोई साधु महाशय मोक्ष के लिए प्रयत्नशील हैं तो उनके दूध का इन्तज़ाम मैं क्यों करूँ या समाज क्यों करे। मोक्ष तो साधु जी को मिलेगा, अनंत का उपभोग तो वे करेंगे। हमको क्या लाभ होगा? मैं हमेशा ऐसी कम्पनी का शेयर होल्डर होने से इनकार कर देता हूँ जिसका मुनाफ़ा चार लोग खा जाते हैं।

यह तो हुई साहित्य की बात। अब इसका परिणाम देखिए। धार्मिक साहित्य की अधिकता की वजह से सारे क़ौम में मुर्दनी छा गई है। जनता को इस लोक की फ़िक्र कम है, परलोक की ज़्यादा है।

कुछ दिन हुए समाचार-पत्रों में मैंने पढ़ा था कि युक्त-प्रान्त में 'धर्म-रक्षणी सभा' नाम की एक संस्था पुनर्जाग्रत की जा रही है, जिसका उद्देश टूटे-फूटे मंदिरों की मरम्मत और सम्पन्न मंदिरों, मठों और ठाकुरद्वारों का सुप्रबन्ध करना होगा। कहने की आवश्यकता नहीं कि हम लोग इस प्रयत्न को केवल समय का अक्षम्य नाश ही नहीं, बल्कि सामाजिक दृष्टि से हानिकारक भी मानते हैं।

तुम हमसे कई बार कह चुके हो कि हिन्दू-धर्म की आत्मा निष्कलंक है, किन्तु तुमको भी यह मानना पड़ेगा कि उसका शरीर अर्थात् बाह्य रूप सम्पूर्ण रूप से जर्जर हो गया है। हिन्दू-पूर्वजों ने बड़ी बड़ी संपत्ति धार्मिक गुरुओं को इस उद्देश से दान की थी कि वे और उनके वंशज अपने चरित्र से और उपदेश से, अपने जीवन और कार्य से, हिन्दू-समाज को पवित्र और निष्कलंक बनाये रक्खेंगे। वह उद्देश अब ख़त्म हो गया है। मैं तुम्हारे ही दृष्टिकोण से यह सब लिख रहा हूँ। साधारण साधु, साधारण मठ-मालिक या किसी धर्म-संस्था का प्रतिनिधि हिन्दू-समाज के साधारण मनुष्य के चरित्र में, जीवन में, मानसिक स्थिति में किसी प्रकार भी श्रेष्ठतर नहीं है। हिन्दू-समाज का और भारत का उन्नति की ओर जाने का सम्पूर्ण प्रयत्न ग़ैर-साधु-सम्प्रदाय के ज़रिए से हुआ है। जिन लोगों से हिन्दू-समाज को जीवन की उच्च बातों में नेतृत्व करने की आशा रखने का हक़ है वे नैतिक क्षेत्र में, सेवा-कार्य में और चरित्रबल में भी काफ़ी नीचा स्थान रखने लग गये हैं। जो लोग हिन्दूधर्म के नाम पर लाखों रुपये की संपत्ति का उपभोग करते हैं, अपनी इस सुविधा के लिए नहीं, सिर्फ़ ज़िन्दा रहने के लिए कौन-सी युक्ति पेश कर सकते हैं? क्या हिन्दू-समाज में इनके कारण धर्म का आदर्श ज़रा भी ऊँचा हुआ है? कोई बता सकता है कि हिन्दू-समाज के वर्तमान संकटों में जो अनेक हैं, इनकी वजह से कोई सरलता पैदा हुई है? मैं तो यही देखता हूँ कि विषय-वासना का जो जीवन यहाँ का साधारण गृहस्थ व्यतीत करता है वही कम या ज़्यादा ये लोग भी व्यतीत करते हैं। इलाक़ा या जागीर पाये हुए मठाधीशों, धर्म-गुरुओं और साधुओं की श्रेणी ज़्यादातर अपने कर्तव्य से सम्पूर्ण रूप से गिरी हुई है। धर्म की सच्ची रक्षा तुम्हारे ख़याल से भी इसी में है कि इनकी जायदादें कोर्ट आफ़ वार्ड्स में करके आमदनी का पैसा उस काम में लगाया जाय जिससे हिन्दू-धर्म का नाम ऊँचा हो। हमारी चले तो हम तो ये सब जायदादें ज़ब्त करके हड्डी पीसने का कारख़ाना खोल

दें, जिससे भारतीय किसान के खेत अधिक उपजाऊ बनें। लेकिन अगर केवल धार्मिक दृष्टिकोण से देखा जाय तो भी हिन्दू-धर्म के सामने अनेक प्रोग्राम हैं, जो इस समय रुपये के अभाव से रुके हुए हैं। कोई कारण नहीं मालूम होता कि गीता और रामायण क्यों न करोड़ों की संख्या में छाप कर सस्ते दामों में बेची जाय, जैसे बाइबिल बिकती है। वेद के तो दर्शन तक आप लोगों को नहीं होते। अनेक धार्मिक ग्रंथों के भी सस्ते संस्करण नहीं प्रकाशित हो रहे हैं। संस्कृत के प्रचार का काम कितना रुका पड़ा है? युक्त प्रान्त की सारी धार्मिक सम्पत्ति का अगर एक ट्रस्ट कर दिया जाय और उसकी आमदनी व्यक्तिगत व्यसन में व्यय न करके (जैसा आज होता है) उपर्युक्त कार्य में लगाई जाय तो हिन्दू-धर्म का सिर कितना ऊँचा हो सकता है?

मेरे ऊपर के शब्दों से यह न समझिएगा कि मैं रामायण के प्रचार को या संस्कृत-विद्या को लोकप्रिय बनाने के पक्ष में हूँ। इस सम्बन्ध में तुम मेरे विचारों से परिचित ही हो।

मुझे ऐसा मालूम होता है कि हिन्दू-समाज को यह नियम कर लेना चाहिए कि अब कोई भी नये मंदिर या ठाकुरद्वारे न बनवाये। अगर हम इस देश में मौजूदा मंदिरों, शिवालयों और ठाकुरद्वारों की गणना करें तो हमें स्पष्ट हो जायगा कि हिन्दू-समाज की पवित्रता पर इन शिवालयों के अस्तित्व का विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। जो गाँव शिवालयों या ठाकुरद्वारों से वंचित नहीं हैं उनके रहनेवाले शिवालय और ठाकुरद्वारा-रहित गाँवों के निवासियों की अपेक्षा पवित्रता में, सच्चरित्रता में, और स्वर्ग में दाखिल होने की घुड़दौड़ में किसी भी प्रकार अग्रसर नहीं कहे जा सकते। आधे से ज़्यादा शिवालय टूटे-फूटे हैं। वे ग्रामीण युवकों और युवतियों के मिलन-मंदिर और कुत्तों के आश्रयस्थल हैं।

हम लोगों में भक्ति की काफ़ी मात्रा पाई जाती है। मैं तो कहूँगा कि ज़रूरत से ज़्यादा ख़ुराक हम खा गये हैं। अब समाज के सामने हमें अर्वाचीन आदर्श रखना चाहिए। वह क्या? धार्मिक संस्थायें शिक्षा संस्थायें हों, पुजारी न केवल घण्टा हिलाया करें, बल्कि औषधि वितरण करें, बच्चों को पढ़ावें अर्थात् इसी प्रकार के समाज-सेवा के काम करें। ईसाई-धर्म ने जिस पर हिन्दू लोग अक्सर आक्षेप कर बैठते हैं, पश्चिमीय देशों की समाज-सेवा में बड़ी मदद की है। अन्यथा वह पश्चिम की उन जीवित और जाग्रत जातियों में जो हर एक बात की अच्छाई और बुराई का अन्दाज़ा उसके नतीजे को देखकर लगाया करती हैं, ख़त्म हो गया होता।

मेरे एक मित्र जो रोमन कैथोलिक ईसाई हैं, अपने पादरियों का सेवा-प्रोग्राम मुझे बता रहे थे। वे कहते थे कि अनेक अनाथालय, चिकित्सालय, मेडीकल कालेज, शिक्षण-संस्थायें पश्चिमीय देशों में पादरियों और पादरियों की दी हुई सम्पत्ति से चलती हैं। क्या कोई भी मठाधीश इस सम्पूर्ण देश में एक भी स्कूल चलाता है?

एक श्लोक और एक शेर उद्धृत करके मैं यह पत्र समाप्त करता हूँ।

शेख़सादी का क़लाम है—

ऐ ख़ुदाये कि अज़ ख़ज़ानये गैब।

हे ईश्वर जो गुप्त-निधि से

गब्र व तरसा वज़ीफ़ा ख़ुरदारी

यहूदी व ईसाइयों को भी भोजन देता है

दोस्तान् रा कुजा कुनी महरुम

सेवकों को क्यों वंचित रखेगा

आंकि बर दुश्मनां नज़र दारी

वह जो कि शत्रुओं पर भी दयादृष्टि रखता है

और यह किसी वैष्णव का हृदय-उद्गार है

भोजनं छादनं चिन्ता,

भोजन-वस्त्र की चिन्ता

वृथा कुर्वन्ति वैष्णवाः॥

बेकार वैष्णव लोग करते हैं।

योऽसौ विश्वम्भरो देवः,

जो वह सारे संसार का भरण करनेवाला देव है

स कथं भक्तानुपेक्षते॥

वह कैसे भक्तों की उपेक्षा करेगा।

क्या आप राष्ट्रीय दृष्टिकोण से इससे भयंकर सिद्धांत की कल्पना कर सकते हैं? निःसंदेह इन सिद्धान्तों का प्रचार उसी क़ौम में हो सकता है जिसकी कमर की हड्डी टूट गई हो, जो आलस्य में डूबी हुई हो और जिसका हृदय आशा, और उत्साह से ख़ाली हो गया हो।

आपका कामरेड

सन्तसिंह

दूसरा पत्र ठाकुर गनपतसिंह का है। उन्होंने भी इन्हीं विषयों पर अपने विचार प्रकट किये हैं, लेकिन उनका दृष्टिकोण दूसरा है। उनका पत्र निम्नलिखित है।

सेवा-आश्रम

ग्राम बसन्तपुर

पो० अलपुरा

प्रियवर,

आपका पत्र मिला। सरदार साहब का भी पत्र पढ़ा। मैं आपसे सहमत हूँ कि राष्ट्रीय निर्माण में साहित्य का स्थान बहुत ऊँचा है, लेकिन सरदार साहब शृङ्गाररस को जो महत्त्व देते हैं, मेरी दृष्टि से अनुचित है।

पिछले हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर महात्मा गांधी, बाबू राजेन्द्रप्रसाद, पण्डित जवाहरलाल नेहरू आदि देश के राजनैतिक नेताओं का सम्मेलन की कारवाई और प्रोग्राम में ज़ोरदार दिलचस्पी लेना हिन्दी-साहित्य के लिए एक महान् और महत्त्वपूर्ण भविष्य का संकेत करता है। समाचार-पत्रों में कुछ आदरणीय साहित्य-सेवियों ने इस घटना को दुर्घटना कहा है और इसे 'कांग्रेस का साहित्य-सम्मेलन पर आक्रमण' बताया है, किन्तु मैं इसे देश के लिए और हिन्दी-साहित्य के लिए एक शुभ दिन मानता हूँ। यह तो राष्ट्रीय नेताओं की विचारधारा में एक विशेष परिवर्तन होने का संकेत करता है। जिस दिन पण्डित जवाहरलाल नेहरू और बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने साहित्य-सम्मेलन के मण्डप में क़दम रक्खा, मैंने इसे साहित्य की राजनीति पर विजय समझा। इन लोगों का ख़याल था कि गाँवों में भाषण-द्वारा तथा इधर-उधर दौड़धूप करके ही ये अपने उद्देशों की पूर्ति कर लेंगे। शुक्र है, साहित्य की महत्ता को इन्होंने स्वीकार किया।

साहित्य से बढ़कर राष्ट्रीय निर्माण का कुशल यंत्र आज तक नहीं बना। साहित्य से हम जाति का रूप, रंग, ढांचा और ठाट बदल सकते हैं, सोते को जगा सकते हैं, मुर्दे को जिला सकते हैं, पस्त हिम्मत को हिम्मत बँधा सकते हैं। साहित्य वह है जो रोते को हँसा दे और हँसते को रुला दे। साहित्य अगर ग़लत रास्ता पकड़ ले तो वीर क़ौम कामासक्त हो जाय, तलवार चलानेवाले 'बाला और प्याला' के दौर में आकर तबला खनकाते हुए दिखाई दें। उन्नति के शिखर पर पहुँचे हुए पतन के गर्त में आ गिरें। मेरा यह दावा है कि हमारी इस धार[णा] को इतिहास भी पुष्ट करता है। आपने सच लिखा है [कि] गवर्नमेंट अपनी रक्षा की ख़ातिर विरोधी साहित्य को छ[पने] ही नहीं देती और जर्मनी आदि देशों ने साहित्य को अप[ने] अनुकूल रखने के लिए एक स्वतंत्र महकमा ही क़ाय[म] कर दिया है।

साहित्य से हम कई काम ले सकते हैं। साहित्य हमा[रा] मनोरञ्जन कर सकता है। "विद्या विनोदाय"। हम साहि[त्य] को टानिक की तरह भी इस्तेमाल कर सकते हैं। वैरे[...] के समान यह शक्तिदायी भी हो सकता है और प्राणघात[क] भी। साहित्य द्वारा हम क़ौम को किसी भी साँचे में ढा[ल] सकते हैं। साहित्य से क़ौम की अभिरुचियों और प्रवृत्ति[यों] का अन्दाज़ा लगाया जा सकता है।

साहित्य राष्ट्रीय शरीर का भोजन है। भोजन हम स्वा[द] के लिए भी खा सकते हैं और पुष्टि के लिए भी। दुनि[या] कुछ ऐसी बनी है कि इसमें स्वादिष्ट और पौष्टिक हमेश[ा] समानरूप नहीं होते। सुखकर और श्रेयस्कर ज़्यादातर [दो] अलग अलग चीज़ें हुआ करती हैं। इस संसार में बहुत क[म] ऐसी चीज़ें हैं जो आरम्भ में अमृत के समान और परिणा[म] में भी अमृत के समान हों। ज़्यादातर चीज़ें ऐसी ही होत[ी] हैं कि आरम्भ में अमृत के समान और परिणाम में वि[ष] के समान हो जाती हैं। इसलिए साहित्य में भी जो रुचिक[र] मालूम होता है, ज़रूरी नहीं कि कल्याणकर भी हो। रा[ष्ट्र] को अगर स्वादिष्ट साहित्य की आदत पड़ जाती है तो उसकी वही दशा होती है जो चटोरे मनुष्य के स्वास्थ्य की हो जाती है।

मैं साहित्य को तो उच्च स्थान देता हूँ, किन्तु शृङ्गा[र] को राष्ट्रीय प्रवृत्ति का स्वस्थकर लक्षण नहीं मानता। कवित[ा] को तो मैं घृणा की दृष्टि से देखता हूँ।

शृङ्गार में राष्ट्र को खोखला कर देने का विष पाय[ा] जाता है। स्त्रैण मनुष्य या जाति सीना उभार कर नहीं खड़[ी] हो सकती। कामासक्त जातियाँ जीवन के संग्राम में नष्ट हो जात[ी] हैं। योरप में यूनान और रोम दोनों ही इसी सिद्धान्त क[ो] प्रमाणित करते हैं। हिन्दुस्तान में अवध के नवाबों का इतिहा[स] और मुसलमानी राज्य का पतन भी यही बात साबित करत[ा] है। जिस दिन उर्दू-कविता ने 'माशूक़ और मय' की चर्च[ा] को सभ्य-समाज में आदर और सम्मान का स्थान दिया

दिल्ली और लखनऊ के राजसिंहासन उसी दिन तो डिगे हैं। अवध की नवाबी कविता को सच्चे दिल से उन्नत करने से ही गई। मुसलमान-समाज में आज यह सम्भव है कि एक नौ जवान लड़का दूसरे लड़के को पैशाचिक वासना के लिए मार डाले और मर जाय। इसका कारण केवल यही है कि उर्दू-कविता में ख़ंजर, शमशीर, क़ातिल और और मक़तूल की शब्दावली को इस समाज के गुरुजनों ने सम्मान का जामा पहना रक्खा है। राजपूतों का जीवन यद्यपि वीरता की दृष्टि से गौरवपूर्ण रहा है, तथापि मय और माशूक़ ने अर्थात् श्रीबच्चन जी के शब्दों में 'बाला और प्याले' ने इनको यहाँ तक कमज़ोर कर दिया कि ये परदेशी क़ौम के मुक़ाबिले में नीचा देख गये। आपको आश्चर्य न होना चाहिए, यदि मैं बताऊँ कि राजपूताने में शराब का पीना राष्ट्रीय आदत है। राना साँगा ऐसे प्रातःस्मरणीय पुरुषों ने २८ विवाह किये थे। मेरे अध्ययन और व्यक्तिगत अनुभव में इस रस की आराधना में सिवा दुःख और पतन के कुछ भी नहीं है। हम कविता नहीं चाहते। शृङ्गार-रस की कविता तो हर्गिज़ नहीं चाहते। छायावाद को तो हम दूर से प्रणाम करेंगे। कविता भावों को उत्तेजित करती है। कवि के वाक्यों में और शब्द-विन्यास में नशा पैदा करनेवाली शक्ति होती है। छायावाद की कविता अफ़ीम का नशा है। उसका पढ़ना और उसका लिखना अपना और पाठक का बहुमूल्य समय व्यर्थ में नष्ट करना है। शृङ्गार को उत्तेजना देने की इस समय हमें ज़रूरत नहीं। बिना कवि की सहायता के ही भारतवर्ष में पिछले २ बरस में ३५ लाख आबादी बढ़ गई है। शृङ्गार की कविता लिखकर और गुरुजनों का उसका आदर करना एक ऐसे रस को सम्मान का आभूषण पहना देता है जो राष्ट्र के लिए हानिकर है। संयम में ही समाज का कल्याण है। साहित्य-प्रेमी नरेश और सम्पन्न लोग पुरस्कार घोषित करते हैं, किन्तु मैं यह नहीं समझ पाता कि पुरस्कार घोषित करके शृङ्गारपूर्ण कविता बढ़ा के हम देश का क्या भला कर रहे हैं?

ज़रूरत इस समय है कि हम अपने साहित्य-द्वारा उन बातों का प्रचार करें और ऐसी स्थिति लाने का यत्न करें जिसमें इहलौकिक सामग्री की उत्पत्ति और संचय को प्रोत्साहन मिले, राष्ट्र का जीवन अधिक सुखमय बन सके। एक छोटी-सी पुस्तिका सरल से सरल और गँवारी भाषा में भी लिखी हुई, जिसमें हैज़े से बचने के वैज्ञानिक, व्यावहारिक और अनुभव-सिद्ध उपाय लिखे हैं, पण्डित चूचूँप्रसाद के पुरस्कार-प्राप्त कवित्त या छन्द से हमारे समाज के लिए ज़्यादा फ़ायदे-मन्द है। एक छोटी-सी पुस्तक जो मनुष्य के हृदय पर समय का मूल्य, जीवन-विज्ञान की रहस्यपूर्ण बातें, कारबारी आदतों का विज्ञान-पूर्ण विवेचन करती है, किसी भी 'कवितावली' या 'दोहावली' से सैकड़ों गुना अच्छी है। आज-कल के ज़माने में जब गाँवों में त्राहि त्राहि मची हुई है, रोटी की कमी है, अज्ञानवश हज़ारों आदमी हर साल हैज़े, टाइफ़ाइड और मलेरिया के शिकार हो जाते हैं और दुधमुँहे बच्चे जमोगा और पंचिश से मर जाते हैं, साहित्यिकों का 'नयनों की सुन्दरता' के विषय में उक्तियाँ ढूँढ़ते रहना या छायावाद की पहेली सुलझाते रहना समय की आवश्यकता का निरादर करना और अक्षम्य कठोर हृदयता का परिणाम है।

कितनी भयंकर बात है कि कोकशास्त्र की तो आवृत्तियाँ अनेकानेक हो जायँ और स्वास्थ्य, अर्थशास्त्र और राज-नीति-सम्बन्धी साहित्य को कोई भी न पूछे। क्या समाज की कुप्रवृत्ति का यह प्रमाण नहीं है?

आप यह प्रश्न पूछ सकते हैं कि अगर तुम्हारा यह सिद्धान्त सही है तो आज-कल की योरपीय जातियाँ जो बहुत काफ़ी विषयी कही जा सकती हैं, उन्नत क्यों हैं। मेरा उत्तर यह है कि शृङ्गार इन जातियों के जीवन की निर्णायक शक्ति नहीं। योरपीय जातियों की ज़िन्दगी पर रोमन-जाति के एक अनुकरणीय सिद्धान्त का गहरा असर है, वह यह कि 'किसी रोमन को अपनी सम्पन्नता और आत्म-सम्मान के नष्ट हो जाने के बाद ज़िन्दा नहीं रहना चाहिए।'

अध्यात्म-शास्त्र का स्थान राष्ट्रीय निर्माण में बहुत ऊँचा है, लेकिन उसके सम्बन्ध में मैं यहाँ कुछ लिखना नहीं चाहता। क्या व्यक्ति और क्या राष्ट्र, सभी आध्यात्मिक पुनर्जीवन और नवजाग्रति के बाद ही उठते हैं।

इसलिए हमें हिन्दी-साहित्य को राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुसार बनाना चाहिए।

विनीत
गनपतसिंह

५ श्रावण, १९९३

वियोग-क्षण

लेखक, श्रीयुत हितैषी

तेरे वियोग-क्षण रहे बीत।
बनकर भविष्य, आगम, अतीत॥

फिर फिर आते, जाते रहते,
कुछ प्राण स्पन्दन में कहते।
नयन-मेघ से उमड़ बरस पड़ते
फिर उर-वसुधा पर बहते—

तटिनी होकर कलकल स्वर में—
जाने फिर गाते कौन गीत?

वन वसन्त कुसुमित हो वन वन,
ग्रीष्म-तपन, मन भावन सावन,
शरद-सुधाकर-स्रावित सुधा कन,
मन्मथ-शर हनकर मन उन्मन,
तू जब से बिछुड़ा जीवन-धन!
निशि, दिन, लघु, विराट ज्यों वामन,
त्रिविध समीर प्रवाहित सन, सन,
हैं करते थरथर कम्पित तन॥
हो, होकर हिम, शिशिर-शीत॥

× × × ×

कर शशितारा का सौख्य न्यून,
बन तरुण अरुण, चुन चुन प्रसून,
दे देकर सुवरन अयुत भार
ले लेते मधु सौरभ अपार।
जल, स्थल, नभचारी वायु-यान,
कर करके बोझिल प्रति विहान,
भव में कर शोभा-सुख प्रसार,
ले जाते क्षितिज समुद्रपार—
जग-प्राणों को कर दास क्रीत।

× × × ×

हो, वियदोपरि मध्याह्न-काल,
नववधू-सृष्टि को कर बिहाल,
उसका सुहाग-सिन्दूर लाल,
रवि-क्रूर करों से पोंछ हाल,
फिर उस पर श्वेत दुकूल डाल,
कर देते विधुरा शून्य भाल,
निज अग्नि-नेत्र खोले कराल,
बन रुद्र जलाते विरह-ज्वाल।
जड़, चेतन को कर त्रस्त भीत।

× × × ×

कमलिनि का कोमल मुख मलीन-
कर विरही जन को दीन-हीन,
जो पूर्व-समय में किया भेंट,
संध्या को वह सुवरन समेट,
कर धूम देह का अन्तराल,
हो मन्द-भास दीधित निढाल,
अस्ताचल के ही सानु सानु,
छिप जाते लेकर भानु, भानु।
हो जाता है फिर ध्वान्त स्फीत।

× × × ×

ले कितने ही विफल-प्रयास,
ले कितने क्रन्दन, मन उदास,
दुःस्वप्नों का सँग लोक लिये,
घन-तम, कुछ-कुछ आलोक लिये,
आती निशि बिछुड़े कोक लिये,
सन्तप्त उरों का शोक लिये,
हिम-कण हैं—आँसू यत्र-तत्र,
बिखराते रो रो दृग-नक्षत्र।
पल पल होते युग, युग प्रतीत।

× × × ×

तेरे वियोग-क्षण रहे बीत।
बनकर भविष्य, आगम, अतीत॥

दो डाक्टरों की एक रोचक कहानी

'इस हाथ दे उस हाथ ले'

लेखक, श्रीमान् राजा राधिकारमणप्रसादसिंह, एम० ए०, सूर्यपुराधीश

[१]

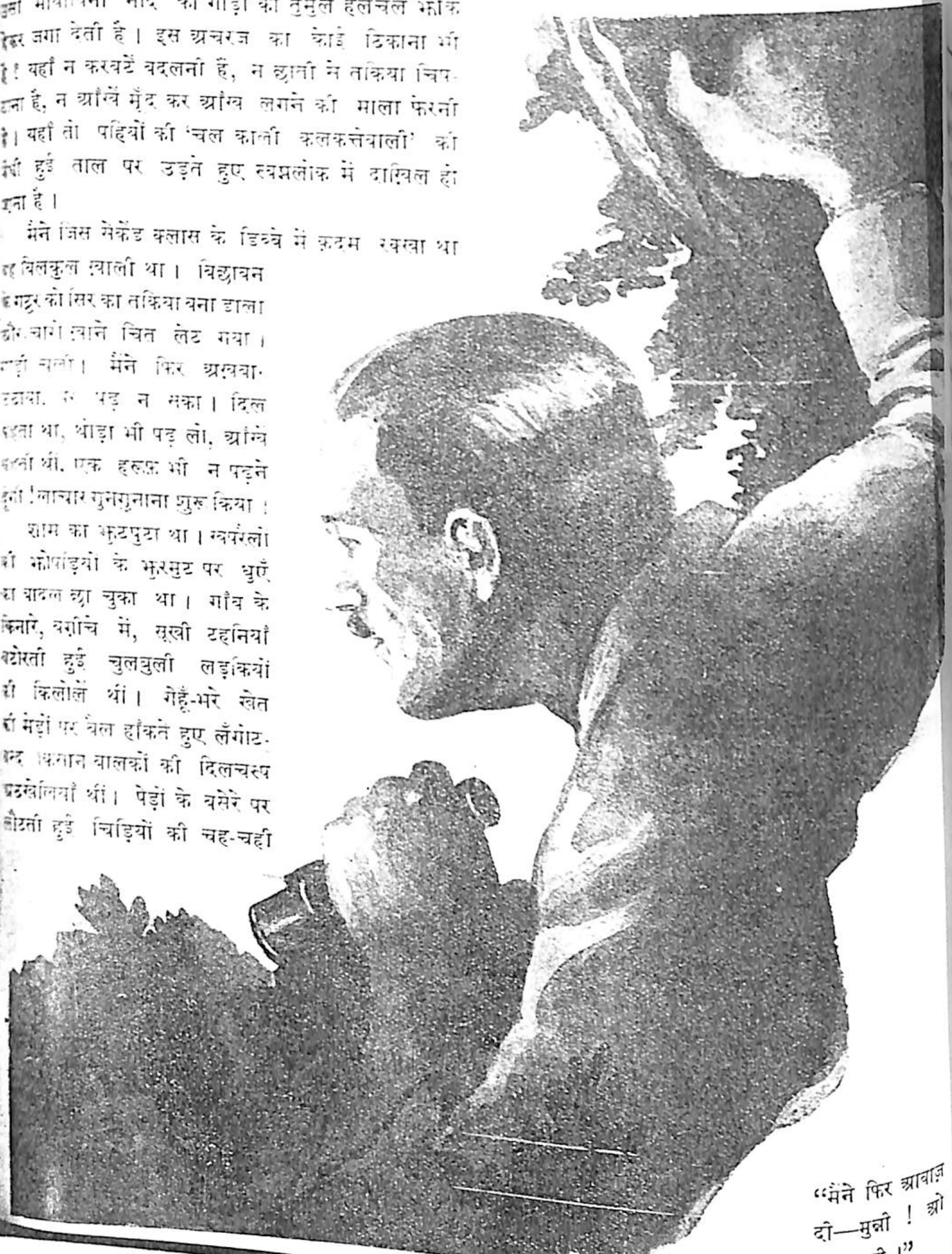
रेलगाड़ी की कर्कश खड़खड़ाहट में न जाने किस लय की लोच है, उसकी झकझोर-भरी फुदक में न जाने कैसी रेशमी थपकियाँ हैं कि सिगनल के बाहर जाते जाते मेरे दिमाग़ पर—अंग की पोर-पोर पर—नींद का ग़लबा शुरू हो गया—किसी सुखावेश की जड़ता छाने लगी। अख़बार हाथ में लेकर बैठा था पढ़ने और यहाँ उँगलियाँ ढीली होने लगीं। भगवान् जाने, गाड़ी की इस फक-फक और घर्र-घर्र में किस गुल रंग की रूह उतर आती है, जिसकी मोहिनी माया चुपचाप मेरी इन्द्रियों पर एक गुलाबी नशा बरसा जाती है। मुलायम उँगलियों से तलवे सहलाने पर भी जिस नींद के लाले पड़े रहते हैं, मसहरी की झालरों के भीतर चुड़ियों की मीठी लोरियाँ जिसे बुला नहीं पातीं, उसी मायाविनी नींद को गाड़ी की तुमुल हलचल झोंके देकर जगा देती है। इस अचरज का कोई ठिकाना भी है! यहाँ न करवटें बदलनी हैं, न छाती से तकिया चिपटाना है, न आँखें मूँद कर आँख लगने की माला फेरनी है। यहाँ तो पहियों की 'चल काली कलकत्तेवाली' की बँधी हुई ताल पर उड़ते हुए स्वप्नलोक में दाख़िल हो जाना है।



"मैं यहाँ हूँ बाबू जी! इधर आओ!"

मैंने जिस सेकेंड क्लास के डिब्बे में क़दम रक्खा था वह बिलकुल ख़ाली था। बिछावन के गट्ठर को सिर का तकिया बना डाला और चारों ख़ाने चित लेट गया। नींद नहीं आयी। मैंने फिर अख़बार उठाया, पर पढ़ न सका। दिल कहता था, थोड़ा भी पढ़ लो, आँखें कहती थीं, एक हरूफ़ भी न पढ़ने दूँगी! लाचार गुनगुनाना शुरू किया।

शाम का झुटपुटा था। खपरैलों की झोपड़ियों के झुरमुट पर धुएँ का बादल छा चुका था। गाँव के किनारे, बग़ीचे में, सूखी टहनियाँ बटोरती हुई चुलबुली लड़कियों की किलोलें थीं। गेहूँ-भरे खेत की मेंड़ों पर बैल हाँकते हुए लँगोटबन्द किसान बालकों की दिलचस्प अठखेलियाँ थीं। पेड़ों के बसेरे पर लौटती हुई चिड़ियों की चह-चही



"मैंने फिर आवाज़ दी—मुन्नी! ओ मुन्नी!"

चहल-पहल थी। रेल की खिड़की से ये जीती-जागती तसवीरें किसी सुदूर मायामण्डित लोक की रहस्यमयी झलक-सी क्षण-भर दृष्टि-पथ पर चमक जातीं। कहीं-कहीं संध्या की विजनता में अंधकार की निबिड़ता बे वजह काटने दौड़ती थी।

काफ़ी ठंड थी। दाँत कटकटानेवाली सर्दी। पछुवे का झोंका तूस और पट्टू की धज्जियाँ उड़ाकर हड्डियों को हिला रहा था। मैंने कानों में गुलूबन्द लपेटा और चारों ओर से कम्बल समेट लिया। बस, झपकियाँ फिर शुरू हुई।

हठात् किसी के क़हक़हे की आवाज़ कानों पर टकराई। देखा, तो सामने मथुरा बाबू मौजूद हैं। एक हाथ में होमियोपैथिक दवाइयों का हैंड-बैग, दूसरे में तेजबल का मोटा डंडा।

मैं तो देखते ही सन्न हो गया। नींद तो काफ़ूर हो ही गई, मानसिक मुखावेश का वह नशा भी हिरन हो गया। कहाँ मैं आराम से स्वप्नलोक की सलोनी तितलियों में हिल-मिल कर विचर रहा था, कहाँ अब बे-बात की बात पर घंटों सरमग़ज़न की नौबत आ गई!

मथुरा बाबू सोसाइटी के ऐसे ख़्वाहमख़्वाह जेंटिलमैन हैं जो दोस्तों की गर्दन पर सवार होकर सिर खा डालते हैं। कोई लाख किसी उलझन में क्यों न हो, जहाँ आँखें चार हुई कि उनकी ज़बान दिमाग़ चाटने पर चट आमादा हो गई। फिर तो जी मसोस कर सब्र करने के सिवा दूसरा कोई चारा नहीं रहता। जब वे बे-पर की उड़ाते हैं तब बेसाख़्ता आसमान थाम लेते हैं। यहाँ की बात वहाँ, और वहाँ की बात यहाँ—यह तो चलता सिक्का है ही, साथ-साथ आपके दिमाग़ की टकसाल में ढली हुई लनतरानियों का तो कोई ठिकाना ही नहीं। आपकी आँख में तो न पानी टिकता है, न आपके पेट का पानी पचता है। सबसे अजीब बात तो यह है कि आप हर जगह रंग उखाड़ कर अपना रंग जमाना चाहते हैं—वह स्याह हो या सफ़ेद। जहाँ ध्रुपद का रंग जमा है, वहाँ आप ग़ज़ल की फ़रमाइश छेड़ बैठेंगे; जहाँ मनचले जवानों में दादरे की धुन छिड़ी हुई है, वहाँ आप ख़्याल का ख़याल दिलाने से बाज़ नहीं आते। पालिटिक्स की महफ़िल में अध्यात्म के मसले पेश करना आपकी ख़ास ... है। आस्तिक भक्तों की जमात में आप ईश्वर को दुर्बल-मस्तिष्क की औलाद ठहराकर उनकी ख़ामख़यालियों की खिल्लियाँ उड़ाना अच्छी तफ़रीह समझते हैं। आपके ... हुए जुमले सुनिए—"क्यों पंडत जी, क्या बग़ैर दैवी वर के या दैवी डर के यह मानव-प्रकृति कभी सन्मार्ग पर नहीं चल सकती? क्यों, आदमी को इन्सान बनाकर रखने के लिए उसका ईमान काफ़ी नहीं है? किसी देवता या दीन के पाक फ़र्मान की हाजत है? इस बोदी भक्ति, इस सिज़दे की गुलामी के बदले अगर आप बुद्धि की शरण लेते तो एक पते की बात भी होती! करुणामय! पतित-पावन! क्या ख़ूब! आपकी हैलदिली ने तो करुणामय की बुनियाद डाली! और माफ़ कीजिए, आप अपने को न पातकी क़रार देते और न इस दुनिया में पतितपावन की डौंडी पिटती!"

इधर जड़वाद के हिमायती कालेज के आलोक-प्राप्त नवयुवकों की टोली में अनहोनी और अलौकिक दैवी घटनाओं की व्याख्या करके उनके दिमाग़ को दंग कर डालने में भी ख़ास मज़ा है। "सुनिए साहब, आख़िर इन्द्रियों की दौड़ एक हद तक ही मुमकिन है। जो रहस्य क़ुदरत के पर्दे में रू-पोश है उसका पता आपकी इन्द्रियाँ बेचारी कहाँ तक दे सकती हैं? वहाँ तक इनकी गुज़र नहीं। सिर्फ़ इसी लिए उस अदृश्य सत्ता की स्थिति ही नहीं, यह भी कोई बात है?"

ग़रज़ यह कि दुनिया के तमाम मसलों में आप अपनी टाँग अड़ाने से बाज़ नहीं आते, वह सीधी हो या टेढ़ी। यों तो आपकी बात सुननेवालों को लबड़धोंधों नहीं—माक़ूल ही जँचती है। हाँ, यह बात और है कि वह उस वायुमंडल के अनुकूल भले ही न हो! बस, लुत्फ़ यह है कि हम जिस चित्र का उज्ज्वल पक्ष देखना चाहते हैं उसका श्याम पक्ष दिखाये बिना आप दम नहीं लेते, और जिस डाल पर फुदुक कर बैठ गये, वहाँ कोई गुल खिले या न खिले, आप बिलकुल बुलबुल बन गये!

मथुरा बाबू होमियोपैथिक डाक्टर हैं। बात बात में नक्स और पलसैटिला। सल्फ़र और चाइना की चर्चा आम बात है। आपके होमियोपैथिक बूँदों की करामात के क़िस्से सुनते सुनते तमाम मुहल्लेवालों के कान पक गये, फिर भी उन लनतरानियों का सिलसिला कभी रुकता नहीं। बयान की

बन्दिश में आप इस तरकीब से नमक-मिर्च लगा देते हैं कि उनका मज़ा न कभी फ़ीका पड़ा, न पड़ेगा। शुरू होते देर न लगी कि बादल की तरह उमड़कर मजलिस पर छा गई। हाल में ही आपने रामू की बहू के पेट से मरे हुए बच्चे को एक बूँद पलसैटिला पर बग़ैर कल-काँटे के बरामद कर लिया था। इस क़िस्से को मुहल्ले के बूढ़े-बच्चे दर्जनों बार सुन चुके हैं, मगर फिर भी उस पर रंग नहीं चढ़ता। इन क़तरों में आबे-हयात का जो दरिया खेलता है उसे मरीज़ समझे या न समझे, मैं एलियोपैथिक डाक्टर होकर भी दसों नख जोड़ तस्लीम करने को तैयार हूँ। बग़ैर इसे तस्लीम किये तो मेरा गुज़र ही नहीं, अगर मुझे आदमी के लिबास में रहकर अपनी खोपड़ी की सलामती मंज़ूर है!

आपकी रूप-रेखा, आपकी वेश-भूषा, एक-एक का जवाब है। मयाना क़द, सिर पर घुँघराली बुलबुली, चुंधी चुहल-भरी चितवन, नाक पर ऐनक, टूथब्रश की तरह छँटी मूँछें, बाईं कनपटी पर मस्त एक मस्सा, घुटी दाढ़ी, गालों में भरी गिलौरी, ख़ालतेदार पाजामा, भागलपुरी सिल्क का कोट और सिर पर विलायती हैट।

"मथुरा बाबू! आप यहाँ कहाँ से चू पड़े?"

"मत पूछिए, मर गया!"

"क्यों, ख़ैरियत तो है?"

"जनाब, मरीज़ तो ज़िन्दा हुआ, मगर मेरी जान निकल गई। जिस वक़्त मैं रसूलपुर पहुँचा, रात आधी से ज़्यादा गुज़र चुकी थी। देखा, मरीज़ की नब्ज़ छूट रही है। कालरे ने कल्ला दबा दिया था। हाथ-पैर पड़ चुके थे। घर में बावेला मचा था। दो-दो डाक्टर माथे पर हाथ रक्खे हाथ मल रहे थे। मैंने समझा, मामला ख़त्म है। और साहब, मैं तो दवा करने आया था, कुछ जादू या करामात दिखाने नहीं। मगर भई, वाह री चाइना! एक ही बूँद ने तो मुर्दे में जान डाल दी।"

"करामात!"

"और क्या? आपने सुना ही होगा, रामू की बहू बेचारी पेट में बच्चा लिये टन बोल जाती, डाक्टरी छुरी भी उस पर चल गई होती, मगर......"

"जी हाँ, सुन चुका हूँ। मैदान मा......"

"महज़ एक क़तरे की करामात थी जनाब! आख़िर आप भी डाक्टर हैं। आपरेशन की छुरी या इंजेक्शन की सुई बग़ैर लहू निकाले तो बेड़ा पार न होता।"

ख़ैर, गाड़ी रुकी। क़लाम की दौड़ हठात् टूट गई। एक रेलवे अफ़सर कोट-बूट में लैस गाड़ी में दाख़िल हुए।

क़ैसर की-सी कड़ी मूँछें, गोल गंजा सिर, दिमाग़ में चूर चितवन। आपने एक बार ज़रा ग़ौर से हम लोगों को घूरकर मुआइना किया। फिर जेब से तबाक़ के साथ पाइप निकालकर राख झाड़ी, उसमें नया तम्बाकू ठूँसा और दियासलाई लगाई। उधरवाले तीसरे बर्थ पर जा कर डट गये। कुली ने सूट केस और होल्ड-ऑल लाकर रक्खा। साहब का ख़ानसामा टिफ़िन-बाक्स लिये सबसे पीछे दाख़िल हुआ।

डिब्बे में असबाब काफ़ी था। ख़ानसामा ने ऊपर का बर्थ खोलकर उसी पर टिफ़िन-बाक्स रखना चाहा। उसने बॉक्स ऊपर उठाया ही था कि एक झोंके का धक्का देकर गाड़ी खुल पड़ी। बॉक्स हाथ से छूटकर तड़ाक से बीचवाले बर्थ पर जा पड़ा। ख़ैरियत थी कि मथुरा बाबू उधर नहीं बैठे थे। छुरी, काँटे, प्लेट वग़ैरह झनझना उठे। बिस्कुट और चाय के डिब्बे तखड़-पखड़ हो गये। साहब की ज़बान से 'यू डैम निगर' की गुर्राहट-भरी आवाज़ निकली और उसने बे वजह तैश में आकर झुके हुए ख़ानसामे की पसलियों पर तावड़तोड़ दो-तीन ज़बर्दस्त बूट की ठोकरें रसीद कर दीं। ख़ानसामा बेचारा ऐंठ गया। चोट सख़्त थी। उसकी आँखों में लहू उतर आया। उसने एक बार चितवन तरेर कर साहब बहादुर को देखा। ललाट पर नसें उभड़ पड़ीं। होठों के पल्ले फड़फड़ा उठे। मगर दूसरे ही क्षण भीगी बिल्ली की तरह सटककर एक कोने में खड़ा हो गया।

मथुरा बाबू उचककर मेरे बर्थ पर चले आये। साहब ने एक बार उसी रोब से हम दोनों की ओर टेढ़ी आँखों से देखा और फिर भुनभुनाते हुए बाथ-रूम में दाख़िल हो गया।

"सरासर ज़ुल्म है! कोई छाती का पोढ़ होता तो आज हज़रत के ... का भूत उतार देता।" मैंने दबी ज़बान से कहा।

"आप भी कैसी बातें करते हैं? कोट-बूट के मुक़ाबिले बड़े-बड़े जवानों की धोती ढीली हो जाती है।"

"भई, वह ज़माना लद चला। आख़िर तो ईश्वर है। कब तक किसी की नादिरशाही निभेगी? ग़रीब की आह....."

"साहब, कहाँ का ईश्वर!—

'रगों में दौड़ने फिरने के हम नहीं क़ायल,

जब आँख ही से न टपका, तो फिर लहू क्या है?'

भला उन्हें नन्दनवन की सैर से फ़ुर्सत कहाँ? किसी ज़माने में उन्होंने किसी बेबस की फ़रियाद सुन ली होगी—किसी अबला की पुकार पर दौड़ पड़े होंगे, मगर आज तो तमाम मुल्क बरसाती चींटियों की तरह बेबसों से भरा पड़ा है। अब वे किस-किस की पुकार पर कमर कसते फिरेंगे? आप क्या समझते हैं कि ख़ुदा मियाँ साहब की गोशमाली के लिए अपनी उँगली उठायेंगे? साहब, वे दिन चले गये जब पसीना गुलाब था'।"

गाड़ी स्टेशन पर जा लगी। मथुरा बाबू फ़ौरन पान की तलाश में प्लेटफ़ार्म पर उतर पड़े। ख़ानसामा बेचारा सिर झुकाये कोने में ज्यों-का-त्यों खड़ा रहा। उसकी सूरत पर मुझे तरस आया। मैं आहिस्ता से उसकी ओर मुड़ा और अपनी हमदर्दी ज़ाहिर की।

उसने कनखियों से अपनी कृतज्ञता दिखाई और उँगली उठाकर गुसलख़ाने की ओर इशारा करते हुए साँस में कहा—"क्या करूँ बाबू जी, छाती फाड़कर खटना है। मेरी कमाई पर कितने बेबसों की रोटियाँ चलती हैं: नहीं तो भला मैं इस ज़ालिम की जूतियाँ सीधी करता?"

मैं चुप हो गया। सिर पर पैर रखनेवाले कभी सिर ऊँचा नहीं कर पाते।

हठात् किसी के गाने की आवाज़ कान पर पड़ी। मैंने खिड़की से झाँककर देखा, एक बूढ़ा बैरागी लाइन के उस पार खँजड़ी बजा-बजाकर मीठे स्वर से गा रहा था—

"तेरी करनी तुझे लौटकर रस देगी या रिस देगी।

तेरी नीयत फूल-फैल कर मधु देगी या विष देगी॥

भला कर तेरा भला होगा।

बुरा कर तेरा बुरा होगा॥"

मेरे कान खड़े हो गये। बड़ी तन्मयता से सुनता रहा। सच है, दिल डालने से दिल मिलता है। घात के बराबर ही प्रत्याघात होता है। मगर......

ट्रेन की सीटी पड़ी। मथुरा बाबू पान चबाते कमरे में दाख़िल हुए। इधर साहब बहादुर गुसलख़ाने से हाथ-मुँह धोये, बाल सँवारे, निकले। सोप और क्रीम की एक भीनी ख़ुशबू चारों ओर बिखर पड़ी।

ट्रेन चली। मैंने जेब से एक एकन्नी निकालकर भिखारी की ओर फेंक दी।

साहब ने टिफ़िन बाक्स खोला। एक लम्बी-सी बोतल निकाली। काग़ज़ में लपेटा हुआ गिलास बाहर किया। सोडावाटर की बोतलें नमूदार हुईं। पेग का वक़्त हो चुका था। निशादेवी की आराधना के लिए ह्विस्की का अर्घ्य देना ज़रूरी था।

साहब ने गिलास में मये-गुलरंग को ढाला—डबल डोज़। गिलास को ऊपर उठाकर पैमाने का मुलाहज़ा किया। फिर सोडावाटर की बोतल खोलने की तदबीर में मसरूफ़ हुए। कोई तदबीर हाथ न आई। ह्विस्की की गंध दिमाग़ में चक्कर काट रही थी। पैमाने पर निगाह पड़ी तब जान होठों पर आ गई। आपने चट घुटने टेककर बायें हाथ के अँगूठे को बोतल के मुँह पर रक्खा और दाँयीं तलहथी से भरपूर ज़ोर लगा दिया। ज़ोर पड़ा तब बन्दूक़ छूटने की आवाज़ के साथ बोतल का अंटा उड़ा और साहब बहादुर की कनपटी पर जा लगा। शायद बोतल में गैस ज़रूरत से ज़्यादा था। इसी लिए वह शीशे की गोली कारतूस की गोली बन गई। करारी चोट थी; हज़रत वहीं अंटाग़फ़ील हो गये। शीशे के टुकड़े उड़कर पुटपुर में धँस गये। ख़ून की दो-एक बूँदें टपक पड़ीं। ख़ानसामे ने दौड़कर साहब का सिर थाम लिया। सुराही के पानी में रूमाल भिगोकर पट्टी बाँध दी।

हिन्दुस्तानियों की छाती में गुर्दा भले ही न हो, कुछ दिल की कमी तो होती नहीं। मैं तो हक्का-बक्का-सा देखता रहा, पर मेरे मित्र मथुरा बाबू होमियोपैथी का बैग खोलकर आगे बढ़े। उनकी स्नेह-भरी वाणी साहब के कानों में तो ज़रूर पड़ी होगी, मगर शायद दिल तक नहीं उतरी। उसने फिरकर देखा तक नहीं। लपककर ह्विस्की का गिलास उठाया और एक साँस में साफ़ कर डाला। मथुरा बाबू मुँह लिये मेरे बर्थ पर आकर बैठ गये। मैंने झुककर उनसे कहा—"कहिए क़िबला, ग़रीब की ओर से तो भगवान ने बदला दे दिया। 'इस हाथ दे उस हाथ ले' का मज़मून देखा आपने!"

"आप भी कैसी बातें करते हैं डाक्टर साहब! यह महज़ शुदनी वक़्त है। ख़ुदा मियाँ अगर इस तरह बदले चुकाते फिरें तो शायद उन्हें दम मारने तक की फ़ुर्सत नहीं मिल सकती। आज दुनिया का इतिहास ही कुछ और होता। कमज़ोर के सिर पर पैर रखकर ऊपर बढ़नेवाले सितारों के ताज के बदले काँटों में रेंगते रहते और......."

मथुरा बाबू एक लम्बी स्पीच झाड़ गये। उनकी दलीलों का जवाब देना तो छत्ता छेड़ने का मज़मून होता। वहीं अड़ जाते तो मेरे दिमाग़ के भेजे उधेड़ डालते। मैं बुत की तरह सुनता रहा और जब तक गाड़ी मुँगेर नहीं पहुँची तब तक छत्ते की भनभनाहट-सी बातों की बौछार थम-थमकर उपटती रही।

[२]

जाड़े के दिन तो बहार की रात की तरह हवा के घोड़े पर सवार आते हैं। आये नहीं कि जाने की धुन पड़ी। जिस गरमागरमी से सर्दी की सुबह के घंटे अपनी ड्यूटी बजा देते हैं उस गरमागरमी से रोगियों के घर-घर चहल-क़दमी तो मुमकिन नहीं। यहाँ तो गर्म-सर्द उठाना है, पाकिट भरने के पहले दर्द का मन भरना है, बात पीना है, बात बनाना है। यह सब बातें कुछ बात की बात में अंजाम नहीं देतीं। डाक्टरी का पेशा सरकन्दनी का पेशा है।

दिन चढ़े तो घर से निकला था, घर लौटते-लौटते पित्त चढ़ गया। इधर चौखट पर क़दम रक्खा, उधर एक का घंटा पड़ा। श्रीमती जी की गरम चितवन देखी तब सर्द हो गया।

"अब आ रहे हो मुझे जलाने! सारी चीज़ें ठंडी हो गई। मैं तुम्हारे लिए फिर चूल्हा गरम करूँगी? बाज़ आई इस... ....."

"माफ़ करो। मिज़ाज गरम रखने के बदले तुम खाना गरम रखतीं तो एक काम की बात होती।"—मैंने ज़रा दबी ज़बान से छेड़ा।

"तुम्हीं गरम करो। मुझसे ...."

"कोई मुज़ायक़ा नहीं। भात ठंडा होने से तुम्हारे मिज़ाज का ठंडा होना कहीं ज़्यादा ज़रूरी है। इसे ठंडा करो। फिर रसोई के गर्म होने में एक पल भी नहीं लगेगा"।

श्रीमती जी झनककर चौके से उठ पड़ीं, बड़बड़ाती हुई ओसारे की ओर बढ़ीं। आख़िर मैंने ज़बान को ऐंठ में रक्खा और दो-चार गरम-गरम नज़र नेवाज़ कर उन्हें ठंडा किया।

ख़ैर, मेरी मरम्मत के बाद उनकी तबीअत ठंडी हुई। आग की मरम्मत तो चन्द लहमों में हो गई। उपलों की आँच पर रोटियाँ खिल उठीं। मैंने रोटी से निबट कर थोड़ी देर लेट-पोट करना चाहा। आँगन की धूप में चौकी डाल दी थी। आकर लेट गया।

जनवरी की दुपहरिया थी। जाड़े की गुलाबी धूप, कड़ाके की सर्दी, पछुवा हवा बरामदे के सामने, मौलसिरी की पत्तियों में, हरहरा रही थी। वहाँ से उचकती छाती की पखुरियों को कँपाकर दम लेती। मुन्नी चारों ओर आँगन में दौड़-दौड़ कर किलकारियाँ भरती, घुँघराली काकुलों को नचाकर गुड़ियों के गीत गाती। उसकी माँ ओसारे में बैठी गोद के बच्चे को दूध पिला रही थी।

हठात् किवाड़ पर खटखट की आवाज़ आई। वे उठकर कमरे में चली गईं। मैंने ज़रा उचककर आवाज़ दी—"कौन है?"

मथुरा बाबू थे। वही डंडा, वही हैंड-बैग। मुझे ज़रा हैरत-सी हुई। आपका उसूल था—'ख़ुदा के घर भी न जायँगे बे-बुलाये हुए' और ख़ास कर इस वक़्त। शाम की बात और है। वह सैर-सपाटे के लिए एक हद तक चल भी सकता है।

मथुरा बाबू मेरे पड़ोसी ज़रूर थे। मगर हमपेशा होने की वजह से आपस में वैसी मिल्लत मुमकिन नहीं थी।

मथुरा बाबू के हमराह एक शख़्स और थे, जिन्हें मैं पहचान न सका। बूढ़े ख़ुर्राँट, कमर ही महज़ झुकी नहीं थी, चेहरे की झुर्रियाँ-भरी खाल तक लटक गई थी। ऊँचे ललाट पर लटों की छाजनी दूर से सफ़ेद लटपटी पगड़ी-सी नज़र आती थी।

"आप इन्हें पहचानते नहीं। मेरी बस्ती के बूढ़े बाबा हैं।"

"बस्ती के या आपके?"—मैंने ज़रा हँसकर पूछा।

"अजी तमाम जवार के! आज-कल यहीं शहर की ख़ाक फाँक रहे हैं।"

"क्यों ख़ैरियत तो है? कहाँ ठहरे हैं?"

"नज़दीक ही—इसी मुहल्ले में। लड़की सख़्त बीमार है।"

"क्या तकलीफ़ है ?"

"इसी मशविरे के लिए तो आपकी तलाश है। बुख़ार के ज़ोर को तो मैंने तोड़ डाला, मगर अभी सीने में ज़ुकाम का शोर मौजूद है।"

"न्यूमोनिया तो नहीं है ?"

"आसार तो ऐसे ही हैं। ख़ैर, चलिए तो सही।"

मैंने खूँटी से कोट उतारकर पहन लिया। कंधे पर शाल रक्खा, जेब में इस्टथेस्कोप। साथ चल पड़ा।

दुतल्ला मकान था। छोटा-सा पुराना। दीवार में ईंटें दाँत निपोरे खड़ी थीं। उनकी फाँकों में कहीं-कहीं घास-पत्ते उग आये थे। मकान में चूना पुता तो ज़रूर था, पर सफ़ेदी में स्याही और स्याही में मटियाली छाप जगह-जगह मौजूद थी। सामने नाली से सड़ी बू उठकर दिमाग़ को मसल रही थी। रास्ते पर रात के जूठे भात के दाने सफ़ाई की दुहाई दे रहे थे। कौओं की एक पाँत उसी ढेर पर आपस की छीना-झपटी की शोरिश से मध्याह्न की उदास नीरवता में एक विचित्र राग भर रही थी।

हम लोग भीतरी ओसारे की सीढ़ी से ऊपर चढ़ गये। बूढ़े लाला को ऊपर चढ़ना आफ़त का सामना था। मगर बेचारे किसी तरह काँख-कूँख कर हाथ-पैर दोनों की मदद से मंज़िल पर पहुँच गये।

ऊपर एक तंग खुली छत थी। बाईं ओर एक ज़रा कुशादा कमरा था। उसी में हम लोग दाख़िल हुए। सामने दो टूटी कुर्सियाँ रक्खी थीं। एक छोर पर बाबा आदम के वक़्त की एक पुरानी मेज़ थी। बीचो-बीच कमरे में एक अधेड़ औरत खाट पर लेटी हुई उसाँसें भर रही थी। पैताने एक बुढ़िया अपने आँचल के छोर से रोगी के तलवे सहला रही थी।

हमारे आते ही वह बुढ़िया आँचल सँभालती हुई उठी और सीढ़ियों की ओर मुड़ी।

"कहाँ चली ?"—बूढ़े लाला ने ज़रा तरारक कर पूछा।

"बाज़ार।"

"रामू कहाँ है ?"

बुढ़िया ने अनामिका को लाला जी के दृष्टि-पथ पर नचा कर कहा—"हम का जानी साहब ?"

शहर की दाई थी। शहर की बेहयाई थी।

लाला जी मुँह बनाकर चुप हो गये।

मैंने मरीज़ का मुआइना शुरू किया।

मथुरा बाबू सिरहाने की ओर कुर्सी खींच कर जा डटे।

रोगिनी बिलकुल मजबूर थी। बुख़ार का गलबा तो था ही, साँस भी गले में फाँस-सी अटकी थी। उसके ज़र्द चेहरे की सूखी पपड़ियों पर उसके जीवन का करुण इतिहास साफ़ लिखा था। बेचारी विधवा थी। शायद ज़िन्दगी की तलछट ही उन प्यासे होंठों को नसीब रही।

मैंने नब्ज़ पर उँगलियाँ जमाईं। जेब से घड़ी निकाल कर चींटी की चाल-सी ठोकरों को गिनने लगा। पचास तक भी नहीं पहुँच पाया था कि हठात् एक कर्कश आवाज़ कान पर टकराई। ख़याल बँट गया। मैंने दुबारा गिनना चाहा। फिर वही आवाज़—दिल दहलानेवाली ज़ोरदार आवाज़: आँधी के हाहाकार-सी, बाढ़ की फुंकार-सी। दोतल्ले के ऊपर कोई हवाई जहाज़ पास कर रहा है। नहीं-नहीं, नीचे ज़मीन की तह में कोई मशीन धमक रही है।

आवाज़ बढ़ी। छत थर्रा उठी। दीवारें काँपने लगीं। कुर्सियाँ खड़खड़ा पड़ीं। कलेजे में एक हूक-सी उठी। छाती धक्-से कर गई। बात क्या है ? सिर चक्कर काटता है या ज़मीन चक्कर काट रही है ? मैं गिरा चाहता हूँ या छत गिरा चाहती है ? मैंने. कस-भर दिल को थामा। आँखें उठाकर बूढ़े लाला को देखा। उन्होंने आँखें फाड़कर मुझको देखा। जो हालत इधर थी, वही उधर भी। हठात् मथुरा बाबू कुर्सी से उचक पड़े—"अजी, भूडोल है भूडोल ! भागिए-भागिए।"

मैं तत्क्षण सचेत हो गया। परिस्थिति साफ़ हो गई। लपककर मथुरा बाबू का हाथ थाम लिया। वे सीढ़ी की ओर क़दम उठा चुके थे।

"वाह ! पहले मरीज़ को तो उठाते चलिए। आपके बूढ़े बाबा तो अपनी देह तक नहीं सँभाल पाते।"

"साहब, मैं घर का कुछ फ़ाज़िल नहीं हूँ। मेरी बीबी......बच्चे......"

मथुरा बाबू का चेहरा फ़क़ था। वे झटके से हाथ छुड़ाकर सीढ़ी की ओर मुड़े।

"भरोसा रखिए, ईश्वर है।"—मैंने ज़रा डपटकर कहा।

"आपके होंगे। मैं इस ख़ामख़याली में......"

मथुरा बाबू की बात पूरी भी न हो सकी। बात की बात में वे सीढ़ियों से बदहवास गिरते-पड़ते उतर गये।

हठात् एक ज़बरदस्त धक्का-सा लगा। यह ज़लज़ले का दूसरा झोंका था। ओसारे का बालरेज़ धड़ाक-से झिलमिला कर जा पड़ा। ज़र्रे-ज़र्रे पर धूल-कंकड़ छा गया। ज़र्रे-ज़र्रे पर आतंक छा गया। उधर रोड़े उड़े, इधर जी दहल गया। मेरे भी पैर उखड़ चले। छत से एक ईंट टूट कर मेरी कनपटी पर रेंगती हुई मुँड़ेरे पर गिरी। खोपड़ी छिल गई। कड़ियाँ जोड़ों से उखड़ पड़ीं।

भाग कर जान बचा लूँ। इन दो बेबसों को पिस कर ढेर होने दूँ ? नहीं-नहीं, अचानक मेरे दिल के कानों में किसी ने झुककर कहा—"तू इन बेबसों की मदद करना है तो तेरी पीठ पर मैं हूँ।" उस विकट संकट के चरम मुहूर्त पर वही परसों रातवाली ट्रेन का दर्दनाक सीन मेरी मानस-दृष्टि पर चमक उठा और उस वैष्णव बैरागी का मर्मस्पर्शी गान मेरे हृदय के पंजरों में गूँज उठा।

मुझमें कहाँ का साहस समा गया ! मेरी नसों में जीवट की बिजली दौड़ पड़ी। मैंने तड़-से उस मरीज़ को दोनों हाथों से उठाकर कंधे पर लाद लिया और बूढ़े लाला की कमर में एक हाथ का सहारा देता हुआ ज़ीने की ओर बढ़ा। कमरे की दीवारें चक्कर काटकर धड़ाम-से आँगन में जा गिरीं। एक पल की भी देर हुई रहती तो हम तीनों उसी ईंट के ढेर में दफ़न हो गये रहते। भिड़ों ने उड़ उड़कर मुझे चारों ओर से घेर लिया। धक्के की चोट भी लगी, मगर मैं रुका नहीं। किसी तरह गिरते-पड़ते ज़मीन पर आ गया।

मैं इधर सीढ़ियों से उतरा, उधर सीढ़ियों का एक हिस्सा फुलझड़ियों की तरह उड़कर ढेर हो गया। बूढ़े लाला की पीठ की हड्डियाँ छिल गईं। मगर बेचारे किसी तरह सिसकियाँ भरते ज़िन्दा निकल आये।

मकान के सामने एक थोड़ी-सी खुली जगह थी। वहाँ मानस का मजमा था। कितने लोग चिल्ला-चिल्ला कर छाती पीट रहे थे। जान लेकर भाग तो आये, पर बिछुड़े कुटुम्बियों के लिए जान दे रहे थे। उस हाहाकार की विभीषिका में श्मशान की शून्यता भी मिल रही थी।

वहीं बड़ के पेड़ के नीचे किसी की एक टूटी खाट पड़ी थी। उसी पर मैंने रोगिनी को लिटा दिया। उसके इर्द-गिर्द अपना शाल लपेट दिया। और बूढ़े लाला को निगरानी का भार सौंपकर घर की ओर दौड़ा।

दौड़ना नामुमकिन था। पैरों पर लरज़ा, ज़मीन पर ज़लज़ला। फिर भी बदहवास दौड़ा। गिरा और उठा और दौड़ा। सड़क के दोनों जानिब प्रलय की ताण्डव-लीला थी। प्रकृति की विकट भृकुटी देखी—तले की दुनिया ऊपर जा रही थी। दीवारों का हिलना, लरज़ना, लड़-खड़ाना, चक्कर काटना, तड़ाक-से फटना, कटे रूख की तरह अर्राकर गिरना और फिर ज़मीन से उड़कर आसमान पर बादल की तरह छा जाना—एक दर्दनाक नज़ारा था।

मकान आते-आते ज़लज़ले का ज़ोर ख़त्म हो चुका था। मैं मकान पर पहुँच तो गया, मगर वहाँ मकान था कहाँ ! मैं आँखें फाड़ मुँह बाये खड़ा हो गया। सामने ईंट, पत्थर, लोहे-लक्कड़ का एक अम्बार था। मैं कमर थाम कर बैठ गया, फिर दिल थाम कर उठा और पुकारा—"मुन्नी !"

कोई आवाज़ नहीं। मेरे पाँव-तले से ज़मीन निकल गई। ज़लज़ले का तमाम लरज़ा मेरी पोर-पोर में समा गया। मैं थर-थर काँपने लगा। जान उचक कर होठों पर आ गई। होंठ आप ही आप हिल पड़े। मैंने फिर आवाज़ दी—'मुन्नी ! मुन्नी ओ मुन्नी !"

"मैं यहाँ हूँ बाबू जी ! इधर आओ।"

"और तुम्हारी माँ, बच्चा !"

"सब यहीं हैं।"

मैं किसी तरह उन ईंटों के स्तूप पर चढ़ गया। क़ुदरत का तमाशा था। मूसा ने तूर की तजल्ली देखी। मकान चारों ओर से बैठ गया था, मगर मेरी स्त्री गोद के बच्चे और मुन्नी को छाती से सिमटाये आँगन के बीचोबीच बेदाग़ खड़ी थी। उनके सिर और शरीर पर गर्द तो ज़रूर बेशुमार थी, मगर कहीं एक चीस तक नहीं।

छाती उमड़ आई। आँखों में आँसू उछल पड़े। मेरा एक-एक रोआँ न-जाने किस आवेग से फरफरा उठा।

मुझे अब मुहल्लेवालों की फ़िक्र पड़ी। मुड़कर सड़क पर कूद पड़ा। दो क़दम आगे बढ़ा होगा कि मथुरा बाबू का भतीजा रोता-कलपता सामने नज़र आया।

"क्यों, क्या हुआ, बाबू ?"

"डाक्टर साहब, क्या बतावें, मेरा भरा घर उजड़ गया। चचा तो ज्यों ही मकान में दाख़िल हुए कि तमाम घर भड़भड़ाकर बैठ गया। हाय! सारा परिवार पिसकर ढेर हो गया। हाय! हाय!!"

"तो आख़िर उन्हें निकालने का भी तो बन्दोबस्त करना ज़रूरी है। तुम्हें ताल ठोंक कर .....!"

"आप ज़रा सामने निगाह तो डालिए। इस अम्बार के नीचे हाथी का तो पता नहीं चल सकता, आदमी की क्या बिसात?"

मैंने आँखें उठा कर देखा। ईंट-पत्थर का एक पर्वत-सा खड़ा था। इधर-उधर लोहे की कड़ियाँ बिखरी पड़ी थीं। बस, और कुछ नहीं। हाँ, मथुरा बाबू का वह परिचित हैंडबैग झटका खाकर सड़क की एक ओर मुँह बाये लुढ़का पड़ा था। उसकी आबे-हयात की शीशियाँ चूर-चूर होकर धूल में लुण्ठित थीं; और शुगर-ऑफ़-मिल्क की फूटी हुई बोतल के पेंदे में, बिखरे हुए चीनी के दानों पर, दो कौए झपट-झपट कर चोंच मार रहे थे।

हार

लेखक, श्रीयुत कुँवर सोमेश्वरसिंह बी० ए०, एल-एल० बी०

हमारे मधुमय मंजुल भाव,
जिन्हें ले उड़ते थे उच्छ्वास।
बाँध लेते थे जिन्हें सयत्न,
मृदुल व्रीड़ा के कोमल पाश।
नहीं रुकते हैं रोके आज,
निकल पड़ते रह रह अनजान।
लिये जाती इनको निरुपाय,
किसी तन्त्री की मोहक तान॥

छिपी जीवन की जो चिर साध,
रही अब लों उर में अविकार।
चाहती आज निकलना खोल,
सरस नयनों के कोमल द्वार।
अघाये पी पी इनको प्रान,
चाहतीं बहना दृग-जल-धार।
बँधी जिनसे पीड़ा सुकुमार,
चटकते हैं वे कोमल तार॥

थिरकते हैं वे अब अविराम,
सकुचते थे जो अधर ललाम।
पड़े थे जो प्रसुप्त अरमान,
छिड़ा अब है उनका संग्राम।
रुका था जिससे प्रबल प्रवाह,
गया वह फूट धैर्य का बाँध।
हुए हैं सारे निष्फल यत्न,
नहीं रुक पाई जीवन-साध॥

मिर्ज़ा ग़ालिब और सन् ५७ का ग़दर

लेखक, श्रीयुत महेशप्रसाद मौलवी आलिम फ़ाज़िल



[मिर्ज़ा ग़ालिब]

(१)

मिर्ज़ा ग़ालिब अपनी काव्य-कुशलता के कारण अक्षय कीर्ति प्राप्त कर चुके हैं। उनके फ़ारसी व उर्दू के लेखों व ग्रन्थों में साहित्यिक सामग्री विशेष रूप से है, किन्तु उनकी 'दस्तम्बो' नामक पुस्तक साहित्यिक भी है, साथ ही सन् १८५७ के ग़दर का हाल भी उसमें है। यह पुस्तक विशुद्ध फ़ारसी में है। मिर्ज़ा ने इसमें फ़ारसी के सिवा अरबी के किसी शब्द को नहीं आने दिया।

सन् १८५७ में मिर्ज़ा की आयु ६० वर्ष के लगभग थी। इस दीर्घकाल में वे समय का बहुत हेर-फेर देख चुके थे और उन्हें संसार का काफ़ी अनुभव हो चुका था। मिर्ज़ा को अँगरेज़ों से उस समय से पेन्शन मिलती थी जब उनकी आयु केवल ९ वर्ष के लगभग थी। उनके चाचा नवाब नसरुल्ला बेग ख़ाँ अँगरेज़ी सरकार के नौकर थे। उनकी मृत्यु पर सरकार ने नवाब साहब के सम्बन्धियों को पेन्शन नियत कर दी थी, जिसमें से मिर्ज़ा को ६२॥) मासिक मिलते थे। ग़दर के सिलसिले में दिल्ली व उसके आस-पास के बहुतेरे मुसलमान व मुग़ल घराने के अन्तिम सम्राट् बहादुरशाह विद्रोही ठहराये गये थे। मिर्ज़ा का सम्बन्ध बादशाह बहादुरशाह के यहाँ से बहुत घनिष्ठ था। अतएव मिर्ज़ा पर भी द्रोही होने का सन्देह किया गया था और उनकी पेन्शन बन्द हो गई थी, किन्तु उनके द्रोही न होने और उनकी पेन्शन के फिर जारी हो जाने में उक्त 'दस्तम्बो' से बहुत सहायता मिली थी।

मिर्ज़ा के कथनानुसार दस्तम्बो में ११ मई सन् १८५७ से लेकर ३१ जुलाई सन् १८५८ तक के हाल हैं। किन्तु इस काल में दिल्ली में जो कुछ हुआ और अन्य लोगों ने दिल्ली का जो कुछ हाल लिखा उसको ध्यान में रखते हुए यह मानना पड़ता है कि मिर्ज़ा ने दस्तम्बो में बहुत ही कम बातें दी हैं, जिसके लिए निम्नलिखित कारण प्रतीत होते हैं—

(१) ग़दर होने पर मिर्ज़ा अपने घर का दरवाज़ा बन्द करके घर में ही रहे थे। उनका सगा छोटा भाई पागल था। वह उनके घर से कुछ दूरी पर रहता था। वह मरा, किन्तु मिर्ज़ा उसके अन्त्येष्टि-संस्कार के लिए घर छोड़कर नहीं जा सके थे। जिसका यह हाल रहा हो वह अधिक क्या लिखता?

(२) मिर्ज़ा को भय रहा होगा कि यदि मैं अधिक लिखूँ तो सम्भव है कि अनेक बातों को ठीक न लिख सकूँ, ऐसी दशा में मेरे ऊपर कोई आपत्ति न आ जाय।

(३) मिर्ज़ा इतिहास के पंडित नहीं थे।

इन बातों के होते हुए भी इस बात को मानना पड़ता है कि दस्तम्बू की थोड़ी-सी सामग्री का भी ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ-न-कुछ उपयोग अवश्य होता है।

(२)

मिर्ज़ा ने लिखा है—११ मई को प्रातःकाल अकस्मात् समस्त क़िला व सारे दिल्ली नगर में हलचल मच गई। मेरठ के विद्रोही सिपाही नगर में घुस आये। ये लोग अँगरेज़ों के ख़ून के प्यासे थे। नगर के रक्षक सिपाहियों ने इनका स्वागत किया। ये विद्रोही पागलों के समान चारों ओर फैल गये। जहाँ कहीं अँगरेज़ों को पाया, बुरी तरह मार डाला। दिन भर इन्होंने दम न लिया। सायंकाल के समय विश्राम का विचार किया। कुछ लोग नगर में इधर-उधर ठहरे और कुछ लोगों ने क़िले में बादशाही बाग़ को अपने घोड़ों का अस्तबल और बादशाही स्थान को अपने विश्राम का स्थान बनाया। धीरे-धीरे दूर-दूर के नगरों से समाचार मिले कि प्रत्येक सेना के विद्रोहियों ने हर छावनी में अपने अफ़सरों को मारा है; सैनिक और बहुत-से किसान एकमत हो गये हैं और विद्रोह पर कमर कस चुके हैं।

जो विद्रोही चारों ओर से दिल्ली में एकत्र हुए थे वे मार्ग में मिलनेवाले जेलों को तोड़ते आये थे। इससे अनेक क़ैदी भी जेलख़ानों से मुक्त होकर बादशाह के दरबार में पहुँच गये। लगभग पचास हज़ार सैनिक बादशाह की अधीनता में हो गये और [illegible] उसे बादशाह के कोष में जमा कर दिया। बादशाह पूर्णिमा के ग्रहण लगे हुए चन्द्रमा के समान हो गया। वह विद्रोहियों के हाथ में पड़कर विवश हो गया।

दिल्ली नगर से पश्चिम की ओर पहाड़ी नामक स्थान अँगरेज़ों के अधिकार में रह गया था। वहाँ उन्होंने अपनी रक्षा का पूर्ण प्रबन्ध किया था। विद्रोहियों के अधिकार में जो तोपें थीं वे उन्होंने क़िले पर लगाई थीं। दोनों ओर से गोलियों की बौछार हुई। मई-जून के महीने थे। प्रतिदिन गर्मी बढ़ रही थी। क़िले से सिपाही लोग प्रातःकाल अँगरेज़ों से लड़ने के लिए निकलते और रात्रि के समय क़िले में लौट जाते।

(३)

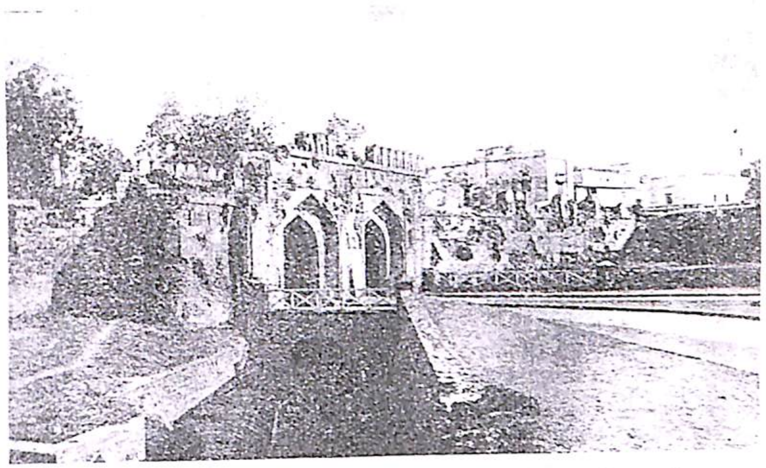
जब यह समाचार चारों ओर फैला कि दिल्ली में बहादुरशाह के यहाँ बहुत-से सिपाही पैदल और सवार एकत्र हो गये हैं तब फ़र्रुख़ाबाद के नवाब तफ़ज़्ज़ुलहुसैनख़ाँ ने बहादुरशाह के प्रति अपनी ओर से बड़ी नम्रता प्रकट की और अपने पत्र में लिखा कि मैं आपका पुराना सेवक हूँ, यद्यपि इससे पूर्व उन्होंने कभी बहादुरशाह की ओर अपना ध्यान ही नहीं दिया था। इनके सिवा बरेली के सरदार ख़ान बहादुर ख़ाँ ने एक बड़ी सेना एकत्र की। फिर एक सौ एक अशर्फ़ियाँ और रुपहली साज से सज्जित घोड़े व हाथी बादशाह की सेवा में भेजे।

रामपुर के नवाब यूसुफ़अली ख़ाँ ने केवल रूखा-सूखा समाचार बादशाह की सेवा में भेजा और इस ढंग से उन्होंने आस-पास के पड़ोसियों (विरोधियों) का मुँह बुरा-भला कहने से बन्द कर दिया।

लखनऊ में जब सिपाहियों ने ग़दर किया तब थोड़े-से लोगों को लेकर अँगरेज़ लोग बेली गारद नामक स्थान में जा बैठे। अवध के नवाबों के समय के वज़ीर शर्फ़ुद्दौला ने वाजिदअलीशाह के कुटुम्बियों में से दस वर्ष के एक बच्चे को गद्दी पर बैठाया। उसे भारत के सम्राट् का दस्तूर (वज़ीर) और अपने आपको 'पेशकार' व 'वज़ीर का सहायक' मशहूर किया।

शर्फ़ुद्दौला ने अपनी सफलता के विचार से एक सरदार को दिल्ली भेजा और साथ ही साथ दो अच्छे घोड़े, दो बड़े हाथी, एक सौ इक्कीस अशर्फ़ियाँ और अनेक रंग के मोतियों से जड़ा हुआ एक मुकुट बादशाह के लिए [illegible] और हीरे जड़े हुए बाज़ूबन्द की एक जोड़ी बादशाह की बेगम के लिए भेजी।

इन उपहारों को प्राप्त कर बहादुरशाह को ख़याल पैदा हुआ कि फिर हमारा अभ्युदय हुआ, किन्तु जिस दिन ये वस्तुएँ पहुँचीं उसके दूसरे ही दिन बहादुरशाह का सौभाग्य दुर्भाग्य में बदल गया, क्योंकि सोमवार १४ सितम्बर (१८५७ ई०) को अँगरेज़ों की ओर से कश्मीरी दरवाज़े पर ऐसा आक्रमण हुआ कि विद्रोहियों को भागने के सिवा और कुछ न सूझा।



[ऐतिहासिक कश्मीरी गेट। १४ सितम्बर १८५७ की ब्रिटिश गोलाबारी के बाद लिया गया चित्र। फाटक और दीवालों पर गोलाबारी के निशान देखिए]

दिल्ली ११ मई सन् १८५७ को अँगरेज़ों के हाथ से निकली थी और १४ सितम्बर को फिर उनके अधिकार में आ गई। अर्थात् कुल ४ मास और चार दिन वह विद्रोहियों के अधिकार में रही। उक्त घटना की दोनों तारीख़ों को सोमवार पड़ा था। मिर्ज़ा एक साहित्यिक व हँसमुख व्यक्ति थे। इसी कारण उन्होंने लिखा है कि दिल्ली सोमवार को हाथ से निकली और सोमवार को ही हाथ में आई अर्थात् नगर (दिल्ली) का आना-जाना उसी एक दिन में हुआ।

१४ सितम्बर को अँगरेज़ी सैनिक (बाज़ार के उस मार्ग से जो उनके सम्मुख था) नगर में दाख़िल हुए। जो कोई मार्ग में मिला उसको मार डाला। जो प्रतिष्ठित और चतुर लोग विद्रोह में नहीं शामिल हुए थे वे घरों में ही रहे। विद्रोहियों ने भागना आरंभ किया। कुछ लोगों ने मुक़ाबिला किया। दो-तीन दिनों तक कश्मीरी दरवाज़े से लेकर नगर में चारों ओर जगह जगह युद्ध होता रहा। बहुत-से लोग मारे गये। कुछ घर भी जलाये गये। ऐसी अवस्था देखकर बहुत-से लोग अपना सब कुछ छोड़कर केवल जान बचाकर बाल-बच्चे-सहित नगर से भाग गये। १४ सितम्बर के बाद कई दिनों तक अजमेरी, तुर्कमान और दिल्ली दरवाज़ों पर विद्रोहियों का अधिकार रहा था। इस कारण इन्हीं में से किन्हीं दरवाज़ों से निकल कर लोग आस-पास के गाँवों व क़ब्रिस्तानों में जा ठहरे थे। किन्तु जब १४ सितम्बर तक समस्त नगर व क़िला अँगरेज़ों के अधिकार में आ गया तब लूट-मार अधिक बढ़ गई। जो लोग नगर के आस-पास जा ठहरे थे उनको और दूर भाग जाने की नौबत आई अथवा यह कि विशेष कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

ग़दर से पूर्व दिल्ली में अँगरेज़ों की ओर से एक एजेंट रहता था। उसी की अधीनता में दिल्ली के पास की—फ़र्रुख़नगर, झज्झर, बहादुरगढ़, बल्लभगढ़, लोहारू, दुजाना और पाटौदी—ये सात छोटी-छोटी रियासतें थीं। ग़दर के दिनों में लोहारू के रईस दिल्ली में ही थे। मिर्ज़ा ने लिखा है कि अँगरेज़ों के विजयी होने पर जब दिल्ली में भारी लूट-मार और धड़-पकड़ आरम्भ हुई तब लोहारू के नवाब अमीनुद्दीन अहमद ख़ाँ बहादुर और ज़ियाउद्दीन अहमद ख़ाँ बहादुर अपने बाल-बच्चों-सहित तीन हाथी और चालीस घोड़े लेकर अपनी रियासत की ओर चले। पहले महरोली नामक स्थान में पहुँचे। वहाँ दो-तीन दिन ठहरे, किन्तु इस काल में लुटेरे सिपाहियों ने उनका सारा सामान लूट लिया। इसके बाद बुरी दशा में दुजाना पहुँचे। वहाँ के रईस हसनअली ख़ाँ ने इनका बड़ा आदर-सत्कार किया, अर्थात् ईरान के बादशाह ने हुमायूँ के साथ जो व्यवहार किया था वही वहाँ के रईस ने इनके साथ किया। दिल्ली के कमिश्नर को जब इनके विषय में समाचार मिला तब इनको अपने यहाँ बुलाया। ये दिल्ली आये। कमिश्नर साहब ने पहले इनसे कुछ कटु और व्यंग्य-रूप में कहा, किन्तु जब इनकी ओर से नर्म शब्दों में उत्तर सुना तब कुछ न कहा और इनको

दिल्ली के क़िले में ठहरने की आज्ञा दी। इस घटना के दो-तीन रोज़ के बाद फ़ौज को यह आज्ञा हुई कि झज्झर-रियासत के अधिकारी अब्दुर्रहमान ख़ाँ को पकड़ लाओ। जब वह रईस पकड़कर लाया गया तब दिल्ली के क़िले में दीवान आम नामक स्थान के पास उसको ठहरने की आज्ञा हुई। ३० आक्टोबर को फ़र्रुख़नगर के रईस अहमद अली ख़ाँ पकड़ कर दिल्ली में लाये गये और क़िले में ही एक पृथक् स्थान में ठहराये गये। इन दोनों की सम्पत्तियाँ ज़ब्त कर ली गईं। ५ नवम्बर सोमवार को बहादुरगढ़ के रईस बहादुरजंग ख़ाँ दिल्ली लाये गये और उन्हें भी क़िले में ही एक स्थान दिया गया। बल्लभगढ़ के राजा नाहरसिंह ७ नवम्बर को क़िले में पहुँचाये गये। पाटोदी व दुजाना के रईसों का हाल डर के मारे बुरा था कि न मालूम कब क्या आपत्ति आये। अन्त में झज्झर, बल्लभगढ़ व फ़र्रुख़नगर के रईस पृथक् पृथक् भिन्न भिन्न समयों में फाँसी पर लटकाये गये और १३ जून १८५८ को सायंकाल के समय बहादुरगढ़ के बहादुरजंग ख़ाँ को आज्ञा मिली कि उनकी जान नहीं मारी जायगी, बल्कि उनको एक हज़ार रुपये मासिक मिला करेंगे।

इसी प्रकार मिर्ज़ा ने ग़दर-सम्बन्धी कुछ अन्य बातें और लिखी हैं और कुछ अपना हाल भी लिखा है। पटियाला के महाराजा नरेन्द्रसिंह जी ने अँगरेज़ों का साथ दिया था और उनके सिपाहियों से अँगरेज़ों को बहुत सहायता मिली थी। महाराज के यहाँ हकीम महमूद ख़ाँ साहब दवा-दारू किया करते थे। हकीम साहब के घर के पास ही मिर्ज़ा भी रहते थे। जब दिल्ली पर अँगरेज़ों का अधिकार हुआ और चारों ओर लूट-मार आरम्भ हुई तब पटियाला के महाराज की ओर से हकीम साहब की रक्षा के लिए उनके घर के आस-पास महाराज के सिपाही नियुक्त किये गये थे।

ऐसा होने पर भी सोमवार ५ आक्टोबर १८५७ को कुछ गोरे मिर्ज़ा के घर में घुस आये और मिर्ज़ा को, उनके यहाँ के दो लड़कों को और कुछ अन्य पड़ोसियों को भी पकड़कर कर्नल ब्राउन के पास ले गये। उस समय दिल्ली में मार्शलला जारी था। ब्राउन साहब उसके अफ़सर थे। वे क़ुतुबुद्दीन सौदागर के घर में ठहरे थे। उन्होंने मिर्ज़ा व उनके साथियों के साथ सद्व्यवहार किया और सब लोग राज़ी-ख़ुशी अपने अपने घर आ गये।

मिर्ज़ा के छोटे भाई मिर्ज़ा यूसुफ़ ख़ाँ लगभग ३० वर्ष की आयु में पागल हो गये थे और इसी अवस्था में वे मरे भी थे। उनके विषय में मिर्ज़ा लिखते हैं कि वे मुझसे दो वर्ष छोटे थे। उनके रहने के लिए पृथक् घर था, जो उनके घर से लगभग २,००० क़दम की दूरी पर था। ग़दर के समय उनका हाल-चाल मिलना बहुत कठिन था।

१९ आक्टोबर को मिर्ज़ा को समाचार मिला कि उनके भाई का देहान्त हो गया। उस समय मिर्ज़ा को बहुत ही दुख हुआ और उनको बड़ी आपत्ति का सामना करना पड़ा, क्योंकि उनको किसी क़ब्रिस्तान में ले जाना संभव न था। न क़ब्र खोदनेवाले का पता था और न किसी नहलाने-धुलानेवाले का। क़फ़न तक मिलना असम्भव था। ऐसी दशा में मिर्ज़ा के पड़ोसियों ने उनकी बड़ी मदद की। पटियाला के जो सिपाही रक्षा के निमित्त वहाँ नियुक्त थे उनमें से एक सिपाही को लिया। उसको आगे किया, फिर मिर्ज़ा के कुछ पड़ोसी और दो नौकर साथ हुए। इन्होंने उनके भाई को नहलाया-धुलाया, फिर दो-तीन सफ़ेद चादरों में लपेटकर पास की मसजिद के आँगन में गाड़ दिया।

ग़दर होने पर मिर्ज़ा की पेन्शन लगभग ३ साल तक बन्द रही। इसके सिवा मिर्ज़ा को जो कुछ बहादुरशाह के यहाँ से मिलता था वह भी बन्द हो गया था। इन कारणों से मिर्ज़ा के दिन बहुत बुरे हो गये थे। ऐसे समय में मिर्ज़ा के कई हिन्दू मित्रों ने थोड़ी-बहुत उनकी सहायता की थी। किन्तु मिर्ज़ा का ख़र्च बहुत बढ़ा-चढ़ा था। उनके कुटुम्बियों के सिवा कुछ अन्य लोग भी मिर्ज़ा के आश्रित थे। मिर्ज़ा ने ऐसे कठिन समय पर भी उनकी सहायता की। ऐसी अवस्था में मिर्ज़ा को अपना सारा ओढ़ना-बिछौना आदि तक बेचना पड़ा था। इसी पर मिर्ज़ा ने लिखा है कि अन्य लोग रोटी खाते थे और मैं कपड़ा खाता था।

ग़दर के सिवा मिर्ज़ा की कुछ अपनी रामकहानी भी दस्तम्बो में है। यह पुस्तक पहले-पहल नवम्बर १८५८ में आगरा से प्रकाशित हुई थी। इसकी प्रति अब प्रायः मिर्ज़ा के 'कुल्लियात नस्र फ़ारसी' अर्थात् 'फ़ारसी-गद्य-संग्रह' में मिलती है। इसके कई संस्करण मुंशी नवलकिशोर प्रेस से निकल चुके हैं। इसी के आधार पर उनकी यह दुःख-गाथा यहाँ हमने लिखी है।

साहित्य और कला

लेखक, श्रीयुत विशम्भरनाथ

अँगरेज़ी-साहित्य के इतिहास के पृष्ठ हिन्दी के वर्तमान साहित्यकारों के मानसिक द्वन्द्व पर यथेष्ट प्रकाश डालते हैं। योरपीय साहित्यकारों को जिन समस्याओं को सुलझाना पड़ा है वही समस्यायें आज हिन्दी के सामने हैं। साहित्य और कला के सम्बन्ध में अँगरेज़ी-साहित्य का संक्षिप्त सिंहावलोकन ही इस लेख का विषय है।

वर्तमान अवस्था में प्रत्येक विवेकवान् भारतीय के हृदय में तरह तरह के प्रश्नों का उठना स्वाभाविक है। एक महान् सभ्यता के उत्तराधिकारी होते हुए भी हम इस हीनावस्था में क्यों हैं? अन्य राष्ट्र स्वतन्त्र और हम परतन्त्र क्यों हैं? संसार का आर्थिक सङ्गठन एकांगी क्यों है? कुछ धनवान् और शेष धनहीन क्यों हैं? कम मज़दूरी और श्रम के लम्बे घण्टे क्यों हैं? अर्थहीन रूढ़ियाँ, व्यर्थ के कर्मकाण्ड, आपस के बेहूदा झगड़े, मृतप्राय धर्म आदि इन सबकी क्या उपयोगिता है? संस्कृति और सभ्यता की इतनी दुरवस्था क्यों है?

हमारा मन सभी प्रश्नों का उत्तर खोजता है, साहित्य के पृष्ठ उलटता है। देश की प्रधान भाषा हिन्दी का साहित्य कहाँ तक इन शंकाओं का समाधान कर पाता है? यदि नहीं कर पाता तो क्यों? जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले इन महान् प्रश्नों को हिन्दी के उपन्यास, गल्प, कविता, निबन्ध आदि किस अंश तक हल करते हैं? यदि नहीं कर पाते तो कौन-सी बाधायें हैं? साहित्य के अग्रगण्य इस सम्बन्ध में क्या सोचते हैं? समय की इस क्षुधा को हम कब तक अतृप्त रख सकते हैं? हिन्दी-साहित्य को इसका निश्चयात्मक उत्तर देना ही होगा।

हिन्दी के अनेक प्रमुख साहित्यकार हमसे कहते हैं, साहित्य कला की उत्कृष्ट प्रेरणा को हमारे सम्मुख रखता है। वह समाज का प्रचारक नहीं। कला का केवल क[...] के लिए उपयोग होना चाहिए। अपने साहित्यकारों [...] इस मनोवृत्ति पर गम्भीरता से मनन करना आवश्यक है [...] साहित्य का जीवन से कोई सम्बन्ध है अथवा नहीं? साहि[त्य] वास्तव में है क्या? कला क्या है और उसका वास्तवि[क] उपयोग क्या है?

साहित्य का आधार जीवन है। जीवन के दुख-सु[ख] का विवेचन साहित्य का क्षेत्र है; और इस क्षेत्र में प्रति दिन के संघर्ष का स्पष्टीकरण ही कला है। इसी लिए कल[ा] जीवन है और कला सत्य है। विज्ञान भौतिक तत्त्वों [...] अपनी आधार-शिला बनाकर अपने सिद्धान्तों का प्रतिपाद[न] करता है। कला मनुष्य की आन्तरिक प्रेरणाओं की सत्य[ता] और वस्तुस्थिति का प्रख्यापक है। इसी लिए कला ज[ब] वस्तुस्थिति या जीवन के नियमों की अवहेलना करती [है] वह अपने कर्त्तव्य से च्युत हो जाती है। कला की ए[क] और विशेषता उस पर व्यक्तित्व की छाप है और ज[ब] व्यक्तित्व जीवन के अनुभूत सिद्धान्तों के विरुद्ध जाता [है] वह वास्तविक अर्थों में कला-शून्य हो जाता है।

इस दृष्टि-कोण से साहित्य को हम दो मुख्य भागों [में] विभक्त कर सकते हैं—

१—संघर्ष-विमुख साहित्य

२—संघर्ष का साहित्य

जीवन के दैनिक संग्राम से विमुख रहनेवाला साहि[त्य] ही संघर्ष-विमुख साहित्य है। जो साहित्य जीवन की प्र[ति] दिन की परिस्थिति का बोझ लेकर चलता है और संग्[राम ...]

के प्रहारों का स्वागत करता है वही संघर्ष का साहित्य है। अनेक साहित्यज्ञ संघर्ष के साहित्य को भी दो भागों में विभक्त करते हैं—

१—यथार्थवादी साहित्य

२—आदर्शवादी साहित्य

आदर्शवादी साहित्य संघर्ष का सुखद परिणाम चित्रित करता है। वास्तव में वह भविष्यवादी साहित्य है। आदर्शवादी साहित्यकार अपनी कल्पना से उस स्थिति को अङ्कित करता है जिसमें जीवन के मौजूदा कटु अनुभव न रहेंगे। वह दुःख-पूर्ण वर्तमान को सुख-पूर्ण अनागत काल में परिवर्तित करने का स्वप्न देखता है। इसके विपरीत संघर्ष-विमुख साहित्य के सम्बन्ध में साइमन अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'स्टडीज़ इन प्रोज़ एण्ड वर्सेज़' में लिखता है—

"वास्तविकता से हटकर हम किसी ऐसी भावुकता की शरण लेते हैं जिसमें हमारी अच्छी या बुरी नैतिक अवस्था में हमें आनन्द आता हो।"

ऐसे साहित्यकार समस्या को हल करने की अपेक्षा नगण्य वस्तुओं में मस्ती और आनन्द खोजते फिरते हैं। ये कल्पना से सुख प्राप्त करते हैं और अदृष्ट संवेदना। जो कलाकार विश्व को कोई अर्थपूर्ण भेंट नहीं कर सकते, जिन्हें क्षुब्ध अम्बुधि की लहरों ने किनारे पर फेंक दिया है, वे अपनी टूटी वीणा के तारों पर मूक गायन गाते हैं और शीराज़ी द्रव की लाली में जीवन का लालित्य देखते हैं। वही घोषणा करते हैं—कला केवल कला के लिए है।

१९ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में योरपीय साहित्यकारों में सबसे प्रथम फ्रेंच साहित्यकार ज़ोला ने 'कला कला के लिए है' की प्रभावपूर्ण घोषणा की। ज़ोला के पश्चात् जर्मन साहित्यकार इवसेन और जार्ज मूर इस क्षेत्र में आये। कला कला के लिए है, इस सिद्धांत में ही उन्हें शुद्ध यथार्थवाद दिखाई दिया। उनके विचार से स्थिति को बिना किसी नैतिकता के स्पष्ट नग्नरूप में रख देना ही यथार्थवाद है। उनका सिद्धान्त था—सत्य—नग्न सत्य का निरूपण।

टेनीसन ने इस सिद्धान्त का तीव्र प्रतिवाद किया। टेनीसन लिखता है—

"मैं वर्ड्सवर्थ से सहमत हूँ कि विशिष्ट सङ्कलन ही कला है। उदाहरणार्थ ज़ोला को देखो। वह संसार की बुराइयों को चित्रित कर देता है, किन्तु संसार का आदर्श क्या होना चाहिए, इस पर चुप रहता है। इसलिए उसकी कला एक वीभत्स चीज़ बन जाती है। वह यह नहीं देखती कि किस चीज़ को चित्रित करना चाहिए, किसको नहीं। बड़ी-से-बड़ी मस्तिष्क-शक्तिवालों में भी संयम की आवश्यकता है।"

अँगरेज़ी-साहित्य और कविता का वास्तविक लक्ष्य जीवन की समस्याओं को सुलझाना ही रहा है। प्रसिद्ध फ्रेंच दार्शनिक वाल्टेयर ने अँगरेज़ी साहित्य का सिंहावलोकन करते हुए लिखा है—"किसी दूसरे राष्ट्र ने इतनी गम्भीरता और उत्साह के साथ कविता के क्षेत्र में नैतिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन नहीं किया, जितना अँगरेज़ राष्ट्र ने।" इसी प्रकार, कविता का इतिहास लिखते हुए 'इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका' के एक विद्वान् लेखक ने लिखा है—"आयलैंड के उन समस्त राजनीतिज्ञों की अपेक्षा जो अपने देश के लिए लड़े और मरे, महान् आयरिश कवि यीट्स और एबी थियेटर कहीं अधिक क्रान्ति के स्रोत थे। और राष्ट्रों से बढ़कर आयलैंड में कवि सदा संसार को हिला देनेवाला समझा गया है।"

१९वीं शताब्दी का अन्तिम चरण योरप के पुनरुज्जीवन का समय है। इस काल में वहाँ जीवन के हर क्षेत्र में नवीन स्फूर्ति, नवीन आशा और नवीन उद्देश का प्रादुर्भाव होता है। साहित्य के क्षेत्र में भी नवीन जाग्रति का आभास मिलता है। हॉलब्रुक उस समय के साहित्यिक पुनरुज्जीवन के सम्बन्ध में लिखता है—"किन्तु उस समय कला कला के लिए नहीं थी। कला का उद्देश जीवन को सुखद बनाना था। प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति उस समय कला को कला की दृष्टि से नहीं देखते थे, वरन जीवन और उसके विचारों की समस्या पर भी ग़ौर करते थे।"

समाज के नैतिक उत्थान और साहित्य में अविच्छिन्न सम्बन्ध है। गत शताब्दी के अन्तिम चरण का इँगलिस्तान का साहित्यिक इतिहास इसका आश्चर्य-जनक उदाहरण है। जो साहित्य अपने समय की आवश्यकता की पूर्ति नहीं करता वह पुस्तकों में बन्द होकर ख़त्म हो जाता है।

सन् १८८१ में 'ब्रिटिश सोशलिस्ट फ़ेडरेशन' का जन्म हुआ। यही संस्था आगे चलकर 'सोशल डेमोक्रैटिक पार्टी' और बाद में 'ब्रिटिश सोशलिस्ट पार्टी' बन गई। दो वर्ष

बाद सन् १८८३ में प्रसिद्ध साहित्यिक संस्था 'फ़ेबियन सोसायटी' क़ायम हुई। इसका उद्देश था 'व्यवस्थानुकूल साम्यवाद' का प्रचार। मध्यम वर्ग के अनेक साहित्यकार इसमें सम्मिलित हुए। फ़ेबियन सोसायटी के सदस्यों में सिडनी वेब, बर्नर्डशा, एनी बेसेण्ट, एच० जी० वेल्स, ग्राहम वालेस, ह्यूबर्ट ब्लैंड आदि मुख्य थे। इनमें से अनेक सदस्य अँगरेज़ी साहित्य पर अपनी छाप लगा चुके हैं।

फ़ेबियन सोसायटी के सदस्य अपनी वक्तृताओं और रचनाओं के द्वारा वर्ग और समाज की जाग्रति पर अपनी स्पष्ट सम्मति प्रकट किया करते थे। सन् १८८६ में भाषण-स्वतन्त्रता को लेकर इसके सदस्यों और पुलिस में झगड़ा हो गया। ट्राफ़लगर-स्क्वेयर में प्रदर्शन हुआ। एक नवयुवक की मृत्यु हुई और कई घायल हुए। सन् १८८९ में मल्लाहों की प्रसिद्ध हड़ताल हुई। इसी तरह के अनेक धन्दों के परिणामस्वरूप सन् १८९२ में 'इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी' की रचना सम्भव हुई। उसी साल इस पार्टी की ओर से फ़ेबियन सोसायटी के उत्साही सदस्य केर हार्डी पार्लियामेंट के मेम्बर चुने गये। हॉल ब्रुक जैकसन लिखता है—

"नवीन जाग्रति के परिणाम-स्वरूप साहित्य और कला में वास्तविकता की भावना का तीव्रगति से समावेश हो रहा था। आस्कर वाइल्ड ने व्यक्तिवाद की जगह समष्टिवाद का प्रचार किया। बर्नर्डशा ने जो तर्कवाद के पुजारी हैं, कला का विचारों के प्रचार के लिए उपयोग किया। एच० जी० वेल्स ने जो अपने समय के सबसे बड़े वास्तविकतावादी हैं, अपने उपन्यासों में वास्तविकता का ख़ूब समावेश किया। कला को बिना संकुचित किये उन्होंने उसके द्वारा अपने नैतिक सिद्धान्तों का प्रचार किया। ऐसा करने में उनके उपन्यासों का कला-सम्बन्धी आकर्षण भी नहीं नष्ट हुआ।"

इन तीन महान् कलाकारों के अतिरिक्त और भी अनेक विद्वान् थे जो नवीन भावनाओं का प्रचार कर रहे थे। इनमें प्रमुख रडयार्ड किपलिङ्ग और हेनले कविता के द्वारा देश-भक्ति जाग्रत कर रहे थे, फ्रान्सिस एडम्स क्रान्ति के गीत गाते थे, एडवर्ड कार्पेंटर जनतन्त्रवाद और वाटसन न्याय का आदर्श जनता के सामने रख रहे थे।

दूसरी ओर कला के लिए कला के उपासक साहित्यकार, कवि, आलोचक और कहानी-लेखक अपने दो मुख्य पत्रों—'दि यलो बुक' और 'दि सेवॉय'—के चारों ओर जमा थे। नैतिक भावना और नये जीवन के सन्देश का इन पत्रों के निकट कोई मूल्य न था। ये लोग अपने को शुद्ध कला का सन्देश-वाहक कहते थे। इनके अनुसार कला का उपयोग केवल शुद्ध कला के लिए ही होना चाहिए, वह प्रचार की वस्तु नहीं। कला का उद्गमस्थान व्यक्ति की कल्पना में है। इसलिए कला व्यक्ति की सम्पत्ति है। उसे सामूहिक सम्पत्ति बनाना सरासर अन्याय है। अश्लील से अश्लील बात यदि सुन्दरता के साथ व्यक्त की जाय तो वह कला-पूर्ण है, और सुन्दर से सुन्दर बात यदि मनोहर ढङ्ग से व्यक्त न हो सके तो वह कलाहीन है।

टेनीसन ने इस पर एक पद्य लिखा है—

The filthiest of all paintings painted well
Is mightier than the purest painted ill!
Yes, mightier than the purest painted well,
So prone are we toward the broad way
to Hell.

अर्थात् लोग कहते हैं कि गन्दी से गन्दी तसवीर यदि अत्यन्त सुन्दर खिंची हुई हो तो उस पवित्र से पवित्र तसवीर से अधिक ज़ोरदार होती है जो बुरी खिंची हुई होती है। हाँ, ठीक है, वह अच्छी खिंची हुई पवित्र से पवित्र तसवीर से भी अच्छी है। क्योंकि हम सबके सब नरक के राजपथ पर अग्रसर होने के लिए अधीर हो रहे हैं।

किन्तु इँगलिस्तान एक सजीव देश था। वह उन्नति की ओर बढ़ रहा था। परिणाम यह हुआ कि इँगलिस्तान में 'कला-कला के लिए' साहित्य का नाम ही 'जीर्णप्राय साहित्य' पड़ गया। 'एटीन नाइनटीज़' का लेखक लिखता है—

"जीर्णप्राय साहित्य केवल थोड़े-से लोगों की प्रवृत्ति थी और इस तरह के थोड़े-से लोगों के जिन्हें केवल अपनी प्रवृत्तियों की चिन्ता है, जीवन के उद्देश और उसकी उपयोगिता के वे क़ायल नहीं। इनका साहित्य शाब्दिक अर्थों में निकम्मा, दुर्बल, पंगु और घबराहट से भरा हुआ था। इन्हें अपनी अन्तर्वेदना में ही आनन्द मिलता था। समाज ने जिन बुराइयों पर अपनी छाप लगा दी थी, उन्हीं से इन्हें तृप्ति थी। अलबत्ता इनका साहित्य सुन्दर युक्तियों,

शब्दाडम्बरों और स्वच्छन्द प्रगल्भताओं से भरा होता था। ऐसे साहित्य का लोग मज़ाक़ उड़ाने को स्वतन्त्र थे। लोकमत के हस्तक्षेप के बिना ही इस तरह का साहित्य जल्दी या देर में अपने आप समाप्त हो जाता है। अपने पूर्ण विकास के दिनों में और जब कि वह विकास सर्वथा बनावटी और कुसमय का था, इस तरह के कलाकारों ने बहुत-से पृष्ठों को जन्म दिया। इस तरह के साहित्य से किसी को कोई लाभ नहीं हुआ। मौलिकता के दृष्टिकोण से इस तरह की रचनायें कला की नहीं, किन्तु कल्पना की उपज थीं। महान् आयरिश कवि डब्ल्यू० बी० यीट्स ने लिखा है—"सचमुच हर देश की कला में मुझे वह बुझता प्रकाश, धूमिल रङ्ग, धुँधली बाह्य रेखायें और फीका उत्साह दिखाई देता है, जिसे अनेक लोग जीर्णप्राय साहित्य कहते हैं। किन्तु चूँकि मेरा विश्वास है कि कला सदा सुखपूर्ण भविष्य का स्वप्न देखती है, इसलिए मैं इस दशा-विशेष को साहित्य की पतझड़ कहूँगा।"

योरप और विशेषकर इँग्लिस्तान के इन पतझड़ी साहित्यकारों के सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। इन कलाकारों की मण्डली में अफ़ीम और अनेक मादक-वस्तुओं तथा सुरापान का गहरा सेवन होता था। द्रव और धूम्र पदार्थों से एक अजीब समाँ बँध जाता था। इस अवस्था-विशेष में ख़ास भावपूर्ण अनुभव प्राप्त होते थे। अन्य बातों के अतिरिक्त इन महफ़िलों में स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध पर भी विवाद होता था। हर बुराई की तहें खोलकर देखी जाती थीं। अब तक लोगों का विश्वास था कि नैतिक आचार और आदर्श एक स्थायी वस्तु हैं, किन्तु इन नवयुवक कलाकारों ने हर प्रश्न पर स्पष्ट राय देनी प्रारम्भ की। बकैनन ने दुखित हृदय से इस तरह के कलाकारों को सम्बोधन करते हुए कहा है—

"लेखक, रचनाकार, आख्यायिकाकार, यथार्थवादी और संगीतज्ञ अपना अपना कर्तव्य पालन करो।

"कला के जीवित रङ्गों से प्रकृति की नग्न लज्जा को अङ्कित करो।

"अपने भाई की पाप-वृत्ति को नग्न कर दो और स्वयं अपने कलुषित मनोविकारों का प्रदर्शन करो।

"संयम का नाश हो, नैतिक भावना का नाश हो, नङ्गे बढ़ते चलो और जन-सामान्य को अपने को घूर घूरकर देखने दो।"

किन्तु योरपीय साहित्य की यह वृत्ति उससे पहले के कठोर और शुष्क ईसाई-साहित्य की स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। ये कलाकार भी कला के उपासक समझे जाने लगे। साहित्य के क्षेत्र में स्वच्छन्दता बढ़ने लगी। नवयुवक साहित्यकारों को बुज़ुर्गों का दख़ल खलने लगा। स्वयंसिद्धि उनका ध्येय बन गया। शुष्क धार्मिक वृत्ति और घासलेटी वृत्ति इन दोनों के संघर्ष से योरपीय साहित्य के अन्दर एक नई लहर पैदा हुई, जिसे योरपीय साहित्यज्ञ 'मिस्टीसिज़्म' यानी रहस्यवाद का नाम देते हैं। किन्तु इस रहस्यवाद का थियासाफ़िकल साहित्य के सार्वभौम धर्म या वाल्ट हिटमैन के उस गहरे किन्तु क्रियात्मक अध्यात्म से कोई सम्बन्ध नहीं जो मनुष्य को साम्प्रदायिक भेदों और रूढ़ि की उपासना से ऊपर उठाकर उसे अध्यात्म के उच्चतम शिखर तक पहुँचाने का प्रयत्न ही नहीं करता, वरन दावा करता है।

नये नामधारी रहस्यवाद ने ठीक आज-कल के हिन्दी छायावाद की तरह एक मायावी साहित्य को जन्म देना शुरू किया। नई नई लेखन-शैलियों का आविष्कार हुआ और उन पर वाद-विवाद होने लगे। कुछ लोग समझते थे कि विचारों का अनिश्चित रूप शब्दों का चयन और वाक्य-विन्यास ही ख़ास चीज़ें हैं। जो वस्तु निरर्थक है उसे वे सार्थक मान बैठे। अक्षर शब्द में, शब्द वाक्य में और वाक्य साहित्य में उत्सर्ग होकर प्राणदायिनी लहरों का सृजन करते हैं। जो केवल निमित्तमात्र हैं उन्हें ये कलाकार जीवन तत्त्व समझ बैठे।

इन नामधारी कलाकारों ने शब्दों के चयन पर ज़ोर देना प्रारम्भ किया। कवि और गद्य-पद्यात्मक कवि घण्टों शब्द (कबीर का शब्द नहीं) खोजने में ख़र्च करते थे। एक शिकारी के उत्साह और लगन के साथ ये लोग कोष-ग्रन्थों और खण्ड-काव्यों से चुन चुनकर कोमल और लच्छेदार शब्दों का संग्रह करते थे। नई नई पद्धतियों में साहित्य और नये नये छन्दों में कविता का निर्माण होता था। किन्तु इन छायावादियों के रोदन और मुस्कान, मौन और गायन को स्थायित्व नहीं प्राप्त हो सकता था। इन्होंने अपने चारों ओर एक ऐसा तङ्ग दायरा खींच लिया कि उसी में जकड़कर क़ैद हो गये।

बीसवीं सदी के प्रारम्भ होते होते योरप में जीवन का तूफ़ान अत्यन्त भीषण हो उठा। व्यावहारिक कुशलता की हर जगह माँग थी। कला केवल जीवन के लिए है, कला के लिए नहीं—योरपीय संसार इसे स्पष्ट समझने लगा। कला की व्यावहारिकता पर बर्नर्डशा ने लिखा है—

"हमारी दृष्टि में कला का आदर या अनादर उसकी व्यावहारिकता पर निर्भर है। सुन्दरता, सङ्गीत, शुद्ध वायु, सदा विचार, स्वच्छ बर्तन आदि की ओर कला हममें प्रेम उत्पन्न करे। कला हमारे चरित्र और व्यवहार को सम्पूर्ण करे। हमारे अन्दर न्याय, सहानुभूति और आत्म-सम्मान की भावना पैदा करे। हममें आत्मनिर्भरता, विवेक-बुद्धि और संयम के भाव भरे। क्रूरता, अन्याय, नीचता, बौद्धिक अल्पज्ञता और अश्लीलता की ओर से हमारे मन में नफ़रत पैदा करे। वही योग्य कलाकार है जो इस उद्देश की प्राप्ति के लिए उसी उपयोगिता के चित्र, सङ्गीत, सुन्दर घर, उद्यान, अच्छे वस्त्र, अच्छे औज़ार, कविता, लेख, नाटक आदि का जनसामान्य के लिए आयोजन करे और हमारे अन्दर मानसिक और नैतिक भावना जाग्रत करे।"

इसी उद्देश की पूर्ति के लिए बर्नर्डशा ने फ़ेबियन सोसायटी के मञ्च से, क्लब के कमरों, ट्राफ़लगर स्क्वेयर और हाइड पार्क में व इसके अतिरिक्त अन्य खुली सभाओं में प्रचार करना प्रारम्भ किया। फ़ेबियन सोसायटी की सभाओं में विशेष आकर्षण होता था। साहित्य और कला की उपयोगिता पर लन्दन के उच्च-से-उच्च विद्वानों की वाग्मिता का वहाँ प्रदर्शन होता था।

टाल्सटाय की पुस्तक 'वाट इज़ आर्ट' का भी योरप के साहित्य में अत्यन्त गम्भीर प्रभाव पड़ा। कला की परिभाषा करते हुए टाल्सटाय ने लिखा है—"कला मानव-समाज की एकता का साधन है। उसका उद्देश है जन-सामान्य को एक भावना से उन्नति के पथ पर अबाध्य रूप से एकत्र कर देना ताकि व्यक्ति और मानव-समाज दोनों का कल्याण हो।"

साहित्य का उद्देश उन्नत वातावरण पैदा करना है। उस वातावरण को सुचारु रूप से नियन्त्रण करना ही कला का कर्तव्य है और सम्पूर्ण मानव-समाज उस कला का साधन है। ज्यों ज्यों कला का परिमाण सङ्कीर्णता से उठकर विस्तृत होता है, त्यों त्यों मनुष्य का हृदय वि और विस्तीर्ण होता जाता है।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ और विशेष कर रूसी क्रान्ति के पश्चात् योरप की परिस्थिति में आश्चर्यज परिवर्तन हो गये हैं। भौतिकवाद, साम्राज्यवाद, सम वाद और अनेक वाद-प्रतिवाद एक गति से योरप के व्यक्ति का ध्यान आकर्षित करने की चेष्टा कर रहे जीवन का प्रतिपल संग्राम का एक एक आघात साहित्य के हर अङ्ग और कला के हर अंश को जीवन समस्याओं से उलझे प्रश्नों के तत्क्षण उत्तर देने पड़ते

अपनी जिन त्रुटियों को त्रुटियाँ समझकर अँगरे साहित्य आज से पीढ़ियों पहले रोग के कीटाणु की त अपने शरीर से निकालकर फेंक चुका है, हमारी राष्ट्रभा हिन्दी के कुछ प्रेमी उसी दुर्बलता को अपना गौरव सम बैठे हैं। दुर्बलता का आना हर मनुष्य और हर समुद में समय समय पर अनिवार्य है और विशेषकर एक परा जाति में। किन्तु हमें यह समझ लेना चाहिए कि मान जीवन या राष्ट्रीय जीवन की कठिनतम समस्याओं का साम कर सकने की क्षमता का अभाव ही हमें छायावाद औ मधुवाद की ओर ले जाता है। अँगरेज़ी साहित्य इतिहास हिन्दी के लिए खुले हुए पृष्ठ हैं। उनका अनु विश्व की सम्पत्ति है।

विज्ञान और उन्नति के इस युग में भारत समूचे संस से अपने को कैसे अलग रख सकता है? उसका भा आज दुनिया के भाग्य के साथ नत्थी है। विचार-क्रान्ति की दीप्त राशि आज भारत के प्राङ्गण को भी उज्ज्वल क रही है। भारत का क्षीणकाय प्राणी समय के दर्पण क्रान्ति की सुनहरी रश्मियों का प्रतिबिम्ब देख रहा है वह समय दूर नहीं जब उसे अपने ३५ कोटि हृदयों विराट् रूप के दर्शन होंगे। वह व्याकुल होकर अप बन्धनों को छिन्न-भिन्न करेगा। किन्तु हर क़दम उठाने पूर्व वह उसके औचित्य और अनौचित्य पर साहित्य प्रश्न करेगा।

भारतीय साहित्य और विशेषकर हिन्दी-साहित्य क ऐसे अवसर के उपयुक्त कुछ सृजन करने की कांक्षा करेगा।

आधुनिक फ़िल्म के ढङ्ग का एक एकाङ्की नाटक

श्रीमती का तलाक़

लेखक, पण्डित मोहनलाल नेहरू

(गताङ्क का शेषांश)

[दृश्य ब्रह्मदत्त और कृष्ण]

कृ०—इन्हीं बातों से तङ्ग आकर बस पीने में मस्त हो जाता हूँ। यार कभी कभी तो दूसरे विवाह की सोचता हूँ, मगर बदनामी से डरता हूँ। बीसों दफ़े समझाया, बीसों दफ़े धमकी दी, मगर किसी बात का असर नहीं। बस, रोती है और अपनी सेवा का बखान करती है। अब तो मैं निराश हो गया हूँ, दुनिया भर में तलाक़ की प्रथा है, पर हमें मनु जी ने बाँध रक्खा है।

[दृश्य ब्रह्मदत्त लेक्चर दे रहा है]

ब्रह्म०—मैं कहाँ तक कहानियाँ सुनाऊँ। मेरे पास तो ऐसी पचासों हैं। मैं यह नहीं कहता कि हर शख़्स को तलाक़ देना चाहिए। मैं तो कहता हूँ, ज़रूरत के वास्ते हथियार हाथ में होना चाहिए।

[ब्रह्मदत्त बैठता है, तालियाँ बजती हैं, सभा समाप्त होती है, सभानेत्री के साथ वह जाता है। मोटर पर बैठने ही को है कि एक दस बरस का लड़का दौड़कर आता है।]

लड़का—बाबू जी, हमारे दीदी तोहका बुलावत हैं, कुछ पूँछै का है, वह गल्ली के पास ठाढ़ हैं।

ब्र०—[सभानेत्री से] आप चलें। मैं बात कर लूँ। पैदल ही आ जाऊँगा।

[ब्रह्मदत्त लड़के के साथ जाता है। वह लड़का उसे एक बुर्केवाली के पास पहुँचाकर भाग जाता है। वह शन्नोदेवी है।]

श०—[बुर्का मुँह से उठाकर ज़रा क्रोध में] महाशय जी, आप लोगों के घर में घुसकर उनका हाल पूछते हैं और फिर उसका दुरुपयोग करते हैं। शायद आप यह समझते होंगे कि मुझे इस लेक्चर की ख़बर नहीं होगी। मगर संयोग से मैं यहाँ मा के पास आई थी। आपका नाम सुनकर आगई। मुझे क्या मालूम था कि मेरा ही मज़ाक़ उड़ाया जायगा।

ब्रह्म०—[कुछ शर्माकर] मैंने किसी का नाम तो नहीं लिया देवी जी।

श०—नाम तो फ़र्ज़ी था, किन्तु था तो मेरा ही हाल! जाननेवाले क्या कहेंगे? डाक्टर साहब को ख़बर हो गई तो साल भर की सुलह मिट्टी में मिल जायगी। उन बेचारे को क्या मालूम कि मैंने उनकी शिकायतें आपसे जड़ रक्खी हैं। मुझे आपकी बड़ी क़द्र थी, मगर आप चुग़ल-ख़ोर निकले। लोगों के घरों में कान लगाते हैं। वाह रे सुधार!

[शन्नोदेवी तेज़ी से चल देती है। ब्रह्मदत्त पीछे जाता है।]

[शन्नो की मा घर में उसकी प्रतीक्षा में इधर-उधर घूम रही है। कमरा मामूली तौर पर सजा है। ज़मीन का फ़र्श है। क़ालीन बिछा है। दो-चार तसवीरें टँगी हैं। कभी बाहर आती है, कभी भीतर। साढ़े नौ का घण्टा बजता है तब शन्नो आती है और उस कमरे में ठहरे बिना सीधा अपने सोने के कमरे में जाती है।]

मा—वाह बेटी, चार दिन को तो तुम आईं और मेरी जान सुखा डाली।

[मा उसके पीछे चली जाती है। दूसरे कमरे में एक कोने में तख़्त बिछा है। दूसरे कोने में एक मेज़ और एक कुर्सी रक्खी है, एक चारपाई एक तरफ़ बिछी है। उस पर शन्नो बैठ जाती है। मा उसका मुँह देखकर कहती है।]

मा—ख़ैर तो है बिटिया! क्या मामला है? बड़ी उदास हो रही है। चल, भोजन भी बरफ़ कर डाला।

श०—अम्मा, सिर में बड़ा दर्द है। मैं न खाऊँगी। तुम जाओ, मैं सो रहूँगी।

[मा चली जाती है। बेटी लैंप बुझाकर लेट रहती है। कुछ करवटें बदलकर सो जाती है, फिर स्वप्न देखती है।]

[ब्रह्मदत्त मञ्च पर खड़ा कह रहा है और शन्नो सुन रही है और औरतें भी हैं।]

ब्र०—जब दिल नहीं मिलता तब ज़ाहरदारी किस काम की? तलाक़ हो जाना ही बेहतर है।

[फिर दृश्य बदलता है। कौंसिल आफ़ स्टेट में ३१ सदस्य बैठे हैं। दर्शक-गैलरी में ठसाठस मर्द और औरतें भरी हैं, शन्नोदेवी भी है। तरह तरह के कपड़े लोग पहने हैं। मोटी खादी के कपड़ों से लेकर बढ़िया चमकदार कपड़े तक पहने हैं। ब्रह्मदत्त विग लगाये लाल लम्बा चोग़ा पहने सभापतित्व कर रहे हैं। जब दृश्य सामने आता है तब [illegible] सदस्य कह रहा है।]

[illegible]—सभापति महोदय, इस विषय पर काफ़ी बहस हो चुकी। अब इस मसले पर भी वोट लेकर इसे समाप्त करना चाहिए।

दूसरा सदस्य—यह बड़ा गम्भीर मामला है। हमारे धर्म-शास्त्र को पलटना चाहता है। जो धर्म हमारे ऋषियों ने हज़ारों वर्ष पहले निर्दिष्ट कर रक्खा है उसे एक दिन में पलटना उचित नहीं।

सभापति—सज्जनो, मैं भी समझता हूँ कि इस विषय पर ज़्यादा बहस फ़िज़ूल है। सभी सज्जन भाषण कर चुके। यह विषय ख़ाली हिन्दुओं से वास्ता रखता है और मुझे ख़ुशी इस बात की है कि आज हिन्दू ही सदस्य उपस्थित भी हैं। यही ठीक भी है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इस विषय में बड़े लाट महोदय आप लोगों की राय के ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई न करेंगे। ख़ूब सोच-समझकर आप वोट दें।

मामला बड़ा गम्भीर है। इससे मैं सारे भाषणों का सार आपके सामने दोहराये देता हूँ। तीन तरह की बहसें आपके सामने पेश हुई हैं। एक दल तो कहता है कि धार्मिक मामलों में इस हाउस को कोई परिवर्तन करने का अधिकार ही नहीं। उसकी राय है कि पश्चिमी चमत्कारों ने हमारी भोली-भाली महिलायें चकाचौंध हो रही हैं। नहीं तो उन्हें तलाक़ की चाहना कहाँ? वह कहता है कि हिन्दू स्त्री का बड़ा मान है और उनकी पुरुष बड़ी इज़्ज़त करते हैं। वे वास्तव में तलाक़ नहीं चाहती हैं। दूसरा फ़रीक़ तलाक़ के ख़िलाफ़ है। इस वास्ते नहीं कि वह पाश्चमी चमत्कार की चकाचौंध है। उसका कहना है कि भारतवर्ष की अधिकांश जातियों में यह रस्म प्रचलित है और उस समय भी था जब पश्चिम का यहाँ से सम्बन्ध भी नहीं था। मगर वह कहता है कि जिन लोगों में यह रस्म नहीं प्रचलित है उनकी महिलायें इस स्थिति में हैं कि इस समय तलाक़ से उन्हें नुक़सान पहुँचेगा। तीसरा दल कहता है कि तलाक़ का क़ानून पास हो जाने से स्त्री पर होनेवाले बहुत-से अत्याचार रुक जायँगे। उसका कहना है कि महाभारत की कहानियों में ऐसी भी कहानियाँ हैं जिनसे पति-त्याग की रस्म के प्रचलित होने का पता लगता है। हिन्दू के वास्ते यह कोई नई बात न होगी। अब आप लोग कृपा करके वोट दें, मगर ख़ूब सोच समझकर।

[वोट के वास्ते सब उठते हैं। इधर-उधर गुट बनाकर बातचीत करने के बाद एक तरफ़ १५ आदमी जाते हैं, दूसरी तरफ़ १६। ब्रह्मदत्त गिनती करता है, फिर कहता है।]

तलाक़ होने की तरफ़ १६। ख़िलाफ़ १५, प्रस्ताव पास हो गया।

[औरतें ताली बजाती हैं। सभा भङ्ग होती है। लोग इधर-उधर घूमते हैं। गैलरी में औरतें परस्पर बातचीत करती हैं।]

शन्नो—आज तो औरतों की बड़ी जीत हुई बहन।

पहली स्त्री—ये मर्द बहुत सिर पर चढ़ गये थे। अब सीधे हो जायँगे।

दूसरी स्त्री—ख़ूब गुलछर्रे उड़ाते थे। अब मज़ा [illegible]।

तीसरी स्त्री—मैं तो आज ही अपने प[illegible] [illegible] कुर्ती दूँगी। . प्रोफ़ेसर खादी की

शन्नो—तुम चुप रहो। [illegible] के मोढ़े पर बैठे हैं। राय है?

चित्रा—[हँसकर [illegible]ह है कि तुम्हें छोड़ने में बहुत दुख नुक़सान पहुँचावे [illegible]उससे काफ़ी प्रेम है। किन्तु उससे भी मैं है। तलाक़ [illegible] और उसकी तरफ़ बहुत खिंचा जाता हूँ। इससे फ़ायदा [illegible] रखने को तैयार नहीं तो सिवा तलाक़ के

शन्नो—है?

झोंक [illegible] है?—यों तो आपका जो जी चाहे करें, मगर मैं जान हैं। अपने [illegible]ति को कैसे सिर पर बिठा लूँ?

पहल[illegible]—मैं तो उसे वचन दे चुका हूँ और कह चुका गया है [illegible] कोई बाधा नहीं डालोगी।

लगी ? मेरा ऐसा कोई मिलता तो मैं देखती कि क्या कहती हैं।

[सब हँसती है और चली जाती है। दृश्य बदलता है। रामावतार का ड्राइंगरूम। वह सिगरेट पी रहा है, शन्नो श्रृङ्गार करके आती है। रेशमी जोड़ा, बिना आस्तीन की फतुही, सिर खुला, ऊँची एड़ी का जूता। डाक्टर हँसता है।]

राम०—ओ हो ! आज तो बड़े ठाट हैं।

शन्नो—[ज़रा तेज़ी से] तो न क्यों हो ? क्या आप ही ठाट करना जानते हैं ?

रामा०—तो ख़फ़ा क्यों होती हो ? मैं तो यों ही हँसा था।

शन्नो—[ज़रा और तेज़ होकर] जब जी जला रहता है तब ख़फ़गी आते देर कब लगती है ?

रामा०—जी जला ! यह क्या ? साल भर से तो मैंने कोई शिकायत का मौक़ा नहीं दिया।

शन्नो—तो इससे क्या होता है ? जैसे आप घर रहे वैसे बाहर। कभी आप सो रहते हैं, कभी पढ़ते हैं। मुझे क्या सुख मिलता है ? मैं अकेली की अकेली। मुझे तो मा-बाप ने आपसे बाँधकर नरक में ही डाल दिया है।

रामा०—[हँसता है] तो अब क्या हो गया है। तलाक़ का क़ानून तो जारी है। उसकी शरण लो।

शन्नो—आपकी यही हरकतें हैं तो ऐसा ही करूँगी।

रामा०—अच्छा जब वैसा करोगी तब करना। चलो कुछ पूँछे का...मा लाऊँ।

ब्र०—[सभाने...र मोटर पर बैठते हैं। मोटर स्टार्ट पैदल ही आ जाऊँगा। ...है।]

[ब्रह्मदत्त लड़के के साथ...।

एक बुर्केवाली के पास पहुँचाकर लौटकर कहता है।]

शन्नोदेवी हैं।] ...ड़ी लड़ा दी है।

श०—[बुर्क़ा मुँह से उठाकर ज़रा क्रोध। सीधा यहाँ जी, आप लोगों के घर में घुसकर उनका ह... कुछ देर और फिर उसका दुरुपयोग करते हैं। शायद तुम चली समझते होंगे कि मुझे इस लेक्चर की ख़बर न मगर संयोग से मैं यहाँ मा के पास आई थी...। मैं ही नाम सुनकर आगई। मुझे क्या मालूम था कि मज़ाक़ उड़ाया जायगा।

[गुस्से में गाड़ी से उतरती है। रामावतार चला जाता है। वह ड्राइंगरूम में जाकर सोफ़ा पर लेट रहती है। ब्रह्मदत्त का प्रवेश।]

ब्रह्म०—नमस्ते देवी जी, आज आप अकेली हैं ?

शन्नो—जी हाँ, रोज़ ही यह हाल रहता है। वे तो अपनी नीचता से बाज़ नहीं आते हैं।

ब्रह्म०—तो फिर आपका मेल फ़र्ज़ी था न. तलाक़ क्यों नहीं दे देतीं ? तुम्हारी ऐसी सुन्दरी के पचासों ग्राहक मिल जायँगे।

[शन्नो उठ बैठती है, हँसती है।]

शन्नो—सच ! तो क्या मैं बाज़ार में बिकने जाऊँगी ?

[ब्रह्मदत्त उसी के पास बैठ जाता है और उसके दोनों हाथ अपने हाथों में लेता है।]

ब्रह्म०—देवी, नहीं ! उसकी ज़रूरत नहीं। मैं भी तो बिनब्याहा हूँ।

शन्नो—मैंने जब तुमसे अपना दुखड़ा रोया था तब यही समझकर कि तुम मेरी कुछ सहायता करोगे। मैं तुम्हारी तरफ़ न मालूम क्यों खिंची जा रही थी ? तुम्हीं ने मुँह नहीं लगाया।

ब्रह्म०—मैं समझा नहीं था। बड़ी मोटी अक़्ल है। अगर मुझ पर कृपा करोगी तो मैं सदा तुम्हारा गुलाम बना रहूँगा। मगर मैं ग़रीब हूँ। मेरी मा के पास कुछ रुपया ज़रूर है, मगर वह बड़ी कंटक है। [ज़रा पास खिसक आता है] मैं तुम्हारे बग़ैर जी ही नहीं सकता।

श०—मेरा भी वही हाल है।

ब्र०—बस, हमारे दिल मिलते हैं तब ख़ूब निभेगी।

श०—मैं अगर तलाक़ दे दूँ तो मुझसे ब्याह कर लोगे ?

ब्र०—यह भी पूछने की बात है ? अंधा क्या माँगे ! दो आँखें।

श०—और अगर तुम्हारी मा बाधा डालें तो ?

ब्र०—मैं क्या बच्चा हूँ। स्वस्थ युवक हूँ। मज़दूरी तक कर सकता हूँ। मगर हाँ, तुम्हें पैसे की तंगी अवश्य हो जायगी।

श०—इसकी चिंता नहीं। मैं वकीलों से आज ही सलाह लूँगी।

[दृश्य—साधारण आदमी का घर। एक ४५ या ५० वर्ष की स्त्री बैठी है। नाक-भौंहें चढ़ी हैं। इतने में एक युवक दफ़्तर से आता है। आते ही टोपी, कोट, चारपाई पर फेंक देता है। उसकी मा उसे बैठने के पहले ही बड़े क्रोध से ऊँची आवाज़ में कहती है।]

मा—मैं तो तुम्हारी रानी साहब से तंग आगई ! बस या तो वही घर में रहे या मैं ही रहूँगी।

पुत्र—अम्मा, आख़िर हुआ क्या ? उसकी क्या मजाल जो तुम्हें तंग करे।

मा—होगा क्या मेरा सिर ? मैं बहू-बेटियों की डाँट-डपट नहीं सह सकती। ये बाँदी रानी तो मुझे मारने दौड़ती हैं। मैं तुम्हारे घर में नहीं रह सकती।

[चारपाई से उठ खड़ी होती है।]

पुत्र—अच्छा ऐसी बात [क्रोध से लाल हो जाता है] मैं उसका ख़ून पी लूँगा। किधर गई ससुरी ? [एक सोंटा उठा लेता है]

मा [ज़रा डरकर]—नहीं बेटा, मारो-पीटो मत [सोंटा हाथ से छीन लेती है]। इतने में पुत्र-वधू हाथ में नाश्ते की तश्तरी लेकर आती है। माथे तक सिर का पल्ला खिंचा है। एकदम पति उसकी तरफ़ घूमता है और ज़ोर से चिल्लाता है।

पति—निकल मेरे घर से [तश्तरी उसके हाथ से छूट जाती है। वह काँप उठती है]। यह तेरी मजाल कि मेरी मा पर हाथ उठावे, चुड़ैल कहीं की ! आज उसे मारा, कल मुझे मारेगी।

युवती—मैंने......

पति—चुप, नहीं तो जीभ खींच लूँगा। अभी निकल बाहर, नहीं तो तेरी लाश निकलेगी। अभी नहीं टली। [सोंटा उठाकर उसकी तरफ़ बढ़ता है, मगर मा बीच में आकर छीन लेती है, वह ख़ाली हाथ ही उसे दरवाज़े से धक्का देकर निकाल आता है। चारपाई पर बैठकर हाँफते हुए कहता है।]

पुत्र—चलो, बला टली। कल तलाक़ की दरख़्वास्त दे दूँगा।

मा—[पास खड़ी होकर सिर पर हाथ फेरती है] बेटा, तू घबरा मत। मैं इससे कहीं अच्छी तुझे लुगाई ला दूँगी।

[दृश्य—कृष्ण का बँगला। कृष्ण दफ़्तर से आता है। राधा बिना कंघी मैले कपड़े पहने रसोई से निकलती है। बरामदे में कुर्सी-तख़्त सब टेढ़े-मेढ़े पड़े हैं। राधा की धोती भी फटी है। ब्रह्मदत्त साथ है। देखते ही आग भभूका जाता है। राधा से कहता है।]

कृष्ण—मेरी तुमसे अब नहीं निभ सकती। मैं तुम्हें ऐसी फूहड़ जोरू लेकर क्या करूँ ? किसी दोस्त से तु... न मिला सकूँ, न कुछ। सब मुझे हँसते हैं। तलाक़ क़ानून ज़ारी है [ब्रह्मदत्त चुपके से चला जाता है]। मैं तु... कल ही आज़ाद कर दूँगा। घर में शान्ति तो रहेगी।

राधा—[घबराकर] मैं तो तुम्हारी सेवा ही कर रहती हूँ। नौकरानी समझ कर ही पड़ी रहने दो। तुम्हें दर्शन तो हो जाया करेंगे। मैं और कुछ नहीं चाहती। [रोती है]

कृ०—[ज़रा तेज़ होकर] यह भला कैसे हो सकता है तुम और मैं बराबरवाले हैं। तुम्हारा जहाँ जी चाहे रहो जी में आवे दूसरा ब्याह कर लेना। तलाक़ तो मुझे देना ही है।

रा०—भला आप ही कहें मैं कहाँ जाऊँ। बाप-भ... को मुँह नहीं दिखा सकती। पढ़ी-लिखी हूँ नहीं कि नौक... कर लूँ। मज़दूरी होगी नहीं। तो फिर कहें तो गंगा की शरण लूँ।

कृ०—यह तुम्हारी ख़ुशी है। मैं तुम्हारे वास्ते अप... ज़िंदगी नहीं ख़राब कर सकता।

[दृश्य—कालेज के प्रोफ़ेसर का घर। छोटा-सा कमरा मामूली सजावट, युवा स्त्री। आधे आस्तीन की सूती कु... और किनारीदार साड़ी पहने है। प्रोफ़ेसर खादी... धोती और कुर्ता पहने हैं, बेंत के मोंढ़े पर बैठे हैं उदास हैं।]

पति—सच तो यह है कि तुम्हें छोड़ने में बहुत दु... होता है। मुझे तुमसे काफ़ी प्रेम है। किन्तु उससे भी प्रेम करता हूँ और उसकी तरफ़ बहुत खिंचा जाता हूँ। तुम उसे साथ रखने को तैयार नहीं तो सिवा तलाक़ क्या चारा है ?

पत्नी—यों तो आपका जो जी चाहे करें, मगर मैं जा... बूझकर सौत को कैसे सिर पर बिठा लूँ ?

पति—मैं तो उसे वचन दे चुका हूँ और कह चुका हूँ कि तुम कोई बाधा नहीं डालोगी।

पत्नी—मेरा इसमें क्या दोष है ?

पति—तुम सुन्दर हो, जवान हो । तुम्हें मुझसे अच्छे पति मिल जायँगे ।

पत्नी मगर मैं ढूँढ़ने तो नहीं जाऊँगी । एक पुरुष को हृदय देकर दूसरे को न दूँगी ।

[दृश्य—बाज़ार । सड़क के दोनों तरफ़ ऊँचे मकान । नीचे दूकानें, गाड़ी-इक्के, मोटर चल रहे हैं, सड़क के किनारे मोटर भी खड़े हैं । कुछ पर सवारियाँ हैं, कुछ ख़ाली । एक छोटी-सी छत पर खड़ी शन्नो बाज़ार की तरफ़ देख रही है । जैसे किसी को भीड़ में ढूँढ़ रही हो । एक मोटर पर चित्रा और उसका पति बैठे हैं । वह शन्नो के मकान के सामनेवाली पटरी पर खड़ा है । बाज़ार में चहल-पहल है । उनकी आँखें ऊपर को उठती हैं ।]

पति—वह देखो, शन्नोदेवी खड़ी हैं । ध्यान कहीं और है ।

चित्रा—अभागी ! मैं तो दो-तीन दफ़े मिल चुकी हूँ । ब्रह्मदत्त के चक्कर में डाक्टर को छोड़ बैठी वह रोज़ विवाह के झूठे वादे करता है । शन्नो घबराती है । मगर क्या करे ? उसके सारे होश-हवास गुम हैं । सारा गहना बेच खाया ।

पति—शायद उसी को भीड़ में देख रही है । इस तुम्हारे तलाक़ के क़ानून ने कितनी औरतों को आवारागर्द बना दिया है । मर्दों ने पचासों ग़रीब औरतों को निकाल बाहर किया है ।

[बाज़ार का दूसरा कोना, ब्रह्मदत्त आहिस्ता आहिस्ता आ रहा है । रास्ते में पटरी पर मेवा-फ़रोश वग़ैरह बैठे हैं ।]

पहला मेवावाला—आइए-बाबू जी, संतरा पैसे पैसे बिगाय लो !

दूसरा मेवावाला—चीनी का मज़ा एक पैसे में ।

तीसरा मेवावाला—केले एक आने दर्जन, बाबू जी, लेते जाइए !

एक ईसाई साधु—[काला चोग़ा पहने, सिर नंगा, खड़ा पुकार रहा है]—लव इज़ गाड ऐंड गाड इज़ लव । [रास्ते चलता एक आदमी उसे एक आना देता है] ।

एक आदमी—धोबी है !

दूसरा आदमी—सी० आई० डी० का आदमी है। इससे बचे रहना ।

चूरनवाला—

चूरन मेरा जाली नूस, जिसको खावे तुरकी रूस ।

[कुछ लोग लेते हैं]

एक मिर्ज़ापुरी नाचनेवाली घटिया क़िस्म का लहँगा पहने, दुपट्टा ओढ़े, ढोलक और सारङ्गी के साज़िन्दों के साथ है । सड़क पर नाच रही है । भीड़ जमा है । कोई कोई सामने फैली हुई चादर पर पैसे फेंक देते हैं । ब्रह्मदत्त उसे भी कुछ देर देखता है ।

पानवाला—[गाड़ी लिये] एक पैसे का पान मेरा खाते जाइएगा ।

एक तगड़ा, मोटा डाढ़ीदार मुसलमान साँई लुंगी दुपट्टा मिर्ज़ई पहने भीख माँग रहा है । वह गा रहा है—

रुपया-पैसा गाड़ी-घोड़ा, आज यहाँ जो तूने जोड़ा ।
सुन्दर मुखड़ा चाँद-सा टुकड़ा, काम तेरे कब आवेगा ।
सब ठाट पड़ा रह जावेगा ।
जब लाद चलेगा बंजारा ॥

मोटरों के दोनों तरफ़ भीख माँगनेवाले-वालियाँ जमा हैं ।

अ...न...धी ..हूँ !बड़े...शिर...कार . आप . ही... लो...गों का...सहा...रा है.! ये...लं...ग...ड़ा...अ... पा...हज...है...

य..ही...दि...या . लिया का...म...आ...वे...गा !

कोई देता है, कोई दुत्कार देता है ।

ब्रह्मदत्त मकान के नीचे पहुँचता है । शन्नो ऊपर से इशारा करती है । चित्रा देखती है ।

चि०—वह भी आ गया । शन्नो भीतर गई । जाने उसका क्या हश्र होगा ? मुझे उस पर बड़ा तरस आता है ।

[दृश्य बदलता है । शन्नो का छोटा-सा कमरा है । एक कुर्सी पड़ी है । एक तख़्त बिछा है । उस पर छोटा-सा क़ालीन है । एक तकिया पड़ा है, एक स्टील ट्रंक नीचे रक्खा है । दीवारें ख़ाली हैं । मेज़ पर एक छोटा-सा मिट्टी के तेल का लैंप रक्खा है । शन्नो उसे जलाती है, ब्रह्मदत्त का प्रवेश । गर्दन झुकी है, चेहरा उदास है, कुर्सी पर बैठ जाता है, बोलता नहीं ।]

शन्नो—क्यों ? बिलकुल मायूस हो जाऊँ ?

ब्रह्म०—क्या कहूँ ? बहुत दुखी हूँ ।

श०—चलो चलो, दुख की बातें रहने दो, मामले की बात कहो । बनावट की बातों का समय गया । मैं बहुत कुछ सीख गई हूँ । तुम्हारी हरकतें देख लीं । इधर मुझे ब्याह किया, उधर राधा सी पचासों औरतों को घर से निकलवाया । न मालूम कितने घर बिगाड़े होंगे !

ब्रह्म०—क्या कहूँ ! बुढ़िया किसी तरह राज़ी ही नहीं होती । मैं बहुत रोया-गाया, मगर उसका पत्थर का कलेजा पसीजता ही नहीं है ।

श०—[क्रोध से] वह तो मैं जानती थी कि तुम यही कहोगे । मैं अंधी थी, जो तुम्हारे कहे में आ गई । [दोनों हाथों से सिर पकड़कर बैठ जाती है । कुछ देर चुप रहने के बाद ब्रह्मदत्त उठता है । उसके सिर पर हाथ फेरता है । उसे छूते ही एक-दम क्रोध की ज्वाला सुलग उठती है, खड़ी हो जाती है, एक तरफ़ कूदकर हो रहती है ।]

ब्रह्म०—इतनी ख़फ़गी ? मेरा क्या क़सूर है ? बुढ़िया की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ ब्याह कर लूँ तो तुम्हें रक्खूँ कहाँ ? सिर पर छत है, वह भी उठ जाय ।

श०—बस ! बस ! रहने दो । ज़ख़्म पर नमक मत छिड़को । तुम्हारी ख़ातिर मैंने घर-बार छोड़ा । भाई-भौजाई से फूट कर ली । डाक्टर साहब अगर ज़ेवर छीन लेते तो भूखी मर गई होती । इसी तरह तुम मर्द हम औरतों को तबाह करते हो, सुधार के नाम पर घर से बिगाड़ कराते हो । साल भर से भी अधिक तुम्हारी राह देखी । चलो, हटो मेरे पास से । निकलो मेरे घर से । जाओ, स्त्रियों की दशा सुधारने निकले थे या उन्हें धोखा देने !

[सीढ़ी पर किसी के चढ़ने की आवाज़ आती है । ब्रह्मदत्त जाता है ।]

[दो सखियों का प्रवेश]

पहली—कहो बहन, कुछ आशा है ?

श०—आशा क्या मेरा सिर है ?

दूसरी—मैं तो उसकी शक्ल ही देखकर समझ गई थी ।

श०—कहते हैं, मा घर से निकाल देगी ।

पहली—पहले क्या समझ कर बड़े बड़े वादे किये थे ?

श०—इसका क्या जवाब है ? कुछ नहीं ।

दूसरी—अच्छा देखो, आज के अख़बार में एक सज्जन ने स्त्री की माँग छापी है । पुलिस में नौकर हैं, मगर ज़मींदार भी हैं । तसवीर मँगा लूँ, अगर तुम्हें पसन्द हो । उम्र तो नहीं छपी है । किन्तु लिखा है, स्वस्थ हैं, जवान हैं, पहली स्त्री जन्मरोगी है । साल में दस हज़ार पैदा कर लेते हैं । घर अच्छा है ।

श०—जो चाहे करो । मैं तो इन लोगों की चालों से घबरा उठी हूँ, ख़ासी बैठी थी, ब्रह्मदत्त ने मेरा घर उजाड़ दिया । मुझे कहीं का न रक्खा । बस भूखों मरना बाक़ी है ।

[दोनों हाथों में सिर थाम कर रोती है । सखियाँ उठाकर मुँह धुलाती हैं, कहती हैं, चलो घूम आवें । तीनों जाती हैं ।]

[दृश्य बदलता है । डाक्टर का बँगला है । वे संध्या-समय बाग़ में टहल रहे हैं । माली पीछे पीछे है । फाटक से शन्नो देखती है । उदास हो जाती है । डाक्टर माली को डाँट रहे हैं ।]

डा०—कमबख़्त, देख तो ये सब पौधे सूख गये हैं । ज़मीन पथरा रही है ।

माली—हज़ूर, सुबह से पानी ही दे रहा हूँ । पाइप में पानी जितना आवे, उतना ही तो दूँगा ।

डा०—बक मत । चुपचाप काम किया कर । कैसा अच्छा गुलाब था ! अब पानी के अभाव से कितना छोटा फूल रह गया है !

[फूल तोड़ता है]

पहली सखी—डाक्टर साहब बाहर टहल रहे हैं । चादर ओढ़ ले, मुँह ढँक ले, नहीं तो पहचान लेंगे ।
[मुँह ढँकते हुए]

श०—यह मेरा घर है । नहीं ! नहीं ! था । मैंने गुलाब के कितने ही पौधे अपने हाथों से लगाये हैं । वह देखो जो गुलाब डाक्टर साहब तोड़ रहे हैं और अपने कोट में लगा रहे हैं, मुझे बहुत ही पसन्द था और रोज़ मैं जूड़े में लगाती थी । [गला भर आता है । रुक जाती है] चलो चलो, घर चलो । मैं सैर नहीं करूँगी ।

[दृश्य बदल जाता है । एक देहाती थाना, दरोग़ा जी वर्दी पहने बैठे हैं, हुक्क़ा पी रहे हैं, सिपाही चारों तरफ़ खड़े हैं । एक रजिस्टर टूटी-सी मेज़ पर पड़ा है । दूर तक

आबादी नहीं है। क़रीब ४० वर्ष की अवस्था के आदमी हैं। गठा बदन, ख़ूबसूरत जवान हैं।]

द०—यह मेरा बच्चा ! उसी रोशनसिंह के दरवाज़े पर मिला न ?

सि०—हाँ, हुज़ूर।

द०—अच्छा हुआ ! साले ने मेरी नई शादी के वक्त कुछ भी नज़र नहीं दी थी। अब बच्चू सैकड़ों देंगे या हज़ारों ख़र्चेंगे। जाओ। उसे गिरफ़्तार कर लो। उसकी औरत को भी पकड़ लाओ। ये साले कालेज में क्या पढ़ लेते हैं कि हम अफ़सरों को कुछ बदते ही नहीं ! जाओ, दोनों को हथकड़ी डालकर पैदल लाओ। बात-चीत भी करना, मगर अपनी तरफ़ से। यही तो हम पुलिस-वालों की ज़मींदारी है।

[सिपाही जाते हैं। हुक्क़े का दम लगाता है। दरवाज़े के पीछे से उसकी पहली स्त्री झाँककर बाहर आती है। वह क़रीब ४० साल की है, परन्तु मुँह पर झुर्रियाँ पड़ गई हैं। बहुत गुस्से में बाहर आती है।]

औ०—मैं तो तुम्हारी नई दुलहिन से तंग आ गई। वह तो कोई काम ही नहीं कर सकती। न तो झाड़ू-बुहारू करती है, न खाना पकाना ही जानती है। कुछ कहो तो रोती है। चले थे जवान जोरू के शौक़ में। ले आये भा मिट्टी की पुतली। मेरे वास्ते टहलुई लाने को कह गये थे, लाये अपना खिलौना। मैं उस मुँहजली को क्या करूँ ?

द०—मारो। मार के आगे भूत भागे।

औ०—हाँ हाँ ! मैंने भी जैसे दरोग़ाई की है।

द०—पकड़ लाओ ससुरी को यहाँ।

[जाती है।]

[प्रवेश—सिपाही रोशनसिंह और उसकी स्त्री के साथ। दोनों के हाथ में एक ही हथकड़ी है। खादी के कपड़े हैं। ख़ूबसूरत जवान हैं।]

द०—कहिए ठाकुर साहब, यह तो आप बुरे फँसे। मैंने तो तभी कहा था कि पुलिसवालों के मुँह नहीं लगना चाहिए। आपने बुरे घर बयाना दिया है।

[शन्नो ज़रा-सा घूँघट निकाले और बड़ी सौत दोनों कोने में आ खड़ी होती हैं]

पुलिसवाले स्याह-सफ़ेद जो भी चाहें कर सकते हैं। हमारी ज़मींदारी आपकी ज़मींदारी से भी बड़ी है।

रोशनसिंह—दरोग़ा साहब, मामला झूठा है। यह तो आप और मैं दोनों जानते हैं। मगर आपका सिपाही जो कुछ भी शादी का नज़राना माँगता था, मैं पेश करूँगा। बड़े ज़रूरी काम से कल बम्बई जा रहा हूँ।

द०—अरे ठाकुर साहब को कुर्सी दो। नालायक़ इतने बड़े आदमी को भी कहीं हथकड़ी डाली जाती है। ठाकुर साहब, माफ़ कीजिएगा, आप जायँ। मैं थोड़ी देर में ख़ुद हाज़िर होता हूँ।

[सब जाते हैं सिवा दरोग़ा और दोनों स्त्रियों के। शन्नो के कपड़े मैले हैं]

द०—यह क्या शिकायत है तुम्हारी छुटकी ?

शन्नो—क्या कहूँ जो कुछ भी करती हूँ इन्हें पसंद ही नहीं आता। मैं मर मिटती हूँ [गला भर आता है] इनकी समझ में कुछ होता ही नहीं। दिन भर मज़दूरी करती हूँ। उसका इनाम है झूठी शिकायतें।

द०—मैं तुमसे शिकायत नहीं सुन सकता। [डाँट-कर] मैं बेंत से बात करता हूँ। खाल खींच लेता हूँ।

शन्नो—जो चाहो सो करो। अब तो आ फँसी हूँ।

द०—[खड़ा हो जाता है गुस्से में] मैंने फाँसा है चुड़ैल कहीं की ? मैं न हाथ पकड़ता तो भूखों मर जाती। ऊपर से यह ढिठाई। बेशर्म, नकटी कहीं की।

[पाँच-सात बेंत जमाता है वह चिल्लाकर गिरती है। उधर उसकी आँख खुल जाती है। चीख़ की आवाज़ सुन कर मा, भाई-भौजाई भी दौड़ आती हैं। बेटी बेहोश है। सिर पर हाथ रखती है।]

मा—उफ़ ! जल रहा है माथा। जा बेटा, डाक्टर को बुला और रामावतार को तार दे दे कि तुरन्त आवें।

भौ०—डर गई दीदी ! कोई भयानक स्वप्न देखा है।

भाई—अभी अर्जेन्ट तार देता हूँ। [जाता है]

[दृश्य बदलता है। रामावतार का बँगला, बरसाती में एक तारवाला चिट्ठी दे रहा है। ताला पड़ा है, कोई आता नहीं, वह शागिर्दपेशे की तरफ़ जाता है। तीन-चार कोठरियाँ एक लाइन में हैं, जो भीतर से ८-८ फ़ुट हैं। बाहर ६ फ़ुट का बरामदा है, कच्चा फ़र्श, खपड़े की छावनी। एक नौकर नंगे बदन ज़मीन पर बैठा सत्तू खा रहा है।]

तारवाला—कौनो ड्योढ़ी पर नाहीं।

नौकर—अरे भैया ! अबहिन तो आवत है। ससुर

काम करत करत मर मिटित है। मालिक के भावेहीं नाहीं आवत।

तार०—हाँ हो। आज-कल यही दस्तूर है।

नौ०—मालिक तो ससुर हमका मशीन समझत हैं। नौकर साला एको मिनट बैठे न पावै, डाँट-फटकार तो उठत-बैठत खिलौने में मिलत है।

[बरसाती में मोटर की आवाज़ आती है। तारवाला वहीं तार ले जाकर डाक्टर के हाथ में देता है। तार पाता है। तारवाला जाता है]

डा०—कोई आदमी नहीं। चलो कोई है।

(अर्जेंट कंडीशन सीरियस कम नेक्स्ट ट्रेन आर कार। शन्नो की दशा बहुत ख़राब है। गाड़ी या कार से जल्दी आओ।)

[दृश्य फिर बदलता है। शन्नो बुख़ार की तेज़ी में बक रही है। मा मौजूद है—हर फ़िक़रा ठहर कर कहती है]

बड़ा धोखा खाया। उफ़ ! क्या मार डालोगे ? अच्छा मारो मारो। हाय ! मार डाला !...धोखेबाज़ ! बेईमान ! हाय ! डाक्टर साहब ! मेरे औतार ! क्या मुझे भुला दोगे ? बचाओ ! बचाओ !

मा—[पुकारती है] चलो, फिर वही बक रही है। [सब दौड़ आते हैं।]

[रामावतार चारपाई पर बैठ जाता है। ठंडा पानी माथे पर डालता है। दवा सुँघाता है। कहता है, ठहरो होश आ रहा है। वह उसके सिरहाने पर है जहाँ वह देख न सकती।]

रामा०—क्या है शन्नो ? क्यों डरती हो ? मैं य बैठा हूँ। घबराओ मत। उसके सिर पर हाथ फेरता है कुछ देर में आँख खोलती है।

श०—मैं कहाँ हूँ [आँख खोलकर सामने मा, भा भावज को देखती है।] अम्मा भैया ..[मा उसे प्य करती है]

मा—[उसकी बात काट कर] घबराओ मत बे घर में हो...

शन्नो०—अम्मा, मैंने जैसे अभी डाक्टर साहब आवाज़ सुनी थी।

रामावतार—[सामने आकर] हाँ, ठीक सुनी थी तुम तीन दिन से बुख़ार की तेज़ी में वाही तबाही बक र थीं। बड़ी डरपोक हो [मुसकराती है। उठ कर बैठने कोशिश करती है]

नहीं, लेटी रहो। जल्दी अच्छी हो जाओ, तुम्हें घर चलूँ।

श०—नहीं, मुझे अभी ले चलो। तुम्हारे साथ अप बाग़ में सैर करने पर ही अच्छी होऊँगी।

[मा के आँसू छलछला आते हैं और वह निगलती है।]

मा—हाँ बेटा, जाओ अपने घर में ही सुख है।

खोज

लेखक, श्रीयुत श्यामनारायण पाण्डेय, साहित्यरत्न

आप अपने को तथा जानते हमारे भेद,
किन्तु अपने को आप हमसे छिपाते हैं।
आँसू में नहाते हैं कहाते हैं अनाथ हम,
नाथ, हम आँसू प्रेम-पथ में बहाते हैं॥
खोजते सदैव पर कुछ भी न पाते पता,
तो भी पता रात-दिन आपका लगाते हैं।
पैदा करते हैं अपने को वसुधा में आप,
और अपने में फिर आप मिल जाते हैं॥

सोयाबीन

श्रीयुत वनमालीप्रसाद शुक्ल

जब से महात्मा गांधी ने अपने खाने की वस्तुओं के प्रसंग में सोयाबीन का ज़िक्र किया है तब से हमारे देश में इसकी काफ़ी चर्चा होने लगी है और बहुत-से लोग इसे बोने भी लगे हैं। यह एक विचित्र धान्य है। यह दूध, दही, घृत, अन्न, खली सब कुछ एक ही में है। इस लेख में लेखक महोदय ने इसके सम्बन्ध में बहुत-सी ज्ञातव्य बातें बताई हैं।

एक बार मेरे एक मित्र ने कृषि-कम्पनी के सूचीपत्र में अङ्कित सोयाबीन की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा कि इस बीज को मँगा कर बाड़ी में अवश्य बोइए। मैंने उनसे पूछा कि यह है क्या। इसके उत्तर में उन्होंने सिर्फ़ इतना ही बताया कि यह एक प्रकार का विदेशी शाक है और शाकभोजियों के लिए बहुत लाभदायक है। इसमें शरीर के पोषक तत्त्व हमारे यहाँ उपजनेवाले अन्यान्य शाकों से अधिक परिमाण में हैं और इसी लिए हमारे देश में इसके बोये जाने के लिए बड़ा ज़ोर दिया जा रहा है। उस समय मैंने मित्र के कथन पर ध्यान नहीं दिया। इसका कारण था; और वह यह कि हम लोगों में अपने यहाँ सनातन से उपजनेवाली खाद्य वस्तुओं को हीन और विदेश से आकर भारतवर्ष में पनपनेवाली शाक-भाजी तथा दूसरी जिन्सों को जिन्हें हमारे शास्त्रकारों ने सात्विक भोज्य-पदार्थ नहीं माना है, सर्वश्रेष्ठ कहने एवं उनकी बढ़ा-चढ़ाकर प्रशंसा करने की बुरी प्रवृत्ति पड़ गई है। यही क्यों? हम लोगों में बहुत दिनों से अपने आचार-विचार, शिष्टाचार, धार्मिक कर्म, शास्त्र-पुराण आदि को भी उनके सिद्धान्तों की जड़ तक पहुँचे बिना एकमात्र अपने आधुनिक विचारों की कसौटी में कसकर निस्सार कह देने का कुसंस्कार पड़ा हुआ है। इस समय भी भारतवर्ष में ऐसे ऐसे महामहोपाध्याय तक विद्यमान हैं जो पाश्चात्यों के सुर से सुर मिलाकर वेदमन्त्रों को गड़रियों के गीत बताते हैं। आधुनिक शिक्षा ने तो हमें यही सिखाया है कि एकमात्र पुरानापन या नयापन के विचार से किसी बात को त्याज्य या ग्राह्य समझो। प्राचीन बातों को वैज्ञानिक रीति से स्पष्ट करने की योग्यता न होने के कारण हम उनको तब तक अंधी श्रद्धा मानते हैं जब तक कोई पाश्चात्य विद्वान् उनकी श्रेष्ठता को परखकर हमें नहीं सुझा देता। इस सम्बन्ध की एक बात सुनने लायक़ है। तुलसी के पौधे का आँगन के बीच में लगाया जाना, उसे नित्यप्रति जल से अभिषिक्त करना, उसकी बड़ी देर तक परिक्रमा करते हुए माला जपना, उसके पास बैठकर पूजा-पाठ या दूसरे धार्मिक कृत्य करना आदि बातें ऐसी हैं जो नई रोशनीवालों को खलती हैं। वे कहते हैं कि हिन्दू-धर्म-प्रणेताओं ने हिन्दू-धर्म के साथ अच्छा मज़ाक किया है। यदि वे तुलसी के बदले स्वादिष्ट फलवाला कोई वृक्ष या सुगन्धित पुष्प का कोई पौधा रोपकर उसकी पूजा करने का आदेश देते तो उससे पुजारियों का मुँह मीठा होता या उनका दिमाग़ तरोताज़ा होता। उनके ये विचार कितने भ्रान्ति-मूलक हैं, इसका अन्दाज़ अमेरिका के एक डाक्टर-द्वारा किये गये तुलसी-विषयक अनुसन्धान से स्पष्ट हो जाता है। जब उस डाक्टर को विदित हुआ कि हिन्दू लोग तुलसी के पौधे को धार्मिक दृष्टि से विशेष महत्त्व देते हैं तब वैज्ञानिक रीति से उसकी जाँच-पड़ताल करने की उसने ठानी। वह यह ख़ूब समझे हुए था कि हिन्दुओं के ऋषि-महर्षि बड़े दूरदर्शी थे और उन्होंने अपने अनुयायियों के कल्याणार्थ कतिपय बातों को इस हेतु धर्म का स्वरूप दे रक्खा है जिसमें उनसे होनेवाले लाभ से वे अपनी अज्ञानता के कारण वंचित न रह जायँ। कहना न होगा कि डाक्टर साहब ने नई बात ईजाद करने के प्रलोभन में पड़कर तुलसी के पौधे के साथ ख़ूब माथापच्ची की। अंत में एक दिन उन्होंने देखा कि तुलसी का पौधा दूसरे पौधों से विशुद्ध एवं अत्यधिक ओषजन अपने चारों ओर उच्छ्वसित

करता है, जो प्राणियों के दीर्घजीवन एवं शक्ति-अर्जन के लिए वाञ्छनीय है। इस खोज से उन्हें बड़ा लाभ हुआ। आक्सीजन ट्यूब से प्राणप्रद वायु फेफड़े में पहुँचा कर जो रोगी आराम नहीं किये जा सकते थे उन्हें वे तुलसी के पौधों के गमलों से परिपूर्ण अपने खुले हाल में लिटाकर आरोग्यता प्रदान करने लगे। उनका तो कहना है कि मनुष्य तुलसी के पौधे से संकुल उद्यान में नियमपूर्वक हवाख़ोरी करके ऐसी महौषधि बिना मूल्य प्राप्त कर सकता है जो जीवनी शक्ति की वृद्धि के लिए अमोघ है। इसी से आर्य-ग्रन्थों में तुलसी की बड़ी महिमा लिखी गई है और हिन्दुओं को उसे अपने आँगन में लगाने की आज्ञा दी गई है।

मित्र की सोयाबीन-विषयक बातें जिन्हें मैंने उपर्युक्त कारणों से उपेक्षा की दृष्टि से देखा था, मेरी स्मृति से पूर्णतः विलीन नहीं हो पाई थीं कि इसी बीच में कृषि-फ़ार्म के एक कर्मचारी ने जिनके पास मैं कृषि-सम्बन्धी कुछ परामर्श लेने गया था, मुझे सोयाबीन बोने की बे-पूछे सलाह दी और उसकी प्रशंसा में वही सब स्तोत्र गा गये जो कुछ दिन पूर्व मेरे मित्र आलाप चुके थे। इस दोहरी सलाह से मेरे मन में सोयाबीन के पाँच-दस पौधे बोने और उसके बारे में विशेष बातें जानने की उत्कण्ठा हुई। प्रस्तुत लेख उसी उत्कण्ठा का फल है।

कुछ वर्षों से हमारे देश में सोयाबीन कहीं कहीं बग़ीचों में लगाया जा रहा है। यद्यपि इस समय मदरास-प्रान्त में उसकी थोड़ी-बहुत कृषि भी की जाती है, तथापि हम सब लोग उसके नाम तक से अपरिचित हैं, विशेष जानकारी तो बहुत दूर की बात हुई। सोयाबीन एशिया-महाद्वीप की उपज है और मंचूरिया उसका मूल-क्षेत्र है। अमरीका के संयुक्त-राज्य, कनाडा, योरप, दक्षिण-अफ़्रीका, आस्ट्रेलिया, भारतवर्ष और अर्जेंटाइन में कहीं कम और कहीं अधिक उसकी खेती होती है। परन्तु इन सब स्थानों की वार्षिक उपज अकेले मंचूरिया की वार्षिक पैदावारी की तुलना में आधी से भी कम कही जाती है। इसका कारण मंचूरिया का उपयुक्त जल-वायु तथा भूमि तो है ही, इसके सिवा वहाँ के कृषकों के उद्योग एवं परिश्रम की विशेषता भी है। कहते हैं कि उनके समान परिश्रमी कृषक संसार में अन्यत्र नहीं पाये जाते।

मंचूरियावासी सोयाबीन की तुलना कल्पवृक्ष से करते हैं। उनके इस कथन में अतिशयोक्ति नहीं है। संसार का कोई भी नाज या शाक उपयोग-सम्बन्धी प्रतिद्वन्द्विता में उसकी बराबरी नहीं कर सकता। उससे दुग्ध, दधि, घृत, तैल, खली, आटा, शाक, मांस, काफ़ी आदि सभी उपयोगी, स्वादिष्ट एवं पौष्टिक खाद्य-सामग्री बन सकती है। भारतीयों के लिए गेहूँ और चावल जैसे महत्त्व के हैं, वैसे ही सोयाबीन मंचू लोगों के लिए है। वही मंचूरिया की मुख्य सम्पत्ति है। अमीर-ग़रीब सबका प्राणाधार है। इतना ही नहीं, पूर्वी एशिया-खण्ड के जन-समूह के लिए भी वह चावल के समान प्रमुख भोजन की वस्तु है।

पाश्चात्य चिकित्सा-शास्त्रियों का मत है कि शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से केवल रोटी या चावल खाकर जीवन-निर्वाह करना हानिकर है। उसके साथ और और चीज़ें न खाने से बेरीबेरी या ऐसे ही अन्य रोग हो जाने की बहुत सम्भावना रहती है। इसका कारण यह बताया जाता है कि शरीर-पोषक सब आवश्यक तत्त्व भोजन के एक ही पदार्थ में प्राप्त नहीं हो सकते। तभी तो आयुर्वेद-शास्त्र-प्रणेताओं ने भी सदा षट्रस-युक्त भोजन करने की सलाह दी है। परन्तु इस दोष से सोयाबीन मुक्त है। उस अकेले शाक में प्रोटीन, विटामिन और फ़ैट तीनों पौष्टिक पदार्थ मौजूद हैं। अतः केवल उसी एक का निरन्तर भोजन करके मनुष्य पोषक तत्त्वों की न्यूनता के कारण होनेवाले रोगों का शिकार नहीं बन सकता।

सोयाबीन कोई नया नाम नहीं है, जैसा कि कुछ दिन पूर्व अपने मित्र से उसका नाम सुनकर मैंने समझा था। उसकी खेती मंचूरिया, चीन और कोरिया में बहुत पुराने समय से—लगभग पचास सदियों से होती आ रही है। कहते हैं कि उसके असाधारण गुणों की चर्चा पाँच हज़ार वर्ष के प्राचीन ग्रन्थों में भी विद्यमान है। जब रूसवालों की और बहुत वर्ष बाद जापानियों की लोलुप-दृष्टि लियो नदी की उर्वरा घाटी पर पड़ी, उस समय वहाँ पाँच सौ से अधिक क़िस्म के सोयाबीन उपजते थे। जापान में भी सोयाबीन की कृषि होती है और होकाइदो के ठंडे भाग से लगाकर फ़ारमोसा के उष्ण भाग तक वह उपजता भी ख़ूब है। परन्तु उतनी उपज जापान की बढ़ती हुई जन-संख्या की माँग

को पूरा नहीं कर सकती। इस हेतु जापान-सरकार नौ करोड़ रुपया का सोयाबीन मंचूरिया से और बारह करोड़ रुपये की सोयाबीन की खली मंचूरिया और चीन से प्रति-वर्ष ख़रीदती थी। जापान को बाहर से आनेवाले अन्य खाद्य-पदार्थों के लिए उतना ख़र्च नहीं करना पड़ता, जितना सोयाबीन और उसकी खली के लिए उसे मंचूरिया को देना पड़ता था। यह ख़र्च उसे बेतरह अखरने लगा। इसलिए उसने बड़े ढंग से मंचूरिया में अपने हाथ-पाँव फैलाये। वह जानता था कि जब योरपीय महासमर की चोट से आहत शक्तिशाली राष्ट्र विश्वशान्ति की लोकोत्तररागिनी अपनी विवशतावश आलाप रहे हैं, ऐसी दशा में शस्त्र-बल से मंचूरिया पर अधिकार करने में सभी उसकी ओर उँगली उठावेंगे। यद्यपि उसे उनका भय नहीं था, फिर भी उसने 'न साँप मरे न लाठी टूटे' वाली नीति को ही उपयोग में लाना श्रेयस्कर समझा। इस नीति के पालनार्थ उसने जिस राजनैतिक चाल का अनुसरण किया उसको सबने समझा और ख़ूब समझा, परन्तु उसके साथ छेड़-छाड़ करने की किसी की हिम्मत नहीं पड़ी। वह बौद्ध-धर्म के मूल-सिद्धान्त अहिंसा की रक्षा करते हुए वणिक् की हैसियत से मंचूरिया में चुपचाप प्रविष्ट हो गया। इतना ही नहीं, उसने उसे सोयाबीन के व्यवसाय का अपना मुख्य अड्डा भी बना लिया। इस समय वहाँ जापानी पूँजीपतियों के बड़े बड़े 'बीन-मिल' बहुसंख्या में खुले हुए हैं और नये नये खुलते जा रहे हैं। रेल और जहाज़ जिनसे वहाँ का सोयाबीन बाहर जाता है, जापानी लोगों के हैं। मंचूरिया में कृषि की मज़दूरी भी इतनी सस्ती है कि वहाँ की हर तरह की उपज पानी के मोल मिलती है। इन सब कारणों से जापानियों के दोनों हाथ तो घी में रहते हैं, पर मंचू बेचारों को कोरी छाँछ पाकर ही संतोष करना पड़ता है। 'थैली की चोट बनिया जाने' वाली कहावत मंचुओं पर पूर्णरूप से घट रही है। मंचूरिया से जापान को केवल सोयाबीन ही मिलता हो सो बात नहीं है। उसे आवश्यकतानुकूल लोहा और कोयला भी किफ़ायत से प्राप्त हो जाता है, जिनके लिए उसे योरल्सी की घाटियों में बहुत व्यय और परिश्रम करना पड़ता था।

सोयाबीन के भेदों की अपेक्षा उसकी उपयोगिता अधिक कौतूहलवर्द्धक और रोचक है। सोयाबीन का तेल किसी न किसी रीति से संसार भर में व्यवहृत होता है। वह रासायनिक क्रिया-द्वारा ज़ैतून या जलपाई के तेल में परिणत कर लिया जाता है और इस रूप में वह बघारने के काम में अधिकता से आता है। ग्लेसरिन, रंग, रोग़न, साबुन, छापने की स्याही, नक़ली रबर आदि उपयोगी पदार्थों के निर्माण में भी उसका विशेष उपयोग होता है। सोयाबीन की खली बहुत सस्ती बिकती है और जलाने, ढोरों को खिलाने तथा धरती की उत्पादक शक्ति को सबल करने के काम में बहुत लाई जाती है।

सोयाबीन का दूध जो लाखों जापानी, चीनी और मंचू बालकों का पोषण करता है, मसले हुए बीन में पानी मिला कर गरम करने से बनता है। वह गाय के दूध के समान शुभ्र एवं चित्ताकर्षक सुगंध से युक्त होता है। गाय के दूध में कुछ घंटों के बाद विकार उत्पन्न हो जाता है, परन्तु सोयाबीन का दूध चार-पाँच दिन तक दूषित हुए बिना मज़े में रह सकता है। बहुत दिन हुए हमने पढ़ा था कि अब दूध पीने के लिए गाय, भैंस या बकरी की सेवा करने की आवश्यकता नहीं होगी; क्योंकि एक वैज्ञानिक ने शाक से दूध बनाने की युक्ति का आविष्कार कर लिया है और उससे जो दूध बनता है वह रूप, रंग, स्वाद और गुण में गो-दुग्ध के समान होता है। जान पड़ता है कि उक्त वैज्ञानिक महोदय ने जिस शाक से दूध-दोहन की क्रिया की होगी वह निःसन्देह सोयाबीन ही होगा और जिस युक्ति से वे अपने उद्योग में सफल हुए होंगे वह पूर्ववालों की चिरपरिचित युक्ति ही होगी। सोयाबीन को जमाकर गाढ़ा किया हुआ दूध भी तैयार होता है, जो टीन के डिब्बों में भरकर सर्वत्र भेजा जाता है। सस्ता और गुणकारी होने के कारण उसकी खपत भी ख़ूब होती है।

चीन और जापान में सोयाबीन से बने हुए दही के बिना भोजन अधूरा समझा जाता है। वहाँ सोयाबीन-निर्मित दधि को सोयाबीन के तेल या घृत में पकाकर अधिक प्रकार के स्वादिष्ट भोज्य व्यंजन तैयार किये जाते हैं। सोयाबीन का आटा पूर्वी एशिया-खण्ड में विशेष रूप से व्यवहार में आता है। इसके सिवा पाश्चात्य देशों में भी मिठाई एवं रोटी बेचनेवाले उसका अधिकता से उपयोग करते हैं। कहा जाता है कि उस आटे की रोटी में गेहूँ की रोटी की अपेक्षा

अंडे और दूध की बहुत कम आवश्यकता पड़ती है। भारत-वर्ष में उस आटे का प्रकट रूप से प्रचार नहीं है, पर सुनते हैं कि आटा के व्यापारी अधिक लाभ के लोभ से गेहूँ के आटे में उसे मिला कर बेचते हैं। सोयाबीन उचित प्रमाण से भूने जाने पर रूप, रंग और गंध में काफ़ी जैसा हो जाता है और तब उससे बने हुए पेय द्रव्य को पीकर कोई इस बात की पहचान नहीं कर सकता कि वह काफ़ी के अतिरिक्त कोई ऐसी दूसरी चीज़ पी रहा है जो काफ़ी से मिलती-जुलती है। सोयाबीन की तरकारी भी अपनी विशेषता के लिए प्रसिद्ध है। उससे निरामिष भोजियों के लिए जिस प्रकार भाँति भाँति से शाक पकाये जा सकते हैं, वैसे ही आमिष प्रिय लोगों के लिए भी वह रूप, रंग और गंध के योग से विविध प्रकार के मांस में परिणत कर लिया जा सकता है। इस सम्बन्ध में एक यात्री का अनुभव जानने योग्य है।

कुछ दिन पूर्व की बात है, चीन-राज्य में पर्यटन करने-वाला एक यात्री एकान्त स्थान में स्थित किसी बौद्ध-मठ में दाख़िल हुआ। वहाँ से विदा लेने के पूर्व मठ-निवासी सन्तों को अपनी ओर से भोज देने की उसने इच्छा प्रकट की। इसे मठाधीश ने सहर्ष स्वीकार कर लिया और उसके आदेशानुसार एक बृहत् भोज की तैयारी भी करा दी। भोजन के समय यात्री क्या देखता है कि लुभानेवाले तरह तरह के शाकों की तश्तरियों के बीच में अंडे, मछली, मुर्ग़ी आदि के मांसों की तश्तरियाँ सज-धज के साथ रक्खी हुई हैं। यह देखकर यात्री के मुँह में पानी भर आया और उसने सब मेहमानों के साथ रुचि से भोजन भी किया। भोजनोपरान्त उसने मठाधीश से पूछा—"महाशय, आज के भोज ने मेरे मन में यह सन्देह उत्पन्न कर दिया है कि भोजन की सामग्रियों को सत्य समझूँ या आपके उस दिनवाले कथन को।"

मठाधीश ने उत्तर दिया—"वत्स, दोनों सत्य हैं।"

इस पर उसने व्यंग्य से कहा—"महाशय, यह आपकी बड़ी विचित्र फ़िलासफ़ी है। इधर आप फ़रमाते हैं कि इस बौद्ध-मठ में भगवान् बुद्ध के अहिंसा-धर्म का पूरा पूरा पालन किया जाता है और उधर मठ के रसोई-घर में जीवों की हत्या करके मांस पकाया जाता है। इतना ही नहीं, उस मांस को भक्षण करते हुए आप लोगों के मन में तनिक ग्लानि भी नहीं होती है।"

मठाधीश हँस पड़े और बोले—"भाई, रूप, रंग और स्वादु के फेर में पड़कर जिन तरकारियों को तुमने मांस समझा है वे वास्तव में सोयाबीन के दधि के रूपान्तर मात्र हैं। उस दधि को मछली, मुर्ग़ी आदि का आकार देकर मसाले के योग से चीन का कोई भी चतुर रसोइया रूपा-कृत मांस तैयार कर दे सकता है।"

इसके उपरान्त यात्री को उसकी भूल प्रत्यक्ष रूप से दिखाई गई। अंत में जब वह चलने के लिए उद्यत हुआ तब मठाधीश से यह कहना नहीं भूला कि हाथ से छूने, आँखों से देखने तथा जीभ से चखने से जो कुछ जान जाता है वह सर्वदा सत्य नहीं होता। इस बात की शिक्षा देने में आपके सोयाबीन के दधि ने बड़ा कमाल किया है।

जिस ढंग से हमारे यहाँ गेहूँ की खेती होती है, उसी तरह सोयाबीन की भी कृषि की जाती है। परन्तु समय समय पर वर्षा न होने से गेहूँ की फ़सल पर जैसी आपत्ति आती है, वैसी सोयाबीन की फ़सल पर नहीं आती। सोया-बीन के पौधों में प्यास सहन करने की क्षमता है। पानी बरसे अथवा न बरसे, वे अपने परिश्रमी सेवकों को मनो-वांछित फल दे ही देते हैं। सोयाबीन के पौधों की जड़ें झखरा होती हैं और पत्ते पतले होते हैं। पौधों की ऊँचाई साधारणतः तीन फ़ुट होती है। जब पौधे फूलते हैं उस समय सारा खेत सफ़ेद दिखता है और वायु मंद सुगन्ध से सुरभित हो जाती है। इस बहार के समान होते होते फूल के स्थान में हरी-हरी फलियाँ निकल आती हैं, जो पककर पीले पड़ने के उपरान्त तोड़ ली जाती हैं।

सुनते हैं कि अमरीका के संयुक्त-राज्य में सोयाबीन की खेती की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इस समय वहाँ पचास लाख एकड़ भूमि में उसकी खेती की जाती है। अमरीका के कृषक इतने से संतुष्ट नहीं हैं। वे सोया-बीन की कृषि की और भी उन्नति करना चाहते हैं, जिसमें वे योरप को भी सोयाबीन और उससे बनी चीज़ें उनकी आवश्यकतानुकूल दे सकें। यहाँ हमारे देश में भी बड़ौदा-राज्य में इसकी खेती की ओर राज्य की ओर से विशेष प्रोत्साहन दिया जा रहा है। महात्मा गांधी भी इसका परीक्षण कर रहे हैं। देखना है, इस नये धान्य के प्रचार से यहाँ के निवासियों का कितना कल्याण होता है।

दूलो ने अपने पुत्र को अपना सब कुछ सौंप दिया था, परन्तु........किसलिए ?



"निर्लज्ज को शरम भी नहीं आती: घाट के किनारे आ लगी है पर मन की लालसा नहीं गई।"

दूलो

लेखक, श्रीयुत उपेन्द्रनाथ अश्क, बी० ए०, एल-एल० बी०

(१)

आज सहसा एक प्रश्न उपस्थित हो गया है। इस समय जब मैं अपनी बैठक में बैठा अपने एक वर्ष के बच्चे को गोद में लिये हुए खेला रहा हूँ, खिड़की के बाहर जहाँ हमारी गाय खड़ी है, उससे परे एक टूटी-सी चारपाई पर बैठे हुए एक वृद्ध ने अपनी पत्नी की किसी बात के उत्तर में कपाल पर हाथ मारकर, दो बार "अच्छा, अच्छा" कहा है। मैं बच्चे को खेलाना भूल गया हूँ। बच्चा रो पड़ा है और मेरी पत्नी दूध दुहते-दुहते मेरी ओर आश्चर्य से देखने लगी है।

सन्ध्या का समय है और गरमी का मौसम। दिन भर की पिपशा से तंग आकर लोग ऊपर छतों पर जा रहे हैं। कहीं फ़र्श पर छिड़काव हो रहा है, कहीं फूलों के गमले सींचे जा रहे हैं, कहीं बिस्तर ठंडे किये जा रहे हैं। पुरुष या तो अभी तक दूकानों से आये नहीं या सैर को निकले हैं। स्त्रियां घर के काम-काज से छुट्टी पाकर खाने का सामान ऊपर ले जाने में व्यस्त हैं। नीचे भोजन का क्या आनन्द ? ऊपर छत पर खाना खायँगे, गपें हाकेंगे, और हवा चली तो ठंडे झोंकों का आनन्द भी लेंगे। कल गरमी भी खूब पड़ी थी। ईंट-पत्थर तक भुन गये थे। कदाचित् रात को ठंड हो, वायु चले, पर आशा तो नहीं है। इस गरमी में भी—इस शरीर को जला डालनेवाली गरमी में भी वह बूढ़ा और उसकी स्त्री नीचे मोहल्ले में—जहाँ दिन भर धूप का राज्य रहा है, जहाँ इर्द-गिर्द गाय-भैंसें बँधी रहती हैं, जहाँ नालियों से बदबू आती रहती है और जहाँ कूड़ा-करकट के मारे बैठना मुहाल है—दो चारपाइयाँ डाले पड़े हैं। बूढ़े की चारपाई पर इस गरमी की ऋतु में भी लिहाफ़ बिछा हुआ है—मैला-कुचैला और सड़ा गला। कदाचित् उसे साफ़ चादर नहीं मिली अथवा इस मैले और बदबूदार लिहाफ़ के रखने के लिए घर में कोई जगह नहीं। उसकी पीठ कुबड़ी है, कंधों की हड्डियाँ ऊपर को उठी हुई हैं, छाती अन्दर को धँस गई है, आँखों पर एक बड़ी पुरानी और फ्रेम टूट जाने के कारण धागों से बँधी हुई ऐनक है, चेहरे पर दाढ़ी बढ़ आई है, सिर पर मलमल की मैली-सी गोल टोपी है, शरीर नंगा और कमर में मोटे खद्दर का डेढ़ गज़ का अँगोछा है।

उसकी बुढ़िया पत्नी बड़बड़ाती हुई अपनी चारपाई पर जाकर बैठ गई है और धीमे स्वर में बूढ़े को कोसने लगी है। उसकी चारपाई पर केवल एक फटी-सी दरी और मैली-सी चादर है।

दोनों में किस बात पर झगड़ा हुआ, मुझे ज्ञात नहीं। पर कोई ऐसी ही बात हुई होगी। बूढ़े को प्यास लगी होगी। वह बीमार है, बहुत चल फिर नहीं सकता। उसने पत्नी से पानी लाने को कहा होगा और बुढ़िया ने उत्तर दिया होगा—"तुम्हें सारा दिन 'ध्याकड़ा' (प्यास) ही लगा रहता है, मुझे दिखाई कम देता है। कैसे ला दूँ ? तुम स्वयं क्यों नहीं हिम्मत करते ?" इस पर कदाचित् 'अच्छा' 'अच्छा' कह कर बूढ़े ने सिर पीट लिया है। शायद मेरा अनुमान ठीक है, क्योंकि कुएँ पर पानी भरनेवाले को पुकारकर उसने पानी माँगा है और गट-गट दो गिलास पीकर लेट गया है। कदाचित् उसने एक निश्वास भी छोड़ा है।

आज-कल जब गरमी में बर्फ़ के बिना एक घूँट तक हलक़ के नीचे नहीं उतारा जाता, जब दिन-रात लस्सी और शर्बत का शोर मचा रहता है, जब कुछ घरों में बादामों की शरदाइयाँ भी होती हैं, जब गरमी के मारे गला सूखा जाता है, वह बेचारा प्यास का नाम भी नहीं ले सकता और पत्नी के पानी न देने पर बर्फ़ का नहीं, सुराही अथवा घड़े का नहीं, केवल कुएँ का ताज़ा पानी पीकर चुपचाप लेट गया है।

और वह बुढ़िया—वह उसकी पत्नी, वह क्या सुखी है ? आँखों से प्रायः अन्धी, लाठिया के सहारे चलनेवाली, पतली दुबली-सी, बलवहरी के कारण आधे श्वेत और आधे काले सुखवाली अपनी खाट पर दुखिया बनी बैठी है। एक साक्षात् दुख है तो दूसरी साक्षात् निराशा।

क्या इनका संसार में कोई नहीं ? क्या यह पति-पत्नी जगत् में सर्वथा एकाकी हैं ? नहीं। इनका एक लड़का है—एक इकलौता लड़का। अभी अभी वह इनकी खाटों के पास से होकर अपने तिमंज़िले मकान की छत पर जा लेटा है। उसकी लड़की उसे पंखा कर रही है और उसकी पत्नी उसके पाँव दबाने लगी है।

"प्यास लगी है।" यह सुनते ही दोनों मा-बेटी भाग खड़ी हुई हैं, छोटा लड़का बर्फ़ लेने दौड़ा है।

"शर्बत लाऊँ या शरदाई।" पत्नी ने दूसरी मंज़िल से पूछा है।

"चाहे जो लाओ, पर करो जल्दी।"

शरदाई रगड़ी जाने लगी है। बूढ़े को कदाचित् फिर प्यास लग आई है, उसने जिह्वा को होंटों पर फेरा है और एक ठंडी साँस खींचकर करवट ली है।

(२)

मुझे पहले-पहल दूलो का परिचय एक नाच की महफ़िल में हुआ। मैं उस समय न जाने किस श्रेणी में पढ़ता था। कदाचित् किसी श्रेणी में भी नहीं। शायद पढ़ने के निमित्त पाठशाला जाने के लिए मुझे कुछ महीने प्रतीक्षा करनी थी। रात्रि का समय था। गैस के उज्ज्वल प्रकाश में मोहल्ले का कोना कोना चमक रहा था। मध्य में एक दरी बिछी हुई थी और उस पर एक सुन्दर जाज़िम। मोहल्ले में कोई बिरला ही ऐसा व्यक्ति होगा जो मुजरा देखने न आया हो। दो नाज़ुक-सी नर्तकियाँ मज़े ने बैठी

पान चबा रही थीं। सुन्दर, सुषमा से बनी हुई, बात-बात पर वायु की नाईं बल खा जानेवाली, मदभरी बातों से मोह लेनेवाली। उनके पीछे बैठे थे सारंगी थामे हुए उस्ताद जी, और तबलची और हारमोनियम मास्टर, बात-बात पर जी-हुज़ूर कहनेवाले, बात-बात पर व्यङ्ग्य के तीर छोड़नेवाले, बात-बात पर क़हक़हे लगानेवाले। सभासद् मानो मंत्रमुग्ध बैठे इन परियों जैसी नाचनेवालियों के जिनकी लज्जा कृत्रिम थी, जिनकी मुसकराहट बेबाक़ थी और जिनकी आँखें बिजली की भाँति अस्थिर थीं, देखने में व्यस्त थे।

गैस के चारों ओर बहुत-से पतिंगे घूम रहे थे। मैं अपने पुराने मकान की मुँडेर पर बैठा उन्हें देखने में मग्न था। मुझे स्मरण है कि मैंने कई बार प्रयास भी किया था कि वह सुन्दर-सी युवती मेरी ओर भी देखे, पर मेरी चेष्टायें निष्फल ही रहीं, और इसी लिए मुझे उसके प्रति उपेक्षा-सी हो गई। मैं उधर से ध्यान हटाकर उन पतिंगों को देखने लगा था। मुझे याद है, उस समय भी मेरे मन में यह प्रश्न उत्पन्न हुआ था कि इन पतिंगों और इन मनुष्यों में अन्तर ही क्या है— दोनों निसार हो जाते हैं उन पर जिन्हें उनके बलिदान की कुछ परवा नहीं।

छन छन छनन छन !

एक विशेष प्रकार की नूपुर-ध्वनि ने मुझे अपनी ओर आकर्षित कर लिया। वह नर्तकी पुतली की भाँति दरी पर थिरक रही थी—पुतली-सी, कनक-कामिनी-सी, सुन्दर-सी। आज भी जब इस घटना को वर्षों बीत गये हैं, मेरे सामने वह उसी प्रकार थिरक रही है, उसी प्रकार नाच रही है, उसी प्रकार कटाक्ष के तीरों से दर्शकों के दिलों को घायल कर रही है।

यह बहुत देर तक होता रहा, उसका रसीला स्वर भी कई बार आकाश में गूँजा। उसने गाया भी। स्मरण नहीं, क्या गाया। आज-कल मुजरा होता तो "या इलाही मिट न जाये दर्दे दिल" या "बालम आये बसो मोरे मन में" की क़िस्म का कोई राग गाया जाता। तब ज्ञात नहीं, कौन-सा राग प्रचलित था और कौन-सा गाया गया था। पर इतना याद है कि उसका स्वर अत्यन्त आकर्षक था—मीठा-सा, मद-भरा, नींद सी ला देनेवाला। मैं कई बार ऊँघा, परन्तु जब आँख खुली, उसे गाते, नाचते, मुसकराते और अपने दीवानों से रुपये लेकर सारंगी के छेद में डालते देखा। फिर न जाने मुझे कब नींद आ गई और जब उठा तब अपने बिस्तर पर लेटा हुआ था। सिर कुछ दर्द कर रहा था, पर इसकी कुछ परवा न करके मैं भाग कर मुँडेर पर गया। न वह प्रकाश था, न वह महफ़िल। शामियाना अवश्य था, पर कदाचित् रात के सुख-स्वप्न की स्मृति में आँखें बन्द किये पड़ा था। नाचनेवालियाँ जा चुकी थीं और साज़िन्दे भी जाने की तैयारी में व्यस्त थे। मेरी आँखों के सामने रात का दृश्य घूमने लगा, और बार-बार उस नर्तकी की सूरत आँखों के सम्मुख आई, परन्तु इसके साथ ही एक और भी सूरत थी—एक अधेड़ आयु के व्यक्ति की सूरत, जिसके गले में नफ़ीस मलमल का कुर्ता था, कमर में सुन्दर धोती थी, कुर्ते पर बहुमूल्य जाकेट और सिर पर गोल लखनवी तर्ज़ की टोपी और जो नाचनेवाली की एक एक अदा पर रुपये लुटा रहा था।

वह दूलो था और वह समारोह उसने अपने पोते के शुभ जन्म दिन पर किया था।

हाँ, वही दूलो था। जाति का सुनार था, रुपये-पैसे की कमी न थी, पोते के जन्म दिन पर जो ख़ुशी उसने मनाई थी उसकी चर्चा आज भी घर-घर है। उसने नाच-रङ्ग पर व्यय चाहे अधिक न किया हो। नायिकायें उसकी आसामियाँ होने के कारण, उससे रुपये उधार लेने के कारण, उसे इस शुभ दिन पर बधाई देने देने ही आ गई हों, पर वे ले इतना गई थीं कि सौदा करने पर भी न पातीं।

सुनते हैं उसमें ऐब भी थे। वह खाने-पीनेवाला आदमी था। 'खाने-पीनेवाला'—यह शब्द कर्कश-सा प्रतीत होता है। पर मेरे विचार में खाने-पीनेवाला मनुष्य बिना खाये-पिये जीवन बिता देनेवाले से कहीं अधिक अच्छा है। परन्तु खाने-पीनेवाले आदमी के लिए बुढ़ापा कदाचित् दूसरे की अपेक्षा अधिक दुखदाई होता है। शुष्क और नीरस प्रकृति के आदमी को किसी प्रकार की चाट नहीं होती, उसे कोई ऐब नहीं होता और वह किसी प्रकार रो-पीटकर जीवन के दिन बिता देता है, लेकिन विलासी मनुष्य—उसकी हसरतों की कथा दूसरी ही है।

परसों की बात है। सुबह नौ बजे होंगे। मैं स्नान आदि से निवृत्त होकर एक किताब लेकर पढ़ने को बैठा ही था कि मेरे कानों में हलकी-सी, उखड़ी-उखड़ी-सी आवाज़ सुनाई दी, "बाबू," "बाबू"।

मैंने दृष्टि उठाई। सामने एक हाथ में बर्तन और दूसरे में लाठी का सहारा लिये हुए दूलो खड़ा था।

"क्या बात है बाबा जी" ? मैंने तनिक उठकर पूछा।

"ज़रा लोटा भर लस्सी तो ला दो, बाबू।"

आवाज़ में दीनता थी और विवशता। मैं दौड़कर ऊपर गया और लस्सी का लोटा भर कर उसके घर दे आया। सारा दिन मैं काम न कर सका। उसके लड़के की निठुरता पर मेरा हृदय आठ-आठ आँसू रोता रहा। हाय! उससे अपने माता-पिता के लिए इतना भी नहीं होता, जिन्होंने उसके लिए दुनिया भर के दुख झेले थे, दुनिया भर की मुसीबतें मोल ली थीं। अपने उन्हीं माँ-बाप के लिए उसके ख़ज़ाने में एक घूँट पानी भी नहीं।

सामने चारपाई पर बुढ़िया लच्छमी बैठी थी। हाय! इस पुत्र को पाने के लिए उसने क्या क्या न किया, कौन-सा जादू न जगाया, कौन-सा मन्त्र न फूँका। मुझे अच्छी तरह स्मरण है, मेरी परदादी उसे अपने घर न आने देती थी। बच्चेवाली स्त्रियाँ उसकी छाया तक से दूर भागती थीं। उसने कुएँ सुखा दिये थे, वृक्षों को ठूँठ कर दिया था। हमारे पुराने मकान के साथ एक लसोड़े का वृक्ष था, जिसके कारण हमारी परदादी "लसोड़ेवाली" कहलाती थीं। किसी टोने-टोटकेवाले के कहने पर इसने उस वृक्ष के नीचे स्नान किया, वह वृक्ष सूख गया। उसी दिन हमारी परदादी ने मुहल्ले भर को इसके भयानक प्रभाव से ख़बरदार कर दिया। वह कहती, इसकी बात मत पूछो, इसने 'पंजपीर के कुएँ' में उतर कर स्नान किया था, वह कुआँ सूख गया, 'लेलाँवाले' की बावड़ी इस कलमुँही की भेंट चढ़ गई, अब उसमें नाम को भी पानी नहीं, इस पापिन ने मेरा हरा-भरा लसोड़े का वृक्ष सुखा दिया। यह जिस घर जायगी आग लगायेगी।

मोहल्ले की स्त्रियाँ एक बड़ी बूढ़ी के मुख से ऐसी बातें सुनकर अपने बच्चों को गोदी में लेकर घरों को भाग जातीं। कहीं लच्छमी की कुदृष्टि उन पर न पड़ जाय। लच्छमी के बच्चे न होते हों, यह बात न थी। होते थे, पर मर जाते थे, बचता कोई न था। कौन-सी ऐसी जगह है, जहाँ किसी ने बताया हो और यह न गई हो। 'इच्छा-कुण्ड' यह गई, 'सकेसर' की यात्रा इसने की, गंगा, जमुना, कृष्णा, कावेरी सब नदियों में इसने डुबकियाँ लगाईं। सब तीर्थ देख डाले तब जाकर कहीं यह लड़का बचा। गुरु अर्जुनदेव के गुरुद्वार की परिक्रमा के बाद पैदा हुआ था, गुरुदित्ता नाम रख दिया गया। एक गूजरी घर में रक्खी गई। डर के मारे कोई ख़ुशी न की गई। कहीं मौत को यह प्रसन्नता बुरी न लगे। जब दूलो अपने पोते के जन्म दिन पर ख़ुशी मना रहा था तब कौन जानता है कि वह अपने पुत्र के जन्म दिन का चाव नहीं निकाल रहा था।

वही दूलो और वही लच्छमी आज इसी लड़के के हाथों जीते-जी मौत के मुँह में धकेले जा रहे थे।

(३)

दूलो का दोष ही क्या था? यही न कि उसने अपने जिगर के टुकड़े को अपने जीते-जी घर में सर्वे-सर्वा बना दिया था। उसे निश्चय था कि उसका बेटा जिसे उसने सब कुछ सौंप दिया था, उसकी वृद्धावस्था में जब जीवन-संग्राम से थका हुआ उसका शरीर विश्राम का आसरा ढूँढ़ता होगा— उसे सुख देगा। उसका यह विचार कितना निर्मूल था, उसकी यह आशा कितनी भ्रममूलक!

अमरकौर दूलो की पुत्रवधू का नाम था। गुरुदित्ता की पहली पत्नी बहुत पहले मर चुकी थी। बेचारी अच्छी थी, सुशिक्षित थी, सुन्दर थी और सलीक़ेवाली थी। परन्तु सुनते हैं, परमात्मा को भी अच्छे स्त्री-पुरुषों की अधिक आवश्यकता रहती है। अच्छे लोग ही पहले मरते हैं। दूसरा विवाह हुआ, श्रीमती अमरकौर तशरीफ़ लाईं—चेहरा सुन्दर, हृदय स्याह, मुँह की मीठी, मन की कड़वी, बग़ल में छुरी, जिह्वा पर राम-राम—ऐसी बनी कि सास-श्वशुर के मन मोह लिये। मीठी मीठी बातें करके सब कुछ पति के नाम करवा लिया। बस, फिर क्या था! वास्तविक रूप प्रकट होने लगा। सास-बहू में झगड़ा रहने लगा। शनैः शनैः लच्छमी के हाथ से सब कुछ छिन गया। जो स्वामी था वह भिखारी से भी गया गुज़रा हो गया। दूलो अब बीमार रहने लगा था। दूकान करने की हिम्मत नहीं थी। घर में बैठा रहता था और अपने निरादर पर दिल ही दिल जला करता था। कभी कभी जब दुःख असह्य हो जाता तब दिल की जलन

आँखों के रास्ते निकल जाती—इससे अधिक एक निर्बल निस्सहाय बूढ़ा कर ही क्या सकता है ?

एक दिन सास-बहू में फिर झगड़ा हो गया। घर में खीर बनी थी, पर उनके लिए न आई। बूढ़ों का स्वभाव बच्चों का-सा हो जाता है, उनकी लालसायें भी बच्चों ऐसी हो जाती हैं। लच्छमी के मुँह से निकल गया, "तुम खाना क्या देती हो, बेगार टालती हो।" बस इस पर श्रीमती अमरकौर ने तूफ़ान सिर पर उठा लिया—"मुझसे रोज़ रोज़ इनके लिए खीर और हलुवा नहीं बनाया जाता: नीयत तो देखो, कितनी ओछी हो गई है। बच्चों की तरह मचले पड़ते हैं। गोकल रोता था, ज़रा खीर बना दी। मुझे न ज्ञात था कि ये सत्तर वर्ष के बच्चे भी मचल पड़ेंगे।"

गुराँदित्ता पत्नी के इशारों पर नाचते थे। उस दिन से मा-बाप के लिए पन्द्रह रुपया मासिक लगा दिया। बुढ़िया लच्छमी अपने काँपते हाथों और प्रायः अन्धी आँखों से चूल्हा झोंकती और जली-सड़ी रोटियाँ पकाती, दूलो उन्हीं को खाता और ईश्वर को धन्यवाद देता।

शनैः-शनैः यह रक़म भी घटकर दस पर आ गई, दस से आठ पर। परन्तु अमरकौर को तो ये आठ भी अखरते थे। एक दिन बहाना बनाया गया—"लोग फटकारें देते हैं, कहते हैं, इससे बूढ़े सास-श्वशुर को भी रोटी नहीं दी जाती। मैं अब इन्हें अपने हाथ से रोटी खिलाऊँगी।" उस दिन से रुपये बन्द कर दिये गये। अमरकौर स्वयं खाना बनाने लगी। घर में क्या बना है, क्या नहीं, इस बात का उन्हें पता न लग जाय, इस विचार से उनका स्थान भी तीसरी मंज़िल के बदले बीच की मंज़िल में कर दिया गया। रसोई ऊपरी मंज़िल में थी। वहाँ से गिने हुए फुलके और तुली हुई सब्ज़ी आने लगी। जिस दिन सब्ज़ी तनिक सुस्वादु होती उस दिन फिर घर में झगड़ा हो जाता। वे प्रायः रोटी और माँगते और अमरकौर कहती—"मुझसे अब बार बार चूल्हा नहीं जलाया जाता। ये तो चाहते हैं कि सारा सारा दिन गर्मी में चूल्हे के पास बैठी रहूँ, बीमार हो जाऊँ और मर जाऊँ। मुझसे यह न होगा। इनका पेट है या कुआँ। दस दस रोटियाँ खा जाते हैं फिर भी भरने में नहीं आता।" इस रोज़ रोज़ की दाँताकिटकिट से तंग आकर गुराँदित्ता ने फिर रुपये कर दिये। अब उनकी संख्या घट कर तीन हो गई थी और उनके रहने का स्थान भी निचली मंज़िल की दो अँधेरी कोठरियाँ। दूलो ने यह फ़ैसला सुना तब उसके सीने को चीर कर एक दीर्घ निश्वास निकल गया "तीन रुपये मासिक"! गुराँदित्ता ने कह दिया, मेरा कारोबार घट गया है, मैं इससे अधिक दे ही नहीं सकता। दूलो ने लम्बी साँस ली और चुप हो रहा। उसी दिन से दोनों पति-पत्नी बाहर मोहल्ले में सोने लगे।

(४)

मैं अपने भाई के लिए ओषधि लाने हकीम की दूकान पर जा रहा था कि मोहल्ले में कुछ शोर सुनाई दिया। मेरा रास्ता उधर से ही होकर जाता था। देखा बूढ़ी बीमार लच्छमी मध्य में खड़ी है और कुछ स्त्रियाँ उसे घेरे हुए हैं। धरती पर एक कपड़ा बिछा है, जिस पर कुछ आटा पड़ा है। मुझे समझते देर न लगी। कदाचित् अन्तिम झगड़े ने उन्हें सर्वथा असहाय बना दिया था। कल फिर झगड़ा हुआ था। वे तीन दिन से भूखे थे, खाने को मुट्ठी भर आटा भी न था। अमरकौर ने कुछ देने से इनकार कर दिया। लज्जा पाँव की ज़ंजीर बनी हुई थी, पर भूख बेचैन किये देती थी। पेट की आग ने लज्जा की ज़ंजीरों को पिघला दिया। लच्छमी लाठी टेकते टेकते पास के मोहल्ले में अपने बिरादरीवालों के यहाँ गई। पर बिरादरी हो अथवा रिश्तेदारी, घर से ठुकराये जानेवाले की कोई सहायता नहीं करता। उन्होंने इसका उपहास किया, मध्य में एक कपड़ा बिछा दिया और एक लज्जावान् की लज्जा का परदा उठाया जाने लगा। स्वार्थी दुनिया—किसी की पत उतर जाये इसे उसमें भी आनन्द मिलता है। एक मकान की दीवार के साथ लगी लच्छमी खड़ी थी—वही जिसके पाँवों में कभी लक्ष्मी खेला करती थी। आज वो अपनी ही बिरादरी के हाथों अपमानित हो रही थी। व्यङ्ग्य के बाणों से उसका कलेजा छिद गया था, उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा रहा था, उसे स्वप्न में भी इस कौतुक के देखने की आशा न थी। वह चुप खड़ी अपनी दुर्दशा देख रही थी—देख कहाँ रही थी, उसकी आँखें तो बन्द थीं, केवल दो बड़े बड़े आँसू उसके पिचके हुये गालों पर ढुलक

आये थे। वही दुनिया की इस निर्ममता को आर्द्र नयनों से देख रहे थे।

एक स्त्री ने जो नाते में लच्छमी की कुछ लगती भी थी, काल की समाधि पर लात मारते हुए एक छोटी-सी कटोरी में आटा लाकर बिछे हुए कपड़े पर डाल दिया और नाक-भौं सिकोड़ कर बोली—"निर्लज्ज को शरम भी नहीं आती। घाट किनारे आ लगी है पर मन की लालसा नहीं गई। यों अपनी और अपने बेटे की मिट्टी पलीद कराने से तो कहीं अच्छा था कि कुछ खाकर सो रहती।"

लच्छमी से और न सहा गया। तीन दिन का उपवास, बूढ़ा निर्बल शरीर, एक बार काँपी और धड़ाम से धरती पर आ रही। मैं दौड़ कर गया, उसे उठाया, कपड़े से हवा की। सौभाग्यवश लाला निहालचन्द भी इधर से जा रहे थे। वे इसी मोहल्ले में रहते हैं, पर उनकी उदारता की धाक नगर भर में है। उन्हें सब कुछ समझते देर न लगी। अपनी सम्पन्नता का तनिक भी विचार न कर वे मेरे पास आ बैठे। लच्छमी को होश आ गया तब वे उसकी लाठी पकड़कर उसके घर छोड़ आये और मुझे उन्होंने एक आटे की बोरी और दाल उसके घर पहुँचा देने का आदेश दिया।

चित्रपट के चित्रों की भाँति ये सारे चित्र मेरी आँखों के सामने फिर गये। मेरी पत्नी ने मेरे कन्धे को छुआ। वह गाय दुहकर ऊपर जाने को तैयार थी। बच्चा रो रहा था, बेहाल हो रहा था। उसने दूध के बर्तन को फ़र्श पर रखकर बच्चे को मेरे हाथों से छीन लिया। "नाज तुम्हें कोई किसी काम को कहे"। उसने रोष से कहा। वह बच्चे को छाती से लगा रही थी। चूम रही थी। और मैं सोचता था, यह प्रेम, यह प्यार किसलिए ?

गीत

लेखक, श्रीयुत गंगाप्रसाद पाण्डेय

प्रिय प्रकृति मधुरिमा का यह क्षण।

कलरव से कूजित वन-उपवन,
बहता मादक मधुमास पवन,
उर-उर में भर-भर मृदु कम्पन;
प्रिय प्रकृति मधुरिमा का यह क्षण।

मुकुलित कलिकाओं का नव-दल,
करता वितरण सौरभ पल-पल,
जड़ में भी भर देता जीवन;
प्रिय प्रकृति मधुरिमा का यह क्षण।

मंजरित आम्र की डाली पर,
जग-आँगन सुख स्वर से भरकर,
गाती कोकिल करती नर्तन;
प्रिय प्रकृति मधुरिमा का यह क्षण।

अम्बर में श्यामल घन सुन्दर,
स्वर्गिक सुख फैला है भू पर,
स्मित, पुलकित, जगती का कण कण;
प्रिय प्रकृति मधुरिमा का यह क्षण।

मुंशी प्रेमचन्द

लेखक, श्रीनाथसिंह



[स्वर्गीय मुंशी प्रेमचन्द]

मुंशी प्रेमचन्द की तीव्र आलोचना करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त है। आज जब वे नहीं हैं तब मैं सोचता हूँ कि कोप के उन कटु और पैने शब्दों का प्रयोग क्या आगे भी कभी सम्भव हो सकता है? कदाचित् ही कोई साहित्यिक हो, जो कटु आलोचना से तिलमिला न उठे। प्रेमचन्द जी हिन्दी में ऐसे साहित्यकारों के अपवाद थे। साहित्य की आलोचना विचार-सागर का मंथन ही है। इस मंथन से अमृत और विष दोनों निकलते हैं। अमृत-पान में तो सभी हिस्सा बँटा सकते हैं, पर विष-पान के लिए शङ्कर का कण्ठ और धैर्य चाहिए। प्रेमचन्द जी हिन्दी के ऐसे ही स्वयम्भू साहित्यकार थे।

चन्द्रकान्ता के बाद हिन्दी का दूसरा मौलिक उपन्यास सेवासदन था जिसे मैंने अपने बचपन में पढ़ा था। उस उपन्यास के लेखक प्रेमचन्द जी का दर्शन करने की मेरी बचपन से ही बड़ी इच्छा थी, पर इसका अवसर सन् १९२८ में उस समय आया जब वे स्थानीय साहित्य-गोष्ठी की ओर से संयोजित गल्प-सम्मेलन का सभानेतृत्व करने के लिए प्रयाग पधारे। वे घुटनों तक लम्बी शेरवानी में लिपटे हुए थे। सिर पर बाक़ायदे कटे-छँटे लगभग चार अंगुल लम्बे केश थे। पर जान पड़ता था, मानो नाई की कैंची और कंघी के बाद फिर किसी मनुष्य का हाथ उन बालों पर नहीं फिरा था। चेहरे पर दोनों ओर से आधी दूर तक कटी लम्बी मूँछें थीं और वे बात बात में इतना अधिक और इतने ज़ोर से हँसते थे कि हँसी से सारा चेहरा ढँक-सा जाता था। उस समय केवल वे लम्बी मूँछें ही यह पता दे सकती थीं कि मुँह कहाँ है?

यों तो उसके बाद कई एक गल्प-सम्मेलन हुए हैं, पर वह कदाचित् प्रथम और अन्तिम गल्प-सम्मेलन था, जिसमें प्रेमचन्द जी उपस्थित थे और जिसमें उन्होंने स्वरचित एक कहानी सुनाई थी। वह कहानी आज भी मेरे स्मृति-पट पर अङ्कित है—"एक ग़रीब देहाती एक डाक्टर के बँगले पर उपस्थित होता है। कहता है—हुज़ूर, मेरा लड़का सख़्त बीमार है, आजकल का मेहमान है, चलकर देख लीजिए। पर उसके हज़ार अनुनय-विनय करने पर भी डाक्टर टस से मस नहीं होता और उसे बँगले से बाहर निकलवा देता है। बेचारा देहाती घर लौट आता है और उसका लड़का मर जाता है। कुछ दिनों के बाद उन्हीं डाक्टर साहब के पुत्र को साँप काट लेता है। सब प्रयत्न विफल होते हैं। पर वह देहाती साँप का मन्त्र जाननेवाला निकलता है। बिना बुलाये पूर्व-तिरस्कार को भूल कर वह डाक्टर साहब के बँगले पर उपस्थित होता है

और मन्त्रोपचार से उनके लड़के को अच्छा कर देता है। फिर वह धन्यवाद लेने के लिए भी नहीं ठहरता। अपनी साँप काटे को अच्छा करने की इच्छा और धुन को शान्त कर तुरन्त वहाँ से कूच कर देता है और अदृश्य हो जाता है।"

यहाँ ख़ास तौर से इस कहानी का ज़िक्र मैंने इसलिए किया है कि प्रेमचन्द जी की साहित्य-सेवा बहुत कुछ उसी देहाती की भाँति अपुरस्कृत रही है। सरकारी नौकरी का परित्याग कर, सुख से चलती हुई गृहस्थी को अर्थाभाव के कारण संकटापन्न बनाकर और धन-सम्पन्न होकर सुखी होने के अवसरों को गँवाकर उन्होंने उसी इच्छा-स्वरूप देहाती की भाँति मान-अपमान का कभी कोई विचार न करके हिन्दी को बार बार नवजीवन देने का प्रयत्न किया है। इस प्रयत्न में उन्होंने अपने आपको मिटा दिया, पर आज उन्हीं की बदौलत हमारा कथा-साहित्य दृढ़ नींवों पर विकसित हो रहा है।



[मृत्यु से कुछ ही दिन पूर्व का चित्र। पीछे उनकी धर्मपत्नी श्रीमती शिवरानी देवी बैठी हैं।]

साहित्य-गोष्ठी का गल्प-सम्मेलन समाप्त न हुआ था कि प्रेमचन्द जी को कार्यवश वहाँ से चला जाना पड़ा। सम्मेलन के कार्य-संचालन का भार श्री सुदर्शन जी को और अपनी ज़ोरदार हँसी उपस्थित लोगों के अधरों को देकर और नगर-निवासियों के हृदयों में एक असभ्य और जर्जरित देहाती के लिए दर्द पैदा कर वे जब वहाँ से उठे तब इन पंक्तियों का लेखक भी कुछ दूर तक उनके साथ गया। विदा होते समय उन्होंने कहा—मेरी एक बात मानोगे?

मैंने कहा— कहिए।

वे ज़ोर से हँसे और बोले—गल्प शब्द से मुझे चिढ़ है। कोई मुझे गल्पलेखक कहता है तो जान पड़ता है, मानो वह मुझे गाली दे रहा है। बँगला में गल्प शब्द का चाहे जो अर्थ हो, पर हिन्दी में यह गप्प (मिथ्याकथन) का पर्यायवाची हो रहा है। इसकी जगह सीधा-सादा शब्द कहानी का प्रयोग आप लोग क्यों नहीं करते? गल्प अस[त्य] है, कहानी सत्य। गल्प विजातीय है, कहानी बचपन से हमारे रोम रोम में भिदा है।

हमारे एक मित्र ने कहा—पर गल्प साहित्यिक औ[र] सरस शब्द है।

प्रेमचन्द जी ने अट्टहास किया और कहा—जान पड़[ता] है, आपको अपनी नानी की याद नहीं है, नहीं तो कहा[नी] शब्द की आप इतनी उपेक्षा न करते। यह कह[ने] के बाद वे और भी ज़ोर से हँसे और ऐसे भागे मा[नो] उसी हँसी में उड़ गये हों।

उसके बाद प्रेमचन्द जी से बराबर मेरा मिलना-जुल[ना] होता रहा और ऐसे भी प्रसंग आये जो अत्यन्त अप्रि[य] कहे जा सकते हैं। पर ऐसे प्रसंगों का जीवन सदैव क्षणि[क] रहा। प्रेमचन्द जी को मैंने विवाद में उत्तेजित होते हु[ए] भी देखा है, पर उनकी हँसी का हथौड़ा उनके मुख-[...]

र बराबर चलता रहा और मेरा उनका व्यक्तिगत सम्बन्ध सदैव वैसा ही प्रेममय और सुन्दर बना रहा जैसा कि आरम्भ हुआ था।

बनारस के कुछ साहित्यिक मित्रों ने 'जागरण' नाम का एक सुन्दर साहित्यिक पत्र निकाला था। पर वे उसे चला न सके और उन्हें उसके बन्द करने की घोषणा करनी पड़ी। प्रेमचन्दजी को यह नाम और पत्र पसन्द था। उन्होंने उसको कुछ दिन और जीवित रखने की चेष्टा की और उसे अपनाना चाहा। उन्हीं दिनों बनारस जाने पर मैं प्रेमचन्द जी के घर पर हाज़िर हुआ। वे अपने लिखने के कमरे में फ़र्श पर दरी के ऊपर बिछी एक सफ़ेद चद्दर पर पेट के बल लेटे हुए थे और अपनी धर्मपत्नी श्रीमती शिवरानी देवी की एक कहानी दुरुस्त करने में तल्लीन थे। मैंने टते ही कहा—इस प्रकार लिखना-पढ़ना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। बेहतर हो कि आप मेज़ के सहारे कुर्सी पर बैठकर लिखा करें।"

प्रेमचन्द जी ने कहानी को एक ओर और पेंसिल को सरी ओर रखते हुए कहा—थोड़ा बहुत लिखना हो तो कुर्सी मेज़ का सहारा भी लिया जा सकता है। जिसे रात दिन लिखना, लिखना और लिखना ही पड़े वह क्या करे? हिन्दी में भी शार्ट हैंड और टाइप करनेवाले मिल सकते हैं। और हम लोग दिन भर में जो लिखते हैं वह मज़े में एक-एक घंटे में लिखा सकते हैं। पर उन बेचारों को तनख़्वाह कौन दे? यहाँ तो इतना लिखकर अपना पेट भी भरना सम्भव नहीं है। हिन्दी में वह युग आयेगा जब लेखक इस प्रकार का जीवन व्यतीत कर सकेंगे, पर तब हम लोग न रहेंगे। उन्होंने एक दीर्घ निःश्वास ली। उनके ऊपर 'हंस' के सम्पादन का भार तो था ही, उन्हें अपने निजी प्रकाशन और प्रेस की देख-रेख भी करनी पड़ती थी। वे काम के पहाड़ के नीचे दबे हुए थे और थकान के चिह्न उनके चेहरे पर स्पष्ट थे। इस पर भी वे एक साप्ताहिक का नया भार उठाने जा रहे थे। साहित्य-सेवा को वे छोड़ नहीं सकते थे और उसमें समय लगाने के बाद जीवित रहने के लिए यह अधिक परिश्रम आवश्यक था। इसी अधिक परिश्रम के कारण उनका स्वास्थ्य गिरता गया और हिन्दी के अनेक मौलिक उपन्यास जो उनके नवीन अनुभवों और तर्कों से युक्त होकर संसार में हिन्दी का मस्तक ऊँचा करते, हमारे सामने आने से रह गये।

लखनऊ-कांग्रेस के बाद मेरी उनकी भेंट नागपुर-सम्मेलन में हुई। जहाँ हम लोग ठहरे थे, वहाँ से थोड़ी ही दूर पर एक बाग़ में हरी घास के फ़र्श पर मुंशी प्रेमचन्द जी कई मित्रों के साथ बैठे हुए थे। उनसे मुझे एक खास विषय पर कुछ बातें करनी थीं जिसका यहाँ ज़िक्र न करना ही अच्छा होगा। वे कुछ उदास और थके हुए से थे। मैंने कहा—प्रेमचन्द जी, सम्मेलन का समय हो रहा है। चलिए न। रास्ते में कुछ बातें होती चलेंगी।

प्रेमचन्द जी ने कहा—सम्मेलनों से मेरा मन भर गया है। मेरा ख़याल है, जिसे कुछ साहित्यिक साधना करनी हो वह अपने आपको सब प्रकार की सभाओं से जितना ही दूर रक्खे उतना ही अच्छा। साहित्य-परिषद् से मुझे ज़रूर दिलचस्पी थी और सच पूछो तो उसी के लिए मैं यहाँ आया था, पर उससे भी मेरा मन खट्टा हो गया है।

इस सम्बन्ध में मैंने और भी बहुत कुछ प्रश्न किये, पर उन्होंने विशेष बतलाने से इनकार कर दिया। आज जब देखता हूँ कि साहित्य-परिषद्वाले दिल्ली से अपना पृथक् पत्र निकालने जा रहे हैं और प्रेमचन्द जी मरण-शय्या से उसके बन्धन से मुक्त होकर 'हंस' निकालने की घोषणा करते हैं तब प्रेमचन्द जी की उस समय की मनोव्यथा का अर्थ समझ में आ जाता है। उन्होंने अनुभव किया था कि साहित्य-परिषद् हिन्दी का समुचित आदर नहीं करती। कदाचित् इससे उनके दिल को चोट भी पहुँची थी और इसी लिए हंस के पुनःप्रकाशन के सम्बन्ध में उसके व्यवस्थापक की ओर से जो वक्तव्य छपा था उसमें निम्नलिखित पंक्तियाँ भी आई थीं—"इस बार हिन्दी के ही उत्कृष्ट साहित्यकारों और विचारकों की संगठित शक्ति प्राप्त करने की अधिक चेष्टा की जायगी। ताकि हिन्दी अपने पैरों के बल खड़ी होकर सम्मानित हो सके।"

वे हिन्दी के कितने ज़बरदस्त हिमायती थे, यह उनकी इस अन्तिम वाणी से स्पष्ट है। खेद है कि अपने इस दृढ़ निश्चय को कार्य्य का रूप देने से पहले ही वे स्वर्गवासी हो गये और आज उनके स्थान की पूर्ति करनेवाला कोई नहीं है। हिन्दी के कथासाहित्य को उन्होंने अपने हृदय के रक्त से सींचकर पल्लवित किया है। भारतेन्दु बाबू

हरिश्चन्द्र के बाद हिन्दी में जो युग आरम्भ हुआ था उसके वे नेता थे। उन्होंने लगभग एक दर्जन उपन्यास और तीन सौ से ऊपर कहानियाँ लिखी हैं। दो-तीन नाटक भी उन्होंने लिखे हैं और अँगरेज़ी से कतिपय उपन्यासों और नाटकों का अनुवाद भी उन्होंने सफलतापूर्वक किया है। उनसे मतभेद हो सकता है, पर उनका ध्येय पवित्र था। वे हिन्दी के टैगोर, शरद् और सब कुछ थे। साहित्य ही नहीं वे सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में भी सक्रिय भाग लेते रहते थे। विधवाविवाह करके उन्होंने अपनी सामाजिक प्रगतिशीलता का परिचय दिया था और अपनी पत्नी श्रीमती शिवरानी देवी को जेल भिजवाकर उन्होंने देश की स्वाधीनता के युद्ध में अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की थी। यदि उन्हें वे सुविधायें प्राप्त हो सकतीं जो विश्वविख्यात अन्य साहित्यकारों को प्राप्त हैं तो उन्होंने अपनी कृतियों से आज संसार को चमत्कृत कर दिया होता। पर जीवन में दुर्दमनीय अभावों के होते हुए भी उन्होंने जो कुछ कर दिखाया है वह हम हिन्दीवालों के लिए गर्व और गौरव का विषय है।

वह संध्या

लेखक, श्रीयुत कुञ्जविहारी चौबे

रह-रह कर किसकी विरह-वह्नि,
देती असह्य संताप मुझे?
किसकी स्मृति का वरदान, हुआ—
या विस्मृति का अभिशाप मुझे?

तम घिरता था, मर्माहत हो—
थे भ्रमर कर रहे करुण-गान।
नभ से कुछ उडुगन उतर पड़े
सर के भीतर हो शोक-भ्रांत!

जीवित को मृत कर अमर करे,
यह है कैसा अमृत विपाक्त?
किसकी सुधि की यह सुधा मधुर
दे जाती विष की छाप मुझे?

निज कनक-करों से दिनकर है—
कर रहा कमलिनी का शृंगार।
कुछ हुलसित होकर, हँस-हँस कर
है मन्द-मन्द बहता बयार।

लख उस दिन की संध्या प्रशांत,
हम दोनों होते थे अशांत।
'नलिनी कुम्हलाई थी; रवि था—
हो दग्ध त्यागता गगन-प्रांत।'

सूना मेरा संसार हुआ,
तब आया यह स्वर्णिम प्रभात!
मैं कैसे भूलूँ वह संध्या,
उस दिन का धूमिल अन्धकार?

जीवन-समस्या

श्रीयुत आत्माराम देवकर

सुनीम मुरारीलाल सत्यवादी एवं कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति थे, पर वे कूट-कौशल नहीं जानते थे। दूकान के स्वामी सेठ लक्ष्मीचन्द ने उनसे कई बार कहा कि "मुनीम जी, इतनी अधिक सिधाई अच्छी नहीं होती। आज-कल सतर्कता की अधिक आवश्यकता रहती है। नहीं तो किसी दिन आपके ही आदमी आपको धोखा दे देंगे।" मुरारीलाल कह देते थे कि "सेठ जी, आपका कहना ठीक है। पर जिसका स्वभाव जैसा बन गया है, वैसा ही रहता है। बदल नहीं सकता। मैं हथकंडे सीखने की बहुत चेष्टा करता हूँ, पर कृत-कार्य नहीं होता। क्या करूँ, लाचार हूँ। उस मार्ग में पदार्पण करने की इच्छा ही नहीं होती। मेरा तो यही सिद्धान्त है कि जो करता है वही भरता है।" ऐसा उत्तर सुनकर सेठ जी चुप हो जाते थे। बुड्ढे मुनीम से कुछ अधिक कहने का साहस नहीं होता था। अपने से अधिक-उम्रवाले को उपदेश देना अच्छा भी नहीं मालूम होता।

(२)

लक्ष्मीचन्द की दूकान पर दो मनुष्य और काम करते थे। एक गुमाश्ता और दूसरा जमादार था। दोनों बड़े धूर्त थे और व्यवसाय की दृष्टि से दोनों सेठ जी के बड़े काम के थे। गुमाश्ता वाचाल और जमादार बलिष्ठ था। उनकी धूर्त्तता से सेठ जी बहुत दुःखित रहते थे, पर कार्य-कुशलता के कारण कुछ नहीं कहते थे। वे इतना अवश्य चाहते थे कि मुनीम जी उनके प्रत्येक कार्य पर दृष्टि रक्खें और समय-समय पर चेतावनी देते रहें। पर मुनीम जी में जो त्रुटि थी उसे दूर करना उनके सामर्थ्य के बाहर था। मुनीम जी मूर्ख नहीं थे। वे सब समझते थे, पर जान-बूझ कर टाल देते थे। क्रोध आने पर कभी-कभी बड़बड़ाने भी लगते थे, पर इसका उन लोगों पर उलटा प्रभाव पड़ता था। वे उन्हें झक्की समझते थे और एकान्त में उनकी हँसी उड़ाया करते थे। वे दोनों खुल्लम-खुल्ला कुछ न कर सकते थे। जो कुछ करते थे उसे मुनीम जी के कानों तक नहीं पहुँचने देते थे। इसी से अनिष्ट की आशंका न रहने पर भी वे उन्हें कंटक-स्वरूप समझते थे।

(३)

गुमाश्ते का नाम शोभन और जमादार का वीरन था। एक दिन रात को वीरन मुनीम जी के यहाँ गया। वे उस समय रामायण पढ़ रहे थे। वीरन उनके पास बैठकर कथा सुनने लगा। इतने में शोभन भी आकर जमादार के पास बैठ गया। उन दोनों का प्रेम देखकर मुनीम जी बड़ी देर तक रामायण पढ़ते रहे। विसर्जन हो चुकने पर शोभन ने कहा—"मैं आप से कुछ कहना चाहता हूँ, पर डरता हूँ।" मुनीम जी ने हँसकर कहा—"यह बड़ी विचित्र बात है। तुम्हारा मुँह तो हज़ारों में भी बंद नहीं होता। एक-दो की गिनती ही क्या है?" शोभन ने कहा—"आप मेरे पिता के समान हैं। आपका संकोच नहीं तोड़ सकता।" मुनीम जी ने सिर हिलाकर कहा—"नहीं, नहीं। डरने की बात ही क्या है? जो कहना हो कहो।" शोभन बोला—"यह तो आप जानते ही हैं कि हम लोग अपना काम तन-मन से करते हैं। जिसका नमक खाते हैं उसके साथ बेईमानी नहीं कर सकते। पर हम लोग ग़रीब आदमी हैं। दो पैसे की आमदनी के बिना हमारा निर्वाह नहीं हो सकता।" मुनीम जी ने नेत्र मलते हुए कहा—"मैं भी समझता हूँ।" शोभन को सुयोग मिल गया। उसने नम्र स्वर से कहा—"तब सुनिए। अमरपुर में नई दूकान खोलने के लिए मैंने मकान खोज लिया है। वह डेढ़ हज़ार से कम का नहीं है। पर मैंने किसी तरह एक हज़ार में तय कर लिया है। यदि दूकान से पूरे डेढ़ हज़ार रुपये दिलवाकर उसमें से पाँच सौ हम लोग ले लें तो क्या हर्ज है? चीज़ तो डेढ़ ही हज़ार की है। इसमें मालिक का कोई नुक़सान नहीं है।" वीरन ने भी समर्थन करते

हुए कहा—"आप स्वयं जाकर देख लें कि मकान पूरे डेढ़ हज़ार का है या नहीं। मुनीम जी त्योरी चढ़ाकर बोले—"तुम दोनों इसी उधेड़-बुन में लगे रहते हो। यह काम अच्छा नहीं है। तुम्हें जैसा दिखे, वैसा करो। पर यह समझ रक्खो कि पाप का भंडा फूट कर ही रहता है।" शोभन ने रुख बदलकर कहा—"जिस काम को आप रोक देंगे उसे कभी न करूँगा। आपसे सलाह लेने के लिए आया हूँ।" मुनीम जी ने उपेक्षा करते हुए कहा—"खेद है, मैं कभी ऐसी सलाह न दे सकूँगा। मुझसे कभी इन बातों की चर्चा न किया करो।" शोभन हाथ जोड़कर बोला—"मुझसे भूल हुई। क्षमा कीजिए।"

वीरन ने भी उसका अनुकरण किया।

(४)

कार्तिक की अमावस्या थी। दीपमालिका को व्यवसायियों का वर्ष समाप्त होता है। मुनीम जी उस दिन वर्ष भर का हिसाब तैयार करके सेठ जी को दिखलाते थे। इसी से आज वे बड़े सवेरे आकर अपने काम में लग गये। शाम को हिसाब तैयार हो जाने पर उन्होंने कुल काग़ज़ों का बंडल बाँधकर संदूक़ में डाल दिया। इसके बाद वे थोड़ी देर तक शोभन और वीरन से काम-काज के सम्बन्ध की बातें करते रहे। उनके चले जाने पर मुनीम जी उस बंडल को सेठ जी के बैठकखानेवाले सन्दूक़ में रख लक्ष्मी-पूजा के लिए घर गये। पूजा समाप्त कर वे फिर सेठ जी के यहाँ आये। सेठ जी बाहर खड़े उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। शोभन और वीरन पहले से ही आकर उत्सव-सम्बन्धी कामों में लगे हुए थे। मुनीम जी ने कोट उतारकर खूँटी पर टाँग दिया और आतिशबाज़ी करने लगे। शोभन और वीरन दीपक रखते हुए दूसरी ओर चले गये। एकान्त में शोभन ने वीरन से कहा—"मुनीम जी के सन्दूक़ में दो हज़ार रुपये के नोट रक्खे हैं। ताली भी मेरे हाथ लग गई है। बदला लेने का अच्छा मौक़ा है। तुम्हारी क्या राय है? वीरन के नेत्र उत्फुल्ल हो उठे। उसने शोभन की बुद्धि की प्रशंसा करते हुए कहा—"आज मेरी छाती ठंडी हुई। उस अभिमानी को नीचा दिखाने का यह सुयोग हाथ से मत जाने दो।" शोभन ने धीरे धीरे कहा—"तो तुम मुनीम जी के पास जाओ। मैं काम पूरा करके आता हूँ।" वीरन मुनीम जी के पास आकर खड़ा हो गया। शो... के आ जाने पर दोनों सेठ जी को प्रणाम करके चले ग... रास्ते में शोभन ने कहा—"अभी दो-चार दिन ... लिए मैं इस बंडल को छिपाकर रक्खे देता हूँ। जब ... बखेड़ा मिट जायगा तब बराबर बराबर बाँट लेंगे।" वी... ने उत्तर दिया—"यही ठीक है।"

(५)

दूसरे दिन मुनीम जी को सन्दूक़ में नोटों का बंडल ... मिला। वे व्यग्रता से उसे इधर-उधर ढूँढ़ने लगे। ... वह कहीं नहीं मिला तब वे अधीर हो उठे। इस आकस्मि... आघात से वे नेत्र बन्द करके दीवार से टिक रहे। ना... प्रकार के संकल्प-विकल्पों में उनका चित्त डाँवाडोल हो... लगा। उनका तिरोभाव हो जाने पर वे आप ही आ... कहने लगे—"तो क्या पाप की ही जय होकर रहेगी ... संसार का क्या यही नियम है? सेठ जी ने मुझे कई बा... चेतावनी दी, पर मैं सावधान नहीं हुआ। यह उसी क... फल है। आपत्ति जब तक निकट नहीं आती तभी त... उसकी आशंका रहती है। जब सिर पर ही आ गई त... अब डरने से क्या लाभ है? सब हाल ज्यों का त्यों सेठ ज... से कह दूँगा। जो भाग्य में लिखा होगा, होगा।"

सेठ जी कमरे में बैठे डाक देख रहे थे। मुरारीला... अपराधी की नाईं सिर झुकाये आकर उनके आगे ख... हो गये और बोले—"सेठ जी, मेरे संदूक़ में से दो हज़ा... के नोट ग़ायब हो गये हैं। ऐनक में से मुनीम जी के शु... मुख पर दृग्पात करते हुए सेठ जी ने कहा—"आप क्... कह रहे हैं? संदूक़ में से कहाँ जायँगे? आपने भूल ... दूसरे काग़ज़ों में लपेटकर कहीं रख दिये होंगे।" मुनीम जी बोले—"मैंने सब काग़ज़ उलट-पलटकर देख लिये हैं।"

सेठ जी ने उन्हें समझाकर कहा—"अच्छी तरह देख-भाल कीजिए। घबराइए नहीं। घबराहट में सामने रक्खी हुई चीज़ भी ढूँढ़े से नहीं मिलती। मुझे इसका अनुभव है। दूसरी दूकानों से भी पूछ-ताछ कीजिए। शायद धोखे से कहीं चले गये हों।" मुनीम जी ने कम्पित स्वर से कहा—"न मिले तो?" सेठ जी ने उत्तर दिया—"तब की बात तभी देखी जायगी। आप अभी से क्यों हताश हो रहे हैं?"

मुनीम जी प्रणाम कर घर चले गये।

(६)

वीरन मन ही मन बहुत प्रसन्न हो रहा था। वह सोचता था कि अब सेठ जी की नौकरी छोड़ दूँगा। पर अभी नहीं छोड़ूँगा। इससे वे मुझ पर संदेह करने लगेंगे। कुछ दिन और रहकर पहले इस दुष्ट मुनीम को निकलवाऊँगा, पीछे मैं जाऊँगा। तीन-चार दिन तक वह शोभन से नहीं मिला। जब कुछ शोर-गुल न सुनाई दिया तब एक दिन रात के समय वह उसके घर पहुँचा। शोभन के मुख पर विषाद की गहरी छाया देखकर वीरन का चित्त सशंकित हो उठा। उसने आतुरता से पूछा—"मित्र, कुशल तो है?"

शोभन ने उत्तर दिया—"कुशल तो है, पर हाथ कुछ नहीं लगा।"

वीरन ने संदिग्ध दृष्टि से शोभन की ओर देखकर कहा—"इसका अर्थ मेरी समझ में नहीं आया।"

शोभन ने अनिच्छा से कहा—"मैं नोटों के बदले काग़ज़ों का बंडल उठा लाया। सब हिसाब के काग़ज़-पत्र हैं। वीरन ने अट्टहास करके कहा—"मैं बच्चा नहीं हूँ। दूर तक सोच लो।" शोभन ने उत्तर दिया—"मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि मुझे सब काग़ज़-पत्र ही मिले हैं, नोट नहीं।" वीरन को क्रोध आ गया। वह घूँसा तानकर खड़ा हो गया और बोला—"अभी आधे नोट मेरे हवाले करो। नहीं तो विश्वासघात का मज़ा चखाता हूँ।" शोभन की अन्तरात्मा काँप उठी। उसने गिड़गिड़ाकर कहा—"जमादार जी, मुझे नोट नहीं मिले। तुम्हें कहाँ से दूँ? यह काग़ज़ों का बंडल है। चाहो तो ले लो।" इतना कहकर उसने वह बंडल वीरन के आगे फेंक दिया। वीरन कुछ शान्त होकर बैठ गया और बोला—"मैं अभी सारा भेद खोले देता हूँ।" शोभन ने क्षुब्ध होकर कहा—"यह बुद्धिमत्ता का काम न होगा।" वीरन ने उत्तर दिया—"मूर्खता का ही सही।" शोभन विह्वल दृष्टि से वीरन की ओर देखकर बोला—"देखो, मैं एक बार और कहता हूँ कि इस बात को बिलकुल भुला दो। इसमें भलाई नहीं है।" वीरन ने कड़ककर कहा—"मैं तुम्हारी बात कभी नहीं मानूँगा।" शोभन ने हताश होकर कहा—"तब जैसा चाहो, करो। मुझे फँसाओ और तुम फँसो।" वीरन ने वह बंडल उठा लिया और चुपचाप घर का रास्ता लिया।

(७)

पापियों को कभी शान्ति नहीं मिलती। उनका चित्त सदा सशंक रहता है। परिणाम की दुश्चिन्ता उनका हृदय दग्ध करती रहती है। शोभन और वीरन की भी यही दशा थी। शोभन जानता था कि वीरन चालाक तो है, पर बड़ा ही हठी और उजड्ड है। जो दिल में आता है, कर बैठता है। मुझे गड्ढे में डालने के लिए वह स्वयं उसमें कूदने को तैयार हो जायगा। मैं अपने काम के लिए हाथ जोड़ सकता हूँ, पाँव पड़ सकता हूँ, पर वीरन के आगे मेरी यह माया नहीं टिक सकती। वह बिलकुल दया-शून्य है। उससे भलाई की आशा करना व्यर्थ है।

वीरन सोचता था कि शोभन बुद्धिमान् तो है, पर बड़ा डरपोक है। मान लिया कि उसने काग़ज़ ही चुराये। पर अपराध तो किया। हिसाब के काग़ज़ भी बड़े काम के होते हैं। मुनीम की धमकी में आकर उसने सब बात कह दी अथवा कोई नई बात गढ़कर मुझे फँसा दिया तो क्या आश्चर्य है? वह बड़ा गुरुघंटाल है। तब मैं ही क्यों न सेठ के पास जाकर सच सच हाल कह दूँ। चोरी तो मैंने की नहीं। डरूँ क्यों? अच्छा कुछ दिन और ठहर कर देखूँ। शायद कोई इससे अच्छा मार्ग निकल आये अथवा कोई सुयोग ही मिल जाय। मैं बिना सोचे-समझे काम कर बैठता था। पर उस समय मेरी सहायता के लिए शोभन था। इस समय मैं अकेला हूँ। जो कुछ करूँगा, सोच-समझ कर ही करूँगा। सारांश यह कि दोनों ही एक दूसरे से डरते थे और अपने अपने बचाव का मार्ग ढूँढ़ते थे। शोभन को न तो सुख की नींद आती थी, न खाना-पीना ही अच्छा मालूम होता था। चिन्ता-कीट ने धीरे धीरे उसका शरीर खोखला कर दिया और उसने शीघ्र ही चारपाई पकड़ ली। वीरन भी सूखकर काँटा हो गया। मुनीम जी भी चिन्तित रहते थे। पर उनके शरीर में सत्य का बल था, जो उपस्थित विपत्ति का सामना करने के लिए पर्याप्त था।

(८)

दिन के बारह बज चुके थे। सेठ जी अपने कमरे में बैठे पत्र लिख रहे थे। वीरन आकर उनके पैरों पर गिर पड़ा। शोभन भी लाठी टेकता हुआ आया और फूट फूट कर रोने लगा। सेठ जी ने विस्मयान्वित दृष्टि से उनकी

ओर देखकर कहा—"क्यों? क्या बात है?" वीरन बोला—"अन्नदाता, हम आपके अपराधी हैं। क्षमा नहीं माँगते। उचित दण्ड दीजिए। इसी के लिए हम लोग आपके पास आये हैं।" सेठ जी सब समझ गये, पर उनकी राम-कहानी उन्हीं से कहलवाना चाहते थे। सरल भाव से बोले—"तुम्हारे अपराध की कोई बात मैंने नहीं सुनी।" वीरन ने उत्तर दिया—"आपने न सुनी हो। पर आग कभी छिपी नहीं रह सकती। सर्वनाश करके ही शान्त होती है। हमारा शरीर ही इसका प्रमाण है। हड्डी हड्डी रह गई है। खून सब सूख चुका है।" सेठ जी ने कहा—"देख तो रहा हूँ। इसका क्या कारण है?" वीरन बोला—"अच्छा सुनिए। मुनीम जी हमारी पाप-वासनाओं को पूर्ण नहीं होने देते थे। हमारे मार्ग में कंटक-स्वरूप थे। इसी से हम उन्हें अपना परम शत्रु समझते थे। हम उन्हें नीचा दिखाना चाहते थे। दीपमालिका के दिन हमें सुयोग मिल गया। हमने कुंजी निकालकर उनका सन्दूक़ खोला। उसमें नोट रक्खे हुए थे। पर भूल से हम काग़ज़ों का बंडल लेकर चले आये। उसमें सब काग़ज़ ही काग़ज़ थे। वह बंडल यही है। देख लीजिए।"

सेठ जी ने बंडल ले लिया और मुनीम जी को बुलवाया।

(९)

मुनीम जी ने बंडल खोलकर देखा और फिर बाँधकर रख दिया। उन्होंने आश्चर्य से कहा—"इसे तो मैं आपके सन्दूक़ में रख आया था। यह इन्हें कैसे मिला?" सेठ जी ने वीरन की ओर देखा। वह कहने लगा—"आप भूल रहे हैं। यह आपके सन्दूक़ में था।" मुनीम जी ने पूछा—"और वह नोटों का बंडल?" वीरन ने उत्तर दिया—"वह हमें नहीं मिला।" मुनीम जी कड़ककर बोले—"झूठ, बिलकुल झूठ।" सेठ जी हँसने लगे। उन्होंने वह नोटों का बंडल निकालकर मुनीम जी के आगे फेंक दिया। मुनीम जी अवाक् खड़े खड़े कभी बंडल को और कभी सेठ जी के मुँह को देखते थे। सेठ जी ने हँसी को रोककर कहा—"मुनीम जी, आप सच कहते थे कि जो करता है, वही भरता है। आप भूल से काग़ज़ों के बदले नोटों का बंडल मेरे सन्दूक़ में रख गये थे। वह मुझे उसी दिन मिल गया था। पर आपको ज़रा सावधान करना था। इसी से चुप रह गया था।"

शोभन ने ठंडी साँस लेकर कहा—"और उस भीषण ताप की जो यन्त्रणा हम लोगों को हुई है उससे उसका दण्ड हज़ार गुना अच्छा था।"

सेठ जी ने उत्तर दिया—"वह पाप की यन्त्रणा नहीं, प्रकृति-प्रदत्त दण्ड था। अब किसी अन्य दंड की आवश्यकता नहीं है।"

शोभन ने कहा—"तब ठीक है। उसने हमारा हृदय शुद्ध कर दिया है। आज से हम दोनों मुनीम जी के अनुयायी हुए।" सेठ जी ने मुनीम जी से कहा—"मुझे आपसे इतना और कहना है कि जो करता है वह तो उसका फल पाता ही है। पर जो नहीं करता है उसे भी सावधान रहने की आवश्यकता है। जीवन-समस्या बड़ी ही कठिन है।"

क्या कहूँ ?

लेखक, श्रीयुत मोहनलाल महतो

पूछता संसार मेरा हाल मुझसे—क्या कहूँ !

याद है—मैं सो रहा था पालने पर प्यार के,
थी उषा सुहला रही तलवे दुलार दुलार के।
चूमकर तुमने जगाया—कल्पना में जा छिपी,
दे गई कसकन हृदय को रूप में उपहार के।

प्राण में बन प्राणधन, बन वेदना में चेतना,
विश्वमय तू हो गई भगवान बन भगवान में।
व्यक्त होती तू सदा अवसान में उत्थान में,
खोजता हूँ मैं तुझे अपने रुदन में गान में।

पूछता संसार मुझसे हाल मेरा—क्या कहूँ।

अज्ञात दिशा की ओर

मिसेज़ बोस एक परम सुन्दरी रमणी हैं। उनसे भी अधिक सौन्दर्य उनकी एकमात्र पुत्री रेखा में उमड़ता आ रहा था। अपने को हताशगञ्ज का ज़मींदार कहकर इन पर प्रभाव डालने के बाद अहीन्द्र ने अपने मित्र निर्मल 'चौधरी' का इनसे परिचय कराया और उसके सम्बन्ध में बतलाया कि ये कोचभूम के प्रिंस हैं। इधर मिसेज़ बोस तथा निर्मल परस्पर एक दूसरे की ओर विशेष रूप से आकर्षित हो गये, किन्तु अहीन्द्र रेखा पर आसक्त था। एक बार वे लोग कलकत्ता छोड़कर देहात में गंगा जी के तट पर एक बँगले में कुछ समय बिताने के लिए गये। वहाँ भ्रमण के समय एकान्त पाकर अहीन्द्र ने रेखा से प्रणय-निवेदन किया, किन्तु रेखा ने उसका प्रत्याख्यान कर दिया। बाद को रेखा के जी में आया कि अहीन्द्र यदि इस प्रकार मेरे प्रेम में अधीर हो रहा है तो मैं उसके साथ विवाह करके क्यों न उसके जीवन को सुखी बनाऊँ। परन्तु अहीन्द्र उसके साथ विवाह करने पर सहमत नहीं था, वह उसके साथ गुप्त से ही प्रेम का सम्बन्ध रखना चाहता था। इससे रेखा को बड़ी विरक्ति हुई। और इस वायु-मण्डल से उसे घृणा-सी होगई। अन्त में शान्ति-लाभ करने के विचार से वह घूमने के लिए निकली और एक निर्धन परिवार की सुखमय गृहस्थी देखकर बहुत प्रसन्न हुई। इस परिवार की विचार-धारा से रेखा इतना अधिक प्रभावित हुई कि पहले के समस्त व्यक्तियों के संसर्ग से छुटकारा लेकर इन निर्धन व्यक्तियों के ही समान जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया। परन्तु रेखा को सबसे अधिक ग्लानि उस समय हुई, जब उसने अपनी मा को चौधरी के साथ एकान्त में बहुत ही अश्लीलता-पूर्ण अवस्था में देखा। अन्त में उसने इस बात का सङ्कल्प किया कि मा को मैं इस नीच संसर्ग से अवश्य दूर करूँगी। उसने अपनी माता को सत्पथ पर लाने का प्रयत्न किया, किन्तु माता ने उसके सत्परामर्श की उपेक्षा की, इसका क्या परिणाम हुआ, इस उपन्यास के उपसंहार-रूप में यही यहाँ बताया गया है।

अनुवादक, पंडित ठाकुरदत्त मिश्र

बारहवाँ परिच्छेद

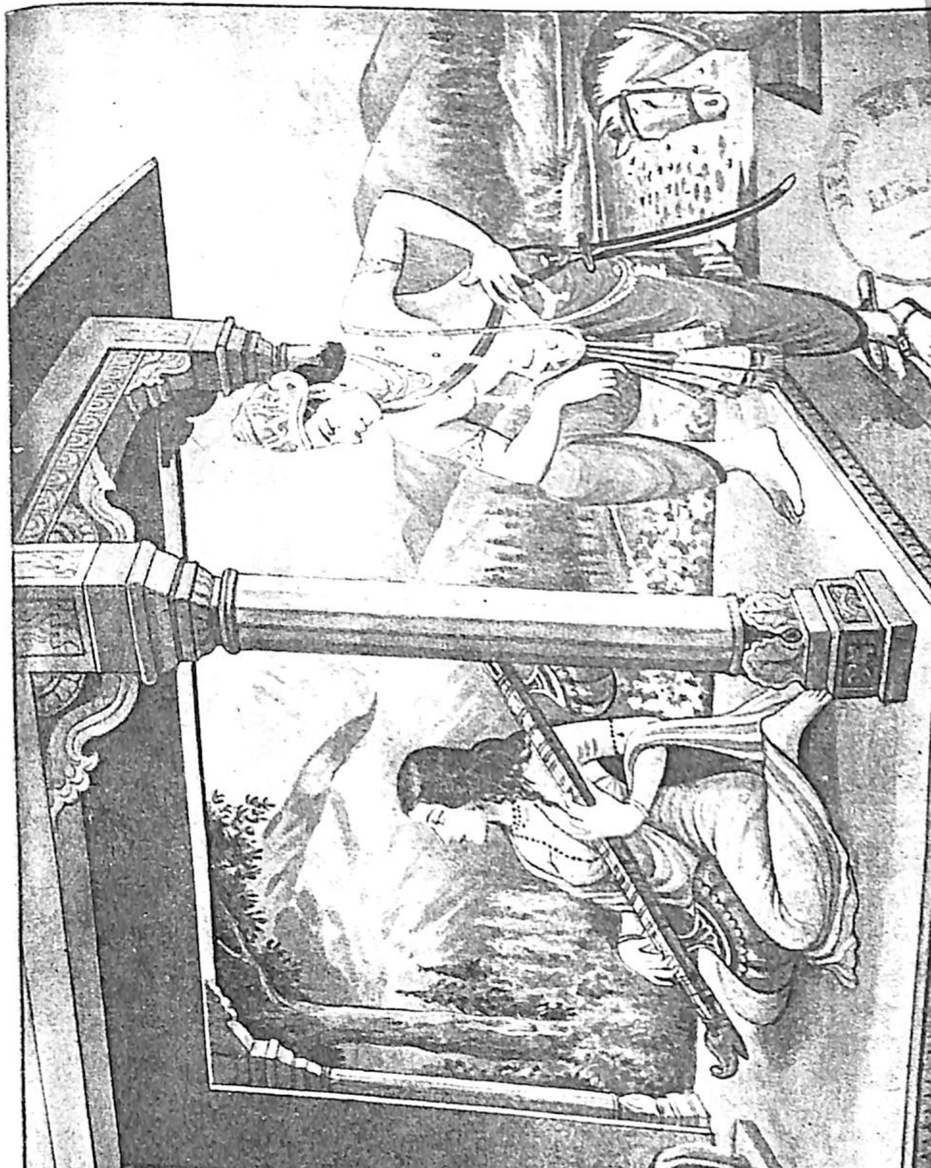
रेखा व्याकुल भाव से सोचने लगी—अब मेरे लिए कौन-सा उपाय रह गया है? मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? तो क्या मृत्यु का ही आश्रय लूँ! रेखा काँप उठी। उसके जीवन का वह वसन्तकालीन प्रभात था। हृदय के मध्य में रंग-बिरंगे गुच्छे के गुच्छे फूल खिले थे। उस पुष्पराशि के विकास से चारों दिशायें अतिरञ्जित होकर उसे मुग्ध कर रही थीं। चिड़ियों के कलकल निनाद से परिपूर्ण होकर उसका हृदय विह्वल हो उठा था। वैसे समय में अकारण ही क्या वह यह सब तोड़कर नष्ट कर देगी? यह सुन्दर पृथिवी छोड़कर...

नहीं! नहीं! रेखा का हृदय वेदना के मारे बहुत ही दुःखी हो उठा। उसने निश्चय कर लिया कि मैं मरूँगी नहीं, मुझसे मरा नहीं जायगा।

परन्तु फिर ...?

रेखा ने सोचा—मैं अकेली ही कहीं निकल जाऊँगी। यह घर रहने के लायक़ नहीं है। यह दूषित वाष्प से परिपूर्ण है। कितनी दुःसह स्मृतियाँ यहाँ भरी हुई हैं। इसे तो छोड़ देने में ही कल्याण है। परन्तु इसे छोड़कर जाऊँ कहाँ?

जिस घर में वे लोग रहा करते थे उसके सामने ही एक बहुत ही हरा-भरा छोटा-सा वन था। उस वन के पास से होकर बहुत दूर तक एक रास्ता चला गया था। रेखा ने सोचा कि यह रास्ता पकड़कर ही यात्रा आरम्भ करनी चाहिए! परन्तु फिर उसके मन में आया कि यह



चला गया किधर से है और यह समाप्त कहाँ हुआ है। ठीक इसी रास्ते से यदि बराबर चलती जाऊँ तो कहाँ पहुँच जाऊँगी? फिर केवल चलते रहने के ही लिए तो जीवन है नहीं। चलने के अतिरिक्त और भी बहुत-सी वस्तुएँ आवश्यक हैं। उन सबके लिए क्या करना होगा?

रेखा ने सोचा—इस सुदीर्घ मार्ग का अवलम्बन करके दीर्घ काल तक चलती जाऊँगी। चलते चलते कदाचित् किसी सुप्रभात में एकाएक मैं देखूँगी कि एक बहुत बड़े प्रासाद के सम्मुख अपना श्रान्त शरीर लेकर खड़ी हूँ। एकाएक घोड़े पर सवार होकर सुसज्जित वेश में एक राजकुमार आया और मेरे सामने खड़ा हो गया। वही राजकुमार मेरी समस्त श्रान्ति दूर करके सान्त्वनामय वाक्यों से मुझे आश्वासन देकर अपने प्रासाद में ले जायगा। अन्त में मेरे जीवन का वृत्तान्त सुनकर वह करुणा से द्रवित हो जायगा और मुझे हृदय से लगा लेगा। परन्तु यदि कहीं ऐसा न हो सका, चलते चलते बीच में ही मेरे पैर थक गये तो वन में ही पड़ी रह जाऊँगी। उस समय जटा-जूट धारण किये हुए एक संन्यासी आवेगा और मुझे अपने आश्रम में ले जायगा। सुन्दर शान्त तपोवन में उसका सुरम्य एकान्त आश्रम होगा। उस आश्रम में मुनिकन्याओं के समान ही पौधों को सींचते तथा आश्रम के मृगों का लाड़-प्यार करते मैं अपना समय व्यतीत करूँगी। इस प्रकार मेरा जीवन बहुत ही शान्त, बहुत ही सुखमय और आज से सर्वथा भिन्न होगा।

एकाएक रेखा के हृदय से एक लम्बी साँस निकली और फिर हृदय में ही विलीन हो गई। क्षण भर के बाद ही उसके मन में आया—क्या यह सब सम्भव है? इस युग में जब मनुष्य का हृदय पत्थर के समान कठोर है, जब पथिक लोग हृदय का द्वार चारों ओर से बन्द करके रास्ते में पैर रखते हैं...। नहीं, नहीं। यह नहीं सम्भव है। यह तो मैं आकाश-कुसुमों की माला गूँथ रही हूँ।

"तब क्या होगा"? रेखा ने तुरन्त ही ठीक कर लिया। एक बार बायस्कोप में उसने एक चित्र देखा था। उसमें उसी के समान एक युवती की अवस्था चित्रित थी। रेखा ने सोचा—उस युवती के समान ही मैं किसी धनी परिवार में बालिकाओं को शिक्षा देने का कार्य स्वीकार करके जीविका का सम्पादन करूँगी। बाद को उसी परिवार का तरुण नायक मुझसे प्रेम करने लगेगा। मैं भी मन ही मन, बहुत ही गुप्त रूप से, उस युवक की ही ओर ताकती रहूँगी। अन्त में एक दिन हम दोनों का यह नीरव प्रेम किसी फाल्गुन की पागल हवा में अपने गुप्त आवरण को चीड़फाड़ कर प्रकट हो उठेगा। तरुण युवक मेरा हाथ पकड़कर आदरपूर्वक मृदु कण्ठ से मुझसे कहेगा—हे सखी, जागो, जागो! इस आह्वान से पुरानी स्मृतियों के बीच में मेरा हृदय मूर्च्छित हो उठेगा। बाद को एकाएक उसके हाथ के स्पर्श से जाग कर अपने हृदय की वेदना खोलकर उसे बतला दूँगी। तरुण नायक मेरे दुःख की कहानी सुनकर सोहाग और आनन्द से परिपूर्ण होकर मुझे ग्रहण करेगा। इस प्रकार केवल प्रेम के स्वप्न में ही हम दोनों के जीवन गठित हो उठेंगे।

क्षण ही भर बाद रेखा फिर सोच में पड़ गई। उसके जी में आया—किन्तु क्या यह सब सम्भव है? न! न! मेरे जन्म का वृत्तान्त सुनकर कोई भी मेरे साथ विवाह न करेगा। विवाह नहीं, केवल दायित्व-हीन प्रेम का अभिनय करने में सङ्गिनी बनाकर ही मुझे चरितार्थ करने की बात छेड़ेगा। परन्तु इससे तो रेखा को सन्तोष होना था नहीं। वह जो कुछ चाहती थी,......उसकी कामना बहुत ही क्षुद्र थी। इस सुविशाल भूमण्डल में वह चाहती थी केवल घर का एक छोटा-सा कोना और उसी घर में प्रेम से हृदय को सदा परिपूर्ण किये रहनेवाला स्वामी। स्वामी भी ऐसा, जो अपने अकृत्रिम प्रेम से उसके इस जन्म को सार्थक और पवित्र कर दे। इसके अतिरिक्त इस जन्म को सार्थक बनाने के लिए उसके पास दूसरा कोई उपाय ही नहीं था।

इस प्रकार की आशा से उसका हृदय अपूर्व रंग से रँग उठा। ठीक ठीक यही तो उसका एक-मात्र मार्ग है। इस स्थान के आस-पास की बस्ती, यह संसर्ग, यह स्मृति छोड़कर उसे यहाँ से जाना ही पड़ेगा। बहुत दूर पर किसी एकान्त कोने में उसके लिए न-जाने कितनी सान्त्वना पुञ्जित है। उसी की खोज में वह निकलेगी। उसे यहाँ से निकलना ही पड़ेगा। अन्यथा इस दूषित वायु-मण्डल में रहते रहते उसका दम घुट जायगा। वह बचेगी नहीं—एक दण्ड भी न बचेगी।

मा ? नहीं, अब मा से उसे कोई आशा नहीं रह गई। वह निर्लज्ज, निर्बोध नारी, जो मा उसकी इतनी बड़ी व्यथा का कारण है, जो स्वयं अपनी भी भलाई, अपने भी कल्याण की चिन्ता नहीं करती, उसका मुँह देखते रहने की कोई आवश्यकता नहीं है। मा ने ही तो उसे इस प्रकार की शोचनीय अवस्था में डाल रक्खा है। मा ने ही तो यह कालिमा उसके मुख, नेत्रों तथा समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्ग, और कहाँ तक कहें, परिचय तक में लपेट रक्खी है। केवल लपेटकर ही शान्त हो गई हो, यह बात नहीं है, इसे वे खूब अच्छी तरह लपेटकर और अधिक स्पष्ट और अधिक काला कर देने के लिए आज भी उत्सुक हैं। क्या यह मा का कार्य्य है? भला कहीं इस प्रकार की शत्रुता का आचरण कर सकती है मा! तो भी मा को मुक्ति के मार्ग की ओर खींचकर ले जाने का कितना प्रयत्न किया है उसने, कितनी असाध्य साधना की है उसने? परन्तु मा उस मार्ग पर पैर रक्खेगी नहीं। न सही। तो क्या उसकी राक्षसी माया के आकर्षण में पड़कर वह अपना भी जीवन नष्ट कर देगी? यह कभी नहीं हो सकता। किसी भी माया, किसी भी लोभ के कारण वह इतनी बड़ी अवहेलना में अपने जीवन को डालकर वह नष्ट नहीं करेगी। राजसिंहासन का भी लोभ उसे विचलित न कर सकेगा।

सोचते सोचते उसने अपना सङ्कल्प दृढ़ एवं अटल कर लिया। वह घर में नहीं रहेगी, बस्ती में नहीं रहेगी। यह सब छोड़कर उसे निकलना ही पड़ेगा। जहाँ इस सुदीर्घ पथ का अन्त हुआ है, उस स्थान तक इसे जाना ही पड़ेगा। जिस तरह भी हो सके, यह रास्ता उसे तय करना ही है। यह रास्ता तय करने पर ही उसके हृदय को शान्ति मिलेगी।

रेखा आकर खिड़की के पास खड़ी हो गई। खिड़की के पास का यह स्थान उसके समीप मुक्ति के किसी मार्ग की झलक लाकर उपस्थित कर देता है। खिड़की की राह से दिखाई पड़ता है कि बाहर यह रास्ता एक बहुत बड़ी रेखा के समान पड़ा है। इस रास्ते के कितने अंश को वह जानती ही है। रेखा चौंक उठी। उसने सोचा—किन्तु इस रास्ते से होकर जो लोग जा रहे हैं वे भी तो इन सब लोगों की ही तरह के आदमी हैं! रास्ते से चलते चलते लोग अपने अपने घर में पहुँच ही जाते हैं। इन्हीं लोगों का तो वहाँ निवास है। तो......? जिस मुक्ति की खोज में वह निकल रही है उसे क्या वह मिल जायगी वहाँ—विशेषतः इस तरह के ही लोगों के पास? ये लोग भी तो उसी एक विराट् समाज को ज़ोर से पकड़े हुए पड़े हैं। शायद वहाँ भी इसी तरह की बँधी हुई हवा है, इसी तरह का क्षुद्र हृदय है। वहाँ के लोग भी इसी तरह का हृदयहीन व्यवहार किया करते हैं। तो?

इसकी अपेक्षा तो? नहीं, मृत्यु ही ठीक है। मृत्यु के हाथों में अपने आपको समर्पित करके इस जन्म की इस केंचुल को छोड़ देने के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है। दूसरे जन्म में नवीन प्रकार के वातावरण में पहुँचकर इस जीवन को कदाचित् दूसरे रूप में ढाल लेना कठिन न होगा। तब फिर उसे संसार में इस तरह दीन वेश में भिक्षुक के समान नहीं खड़ा होना पड़ेगा। मनुष्य की कृपा के लिए व्याकुल होकर मरना न पड़ेगा।......नहीं, मृत्यु ही एक-मात्र मार्ग है। मृत्यु का आश्रय लेने के अतिरिक्त उसके पास दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

किन्तु मृत्यु! वह तो बुलाने से ही आ नहीं जायगी। तो फिर? किस प्रकार मरा जाय? विष खाकर, जल में डूब कर या गले में एक रस्सी लगा कर? सामने एक बहुत बड़ा आईना लटक रहा था। एकाएक आईने की ओर रेखा की दृष्टि गई। उसका वह सुकुमार और खिला हुआ यौवन, उसकी अपरूप श्री एवं लावण्य की दीप्ति हृदय में धारण किये हुए वह वाक्शक्ति से हीन मूक आईना मानो रेखा की ही ओर ताक रहा था। रेखा काँप उठी। यह ललित लावण्य से परिपूर्ण कमनीय तनु, यह मुख, यह नासिका, यह कृष्णवर्ण के कुञ्चित केशों की राशि,—इसी तरह निर्दय भाव से क्या वह इन सबकी हत्या कर डालेगी? उसकी अन्तरात्मा आर्त स्वर से चिल्लाकर निषेध करने लगी। नहीं, नहीं, मरा नहीं जायगा। वह मर न सकेगी! अपने हाथ से ही यह रूप, यह सुन्दर शरीर जिसे भगवान् ने इस तरह से गढ़ दिया है, अपने आप वह नष्ट न कर सकेगी। यह शरीर इस प्रकार अनुपम रूप में गढ़ उठा है तो क्या अकाल में ही निर्मम हत्या के द्वारा ही विनाश को प्राप्त होने के लिए? कभी नहीं। तो इसकी सार्थकता फिर कहाँ है?

वह मरेगी क्यों? इस तरह की सुन्दर पृथिवी, यह चिड़ियों का कलकल गान, यह प्रकृति की श्याम शोभा, यह नील आकाश, ये सूर्य्य की स्निग्ध किरणें, यह फूलों की सुगन्ध! इस पृथिवी पर ये सभी कुछ तो हैं। इन सबके बीच में अपना स्थान अविचल रखना क्या इतना कठिन है? रेखा ने एक लम्बी साँस ली। बाद को मन ही मन उसने कहा—मुझसे मरा नहीं जायगा। समाज यदि मेरी ओर विद्रूप की दृष्टि से ताक रहा है तो ताकता रहे। उसके लिए मुझे कोई चिन्ता नहीं है। बाहर की यह मुक्त-प्रकृति, यह वाक्शक्ति से हीन प्रकृति का सहानुभूतिपूर्ण स्नेह, यह तो अनायास ही प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए तो किसी की प्रसन्नता या अप्रसन्नता की चिन्ता करने की आवश्यकता है नहीं। तो?

क्षण भर के बाद ही रेखा के मन में फिर आया—आत्महत्या? यह तो बहुत ही निन्द्य कर्म है। केवल बहुत ही दुर्बल हृदय के ही लोग इस प्रकार का गर्हित कर्म किया करते हैं। मेरा हृदय तो इतना दुर्बल है नहीं! आत्महत्या कर लेने पर समाज की यह लाञ्छना भी तो शिरोधार्य करनी पड़ेगी। मैं क्यों ऐसा करने लगी? स्वयं मैंने तो कोई अपराध किया नहीं है। दूसरे के पाप के लिए मैं क्यों अपने प्राण दूँ इस प्रकार गर्हित-रूप से प्रायश्चित्त करके? समाज के ऊपर तो इससे कोई धक्का लगेगा नहीं। सम्भव है कि ये लोग ज़रा देर के लिए अपना आमोद-प्रमोद और क्रीड़ा-कौतुक बन्द कर दें। बाद को ज़रा देर स्तब्ध रहकर कह दें कि रेखा अब नहीं रह गई है! बस, बाद को फिर उसी धारा में वह चलेंगे। वही गाना-बजाना, वही हँसी-ठट्ठा शुरू हो जायगा। इतनी बड़ी पृथिवी में मेरे लिए एक बार कोई आह तक न भरेगा। इतने पर भी वह इस पृथिवी पर का ही एक जीव है। इस सुविशाल जन-समुदाय के बीच में मेरे वक्षःस्थल में भी मन नामक एक ऐसी वस्तु है जो किसी प्रकार भी उपेक्षा या अवहेलना के योग्य नहीं है। नहीं, मरना नहीं होगा। मुझे जीना होगा। जीवित रहना ही मेरा कर्त्तव्य है। परन्तु मुझे इन लोगों के बीच में रह कर नहीं, इन लोगों का मुँह ताक कर भी नहीं।

समाज उपेक्षा करके उसका अनादर करेगा। केवल अनादर ही क्यों, उसकी ओर ध्यान तक न देगा। रेखा का चित्त संतप्त हो उठा। क्यों ध्यान नहीं देगा? वह ऐसा कार्य करके समाज को दिखलाना चाहती है कि ... उसकी ओर देखे बिना समाज रह ही न सकेगा। स... को उसकी ओर ध्यान देना ही पड़ेगा। जगत् के वक्षः... पर वह इस प्रकार की कीर्ति छोड़कर जायगी, जि... समाज उसके महत्त्व का अनुभव कर सकेगा। समाज... बात का अनुभव करेगा कि उसका नाम तिरस्कार के ... नहीं है। वह उपेक्षा के भी योग्य नहीं है। सोने के अ... में समाज उसका नाम अपने वक्षःस्थल पर लिख रक्खे... किन्तु किस उपाय का अवलम्बन करके, किस प्रकार ... काम करके वह इस प्रकार की कीर्ति छोड़कर जा सकेग...

रेखा फिर बैठकर सोचने लगी। नील आकाश ... ऊपर धूप की किरणें उड़ उड़कर बिखर रही थीं। ... चिड़िया उड़ रही थी। कितनी लघु और स्वच्छन्द उस... गति थी! कैसा स्वच्छ और स्वाधीन उसका हृदय था... विवाह? अकस्मात् अहीन्द्र के नेत्रों की वही अपाङ्गभ... वही उच्छ्वास, रेखा को स्मरण हो आया। यह अनु... वह चाहती भी नहीं किसी से। विवाह के बिना क्या जी... की सार्थकता का और कोई उपाय ही नहीं है? अप... मन और हृदय निकालकर वह दे देगी, नारी का सर्व... अर्पित कर देगी, इधर तुम पुरुष, कृपा की दृष्टि से उस... ओर ताक कर, सोहाग की दो बातें, ज़रा-सा प्यार भि... के समान उसके हाथ पर रख दोगे! नहीं, नहीं रेखा ... भिक्षा नहीं चाहती। वह अपना यह मन ऐसे बहुत ... महत्त्वपूर्ण कार्य में लगावेगी, कर्मक्षेत्र में अवतीर्ण होक... वह इस प्रकार के सदनुष्ठान का सम्पादन करेगी कि समस्... विश्व ताक कर रह जायगा। सभी को बाध्य होकर य... कहना पड़ेगा कि रेखा के बिना इतने महत्त्व का का... और कोई भी नहीं कर सकता था। जिस थोड़े से जगत् ... रेखा का परिचय था उसके कोने कोने में अपना व्याकुल ... हृदय लेकर वह भटकती रही।

रेखा व्यग्रभाव से अपना मन चारों ओर दौड़ाती रही। इतने में उसके नेत्रों के समक्ष जाग्रत हो आई वही युग-युगान्तर की विराट् कर्मशाला—वही प्राचीन काल के शान्त, स्निग्ध, तपोवन। वह उस परम पुण्य मुहूर्त का स्वप्न देखने लगी जब नर-नारी हवन-कुण्ड में अग्नि जलाकर इस प्रकार ध्यानमग्न हो जाते थे कि उनका बाह्य

शान सर्वथा विलुप्त हो जाता था। यह सुखस्वप्न देख लेने के बाद उसकी दृष्टि के समक्ष उपस्थित हुआ अयोध्या का वही राजप्रासाद, वही राजमार्ग—राजप्रासाद का परित्याग करके जिस मार्ग से राजलक्ष्मी भिखारिणी का वेश धारण कर वन को चली थीं। देखते ही देखते यह दृश्य भी उसके दृष्टि-पथ से तिरोहित हो गया। अब रेखा के सामने एक दूसरा दृश्य आया। पञ्च पाण्डव वन वन में घूम रहे हैं, साथ में हैं भिखारिणी का वेश धारण किये हुए द्रुपदनन्दिनी! नारी पुरुष का मुँह देखकर युग युग से किस प्रकार का त्याग नहीं स्वीकार करती आ रही है! और निर्मम पुरुष नारी के इस त्याग के बदले में कोई भी ऐसी सत्ता नहीं रखता, जिसे वह अपनी कह सके। हाय नारी, कुरुक्षेत्र के समरभूमि में देवी सुभद्रा सन्तान-शोक भूलकर आहतों की सेवा के निमित्त किस प्रकार अपने आपको उत्सर्ग कर सकी थीं। ऐ नारी, ऐ युग युग की सेविका, दुःखी के प्रति, दीन के प्रति अपने हृदय की इस प्रकार की कृपा अर्पित करके भी तू पुरुष पर विजय नहीं प्राप्त कर सकी!

विजय! विजय प्राप्त करना तो बहुत बड़ी बात है; तू भला पुरुष के हृदय के एक कोने में ज़रा-सा आसन बिछा-कर बैठ तो पाती! इतना करके भी इस प्रकार की उपेक्षा, इस प्रकार की अवहेलना में पड़ी हो तुम। तुम युगयुगान्तर से समाज की भृकुटि-भङ्गी, पुरुष के स्वार्थ के प्रबल पोषण से अपने आपको कातर, जर्जर, करके भी......।

तेरहवाँ परिच्छेद

साँझ होने पर रेखा की खोज की गई। वह मिली नहीं। बँगले के पास से होकर भिन्न भिन्न गाँवों की ओर जितने भी रास्ते गये थे, अहीन्द्र उन सभी में घूम आया। मिसेज़ बोस व्याकुल नेत्रों से रास्ता देखती रहीं। रात्रि गम्भीर हुई, धीरे धीरे और भी गम्भीर हुई...किन्तु कहाँ है रेखा!

भटकते भटकते अहीन्द्र जब थककर चूर हो गया तब लौटकर उसने सूचना दी कि रेखा का कोई पता नहीं है। केवल एक दूकानदार ने बतलाया है कि दिन ढलते ढलते एक परम सुन्दरी स्त्री इस मार्ग से होकर इसी ओर गई है, बहुत ही द्रुतवेग से वह बढ़ती जा रही थी।

मिसेज़ बोस के दोनों नेत्रों में जल भर आया। उन्हें सान्त्वना देकर प्रिंस समझाने लगे। अहीन्द्र हताश हृदय से रेखा के कमरे में आया। उसके बिस्तर आदि उलट-कर, झाड़ झाड़कर तथा सन्दूक और अलमारी खोलकर ध्यान से देखने लगा कि कहीं कुछ लिखकर वह रख गई है या नहीं।

टेबिल पर एक पैड रक्खा था। उसे हटाते ही एक चिट्ठी मिली। अहीन्द्र ने वह चिट्ठी उठा ली। वह तो रेखा के ही अक्षरों में थी! चिट्ठी लेकर वह चिराग़ के सामने बैठा। रेखा ने लिखा था—

"मा,

"मेरी बात नहीं सुनी। इस चञ्चल, गर्हित आमोद में पड़कर नारीत्व का जो कुछ अवशेष है उसे भी इस प्रकार के निन्दित अपमान की कालिमा लपेटकर काला कर रही हो। करो।

"हम तुम एक साथ रहें, यह सम्भव नहीं है। तुम समाज की यह क्रोधमयी दृष्टि, यह उपेक्षा सह सकती हो, सहती रहो। मुझसे तो यह नहीं सहा जायगा। तुम इन सब भोग-विलास के पीछे दीवाने होकर घूमनेवाले युवकों की मुसकान, हँसी-ठट्ठा और कटाक्ष के लिए कंगालिन हो। मैं इस प्रकार के लोगों से घृणा करती हूँ। इन लोगों की नीचतापूर्ण वासना की दासी होकर रहने की अपेक्षा मृत्यु मुझे अधिक प्रिय है।

"तुम्हारे ऊपर मुझे क्रोध आता है इसलिए कि तुमने मुझे इस प्रकार क्यों जन्म दिया है। यदि मेरा इतना बड़ा दुर्भाग्य न होता कि मैं तुम्हारी कन्या होकर जन्म ग्रहण करती तो आज मैं इस तरह की अग्नि में जल जलकर राख न होती।

"तुम्हारी अवस्था पर मुझे करुणा भी आती है। दुर्भागिनी नारी, क्या देकर तुमने क्या प्राप्त किया है? जो आजीवन...! आज भी किस वस्तु की आशा से तुम इन लोगों के द्वार पर फेरी दिया करती हो? इस करुणा से द्रवीभूत होकर ही इस लाख के गृह से तुम्हारा उद्धार करने के लिए मैं इतना झुकी थी। किन्तु तुमने मेरी बात पर कर्णपात नहीं किया। तुम्हारे अदृष्ट में क्या बदा है, इस बात पर ध्यान जाते ही मेरा हृदय काँप उठता है।

"सोचा था कि इन प्राणों को अब न रहने दूँ। किन्तु

बाद को फिर मन में आया कि मैं मरूँ क्यों। तुम्हारे पाप का प्रायश्चित्त मैं करूँ! इससे लाभ? तुम्हारे हृदय पर तो इसका ज़रा भी प्रभाव पड़ेगा नहीं। तुम तो बिलकुल अन्धी हो, मुझसे भी अधिक दुर्भागिनी हो। यदि मैं यह समझती कि मेरे प्राण दे देने पर तुम्हारा मन बच सकता है, तुम्हारा नारीत्व जाग्रत हो सकता है, तो मैं प्रसन्नता-पूर्वक अपने प्राण त्याग देती। किन्तु तुम्हारा मन, तुम्हारा हृदय, जागनेवाला नहीं है। इसी लिए मैंने मृत्यु की शरण नहीं ली।

"एक बात है। मरने के सम्बन्ध में सङ्कल्प-विकल्प करते करते तथा इस सम्बन्ध की भिन्न भिन्न समस्याओं पर विचार करते करते मैं मार्ग का सन्धान पा गई हूँ। इतनी बड़ी यह पृथिवी है। इस पर मुझसे भी अधिक आतुर, मुझसे भी अधिक असहाय लाख लाख करोड़ करोड़ पड़े हुए हैं। इन हाथों से उन्हीं सबकी सेवा करूँगी। मेरे हृदय में जो दीपक जला है उसी के प्रकाश से और भी किसी के हृदय का ज़रा भी अन्धकार दूर कर सकूँ, यही मेरे जीवन का लक्ष्य है। समाज मुझे नहीं मानता, परन्तु मैं समाज से मनवा कर ही रहूँगी। एक वह भी दिन आवेगा, जब समाज इस तुच्छ और बहुत ही निन्दनीय रेखा को उज्ज्वल लेखा के समान अपने वक्षःस्थल पर धारण करेगा। इस जीवन को केवल एक पुरुष की इच्छापूर्ति के लिए ही न फँसा रखकर मैं विश्व की सेवा के लिए उसका उत्सर्ग करने चली हूँ।

"अब भी लौट आओ, मेरी दुर्भागिनी मा। तितली की तरह एक फूल पर से दूसरे फूल पर उड़ते फिरना नारी का कार्य नहीं है। नारी के हृदय में नीचता या स्वार्थ का स्पर्श तक न होने देना चाहिए। जिन्हें तुम अपना मित्र समझती हो वे तुम्हें किस दृष्टि से देखते हैं, किस वस्तु की आशा से तुम्हारे आस-पास मँड़राते फिरते हैं, इस पर विचार करके तुम अब भी लौट आओ। मा मेरी, तुम इस तरह पल पल पर जो अपने नारीत्व की हत्या कर रही हो, यह मैं अपनी आँखों से नहीं देख सकती।

"किसी दिन भी जब तुम इस मार्ग से लौट सकोगी तब देखोगी कि रेखा तुम्हारे पास ही है। नहीं तो रेखा चिरकाल के लिए किसी अज्ञात दिशा की ओर निकल रही है। तुम्हारी अब रेखा से कभी भेंट नहीं हो सकेगी।

—रेखा"

आदि से अन्त तक चिट्ठी पढ़ जाने के बाद अहीन्द्र का हृदय धक से हो उठा। अपनी ज़रा-सी भूल के कारण उसने कैसा उत्तम रत्न खो दिया। इसके सामने समाज! धिक्कार से अहीन्द्र का हृदय परिपूर्ण हो उठा। एक बार आह भर कर वह नीचे उतर आया। आकर उसने चिट्ठी मिसेज़ बोस के सामने फेंक दी और गाढ़ स्वर से वह कहने लगा—यह चिट्ठी देखिए मिसेज़ बोस, रेखा चली गई। वह जीवित है। परन्तु कहाँ है, यह कोई नहीं जानता। आप लोग यह चिट्ठी पढ़िए, पढ़कर जैसा उचित जान पड़े वैसा कीजिएगा। किन्तु मैं आज से छुट्टी ले रहा हूँ। इतना विशाल हृदय आज मेरी ही निर्बुद्धिता के कारण अज्ञात दिशा की ओर यात्रा करने के लिए बाध्य हुआ है।...मैं भी उसी मार्ग की ओर चल रहा हूँ। यदि मैं उसे पा गया, यदि मैं उसे यह समझा सका कि अहीन्द्र उसके लिए क्षुद्र समाज की हीन भृकुटि की उपेक्षा कर सकता है, यदि किसी दिन हँस कर वह फिर मेरी ओर ताक सकी, तो मैं भी इस घर और बस्ती आदि की चिन्ता कर सकूँगा। यदि ऐसा न हो सका तो रेखा के ही समान मैं भी निरुद्देश भाव से उसी का साथी बनने की आशा से भटकता फिरूँगा।

अहीन्द्र आँधी की तरह निकल गया। रेखा की चिट्ठी हाथ में लेकर मिसेज़ बोस प्रिंस की ओर ताकने लगीं। व्याकुलतामय आग्रह के साथ प्रिंस ने मिसेज़ बोस से कहा—यह चिट्ठी पढ़िए तो। मिसेज़ बोस रेखा की चिट्ठी पढ़ने लगीं। आँसुओं के वाष्प से उसके दोनों ही नेत्र अस्पष्ट थे, धुँधले हो गये थे।

इति

किसान और ज़मींदार

लेखक—वेंकटेशनारायण तिवारी

प्रान्तीय कौंसिलों के चुनाव में लगभग ३० लाख वोटर भाग लेंगे, जिनमें ७० फ़ीसदी किसान हैं। जो लोग इन कौंसिलों के लिए खड़े हो रहे हैं वे सभी अपने आपको किसानों का शुभचिंतक घोषित कर रहे हैं। उसके वादों के परखने के लिए वस्तुस्थिति का ज्ञान ज़रूरी है। इसलिए हम इस लेख को छाप रहे हैं क्योंकि इसमें यह दिखाने का यत्न किया है कि इस प्रान्त में किसानों की क्या स्थिति है और क्यों है?

हमारे प्रान्त में नये शासन-विधान के अंतर्गत चुनाव आगामी फ़रवरी में होगा। प्रांतिक कौंसिल और एसेम्बली के लिए ५२ और २२८ अर्थात् कुल मिलाकर २८० मेम्बर चुनने के लिए प्रांत के लगभग ३० लाख से अधिक वोटर इस चुनाव में भाग ले सकेंगे। वोटरों में ७० फ़ी सदी से अधिक किसान हैं। अतएव इस चुनाव में जो लोग मेम्बरी के लिए उम्मीदवार हैं वे सब किसानों के वोट पाने के लिए अपने को किसानों के शुभचिंतक सिद्ध करने की चेष्टा और नई व्यवस्थापिका सभाओं में उनकी दशा सुधारने की तरह-तरह की तजवीज़ों को पेश करने के वादे कर रहे हैं। इन उम्मीदवारों में कुछ तो स्वतंत्र रूप से खड़े हैं, और अनेक किसी-न-किसी पार्टी की ओर से खड़े किये गये हैं। प्रांत में इस समय अनेक पार्टियाँ भी चुनाव के दंगल में भाग लेने के लिए ताल ठोंक रही हैं। यों तो अनेक दलों की सृष्टि हो चुकी है, लेकिन उनमें से उल्लेखनीय केवल चार दल हैं। एक तो कांग्रेस है। दूसरा दल श्री मालवीय जी का है, जिसका नाम कांग्रेस नेशनेलिस्ट दल है। तीसरा अर्द्ध-सरकारी दल है, जो नेशनल ऐग्रीकलचरिस्ट दल के नाम से प्रसिद्ध है। चौथा दल लिबरल दल है, जिसके इस प्रांत में नेता श्री चिंतामणि और श्री हृदयनाथ कुंजरू हैं। ये चारों दल राजनैतिक दल हैं। इनके अतिरिक्त दो साम्प्रदायिक दल भी हैं। एक हिंदू-सभा और दूसरी मुस्लिम-लीग। चार राजनैतिक और दो साम्प्रदायिक दलों की किसान-संबंधी नीति का वर्णन उन दल-विशेषों के चुनाव-संबंधी घोषणा-पत्रों में पाठकों को मिलेगा। यहाँ उनके उल्लेख और विवेचन की आवश्यकता नहीं है। इस लेख में किसान और ज़मींदारों की समस्या का संक्षेप में निरूपण करना ही हमारा ध्येय है। वास्तविक परिस्थिति को जानकर पाठक स्वयं विभिन्न दलों के किसान-संबंधी घोषणाओं की सारता या निस्सारता का अंदाज़ा लगा लेंगे।

(२)

किसानों की समस्या है क्या? इसको समझने के लिए यह ज़रूरी है कि हम उस समस्या के चारों पहलुओं को अपनी दृष्टि के सामने रखने की सदा चेष्टा करें। किसी पहलू-विशेष ही पर ध्यान देने और अन्य पहलुओं को भुला देने से काम न चलेगा। समस्या के चार पहलू हैं—(१) राष्ट्र, (२) प्रांत और देश की जनता, (३) ज़मींदार और (४) किसान। पराधीन-देश में राष्ट्र और जनता के हितों में परस्पर विरोध होना स्वाभाविक है, लेकिन जहाँ स्वराज्य या स्वायत्त-शासन है, अर्थात् जहाँ शासन की बागडोर जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में होती है और शासन की नीति को लोकमत निर्धारित और प्रभावित किया करता है, वहाँ जनता और शासक-वर्ग के हितों में प्रत्यक्ष विरोध नहीं रह सकता, क्योंकि जनता और राष्ट्र उस दशा में समानार्थी शब्द हो जाते हैं। भारतवर्ष में अभी तक शासन की बागडोर जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में न थी; भारत पराधीन था और अँगरेज़-सरकार हुकूमत करती थी। वह भारतीय जनता के सामने अपने कार्यों के लिए जवाबदेह न थी। कहते हैं कि नया शासन-विधान प्रांतों में स्वराज्य स्थापित कर देगा। इस विषय में गंभीर मतभेद है। बहुतों का कहना है कि प्रान्तिक स्वराज्य का स्थापन तो दूर रहा, नये विधान से अँगरेज़ी प्रभुता और भी बलशालिनी हो जायगी। दो

में से कौन-सा मत ठीक है, इसका ज़िक्र करना इस लेख की सीमा के परे है। समय स्वयमेव इस प्रश्न का उत्तर दे देगा। यहाँ पर मैं यही मानकर लिख रहा हूँ कि शासक-वर्ग और जनता के हित समान हैं। इस दृष्टि से समस्या के चार पहलू नहीं रह जाते। अतएव उसके केवल तीन ही पहलुओं पर विचार करना होगा। आइए, एक-एक पहलू पर सरसरी तौर से हम नज़र डालें, ताकि समस्या के वास्तविक रूप का हमें कुछ सही-सही अंदाज़ा लग जाय।

(३)

इस सम्बन्ध में पहला प्रश्न यह है कि सूबे की ज़मीन का मालिक कौन है? ज़मीन किसान की है या ज़मींदार की अथवा राष्ट्र की? भिन्न-भिन्न देशों में ज़मीन के भिन्न-भिन्न मालिक हैं। इंग्लैंड में अधिकांश ज़मीन ज़मींदारों के कब्ज़े में है। फ़्रांस आदि देशों में ज़मीन का मालिक खुद किसान है। लेकिन भारतवर्ष में अनादिकाल से ज़मीन पर राष्ट्र का क़ब्ज़ा रहा है। खेत की पैदावार का एक अंश राष्ट्र सदा से लेता आया है। यह कर नहीं है, यद्यपि इसे भूल से लोग 'भूमिकर' कहते हैं। कर आमदनी पर लिया जाता है, लेकिन भूमिकर वास्तव में ज़मीन का किराया है। कर और किराये में व्यापक अन्तर है। इसी लिए अँगरेज़ी में 'भूमिकर' को लैंड-टैक्स नहीं कहते; उसे भूमि का रेंट या किराया कहते हैं। काश्तकार खेत को किराये पर जोतने के लिए लेता है। किराये की रक़म समय-समय पर निरंतर बदलती रही है। जिन शर्तों पर ज़मीन काश्तकार को जोतने के लिए दी जाती है उनमें भी समय के अनुसार रद्दोबदल होती आई है। लेकिन जहाँ सब कुछ बदल गया, वहाँ राज्य या राष्ट्र का भूमि पर अधिकार अखंड बना रहा। समय पलटा, क्रान्तियाँ हुईं, सिंहासन उलटे, कुछ का कुछ हो गया, लेकिन जैसे आर्य-शासन में, वैसे ही मुग़ल या अँगरेज़-शासन में ज़मीन पर राष्ट्र का अधिकार जैसे का तैसा बना रहा। आधुनिक विचारधारा भी इस भारतीय सिद्धान्त का प्रतिपादन करती है। जैसे जंगलों और नदियों पर राष्ट्र ही का अधिकार भारत में माना जाता है, वैसे ही भूमि पर भी राष्ट्र ही का अधिकार राजा-प्रजा स्वीकार करती आई है। इसलिए भारत में किसान-ज़मींदार की समस्या पर विचार करते समय हमें इन दो स्वयं-सिद्ध सिद्धान्तों को याद रखना चाहिए—(१) ज़मीन राष्ट्र की है, किसान राष्ट्र को ज़मीन जोतने के लिए रेंट देता है। ... का मालिक राष्ट्र है। भूमि पर राष्ट्र के अधिकार क... है देश की जनता का अधिकार। इस प्रकार किसान ... हिक रूप से ज़मीन के मालिक कहे जा सकते हैं। इ... से मज़दूर, किसान और समाज के अन्य प्राणी भी सा... रूप से ज़मीन के स्वामी हैं। ऐसी दशा में ज़मींद... किसी तरह भी 'भूपति' या 'महीपति' नहीं कहे जा स... वे किसानों से ज़मीन का किराया वसूल करनेवाले स... ठेकेदार-मात्र हैं।

भारत में सब प्रान्तों में किसानों से खेतों के रें... वसूल करने की एक-सी प्रथा नहीं है। कई प्रान्तों ... रैयतवारी प्रथा है। वहाँ किसान ज़मींदार को नहीं, सरकार को लगान देता है। हमारे सूबे में तथा बि... और बंगाल में रैयतवारी-प्रथा नहीं है। यहाँ ज़मींदारी-प्र... है। सरकार खुद लगान नहीं लेती। उसके नाम पर ज़... दार किसान से लगान लेते हैं। लगान वसूल करने ... ठेका सरकार ने उनको सौंप दिया है। यह ठेका पुश्तै... है। दूसरे के हाथ लगान वसूल करने के इस अधिक... को ज़मींदार बेच भी सकता है। जब इस प्रान्त ... अँगरेज़ी अमलदारी क़ायम हुई तब लगान का ९० ... सदी सरकार ले लेती थी और ज़मींदारों के पास १० ... सदी रह जाता था। अब सरकार ४० या ५० ... सदी ही से संतुष्ट है और शेष ज़मींदारों की जेब में ... जाता है। लगान का कितना अंश सरकार के पास पहुँचत... है और कितना ज़मींदारों को मिलता है, इससे ज़मींदा... की भूमि पर मिलकियत का दावा नहीं सिद्ध होता है, क्योंकि सरकार ने उन्हें ज़मीन नहीं दी, केवल लगा... वसूल करने का अधिकार दिया है। म्यूनिसिपैलिटि... और शहरों के इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट लोगों को विशेष शर्तों प... मकान बनाने के लिए ज़मीनें किराये पर दे देते हैं। उ... ज़मीनों पर मकान बनवानेवालों से बोर्ड का ट्रस्ट चाहे खु... किराया वसूल कर ले या उसको वसूल करने का ठेका एक या एक से अधिक आदमियों को दे दे। ठीक यही बात ज़मींदारों के विषय में भी लागू है। ज़मींदार भूमि का स्वामी नहीं है। वह किसानों से लगान वसूल करनेवाला पुश्तैनी ठेकेदार है। यहाँ इतना कह देना आवश्यक है

कि ऊपर जो कुछ कहा गया है वह सिद्धान्तः सही है, यद्यपि ग़दर के बाद ज़मींदारों ने क़ानून के द्वारा अपने अधिकार बहुत कुछ बढ़ा लिये हैं। लेकिन ज़मींदारी-प्रथा का प्रधान लक्षण है किसानों से लगान वसूल करने का अधिकार और मालगुज़ारी अदा करने की ज़िम्मेदारी। लगान का जो अंश सरकार को मालगुज़ारी के रूप में मिलता है वही वास्तव में खेत का असली किराया है। और लगान का जो अंश ज़मींदार के पास रह जाता है वह है किसान से सरकारी मालगुज़ारी वसूल करने की उजरत या पारिश्रमिक।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे तीन बातें साफ़ हो जाती हैं—

(१) ज़मीन पर सरकार या राष्ट्र का क़ब्ज़ा है।

(२) किसान को सरकार से किराये पर जोतने के लिए ज़मीन मिली है।

(३) ज़मींदार सरकार की ओर से किसानों से खेतों का सरकारी किराया या लगान वसूल करता है। उपर्युक्त सिद्धान्तों को सूबे के सभी दल नहीं स्वीकार करते। ज़मींदार-दल का दावा है कि ज़मींदार ही ज़मीन का मालिक है। कुछ लोगों का कहना है कि अनादिकाल से भारत में ज़मीन पर किसान का अधिकार चला आया है, यद्यपि अँगरेज़ी अमलदारी में किसान के हाथ से यह अधिकार छिन गया। और मैं यह स्वीकार करता हूँ कि तीनों ही मतों के समर्थन में बहुत कुछ कहने की गुञ्जाइश है। लेकिन जिन तीन सिद्धान्तों का ऊपर उल्लेख है वे ही स्थूल रूप से सही जँचते हैं। यह दूसरी बात है कि सविस्तर निरूपण के बाद उन सिद्धान्तों की व्याख्या में इधर-उधर काट-छाँट करने की ज़रूरत पड़े।

(४)

अब आइए, किसानों की माली हालत पर एक सरसरी नज़र डालें। सन् १९३१ में सूबे की आबादी ४ करोड़ ८४ लाख थी, जिसमें से ८० फ़ी सदी खेती के आश्रित थी। सन् १९०१ में सूबे की आबादी ४ करोड़ ७३ लाख थी। इस हिसाब से १९०१ से १९३१ तक, अर्थात् ३० साल में, आबादी में ११ लाख की वृद्धि हुई। लेकिन इसी अवधि में खेती पर आश्रित आबादी ६४ फ़ी सदी से बढ़कर ८० फ़ी सदी हो गई। इसका अर्थ यह है कि १९०१ के मुक़ाबिले में १९३१ में ६१ लाख अधिक प्राणियों का ज़मीन पर भार बढ़ गया। जहाँ १९०१ में ३ करोड़ १६ लाख प्राणियों का भरण-पोषण खेती के द्वारा होता था, वहाँ १९३१ में उनकी संख्या ३ करोड़ ७७ लाख हो गई। इसका मुख्य कारण यह है कि अन्य उद्योग-धन्धों में इस तीस साल के अन्दर लगे हुए प्राणियों की तादाद निरन्तर घटती गई। उदाहरण के लिए उद्योग-धन्धे में जहाँ १९०१ में ६२ लाख आदमी लगे थे, वहाँ १९३१ में वे घटकर ५१ लाख ही रह गये।

इस तरह जहाँ पिछले ३० साल में भूमि पर आश्रित प्राणियों की संख्या १९०१ में ३ करोड़ १६ लाख से बढ़कर १९३१ में ३ करोड़ ७७ लाख हो गई, वहाँ इस अवधि में खेती के रक़बे में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई। जहाँ सन् १९०० में ३ करोड़ ४५ लाख एकड़ जोते-बोये गये थे, वहाँ सन् १९३० में ३ करोड़ ३७ लाख एकड़ की खेती हुई, अर्थात् ८ लाख एकड़ की कमी हुई, यद्यपि १९०१ के देखते हुए १९३१ में दो-फ़सली रक़बे में ३ लाख की वृद्धि थी। इस तरह लगभग ५ लाख एकड़ की १९३० में कमी रही। इधर खेती पर आश्रित आबादी में ६१ लाख प्राणियों की वृद्धि, उधर खेती के रक़बे में ५ लाख एकड़ की कमी! खानेवालों की संख्या बढ़ गई, लेकिन पैदावार का रक़बा घट गया! इससे साफ़ ज़ाहिर है कि ३० साल में किसानों की दशा १९०१ को देखते हुए सुधरी नहीं, बहुत कुछ बिगड़ गई।

इतना ही नहीं, दूसरी दिशाओं में भी उनकी माली हालत ख़राब होती गई। सन् १९०१ में

(१) गन्ने की खेती १२ लाख २३ हज़ार एकड़ में,
(२) कपास की खेती १० लाख ५० हज़ार एकड़ में,
(३) पोस्ता (अफ़ीम) की खेती ३ लाख ६३ हज़ार एकड़ में,
(४) नील की खेती २ लाख ६३ हज़ार एकड़ में,
अथवा कुल २८ लाख ९९ हज़ार
यानी २९ लाख एकड़ में हुई,

लेकिन १९३० में
(१) गन्ना १३ लाख ४९ हज़ार एकड़ में,
(२) कपास ९ लाख १९ हज़ार एकड़ में,
(३) पोस्ता (अफ़ीम) ४० हज़ार एकड़ में और
(४) नील ५७ हज़ार एकड़ में, अथवा
कुल २३ लाख ६५ हज़ार एकड़ में बोया गया।

ऊपर के आँकड़ों से यह स्पष्ट है कि तीस साल में जहाँ खेती का रक़बा ६१ लाख एकड़ घटा, वहाँ बहुमूल्य जिन्सों की पैदावार में ५॥ लाख एकड़ की घटी हुई और इस प्रकार १९०१ के मुक़ाबिले में १९३० में काश्तकारों की आमदनी काफ़ी घट गई। आमदनी में कमी का पता एक और बात से भी चलता है। १९०१ में जहाँ २ करोड़ ४९ लाख एकड़ में गेहूँ, चावल, चना और जौ बोया गया था, वहाँ १९३१ में ये अनाज केवल २ करोड़ २५ लाख एकड़ में बोये गये। यहाँ भी ३१ लाख एकड़ की कमी ३० साल में हो गई। सारांश यह निकलता है कि आबादी बढ़ी, खेती घटी और आमदनी और भी कम हो गई।

यह सब हुआ, परन्तु लगान १९०१ से १९३० तक निरन्तर बढ़ता ही गया। नीचे की तालिका से यह बात स्पष्ट हो जायगी—

सन्	लगान	आनुपातिक संख्या
१८८९	१२ करोड़ १२ लाख रुपया	
१९००-०१	१२ करोड़ ७१ लाख ”	यानी १००
१९२९-३०	१९ करोड़ ४० लाख ”	यानी १५३

अर्थात् १९०० से १९३० तक लगान में लगभग ७ करोड़ रुपया यानी ५३ फ़ी सदी की वृद्धि हुई। आगरा-प्रान्त में मौरूसी काश्तकारों के लगान में इस अवधि में ३२ सैकड़े और अवध के मौरूसी किसानों के लगान में २० सैकड़े की वृद्धि हुई। ग़ैर-मौरूसी किसानों के लगान में तो अंधाधुन्ध वृद्धि हुई। अवध में ऐसे किसानों का लगान १००) के स्थान में १५५) और आगरे में १००) के बजाय २१८) हो गया। इस बढ़ती का भी कोई ठिकाना है!

(५)

इसी सिलसिले में, आइए, ज़मींदारों की आमदनी और मालगुज़ारी-संबंधी देन का ब्योरा देख लें। सन् १९०१ में ज़मींदारों को किसानों से लगान और सिंचाई की मदों में १२ करोड़ ७१ लाख रुपया पाना था, जिसमें से उन्होंने सरकार को ६ करोड़ २३ लाख रुपया मालगुज़ारी में अदा किया। इस तरह ज़मींदारों को १९०१ में ज़मींदारी से ६॥ करोड़ रुपया के लगभग बचत हुई। सन् १९३१ में लगान और सिंचाई की निकासी १९ करोड़ ४० लाख रुपया और मालगुज़ारी ७ करोड़ ८ लाख रुपया थी। अर्थात् ज़मींदारों को १२ करोड़ ३२ लाख रुपये का मुनाफ़ा हुआ। दूसरे शब्दों में, १९०१—१९३१ की अवधि में लगान में ६ करोड़ ६९ लाख रुपये की वृद्धि हुई, जिसमें से सरकार को केवल ८५ लाख रुपये अधिक मालगुज़ारी में मिले; बाक़ी ५ करोड़ रुपये से अधिक का मुनाफ़ा ज़मींदारों की ज़ेबों में गया। लगान में जो वृद्धि इन ३० सालों की अवधि में हुई उसके प्रत्येक सौ रुपये में से सरकार को १३) तथा ज़मींदारों को ८७) मिले। वृद्धि का १ हिस्सा राष्ट्र को और ७ हिस्से लगान वसूल करनेवाले ज़मींदारों को प्राप्त हुए। जहाँ लगान में ५३ फ़ी सदी की वृद्धि हुई, वहाँ मालगुज़ारी में केवल १३ फ़ी सदी का इज़ाफ़ा हुआ! स्पष्ट है कि किसान की कमाई का पूरा-पूरा लाभ केवल ज़मींदार उठाते हैं। बालाई-बालाई वे ले जाते हैं, महज़ छाछ से राष्ट्र और किसान को संतोष करना पड़ता है। यह सब उचित समझा जाता है, क्योंकि क़ानून ने ऐसा होना जायज़ क़रार दे दिया गया है। किसान भूखा मरे तो मरे, उसके पास तन ढँकने को कपड़ा हो या न हो, इसकी क़ानून को क्या परवा? संतोष की बात केवल इतनी ही है कि जो क़ानून बना सकता है वही उसे रद या बदल भी सकता है, और सम्भव है कि आज का न्याय कल का अन्याय माना जाने लगे।

(६)

१९०१ से १९३० तक लगान में वृद्धि हुई। जैसा ऊपर कहा गया है, १९०१ में लगान १२ करोड़ ७१ लाख रुपया से बढ़कर १९३० में १९ करोड़ ४० लाख रुपया हो गया।

१९००-०१ में लगान की रक़म १२ करोड़ ७१ लाख रुपया थी। सन् १९१४-१५ में वह १५ करोड़ ९३ लाख हो गई। अर्थात् १९००-०१ से १९१४-१५ तक की १४ साल की अवधि में उसमें ३ करोड़ २२ लाख रुपया की वृद्धि हुई। १९१४-१५ से १९३० तक में वह १९ करोड़ ४० लाख रुपया हो गई, अथवा १९१५ और १९३० के बीच में ३ करोड़ ४७ लाख रुपया की वृद्धि हुई। इस शताब्दी के प्रथम १५ साल में लगान में जहाँ ३ करोड़ २२ लाख रुपया की वृद्धि हुई, वहाँ पिछले १५ साल (यानी १९१५ से १९३० तक) में उसमें ३ करोड़ ४७ लाख रुपया का इज़ाफ़ा हुआ।

इसका क्या कारण था? आबादी में वृद्धि और

अनाज के भाव का चढ़ते जाना—इन दो कारणों से ज़मीन की माँग बढ़ने लगी और ज़मीन के लिए बढ़ी हुई माँग से लाभ उठाते हुए ज़मींदार लगान में इज़ाफ़ा करते गये। अनाज का औसत भाव सन् १८९६-१९०० में २ रुपया १२ आना मन था। वही सन् १९११-१५ में ३ रुपया ५ आने और १९१६-२८ में ४ रुपया १२ आने हो गया। उसके बाद १९२८-३० में भाव तेज़ी से गिरने लगा। मई १९३१ में अनाज का औसत भाव फ़ी मन २ रुपया ३ आने था। कहाँ १९२८ का ४ रुपया १२ आने मन और कहाँ १९३१ का २ रुपया ३ आने मन! १९३१ में भाव के क्रांतिकारी गिरने का पूरा-पूरा अंदाज़ा हमें तब लगता है जब हम यह देखते हैं कि जितना अनाज हमें १९२० में ६ रुपये में मिलता था, उतने ही अनाज के लिए हमें सन् १९२८-२९ में ५ रुपया ९ आना ७ पाई देना पड़ता था। लेकिन सन् १९३०-३१ में उसका दाम २ रुपया ३ आने ३ पाई हो गया। इतना तो सस्ता ग़ल्ला बरसों से नहीं हुआ था। १८९१-९५ में ग़ल्ले का लगभग वही भाव था जो १९३०-३१ में था। गत वर्ष सरकार ने एक गुप्त पत्र कुछ ज़मींदारों के पास भेजा था। उसमें सरकार ने यह स्वीकार किया है कि सन् १९३०-३१ में अनाज का जो भाव था वही १९३५ तक प्रायः बना रहा। पिछले ५-६ साल से अनाज का वही भाव चला आता है जो सन् १८९१-९५ में था। नीचे की तालिका से पिछले ४० साल में भाव के चढ़ाव-उतार का पता पाठक को आसानी से लग जायगा। तालिका[1] के आँकड़े इस आधार पर तैयार किये गये हैं कि जितने अनाज के लिए १८७३ में १००) रुपया देना पड़ता था उतने ही अनाज का दाम—

सन् १८९१-९५ में १२८), सन् १९०१-०५ में १३६), सन् १९११-१५ में १९४), सन् १९२१-२५ में २९४), सन् १९२६-२८ में ३००), और सन् १९३०-३१ में १२८) हो गया।

अनाज के भाव में इस आकस्मिक और अंधाधुन्ध उतार से किसान एकदम बरबाद हो गया! इस सस्ती के कारण सन् १९३१ से सरकार ने लगान में ४ करोड़ १२ लाख की छूट मंज़ूर की। यह काफ़ी है या नहीं काफ़ी, इसका निर्णय करना कुछ कठिन नहीं है। सन् १८९६-१९०० में अनाज का औसत भाव २ रुपया १२ आने मन था। सन् १९००-१९०१ में लगान की सालाना रक़म १२ करोड़ ७१ लाख रुपया थी, जिसको किसान अपनी पैदावार में से ४ करोड़ ६२ लाख मन ग़ल्ला बेचकर अदा कर सकता था। सन् १९११-१५ में ग़ल्ले का औसत भाव ४ रुपया ५ आने मन और सन् १९१५ का लगान १५ करोड़ ९३ लाख रुपया था। इसकी अदायगी के लिए ४ करोड़ ८१ लाख मन अनाज काफ़ी था। लेकिन सन् १९३०-३१ में भाव के गिरने के कारण १९ करोड़ ४० लाख रुपया के लगान को अदा करने के लिए किसान को ८ करोड़ ८१ लाख मन अनाज बेचना पड़ता। सन् १९३१ से लगान में ४ करोड़ १२ लाख रुपये की छूट किसान को मिली। इसलिए उसका लगान घटकर १५ करोड़ ३२ लाख रुपया रह गया। और इस घटे हुए लगान को अदा करने के लिए भी किसान को अनाज की ३१-३५ वाली दर के हिसाब से ६ करोड़ ९६ लाख मन ग़ल्ला निकालना चाहिए। भाव यद्यपि आज दिन वही है जो १९०१ में था, यद्यपि तब से अब आबादी बढ़ गई है और भूमि पर अधिकतर प्राणी आश्रित हैं और यद्यपि अब १९०१ के मुक़ाबिले में कम ज़मीन भी जोती जाती है, तथापि किसान को आज लगान अदा करने के लिए १९०१ की तुलना में २ करोड़ ३४ लाख मन अधिक ग़ल्ला निकालना पड़ेगा। इसी लिए हम कहते हैं कि लगान में सरकारी छूट नाकाफ़ी है। यही कारण है कि किसान साल-ब-साल अपना पूरा-पूरा लगान नहीं अदा कर पाता और बक़ाया लगान का भूत उसके सिर पर नाचा करता है। १९२०-३० के आँकड़े यदि देखे जायँ तो पता लगेगा कि सालाना लगान की रक़म का सिर्फ़ ६३ फ़ी सदी साल में वसूल हो सका और बक़ाया लगान की मद में १८३ फ़ी सदी अदायगी हुई। दोनों मदों की वसूलयाबी सालाना लगान की ८४ फ़ी सैकड़ा ठहरती है। लगान की दर इतनी चढ़ी-बढ़ी है कि किसान पेट काटकर भी साल का लगान साल में नहीं अदा कर सकता। यह मेरा ही कहना नहीं है। सर गैबिन जोन्स और डाक्टर हिंगिन बाटम ने भी यह स्वीकार किया है कि पैदावार का उचित अंश किसान को नहीं मिलता। सन् १९३१ की मर्दुमशुमारी (यू० पी०) के सुपरिंटेंडेंट मिस्टर टरनर की भी राय है कि किसानों की बहुत बड़ी संख्या की दशा ख़राब है। यही

कारण है कि वह क़र्ज़ के बोझ से दब रहा है। उस पर करोड़ों का ऋण है और सूद देते-देते उसकी बधिया बैठ गई है। लगान और क़र्ज़—इन दो के भारी बोझ से उसकी कमर टूट गई है।

(७)

लगान ही का अकेले यदि रोना होता तो भी ग़नीमत थी। किसान की मुसीबतें यहीं तक सीमित नहीं हैं। उस पर तरह-तरह के प्रतिबन्ध लगे हुए हैं। वह पेड़ नहीं लगा सकता, कुँआ नहीं बना सकता, मकान के लिए तालाब से मिट्टी नहीं ले सकता, घर नहीं बनवा सकता, गाँव के गली-कूँचों में चल नहीं सकता, अपने मकान के सामने गाय-बैल नहीं बाँध सकता—जब तक उसे ज़मींदार की आज्ञा न प्राप्त हो। देहात में किसान की दशा अर्ध-दासता की दशा है। बीसवीं सदी में स्वतन्त्र होते हुए दूसरे के विकेत पर उसे नाचना पड़ता है। इस सबके होते हुए उसे ग़ैर-क़ानूनी नज़राने देकर ज़मींदार आदि ग्रहों को शान्त रखने की निरन्तर चेष्टा भी करनी पड़ती है। बेदख़ली का भय उसे हर घड़ी सताया करता है। साम्पत्तिक ग़ुलामी के जो कुछ परिणाम सम्भव हो सकते हैं उनको कोई भी सहृदय व्यक्ति आज दिन हमारे देहातों में देख सकता है। अतएव किसान की समस्या का अर्थ है उसे उसकी लूटी गई आज़ादी का वापस दिलाना, उसके बन्धनों को तोड़ना, जो उसके जीवन को तहस-नहस करने में सहायक सिद्ध हो रहे हैं, उसे पेट भर खाने और तन ढँकने के लिए कपड़े दिलाना, उसकी गाढ़ी कमाई का उचित अंश अपने जीवन-निर्वाह के लिए ख़र्च करने का अधिकार दिलाना। साँड़ों और बीजों के द्वारा जो देहाती जीवन के पुनरुत्थान का स्वप्न देख रहे हैं वे या तो किसानों की समस्या को समझते नहीं या समझते हुए अपने को इतना निर्बल मान बैठे हैं कि वास्तविक समस्या को हल करने की उन्हें हिम्मत नहीं पड़ती।

(१) किसान की समस्या तभी हल होगी जब किसान को मौरूसी हक़ मिले।

(२) पेड़ लगवाने, कुँआ खे..ाने आदि का उसे स्वतंत्र अधिकार प्राप्त हो।

(३) देहात की सड़कों, तालाबों और आबादियों पर ज़मींदार का नहीं, किन्तु पंचायत का अधिकार रहे।

(४) लगान घटाया और पैदावार के अंश के रू
वसूल किया जाय।

(५) बक़ाया लगान माफ़ कर दिया जाय।

(६) क़र्ज़ का बोझ हलका कर दिया जाय।

(७) गुप्त वोट देने की प्रथा जारी की जाय।

ऊपरी छः सुधार संभव नहीं हैं, जब तक किसान अ
प्रतिनिधियों के चुनने में आज़ादी से वोट नहीं दे सकत
यह तभी होगा जब वह गुप्त वोट दे सके। लेकिन सूबे
सरकार इसका विरोध करती है। ऐसी दशा में वोट क
को तो किसान का होगा, परन्तु वास्तव में वह होगा ज़
दार का वोट। और ज़मींदार कब चाहेंगे कि किसान उ
चंगुल से निकल जाय?

(८)

ज़मींदारों की समस्या व्यक्तियों की समस्या नहीं
लोग ज़मींदारों का प्रायः विरोध इस कारण से करते
कि उनमें से कुछ किसानों को बेतरह तंग किया करते हैं
व्यक्तिगत भलाई या बुराई की वजह से किसी संस्था-विशे
के मूलोच्छेद की माँग सार्थक नहीं मानी जा सकती। इस
तो सुधार और नियंत्रण ही की आवश्यकता सिद्ध होगी
किसी संस्था का विरोध तभी सफल होगा जब वह संस
अनावश्यक और—इससे अधिक महत्त्व की बात यह है-
राष्ट्र और समाज के लिए हानिकारक प्रमाणित हो जाय
इसी दृष्टि से कांग्रेस में आज दिन अनेक प्रभावशाली
हैं, जो ज़मींदारी-प्रथा का अंत कर देना चाहते हैं; कु
माविज़ा देकर, और कुछ बिला माविज़ा दिये। ज़मींदा
का अंत हो—इस एक बात पर दोनों का मतैक्य है। कै
वह अंत की जाय—इसमें केवल मतभेद है। पहल
सिद्धान्त का प्रश्न है, और दूसरा अंत करने के ढंग का
लेकिन जो माविज़ा देकर ज़मींदारी का अंत करना चाहते
उन्होंने माविज़ा-सम्बन्धी अनेक प्रश्नों का अभी तक को
उत्तर नहीं दिया और न माविज़ा की कोई योजना
देश के सामने आज तक रक्खी। महज़ माविज़ा, माविज़
चिल्लाने से लोकमत उनके अनुकूल नहीं हो सकता। कि
हिसाब से माविज़ा दिया जायगा? रुपया कहाँ से आयेगा
किसान पर माविज़ा की रक़म अदा करने के कारण कितन
अधिक भार बढ़ जायगा? ऐसे अनेक प्रश्न उठते हैं,
लेकिन उत्तर एक का भी अभी तक नहीं मिला। मैं भी

यह मानता हूँ कि यदि माविज़े की कोई मुनासिब तदबीर निकल आये तो ज़र्मींदारों को माविज़ा देने में कोई हर्ज नहीं है। क्या ऐसी योजना निकल सकती है? इस सम्बन्ध में मैं यहाँ इतना ही कहूँगा कि यदि ज़र्मींदारी की प्रथा का अंत वैधानिक रूप से होना संभव है तो यह आवश्यक है कि ज़र्मींदार, किसान और समाज के अन्य वर्गों के हितों को समभाव से तोल कर ही इसकी योजना बननी चाहिए। तभी लोकमत उसका समर्थन करेगा। लेकिन बहुतों की राय में यह प्रश्न भविष्य का प्रश्न है। उनका कहना है कि आज दिन ज़र्मींदारी-प्रथा के अंत करने का सवाल उठाना इतना आवश्यक नहीं है, जितना आवश्यक है उस प्रथा के सुधार का। शर्त यह है कि सुधार व्यापक और वास्तविक हो। इस पत्त के समर्थन में जो दलील दी जाती है वह यह है कि किसान के लिए यह गौण बात है कि वह लगान किसे देता है—ज़र्मींदार को या सरकारी अहलकार को। उसके लिए प्रधान प्रश्न यह है कि उसे कितना लगान देना पड़ेगा। यह मानना पड़ेगा कि ज़र्मींदारी की प्रथा का सुधार किसान की दृष्टि से आवश्यक है। क़ानून से ज़र्मींदारों ने वे अनेक अधिकार अपना लिये हैं जो पहले पंचायती अधिकार माने जाते थे। ज़र्मींदार शुरू में लगान वसूल कर मालगुज़ारी अदा करने का ठेकेदार था। यदि वही स्थिति उसकी अब हो जाय जो पहले थी तो ज़र्मींदारी के क़ायम रहते हुए भी किसान अर्धदासता की दशा से निकलकर समाज का स्वतंत्र नागरिक बन सकता है। इसी लिए कुछ लोगों की दृष्टि में ज़र्मींदारी-प्रथा के सुधार का मसला परमावश्यक है—उसके अस्तित्व के सवाल पर आगे चलकर विचार किया जा सकता है, यदि उस समय के लोग उस पर विचार करना उचित समझें।

ज़र्मींदारी की मौजूदा प्रथा सब दृष्टियों से दोषपूर्ण है। उसका कोई विरला ही समर्थक मिलेगा। ज़र्मींदारों में भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो इस प्रथा में व्यापक सुधार की आवश्यकता को अंगीकार करते हैं। इसका सबसे बड़ा दोष यही है कि यह आर्थिक दृष्टि से सर्वथा त्याज्य है। ज़र्मींदार किसान से कुछ कम १९½ करोड़ रुपये लगान के रूप में वसूल करता है। इस में से सरकारी ख़ज़ाने में ७ करोड़ रुपये से कुछ अधिक मालगुज़ारी के नाम से जमा हो जाता है। बाक़ी १२½ करोड़ रुपया ज़र्मींदारों के पास रह जाता है। इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ यह है कि ७ करोड़ रुपये के राजस्व को वसूल करने के पारिश्रमिक के रूप में ज़र्मींदार १२½ करोड़ रुपया लेता है। ७ करोड़ रुपये की वसूलयाबी का पारिश्रमिक १२½ करोड़ रुपया, अर्थात् १००) की वसूलयाबी के लिए राष्ट्र ठेकेदार को १६४) की उज़रत देता है! कुछ अंधेर का ठिकाना है! यदि किसान को केवल राजस्व ही देना होता तो उसे कुल ७ करोड़ रुपया देना पड़ता। ज़र्मींदारी-प्रथा में उसे राष्ट्र को ७ करोड़ और ज़र्मींदारों को इस ७ करोड़ के अलावा १२½ करोड़ और देना पड़ता है। पहले ज़र्मींदारों को ज़र्मींदारी की आमदनी का ९० फ़ी सदी सरकार को देना पड़ता था, अब केवल ४० फ़ी सदी देना पड़ता है। इससे राष्ट्रीय ख़ज़ाने को भी हानि पहुँचती है, और किसान भी मारा जाता है। और ज़र्मींदार अपने कारिन्दे को १००) के लगान को वसूल करने के लिए ९६७) देगा? लगान का घटाना जितना ज़रूरी है, उतना ही ज़रूरत है ज़र्मींदारों के पारिश्रमिक की दर को कम करने की। इस अवसर पर ऊपर कही हुई एक बात को दोहरा देना अनावश्यक न होगा १९०१ से १९३१ तक लगान में ६ करोड़ ४७ लाख रुपया का इज़ाफ़ा हुआ, लेकिन राष्ट्र को इस परिवर्द्धित अंश में से केवल ८५ लाख रुपये मालगुज़ारी में इज़ाफ़े के रूप में प्राप्त हुए; अर्थात् लगान में जो वृद्धि हुई उसमें से ज़र्मींदार को ८७ और सरकार को १३ प्रतिशत हाथ लगा। साम्पत्तिक अनर्थ की हद होती है, लेकिन ज़र्मींदारी की मौजूदा प्रणाली इस सीमा को भी पार कर गई है! किसान और समाज की उन्नति के मार्ग में यह एक भयंकर बाधा साबित हो रही है। बेकारी और दरिद्रता का यही मूल कारण है। लगान के भारी बोझ से किसान की रीढ़ टूट गई और धनाभाव के कारण प्रांत की प्रगति मारी गई। इसी लिए कोई-कोई ज़र्मींदारों का मख़ौल उड़ाने की नीयत से कहते हैं—"पाँचों अँगुलियाँ यदि घी में हैं तो ज़र्मींदारों की। उन्हीं की पौ बारह है। 'अजगर करै न चाकरी'। क्यों करें, जब तक क़ानूनन उन्हें दूसरों की कमाई का अधिकांश भाग लगाने के लिए मिलता जाता है?"

(९)

ऊपर की बातों को पढ़कर पाठकों को ज़र्मींदारों और उनकी माली हालत के संबंध में भ्रम हो सकता है। न सब ज़र्मींदार गुलछर्रे उड़ाया करते हैं और न किसानों पर अत्याचार ही कर सकते हैं। इस सूबे में २२ लाख के लगभग ज़र्मींदार हैं, जिनमें से ४ लाख कमायूँ में ख़ुद काश्त करते हैं। शेष १८ लाख में से १२ लाख १ रुपया से कम की मालगुज़ारी देते हैं। इसलिए ये तो नामचार ही के ज़र्मींदार हैं। १ रुपया से ९९ रुपया तक की मालगुज़ारी अदा करनेवाले ज़र्मींदारों की संख्या कुछ कम ४½ लाख है। १०० रुपया या उससे अधिक मालगुज़ारी अदा करनेवाले ज़र्मींदार संख्या में १ लाख ६२ हज़ार हैं, जिनमें से १,१०० ज़र्मींदार ५,०००) या उससे अधिक तथा २०३ ज़र्मींदार २०,०००) या उससे अधिक की मालगुज़ारी अदा करते हैं। इन आँकड़ों से सिद्ध है कि अधिकांश ज़र्मींदार किसान हैं। अतएव किसान-ज़र्मींदार संबंधी समस्या में उन्हें किसान ही मानना चाहिए और वास्तव में वे हैं भी तो किसान ही। केवल १ लाख ६० हज़ार ज़र्मींदारों का गुज़ारा मुख्यतया ज़र्मींदारी की आमदनी से होता है। ऐसी दशा में यही कहना उचित होगा कि अधिकांश ज़र्मींदारों की माली हालत किसानों की दशा के समान है। इस संबंध में यह भी बता देना ज़रूरी है कि ज़र्मींदारों पर लगभग ९० करोड़ रुपया का क़र्ज़ है। सूद चुकाने के बाद उनके पास क्या बच रहता है, यह कहना कठिन है। सीर और ख़ुदकाश्त से उन्हें अवश्य मदद मिलती है। लेकिन अपनी मुफ़लिसी से विवश होकर और ठाट-बाट बनाये रखने की ग़लत नीयत से वे किसानों को नोचने-खसोटने के लिए मजबूर हैं।

कल्पना और आनन्द

लेखक, श्रीयुत कमलकुमार शर्मा

दिन का कोलाहल कम हो गया है। रात्रि अपने के काली चादर से ढँके बड़ी शीघ्रता से अग्रसर हो रही है। वायु में अस्पष्ट हाहाकार की ध्वनि मिश्रित है। चिता की लपटें मानो आकाश में विलीन हो जाने के लिए ऊपर की ओर उठ रही हैं। चंद्रमा निकल आया है, लेकिन उसकी ज्योत्स्ना फीकी फीकी हो रही है। रास्ते के एक ओर फ़ूल का पेड़ है। उसमें एक कुसुम प्रस्फुटित हो पूर्णता को प्राप्त हो रहा है। उसकी सुगंध को वायु चारों ओर प्रचारित कर रही है। एक दफ़े वायु के झोंके से फ़ूल मिट्टी के हृदय पर बेसुध होकर गिर पड़ा, मानो कृतज्ञता के आलिंगन कर रहा है।

उसी मिट्टी पर एक पथिक जा रहा है। कल्पना के आनन्द में तल्लीन है। अकस्मात् उसकी दृष्टि कुसुम पर रुक गई, मानो उसे देख खिलखिला कर हँस रहा है। वह बड़ा आनंदित हुआ। दिन भर की ग्लानि स्मृति से परे हो जाती है, दैनिक संग्राम भूल जाता है। सौंदर्य का नशा उसे चढ़ता है। वह फ़ूल तोड़ लेना चाहता है। क्षण भर के आनन्द को परिपूर्ण करने के लिए ही वह फ़ूल को तोड़ेगा।

फ़ूल को तोड़ लिया। उसे विजय का आनन्द प्राप्त हुआ। अपनी विजय पर उसकी छाती फूल उठी, गर्व से मस्तक ऊँचा हो गया।

अचानक उसके पैर में काँटा गड़ गया। बड़ी यंत्रणा होने लगी। दर्द ने समस्त आनन्द को अपने अधीन कर लिया। कल्पना वास्तव के आघात में डूब जाती है। काँटा निकालकर उठता है। अभिशाप देता है—फ़ूल को, जिसके साथ काँटा भी है।

रात्रि के द्वितीय प्रहर में मंदिर के आँगन में पथिक सोने का प्रयास कर रहा है। काँटे की याद आ जाती है। सुप्त एवम् विस्मृत यंत्रणा जाग्रत हो उठती है। सुख-स्मृति क्षण भर में विलीन हो जाती है। सिर्फ़ काँटे का अनुभव होता है। न मालूम कौन हँस रहा है।

जाग्रत नारियाँ



भारतीय स्त्रियों की स्थिति

भारतीय स्त्रियों की स्थिति के सम्बन्ध में भारत-सरकार ने राष्ट्र-संघ के पास एक ख़रीता भेजा है। इस ख़रीते के तैयार करने में उसने अखिल-भारतीय महिला-सम्मेलन से कोई सहायता या सलाह नहीं ली। इसलिए उक्त संस्था ने इस सम्बन्ध में अपना पृथक् आवेदन-पत्र भेजा है, जो बहुत विस्तारपूर्ण है। यहाँ संक्षेप में हम उसकी मोटी मोटी बातें देते हैं—

इस महिला-सम्मेलन की राय में हिन्दू धर्म-शास्त्रों में तलाक़ की व्यवस्था का न होना अत्यन्त अनुचित है। क्योंकि कोई भी हिन्दू पति जितने विवाह करना चाहता है, कर सकता है और परित्यक्ता पत्नी को क़ानूनन केवल गुज़ारा-मात्र मिल सकता है। हिन्दुओं के विवाह-सम्बन्धी क़ानून को सुधारने के लिए सन् १९२३ में 'स्पेशल मैरिज एक्ट' पास हुआ था, परन्तु इस क़ानून के अनुसार हिन्दुओं में बहुत ही थोड़े विवाह-सम्बन्ध होते हैं। उत्तराधिकार के मामले में भी हिन्दू-धर्म-शास्त्र का विधान हिन्दू-महिलाओं के प्रति बड़ा अन्यायपूर्ण है।

भारतीय महिलाओं की आर्थिक स्थिति बड़ी शोचनीय है। महिलाओं ने प्रधानतया केवल दो पेशों में ही प्रवेश किया है—शिक्षा और डाक्टरी। पुलिस-विभाग में महिलाओं के प्रवेश करने में यद्यपि कोई रुकावट नहीं है, तो भी अभी तक इस विभाग में महिलायें कम संख्या में नियुक्त हुई हैं। सन् १९३० के सत्याग्रह-आन्दोलन के समय जब महिलायें बहुत बड़ी तादाद में जेल जाने लगीं तब दिल्ली-प्रान्त में पुलिस-विभाग में स्थायी रूप से कुछ



[श्रीमती प्रभादेवी (लाहौर) आप पंजाब के एक सम्पन्न और प्रतिष्ठित घराने की कन्या हैं और फ़िल्म-अभिनेत्री के रूप में कार्यक्षेत्र में प्रवेश कर रही हैं। आपके इस कार्य से आपकी बिरादरी में बड़ी सनसनी फैली है। यह चित्र हमें श्रीयुत के० राय, लाहौर, से प्राप्त हुआ है।]

महिलाओं को नौकरी दी गई थी। इधर कुछ समय से मध्यप्रान्त के आबकारी-विभाग ने ६ महिलाओं को नियुक्त किया है।

कुछ महिलाओं ने इधर वकालत के पेशे में भी प्रवेश किया है। व्यवसाय के क्षेत्र में जिन महिलाओं ने प्रवेश

किया है उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया है कि महिलायें इस दिशा में भी बहुत सफल हो सकती हैं। बैंकों और



[कुमारी पूर्णिमा मेहता। आप इलाहाबाद के वर्तमान कमिश्नर श्रीयुत बी० एन० मेहता की ज्येष्ठ पुत्री हैं। 'लन्दन स्कूल आफ़ जर्नलिज़्म' से सम्पादन-कला की शिक्षा प्राप्त करके लौटनेवाली प्रथम भारतीय महिला हैं।]

बीमा-कम्पनियों में महिलाओं को बहुधा काम करने का अवसर मिला है। कुछ बीमा-कम्पनियों के डाइरेक्टर के पद पर महिलायें दिखाई देती हैं। छोटे-छोटे उद्योग-धंधों तथा व्यवसायों में महिलाओं की संख्या बहुत कम नहीं है। देहातों में रहनेवाली स्त्रियाँ जिनके घर खेती होती है, अक्सर खेती के काम में लगी रहती हैं। परन्तु उनका काम खेती में अपने पुरुषों की सहायता करने भर का रहता है। वे स्वतन्त्र रूप से अपनी खेती नहीं करतीं। कुछ स्त्रियाँ दूसरों के खेतों में मज़दूरी का काम भी करती हैं। कुछ प्रकार की खेती जैसे चाय आदि में तो काम करनेवाली स्त्रियों की संख्या पुरुषों से भी अधिक है। कारण यह है कि स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा कम मज़दूरी देनी पड़ती है। मिलों आदि में भी मज़दूरी करती हुई बहुत-सी स्त्रियाँ दिखाई देती हैं, ख़ास कर सूती कपड़ों के

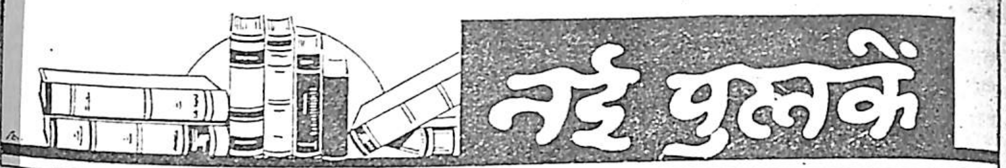
कारख़ानों में, परन्तु इस सम्बन्ध में सबसे बड़ी शिक[illegible] की बात यह है कि उन्हें गर्भ और प्रसव की अवस्था[illegible] कोई भी भत्ता अथवा अन्य आर्थिक और डाक[illegible] सुविधायें नहीं दी जाती हैं। इस सम्बन्ध में बम्बई[illegible] मदरास और मध्यप्रान्त में कुछ क़ानून अवश्य बनाये हैं जिनके अनुसार स्त्रियों को नौकर रखनेवाली ऐसी तरह[illegible] सुविधा देने के लिए मजबूर हैं। परन्तु इस क़ानू[illegible] बचने के भी अनेक उपाय हैं। कुछ मिलवाले गर्भ[illegible] स्त्रियों को नौकरियों से निकाल देते हैं और इस प्रकार अवधि में भत्ता आदि मिलने के बदले उन्हें अपनी [illegible]से भी हाथ धोना पड़ता है।

स्त्रियों में शिक्षा की कमी है और सबसे ब[illegible] आवश्यकता इस दिशा में सुधार होने की है। हिन्[illegible]स्तान में कन्या-विद्यालयों की बहुत कमी है और[illegible] लड़कों के स्कूलों में पढ़ने के लिए लड़कियों को भेज[illegible]में लोगों को झिझक होती है। परिणाम यह है [illegible] देश की केवल २ प्रतिशत स्त्रियाँ ही शिक्षिता हैं। दे[illegible]



[कुमारी प्रेमलता मेहता। आप भी श्री बी० एन[illegible] मेहता की पुत्री हैं और अपनी बहन के साथ ही विलाय[illegible] से सम्पादन-कला की शिक्षा प्राप्त करके लौटी हैं।]

की आवश्यकताओं और लड़कों की पढ़ाई के लिए व्यय[illegible] होनेवाले धन को देखते हुए लड़कियों की पढ़ाई पर जो[illegible] रक़म ख़र्च की जाती है वह अत्यन्त अपर्याप्त है।



[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथासमय प्रकाशित होगा।]

१-२—श्रीयुत ऋषभचरण जैन-द्वारा लिखित, साहित्य-मण्डल, बाज़ार सीताराम, दिल्ली, से प्रकाशित दो पुस्तकें—

(१) मंदिर-दीप (उपन्यास)—मूल्य ३) है।

(२) टॉलस्टाय और गांधी (आलोचना)—मूल्य २॥) है।

३-५—श्रीयुत वी० वी० कामत, एट दि सारस्वत ब्राह्मण कालोनी, ४३३।१९ सोमवारपेठ, पूना द्वारा प्रकाशित संस्कृत की तीन पुस्तकें—

(१) सुबोध संस्कृतम्—(प्रथम पुस्तकम्) मूल्य ॥) है।

(२) सुबोध संस्कृतम्—(पुस्तकम् मध्यमम्) मूल्य ॥=) है।

(३) सुबोध संस्कृतम्—(पुस्तकम् द्वितीयम्) मूल्य १) है।

६-९—वैशाली-प्रेस, मुज़फ़्फ़रपुर-द्वारा प्रकाशित चार पुस्तकें—

(१) सजला—लेखक श्रीयुत राधाकृष्ण और मूल्य ॥=) है।

(२) आनन्दविजयाभिधान (नाटिका)—सम्पादक, श्रीयुत भुवनेश्वरसिंह 'भुवन' और मूल्य ॥) है।

(३) आषाढ़ (कविता)—लेखक, श्रीयुत भुवनेश्वरसिंह 'भुवन' और मूल्य ॥) है।

(४) स्तुतिपंचामृतम्—संकलनकार, श्रीयुत भुवनेश्वरसिंह 'भुवन' और मूल्य =) है।

१०—अनन्त के पथ पर (कविता)—लेखक, श्रीयुत हरिकृष्ण 'प्रेमी', प्रकाशक, भारती-प्रिंटिंग प्रेस, लाहौर हैं, और मूल्य १) है।

११—हिटलर महान—लेखक, श्रीयुत चन्द्रशेखर शास्त्री, प्रकाशक, भारती-साहित्य-मंदिर, देहली हैं, और मूल्य ३) है।

१२—सुभाषित पद्य-रत्नाकर भाग २ (गुजराती)—संग्राहक और अनुवादक, मुनिराज श्री विशालविजय जी, प्रकाशक, श्री विजयधर्म सूरि जैन-ग्रंथ-माला, छोटा सराफ़ा, उज्जैन हैं, और मूल्य १।) है।

१३—त्रिलोचन कविराज—लेखक, स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ मैत्र, अनुवादक, श्रीयुत ब्रजमोहन वर्मा, प्रकाशक, विशाल-भारत-बुकडिपो १९५।१, हरीसन रोड, कलकत्ता हैं, और मूल्य १॥) है।

१४—मुसलमानों की हिन्दी-सेवा—लेखक, श्रीयुत ठाकुर कमलधारीसिंह, 'कमलेश', प्रकाशक, साहित्य-भवन, लिमिटेड, प्रयाग हैं और मूल्य १॥) है।

१५—सिरस-नीति-सतसई (कविता)—लेखक, श्रीयुत पंडित शिवरत्न शुक्ल 'सिरस', 'साहित्यरत्न', प्रकाशक, श्रीयुत राघवेन्द्रदत्त शुक्ल, बछरावाँ, रायबरेली हैं और मूल्य १॥) है।

१६—सफल दूकानदारी—लेखक, श्रीयुत कन्हैयालाल शर्मा, बी० ए०, प्रकाशक, हिन्दी-प्रचार-कार्यालय, २६।२७ चित्तरंजन एवेन्यू नार्थ, कलकत्ता हैं और मूल्य १) है।

१७—भग्नावशेष (नाटक)—लेखक, श्रीयुत 'कुमार हृदय', प्रकाशक, छात्र-हितकारी-पुस्तक-माला, दारागंज, प्रयाग हैं और मूल्य ॥=) है।

१८—उद्गार (कविता)—लेखिका, श्रीमती होमवती, प्रकाशक, साधना-साहित्य-सदन, सहारनपुर हैं और मूल्य १) है।

१९—सम अस्पेक्ट्स आफ़ मराठा हिस्ट्री बुक १ (अँगरेज़ी)—लेखक व प्रकाशक, श्रीयुत आर० वी० शिरधोंकर, बी० ए०, ग्वालियर हैं और मूल्य १॥) है।

२०—मूत्र-विज्ञान—लेखक, श्रीयुत डाक्टर आशानन्द, प्रकाशक, सूरी ब्रदर्स, मोरी गेट, लाहौर हैं और मूल्य १) है।

२१—मन के मोती (कविता)—रचयिता, श्रीयुत प्रतापनारायण, ताज़ीमी सरदार, सिंवार हाउस, जयपुर-सिटी हैं और मूल्य ॥=) है।

२२—उस ओर (काव्य)—रचयिता, श्रीयुत दीनदयाल वर्सावाल, 'दिनेश', प्रकाशक, साहित्य-सदन, अजमेर हैं और मूल्य ॥) है।

२३—विदेशी अस्त्र से स्वदेश-प्रेम का कण्ठच्छेदन—प्रकाशक, श्रीयुत श्रीशचन्द्र शर्मा, महामण्डल प्रेस, २ नं० पंचकोशी रोड, नगवा, काशी हैं और मूल्य ।) है।

२४—मुन्शी निकड़मनाथ—लेखक, श्रीयुत 'शिवार्थी', प्रकाशक, श्रीयुत जगनूलाल अग्रवाल, इलाहाबाद हैं और मूल्य =) है।

२५—यज्ञ में पशुवध वेद-विरुद्ध—सम्पादक व प्रकाशक, श्रीयुत नरदेव शास्त्री व श्रीयुत लक्ष्मीशंकर मिश्र शास्त्री, हैदराबाद, दक्षिण हैं।

१—नूरजहाँ—रचयिता, श्रीयुत गुरु भक्तसिंह, प्रकाशक, कालका-सदन, बलिया हैं। पृष्ठ-संख्या १४५ है। पुस्तक सजिल्द है।

'नूरजहाँ' एक ऐतिहासिक खण्ड-काव्य है। इसमें सम्राट् जहाँगीर और नूरजहाँ की प्रेम-कथा का वर्णन किया गया है। यह काव्य इतना रोचक है कि पढ़नेवाला इसे बिना समाप्त किये नहीं रहेगा।

इसका कथानक फ़ारस से आरम्भ होता है, जब नूरजहाँ का पिता ग़यासबेग अपनी पत्नी की सलाह के अनुसार भारत व्यापार करने आता है। इस तरह कथानक का सूत्रपात करके भक्त जी ने अपने इस काव्य में नूरजहाँ के जन्म से उसके जहाँगीर के साथ विवाह करने तक का उसके जीवन का हाल वर्णन किया है।

इसमें भक्त जी ने अनारकली के नृत्य का बहुत ही सजीव वर्णन किया है। वे लिखते हैं—

लेकर दीपक औ' घट को वह झुक दोहरी हो जाती।
फिर लौट रसा पर घुँघरू, गिन गिन के साफ़ बजाती।
ज्यों हलका सा वारिद-पट मारुत से उड़ता आता।
शशिमुख को कभी छिपाता पट खोल कभी हट जाता॥
त्यों ही घूँघट में विधुमुख वह कभी छिपा लेती थी,
फिर खोल चाँद की झाँकी पूरी थी दिखला देती॥

इसी भाँति अनारकली के मुख से उन्होंने कई बहुत करुण बातें कहलवाई हैं, जिनसे इस काव्य में करुण रस का ख़ासा परिपाक बन पड़ा है।

अनारकली जब बन्दीगृह में बन्द हो जाती है तब कहती है—

जीवन में बहुत न रुकना, रुकने में दुख ही दुख है।
आये चल दिये चमक कर बन धूम्रकेतु, वह सुख है॥

फिर कहती है—

मिट्टी में लोग दबा दें तो मत समाधि बनवाना।
जो कली नहीं खिल पाई, उस पर मत फूल चढ़ाना॥
यदि कोई करे प्रकाशित मिट्टी का दीप जला के।
'ठंडा' कर 'गुल' कर देना जलते को पवन डुला के॥

आगे चलकर कवि जमीला के मुख से भी कितनी ही नैराश्यपूर्ण बातें कहलाता है। वह कहती है—

सागर को खारी कर छोड़ा, प्यासी दुनिया तरसे।
जल में जल की वर्षा होती, मरु में मेह न बरसे॥

इसी प्रकार भक्त जी ने अपने काव्य को नाना प्रकार के कथनोपकथनों तथा सूक्तियों से सरस बनाया है।

इस काव्य में अधिकतर ऐतिहासिक बातें ही लिखी गई हैं। पर सलीम का अनारकली से प्रेम करना इतिहासकार नहीं मानते। इस विषय पर उनमें मतभेद है। ऐसी स्थिति में श्री भक्त जी ने दो सर्ग अनारकली के ऊपर लिखकर अच्छा नहीं किया, क्योंकि—

(१) इस घटना के पढ़ने के बाद जब पाठक सलीम का नूरजहाँ के प्रति प्रेम-भावना का वर्णन पढ़ता है तब वह सलीम को ऊँची निगाह से नहीं देख सकता। पर यदि यह कथानक इसमें न लाया गया होता तो वह उन दोनों के प्रेम को सच्चा मानता। इसके पढ़ने से तो यह भाव उठता है कि यदि सलीम को नूरजहाँ के विवाह के बाद कोई अन्य सुन्दर स्त्री मिल जाती तो वह उसे भी प्यार करने लगता और मेहर को भूल जाता।

(२) अनारकली के क़िस्सा का नूरजहाँ से कोई सम्बन्ध नहीं है, अतएव इस पुस्तक में इसका होना असंगत प्रतीत होता है।

भक्त जी ने कुछ और भी भूलें की हैं। उन्होंने एक जगह लिखा है—

(१) देखो कल जो भूला भूले अब तक बाँह भरी है।
उसी दोल में कली लौंग की मेरी कहीं भरी है ॥
(पृष्ठ ५८)

(२) ये गुलाब हौज़ों में भर कर इत्र निकाल लगाऊँगी।
चौपड़ कभी नहीं खेलूँगी अपना बाग़ सजाऊँगी ॥
(पृष्ठ १४०)

नूरजहाँ के समय में क्या लौंगे पहनी जाती थीं? इतिहास में तो इसका प्रमाण नहीं है। रही इत्र की बात। यह तो सही है कि नूरजहाँ ने ही पहले-पहल इत्र निकाला था, पर उस समय जब वह राज-रानी थी। परन्तु इस काव्य में वह जहाँगीर से विवाह होने के पहले ही इत्र निकालने की बात कहती है।

इस पुस्तक में एक दोष और है, वह यह कि कहीं कहीं तुक ज़बर्दस्ती मिलाई गई है, जिससे कविता की सुन्दरता नष्ट हो गई है; जैसे—

(१) भारत है सोने की चिड़िया, चलो वहीं का करें सफ़र।
हिम्मत करो, कमर को बाँधो, मुसकिल है अब करनी सर

(२) अतः रत्न यह प्यारा मेरा जो रक़ीब ले भागा।
काट दिया मैंने अवश्य उसके जीवन का धागा ॥

अन्त में हम यही कहेंगे कि भक्त जी ने अपनी इस रचना से हिंदी के साहित्य-भाण्डार को और भी अलंकृत किया है और इसके लिए वे सर्वथा बधाई के पात्र हैं।

केदारनाथ मिश्र 'केदार'

२—प्रभावती—(उपन्यास) लेखक—श्रीसूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' हैं। पृष्ठ-संख्या २६४ और मूल्य २) है। प्रकाशक—अध्यक्ष, सरस्वती-पुस्तक-भंडार, लखनऊ।

श्रीयुत निराला जी केवल कवि ही नहीं हैं, वे एक अच्छे उपन्यास-लेखक भी हैं। 'प्रभावती' उनका एक नया ऐतिहासिक रोमांस है। कान्यकुब्जेश्वर महाराज जयचंद्र के अनेक सरदार थे। 'प्रायः पास-पड़ोस के रहनेवाले एक-दो दुर्गों के मालिक आपस में मिले रहते थे। इनकी तकरार भी इन्हीं में होती थी।' इन्हीं तकरारों के बीच लेखक ने लालगढ़ के राजकुमार देव तथा डलमऊ की राजकुमारी प्रभावती के प्रेम-प्रसंग को पिरोया है। जयचंद्र-कालीन देश की ऐतिहासिक अवस्था पर ध्यान रखते हुए लेखक ने तत्कालीन वातावरण को उपस्थित करने में पर्याप्त सफलता पाई है। ऐतिहासिक प्रसंगों के सम्बन्ध में पुस्तक में एक बड़ी विशेषता यह पाई जाती है कि जगह जगह पर लेखक ने प्राचीन गढ़ों और अन्य स्थलों का वर्तमान नाम और पता भी दे दिया है, जिससे उन स्थलों के निर्दिष्ट करने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती। चरित्र-चित्रण में पर्याप्त सफलता मिली है। ख़ासकर यमुना और प्रभावती का चरित्र बहुत ही निखरा हुआ चित्रित किया गया है। जगह जगह पर भावों और परिस्थितियों के वर्णन में लेखक की प्रतिभा फूट पड़ी है। उपन्यासोचित प्रेमचंदी न होते हुए भी भाषा सरस और सुन्दर है।

३—पाँच कहानियाँ—लेखक, श्रीयुत सुमित्रानंदन पंत हैं। पृष्ठ-संख्या १२१ और मूल्य १) है। प्रकाशक—लीडर प्रेस, इलाहाबाद।

जैसा कि पुस्तक के नाम से प्रत्यक्ष है, प्रस्तुत पुस्तक श्री सुमित्रानंदन पंत की पाँच कहानियों का संग्रह है। कहानियों के नाम हैं—पानवाला, उस बार, दंपति, बन्नू और अवगुंठन। बन्नू कहानी में दुष्यन्त शकुन्तला के प्रेम की गंध मिलती है। इस कहानी में एकलिंग के पुजारियों के आजन्म अविवाहित जीवन व्यतीत करने की प्रथा बदली जाती है। 'अवगुंठन' में लेखक पर्दा-प्रथा के विरोध का प्रयत्न करना आरंभ करके अंत में उसका समर्थन करता है। 'उस बार' में प्रेम में दीवाना होनेवाले युवकों की भावना का छिछलापन दिखाया गया है। 'पानवाला' और 'दम्पति' मध्यम श्रेणी की कहानियाँ हैं। इन कहानियों को पढ़ लेने के बाद हम 'विज्ञप्ति' में कही हुई इस बात से सहमत हैं कि "जीवन के प्रति उनके (लेखक के) दृष्टिकोण में परिवर्तन भी हुआ है।" कहानी-लेखन के क्षेत्र में आकर कवि ने जिस हमदर्दी के साथ छोटे-छोटे जीवों की भावनाओं के परखने का उद्योग किया है उसके लिए हम उसकी प्रशंसा करते हैं। लेखक ने मनोवैज्ञानिक ढंग से मानववृत्तियों का अच्छा विश्लेषण किया है। कहानियाँ प्रायः भाव-पूर्ण हैं। वर्तमान कहानी-लेखकों के बीच पन्तजी का नाम जोड़ने में हमें आनन्द हुआ है।

— राजनाथ पाण्डेय, एम० ए०

४—संवत् २००० अथवा भावी महाभारत—लेखक, श्रीयुत भारतीय योगी, प्रकाशक, नवयुग-पुस्तक-

भाण्डार, बाई का बाग़, इलाहाबाद सिटी हैं। पृष्ठ-संख्या १६० और मूल्य १) है। गेट अप और छपाई सुन्दर है।

यह समय बड़ी हलचल और अशान्ति का है। संसार के सभी प्रधान राष्ट्र अपना विस्तार करने और दूसरे देशों पर अधिकार जमाने के नशे में चूर हैं। इसके फल से शीघ्र ही एक ऐसे भयंकर महासमर के छिड़ जाने की सम्भावना उत्पन्न हो गई है जिसके सामने सन् १९१४ का योरपीय महायुद्ध फीका पड़ जायगा। इस पुस्तक में इसी भावी महासमर का रहस्य पाठकों को समझाने की चेष्टा की गई है। इसके पढ़ने से ज्ञात होता है कि सम्पत्ति और ऐश्वर्य के लालच से अन्धे होकर योरपीय राष्ट्र पृथ्वी को मनुष्यों के ख़ून से रँगने की कैसी योजना कर रहे हैं। किस तरह जर्मनी, इटली, जापान आदि देशों ने अपना सर्वस्व फ़ौजी तैयारियों में लगा कर फ्रांस, इँग्लेंड, अमरीका आदि अन्य देशों को घबराहट में डाल दिया है। विज्ञान-द्वारा नाश के कैसे-कैसे साधन इकट्ठे किये जा रहे हैं। इस विषय पर इस पुस्तक में विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। अगली लड़ाई और दैवी आपत्तियों के सम्बन्ध में भागवत, बाइबिल और महात्माओं की जो भविष्यवाणियाँ हैं उनका भी इसमें यथास्थान समावेश किया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी में अपने विषय की यह पहली पुस्तक है और जो लोग अगली लड़ाई और दूसरी भावी घटनाओं के सम्बन्ध में कुछ तथ्यपूर्ण बातें जानने को उत्सुक हैं उनको इसे अवश्य देखना चाहिए।

५—श्री श्री रामकृष्ण परमहंसदेव—परमहंसदेव के बँगला और अँगरेज़ी में विस्तृत चरित-ग्रन्थ हैं। खेद की बात है कि उनका वैसा चरित-ग्रन्थ हिन्दी में अभी तक एक भी नहीं लिखा गया। उनके प्रसिद्ध 'चरितामृत' का बहुत दिन हुए हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित हुआ था, पर अब वह भी अप्राप्य है। ऐसी दशा में यह एक अच्छी पुस्तक प्रकाशित हुई है। परमहंसदेव जी के बंग-भाषा के चरित-ग्रन्थों से संकलित करके यह पुस्तक स्वामी विज्ञानन्द जी ने एक पुस्तक तैयार की थी। यह पुस्तक उसी का हिन्दी रूपान्तर है। पिछले संस्करण से वर्तमान संस्करण की भाषा बहुत ही परिमार्जित और शुद्ध हो गई है। प्रयाग की श्री रामकृष्ण शताब्दि सभा ने धर्मार्थ वितरण के लिए उक्त अवसर पर तैयार करवाया इसके प्रारम्भ के ७६ पृष्ठों में परमहंसदेव का संक्षिप्त जी चरित दिया गया है। शेष १६६ पृष्ठों में उनके उ संग्रह किये गये हैं। इससे यह पुस्तक अधिक उप हो गई है। पाठक को परमहंसदेव के चरितज्ञान साथ उनके उपदेशों का भी उसे परिचय मिल जाता यह इसका तृतीय संस्करण है और इसका मूल्य।=) मिलने का पता - श्री रामकृष्ण शताब्दि सभा, ९० ह रोड, इलाहाबाद।

६—पण्डित जवाहरलाल नेहरू—कांग्रेस के मान राष्ट्रपति पण्डित जवाहरलाल नेहरू भारतीय मह कांक्षाओं के एक प्रकार के प्रज्वलित प्रतीक हैं। के प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति ने उन्हें यह प्रामाणिक चरित लिखा है। इन्द्र जी हिन्दी के ज़ोर लेखकों में हैं और इस अपनी विशेषता का परिचय उन्ह अपनी इस प्रासादिक तथा ओजपूर्ण रचना में जगह ज दिया है। इसके पढ़ने से नेहरु जी के चरित उनकी वीर मूर्ति का पाठक को सम्यक् रूप से दर्शन जाता है। परिशिष्ट में नेहरू जी के जो तीन महत्त्व लेख संकलित किये गये हैं उनसे यह पुस्तक और उपयोगी हो गई है। खेद की बात है, श्रीमान् इन्द्र जी इस बात का उल्लेख नहीं किया है कि उन्होंने उन ले को कहाँ से प्राप्त किया है। इस पुस्तक की पृष्ठ-संख्या १ और मूल्य ॥) है। पता—'अर्जुन' कार्यालय, श्रद्धा बाज़ार, दिल्ली।

—रेवाशङ्कर

७—साम्यवाद का बिगुल—इस पुस्तक में सा वाद-सम्बन्धी लेखों का सुन्दर संग्रह किया गया है। इ लेखक सर्वश्री सम्पूर्णानन्द, नरेन्द्रदेव, श्रीप्रकाश, उ प्रकाश नारायण, दामोदरस्वरूप सेठ, गोविन्दसह आदि महानुभाव हैं। आज-कल साम्यवाद की देश काफ़ी चर्चा है और कुछ लोगों का कहना है कि भारत की ग़रीबी के दूर करने का मूलमंत्र है, इसलि इसकी वास्तविकता का समझना भारतीयों के लिए अत्य आवश्यक है। इस पुस्तक के भिन्न भिन्न लेखों-द्व साम्यवाद के विचारों को अपने तर्कों के सहारे विद्व लेखकों ने स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। इसके पढ़ने

ठकों की समझ में भारतीय साम्यवाद की पूरी रूप-रेखा जाती है। इसमें संग्रहीत सभी लेख किसी न किसी पक्षी के तर्क के उत्तर में लिखे गये हैं और उनमें नी दलीलों से अपनी बात को ठीक सिद्ध करने का प्रयत्न या गया है। किन्तु इसमें विपक्षी के तर्कों का केवल तमात्र ही दिया गया है, जिससे कहीं कहीं पाठकों की ाओं का पूरा समाधान नहीं होता। पर जो दलीलें दी हैं वे वास्तव में उपयोगी हैं।

यह पुस्तक साम्यवाद के प्रेमियों के काम की है। यदि के लेखों की भाषा और सरल होती तो अधिक अच्छा , क्योंकि कम हिन्दी जाननेवालों के लिए यह कुछ न पड़ेगी। साम्यवाद के विरोधियों को भी इसे पढ़ना ए, क्योंकि उनके तर्कों का इसमें उत्तर दिया गया है। संख्या १२६ और मूल्य १) है। पता—काशी-पुस्तक-र, चौक, बनारस।

८—अवधेश-कुसुमाञ्जलि (कविता)—लेखक, श्री वेश मालवीय, प्रकाशक, श्री हिन्दी-साहित्य-मण्डल, पुर हैं। पृष्ठ-संख्या १३२ और सजिल्द पुस्तक का १) है।

यह पुस्तक कविवर 'अवधेश' जी की स्फुट रचनाओं सुन्दर संग्रह है। विषय के अनुसार यह सात प्रकरणों विभक्त है—भक्ति, महापुरुष, वीर, हिन्दू-संगठन, , शृंगार और स्फुट। अधिकांश कवितायें भारत की न भावनाओं और देश-प्रेम से भरी हुई हैं। इनके से पाठकों के दिल में आत्मगौरव का संचार होता है। -कल देश में अछूतों के प्रति अधिक सहानुभूति दिखाई है। इस विषय के भी इसमें अनेक पद्य हैं। जैसे—

जौ लौं ठौर ठौर पै ठुकैंगे ठेकरों से बन्धु,
जौ लौं ठीक-ठाक संगठन न बनावैंगे।
शीश पै सवार भूत छूत को रहैगो जौ लौं,
जौ लौं नाहिं अन्त्यज अछूत अपनावैंगे॥
'अवधेश' जौ लौं ये रहैंगे भीरुता के भाव,
जौ लौं ये कुजाती बाल-बालिका चुरावैंगे।
कोटिहू उपाय सों न भूलिहू कदापि तौ लौं,
सुखद स्वतंत्रता के सुदिन दिखावैंगे॥

ी इसमें अनेक भावपूर्ण पद्य मिलेंगे। इसके अधिकांश पद्यों में खड़ी बोली में ब्रज-भाषा की खिचड़ी पकाई गई है। ऐसा नहीं होना चाहिए था।

९—लाला लाजपतराय जी की आत्मकथा, प्रथम भाग (सचित्र)—सम्पादक, श्री भीमसेन विद्यालंकार, प्रकाशक, नवयुग-ग्रन्थमाला, मोहनलाल रोड लाहौर हैं। पृष्ठ-संख्या २२४ और मूल्य १॥) है।

इसमें स्वर्गीय लाला जी की जन्म से लेकर उनके देश-निर्वासन तक की घटनाओं का वर्णन आ गया है। इसके दूसरे भाग में उनके चरित का शेष और लेखों का संग्रह प्रकाशित होगा। भारतीय युवकों को इसके पढ़ने से लाला जी के जीवन की सच्ची घटनाओं का पता मिल सकता है। स्वर्गीय लाला जी के नाम से आज भारत का बच्चा बच्चा परिचित है। इस दृष्टि से उनका यह आत्म-चरित तो और भी संग्रहणीय है। इस पुस्तक को प्रकाशित कर 'नवयुग-ग्रन्थमाला' ने एक उपयोगी कार्य किया है।

१०—फ़ासिज़्म—लेखक, श्री रघुनाथसिंह, एम० ए०, एल-एल० बी०, प्रकाशक, काशी-पुस्तक-भंडार, चौक, बनारस सिटी हैं। पृष्ठ-संख्या १३० और मूल्य १) है।

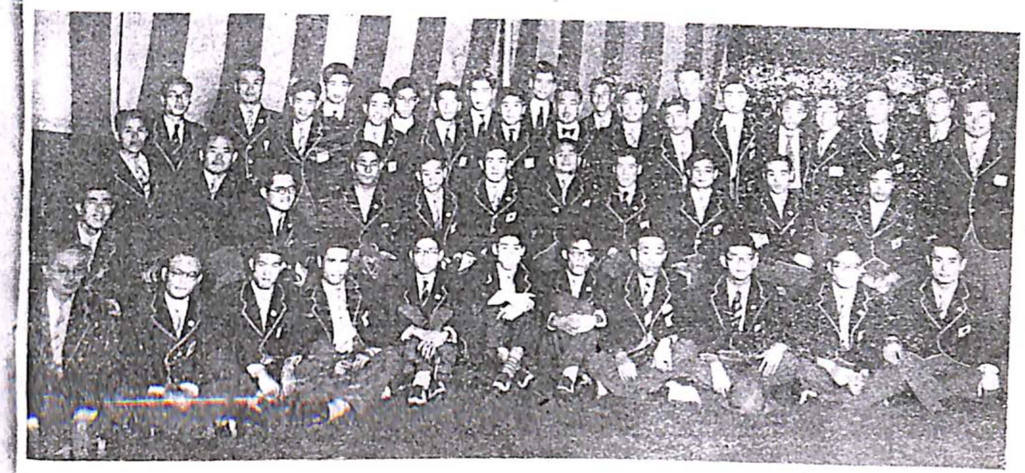
इस पुस्तक में लेखक ने इटली के वर्तमान शासन-विधान पर पूर्ण रीति से प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। आरम्भ में इटली के उस समय के इतिहास की ओर भी संकेत किया गया है ताकि पाठकों की समझ में सारी बातें आसानी से आ जायँ। लेखक ने इस पुस्तक की रचना बहुत-सी विदेशी पुस्तकों के आधार पर की है। इसमें उन्होंने इस बात को अच्छी तरह साफ़ कर दिया है कि इटली में क्यों डिक्टेटरशाही की स्थापना हुई। इटली के शासन-विधान का मूलमंत्र यही है कि "एक शासन-विधान बनानेवाला विशेष व्यक्तियों का गुट ही सब प्रकार की बातों को समझ सकता है, वही अच्छे-बुरे कार्यों का निपटारा कर सकता है, आम जनता नहीं। आम जनता के सम्पर्क से इसमें विकार उत्पन्न हो जाता है।"

इटली के शासन-विधान का रूप इस पुस्तक-द्वारा पाठकों की समझ में भले प्रकार आ सकता है। इस विषय की जानकारी रखनेवालों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। इसमें आवश्यकतानुसार महापुरुषों के चित्र भी दिये गये हैं। इसकी भाषा साहित्यिक है।

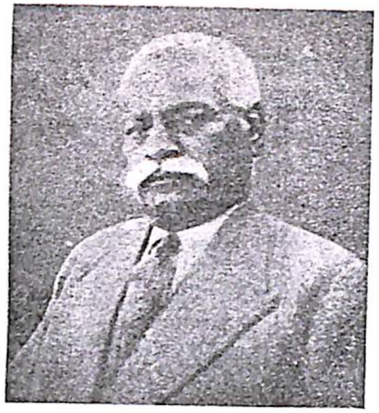
चित्र-संग्रह



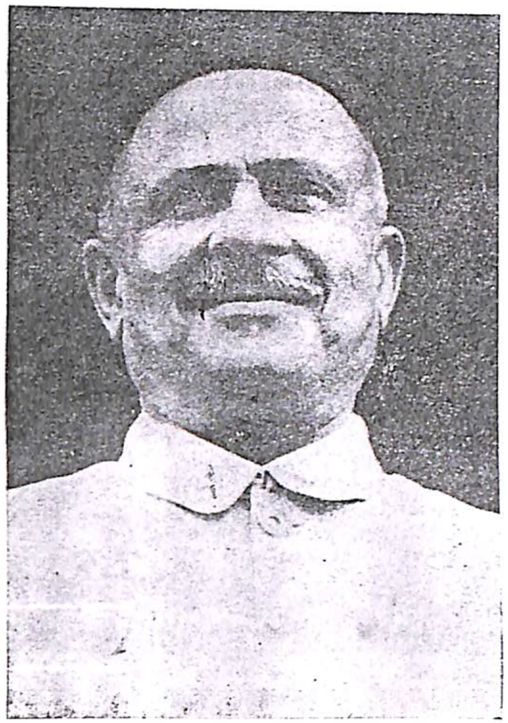
[लाहौर में अखिल भारतीय ओलिम्पिक हाकी-टीम तथा स्वागतसमिति के सदस्य। फ़र्श पर बाईं ओर से तीसरे व्यक्ति श्री ध्यानचन्द हैं।]



[जापानी खिलाड़ी जो बर्लिन के ओलिम्पिक खेलों में भाग लेने के बाद स्वदेश वापस लौटते हुए बम्बई में एक दिन ठहरे थे।]



[राय बहादुर पण्डित राजनारायण जी मिश्र—आप प्रान्तीय सरकार के उच्च पदाधिकारी रहे हैं और विभिन्न पदों पर सफलता-पूर्वक कार्य करने के बाद हाल में ही अवसर ग्रहण किया है।]



[श्रीयुत मनसुखलाल ए० मास्टर (सिंधिया स्टीम नेवीगेशन कंपनी



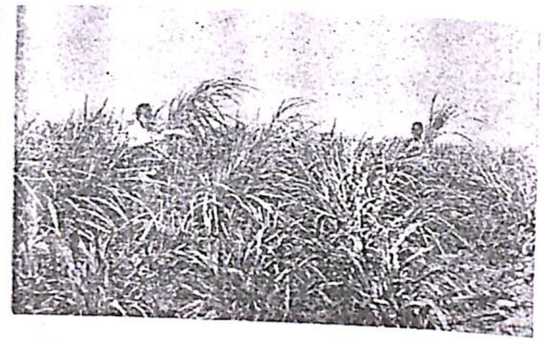
[रसायनाचार्य्य कविराज प्रतापसिंह (हिन्दू-यूनिवर्सिटी बनारस)—आपको हाल में ही प्राणाचार्य्य की उपाधि मिली है।]



[श्रीयुत कालिदास कपूर एम० ए०, एल० टी०—जापानी शिक्षा-पद्धति का अध्ययन करने हाल में आप जापान गये हैं। आप कालीचरण-हाईस्कूल (लखनऊ) के हेडमास्टर और हिन्दी के



[पेगू (बर्मा) में भगवान् बुद्ध की विश्व-विख्यात मूर्ति। कहते हैं, इससे बड़ी बुद्ध की मूर्ति और कहीं नहीं है।]



[बेलगाँव की एक कृषि-प्रदर्शनी में उगाई गई 'हाथी घास'। यह घास पाँच फ़ुट तक लम्बी होती है और तीन ही सप्ताह में बढ़ जाती है।]



[अखिल भारतीय क्रिकेट टीम के खिलाड़ी जब हार्लिक्स के कारखाने में पहुँचे थे तब उन्होंने सब सदस्यों के हस्ताक्षर से युक्त एक 'बैट' हार्लिक्स क्रिकेट क्लब को दिया था।]



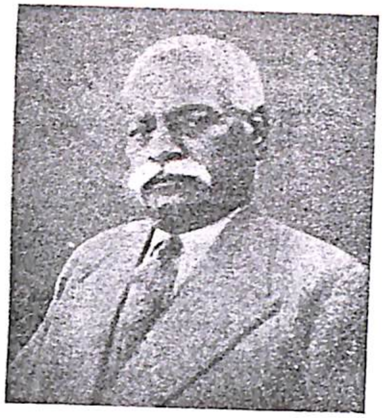
[नङ्गा पर्वत पर चढ़नेवाली मंडली के सदस्य—प्रोफ़ेसर टी० ग्राहम ब्राउन हुक्का [illegible] हुए और श्रीयुत लायड। इँग्लैंड वापस लौ[illegible] से पूर्व का चित्र।]



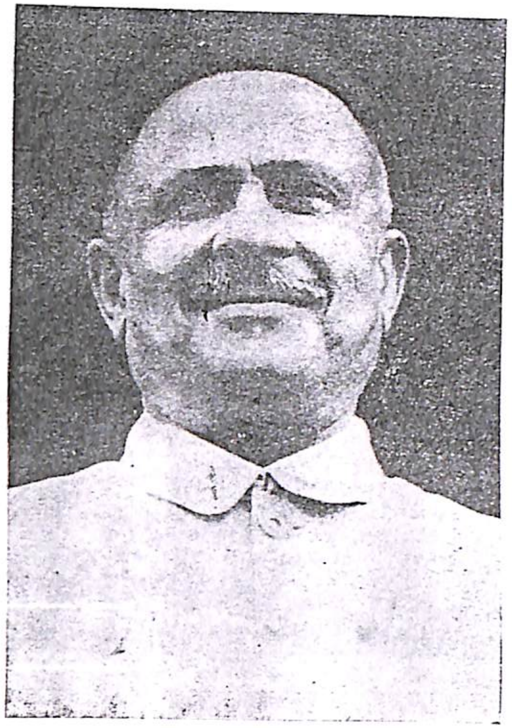
[बुलंदशहर में सेवा-समिति ब्वाय स्काउ[illegible] कैंप का एक दृश्य।]



[स्टाकहाम (स्वीडन) के लड़के समुद्र के किनारे आनन्द मना रहे हैं।]



[राय बहादुर पण्डित राजनारायण जी मिश्र—आप प्रान्तीय सरकार के उच्च पदाधिकारी रहे हैं और विभिन्न पदों पर सफलतापूर्वक कार्य करने के बाद हाल में ही अवसर ग्रहण किया है ।]



[श्रीयुत मनसुखलाल ए० मास्टर (सेंधिया स्टीम नेवीगेशन कंपनी



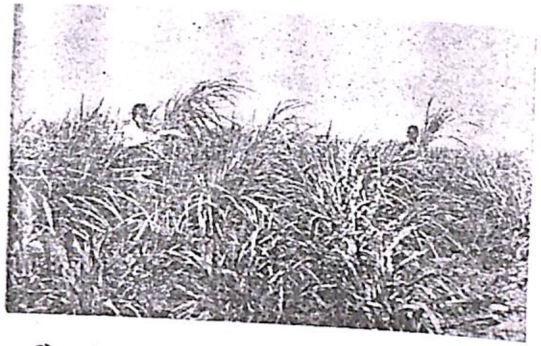
[रसायनाचार्य्य कविराज प्रतापसिंह (हिन्दू-यूनिवर्सिटी बनारस)—आपको हाल में ही प्राणाचार्य्य की उपाधि मिली है ।]



[श्रीयुत कालिदास कपूर एम० ए०, एल० टी०—जापानी शिक्षा-पद्धति का अध्ययन करने हाल में आप जापान गये हैं । आप कालीचरण-हाईस्कूल (लखनऊ) के हेडमास्टर और हिन्दी के



[पेगू (वर्मा) में भगवान् बुद्ध की विश्व-विख्यात मूर्ति । कहते हैं, इससे बड़ी बुद्ध की मूर्ति और कहीं नहीं है ।]



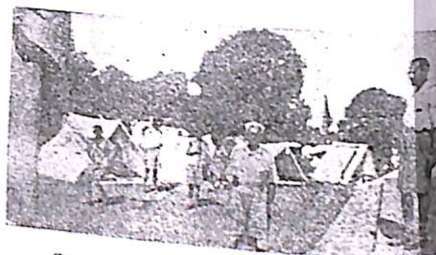
[बेलगाँव की एक कृषि-प्रदर्शनी में उगाई गई 'हाथी घास' । यह घास पाँच फुट तक लम्बी होती है और तीन ही सप्ताह में बढ़ जाती है ।]



[अखिल भारतीय क्रिकेट टीम के खिलाड़ी जब हार्लिक्स के कारख़ाने में पहुँचे थे तब उन्होंने सब सदस्यों के हस्ताक्षर से युक्त एक 'बैट' हार्लिक्स क्रिकेट क्लब को दिया था ।]



[नङ्गा पर्वत पर चढ़नेवाली मंडली के सदस्य—प्रोफ़ेसर टी० ग्राहम ब्राउन हुक्का पि हुए और श्रीयुत लायड । इँग्लेंड वापस लौ से पूर्व का चित्र ।]



[बुलंदशहर में सेवा-समिति ब्वाय स्काउट कैंप का एक दृश्य ।]



[स्टाकहाम (स्वीडन) के लड़के समुद्र के किनारे आनन्द मना रहे हैं ।]



[आगरे के पास गत ७ सितम्बर को ग्रैंड ट्रंक एक्सप्रेस ट्रेन पटरी से उतर गई थी। यह चित्र उसी दुर्घटना का है।]



[बर्लिन के आस-पास जलमय झीलों से युक्त अनेक प्राकृतिक स्थान हैं, जहाँ लोग आमोद-प्रमोद के लिए जाते हैं। इस चित्र में ...



[मूलगंध-कुटी-विहार (बनारस) के भीतर भगवान् बुद्ध की मूर्ति।]



संयुक्त-प्रान्त के एक प्रसिद्ध नगर में उस दिन स्त्रियों की एक गुप्त सभा में आधुनिक फ़ैशन पर बड़ा विवाद हुआ। मुख्य प्रश्न यह था कि स्त्रियाँ प्राचीन अंगरागों—काजल, मेंहदी, महावर आदि को अपनावें या आधुनिक फ़ेस पाउडरों, लिपस्टिकों आदि का सहारा लें। अन्त में सर्वसम्मति से यह निश्चय हुआ कि कुछ परिवर्तन आवश्यक है। इसी सिलसिले में यह चर्चा भी हुई कि मध्यकाल में भारतीय पुरुष अपनी स्त्रियों के प्रति उनके शृंगार में सहायता करके भी अपना प्रेम प्रकट किया करते थे। इसके प्रमाण में मतिराम के दो सवैये पढ़े गये, जिनमें दूसरा यह है—

आई हौ पायँ दिवाय महावर,
कुंजन तें करिकैं सुख सैनी।
साँवरे आजु सँवार्यो है अंजन
नैननि को लखि लाजति ऐनी।
बात के बूझति ही 'मतिराम'
कहा करिये यह भौंह तनैनी।
मूँदि न राखति प्रीति भटू
यह गूँदी गुपाल के हाथ की वैनी।

× × ×

यह तर्क उपस्थित करनेवाली महिला ने बड़े ज़ोरदार शब्दों में कहा कि इस पद्य से स्पष्ट है कि तब पुरुष स्त्रियों के पैर में महावर लगाते थे, उनकी आँखों में कज्जल की रेखा अङ्कित करते थे और उनकी वेनी सँवार कर बाँधते थे और इस कला में बहुत निपुण भी होते थे। आजकल के पुरुषों ने यह कार्य्य सर्वथा त्याग-सा दिया है। यह मैं आधुनिक कवितायें पढ़ कर कहती हूँ। कहीं भी तो ऐसा ज़िक्र नहीं है। फ़ैशन कुछ भी हो, पर उसमें पुरुषों की दिलचस्पी होनी चाहिए। उनकी यह उदासीनता ही बहुत-से घरों में कलह का कारण हो रही है। क्या अच्छा हो कि यह सभा इस सम्बन्ध में अपना सारा वादविवाद प्रकाशित कर दे ताकि समाजसुधारकों को यह तो मालूम हो जाय कि इस सम्बन्ध में स्त्रियों की क्या माँगें हैं।

× × ×

अमरीका के प्रेसीडेंट रूज़वेल्ट की वृद्धा माता अभी जीवित हैं। हाल में समाचार-पत्रों के प्रतिनिधियों ने उस वृद्धा को घेरा और उसके सम्बन्ध में तरह तरह के प्रश्न किये। यह प्रसंग इसलिए आया कि इधर यह वृद्धा बहुत दुःखी थी, क्योंकि उसका पुत्र राज्य के कामों में इतना मशग़ूल था कि उसे अपना कुछ भी समय नहीं दे सकता था। कहते हैं, जब वृद्धा पुत्र से बिना दो बातें किये न रह सकी तब उसने ख़ास तौर से उससे इसके लिए प्रार्थना की। प्रेसीडेंट ने उत्तर दिया कि जब मैं तैरने के लिए तालाब में उतरूँ तब तुम किनारे पर आ बैठो। उस समय मैं तुमसे बातें करूँगा। वृद्धा माता ने यह शर्त स्वीकार कर ली और जब प्रेसीडेंट तैरने के लिए तालाब में उतरे तब वृद्धा आरामकुर्सी पर उसके किनारे जा बैठी। प्रेसीडेंट के चले जाने पर प्रेस-प्रतिनिधियों ने आकर उस वृद्धा को घेर लिया। वह बोली—"तुम मेरी बातें जानकर क्या करोगे?" उत्तर मिला—"समाचार-पत्रों में तुम्हारी बातें छपेंगी और तसवीर भी।" वृद्धा ने एक दीर्घ निःश्वास लिया और कहा—"तुम लोगों ने मुझे क्या समझा है? मेरे बचपन में सिर्फ़ बदचलन स्त्रियों की चर्चा समाचार-पत्रों में छपा करती थी।"

× × ×

बम्बई में हिन्दू-मुसलमानों में भीषण दङ्गा हो गया है। इस दंगे के फलस्वरूप लगभग ६० मनुष्य मर चुके हैं और सैकड़ों घायल हो चुके हैं। दंगे का कारण यह कहा जाता है कि हिन्दू अपने एक पुराने मंदिर का आगे का भाग बनाना चाहते थे, पर मुसलमानों ने यह कहकर बाधा दी कि पास ही मसजिद है। यदि उक्त भाग बन जायगा तो नमाज़ में विघ्न होगा। इस पर हिन्दुओं ने कहा—"हम नमाज़ के समय गाना बजाना नहीं

करेंगे।" कुछ मुसलमान इस शर्त को मान लेना चाहते थे, पर कुछ ने कहा—"मसजिद तो प्रार्थना का घर है। उसमें बराबर चौबीसों घंटे प्रार्थनायें होती रहती हैं। हम मन्दिर नहीं उठने देंगे।" जिस दिन मन्दिर के बनाने का काम शुरू हुआ उसी दिन मुसलमानों के इस दल ने आक्रमण किया और दङ्गा आरम्भ हो गया। हमारे एक मित्र का कहना है कि हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों का झुकाव समाजवाद की ओर अधिक है। पता नहीं, इस घटना पर वे किस दृष्टि से विचार करेंगे।

× × ×

एक नवयुवक कवि महोदय का ख़याल है कि हिन्दुस्तान में, ख़ास कर हिन्दीवालों में, अभी कविता समझने की शक्ति नहीं है। इसी लिए वे अपनी कवितायें अभी नहीं छपवाते। अपने एक पत्र में वे हमें लिखते हैं—

"फूल के सौन्दर्य और सुरभि का वास्तविक महत्त्व दुनियावी प्रत्येक टाम और डिक की जंगली आँखों से दूर हरे पत्तों में छिपे रहने में ही है, केवल इने-गिने मूल्य-पारखी ही उस सुरभि और सौन्दर्य के आस्वादन करने के अधिकारी हो सकते हैं। ऐसा मेरा विचार और विश्वास था।

"हिन्दुस्तान में, विशेष कर हिन्दी के ज्ञानियों, साहित्यिक क्षेत्र की आम जनता के मस्तिष्क की कलात्मक और सौन्दर्यपर्यावेक्षणात्मक प्रवृत्ति को अभी इतना विकसित, परिष्कृत और समुन्नत रूप नहीं मिला है कि वे कला का सच्चा मूल्य करने की क्षमता रख सकें। और इसी कारण कदाचित्, वास्तविक अनुभूतिप्रदत्त वस्तुओं को भी अन्तर्लाप अर्थहीन प्रलाप कह डालनेवालों की यहाँ कमी नहीं है। और ऐसे लोगों की सारहीन व्यर्थ छिछली बातों से मुझे आग-सी छू जाती है।

"मेरा पक्का विचार था कि मेरी कवितायें आदि मेरे मृत्यु-शयन-काल तक अस्पृश्य और अज्ञात ही रहें।"

पर आप धैर्य न रख सके और 'सरस्वती' में प्रकाशनार्थ एक कविता भेज ही दी। यह आपके उस पुलिंदे में से एक है जो आप चाहते हैं कि आपकी मौत के बाद खोला जाय, क्योंकि तब अनधिकारी और अज्ञानी हिन्दीवाले इसे पढ़ेंगे तो आप उनके भद्दे रिमार्क सुनने को इस संसार में न रहेंगे। कविता हम ज्यों की त्यों नीचे देते हैं—

"पल भर को शशि से होते !
कहाँ मिलेगा कब वह दीपित ? कितने दिन यों हीं बीते।
कितनी आकुल टीसों के गुम्फन में रे यों हीं रोते !
स्मृत्तियाँ थक चुकीं आह !! पथ में जलते काँटे बुनते
ये लहरें भी गिरीं गर्त्त निस्तब्ध, आर्त उठते उठते,
जागृति तो झूठी जगतल की सपने भी कोरे सपने
इस अनन्त बीहड़ तम-वन में कौन कहाँ अपने अपने;
इस भुनते नभ अन्ध गगन में पलभर को शशि से होते—
होत न एक प्राण मन घुल मिट हम तुम अलख शून्य होते।"

पाठकों को इस पर यह समझ कर सम्मति देनी चाहिए कि जो इसकी प्रशंसा नहीं करेंगे वे इसके लेखक की दृष्टि में जंगली समझे जायँगे।

× × × ×

यह प्रसन्नता की बात है कि काशी जी में 'भारतमाता' का मंदिर बनकर तैयार हो गया और महात्मा गांधी के हाथों से उसका उद्घाटन भी हो गया। यह मंदिर काशी के प्रसिद्ध रईस बाबू शिवप्रसाद गुप्त के देश-प्रेम का एक ज्वलन्त उदाहरण है। बाबू साहब ने विपुल धन व्यय करके योग्य कारीगरों-द्वारा यह मंदिर बनवाया है। मंदिर के भीतर भारतवर्ष का उभड़ा हुआ मानचित्र है, जो संगमरमर के टुकड़ों से बनाया गया है। मंदिर की दीवारों पर भी भारतवर्ष के अनेक मानचित्र बने हैं और बन रहे हैं। इस मंदिर में प्रवेश करते ही भारतवासी को 'स्वदेश' का दर्शन होता है, उसका अतीत गौरव उसके सामने आ जाता है और उसमें एक अभूतपूर्व स्वदेश-प्रेम जाग्रत होता है। भारतवर्ष में यह पहला मंदिर है, जिसमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, जैन, पारसी आदि सभी जा सकते हैं और एक साथ एक देवता की उपासना कर सकते हैं। उद्घाटन के समय जो लोग उपस्थित थे उन्होंने एक साथ एक ही स्थान से उठती हुई वेद की वाणी, क़ुरान की आवाज़, बाइबिल की शब्दावली, विनयपिटक की स्वर-लहरी और ज़िन्दाअवेस्ता की गूँज सुनी। बाबू शिवप्रसाद गुप्त धन्य हैं, जिन्होंने हमें यह दिन दिखाया।

व्यस्त रेखा शब्द पहेली

CROSSWORD PUZZLE IN HIN

३००) शुद्ध पूर्तियों पर

२००) न्यूनतम अशुद्धियों पर

नियम:—(१) आगे जो वर्ग दिया गया है उसकी सम्पूर्णतया शुद्ध पूर्ति होने पर ३००) का पारितोषिक दिया जायगा। वर्ग-पूर्तियाँ एक से अधिक शुद्ध होंगी तो उन पूर्ति करनेवालों में ३००) का पारितोषिक बराबर बराबर बाँट दिया जायगा। इसी प्रकार २००) का पारितोषिक उन पूर्ति करनेवालों में बाँटा जायगा जो न्यूनतम अशुद्धियाँ करेंगे। वर्ग-निर्माता ने वर्ग की शुद्ध-पूर्ति लिखकर एक लिफ़ाफ़े में बन्द कर दी है और उस पर मोहर लगाकर रख दी है। उनकी यह 'शुद्ध-पूर्ति' ही निर्णय का आधार होगी। उत्तर-स्वरूप में जो कोष्ठ-पूर्तियाँ इस शुद्ध-पूर्ति से अक्षरशः मिलती होंगी, वही सम्पूर्णतया शुद्ध मानी जायँगी।

(२) वर्ग के रिक्त कोष्ठों में ऐसे अक्षर लिखने चाहिए जिससे निर्दिष्ट शब्द बन जाय। उस निर्दिष्ट शब्द का संकेत अङ्क-परिचय में दिया गया है। प्रत्येक शब्द उस घर से आरम्भ होता है जिस पर कोई न कोई अङ्क लगा हुआ है और इस चिह्न (▮) के पहले समाप्त होता है। अङ्क-परिचय में ऊपर से नीचे और बायें से दाहनी ओर पढ़े जानेवाले शब्दों के अङ्क अलग अलग कर दिये गये हैं, जिनसे यह पता चलेगा कि कौन शब्द किस ओर को पढ़ा जायगा।

(३) प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगाड़ कर या काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(४) इस प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए प्रत्येक वर्ग-पूर्ति के लिए ।।) फ़ीस देनी होगी, जो हर हालत में मनीआर्डर से आनी चाहिए। फ़ीस कार्यालय में नक़द भी जमा की जा सकती है। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति, जिनका पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उ[...] पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा [...] मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर ४ [...] प्रेस, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(५) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआ[...] रसीद नत्थी होकर आना अनिवार्य है। रसीद [...] पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी। लिफ़ाफ़े [...] ओर अर्थात् पीठ पर पूर्ति करनेवालों के नाम औ[...] संख्या लिखनी आवश्यक है।

(६) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है [...] जितनी पूर्ति-संख्यायें भेजनी चाहे, भेजे। किन्तु [...] वर्गपूर्ति सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म प[...] चाहिए और उसकी नियत फ़ीस अर्थात् ।।) प्रति व[...] के हिसाब से भेजनी चाहिए। इस प्रतियोगिता मे[...] व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। वर्ग[...] की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। इंडि[...] प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे।

(७) जो वर्ग-पूर्ति २१ नवम्बर तक नहीं पहुँचेगी, ज[...] में नहीं शामिल की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २१ ता० [...] तीन बजे तक और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाब[...] डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है[...] से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग[...] निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान[...] होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अ[...] में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता अशुद्धता को जाँच कर सकें।

(८) ४ नम्बर वर्ग के समस्त शब्द 'संक्षिप्त हिन्दी-शब्दसागर' अथवा 'बाल-शब्दसागर' नाम के कोषों में मिल सकते हैं।

अङ्क-परिचय

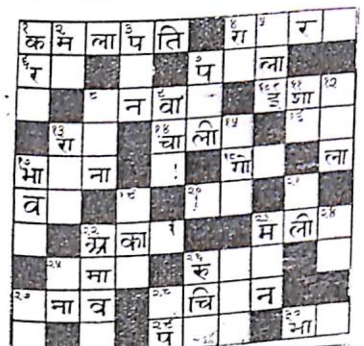
बायें से दाहिने

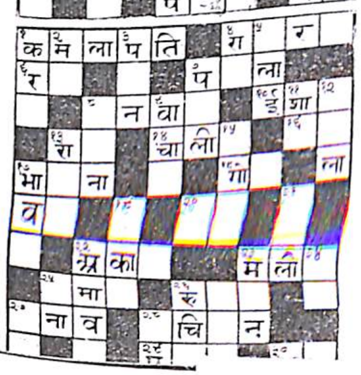
१—विष्णु भगवान्।
४—इसका रंग लाल भी होता है।
६—इससे कभी-कभी किसी के प्राणों पर आ पड़ती है।
७—एक लम्बी गली का......सिरा प्रायः आँख से ओट रहता है।
८—रानियों के रहने का महल। १०—स्वामी।
१३—इसमें कहीं-न-कहीं हर प्रकार की रंग-रलियाँ मनाई जाती हैं।
१४—दो कोड़ी।
१६—इसकी मात्रा थोड़ी होती है।
१७—इच्छा।
१८—इसके अनूठेपन पर कौन नहीं रीझता।
२०—इससे निकटता का ध्यान होता है।
२२—वर्षा भी प्रायः इसका कारण होती है।
२३—मैला या उदास।
२५—चमड़े का काम करनेवाला।
२६—रोना। २७—शृंगार।
२८—यह 'चितवन' का उलट-फेर है।
२९—इतिहास कहता है कि इसके फेर में बड़े-बड़े राजाओं ने भी कष्ट उठाया है।
३०—इसकी शक्ति का ठीक अनुमान विरले ही मनुष्यों को होता है।

ऊपर से नीचे

१—इससे अनेक प्रकार के भोजन पर हमारा अधिकार रहता है।
२—स्त्रियों का, बड़ा प्रबल होता है।
३—इसके वेग को वशीभूत करना बड़े साहस का काम है।
४—उचक्के इससे लाभ उठाने का प्रयत्न करते हैं।
५—दूध से बनती है।
७—यह हड्डी मनुष्य के शरीर पर पाई जाती है।
९—बकवादी।
११—इसकी शोभा विशाल होती है।
१२—युवती।
१३—छोटा राजा या सरदार।
१५—सजातीय।
१७—छोटे बालकों के बोलने का ढंग प्रायः ऐसा होता है।
१९—नहीं।
२१—कोई-कोई ऐसी तंग होती है कि हवा का गुज़र भी कठिनता से हो।
२२—भारत में यह भी अनोखी होती है।
२३—चिन्तन।
२४—किसी-किसी समय यह चमक उठता है।
२५—एक प्रकार का अनाज। २६—सुन्दर।
२७—पुराण से स्पष्ट है कि रावण को किसका......था।
२८—तपस्या।

नोट—रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा-रहित और पूर्ण हैं।

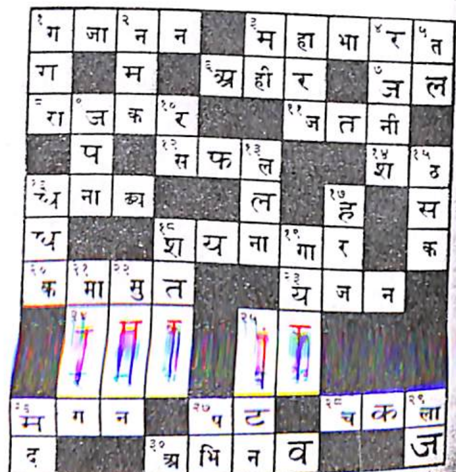




आपनी याददाश्त के लिए वर्ग ४ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ कर लीजिए। और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

वर्ग नं० ३ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर ३ की शुद्ध पूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े पर मुहर लगाकर रख दी गई थी यहाँ दी जा रही है। पारितोषिक जीतने वालों का नाम हम अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं।



वर्ग नं० ४ फ़ीस ।।)



मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा।

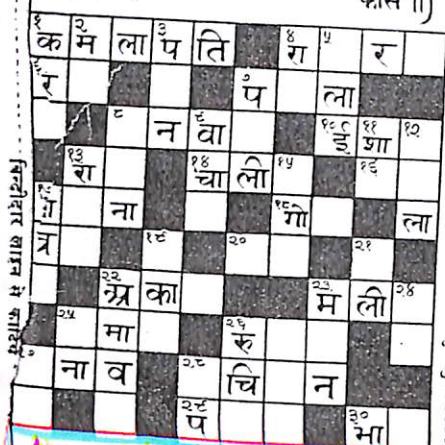
पूरा नाम ....

पता ....

पूर्ति नं० ....

बिन्दीदार लाइन से काटिये

वर्ग नं० ४ फ़ीस ।।)



मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा।

पूरा नाम ....

पता ....

पूर्ति नं० ....

बिन्दीदार लाइन से काटिये

जाँच का फ़ार्म

वर्ग नं० ३ की शुद्ध पूर्ति और पारितोषिक पानेवालों के नाम अन्यत्र प्रकाशित किये गये हैं। यदि आपको यह संदेह हो कि आप भी इनाम पानेवालों में हैं, पर आपका नाम नहीं छपा है तो १) फ़ीस के साथ निम्न फ़ार्म की ख़ानापुरी करके १२ नवम्बर तक भेजें। आपकी पूर्ति की हम फिर से जाँच करेंगे। यदि आपकी पूर्ति आपकी सूचना के अनुसार ठीक निकली तो पुरस्कारों में से जो आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा और आपकी फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जिनका नाम छप चुका है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं है।

वर्ग नं० ३ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० ३ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति

नं०........में { कोई अशुद्धि नहीं है।
एक अशुद्धि है।
२, ३, ४, ५, ६ अशुद्धियाँ हैं। }

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर ....

पता ....

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

इसे काट कर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

मैनेजर वर्ग नं० ४
इंडियन प्रेस, लि०,
इलाहाबाद

पुरस्कार-विजेता क्या कहते हैं ?

वर्ग नं० १ के पुरस्कार-विजेताओं की कुछ और चिट्ठियाँ

एक त्रुटि दूर होगई

श्री द्वारकाप्रसाद शुक्ल, सब-जज, उन्नाव, (अवध) लिखते हैं—

"प्रतियोगिता की आयोजना बड़ी ही आवश्यक थी। हिन्दी-समाचार-पत्र-जगत् में अभी तक किसी अन्य पत्र में ऐसा मेरी नज़र से नहीं गुज़रा। इसके बाद तो अब दूसरी जगह भी देखा गया है। इससे आजकल की अख़बारी दुनिया की रफ़्तार और ढंग देखते हुए जो हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में त्रुटि-सी प्रतीत होने लगी थी, वह दूर हो गई।"



श्री द्वारकाप्रसाद शुक्ल, सब-जज, उन्नाव

मेरा अच्छा विनोद हुआ

श्री यज्ञदत्त विद्यालङ्कार, गुरुकुल, सूपा (सूरत), लिखते हैं—

"आपका भेजा हुआ वर्ग नं० १ का इनाम ३८) मुझे यथासमय मिल गया। मैंने आपके प्रतियोगिता के ढंग को वस्तुतः बहुत पसन्द किया है। इस प्रतियोगिता को हल करते हुए मेरा और मेरे साथियों का अच्छा मनोविनोद हुआ। मेरी समझ में अन्य मनोविनोद के साधनों से यह बहुत उत्कृष्ट है, क्योंकि इसमें मनोविनोद के साथ-साथ हिन्दी के शब्द-कोष में भी खूब वृद्धि होती है। आगे भी इन वर्गों को हल करने का मेरा पूरा विचार है।"



श्री यज्ञदत्त विद्यालङ्कार गुरुकुल, सूपा

मुझे पुस्तकें ख़रीदने के लिए रुपये मिल गये

श्री रघुनाथसिंह चौहान, मुरार, ग्वालियर, लिखते हैं-

"मैं एक ग़रीब किन्तु स्वावलम्बी विद्यार्थी हूँ, और यहीं मुरार हाई स्कूल में पढ़ता हूँ। मुझे पुस्तकें ख़रीदने के लिए कुछ रुपयों की आवश्यकता थी। मैंने उसके लिए आपकी प्रतियोगिता में भाग लिया था। मुझे आशा तो न थी, किन्तु हर्ष है कि मैं उसमें सफल हुआ और मुझे पुस्तकों के लिए उस कठिन समय पर रुपये मिल गये।"

× × ×

सेवा-कुंज, वृन्दावन, से श्री सौन्दर्यलता सांडल लिखती हैं—

"यह रेखा-पहेली रोचक और मनोरंजन का साधन होने के अतिरिक्त ज्ञानवर्धक भी है और अर्थवर्धक भी। आशा है, सरस्वती के आगामी अंकों में भी सदैव ऐसी रेखा-पहेली प्रकाशित होती रहेगी।"



श्री सौन्दर्यलता सा... वृन्दावन

मुझे बहुत-से नवीन शब्दों का ज्ञान हो गया

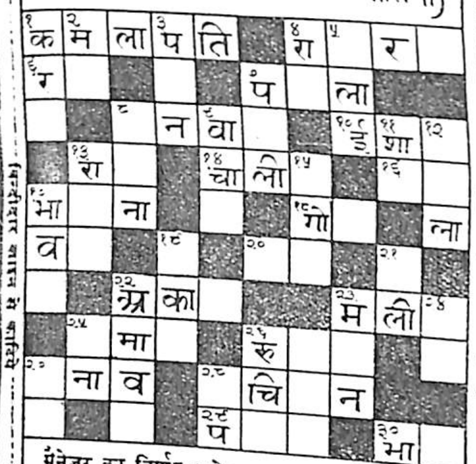
श्री कैलाशचन्द्र सेठ, बाग मुज़फ़्फ़र ख़ाँ, आगरा लिखते हैं—

"आपकी यह प्रतियोगिता वस्तुतः हिन्दी-संसार के लिए एक नवीन चीज़ है। इससे किसी भी प्रतियोगी का शब्द-भण्डार बड़ी शीघ्रता से बढ़ सकता है। मुझे तो एक ही प्रतियोगिता में बहुत-से नवीन शब्दों का ज्ञान हो गया। मैं आशा करता हूँ कि हिन्दी-संसार अवश्य ही इसकी ओर ध्यान देगा।"

५००) में दो पारितोषिक

इनमें से एक आप कैसे प्राप्त कर सकते हैं यह जानने के लिए पृष्ठ ५०७ पर दिये गये नियमों को ध्यान से पढ़ लीजिए। आप के लिए दो और कूपन यहाँ दिये जा रहे हैं।

वर्ग नं० ४ फीस ।।)



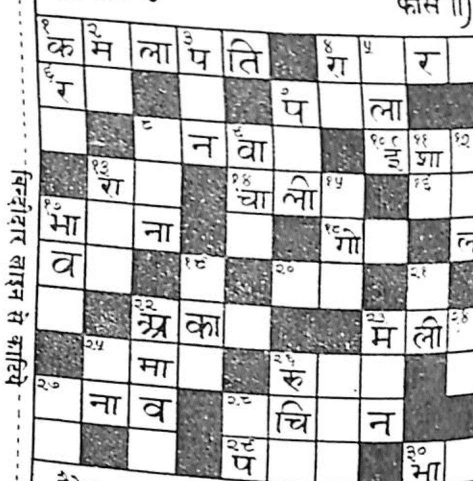
मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा।

पूरा नाम ....

पता ....

पूर्ति नं० ....

वर्ग नं० ४ फीस ।।)



मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा।

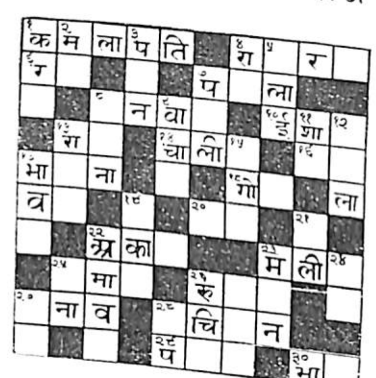
पूरा नाम ....

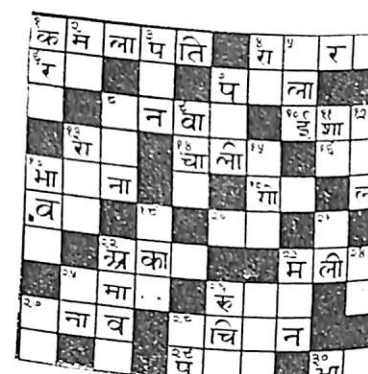
पता ....

पूर्ति नं० ....

बिन्दीदार लाइन से काटिये

रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा-रहित और पूर्ण हैं।





अपनी याददाश्त के लिए वर्ग ४ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ कर लीजिए, और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक रखिए।

आवश्यक सूचनायें

१—वर्ग नं० ४ का नतीजा

वर्ग नम्बर ४ का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े पर मुहर लगा कर रख दिया गया है ता० २४ नवम्बर १९३६ को सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में ११ बजे सर्वसाधारण के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें स्वयं उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।

२—वर्ग नं० २ के नतीजे का संशोधन

जाँच के फ़ार्म आने पर वर्ग नं० २ के नतीजे में थोड़ी-सी भूल पाई गई। इसलिए उसका संशोधन इस प्रकार कर दिया गया है।

तृतीय पुरस्कार २८) (दो अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्न-लिखित में फिर से बराबर बराबर बाँटा गया। प्रत्येक को १४) मिला।

श्रीयुत तारादत्त उप्रेती, माधुरी-आफ़िस, लखनऊ।

श्रीमती योगेश्वरीदेवी गुप्त, ७३ जानसेनगञ्ज, प्रयाग।

\+ \+ \+ \+

श्री डालचन्द पटारिया गोलगञ्ज छिन्दवाड़ा, सी० पी० की चार अशुद्धियाँ पाई गईं इसलिए उन्हें ६) का पञ्चम रिआयती पुरस्कार अलग से दिया गया। शेष सब पुरस्कार गत मास की सरस्वती में छपे अनुसार भेजे गये।

सम्पादकीय नोट

एकतंत्र और लोकतंत्र

योरप में जर्मनी और इटली तो इधर एशिया में जापान अपनी साम्राज्यवादी नीति का जो उग्र प्रदर्शन कर रहे हैं उससे वह दिन दिन प्रतिदिन निकट आता जा रहा है जब संसार को एक बार फिर लोक-संहारकारी कार्य में संलग्न होना पड़ेगा। विगत शताब्दी के पिछले अर्द्धभाग में योरप में जिस लोकतंत्रशाही की स्थापना हुई थी, गत महायुद्ध के परिणाम-स्वरूप आज वह वहाँ धूलधूसरित हो रही है और उसको असीम महत्त्व प्रदान करनेवाले ग्रेट ब्रिटेन और फ़्रांस जैसे प्रमुख राष्ट्र किंकर्तव्य विमूढ़ हो रहे हैं। जर्मनी और इटली में तानाशाही का पहले से ही राज्य है और अब आस्ट्रिया में भी उसके चैंसलर शुशनिग के नेतृत्व में उसकी स्थापना हो गई है। और स्पेन, सो वह भी शस्त्रबल से तानाशाही की छत्रच्छाया के नीचे लाया ही जा चुका है। रूस में निस्सन्देह साम्यवादियों का राज्य है, परन्तु उसके नियन्ता स्टेलिन साहब किसी भी तानाशाह से कम नहीं हैं। कहने का मतलब यह कि योरप में अब प्रजातंत्र की भावना का महत्त्व जाता रहा और उसके स्थान में एकतंत्रशाही का बोलबाला हो गया है, और सो भी इस भावना के साथ कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हमीं सबसे बढ़े-चढ़े रहें। इसी से आज भूमध्यसागर इटली की प्रति-द्वन्द्विता के कारण ख़तरे के क्षेत्र में परिगणित हो गया है, जिससे उसके तटवर्ती राज्यों—विशेषकर यूनान, तुर्क, मिस्र आदि की संकटपूर्ण अवस्था होगई है।

योरप की उपर्युक्त भयप्रद अवस्था के कारण जापान को पूर्वी एशिया में एक प्रकार का एकाधिपत्य प्राप्त हो गया है और वह अजगर की भाँति निर्भयता के साथ चीन के निगल जाने में लगा हुआ है। इसके साथ ही वह सैबेरिया में रूस को भी सुख की नींद नहीं सोने दे रहा है। मंचूको की सीमा पर उसके या मंचूको-सरकार के सीमा-रक्षक दलों से रूस के वैसे ही दलों की आये दिन मुठभेड़ होती ही रहती है। अभी हाल में चीन के हांगकू और चेपी में जापान ने अपनी शक्ति का जो प्रदर्शन किया है उसे चीन को अपनी असमर्थता के कारण ही सहन करना पड़ा। अब जापान ने चीन के आगे ऐसी माँगें पेश की हैं जो चीन के लिए स्वीकार करना असम्भव है। उसकी माँग है कि (१) चीन रूस के आक्रमण करने पर उसका साथ दे, (२) उत्तरी चीन के पाँच प्रान्तों के स्वराज्य का अधिकार स्वीकार करे, (३) जापानी माल के बायकाट का प्रयत्न न करे, (४) जापानी माल की चुंगी घटा दे, (५) और अपने सभी शासन-विभागों में जापानी सलाहकार नौकर रक्खे। परन्तु चीन इन शर्तों को स्वीकार कर आत्महत्या करने को नहीं तैयार है। और उधर जापान धीरे-धीरे अपना फ़ौलादी पंजा उसकी ओर दृढ़ता के साथ बढ़ाता जा रहा है।

इस समय संसार के अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र की राजनीति की ऐसी ही भयावह स्थिति है। साम्राज्यवाद तथा एकतंत्रवाद की भावना प्रबल से प्रबलतर होती जा रही है और लोक-तंत्रवाद या साम्यवाद दिन-प्रतिदिन कमज़ोर पड़ते जा रहे हैं। वास्तव में यह अवस्था संसार के भविष्य के लिए आशा-द्योतक नहीं कही जा सकती है। परन्तु बात ऐसी ही है।

योरप में फ़्रांस का महत्त्व

मुसोलिनी और हिटलर के गर्जन-तर्जन के कारण योरप में स्थायी शान्ति की व्यवस्था क्या, बात तक नहीं हो पाती, और लोग यह समझ रहे हैं कि योरपीय राष्ट्र अगले महायुद्ध के लिए अब जल्दी जल्दी अपने क़दम बढ़ा रहे हैं। फ़्रांस ने जो सुदृढ़ गुटबन्दियाँ क़ायम की हैं उनमें भी घुन लग चला। बेल्जियम के बादशाह ने स्पष्ट रूप से घोषित कर दिया है कि अगले महायुद्ध में बेल्जियम तटस्थ रहेगा और अब रुमानिया तथा यूगोस्लाविया ने भी कुछ कुछ ऐसा ही भाव व्यक्त किया है। और ये तीनों देश फ़्रांस के घनिष्ठ मित्र थे। इधर यह बात भी प्रकट हो गई है कि जर्मनी की बात पर ग्रेट ब्रिटेन और फ़्रांस एक मत नहीं हैं। यद्यपि इसका यह अर्थ नहीं

है कि फ्रांस पर जर्मनी का आक्रमण होने पर वह फ्रांस का साथ नहीं देगा—ऐसे अवसर पर फ्रांस का साथ देने को ब्रिटेन वचनबद्ध है। परन्तु बात तो यह है कि फ्रांस की सुदृढ़ गुटबन्दी उपर्युक्त बातों के कारण निर्बल पड़ गई है। उधर जर्मनी, इटली, आस्ट्रिया और हंगरी का गुट फ्रांस के विरुद्ध दिन प्रतिदिन अधिकाधिक दृढ़ होता जा रहा है। यही देख सुन कर मुसोलिनी और हिटलर इस समय युद्ध की बात करने में लगे हैं और अपनी उद्दण्डता से योरप में स्थायी शान्ति की व्यवस्था नहीं होने देते। परन्तु यह सन्तोष की बात है कि ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस के सूत्रधार काफ़ी समझदार हैं और वे यही काम बड़े धैर्य के साथ दृढ़तापूर्वक करते जा रहे हैं जिससे योरप में शान्ति नहीं भंग हो रही है, साथ ही शान्ति बनाये रखने के लिए पारस्परिक समझौतों के आयोजन भी धीरे धीरे हो रहे हैं। इस समय फ्रांस और ब्रिटेन ही वास्तव में योरप की राजनीति के प्रधान संचालक हैं, साथ ही वे इतना बल-सम्पन्न हैं कि उनके विरुद्ध खड़ा होने का किसी को साहस नहीं हो सकता।

ब्रिटेन और मुस्लिम-राज्य

अबीसीनिया और इटली का जो युद्ध हाल में हुआ था उस अवसर पर भूमध्यसागर में ग्रेट ब्रिटेन के महत्त्व को भी ठेस पहुँचाने का प्रयत्न इटली ने किया था। पर ग्रेट ब्रिटेन ने संयम से काम लिया और अवस्था को बिगड़ने नहीं दिया। परन्तु अपनी उस संकटपूर्ण स्थिति को देखकर ब्रिटेन भविष्य के लिए विशेष रूप से सावधान हो गया है और अब वह पूर्वी भूमध्यसागर के तटवर्ती देशों से अपना मैत्री-बन्धन और भी अधिक दृढ़ बनाने को उत्सुक हुआ है। तुर्की की जल-प्रणाली का समझौता, मिस्र के साथ सन्धि आदि बातें उसकी इसी भावना का संकेत करती हैं।

तुर्की को अपने समुद्री मुहानों की क़िलेबन्दी करने का अधिकार दे दिया गया है, और रूस की यह माँग नहीं स्वीकार की गई है कि वह अपने जंगी जहाज़ों का बेड़ा उस जलमार्ग से निकाल सकेगा। इसके सिवा किसी राष्ट्र के हवाई जहाज़ भी जल-प्रणाली के ऊपर से नहीं उड़ सकेंगे। ऐसी अनुकूल व्यवस्था हो जाने से तुर्की ब्रिटेन के कृतज्ञता-पाश में बँध गया है। इधर मिस्र के साथ सुलह करने में जो बातें अभी तक बाधक थीं वे सभी दूर कर दी गई हैं और ब्रिटिश सरकार ने यह बात मान ली है कि ज्यों ज्यों मिस्र आत्मरक्षा के साधनों से सम्पन्न होता जायगा, त्यों त्यों अँगरेज़ी सेनायें वहाँ से हटती जायँगी। वास्तव में ब्रिटेन ने मिस्र को अपना मित्र और सहायक मान लिया है, जिसके बदले में मिस्र ने अँगरेज़ों को कुछ महत्त्व की सुविधायें प्रदान कर दी हैं। उनमें एक यह भी है कि अँगरेज़ सरकार अलेक्ज़ेंड्रिया में अपनी स्थल, जल और आकाश की सेनायें रख सकेगी।

इन महत्त्वपूर्ण समझौतों के बाद अब पेलेस्टाइन के विद्रोह को जिस शान्तिपूर्ण ढंग से दबाने का प्रयत्न किया गया है वह भी उसी भावना की प्रेरणा का सुफल है। छः महीने के भयानक विद्रोह के बाद एकाएक वहाँ के अरबों ने अपने हथियार चुपचाप रख दिये हैं। उनकी माँगों पर विचार करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने एक शाही कमीशन नियुक्त कर दिया है, जो उनकी माँगों को यथासम्भव पूर्ण करने का ही उपक्रम करेगा। उधर सीरिया को भी स्वाधीनता प्रदान करने का वचन फ्रांस की सरकार पहले ही दे चुकी है। इस प्रकार पूर्वी भूमध्यसागर के तटवर्ती सभी मुसलमान देश इस समझौते की नीति के द्वारा ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस के पक्ष में हो गये हैं। यदि भूमध्यसागर में इटली ग्रेट ब्रिटेन के संघर्ष में आने का दुस्साहस करेगा तो उस अवसर पर ग्रेट ब्रिटेन को मिस्र, तुर्की, सीरिया और पेलेस्टाइन से समुचित सहायता प्राप्त हो सकेगी। यही कारण है कि ग्रेट ब्रिटेन उपर्युक्त मुसलमान देशों के साथ विशेष मैत्री का भाव रख रहा है। और इस सम्बन्ध में ग्रेट ब्रिटेन के राजनीतिज्ञों ने जिस बुद्धिमानी का परिचय दिया है उससे निस्सन्देह भूमध्यसागर में ब्रिटेन की स्थिति अधिक सुदृढ़ हो गई है।

मुंशी प्रेमचन्द का स्वर्गवास

अत्यन्त दुःख की बात है कि इसी ८ अक्टूबर को मुंशी प्रेमचन्द जी का काशी में स्वर्गवास हो गया। पिछले दिनों वे जलोदर-रोग से ग्रस्त हो गये थे और उसी रोग में उनका देहावसान हो गया। प्रेमचन्द जी के निधन से हिन्दी का एक बड़ा भारी साहित्यकार उठ गया है, जिनके स्थान की

पूर्ति निकट भविष्य में सम्भव नहीं है। हिन्दी में आकर उन्होंने उसके कथा-भाग की असाधारण रूप से उन्नति की और अपनी लोकप्रिय रचनाओं से उसके प्रचार को बढ़ाया।

मुंशी प्रेमचन्द का जन्म काशी से पाँच मील पर पाँड़ेपुर ग्राम में एक कायस्थ परिवार में संवत् १९३३ में हुआ था। इनके पिता २०) मासिक वेतन पर डाकख़ाने में क्लर्क थे। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में इनका विवाह कर दिया। विवाह के एक साल बाद इनके पिता परलोक सिधार गये। उस समय ये क्वीन्स कालेज में नवें दर्जे में पढ़ते थे। धन-दौलत कुछ थी नहीं, जो कुछ था पिता की बीमारी में समाप्त हो चुका था। इन्हें पढ़ने की धुन थी। फ़ीस माफ़ हो गई और ट्यूशन का सहारा लेना पड़ा। मैट्रिकुलेशन पास कर लिया। पर धनाभाव के कारण आगे न बढ़ सके। अतएव ट्यूशन करके अपनी गुज़र करने लगे।

इसके बाद ये शिक्षा-विभाग में हो गये और सब-डिप्टी इंस्पेक्टरी के पद पर बहुत दिनों तक रहे और एफ़० ए० भी पास किया। फिर गोरखपुर नार्मल स्कूल में अध्यापक हो गये। वहाँ से इन्होंने १९२० में प्राइवेट बी० ए० पास किया।

मुंशी प्रेमचन्द पहले उर्दू में लिखते थे। उनका पहला उपन्यास १९०२ में और दूसरा १९०४ में निकला। कहानियाँ लिखनी इन्होंने १९०७ से आरम्भ कीं। पहले उर्दू पत्रिकाओं में ये 'नवाबराय' के नाम से लिखते थे। घर और गाँव में इनका यही नाम था। 'अदीब', 'ज़माना', 'हमदर्द' में कहानियाँ लिखते रहते थे। १९०९ में इनकी कहानियों का एक संग्रह 'सोज़े वतन' के नाम से ज़माना-प्रेस से निकला था, जिसके कारण इनकी नौकरी पर भी आ बनी थी। परन्तु किसी प्रकार से वह बला टल गई और सब प्रतियाँ सरकार को भेंट कर देनी पड़ीं।

इसके बाद ये हिन्दी में लिखने लगे। हिन्दी में 'सप्तसरोज' नाम का इनकी कहानियों का पहला संग्रह निकला, जिसका अच्छा स्वागत हुआ।

फिर तो इनकी रचनाओं का ताँता बँध गया। सेवा-सदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, गबन, कर्मभूमि आदि इनके प्रसिद्ध उपन्यास प्रकाशित हुए तथा नवनिधि, प्रेम-द्वादशी, प्रेम-पचीसी आदि कहानियों के संग्रह भी। उन्होंने असहयोग-आन्दोलन में सरकारी नौकरी छोड़कर साहित्य-सेवा का व्रत ग्रहण किया। काशी में अपना निजी प्रेस खोलकर 'हंस' नाम का एक मासिक पत्र भी निकालने लगे। बीमारी के पहले 'गोदान' नाम का इन्होंने अपना नया उपन्यास प्रकाशित किया था। कौन जानता था कि उसका यह नाम अपने नाम की इस तरह सार्थकता प्रकट करेगा।

मुंशी प्रेमचन्द जी के निधन से हिन्दी की वास्तव में अपार क्षति हुई है। उनसे हिन्दी को अभी बड़ी बड़ी आशायें थीं। परन्तु काल बली के आगे मानव की एक नहीं चलती। यद्यपि उसने उनका नश्वर शरीर तिरोहित कर दिया है, तथापि जब तक हिन्दी है, उनका नाम अमर रहेगा। हम यहाँ स्वर्गगत आत्मा की शान्ति की कामना करते हैं और उनके दुःखी परिवार के प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं।

मोहनजोदारो की पहेली

'रायल एशियाटिक सोसायटी' की बम्बई-शाखा के तत्त्वावधान में रेवरेंड एच० हेरस ने अभी हाल में एक रोचक भाषण किया है। भाषण का विषय था मोहनजोदारो के निवासियों का धर्म। उन्होंने वहाँ के लेखों को पढ़कर यह निष्कर्ष निकाला है कि आधुनिक हिन्दू-धर्म का आधार मोहनजोदारो का प्राचीन धर्म ही है। उन्होंने कहा है—

शिला-लेखों से प्रकट होता है कि मोहनजोदारो में 'अन' की प्रधान देवता के रूप में पूजा होती थी। उनमें वह प्रधान देवता, चैतन्य, एक श्रेष्ठ संरक्षक, सर्वव्यापक, दयालु, संहारक और सृष्टिकर्ता के रूपों में व्यक्त किया गया है। उसके आठ रूप बताये गये हैं। अन सूर्य के सदृश वर्ष भर आकाश की परिक्रमा करता रहता था और यह यात्रा वह राशिचक्र से होकर किया करता था। उस प्राचीन काल में इस चक्र में ८ राशियाँ ही मानी जाती थीं, अतएव प्रतिमास अन देवता एक भिन्न स्वरूप ग्रहण करता था। इस प्रकार राशिचक्र की आठ राशियों के अनुसार उसके आठ भिन्न भिन्न स्वरूप होते थे। शिलालेखों में दो राशियों का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। एक है मेष और दूसरी मीन है। एक दूसरे स्थल पर मेष और मीन की दो स्वरूपवाली सम्मिलित

मूर्ति का भी उल्लेख हुआ है। और यह मूर्ति 'नन्दूर' अर्थात् कर्क देश के देवता की बताई गई है। कर्क देश मोहेनजोदारो का प्राचीन नाम मालूम पड़ता है।

वहाँ के प्रधान देवता त्रिनेत्र थे। इस बात का शिलालेखों में प्राय: उल्लेख हुआ है। एक लेख में उनकी आँखों की तीन नक्षत्रों से तुलना की गई है। तीसरी आँख के प्रकट होने का भी एक लेख में उल्लेख हुआ है। इसी प्रकार यह भी बताया गया है कि अन की आँखें मछली जैसी थीं। अन के जिन अन्य नामों का उन लेखों में उल्लेख हुआ है उनमें से कुछ आज भी दक्षिणी भारत में शिव के लिए प्रयुक्त होते हैं। वे नाम इनमई, विड्कन, पेरन और तंडवन हैं।

शिवलिंग-पूजा का प्रचलन सारे देश में नहीं था। मोहेनजोदारो की आबादी में मीनस (मत्स्य) लोग अधिक संख्या में थे। ये लोग इस पूजा का तिरस्कार करते थे। वास्तव में इस पूजा का प्रचार वहीं के एक राजा ने किया था। उसने इसे विल्लव तथा कवल लोगों से प्राप्त किया था। वह अपने को इसके नाम पर 'चुर्नी मीन' कहता था। इस पूजा का प्रचलन करने से वह अपने प्रजावर्ग में अप्रिय हो गया था, जिससे वह क़ैद किया गया और उसकी बलि दे दी गई।

अन के सिवा दो और देवता थे, जो शेष देवताओं में सबसे श्रेष्ठ माने जाते थे। एक लेख में तीन देवों के संयुक्त जीवन का उल्लेख भी हुआ है। इन तीन देवताओं में दूसरा देवता अम्मा (माता) है। इसका एक नाम मीनकन्नी है। तीसरे देवता का अब तक पढ़े गये लेखों में नाम नहीं मिला है। माता और पिता के सम्मिलित रूप का नाम अम्मा हुआ। कदाचित् शैवों के अर्द्धनारीश्वर की मूर्ति का आधार यही अम्मा देवता हो। इनके सिवा नीलवन (भूमिदेवता), वृष्टिदेवता, नदीदेवता, मृत्युदेवता, पातालदेवता आदि के भी नाम मिले हैं।

वृक्षपूजा भी वहाँ प्रचलित थी। प्रत्येक नगर या गाँव का अपना ख़ास पवित्र वृक्ष होता था। अयनर या रक्षक देवताओं तथा आत्माओं का भी उल्लेख लेखों में है। देवता के चिह्नों में त्रिशूल का अधिक उल्लेख हुआ है। यह तो किसी किसी अवसर पर प्रधान देवता की मूर्ति के रूप में भी पूजा गया है। इसके सिवा इस सम्बन्ध में साँप और परशु का भी उल्लेख हुआ है। ये सब चिह्न आज के हिन्दू-धर्म में शिव के साथ संलग्न हैं।

यहाँ नरबलि का भी उल्लेख करना आवश्यक है। मनुष्यों का ७ या २१ का समूह एक साथ बलि किया जाता था। इनका बलिदान एक वृक्ष के नीचे होता था। यह वृक्ष मृत्युवृक्ष कहलाता था। इनकी लाशें दाहस्थान को गाड़ियों पर ले जाई जाती थीं। मन्दिरों की अपनी निजी सम्पत्ति होती थी। उनमें पूजा होती रहने के लिए उनमें घर, भूमि और गाँव लगे रहते थे। एक अवसर पर शिव-पूजा के लिए मछली का कर लगाया गया था।

वहाँ का शासन ईश्वरतन्त्र था। राजा को पुरोहित का भी काम करना पड़ता था। देश का असली शासक ईश्वर था। उसकी ओर से राजा को किसान की पदवी मिली थी। वास्तव में वहाँ के राजे कर्क के किसान (नन्दुलवन) नन्दुर (कर्क का नगर) के नाम पर कहलाते थे।

मोहेनजोदारो के इतिहास के सम्बन्ध में उक्त पादड़ी साहब ने जो यह नया प्रकाश डाला है वह अधिक रोचक है। परन्तु मोहेनजोदारो ने पहेली का जो रूप धारण कर लिया है वह सुलझने के बजाय उलझता ही जा रहा है। देखना है, इसकी मीमांसा कैसे होती है।

अवध में अपराधों की वृद्धि

संयुक्त-प्रान्त की सरकार का केन्द्र अब अवध का लखनऊ नगर हो गया है। ऐसी दशा में यह उत्तम होता यदि अवध में शान्ति और व्यवस्था की भी अच्छे ढंग से स्थापना हो जाती। खेद है कि अभी तक यह बात नहीं हो पाई है जैसा कि वहाँ के अपराधों के वृद्धिगत आँकड़ों से प्रकट होता है। अवध-चीफ़कोर्ट के रजिस्ट्रार ने फ़ौजदारी के मामलों की जो संख्यायें प्रकाशित की हैं वे आशाजनक नहीं हैं। उन्होंने यह भी लिखा है कि स्वयं लखनऊ नगरी में चोरियों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हो गई है। यह वास्तव में बड़े आश्चर्य की बात है। जो आज वास्तव में प्रान्त के शासन का मुख्य केन्द्र हो गया है, वहाँ चोरियों का इतना बाहुल्य!

अवध के भिन्न-भिन्न ज़िलों के जो अंक रजिस्ट्रार साहब ने दिये हैं उनसे उनके कथन का भले प्रकार समर्थन होता है। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

प्राण-नाश-सम्बन्धी अपराधों में सीतापुर का नम्बर सबसे आगे है। वहाँ ७६ अपराध हुए हैं। गत वर्ष इनकी संख्या ६६ ही थी। खीरी में भी ६२ हुए, जो गत वर्ष से १४ ज़्यादा हुए। इसी प्रकार रायबरेली और फ़ैज़ाबाद में भी गत वर्ष से ज़्यादा बारह बारह घटनायें हुईं। पर हरदोई में २४ और सुलतानपुर में १२ घटनायें पिछले वर्ष से कम घटनायें हुईं।

उपर्युक्त अपराधों के लिए अवध में इस वर्ष १६० आदमी सेशन सिपुर्द किये गये। गत वर्ष यही संख्या १३५ थी। सेशन्स अदालतों में इस वर्ष १,०५३ आदमियों पर मुक़द्दमे चले, पर इनकी संख्या गत वर्ष कुल ८७६ ही थी।

स्त्रियों के भगाने एवं व्यभिचार की घटनाओं में ४५ की वृद्धि हुई है। डकैती और सीनाज़ोरी के सिवा माल चुराने के अपराध ७१९ अधिक हुए। चोरियाँ २०९ अधिक हुईं। अकेले लखनऊ में ही ३२६ चोरियाँ हुईं। हाँ, डकैतियों की संख्या में ज़रूर कमी हुई है, पर वह कमी नाममात्र की है। इस वर्ष १,४७९ अधिक आदमियों से ज़मानतें ली गईं शान्ति और व्यवस्था के नाम पर। इसी प्रकार गत वर्ष से १२ आदमी ज़्यादा फाँसी पर चढ़ाये गये। कालेपानी की सज़ा २१२ आदमियों को दी गई, पर गत वर्ष यह संख्या १५१ ही थी। १९५ आदमियों को कोड़े लगाने की सज़ा दी गई। गत वर्ष यह संख्या कुल १४७ थी। उन अपराधों की संख्या नहीं दी गई जो झूठे समझे जाकर छोड़ दिये गये हैं।

महाराजकुमार रघुवीरसिंह की सफलता

सीतामऊ के युवराज महाराजकुमार रघुवीरसिंह बड़े विद्या-व्यसनी हैं। उन्होंने आगरा-विश्वविद्यालय से एम० ए० और एल-एल० बी की परीक्षायें पास की हैं और अब उन्हें उसी विश्वविद्यालय से डि० लिट की डिगरी भी प्रदान की जायगी। इसके लिए उन्होंने मालवा के इतिहास के सम्बन्ध में एक पाण्डित्यपूर्ण निबन्ध लिखा है, जिसमें सन् १६९८ से लेकर सन् १७६५ तक के इतिहास का प्रामाणिक विवेचन किया गया है। इस निबन्ध की रचना के लिए उन्होंने अनेक दुष्प्राप्य हस्तलिखित ग्रन्थों का अध्ययन किया है। महाराजकुमार साहब अपनी इस सफलता के लिए बधाई के पात्र हैं। उन्हें हिन्दी के प्रति विशेष अनुराग है और वे हिन्दी के एक श्रेष्ठ लेखक हैं। आशा है, अब वे हिन्दी की ओर विशेषरूप से आकृष्ट



[रघुवीरसिंह]

होंगे और उनके प्रयत्न से हिन्दी में उपयुक्त इतिहास-ग्रन्थों के प्रणयन का सूत्रपात होगा।

संयुक्तप्रान्त में दियासलाई

दियासलाई के कारबार के विशेषज्ञ श्रीयुत टी० एन० गुप्त का कहना है कि संयुक्तप्रान्त में दियासलाई का कारबार बड़ी सफलता के साथ चलाया जा सकता है। इसका कारण यह है कि दियासलाई बनाने के लिए जो लकड़ी काम में आती है वह कुमाऊँ तथा रुहेलखण्ड की ओर बहुतायत से प्राप्त होती है। खेद की बात यह है कि उसका यहाँ अधिक उपयोग नहीं होता और वह अन्य प्रान्तों को भेज दी जाती है। श्रीयुत गुप्त ने कहा है कि प्रतिदिन १०० ग्रोस दियासलाई तैयार करनेवाले छोटे-छोटे कारख़ाने हिमालय के प्रायः सभी ज़िलों में खोले जा सकते हैं। ऐसे कारख़ानों के खोलने से उन ज़िलों के बेकारों की संख्या में भी कमी हो सकती है। शक्कर के कारख़ानों में बच्चे और स्त्रियाँ नहीं ली जातीं। वे सब इन कारख़ानों में काम कर सकेंगी। संयुक्त-प्रान्त में प्रतिवर्ष ५० लाख ग्रोस दियासलाई का ख़र्च है, जिसका मूल्य ९० लाख रुपया है। इसमें से ८० फ़ी सदी दियासलाई कलकत्ता, बम्बई और पंजाब से आती है। १९२३ में सरकार ने बाहर से आनेवाली दियासलाई पर चुंगी बढ़ा दी थी।

यह देखकर दियासलाई भेजनेवाले स्वीडन और जापान ने चुंगी से बचने के लिए भारत में ही दियासलाई बनाने के अपने बड़े बड़े कारख़ाने खोल दिये। अतएव यहाँ के दियासलाई के देशी कारख़ानों को उनकी प्रतिद्वन्द्विता करनी पड़ी और वे अपने संगठन और अध्यवसाय के द्वारा काफ़ी सफल भी रहे। पिछले १५ वर्षों की उनकी अवस्था को देखने से यह जान पड़ता है कि दियासलाई बनाने के देशी कारख़ाने यहाँ सफलता से चल सकते हैं और विदेशियों के कारख़ाने उन्हें उखाड़ नहीं सकते। श्रीयुत गुप्त बताते हैं कि ऐसे छोटे छोटे कारख़ाने बहुत थोड़ी पूँजी से चलाये जा सकते हैं। ८ से १० हज़ार रुपये की मेशिनरी से प्रतिदिन १०० ग्रोस दियासलाई तैयार की जा सकती है। इसके कारख़ाने बरेली, मुरादाबाद, सहारनपुर, हलद्वानी, हरद्वार, कानपुर, लखनऊ, अलीगढ़, इलाहाबाद, अलमोड़ा, आज़मगढ़, बहराइच, बाँदा, बस्ती, बिजनौर, बदायूँ, खेरी, मेरठ, पीलीभीत और शाहजहाँपुर आदि नगरों में सुविधा के साथ खोले जा सकते हैं। अभी तक इस प्रान्त में एक कारख़ाना बरेली के और एक दिल्ली के पास हैं और अब एक लखनऊ और एक कानपुर के पास खुलने जा रहा है। क्या ही अच्छा होता यदि यहाँ के व्यापार-कुशल लोग श्रीयुत गुप्त की सलाह के अनुसार उपर्युक्त सभी ज़िलों में दियासलाई बनाने के कारख़ाने खोलने का प्रयत्न करते? उन्हें इस प्रयत्न में सरकार से भी काफ़ी सहायता मिल सकती है, क्योंकि इस समय वह भी ग्राम-उद्योगों के बढ़ाने में यत्नवान् है।

कारों से प्राणहानि

देश में मोटरकारों का प्रचार बढ़ने के साथ साथ उनके द्वारा प्राणि-हानि की संख्या भी बड़ी तेज़ी से बढ़ती जा रही है। 'बाम्बे क्रानिकल' का तो यहाँ तक कहना है कि इस बात में बम्बई ने संसार के सभी शहरों को मात कर दिया है। इस वर्ष वहाँ दस हज़ार मोटरों के पीछे ६८·८ मृत्युओं का औसत पड़ता है। और यही औसत ग्रेट ब्रिटेन में ३०·६ और संयुक्त-राज्य में १३·६ है। और इनमें संयुक्त राज्य वह देश है जहाँ मोटरकारों का अत्यधिक प्रचार ही नहीं है, किन्तु वहाँ वे तेज़ भी बहुत चलाये जाते हैं। तो भी वहाँ मृत्युओं का औसत कुल १३·६ ही है। तब यहाँ बम्बई की ही सड़कों में यह भीषण संहार-कार्य क्यों हो रहा है? कहा जाता है कि भारतीय लोग सड़कों पर ठीक ढंग से न तो चलते हैं, न आसन्न भय से ही सावधान रहते हैं, फलतः वे मोटर के संघर्ष में आकर अपनी जान गँवा बैठते हैं। चाहे जो हो, यह अवस्था वाञ्छनीय नहीं है और जब यहाँ मोटरों का प्रचार भविष्य में और अधिक बढ़ेगा ही तब इस प्रबन्ध की भी आवश्यकता है कि लोगों की उनके संघर्ष में पड़ने से रक्षा की जाय। ऐसे मार्गों की व्यवस्था की जाय जो मोटरों आदि के मार्ग से पृथक् हों और लोग निरापद रहकर उन पर चल-फिर सकें। इसके सिवा पुलिस को भी इस ओर विशेष सावधानी से अपना कर्तव्य-पालन करना चाहिए।

भारत में नारियल का धन्धा

भारत में १५,००,००० एकड़ भूमि में नारियल उत्पन्न होता है और इसमें से उसकी १०,००,००० एकड़ भूमि ट्रावनकोर, कोचीन और मलाबार में है। इस धन्धे में ३० करोड़ रुपया लग चुका है और इससे ३० लाख आदमियों का जीवन-निर्वाह होता है। भारत में नारियल, गरी या उसके तेल की जितनी खपत है उसकी पूर्ति सब यहीं के धन्धे से हो जाती है। परन्तु भारत-सरकार की उदारता से १९३०-३१ से लंका से भी नारियल एवं उसका तेल आदि यहाँ आने लगा है। इसके पहले चुंगी के कारण लंका अपना यह माल भारत में न भेज कर अन्य देशों में भेजा करता था, परन्तु अब जब अन्य देशों में उसके माल के जाने में रुकावट डाली जाने लगी तब उसने भारत की ओर ध्यान दिया। भारत-सरकार ने चुंगी कम करके उसके लिए यहाँ का मार्ग खोल दिया। फलतः लंका ने १९३०-३१ में १,३६१ हंडरवेट गरी, ७३,७५० हंडरवेट तेल और १०,४३८ हंडरवेट नारियल भेजे। १९३३ में उसने ४,८६,००० हंडरवेट गरी, ३,५८,००० हंडरवेट तेल और ३,७०,००० हंडरवेट नारियल भेजे। उसके माल के ये आँकड़े इधर और भी बढ़ गये हैं। इससे प्रतीत होता है कि यहाँ के नारियल का व्यवसाय लंका की प्रतियोगिता में नहीं ठहर सकेगा और वह बैठ जायगा। यही परिस्थिति देखकर नारियल का व्यवसाय करनेवालों ने वायसराय महोदय से अपील की है।

इधर तो लंका के साथ यह व्यवहार है, उधर वह अपने यहाँ से भारतीयों को निकाल बाहर करने का प्रयत्न कर रहा है। जब लंका में योरपीयों ने जंगल साफ़ कर के कहवा, चाय और रबर के बाग़ लगाये थे तब इसके लिए भारत से मज़दूर ले जाये गये थे। उस द्वीप में जो भारतीय इस समय निवास करते हैं उनमें अधिकांश उन्हीं की सन्तानें हैं। परन्तु अब वहाँ के सिंहाली उन भारतीयों को अपने देश से निकाल बाहर करना चाहते हैं, साथ ही इस बात का भी प्रयत्न कर रहे हैं कि जो भारतीय मज़दूर वहाँ आते रहते हैं उनका भी आना रोक दिया जाय। वे कहते हैं कि बाहरी श्रमिकों की अधिकता से वहाँ के स्वदेशी श्रमिकों की रोज़ी मारी जाती है। पर वे यह नहीं सोचते कि जिन भारतीय श्रमिकों की बदौलत उनके द्वीप का आर्थिक अभ्युदय हुआ है उन्हें अपने संकुचित राष्ट्रीय दृष्टिकोण से निकालकर भविष्य में अपने देश की हानि भी कर सकते हैं। भारत का लंका से काफ़ी व्यापार भी तो है, जिसका एक उदाहरण ऊपर दिया गया है। भारत को असन्तुष्ट करके वह अपने व्यापार को ठेस पहुँचा सकता है। परन्तु जान पड़ता है, वहाँ के देशभक्तों को इसकी परवा नहीं है। उनको इसकी परवा हो चाहे न हो, पर भारत-सरकार को इस बात की चिन्ता अवश्य करनी चाहिए कि भारत के नारियल के धन्धे की पूरी रक्षा की जाय।

ऋण-सम्बन्धी नये क़ानूनों का प्रभाव

संयुक्तप्रान्त के रेजिस्ट्रेशन विभाग के १९३५ के जो आँकड़े प्राप्त हुए हैं उनसे इस बात का पता चलता है कि हाल के ऋण-सम्बन्धी क़ानूनों का लोगों पर क्या प्रभाव पड़ा है तथा उनकी आर्थिक कठिनाई की कैसी दशा है। १९३५ में १,९५,०७८ दस्तावेज़ों की रजिस्ट्री कराई गई, पर १९३४ में इनकी संख्या २,०३,२१३ थी। अर्थात् ४ फ़ी सदी की कमी हुई है और यह कमी अधिकतर रेहननामों में हुई है। इस सीग़े में पिछले वर्ष की अपेक्षा २६.३ फ़ी सदी की कमी हो गई है। इन्स्पेक्टर जनरल ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि ऋण-सम्बन्धी नये क़ानूनों के कारण पहले की तरह अब जायदादें रेहन रखने में लोग रुपया उतने उत्साह से नहीं लगा रहे हैं। परन्तु रेहननामों की अपेक्षा बिक्रीनामे अधिक संख्या में रजिस्ट्री कराये गये हैं। इस तरह पट्टों की रजिस्ट्री में भी वृद्धि हुई है। इससे भी यह प्रकट होता है कि अब लोगों को उतनी सहूलियत से ऋण नहीं मिल रहा है और नये क़ानूनों के कारण वे लोग कठिनाई में पड़ गये हैं जो वर्ष प्रतिवर्ष ऋण ले लेकर अपनी खेती-बारी करते रहे हैं। इस परिस्थिति की ओर सरकार का ध्यान जाना चाहिए। जहाँ उसने उपयोगी क़ानून बनाकर ऋणग्रस्त कृषकों तथा ज़मींदारों की रक्षा की व्यवस्था की है, वहाँ उसे इस बात का भी प्रबन्ध करना चाहिए कि उन्हें अपना कारबार चलाने के लिए आवश्यक रुपया भी ऋण के रूप में प्राप्त होता रहे। अन्यथा इन क़ानूनों से लाभ के स्थान में उलटा हानि ही होगी।

सिनेमा का कारबार

सिनेमा का धन्धा भारत में कितना अधिक बढ़ गया है, इसका परिचय मिस्टर जी० ए० दोस्सानी ने अपने एक भाषण-द्वारा दिया है। यह भाषण उन्होंने कलकत्ता-रोटरी क्लब में हाल में ही किया है। उसमें उन्होंने बताया है कि भारत में इस धन्धे में ५ करोड़ की पूँजी लगी हुई है। फ़िल्म बनानेवाले ११० और फ़िल्म वितरण करनेवाले ९९ कारख़ाने यहाँ हैं। सिनेमा-घरों की संख्या ६७० और उनके कर्मचारियों की २५ हज़ार है। उन्होंने कहा है कि यह धन्धा अभी अपने प्रारम्भिक रूप में है और यदि सरकार इस धन्धे को प्रोत्साहन दे तो देश के बेकार लोगों की संख्या में भी कमी होगी, साथ ही आयकर आदि के रूप में उसकी आय में भी वृद्धि होगी। उनका कहना है कि इस धन्धे को प्रोत्साहन देने के लिए फ़िल्म बनाने के कच्चे माल पर सरकार को चुंगी नहीं लेनी चाहिए तथा सिनेमा का उपयोग अपने ग्रामोद्धार के कार्य में करना चाहिए। उन्होंने यह भी बताया है कि भारत में हिन्दी, उर्दू, बँगला, तामिल, तेलुगू, कनाड़ी, गुजराती, पंजाबी, मराठी आदि भिन्न-भिन्न भाषाओं के भी फ़िल्म बनते हैं। मध्यम श्रेणी के हिन्दी या उर्दू के टाकी फ़िल्म के बनाने में ६० हज़ार रुपया ख़र्च पड़ता है। इसमें १८ हज़ार रुपया कच्चे फ़िल्म और लेबोरेटरी पर, १२ हज़ार रुपया स्टूडियो का किराया, १५ हज़ार रुपया आर्टिस्टों को वेतन, ५ हज़ार रुपया प्रचार पर और १०

हज़ार रुपया फुटकर आवश्यक बातों पर ख़र्च होता है। निस्सन्देह यह धन्धा इस समय वृद्धि पर है और यदि इसके सञ्चालक भारतीयों की भावनाओं और प्रवृत्तियों को अधिकाधिक ध्यान में रक्खा करें तो इस कारबार की अधिक उन्नति ही नहीं होगी, यह अधिक लोकोपयोगी हो सकेगा।

सर मनुभाई और स्त्रियों की संख्या

बम्बई में 'बाम्बे प्रेसीडेंसी सोशियल रिफ़ार्म असोशिएशन' नाम की समाज-सुधार-सम्बन्धी एक सभा है। इसकी एक हाल की बैठक में सर मनुभाई मेहता ने एक मनोरञ्जक भाषण पढ़ा है। इसमें मेहता साहब ने यह कहा है कि भारत में पुरुषों की संख्या स्त्रियों की संख्या की अपेक्षा अधिक है, और इससे यह प्रकट होता है कि यहाँ की जन-संख्या घट रही है। उन्होंने यह भी बताया है कि पुरुषों की संख्या का आधिक्य यहाँ की अन्य जातियों की अपेक्षा मुसलमानों में और साथ ही पारसियों में अधिक है। अपने इस कथन को उन्होंने अंक देकर सिद्ध किया है। उनका कहना है कि प्रतिहज़ार पीछे हिन्दुओं में ९५१, पारसियों में ९३८ और मुसलमानों में ९०१ स्त्रियाँ हैं। फिर हिन्दुओं में स्त्रियों का औसत सन् १९०१ में ९५१ था और वही १९३१ में घटकर ९५१ हो गया है। उधर उसी काल में मुसलमान स्त्रियों का औसत ९३८ से घटकर ९०१ होगया है। परन्तु यह कथन विचारणीय है, क्योंकि १९३१ की मनुष्य-गणना की रिपोर्ट से तो यही प्रकट होता है कि जन-संख्या में आशातीत वृद्धि हुई है और उसमें भी विशेषकर मुसलमानों की संख्या में। तथापि पुरुषों और स्त्रियों की संख्याओं में जो यह भारी विषमता है, राष्ट्र के स्वास्थ्य के लिए वास्तव में हानिकर है। समाज-सुधारकों को इस ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए।

आचार्य द्विवेदी जी

प्रसन्नता की बात है कि आचार्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी जी अपनी कठिन बीमारी से मुक्त हो गये हैं। वे सितम्बर के पिछले सप्ताह में ज्वरग्रस्त हुए थे और बीच में रोग इतना अधिक बिगड़ गया था कि चिकित्सक भी उनके जीवन से निराश हो गये थे। परन्तु परमात्मा की कृपा से उनका रोग दूर हो गया। इस वृद्धावस्था में एक महीने तक शय्यागत हो जाने से वे बहुत ही कमज़ोर हो गये हैं। आशा है, कुछ ही दिनों में वे पूर्ववत् स्वस्थ हो जायँगे।



[पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी]

इलाहाबाद की रामलीला

इलाहाबाद में रामलीला इस वर्ष पूरे ११ वर्ष के बाद मनाई गई है। इसका सारा श्रेय यहाँ के अधिकारियों को, विशेषकर कलेक्टर श्रीबिशप साहब को है। यह उन्हीं की प्रेरणा और व्यवस्था का फल है कि इलाहाबाद में रामलीला शान्तिपूर्वक हो सकी है। इस अवसर पर यहाँ के प्रतिष्ठित मुसलमान नागरिकों ने भी रामलीला मनाये जाने के प्रति अच्छा सौहार्द व्यक्त किया है, जो अन्य नगरों के लिए एक उदाहरण है।

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

दिसम्बर १९३६ } भाग ३७, खंड २ संख्या ६, पूर्ण संख्या ४४४ { मार्गशीर्ष १९९३

सान्ध्य गीत

लेखिका, श्रीमती महादेवी वर्मा, एम० ए०

रागभीनी तू सजनि निःश्वास भी तेरे रँगीले!
लोचनों में क्या मदिर नव?
ख जिसको नीड़ की सुधि फूट निकली बन मधुर रव!
झूमते चितवन गुलाबी—
—में चले घर खग हठीले!

छोड़ किस पाताल का पुर
ग से बेसुध, चपल सपने लजीले नयन में भर,
रात नभ के फूल लाई
आँसुओं से कर सजीले!

आज इन तन्द्रिल पलों में,
लमती अलकें सुनहली असित निशि के कुन्तलों में!

सजनि नीलमरज भरे
रँग चूनरी के अरुण पीले!

रेख सी लघु तिमिर लहरी,
चरण छू तेरे हुई है सिन्धु सीमाहीन गहरी!
गीत तेरे पार जाते
बादलों की मृदु तरी ले!

कौन छायालोक की स्मृति,
कर रहीं रङ्गीन प्रिय के मृदु पदों की अंक-संसृति?
सिहरती पलकें किये देतीं
विहँसते अधर गीले!



देशभक्त सेठ जमनालाल बजाज़

लेखक, श्रीयुत श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम० ए०

सेठ जमनालाल जी से मिलने का पहला अवसर मुझे पिछली लखनऊ-कांग्रेस में मिला था। एक मित्र से सेठ जी के बारे में थोड़ा-बहुत मुझे मालूम तो हो गया था, लेकिन इसके पहले उनसे मिलने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ था। इँग्लैंड से लौटे कुछ ही महीने बीते थे। मैंने सोचा कि कांग्रेस के अवसर पर लखनऊ घूम आना अच्छा रहेगा। 'मोतीनगर' भी देख लूँगा; कुछ तफ़रीह हो जायगी और सेठ जी से भी मिलने का मौक़ा मिल जायगा।

× × × ×

१३ अप्रैल को मैं अपने भाई के साथ मोतीनगर पहुँचा। सुबह जल्दी ही जाने की कोशिश की, लेकिन चलते चलते धूप निकल आई और काफ़ी गर्मी हो गई। मोतीनगर में धूल भी काफ़ी फाँकनी पड़ी। पूछने पर मालूम हुआ कि सेठ जी विषय-निर्वाचन-समिति में व्यस्त हैं।

"क्या मैं अपना कार्ड भेज सकता हूँ?" मैंने एक स्वयंसेवक से पूछा।

"अभी अन्दर जाने की इजाज़त नहीं है। आप अपना कार्ड मुझे दे दीजिए। उचित समय पर मैं उनको दे दूँगा।"

"बहुत अच्छा, जनाब!" मैंने लम्बी साँस लेकर कहा।

मैं और भाई साहब पास के दूसरे पंडाल के समीप जहाँ कुछ छाँह थी, चुपचाप बैठ गये। कभी सिर पर तौलिया डाले कृपलानी जी बाहर आते, कभी डाक्टर ख़ाँ साहब? लेकिन सेठ जी का कोई पता न चला। एक-दो बार अपने कार्ड के बारे में फिर तहक़ीक़ात की। लेकिन स्वयंसेवकों ने कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया। मैं बैठा बैठा ऊब चला। सोचा फिर कभी आने की कोशिश करूँगा। लेकिन कार्ड भिजवाकर चला जाना शिष्टाचार के ख़िलाफ़ था। इसी विचार से कुछ देर और बैठा रहा।

"अरे! सेठ जी तो बाहर आ गये!" मेरे भाई ने कहा।

"अच्छा, ये ही सेठ जी हैं?" मैंने जल्दी से उठ कर पूछा।

मुझको अख़बारों में देखे हुए उनके फोटो का भी स्मरण हुआ। हम दोनों जल्दी से उनके पास पहुँचे। मेरे भाई ने जो उनसे पहले एक बार मिल चुके थे, नमस्कार किया। मेरा परिचय कराया। मैंने भी नमस्कार किया।

"आप योरप से कब आये?" उन्होंने मुझसे पूछा।

"कई महीने हो गये।" मैंने धीरे से कहा।

"अच्छा! मुझे तो कोई ख़बर ही नहीं मिली।"

कुछ देर तक उनसे बातें हुईं। लेकिन वे कमिटी से बीच में ही उठ आये थे, अधिक समय तक बाहर नहीं ठहर सकते थे। उन्होंने अपने ठहरने के स्थान का पता बतलाया और एक बार फिर मिलने को कहा। मैं उनकी आज्ञा कैसे न मानता?

× × × ×

कुछ ही महीनों के बाद मुझको उनके 'सम्पर्क' में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनके सम्पर्क में देश-सेवा का बल है, स्वार्थ का नहीं। वे नवयुवकों को देश या समाज की सेवा करने के काम में लगाने की फ़िराक में रहते हैं। मैं कितनी सेवा कर सकूँगा, यह तो ईश्वर ही जानता है, लेकिन हाँ, उनके 'सम्पर्क' में आ गया हूँ। मेरा कार्य-क्षेत्र तो शिक्षा और साहित्य ही है। अस्तु।

वर्धा में रहने से मुझे उनके दैनिक जीवन को नज़दीक से देखने का अवसर मिला। इस लेख में मुझे उनकी जीवनी नहीं लिखनी है, केवल उनके दैनिक जीवन की उन्हीं बातों का ज़िक्र करना है जिनका मुझ पर प्रभाव पड़ा है।

× × × ×

उनकी जीवनी के बारे में इतना कहना काफ़ी होगा कि उनका जन्म सन् १८८९ में सीकर के पास 'काशी का बास' नाम के एक छोटे-से गाँव में हुआ था। कुछ साल बाद वर्धा के सेठ बच्छराज जी ने अपने स्वर्गीय पुत्र की गोद में उनको ले लिया। परिस्थिति के अनुसार उनकी अधिक शिक्षा नहीं हो सकी। मराठी के चौथे दर्जे तक पढ़े और दो-तीन महीने अँगरेज़ी पढ़कर स्कूल छोड़ दिया। सेठ बच्छराज जी का आदर सरकार भी काफ़ी करती थी, अतएव सेठ जमनालाल जी को लगभग अठारह साल की ही उम्र में आनरेरी मैजिस्ट्रेटी मिल गई। बाद में

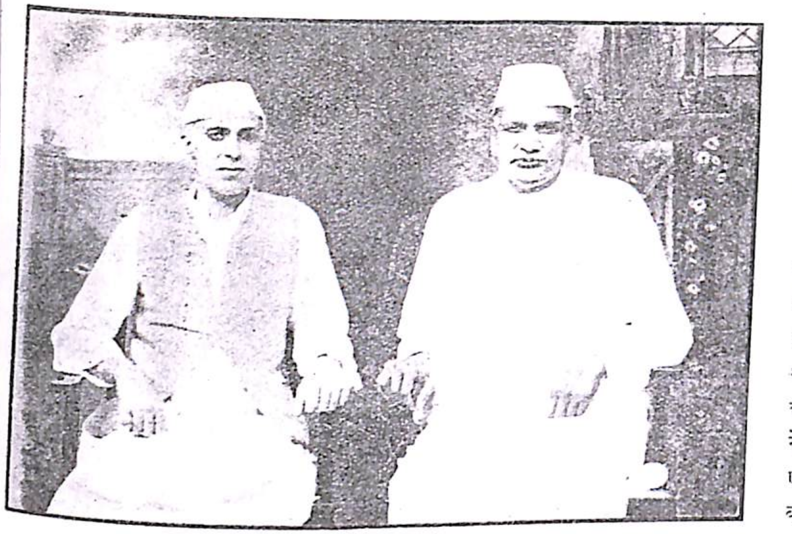


[श्रीमती जानकीदेवी बजाज़]

रायबहादुर का भी ख़िताब मिला। प्रान्त के गवर्न भी उनके यहाँ पार्टी में आया करते थे। लेकि उनका हृदय तो कहीं और ही था। जब वे महात्मा गांधी सम्पर्क में गये, उनके विचारों में और भी परिवर्त हुआ। देश-प्रेम की आग जो अब तक दबी हुई धीरे धी सुलग रही थी, एकदम भभक उठी। आनरेरी मैजिस्ट्रे और रायबहादुरी छोड़कर सन् १९२१ के सत्याग्रह-आन्दोल में वे कूद पड़े। सरकार ने उनको अपने हाथ में रख की बहुत कोशिश की, लेकिन सेठ जी अपने निश्चय प अडिग रहे।

× × × ×

यह तो हुई उनकी जीवनी का थोड़ा-सा परिचय, लेकिन मुझे तो उनके वर्तमान जीवन-यात्रा के विषय में लिखना है। जो लोग उनके सम्पर्क में आये हैं उनको सेठ जी की कुशाग्र बुद्धि का अन्दाज़ा लग गया होगा। इतनी थोड़ी शिक्षा पाने पर भी उनका दिमाग़ इतना तेज़ है कि बड़े बड़े लोगों को जिन्होंने यूनिवर्सिटी की ऊँची से ऊँची शिक्षा पाई है, उनके



[सेठ जमनालाल बजाज़ राष्ट्रपति पंडित जवाहरलाल नेहरू (बाईं ओर) के साथ।]

सामने हार माननी पड़ती है। अभ्यास करके हिन्दी, मराठी और गुजराती तो अच्छी तरह जान ही गये हैं, इनके साथ ही अँगरेज़ी पर भी काफ़ी दख़ल हो गया है। अच्छी तरह अँगरेज़ी बोल तो नहीं सकते, लेकिन समझने में कभी कभी बड़ी योग्यता दिखलाते हैं। उन्होंने बड़ी बड़ी किताबें तो बहुत कम पढ़ी हैं, लेकिन व्यावहारिक दक्षता में उनको मात करना बहुत कठिन है। न-जाने वे कितने ट्रस्टों, सभाओं अथवा मंडलों का काम सँभालते हैं! हर एक संस्था को बड़ी योग्यता से चला रहे हैं और ये संस्थायें—शिक्षा, समाज, राजनीति, व्यापार इत्यादि सभी भिन्न-भिन्न विषयों की हैं।

परन्तु सेठ जी ने प्रत्येक क्षेत्र में केवल अपनी तीव्र बुद्धि के द्वारा व्यावहारिक दक्षता हासिल की है। उदाहरण के लिए उनकी व्यापारिक उन्नति को ही लीजिए। सेठ बच्छराज जी ने उनके लिए कुछ ही लाख रुपये छोड़े थे। लेकिन उन्होंने अपनी योग्यता से उस रुपये का इस प्रकार सदुपयोग किया कि उनकी ख़ूब आर्थिक वृद्धि हुई।

कुशाग्रबुद्धि होने के साथ-साथ सेठ जी का हृदय भी प्रेम और सहानुभूति से भरा है। जो उनके पास रहते हैं वे उनकी सहृदयता का पूरा अनुभव कर सकते हैं। जो उनके संपर्क में अधिक आ गये हैं उनको उन्होंने बिलकुल अपना कुटुम्बी बना लिया है।

ईश्वर ने सेठ जी को धन, बुद्धि, हृदय—सब कुछ दिया है, लेकिन उनको किसी प्रकार का घमंड नहीं है। लोक-सेवा को अपना धर्म बना लिया है। अतएव उनकी जीवन-यात्रा बिलकुल सीधी-सादी है। उनके कर्मचारी आराम और ठाट से रहते हैं। मेहमानों के लिए एक विशाल अतिथि-गृह बनवा रक्खा है, जिसमें सब प्रकार की सुविधायें उपस्थित रहती हैं। लेकिन ख़ुद एक छोटी-सी कोठरी में ही रहते हैं। उसी में सोना, उसी में दिन भर का सब कार्य करना। पहले तो मोटर इत्यादि सभी आराम की सामग्री रहती थी। अब तो अपने पुराने मोटर को बैलगाड़ी का रूप दे दिया है। इतने धनी होते हुए भी बिलकुल साधारण व्यक्ति जैसा जीवन व्यतीत करते हैं। किसी तरह का ऐश व आराम नहीं करते। उनको अपने त्याग का कोई घमंड भी नहीं है। वह दिखलाने का प्रयत्न नहीं करते कि सादा जीवन व्यतीत करने में वे बड़ा भारी त्याग कर रहे हैं। यात्रा करते समय अधिकतर तीसरे दर्जे में ही जाना पसन्द करते हैं। अपने आराम के लिए अधिक ख़र्च नहीं करना चाहते। लेकिन देश-सेवा के लिए वे सदैव मुक्तहस्त रहते हैं।

इतने त्याग और सेवा-भाव के होते हुए भी कुछ लोगों ने तिलक-स्वराज्य-फ़ंड का दुरुपयोग करने का आक्षेप उन पर कर ही डाला। सेठ जी जैसे देशभक्त महापुरुष पर इस प्रकार का मिथ्या दोषारोपण करना कितना घोर पाप है, इसके उल्लेख करने की यहाँ ज़रूरत नहीं है। इस तरह ऐसे आक्षेपों का केवल एक ही कारण हो सकता है। और वह है व्यक्तिगत द्वेष अथवा ईर्ष्या। कुछ लोग कांग्रेस को बदनाम करने के लिए सेठ जी की

भी बुराई किया करते हैं। लेकिन जो लोग उनके सम्पर्क में आये हैं वे यह बात दावे के साथ कह सकते हैं कि देश के सौंपे हुए रुपये का दुरुपयोग करना सेठ जमनालाल जी के लिए उतना ही अस्वाभाविक है, जितना पानी के लिए किसी वस्तु को जला देना।

हाँ, सेठ जी के दैनिक जीवन के बारे में एक बात और कहनी है। सुबह से शाम तक बहुत-सा काम रहने पर भी वे कभी चिन्तित अथवा क्रुद्ध नहीं होते। प्रत्येक काम बड़ी शान्ति के साथ सोच-विचार कर करते हैं। उनकी स्मरण-शक्ति भी बहुत तेज़ है। प्रत्येक बात उनको बड़े विस्तार से याद रहती है। यही सब गुण हैं जिनके कारण वे आज देश और समाज की इतनी सेवा कर रहे हैं। भारत में उनसे अधिक धनी तो बहुत सेठ और साहूकार होंगे, लेकिन उनके-से दिमाग़ और हृदयवाले व्यक्ति विरले ही मिलेंगे।

× × × ×

सेठ जी सामाजिक सुधार में भी लगे रहते हैं। अपना मन्दिर, कुआँ इत्यादि हरिजनों के लिए वर्धा में सबसे पहले उन्हीं ने खोला था। विवाह-सम्बन्धी सुधार भी बहुत-से किये हैं। उनको देशप्रेमी और सुयोग्य युवकों और युवतियों की परस्पर शादी कराने की बड़ी फ़िक्र रहती है। वे चाहते हैं कि वर और वधू दोनों एक ही स्वभाव के हों और देश अथवा समाज की सेवा मिलकर कर सकें। बहुत-से नवयुवकों की इसी प्रकार शादी कराकर उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण समस्या को हल किया है। विवाह सम्बन्ध कराने में वे कभी अनुचित दबाव नहीं डालते और बहुधा ऐसे लड़के और लड़कियों की शादी कराते हैं जिनका परस्पर परिचय होता है। ऐसी शादी कराने में उनको बड़ी दिलचस्पी रहती है, इसलिए कुछ मित्रों ने उनका नाम मज़ाक में 'शादीलाल' रख दिया है।

× × × ×

यहाँ सेठ जी के राष्ट्रीय कार्यों का भी संक्षेप में वर्णन करना आवश्यक जान पड़ता है। सन् १९२१ में जो राष्ट्र-सेवा उन्होंने की थी वह किसी से छिपी नहीं है। महात्मा गांधी यदि असहयोग-आन्दोलन के मस्तिष्क थे तो जमनालाल जी उसके मेरुदंड थे। दो वर्ष बाद सेठ जी ने नागपुर-झंडा-सत्याग्रह में बड़ा उत्साह और साहस



[सेठ जी की माता।]

दिखलाया। इस सत्याग्रह के वही मुख्य सञ्चालक थे। सन् १९२० की नागपुर-कांग्रेस में वे ख़ज़ानची चुने गये थे, और आज तक वे उस काम को बड़ी योग्यता से चला रहे हैं। 'गांधी-सेवा-संघ' जो अब राष्ट्र की एक महत्त्व-पूर्ण संस्था है, उन्हीं के उत्साह से संगठित हुआ है। 'अखिल भारतीय चर्खा-संघ' का भी संचालन वे अध्यक्ष की हैसियत से कर रहे हैं। मेरे विचार में शायद ही कोई ऐसी राष्ट्रीय संस्था हो जिसमें सेठ जी किसी प्रकार सहायता न करते हों। 'अखिल भारतीय ग्राम-उद्योग-संघ' के लिए तो उन्होंने अपना बहुत बड़ा सुन्दर उद्यान और इमारतें जो अब 'मगनवाड़ी' के नाम से प्रसिद्ध हैं, दान कर दी हैं। वर्धा का 'सत्याग्रह आश्रम' जहाँ दो वर्ष पहले महात्मा जी रहते थे, उन्हीं का बनवाया हुआ है। अब वहाँ 'हिन्दूमहिला-मंडल' की ओर से जिसके सेठ जी अध्यक्ष हैं, 'महिला-आश्रम' सुचारु रूप से चल रहा है।

× × × ×

शिक्षा के क्षेत्र में भी सेठ जी ने बहुत कुछ सेवा की है। सन् १९१० में उन्होंने मारवाड़ियों की शिक्षा के

प्रबन्ध के लिए वर्धा में 'मारवाड़ी-विद्यार्थी-गृह' खोला था। बाद में यह संस्था धीरे-धीरे 'मारवाड़ी-शिक्षामंडल' के नाम से प्रसिद्ध हुई, जिसने शिक्षा-क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया है। वर्धा का 'मारवाड़ी-विद्यालय' इसी संस्था के द्वारा चलाया जा रहा है।

हिन्दी-प्रचार और साहित्य के क्षेत्र में भी सेठ जी पीछे नहीं रहे हैं। आज से अठारह वर्ष पूर्व 'दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभा' क़ायम हुई थी। उसमें उनका बहुत कुछ हाथ था। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के गत नागपुर-अधिवेशन में जो अखिल भारतीय हिन्दी-प्रचार-समिति बनी थी उसके भी वे उपाध्यक्ष हैं। 'भारतीय-साहित्य-परिषद्' के काम में भी सेठ जी बहुत सहायता दे रहे हैं। देश की सेवा में उन्होंने सचमुच अपना तन, मन, और धन लगा दिया है। राष्ट्रीय कार्यों के लिए लाखों रुपया दान दे चुके हैं। अब तो वे देश-सेवा में इतने तल्लीन हो गये हैं कि अपना निजी कारबार देखने की उनको बहुत कम फ़ुर्सत मिलती है। यह उन्हीं की निश्चित सेवा का फल है कि वर्धा एक गौरवपूर्ण राष्ट्रीय केन्द्र बन गया है। देश की राजनीति, शिक्षा, साहित्य, ग्राम-उद्योग इत्यादि के सम्बन्ध की सभी संस्थाओं के कार्यालय वर्धा में चल रहे हैं। ऐसी दशा में मध्य-प्रान्त के इस छोटे-से नगर को राष्ट्र का हृदय ही समझना चाहिए, और इस हृदय में देशभक्त जमनालाल जी की विशाल शक्ति विद्यमान है।

× × × ×

इस लेख को ख़त्म करने के पहले सेठ जी की सुयोग्य पत्नी श्रीमती जानकीदेवी के विषय में भी कुछ लिखना आवश्यक है। मारवाड़ी-समाज में होते हुए भी जो समाज-सुधार इन्होंने किया है वह अति प्रशंसनीय है। इन्होंने बहुत वर्षों से पर्दा करना छोड़ दिया है और पर्दा-प्रथा के सम्बन्ध में अक्सर व्याख्यान दिया करती हैं। व्याख्यान देने में ये सेठ जी से बाज़ी मार ले गई हैं। अधिक शिक्षित न होने पर भी बड़ी निर्भयता और आत्म-विश्वास के साथ बोलती हैं। उनके भाषणों में हास्य का पुट भी काफ़ी रहता है। कलकत्ता के गत अग्रवाल-महासभा के अधिवेशन में जो व्याख्यान इन्होंने दिया था वह इनके सद्गुणों का द्योतक है। इधर कुछ महीनों से इनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता। आशा है, ये शीघ्र ही तन्दुरुस्त हो जायँगी और बहुत वर्षों तक देश और समाज की सेवा करती रहेंगी।

सेठ जी की माता का भी जीवन जानने योग्य है। लगभग ७५ वर्ष की होते हुए भी वे दिन भर कुछ न कुछ काम करती ही रहती हैं। दिन में कई घंटे चर्खे पर सूत कातती हैं, और किसी प्रकार का आराम नहीं चाहतीं। सेठ जी जैसे पुत्र को जन्म देकर उन्होंने अपना जीवन सफल बनाया है।

दलित कुसुम से

लेखक, श्रीयुत अनूप

अंतिम ऋचायें पढ़ीं प्रात के विहंगमों ने,
पल्लवों ने चरमावरण पहना दिया।
उच्च अंतरिक्ष से पतित ओस-बुन्द ने भी,
अन्त अवकाश में सदय नहला दिया।
निज किरणों की एक मालिका बना के मंजु,
बाल रवि ने भी कर अपना लगा दिया।
तुम थे प्रसून! महापथ के पथिक, तुम्हें
हिम की चिता पै हाय! किसने जला दिया?

सरकार-द्वारा धनोत्पादन

लेखक, प्रोफ़ेसर दयाशंकर दुबे, एम० ए०, और श्रीयुत भगवानदास केला

आर्थिक विषयों में सरकार का क्षेत्र बढ़ता जा रहा है। अब यह विचार किया जा रहा है कि किसी देश में सरकार को धनोत्पत्ति में कहाँ तक भाग लेना चाहिए। क्या वह केवल कुछ विशेष उद्योग-धंधों का ही कार्य करे अथवा युद्ध आदि आपत्काल में ही देश की विविध प्रकार की धनोत्पत्ति का प्रबन्ध और संचालन करे? यदि वह साधारण काल में देश की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करे तो क्या लाभ-हानि है? इन विषयों पर इस लेख में प्रकाश डाला जाता है। पहले कुछ विशेष उद्योग-धंधों की बात लेते हैं।

कुछ विशेष उद्योग-धन्धे—कुछ उद्योग-धंधे ऐसे होते हैं जिनका केन्द्रीभूत प्रबन्ध करने से अधिक मितव्ययिता हो सकती है। यदि ये काम व्यक्तियों के एकाधिकार में रहें तो उन्हें अच्छी तरह तथा मितव्ययिता-पूर्वक कराने के लिए उनका नियंत्रण करना बहुत आवश्यक हो जाता है। इनके यथेष्ट नियंत्रण की कठिनाई का अनुभव करके बहुत-से देशों में डाक, तार और रेल आदि का कार्य सरकार-द्वारा होता है। कुछ देशों में रेलों का प्रबन्ध कम्पनियों-द्वारा होता है, परन्तु सरकार उन पर नियंत्रण रखती है। जब आदमी व्यक्तिगत रूप से उत्पादन का कार्य करते हैं तब वे भावी नागरिकों के हित की ओर प्रायः वैसा ध्यान नहीं देते, जैसा कि वे जनता के प्रतिनिधि बनकर सामूहिक रूप से कार्य करते हैं। इसलिए ऐसा विचार किया जाता है कि जब दूरवर्ती हित का प्रश्न हो तब सरकार-द्वारा उत्पादन-कार्य होना अच्छा है। इसका उदाहरण जंगल की रक्षा तथा समुद्रतट को टूटने से रोकने का कार्य है।

बहुधा जब किसी देश में रेलों का कार्य आरम्भिक अवस्था में होता है और उसकी गति तीव्र करनी होती है तब या तो सरकार स्वयं इस कार्य को हाथ में ले लेती है या कम्पनियों को काफ़ी सहायता देती है। कुछ कार्य होते हैं कि व्यक्तियों के हाथ में रहने से उनका ख़र्च निकलता, उनसे काफ़ी आय नहीं होती, तथापि जनता के हित की दृष्टि से उनका किया जाना आवश्यक होता सरकार के लिए यह ज़रूरी है कि इन कार्यों को वह या स्वयं करे या उनके किये जाने में लोगों को सहायता इस तरह के उदाहरण कुछ पुल, सड़कें आदि हैं। अ दशाओं में इनका कोई शुल्क वसूल नहीं किया जाता, का कि ऐसा करने में प्राप्ति बहुत कम होती है तथा सर्वसा रण को बड़ी असुविधा हो जाती है। इनके अति लोगों को इनका प्रयोग निःशुल्क करने देने से इन कुछ दुरुपयोग भी नहीं होता, जैसा कि मोटर आदि निःशुल्क कर देने में होना सम्भव है।

कुछ कार्य ऐसे होते हैं जो विशेषतया आर्थिक न होते और उनके किये जाने की बात पूर्णतया व्यक्तियों भरोसे पर नहीं छोड़ी जा सकती। सरकार या तो उनके लि सहायता देती है या उन्हें नियंत्रित करती है, अथवा कु दशाओं में स्वयं ही करती है। इसका उदाहरण अ शस्त्रों का निर्माण है।

कभी-कभी सरकार आय की दृष्टि से भी किसी व की उत्पत्ति का कार्य करती है। उदाहरणार्थ भारतवर्ष ख़र्च होनेवाले नमक का लगभग आधा भाग सरकार स्व उत्पन्न कराती है (शेष पर उसका नियंत्रण है); इसमें मुख्य हेतु यही है कि दूसरे आदमी इसे बनाकर लाभ न उठा जिससे सरकारी आय की हानि हो।

आपत्काल में सरकार-द्वारा उत्पत्ति—ऊपर जो बातें कही गई हैं वे साधारण अवस्था के सम्बन्ध में हैं अब युद्ध आदि की विशेष स्थिति के सम्बन्ध में विचार कर हैं। युद्ध के समय सरकार का उत्पत्ति-सम्बन्धी कार्य बहुत बढ़ जाता है। सरकार सैनिकों एवं सर्वसाधारण के भरण-पोषण आदि की ओर विशेष ध्यान देने को बाध्य होती है। उस समय विदेशों से माल का आना बन्द या कम हो जाता है, और विविध वस्तुओं की आवश्यकताओं की पूर्ति

लिए स्वदेश में प्रतिद्वन्द्विता या प्रतियोगिता रहने देना ...कि नहीं होता। कौन-सी वस्तु का किस सीमा तक निर्यात ...क्या जाय, जिससे देश में वह कम या बहुत महँगी न हो ...य, यह भी गम्भीरता-पूर्वक विचार किया जाता है। ...सलिए निर्यात प्रायः बन्द कर दिया जाता है या विदेशों ...ा रुपया चुकाने आदि के हेतु केवल परिमित मात्रा में ...सकी अनुमति दी जाती है। इसी प्रकार आयात भी ...हुत आवश्यक पदार्थों का ही किया जाता है। इस बात ...ा भी प्रयत्न किया जाता है कि उत्पन्न वस्तुओं का जनता ... सम्यक् रीति से वितरण हो, कोई आदमी बहुत अधिक ...र्च न करे। इस दृष्टि से कभी-कभी तो प्रत्येक व्यक्ति या ...रिवार को एक निश्चित परिमाण से अधिक कोई वस्तु ...हीं दी जाती।

भोजन आदि के अतिरिक्त सरकार को सैनिक सामग्री ...र्थात् शस्त्रास्त्रों आदि के निर्माण की ओर भी बहुत ध्यान ...ना पड़ता है। यदि सरकार इस कार्य को न करे तो सम्भव ... यह काम धनाभाव के कारण न हो सके, अथवा बहुत ...लम्ब से या बहुत ही मन्द गति से किया जाय। सरकार ...त कार्य की ओर इतना ध्यान देती है कि जनता-सम्बन्धी ...धारण माँग दूसरे दर्जे की समझी जाती है। जितने ...दमी युद्ध के लिए आवश्यक समझे जाते हैं, यथा-...म्भव उसी कार्य में लगा दिये जाते हैं। इससे ...पादन-कार्य में ऐसे आदमियों की काफ़ी संख्या रखनी ...ती है, जो युद्ध में भाग लेनेवालों के लिए ही उत्पादन ...ते हैं।

ये उन बातों के कुछ उदाहरण हैं जो सरकार ...द्ध-काल में करने को बाध्य होती है और जो साधारण ...ति में उसके क्षेत्र से बाहर समझी जाती हैं। और ये ...साधारण बातें युद्ध समाप्त होते ही बन्द नहीं हो जातीं, ...न उसके बाद भी काफ़ी समय तक बनी रहती हैं। कभी ...ी तो महायुद्ध ऐसे बड़े परिमाण में होता है कि संसार ... बहुत-सा व्यापार बन्द हो जाता है और युद्ध में प्रत्यक्ष ...ा लेनेवाले ही नहीं, उनके सहायक तथा सम्बन्धित ...ों की आर्थिक व्यवस्था में बड़ी उथल-पुथल मच जाती ... जिसका सुधार कई शताब्दियों तक करना होता है।

सरकार-द्वारा समस्त उत्पत्ति; हानि-लाभ—कुछ ...गों का मत है, और प्रजातंत्रात्मक भावों की वृद्धि के साथ-साथ इस मत का क्रमशः प्रचार और विस्तार होता जा रहा है कि सरकार न केवल कुछ ख़ास वस्तुओं का उत्पादन करे, वरन देश भर की जनता की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति उसी के द्वारा हो, और वह न केवल आपत्काल में, वरन साधारण अवस्था में भी। ऐसा करने से वह फ़ज़ूलख़र्ची न होगी जो उत्पादन-कार्य के पृथक् पृथक् होने की दशा में अनिवार्य है, और वे बुराइयाँ भी न होंगी जिनके कारण सरकारी नियंत्रण की आवश्यकता हुआ करती है। इस प्रकार जनता सुखी होगी।

इस मत के विपक्ष में यह कहा जाता है कि राजनैतिक क्षेत्र में किसी पद्धति के सफल होने मात्र से आर्थिक क्षेत्र में भी उसका सफल होना आवश्यक नहीं है। सरकारी कार्यों में एक ढर्रा-सा पड़ जाता है, उनमें नई सूझ-बूझ और प्रेरणा आदि की बात नहीं रहती। पदाधिकारी प्रायः अपने आपको विविध पदों पर सुरक्षित समझते हैं, उनका वेतन, तरक़्क़ी या पेन्शन पहले से निर्धारित होती है, उन्हें काम की हानि और लाभ की वैसी चिन्ता नहीं होती, जैसी लोगों को व्यक्तिगत कार्य करने की दशा में रहती है। पुनः उनमें कोई नया ढंग ग्रहण करने या बड़ी भारी जोखिम उठाने की हिम्मत नहीं होती। वे सोचते हैं कि सम्भव है, हमारी कार्य-पद्धति मतदाताओं या व्यवस्थापकों को पसन्द न आये और वे हमें पदच्युत कर दें। फलतः उनमें साहस की कमी होती है, जो बड़ी मात्रा की उत्पत्ति की जान है। इसके विपरीत व्यक्तिगत रूप से उत्पत्ति करनेवाले आदमी, चाहे वे साझे की पद्धति से काम करें या मिश्रित पूँजी की कम्पनी आदि बनायें, भली भाँति अनुभव करते हैं कि उनकी उन्नति और लाभ उनकी कार्य-क्षमता पर निर्भर है, काम में जितना नफ़ा अधिक होगा, उतना ही उन्हें अधिक प्राप्ति होगी। वे सरकारी कर्मचारियों की भाँति निर्धारित घंटों में निर्धारित काम करने मात्र से संतुष्ट नहीं हो जाते, वरन जी-जान से काम में तन्मय होते हैं, बड़ी-से-बड़ी जोखिम उठाते हैं, छोटी-छोटी बातों में भी ख़ूब किफ़ायत करते हैं। इसके फल-स्वरूप कभी-कभी साधारण योग्यता का प्रतीत होनेवाला व्यक्ति व्यवसायपति के विलक्षण गुणों का परिचय देता है।

अब से कुछ समय पूर्व यह कहा जाता था कि केवल जर्मनी आदि कुछ इने-गिने देशों में सरकारी उत्पादन-कार्य

व्यक्तिगत कार्यों की अपेक्षा बढ़िया और कम ख़र्च में होते हैं, जहाँ पदाधिकारी प्रायः बहुत कर्तव्य-परायण तथा कार्य-कुशल हैं। इसके विपरीत संयुक्त-राज्य (अमरीका) और इँग्लैंड आदि में सरकारी उत्पादन-कार्य अपेक्षाकृत घटिया होते हैं। भारतवर्ष में सरकारी कार्य बहुत घटिया न होने का कारण यह है कि यहाँ व्यक्तियों-द्वारा किया जानेवाला कार्य अभी काफ़ी उन्नत दशा में नहीं है।

ऊपर सरकारी कार्यों के अपेक्षाकृत घटिया होने की जो बात कही गई है वह सब उद्योग-धन्धों के लिए समान रूप से लागू नहीं होती; देशकाल के अनुसार किसी में कम लागू होती है और किसी में ज़्यादा। कुछ कामों के लिए तो सरकारी प्रबन्ध ही अच्छा रहता है और जनता के हित की दृष्टि से आवश्यक भी होता है। जो चीज़ें स्वयं बिक जायँ, जिनकी माँग ख़ूब हो और जिनके सम्बन्ध में होनेवाली अधिकांश बातें जनता की दृष्टि में आती हों, और इस प्रकार जिनकी त्रुटियाँ या दोष सहज ही दिखाई पड़ जाते हों, उन वस्तुओं का केन्द्रीय या स्थानीय सरकार के द्वारा बनाया जाना ठीक माना जाता है। उदाहरण के लिए देश में डाक, तार और कुछ दशाओं में रेल का काम तथा नगरों आदि में पानी, रोशनी या संचालक-शक्ति पहुँचाने का काम।

जैसा पहले कहा गया है, लोगों का अब से कुछ वर्ष पहले तक यह विचार था कि सरकार साधारण अवस्था में कुछ इने-गिने और विशेष प्रकार के उद्योग-धन्धों का काम करे, आपत्कालीन अवस्था में वह अपना क्षेत्र बढ़ा ले। परन्तु इस मत में पिछले दिनों विलक्षण परिवर्तन हो गया है। विशेषतया रूस-सरकार ने अपने यहाँ शान्ति-काल में सभी प्रकार की उत्पत्ति करके, और उसमें सफलता प्राप्त करके, लोगों को चकित कर दिया है। लोगों को भाँति-भाँति के सन्देह थे, विशेषतः पूँजीवादी व्यक्तियों और सरकारों ने तो रूस की विफलता की घोषणा करने और अन्य देशों को इस विषय में सावधान करने में कुछ भी नहीं उठा रक्खा था। परन्तु अब रूस-सरकार के प्रचार-कार्य से नहीं, उसकी कृति से, उसके प्रथम पंचवर्षीय योजना की अद्भुत सफलता से, और दूसरी योजना के अनुसार उत्साह-पूर्वक कार्य आरम्भ करने से, उक्त व्यक्तियों और सरकारों के भ्रम दूर हो गये हैं और होते जा रहे हैं। हाँ, स्मरण रहे, रूस की इस सफलता का श्रेय बहुत-कुछ इस बात को है कि वहाँ मज़दूरों अर्थात् श्रमजीवियों की सरकार है, जिसमें पूँजीपतियों के लिए कोई रियायत नहीं, उलटा उनके अधिकार और कम हैं। एक प्रकार से रूस की सरकार में पूँजीपतियों का कोई स्थान ही नहीं है। सरकार-द्वारा उत्पत्ति का होना जनसाधारण के लिए तभी कल्याणकारी हो सकता है, जब सरकार का सञ्चालनसूत्र पूँजीपतियों के हाथ में न रहकर विशेषतया श्रमजीवी-वर्ग के हाथ में हो।*

* लेखकद्वय की 'धन की उत्पत्ति' नामक नवीन पुस्तक से, जो छप रही है।

आत्म-परिचय

लेखक, श्रीयुत प्रणयेश शुक्ल

बिलग न होकर बिलग है इसी का संग,
रंग इसका है हर रंग में समाया है।
कौन जानता है नहीं? कौन मानता है नहीं?
तो भी, कहने को एक नाम गया गाया है॥

'प्रणयेश' पाया जिसने है अमरत्व वही—
यह है ससीम सीमाहीन यही माया है!
काया नहीं मानव की भ्रम ने भ्रमाया इसे
अक्षय-प्रकाश! मूर्तिमान् तेरी छाया है!

एक सुन्दर सामाजिक कहानी

अनुताप

लेखक, श्रीयुत नगेन्द्रनाथ गुप्त

(१)

इच्छामती नदी के तट पर एक छोटा-सा गाँव था। करीमुद्दीन इसी गाँव में रहता था। वह एक नौजवान आदमी था। उसके पास थोड़ी ज़मीन थी। उसी में खेती-बारी करके वह अपना निर्वाह करता था। घर में विधवा मा थी, दो बहनें थीं और एक छोटा भाई था। बहनों का विवाह हो गया था, वे अपनी अपनी ससुराल में रहती थीं। करीमुद्दीन का भाई निज़ामुद्दीन खेत में काम किया करता था।

करीमुद्दीन का विवाह हुए अभी कुछ ही समय बीता था। उसका विवाह एक दूसरे गाँव में हुआ था। स्त्री का नाम ज़ोबेदा था। वह युवती थी, सुन्दरी थी, सुशीला थी। उसका स्वभाव बहुत ही मधुर था। वह घर-गृहस्थी का सारा काम-काज किया करती थी। सास की सेवा करती, नदी से जल ले आती और खेत में स्वामी और देवर के लिए खाना दे आती। केवल बाज़ार से सौदा करीमुद्दीन की मा ले आती थी।

भारत में बंगाल या अन्य प्रान्तों में जो मुसलमान बसे हुए हैं वे सबके सब फ़ारस या तातार देश से तो आये नहीं हैं। प्रायः वे सभी पहले हिन्दू थे, मुसलमानों के राजत्वकाल में इनके पूर्वज क़लमा पढ़ाकर मुसलमान बना लिये गये थे। इससे बहुतों का आचार-व्यवहार हिन्दुओं के समान ही रह गया। पास-पड़ोस के हिन्दुओं से उनका सद्भाव भी बना रहा, किसी प्रकार के कलह या राग-द्वेष की सृष्टि नहीं हुई। जो लोग मुसलमान हुए उनमें से कोई नमाज़ पढ़ते थे, कोई नहीं पढ़ते थे, कोई रोज़ा रखते थे, कोई नहीं रखते थे। पर करीमुद्दीन एक युवा पुरुष होकर भी बहुत ही धर्मभीरु था। पाँचों बार नमाज़ पढ़ता था, रोज़ा रखता था और साँझ को मस्जिद में जाया करता था। वह बहुत ही नम्र और मधुरभाषी था, स्वभाव भी उसका बहुत अच्छा था। इससे उस टोले के सभी हिन्दू उससे स्नेह करते थे।

नदी में मछुए मछलियाँ पकड़ते रहते थे, युवक तैरा करते थे। स्त्रियों का घाट अलग था। वहाँ वे बर्तन मला करतीं, कुल्ला-दातून, स्नान आदि करतीं और वहीं घाट पर बैठकर आपस में गपशप भी किया करती थीं। उस घाट पर पीपल का एक बहुत बड़ा पेड़ था। नदी के जल में उसकी छाया पड़ा करती थी। तरङ्गों से वह आन्दोलित हुआ करती। पेड़ की पत्तियों की साँसों से आ-आकर सूर्य की किरणें जल के ऊपर चमचमाया करती थीं। शीतकाल में दूर रेते के ऊपर बत्तख़ें अपने चमकीले पंख फैलाकर धूप लिया करतीं। दूसरे प्रकार के भी मांसभोजी पक्षी मछलियों या अन्य जलचर कीटों को पकड़ने के लोभ से तट पर इधर-उधर घात लगाये रहते।

एक दिन की बात है। दोपहर के समय ज़ोबेदा अपने स्वामी और देवर को खाना खिलाकर खेत से घर आ रही थी। उसके हाथ में खाने की रकाबी थी और एक छोटी-सी पोटली। गाँव के बाहर एक बहुत बड़ा बरगद का पेड़ था। उसी की छाया में एक युवक खड़ा था। माथे में वह ज़री की टेढ़ी टोपी पहने था, आँखों में सुरमा लगाये था, पान से मुँह लाल किये हुए था। विलासिता के सभी चिह्न उसमें विद्यमान थे। ज़ोबेदा मुँह खोले नीचे की ओर ताकती हुई चली आ रही थी, युवक की ओर उसकी दृष्टि नहीं पहुँच सकी। युवक एक दृष्टि से उसकी ओर ताक रहा था। ज़ोबेदा चुपचाप अपनी राह चली जा रही थी। एकाएक युवक उसके सामने आगया और रास्ता रोककर खड़ा हो गया। वह कहने लगा—बीबी, तुम कौन हो?

ज़ोबेदा ने कुछ नहीं कहा। उतावली के साथ उसने अपने मस्तक पर का कपड़ा खींच लिया और बग़ल काट कर तेज़ी से पैर बढ़ाती हुई चली गई। युवक उसका पीछा करने जा रहा था कि इतने में उसने देखा कि गाँव

से निकलकर दो आदमी आ रहे हैं। इससे वह आगे पैर बढ़ाने का साहस न कर सका।

घर पहुँचकर ज़ोबेदा ने सास या और किसी से कुछ नहीं कहा। एक अपरिचित पुरुष ने उसका परिचय पूछा था। साधारणतः गाँव में ऐसा होता नहीं। परन्तु यह कोई इतनी बड़ी बात भी नहीं थी, जिसके लिए किसी से किसी प्रकार की शिकायत करने की ज़रूरत होती।

(२)

उस युवक का नाम था शेख़ सुलेमान। गाँव का वह ज़मींदार था। कुछ दिन हुए, उसका पिता मृत्युगत हुआ था। पिता था कृपण। वह कुछ रुपया छोड़ गया था। वही रुपया सुलेमान तरह तरह के आमोद-प्रमोद और विलासिता में उड़ाया करता था। ज़ोबेदा को देखते ही उसकी लालसा प्रबल हो उठी। उसने संकल्प कर लिया कि जिस तरह भी हो सके उसे अपने अधिकार में करूँगा ही।

ज़ोबेदा कौन है, किसकी स्त्री है और कहाँ रहती है, यह सब जानने में सुलेमान को देर नहीं लगी। उस दिन से वह इस घात में इधर-उधर चक्कर लगाने लगा कि ज़ोबेदा कहीं अकेली मिल जाय। कई दिन के प्रयत्न के बाद एक दिन उसे यह अवसर मिल गया। एक दिन साँझ को घाट पर जाने में ज़ोबेदा को कुछ देर हो गई। गाँव की और स्त्रियाँ लौट आई थीं। रास्ते में क़रीब क़रीब सन्नाटा हो चला था। ज़ोबेदा धोया हुआ कपड़ा हाथ में लिये घाट पर से लौटी आ रही थी। इतने में एक पेड़ की आड़ से निकलकर सुलेमान ने दन से उसका हाथ पकड़ लिया। वह कहने लगा—कहाँ जा रही हो बीबी? मेरी बात सुनती जाओ। तुम्हारे पीछे मेरी जान जा रही है। ऐसा सुन्दर रूप लेकर तुम एक किसान के घर में रहती हो। तुम्हें मैं अलग एक महल दूँगा। मैं गाँव का ज़मींदार हूँ। तुम्हें बेगम की तरह रक्खूँगा। तुम मुझसे दो बातें भर कर लो। बस, सब कुछ हो जायगा।

ज़ोबेदा इतनी विस्मित और भयभीत हो गई थी कि कई क्षणों तक तो वह मुँह से एक शब्द तक न निकाल सकी। बाद को हाथ छुड़ाने का प्रयत्न करके वह कहने लगी—मेरा हाथ छोड़ दो, नहीं तो कहे देती हूँ, तुम्हारा कुशल नहीं है। अभी मैं चिल्लाकर लोगों को इकट्ठा कर दूँगी।

सुलेमान हँस पड़ा। वह हँसी एक हृदयहीन ल[illegible] की थी। हँसकर वह कहने लगा—कहीं कोई इस तरह भी गुस्सा करता है। कल तुम मेरे साथ चल निकल[illegible] पहले मैं तुम्हें लेकर शहर चलूँगा। इस समय ये रुपये तुम लो।

पाकेट से रुपये निकालकर सुलेमान ज़ोबेदा [illegible] हाथ पर रखकर उसकी मुट्ठी बन्द करने की कोशिश क[illegible] लगा। इसी बीच में ज़ोबेदा को अवसर मिल गया, उस[illegible] झिटककर किसी प्रकार अपना हाथ छुड़ा लिया और च[illegible] से सुलेमान के गाल पर एक थप्पड़ मारा। बाद को व[illegible] बड़े वेग से भागी। रुपये सुलेमान के हाथ से छूट[illegible] पृथिवी पर गिर पड़े।

ज़ोबेदा एक साँस में घर जा पहुँची और सास [illegible] पैरों के पास मूर्छित होकर गिर पड़ी।

(३)

कुछ देर के बाद ज़ोबेदा की मूर्च्छा भंग हुई। त[illegible] वह आँखों में आँसू भर कर रुद्ध कण्ठ से सास और स्वाम[illegible] से सारी कथा कह गई। स्त्री की बात सुनकर करीमुद्दीन को यह जानने में विलम्ब न हुआ कि किसने उसका अप[illegible] मान किया है। वह कहने लगा—यह किसी और का काम नहीं है। सुलेमान के अतिरिक्त दूसरा कोई भी ऐसा साहस नहीं कर सकता।

करीमुद्दीन की मा ने कहा—क्या ज़मींदार होने के ही कारण उसका साहस इतना बढ़ गया है कि वह गृहस्थों की बहू-बेटियों पर अत्याचार करे? क्या सरकार का राज्य उठ गया?

एक आह भर कर करीमुद्दीन ने कहा—ग़रीब के लिए कोई भी नहीं है। किसके यहाँ नालिश करूँ? थाना-अदालत करने से ही क्या लाभ होगा? पुलिसवाले तो सब सुलेमान के ही हाथ में हैं। मैं सलीमुल्ला मियाँ के पास जाता हूँ। देखूँ, वे क्या कहते हैं।

सलीमुल्ला मियाँ गाँव के एक वृद्ध पुरुष थे। सभी लोग उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे और उनका सम्मान करते थे। भगवान् की कृपा से उनके दिन भी अच्छे थे। चार चार उनके लड़के थे। दो कलकत्ते में नौकरी करते थे, दो घर में खेती-बारी सँभालते थे। मियाँ जी सङ्कट-विपत्ति के समय अपनी शक्ति के अनुसार प्रायः सभी का

उपकार किया करते थे। उनके पास जो कोई जाता उसे वे सत्परामर्श दिया करते थे।

करीमुद्दीन जिस समय सलीमुल्ला मियाँ के यहाँ पहुँचा, वे तख़्त पर बैठे हुए थे। उनके हाथ में तसबीह थी। वे तन्मय होकर जप कर रहे थे। करीमुद्दीन को देखकर उन्होंने कहा—कहो करीमुद्दीन, कैसे चले।

करीमुद्दीन ने उत्तर दिया—सङ्कट के समय जिस तरह और लोग आपके यहाँ आया करते हैं, उसी तरह मैं भी आया हूँ। मैं बड़ी विपत्ति में हूँ।

मियाँ जी ने कहा—क्या हुआ है करीमुद्दीन?

करीमुद्दीन ने सारा हाल कह सुनाया। अन्त में उसने कहा—मियाँ जी, इसके लिए मुझे कोई उपाय बतलाने की कृपा कीजिए। मैं किसके पास नालिश करने जाऊँ? मेरी नालिश सुनेगा ही कौन? किन्तु यह अपमान मैं नहीं सहन कर सकूँगा। पता नहीं आगे चलकर वह और क्या कर बैठे। मैं कभी किसी से किसी प्रकार का झगड़ा-झञ्झट नहीं करता हूँ। किन्तु इस प्रकार का अपमान कौन सहन कर सकता है? सुलेमान ने यदि झंझट बढ़ाया तो मैं उसकी जान ले कर ही दम लूँगा।

सलीमुल्ला मियाँ ने करीमुद्दीन की पीठ पर हाथ रखकर कहा—बेटा, शान्त होओ। इस प्रकार की बात मुँह से निकालने में कोई लाभ नहीं है। दुराचारी को अल्लाह मियाँ दण्ड देते हैं, परन्तु दण्ड पाने से पहले वह अपनी दुर्वासना को चरितार्थ कर लेता है। नालिश करने से कोई लाभ न होगा, तुम्हारा यह कहना ठीक ही है। आश्चर्य नहीं कि थाने में जाने पर पुलिसवाले तुम्हें खदेड़ दें। शायद वे लोग यही कह देंगे कि सुलेमान के ख़िलाफ़ कोई सबूत नहीं है। इससे नालिश करने का विचार तो त्याग ही देना चाहिए। परन्तु सोचना यह है कि सुलेमान आगे चलकर क्या कर सकता है। तुमने कहा है न कि मेरी स्त्री ने सुलेमान के मुँह पर थप्पड़ मारा है।

करीमुद्दीन ने कहा—हाँ मियाँ जी, क्रोध में आकर उसने एक थप्पड़ जमा दिया था।

"अच्छा किया। वह उचित ही था। परन्तु एक बात है। यह अपमान सुलेमान भूलेगा नहीं। इस समय उसके हृदय में दुर्वासना की अपेक्षा क्रोध ही अधिक है। वह यह सोच रहा होगा कि किस प्रकार इस अपमान का बदला लिया जाय। उत्तेजना में आकर वह क्या कर बैठेगा, यह कुछ कहा नहीं जा सकता है।"

"करेगा क्या?"

"करने की मत कहो। उसे उचित-अनुचित का ज्ञान तो है नहीं। उसके हाथ में बहुत-से बदमाश और गुण्डे हैं। उन्हें लेकर आज रात में ही न कुछ कर बैठे। संभव है कि आज रात को ही वह तुम्हारे घर पर चढ़कर कुछ उपद्रव कर बैठे। वह तुम लोगों पर अत्याचार कर सकता है, तुम्हारी स्त्री को पकड़कर निकाल भी ले जा सकता है। उसके लिए यह सब कोई कठिन बात नहीं है।"

"मियाँ साहब, तो मैं क्या करूँ? ऐसी रात में कहाँ जाऊँ? यदि दिन होता तो गाँव छोड़कर कहीं चला भी जाता, अपनी स्त्री को उसके पिता के यहाँ छोड़ आता। यदि इस समय जाता हूँ तो रास्ते में ही वह कहीं कोई अत्याचार न कर बैठे। उसका कुछ ठिकाना है?"

"नहीं, नहीं, आज रात को घर से बाहर निकलने पर तुम बहुत सङ्कट में पड़ सकते हो। तुम घर जाकर इसी समय अपनी स्त्री और मा को मेरे यहाँ ले आओ। रात्रि में वे यहाँ सुरक्षित रहेंगी। सुलेमान में अभी वह दम नहीं है कि बल-प्रयोग करके वह मेरे घर में घुस आवेगा। तुम्हारे घर में जो कुछ बहुमूल्य वस्तुएँ हों उन्हें भी साथ में लेते आना। मुझे ऐसा लगता है कि सुलेमान आज रात में ही कोई न कोई उपद्रव करेगा। इससे तुम लोग इसी दम यहाँ चले आओ। रात को यहीं खा-पी लेना।"

करीमुद्दीन चला गया। सलीमुल्ला मियाँ ने अपने दोनों लड़कों को बुलाया, उनसे कुछ परामर्श किया। अन्त में उन्होंने कहा—गाँव में इस प्रकार का अत्याचार होता है, यह हम सभी लोगों के लिए लज्जा की बात है। इसलिए आज यदि करीमुद्दीन के घर पर उपद्रव करने के लिए सुलेमान के आदमी आवें तो उन्हें कुछ सिखा देना चाहिए। बाद को जो होगा, होता रहेगा।

सलीमुल्ला के लड़कों ने कहा—हम लोग अभी इसका प्रबन्ध किये देते हैं। हमारे पास भी तो आदमी हैं। गाँव के सब लोग हमारे पक्ष में हैं। यह कहकर वे दोनों भाई पिता के पास से चले गये।

ज़रा देर में करीमुद्दीन अपनी मा और स्त्री को लेकर आया। वे तीनों ही अपने अपने सिर पर एक एक छोटी

गठरी रक्खे हुए थे। उनके घर में थोड़ा-बहुत जो कुछ था वह साथ में लेते आये थे। सलीमुल्ला ने उनके लिए एक कोठरी ख़ाली कर दी, अपनी ओर से उनके भोजन का प्रबन्ध करवा दिया। बाद को उन्होंने करीमुद्दीन की मा और स्त्री से कहा—अब तुम निश्चिन्त होकर सोओ। तुम्हें किसी प्रकार का भय नहीं है। तुम लोगों पर किसी प्रकार का अत्याचार न होने पावे, इसका मैंने पूरा प्रबन्ध कर दिया है।

गाँव के लोग रात्रि में अधिक समय तक नहीं जागते। दिन भर परिश्रम करते हैं, रात होते ही सो जाते हैं। अतएव थोड़ी-सी रात बीतने पर ही गाँव में सन्नाटा छा जाता है।

धीरे-धीरे रात अधिक बीती। एकाएक कुत्ते भोंकने लगे। किन्तु ज़रा ही देर में वे सब चुप हो गये। अन्धकार में आठ-दस आदमी करीमुद्दीन के दरवाज़े के पास निःशब्द भाव से जाकर खड़े हो गये। वे सभी मुँह में गलमोछे बाँधे हुए थे। उनके हाथ में लट्ठ थे।

करीमुद्दीन के दरवाज़े में बाहर से ताला लगा हुआ था, परन्तु उस ओर उन लोगों का ध्यान नहीं गया। वे धक्के दे-देकर दरवाज़ा तोड़ने का प्रयत्न करने लगे।

ठीक उसी समय लोगों का एक और दल निःशब्द भाव से वहाँ आ पहुँचा। इस दल ने पहुँचते ही पहलेवाले दल पर आक्रमण किया। इस प्रकार की सम्भावना उस दल के लोगों को ज़रा भी न थी। अन्त में लाठी के कुछ आघात पाते ही वे लोग जी छोड़कर भागे।

ज़मींदार सुलेमान के गाल पर यह दूसरा थप्पड़ लगा।

(४)

दूसरे दिन सलीमुल्ला मियाँ ने करीमुद्दीन से कहा—सुलेमान का ऐसा स्वभाव है कि वह कब क्या कर डालेगा, इसका कोई ठिकाना नहीं है। अपनी स्त्री को यदि तुम उसके पिता के यहाँ भेज देते हो तो भी उससे छुटकारा न मिलेगा। वह तुम्हारे घर में आग लगा दे सकता है, तुम्हें झूठे मामले-मुक़दमे में फँसा कर तङ्ग कर सकता है। उसके लिए यह सब कोई कठिन काम नहीं है। इसके लिए मैंने बहुत सोच-विचार कर एक उपाय स्थिर किया है।

करीमुद्दीन ने कहा—आप जो कुछ कहेंगे, मैं वही करूँगा।

सलीमुल्ला मियाँ ने कहा—तुम लोग मेरे यहाँ हो, यह बात छिपी न रहेगी। कल रात में सुलेमान के आदमी मार खाकर भागे हैं। इस अपमान का बदला लेने का वे प्रयत्न करेंगे। मैं उनसे डरता नहीं, तो भी वह गाँव का ज़मींदार ही है। मेरे पीछे पड़ जायगा तो मुझे तंग करने का प्रयत्न करेगा। ऐसी दशा में हमें ऐसे व्यक्ति की सहायता लेने की आवश्यकता है जो उसके विषैले दाँत एकदम तोड़ सकता हो। जब हमें यहाँ जल में रहना है तो मगर से बैर करने में तो हमारा ही अमङ्गल की सम्भावना है।

करीमुद्दीन ने कहा—कौन सा उपाय कीजिएगा?

सलीमुल्ला ने कहा—पासवाले गाँव में जो राय बाबू हैं, बहुत बड़े ज़मींदार हैं। क्या तुमने उनका नाम सुना है? उनका नाम है बरदा राय। जाति के ब्राह्मण हैं। वे प्रजा का पालन करते हैं और दुष्टों का दमन करते हैं। चलो, हम दोनों उनके पास चलें। उन्होंने यदि कृपा की तो इस विपत्ति से हमारी रक्षा अवश्य करेंगे।

बरदा राय अपने कचहरीवाले कमरे में बैठे ज़मींदारी के काग़ज़-पत्र देख रहे थे। नायब उन्हें हिसाब-किताब समझा रहा था। बरदा बाबू के पास कोई भी बेखटके पहुँच सकता था। उनके यहाँ पहले से सूचना देकर आज्ञा प्राप्त करने का झंझट नहीं था। उनकी आज्ञा थी कि कोई भी व्यक्ति मुझसे मिलना चाहे तो वह सीधा मेरे पास चला आने पावे, कोई भी किसी प्रकार की रोक-टोक न करे।

सलीमुल्ला मियाँ और करीमुद्दीन बरदा राय के सम्मुख गये। उन्होंने हाथ जोड़ कर नमस्कार किया। वे लोग मुसलमान थे, फिर भी हिन्दुओं के संसर्ग में तो रहते ही थे। ब्राह्मण, फिर ज़मींदार, तब भला वे हाथ जोड़ कर उसे प्रणाम क्यों न करते?

बरदा राय ने कहा—कहो सलीमुल्ला मियाँ, अच्छी तरह हो न? तुम्हें देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। ये तुम्हारे साथ में कौन हैं?

सलीमुल्ला ने कहा—हुज़ूर, इसका नाम करीमुद्दीन है। हमारे ही गाँव में रहता है। बेचारा खेती-बारी करके खाता है। इस समय यह बड़ी विपत्ति में है। इसी लिए

हुज़ूर के पास आया है। इसके कारण मैं भी ज़रा-सी कठिनाई में पड़ गया हूँ।

वरदा राय ने मुस्करा कर कहा—मियाँ साहब, जो मुश्किल को आसान करते हैं उन्हें अल्लाह कहो या भगवान् कहो, उन्हीं की कृपा से सारी कठिनाइयाँ दूर होती हैं। परन्तु मेरे द्वारा यदि कुछ हो सकता है तो उसके लिए मैं तैयार हूँ।

सलीमुल्ला आदि से अन्त तक सारी कथा संक्षेप में कह गये। सुनकर वरदा राय ने कहा—आपके मुँह से जो कुछ सुना है वह सुनकर भी यदि चुप रह जाऊँ तो यह बड़ी लज्जा की बात होगी। सुलेमान ने करीमुद्दीन का जो अपमान किया है उससे बढ़कर और कोई अपमान नहीं हो सकता। सलीमुल्ला तुम सुलेमान की प्रजा हो, तो भी साहस करके तुमने करीमुद्दीन की माता और स्त्री को अपने घर में स्थान दिया है, सुलेमान के गुंडों को दंड भी दिया है। इससे उसका जो कुछ अपमान हुआ है उसके कारण उसका दिमाग़ गरम न हुआ हो, ऐसी बात नहीं है। इस अवस्था में वह जो न कर बैठे, थोड़ा है। हमारा सबसे पहला कर्तव्य है करीमुद्दीन की स्त्री की रक्षा करना। नायब साहब, सलीमुल्ला मियाँ के यहाँ से लाकर करीमुद्दीन की मा और स्त्री को यहाँ एक अलग मकान में रखिए। साथ में थोड़े-से लट्ठबाज़ भी लेते जाइए। उन लोगों की सारी चीज़-वस्तु लेते आना। एक बात और है।

नायब ने कुछ कहा नहीं, वे वरदा राय की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे।

वरदा राय के मुँह में ज़रा-सी मुस्कराहट दिखलाई पड़ी। उन्होंने कहा—नायब साहब, सुलेमान से हमारा कुछ लेन-देन है न? मुझे स्मरण आता है कि उसने हमारे यहाँ से कुछ क़र्ज़ ले रक्खा है।

नायब ने कहा—हाँ हुज़ूर, ६ साल हुए, पन्द्रह हज़ार रुपये उन्हें उधार दिये गये थे। उनकी ज़मींदारी रेहन है। सूद की दर आठ रुपया सैकड़ा है।

वरदा राय ने कहा—कुछ सूद दिया है?

"नहीं हुज़ूर, एक पैसा भी नहीं दिया है।"

"अच्छा अच्छा, सुलेमान साहब का गला पकड़कर दबा देने का यह बड़ा अच्छा मसाला है। आप स्वयं उसके पास जाइए और कहिए कि वह शीघ्र ही आकर मुझसे मुलाक़ात करे। मेरे पास आकर वह यदि कुछ व्यवस्था नहीं कर लेगा तो कल ही उसके ऊपर दावा दायर कर दूँगा और क़ुर्की कराऊँगा।"

सलीमुल्ला मियाँ और करीमुद्दीन की ओर ताक कर वरदा राय ने कहा—करीमुद्दीन, तुम्हें किसी प्रकार का भय नहीं है। तुम आकर यहीं रहो। तुम्हें मैं ज़मीन दूँगा। सुलेमान की ज़मींदारी में रहने की तुम्हें कोई ज़रूरत नहीं है। तुम्हारा और उसका जो कुछ लेन-देन है वह भी मैं साफ़ कर दूँगा। और सलीमुल्ला मियाँ, तुमने जो विपत्ति के समय एक आदमी को आश्रय दिया है उसके लिए तुम्हारा कोई भी अनिष्ट न होने पावेगा।

करीमुद्दीन के मुँह से एक भी बात न निकली। आँखों में आँसू भरे हुए उसने वरदा राय को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। एक समय उसके पूर्व-पुरुष जाति के कैवर्त थे।

सलीमुल्ला मियाँ ने दोनों हाथ उठा कर दुआ दी और कहने लगे—बाबू साहब, बड़ी आशा से आपके पास आया था। मेरी वह आशा और भी बढ़ गई। आपने हमारा जो उपकार किया है, अल्लाह आपको बरकत दे।

(५)

सुलेमान आमोद-प्रमोद करता था और ठाट-बाट बढ़ाता था बाप के रुपये से। परन्तु बहुत दिन हुए, वह रुपया समाप्त हो चुका था। आज उसके ऊपर चारों ओर का ऋण था। परन्तु वरदा राय ही उसके सबसे बड़े महाजन थे। सुलेमान की अधिकांश सम्पत्ति उन्हीं के यहाँ रेहन थी।

जिन लोगों ने करीमुद्दीन के घर पर आक्रमण किया था उन्हें यह आदेश था कि पहले करीमुद्दीन को ख़ूब पीटो, बाद को उसकी स्त्री का मुँह बाँधकर टाँग लाओ। परन्तु वे लोग जब मार खाकर ख़ाली हाथ लौट गये तब तो सुलेमान क्रोध के मारे पागल हो उठा। चिल्लाकर वह कहने लगा—किस साले की यह करतूत है? करीमुद्दीन की क्या शक्ति है? उसे मालूम ही कैसे हो सकता था कि आज उसके घर में डाका पड़ेगा। अवश्य उसके पीछे कोई-न-कोई और है। देख लूँगा उसको भी। इस बार पचास आदमी जायँगे, मारते-मारते सालों को बेदम कर देंगे और उसकी बीबी को बाँध कर टाँग लावेंगे, घर में आग लगा देंगे।

धीरे-धीरे और समाचार भी सुलेमान के पास आने लगे। करीमुद्दीन के घर में ताला बन्द है, घर में कोई नहीं है। वे सब सलीमुल्ला मियाँ के यहाँ चले गये हैं। यह समाचार सुनकर सुलेमान की क्रोधाग्नि भभक उठी। वह कहने लगा—यह और किसी का काम नहीं है, सलीमुल्ला का काम है। भला उसे क्या पड़ी थी जो इस मामले में हाथ डाला है? वह अपने आपको समझता क्या है? उसके दो लड़के कलकत्ते में नौकर हो गये हैं। इसी से वह अपने को नवाब समझने लगा है। मैं देख लूँगा सलीमुल्ला मियाँ को। उसके घर में कुत्ते न हगा कर छोड़ा तो मेरा नाम नहीं। उसका इतना साहस बढ़ गया है कि वह हमारे मामले में दख़ल दे। मैं करीमुद्दीन या उसकी औरत को जो भी करूँ, इसमें सलीमुल्ला के बाप का क्या आता-जाता है?

सुलेमान इसी तरह उछल-कूद रहा था। इतने में उसके द्वार के सामने गाड़ी पर से उतरे वरदा राय के नायब साहब। उन्हें आते देखकर सुलेमान सन्नाटे में आ गया, जैसे काला साँप फन निकालकर क्रोध से फुफकार रहा हो और वह एकाएक केंचुल में समा जाय। यह पहला ही अवसर था जब नायब साहब सुलेमान के यहाँ आये। नहीं तो काम पड़ने पर वह स्वयं ही नायब साहब और वरदा राय के यहाँ दौड़ दौड़ कर जाया करता था।

सुलेमान उठ कर खड़ा हो गया। नायब साहब को उसने सलाम किया और मुखमण्डल पर एक कृत्रिम प्रसन्नता की रेखा किसी प्रकार उदित करके कहने लगा—नायब साहब, आज ग़रीब पर बड़ी मेहरबानी हुई है।

नायब साहब ने ज़रा-सी रुखाई के साथ कहा—आज मैं बाबू साहब की आज्ञा से आपके यहाँ आया हूँ।

नायब का रुख़ देखकर सुलेमान को आशङ्का हो गई। उसने कहा—बाबू साहब ने मुझे क्या आज्ञा दी है?

"आप हमारे यहाँ से पन्द्रह हज़ार रुपये ऋण ले आये हैं।"

सुलेमान का साहस लौट रहा था। उसने कहा—तो क्या हुआ?

नायब ने कहा—रुपये लाये आपको दो वर्ष हो गये, परन्तु आपने मूलधन की कौन कहे, ब्याज में भी अभी तक कुछ नहीं दिया है। आपके ऊपर हमारा बहुत-सा रुपय[ा] चढ़ता जा रहा है।

सुलेमान ने कहा—तो इससे क्या होता है? आप[के] रुपये मैं बहुत जल्दी चुका दूँगा।

"कहाँ से देंगे? हमें आपका सारा हाल मालूम है। आपके ऊपर और भी बहुत-सा ऋण है। आपकी जो कुछ आय है उससे आपका निर्वाह तो होता नहीं। दूसरे महा[-]जनों को भी आप कुछ नहीं देते। बाबू साहब ने आज्ञा दी है कि आज ही आप पर नालिश कर दी जाय और क़ुर्की करवा ली जाय।

सुलेमान का हृदय धक से हो गया। वह कहने लगा—वरदा बाबू का तो ऐसा स्वभाव है नहीं। वे किसी को कष्ट नहीं देते। मैं भी ज़मींदार हूँ। आपका पड़ोसी हूँ। मेरे ऊपर इस तरह की ज़्यादती क्यों की जा रही है? मेरी ज़मींदारी का अधिक भाग आपके यहाँ रेहन है। आपका रुपया मारा नहीं जायगा। मुझे कुछ समय मिलना चाहिए। यदि ऐसा नहीं करना चाहते तो ऐसी कोई दूसरी ही व्यवस्था कर लेनी चाहिए जिससे हमारा आपका मित्रता का भाव बना रहे। आप लोग बड़े ज़मींदार हैं। मेरी भलमनसी बिगाड़ने से आपको क्या मिलेगा?

नायब साहब के मुँह का भाव और कण्ठ-स्वर कठोर हो गया। वे कहने लगे—तुम जो कहते हो वह सच है। वरदा बाबू किसी को कष्ट नहीं देते। किसी को यदि अस[-]मर्थ देखते हैं तो कभी कभी अपना रुपया छोड़ भी देते हैं। परन्तु एक बात तुम्हें जान लेनी चाहिए। जहाँ वे असमर्थों की सहायता करते हैं, वहाँ दुष्टों का दमन भी किया करते हैं। तुम रुपये उधार लेकर जो उसका दुरुपयोग करते हो यह तुम जानो और तुम्हारा काम जाने, इसके सम्बन्ध में किसी को कुछ कहने-सुनने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु यह बात बहुत बुरी है जो तुमने गाँव की स्त्रियों पर अत्याचार करना आरम्भ कर दिया है। करीमुद्दीन को तुम जानते हो?

सुलेमान का मुँह सूख गया। मन-ही-मन दुःखी होकर उसने कहा—जानता हूँ।

"तुमने उसकी स्त्री का अपमान करने की कोशिश की थी। यह बात बाबू साहब जान गये हैं। करीमुद्दीन को बाबू साहब ने अपने यहाँ आश्रय दिया है। उन्होंने उसे

अपनी ज़मींदारी में बसा लेने का निश्चय किया है। उसे
वें खेती के लिए ज़मीन भी देंगे। कल रात को आदमी
भेजकर तुमने करीमुद्दीन का घर लुटवाने तथा उसकी स्त्री
को पकड़वा मँगाने की चेष्टा की थी। सलीमुल्ला मियाँ पर
भी तुम्हारी वक्रदृष्टि हुई है। यदि तुम उनके पीछे लगे
तो तुम स्वयं संकट में पड़ जाओगे। शायद तुम्हारे हाथ में
कुछ गुंडे हैं। परन्तु हमारे यहाँ कितने लठैत हैं, इसका
भी तुम्हें कुछ पता है ?

सुलेमान बहुत ही भयभीत हुआ। उसने कहा—आपसे
ो हमारा किसी प्रकार का विवाद है नहीं।

नायब ने कहा—अब तो हो गया। बरदा राय की
रण में जो कोई जाता है उसे वे अभय देते हैं। करी-
द्दीन और सलीमुल्ला ने उनसे आश्रय के लिए प्रार्थना
ी है। उनकी रक्षा करने में वे किसी प्रकार की भी त्रुटि
हीं होने देंगे।

सुलेमान ने गिड़गिड़ाकर कहा—नायब साहब, मुझसे
ड़ा अपराध हुआ। बरदा बाबू के पास चलकर वे जो
ी शपथ करने को कहेंगे, मैं वही करके कहूँगा कि भविष्य
में किसी का भी अनिष्ट न होने दूँगा। यह देखिए, मैं
ापके सामने कान पकड़ कर तोबा करता हूँ।

नायब साहब ने कहा—बाबू साहब तुमसे मुलाक़ात
रेंगे या नहीं, यह तो मैं नहीं कह सकता हूँ। परन्तु तुम
क बार जाकर उनसे अनुनय-विनय कर सकते हो।

नायब साहब चले गये।

(६)

तीसरे पहर का समय था। सुलेमान बरदा राय के
ाले में जाकर उपस्थित हुआ। आज उसके सिर पर टेढ़ी
पी नहीं थी, मुँह में पान नहीं था। वह साधारण वेश में
लिन भाव से वहाँ गया था। बरदा राय एक अलग
मरे में अकेले ही बैठे थे। सुलेमान को देखते ही उन्होंने
हा—नायब साहब से मैंने तुम्हारा सारा हाल सुना है।
मने केवल भयभीत होकर यह सब कहा है या सचमुच
हें अपनी करतूत पर अनुताप हुआ है ?

सुलेमान ने कम्पित स्वर से कहा—मैंने बड़ा अनुचित
र्य किया है। मेरा अपराध क्षमा कीजिए।

"तुम्हें करीमुद्दीन से क्षमा माँगनी होगी।"

सुलेमान ने सिर नीचा करके कहा—मैं तैयार हूँ।

"सलीमुल्ला से प्रतिज्ञा करनी होगी कि मैं तुम्हारा किसी प्रकार का अनिष्ट करने का प्रयत्न न करूँगा।"

"करूँगा।"

"देखो सुलेमान, तुम्हारी सारी हालत मुझे मालूम है। तुम्हारे पिता जो कुछ रुपये छोड़ गये थे वह सब तुमने उड़ा दिया। दुनिया भर के लोगों से तुमने ऋण ले रक्खा है। मेरा ऋण तुम कभी न चुका सकोगे। यदि मैं नालिश कर दूँ तो तुम्हारे और भी जितने महाजन हैं, वे सभी नालिश करेंगे। उस दशा में तुम्हारे घर की मिट्टी तक बिक जायगी। तुम्हें रास्ते में खड़ा होना पड़ेगा।

सुलेमान निरुत्तर था।

बरदा राय ने कहा—तुम युवा हो। घर में स्त्री है, लड़के-लड़कियाँ हैं। भला उनकी क्या दशा होगी? मनुष्य एक बार कोई दुष्कर्म कर बैठता है तो वह कभी क्षमा नहीं किया जा सकता, यह बात मैं नहीं कह रहा हूँ। अपने दुष्कर्म के लिए तुम्हें यथार्थ अनुताप है या केवल मेरे भय से यह सब कह रहे हो, यह मैं अनायास ही समझ लूँगा। यदि तुमने अपनी प्रकृति सुधार ली और सच्च-रित्रता से रहने लगे तो मैं केवल तुम्हें क्षमा ही नहीं कर दूँगा, बल्कि तुम्हारी रक्षा भी करूँगा। तुम्हारे ऊपर जो कुछ ऋण है वह सब चुकाकर तुम्हारी ज़मींदारी का उत्तम प्रबन्ध कर दूँगा।

सुलेमान रो पड़ा। उसने कहा—आपका व्यक्तित्व बहुत ही श्रेष्ठ है। आप जैसे महान् व्यक्ति के ही द्वारा अपराधी का उद्धार हो सकता है।

"तुम इस समय जाओ। कल सवेरे दस बजे आकर तुम्हें दस आदमी के बीच करीमुद्दीन से क्षमा माँगनी होगी।"

सुलेमान सलाम करके मुँह नीचा किये हुए चला गया।

दूसरे दिन निर्दिष्ट समय पर सुलेमान बरदा राय के बँगले पर पहुँचा। उस समय भीड़ से कमरा भरा था। सलीमुल्ला और करीमुद्दीन के सिवा उनके गाँव के और भी कई प्रतिष्ठित व्यक्ति बैठे थे। सुलेमान के दल के भी कई आदमी बैठे थे। बरदा राय एक ऊँची-सी कुर्सी पर बैठे थे। वह कमरा मानो बिलकुल अदालत का ही कमरा था। वहीं सबके बीच में सुलेमान को अपना अपराध स्वीकार करना था।

बरदा राय ने पुकारा—करीमुद्दीन।

हाथ जोड़कर करीमुद्दीन ने कहा—हुज़ूर।

"सामने आओ।"

करीमुद्दीन सामने जाकर खड़ा होगया।

बरदा राय ने फिर पुकारा—सुलेमान मियाँ, तुम भी सामने आओ।

सुलेमान मस्तक नीचे किये हुए फ़ौजदारी के मुक़द्दमे के अभियुक्त के समान आगे बढ़ कर खड़ा हो गया।

पहले तो बहुत धीरे-धीरे, किन्तु बाद को स्पष्ट स्वर से सुलेमान ने कहा—करीमुद्दीन, मैंने तुम्हारी स्त्री का अप-मान किया है, इसके लिए मैं तुम्हारी स्त्री तथा तुम, दोनों से क्षमा माँग रहा हूँ। आज से तुम मेरे भाई हो, और तुम्हारी स्त्री मेरी बहन।

सुलेमान ने फिर कहा—सलीमुल्ला मियाँ, तुमने कृपा करके करीमुद्दीन, उनकी मा और स्त्री को आश्रय दिया। तुम्हारे आदमियों ने मेरे गुण्डों को पीटकर भगा दिया। तुम सुजन हो और मैं पापी। मैं तुमसे क्षमा चाहता हूँ।

सलीमुल्ला मियाँ ने कहा—मैंने क्षमा कर दिया।

बरदा राय ने कहा—नायब साहब, सुलेमान के ऊपर मेरे पन्द्रह हज़ार रुपये हैं। इसका बहुत-सा ब्याज भी चढ़ गया है। इसके लिए अब नालिश करने की ज़रू-रत नहीं है। उसके ऊपर और भी बहुत-सा ऋण है। उसकी एक सूची बनाकर उसका सारा ऋण अपने ख़ज़ाने से चुका दीजिए। सुलेमान आपके नाम मुख़्तारनामा आम लिख देगा। आप उसकी ज़मींदारी का सारा तहसील-वसूल करेंगे। और हर महीने उसे ख़र्च के लिए थोड़ा-थोड़ा देते रहिएगा। यदि वह फिर किसी से ऋण लेगा या और किसी प्रकार का कुकर्म करेगा तो मैं दण्ड दूँगा। सुलेमान, तुम्हें यह बात स्वीकार है ?

"स्वीकार है।"

"जो लोग यहाँ उपस्थित हैं, वे सभी इस बात के साक्षी हैं?"

सम्मिलित स्वर से सब लोगों ने कहा—हम सब लोग साक्षी हैं।

बरदा राय आसन त्याग कर उठे। उन्होंने कहा—आज यह मेरे बड़े आनन्द का दिन है। अमङ्गल से ही मङ्गल होता है। बाहर आकर सब लोगों ने मुक्तकण्ठ से कहा—बरदा राय की जय।

अवसान से पूर्व

लेखक, श्रीयुत उदयशंकर भट्ट

जो चमका करते हैं छिप छिप वे मेरे अरमान बने हैं,
जो रोते ही रहे सदा वे हँसने का सामान बने हैं।
जिन्हें आँख ने छिपा लिया था वे जग में विख्यात बने हैं,
और गिरे जो आँसू बन बन वे सब मेरी बात बने हैं।
इस दुनिया ने कब जीवन को 'प्रियजीवन' कहकर अपनाया,
कौन प्यार बन दर्द न आया, यहाँ दर्द ने किसे हँसाया ?
मैं भी क्या इस टूटे दिल को अपना दिल कहकर समझाऊँ,
और भाग्य की रेखाओं को सूर्यरश्मियाँ कह अपनाऊँ !!
यहाँ टूट जाते हैं प्याले ओठों तक आने से पहले,
यहाँ बिला जाती अभिलाषा अपने ही जाने से पहले।

यहाँ बरसने से पहले ही जल उठते हैं पानी के घन,
यहाँ दान करने से पहले आँसू बन गिर जाता है मन।
यहाँ पंख उगने से पहले पक्षी किसी ओर उड़ जाते,
यहाँ अँगारे बने हुए मन पानी से पहले बुझ जाते।
कहीं और किसने देखी है नाव डूबती हुई किनारे,
अरे, डूबते हुए निशा में दीख पड़े हैं यहीं सितारे।
केवल वही, वही छू पाये मन की तह संगीत हमारे,
जिनमें आहें पानी बनकर भिगो रही हैं जीवन सारे।
अच्छा लगे वही ले जाना, किन्तु मुझे तो कुछ न मिला है,
यहाँ प्रेम में जलन भरी है यहाँ प्रेम का नाम गिला है।

वर्तमान मेवाड़

लेखक,
श्रीयुत कुँवर केसरीमल विशारद



[कुर्सियों पर महता जीवनसिंह एवं जसवंतसिंह और पीछे कुँवर तेजसिंह महता वर्तमान मंत्री हैं। बैठे हुए दाहनी ओर कुँ० महता मोहनसिंह एवं बाईं ओर कुँ० महता चन्द्रसिंह हैं। इनका वंश महाराना हमीरसिंह (प्रथम) के समय से ही राज्यमान्य एवं राज्यभक्त रहा है।]

वीर-प्रसूता मेवाड़-भूमि का दर्शन करने का बहुत दिनों से विचार था। इस आशा की पूर्ति गत मई मास में हो गई। १८ मई को दिन के ४ बजे मारवाड़-जंकशन पहुँचे। यहाँ से मेवाड़ को रात में ३ बजे गाड़ी जाती है। अतएव गाड़ी के लिए ठहरना पड़ा। पूर्व की ओर मेवाड़ के वीरों के क्रीड़ा-स्थल पर्वतों को देखकर नमस्कार किया और बड़े ध्यानपूर्वक उन्हें देखने लगा। आँखों के सामने मेवाड़ का इतिहास प्रत्यक्ष रूप से दीखने लगा। कई स्वर्गीय आत्माओं के चरित याद हो आये। मुख्यतया महाराणा साँगा के लघु भ्राता पृथ्वीराज का। इस महावीर का सम्बन्ध इस स्थान से अधिक रहा है। इस वीर का भौतिक शरीर इस रेलवे जंकशन से लगभग १२ मील की दूरी पर अन्तिम दशा को पहुँचा था। पृथ्वी-राज की बहन आनंदीबाई सिरोही के राव को ब्याही गई थी। वे अपनी बहन से मिलने गये थे। वहाँ से लौटने पर उक्त स्थान पर उनके बहनोई ने उन्हें विषाक्त मिष्टान्न खिला दिया, जिससे उनकी मृत्यु हो गई।

रात को ३ बजे मारवाड़-जंकशन से प्रस्थान किया। ज्यों ही सूर्य का स्वागत करने के लिए उषा का आगमन हुआ और पक्षीगण स्वागत-गान से वन-भूमि को गुञ्जित करने लगे, गाड़ी ने भी सूर्य्य-वंशी महाराणा के राज्य में प्रवेश किया। इस समय गाड़ी फौलाद-जंकशन (मारवाड़-राज्य का स्टेशन) से आगे कामलीघाट स्टेशन (मेवाड़) को जा रही थी। यह स्थान वास्तव में बहुत ही मनोरम है। इस स्थान में रेलवे निकालने में मेवाड़-राज्य का काफ़ी व्यय एवं समय लगा है। ज्यों ही मेरी आँख खुली, देखा कि ट्रेन दो घाटियों के मध्य से जा रही है। गाड़ी के अन्यान्य व्यक्ति वहाँ के दृश्यों को देखकर उनके सम्बन्ध में ज़ोर ज़ोर से बातचीत करने लगे। वहाँ के बड़े-बड़े पहाड़, हरियाली से पूर्ण भयङ्कर घाटियाँ, उपत्यकायें, बड़े-बड़े नाले-नालियाँ और चट्टानें आदि निर्जन स्थान विश्वकर्ता की अद्भुत कारीगरी का दृश्य उपस्थित किये थे। हमारी ट्रेन आँख-मिचौनी का खेल खेलती, कभी छिपती, कभी निकलती, कभी सीटी देती आदि अदाओं से कभी पुलों को पार करती और कभी साधारण चाल से भी धीमी चलती थी। पुल इतने ऊँचे एवं भयंकर थे कि गाड़ी से नीचे देखते समय अपनी टोपी, पगड़ी एवं साफ़े को पूर्णतया सँभालना पड़ता था। कभी पहाड़ों की ऊँची भूमि पर ट्रेन अपनी टेढ़ी गति से चढ़ती और उतरती तो हम लोगों को ऐसा प्रतीत होता था, मानो हम बड़े विशाल शरीरधारी अजगर पर बैठे हुए हैं। यहाँ का दृश्य शिमला



[प्रसिद्ध श्री एकलिङ्गनाथ की प्राचीन ऐतिहासिक मूर्ति। दाहनी ओर भूतपूर्व महाराना फ़तहसिंह जी और बाईं ओर वर्तमान महाराना साहब हैं।]

एवं मंसूरी की भली भाँति याद दिलाता है। वैज्ञानिकों को धन्य है कि वे प्राकृतिक रुकावटों को सुगमता से पार करा देते हैं। इस प्रकार प्राकृतिक दृश्यों के देखते हुए हम लोग कामलीघाट स्टेशन पर पहुँचे।

८ बजे के क़रीब गड़बोररोड स्टेशन पर गाड़ी पहुँची। गड़बोर (चारभुजा) नामक प्रसिद्ध पौराणिक तीर्थ का दर्शन करने के लिए हम यहाँ गाड़ी से उतर पड़े। उक्त तीर्थ यहाँ से १९ मील दक्षिण-पश्चिम है। इस स्थान पर मोटर मिलता है। वर्तमान महाराना साहब ने अभी कुछ दिन पूर्व इस स्टेशन से उक्त मन्दिर तक सड़क बनवाकर यात्रियों को बड़ी सुविधा कर दी है। इस स्टेशन से क़रीब दो मील आमेट नामक ग्राम है, जहाँ राव चूड़ा के वंशधर राज्य करते हैं। राव चूड़ा ने अपने पिता के द्वितीय विवाह करने के प्रस्ताव का समर्थन कर मेवाड़ की गद्दी का अपना अधिकार त्याग दिया था।

काफ़ी सवारियाँ मिल जाने पर ४ बजे मोटर-लारी रवाना हुई और ६½ बजे के लगभग चारभुजा पहुँच गई। सड़क की ऊँची-नीची भूमि पर ऊँचे-नीचे धक्के लगने लगे। और मोटर में ठूँसी होने के कारण सवारियाँ आपस में टकराने लगती थीं। पाँच-पाँच, सात-सात घरों की बस्तियाँ जगह जगह मिलती थीं। खेती के लिए घाटियों के मध्य में छोटे-छोटे खेतों के आकार में खेत दृष्टिगोचर होते थे। राह में सड़क के किनारे कुएँ आदि जलाशयों का पूर्ण अभाव-सा है। गायें, भैंसें आदि चौपाये एवं यात्रीगण प्रायः प्यास से दुखी रहते हैं। इस कठिनाई को दूर करने के लिए एक साधु ने जो राणाबधड़ नामक स्थान में रहते हैं, अपने उद्योग से एक उत्तम जलाशय इधर-उधर के दान-द्वारा केवल ३०) प्राप्त करके बनवाया है। इन साधु ने स्वयं रात-दिन शारीरिक परिश्रम इस जलाशय के खोदने में किया है। यदि कोई दानी इसको पक्का बँधवा दे तो और भी उत्तम हो। इस सड़क के बनने के पहले यहाँ पर लुटेरों का भय रहता था।

'चारभुजा' नाम का गाँव एक परकोटे के भीतर बसा हुआ है। मन्दिर पक्का एवं प्राचीन है। कारीगरी पत्थर की श्लाघनीय है। मन्दिर की दीवार के ऊपर चाँदी के पत्रों पर चढ़ावा देनेवालों के लेख हैं, जिनमें संवत् १७०० से आज तक के भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के नाम एवं उनके चढ़ावा का परिमाण आदि अंकित हैं। मन्दिर के र मुख गरुड़ की पाँच मूर्तियाँ हैं, जिनमें एक चाँदी की मूर्ति है। इस मन्दिर के सेवक गुर्जर-जाति के लोग हैं। कोई उत्तम भेंट चढ़ाने पर एक पीला वस्त्र पगड़ी या साफ़े

वर्तमान मेवाड़

लेखक,
श्रीयुत कुँवर केसरीमल विशारद



[कुर्सियों पर महता जीवनसिंह एवं जसवंतसिंह और पीछे कुँवर तेजसिंह महता वर्तमान मंत्री हैं। बैठे हुए दाहनी ओर कुँ० महता मोहनसिंह एवं बाईं ओर कुँ० महता चन्द्रसिंह हैं। इनका वंश महाराना हमीरसिंह (प्रथम) के समय से ही राज्यमान्य एवं राज्यभक्त रहा है।]

वीर-प्रसूता मेवाड़-भूमि का दर्शन करने का बहुत दिनों से विचार था। इस आशा की पूर्ति गत मई मास में हो गई। १८ मई को दिन के ४ बजे मारवाड़-जंकशन पहुँचे। यहाँ से मेवाड़ को रात में ३ बजे गाड़ी जाती है। अतएव गाड़ी के लिए ठहरना पड़ा। पूर्व की ओर मेवाड़ के वीरों के क्रीड़ा-स्थल पर्वतों को देखकर नमस्कार किया और बड़े ध्यानपूर्वक उन्हें देखने लगा। आँखों के सामने मेवाड़ का इतिहास प्रत्यक्ष रूप से दीखने लगा। कई स्वर्गीय आत्माओं के चरित याद हो आये। मुख्यतया महाराणा साँगा के लघु भ्राता पृथ्वीराज का। इस महावीर का सम्बन्ध इस स्थान से अधिक रहा है। इस वीर का भौतिक शरीर इस रेलवे जंकशन से लगभग १२ मील की दूरी पर अन्तिम दशा को पहुँचा था। पृथ्वीराज की बहन आनंदीबाई सिरोही के राव को ब्याही गई थी। वे अपनी बहन से मिलने गये थे। वहाँ से लौटने पर उक्त स्थान पर उनके बहनोई ने उन्हें विषाक्त मिष्टान्न खिला दिया, जिससे उनकी मृत्यु हो गई।

रात को ३ बजे मारवाड़-जंकशन से प्रस्थान किया। ज्यों ही सूर्य का स्वागत करने के लिए उषा का आगमन हुआ और पक्षीगण स्वागत-गान से बन-भूमि को गुञ्जित करने लगे, गाड़ी ने भी सूर्य्य-वंशी महाराणा के राज्य में प्रवेश किया। इस समय गाड़ी फौलाद-जंकशन (मारवाड़-राज्य का स्टेशन) से आगे कामलीघाट स्टेशन (मेवाड़) को जा रही थी। यह स्थान वास्तव में बहुत ही मनोरम है। इस स्थान में रेलवे निकालने में मेवाड़-राज्य का काफ़ी व्यय एवं समय लगा है। ज्यों ही मेरी आँख खुली, देखा कि ट्रेन दो घाटियों के मध्य से जा रही है। गाड़ी के अन्यान्य व्यक्ति वहाँ के दृश्यों को देखकर उनके सम्बन्ध में ज़ोर ज़ोर से बातचीत करने लगे। वहाँ के बड़े-बड़े पहाड़, हरियाली से पूर्ण भयङ्कर घाटियाँ, उपत्यकायें, बड़े-बड़े नाले-नालियाँ और चट्टानें आदि निर्जन स्थान विश्वकर्ता की अद्भुत कारीगरी का दृश्य उपस्थित किये थे। हमारी ट्रेन आँख-मिचौनी का खेल खेलती, कभी छिपती, कभी निकलती, कभी सीटी देती आदि अदाओं से कभी पुलों को पार करती और कभी साधारण चाल से भी धीमी चलती थी। पुल इतने ऊँचे एवं भयंकर थे कि गाड़ी से नीचे देखते समय अपनी टोपी, पगड़ी एवं साफ़े को पूर्णतया सँभालना पड़ता था। कभी पहाड़ों की ऊँची भूमि पर ट्रेन अपनी टेढ़ी गति से चढ़ती और उतरती तो हम लोगों को ऐसा प्रतीत होता था, मानो हम बड़े विशाल शरीरधारी अजगर पर बैठे हुए हैं। यहाँ का दृश्य शिमला



[प्रसिद्ध श्री एकलिङ्गनाथ की प्राचीन ऐतिहासिक मूर्ति। दाहनी ओर भूतपूर्व महाराना फ़तहसिंह जी और बाईं ओर वर्तमान महाराना साहब हैं।]

एवं मंसूरी की भली भाँति याद दिलाता है। वैज्ञानिकों को धन्य है कि वे प्राकृतिक रुकावटों को सुगमता से पार करा देते हैं। इस प्रकार प्राकृतिक दृश्यों के देखते हुए हम लोग कामलीघाट स्टेशन पर पहुँचे।

८ बजे के क़रीब गढ़बोररोड स्टेशन पर गाड़ी पहुँची। गढ़बोर (चारभुजा) नामक प्रसिद्ध पौराणिक तीर्थ का दर्शन करने के लिए हम यहाँ गाड़ी से उतर पड़े। उक्त तीर्थ यहाँ से १९ मील दक्षिण-पश्चिम है। इस स्थान पर मोटर मिलता है। वर्तमान महाराना साहब ने अभी कुछ दिन पूर्व इस स्टेशन से उक्त मन्दिर तक सड़क बनवाकर यात्रियों को बड़ी सुविधा कर दी है। इस स्टेशन से क़रीब दो मील आमेट नामक ग्राम है, जहाँ राव चूड़ा के वंशधर राज्य करते हैं। राव चूड़ा ने अपने पिता के द्वितीय विवाह करने के प्रस्ताव का समर्थन कर मेवाड़ की गद्दी का अपना अधिकार त्याग दिया था।

काफ़ी सवारियाँ मिल जाने पर ४ बजे मोटर-लारी रवाना हुई और ६½ बजे के लगभग चारभुजा पहुँच गई। सड़क की ऊँची-नीची भूमि पर ऊँचे-नीचे धक्के लगने लगे। और मोटर में ठूँसी होने के कारण सवारियाँ आपस में टकराने लगती थीं। पाँच-पाँच, सात-सात घरों की बस्तियाँ जगह जगह मिलती थीं। खेती के लिए घाटियों के मध्य में छोटे-छोटे खेतों के आकार में खेत दृष्टिगोचर होते थे। राह में सड़क के किनारे कुएँ आदि जलाशयों का पूर्ण अभाव-सा है। गायें, भैंसें आदि चौपाये एवं यात्रीगण प्रायः प्यास से दुखी रहते हैं। इस कठिनाई को दूर करने के लिए एक साधु ने जो राणाबधड़ नामक स्थान में रहते हैं, अपने उद्योग से एक उत्तम जलाशय इधर-उधर के दान-द्वारा केवल ३०) प्राप्त करके बनवाया है। इन साधु ने स्वयं रात-दिन शारीरिक परिश्रम इस जलाशय के खोदने में किया है। यदि कोई दानी इसको पक्का बँधवा दे तो और भी उत्तम हो। इस सड़क के बनने के पहले यहाँ पर लुटेरों का भय रहता था।

'चारभुजा' नाम का गाँव एक परकोटे के भीतर बसा हुआ है। मन्दिर पक्का एवं प्राचीन है। कारीगरी पत्थर की श्लाघनीय है। मन्दिर की दीवार के ऊपर चाँदी के पत्रों पर चढ़ावा देनेवालों के लेख हैं, जिनमें संवत् १७०० से आज तक के भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के नाम एवं उनके चढ़ावा का परिमाण आदि अंकित हैं। मन्दिर के [illegible] मुख गरुड़ की पाँच मूर्तियाँ हैं, जिनमें एक चाँदी की मूर्ति है। इस मन्दिर के सेवक गुर्जर-जाति के लोग हैं। कोई उत्तम भेंट चढ़ाने पर एक पीला वस्त्र पगड़ी या साफ़े

पर बाँधने के लिए दिया जाता है, जो 'छोगा' कहलाता है। इसी लिए इस मन्दिर को 'छोगावाला मन्दिर' भी कहते हैं। इधर के प्रायः सभी व्यक्ति बहुत ग़रीब हैं। मेवाड़ में सब प्रान्तों की अपेक्षा कुम्भलगढ़ के इलाक़े के लोग प्रायः अधिक ग़रीब हैं।

दो दिन के पश्चात् मोटर-लारी-द्वारा फिर स्टेशन को लौट आया और गाड़ी पर सवार होकर काकरोली स्टेशन पर जा उतरा। काकरोली वल्लभ-कुल-संप्रदाय का तीर्थ एवं महारानाओं का गुरु-द्वारा है। गाँव के पास ही 'राजसमंद' नामक बहुत बड़ा तालाब है। इसे महाराना राजसिंह (प्रथम) ने बनाया है। इन महाराना ने भी अपना नाम वीरता में अमर कर लिया है। औरंगज़ेब जैसे कूटनीतिज्ञ से लोहा लेना इन्हीं महाराना का काम था। दो दिन के पश्चात् नाथद्वारा पहुँचा।

नाथद्वारा पहाड़ों के मध्य में बसा हुआ अच्छा सुन्दर नगर है। पास में ही बनास नामक बरसाती नदी है। मकान प्रायः सभी पक्के बने हुए हैं। पानी की बहुतायत, यात्रियों का जमघट, मिष्टान्न की बहुतायत, गोसाईं-परिवार का धनाढ्यपन इस ग्राम को बहुत ही प्रसिद्ध किये हुए है। चित्रकारी का तो यह राजपूताने में प्रधान स्थान है। साधारण मूल्य में हाथ के खींचे बढ़िया-बढ़िया चित्र यहाँ मिलते हैं। बम्बई-प्रान्त के भारटिया लोग एवं सिंध के दीवान लोग यहाँ अधिक आते हैं। यहाँ भगवान् कृष्ण की बाल-पूजा होती है। दिन में प्रातः से सायं तक कई बार नियमित समय के लिए दर्शन होते हैं, जिनके अलग-अलग नाम हैं। राजभोग का दर्शन दिन में दस बजे के लगभग होता है, जिसमें भाँति-भाँति के मिष्टान्न, फल, फूल, शाक, भात आदि रक्खे जाते हैं। पश्चात् यही पदार्थ स्थानीय कर्मचारियों को वेतनरूप में मिलता है, जिन्हें बेच कर वे अपना निर्वाह करते हैं।



[वर्तमान महाराना भूपालसिंहजी।]

यहाँ अँगरेज़ी का हाई स्कूल, संस्कृत-उत्तमा पाठशाला, पुस्तकालय, व्यायाम-शाला आदि संस्थायें भी हैं। गोसाईं महाराज की निजी पलटन, रिसाला, पुलिस आदि के पृथक् पृथक् विभाग हैं। गोसाईं जी को सेशन जज तक के अधिकार प्राप्त हैं। तीन दिन यहाँ रहकर मेवाड़ के प्रसिद्ध देवालय एकलिंग जी को गया।

मेवाड़-राज्य की राजगद्दी एकलिंगनाथ की गद्दी कहलाती है। राज्य में अर्ज़ी आदि प्रत्येक पत्र लिखने पर ओ३म् के स्थान में पहले 'श्री एकलिंग जी' एवं 'श्री राम जी' लिखा जाता है। यह मन्दिर बड़ा प्राचीन है। मेवाड़ में शिशोदिया-वंश के प्रवर्तक श्री बप्पा रावल के ये आराध्यदेव माने गये हैं। इनकी भक्तिविशेष के कारण ही शिशोदिया-वंश मेवाड़ में स्थापित हुआ और जब-जब राजघराने पर कोई आपत्ति आई, इन्होंने पूर्णतया उसे बचाया है। ऐसा इस वंश का



[ऋषभदेव की मूर्ति। उदयपुर के पश्चिम में यह एक प्रसिद्ध तीर्थ है।]

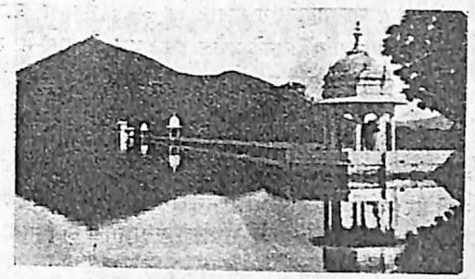
विश्वास है। यह एक साधारण-सा गाँव है, जिसमें एक मंदिर है। मूर्ति चतुर्मुखी है। यहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य भी बहुत उत्कृष्ट है। महादेव के मन्दिर में चूरमा-मालपुआ का भोग लगाना मैंने अपने जीवन में यहीं देखा है। यहाँ से हम उदयपुर गये।

उदयपुर कैसा नगर है? यहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य कैसा है? राजप्रासाद कैसे हैं? आदि बातें ऐसी हैं जो प्रायः भारत के शिक्षित जन जानते हैं।

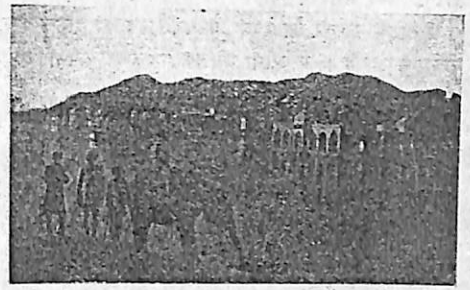
उदयपुर में खाद्य पदार्थ, विशेषकर शाक-भाजी सस्ती एवं अच्छी मिलती है। शहर विलासप्रिय कम है। जनता अधिकतर आस्तिक एवं शान्तिप्रिय है। अधिकतर लोग राज्यकर्मचारी हैं। इनमें अधिकांश कर्मचारी प्रातः मेवाड़-नाथ के शुभ दर्शन करने सर्वदा जाते हैं, जो यहाँ की भाषा में 'मुजरा करना' कहलाता है। प्रधान से लगाकर साधारण तया प्रत्येक विभाग का अफ़सर सर्वदा महलों को जाया करता है। मेवाड़ की ठेठ प्राचीन पोशाक पहननी पड़ती है। चूड़ीदार पायजामा, लम्बी अँगरखी और उस पर कमर-



[उदयपुर का एक विहङ्गम दृश्य।]



[फ़तहसागर का एक दृश्य।]



[गुलाबबाग़ की ओर का एक दृश्य, उदयपुर (मेवाड़)।]



[मेवाड़ में कई पीढ़ियों से दीवान पद पर रहनेवाला प्राचीन वंश। मध्य में राय महता पन्नालाल (स्वर्गीय) जिनके प्रपौत्र इस समय इँग्लेंड में आई० सी० एस० में अध्ययन कर रहे हैं। स्वर्गीय महता पन्नालाल के पुत्र फ़तहलाल वयोवृद्ध एवं सम्मानित राज्य-मान्य जागीरदार मुसद्दी हैं।]

बंद एवं पगड़ी यहाँ की राजशाही पोशाक है। लम्बी अँगरखी पर आज-कल कोट भी पहनने लगे हैं। गले में स्काउट (बालचर) की भाँति स्कार्फ़ (रूमाल) उसी गाँठ से लगाया जाता है।

मेवाड़ का शासन-प्रबन्ध ब्रिटिश शासन-पद्धति का मिश्रण है। देहात का प्रबन्ध तो ठीक ब्रिटिश शासनानुसार ही है, किन्तु नगर में कई बातों में भिन्नता भी है। महाराना साहब बहादुर को स्वयं बैठकर राज्य का दैनिक काम करना पड़ता है। महाराना जी तक पहुँचकर अपनी दादरसी प्रत्येक कर सकता है।

महाराना साहब के निकट अधीनस्थ एक मुसाहिब आला पण्डित दीवानबहादुर धर्मनारायण जी एवं दो मंत्री पण्डित प्रभासचन्द्र जी चटर्जी एवं कुँवर तेजसिंह जी महता हैं। महाराणा महोदय बड़े उदार, सहनशील, गम्भीर, दयालु एवं शान्त हैं।

महाराना महोदय विद्या के बड़े प्रेमी हैं। श्री भूपाल नोबल्स स्कूल एवं महाराना-कालेज इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। सुना है, कालेज के साथ ही एक छात्रालय भी आप खोल रहे हैं। देहात में कई कन्या-पाठशालायें भी आपने खुलवाई हैं। १,०००) वार्षिक छात्रवृत्ति दी जाती है। जात्युन्नति की चाह आपमें बड़ी तीव्र है। यही कारण है कि कई सरदार ग्रेजुएट हो गये हैं। कुँवर लालसिंह जी, शार्दूलसिंह जी, महेंदुसिंह जी, जवानसिंह जी एवं केसरीसिंह जी आदि इसके फल हैं। ये राजकर्मचारी अपने उदार एवं शान्त प्रकृति के कारण सर्वप्रिय हैं। बनेड़ा के द्वितीय राजकुमार अभी हाल में बैरिस्ट्री पास करके लौटे हैं।

उदयपुर का 'विद्याभवन' एक आदर्श विद्यालय है, इसमें नवीन मैट्रिक प्रणाली से परीक्षा तक पढ़ाई होती है। इसके प्रवर्तक कुँवर मोहनसिंह एम०, ए०, एल-एल० बी०, बार-एट-ला हैं। ये रिवन्यू विभाग के इंचार्ज हैं।

उदयपुर नगर में मुख्य व्यापारिक जाति बोहरा (मुसलमान) है। यहाँ का प्रायः सभी चीज़ों का व्यापार बोहरा लोगों के हाथ में है। इस जाति के कई व्यक्ति भारत के बड़े-बड़े व्यापारी नगरों के अलावा जंज़ीबार जैसे दूरस्थ टापुओं में भी व्यापार कर रहे हैं।

राज्य की देहात में भी कुछ जाग्रति फैलने लगी है, आशा की जाती है कि शिक्षा की दौड़ में मेवाड़ पीछे नहीं रहेगा।

इतना सब कुछ होने पर भी देहातियों में कृषकों की दशा शिक्षा के अभाव से विचारणीय है। अंधश्रद्धा,

विवाह के ज्योनारों की भरमार एवं मृतकभोजों ने इनको दिवालिया कर रक्खा है।

मेवाड़ में इस समय भी विद्वानों, वीरों, प्राचीनता के प्रेमियों की कमी नहीं है। साधारण से साधारण व्यक्ति में भी पवित्रता, आस्तिकता, प्राचीनता, सादगीपन, भोलापन और वीरता आदि गुणों का अभाव नहीं है। स्त्रियाँ प्रायः विलासप्रिय नहीं दिखलाई देती हैं। देशी खद्दरधारी पवित्रता से जीवन व्यतीत करती हैं।

उदयपुर में कुछ दिन रह कर हम अपने वास स्थान को लौट गये। इस प्रकार हमारी यह चिर-अभिलषित यात्रा कुशलपूर्वक समाप्त हो गई।

मिलन

लेखक, श्रीयुत सरदार नर्मदाप्रसादसिंह

(१)

अनुराग विराग की प्यारी सखी,
    किसी ध्यान में लिप्त सुषुप्त-सी थी।
करुणा-सर के हिय-अम्बुज में,
    मकरंद-सी राजित गुप्त-सी थी॥
जिमि नीर निमग्न समीर रहे,
    तिमि वेदना-वारि में सिक्त-सी थी।
अणिमा-सी सुपीर की सुस्मृति थी,
    मम चेतना से सदा लुप्त-सी थी॥

(२)

इस वेदना में व्यथा थी ही नहीं,
    मृदु मोद की तोष की भावना थी।
प्रतिघात का अन्तरभाव न था,
    अवसान अभूत की साधना थी॥
तम भी था निराशा का व्याप्त नहीं,
    चिर ज्योति अखंड-सी वासना थी।
प्रणै-मंत्र से हो अभिमंत्रित-सी,
    मृदुल-स्मृति-पीर अराधना थी॥

(३)

डर एक ही था कभी आवें न वे,
    अरु वेदना-मर्म न पूछें कहीं।
जिनसे ही प्रदत्त हो सम्पति जो,
    उनसे ही भला छिपती है कहीं॥
अनबेधे सुडौल दो मोतियों को,
    सब सूचक भेद अचानक ही।
हिय-सिन्धु से लोलुप लोचन ले,
    उनके पद-कंज धरें न कहीं॥

(४)

इसी अंतसताप से त्रासित था,
    तभी आये बताये बिना वे यहीं।
पट-कोमल ही के छिपा न सके,
    करुणा-सर से सरिता उमही॥
चट लोचन लोयन लों आ लगी,
    पुनि प्यारे पदों पै पगी जा वहीं।
हम चित्र से ठाढ़े रहे सहसा,
    मुख से निकला हाँ नहीं हाँ नहीं॥

(५)

इसी हाँ नहीं के मधि गर्व बहा,
    चिर संचित सम्पति कोष बहा।
वही वेदना की मृदुलस्मृति भी,
    अरु साधना-साधक-तोष बहा॥
वही आशा, निराशा का धूम्र बहा,
    अपमान बहा, अरु रोष बहा।
जब नेत्र से आसव प्रेम बहा,
    बस! वे भी बहे, मैं बेहोश बहा॥

जीवन-चरित

लेखक, श्रीयुत क़ुँवर राजेन्द्रसिंह

पाश्चात्य देशों में जीवन-चरितों की धूम है। यह प्रसन्नता की बात है कि हमारे देश के लेखकों का ध्यान भी साहित्य के इस महत्त्वपूर्ण अङ्ग की ओर गया है। इस लेख में कुँवर साहब ने यह बताया है कि जीवन-चरितों का लिखा जाना कैसे आरम्भ हुआ और आज-कल उनके लिखने के क्या तरीक़े हैं। आपने हिन्दी में भी एक ऐसे चरित-कोष की आवश्यकता बताई है जिससे देश के महापुरुषों के सम्बन्ध में ज्ञातव्य बातें तुरन्त मालूम हो सकें। मराठी में एक ऐसा कोष है भी। आशा है, लेखकों का इधर ध्यान जायगा।

साहित्य का वह अङ्ग जिसकी पूर्ति केवल जीवन-चरित-द्वारा होती है, अभी हमारे यहाँ अपूर्ण है। हमारे देश में जीवन-चरित लिखने की प्रथा वैसी कभी नहीं थी, जैसी आज-कल पश्चिमीय देशों में है। उनके यहाँ मामूली से मामूली आदमी का भी जीवन-चरित मौजूद है, और अपने यहाँ बड़े-से-बड़े आदमी का भी नहीं है। बहुत ठीक है—"अनजाने न होत सनेह 'विशाल' सनेह बिना अभिलाष नहीं।" किसी से कैसे स्नेह हो सकता है जब तक हम उसे जानें नहीं? महात्मा तुलसीदास जी का उदाहरण लीजिए। हम उनके विषय में क्या जानते हैं? केवल इतना ही तो कि वे रामायण और विनयपत्रिका के रचयिता थे, और जो कुछ उनके सम्बन्ध में लिखा गया है उसका आधार किंवदन्तियाँ हैं। ऐसे जीवन-चरितों में न तो साहित्य का स्वादु होता है और न विवाद-रहित सत्यता। यों तो ख़ैर कोई भी बात दुनिया में विवाद-रहित नहीं है। तुलसीदास जी का न तो कोई स्मरण-लेख मिला है और न उनके ऐसे पत्र ही मिले हैं जिनके आधार पर उनका जीवन-चरित लिखा जाता। और जब ये दोनों नहीं थे तब अनुमान से ही काम लिया गया। यद्यपि अनुमान में बड़ी शक्ति है, तथापि वह सीमारहित नहीं है। बहुत-से अवसर ऐसे होते हैं जब अनुमान सत्यता का रंग धारण करने में असमर्थ हो जाता है। अनुमान और सत्यता दोनों को एक-दूसरे की सहायता की आवश्यकता है। यदि हम तुलसीदास जी का वास्तविक जीवन-चरित पढ़कर रामायण पढ़ते तो हमें उनकी कविता में कुछ और ही आनन्द आता। भूषण का बिना जीवन-चरित पढ़े हुए यदि उनका यह पद पढ़ा जाय—"कान्ह जिमि कंस पर तेज तिमि तंस पर त्यों म्लेच्छ-वंश पर शेर शिवराज है", जिस पर उनको इतना बड़ा पुरस्कार मिला था जो संसार के इतिहास में उपमोपमेय है, तो बहुत कुछ इसका महत्त्व कम पड़ जायगा और इसका रोमाञ्चकारी गुण जाता रहेगा। अब जब हम यह जानते हैं कि उस समय देश की क्या दशा थी और समस्त हिन्दू-भारत शिवाजी की तरफ़ किस आशापूर्ण नेत्रों से देख रहा था और उनके रास्ते में कितनी बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ उपस्थित थीं—यह सब जानकर जब वह पद हम पढ़ते हैं तब एक अद्भुत स्फूर्ति शरीर में आ जाती है। परिस्थिति हर एक वस्तु का स्वरूप बदल देती है। यदि परिस्थिति का ज्ञान न होता तो हमें सन्देह अवश्य होता कि कहीं झूठी ख़ुशामद तो शिवाजी की नहीं की गई है। आजकल हर एक व्यक्ति जिसके पास चार पैसे हैं, कर्ण का ऐसा दानी और युधिष्ठिर का ऐसा सत्यवादी कहकर सम्बोधित किया जाता है, और वह भी अपने को वैसा ही समझने लगता है।

जीवन-चरितों का स्थान साहित्य में बहुत ऊँचा है। वह इतिहास है। जीवन-चरित एक आदमी का इतिहास है और "इतिहास मनुष्य-जाति का स्मरण-लेख है" जैसा कि डाक्टर ग्रोटो अर्नेस्ट ने लिखा है। अँगरेज़ी में जीवन-चरित को पहले 'लाइफ़' कहते थे। १६८३ में जान ड्रायडेन ने इसके लिए 'बायोग्राफ़ी' शब्द का प्रयोग किया और कहा कि 'यह विशेष आदमियों के जीवनों का इतिहास है।' 'बायोग्राफ़ी' शब्द अँगरेज़ी-भाषा का नहीं है।

यह ग्रीक-भाषा का शब्द है। उस भाषा में इसका उच्चारण 'बायोग्रेफ़िया' होता है। पहले 'बायोग्राफ़ी' का उस जीवन-चरित के लिए प्रयोग होता था जिसका चरित-नायक जीवित हो, पर अब यह भेद मिट गया है। प्राचीन समय के जीवन-चरित-लेखकों में प्लूटार्क का नाम प्रथम है। अँगरेज़ जीवन-चरित-लेखकों पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा है। यह भी कहना अत्युक्ति न होगी कि इसके लिखे जीवन-चरितों ने और लिखनेवालों का ध्यान इधर आकर्षित किया। इसके पश्चात् अँगरेज़ी में भी बहुत बड़े जीवन-चरित लिखनेवाले हुए हैं, जिन्होंने अपने नये ढंग से लिखा है।

जीवन-चरित बहुत-कुछ अब भी इतिहास और साहित्य का सहकारी समझा जाता है। शताब्दियों तक यह केवल इतिहास का विभाग समझा गया, और यह नहीं ख़याल किया गया कि यह भी एक तरह की साहित्यिक रचना है, जिसके नियम पृथक् होते हैं। इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि पहले और बहुत दिनों के बाद तक यह इतिहास की ही एक शाखा समझा गया और जब इसके लिखने की प्रथा बढ़ी और लेखकों ने अपना कला-कौशल दिखलाया तब इसमें साहित्यिक स्वादु की माँग बढ़ी और तभी से इसको साहित्य में स्थान प्राप्त हुआ। इँग्लेंड में पहले जो कुछ लिखा गया था उसमें से अधिकांश उनके यहाँ के साधु और महात्माओं के जीवन-चरित थे और उनमें उनके आश्चर्यजनक कामों का वर्णन था। कहने भर को वे जीवन-चरित थे। सभी प्रथम उद्योग ऐसे ही होते हैं। सन् ६९० और सन् ७०० ईसवी के बीच में एडमनैनन ने सेंट कोलम्बा का जीवन-चरित लिखा था। वे स्वयं एक साधु और इतिहास-लेखक थे। इसमें तीन बातों की अधिकता थी—(१) जीवन-चरित की सूक्ष्मता, (२) आश्चर्य-जनक कामों की विस्तारता, (३) और सदाचारी जीवन पर बार बार उपदेश। इसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि यह जीवन-चरित नहीं कहला सकता और न इतिहास ही; इसे पूर्णरूप से 'भक्तमाल' कह सकते हैं। 'हेगियालोजी' का अर्थ अँगरेज़ी में वह साहित्य है जिसमें साधु और महात्माओं के जीवन-चरित और उपाख्यान लिखे हों। अँगरेज़ी का 'हेगिया' शब्द ग्रीक-भाषा के 'हेगियस' शब्द (जिसका अर्थ साधु और साधुता है) के योग से बना है।

पहला जीवन-चरित जिसका चरित-नायक कोई साधु नहीं था, एसर ने सन् ८९३ में लिखा था। वह बादशाह अल्फ्रेड का जीवन-चरित था। पर जो जीवन-चरित जीवन-चरित के ढंग का था, सन् ७०९ में लिखा गया। उसे एडियस स्टीफ़ेनस ने लिखा था, यद्यपि उसका चरित-नायक योर्क का बिशप विलफ़्रिड था। इस जीवन-चरित की इँग्लेंड में बड़ी धूम हुई। कहा जाता है कि चरित लेखकों में एडियस का स्थान अँगरेज़ी विद्वानों में अग्रगण्य है।

यह स्वयं बेडी का कहना है कि उन्होंने एक दफ़ा कथवर्ट का जीवन-चरित लैटिन-भाषा के पद्य में लिखा था। विश्वास की दृष्टि मन्द होती है। उन्होंने जीवन-चरित में लिखा था कि दो कौओं ने महात्मा कथवर्ट को कोई क्षति पहुँचाई और उसके पश्चात् उन दोनों ने ईश्वर से प्रार्थना की कि महात्मा उनसे प्रसन्न हो जायँ। पौराणिक कथायें सभी देशों की क़रीब-क़रीब एक ही ढंग की होती हैं, और ऐसी कथाओं में कौए का ज़िक्र ज़रूर होता है। रामायण में तुलसीदास जी ने लिखा है—"सीताचरण चोंच हति भागा", और उसके पीछे रामचन्द्र जी का बाण चला और कौए को त्रैलोक्य में कहीं छिपने या बचने का मौक़ा न मिला जब तक वह फिर आकर क्षमाप्रार्थी नहीं हुआ।

बहुत दिनों तक यह समझा जाता था कि जीवन-चरितों में केवल प्रशंसा होनी चाहिए। समय के साथ दृष्टिकोण और विचार बदलते रहते हैं। तब यह कोई दोष न समझा जाता होगा, जैसा अब समझा जाता है। बेडी का यह भी कहना है कि अच्छी बातें अच्छे आदमियों के लिए हैं और बुरी बातें बुरे आदमियों के लिए, "क्योंकि जब इतिहास किसी की अच्छी बातों का उल्लेख करता है तब सुननेवाले अच्छाई का अनुकरण किया चाहते हैं और जब बुरे आदमियों की बुराइयों को लोग पढ़ते और सुनते हैं तब वे उन अच्छाइयों के और ज़्यादा ग्रहण करते हैं जो उन्होंने अच्छे आदमियों की सुनी हैं।" धार्मिक दृष्टि से यह बिलकुल ठीक है, परन्तु प्रकृति के नियम के विरुद्ध है, क्योंकि प्रकृति ने मनुष्य में गुणों और अवगुणों का सम्मिश्रण किया है। मेघनाद और कुम्भकर्ण में सब वही अवगुण होंगे जो एक राक्षस में होने चाहिए, पर यह उनकी उचित प्रशंसा है

कि अपने देश के काम आ गये। विभीषण में साधुता के सर्व गुण होते हुए भी उन पर यह लाञ्छन सदैव लगा रहेगा कि जब देश को उनकी सहायता की आवश्यकता थी तब उन्होंने उसका साथ ही नहीं छोड़ा, वरन् शत्रु-सेना को दुर्ग का भेद बता दिया। क्या इसी का नाम सजातीयता या देश-प्रेम है? यह चरित-नायक के साथ न्याय नहीं कहा जा सकता है, यदि केवल उसके अवगुणों पर ही दृष्टिपात किया जाय। और यह संसार को धोखा देना है कि किसी के जीवन-चरित में केवल चरित-नायक के गुणों की ही सूची दी हो। जीवन-चरित को फोटो का काम देना चाहिए।

जीवन-चरित का स्थान अँगरेज़ी-भाषा के साहित्य में तभी से निश्चित हुआ है जब से इसका पथ इतिहास से पृथक् हो गया है। १०६६ से १५०० तक अँगरेज़ी-भाषा के जीवन-चरितों का अवस्थान्तर समय कहला सकता है। उस समय लेटिन-भाषा थी और लेखक गिरजे के लोग थे। और जीवन-चरित भी अधिकतर उन्हीं के लिखे जाते थे जिनका सम्बन्ध राज्य या गिरजे से होता था। उनमें निजी बातों का उल्लेख बहुत कम होता था—केवल उनके जीवन की बड़ी घटनाओं का वर्णन होता था। सन् ११४० में इडमर ने एन्सेल्म का जो जीवन-चरित लिखा था उसमें चरित-नायक के बचपन का कुछ हाल था और उसके मानवीय गुणों की भी प्रशंसा की गई थी। इसके पहले जैसा आर० डब्ल्यू० चर्च ने कहा है कि लेखकों की यह आदत नहीं थी कि बचपन का हाल लिखें, वे तब से उसके जीवन को प्रारम्भ करते थे जब वह दुनिया में विख्यात हो जाता था। वास्तव में किसी के उस समय को भी जानना चाहिए जब उसे दुनिया न जानती हो। उसी समय का उसका फोटो सच्चा फोटो है। एडम ने अपने मित्र स्टेह्यूग का जीवन-चरित लिखा, जिसका नाम मैग्ना वायटा है। यह जीवन-चरित नहीं, वरन् प्रशंसा-पत्र है। १५वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में लोगों ने निजी आख्यायिकाओं को जीवन-चरितों का एक मुख्य अंग समझना शुरू किया। वही हाल अभी तक है। जिस जीवन-चरित में निजी बातों का अभाव होता है उसको क़द्र की निगाह से नहीं देखते हैं।

उसी समय कुछ लोग जीवन-चरित पद्य में लिखते थे। लेटिन में तो पद्य में लिखने का रवाज था ही, पर कुछ लोगों ने अँगरेज़ी में भी लिखना प्रारम्भ कर दिया था। बहुत-सी पद्य-रचनायें ऐसी भी मिली हैं जिनसे यह पता नहीं चलता है कि किसकी लिखी हुई हैं। ऐसी बहुत-सी पद्यमय जीवनियों के रचयिता राबर्ट आफ़ ग्लूसेस्टर कहलाते हैं। इनका समय सन् १२६०—सन् १३०० था। इनका स्थान अँगरेज़ी-भाषा के विद्वानों में है। सन् १३९३—सन् १४४७ में आस्बर्न बोकेनहेम ने विदुषी महिलाओं के जीवन-चरित पद्य में लिखे, और इनका भी नाम प्राचीन अँगरेज़ी-साहित्य के विद्वानों में गिना गया। अब वह समय निकट आ रहा था जब जीवन-चरितों को पद्य में लिखने की प्रथा मिटनेवाली थी।

फिर जीवन-चरित के लिखने का यह ढङ्ग हुआ कि चरित-नायक के जीवन की उन दो-चार मुख्य घटनाओं का उल्लेख होता था जिनसे आश्चर्य उत्पन्न हो। चाहे वह जीवन-चरित गद्य में लिखा गया हो या पद्य में। यह शायद इस वजह से हुआ होगा कि पहले साधु और महात्माओं के ही जीवन-चरित लिखे जाते थे और उन जीवन-चरितों में आश्चर्यजनक घटनाओं का उल्लेख उनका माहात्म्य बढ़ाने के लिए ज़रूरी होता था। जैसे आज-कल किसी मेले का वर्णन करने में यह आवश्यक है कि पण्डे कैसा झगड़ा कर रहे हैं और कैसे स्वार्थसेवी साधु चमगादड़ की तरह लटके रहते हैं। अँगरेज़ विद्वानों की राय है कि वैसे जीवन-चरित सदुद्देशात्मक उपन्यास कहला सकते हैं।

एक परिवर्तन और हुआ, और वह यह कि छोटे जीवन-चरितों के लिखने की प्रथा की नींव पड़ी। यदि वही पुराना ढंग रहता तो आज-कल शायद ही कोई जीवन-चरित पढ़ता, जब समाचार-पत्रों के ही पढ़ने के लिए सबके पास समय का अभाव-सा जान पड़ता है। इसी समय डाक्टर फ़ुलर ने यह कहा था कि उनके जीवन-चरित लिखने का यह उद्देश है कि पढ़नेवालों का मनोरञ्जन हो। यह भी उन्हीं का कहना है कि जीवन-चरित का विषय निरस होता है, इस वजह से चरित-नायक के सम्बन्ध में केवल समय, स्थान और उसकी निजी बातों का उल्लेख होना चाहिए। बहुत दिनों तक डाक्टर फ़ुलर का ही लोगों ने जीवन-चरित लिखने में अनुकरण किया। विषय की सूक्ष्मता के कारण लोगों का ध्यान जीवन-चरितों का

कोष-सम्पादन करने की ओर गया। ऐसा कोष बड़ा उपयोगी होता है। अँगरेज़ी-भाषा में जिस बड़े आदमी के सम्बन्ध में जिन आवश्यक बातों के जानने की इच्छा हो वे सब उस समय एक जगह मिल जायँगी और बेकार की मेहनत बच जायगी। अपने यहाँ ऐसा कोई भी चरित-कोष नहीं है। एक बात जानने के लिए दस पुस्तकें उलटना-पुलटना पड़ती हैं और तब भी काम नहीं बनता है। यदि ऐसा कोष तैयार हो जाय तो अपने साहित्य की एक बड़ी कमी पूरी हो जाय। सन् १६८० में आब्रे ने लिखा था कि जीवन-चरित ऐसा होना चाहिए जिसके पढ़ने से यह मालूम हो, जैसे किसी बिछुड़े हुए मित्र से पढ़नेवाला बातें कर रहा हो। यह भी उनका कहना है कि जीवनचरित-लेखक चरित-नायक का समकालीन हो तो और अच्छा है। वे कहते थे कि जीवन-चरित में इतनी तारीफ़ न हो कि चरित-नायक देवता मालूम हो।

सुविख्यात निबन्ध-लेखक बेकन ने इतिहास के तीन विभाग किये हैं—(१) वृत्तान्त, (२) जीवन-चरित और (३) कथा। सन् १७०६ तक जीवन-चरित इतिहास ही समझा जाता था। १८ वीं सदी में जीवन-चरित को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। यह भी एक सिद्धान्त है कि किसी चीज़ की माँग पैदा कर दो और उसकी पूर्ति हो जायगी। इँग्लेंड में अब जीवन-चरितों की माँग बढ़ी और उसका यह नतीजा हुआ कि अनेक जीवन-चरित लिखनेवाले पैदा हो गये। बाज़े बाज़े तो इसी इन्तिज़ार में रहते थे कि कोई बड़ा आदमी मरे और उसके क़ब्र में पहुँचते ही जीवन-चरित लिखना प्रारम्भ कर दिया जाय। मरनेवाले के सम्बन्ध में थोड़ा-बहुत तो जानना आवश्यक है, परन्तु वहाँ तो ख़याल यह था कि जो जीवन-चरित पहले छपेगा उसी से कुछ टके मिल जायँगे। प्रायः बहुत-सी बातें मृतक के सम्बन्ध की ग़लत प्रकाशित होने लगीं और लोगों ने इस जल्दी की कड़ी आलोचनायें करनी शुरू कर दीं।

डेनियल डिफ़ो की भी आदत थी कि किसी के मरते ही वह उसका जीवन-चरित लिखना प्रारम्भ कर देता था। मसाला बिना इकट्ठा किये ही वह लिखने लगता था और जो कुछ नहीं मालूम होता था उसकी कमी अनुमान से कर लेता था। उसी के बारे में एडीसन ने कहा है कि उसके लिखे हुए जीवन-चरितों में कृत्रिम बातों की अधिकता है और फिर उसके उपन्यासों में जीवन-चरितों को स्थान मिला है।

अब उन जीवन-चरितों के लिखे जाने की प्रथा बढ़ी जिनके चरित-नायक कहीं के शासक होते थे या जो राजनीतिज्ञ होते थे। सन् १७४४ के पहले किसी विद्वान् का जीवन-चरित नहीं लिखा गया था। किसी साहित्य-सेवी का जीवन-चरित लिखने में लेखक क्षमा माँगता था। अब वह समय आ गया था जब जीवन-चरित का स्थान अँगरेज़ी-भाषा के साहित्य में निश्चित हो गया था। लोग जीवन-चरित लिखते-पढ़ते थे और उनकी समालोचनायें होती थीं। अब यह ढंग था कि चरित-नायक की लम्बी-चौड़ी प्रशंसा नहीं होती थी, किन्तु उसके अवगुणों की कड़ी आलोचना की जाती थी।

इँग्लेंड के जीवन-चरित-लेखकों के सामने यह बड़ा प्रश्न था कि क्या साधारण व्यक्तियों का भी जीवन-चरित लिखना चाहिए। संसार का रंग बदल चुका था और साधारण और असाधारण का प्रश्न पुराना मालूम होने लगा था। लोगों ने स्वीकार कर लिया था कि प्रत्येक मनुष्य की आत्मा में ईश्वरांश है, इस वजह से यही लेखकों ने निश्चित किया कि किसी का भी जीवन-चरित लिखना अनुचित नहीं है। यह तो सब था, परन्तु सन् १७२१ तक 'जीवन-चरित' का अर्थ वह लेख था जिसमें बड़े आदमियों का जीवन-चरित हो। यद्यपि 'बड़ा' शब्द परिमित नहीं किया गया था, तथापि उस समय इसके अर्थ में वे व्यक्ति समझे जाते थे जिन्होंने गिरजे या राज्य के महत्त्वपूर्ण काम में भाग लिया हो। जान्सन ने सन् १७४४ में अपने मित्र सैवेज का जीवन-चरित लिखकर बड़े और छोटे का झगड़ा मिटा दिया। यह जीवन-चरित आज भी प्रशंसा की दृष्टि से देखा जाता है।

१९वीं शताब्दी में जीवन-चरित लिखने का यह ढङ्ग हुआ कि इतिहास की पूर्ण सहायता ली जाती थी, चरित-नायक के सम्बन्ध की सब बातें जानने की पूरी कोशिश की जाती थी, जिससे उसके चरित्र पर पूर्ण प्रकाश पड़ सके। इस प्रथा पर भी आलोचनायें हुईं जब यह हद से ज़्यादा बढ़ने लगी, क्योंकि किसी-किसी में जो इतिहास की दृष्टि से देखा जा सकता था, केवल वही होता था और उसका कहीं भी पता नहीं होता था जिसके देखने से चरित-नायक का पता

चलता। अब स्मरण-लेख और पत्रों से विषय लेकर जीवन-चरितों में सम्मिलित किये जाने लगे। अभी तक तो केवल इँग्लेंडवाले अपने ही देशवालों के जीवन-चरित लिखते थे, परन्तु कार्लायल ने जो जर्मनी के सुप्रसिद्ध गेटे के बड़े प्रशंसक थे, वहाँ के साहित्य पर निबन्ध लिखे थे, और तभी से इँग्लेंडवालों को विदेशी चरित-नायकों के जीवन-चरित लिखने का मसाला मिल गया। कार्लायल ने जान स्टर्लिङ्ग की जीवनी लिखी थी, और वह एक नमूना हो गई है। कुछ वर्षों पहले कार्लायल ने लिखा था कि संसार में कोई भी ऐसा महाकाव्य नहीं है जो जीवन-चरित पर आधारित न हो, और कोई भी जीवन-चरित ऐसा नहीं है, यदि ठीक तौर से लिखा गया है, जो अपने ढंग का महाकाव्य न हो—चाहे उसमें पद्य-रचना हो या न हो।

अब यह प्रश्न उठा कि जीवन-चरितों के लिखने का क्या ढंग हो। बहुत लोग चरित-नायक के वर्षों के रास्ते पर चलते हैं और हर चीज़ का उसी समय वर्णन करते हैं जब वह हुई है। बहुत लोग चरित्र, स्वभाव, निजी और घरेलू जीवन, व्याख्यान, उसकी पुस्तकें, बीमारी और मृत्यु इत्यादि पर एक एक परिच्छेद लिखते हैं। विंस्टन स्पेंसर चर्चिल का कहना है कि राजनैतिक जीवन-चरित लिखना बहुत मुश्किल है। किसी-किसी का यह कहना है कि चरितनायक के पूर्वजों के सम्बन्ध में जितना कम लिखा हो, उतना अच्छा है। कुछ लोगों का यह मत है कि पूर्वजों के विषय में लिखने से इतिहास को जीवन-चरितों से बड़ी सहायता मिलती है। दूसरा मत यह है कि ऐसी बातें सङ्कलन में लिखी होनी चाहिए। बहुत-से ढंग बतलाये गये हैं, परन्तु प्रत्येक सुलेखक अपने पथ का पथिक होता है, जैसी फ़ारसी में एक कहावत है—"हर कि आमद इमारते नौ साख़्त।" एस्कुइथ (लार्ड आफ़ आक्सफ़र्ड) ने एक दफ़ा जीवन-चरित के विषय में कहा था कि उन्हें यह नहीं पसन्द है कि कोई योग्य पुरुष दो-तीन जिल्दों में 'फैला' दिया जाय। वे यह क्या जानते थे कि वे स्वयं दो मोटी-मोटी जिल्दों में फैलाये जायँगे? ख़ैर, यह तो अपनी अपनी राय है कि जीवन-चरित छोटा हो या बड़ा हो, पर यह अब विवाद-रहित है कि जीवन-चरित साहित्य का एक मुख्य अङ्ग है। इस लेख को समाप्त करने के पहले मैं अपने देश के विद्वानों से यह आग्रह-पूर्वक निवेदन किया चाहता हूँ कि वे इस कला की ओर कृपया ध्यान दें।*

* मैं कृतज्ञतापूर्वक यह स्वीकार करता हूँ कि मुझे वाल्डो० एच० डन की पुस्तक 'इंग्लिशबायग्राफी' से इस लेख के लिखने में बड़ी सहायता मिली है।

व्यथिता अलिनी

लेखिका, श्रीमती रत्नकुमारी देवी काव्यतीर्थ

सन्ध्या-बाला जब नभ में,
तारक दल-कुसुम बिछाती।
निज नायक शशि की छवि पर,
श्यामा निशि बलि बलि जाती॥

सर की नीलम शय्या पर,
जब कुमुद-वधू मुसकाती।
अति तृषित चकोरकिशोरी,
पी ज्योत्स्ना-मधु इठलाती॥

जब लतिकायें हरियाली,
पहने उजियाली सारी।
नर्तन करतीं झुक झुककर,
ले हर्ष हिलोरें भारी॥

तब इन्दीवर के उर में,
बन्दी अलिनी सुकुमारी।
दुख के नीलिम पिंजर में,
है घन श्यामल अँधियारी॥

स्वर्णिम प्रभात-बेला का,
वह हर्ष-गीत था रोता।
पर मौन रुदन वह मन का,
मन में अपनापन खोता॥

क्यों व्यथिता अलिनी नीरव?
क्या प्राप्त न कोई ज्ञानी,
जो सहृदयता से सुन ले,
कष्टों की करुण-कहानी?

दक्षिण-अमरीका के प्रवासी भारतीय

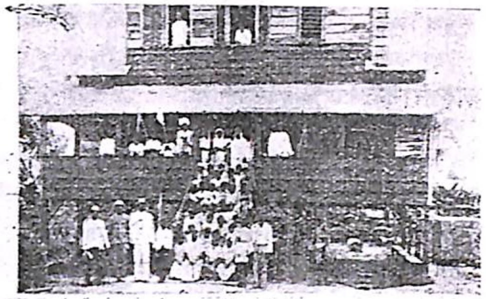
लेखक, प्रोफ़ेसर भास्करानन्द

जिन लोगों ने अन्तर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक प्रगति का गम्भीरता-पूर्वक अध्ययन किया है उनसे यह बात छिपी नहीं है कि किसी देश के संस्कृति-प्रस्तार का उसकी राजनैतिक स्थिति से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जो देश अपने भुज-बल के द्वारा संसार के ऊपर अपने विचारों को आरोपित करने की क्षमता रखता है उसके जीवन के किसी भी अंग की कोई उपेक्षा नहीं कर सकता। योरप की संस्कृति चाहे भौतिक एवं अनाध्यात्मिक भले ही हो, पर अपनी पाशविक शक्ति के कारण ही वह आज समस्त विश्व का विजेता बना हुआ है और सभी देश उसके पदचिह्नों का अनुसरण करने में ही अपना कल्याण समझते हैं। राजनैतिक उत्थान के साथ उसकी संस्कृति स्वयं बढ़ रही है। सभ्य संसार का क्या आज कोई ऐसा टुकड़ा है जहाँ उसकी तूती नहीं बोल रही है?

भारत की वर्तमान स्थिति चिन्ताजनक ही नहीं, बरन हृदय-विदारक है। जहाँ सभी देशों के प्रतिनिधि स्वतन्त्रता के मद में झूमते हुए अपने देश की मान-मर्यादा अक्षुण्ण रखने के लिए संसार के अन्य भागों में कटिबद्ध हैं, वहाँ सारे जगत् के ⅙वें हिस्से के जन-समुदाय को आश्रय देने-वाले विशाल भारत का कोई स्थान नहीं। इसके सम्बन्ध में जो विदेशी पत्रों में आये दिन समाचार प्रकाशित होते रहते हैं वे किसी भी अंश में उसकी मर्यादा को बढ़ानेवाले हों, यह आशा करना व्यर्थ है। यदि भारतवर्ष की राज-नैतिक परिस्थिति आज से कुछ भिन्न होती तो उसकी सभ्यता, संस्कृति, आदर्श और गौरव की ओर संसार हठात् आकर्षित होता। पर इस अवस्था में भी जो अपनी मातृ-भूमि की मर्यादा को बढ़ाने के लिए विदेशों में प्रयत्नशील हैं उनके प्रति कृतज्ञता के जो भी शब्द प्रकाशित किये जायँ, थोड़े हैं।

इस समय विदेशों में भारत के विषय में जो कुछ भी सांस्कृतिक कार्य हो रहा है उसमें त्यागी धर्मोपदेशकों का एक विशेष भाग है। कितने ही वर्षों से उन्होंने अपने सामने अशोक के बौद्ध-भिक्षुओं का आदर्श रख भारतीय धर्म और संस्कृति का प्रचार किया है। यदि यह स्तुत्य कार्य किसी विदेशी संगठन की ओर से होता तो आज वह बहुत प्रकाश में आया होता, किन्तु भारतीयों की विज्ञप्ति के प्रति स्वाभाविक निरपेक्ष प्रवृत्ति होने के कारण स्वदेश-वासियों को उसका पर्याप्त परिचय नहीं मिलता। उत्तरी अमेरिका में तो स्वनामधन्य स्वामी विवेकानन्द जी की प्रतिभा के कारण भारतीय अध्यात्मवाद का श्रीगणेश हो चुका था। आज भी वेदान्त-मिशन की ओर से किसी न किसी रूप में कार्य जारी है। पर दक्षिणी अमेरिका तथा वेस्ट इंडीज़ के द्वीपों में आर्य-धर्म की कोई चर्चा नहीं थी, यदि थी भी तो नगण्य। यहाँ भारत और उसकी प्राचीन सभ्यता के विषय में लोगों की धारणा उपहासास्पद रही है। उनके ऐसे भ्रमात्मक विचार का एक कारण भी है। पचासों साल हुए भारत से लोग लाखों की संख्या में कुली-प्रथा के अनुसार लाकर वहाँ बसाये गये। वे निम्नश्रेणी के लोग थे। उन्हें स्वभावतः अपने देश और धर्म की ऊँची बातें नहीं ज्ञात थीं। इतने वर्षों के व्यतीत हो जाने पर भी वहाँ उनकी कोई संतोषजनक उन्नति नहीं हुई है। अतः उनकी चाल-ढाल और बर्ताव को देखकर उधर के रहनेवाले गोरों के हृदय में भारत के प्रति यदि घृणा के भाव पैदा हो गये हों तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है? हम समस्त जन-समुदाय से भारत की कला और साहित्य की जानकारी की आशा नहीं कर सकते हैं। साधारण जन-समुदाय तो किसी संस्कृतिविशेष का परिचय उसमें पले हुए लोगों के नित्य-क्रिया-कलाप से ही करना चाहता है।

भारतीयों के लिए यह बड़े दुःख और लज्जा की बात है कि उन्होंने अपने देश से बाहर गये हुए अपने बन्धुओं

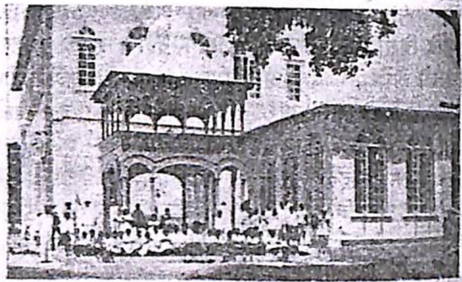


[श्रीमद्दयानन्द अनाथालय पैरामारिबो दक्षिण अमरीका ।]

की सुध इतने दिनों तक नहीं ली। कांग्रेस या अन्य किसी राष्ट्रीय संस्था ने भी इधर विशेष रूप से ध्यान नहीं दिया। इसमें सन्देह नहीं कि कांग्रेस को अभी घरेलू समस्याओं से ही अवकाश नहीं है, पर किसी दूसरी संस्था के ध्यान न देने की बात उचित नहीं प्रतीत होती। प्रवासी भारतीयों में दक्षिणी अमरीका तथा वेस्ट इंडीज़ के द्वीपों में रहनेवालों के प्रति हमने सबसे अधिक उपेक्षा दिखाई है। यही कारण है कि इन स्थानों में बसनेवाले भारतीय अपनी भाषा, संस्कृति और धर्म से सबसे अधिक विमुख हैं। ट्रिनिडाड और डेमरेरा में ऐसे हज़ारों प्रवासी भारतीय नवयुवक हैं, जो हिन्दी न समझ सकते हैं और न बोल सकते हैं। धर्म की तो कोई बात ही नहीं। वहाँ ईसाइयों का बोलबाला है। सरकार की ओर से उन्हें लाखों रुपयों की वार्षिक सहायता प्राप्त है। स्कूल, कालेज, अस्पताल और गिरजाघर के रूप में उनकी कितनी ही संस्थायें हैं, जिनमें नौकरी करने के लिए ईसाई होना आवश्यक है। इनके प्रलोभनों से बचकर जो प्रवासी अब भी अपने हिन्दू-धर्म का उचित अथवा विकृत रूप में पालन कर रहे हैं वे हमारी प्रशंसा के पात्र हैं। यदि वस्तुतः स्थिति का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जाय तो स्पष्टतः पता लग जायगा कि यहाँ ईसाइयत के प्रचार के लिए अत्यधिक सुविधायें विद्यमान हैं।

ईसाइयों के प्रभाव में आकर कितने हिन्दू स्वधर्म से च्युत हो चुके हैं, इसके कहने की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं है। धर्म-परिवर्तन के साथ-साथ हमारे प्रवासी भारतीयों में भारत की प्राचीन संस्कृति और उसके राजनैतिक मनोभाव के प्रति उदासीनता उत्पन्न हो जाती है। उनकी दैनिक क्रिया पश्चिम के मान-दण्ड के अनुकूल संचालित होती है। उनमें अपने रक्त का स्वाभाविक अभिमान और उसे शुद्ध रखने का भाव नहीं रह जाता। इस समय ट्रिनिडाड, ब्रिटिश गायना और डच गायना में ऐसे भारतीय स्त्री-पुरुषों की संख्या कम नहीं है जिनका सम्बन्ध निग्रो-जाति के लोगों से हो गया है। सेंट लूशिया और ग्रेनेडा आदि थोड़े-से ऐसे द्वीप-पुञ्ज हैं, जहाँ भारतीयों का नामो-निशान भी नहीं रह गया है। हज़ार दो हज़ार की संख्या में वे पहले वहाँ बसे। पर निग्रो-जाति के सम्पर्क में आने के कारण आज एक भी शुद्ध रक्त के भारतीय का वहाँ मिलना कठिन हो गया है। सच बात तो यह है कि यदि बचे हुए प्रवासी भारतीयों के हृदय में अपने देश की सभ्यता के प्रति अनुराग न उत्पन्न किया जायगा तो कुछ समय के पश्चात् वे भी मिश्रित जाति का रूप धारण कर लेंगे। तब केवल एक कहानी ही रह जायगी कि उन्नीसवीं शताब्दी के द्वितीय भाग में कई लाख भारतीय इधर के उपनिवेशों में कुली के रूप में आये थे और धीरे-धीरे दूसरी जातियों में घुल-मिल गये।

यह प्रसन्नता की बात है कि कुछ वर्षों से आर्यसमाज का ध्यान इस ओर गया है। भविष्य में इसका फल कैसा होगा, यह समय के अधीन है। अब कुछ आशायें बँधने लगी हैं। आर्य-धर्म और आर्य-संस्कृति के फैलाने के उद्देश से दक्षिण-अमरीका में इस समय विद्वद्वर प्रोफ़ेसर सत्याचरण शास्त्री एम० ए० पूर्ण त्याग और निःस्पृ-



[आर्य्यसमाज पैरामारिबो का पिछला भाग, मध्य में यज्ञशाला ।]

हता के साथ काम कर रहे हैं। इनके प्रभाव से यहाँ के प्रवासी भारतीयों में अभूतपूर्व जागृति हुई है। भारत की साहित्य-कला, दर्शन, धर्म और सामयिक अवस्था पर आपके यहाँ दर्जनों व्याख्यान हुए हैं, जिनसे बहुत-से लोगों को भारत के विषय में अपनी भ्रमात्मक धारणा बदलनी पड़ी है।

प्रोफ़ेसर सत्याचरण जी ने अपने प्रचार-कार्य के सिलसिले में चार बातों पर विशेष ध्यान दिया है—

(१) वैदिक सम्पत्ति का यथार्थ निदर्शन।

(२) हिन्दी-प्रचार।

(३) वर्तमान भारत की समस्याओं का सच्चा स्वरूप। तथा

(४) प्रवासी भारतीयों का अपने पूर्वजों की वसुन्धरा से घनिष्ठ सम्बन्ध। वैदिकधर्म और संस्कृति के निरूपण में आपने यथासम्भव दूसरे देशों की संस्कृति के प्रति भी आदर दिखलाया है। दूसरे धर्म का खण्डन न कर अपने विषय की महत्ता को दिखलाने की चेष्टा की है। इस उदार नीति के कारण सभी धर्मों के लोग प्रेमपूर्वक आपके व्याख्यान को सुनने आते रहे। डच-गायना के प्रमुख-पत्र 'सुरीनाम' ने २३ जुलाई सन् १९३५ की संख्या में आपको 'एकता और सहिष्णुता का पैग़म्बर' लिखा है।

प्रोफ़ेसर जी ने पूरा एक वर्ष ट्रिनडाड में प्रचार किया है। वहाँ के 'इण्डियन ओपीनियन' पत्र के सम्पादक ने जुलाई सन् १९३६ की संख्या में लिखा है—

समय समय पर भारतीय संस्कृति पर दिये हुए उनके विद्वत्तापूर्ण प्रवचन केवल उच्च तथा सांस्कृतिक पारदर्शिता के ही द्योतक नहीं थे, वरन उन्होंने हमारे नवयुवकों के हृदय में अपनी मातृभूमि (भारत) के लिए असीम अनुराग और उसकी दिव्य संस्कृति के लिए श्रद्धा उत्पन्न कर दी है।



[डच गायना के प्रवासी भारतीयों के बीच में प्रोफ़ेसर सत्याचरण शास्त्री छड़ी लिये बैठे हैं।]

प्रोफ़ेसर सत्याचरण जी का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य हिन्दी-प्रचार रहा है। प्रवासी भारतीय विदेशी वातावरण में पड़कर अपनी भाषा को प्रायः भूल ही चुके हैं। शिक्षित लोग हिन्दी बोलने में लज्जा का अनुभव करते हैं। उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं है कि संसार की भाषाओं में हिन्दी का एक विशेष स्थान है। हिन्दी की इस उपेक्षा को देखकर प्रोफ़ेसर जी ने क्लबों आदि को छोड़कर भारतीयों के बीच व्याख्यान देते हुए अँगरेज़ी में बोलने के पश्चात् हिन्दी में भी थोड़े समय के लिए बोलने का नियम बना लिया था। भारत से आये हुए कुछ बचे हुए लोग इसका ख़ूब स्वागत करते थे और नवयुवकों में हिन्दी सीखने का उत्साह पैदा होता था। कितने ही नवयुवक आज अँगरेज़ी के माध्यम-द्वारा हिन्दी सीख रहे हैं और उनका उत्साह उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है।

वर्तमान भारत की सामाजिक और राजनैतिक परिस्थिति के सम्बन्ध में विदेशों में बड़ी भ्रान्त धारणा फैली हुई है। आये दिन पढ़े-लिखे लोगों के भारत के विषय में ऊटपटाँग प्रश्नों को सुनकर कभी कभी दङ्ग रह जाना पड़ता है। यदि वर्षों तक एक महान् संगठित प्रोपेगैण्डा-द्वारा इन भावों का निराकरण किया जाय तो आशातीत सफलता मिलेगी।

प्रोफ़ेसर साहब ने कई व्याख्यानमालायें इसलिए दी हैं कि लोगों को भारत का यथार्थ स्वरूप ज्ञात हो। मिशनरी स्कूलों में भारतीय बच्चों के मस्तिष्क में ये भाव ठूँस-ठूँस कर भरे जाते हैं कि भारत की सभ्यता निम्नकोटि की है। इसी वायुमण्डल में पले हुए बालक स्वभावतः भारत के प्रति अच्छा भाव नहीं रखते। किन्तु इन व्याख्यानों के प्रभाव से उनमें अच्छा जागरण हुआ है और नवयुवक भारत से पुस्तकें मँगाकर उसके सम्बन्ध में ज्ञान-वृद्धि कर रहे हैं। ट्रिनिडाड में दो-तीन स्थानों पर ऐसे पुस्तकालयों के उद्घाटन का आयोजन हो रहा है जिनमें भारतीय साहित्य और राजनीति आदि पर पुस्तकें हों।

दक्षिण-अमरीका और वेस्टइण्डीज़ में जिन जिन भागों में प्रोफ़ेसर साहब को जाने का अवसर मिला है उनका यथोचित सम्मान हुआ है। डच-गायना के गवर्नर महोदय ने उनके प्रति अपना सम्मान प्रकट किया और उन्हें अपने उपनिवेश में प्रचार करने की सब सुविधायें प्रदान कीं। इसका इन्होंने लाभ उठाकर वहाँ अच्छा प्रचार किया। उनके परिश्रम के फलस्वरूप कई संस्थाओं का इधर निर्माण हो गया है, जिनसे प्रवासी भारतीय लाभ उठा रहे हैं। शगुआनास (ट्रिनिडाड) आर्यसमाज-मंदिर, आर्यसमाज तथा श्रीमद्दयानन्द-अनाथालय पैरामारिबो (डच-गायना) आदि के बनवाने में उनका पूरा सहयोग रहा है। यदि इन संस्थाओं की अवस्था सुव्यवस्थित रही तो निःसन्देह ये अटलांटिक महासागर के तट पर भारतीय संस्कृति के प्रकाश-स्तम्भ का कार्य करते रहेंगे। तथापि यह आवश्यक है कि भारतीयों का ध्यान दक्षिण-अमरीका के अपने प्रवासी भाइयों की ओर होना समुचित है। यह उनका एक महत्त्व का कर्तव्य है।

इन्द्रप्रस्थ के खँडहरों से

लेखक, श्रीयुत कुँवर मोहनसिंह सेंगर

कितने स्वर्ण-विहान, देख लीं कितनी मधुमय रातें ?
मीठी-कड़ुवी सखा सहीं, कितनी जीवन की घातें ?
कितनी धूप और छाया तुमने प्रभुता की देखी ?
कितने अंधड़ और आँधियाँ हैं विनाश की पेखीं ?
कितनी बार हँसे हो जीवन में, कब कब हो रोये ?
कितनी बार गये हो रक्तिम शोणित-नद से धोये ?
सुखद-शांति की बैठ गोद में कब कब हो हरषाये ?
नर-मुंडों की माल पहनकर कब कब तुम सकुचाये ?
कब गूँजे हो जीवन का संगीत मधुर सुन सुनकर ?
मृत्यु-नटी का नाच देख, रोये हो कब सिर धुनकर ?
कब थिरके हो यौवन औ' वैभव के आलिङ्गन पर ?
कब सिसके हो रक्त-कीच में लोट रहे जीवन पर ?
कब कब रूप-सुरा पी-पीकर, रक्त-घूँट भी पी हैं ?
कब उन्माद-अजीर्ण मिटाने, लोह-गोलियाँ ली हैं ?
कब कब तव सौभाग्य-सदन में रजत-स्वर्ण हैं बरसे ?
कब सार्वभौम सत्ताधारी ! दाने दाने को तरसे ?
कितनी ग्रीष्म ग़रीबी में, जाड़े धन-मद में बीते ?
कितने तुम उत्थान-पतन हो सखा देखकर जीते ?

× × × ×

रंग-रँगीले वे दिन, वे सोने की घड़ियाँ, भूले ?
किस आशा से मौन खड़े हो, नत-शिर यमुना-कूले ?

रूप का मोह

लेखिका, श्रीमती उषादेवी मित्रा

(१)

आश्विन के उत्सव-सी सन्ध्या शुचि-शुभ्र होकर गिरि-गुहा से उतर रही थी—हाथों में नींद-कुसुम की माला लिये। पृथ्वी-प्राङ्गण में व्यस्तता थी—एक तन्द्रा-छन्न उत्सुकता। ग्राम्य-कुटीर के द्वार पर अवगुण्ठिता वधू शायद दीप जलाती हो, किन्तु शहर के जनाकीर्ण पथ विद्युत्-शिखा से उज्ज्वल हो रहे थे।

एक मूल्यवान् कार भीड़ को चीरता हुआ बाज़ार के भीतर से बढ़ा। आरोही एक सुन्दर युवक था। नाम सुनील था। वह कार में बैठा अपने आप मुसकरा रहा था। न-जाने कौन-सी भावना, कौन-सी ख़ुशी ने उसके मुख की रेखाओं पर हँसी की नवोढ़ा को चैतन्य कर दिया था।

दुःख, अभाव ? नहीं-नहीं, सुख-ऐश्वर्य के आधिक्य में वह तो दुःख-व्यथा की जराग्रस्त बूढ़ी की कल्पना तक नहीं कर पाता था, और न कभी इसकी ज़रूरत ही हुई। और होती कैसे ? पिता का एकमात्र पुत्र, विलायत-पास इञ्जीनियर, उस पर अपार धन का स्वामी, राजपुत्र-सी आकृति, अनिन्दनीय स्वास्थ्य।

एक जगह रन्ध्रहीन भीड़ थी। मोटर को रुकते देखकर सुनील विरक्त हो उठा। उसने भीड़ होने का कारण पूछा। ड्राइवर उतर गया। कुछ देर के बाद लौटकर उसने कहा—"लोग किसी को पीट रहे हैं। शायद वह भिखारी या चोर है। मुझे तो सन्देह है। कदाचित् वह मर न गया हो।"

सुनील ने घड़ी की ओर देखा छः बज रहे थे। उसने कहा—"चलाओ मोटर।" कहाँ कौन दरिद्र मरा या जिया, इससे उसका क्या सम्बन्ध ? उसे तो ठीक छः बजे पार्टी में जाना था। ऊँचे समाज में रहता है, मस्तिष्क शिक्षा-ज्ञान का भाण्डार बन चुका है। उस शिक्षा का समाज का देन भी तो उसे देना है। दरिद्र की बात समझे वही अशिक्षित और दरिद्र। वह तो एक पढ़ा-लिखा शिक्षित व्यक्ति है।

परन्तु मोटर अधिक दूर बढ़ नहीं सका। वह मोटर से उतर पड़ा। उसकी आज्ञा की यह अवहेलना ! सुनील इसे कैसे सह सकता था ? फिर वह भी तो आदमी ही ठहरा। देर हो रही थी, समय निकला जा रहा था।

वह आगे बढ़ा। सुन्दर नेत्र दीप्त हो रहे थे। दया से ? नहीं-नहीं। उन आयत नेत्रों में कदाचित् विद्वत्ता की गम्भीर छाया पड़ी हो, सभ्यता का मार्जित रूप हो, धन-शिक्षा का गर्व हो, प्रेयसी के लिए प्यार तथा युवती के लिए आदर हो, और और शायद पत्नी के लिए प्रेम भी रहा हो, किन्तु दरिद्र के लिए दया, सहानुभूति ! नहीं, यह सब कुछ नहीं। कदाचित् उसके लिए रहा हो रूखा तिरस्कार या शायद शायद कौन जाने।

छड़ी लिये सुनील वहाँ तक पहुँच गया। किन्तु जिस समय उसे एक भयानक बात करनी थी, ठीक उसी समय वह विवर्ण हो गया। ऐसी कौन-सी वस्तु से उसका सामना हो गया ? उससे उसकी कोई जान-पहचान भी तो नहीं थी। एक दस-बारह वर्ष का बालक निर्जीव-सा ज़मीन पर पड़ा था और कई व्यक्ति उसे मार रहे थे। पल भर तक सुनील अवसन्न-सा खड़ा रहा, परन्तु दूसरे ही पल उसने ललकार कर कहा—"क्या कर रहे हो जी" ?

सुनील को देखकर लोग हटने लगे। मारनेवालों ने हाथ रोक लिये। "यह चोर है—मालिक।" हलवाई बोले।

"यह ज़रा-सा लड़का ?" आश्चर्य के साथ सुनील उसकी ओर बढ़ा। घृणा से उसके नेत्र संकुचित हो रहे थे। उसने अपने मन में कहा—तभी तो दुनिया में ऐसी अवनति है। ज़रा-ज़रा-से लड़के चोरी करें, डाका डालें। न शिक्षा है, न शासन है। लड़का चोरी करके ले जायगा

श्रौर मा-बाप उसे पुचकारेंगे, प्रशंसा करेंगे श्रौर उसका साहस बढ़ायेंगे। इस तरह विचारता हुआ वह उसके निकट जाकर खड़ा हो गया।

सुनील अवाक् था। इतनी मार खाने पर भी वह लड़का उठ बैठा था और दोनों हाथों में कुछ दबाये था। वह एक चीथड़ा पहने था, ठंड से काँप रहा था।

सुनील का स्वर कोमलता से मुर्झा-सा गया। उसने कहा—"बच्चे, चोरी क्यों की ?"

वह चुप रहा।

"बोलो, बोलो। डरो मत"।

"दो दिन से मा भूखी हैं, जीजी और मैं तो साग-पात खा लेते हैं।"

"और तेरी मा चोरी की मिठाई खाती है, पाजी कहीं का।"

हलवाई गरज उठा—"मालिक, भरे थालों से यह लेकर भागा। सेठ जी की बारात के लिए बनाई थी। सारी मिठाई ख़राब गई। अब वहाँ क्या दूँगा ?"

अवहेलना से सुनील ने एक नोट निकाल कर हलवाई को दे दिया। उसने लड़के से कहा—"डरो मत। हाँ, तो घर में कौन-कौन हैं ?"

"मा, जीजी और मैं। बाबू जी जब से मरे तब से भर पेट खाना नहीं मिलता है।"

"कहाँ रहते हो ?"

"उस तरफ़। पहले मा मजूरी करके कुछ ले आती थी; अब तो छः महीने से बीमार पड़ी हैं।"

सुनील ने पहले यह कहना चाहा कि चोरी करना अपराध है और आगे ऐसा कभी न करना। किन्तु वह कुछ कह न सका, और उससे फिर पूछा—"हाथ में क्या लिये हो ?"

लड़के ने मुट्ठी खोल दी। दली-पिसी हुई कुछ मिठाई थी।

सुनील—स्तब्ध-विस्मय से उसे देखता रहा। उसने कहा—"अच्छा, चलो तुम्हें घर पहुँचा दूँ।"

झोपड़े के सामने जाकर मोटर रुक गया। बालक के साथ सुनील भी उतर पड़ा। घर के भीतर घना अन्धकार था। दुर्गन्ध से वायु तक भारी हो रही थी। उसे ऐसा जान पड़ा, मानो उस अन्धकार की गोद से हज़ारों प्रेत बाँह बढ़ाये उसे निगलने को दौड़े चले आ रहे हैं। जल्दी से सुनील ने टार्च जलाया। वह सिहर उठा। जीवन में ऐसे विस्मय का सामना करना पड़ेगा, इस बात को सुनील सोच तक नहीं सकता था। टूटी चटाई पर नर-कंकाल-सी एक अर्द्ध-नग्न वृद्धा पड़ी थी और एक ओर इन्द्राणी-सी सुन्दरी लड़की बैठी थी। तीव्र प्रकाश में युवती ने हाथ से आँखें ढाँक ली थीं, किन्तु पल भर में सुनील ने जो कुछ देख लिया, जीवन के आरम्भ में उतना ही उसके लिए बहुत था।

युवती ने घूँघट में अपने को छिपा लिया। एक नोट उस लड़के की ओर फेंक कर सुनील चल पड़ा।

उसका जीवन स्वप्निल था—समुद्र-फेन-सा उभरता, झरने के विरामहीन संगीत से ओत-प्रोत रहता था। प्रातः से रात्रि तक आमोद-प्रमोद, कौतुक-गीत में सुनील का जीवन व्यस्त रहता। काम-काज वह कुछ नहीं करता था। ज़मींदारी की देख-भाल नायब-गुमाश्ते करते। इन्जीनियरी की डिग्री को कभी सन्दूक़ खोलकर देख लेता। बस, इतना यथेष्ट था।

उस दिन चाय के टेबल से सहसा उसने अपना हाथ खींच लिया। मिठाई के प्लेट ने एक सोई-सी स्मृति को मानो जगा दिया। उसे स्मरण हो आया कि कई महीने पहले एक दरिद्र बालक इसी मिठाई के लिए किस प्रकार पिटा था।

वह उठा और मोटर पर जाकर बैठ गया। उसने न कुछ सोचा, न कुछ विचार किया। मोटर उस झोपड़े के सामने जाकर खड़ा हो गया। सुनील अधीर गति से उतर पड़ा। कई बालक एक रोटी लिये झगड़ रहे थे। प्रेत की नाईं कई स्त्री-पुरुष मिट्टी के बर्तनों में सत्तू साने खाने में जुटे थे।

दुर्ग्रह की भाँति सुनील भीतर जाकर खड़ा हो गया। उसका जी न-जाने कैसा कर उठा। उस दरिद्र के सामने हाथ की हीरे की अँगूठी, घड़ी-चेन, सूट-बूट, मानो लजाकर सिमट-से रहे। जो कुछ कहना चाहता था उसे वह भूल गया। स्त्रियों ने ज़रा सिर ढाँका और मर्द ने ग्रास को मुँह में भर लिया, जैसे सत्तू को उसके खुले मुँह से कोई दानव छीनने आया हो।

"पुलिस !" बालिका चिल्ला उठी—"पुलिस !

पुलिस !" बस, झोपड़े में वज्राघात-सा हो गया। सब-के-सब स्थाणुवत् अचल हो रहे। स्त्रियाँ चीख़ पड़ीं। वे बोलीं—"मालिक, हम लोग निरपराध हैं।"

हँसने जाकर सुनील रक्तहीन हो गया। यह कैसी दरिद्रता, कैसी दास-वृत्ति, दीनता का नग्न रूप है ! जिस मनोवृत्ति, अत्याचार में पिसकर, नित्य अभाव के साथ द्वन्द्व करते-करते मनुष्य पशु के समान बन जाते हैं, इस बात का विचार करते हुए सुनील बार-बार सिहरने लगा।

"मालिक !"

"अरे भाई, डरते क्यों हो ? मैं भी तुम्हारी तरह एक आदमी हूँ, पुलिस-दारोग़ा कुछ नहीं हूँ। केवल उस लड़के की खोज में आया हूँ।"

"कौन लड़का ?" साहस से एक ने पूछा।

"कई महीना पहले यहाँ एक बूढ़ी और वह थी। और लड़का दस-बारह वर्ष का रहा होगा।"

आपस में फुस-फुसाकर उनमें से एक स्त्री बोली—"अरे ! कान्हा की माई को पूछते हैं।"

"उनका ? उनका हाल क्या बतावें मालिक। मा-बेटे तो भूख से मर गये और बिटिया रुक्मिनीबाई न-जाने कहाँ चली गई।"

"क्या उनके आत्मीय-कुटुम्बी यहाँ कोई नहीं हैं ?"

"नहीं जानते मालिक। साल भर वे लोग यहाँ रहे। हम लोगों से बोलते-चालते नहीं थे।"

सुनील चुपचाप लौट पड़ा, और बाहर आकर मोटर में बैठ गया। उसके मन में न-जाने कैसी व्यथा, खेद और अनुताप-अभिशाप मड़राने-सा लगा।

यदि वह उस दरिद्र परिवार पर ज़रा-सी दया कर देता तो शायद इस तरह उसका विनाश न होता। वह बार-बार मन को समझाता, कहता—मैं इसके लिए दायी नहीं हूँ। दुनिया में ऐसे कितने अभागे होंगे जो अन्न-वस्त्र के बिना मर रहे होंगे। मैं भला किस किसकी ख़बर लेता फिरूँ ? दरिद्र तो ऐसे न मालूम कितने होंगे। अभी-अभी जिस परिवार को मैंने देखा है वह भी दरिद्र है। फिर वह क्यों नहीं मर जाता ? किन्तु...।

इस प्रकार उत्तर-प्रत्युत्तर देते-देते वह अपने-आप थक जाता। फिर कहने लगता—यदि बूढ़ी मर रही थी और लड़का छोटा था तो रुक्मिनी काम कर सकती थी। बाहर जाने में उसे रुकावट कौन-सी थी ? किन्तु दूसरे पल उसकी विचार-धारा लौट पड़ती और वह कहता—वैसा रूप-यौवन लेकर वह कहाँ किसके द्वार पर भीख माँगने जाती ?

जिस रूप, जिस सुगठित यौवन ने पल भर में उसकी आँखों में एक रङ्गीन नशा भर दिया था, चन्दन-शाखा-सी जो बाँहें उसके मन में अपनी सत्ता जताने को सदा उत्सुक रहती हैं और जिन मदिर-भरे नयनों की आकुल दृष्टि की स्मृति पल भर में किसी के मन में विनाशहीन हो जा सकती है, उन्हें लेकर वह बाहरी दुनिया में जाती कैसे ? उस वसन्त-उत्सव-से रूप को, उस गहन-वन-से यौवन को वह किसके घर धरोहर रख जाती ?

यह विचार यहीं नहीं रुक जाता। वह कहता—तो दुनिया में क्या वही एक रूपसी है ? कितनी सुन्दर युवतियाँ स्वयं जीविका-निर्वाह करती हैं।

प्रश्नों को वह तभी सुलझा भी लेता—किन्तु उसकी शिक्षा शायद वैसी न हो। कदाचित् उसने अपने पर निर्भर करना, आत्मसम्मान बचाना न सीखा हो, और उधर दरिद्र-जीवन में भी अभिज्ञता न हो। कौन जाने, शायद—शायद हठात् दरिद्र ने उस परिवार को घेर लिया हो। ऐसे-ऐसे न-जाने कितने ही प्रश्नों-उत्तरों की मीमांसा करता हुआ वह बैठा रहता और दिन-रात निकल जाते।

सुनील के घर में आमोद-प्रमोद की समाधि हो चुकी थी। अब जो कुछ जीवित हो उठा था उसके निकट वाद-प्रतिवाद, प्रश्नोत्तर करते-करते वह थक चुका था—वह बलहीन, निर्जीव-सा हो गया था।

कब, कौन दिन और कौन-से शुभ या अशुभ मुहूर्त में विलासिता को त्यागकर वह कुटीर-द्वार पर खड़ा हो गया था, इस बात को सुनील जान तक न पाया।

असहाय दुःखी ने एक दिन विस्मय से देखा कि वही विलासी, उच्छृङ्खल युवक सुनील उनका केवल साथी ही नहीं, बरन उनके धूलि-मलिन हाथ में हाथ मिलाकर, अनाहार-क्लिष्ट गले में बाँहें डालकर उनके अभाव-पीड़ित कुटी के बीच में खड़ा है। सुनील—वही सुनील, मलयानिल-सा रसीला, इन्द्र-सा रङ्गीला।

(३)

ज्येष्ठ की चम्पा की हँसी मलिन हो चुकी थी। कोकिला कुहुक रही थी—क्लान्त-सी, मूर्च्छित-सी।

कोकिला की उस क्लान्त पुकार में न जाने कौन-सा नूतन या पुरातन परिचय छिपा हुआ था, जिसने उसके हृदय की ग्रन्थियों को शिथिल कर दिया। ए क्लास का क़ैदी सुनील कमरे से निकलकर उस छोटी-सी फुलवारी में टहलने लगा। और आम की डाल पर बैठी कोकिला रह-रह कर वैसे ही पुकारती रही। सामने के वट के नीचे कई क़ैदी सुस्ता रहे थे। वे फुलवारी को सींच रहे थे। अधिकारी उस समय वहाँ नहीं थे। इसी से क़ैदी यहाँ-वहाँ की दो बातें कहकर अपना जी हलका कर रहे थे।

धीरे-धीरे चलकर वह वट के नीचे पहुँचा। उसे देख कर सब चुप हो गये।

एक तो वह ए क्लास यानी स्वर्ग-लोग में बसनेवाला स्वराजी बाबू क़ैदी, दूसरे जेलर साहब तक उससे सदय व्यवहार करते, तीसरे स्वादिष्ठ भोजन, आराम-चैन की सभी वस्तुएँ, यहाँ तक कि एक आईना भी उसके कमरे में लटकता हुआ देख पड़ता था, फिर वे क्यों न उसका सम्मान करते?

सुनील हँसा—खिन्न, मलिन हँसी। उसने कहा—"क्या चर्चा हो रही थी? उसी चुड़ैल की?"

"हाँ बाबू जी, कल वह फिर इसी झाड़ पर पैर झुलाती बैठी थी।"

सुनील कौतुक से हँसा। उसने कहा—"फिर?"

"बड़े मियाँ ने जैसे ही क़ुरान-शरीफ़ उठाई, वैसे ही वह भागी। देखना बाबू, एक दिन धोखा न दे तो कहना। एक न एक को वह लेगी। बिना मौत का मरना! क्या कोई तरता है?"

"बिना मौत? क्या उसने आत्महत्या की थी?"

"नहीं तो क्या। गले में अपनी साड़ी बाँध कर मर गई, भले घर की-सी जान पड़ती थी। पेट में शायद बच्चा था।"

"अरे नहीं! कहाँ का बच्चा? वह तो कुँआरी-सी लगती थी। रोती बहुत थी। और तो किसी से नहीं, किन्तु मैं बूढ़ा आदमी ठहरा, मुझसे कभी ज़रा बोल लेती थी। कुल चार दिन रही थी, मुक़द्दमा चल रहा था, फ़ैसला तब नहीं हुआ था। 'नन्हा' 'नन्हा' कहा करती थी। शायद वह उसका भाई था और मर गया था। एक दिन ज़रा कह उठी थी कि किसी महाजन की लड़की थी। सट्टे में बाप सब कुछ खो बैठा और मर गया। मुझे तो लगता है, उसके बाप ने ज़हर खाकर प्राण दे दिये। बाबू—क्या कहें, ऐसी भली लड़की और ऐसी परी-सी सुन्दर।"

"नन्हा कहती थी? उसका नाम भी जानते हो?"

"भला-सा तो था—रुक्मिनीबाई।"

सुनील कमरे में लौट आया। अकेले में अपने-आप मुसकराने लगा। उसने मन में कहा—छिः, कैसी कुशिक्षा है, मानो भूत-प्रेत इनके सगे-सम्बन्धी हों, एक पत्ता हिला कि चुड़ैल को देखा। कहाँ का भूत और कहाँ का प्रेत! सब मन की भ्रान्ति और कुसंस्कार का फल है।

रात में सुनील बाहर टहलने लगा। न जाने कौन-कौन-सी बात सोचकर वह मुसकराता जाता था। घंटे-दो घंटे टहलकर वह कमरे में लौट आया। कमरे में प्रवेश करते समय उसकी दृष्टि सामने के दर्पण पर पड़ गई। वह छोटा-सा दर्पण दीवार पर लटकता रहता था।

उसने दोनों हाथों से आँखें मलीं। फिर देखा और फिर देखा। स्त्री थी, परम सुन्दर थी। उसका मुख दर्पण में मानों चिपक गया था। सुनील ने अपने हाथ-पैर हिलाये। सोचा, कहीं स्वप्न तो नहीं देखता हूँ। और तब उसने पूर्ण-दृष्टि से उस ओर देखा—अनुपम सुन्दरी थी, भूल नहीं, भ्रांति नहीं, स्वप्न नहीं, थी—थी, वह स्वर्ग की इन्द्राणी, पारिजात-वन की रूपपरी। वैसी ही विह्वल दृष्टि से दर्पण में झाँक रही थी। उसने और भी देखा, ध्यान से देखा—उन आँखों की अद्भुत दृष्टि को। वह सिहर उठा—कौन-सी अतृप्त आकांक्षा ने, कौन-सी अपूर्ण तृष्णा ने युवती की दृष्टि में सर्वग्रासी क्षुधा को इस तरह मूर्त कर दिया है!

किन्तु इस मुख को तो शायद वह कुछ-कुछ पहचानता है। सुनील ख़ुशी से मचल उठा—रुक्मिनी ही तो है। उसने कहा—"यहाँ कैसे आई रुक्मिनी!" वह कमरे में जाकर खड़ा हो गया।

खुली खिड़की से हवा के एक झोके ने आकर टिमटिमाते दीप को बुझा दिया और उस अन्धकार के स्तर से कोई जी खोलकर हँस पड़ा। बस, उसके बाद सब स्थिर, धीर, शान्त हो गया। सुनील को ऐसा जान पड़ा,

मानो उसके चारों ओर कोई फुस-फुसाकर हँस रहा है, और पवन में एक अतृप्त आकांक्षा तृप्त होने के लिए अधीर हो रही है। विस्मित, विह्वल सुनील रोमाञ्चित होने लगा, और उसी तरह खड़ा रह गया।

चारों ओर की अतृप्त आकांक्षा के उस निविड जाल को हटाकर वह भागता कैसे, जाता कहाँ?

घड़ी में चार की घंटी बोली। खिड़की के बाहर पेचक बोल उठा, दाहनी ओर निशाचर पक्षी कराहने लगे। सुनील सचेत हुआ। हाथ-पैर हिलाना चाहा, किन्तु शरीर पत्थर-जैसा भारी हो रहा था।

उसने बत्ती जलाई, और ज़ोर से हँस पड़ा। उसने कहा—पागलों-सा वह इस तरह क्यों खड़ा रहा? उसकी हँसी की प्रतिध्वनि उसी का व्यंग्य करने लगी। आश्चर्य-चकित नेत्र से उसने आईने को देखा, कहीं कुछ नहीं था। अपनी नादानी पर वह अपने-आप लज्जित होने लगा।

(४)

दिन भर सुनील इधर-उधर टहलता रहता, किताबें पढ़ता, क़ैदियों से बातें करता, किन्तु सन्ध्या होते-होते उसका मन एक अपूर्व पुलक, अनजान मोह से भर उठता। स्वप्नाविष्ट की भाँति वह द्वार पर खड़ा हो जाता, और परियों की वह रानी उस दर्पण में मुसकरा पड़ती। वह घंटों वहाँ आविष्ट-सा खड़ा रहता।

फिर दिन आता, वह अपने को धिक्कारता, दर्पण की ओर देखकर भी नहीं देखता। किन्तु फिर भी वह आकुल-आग्रह से सन्ध्या की प्रतीक्षा करता। कोई अदृश्य शक्ति उसे द्वार तक खींच ले जाती। रात की घड़ियाँ रङ्गीन सपने-सी कट जातीं। और दिन के प्रकाश में रह जाता उसकी अवसन्न देह और मन एवं तृष्णातुर ओष्ठाधर।

उस दिन न उसने कुछ सोचा और न कुछ विचार ही किया, उठकर दर्पण को दीवार से उतारकर ट्रङ्क में बन्द कर दिया।

पृथ्वी के प्राङ्गण में उजेला था, और कवि की नूतन छन्द-सी रुपहली चाँदनी वहाँ बैठी मुसकरा रही थी। चारों ओर एक मीठी ख़ुशी और अल्हड़पन छाया हुआ था।

उस चाँदनी में रीझा-सा, मस्ताना-सा सुनील फुलवारी में पड़ा अपनी कल्पना में विभोर हो रहा था। उस दर्पण को बन्दकर वह मानो राज्य जय कर चुका था। सब चिन्ताओं को हटाकर वह दरिद्र-जीवन के अभावों—दर्दों से परिचित होने की चेष्टा करने लगा, किन्तु उस परिचय के सिंहद्वार पर जो लज्जामुखी तरुणी आकर अड़ जाने लगी उसे वह किसी प्रकार अस्वीकार भी नहीं कर सकता था।

वह विचारने लगा—अपने हाथ से उसने सब कुछ नष्ट कर दिया। यदि वह चाहता तो रुक्मिनी उसकी पत्नी हो सकती थी, और सो भी सहज में ही। वह तिलोत्तमा, स्वर्ग की विद्याधरी, जिसके अणु-परमाणु में सङ्गीत का झरना भरा था, जिसके अङ्ग में रूप नहीं समाता था, उसकी हो सकती थी। और न भी होती तो क्या? पृथ्वी में वह रह तो सकती थी। ज़रा-सी जगह उसके लिए क्या वह नहीं बना दे सकता था? किन्तु क्यों? केवल मनुष्यत्व के नाते।

वह आँखें बन्द किये सोचने लगा—न-जाने वह कैसा दुख, कौन-सी भयानक स्थिति अथवा अपरिसीम लज्जा ने उस रूपसी को आत्मघातिनी बना दिया जो शायद प्रेयसी, प्रिया, सहधर्मिणी, माता होने के लिए जन्मी थी, एक दिन जिसका निविड यौवन पति के पैरों तले न्योछावर होकर मातृगर्व से धन्य हो सकता था। और उसका निपटारा जब जेल की एक बन्द कोठरी में हो गया तब किसी ने लौटकर एक बार देखा तक नहीं, विचार तक नहीं किया कि केवल नर की उपभोग की नारी ही नहीं, बरन नर की जननी, माता की मृत्यु किस तरह हो रही है। देखने की कौन कहे, बरन उसने उसके गले में फाँसी की डोरी भी कस दी। और उसकी मौत—नर की जननी की मौत रात में—नीरव अकेले में हो गई।

सुनील विकल हो पड़ा—कहाँ चली गई वह समुद्र की जलकन्या?

फुलवारी के सहस्र सुगन्धित पुष्पों पर बैठी हुई स्वर्ग की अप्सरा हँस पड़ी—वही दबी हुई हँसी।

सुनील कान लगाकर सुनने लगा, पायजेब की रुन-झुन झंकार डाल-पत्तों में छिपने लगी, और चारों ओर का पवन हलका हो गया। उस हलके पवन में हलकी हँसी उसे अपनी ओर खींचने लगी। वह पुलक-विह्वल हो गया। सामने बहुत ही निकट आकर रुक्मिनी बैठ गई।

"सुनते हो ?" उसने पुकारा।

"मेरे उस सुख को, मेरे आनन्द-सन्तोष को तुमने मुझसे क्यों छीन लिया ? दर्पण कहाँ छिपाकर रख आये ? अपनी सुन्दर आकृति को उसमें कभी देख लेती थी, वही मेरा सुख और स्वर्ग था। लोग मुझे सुन्दरी कहते थे, किन्तु उस दरिद्रता के भीतर मुझे अपने-आपको देखने का समय कहाँ था ? एक टूटा, धुँधला दर्पण था। काम-काज से निपटकर कभी उसे देख लेती थी, किन्तु स्पष्ट कुछ नहीं। तुम्हारा दर्पण कैसा स्वच्छ, सुन्दर है ! क्या जानूँ कि मैं ऐसी सुन्दरी, ऐसी रूपसी हूँ ? ज़रा तो देख लेने दो। सुनते हो ?"

आँखें मलकर सुनील घबराया-सा उठ बैठा। चारों ओर आतुर ज्योत्स्ना वैसी ही छिटकी मुसकरा रही थी, पहरेदार वैसे ही पहरा दे रहे थे, झाड़-पेड़ वैसे ही निद्रालु-से खड़े थे। नहीं, कहीं कुछ परिवर्तन नहीं था। वह—केवल सपना था। कमरे में जाकर सुनील सो रहा।

(५)

गहरी रात थी। पृथ्वी शान्त, धीर, स्थिर थी। केवल वन-उपत्यका की परियों की रङ्ग-शाला में तब भी स्वर्ण-दीप जल रहे थे, और हास्य-कौतुक से गुलबकावली उतनी रात गये भी पलने पर बैठी झूल रही थी।

सुनील सोते से जाग पड़ा। उसे जान पड़ा कि कोई उसके विस्तर के चारों ओर घूम घूमकर गिड़गिड़ा रही है, सिसक-सिसककर कह रही है—अरे निर्मोही, मेरी शान्ति छीनकर तुम कौन-से धन के प्रभु बन जाओगे ? दे दो, मेरी चीज़। मुझे वापस कर दो। दर्पण को दीवार से टाँग दो। जी भरकर अपने रूप को मुझे देख तो लेने दो। दर्पण दे दो।

व्याकुल बाहु बढ़ाकर सुनील ने पुकारा—"रुक्मिनी, तुम्हें अदेय कौन-सी वस्तु है ? दर्पण तो एक तुच्छ चीज़ है।" किन्तु किसी ने उत्तर नहीं दिया। उसका आतुर स्वर घर के कोने-कोने में मूर्छित की भाँति समा-सा गया और एक दीर्घ श्वास वायु में मड़राने लगा।

वह चौंककर उठ बैठा। बत्ती जलाई और विस्मय से देखने लगा। वह अपने को समझाने लगा—वह कोरी कल्पना है, मिथ्या सपना है। कहने को तो इतना कह गया, किन्तु फिर भी मन्त्रमुग्ध की भाँति ट्रङ्क के निकट चला गया, उसे खोला और दर्पण लेकर दीवार से टाँग दिया। बत्ती तेज़ कर वह स्पन्दनहीन नेत्र से एक भक्त की भाँति दूर खड़ा दर्पण को देखता रहा।

रात बीत गई और दिन निकल आया। न सुनील में बोध था, न संज्ञा थी। वार्डर ने आकर उसे हिलाया, उसका अचेतन शरीर ज़मीन पर लुड़क गया।

× × × ×

जेल के अधिकारी कहने लगे—सुनील पागल हो गया था। शायद हो गया हो। कदाचित् दर्पण की मोहिनी के रूप के मोह की छाया उसके हृदय में पड़ गई हो। या और कुछ हो। शायद। कौन जाने ? और यह भी कौन कह सकता है ? उसका वह मोह यदि मोह ही था तो वह क्षणस्थायी था या जीवन का साथी।

विदा

श्रीयुत राजनाथ पाण्डेय, एम० ए०

'प्रान-जीवन-धन'! रहो सानंद तुम हम जा रहे हैं—
नेह का अंकुर हृदय में नाथ जो तुमने उगाया,
क्रूर इस संसार में वह फूलने-फलने न पाया।
चाह छाया कल्प-तरु की थी, नियति पर और ही थी,
लाख धीरज, धर्म, संयम से नहीं सन्तोष आया॥
आज अपने पग समेटे हम यहाँ से जा रहे हैं।
एक तुम थे छूटता है नाथ ! अब वह भी सहारा,
रैन है अति ही अँधेरी दूर सागर का किनारा।
याद अपनी, आपकी, संसार की भी आ रही है,
है अकेले पार जाना हिल रहा दिल है हमारा॥
आँसुओं से राह अपनी हम भिगोते जा रहे हैं।
दो चरणों का साथ सुख-दुख में भले ही हो हमारा,
कौन किसका है जगत् में कौन किसका है सहारा।
प्रेम कर संसार में फिर क्या किसी ने चैन पाया ?
मैं अकेला ही नहीं, इस राह में संसार हारा॥
हार में भी जीत अपनी हम समझते जा रहे हैं।

साहित्य-सेवा अथवा ग्राम-सेवा

प्रोफ़ेसर धर्मदेवजी हिन्दी के प्रेमी और विद्वान् हैं। हिन्दी के प्रचार के लिए इन्होंने एक योजना बनाई है और उसके अनुसार कार्य भी आरम्भ कर दिया है। इस लेख में इन्होंने अपनी उसी आयोजना का परिचय दिया है।

लेखक, श्रीयुत प्रोफ़ेसर धर्मदेव शास्त्री

भारतवर्ष की वर्तमान आवश्यकताओं में ग्राम-सुधार अथवा ग्राम्य-सुधार तथा समस्त भारतीयों को शिक्षित बनाना ये दो आवश्यकतायें मुख्य हैं। इन दोनों का आपस में बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है, परन्तु समझे ये पृथक्-पृथक् जाते हैं। अब तक जो कुछ भी साहित्यिक उन्नति हुई है वह शहर के लोगों की हित-दृष्टि को सामने रखकर ही हुई है। साहित्यिक उन्नति से सम्बन्ध रखनेवाली प्रायः सभी बातें शहरी लोगों की सुविधा से ही सम्बन्ध रखती हैं। उन्हीं की रुचि का ध्यान रखकर ही हिन्दी के समाचारपत्र, हिन्दी की पुस्तकें आदि प्रकाशित होती हैं।

वास्तव में भारतवर्ष की साहित्यिक उन्नति को दो भागों में बाँटना चाहिए—

(१) उत्कृष्ट साहित्य का निर्माण करना, जो हिन्दी को वर्तमान समृद्ध जीवित भाषाओं में स्थान दिला सके।
(२) साहित्य-क्षेत्र में उत्कृष्ट साहित्य का अध्ययन करनेवालों की दृष्टि से अशिक्षित अथवा अर्द्ध-शिक्षितों के लिए उपयोगी साहित्य का उत्पादन।

दूसरे प्रकार का साहित्य ग्रामीणों की सुविधा की दृष्टि से उनकी रुचि का ध्यान रखकर ही निर्मित होना चाहिए।

हिन्दी में इधर कई साप्ताहिक पत्र निकलने लगे हैं। यदि प्रेस-ऐक्ट का अंकुश सम्पादन-कला पर सदा जागरूक न रहे तो आज यहाँ पत्र-पत्रिकायें ख़ूब निकली होतीं। परन्तु हिन्दी में जो भी पत्र निकालता है वह अपने पत्र को हिन्दी का प्रमुख पत्र बनाने की धुन में लग जाता है। अपने परिचय आदि के आधार पर वह उसकी सर्वत्र अबाध गति चाहता है। पत्र निकालते समय वह स्थानीय जनता से भी सहयोग की आशा करता है और चाहता है कि उसका पत्र स्थानीय पत्र समझा जाय। ऐसा वह इसलिए करना चाहता है कि उस पत्र की स्थानिक खपत अधिक हो। साथ ही वह उसे व्यापक बनाने के लिए स्थानिक न बनने देकर प्रान्तीय अथवा भारतीय पत्र भी बनाने की इच्छा रखता है। इसका परिणाम यह होता है कि वह पत्र किसी की भी रुचि को पूर्ण नहीं कर पाता। और पत्र का सम्पादक हिन्दी के पाठकों को कोसता हुआ, हिन्दी-साहित्य के लिए किये गये अपने धन-व्यय को सर्वत्र त्याग-रूप में प्रकट करता हुआ, सदा के लिए सम्पादन-कला से ही हाथ धो बैठता है; और औरों के लिए बुरा आदर्श उपस्थित कर जाता है। उत्साही—आगे बढ़नेवाले—युवकों को भी वह अपने अनुभव के आधार पर साहित्य-सेवा से हटाने का प्रयत्न करता है। इस सबका कारण केवल यही है कि इस प्रकार के व्यक्ति अस्थान में अपनी शक्ति का व्यय करते हैं।

भारत के प्रत्येक ज़िले में एक-दो साप्ताहिक अथवा पाक्षिक पत्र बड़ी ख़ूबी से चलाये जा सकते हैं, यदि उनमें ज़िले के ही समाचारों का वहाँ की जनता की रुचि का ध्यान रखकर अधिक समावेश हो, यदि उस ज़िले के ग्रामीण साहित्य का संग्रह किया जाय। इसी में ग्राम-सेवा तथा साहित्य-सेवा का समन्वय होता है, क्योंकि ज़िले का पत्र ग्रामों का ही पत्र होगा। ऐसे पत्रों में ग्रामों और उनके निवासियों की योग्यता आदि का भी ध्यान रखना पड़ेगा। ऐसे पत्र के ग्राहक भी अधिक संख्या में हो सकते हैं, क्योंकि इन पत्रों में अधिक-से-अधिक उनके सम्बन्ध की ही सामग्री रहेगी। इसका कारण यह भी है कि प्रायः

मनुष्यों की दृष्टि अपने तथा अपने से सम्बन्ध रखनेवाले तक ही सीमित रहा करती है। इसी लिए दूर से दूर बैठा हुआ भी व्यक्ति सदा अपने ग्राम के समाचार को ही सबसे प्रथम समाचार-पत्र में पढ़ता है। फिर यदि इस प्रकार के पत्रों-द्वारा भारतवर्ष के ग्रामों का साहित्य संग्रहीत हो जाय तो यह कितना महत्त्वपूर्ण कार्य होगा?

परन्तु यह सब तो साहित्य-सेवा ही नहीं समझा जाता। इसका परिणाम यह होगा कि जिस प्रकार ग्रामीण अथवा हिन्दी-भाषी अँगरेज़ी पढ़े-लिखे से अपने को पृथक् अनुभव करते हैं, वैसे ही शहरी हिन्दी-सेवी से भी देहाती भेद का अनुभव करने लगेंगे। ऐसा होने भी लगा है। वास्तव में देश की भाषा वही है जो देश के ग्रामों में बोली जाती है। ग्रामों में ही भाषा का प्राकृत रूप मिल सकता है। शहरों की भाषा का रूप तो वैकृत है—उसमें समय-समय पर परिवर्तन होना स्वाभाविक है। अतः यदि हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाना है तो आवश्यक है कि वह ग्रामों तक पहुँचाई जाय। आज-कल भाषा के स्वरूप के सम्बन्ध में मतभेद है। उसका भी उत्तर यही हो सकता है कि जो भाषा अधिक-से अधिक ग्रामीणों को ग्राह्य हो वही राष्ट्र की भाषा है।

हिन्दी की उन्नति करने का कार्य हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का है, परन्तु दुःख है कि वह इस दिशा में कुछ नहीं करता है, इस वर्ष के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति देश-रत्न बाबू राजेन्द्रप्रसाद जी ने वार्षिक सम्मेलन पर दिये गये अपने भाषण में इच्छा प्रकट की है कि ग्रामीणों के हित की दृष्टि से प्रतिवर्ष ग्रामोपयोगी सत्साहित्य की सूची प्रकाशित की जाया करे, जिसमें ग्रामों में पुस्तकालय आदि खोलने में सुविधा हो। परन्तु साहित्यशास्त्री ऐसा कार्य क्यों करने लगे? वे तो ग्राम-सेवा और साहित्य-सेवा में आकाश-पाताल का अन्तर समझते हैं। मुझे तो ग्राम-सेवा और साहित्य-सेवा में एक सामञ्जस्य प्रतीत होता है। मेरा अपना अनुभव है कि साहित्य-सेवा-द्वारा ग्राम-सेवा सुगम हो सकती है।

ग्रामीणों में प्रवेश करने का सबसे सरल और हृदय-ग्राही उपाय है उनमें शिक्षा का सन्देश लेकर प्रवेश करना और शिक्षितों को समाचार-पत्र तथा सामयिक पुस्तकें पढ़ने को देना तथा इसका प्रबन्ध करना।

भारतीयों को शिक्षित करने का जो उपाय आज-कल सरकार कर रही है वह तो अनन्त काल तक भी सारे भारत को शिक्षित करने में समर्थ नहीं हो सकता। इस शिक्षा से तो उलटा ग्रामीणों तथा कार्य करनेवाले मज़दूरों को घृणा होने लगी है; क्योंकि पढ़ कर उनकी सन्तति न तो नौकरी प्राप्त कर सकती है—क्योंकि नौकरी भी अब ग़ुलामों से नाराज़ हो गई है, उसने मान-प्रवास ग्रहण कर लिया है और न वे पढ़-लिख कर अपने घर के काम के रह जाते हैं, घर का काम करने में उन्हें अपना अपमान प्रतीत होता है। अतः इस पर विचार करने की आवश्यकता है कि सारे भारतीय किस प्रकार शिक्षित बनाये जा सकते हैं।

कुछ दिन हुए बनारस के दैनिक 'आज' में अपने लेख-द्वारा किसी सज्जन ने देश के धनियों को कर्तव्य का ध्यान दिलाते हुए अपने पैसे से ग्रामों में शिक्षा का प्रचार करने की प्रेरणा की थी। उन्होंने धनियों को यह भी बताने का प्रयत्न किया था कि साम्यवाद से बचने का भी यही एकमात्र उपाय है कि धनी लोग शिक्षा-कार्य में अपना धन व्यय करें। परन्तु वर्तमान अनुभव इसके विरुद्ध है। देश में ऐसे धनी बहुत कम हैं जो शिक्षा जैसे कार्य में धन व्यय करें। आवश्यकता न रहने पर भी मन्दिर और धर्मशालायें बनवाते जाना—निठल्ले-निकम्मे अफ़ीमची-भँगेड़ियों आदि का पालन करना इत्यादि शुभ कर्मों के लिए पैसा देनेवाले सेठों की कमी अब भी देश में नहीं है।

इतना ही नहीं, एक और प्रकार के भी धनी हैं और इसी विभाग में ही आज-कल प्रायः सेठ, राजे, नवाब, नव-शिक्षित ताल्लुक़ेदार-ज़मींदार आदि हैं, जो अपना सर्वस्व मेंशीनदेवी की भेंट चढ़ाते जाते हैं। पहले के सेठ-साहूकारों की सम्पत्ति कम-से-कम देश में तो रहती थी। परन्तु अब तो देश की सारी सम्पत्ति मोटरकारों, समुद्र-यात्राओं, रहन-सहन की सभी बातों से विदेश को ही चली जा रही है। इस प्रकार के लोगों में अब धर्म की भावना भी नहीं रह गई है, जिससे उन्हें धर्म के नाम पर ही कर्तव्य-पालन का उपदेश किया जा सके। भवतु, ये सब बातें तो होती ही रहेंगी, मैं तो शिक्षा के प्रचार के लिए साहित्य-सेवियों से प्रार्थना करना चाहता हूँ।

हर्ष की बात है कि समस्त बड़े शहरों-क़स्बों आदि में

अब हिन्दी-मन्दिरों तथा हिन्दी-समितियों की स्थापना होने लगी है। इससे प्रतीत होता है कि जनता की रुचि साहित्यिक उन्नति की ओर बढ़ रही है। इससे लाभ उठाने के लिए आवश्यक है कि हिन्दी-साहित्य-सेवी तत्परता से इस कार्य में लग जायँ। ग्रामों में साहित्य-सेवा के लिए मैं निम्न योजना साहित्य-सेवियों के सम्मुख उपस्थित करता हूँ। आशा है, हिन्दी-हितैषी इस पर विचार करेंगे। प्रत्येक शहर अथवा क़स्बे में कुछ तो उत्साही युवक होते ही हैं। वे प्रतिज्ञा करें कि प्रत्येक मास में तीन-चार दिन ग्रामों में हिन्दी-प्रचार के लिए अवश्य जाया करेंगे। रविवार को अवकाश भी होता है। अतः शनिवार के सायंकाल को किसी गाँव में गये और वहाँ यदि कोई व्यक्ति बोलना जानता हो तो शनिवार की रात्रि में हिन्दी-साहित्य तथा समयोपयोगी बातों पर गाँववालों को भाषण देना चाहिए, कुछ सरल हिन्दी में भजन भी उन्हें सुनाने चाहिए। ऐसी कोई बात न कहनी चाहिए जो ग्रामीणों के धार्मिक विश्वासों को ठेस पहुँचावे। ऐसा करके सारे ग्राम का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है।

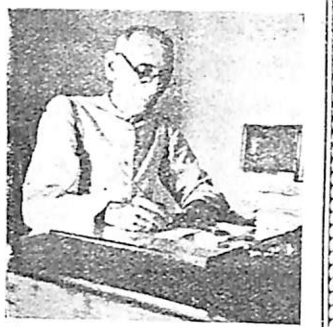
रविवार को सारा दिन ग्राम के शिक्षित तथा साहित्य-प्रेमी लोगों से मिलना चाहिए और प्रयत्न करना चाहिए कि ग्राम अथवा ग्रामों के ही लोग मिलकर अपने आप चन्दा एकत्र करके अथवा कोई एक आदमी ही उनमें से देकर कुछ ग्रामोपयोगी पुस्तकें तथा समाचार-पत्र आदि मँगवा लिया करें। प्रयत्न करना चाहिए कि अपने सामने ही एक-आध पुस्तक तथा समाचारपत्र के लिए आर्डर दिलवा दिया जाय। और एक स्थान निश्चित कर आना चाहिए, जहाँ ग्राम के लोग एकत्र होकर उन्हें पढ़ तथा सुन सकें।

ग्रामों में पुस्तकें पहुँचाने के लिए इस बात का भी प्रयत्न करना चाहिए कि प्रत्येक ग्राम के एक-दो साहित्य-प्रेमी शिष्ट व्यक्ति जो शहरों में आया-जाया करते हैं—शहर से अपने नाम पर पुस्तकें ले जाया करें, और पढ़-पढ़ा-सुन-सुना कर उन्हें वापस कर जाया करें। शहरों-क़स्बों की साहित्य-समितियों को इसके लिए उन्हें पूरी सुविधा देने का प्रयत्न करना चाहिए।

ग्रामों में जाकर एक काम और भी करना चाहिए। वह यह कि ग्राम के ब्राह्मणों से मिलकर वे इस बात पर तैयार किये जायँ कि वे कुछ समय देकर ग्राम के लोगों को हिन्दी-शिक्षा दे सकें। यदि किसी प्रकार ग्रामीण ब्राह्मणों को यह समझाया जा सके कि तुम्हें पढ़ना और पढ़ाना परम कर्तव्य समझना चाहिए तो ग्रामों में अनायास ही शिक्षा का प्रचार हो सकता है। उनकी स्त्रियाँ भी इसी प्रकार ग्राम की लड़कियों को किसी समय अक्षरबोध करा सकती हैं। इस प्रकार करने से ब्राह्मण-जाति जनता की प्रिय हो सकती है और उसे आर्थिक लाभ और मान भी प्राप्त हो सकता है। मेरा अनुभव है कि इस काम में संस्कृत पढ़े-लिखे नये विचार के युवक अधिक सफल हो सकते हैं। ग्राम के उत्साही शिक्षित व्यक्तियों को प्रेरणा करनी चाहिए कि ग्राम के अशिक्षित, हरिजन, किसान आदि को शिक्षित करने के लिए रात्रि-पाठशालायें खोलें और स्वयं समय दें।

इस प्रकार समीप समीप के चार-पाँच ग्रामों में निरन्तर कम-से-कम एक वर्ष तक काम करने से प्रतीत होगा कि कुछ काम हो चला। अन्यथा लाभ की कम ही सम्भावना है।

इस प्रकार देखने से प्रतीत होगा कि साहित्य-सेवा और ग्राम-सेवा दोनों कार्य पृथक्-पृथक् नहीं—विरोधी नहीं—अपितु एक हैं। मैं स्वयं यह कार्य कर रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि भारत की सभी हिन्दी-समितियाँ यदि इस प्रकार कार्य करें तो वे देश की एक बड़ी आवश्यकता को पूरा करेंगी।



अन्तर्जातीय विवाह

लेखक, पंडित मोहनलाल नेहरू

डाक्टर भगवानदास जी ने अपने बड़े लम्बे लेखों और एसेम्बली के अपने भाषण में यह बात भली भाँति साबित कर दी है कि हिन्दू-शास्त्रों में भिन्न-भिन्न जातियों में आपस में विवाह- सम्बन्ध होने की मनाही नहीं है। उनकी दलीलों का असर हमारे वर्तमान शास्त्रकारों (एसेम्बली के सदस्यों) पर अवश्य होना चाहिए। जो भी बात हम बहुत दिनों तक न करें उसे फिर से करने में झिझक ज़रूर होती है। इस विषय में तो हमें सैकड़ों ही वर्षों से यह बताया गया है कि अन्तर्जातीय विवाह बड़े अनर्थ ढायेंगे। हम अपने बाप-दादों से और अपने समय में भी अपनों से यही शिक्षा पाते आये हैं और हमारी रग-रग में यह बात बैठी हुई है कि अन्तर्जातीय विवाह-सम्बन्ध विवाह ही नहीं है। इतना ही नहीं, वरन एक ही जाति की उपजातियों और भिन्न-भिन्न प्रान्तों की उसी जाति में भी ऐसा सम्बन्ध बुरा समझा जाता है।

सौभाग्य से इस बात में कमी हो रही है, मगर थोड़े ही दिनों की बात है कि सुधारकों का मज़ाक़ उड़ाया जाता था और उन्हें कभी-कभी सज़ा भी भोगनी पड़ती थी। मेरे पैदायश के पहले की बात है कि एक कश्मीरी ब्राह्मण ने एक सारस्वत लड़की से विवाह किया। लड़की के मा-बाप को यह ख़बर नहीं थी कि वर कश्मीरी है। उन्होंने सहर्ष उसे लड़की दी और विधिपूर्वक उसका कन्या-दान किया। मगर बात ज़्यादा दिन छिप न सकी और मालूम होने पर उन्होंने मातम मचा दिया। दोनों कुलों में से एक ने भी उस लड़की को न अपनाया और वह स्वयं भी अपने को नीचा ही समझती रही। मैंने उस स्त्री को अपने लड़कपन में देखा था, उस समय वह वृद्ध हो चुकी थी।

दूसरी बात जो मुझे याद आती है, उस समय की है जब कायस्थ-कान्फ्रेंस शुरू हुई थी। शायद उसकी रिपोर्टों में छपी भी होगी। किसी युवक ने यह प्रस्ताव पेश किया कि कायस्थों में आपस के विवाह-सम्बन्ध की रोक-टोक उठा दी जाय। एक पुराने विचार के सज्जन ने इस प्रस्ताव का घोर विरोध करते हुए कहा था कि वे कायस्थों में वर्णसंकरों की भरमार नहीं चाहते। यही विचार हिन्दू-जाति की तमाम उपजातियों में भरा हुआ है। हिन्दू लोग ईमानदारी से विश्वास करते हैं कि शास्त्रों में केवल अन्तर्जातीय विवाह ही नहीं, एक जाति की उपजातियों में भी विवाह-सम्बन्ध वर्जित है। शास्त्रों के जाननेवाले उन्हें कोई भी उपदेश दें, उनके कान पर जूँ तक नहीं रेंगती।

दुर्भाग्य से हिन्दू हज़ारों जातियों में बँटे हुए हैं और नई ईसाई जातियों में भी वही भेद-भाव दिखाई देते हैं। मुसलमानों में जाति का इतना ज़ोर नहीं है, तो भी यह कहना है कि उनमें जाति-भेद है ही नहीं, ठीक नहीं है। यद्यपि हमारे इस लेख के वास्ते इसकी आवश्यकता नहीं है, तथापि अपने कथन की पुष्टि के वास्ते मैं एक उदाहरण देता हूँ। मेरे एक मुसलमान मित्र ने अपनी पहली स्त्री के देहान्त के बाद दूसरा विवाह एक सैयद की लड़की से किया; वे ख़ुद सैयद नहीं थे। थोड़े ही दिनों के बाद वे बहुत सख़्त बीमार पड़े और १५ या २० दिन बेहोश पड़े रहे और उसी में उनका अन्त हो गया। उनके साथी

और सम्बन्धी यही कहते थे कि सैयद की लड़की से सम्बन्ध करने का यह नतीजा है। मेरी ग़रज़ यह दिखाने से है कि भारतवर्ष ऐसा अभागा देश है, जहाँ जात-पाँत मच्छरों की तरह बढ़ती है और छोटी-से-छोटी जाति अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रखना चाहती है, चाहे वह देश के संगठन में कितना ही हानिकारक क्यों न हो।

एक ज़माना था जब सर्वसाधारण देश को अपना नहीं वरन अपने राजा का समझते थे और जो संगठन आपस में होता था वह राजा के ख़याल से होता था न कि देश के। वे ख़याल अब बदल गये हैं और प्रजा अपने प्रतिनिधियों-द्वारा राज्य कराना चाहती है। मगर प्रतिनिधि चुने कौन और किसको? छोटी या बड़ी जातियाँ सभी अपनी अपनी जाति का प्रतिनिधि चाहती हैं। ग़लत या सही, उनका ख़याल यही होता है कि वह अपनी जाति को कुछ-न-कुछ फ़ायदा पहुँचा देगा। यही ख़याल आज-कल के सारे झगड़ों की जड़ है। हिन्दू-मुसलमान के बीच की तनातनी का यही मुख्य कारण है, हिन्दुओं की भिन्न-भिन्न जातियों में यही भेद-भाव डाल रहा है। ऊँच-नीच का झगड़ा जो पहले नहीं था, आज क्यों बढ़ रहा है? इसी ख़याल से कि राज्य किस जाति के प्रतिनिधि-द्वारा हो। कितने आदमी हैं, जो देश को जाति से पहले रखते हैं। किसी भी जाति के आदमी को कोई ऊँची पदवी या उपाधि मिल जाती है तो चारों तरफ़ से उसकी जाति के लोग सरकार को धन्यवादों की भरमार कर देते हैं और उस व्यक्ति को बधाई की। उसकी पदवी से न तो जाति को कुछ मिल जाता है, न उसका गौरव ही बढ़ता है, मगर फिर भी हर्षनाद सुनाई देता है।

जिन देशों में जात-पाँत का ज़ोर नहीं, वहाँ इन छोटे विचारों को जगह नहीं। वह ईसाई हो या मुसाई, प्रोटेस्टेंट हो या कैथोलिक, वह बौद्ध-धर्म मानता हो या नास्तिक हो, उसकी जाति या धर्म उसकी देश-भक्ति में बाधा नहीं डालता। देश के वास्ते वह जिसे हितकारी समझेगा उसी को अपना प्रतिनिधि चुनेगा। मगर हमारे देश में धर्म या जाति देश-भक्ति से ऊँचा स्थान रखती है।

जब तक ये छोटी या बड़ी जातियाँ क़ायम रहेंगी तब तक हिन्दू-जाति का उद्धार मुश्किल मालूम होता है। इस समय हम हिन्दू अपने को एक जाति नहीं कह सकते। मगर हमारे एक होने पर वह ताक़त पैदा हो सकती है जिसका निरादर कोई आसानी से नहीं कर सकेगा। क्या अच्छा होता अगर सभी हिन्दुस्तानी अपने तईं एक जाति का समझ सकते, मगर अभी वह वक़्त शायद दूर है, क्योंकि हम लोगों का एक बड़ा भाग भारतवर्ष को छोड़कर और देशों को अपनाये हुए है और वह भारतवर्ष की दुर्दशा की परवा न कर फ़िलिस्तीन या तुर्की में ख़िलाफ़त की रक्षा के वास्ते हर तरह के त्याग करने या कष्ट झेलने को दम भरता है। और स्वतन्त्र देशों में भी तो हर धर्म के लोग मौजूद हैं, मगर वे सब एक जाति हैं। यहाँ तक कि उनमें एक ही घर में दो व्यक्तियों के दो धर्म के पाये जाते हैं, जैसे हिन्दुओं में अगर पति शिव का उपासक हो तो पत्नी विष्णु की हो सकती है। जापान में ऐसे पति और पत्नी दो धर्मों के मौजूद हैं। विद्वान् हमें बतलाते हैं कि हिन्दुओं में चार मुख्य जातियाँ अपने-अपने व्यवसाय के कारण बनी थीं। आज उन्हीं में सैकड़ों जातियाँ निकल चुकी हैं, और हर जाति अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये हुए है। इससे भी ज़्यादा यह है कि वही जाति भिन्न-भिन्न स्थानों में अलग जीवन बिताती है। उदाहरण लीजिए। भिन्न-भिन्न स्थानों के सारस्वत ब्राह्मण अलग अलग जाति के समझे जाते हैं। उसी तरह बंगाल और बिहार के कायस्थों की जातियाँ अलग हैं। आपस में शादी-ब्याह हो नहीं सकता। लड़के-लड़कियों को अपनी ही छोटी-छोटी टोली में अपना जीवन-साथी ढूँढ़ना होता है। किसी छोटी-सी जाति में लड़के अधिक हैं तो दूसरी छोटी सी जाति में लड़कियाँ। एक में लड़के बिन ब्याहे रह जाते हैं तो दूसरी में लड़कियों को आत्मघात करने की नौबत आती है, क्योंकि उन्हें यही सिखाया गया है कि वे अविवाहित रह नहीं सकतीं। अगर जात-पाँत या दूर पास की रोक न हो तो कोई भी लड़की जो विवाह करना चाहे, क्वाँरी नहीं रह सकती। पिछली मर्दुमशुमारी से हमें यह मालूम हुआ है कि भारतवर्ष में हज़ार पुरुषों के पीछे केवल ९६३ स्त्रियाँ हैं। इसमें लड़के-बूढ़े सभी सम्मिलित हैं। यदि प्रत्येक स्त्री और प्रत्येक पुरुष का विवाह कराया जाय तो भी हज़ार में ३७ पुरुषों को स्त्रियाँ नहीं मिल सकतीं। फिर भी हम बहुधा सुना करते हैं कि अमुक लड़की ने विवाह न होने के कारण आत्मघात कर लिया। आज तक यह न सुना कि अमुक पुरुष ने इस कारण आत्मघात किया हो।

स्त्रियों की कमी होने पर भी दहेज़ की रस्म बड़े ज़ोरों पर है। यहाँ तक कि कहीं कहीं लड़कों ने अपनी बड़ी बड़ी क़ीमतें लगा रक्खी हैं। दुःख की तो यह बात है कि वह क़ीमत देनेवाले मिल जाते हैं। और कैसे न मिलें? प्रत्येक मा-बाप अपनी लड़की को सुखी देखना चाहता है और उसके वास्ते ऐसा लड़का ढूँढ़ता है जो उसे आजन्म संतुष्ट रख सके। कोई भी आजन्म सुखी नहीं रह सकता, चाहे उसके पास कितना ही पैसा क्यों न हो। किन्तु यह आम ख़याल है कि रुपयेवाले सभी सुखी हैं। उन्हीं की तलाश में लड़की के पिता अपने तई बेच तक डालते हैं, मगर लड़की को सुखी नहीं बना सकते। इस तरह के विवाह से लड़कों के दिमाग़ भी बिगड़ जाते हैं। वे बहुधा अपनी पत्नियों से बुरा व्यवहार भी करते हैं।

इस बुराई को दूर करना कोई मुश्किल बात नहीं है। किसी न किसी समय इसका मुक़ाबिला करना होगा। आज ही क्यों नहीं? लड़की के दिमाग़ में यह बात घुसने ही न दी जाय कि उसका मुख्य काम विवाहित हो जाना है। जो रुपया उसके दहेज़ के वास्ते जमा किया जाता है वह उसे शिक्षा देने या कोई व्यवसाय सिखाने में धीरे धीरे लगाया जाय, दहेज़ देने से सोलहों आना इनकार हो। कुछ लड़कियाँ क्वाँरी अवश्य रहेंगी, जैसे अब भी रहती हैं, मगर थोड़े ही दिनों में लड़कों के मिज़ाज़ ठिकाने आ जायँगे। याद रहे कि लड़कियाँ लड़कों से कम हैं। इस पर भी हमारे कितने ही बड़े-बड़े राजे-महाराजे दिल-बहलाव के वास्ते दर्जनों स्त्रियाँ अपने ज़नानख़ानों में बन्द किये हैं और ३७ प्रति हज़ार से भी उनकी कमी इस कारण बढ़ जाती है। हाँ, लड़कीवालों में आपस में मुक़ाबिला नहीं होना चाहिए।

दूसरी बात जो ज़रूरी है वह यह है कि जाति में सम्बन्ध करना ज़रूरी न रहे। यह तो मानना ही है कि पुराने ज़माने में जाति के बाहर सम्बन्ध होते थे और अब भी नैपाल के हिन्दुओं में होते हैं, जिस वर्ण का पुरुष होता है उसी में स्त्री आ जाती है। जो बात पहले हो सकती थी और अब भी एक स्वतंत्र स्थान के हिन्दू-समाज में हो रही है तो वह फिर हर जगह क्यों जारी न हो जाय? हमारे मस्तिष्क में जो पुराने विचार घर बना चुके हैं उन्हें ऐसा सोचते ही बड़ा धक्का लगता है। हम प्रचलित दस्तूरों को टूटते देखकर अधीर हो उठते हैं और हिन्दू-समाज को रसातल की राह जाते देखने लगते हैं।

यही कारण है कि डाक्टर भगवानदास जी के इस बिल का इतना ज़बर्दस्त विरोध हो रहा है। धर्म्म-समाजी हाय-तोबा मचा रहे हैं, उन्हें धर्म संकट में पड़ता दिखाई दे रहा है। उन्होंने कभी ऐसे सम्बन्ध देखे ही नहीं और डाक्टर भगवानदास जी की दलीलें पढ़ने की उन्हें फ़ुर्सत ही नहीं।

धर्म-समाजियों ने चाहे कभी जाति के बाहर सम्बन्ध होते न सुना हो, मगर पुरानी किताबों में इसके उदाहरण ही नहीं मिलते, वरन उनसे भी कहीं कड़वी बातें सुनाई देती हैं। राजा पांडु ने तो यहाँ तक सुना था कि "पूर्व समय में सब स्त्रियाँ स्वाधीन थीं। वे चाहे जिसके साथ रह सकती थीं। उनका ऐसा करना दोष नहीं समझा जाता था।" (महाभारत १-१२२) रानियाँ महारानियाँ तक चौराहों पर खड़े होकर सिद्ध ब्राह्मणों से पुत्र माँग सकती थीं, राजा पांडु के समय में उनकी इस स्वाधीनता को 'व्यभिचार' कहने लगे थे।

ये दस्तूर ख़ाली भारतवर्ष में ही प्रचलित नहीं थे, वरन पुराने सभ्य देश जैसे चीन, ग्रीस वग़ैरह में भी यही हाल था।

हमारा हिन्दुस्तान पुराने सभ्य देशों में है, बल्कि हज़ारों वर्षों से वह धर्म का झंडा फहराये है। यहाँ शास्त्र बनानेवाले ब्राह्मण रहे हैं। राजों महाराजों तक के ऊपर ब्राह्मण रहे हैं। श्वेतकेतु ने, पांडु के शब्दों में, 'इस ब्राह्मण रहे हैं। श्वेतकेतु ने, पांडु के शब्दों में, 'इस महा-व्यभिचार' को पृथिवी से उठा दिया। परन्तु हम महा-भारत में कितनी ही ऐसी रस्में पाते हैं जो आज व्यभिचार कही जाती हैं। चीन के सम्राट् 'को ही' और एथेन्स के ककरोप्स ने अपने देशों में ऐसी रस्मों को तोड़ा था। मगर हमें तो भारतवर्ष से काम है।

कोई रस्म किसी एक आदमी के तोड़े नहीं टूट सकती। वह रस्म बुरी हो या भली, एक आदमी तो दूर, बड़ी-से-बड़ी शक्तिशाली हुकूमतें तक एकाएक कोई रस्म नहीं तोड़ सकती हैं। वे रस्में तभी टूटती हैं जब सर्वसाधारण के विचार बदलते हैं। उदाहरण के वास्ते सती-प्रथा को देखिए। हमारी सरकार बहादुर को क्या क्या दिक्क़तें इसे बन्द करने में उठानी पड़ी हैं, और अब भी छोटी लड़कियों का विवाह बंद कराने में क्या क्या कठिनाइयाँ सामने आ रही हैं। विवाह की रस्में भी जब कभी बदली होंगी, सर्व-साधारण का विचार बदलने से बदली होंगी। मगर नाम उनका होना ज़रूरी था, जिन्होंने उसके ख़िलाफ़ पहले आवाज़ उठाई।

इतिहास हमें बताता है कि जब हिन्दुओं में चार ही जातियाँ थीं तब आपस में विवाह-सम्बन्ध जारी था। एक ही मा-बाप के चार लड़के अपनी रुचि के अनुसार जिस वर्ण में चाहते, रह सकते थे। विवाह-सम्बन्ध के नियम कड़े नहीं थे। पति के जीते-जी भी स्त्री दूसरा विवाह कर सकती थी। दीर्घतमा ऋषि की स्त्री ने जब अपना दूसरा विवाह करने की इच्छा प्रकट की तब पतिदेव ने यह आज्ञा निकाली—"पति के मरने पर या उसके जीते जी स्त्री अन्य पुरुष को स्वीकार न कर सकेगी।" (महाभारत १-१०५)। तिस पर भी दमयन्ती ने अपना दूसरा स्वयंवर रचाने की झूठी ख़बर उड़ा दी। इससे स्पष्ट है कि उसके पहले वह वैसा कर सकती थी। ऐसा करना व्यभिचार न था।

विवाह-सम्बन्ध किसी भी जाति में मना नहीं था। सत्य-वती या योजनागंधा मल्लाह की लड़की थी। उसी के एक पुत्र तो ब्रह्मर्षि वेदव्यास थे। उसी मल्लाह की लड़की को शांतनु ने किस-किस ख़ुशामद से अपनाया। उस समय किसी ने धर्म को संकट में पड़ा न बताया। हिडिम्बिका राक्षसी या शूद्रकन्या का विवाह महाबली भीम से हुआ। उनकी ख़ुशी से नहीं, वरन भाई की आज्ञा से। शुक्राचार्य की लाड़ली बेटी देवयानी का ब्याह राजा ययाति से हुआ और उसकी सौत थी एक शूद्रकन्या या राक्षसी। विश्वामित्र की बेटी शकुन्तला भी राजा से ही ब्याही गई। ब्राह्मणों को तो किसी भी वर्ण की स्त्री से विवाह का अधिकार एक मशहूर बात है।

ये तो पुरानी बातें हैं। हमें कोई उदाहरण नये काल का छपा हुआ नहीं याद है। मगर जो दस्तूर प्रचलित होते हैं वे कहीं न कहीं ग्राम-गीतों या कहानियों में मिल जाते हैं। पंडित रामनरेश त्रिपाठी के ग्राम्य-गीतों में एक ऐसा गीत है जिससे ब्राह्मण लड़की का विवाह-संस्कार राजपुत्र से होना पाया जाता है। कहानी रोचक है। एक राजपुत्र जंगल में जा रहा है। वह किसी को पेड़ के पीछे छिपा देखकर ललकारता है—'तू कौन है'। वह एक लड़की है। कहती है—मैं हूँ ब्राह्मण की कन्या, जिसके भाई को मुग़लों ने मार डाला है। राजपुत्र उसे घोड़े पर बैठाकर ले जाना चाहता है, मगर वह प्यास व्याकुल है। वह टीले से पानी का एक चश्मा देखता वहाँ ५० मुग़ल खड़े हैं। उस लड़की के आग्रह पर जाता है। उन पचासों को मारता है और उसे पानी पिल है। उसका पुरस्कार वह क्या देती है? उसके गले जयमाल डालती है और कहती है—तुमने अपनी बी से यह दुलहिन पाई है। इसके मानी हैं कि मुग़ल-व में भी अंतर्जातीय विवाह हो जाते थे।

ये मिसालें हमें क्या बताती हैं? यही कि हिन्दु में विवाह-सम्बन्ध किसी भी जाति में हो सकता था। लोग उन्हीं हिन्दुओं की संतान हैं और उनके गुण आज गाते हैं। जो वे कर सकते थे वह हमारे वास्ते पाप क्यों है

अगर ब्राह्मण की लड़की क्षत्रिय से और मल्लाह राक्षसकन्या राजाओं से ब्याही जा सकती थी और वे अनर्थ नहीं होता था तो आज क्यों एक जाति की लड़ का विवाह दूसरी जाति के लड़के से होने में अनर्थ जायगा? बहुत दिनों से ऐसा नहीं हो रहा है और अब उसे नई बात समझ कर घबरा उठते हैं। म वास्तव में यह कोई नई बात नहीं होगी।

डाक्टर भगवानदास जी ऐसे पंडित ने हमें बताया है कि हिन्दूशास्त्रों में कोई मनाही अंतर्जातीय विवाह नहीं है। और अगर होती भी तो जो लोग ऐसे विवा सम्बन्ध किया ही चाहते हैं, किसी दूसरे क़ानून की शर लेते हैं। क्या यह अक़्ल की बात नहीं कि उन्हें हिन् शास्त्रों का ही लाभ उठाने का मौक़ा दिया जाय?

हिन्दू लड़कियों के चोरी जाने की दुर्घटनायें रो ही सुनने में आती हैं। इन चोरों के बड़े बड़े ज हैं, जिनमें ब्राह्मणों से लेकर मुसलमान तक सम्मि लित हैं। मेरा तो ख़याल ऐसा है कि जाति या दूर-पा का विचार बंद हो जाय तो इन चोरियों में भी कमी जायगी। चोर लोग एक जगह से लड़की चुरा कर दूस जगह उसका विवाह कराते हैं और यह एक रोज़गार ह गया है। जिन्हें लड़कियाँ नहीं मिलतीं वे इन चोरों मोल लेते हैं और लड़की जो अपनी ख़ुशी या नाख़ुशी चोरी जाती है उसे भी वर मिल जाता है। यदि मा-बाप

की ख़ुशी से उसका विवाह हो सके तो कितनी अच्छी बात हो। लड़की चुरानेवाले जत्थों के पैर के तले से ज़मीन ही निकल जायगी और हिन्दू-समाज के सिर से (जो इन चोरियों का ज़िम्मेदार है) कलंक का टीका धुल जायगा।

डाक्टर भगवानदास के क़ानून के विरोध में कितनी ही सभायें हो रही हैं। धर्म के ठेकेदार तो अपनी अलाप लगा ही रहे हैं, परन्तु कुछ स्त्रियों ने भी उसका विरोध किया है। इस वास्ते नहीं कि वे पुरानी लीक पीटा चाहती हैं, वरन उनकी राय यह है कि ऐसा कोई क़ानून जिसमें तलाक़ का अधिकार स्त्री को न हो, अस्वीकार होना चाहिए। तलाक़ स्त्री के वास्ते अच्छा है या बुरा, हमें यहाँ इस बात से मतलब नहीं। अगर वह अच्छा है तो ज़रूर उसे जारी करने की कोशिश की जाय। मगर इस शुभ काम में क्यों बाधा डाली जाय कि अन्तर्जातीय विवाह हिन्दू-शास्त्र की ही रू से हो सकें। जो नवयुवक और नवयुवतियाँ इस समय हिन्दू-रीति से विवाह करना चाहते हैं उनका विवाह इस वास्ते क्यों रोका जाय कि उनमें से कोई तलाक़ देने का अधिकार नहीं रखता। मेरा तो ख़याल यह है कि अगर तलाक़ की रस्म जारी हो जायगी और पुरुष और स्त्री दोनों को ही अख़्तियार होगा तो उसका लाभ भी पुरुष ही उठावेंगे।

महान् की ओर

लेखक, श्रीयुत मोहनलाल महतो

जय जग-यौवन के मधुर हास,
जय चिर तममय, जय चिर प्रकाश।
जय उरप्रेरक, कर्ता, महान,
जय विपुलकर्ममय, महाप्राण।
कारण-स्वरूप भवजटिलजाल,
जय ओश्मकार, जय सामगान॥
तुम क्षण, घटिका, सप्ताह, मास,
जय जग-जीवन के मधुर हास।
तुम तुहिन-बिन्दु, सागर अनन्त,
तुम शून्य-शिशिर, मधुमय वसन्त।
तुम आदि, शेष के हो अशेष,
तुम हिममय हिमकर, रवि ज्वलन्त॥
तुम चिर-सुदूर, तुम सदा पास,
जय जग-यौवन के मधुर हास।
तुम सरिता के श्रुतिमधुर घोष,
फेनिल सागर के प्रलयरोष।
तुम अस्ति, नास्ति के केन्द्ररूप,
तुम महारुद्र तुम आशुतोष॥
तुम स्वयम् त्राण, तुम स्वयम् त्रास,
जय जग-यौवन के मधुर हास।
तुम पीड़ित मन के असनि-नाद,
तुम करुणामय विस्मृत-विषाद।
तुम महाध्वंस के अग्रदूत,
तुम हो नवरसमय सुखद स्वाद॥
तुम सृष्टि-स्थिति तुम महानाश,
तुम जग-यौवन के मधुर हास।
तुम हो क्रन्दन आनन्द गीत,
तुम हृदयहीनता, सहज प्रीत।
तुम लिप्तिहीन पर सदा लिप्त,
तुम विजित, पराजित, हार, जीत॥
तुम हास-रूप, तुम नव-विकास,
तुम जग-यौवन के मधुर हास।

शक्ति की कुंजी—हवाई शक्ति

लेखक, श्रीयुत अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

अगला युद्ध आकाश-युद्ध होगा। इस दृष्टि से हवाई शक्ति जहाज़ों का क्या महत्त्व है—यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है। इस लेख में विद्वान् लेखक ने दिखाया है कि भारतवर्ष की हवाई प्रगति का क्या स्वरूप है और आगे उसकी क्या सम्भावनाएँ हैं।

भारतीय साहित्य विमानों के वर्णन से परिपूर्ण है। पर वे देवताओं के विमान थे। मनुष्य उनको कभी कभी देख सकते थे; मगर उन पर सवारी करने या उनको अपने उपयोग में लाने का स्वप्न में भी विचार नहीं कर सकते थे। एक-मात्र पुष्पक विमान का वर्णन हमें पढ़ने को मिलता है जब मनुष्य ने अपने काम के लिए विमान का उपयोग किया है। मगर उसकी चाल आज-कल के वाष्प से चलनेवाले यानों की तो बात दूर रही, कदाचित् साइकल से भी कम थी। लंका से २० दिन में वह अयोध्या पहुँचा था। इसलिए वर्तमान वैमानिक प्रगति की तुलना उससे किसी प्रकार नहीं की जा सकती।

मनुष्य ने जब पहले-पहल भूमि की दूरी तय करने के लिए गाड़ी के आगे बैल, घोड़ा व ऊँट तथा ख़च्चर जोड़ा था या किसी ने विस्तीर्ण जल-राशि को पार करने के लिए अपनी जीवन-नौका को ख़तरे में डालते हुए समुद्र की लहरों पर अपनी छोटी-सी नौका तैराई थी, उस दिन शायद ही उसने सोचा हो कि एक दिन उसकी सन्तान जल-स्थल पर अधिकार करके ही सन्तुष्ट न होगी, बल्कि आकाश पर प्रभुत्व स्थापित करके भी असन्तुष्ट बनी रहेगी। उस दिन जिस बात की कल्पना नहीं की थी, आज वह बीसवीं सदी के दूसरे चरण में योरप में हमारे सामने नज़र आ रही है।

भारत पूर्व और पश्चिम के मध्य में है। इतना ही नहीं, वह ब्रिटिश साम्राज्य का केन्द्र-बिन्दु है। इसलिए नैसर्गिक रूप से वैमानिक मानचित्र में भारत को केन्द्र-बिन्दु का स्थान प्राप्त है। भारत-सरकार और ब्रिटिश सरकार भी वैमानिक यातायात की उन्नति के लिए जी तोड़ कर परिश्रम कर रही है। सालाना लाखों रुपया इसकी उन्नति के लिए ख़र्च किया जा रहा है। इसलिए प्रत्येक भारतीय का संसार तथा अपने देश में होनेवाली वैमानिक प्रगति से परिचित होना आवश्यक है।

यह एक नई चीज़ है। इसका आरम्भ अभी कुछ वर्षों से हुआ है। इसमें अभी जात-पाँत का भेद-भाव भी बहुत ज़्यादा नहीं है। साहसी युवक-युवतियों के लिए अपने बल और पौरुष के दिखाने का इसमें बहुत अवसर है। यह व्यवसाय भी नया है। योरप और अमरीका भी इसमें नये हैं। यह ठीक है कि वे बड़ी तेज़ी से इस क्षेत्र में क़दम बढ़ाते हुए आगे जा रहे हैं और उनकी सारी राष्ट्रीय शक्ति इस क्षेत्र में लगी हुई है। अगला युद्ध आकाश-युद्ध होगा। इसलिए फ़ौजी विमानों के साथ व्यापारिक व व्यावसायिक विमानों का बहुत अधिक महत्त्व है। जिस प्रकार नौ-सेना में दूसरा स्थान व्यावसायिक जहाज़ों का है, वही स्थान आकाश-सेना में मुल्की विमानों को प्राप्त है। इसलिए इसकी प्रगति की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। हमारा देश विस्तृत और विस्तीर्ण है। इसका आकाश भी अनन्त है। भारत यदि यत्न करे तो विमान-व्यवसाय को शीघ्र राष्ट्रीय व्यवसाय बना सकता है और हमारे युवक हाकीटीम के समान ही किसी भी देश के पिलट (उड़ाके) का सफलता के साथ सामना कर सकेंगे और विश्व की हवाई दौड़ों में उसी प्रकार अग्र-पूजा का स्थान पायेंगे, जिस प्रकार भारतीय कल्पना और प्रतिभा ने अग्र-पूजा का स्थान पाया है।

भारत-सरकार ने १९३५-३६ की मुल्की हवाई-प्रगति पर एक ८० पृष्ठों की वार्षिक रिपोर्ट प्रकाशित की है। यद्यपि इस रिपोर्ट को देखकर हमारा हृदय गर्व से भर नहीं जाता, न साल भर की प्रगति देखकर आत्मा को सन्तोष ही होता है, न अन्य देशों के मुक़ाबिले में भारतीय वैमानिक प्रगति को देखकर कोई नवीन आशा होती है, तो भी यह कम सन्तोष की बात नहीं है कि मुल्की हवाई जहाज़ों में हमारी अवस्था समुद्री जहाज़ों के समान नहीं है, बल्कि



[विलिंगडन हवाई स्टेशन, दिल्ली ।]

प्रतिवर्ष हम इस दिशा में आगे बढ़ रहे हैं और इस क्षेत्र में भारतीय युवक पर्याप्त संख्या में काम कर रहे हैं।

(२)

पहले-पहल १९१९ में नियमित रूप से हवाई मार्ग खुला। इसके दस साल बाद इँग्लेंड-भारत के बीच हवाई जहाज़ आने-जाने लगे। सारे संसार में उस समय हवाई मार्ग १,२५,८०० मील था और ५,३३,७०,००० मील उड़ा गया था। आज नियमित आधार पर २,२५,००० मील हवाई मार्ग बन गया है और १०,००,००,००० मील से ज़्यादा प्रतिवर्ष उड़ा जाता है।

भारत ब्रिटेन के अञ्चल में बँधा है। इसकी वैमानिक प्रगति भी ब्रिटिश साम्राज्य की हवाई प्रगति के साथ बँधी हुई है। नीचे की तालिका से मालूम होगा कि ब्रिटिश साम्राज्य और भारत का संसार की हवाई प्रगति में क्या स्थान है—

नियमित हवाई मार्ग मीलों में

	ब्रिटेन	भारत	ब्रिटिश साम्राज्य	संयुक्त-राष्ट्र अमरीका	फ़्रांस	जर्मनी
१९३३	११,६७०	५,१८०	३२,६३०	४७,६८७	२१,४५०	१७,२२८
१९३४	१३,७५०	५,८३०	४१,३९०	५०,८००	२१,२९०	२३,४४०
१९३५	१९,७३९	६,३९५	५३,२९१	५२,४६१	२४,४५१	२२,२९१

ये अङ्क हमारे देश के पिछड़ेपन को ज़ोरदार शब्दों में बता रहे हैं। भारतीय हवाई मार्ग का ब्रिटिश हवाई मार्ग से आधाराधेय का सम्बन्ध है। इसलिए ब्रिटिश हवाई सर्विस और भारतीय हवाई सर्विस की तुलना यहाँ अरोचक न होगी—

ब्रिटिश नियमित हवाई ट्रान्सपोर्ट सर्विस

	उड़े मील	मुसाफ़िर ढोये	बाहर की हवाई डाक	कुल हवाई डाक
१९३३	२६,३८,०००	७९,१००	८५ टन	१७१ टन
१९३४	४५,५७,०००	१,३५,१६०	१२२ ,,	२५० ,,
१९३५	७६,३७,०००	१,४३,४१३	२१५ ,, (लगभग)	६२९ ,,

भारतीय नियमित हवाई ट्रान्सपोर्ट सर्विस

	उड़े मील	मुसाफ़िर ढोये	हवाई डाक
१९३३	१,५३,६८०	१५५	१०·५ ,,
१९३४	३,४५,७७१	७५७	२१·३ ,,
१९३५	५,५३,७५४	५५३	४३·५ ,,

(३)

इसका जब हम संसार के अन्य मुल्कों की हवाई प्रगति से मुक़ाबिला करते हैं तब हमें गहरी निराशा होती है। ब्रिटेन की 'इम्पीरियल एयरवेज़' जहाँ कायडन को ब्रिसबेन से मिला रहा है, डच-कम्पनी अमेस्टर्डम को बटेविया से मिलाने का प्रयत्न कर रही है, जर्मन और फ़्रेंच-कम्पनियाँ पेरिस और ब्रेज़िल के बीच आना-जाना चार दिन में तय

कर रही हैं और अमरीकन कम्पनी न्यूयार्क को मनीला और न्यूज़ीलेंड से जोड़ रही है, तब हमारी ताता-एयरवेज़ कम्पनी कराची, बम्बई, मदरास, कोलम्बो तक जाकर ही सन्तुष्ट है। अन्य देश इस क्षेत्र में किस तेज़ी से प्रगति कर रहे हैं, यह निम्नतालिका से ज्ञात होगा—

नियमित हवाई सर्विस के आँकड़े

नाम देश	सन्	उड़े मील	ढोये मुसाफ़िर	माल और डाक (टनों में)
संयुक्त-राष्ट्र	१९३४	४,८७,८६,५५१	५,६१,३७०	५,००६
(अमरीका)	१९३३	५,४६,४२,५४५	५,६८,९४०	५,५८४
जर्मनी	१९३४	८८,६२,७६६	१,६५,८४६	३,९२०
	१९३३	६५,५१,७२८	१,२३,०३६	२,९३९
फ़्रांस	१९३४	६०,४१,२३६	५०,०१९	१,५३८
	१९३३	५९,८६,०११	५२,१७९	१,७०६
कनाडा	१९३४	५१,६९,५५०	१,०३,५३१	६,७२६
	१९३३	३१,४५,९३५	४९,१२६	२,१२८
ग्रेट ब्रिटेन	१९३४	४५,६०,०००	१,३५,१००	१,४२३
	१९३३	२६,३८,०९२	७९,०७०	९०९
इटली	१९३४	२७,३५,९३०	४०,९३०	९४१
	१९३३	२६,६०,१३२	४३,१२६	१,०३९
नीदरलैंड	१९३४	२७,११,६४७	५७,३३९	९८६
	१९३३	२०,७१,४३३	३२,०५४	१,०४७

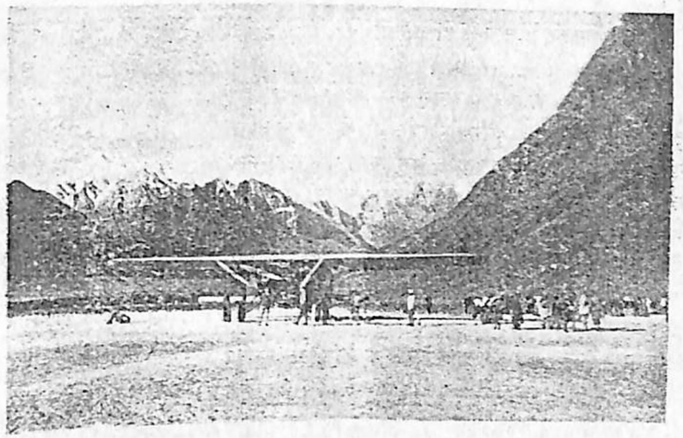
फ़रवरी १९३४ को कम्पनी का ठेका रद कर देने से संयुक्त-राष्ट्र (अमरीका) पीछे पछड़ गया था, मगर पिछले साल उसने अपनी कमी पूरी कर ली है। वहाँ रात्रि-उड़ान की सुविधा प्रदान कर दी गई है। अमरीका अपने उत्तरी प्रदेश के विकास के लिए हवाई जहाज़ों का उपयोग कर रहा है। उत्तरी ध्रुव की कुछ खानें इस तरीक़े के बरतने से साल भर काम करती रहती हैं। १९३४ में पीछे हटने का कारण आर्थिक अवस्था की ख़राबी बताई जाती है। पिछले साल से न्यूफ़ाउंडलैंड को वैंकोवर से मिलाने का प्रयत्न जारी है।

(४)

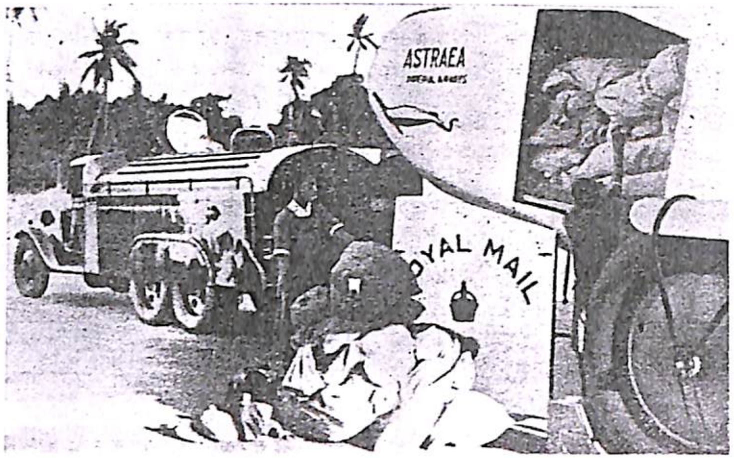
१९३४ में हवाई पथ के विस्तार में ग्रेट ब्रिटेन और जर्मनी ने सबसे अधिक प्रगति की है। फ़्रांस आर्थिक अवस्था के ख़राब रहने के कारण इसमें पीछे रहा। १९३५ में फ़्रांस फिर आगे बढ़ गया है। पेरिस का प्रान्तों के हेडक्वार्टरों के साथ हवाई सम्बन्ध स्थापित हो गया है। उसका विदेशों में बैंकाक (पेरिस-सैगन-पथ) और हनोई, टाँगकिंग से सम्बन्ध स्थापित हो गया है। पेरिस को मैडागास्कर से, अल्जियर्स, गे ओ, और बेल्जियम-कांगो की राह से जोड़नेवाला ट्रांस-अफ़्रीकन हवाई मार्ग खुल गया है। ब्रोकनहिल तक फ़्रांको-बेल्जियम का संयुक्त साहस पहुँच गया है।

जर्मनी ने रात्रि-उड़ान, हवाई मार्ग को बढ़ाने और अपनी मैशीनों को अप-टु-डेट करने में कमाल हासिल किया है। न्यासा से केप और खार्टुम की राह से केप से कैरो तक की सर्विसों पर जर्मनी का आधिपत्य है।

भविष्य में ट्रांस-ओशनिक सर्विसों के बढ़ने की बहुत सम्भावना है। फ़्रांस और जर्मनी ने पिछले बारह मास में दक्षिण-अटलांटिक में सर्विसें बढ़ा दी हैं। फ़्रांस ने पेरिस और नेटाल (ब्रेज़िल) तीन दिन में तय करके हवाई-गति



[एवरो १० का वायुयान गिलगिट में।]



[दमदम में बड़े दिन की डाक उतारी जा रही है।]

में नये अध्याय का आरम्भ किया है। आज-कल जर्मन और फ्रेंच-कम्पनियाँ कायडन से ब्यूनोस ऐरेस जाने में चार दिन लेती हैं।

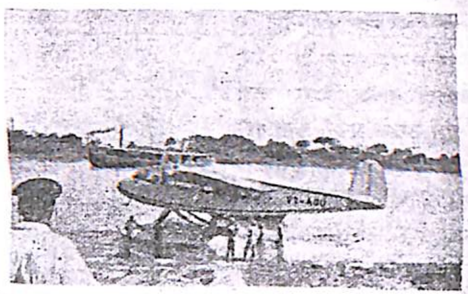
पान-अमरीका एयरवेज़ ने सेनफ्रांसिस्को को मनीला से जोड़ दिया है और अब वह न्यूज़ीलेंड-सरकार से दूसरा ट्रांस-पैसिफ़िक मार्ग बनाने के विषय में बात-चीत कर रही है। इसके द्वारा सन्फ्रांसिस्को का होनोलुलु और सामोआ के द्वारा वेलिंगटन से सम्बन्ध हो जायगा।

(५)

इस सबके मुक़ाबिले में भारत की स्थिति क्या है? समुद्र-पारवर्ती (ट्रांस-ओशनिक) भारत की कोई हवाई सर्विस नहीं है। इँग्लेंड व योरप तथा अमरीका जानेवाली भारतीय डाक इम्पीरियल एयरवेज़, डच-कम्पनी व फ्रेंच-कम्पनी ले जाती है। समुद्र-मार्ग से डाक तथा मुसाफ़िरों को ले जाने के लिए जैसे हम परमुखापेक्षी हैं, उसी प्रकार हवाई डाक के विषय में भी हम परमुखापेक्षी हैं। इँग्लेंड केवल इसी लिए रो रहा है कि दक्षिण-अफ़्रीका तथा मध्य-योरप को हवाई डाक भेजने के लिए उसे प्रतिवर्ष विदेशी हवाई कम्पनियों को लगभग ३०,००० पौंड देना पड़ता है। जब समृद्ध इँग्लेंड को यह तुच्छ रक़म अखर रही है तब भारत जैसे ग़रीब मुल्क के लिए जिसकी अपनी हवाई सर्विस तो दूर रही, सामुद्रिक सर्विस भी कोई नहीं है, प्रतिवर्ष डाक और मुसाफ़िरों के ढोने के रूप में इस देश से जा रहा धन-प्रवाह कितना घातक है, इसका सहज ही अन्दाज़ा लगाया जा सकता है।

(६)

आन्तरिक सर्विस के लिए भारत में पाँच कम्पनियाँ हैं। इनमें ट्रांस-कान्टिनेंटल एयरवेज़ इम्पीरियल एयरवेज़ के साथ मिल कर कलकत्ता से सिंगापुर डाक ले जाती है। और अब यह प्रस्ताव है कि वह आगे आस्ट्रेलिया के ब्रिसवेन तक डाक ले जाया करे। इण्डियन नेशनल एयरवेज़ केवल कराची से लाहौर तक डाक ले जाती है। इसको एक साल के लिए भारत-सरकार की ओर से सहायता दी गई है। इसका जीवन संकट में है। ये दोनों योरपीय कम्पनियाँ हैं।



[ब्रह्मदेश में माल ले जानेवाला सीप्लेन वायुयान।]

हिमालयन एयरवेज़ सहायता के अभाव में सिसक रही है। इसकी कोई नियमित सर्विस नहीं है। इरावती फ्लोटीला एण्ड एयरवेज़ रंगून से माण्डले और रंगून से मिट्टी के तेल की खानों की जगह चीनान गीयाँग तक सर्विस करती है। इस दृष्टि से नियमित सर्विस करनेवाली ताता कम्पनी ही है। इसको भी अपनी बम्बई-त्रिवेन्द्रम सर्विस सफलता से चलाने पर भी बन्द कर देनी पड़ी है। इन कम्पनियों के नियमित कार्य पर निम्नतालिका से अच्छा प्रभाव पड़ेगा—

नाम कम्पनी	सन्	डाक (टन)	माल व मुसाफ़िर (टन)	उड़ान	वृद्धि (प्रतिशत)
इण्डिया ट्रांस-	१९३५	८६·२	११,७,१८०·२	२०८	१२८·५
काण्टिनेन्टल	१९३४	३७·७	७८,३७५·४ (टन)		
ताता कम्पनी	१९३५	३०·२	३६४ पौ० ४० मु०	३०७	६३
	१९३४	१८·५	१११ पौ० १४		७६
	१९३३	१०·५			
इण्डियन नेशनल	१९३५	११३	७५ पौ० २ मु०	२०१	
हिमालय एयरवेज़	१९३५		३५०	१६०	
इरावती फ़्लोटिला	१९३५		२७ पौ० ३२२ मु०		

इस नियमित कार्य के अलावा प्रदर्शन के वास्ते, प्रतिष्ठित पुरुषों को सैर कराने के लिए तथा मुसाफ़िरों को पहुँचाने के वास्ते भी ये कम्पनियाँ व हवाई क्लब अपनी मशीनों का उपयोग करते हैं। १९३५ में इस दिशा में इनके द्वारा हुए कार्य पर निम्नतालिका प्रकाश डालती है—

अनियमित हवाई ट्रान्सपोर्ट सर्विस

	यात्रा	उड़े घंटे	मील	मुसाफ़िर
इण्डियन नेशनल	४६१	८९४	८३,९६०	७९५
ताता सन्स	—	३७५	३३,९६७	१
हिमालय एयरवेज़	५७४	५०६	३६,६९६	२७५
इरावती फ़्लोटिला	१४३	१,०२६	७६,१४७	३४९
हवाई क्लब्स	५०	४२८	३१,४७८	६३
सर्वयोग १९३५	१,२२८	३,२३२	२,६२,२४८	१,४८३
सर्वयोग १९३४	२७२	८२७	७७,५०१	३२६



[सम्मेलन के लिए फ़्यूज़िलेज तैयार किया जा रहा है।]

आनन्द व उल्लास के लिए व्योम-विहार भी हवाई जहाज़ कराते हैं। इण्डिया एयर पेजेण्ट्स कम्पनी के बन्द हो जाने के कारण इस दिशा में १९३५ में कमी हुई है। १९३५ में व्योम-विहार की प्रगति पर निम्नतालिका अच्छा प्रकाश डालती है—

	उड़ान	उड़े घण्टे	मुसाफ़िर
इण्डियन नेशनल	८१५	१५५	२,४१७
हिमालय एयरवेज़	२,५५६	३५२	६,९९१
इरावती फ्लोटिला	८९	२०	२,३९
फ़्लाइंग क्लब्स	—	२६९	३,४००
सर्वयोग १९३५	३,४६०	७१६	१३,०४७
सर्वयोग १९३४		१,२५७	२८,५५०

इससे स्पष्ट है कि हवाई सर्विस इस देश में अभी सर्वथा शैशवावस्था में है। और यदि इसकी समय रहते रक्षा न की गई तो भारत समुद्र के समान आकाश में भी पीछे रह जायगा। इस सम्बन्ध में एक बात और स्मरण रखने की है। हवाई सर्विस के संचालन और इसकी व्यवस्था में ४०६ आदमियों में से ३०९ भारतीय और केवल ९७ योरपीय हैं, मगर ज़िम्मेदारी और सब ऊँचे पद योरपीयों के पास हैं। कराची के एयरपोर्ट का एकमात्र इन्तज़ाम एक भारतीय को दिया गया है। इसलिए रेलवे के समान हवाई सर्विस पर भी योरपीयों का प्रभुत्व और नियन्त्रण क़ायम हो जाने की आशंका है। हमारे भय की पुष्टि आगे की तालिका करती है—

नाम कम्पनी	व्यवस्थापक स्टाफ़		पिलट और वायरलेस आपरेटर		ग्राउण्ड इंजीनियर		इंजीनियर शागिर्द		अन्य		योग
	भारतीय	योरपीय	भारतीय	योरपीय	भारतीय	योरपीय	भारतीय	योरपीय	भारतीय	योरपीय	
इंडियन ट्रान्स कान्टिनेन्टल	१	१५	१	११	२७	४९	६		८५		[illegible]
ताता सन्स	११	१	५	१	३	१	१०		९		[illegible]
इण्डियन नेशनल	१०	२	२	४	४	४	४		६१		[illegible]
हिमालय एयरवेज़		१		१		१	१		२	१	[illegible]
							ड्राइंग वर्क रूम				
इण्डियन एयर सर्वे एन्ड ट्रान्सपोर्ट	वर्कशाप स्टाफ़	१९		१	२	१	२४	२	१	२३	[illegible]

इन चित्र से स्पष्ट है कि ताता एण्ड सन्स को छोड़कर अन्य सब कम्पनियाँ योरपीयों पर आश्रित हैं। यह पर-निर्भरता भारतीय हवाई सर्विस के विकास के लिए घातक है।

(७)

देश में हवाई मनोवृत्ति उत्पन्न करने के लिए जनता के दिल में हवाई जहाज़ में दिलचस्पी और शौक़ पैदा करने के वास्ते तथा युवकों को हवाई शिक्षा देने के लिए और व्योम-विहार के वास्ते दिल्ली, कानपुर, बम्बई, कलकत्ता, मदरास, करांची, लाहौर, जोधपुर और हैदराबाद में हवाई समितियाँ (फ़्लाइंग क्लब्स) खुली हुई हैं। इनको सरकार से सहायता भी दी जाती है। इनके कार्य पर निम्नतालिका कुछ रोशनी डालने में सहायक होगी—

साल	मेम्बर	हवाई जहाज़	पिलट	उड़े घंटे
१९३०	१,५९६	१९	९३	७,५४२
१९३१	१,८८०	२०	११३	९,०७२
१९३२	१,५३८	२६	८५	९,७१७
१९३३	१,५५०	२९	६८	१०,९९५
१९३४	१,७८४	३३	८८	११,७८०
१९३५	१,६९०	३२	७७	१०,८६०

हवाई क्लबों के १,६९० मेम्बरों में ६२६ योरपीय और १,०२३ भारतीय हैं। इसी प्रकार शिक्षाप्राप्त ७७ में से १९३५ में ५८ भारतीय थे। ब्रिटिश भारत के क्लबों को १,३४,७०० रुपया सहायता में मिला। इन क्लबों के कारण सरकार को १९३५-३६ पेट्रोल-कर से ५६,००० रुपया की आमदनी हुई। केवल एक क्लब से उसे ११,००० रुपया मिले।

भारत में हवाई शिक्षा की पूरी और समुचित व्यवस्था नहीं है। यहाँ केवल ए० श्रेणी के ही उड़ाके तैयार किये जाते हैं। इनको व्यावसायिक लाइसेन्स दिया जाता है। मगर इससे ऊँची श्रेणी बी० श्रेणी के पिलट तैयार करने की शिक्षा की यहाँ व्यवस्था नहीं है। इसके साथ हवाई शिक्षक तैयार करने के लिए यहाँ कोई शिक्षणालय भी नहीं है। इसके लिए भारत इँग्लैंड पर आश्रित है। बी० श्रेणी की शिक्षा का इन्तज़ाम न करने के लिए सरकार ने वही पुराना लँगड़ा बहाना दिया है कि पर्याप्त मात्रा में विद्यार्थी नहीं मिलते। इस श्रेणी के पिलट ही रात में सिर्फ़ आन्तरिक साधनों के बल पर हवाई जहाज़ चला सकते हैं। इनको १०० घंटा एक साथ उड़ने का अभ्यास होना चाहिए। इसके साथ इनको ऋतु-शास्त्र का और नौका-नयन का भी ज्ञान होना चाहिए। कहना न होगा कि 'वाइसराय-कप' जीतकर श्रीयुत मिश्रीचन्द ने यह सिद्ध कर दिया है कि यदि शिक्षा दी जाय तो भारतीय युवक संसार के अन्य युवकों का भले प्रकार मुक़ाबिला कर सकते हैं। इसलिए सबसे बड़ी ज़रूरत है कि हवाई शिक्षा की यहाँ समुचित व्यवस्था की जाय और भारतीय पिलट-शिक्षक, भूमि-इंजीनियरिंग, वायरलेस आपरेटर तैयार किये जायँ। दिल्ली में खुला हुआ शिक्षणालय यदि इसकी व्यवस्था नहीं कर सकता तो उस पर रुपया ख़र्च करना व्यर्थ है।

बी० श्रेणी की शिक्षा न देने का दूसरा कारण यह दिया गया है कि इँग्लैंड से अब यहाँ शिक्षक नहीं आते। जो आते हैं वे वेतन ज़्यादा माँगते हैं। इस आर्थिक मन्दी और बेकारी के युग में भारत-सरकार के अधिकारियों के मुँह से यह कारण सुनकर हँसी आये बिना नहीं रहती। प्रश्न तो यह है कि क्या जर्मनी, फ़्रांस, हालेंड, अमरीका से सस्ते और अधिक योग्य शिक्षक नहीं बुलाये जा सकते। बात यह है कि इसमें भी हम सरकार के ऊपर अत्यधिक आश्रित हैं। हमारे धनी-मानी लोग इधर से सर्वथा उदासीन हैं और यह क्षेत्र भी उनके हाथ से निकलता जाता दीखता है।



[सेक्रेटेरियट और कौंसिल चेम्बर (नई दिल्ली)—हवाई जहाज़ से लिया गया चित्र ।]

वाइसराय और देशी नरेशों के अलावा कुछ धनी लोग भी हवाई जहाज़ निजी काम के लिए रखने लगे हैं। एक ६५ साल के वृद्ध पुरुष हवाई जहाज़ पर बैठकर ही अपने गन्ने के खेतों का निरीक्षण करते हैं। जंगलात के एक अफ़सर भी हवाई जहाज़ पर ही दौरा करते हैं। एक तीसरे सज्जन का अनुभव है कि १८-२० मील पर एक गैलन पेट्रोल ख़र्च होता है। ये सज्जन घर को छुट्टी जाने के सिवा तीन साल से गाड़ी पर नहीं चढ़े हैं। यह साहसिक प्रवृत्ति सराहनीय है। मगर अपने विशाल देश को देखते हुए यह दाल में नमक के बराबर भी नहीं है।

(८)

भारत-सरकार ने मुल्की हवाई प्रगति पर १९३५-३६ में १७,५७,५००) ख़र्च किये और इस साल २३,८०,०००) ख़र्च करने का उसका विचार है। भारत-सरकार ने एम्पायर एयर मेल शुरू हो जाने से भारतीय विमान-पथ से सप्ताह में दो से ५ सर्विसें हर एक दिशा में चलाने की योजना बनाई है। लंदन की डाक २½ दिन में कराची पहुँचा करेगी। पहली श्रेणी की साम्राज्य की डाक हवाई जहाज़ से जाया करेगी। इस योजना को पूरा करने के लिए ऐसे एरोड्रामों की ज़रूरत होगी जो रात को भी रोशन रहेंगे, क्योंकि रात में बिना उड़े यह योजना सफल नहीं हो सकती। सरकार की योजना है कि १०० मील की दूरी से हवाई मार्ग पर एरोड्राम बनाये जायँ। ब्रिटिश सरकार की क्रायडन से बिसबेन और मेलबोर्न तक हवाई डाक ले जाने की योजना का यह एक अंग है। साम्राज्य के विभिन्न अंगों को एक सूत्र में करने की यह योजना है। यदि बी० श्रेणी के पिलट और ग्राउण्ड इंजीनियरिंग की यहाँ उच्च शिक्षा का इन्तज़ाम न किया गया तो निस्सन्देह हमें जान लेना चाहिए कि मुल्की हवाई सर्विस में भी रेलवे के समान योरपीयों का प्रभुत्व हो जायगा। और बाद में जैसे हम आज डफ़रिन के केडटों को नौकरी दिलाने के लिए आन्दोलन करते हैं, उसी प्रकार उड़ाकों को हवाई सर्विसों में भरती कराने के लिए हम आन्दोलन किया करेंगे। यह ठीक है कि सरकार साम्राज्य के लाभ के लिए भारत में हवाई प्रगति की ओर ध्यान दे रही है। मगर यदि उससे हमें लाभ पहुँचता है तो हम क्यों न लाभ उठावें?

इसके लिए आवश्यक है कि देश के ज़िले ज़िले में हवाई क्लब खोले जायँ। हमारे विश्वविद्यालय हवाई-शिक्षा को अपने पाठ्य-क्रम में स्थान दें। हिन्दू-विश्वविद्यालय का इंजीनियरिंग कालेज एशिया में सबसे बड़ा कालेज है। यह आसानी से ग्राउण्ड इंजीनियरिंग और वायरलेस आपरेटरी की शिक्षा की व्यवस्था कर सकता है। धनियों और व्यवसायियों को हवाई सर्विसें जारी करने के लिए कम्पनियाँ खोलकर अपने रुपयों का सदुपयोग करना चाहिए। भारत-सरकार



[लेफ़्टिनेंट मिश्रीचन्द जिन्होंने हवाई दौड़ में वायसराय की ट्रोफ़ी जीती है ।]

का जितना ध्यान सिंगापुर और ब्रिसबेन में ठीक समय पर डाक पहुँचाने का है, उतना उसका ध्यान इस बात की ओर नहीं है कि भारत के गाँव-गाँव में रोज़ डाक पहुँच जाया करे। भारत-सरकार से इस विषय में हम बहुत कुछ आशा नहीं कर सकते, क्योंकि वह जो कोई भी काम करेगी, साम्राज्य की भलाई के लिए करेगी, भारत की भलाई उसके लिए गौण है।' हमें अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए।

(९)

हम साइकिलों, मोटरों, मोटर-साइकिलों, इनके छोटे-से-छोटे पुर्ज़ों के लिए विदेशों पर निर्भर हैं। जापानी साइकिलें १७-१७ रुपये में यहाँ बिक रही हैं, मगर हम अपने देश में अभी तक एक भी साइकिल नहीं बना सके हैं। हवाई जहाज़ों के लिए भी हम विदेशों के मुखापेक्षी हैं और विशेषकर इँग्लेंड के। भारत में प्रायः सबकी सब मैशीनें विदेशी हैं। इन पर हमारा कितना ख़र्च हो रहा है, इसका अन्दाज़ा निम्नतालिका से किया जा सकता है—

सन्	रुपया
१९३३	८,१८,१७४
१७३४	८,०८,५६५
१९३५	८,१६,६०८

अभी श्रीगणेश है। इस समय भी जब हम ८ लाख रुपया विदेश भेज रहे हैं तब आगे हमारा हाल क्या होगा? हवाई पथ यातायात का महत्त्व-पूर्ण अंग है। इसका रेलवे से भी अधिक महत्त्व है। यदि हम अभी समय रहते नहीं चेते तो जिस प्रकार १०० साल से रेलों में चढ़ने के बाद भी हम आज लोकोमोटिव, बायलर आदि के लिए इँग्लेंड के आश्रित हैं, इसी प्रकार हवाई मेशीनों के लिए उसके आश्रित रहेंगे।

यह बात नहीं है कि हमारे देश में हवाई जहाज़ बन ही नहीं सकते। भारत-सरकार की सिविल एविएशन १९३५-३६ की रिपोर्ट के ५८ पृष्ठ पर लिखा है कि इस देश में हवाई जहाज़ बनाने की उपयुक्त लकड़ी...उपलब्ध होती है। भारत के लिए यह बात अत्यधिक महत्त्व की है, क्योंकि हवाई जहाज़ बनाने लायक़ लकड़ी संसार में परिमित मात्रा में है। इस समय भी उपयुक्त उत्तम श्रेणी की लकड़ी पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल रही है। भारत के पास हवाई जहाज़ बनाने और मरम्मत करने लायक़ लकड़ी प्रचुर मात्रा में है। वह अपनी आवश्यकतायें पूरी कर अन्य देशों को भी लकड़ी भेज सकेगा। यह धन्धा और व्यवसाय जहाँ देश को समृद्ध करेगा, वहाँ युवकों को साहसी और वीर बनायेगा। क्या हम आशा करें कि कोई विश्वेश्वरैया हवाई जहाज़ बनाने का कारख़ाना खोलने के लिए भी उद्योग करेगा?

साहित्यिक संस्मरण

लेखक, श्रीयुत गोपालराम गहमरी

गहमरी जी ने अपने संस्मरण के इस लेख में स्वर्गीय श्रीयुत बालमुकुन्द जी के सम्बन्ध में अपने संस्मरण लिखे हैं। गुप्त जी अपने समय के एक प्रसिद्ध सम्पादक थे। उनके प्रयत्नों से 'भारतमित्र' को हिन्दी के साप्ताहिकों में बड़ा उच्च स्थान प्राप्त हुआ था।

बालमुकुन्द गुप्त

अपने पहले लेख, में मैंने कालेकाँकर-नरेश राजा रामपालसिंह के संस्मरणों को लिखा था, इस लेख में अपने परम मित्र बाबू बालमुकुन्द गुप्त जी के संस्मरण जितने याद हैं, लिख रहा हूँ।

बाबू बालमुकुन्द गुप्त रोहतक-ज़िला के गुरियानी के रहनेवाले अग्रवाल वैश्य थे। आप फ़ारसी-अरबी के अच्छे जानकार आस्तिक हिन्दू थे। नई रोशनीवालों की धाँधली पर बहुत चिढ़ते थे। पहले लाहौर से निकलनेवाले द्विदैनिक 'कोहेनूर' के सम्पादक थे। पीछे से उसको उन्होंने दैनिक भी कर दिया था। लेकिन हिन्दी लिखने की रुचि उनको बहुत थी। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि हिन्दी-साहित्य में जब उतर आये तब उन्होंने उर्दू में लेख लिखना ही छोड़ दिया था। उर्दू में 'कोहनूर' का सम्पादन करते समय भी लखनऊ के 'अवध-पञ्च' में 'मिस्टर हिन्दी' के नाम से बड़े चुटीले लेख लिखा करते थे।

गुप्त जी हिन्दी की दुनिया में जब आये तब पहले-पहल कालेकाँकर के दैनिक 'हिन्दोस्थान' के ही सम्पादक हुए। उससे पहले उन्होंने रत्नावली नाटिका लिखी थी। कालेकाँकर में आने पर उनकी ओजस्विनी लेखनी का जौहर हिन्दी के पाठकों को देखने का अच्छा अवसर मिला।

जिस समय वे 'हिन्दोस्थान' के सम्पादक होकर आये, सम्पादन-विभाग से पंडित मदनमोहन मालवीय विदा हो रहे थे। राजा साहब से स्नेह होने के कारण मालवीय जी कभी-कभी कालेकाँकर पधारते थे, लेकिन 'हिन्दोस्थान' के सम्पादन का कार्य बाबू बालमुकुन्द गुप्त के हाथ में जा चुका था।

गुप्त जी के सम्पादकत्व में 'हिन्दोस्थान' अच्छा चमका। राजा रामपालसिंह उनके प्रभावशाली लेखों से बहुत प्रसन्न रहते थे।

बालमुकुन्द गुप्त जी सम्पादकीय सिद्धान्तों में बड़े पक्के थे। किसी की सिफ़ारिश से किसी की प्रशंसा करना या किसी की द्वेष-बुद्धि में आकर किसी की निन्दा छापना उनके स्वभाव में नहीं था, लेकिन वे कहा करते थे कि 'जिसको सरसों भर बुद्धि है उसका सरसों भर तक अभिमान क्षन्तव्य है, लेकिन जो सरसों भर बुद्धि लेकर मटर भर घमण्ड रखता है वह जब तक सर्वसाधारण में अपना घमण्ड प्रकट न करे तभी तक क्षमा के योग्य है। अगर उसने ऐसा घमण्ड सर्वसाधारण में ज़ाहिर किया तो अपना परिचित होने पर ज़रूर उसका प्रतिवाद करके मुखमर्दन करना चाहिए।'

गुप्त जी अच्छे अख़बारनवीस थे। सम्पादक के कर्तव्य-पालन में उनमें हमने कभी कचाई नहीं देखी। जब वे 'हिन्दोस्थान' के सम्पादक थे उस समय वहाँ पंडित प्रतापनारायण मिश्र, चौबे राधारमण बी० ए० (दपवा), चौबे गुलाबचन्द, और मैं भी सहायकों में था। मिश्र जी अच्छे प्रभावशाली कवि थे। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के समकक्ष कवियों में उनकी गणना थी। 'हिन्दोस्थान' में वे अक्सर कविता लिखा करते थे। 'तृप्यन्ताम्' नाम की एक कविता उन्होंने एक साल पितृपक्ष में वहीं लिखी थी। फ़सल पर गुप्त जी उनसे लेख भी लिया करते थे।

गुप्त जी को एक बार हमने व्यक्तिगत आक्षेप का लेख 'हिन्दोस्थान' में लिखते देखा था। बात यह हुई कि साहित्याचार्य पंडित अम्बिकादत्त व्यास उन दिनों भागलपुर-हाईस्कूल में हेड पंडित थे। वहीं से उन्होंने 'पीयूषप्रवाह' नाम का एक मासिक पत्र हिन्दी में निकाला था। राजा रामपालसिंह सुधारकों में अग्रगण्य थे। हिन्दी का प्रचार, विधवा-विवाह और गोरक्षा के विषयों के लेख 'हिन्दोस्थान' में बहुत छपा करते थे। गुप्त जी में यह गुण था कि सुधारकों की उचित बात का विरोध कभी नहीं करते थे। 'पीयूषप्रवाह' में पंडित अम्बिकादत्त व्यास ने 'काज़ी जी

डुबते क्यों' नाम का एक लेख छापा, जिसमें राजा रामपालसिंह पर यह आक्षेप था कि अत्रभवान तो चाहते हैं कि सारा भारत इँग्लैंड हो जाय, लेकिन जो मर्दुमशुमारी दस दस साल पर पाँच पाँच करोड़ बढ़ रही है उसी से यहाँ के लोगों को दोनों जून भरपेट खाने को नहीं मिलता और अब यदि अत्रभवान के सिद्धान्त पर विधवा-विवाह का भण्डा फूटेगा तो भारत की मेदिनी और भूखों मरने लगेगी।

यह लेख राजा साहब के सामने आया। उन्होंने कहा कि कोई इसका मुँहतोड़ उत्तर नहीं दे सकता। गुप्त जी ने उसी दम कहा—कल मैं इसका उत्तर 'हिन्दोस्थान' में निकाल दूँगा।

उसी अवसर पर गुप्त जी ने 'हिन्दोस्थान' में एक लेख लिखा, जिसका शीर्षक था 'मैं सुकवि हूँ'। पंडित अम्बिकादत्त जी व्यास अपनी कविता में अपना उपनाम 'सुकवि' लिखा करते थे। उस लेख में सुकवि जी की ख़ूब ख़बर ली गई। व्यक्तिगत आक्षेप का वही एक लेख उनको हमने लिखते देखा था और सो भी 'डिफ़ेमेशन' में नहीं आता था। कालाकाँकर से अपने स्वतंत्र स्वभाव के कारण गुप्त जी नौकरी छोड़कर घर चले गये।

राजा साहब से उनका साधारण व्यवहार था। उनका मन वहाँ नहीं लगता था। वे वैष्णव थे। रोज़ स्नान करके माथे पर श्री लगाते थे। आचरण के बड़े शुद्ध और सात्त्विक थे। लेकिन जो आदमी खान-पान में अखाद्य-भोजी होता उससे उनकी नहीं पटती थी। नहीं पटने का केवल इतना ही मतलब कि हृदय का मिलान नहीं होता था। राजा साहब खान-पान में बड़े स्वतन्त्र थे। वे अपने खाने-पीने के मामले में स्वास्थ्य या भारतीय रवाज की



[स्वर्गीय बालमुकुन्द गुप्त]

कुछ भी परवा नहीं करते थे। इस कारण राजा साहब के यहाँ बिना बुलाये वे कभी नहीं जाते थे। जब बुलाने पर जाते तब जितना समय वहाँ बारादरी में उनका बीतता उसको वे भार समझते थे। बल्कि कहा करते थे कि वह समय किसी अर्थ में नहीं लगा। लेख स्वयं लिखने के बजाय डिकटेट कराना अधिक पसन्द करते थे। अँगरेज़ी अख़बारों को देखकर उनका स्वाद ले लेने की योग्यता उनमें काफ़ी थी। किसी दूसरी भाषा से हिन्दी में लेकर कुछ बात लिखते थे तो केवल फ़ैक्ट लेकर अपनी ओर से

मौलिक की तरह लिखा करते थे। किसी की लकुटिया लेकर टेकते चलना अर्थात् शब्दानुवाद करना उनको नहीं भाता था। विलायती रहन-सहन और सभ्यता को बिलकुल नापसन्द करते थे। लेकिन उसमें जो गुण पाते उनसे कभी घृणा नहीं करते थे। आर्य-समाज में घासपार्टी और मांसपार्टी उस समय हुई थी जब महाराजा जोधपुर ने विज्ञापन देकर वेदों से मांसाहार सिद्ध करने का प्रयास किया था। पण्डित भीमसेन शर्मा ने बड़े निःशङ्कभाव से उस कार्य का विरोध किया और पण्डित भास्करानन्द सरस्वती (काशी के प्रसिद्ध महात्मा भास्करानन्द नहीं) ने वेदों से मांसाहार विधेय बतलाने का बीड़ा उठाया था। उस समय उन्होंने कहा कि आर्यसमाज अब पतनोन्मुख हुआ है। आर्य-सिद्धान्त का युग समाप्त करके जब पण्डित भीमसेन शर्मा ने 'ब्राह्मण-सर्वस्व' का मार्गावलम्बन किया तब गुप्त जी ने कहा था कि पण्डित जी ने अच्छा किया कि सवेरे के भूले हुए संध्या को घर आ गये। लेकिन इस तरह उजरत पर सिद्धान्त बदलना वज़न नहीं रखता।

अँगरेज़ी-बँगला दोनों के अख़बार पढ़ा करते थे, लेकिन उर्दू के अख़बारों को बड़े चाव से पढ़ते थे। 'कोहनूर', 'शमशुल अख़बार' अमृतसर का 'सद्धर्म-प्रचारक' केवल उनकी लन्तरानियों का जवाब देने के लिए पढ़ा करते थे। पायनियर, मार्निङ्गपोस्ट और सिविल मिलिटरी ग़ज़ट में ख़बरें न पढ़कर अग्रलेख और स्फुट सम्मतियों को बड़े चाव से पढ़कर उनका उत्तर 'हिन्दोस्थान' में और कलकत्ते के प्रवासकाल में, 'भारतमित्र' में दिया करते थे। लखनऊ के बाबू गङ्गाप्रसाद वर्मा-द्वारा सम्पादित उर्दू का साप्ताहिक 'हिन्दुस्तानी' बड़ी श्रद्धा-भक्ति से पढ़ा करते थे।

'बङ्गवासी' के मालिक श्रीयुत योगेन्द्रचन्द्र वसु ने बङ्ग-भाषा में 'मड़ेलभगिनी' नाम का एक बड़ा उपन्यास लिखा था। उसमें सुधारकों की ख़ासी खिल्ली उड़ाई गई है। गुप्त जी को वह पुस्तक हिन्दी में लिखने के लिए दी गई। गुप्त जी ने अपने घर गरियानी से ही उसको पढ़कर 'शिक्षित हिन्दूबाला' के नाम से 'हिन्दी-बङ्गवासी' में छपने को भेजना शुरू किया था, जो 'हिन्दी-बङ्गवासी' में बड़ी धूमधाम से बहुत दिनों तक छपता रहा। उस समय 'हिन्दी-बङ्गवासी' के सम्पादक पंडित अमृतलाल चक्रवर्ती थे। गुप्त जी उसी समय 'हिन्दी-बङ्गवासी' के सम्पादन-कार्य के सिलसिले में कलकत्ते बुलाये गये। लेकिन वहाँ अन्धपरम्परा का राज था। इस कारण उस कार्यालय में गुप्त जी नहीं ठहर सके। बात यह हुई कि उन दिनों व्याख्यान-वाचस्पति पंडित दीनदयाल शर्मा हिन्दी के अद्वितीय वक्ता थे। जब कलकत्ते पधारे तब गुप्त जी 'हिन्दी-बङ्गवासी' के सम्पादक थे। पंडित दीनदयालु शर्मा के व्याख्यानों से कलकत्ते के धनीमानी मारवाड़ी सज्जनों का आसन डोला और सनातनधर्म की उन्नति में जी खोलकर तन, मन, धन से बड़े बड़े धनी मारवाड़ी उतारू हो गये। 'बङ्गवासी' के मालिक लोग उन दिनों कलकत्ते में 'धर्मभवन' बनवाने पर तुले हुए थे। व्याख्यान-वाचस्पति से धर्मभवनवालों की पटरी नहीं बैठी। गुप्त जी ने पंडित दीनदयालु जी का विरोध करने से इनकार कर दिया, इसी से उनको 'बङ्गवासी-कार्यालय' छोड़ देना पड़ा।

जब गुप्त जी वहाँ से अलग हुए, कलकत्ते के सद्-योगी बाबू जगन्नाथदास ने उसी समय 'भारतमित्र' का सम्पादन-भार गुप्त जी को सौंपना चाहा। लेकिन गुप्त जी ने इस तरह एक साप्ताहिक हिन्दी को छोड़कर दूसरे को हाथ में लेना अपनी मर्यादा के बाहर समझ कर अनुचित बतलाया और कहा कि घर जाते हैं, वहाँ से आपकी बुलाहट होगी तो मैं आ जाऊँगा।

वही बात हुई। घर पहुँचते ही गुप्त जी को 'भारत-मित्र' के मालिकों की बुलाहट गई। गुप्त जी 'भारतमित्र' का सम्पादन-भार लेकर फिर कलकत्ते लौटे।

गुप्त जी ने 'भारतमित्र' को ऐसा उन्नत किया, जैसा वह अपनी चालीस वर्ष की ज़िन्दगी में कभी लोकप्रिय नहीं हुआ था। 'भारतमित्र' एक सुधारक पत्र था, लेकिन सनातनी सिद्धान्त का शत्रु नहीं था। गुप्त जी ने उसकी नीति किसी पक्ष पर नहीं, सत्य पर रक्खी और दो टूक न्याय की बात कहना उन्होंने अपना सिद्धान्त रक्खा। इस कारण सब पक्ष के लोग 'भारतमित्र' की नीति से प्रसन्न थे। लोगों में 'भारतमित्र' की बड़ी मर्यादा बढ़ी। गुप्त जी व्यङ्गभरी कविता भी 'भारतमित्र' में समय-समय पर लिखते थे। उनकी बहुत-सी कविताओं का सङ्ग्रह 'स्फुट कविता' के नाम से भारतमित्र-प्रेस में निकला था। उनके भारत-मित्र में आने से पहले पंडित रुद्रदत्त शर्मा 'भारतमित्र' के

सम्पादक थे। उनके लेखों से 'भारतमित्र' के सनातनधर्मी पाठक बहुत हट गये थे। गुप्त जी की निर्भीक और निष्पक्ष लेखनी से सब प्रसन्न हो गये और 'भारतमित्र' का प्रचार खूब बढ़ा। गुप्त जी हमारे ऊपर बड़ी कृपा रखते थे। वे अपने लड़के बाबू नवलकिशोर की शादी में जब घर गये तब 'भारतमित्र' का सम्पादन-भार कुछ महीनों के लिए हमको ही देकर गये थे। हमारे ऊपर उनका जैसा स्नेह था, वैसा ही हमारा विश्वास भी वे करते थे।

गुप्त जी हँसोड़ इतने थे कि बात-बात में दिल्लगी किया करते थे। उर्दू की लिखावट की बड़ी खिल्ली उड़ाया करते थे। जब 'अभ्युदय' निकला तब उन्होंने कहा था कि उर्दू में वह लिखा जाय तो 'ओबेहूदे' पढ़ा जायगा। उन दिनों 'भारत-मित्र' आफ़िस में अच्छे-अच्छे सुलेखकों का जमाव था। 'उचित वक्ता' के सम्पादक पंडित दुर्गाप्रसाद मिश्र सारस्वत हिन्दी-लेखकों के सिरताज तथा सबके श्रद्धाभाजन थे। वे भी वहाँ पधार कर दो घड़ी की मौज दे देते थे। गुप्त जी में और पंडित जगन्नाथप्रसाद जी चतुर्वेदी जी में बड़ी आवाज़ाकशी होती थी। चतुर्वेदी जी हास-परिहास के प्रेमी थे, गुप्त जी भी उसी क़ेमाश के परिहास-प्रिय थे।

गुप्त जी कभी-कभी ऐसी गहरी दिल्लगी करते थे कि उसका मतलब समझ में नहीं आता था। तब उनको स्पष्ट कहकर समझाना भी पड़ता था। हमसे कई बार ऐसा हुआ था। गुप्त जी होली में दिल खोल कर अख़बारों से दिल्लगी करते थे और दशहरे के अवसर पर भी 'टेसू आये' लिखकर हिन्दी-पत्रों में टेसू की दिल्लगी किया करते थे। उनके पहले किसी ने कभी हिन्दी में टेसू पर दिल्लगी नहीं की थी। समालोचना भी दशहरा और होली के समय गुप्त जी बड़ी बेढब लिखते थे।

गुप्त जी की दिल्लगी व्यक्तिगत होकर भी ऐसी श्लेष-भरी होती थी कि व्यक्तिगत नहीं होने पाती थी। जिसके ऊपर बोली बोलते और दिल्लगी बनाते थे वह भी हँसने लगता था। वस्तुतः दिल्लगी का अर्थ यही है कि जिस से दिल्लगी की जाय उसको भी हँसी आवे। ऐसी दिल्लगी जिससे हँसने के स्थान में रुलाई आवे या अदालत में मानहानि की नौबत हो वह दिल्लगी काहे की, वह तो राह चलते भलेमानस की पगड़ी उतारने के समान होती है।

गुप्त जी की लेखनी में बड़ा बल था। जिस विषय को लेते थे उसको जिस तेज़ी से आरम्भ करते थे, अन्त तक उसी ओज से ले जाते थे। कलकत्ते के ठाकुर घराने की धनी, शिक्षित और शिष्टजनों में बड़ी मान-मर्यादा है। एक माननीय ठाकुर ने अश्रुमती नाम का एक नाटक लिखा था, जिसमें राजपूत-महिलाओं के सम्मान पर गर्हित आक्षेप था। उसका अनुवाद भारत-जीवन के बाबू रामकृष्ण वर्मा ने छापा। उसको देखकर गुप्त जी बहुत ही बिगड़े और उसकी बड़ी कड़ी आलोचना की। अन्त में बाबू रामकृष्ण वर्मा को उस पुस्तक को गङ्गाप्रवाह करके प्रायश्चित्त करना पड़ा। ऐसी घटना हिन्दी-साहित्य में उसके सिवा कभी सुनने में नहीं आई। भूल सबसे होती है, लेकिन भूल क़बूल करके प्रायश्चित्त करना बहुत बड़े हृदय का काम है। और वस्तुतः भूल का दण्ड भी यही है कि भूल क़बूल कर ली जाय। बाबू रामकृष्ण वर्मा ने उस भूल को क़बूल करके उचित सफ़ाई दी थी।

जो नेता लोग दिखौआ ठाट रखते और नाम पैदा करने के लोभ में ही देशहित के कार्यों की ओर मन नहीं देते थे उन पर अपने पत्र में समय-समय पर आक्षेप किया करते थे। वे धर्म के ढकोसले कुछ नहीं करते थे। धर्म के नाम पर ढोंग करनेवालों की चालें वे खूब समझते थे और उन पर दशहरे और होली के अवसर पर गद्य और पद्य में व्यङ्ग्य लिखकर मन का गुबार निकाला करते थे। यह भी कहा करते थे कि मनु ने जो मेड़ें तैयार की हैं उनको तोड़नेवाली बाढ़ कभी आवेगी।

गुप्त जी हरियाने के रहनेवाले थे। इस देश की गायों को देखकर बहुत दुखी हुआ करते थे। इसका बड़ा पश्चात्ताप करते थे कि जहाँ से यह रत्न दुहा करते हैं उस भाण्डार के कल्याण का कुछ भी ध्यान रखते तो यह मैयारूपिनी गैया इस तरह दीन-दशा में दिन न बिताती।

अफ़सोस! गुप्त जी बहुत जल्दी अकाल में ही संसार से उठ गये। उनको प्रमेह रोग था, जो सन् १९०८ में इतना प्रबल हुआ कि बहुत कुछ उपचार करने पर भी शान्त नहीं हुआ। उसी पीड़ा से गुप्त जी को लाचार होकर घर जाना पड़ा और घर पहुँचते ही उनका देहावसान हो गया।

सिंघनपुर के शिलाचित्र

लेखक, श्रीयुत ज्वालाप्रसाद मिश्र, बी० एस-सी०, एल एल० बी०

गत जुलाई की 'सरस्वती' में मेरा एक लेख 'प्रस्तरयुग की अमिट विभूतियाँ' शीर्षक प्रकाशित हुआ था। उसमें सिंघनपुर आदि स्थानों में उपलब्ध कुछ शिलाचित्रों का वर्णन किया था। उक्त लेख के लिखने का मेरा अभिप्राय यह था कि हिन्दी-पत्रों में भी इस रोचक विषय पर कुछ चर्चा हो। हर्ष की बात है कि मेरा उद्देश बहुत कुछ अंशों में पूरा हुआ। सितम्बर की 'सरस्वती' में श्रीयुत विश्वम्भरनाथ जी ने 'प्रस्तरयुग के अवशेषों का काल-निर्णय' शीर्षक लेख लिखकर सिंघनपुर के चित्रों की प्राचीनता पर शंका उठाई है।

मैंने अपने लेख में श्री घोष और दत्त महोदय का उल्लेख किया था। इन दोनों ने सिंघनपुर के शिलाचित्रों पर सचित्र पुस्तकें लिखी हैं। श्री अमरनाथ जी दत्त की पुस्तक का नाम है 'ए फ़्यू प्रीहिस्टारिक रेलिक्स एण्ड दि राक पेन्टिंग्स आफ़ सिंघनपुर' और इसके प्रकाशक हैं श्री गगनचन्द्र बोराल एम० ए० बी० एल्०, १५, हीड़ाराम बनर्जी लेन, कलकत्ता। मूल्य इसका ४) है। रायसाहब मनोरञ्जन घोष (अब स्वर्गीय) की पुस्तक का नाम है 'राक पेन्टिंग्स एण्ड अदर पेन्टिंग्स आफ़ प्रीहिस्टारिक एण्ड लेटर टाइम्स' और यह गवर्नमेंट आफ़ इण्डिया सेण्ट्रल पब्लिकेशन ब्रांच कलकत्ता से आर्कियालाजिकल सर्वे आफ़ इण्डिया के मेमायर्स के चौबीसवें खण्ड के रूप में प्रकाशित हुई है। इनमें से दत्त महोदय तो सिंघनपुर के सभी चित्रों को २० हज़ार वर्ष के पुराने सुदूरवर्त्ती प्रस्तरयुग के मानते हैं, परन्तु घोष महोदय उनमें से केवल उन्हीं चित्रों को उस युग के मानते हैं जो चट्टान की पश्चिम की ओर अधिक ऊँचाई पर लाल रंग में खिंचे हुए हैं और जिनमें वन-मानुष तथा शिकार के दृश्य मुख्य हैं। बाक़ी चित्रों को जो पूर्व की ओर कम ऊँचाई पर काले तथा पीले से रंगों में हैं, वे ईसा के बाद नवीं या दसवीं सदी के ठहराते हैं। उनका कहना है, पीले रंग का चित्रण लाल रंग के बाद आविष्कृत हुआ है। हम इन दोनों में से घोष महोदय की पुस्तक को अधिक प्रामाणिक मानते हैं। ये घटना

म्युज़ियम के क्युरेटर थे और बिहार-सरकार-द्वारा सिंघनपुर तथा होशंगाबाद के चित्रों का विशेष अध्ययन करने के लिए भेजे गये थे। सन् १९२१ में इन्होंने सिंघनपुर के और सन १९२२ में होशंगाबाद के चित्रों का निरीक्षण किया और इन दोनों के पूरे पेनल सविस्तर अपनी उपर्युक्त पुस्तक में छपाये।

होशंगाबाद के चित्रों को घोष महोदय ईसा की नवीं या दसवीं सदी के मानते हैं। इन चित्रों में तीर, धनुष, तलवार, घोड़ा, सैनिक और युद्ध के दृश्य अंकित हैं, जो उन पर आधुनिकता की गहरी छाप लगा रहे हैं। जिसे विश्वम्भर-नाथ जी ने ज़िराफ़ का चित्र बतलाया है (देखिए उनके लेखवाला चित्र) उसे घोष महोदय घोड़े का चित्र मानते हैं। यद्यपि उस पशु की गर्दन लंबी है, तथापि उस चित्र के पीछे जो एक अश्वारोही का चित्र है उसमें भी घोड़े की झुकी हुई गर्दन अपेक्षाकृत लम्बी ही दिखाई गई है (देखिए उपर्युक्त चित्र)। होशंगाबाद के चित्रों में एक जगह तीन घुड़सवारों तथा एक पदाति सैनिक के चित्र हैं। इनमें भी घोड़ों की गर्दनें लम्बी हैं। इसी तरह जिन्हें विश्वम्भरनाथ जी 'किट' के चित्र कहते हैं उन्हें घोष महोदय अश्वारोही सैनिकों की पीठ पर लटकती हुई ढालें बतलाते हैं।

सिंघनपुर के चित्रों को प्रकाश में आये अभी थोड़े ही दिन हुए हैं और इसी लिए उनका पर्याप्त विवेचन नहीं हो पाया है। तो भी मोशिये सैलबन लेवी और फ़ॉशर सरीखे विद्वानों ने इनकी प्रशंसा की है तथा कागी ब्राउन महोदय ने अपने 'कैटलाग आफ़ प्रीहिस्टारिक ऐंटीक्वेटीज़ इन दी इंडियन म्युज़ियम' तथा पर्सी ब्राउन महोदय ने अपनी इंडियन पेन्टिंग्स नाम की पुस्तक में इनका उल्लेख किया है।

सिंघनपुर अथवा ऐसे ही और किसी स्थान के इन शिलाचित्रों का काल-निर्णय करना यथार्थ ही बड़ा कठिन है। जब हम देखते हैं कि अपेक्षाकृत अधिक सामग्रियों के रहते हुए भी रामायण और महाभारत के

काल-निर्देश में भी मतभेद है और अभी कल की कही जानेवाली घटनायें—गोस्वामी तुलसीदास जी की जन्म और निधन-तिथियाँ तक भलीभाँति निश्चित नहीं हो पाई हैं तब फिर आज से हज़ारों वर्ष पहले के इन शिलाचित्रों के विषय में क्या कहा जा सकता है? इसी लिए अगर कोई इन्हें २० हज़ार और कोई केवल दो ही हज़ार वर्ष पुराने चित्र माने तो इसमें आश्चर्य ही क्या? पर्याप्त सामग्रियों के अभाव में लोग इनका काल-निर्णय करने में केवल अनुमान के ही सहारे आगे बढ़े हैं। योरप में भी यही पद्धति अपनाई गई है। वहाँ ऐसे चित्रों का काल-निर्णय या तो उन जानवरों की क़िस्में देखकर हुआ है जो उनमें चित्रित किये गये हैं अथवा पत्थर के औज़ारों-हथियारों के उन अवशेषों से हुआ है जो उन चित्रोंवाली गुफाओं में प्राप्त हुए हैं या फिर उन अस्थि-समूहों से निर्धारित किया गया है जो उन प्रस्तरखण्डों के साथ मिले हैं। सिंघनपुर के शिलाचित्रों का कालनिर्णय घोष महोदय ने वहाँ पाये गये हथियारों-औज़ारों के टुकड़ों तथा चित्रित जीवों की क़िस्में देखकर किया है। पत्थर के जो टुकड़े वहाँ मिले हैं उनमें से तीन तो ऐसे हैं जो योरप में पाये गये उसी प्रकार के पत्थरों के टुकड़ों की तुलना में न केवल सुदूरवर्त्ती प्रस्तरयुग के सिद्ध होते हैं, वरन उन योरपीय अवशेषों से भी अधिक प्राचीन ठहरते हैं। चित्रों में वनमानुष की आकृति ऐसी है जो निश्चय ही इन चित्रों को सुदूरवर्त्ती प्रस्तरयुग के सिद्ध करती है। निकटवर्त्ती प्रस्तरयुग में ऐसे जीव सर्वथा अज्ञात थे। कागुल आदि के चित्रों को विद्वानों ने निर्विवाद कई हज़ार वर्ष के पुराने चित्र माने हैं और उन चित्रों से सिंघनपुर के चित्रों का बड़ा अद्भुत साम्य है। इसी से प्रभावित होकर पर्सी ब्राउन महोदय ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ १६ में लिखा है कि इन चित्रों का अनुसन्धान न केवल भारतवर्ष में चित्रकला के जन्म का ही पता देगा, वरन उससे पूर्व के मानव-जाति के प्राचीन इतिहास पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ने की सम्भावना है।

मेरी अपनी राय में निम्नलिखित कुछ बातें ऐसी हैं जिनसे सिंघनपुर के इन चित्रों की प्राचीनता बहुत कुछ अंशों में सिद्ध होती है—

(१) जैसा मैंने अपने जुलाईवाले लेख में लिखा है, लोग अधिकतर उन्हीं बातों और चीज़ों को अपने चित्रों में अंकित करते हैं जिन्हें वे अपने चारों ओर देखते हैं या जिनका वे उपयोग करते रहते हैं। होशंगाबाद के चित्र जिनमें तीर-धनुष, घोड़े, सैनिक, युद्ध-दृश्य आदि देखे जाते हैं, अपने ज़माने के उन्नत लौहयुग की सूचना दे रहे हैं। इसके विपरीत सिंघनपुर के चित्र जिनमें आज-कल के मिलनेवाले घरेलू जानवरों—गाय-बैल—आदि का पूर्णतया अभाव है, यहाँ तक कि जिनमें तीर-धनुष तक के चित्र नहीं हैं, अग्नि का भी कोई उपयोग नहीं दिखाया गया है, बल्कि कई ऐसे जानवरों के चित्र हैं, जिनकी जातियाँ भी अब संसार से लुप्त होगई हैं, इस बात के काफ़ी परिचायक हैं कि जिस समय ये चित्र बनाये गये थे उस समय इन तीर-धनुष, गाय-बैल, अग्नि आदि का कोई ज्ञान लोगों को न था, वह पूर्णतः प्रस्तरयुग था।

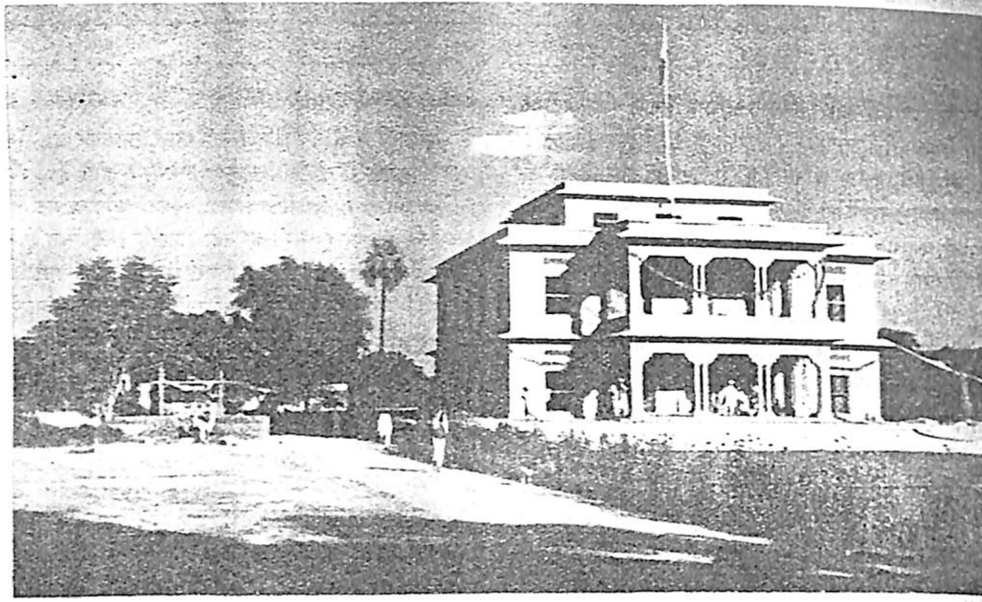
(२) यदि हम एनसाइक्लोपीडिया के लेखक की यह उक्ति कि 'कुछ लोगों का प्रस्तरयुग अभी उस दिन ही समाप्त हुआ है' मध्यप्रान्त के निवासियों पर लागू करें और इस तरह सिंघनपुर के शिलाचित्रों को प्रस्तरयुग के मानते हुए भी 'अभी उस दिन ही के' ठहरावें तो यह भी युक्तियुक्त नहीं जँचता। जैसा मैं पहले कह चुका हूँ, इन चित्रों में तीर-धनुष तथा अग्नि के उपयोगों आदि के चित्रों का सर्वथा अभाव है और इन वस्तुओं का ज्ञान इन मध्यप्रान्तवासी जंगलियों का इतना आधुनिक नहीं है कि 'अभी उस दिन ही का' कहा जा सके। वेदों तक में इसके प्रमाण हैं कि इन लोगों का तीर-धनुष तथा अग्नि का ज्ञान बहुत पुराना है। और फिर यह एक विचारणीय और यथार्थ ही आश्चर्य की बात है कि जब भारत के उत्तर और दक्षिण में तो आर्य और असुर-सभ्यताओं का विकास हो रहा हो, उनका संपर्क और संघर्ष हो रहा हो, उस समय उनके आवागमन का एकमात्र मार्ग मध्यप्रान्त ऐसे घने अन्धकार में डूबा हुआ हो कि उसे तीर-धनुष तक का भी ज्ञान न रहा हो। सहसा इस पर विश्वास करने को जी नहीं चाहता। तब क्या सिंघनपुर के चित्रों में तीर-धनुष आदि का स्पष्ट अभाव तथा भालों का चित्रण उन्हें इस वैदिक और आसुरी सभ्यताओं के युग से भी पहले के नहीं ठहराते हैं?

(३) जो पत्थर के औज़ार-हथियार सिंघनपुर के आस-पास प्राप्त हुए हैं और जिनका सचित्र वर्णन घोष महोदय ने अपनी पुस्तक में किया है वे भी सुदूरवर्त्ती प्रस्तरयुग के सिद्ध होते हैं। निकटवर्त्ती प्रस्तरयुग के औज़ारों-हथियारों के समान ये चिकनाये हुए नहीं हैं, बल्कि ये वैसे ही अनगढ़ हैं जैसे प्रायः दूसरे स्थानों में पाये गये सुदूरवर्त्ती प्रस्तरयुग के हथियार देखे गये हैं।

(४) इन चित्रों और स्पेन तथा फ्रांस के ऐसे ही चित्रों में एक आश्चर्यजनक समानता पाई जाती है। यह एक निर्विवाद सत्य है और इसे विश्वम्भरनाथ जी ने भी माना है। वे कहते हैं कि इसके कई कारण हो सकते हैं, पर उनमें से किसी का भी उन्होंने अपने लेख में उल्लेख नहीं किया। अच्छा होता अगर वे उन कारणों का उल्लेख भी कर देते। चित्रों और आकृतियों की समानता के अतिरिक्त हमें उनके टेकनीक की समानता अपनी ओर अधिक आकृष्ट करती है। सीधी, आड़ी तथा तिरछी रेखाओं से मनुष्यों की आकृतियाँ बनाना तथा सींड़ीनुमा और पत्तीनुमा मनुष्यों की कल्पना करके उनके वैसे ही चित्र खींचना उस समय का टेकनीक-सा जान पड़ता है, जो दोनों जगह स्पष्ट वर्तमान है। दोनों में से चाहे जिसने दूसरे की नक़ल की हो, पर यह अद्भुत समानता उनमें है अवश्य। मेरे जुलाईवाले लेख के चित्रों में कुछ ऐसी आकृतियाँ दी गई हैं। कला का ऐसा साम्य भले ही संभव हो, पर टेकनीक का ऐसा वास्तविक साम्य ख़ासकर उस अतीतयुग में तभी संभव माना जा सकता है जब या तो दोनों स्थानों के लोग एक ही संस्कृति के रहे हों अथवा दोनों में काफ़ी आवागमन वर्त्तमान रहा हो। हमने पक्षियों और पशुओं में मानवभाव आरोपित करके गरुड़ और नृसिंह की मानव-मूर्तियों की कल्पना की है। यह हमारा एक ख़ास टेकनीक है। क्या हमारी सभ्यता और संस्कृति से नितान्त ही अनभिज्ञ लोगों की कला में भी हमारे इस टेकनीक का यथार्थ साम्य सम्भव हो सकता है? मैं तो इसे मानने के लिए तैयार नहीं हूँ।

(५) इनसे मिलते-जुलते चित्र यद्यपि आज-कल के जंगली भी इधर अपने घरों में बनाते हैं, पर ये सिंघनपुर के शिलाचित्रों से सर्वथा मेल नहीं खाते, ख़ासकर टेकनीक के मामले में तो वे बिलकुल असमान होते हैं। रंग भी जैसा इन शिलाचित्रों का पक्का और अमिट है, वैसा उन घरेलू चित्रों का नहीं होता है। सुरक्षित होने पर भी वे एक ही धूप और वर्षा में धुँधले पड़ जाते हैं, पर ये बरसों से प्रकृति के उत्पातों को छाती पर झेलते हुए भी वैसे ही स्पष्ट रञ्जित और अमिट हैं।

(६) अब अगर हम सिंघनपुर के चित्रों को होशंगाबाद के चित्रों के समकालीन या उसके बाद के मानें तो इस बात पर सहसा विश्वास नहीं होता कि एक ही प्रान्त के दो भागों में इस तरह के सर्वथा विपरीत—उन्नत लौह और सुदूरवर्त्ती प्रस्तरयुग वर्त्तमान रहे हों। क्या यह सर्वथा सम्भव हो सकता है कि उसी सतपुड़ा और विन्ध्याचल के अञ्चल में रहनेवाले एक ज़िले के निवासी तो यहाँ तक उन्नत रहे हों कि उन्हें युद्ध-सञ्चालन का भी ज्ञान रहा हो और उन्हीं के पड़ोसी दूसरे ज़िले के निवासी इतने अधिक अवनत रहे हों कि तीरधनुष तक का प्रयोग न जानते हों, उनके यहाँ गाय-बैलों का भी अभाव रहा हो और सम्भवतः वे अग्नि के उपयोगों से भी अनभिज्ञ रहे हों? सहसा इस पर हमें विश्वास नहीं होता। अब यदि हम इन चित्रों को होशंगाबाद के चित्रों से पहले के तथा एजण्टा एलोरा आदि के चित्रों के समकालीन मानें तो टेकनीक के साम्य का प्रश्न सामने आता है। इस प्रश्न का फिर क्या उत्तर हो सकता है कि मध्यप्रान्त के इन सिंघनपुरस्थ जंगलियों ने अपेक्षाकृत समीपस्थ एजण्टा-एलोरा के टेकनीक का अनुकरण न करके सुदूर फ्रांस तथा स्पेन देश के टेकनीक की नक़ल क्यों की? और वह भी कब जब वे तत्कालीन प्रस्तरयुग के ऐसे घने अन्धकार में थे कि उन्हें बाहरी और विशेषकर अपने ही समीपवर्त्ती दक्षिणी प्रान्तों की समुन्नत सभ्यता का तनिक भी ज्ञान न था। फिर स्पेन तथा फ्रांस-सरीखे सुदूर प्रान्तों के टेकनीक का साम्य उनके चित्रों में कैसे आया? क्या हम इसे केवल 'घुणाक्षरन्याय' ही मानकर सन्तोष कर लें?



[श्री भारतमाता का मंदिर ।]

भारतमाता का मन्दिर

लेखक, श्रीनाथसिंह

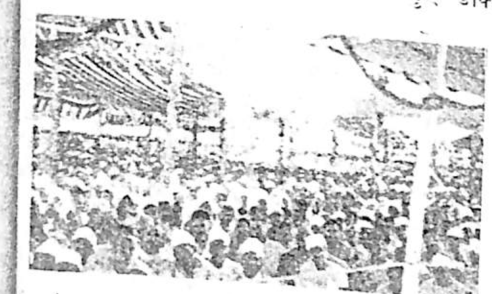
काशी के मन्दिरों में एक और वृद्धि हुई है। यह नवीन मन्दिर ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम, कृष्ण, दुर्गा या हनूमान् या ऐसे ही किसी वैदिक या पौराणिक देवता का न होकर हमारी उस मातृभूमि की मूर्ति का है जिसकी जय की आवाज़ सुनकर हममें एक अपूर्व आनन्द और उत्साह फैल जाता है और हमारे सामने हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक और ब्रह्मदेश से लेकर अरब सागर तक की विशाल रम्य भूमि का मानचित्र खचित हो उठता है। बनारस छावनी स्टेशन से उतर कर यदि आप बाबू शिवप्रसाद गुप्त-द्वारा स्थापित विख्यात काशी-विद्यापीठ की ओर चलें तो उसके बाद ही सड़क की बाईं ओर एक सुन्दर हरे-भरे बाग़ में आपको यह दुमंज़िला मन्दिर दिखाई पड़ेगा और उसके ऊपर उड़ता हुआ राष्ट्रीय तिरङ्गा झण्डा अपनी मूकभाषा में आपसे कहेगा—"बेधड़क अन्दर चले आइए!" आप हिन्दू हों चाहे मुसलमान, अमीर हों चाहे ग़रीब, आपका मज़हब चाहे जो हो और आपकी समाज में चाहे जो स्थिति हो, कोई आपसे यह नहीं पूछेगा कि आप कौन हैं और क्यों आये हैं। आप बेधड़क मन्दिर के भीतर जाकर अपनी मातृ-भूमि के दर्शन कर सकते हैं। इस मन्दिर में प्रवेश करने की किसी को मनाही नहीं, इसके अहाते के अन्दर आदमी आदमी में कोई भेद नहीं।

काशी-विद्यापीठ की भाँति यह अभूतपूर्व मन्दिर भी बाबू शिवप्रसाद गुप्त के स्वदेश-प्रेम का एक ज्वलन्त उदाहरण है। जब देश में राष्ट्रीयता की लहर उठी और वन्दे मातरम् की ध्वनि के सामने वेद-पुराण आदि की वाणी भी भारतवासियों को फीकी लगने लगी तब अनेक कवियों, चित्रकारों और स्वप्न-द्रष्टाओं ने उस वन्दनीय माता के रूप की कल्पना करनी आरम्भ की। कवियों ने एक त्रिशूलधारिणी सुन्दर नारी की कल्पना की। हिममंडित हिमालय को उसका किरीट, विन्ध्यपर्वत को उसकी

मेखला, और उत्तर-दक्षिण के सरिता सर-वन-उपवन-शस्य-सम्पन्न सुन्दर प्रदेशों को उसका दिव्य परिधान कहा और अनन्त सागर को अपनी अगणित लहरों-द्वारा उसके पद्मपदों पर विविध रत्न निछावर करते देखा। इसी कवि-कल्पना के आधार पर चित्रकारों ने भारत के मानचित्र पर दिव्य नारी-सौन्दर्य अङ्कित करना प्रारम्भ किया। उन्हीं चित्रों को हमने भारतमाता के नाम से पुकारा और उसको मस्तक झुकाया। पर ये चित्रकार और कवि हार गये थे और हमें माता का वास्तविक दर्शन न करा सके थे। हमारे जीवन का वह अभाव इस नूतन मन्दिर का निर्माण करके बाबू शिवप्रसाद गुप्त ने दूर किया। यह अच्छा ही हुआ कि भारतमाता के इस विपुल व्ययसाध्य स्वरूप की कल्पना बाबू शिवप्रसाद गुप्त जैसे स्वदेशाभिमानी नेता और रईस के हृदय में उत्पन्न हुई। ऐसा न होता तो वह कदाचित् ही इस प्रकार प्रस्तरखण्डों में प्रस्फुटित होकर हमारे सामने आती।

गत विजयादशमी के दिन जब हज़ारों नर-नारियों के सम्मुख महात्मा गांधी ने विविध धर्मों और भाषाओं की पवित्र वाणियों के बीच में इस अभूतपूर्व मन्दिर का उद्घाटन किया, तब इन पंक्तियों का लेखक भी वहाँ उपस्थित था और इसे उस समय ऐसा प्रतीत हुआ मानो वे लोग जो वहाँ जमा हैं, उन समस्त मन्दिरों, मस्जिदों और गिरजाघरों आदि को जो मनुष्यों के बीच भेद-भाव की दीवारें उठाये खड़े हैं, विदाई दे रहे हैं और उनके लिए महात्मा जी के पवित्र हाथों-द्वारा एक नवीन मन्दिर खुल रहा है जो इस युग के भावों के सर्वथा अनुरूप है।

उस समय आगन्तुकों का स्वागत करते हुए डाक्टर



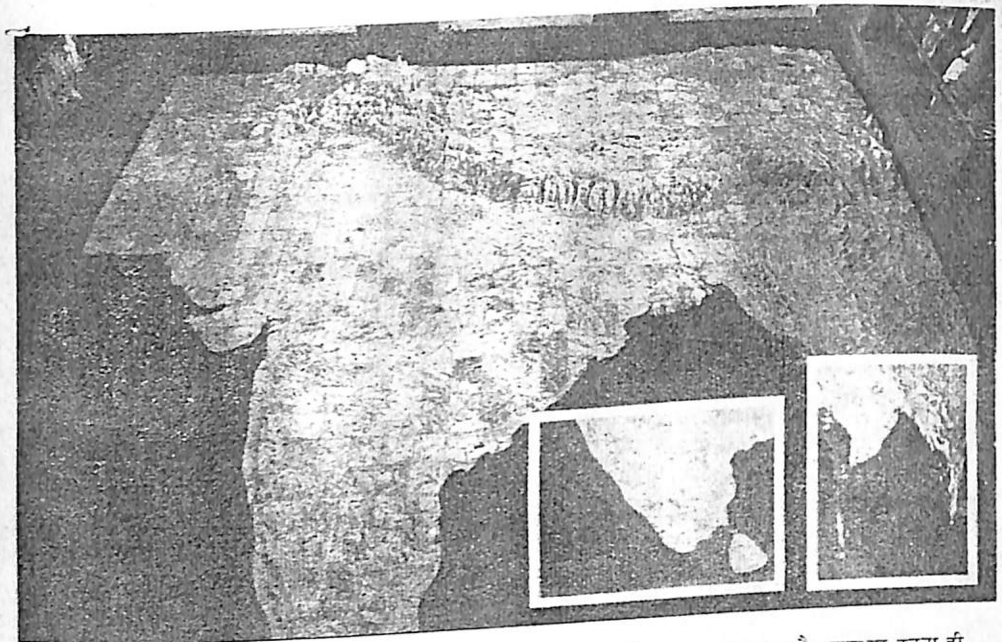
[उद्घाटन के अवसर पर भीड़ का एक दृश्य ।]



[बाबू शिवप्रसाद गुप्त ।]

भगवानदास जी ने जिनके हाथों अब से साढ़े दस वर्ष पूर्व २४ लक्ष गायत्री पुरश्चरण के बाद इस मन्दिर का शिलान्यास हुआ था, ठीक ही कहा था कि—

"जब जगत्पिता ने देखा कि पिता के भय और प्रीति से मूर्ख लड़के आपस में लड़ना नहीं छोड़ते तब उसने ख़याल किया कि मा की मुहब्बत के आगे इनकी सब लड़ाइयाँ ज़रूर बन्द हो जायँगी। और इसलिए अपने एक नन्हे बन्दे शिवप्रसाद को निमित्तमात्र बनाकर उसी कुल रहस्य के मालिक ने जो सूरज-चाँद को भी चलाता है और प्रत्येक परमाणु की भी फ़िक्र करता है, यह बैतुल-मुहब्बत तामीर करवाया, ताकि सब मज़हबों की यकसां इबादतगाह, पूजास्थान हो, और भारतमाता की सब सन्तानें, सब धर्मों की, यहाँ आवें, और हुब्बुलवतनी, स्वदेश-भक्ति, जननी-जन्म-भूमि के प्रेम के ज़रिये से, इश्क़े हक़ीक़ी, ख़ुदा की मुहब्बत और इन्सान की मुहब्बत, भगवद्-भक्ति और विश्वजननी-भक्ति भी सीखें। हर आदमी के



[मंदिर के भीतर भारतमाता का संगमरमर का उभड़ा हुआ मानचित्र जो ३० फ़ुट लम्बा और लगभग इतना ही चौड़ा है। इस मानचित्र की तैयारी में २५००० रुपये से अधिक व्यय हुए हैं।]

दिल में छिपे हुए उसी एक परमेश्वर, अल्लाहे अकबर को देखें, और तमाम मज़हबों के उस सत्य सार को पहिचानें, और अमल में लावें, जिसको उसी परमात्मा ने, ईसा, और मुहम्मद और वेदव्यास, सबके मुँह से इंजील और क़ुरान और वेदों में कहलाया है।"

इस अवसर पर महात्मा गांधी ने एक बड़ा ही सारगर्भित भाषण किया। उन्होंने कहा—

"शिवप्रसाद जी का प्रेम मुझे खींच न लाता, तो मैं यहाँ आता नहीं, क्योंकि इस पवित्र भावना पर रचे हुए इस मन्दिर का उद्घाटन करने के लिए मैं अपने को योग्य नहीं समझता। शिवप्रसाद को जब से मैं जानता हूँ तब से मैं देखता हूँ कि गंगातट को इन्होंने अपना निवास-स्थान बनाया है और गंगाजल से अपनी देह को पवित्र रखते हैं, तिस पर भी इन्होंने अपने हृदय में एक दूसरी ही गंगा को धारण कर रक्खा है। यह भावना और कल्पना की गंगा इनके हृदय में हमेशा बहती रहती है और इसमें ये नित्य ही अवगाहन करते हैं। भावना के वे घोड़े भी बनाते और पृथ्वी की प्रदक्षिणा करते हैं। भावना का ऐसा बल है कि वह यदि शुद्ध हो तो स्वर्ग में भी उड़ा ले जा सकता है, और अशुद्ध हो तो नरक में भी ले जा सकता है। इनकी भारत-भक्ति की भावना पूना के कर्वे के विधवाश्रम में खुदे हुए एक उठावदार नक़्शे को देखकर मूर्त्तिमन्त हुई, और इस पर अपनी समुचित धनराशि ख़र्च कर डालने का इन्होंने विचार किया। जैसी इनकी भावना थी, वैसे ही इन्हें कलाकार भी मिल गये, शिल्पी और इंजीनियर भी वैसे ही मिल गये। एक बार तो इन्हें अपने जीवन की भी आशा नहीं रही थी; किन्तु भगवान् ने जीवित रक्खा, और इनका स्वप्न—इनकी भावना की प्रतिमा आज हम अपने सामने खड़ी देखते हैं।

"सवेरे जब मैं पूर्णाहुति देने आया, तो उस समय



कज्जलपूरितलोचनभारे !
कुच-युगशोभितमुक्ताहारे !
वीणापुस्तकरञ्जितहस्ते !
भगवति ! भारति ! देवि नमस्ते ! [चित्रकार—श्रीयुत वाणीकान्त दास]

वेदमंत्र सुनते-सुनते मुझे २० वर्ष से हम जो श्लोक अपनी प्रभात की प्रार्थना में बोलते हैं, उसका स्मरण हो आया—

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले,
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ।

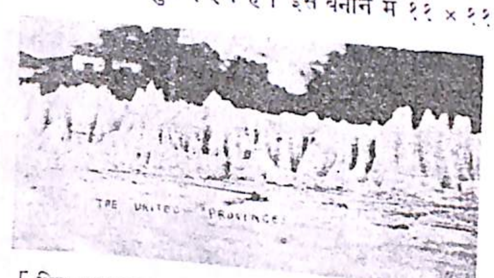
"यह विष्णु-पत्नी ही हमारे पास है, हमारा पोषण करती है, रक्षण करती है, जिसके हम सब ऋणी हैं और जिससे हमें सदा क्षमा माँगनी चाहिए। उसका चित्र मेरे सामने खड़ा हो गया। जिस माता ने हमें जन्म दिया वह तो थोड़े ही वर्ष जीवित रहेगी, किन्तु यह माता तो सदैव है, और यदि यह नहीं है तो हम भी नहीं हैं; जिस दिन इसका नाश होगा, उस दिन यह हमें अपनी गोद में लेकर चली जायगी। भारतमाता इसी माता का अंश है, और उसका मानचित्र आज वेदमन्त्रों से पुनीत हुआ है। शिवप्रसाद जी ने सबको बिना किसी प्रकार की शर्त के इस माता की आराधना के लिए निमन्त्रित किया है। जिन्हें माता के प्रति प्रेम है वे यहाँ चले आवें। मैं तो प्रेम का दावा करता ही हूँ। तब फिर मैं इस मन्दिर का उद्घाटन क्यों न करूँ ?"

भारतमाता की यह मूर्ति वास्तव में भारतवर्ष का उभड़ा हुआ मानचित्र है, जिसे काशी के विज्ञान-कला-विशारद श्री दुर्गाप्रसाद जी ने बड़े परिश्रम से तैयार किया है। इसके वास्तविक सौंदर्य का बोध तो देखने से ही हो सकता है, पर जो देखने को नहीं पहुँच सकते वे उसका कुछ अनुमान उद्घाटन के समय इस सम्बन्ध में प्रकाशित एक पुस्तिका की निम्नलिखित पंक्तियों से कर सकते हैं—

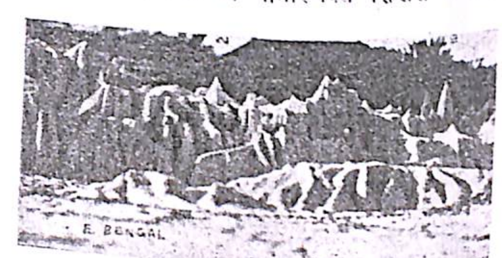
"भारतमाता यह सुन्दर भू-चित्र संगमरमर का बना है। इसका परिमाण अर्थात् लम्बाई और चौड़ाई ३१ फ़ुट २ इंच और ३० फ़ुट २ इंच है। इसे बनाने में ११ × ११ इंच के सात सौ बासठ टुकड़े और कुछ छोटे मोटे टुकड़े काम में लाये गये हैं। भारत-भूमि की प्राकृतिक ऊँचाई और निचाई आदि पर दृष्टि रखते हुए ये टुकड़े बड़ी सावधानता और शुद्धता से काट-छाँटकर प्रस्तुत किये गये हैं। इस मानचित्र में उत्तर में पामीर-पर्वत शिखरों से लेकर



[मूर्ति के निर्माणकर्ता श्रीयुत दुर्गाप्रसाद जी।]



[हिमालय का मध्य-भाग। अर्थात् संयुक्तप्रान्त की उत्तरी सीमा।]



[मानचित्र का एक खंड जिसमें हिमालय का पूर्वी भाग अङ्कित है।]



[उद्‌घाटन के समय मंच पर महात्मा जी। पीछे ख़ाँ अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ और एक ओर बाबू शिवप्रसाद गुप्त भी दिखलाई पड़ रहे हैं।]

दक्षिण में लंका व सिंहलद्वीप के दक्षिणी छोर डुबुन्डुर तुडुव (डन्ड्रा) तक और पूर्व में मौलमीन तथा चीन की प्रसिद्ध प्राचीन दीवार कहकहा से लेकर पश्चिम में हेरात तक का समस्त भूभाग दिखाया गया है। भारतवर्ष साथ ही इसके समीपवर्ती प्रदेश—अफ़ग़ानिस्तान, बिलोचिस्तान, भोट (तिब्बत), ब्रह्मदेश (बर्मा), लङ्का (सिंहल) और मलाया प्रायद्वीप का अधिकांश भी दिखाया गया है।

"इस मानचित्र में धरातल भूमि एक इंच में ६-४ मील दिखाई गई है, इसका अर्थ यह हुआ कि मानचित्र की एक इंच की लम्बाई प्रकृत भूमि की ६ मील ७ सौ ४ गज़ (१ गज़ = ३ फ़ुट) के बराबर समझनी चाहिए। भिन्न-भिन्न स्थलों की उँचाई दिखाने के लिए यह मान लगभग सत्रह गुणा बढ़ाकर लिया गया है अर्थात् पहाड़ आदि की उँचाई एक इंच में दो हज़ार फ़ुट दिखाई गई है। हिमालय पर्वत का सर्वोच्च शिखर एवरेस्ट (गौरीशंकर) संगमरमर के एक ही टुकड़े को काटकर पौने पन्द्रह इंच ऊँचा बनाया गया है। इसकी वास्तविक उँचाई नवीन वैज्ञानिक गणना के अनुसार उनतीस हज़ार फ़ुट से कुछ अधिक यानी लगभग साढ़े पाँच मील है।

"दर्शकों की सुविधा के लिए समुद्र-पृष्ठ से पाँच सौ, एक हज़ार, दो हज़ार, तीन हज़ार, छः हज़ार, दस हज़ार, पन्द्रह हज़ार, बीस हज़ार, पच्चीस हज़ार और उनतीस हज़ार पाँच सौ फ़ुट की उँचाइयाँ, शीघ्र ध्यान आकृष्ट करनेवाली रेखाओं-द्वारा, स्पष्ट कर दी गई हैं। इनकी सहायता से किसी स्थान की समुद्र-पृष्ठ से उँचाई का अनुमान करना सहज हो गया है।

"इस मानचित्र में समस्त गिरि-पर्वत उनके विचित्र प्रकार के ऊँचे शिखरों के साथ दिखाये गये हैं। पहाड़ी दरें और घाटियाँ भी अपनी सच्ची गहराई इस चित्र में दिखा रही हैं। सुविशाल हिमालय के चार सौ से अधिक शिखर उनके ठीक स्थानों पर इस तरह दिखाये गये हैं कि देखने ही उनकी उँचाई का भी ज्ञान हो जाता है। प्राचीन और अर्वाचीन भारतीय आख्यायिकाओं में सुप्रसिद्ध कैलासपर्वत, जो प्रायः तीन सौ मील लम्बी और डेढ़ सौ मील चौड़ी, सदा बर्फ़ से ढँकी संसार की सबसे बड़ी पर्वत-श्रेणी है—अपने भव्य शिखरों और हिमानियों (ग्लेसियरों) के साथ दिखाया गया है।"

उद्‌घाटन के अवसर पर पंडित जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, बाबू राजेन्द्रप्रसाद, ख़ाँ अब्दुल गफ़्फ़ार ख़ाँ, बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन, श्री जमनालाल बजाज़ आदि नेता उपस्थित थे। बाहर से जानेवालों के ठहरने आदि के लिए बड़ी सुन्दर व्यवस्था की गई थी। विशिष्ट जन बाबू शिवप्रसाद गुप्त के निवासस्थान पर ठहराये गये थे और सर्वसाधारण के ठहरने का प्रबन्ध विद्यापीठ में



[महात्मा जी भारतमाता-मंदिर का द्वार खोल रहे हैं। पीछे डाक्टर भगवानदास खड़े हैं।]

किया गया था। भोजन, जल-पान, सवारी किसी बात की कोई त्रुटि नहीं थी। सबसे उत्तम प्रबन्ध जूतों के रखने का था। सभी उपस्थित जनों के जूते सौ सौ की पंक्तियों में रक्खे गये थे। प्रत्येक जोड़े में एक छपा हुआ नम्बर रख दिया गया था और वही नम्बर पहननेवाले को दे दिया गया था। प्रत्येक पंक्ति में एक स्वयंसेवक तैनात था, जो माँगने पर तुरन्त उसके जूते दे देता था। जूतों के रखवाने की इस उत्तम सूझ और प्रबन्ध के लिए कार्यकर्ता बधाई के पात्र हैं। उपस्थित लोगों में थोड़ी-सी ठेलमठेल और गड़बड़ हो गया था। उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानों ये जूतों की पंक्तियाँ अपनी मूकवाणी में उन्हें पुकार कर कह रही हों—"देखिए, सभा में इस प्रकार बैठा जाता है।"

एक बात कुछ खटकी। भारतमाता के इस मन्दिर के उद्‌घाटन के अवसर पर हमारा प्रसिद्ध वन्दे मातरम् गान जो हमारे राष्ट्रीय समारोहों का एक अङ्ग बन गया है, यहाँ नहीं सुनाई पड़ा। श्री सरस्वतीबाई ने एक संस्कृत और बाबू मैथिलीशरण गुप्त ने स्वरचित एक हिन्दी-कविता का पाठ किया। ये दोनों कवितायें अवसर के उपयुक्त थीं, पर वन्दे मातरम् गान के अभाव को ये दूर नहीं कर सकीं और श्रद्धेय गुप्त जी की कविता में तो एक ऐसा शब्द आ गया था जिसके लिए बहुतों को दुःख हुआ। उनकी उक्त कविता की दो पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत कर हम इस लेख



[महात्मा जी पूर्णाहुति देते हुए।]

को समाप्त करते हैं, क्योंकि ये गुप्त जी के अनुरूप तथा इस विषय के उपयुक्त हैं।

जाति धर्म या सम्प्रदाय का नहीं भेद व्यवधान यहाँ।
सबका स्वागत सबका आदर सबका सम सम्मान यहाँ॥

मधुप से!

लेखिका, श्रीमती राजकुमारी मिश्रा 'रमा'

मैं हूँ नहीं मधुमाधवी, नव मल्लिका-बकुलावली।
नव-नेह-नन्दन में पली, त्यों कल्पलतिका की कली॥
गुन गा रहे हो क्यों मधुप! मैं तो न मालति फूल हूँ।
उजड़े हुए अनुराग के वर बाग़ की बस, धूल हूँ॥१॥

मैं हार हूँ न किसी गले का, या हृदय-आधार हूँ।
जो सार है संसार का, वह भी न स्वर्गिक प्यार हूँ॥
मनुहार इतनी क्यों मधुप! मैं शूल हूँ, न कि फूल हूँ।
चुभती रहे जो आँख में, वह प्रेम-पथ की धूल हूँ॥२॥

पाठकों के पत्र

अनधिकारी नुक्ताचीन

अक्टूबर की 'सरस्वती' में मुज़फ़्फ़रपुर के योगेन्द्र मिश्र नामक किन्हीं एक सज्जन की छोटी-सी टिप्पणी मेरी 'शराब की सुराही में' शीर्षक उस कहानी के सम्बन्ध में छपी है जो जुलाई की 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। इन महाशय का कहना है कि इस कहानी में मैंने प्रेमचन्द जी की 'परीक्षा' शीर्षक कहानी के मसाले से काम लिया है और उसमें शराब का प्रकरण घुसेड़ (?) कर उसे मौलिक बनाने का विफल प्रयास किया है। अन्त में इन महाशय ने मुझे यह भी हिदायत दी है कि मैं उतने परिश्रम से कोई मौलिक कहानी लिख सकता था।

इस प्रकार के अनधिकारी-नुक्ताचीन लोग अनायास ही चाहे जिस साहित्यकार की पगड़ी को उछाल देते हैं। मुझे तो इन लोगों का तजुर्बा है ही, अन्य लेखक भी ऐसे लोगों से बचे नहीं हैं। इस बात के जानने का कोई उपाय नहीं है कि ये महाशय साहित्य में क्या स्थान रखते हैं। ये लेखों के इन्स्पेक्टर ही हैं या कुछ लिखना-पढ़ना भी जानते हैं।

इनकी उम्र और योग्यता का पता लग जाता तो मैं ज़रा इतना तो सन्तोष करता कि २२ वर्ष की हिन्दी-सेवा करते करते मुझे ऐसे बुज़ुर्ग और समझदार नसीहत देनेवाले भी मिल ही जाते हैं जो मेरी प्रतिष्ठा की रक्षा के विचार से मुझे चेतावनी देते रहते हैं।

मैं अपनी तरफ़ से सिर्फ़ इतना ही कह सकता हूँ कि प्रेमचन्द जी की उक्त कहानी न मैंने पढ़ी है, न उसके सम्बन्ध में मैं कुछ जानता हूँ। जो कहानी 'सरस्वती' में छपी है वह ऐतिहासिक भित्ति को छोड़कर सोलह आना मेरी मौलिक रचना है।

—श्रीचतुरसेन शास्त्री

सूबा हिन्द

श्रद्धेय डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा की 'सूबा हिन्द' (हिन्दी राष्ट्र) की कल्पना अत्यन्त सुन्दर है। बड़े खेद का विषय है कि भारतवर्ष में अन्य प्रान्त तो प्रायः भाषा के आधार पर बने हैं तथा उसी के अनुसार पुकारे भी जाते हैं, पर हिन्दी-भाषा-भाषियों के सम्बन्ध में यह सिद्धान्त बिलकुल भुला दिया गया है। हमारे देश के नेता एवं हिन्दी के विद्वान् भी कदाचित् हिन्दी-भाषियों के एक सुसंगठित प्रान्त की आवश्यकता का अनुभव नहीं करते। यह अवश्य है कि यदि बँगला अथवा अन्य भाषियों की तरह हिन्दी-भाषियों का भी एक प्रान्त होता तो हमारे साहित्य की अधिक उन्नति होती। इस सम्बन्ध में समस्त हिन्दी-संसार को डाक्टर साहब के विचारों का स्वागत करना चाहिए। डाक्टर साहब ने 'हिन्दी राष्ट्र या सूबा हिन्दुस्तान' नामक एक पुस्तक भी लिखी है, जिसमें आपने इस विषय पर विशेष प्रकाश डाला है।

योगेन्द्र मिश्र, मुज़फ़्फ़रपुर

श्रीयुत सम्पादक महाशय जी!

अक्टूबर १९२५ की सरस्वती के पृष्ठ ४०६ पर 'सामुद्रिक शास्त्र' नामक लेख में बाबू जगतनारायण जी के विषय में बहुत कुछ लिखा गया है। क्या आप कृपा करके बता सकते हैं कि बाबू जगतनारायण जी ने जो सामुद्रिक शास्त्र लिखा है वह कहाँ से और किस मूल्य पर मिल सकता है? यदि आपको पता न हो तो क्या आप अपने विख्यात पत्र-द्वारा पता ले सकते हैं? मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूँगा यदि आप इस विषय पर कुछ रोशनी डालें।

—यशपाल शर्म्मा



नई पुस्तकें

[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथासमय प्रकाशित होगा।]

१—रोगों की अचूक चिकित्सा—लेखक, श्रीयुत जानकीशरण वर्मा, प्रकाशक, लीडर-प्रेस, इलाहाबाद, हैं। मूल्य १॥) है।

२—व्रज-भारती (कविता)—लेखक, श्रीयुत उमाशंकर वाजपेयी, 'उमेश', एम० ए०, प्रकाशक, गंगा-ग्रन्थागार, लखनऊ है। मूल्य १।) है।

३—महाराणा प्रताप—लेखक, प्रो० लक्ष्मीचन्द एम० ए०, प्रकाशक, भारतीभवन, मोहनलाल रोड, लाहौर हैं। मूल्य १।) है।

४—पञ्जाबकेसरी महाराजा रणजीतसिंह—लेखक प्रो० हंसराज, एम० ए०, प्रकाशक, दि पंजाब पबलिशिंग एजन्सी, फ़िरोज़पुर शहर हैं। मूल्य १॥) है।

५—धन की उत्पत्ति—लेखक, श्रीयुत दयाशंकर दुबे, एम० ए० और श्रीयुत भगवानदास केला, प्रकाशक, श्रीयुत रामनारायणलाल बुकसेलर, इलाहाबाद हैं। मूल्य १।) है।

६-७—हिन्दी-साहित्य-मण्डल, बनारस सिटी, की प्रकाशित दो पुस्तकें—

(१) वृक्ष-विज्ञान—लेखक, श्रीयुत प्रवासीलाल वर्मा और कुमारी शान्ति वर्मा हैं। मूल्य १॥=) है।

(२) तुलसी और उसके सौ उपयोग—प्रणेता, श्रीयुत काशीनाथ शर्मा, ज्योतिषतीर्थ, और मूल्य ।-) है।

८-१२—विश्व-साहित्य-ग्रन्थ-माला, मैकलेगन रोड, लाहौर, की प्रकाशित ५ पुस्तकें—

(१) निशीथ (कविता)—लेखक, श्रीयुत रामकुमार वर्मा, एम० ए० और मूल्य १।=) है।

(२) कल्पना (कविता)—लेखक, श्रीयुत मोहनलाल महतो और मूल्य १॥) है।

(३) अधखिले फूल (कविता)—लेखक, श्रीयुत केदारनाथ और मूल्य १) है।

(४) प्राचीन भारत—लेखक, प्रो० वेदव्यास, एम० ए०, एल-एल० बी०, और मूल्य २।) है।

(५) प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ—लेखक, श्रीयुत प्रेमचन्द और मूल्य १।) है।

१३-१४—श्रीयुत चन्द्रगुप्त विद्यालंकारलिखित दो पुस्तकें—

(१) आजकल—प्रकाशक, आशा-निकेतन, १२ ए, टेंपल रोड, लाहौर और मूल्य १।) है।

(२) अशोक (नाटक)—प्रकाशक, विश्व-साहित्य-ग्रंथमाला, अस्पताल रोड, लाहौर हैं और मूल्य १) है।

१५—रत्ना (कविता)—लेखक, कुँवर सोमेश्वरसिंह, बी० ए० एल-एल० बी०, प्रकाशक, हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग हैं। मूल्य ॥) है।

१६—सूरदास (अँगरेज़ी)—लेखक, प्रो० डाक्टर जनार्दन मिश्र, एम० ए०, डी० फ़िल, प्रकाशक, युनाइटेड प्रेस, लिमिटेड, पटना है।

१७—फ़ासिज़्म और जर्मनी—लेखक, श्रीयुत एस० पी० त्रिपाठी, प्रकाशक, वसुन्धरा-निकेतन, काशी हैं। मूल्य ।-) है।

१८—विजया-वटिका—लेखक, श्रीयुत हृषीकेश चतुर्वेदी, प्रकाशक, साहित्य-सदन, चौबेजी का कटरा, आगरा हैं। मूल्य ॥) है।

१९—कांग्रेसशतक—लेखक व प्रकाशक श्रीयुत महेशप्रसाद, एम० ए०, अध्यापक, देवाश्रम, आरा हैं। मूल्य -) है।

२०—श्रीचैतन्य महाप्रभु तृतीय खंड (सचित्र)—प्रकाशक, सस्ता साहित्यवर्धक कार्यालय, अहमदाबाद और मूल्य २।) है।

१—महान् भारत—लेखक, श्रीयुत रामशंकर मिश्र 'साहित्यरत्न', प्रकाशक, दुर्गाप्रसाद प्रेस-पुस्तकालय, चौक पासियाँ, अमृतसर हैं। पृष्ठ-संख्या ५१६ और मूल्य सजिल्द का ३) और सादी का २॥) है।

यह एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। इसमें प्राचीन भारत-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण बातों का इस ढंग से संकलन किया गया है कि भारतीय संस्कृति का एक सुन्दर चित्र सामने उपस्थित हो जाता है। भारत की संस्कृति के सम्बन्ध में पाश्चात्य तथा प्राच्य विद्वानों ने अब तक जो कुछ लिखा है उसके अधिकांश को लेखक महोदय ने संकलित करके विषय-क्रम के अनुसार इस पुस्तक में लिखा है। जो बात जहाँ से ली गई है उसका फ़ुटनोटों में उल्लेख कर दिया है। स्वर्गभूमि भारत, प्राचीनता, धर्म, सामाजिक संगठन, आचार, स्त्रियों की स्थिति, स्वदेश-प्रेम, शासन-व्यवस्था, शिक्षा, भारतीय सभ्यता का विस्तार आदि के प्रकरणों में सारी पुस्तक विभक्त की गई। इतिहास के प्रेमियों को इस पुस्तक का संग्रह करना चाहिए।

२—शतपथब्राह्मण का भाष्य—शतपथब्राह्मण यजुर्वेद का प्रधान ब्राह्मण है। संहिताओं के बाद वैदिक साहित्य में क्या प्राचीनता की दृष्टि से और क्या वस्तु की दृष्टि से ब्राह्मणग्रन्थ अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। खेद की बात है कि ये सब ग्रन्थ अभी हिन्दी में नहीं सुलभ हैं। जयपुर के महामहोपाध्याय पण्डित मधुसूदन झा ने शतपथब्राह्मण को हिन्दी में प्रकाशित करना प्रारम्भ किया था। नहीं कह सकते कि वह भाष्य अभी तक छपा है या नहीं। इधर अब यह एक नया भाष्य प्रकाशित होना शुरू हुआ है। भाष्यकार आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् पंडित बुद्धदेव जी विद्यालंकार हैं। यह उसका 'प्रथम कांडम्' है और सो भी अधूरा है। यह भाष्य आर्य-समाज के दृष्टिकोण से लिखा जा रहा है। कहाँ से प्रकाशित हो रहा है, क्या मूल्य है, यह सब इसमें नहीं लिखा है।

३—कांग्रेस का इतिहास—लेखक, सर्वमान्य कांग्रेस के नेतागण और विद्वान्, प्रकाशक, काशी-पुस्तक-भंडार, चौक, बनारस सिटी हैं। पृष्ठ-संख्या १६० और मूल्य १) रु० है।

इस पुस्तक के आरम्भ में सुन्दर राष्ट्रीय गीतों का संग्रह किया गया है। इसके बाद उपोद्घात के रूप में ४ लेख दिये गये हैं, जिनसे कांग्रेस की कार्यवाही और उसके संगठन का परिचय प्राप्त होता है। तदनन्तर उसके प्रत्येक अधिवेशन का अलग-अलग वर्णन किया गया है। अन्त में छोटे-छोटे लेख उपसंहार-रूप में दिये गये हैं। इन लेखों से इसी बात का पता लगता है कि कांग्रेस ने किस क्षेत्र में अब तक क्या कार्य किया है। राष्ट्रपति पंडित जवाहरलाल नेहरू, बाबू भगवानदास, पंडित गोविन्दवल्लभ पंत, श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, और श्री बालमुकुन्द बाजपेयी आदि के लेखों में अनेक ऐसी नई बातों का वर्णन हुआ है जिनसे अभी तक जनता की जानकारी बहुत ही कम है। पुस्तक सचित्र है। कांग्रेस के आदि से अब तक जितने सभापति हो चुके हैं उनके तथा और भी प्रतिष्ठित व्यक्तियों के चित्रों का संग्रह इसमें किया है। जो लोग थोड़े में कांग्रेस का इतिहास जानना चाहते हैं उनके लिए यह पुस्तक उपयोगी है।

४—बुद्धदेव अथवा मूर्त्तिमान् त्याग—लेखक, स्वर्गीय श्री विश्वम्भरसहाय "व्याकुल", सम्पादक, श्री मुरारीशरण मांगलिक, प्रकाशक, भारतीभण्डार, विक्रेता, लीडर प्रेस, इलाहाबाद हैं। पृष्ठ-संख्या १८५ और मूल्य १॥) रुपया है।

इस नाटक में ३ अंक हैं। पहले अंक में दस तथा दूसरे और तीसरे में पाँच पाँच दृश्य रक्खे गये हैं। इसके मुख्य पात्र इतिहास-प्रसिद्ध महात्मा गौतम बुद्ध हैं और स्त्री-पात्र उनकी साध्वी स्त्री गोपा हैं। अन्य पात्रों का वर्णन केवल आवश्यकतानुसार ही किया गया है। जन्म से बुद्ध जी की प्रवृत्ति दया की ओर देखकर उनके पिता जी उसके बदलने का प्रयत्न करते हैं। उनकी इस प्रकार की भावना का एकमात्र कारण पिता का प्रेम और राज्यगद्दी के सूनी होने की ममता है। वे बुद्ध जी की शादी एक अत्यन्त सुन्दरी रमणी गोपा के साथ कर देते हैं। बुद्ध जी को वह देवता की तरह मानती है, उसके प्रेम का ठुकराना बुद्ध जी के लिए कठिन हो जाता है। उनके प्रेम का साक्षात्कार 'राहुल' नामक पुत्र के उत्पन्न होने से होता है। पर बुद्ध जी को देश के दीन-दुखियों की दशा देखकर महान् करुणा उत्पन्न होती है और वे अपने सारथी के साथ एक रात को जंगल को निकल जाते हैं। वहाँ

राजसी कपड़े उतार कर संन्यास ग्रहण करते हैं। इस तरह कई वर्षों तक तपस्या करने पर अनेक विघ्न-बाधाओं को सहन करके वे सच्चे मार्ग का पता लगा लेते हैं और लोक-हित के लिए उसका प्रचार करते हैं। उनके इस कार्य से उनका कुटुम्ब देश और भारत कृतार्थ होता है। इस नाटक की कथा का यही सार है।

इस नाटक के पात्रों और पात्रियों का चरित्र-चित्रण बहुत सुन्दर हुआ है। पुस्तक में भिन्न-भिन्न पात्रों-द्वारा भारतीय प्रचलित सभी धर्मों पर पूर्ण रीति से प्रकाश डालकर अन्त में उचित तर्कों से बुद्ध जी के बताये हुए धर्म को सर्वोच्च सिद्ध किया गया है। यह नाटक खेलने में विशेष उपयोगी सिद्ध हो सकता है। इसमें कोई भी ऐसी बात नहीं है जो आसानी से न खेली जा सके। इससे जनता में सद्भावना का ही प्रचार होगा।

५—देवकन्या (नाटक)—लेखक, पंडित श्रीकृष्ण मिश्र, एम० ए०, एल०, प्रकाशक, वाणी-मन्दिर, मुँगेर हैं। पृष्ठ-संख्या ८५ और मूल्य ।।) है।

इस छोटे-से सामाजिक नाटक में नाटककार ने आधुनिक हिन्दू-समाज की वास्तविक स्थिति को स्पष्ट रूप से दिखलाने का प्रयत्न किया है। इसका कथानक इस प्रकार है। मेनका राजमती नामक देवदासी की एकमात्र पुत्री है। वह अनिन्द्य सुन्दरी और सुशील है। राजमती उसका रूप बेचकर आजन्म मौज उड़ाना चाहती है। मेनका को इससे बहुत घृणा मालूम होती है और वह इस कार्य को निन्द्य समझती है। मन्दिर के पुजारी और राजा राजराघव मेनका को अपनी प्रेमिका बनाना चाहते हैं। राजमती भरसक उनके इस काम में सहायता करती है। किन्तु मेनका उनके क़ब्ज़े में नहीं आती। इस राज्य में हरिजन-आन्दोलन का भी काफ़ी ज़ोर होता है और अछूत चन्द्रशेखर नामक एक शिक्षित व्यक्ति के संरक्षण में अपने अधिकारों के लिए आन्दोलन करते हैं। मन्दिर के पुजारी और राजकर्मचारी इसका विरोध करते हैं। मेनका चन्द्रशेखर के कार्यों को देखकर उसकी ओर आकर्षित होती है और दोनों में स्वाभाविक प्रेम भी हो जाता है। यह मालूम होने पर राजराघव चन्द्रशेखर को बन्दी करने की आज्ञा देते हैं और वह मेनका के साथ निकल भागता है। राजा स्वयं अपने आदमियों के साथ जाकर एक निर्जन स्थान में दोनों को गिरफ़्तार करता है। चन्द्रशेखर को बन्दी करके राजा मेनका के साथ बलपूर्वक अनाचार करना चाहता है। मेनका अपने को सब भाँति असहाय पाकर उसके प्रेम के स्वीकार करने का वचन देती है। राजा रात में एक सजे कमरे में मेनका के पास जाता है। मेनका उसे शराब से पागल बना देती है और जब वह प्रेम का प्रस्ताव करता है तब छुरा लेकर उसे मारना चाहती है। इसी समय चन्द्रशेखर जो पहले ही मेनका के कहने पर छोड़ दिया गया था, उसका हाथ पकड़ लेता है। राजा को दोनों पर अपार श्रद्धा उत्पन्न होती है और उन्हें एक साथ रहने की आज्ञा दे देता है तथा अछूतों को मन्दिर में जाने और पूजा करने की आज्ञा मिल जाती है।

यह नाटक आज-कल के वातावरण के लिए बहुत ही उपयुक्त है। यह मंच पर बड़ी सुविधा के साथ खेला जा सकता है। इसकी भाषा सरल, साहित्यिक और बोधगम्य है। इसमें लेखक ने अश्लील वर्णनों को नहीं आने दिया है। नाटकप्रेमियों को इसे पढ़ना चाहिए।

६—जैनतत्त्वकलिकाविकास—यह जैनमुनि श्री उपाध्याय आत्माराज जी महाराज की कृति है। इसमें उन्होंने जैन-धर्म के सिद्धान्तों का बड़े पाण्डित्य के साथ विवेचन किया है। वास्तव में यह जैन-धर्म-सम्बन्धी एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह 'नौ' कलिकाओं में विभक्त है। पहली में तीर्थङ्कर-स्वरूप और उस पद की प्राप्ति का, दूसरी में गुरु, आचार्य आदि के स्वरूप का, तीसरी में धर्म का, चौथी और पाँचवीं में गृहस्थ-धर्म का, छठी में दशविधि धर्म का, सातवीं में लोक के स्वरूप का और नवीं में जीव के परिणाम-स्वरूप का बड़े अच्छे ढंग से निरूपण किया गया है और सो भी आवश्यक शास्त्रीय प्रमाणों-द्वारा पुष्ट करते हुए। इसका अवलोकन करने से जैन-सिद्धान्त का बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त हो सकता है। जैनधर्मानुयायी इस ग्रन्थ से अधिक लाभ उठा सकते हैं। पुस्तक सुन्दर छापी गई और सजिल्द है। इसका मूल्य २) है। पता—संस्कृत-पुस्तकालय, सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर।

७—कांग्रेस के इतिहास में काशी का स्थान—संकलयिता, श्रीयुत कमलापति त्रिपाठी, प्रकाशक, मंत्री,

शहर-कांग्रेस-कमेटी, बनारस हैं। पृष्ठ-संख्या ६१ और मूल्य -) है।

कांग्रेस के आन्दोलन के सिलसिले में काशी में वहाँ के कार्यकर्ताओं ने जो कार्य किया है उसका इसमें पूरा वर्णन किया गया है। काशी के देश-प्रेमियों के अपूर्व साहस तथा त्याग का ज्ञान इसके पढ़ने से लग जाता है। अन्य प्रमुख स्थानों से भी कांग्रेस-सम्बन्धी ऐसी पुस्तिकायें प्रकाशित होनी चाहिए।

८—विद्यार्थीसहचर (प्रथम खंड)—लेखक, श्रीयुत जगतनारायण, बी० एस-सी०, प्रकाशक, डायमण्ड जुबली थियोसोफिकल पब्लिशिंग हाउस, पटना है। पृष्ठ-संख्या ४० और मूल्य =)॥ है।

यह पुस्तक विद्यार्थियों के लिए विशेष उपयोगी है। लेखक ने विद्यार्थियों की वास्तविक शिक्षा के उद्देश पर इसमें काफ़ी प्रकाश डाला है। इसके अतिरिक्त अनेक ऐसी बातों पर प्रकाश डाला है जिनका पालन करके विद्यार्थी उच्च आदर्शों को प्राप्त कर सकते हैं। भाषा भी सरल है। विद्यार्थियों को इसे एक बार ज़रूर पढ़ना चाहिए।

९—एज़्ज़ामिनेशन सक्सेस—लेखक, एक अभिज्ञ ग्रेजुएट, प्रकाशक, दि न्यूज़ एजेन्सी, पुस्तक-प्रकाशक, चिपिटोला, आगरा हैं। पृष्ठ-संख्या १०२ है और मूल्य ॥|) है।

इस पुस्तक में यह बताया गया है कि किस उपाय से छात्र लोग अपनी परीक्षाओं में सफलता प्राप्त कर सकते हैं। ऐसी विशेष उपयोगी बातें भी इस पुस्तक में लिखी गई हैं जिनके ज्ञान से साधारण छात्र लाभ उठाकर उत्तम छात्र हो सकते हैं। यह अँगरेज़ी में है और अँगरेज़ी स्कूलों में पढ़नेवाले छात्रों के उपयोग के लिए लिखी गई है। उन्हें इससे लाभ उठाना चाहिए।

१०—पंखुड़ियाँ—लेखक, श्री पृथ्वीनाथ शर्मा, बी० ए०, एल०-एल० बी०, प्रकाशक, हिन्दी-भवन, लाहौर हैं। पृष्ठ-संख्या १४९ और मूल्य १) है।

यह लेखक की कहानियों का संग्रह है। इसमें लेखक की १२ कहानियाँ हैं। सभी कहानियों में मानव-जीवन की कोई न कोई उलझनें सुलझाई गई हैं। 'सुवीरा का भ्रम' नाम की कहानी अति उत्तम है। इसमें सती के चरित्र का बहुत ही सुन्दर चित्र खींचा गया है। कहानियों की भाषा विशुद्ध, सरल और मुहावरेदार है। हिन्दी के कहानी-प्रेमियों को इस संग्रह को ज़रूर पढ़ना चाहिए।

११—व्रज-रज—लेखक, श्रीयुत राय कृष्णदास, प्रकाशक, भारतीभण्डार, लीडर-प्रेस, प्रयाग हैं। मूल्य ॥) है।

व्रज-रज राय कृष्णदास जी के "समय समय पर लिखे गये व्रजभाषा के पद्यों का संग्रह है।" राय कृष्णदास जी एक प्रतिभा-सम्पन्न कलाकार के नाते हिन्दी के अत्यन्त निकट हैं। गद्य-गीत के लेखकों में तो उनका एक विशिष्ट स्थान है। प्रस्तुत पुस्तक में संकलित अपने रचनाओं-द्वारा उन्होंने अपने कवित्व के साथ व्रजभाषा-ज्ञान का भी पूरा परिचय दिया है।

पुस्तक के विषय-भाग को कवि ने चार भागों में विभक्त किया है। प्रथम भाग में "रूप-मद छाकि तव भई मतवारी..." आँखों से उद्भूत वियोग और वियोगजन्य विकलता के उद्गारों की व्यंजना है। कवि को इसमें अच्छी सफलता मिली है। और बात भी तो यह है कि कवि के कल्पनालोक की "लट की, मन-मीन फँसावन की अंकुसी" में पड़कर कौन मीन छटपटाने की कला में पारङ्गत न हो जायगी—

"विधि लै के मृनाल के तार तें खीनता,
त्यों मखतूल से कोमलताई।
बन तें बनता अरु भौंर तें स्यामता,
नेहिन के चित सों चिकनाई॥
मनमोहकता मन-मोहन तें,
पुनि नागिन तें लहरान ही पाई।
मन-मीन फँसावन की अँकुसी,
या लटूरी अरी! लट तेरी बनाई॥"

दूसरे भाग के दोहों में सूक्ति और चमत्कार का अच्छा परिपाक है।

"सूतो क्यों न लखाय जग, तुम निवसे हिय माहिं।
खोज मरी अँखियाँ दुखी, अन्तर लौं गति नाहिं॥"

तीसरे भाग में भक्ति-विषयक गेय पद हैं और चौथे में 'ध्यान', 'प्रभात', 'मुरझाई कली' इत्यादि फुटकल पद हैं। कवि के भक्त-हृदय की तन्मयता प्रशंसनीय है। गीतों में स्वाभाविक प्रवाह देखकर विदित होता है कि

कवि का हृदय अपने मनमोहन के रंग में अच्छी तरह रँगा है।

"नींदहु छाड़ि गई मम साथ।
चली गई वह स्याम-सुन्दर सँग फँसि कै वाके हाथ॥"
× × ×
"नैया छाड़ि दई मझधार।
× × ×
भीषन जलरव होत चहूँ दिसि, को सुनि सकत पुकार?
असरनसरन, विरुद अपने कों, लीजो नेक सँभार॥"

पुस्तक की छपाई-सफ़ाई सुन्दर है। कविता-प्रेमियों को यह संग्रहणीय है।

—गंगाप्रसाद पाण्डेय

१२—क्रियात्मक मनोविज्ञान—लेखक, श्रीयुत प्रियरत्न आर्य हैं। पृष्ठ-संख्या १७८ और मूल्य १) है। पता—श्री बलदेव राजपाल बी० ए०, एल-एल० बी०, लीडर, नं० १, एबट रोड, लाहौर।

इस ग्रन्थ के लेखक स्वयं एक अनुभवी तथा साधना-संपन्न व्यक्ति हैं। योग-सम्बन्धी क्रियाओं की सहायता से मन की संकल्प-शक्ति को बढ़ाकर अनेक आश्चर्यजनक प्रयोग किये जा सकते हैं। इस पुस्तक में लेखक ने मनोबल बढ़ाने की प्रक्रिया तथा उससे (१) दृष्टिबन्ध, (२) अन्तरावेश, (३) सम्मोहन तथा (४) संवशीकरण की विधियों का सरल तथा सुबोध भाषा में वर्णन किया है। पुस्तक की विषय-प्रतिपादन-शैली औत्सुक्यवर्धक तथा मनोरञ्जक है। अन्तरावेश नामक प्रकरण में लेखक ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि अन्तरावेश (स्प्रिच्युअलिज़्म) के अभ्यास के समय प्रेतात्मा नहीं आती और न मेज़ का ही हिलना उनकी उपस्थिति से होता है। इस विषय में अन्य स्प्रिच्युलिस्ट महानुभावों के विचार भिन्न हैं और वे प्रेतात्मा का आना स्वीकार करते हैं। इस विषय में अभी और परीक्षणों तथा दृढ़ प्रमाणों की आवश्यकता है।

स्वयं लेखक ने सम्मोहन-संवशीकरण के प्रयोग गुरुकुल (काँगड़ी) में किये थे और उनके द्वारा कठिन रोगों के निदानों तथा ओषधियों तक का पता लगाया था। इन प्रयोगों का मनोरञ्जक वर्णन लेखक ने इस पुस्तक में किया है। इसके अतिरिक्त मनोबल-द्वारा अनेक रोगों का निराकरण, भूत-भविष्य का हाल जानना, लोक-लोकान्तर की सैर करना, दूरस्थ व्यक्तियों को संदेश भेजना, बुद्धि-वृद्धि के उपाय तथा हस्तिसंयम-द्वारा शारीरिक बल-वृद्धि करना आदि अनेक उपयोगी विषयों की विधियों का वर्णन इसमें किया गया है। यह पुस्तक हिन्दी में अपने ढङ्ग की पहली है और इसमें वर्णित प्रायः सभी बातें लेखक के क्रियात्मक अनुभव के आधार पर, संक्षेप में, अङ्कित हैं।

पुस्तक में इन विषयों का और अधिक विस्तार से वर्णन किया जाता तो अधिक उत्तम होता। साथ ही इस विषय पर उपलब्ध अन्य उपयोगी ग्रन्थों की तालिका भी यदि अन्त में दे दी जाती तो पाठकों का बड़ा लाभ होता। आशा है, जनता में इस उपयोगी पुस्तक का खूब प्रचार होगा।

१३—वेदान्त-धर्म—अनुवादक, श्रीयुत गणेश पांडेय हैं। पृष्ठ-संख्या २२२ और मूल्य १।) है। पता छात्र-हितकारी पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग।

स्वामी विवेकानन्द के वेदान्त-विषयक ५ महत्त्व-पूर्ण भाषणों का इस पुस्तक में हिन्दी-अनुवाद दिया गया है। स्वामी जी के इन व्याख्यानों से भारतीय संस्कृति तथा ज्ञान-विज्ञान पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। बहुत-से लोग कहा करते हैं कि शंकराचार्य-द्वारा प्रतिपादित 'अहं ब्रह्माऽस्मि' के महामंत्र से ही भारत में अकर्मण्यता और आलस्य का प्रचार हुआ है। ऐसे लोगों को स्वामी जी के इन निबन्धों को पढ़कर अपनी सम्मति स्थिर करनी चाहिए। वेदों की अपौरुषेयता, ब्रह्म का सगुण-निर्गुण होना, विभिन्न सम्प्रदायों और मतों का, अद्वैतवाद की सूत्रात्मा-द्वारा, सुन्दर समन्वय तथा वेदान्त-प्रतिपादित अद्वैतवाद का विज्ञान-सम्मत धर्म होना आदि अनेक विवाद-ग्रस्त विषयों का इन व्याख्यानों में मार्मिक विवेचन हुआ है। इस युग में भी सार्वकालिक युग-धर्म वेदान्त का अद्वैतवाद ही हमें बल, वीर्य और निर्भयता प्रदान करके हमारा उद्धार करेगा, यही स्वामी जी की सम्मति है।

अनुवाद प्रायः स्पष्ट तथा सुन्दर हुआ है और मूल की ओजस्विनी शैली की इसमें बहुत कुछ रक्षा हुई है।

१४—काकली—लेखक, श्रीयुत जानकीवल्लभ ललितललाम शास्त्री, प्रकाशक, साहित्यनिकुञ्ज, मैगरा (गया)। मूल्य ।=) है।

संस्कृत में स्फुट विषयों पर लिखी हुई कविताओं का

यह संग्रह अपने ढंग का पहला ही है। आशा, रहस्यमयी, निशीथवीथ्याम्, कलिके! सन्ध्या विहङ्गमवाला आदि विषयों पर नवीन प्रणाली से काव्य-रचना की ओर प्रयत्न करके वस्तुतः कवि ने साहसी पथ-प्रदर्शक का काम किया है। शब्दविन्यास, भावों की मौलिकता तथा भाषा पर अधिकार की दृष्टि से कवि को यथेष्ट सफलता मिली है। प्रायः सभी पद गेय हैं। कहीं कहीं यति-निर्वाह ठीक नहीं प्रतीत होता, किन्तु वह कवि के आलस्य या अरसिकत्व के कारण नहीं है। यह बात 'अनुरणनम्' में कवि महोदय ने स्वयं स्पष्ट कर दी है। आशा है, संस्कृत के प्रेमी सहृदय व्यक्ति इस बाल कवि की प्रशंसनीय कृति का आदर करके कवि का उत्साह बढ़ावेंगे।

१५—क्रन्दन—रचयिता, श्री ब्रह्मदेव शर्मा 'पागल', प्रकाशक, शान्तिनिलय, मैगरा (गया) हैं। मूल्य ≡) है।

'क्रन्दन' में विरह-वेदना से विकल हृदय की भावुकता लय-प्रधान मुक्त-छन्दों तथा तुकान्त पदों में परिस्फुट हुई है। इस छोटी-सी पुस्तक में ऐसे अनेक गुण हैं जिनसे इसके रचयिता की भावुकता तथा विकासोन्मुख प्रतिभा का पता चलता है। भाषा कहीं कहीं खटकती है। इसकी शुद्धि पर विशेष ध्यान देना चाहिए। 'क्रन्दन' शीर्षक कविता का दूसरा पद्य यों है—

हृदय-व्यथा के मधुर-कक्ष में
प्रथम तुझे पाया हूँ!
कम्पित आहों के लय में ही
प्रथम तुझे गाया हूँ!!

यह भाषा की दृष्टि से शुद्ध नहीं है। समुचित काव्य-साधना से लेखक एक अच्छे कलाकार होंगे, इसमें सन्देह नहीं। 'क्रन्दन' के विरह-भरे भावों का, आशा है, रसिक आनन्द लेंगे।

१६-१८—गीता-प्रेस, गोरखपुर की तीन पुस्तकें—

(१) **शरणागति रहस्य**—लेखक, श्रीयुत भट्ट मथुरानाथ शास्त्री हैं। पृष्ठ-संख्या ३५३। मूल्य ||≡) है।

श्रीमद्वाल्मीकि-रामायण में भक्ति और भक्तवात्सल्य का पूर्ण परिचय मिलता है। इसी प्रतिज्ञा को सिद्ध करने के उद्देश से भट्ट जी ने इस पुस्तक की रचना की है। विभीषण जब शरणागत होकर भगवान् राम के श्रीचरणों में आये थे तब अन्य सचिवों के विरोध करने पर भी शरणागतवत्सल राम ने उन्हें सहर्ष ग्रहण किया था। शरणागति का सम्पूर्ण रहस्य इसी घटना-द्वारा महर्षि वाल्मीकि ने अपनी प्रसन्न गम्भीर वाणी में कैसे वर्णन किया है और किस प्रकार शरणागति के छहों अंगों का विवेचन उनकी रामायण में हुआ है, इसी बात का लेखक ने बड़े ऊहापोह एवं विस्तार से इस पुस्तक में वर्णन किया है। महर्षि के पदों एवं वाक्यों का सौन्दर्य एवं व्यङ्ग्यार्थ खोलकर सरल और सुन्दर भाषा में समझा दिया गया है।

इस दृष्टि से रामायण-प्रेमी यदि महर्षि के ग्रन्थ का मनन करेंगे तो उन्हें रामायण में भक्ति की पुण्य मन्दाकिनी के दर्शन होंगे। लेखक की विषय-प्रतिपादन-शैली स्पष्ट, युक्ति प्रौढ़ तथा प्रभावोत्पादक है और उन्हें अपने सिद्धान्त-प्रतिपादन में पूर्ण सफलता मिली है। भगवद्भक्तों को इसका रसास्वादन करना चाहिए।

(२) **उपनिषदों के चौदह रत्न**—लेखक, श्रीयुत हनुमानप्रसाद पोद्दार हैं। पृष्ठ-संख्या ९६ और मूल्य ।=) है।

वैदिक वाङ्मय में उपनिषदों का स्थान सर्वोच्च है। ज्ञान और दर्शन के गम्भीर से गम्भीर तत्त्वों की व्याख्या जैसी इनमें मिलती है, वैसी विश्व-साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। कथा-रूप में अनेक गूढ़ विषय इनमें सरलतम शैली में समझाये गये हैं। प्रस्तुत पुस्तक में उपनिषदों की चौदह कथाओं का संग्रह है। ये कथायें केन, कठ, छान्दोग्य, बृहदारण्यक तथा तैत्तिरीय उपनिषदों से ली गई हैं। इन कथाओं की भाषा सरल तथा वर्णनशैली मनोरंजक है। बीच-बीच में उपनिषदों की पंक्तियाँ तथा उनके अर्थ भी दे दिये गये हैं। इस पुस्तक को पढ़कर बालक, गृह-देवियाँ तथा साधारण जन भी उपनिषदों के पवित्र ज्ञान को कहानी-रूप में अनायास प्राप्त कर सकेंगे। पुस्तक में दस सुन्दर चित्र दिये जाने से यह और भी चित्ताकर्षक हो गई है। पुस्तक उपयोगी और संग्रहणीय है।

(३) **शतश्लोकी**—अनुवादक, श्रीयुत मुनिलाल हैं। पृष्ठ-संख्या ५९ और मूल्य =) है।

यह पुस्तक श्रीशंकराचार्य की कृति मानी जाती है। इसमें वेदान्त के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। आत्म-ब्रह्म का स्वरूप, मुमुक्षु का लक्षण, वैराग्यस्वरूप, आत्म-अनात्म-विवेक, असंग शस्त्र से अनात्म का उच्छेद तथा

वासुदेव-चिन्तन-द्वारा अन्त में वासुदेव रूप जीवन्मुक्त हो ब्राह्मी स्थिति की प्राप्ति, आदि बातें इसमें बतलाई गई हैं। संस्कृतमूलश्लोकों के नीचे हिन्दी-अनुवाद दे दिया गया है। इस प्रकार यह पुस्तक संस्कृत तथा हिन्दी जाननेवाले दोनों के लिए उपयोगी है। अनुवाद सुबोध है। आत्म-चिन्तन और जिज्ञासुओं के काम की चीज़ है।

१९-२०—उपयोगी ग्रन्थ-भण्डार, गुदड़ी बाज़ार, उज्जैन, (मालवा) की दो पुस्तकें—

(१) **ॐकार-जप-विधि**—लेखक, श्रीयुत शिवदत्त शर्मा हैं। पृष्ठ-संख्या ३४, मूल्य ।) है।

इस छोटी-सी पुस्तक में लेखक ने 'ओंकार' का विस्तृत अर्थ तथा उसके अलौकिक माहात्म्य पर अच्छा प्रकाश डाला है। बालकों, युवकों तथा वृद्धों के लिए भी इस महामंत्र 'प्रणव' के जप की आवश्यकता सिद्ध करके लेखक ने प्रणव-पूजा तथा जप-विधि का वर्णन किया है। जप करनेवाले साधकों के भोजन, स्थान, व्यायाम, प्राणायाम आदि विषयों पर भी इसमें विचार किया गया है। उपनिषदों तथा स्मृतियों के प्रमाणों से 'ओं' का श्रेष्ठत्व प्रतिपादन तथा जपशील महानुभावों के अनुभूत ओंकार-जप के फलों की ओर भी संकेत किया है। पुस्तक आध्यात्मिक उन्नति के इच्छुक महानुभावों के काम की है।

(२) **गायत्री-महिमा**—लेखक, श्रीयुत शिवदत्त शर्मा हैं। पृष्ठ-संख्या ४३, मूल्य ।) है।

तीनों वेदों में सुप्रसिद्ध मंत्रराज गायत्री द्विजमात्र के लिए जप्य है। चौबीस अक्षरों से निर्मित इस मंत्र की अद्भुत विभूतियों तथा माहात्म्यों का हिन्दू-शास्त्रों में विशद वर्णन मिलता है। लौकिक तथा अलौकिक सभी प्रकार की सिद्धियाँ इस महामंत्र के जप से प्राप्त हो जाती हैं। इस पुस्तक में लेखक ने 'गायत्री' के जप की सविस्तर विधि तथा जप से प्राप्त अनुभूत फलों का विवेचन किया है। मंत्र-जप से उत्पन्न कम्पन जिस प्रकार आकाशीय ईथर में अपनी प्रभाव-तरङ्गों को फैलाकर विश्व में एक पवित्र भाव-राज्य का विस्तार करते हैं, उसी प्रकार मानव-अन्तःकरण की चित्तवृत्तियों को संयत करके वे उन अलौकिक शक्तियों को जाग्रत करने में सहायक होते हैं जो एक-मात्र योग अथवा चित्तवृत्ति-निरोध से प्राप्त होती हैं। वैज्ञानिक ढङ्ग से इन सब बातों पर इस पुस्तक में प्रकाश डाला गया है। श्रद्धालु तथा आत्मोन्नति की इच्छा रखनेवाले सज्जन इससे अनेक लाभ उठा सकते हैं। इसमें वर्णित गायत्री-मंत्र के अद्भुत प्रभावों तथा गम्भीर अर्थों पर विचार करने से पाठकों के हृदय में श्रद्धा का उद्रेक होगा। इस पुस्तक का जनता में, विशेषकर नवयुवकों में, प्रचार होना चाहिए।

२१—मानकुमारी—अनुवादक, स्वर्गीय बाबू व्रजचन्द्र जी, प्रकाशक, लीडर प्रेस, इलाहाबाद हैं। पृष्ठ-संख्या ३६५ और सजिल्द पुस्तक का मूल्य २॥) है।

यह बँगला के एक ऐतिहासिक उपन्यास का हिन्दी अनुवाद है। इस उपन्यास में नवाबों के अवध का दिग्दर्शन कराया गया है। इनकी कथा संक्षेप में यह है—गंगाप्रसाद शास्त्री के एक लड़का काशीनाथ और तीन लड़कियाँ थीं। दो लड़कियों का विवाह हो चुका था और काशीनाथ ने विवाह न करने का प्रण किया था, इसलिए शास्त्री जी ने अपनी छोटी लड़की मानकुमारी का विवाह अयोध्यानाथ नामक एक ब्राह्मण से कर दिया था और उसको अपने मरने के बाद सीतापुर की जागीर देना चाहते थे। अभी इस शुभ कार्य को हुए अधिक समय नहीं हुआ था कि दर्शनसिंह एक रात को बहुत से लठैतों के साथ जाकर सीतापुर से मानकुमारी को ज़बर्दस्ती पकड़ ले आये और कानपुर के पास एक बाग़ में ले जाकर उसे बन्द कर दिया। वहाँ अयोध्यानाथ की बहन पहले से ही पकड़कर लाई गई थी। एक बुढ़िया उन दोनों को गाना-बजाना सिखाकर लखनऊ के नवाब के महल में भेजने की तैयारी करती थी। मानकुमारी ने कभी गाना आदि नहीं सीखा, बल्कि वह मारे ग्लानि के रोगिणी हो गई। कैलाशेश्वरी गाने-बजाने में प्रवीण हो गई। अन्त में दर्शनसिंह ने इनको नवाब के सामने पेश करने के लिए लखनऊ बुलवा भेजा। वहाँ जाने से पहले ही मानकुमारी और कैलाशेश्वरी में परिचय हो गया था। मानकुमारी की चालाकी से नवाब कैलाशेश्वरी के कथनानुसार दर्शनसिंह से नाराज़ हो गया और उसे क़ैद करवा लिया। ये दोनों एक बाग़ में रहने लगीं। वहीं अयोध्यानाथ से इनकी भेंट हुई। अयोध्यानाथ के साथ ये अपने घर तो आईं, पर मानकुमारी रोग से अधिक पीड़ित होने के कारण जब मरने लगी तब उसने काशीनाथ से कहा

कि भैया ! मैं तो अब विदा होती हूँ, तुम कैलाशेश्वरी के साथ अपनी शादी ज़रूर करना, नहीं तो मेरी और पिताजी की आत्मा को बड़ा कष्ट पहुँचेगा। काशीनाथ ने बहन की आज्ञा स्वीकार कर ली और उनके पिता की अनुमति से मानकुमारी के मरने के बाद यह विवाह हो गया। कुछ समय बाद पितामह जगन्नाथ शास्त्री के पत्र मिलने पर गंगाप्रसाद शास्त्री सपरिवार जाकर काशीवास करने लगे।"

संक्षेप में इस उपन्यास की यही कथा है। अन्य घटनायें प्रसंगवश आती गई हैं। इस उपन्यास के लेखक ने इसमें नवाबी काल के अवध के समाज और राज-व्यवस्था का पूरा विवेचन किया है। अवध की प्रजा के लिए नवाबी राज्य यम-यातना से कम कष्टदायक न था और यदि उसका अन्त हो गया तो अच्छा ही हुआ, यही इसकी रचना-द्वारा ध्वनित किया गया है। इस उपन्यास की कथा बहुत रोचक है। अनुवाद बहुत सरल हिन्दी में किया गया है। उपन्यास-प्रेमियों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए।

२२—रूस का जागरण—लेखक, श्री डाक्टर धनीराम प्रेम, प्रकाशक, रतन पब्लिशिंग हाउस, हिन्दू कालोनी बम्बई नं० १४ है। पृष्ठ-संख्या १६३ और मूल्य १।।) है।

प्रेम जी ने इस पुस्तक में रूस के जागरण का भली-भाँति वर्णन किया है। आरम्भ में पाठकों की सुविधा के लिए उस समय के इतिहास का भी परिचय दे दिया है। इससे पाठकों का उसका पूरा परिचय मिल जाता है। रूस में ज़ारों का अत्याचार अत्यधिक बढ़ गया था और दिन पर दिन वे उसे और बढ़ाते ही जा रहे थे। प्रजा उसको सहन करते करते ऊब गई थी और अपने उस जीवन की अपेक्षा मृत्यु ही उसे अधिक पसन्द थी। यही रूस के जागरण का मुख्य हेतु था। शासकों ने क्रांति के समर्थकों का अपनी शक्ति भर काफ़ी विरोध किया। उन्हें प्राण-दण्ड दिये गये, देश निकाला कर दिया गया, पर क्रान्ति न रुकी और अन्त में उसने ज़ारशाही का विनाश ही करके छोड़ा। ज़ारशाही के नष्ट होने पर कुछ दिन तक स्वार्थी नेता प्रजा पर रोब गाँठते रहे, पर अन्त में वे भी परास्त किये गये और दुखी जनता को सुखी बनाने के लिए उसको वर्तमान रूप दिया गया। इसके पढ़ने से बोल्शेविक रूस की प्रतिपत्ति का सम्यग् ज्ञान हो जाता है।

२३-२४—श्रीयुत सम्पतलाल जैन-रचित दो पुस्तकें—

(१) श्री जैन-नित्य-स्मरणमाला (प्रथम भाग)। जैन-सम्प्रदाय के लोगों के नित्य-स्मरणोपयोगी स्तुतियों और पदों का इसमें संग्रह हुआ है। नवकार मंत्र तथा सिद्ध, पार्श्वनाथ, महावीर, गौतम आदि जैन-तीर्थंकरों की महिमा और स्तुतियाँ इन पदों में गाई गई हैं। पुस्तक ट्रैक्ट रूप से जैन लोगों में बाँटने के उद्देश से तैयार की गई है। कविता और भावों की दृष्टि से पुस्तक साधारण है। मूल्य -) है। १०० प्रतियों का दाम ५)।

(२) धर्म-दृढ़ सती सुलसा—मगध-देश के राजा श्रेणिक के सारथी नागसारथी की पतिव्रता पत्नी सुलसा थी। सन्तति के अभाव से नागसारथी अत्यन्त दुःखित थे। सती देवी सुलसा जिनेन्द्रदेव की पूजा तथा धर्मकार्यों में चित्त लगाकर सन्तोषपूर्वक दिन काटने लगी। उसकी तपोनिष्ठा और धर्मभाव की अतुल कीर्ति सुधर्मा इन्द्र के लोक तक पहुँची। हरिणगमेषी नामक एक देव सती की परीक्षा के लिए दो साधुओं के वेष में सुलसा के घर आये और उसकी परीक्षा ली। इसमें देवी को सर्वथा सत्पात्र पाकर उसे बत्तीस पुत्रों के उत्पन्न होने का वरदान दिया। यथासमय ये पुत्र उत्पन्न हुए और महाराज श्रेणिक के सेवक होकर एक दिन युद्ध-क्षेत्र में काम आये। राजकुमार अभयकुमार के ज्ञानोपदेश से सुलसा का पुत्रों के मरण का दुःख दूर हुआ और उसने अपने शेष जीवन को धर्म-लाभ में लगाया। अन्त में वह देवी समाधि-द्वारा शरीर त्याग-कर ब्रह्मलोक को गई। यही इस पुस्तक की संक्षिप्त कथा है। कथा सरस भाषा में लिखी गई है, किन्तु अनेक स्थानों पर वाक्य-विन्यास बेढंगा और अशुद्ध है। प्रूफ़ की भी बहुत-सी भूलें पुस्तक में छूट गई हैं। पुस्तक जैन-धर्मावलम्बी बालक-बालिकाओं के लिए उपयोगी है।

इन दोनों पुस्तकों के मिलने का पता—शाह किशनलाल जी सम्पतलाल जी लुनावत, सरदारपुरा, फलौदी (मारवाड़)।

गंगासिंह



जाग्रत नारियाँ

जापान का आधुनिक स्त्री-समाज

लेखक, श्रीयुत चतुरदास गुजराती

इस लेख के लेखक महोदय इस समय जापान में हैं। वहीं से उन्होंने यह लेख भेजा है।

जापान के स्त्री-समाज में जो फेरफार हो रहा है, आज वह पूरी बाढ़ पर है। वहाँ के वर्तमान स्त्री-समाज और उसकी बढ़ती हुई प्रवृत्तियों को देखकर उसके भविष्य की कल्पनायें ग़लत ठहर सकती हैं। और बातों की तरह जापान की वर्तमान स्त्रियाँ भी पूर्वीय और पश्चिमीय सभ्यता के संश्लेषण के ही फल हैं। जापान को आज की स्त्री के बनाने में न तो अपने पुराने उपकरणों को त्यागना पड़ा है और न नवीन शक्तियों की अवहेलना करनी पड़ी है। इसलिए आज के जापान की स्त्रियाँ संसार में अपना अलग स्थान रखती हैं।



[श्रीमती कला श्रीवास्तव, बी० ए०। ये रायबहादुर लाला सीताराम की पौत्री हैं और शिक्षणकला की उच्च शिक्षा प्राप्त करने विलायत गई हैं।]

आधुनिक जापानी स्त्रियों के समझने के पूर्व यह जान लेना अच्छा होगा कि हम मध्यकाल की स्त्रियों की ओर एक नज़र से देख लें। ईसा से १२०० वर्ष पूर्व ये पूर्णरूप से स्त्रियाँ थीं। कहने का तात्पर्य यह कि अपने को संगीत, सौन्दर्य और कविता में पूर्ण बनाना ही इनका ध्येय रहता था। प्रेम और सौन्दर्य के आवाहन और सजावट में ही इनका समय व्यतीत होता था। सादे और सरल जीवन के लिए इनके हृदय में कोई स्थान नहीं था।

धीरे-धीरे समय बदला। प्रेम की खोज में भटकने-वाली स्त्रियाँ वीरों की मातायें बनने के लिए तरसने लगीं। सौन्दर्य की उपासना छोड़कर वीरों की गुणगाथा गाई जाने लगी। योशीत्सूमी जैसे वीर की माता का नाम गौरव से लिया जाने लगा। इसी काल से आत्मबलिदान की प्रथा निकली और उसमें स्त्रियों का स्थान ऊँचा हुआ, इसके साथ ही मध्यकालीन स्त्रियों का जन्म हुआ।



[श्रीमती हिजाब इम्तियाज़ अली। ये हवाई जहाज़ उड़ाने का लायसेंस प्राप्त करनेवाली प्रथम मुसलिम महिला हैं। लाहौर में उर्दू की लेखिका और कवयित्री के रूप में भी ये प्रसिद्ध हैं।]

चीनी आचार्य कन्फ़ूकस के अनुसार स्त्रियों का स्थान पुरुषों की अपेक्षा जैसा छोटों का बड़ों के साथ, बच्चों का पूजनीयों के साथ, सेवक का स्वामी के साथ होता है, समझा जाता था। ऐसी हालत में विवाह या किसी भी पुरुष की उपपत्नी बनकर जीवन व्यतीत करने की प्रणाली जारी हुई! माता होना सौभाग्य की आशा समझी जाने लगी। पति के घर विवाहिता स्त्री का स्थान एक गोद लिये हुए लड़के के समान था। वह कुटुम्ब में नीच प्राणी समझी जाती थी। उसके जीवन का एक-मात्र ध्येय पति के कुटुम्ब की सेवा करना था। अपने पति से अधिक अपने सास-ससुर की सेवा करना उसका कर्त्तव्य होता था। इस नाते उसका सम्बन्ध पति से अधिक उसके माता-पिता से होता था। वह कुटुम्ब में पूर्णरूप से सेविका थी। कार्य-कुशलता, तत्परता और सन्तोष उसके जीवन की प्रधान बातें थीं। पति से भी उसका सम्बन्ध एक नौकरानी का सा होता था। पति की शुश्रूषा और उसकी देख-रेख करना उसका मुख्य काम था। समय बीतने पर उसे प्रधान गृहस्वामिनी और अन्त में गृह-लक्ष्मी का स्थान दिया जाता था। वह संसार में बच्चों के जन्म देने की एक मशीन समझी जाती थी। परन्तु बच्चे उसके नहीं, उसके पति के होते थे। और देशों के समान वहाँ पति-पत्नी का सम्बन्ध भावनाओं और विचारों की डोरी से नहीं बँधा होता था।

आज भी उन मध्यकालीन स्त्रियों जैसे विचार रखनेवाली स्त्रियाँ जापान में हैं। वृद्धाओं के सिवा ऐसी युवतियाँ भी हैं जो पुरानी लकीर की फ़क़ीर हैं! उनका रहन-सहन, उनका विचार-व्यवहार, उनकी सुरुचि में वही मध्यकाल की झलक आज भी देखी जाती है। फल यह होता है कि आज का जापान जो पश्चिमीय सभ्यता की ओर दौड़ा जा रहा है, समाज की इन स्त्रियों के पुराने परन्तु दृढ़ विश्वासों से उलझ पड़ता है। उधर उन स्त्रियों की दशा भी सोचनीय रहती है। उनका जीवन विचारों और कर्त्तव्य के संग्राम का रणक्षेत्र हो जाता है। विचार उनके पुराने तथा मध्यकालीन होते हैं, कर्म उनको आधुनिक चटक-मटक की ओर खींचते हैं। परन्तु इनमें भी बड़ी फुर्ती से परिवर्तन हो रहा है। कुछ दिनों पहले आपने जिस स्त्री को मध्यकाल की स्त्रियों जैसे आचरण करते देखा होगा, उसी स्त्री को अब आप पश्चिमीय सभ्यता का एक बना-ठना पुतला देखकर अचम्भित हो जायँगे। कदाचित् 'परिस्थिति के अनुसार अपने को बना लेना' यह सूत्र ऐसे समय में इनका सहायक हो रहा है, नहीं तो इस वर्ग का कभी वारा-न्यारा हो गया होता! यह तो हुआ मध्यकालीन तथा उन जैसे विचार रखनेवाली स्त्रियों का परिचय। अब हमें आज की स्त्री की ओर देखना चाहिए।

जापान में इतनी शीघ्रता से परिवर्तन हो रहा है कि कौन क्या है, यह कहना कठिन है। इसलिए आज की जापानी स्त्री को समझने के लिए हमें इस परिवर्तन और इसके परिणाम को जानना चाहिए।

भारत की तरह जापान में भी सम्मिलित कुटुम्ब-प्रणाली प्रचलित थी। परन्तु पाश्चात्य सभ्यता के साथ-साथ इसका अब लोप हो रहा है। फिर भी अभी जापान में कौटुम्बिक प्रणाली ही जारी है। यहाँ की प्रणाली हमारे देश की प्रणाली से भिन्न है। जापान में आज-कल यंत्र-युग का प्राधान्य है, जिसके कारण वहाँ के सारे प्राणी खेती और दूसरे धंधे छोड़कर इसी धंधे में लगे देख पड़ते हैं। बच्चा हो या बूढ़ा, स्त्री हो या पुरुष, सबको अपने अपने हिस्से का काम पूरा करना पड़ता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि जापान में बेकारी नहीं है। परन्तु हमारे देश की तरह वहाँ एक ही मनुष्य पर सारे कुटुम्ब के पालन का भार नहीं रहता है। सारे प्राणी स्वतंत्र रहते हैं, क्योंकि अपने पैर पर खड़े होना जानते हैं। वहाँ इस यन्त्र-युग में लड़कियों की कारख़ानों आदि में बड़ी खपत है। फ़ैक्टरियों में उनके साथ इतना अच्छा सलूक होता है कि वे घर पर इतने आनन्द से नहीं रहती हैं। फ़ैक्टरियों में बारह घंटे काम करते रहने पर भी उनके चेहरे पर असन्तोष की झलक नहीं देख पड़ती। थोड़े दिनों के पश्चात् फिर यही लड़कियाँ विवाह करके सुख से गृहस्थ-जीवन व्यतीत करती देखी जाती हैं। वहाँ कोई भी ऐसा विभाग नहीं है, जहाँ लड़कियाँ काम पर न नियुक्त की जाती हों। हाँ, सेना-विभाग में अभी तक वे नहीं पहुँच सकी हैं। जो लड़कियाँ इस प्रकार काम-काज करती हैं वे पश्चिमीय ढंग की पोशाक पहनती हैं, क्योंकि इन कामों में वही पोशाक अधिक सुभीते की होती है। उनके अपने 'कीमोनो' और 'ओबी' काम में बाधक होते हैं। इसलिए उनकी भेष-भूषा में बड़ा परिवर्तन हो गया है। ऐसा ही परिवर्तन विचारों में भी हुआ है, क्योंकि वे घर से अलग रहने के कारण बाहर के स्वतन्त्र वायुमण्डल में बिना रोक-टोक के विचरण करती हैं।

इस परिवर्तन का दूसरा कारण देश में अनिवार्य शिक्षा-प्रणाली का प्रचलन है। अमीर हो या ग़रीब, पढ़ना सब को पड़ता है। संसार की कोई भी अच्छी पुस्तक बाक़ी न होगी, जिसका जापानी में अनुवाद न हुआ हो। इँग्लैंड या और देशों से मौलिक पुस्तक के आने में देर लग जा सकती है, परंतु उसका जापानी-अनुवाद वहाँ पहले ही सुलभ हो जाता है। शहर हो या गाँव, कोई भी जगह आपको बिना पुस्तकालय के नहीं मिलेगी! प्राचीन समय में बालिकाओं की शिक्षा अधिकतर घर पर ही होती थी, इसलिए उनके आचरण और व्यवहार में पुराने आचार-विचार का विकास होता था। परंतु आधुनिक शिक्षा का मार्ग दूसरा है। इसी लिए फल भी दूसरा हो रहा है। जहाँ पहले स्त्रियों को संकोचशीलता का पाठ सिखाया जाता था, वहाँ अब स्त्रियाँ अपना ज्ञान और अपनी कला का विकास अपने ढंग से करती हैं। यद्यपि अभी स्त्रियाँ पुरुषों के समान उतना आगे नहीं बढ़ सकी हैं, तथापि स्त्रियों में पढ़ने की बढ़ती हुई रुचि को देखकर यह अनुमान किया जा सकता है कि वह दिन दूर नहीं जब जापानी स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान उन्नति कर जायँगी।

जापान में पश्चिमीय साहित्य का भाषानुवाद-द्वारा अत्यधिक प्रचार हो गया है, और स्त्रियाँ उसके ज्ञान से वञ्चित नहीं हैं। अख़बार का नित्यप्रति पढ़ना भी उनके जीवन का एक अंग हो गया है। सौ में से निन्यानवे घर आपको ऐसे मिलेंगे जिनके यहाँ अख़बार नित्य आते हैं। अख़बारों का मूल्य भी इतना कम है कि सब लोग उन्हें ख़रीदकर पढ़ सकते हैं। पचास सेन में (जो भारतीय सिक्के में क़रीब छः आने के हुआ) आप चैन से महीने भर अख़बार पढ़ सकते हैं। अख़बारों के प्रचार से जापानी स्त्री हो या पुरुष संसार से परिचित रहता है।

सिनेमा ने भी यहाँ के स्त्री-समाज में एक अद्भुत चहल-पहल पैदा कर दी है। यहाँ के सारे सिनेमा-घर आपको नवयुवतियों से भरे मिलेंगे। लड़कियाँ खेल-कूद में काफ़ी संख्या में भाग लेती हैं। स्की-स्केटिंग आदि सभी खेल-कूद वे अच्छी तरह खेलती हैं। प्रारम्भ में ही उन्हें क़वायद सिखला दी जाती है, जिसे वे बड़ी हो जाने पर भी करती रहती हैं। आपको ताज्जुब होगा कि मिलों में काम करने-वाली लड़कियों को क़वायद करना अनिवार्य है। काम करने के बाद और खाना खाने के पहले इन्हें मिल का एक मास्टर जो इसी काम के लिए रक्खा जाता है, क़वायद कराता है।

जापानी स्त्रियों में जो यह परिवर्तन हो रहा है उसका मूल कारण जापानी पुरुषों की रुचि और दृष्टिकोण का बदलना भी है। वहाँ का आधे से अधिक पुरुषवर्ग पश्चिमीय सभ्यता में रँग गया है और उसकी यह तीव्र इच्छा रहती है कि उसकी जीवन-संगिनियाँ भी उसके अनुसार पश्चिमीय स्त्रियों के समान बन जायँ, जिससे उसे

अपने जीवन में सुख और सुविधा प्राप्त हो। इसी लिए लड़कियाँ भी पुरुषवर्ग के इच्छानुसार अपने को बदलने का पूरा प्रयत्न कर रही हैं और अब वे बराबरी का दावा करने लगी हैं।

परन्तु लड़कियों का विवाह अब भी कुटुम्ब के बड़े लोग ही ठीक करते हैं। हाँ, लड़कियों की स्वीकृति अवश्य ली जाती है। यदि वह किसी युवक को पसन्द नहीं करती है तो फिर उसके साथ उसका विवाह नहीं होता है। विवाह में लड़की की स्वतंत्र इच्छा का आदर बढ़ रहा है। लड़कियों को अपना वर स्वयं ढूँढ़ लेने की आज्ञा दे दी जाती है। क़ानून की दृष्टि में विवाहिता लड़कियों का पूर्ववत् स्थान है। परन्तु सबसे बड़ा अन्तर यह देखा जाता है कि वहाँ के दम्पतियों में प्रेम की वृद्धि हुई है, और पहले जहाँ स्त्रियाँ बच्चा पैदा करने की मशीन समझी जाती थीं, वहाँ अब वे पति की सच्ची सहधर्मिणी समझी जाती हैं।

इन सब बातों के होने पर भी जापानी स्त्रियाँ अब भी इतना अधिक संकोचशील रहती हैं जितना पहले रहती थीं। उनमें कितनी ही तो संसार में अपना स्थान रखती हैं, तो भी वे पुरानी परम्पराओं को एक-दम छोड़ नहीं सकी हैं। उन का अपना एक ख़ास व्यक्तित्व अलग है। उन्हें अपने व्यक्तित्व का ज्ञान है और अपने अधिकारों की भी जानकारी है। उनकी दास-भावना का भी उन्मूलन हो रहा है। उसके स्थान पर अधिकार के भाव की वृद्धि हो रही है। वे अपना मूल्य समझने लगी हैं। जापानी स्त्री स्वयं क्या है, इस पर उसका विवाह निर्भर नहीं रहता, किन्तु उसकी शिक्षा-दीक्षा ही उसे विवाह के योग्य बनाती है।

बहुत संभव है, मध्यकाल की स्त्रियाँ जापान में कुछ समय के बाद न देख पड़ें, परंतु उनके प्रभाव के लोप होने में समय लगेगा। वर्तमान पुरुष और स्त्रियाँ राष्ट्र की संस्कृति के फल हैं, इसलिए ये पश्चिमीय हवा के झपेट में आकर भी अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रखने में सफल होंगी*।

* हिन्दीलेखकसंघ, प्रयाग-द्वारा प्राप्त।

कदम्ब

लेखक, श्रीयुत गिरिजाशङ्कर मिश्र, 'गिरीश'

यह पीले पीले, गोल गोल,
केशर के-से गुच्छे अमोल।
उड़ने को तत्पर हैं मानों,
सुन्दर पत्रों के पंख खोल।

फूलों से भर कर डाल डाल,
आई वर्षा करने निहाल।
या प्रकृति-प्रिया की टँगी हुई,
है यह सुवर्ण की कंठमाल।

झुक झुक झोंकों से डोल डोल,
यह कन्दुक-से करते किलोल।
क्या ललित डालियों में लटके
हैं कलित कुमकुमे गोल गोल।

थर थर थर कँपता पत्र-जाल,
यह फिर फिर देते समुद ताल।
इस बूँदा-बाँदी में इनका,
पुलकायमान है बाल बाल।

यह कैसी मादक, मधुर गन्ध,
इस गन्धवाह में भ्रमर अन्ध।
आवो भूलें, मन बहलाने—
का यह कैसा सुन्दर प्रवन्ध।

कुछ इधर उधर की

जीव-दया के सम्बन्ध में आधुनिक रूस के बालक किस दृष्टि से विचार करते हैं, इसका एक मनोरञ्जक समाचार एक रूसी पत्रिका में हाल में ही प्रकाशित हुआ है। एक फ़्रांसीसी लेखक ने रूसी बच्चों को एक कहानी सुनाई और उस पर उनकी राय पूछी। कहानी इस प्रकार थी—

"मेरे बहनोई ने पानी में एक कुत्ता खड़ा देखा। वह भूखा था और एक पत्थर के ढोंके से बँधा था। वह पानी में डूबकर मर भी नहीं सकता था और वहाँ से छूटकर कहीं जा भी नहीं सकता था। उसने कुत्ते को पानी से बाहर निकाला। उसे खाने को भोजन दिया और जब वह खाने लगा तब उसे गोली से मार दिया।"

यह कहानी सुनाकर उसने बच्चों से पूछा कि उसका कार्य उचित था या अनुचित। बहुतों ने उस मनुष्य को निर्दयी और असभ्य कहा। जब उनसे पूछा गया कि वे उस दशा में क्या क्या करते तब उन्होंने कहा कि हम उसके प्राण बचाते और उसे जीवित रखते। ख़ैर, एक स्कूल में इस पर विवाद हुआ और यह तय हुआ कि उस आदमी का कार्य उचित था, क्योंकि कुत्ते का कोई मालिक नहीं था और इस प्रकार भूखों भटक कर मरने से उसका प्राण ले लेना अच्छा ही हुआ। उसने उसे पानी से निकाला ताकि पानी दूषित न हो, खाना खिलाया ताकि उसका कष्ट कम हो और उसे गोली मार दी ताकि उसे और अधिक दुःखद मृत्यु का सामना न करना पड़े।

× × ×

प्रान्तीय कौंसिलों का चुनाव क़रीब आ रहा है। बहुत-से लोग खड़े होंगे। इसमें सन्देह नहीं कि सभी न चुने जायँगे, पर कुछ तो अवश्य ही चुने जायँगे। जो चुने जायँगे उन्हें क्या करना चाहिए, इसका बड़ा सुन्दर उत्तर फ़्रांस के एक सिनेटर श्रीयुत हेरियट ने वहाँ के एक नये उम्मीदवार को दिया है। हमारे सूबे के जो लोग चुने जाने की आशा रखते हैं उनके लाभ के लिए उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

प्रथम वर्ष—कौंसिलभवन में प्रवेश मत करो। [...] वयोवृद्ध मेम्बरों से लाबी में मिलो और आदर के सा[थ] उन्हें सलाम करो।

द्वितीय वर्ष—कौंसिल के एक कोने में चुपचाप बैठो

तृतीय वर्ष—एक या दो प्रश्न करने का प्रयत्न करो

चतुर्थ वर्ष—किसी छोटी कमिटी में रक्खे जाने की माँग पेश करो।

पंचम वर्ष—किसी स्थानीय मामले की जाँच का भार लो।

षष्ठ वर्ष—तुम्हारी बात सुनी जायगी।

सप्तम वर्ष—एक बार भाषण करो।

अष्टम वर्ष—दो बार बोलो।

नवम वर्ष—नया चुनाव होगा तो हार जाओगे।

× × ×

एक अँगरेज़ कवि की राय है कि वह कविता जो किसी को भोजन करते समय या भोजन करने के ठीक बाद सुनाई जाती है, लोगों को बहुत पसन्द आती है। जब हम अपने यहाँ अधिकांश कवि-सम्मेलनों को असफल होते देखते हैं तब हमें कहना पड़ता है कि यह राय ठीक है। यदि हमारे यहाँ भी जो लोग कवि-सम्मेलनों का आयोजन करते हैं वे कवियों को न सही, पर श्रोताओं के खिलाने की व्यवस्था किया करें तो अपनी सफलता पर उन्हें बिना गर्व हुए नहीं रह सकता। कुछ लोग शादी-ब्याह आदि के साथ होनेवाले कविसम्मेलनों का विरोध करते हैं। पर कदाचित् उन्होंने इस दृष्टि से इस विषय पर कभी नहीं सोचा।

रूस में तो यह प्रथा प्रचलित हो गई है कि लेनिनग्रेड में कलकारख़ानों के लोग जब भोजन करने लगते हैं तब उन्हें प्रश्किन्स की कवितायें सुनाई जाती हैं। और लन्दन की नेवी-लीग की ओर से गत मास में यह प्रकाशित हुआ था कि जब लीग के सदस्य एक प्रीतिभोज में एक साथ खाना खाने बैठेंगे तब उन्हें प्रसिद्ध कवि श्री अल्फ़्रेड नोविस स्वरचित सुन्दर रचना सुनायेंगे। इतना ही नहीं,

उसी समय फ़र्स्ट लार्ड आफ़ दि एडमिरेलिटी सर सेमुअल होर का भाषण भी होगा। क्या अच्छा हो कि इस प्रकार के कविता-पाठ हमारे यहाँ भी आरम्भ हों।

× × ×

इस वर्ष दीवाली में काशी और प्रयाग में मज़ेदार जुए हुए हैं। काशी की एक बाज़ी का समाचार 'आज' में इस प्रकार प्रकाशित हुआ है—

सराय गोवर्धन में दीवाली के दूसरे दिन शाम को विलक्षण बाज़ी लगने का समाचार विश्वस्त सूत्र से मिला है। कहते हैं कि एक भले घर की स्त्री अपने बच्चों को शायद उठा रही थी कि उनकी गाय दुहने के लिए आया हुआ अहीर बोल उठा—आपमें क्या दम है कि एक साथ दो बच्चों को उठा लें। उक्त महिला ने कहा कि दो बच्चों को उठा लेना कौन बड़ी बात है। मैं दो बच्चों को एक हाथ पर लिये चौक तक चली जा सकती हूँ। अहीर ने कहा कि आप ऐसा कर दिखावें तो मैं अपनी भैंस हार-कर आपको दे जाऊँगा, नहीं तो आपकी गाय खोल ले जाऊँगा।

बाज़ी लग गई। स्त्री जो दुबली-पतली बताई जाती है, अपने दो बच्चों को अपनी एक बाँह पर लिये चौक तक चली गई। अहीर ने अपनी भैंस लाकर उस महिला के दरवाज़े पर बाँध दी। स्त्री ने कहा—अपनी भैंस ले जाओ।

× × ×

अब इलाहाबाद का समाचार सुनिए। इलाहाबाद में इस बार कई वर्ष के बाद रामलीला हुई थी। कटरे की रामलीला का जब हिसाब प्रकाशित हुआ तब मालूम हुआ कि ख़र्च आमदनी से कुछ अधिक हो गया है। इस पर कमिटीवाले यहाँ के एक रईस के पास गये और कहा कि बाक़ी रक़म आप दे दें। उन्होंने कहा—"मुझे स्वीकार है, पर एक शर्त पर। इस समय एक जगह जुआ हो रहा है। आप लोग वहाँ जायँ और सिर्फ़ एक दाँव लगावें। हार गये तो मैं सब दूँगा और जीत गये तो उससे रामलीला-कमिटी का हिसाब पूरा कर लीजिए। इस पर लोगों ने जाकर दाँव लगाया और वह चल गया। उन्हें ६४ रुपये मिले। उसे लेकर वे वहाँ से चलने लगे इस पर खेलनेवालों ने ज़िद की कि और खेलिए। इस पर वे बोले—"इतने ही रुपयों की ज़रूरत थी।" और वहाँ से चुपचाप चले आये!

× × ×

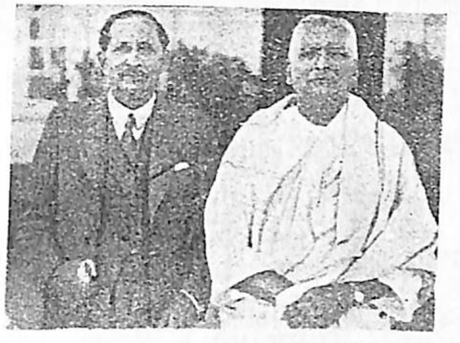
गत मई मास में न्यूयार्क में वहाँ की स्त्रियों की उद्योग और कला की १५वीं वार्षिक राष्ट्रीय प्रदर्शनी हुई थी। उसमें उत्तर-भारत की चाय की एक स्टेट की एक दूकान भी थी, जिसने लोगों का ध्यान अत्यधिक आकर्षित किया था। इस दूकान में एक जहाज़ बड़े सुन्दर ढङ्ग से सजा कर रक्खा गया था और उस पर यह सन्देश अङ्कित था—"संसार में जहाँ देखिए वहाँ चाय।" इसकी सजावट भारतीय पर्दों और क़ालीनों से की गई थी, जिन पर अमरीका के प्रेसीडेंट की पत्नी श्रीमती फ्रेंकलिन डी॰ रूज़वेल्ट इतनी मुग्ध हुई कि वे दो स्कूलों में प्रदर्शन करने के लिए कुछ चुनी हुई चीज़ें उधार ले गईं। यह प्रसन्नता की बात है कि कम से कम चाय एक ऐसी वस्तु है जिसके व्यवसाय में भारत संसार में सबसे आगे है।

× × ×

पंडित जवाहरलाल नेहरू को मध्य-प्रान्त के दौरे में भी बड़ी सफलता मिल रही है। छत्तीस-गढ़ में उन्होंने एक ही शाम को चार बड़ी बड़ी सभाओं में व्याख्यान किया और जनता से प्रान्तीय कौंसिल में कांग्रेस के ही उम्मीदवारों को वोट देने के लिए अपील की। इस सिलसिले में एक मनोरञ्जक घटना भी हो गई। जब पंडित जी मोटरकार से मुँगेली जा रहे थे, गजाधर साहु नाम का एक व्यक्ति उनके मोटर के सामने आकर लेट गया। मोटर रोका गया और गजाधर ने पंडित जी से कहा—"मैं आपको तभी जाने दूँगा जब आप यह वादा करें कि आप कांग्रेस की ओर से सिर्फ़ किसानों को ही कौंसिल में भेजेंगे, क्योंकि कांग्रेस ने किसानों की भलाई करने की घोषणा की है।

लोगों ने गजाधर को बहुत समझाया, पर वह टस से मस न हुआ। इस पर पंडित जी स्वयं कार से उतरे और उन्होंने उसके व्यवहार पर बड़ा खेद प्रकट किया। पर वह लेटा ही रहा। तब स्थानीय कार्यकर्ताओं ने उसे बलपूर्वक अलग किया और पंडित जी ने आगे की यात्रा आरम्भ की।

चित्र-संग्रह

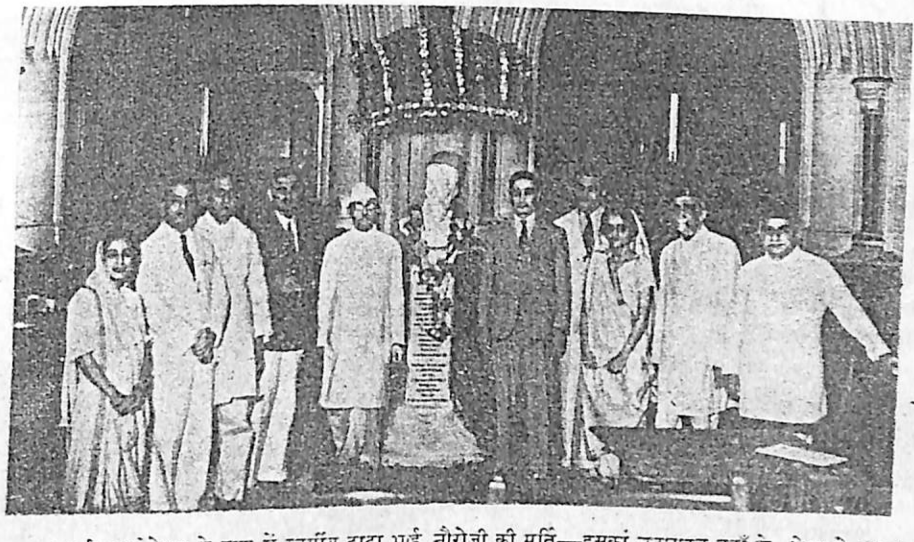


सर मुहम्मद यामीन ख़ाँ और रायज़ादा हंसराज—ये भारत-सरकार की ओर से क़ैदियों की स्थिति की जाँच करने अन्डमान द्वीप गये थे। वहाँ से लौट आये हैं और शीघ्र ही अपनी रिपोर्ट सरकार के समक्ष रक्खेंगे।

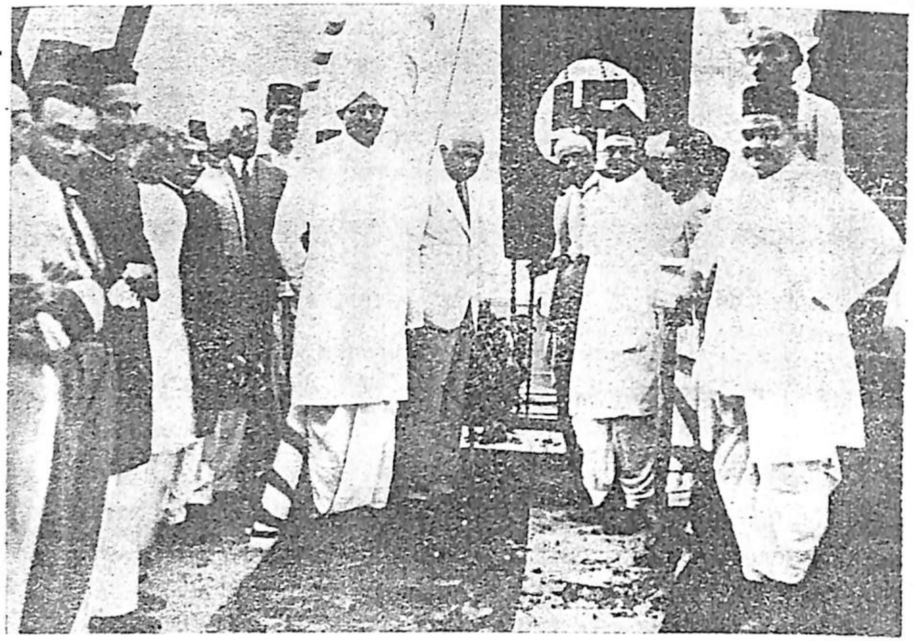


शृङ्गार

चित्रकार—श्रीयुत पी॰ आर॰ राय



बम्बई कारपोरेशन के हाल में स्वर्गीय दादा भाई नौरोजी की मूर्ति—इसका उद्घाटन वहाँ के मेयर ने गत ३ सितम्बर को किया था। चित्र में मेयर और मूर्ति-संस्थापक-समिति के सदस्य खड़े हैं।



हाल में बम्बई में श्रीमान् भूलाभाई देसाई ने एक नई इमारत की नींव रक्खी है। यह चित्र उसी समय का है।



महामना मालवीय जी डी० ए० वी० कालेज के जुबली-उत्सव का सभापतित्व करने लाहौर गये थे। लाहौर के स्टेशन पर उनका धूमधाम से स्वागत किया गया। यह उसी दृश्य का एक अंश है।



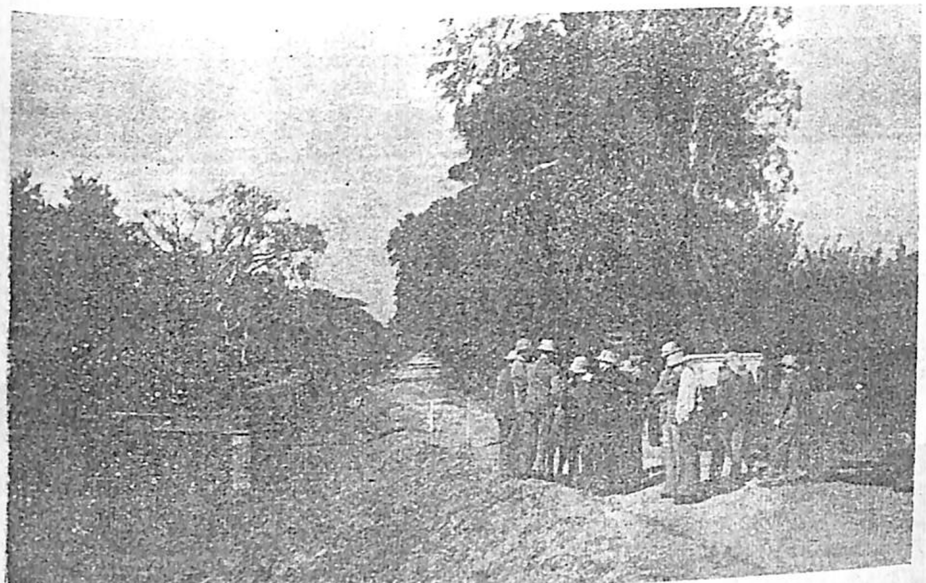
बम्बई में श्री जे० कृष्णमूर्ति—आप हाल में ही योरप से भारत आये हैं।



एक हजार खम्भे का मन्दिर—किसी समय यह मन्दिर दक्षिण-भारत का गौरव था। आज इसका यह ध्वंसावशेष है।



रीवाँ में श्री उज्जयिनी मेमोरियल हाल—रीवाँ-नरेश अपनी स्वर्गीया माता की यादगार में इस नई इमारत की नींव रख रहे हैं।



नहर-विभाग के इंजीनियर दिल्ली के निकट मच्छड़ों की वृद्धि रोकने के उद्देश से एक नहर का निरीक्षण कर रहे हैं और कुओं से बागों की सिंचाई करने पर विचार कर रहे हैं।

व्यत्यस्त रेखा शब्द पहेली

CROSSWORD PUZZLE IN HINDI

३००) शुद्ध पूर्तियों पर

२००) न्यूनतम अशुद्धियों पर

५००) नक़द के अतिरिक्त १००) की पुस्तकें भी पारितोषिक में दी जायँगी

नियम :—(१) वर्ग नं० ५ में निम्नलिखित पारितोषिक दिये जायँगे। प्रथम पारितोषिक—सम्पूर्णतया शुद्ध-पूर्ति पर ३००) नक़द और ५०) की पुस्तकें। द्वितीय पारितोषिक—न्यूनतम अशुद्धियों पर २००) नक़द और ५०) की पुस्तकें। वर्गनिर्माता की पूर्ति से, जो मुहर बन्द करके रख दी गई है, जो पूर्ति मिलेगी वही सही मानी जायगी।

(२) वर्ग के रिक्त कोष्ठों में ऐसे अक्षर लिखने चाहिए जिससे निर्दिष्ट शब्द बन जाय। उस निर्दिष्ट शब्द का संकेत अङ्क-परिचय में दिया गया है। प्रत्येक शब्द उस घर से आरम्भ होता है जिस पर कोई न कोई अङ्क लगा हुआ है और इस चिह्न (▓) के पहले समाप्त होता है। अङ्क-परिचय में ऊपर से नीचे और बायें से दाहनी ओर पढ़े जानेवाले शब्दों के अङ्क अलग अलग कर दिये गये हैं, जिनसे यह पता चलेगा कि कौन शब्द किस ओर को पढ़ा जायगा।

(३) प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगाड़ कर या काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(४) प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए जो फ़ीस वर्ग के ऊपर छपी है दाख़िल करनी होगी। फ़ीस मनीआर्डर-द्वारा या सरस्वती-प्रतियोगिता के प्रवेश-शुल्क-पत्र (Credit voucher) द्वारा दाख़िल की जा सकती है। इन प्रवेश-शुल्क-पत्रों की किताबें हमारे कार्यालय से ३) या ६) में ख़रीदी जा सकती हैं। ३) की किताब में आठ आने मूल्य के और ६) की किताब में १) मूल्य के ६ पत्र बँधे हैं। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति, जिनका पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर ५, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(५) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र नत्थी होकर आना अनिवार्य है। रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी। लिफ़ाफ़े की दूसरी ओर अर्थात् पीठ पर मनीआर्डर भेजनेवाले का नाम और पूर्ति-संख्या लिखनी आवश्यक है।

(६) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्ति-संख्यायें भेजनी चाहे, भेजे। किन्तु प्रत्येक वर्गपूर्ति सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए। इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। वर्गपूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। इंडियन प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे।

(७) जो वर्ग-पूर्ति २३ दिसम्बर तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में नहीं शामिल की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २३ ता० को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिए और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करने वाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता अशुद्धता की जाँच कर सकें।

(८) इस वर्ग के बनाने में 'संक्षिप्त हिन्दी-शब्दसागर' और 'बाल-शब्दसागर' से सहायता ली गई है।

अङ्क-परिचय

बायें से दाहिने

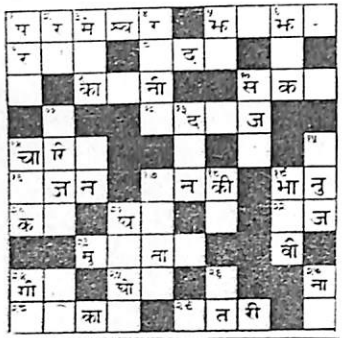
१—संसार का परिचालक ।
५—पानी ज़ोर से बरसने की आवाज़ ।
७—इससे स्वाद मिलता है ।
८—इसके प्रभाव से चंचल भी शिथिल पड़ जाता है ।
९—यह स्त्रियों को शोभा नहीं देती ।
१०—गाड़ी ।
१२—एक प्रसिद्ध पापी ।
१४—चाल-चलन ।
१६—इस क्रिया की कठिनाई हर एक नहीं सह सकता ।
१७—चावल के छोटे टुकड़े ।
१९—सूर्य ।
२०—अन्न का एक दाना ।
२१—मकान ।
२२—यहाँ पर एक लोक उलट गया है ।
२३—यह मुलतान का गड़बड़ है ।
२४—यदि यह न हो तो गाना नहीं हो सकता ।
२५—कोई कोई भङ्ग......पीते हैं ।
२८—डाँट ।
२९—अब भी कहीं-कहीं पत्तों से बनती है ।

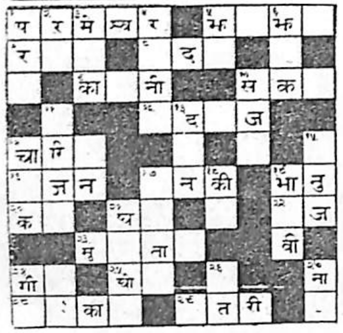
ऊपर से नीचे

१—सभी के पास ऐसी दृष्टि नहीं होती ।
२—आनन्द ।
३—पार्वती की माता ।
४—सुन्दर ।
५—एक प्रकार की धुन ।
६—इससे आँख बन्द ही हो जाती है ।
१०—ठोकर खाकर भी कोई-कोई...नहीं होते ।
११—गृहस्थ-जीवन में ये प्रायः सुख के सहायक हैं ।
१३—संहार ।
१४—यदि यह न होता तो प्रेम की हूक कौन सुनाता ।
१५—कहा जाता है कि जब पृथ्वी इनका भार नहीं सँभाल सकती तब अवतार होता है ।
१७—मनुष्य इसके इशारे पर नाचते हैं ।
१८—मनुष्य की बोली की नक़ल अच्छी करता है ।
१९—यमुना ।
२१—बादल की गरज ।
२४—एक पक्षी ।
२६—आपत्ति पड़ने पर बिरले ही मनुष्यों की, नहीं बिगड़ती ।
२७—समझदार इसे गन्दा नहीं होने देते ।

नोट—रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा-रहित और पूर्ण हैं।

अपनी याददाश्त के लिए, वर्ग ५ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ कर लीजिए, और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।



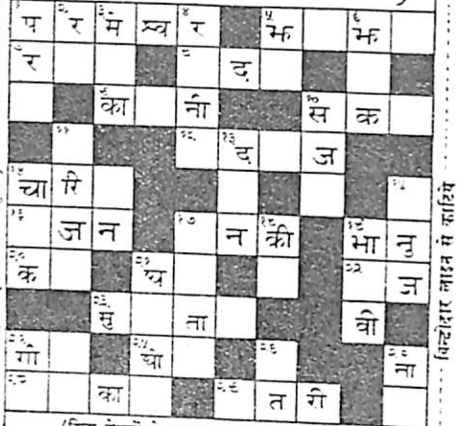


वर्ग नं० ४ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर ४ की शुद्ध पूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े पर मुहर लगाकर रख दी गई थी यहाँ दी जा रही है। पारितोषिक जीतने वालों का नाम हम अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं।

क	मे	ला	प	ति		रा	म	र	न
र	द		त		प	र	ला		
ल		र	न	वा	स		डे	शा	न
	रा	ज		चा	ली	स		ल	व
भा	व	ना		ल		गो	ट		ला
व	त		न		अ	त्र		न	
क		अ	का	ज			मे	ली	न
	च	मा	र		रु	द	न		भ
बे	ना	व		त	चि	व	न		
र		ट		पं	र	न		भा	प

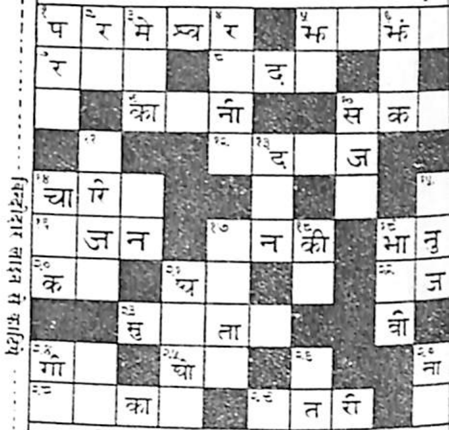
वर्ग नं० ५ फ़ीस ।।)



(रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा रहित और पूर्ण हैं)
मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा ।
पूरा नाम
पता
पूर्ति नं०

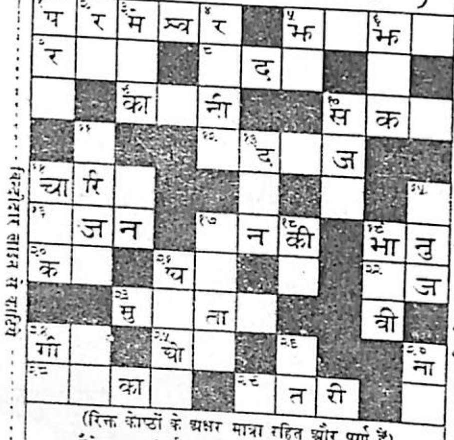
कैंचीदार लाइन से काटिये

वर्ग नं० ५ फ़ीस ।।)



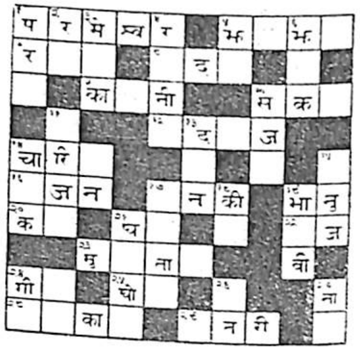
(रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा रहित और पूर्ण हैं)
मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा ।
पूरा नाम
पता
पूर्ति नं०

वर्ग नं० ५ फ़ीस ।।)



(रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा रहित और पूर्ण हैं)
मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा ।
पूरा नाम
पता
पूर्ति नं०

कैंचीदार लाइन से काटिये



अपनी याददाश्त के लिए वर्ग ५ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ कर लीजिए, और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए ।

वर्ग-प्रतियोगियों की कुछ और चिट्ठियाँ

मनोरञ्जन का नया सामान

रूरा

३०. १०. ३६

श्रीमान् मैनेजर महोदय,

वर्ग नं० २ का प्रथम और द्वितीय पुरस्कार ३५॥) आपका भेजा हुआ पहुँचा। धन्यवाद।

वास्तव में ऐसी पहेली हिन्दी-संसार के लिए अनोखी और बड़ी मनोरंजक है। मानसिक और आर्थिक लाभ जो कुछ इससे होते हैं वह तो स्पष्ट है ही, परन्तु पुरस्कार जीतनेवालों की सूची पढ़ने से मुझे यह ज्ञात होता है कि इस पहेली ने भारतीय महिलाओं के लिए मनोरञ्जन का एक नया सामान पैदा कर दिया है। 'सरस्वती' के लिए यह उचित ही था कि ऐसे मनोरञ्जन में भारतीय स्त्रियों का विशेष ध्यान रक्खा।

भवदीया

रुक्मिणी

विद्यार्थियों के लिए विशेष उपयोगी

वर्ग न० ३ में मेरी ६ अशुद्धियाँ थीं। इतने पर भी मुझे ७) का पुरस्कार मिला। इससे मैंने यह समझ लिया कि वर्ग कठिन होंगे तो भी पुरस्कार में फ़र्क़ न पड़ेगा। पूर्व पुरस्कार-विजेता वर्ग-पूर्ति के सम्बन्ध में साहित्य-सेवा आदि अनेक लाभ बता चुके हैं। परन्तु इनके अतिरिक्त इससे मुख्य लाभ बुद्धि-तीव्रता तथा सूक्ष्म विचार का होना है। मेरी राय में स्कूलों में छात्रों-द्वारा ऐसे वर्गोत्तर निकलवाना तथा उसके विषय में वाद-विवाद करना उनके लिए विशेष लाभदायक सिद्ध होगा तथा मित्र-मंडली में वार्तालाप का सुअवसर प्राप्त होता रहेगा।

—वंशधारीसिंह मास्टर, कटरा।

पुरस्कार नहीं जीता, पर हताश नहीं

प्रिय महोदय,

आपकी वर्ग-पूर्तियों में मैं शुरू से ही भाग ले रहा हूँ और आपको यह जानकर मेरे साथ ज़रूर हमदर्दी होगी कि अभी तक मैंने किसी भी वर्ग में इनाम नहीं मारा। इतना ही नहीं, हर बार मेरी ग़लतियाँ दर्जन के आस-पास पहुँचीं। हर बार मुझे अठन्नी गँवानी पड़ी। पर आप यह न समझिए कि इससे मैं ज़रा भी हताश हूँ। सच पूछिए तो इन वर्गों का हल करने में मुझे इतना मज़ा आता है, नये शब्दों के बनाने और खोजने में सारी चिन्तायें इस प्रकार भूल जाती हैं और समय इस तरह कट जाता है कि उसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि आप इसे जारी रक्खें और जब तक आप इसे जारी रक्खेंगे, मैं इसमें भाग लेता रहूँगा और मुझे विश्वास है कि किसी न किसी बार ऐसा हाथ मारूँगा कि सारी कसर निकल आएगी।

आपका

रामप्रसाद

एक नवीनता है।

प्रिय महाशय जी,

आपका कार्ड नं० १४ ता० २०-११-३६ को मिला। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि थोड़ी सी हिन्दी जानने पर भी मेरा परिश्रम वर्ग नं० ३ से सफल होना आरम्भ हुआ। क्रासवर्ड पज़ल हिन्दी में एक नवीनता है, और जिस ढंग से 'सरस्वती' में इसकी योजना की गई है वह प्रशंसनीय और सफलता का सूचक है। वर्गों का निर्माण बड़ी बुद्धिमानी से किया जाता है। इस प्रतियोगिता से मनोरञ्जन, ज्ञानवृद्धि, समय का सदुपयोग और द्रव्य की प्राप्ति होती है, अतएव अवकाश में इससे बढ़ कर दूसरा खेल क्या हो सकता है? सबसे बड़ी बात तो यह है कि इससे राष्ट्रभाषा का अधिक प्रचार होगा। मुझे हिंदी का क्रास-वर्ड बहुत पसन्द आया, और इसके आयोजन के लिए मैनेजर और वर्गनिर्माता बधाई के पात्र हैं।

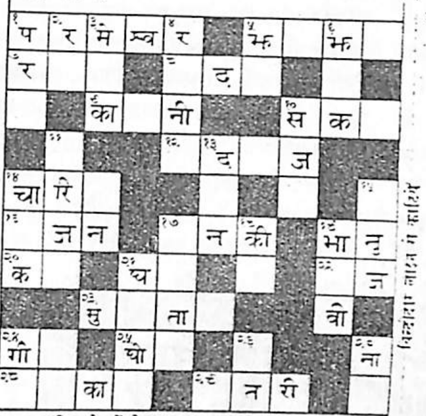
विद्यावती देवी

c/o पं० यज्ञदत्त शुक्ल बी० ए०, नरही, लखनऊ

मुफ़्त कूपन

यह कूपन सिर्फ़ उसके लिए है, जो तीन कूपन अपने ही नाम से भेजे। इसकी कोई फ़ीस न ली जायगी। अन्य लोगों की पूर्तियाँ इस कूपन पर स्वीकार न की जायँगी।

वर्ग नं० ५



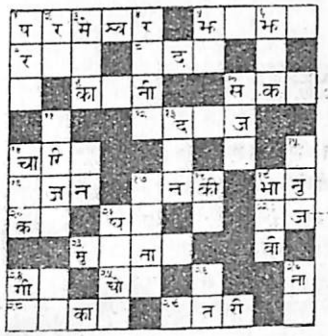
(रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रा रहित और पूर्ण हैं)

मैनेजर का निर्णय मुझे हर प्रकार स्वीकृत होगा।

पूरा नाम ------------------------------------

पता ------------------------------------

------------------------ पूर्ति नं० ------



मुफ़्त कूपन की नक़ल यहाँ कर लीजिए और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

जाँच का फ़ार्म

वर्ग नं० ४ की शुद्ध पूर्ति और पारितोषिक पानेवालों के नाम अन्यत्र प्रकाशित किये गये हैं। यदि आपको यह संदेह हो कि आप भी इनाम पानेवालों में हैं, पर आपका नाम नहीं छपा है तो १) फ़ीस के साथ निम्न फ़ार्म की ख़ानापुरी करके १५ दिसम्बर तक भेजें। आपकी पूर्ति की हम फिर से जाँच करेंगे। यदि आपकी पूर्ति आपकी सूचना के अनुसार ठीक निकली तो पुरस्कारों में से जो आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा और आपकी फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जिनका नाम छप चुका है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं है।

वर्ग नं० ४ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० ४ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति

नं०........में { कोई अशुद्धि नहीं है।
एक अशुद्धि है।
२, ३, ४, ५, ६, ७ अशुद्धियाँ हैं।

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर ------------------------------------

पता ------------------------------------

इसे काट कर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

मैनेजर वर्ग नं० ५

इंडियन प्रेस, लि०,

इलाहाबाद

आवश्यक सूचनायें

(१) जनवरी १९३७ के अङ्क में हमने पुरस्कार दूना कर दिया है। वर्ग नं० ६ पर १०००) इनाम। इसमें आप अवश्य भाग लीजिए।

(२) स्थानीय प्रतियोगियों की सुविधा के लिए हमने प्रवेश-शुल्क-पत्र छाप दिये हैं जो हमारे कार्य्यालय से नक़द दाम देकर ख़रीदा जा सकता है। उस पत्र पर अपना नाम स्वयं लिख कर पूर्ति के साथ नत्थी करना चाहिए।

(३) स्थानीय पूर्तियाँ सरस्वती प्रतियोगिता-बक्स में जो कार्यालय के सामने रक्खा गया है, १० और पाँच के बीच में डाली जा सकती हैं।

(४) वर्ग नम्बर ५ का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े पर मुहर लगा कर रख दिया गया है ता० २६ दिसम्बर १९३६ को सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में २ बजे सर्वसाधारण के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें स्वयं उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।

(५) इस प्रतियोगिता में भाग लेनेवाले बहुत-सी ऐसी भूलें कर देते हैं जिन्हें वे नियमों को ध्यान से देखें तो नहीं कर सकते। बैरँग चिट्ठियाँ नहीं ली जायँगी और ॥) के मनिआर्डर या प्रवेश-शुल्क-पत्र के बजाय जो इसी मूल्य के डाकघर के टिकट भेजेंगे उनके उत्तर पर भी विचार न होगा। एक वर्ग-पूर्ति भेज चुकने पर उसका संशोधन दूसरे लिफ़ाफ़े में भेजना टिकट का अपव्यय करना होगा क्योंकि उन पर भी विचार न होगा। छोटे कूपन, या कूपन की नक़ल पर भेजी गई वर्ग-पूर्तियों पर भी विचार न होगा। इस सम्बन्ध में हमें जो कुछ कहना होगा हम इन्हीं पृष्ठों में लिखेंगे। पत्रों का हम पृथक् से कोई उत्तर न देंगे।

सामयिक साहित्य

मलेरिया और वेद

डाक्टर कुन्दनलाल ने 'आर्यमित्र' के ऋष्यङ्क में एक लेख प्रकाशित कराया है, जिसमें आपने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि मलेरिया के मच्छड़ों से उत्पन्न होने की बात की खोज नवीन नहीं है। वेदों में भी इसका ज़िक्र आया है और प्राचीन ऋषि इसे जानते थे। डाक्टर साहब का यह भी कहना है कि इससे बचने के लिए वे हवन करते थे, क्योंकि हवन से ओषधि वायु के साथ शरीर में प्रवेश करके मलेरिया के कीटाणुओं को मार डालती थी। डाक्टर साहब के लेख का इस सम्बन्ध में एक ज्ञातव्य अंश इस प्रकार है—

वर्तमान साइंस ने तो केवल सन् १८८० ई० में डाक्टर लुअर-द्वारा और पूर्ण रूप से सन् १८९५ ई० में डाक्टर रास-द्वारा यह बात जान पाई है कि मलेरिया मच्छड़ों-द्वारा मनुष्य-शरीर में प्रवेश करता है, पर वेद ने अब से करोड़ों वर्ष पूर्व मच्छड़ की विद्यमानता स्पष्ट शब्दों में दर्शा दी है। देखिए—

प्रते शृणामि शृङ्गे याभ्यां वितुदायसि।
भिनद्मि ते कुषुम्भं यस्ते विषधानः॥

अथ० का० २० सू० ३२ मन्त्र ६।

अर्थ—तेरे सींगों को मैं तोड़े डालता हूँ, जिन दोनों से तू चारों ओर टक्कर मारता है, तेरे जल-पात्र को तोड़ता हूँ, जो तेरे विष की थैली है।

अब आप किसी डाक्टर से मलेरिया के मच्छड़ अनाफ़िल्स की तस्वीर लेकर देखें। उसके मुँह के सामने दो सींग-से होते हैं और बीच में मलेरिया-विष की थैली। इन्हीं सींगों-द्वारा वह टक्कर मारकर अपना विष प्राणी में प्रवेश करता है। हम ऊपर बतला चुके हैं कि इन कृमियों से बचने की जो विधि वर्तमान साइंस ने बताई है वह त्रुटिपूर्ण है। अतः अब हम इसकी विधि भी वेद भगवान् में ही खोजते हैं। वेद बतलाता है—

इन्द्रस्य या मही दृषत् क्रिमेर्विश्वस्य तर्हणी।
तया पिनष्मि सं क्रिमीन् दृषदा खल्वां इव॥

अथ० का० २ सू० ३१ म० १।

अर्थ—यज्ञ की जो विशाल शिला प्रत्येक कृमि को नाश करनेवाली है, उससे सब कृमियों को यथानियम पीस डालूँ, जैसे शिला से चनों को पीसते हैं।

वेद भगवान् खुले शब्दों में उपदेश करते हैं कि यज्ञ से कृमियों का नाश होता है। अब हम वैज्ञानिक ढंग पर विचार करते हैं कि मलेरिया से हमारी किस प्रकार यज्ञ-द्वारा रक्षा हो सकती है।

पदार्थविद्या से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि किसी वस्तु का अभाव नहीं होता, किन्तु रूप बदल जाता है, अतः हवन में जलाई हुई मलेरियानाशक तुलसी, जायफल, गिलोय इत्यादि के सूक्ष्म परमाणु जब श्वास-द्वारा विशेष रूप से हवन करनेवाले और साधारण रूप से अन्य, उन सब लोगों के भी भीतर पहुँच रक्त में प्रवेश करेंगे जो उस वायु में श्वास लेवेंगे तब उन ओषधियों का प्रभाव न केवल क़ुनैन खाने किन्तु क़ुनैन के इंजेक्शन से भी अधिक होगा।

जब रोगी पर अति शीघ्र प्रभाव करना अभीष्ट होता है तब खिलाने के स्थान में ओषधि सुँघाते हैं। एक मिर्च को वैसे सूँघने से कुछ नहीं होता, कूटने से कई पास के बैठनेवालों को खाँसी आवेगी, पर यदि उसी मिर्च को आग में डाल दें तो दूर-दूर तक के मनुष्य खाँसने लगेंगे। इन सब प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि कुनैन चाहे खिलाई जाय, चाहे इंजेक्शन की जाये, रोग से रक्षा करने में इतनी प्रभावशाली कदापि नहीं हो सकती जितनी प्रभावशाली हवन में जलाई हुई उपर्युक्त गिलोय इत्यादि ओषधियाँ हो सकती हैं।

अन्वेषण से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि जितने प्राकृतिक पदार्थ हैं उनके सूक्ष्म परमाणु हर समय गति-शील रहते हैं। जिन वस्तुओं के परमाणु एक-सी गति

करते हैं उनमें परस्पर आकर्षण होता है और विरुद्ध गतिवाले परस्पर एक दूसरे को दूर हटाते हैं। अतः मलेरिया के मच्छड़ भी उसी मनुष्य पर अधिक आक्रमण करते हैं जिसके भीतर रोग-ग्राह्य शक्ति विद्यमान है और जिसके भीतर उनके विपरीत तुलसीपत्र, जायफल और कर्पूर इत्यादि मलेरियानाशक परमाणु विद्यमान हैं। उस पर प्रथम तो इसी प्राकृतिक नियमानुसार आक्रमण करेंगे ही नहीं और यदि करेंगे भी तो निषेधक शक्ति होने से विष का प्रभाव नष्ट हो जायगा। आपने बहुतों को कहते सुना होगा कि मुझे मच्छड़ बहुत काटते हैं जब कि दूसरे उसी स्थान पर नंगे सोते हैं।

गुजराती-साहित्य-परिषद् में महात्मा गांधी का भाषण

नवम्बर के आरम्भ में गुजराती-साहित्य-परिषद् (अहमदाबाद) में महात्मा गांधी का एक महत्त्वपूर्ण भाषण हुआ था। श्रीयुत महादेव देसाई 'हरिजन-सेवक' में लिखते हैं कि महात्मा गांधी ने इस परिषद् का अध्यक्ष होना प्रेमी मित्रों के दबाव के कारण स्वीकार कर तो लिया था, पर वे इसको टाल जाने का बहाना भी ढूँढ़ रहे थे और इसलिए पहले से कोई भाषण तैयार नहीं किया था। उस समय उनके दिल में दरिद्रतम लोगों के बारे में विचार उमड़ रहे थे और भव्य मण्डप में अहमदाबाद के चुने हुए अमीरों और मध्यवर्ग की मण्डली के बीच बैठते हुए उन्हें कुछ कष्ट हो रहा था। इसलिए उन्होंने वहाँ अपने दिल के सारे भाव उँड़ेल दिये। उन्होंने कहा—

"हमारा यह साहित्य आख़िर किसके लिए है? अहमदाबाद के इन बड़े-बड़े लक्ष्मीपुत्रों के लिए तो हर्गिज़ नहीं। उनके पास तो इतना धन पड़ा हुआ है कि वे विद्वानों को अपने संग्रह में रख सकते हैं और अपने घर पर ही बड़े-बड़े ग्रन्थालय भी रख सकते हैं। पर आप उस ग़रीब देहाती के लिए क्या निर्माण कर रहे हैं जो कुएँ पर गन्दी-से-गन्दी गालियाँ बकते हुए अपने बैलों को भारी चरस ऊपर खींचने के लिए आर लगाता है? बरसों पहले मैंने श्री नरसिंहराव से—जो कि मुझे अफ़सोस है कि अब इतने बूढ़े और बीमार हैं कि यहाँ तक नहीं आ सकते—कहा था कि वह मुझे इस चरस चलानेवाले के लिए कोई ऐसी सजीव लय या छोटा-सा गाना बतावें जिसे वह मस्त होकर गा सके और उन गन्दी गालियों को जिन्हें वह जानता ही नहीं कि ये गालियाँ हैं, हमेशा के लिए भूल जाय। वह आदमी कोचरब का रहनेवाला था, जहाँ कि हमारा सत्याग्रह-आश्रम शुरू-शुरू में रक्खा गया था। पर कोचरब कोई गाँव थोड़ा ही है। वह तो अहमदाबाद की एक गन्दी बस्ती है। अब मेरे पास ऐसे सैकड़ों लोग हैं जिन्हें ऐसे सच्चे जानदार साहित्य की ज़रूरत है। मैं उन्हें वह कहाँ से दूँ? आज-कल मैं इसी से गाँव में रहता हूँ। उसकी आबादी क़रीब ६०० की है। उसमें मुश्किल से दस-बीस आदमी—कुल पचास भी नहीं—लिख-पढ़ सकते हैं। इन दस-बीस आदमियों में से तीन-चार भी ऐसे नहीं जो ख़ुद क्या पढ़ रहे हैं यह समझ सकें। औरतों में तो एक भी पढ़ी-लिखी नहीं है। कुल आबादी के तीन-चौथाई आदमी हरिजन हैं। मैंने सोचा कि मैं इनके लिए एक छोटा-सा पुस्तकालय खोलूँ। किताबें तो ऐसी ही होनी चाहिए थीं जिन्हें वे समझ सकें। इसलिए मैंने दो-तीन लड़कियों से १०-१२ स्कूली किताबें इकट्ठी कीं, जो उनके पास यों ही पड़ी हुई थीं। मेरे पास एक वकालत-पास युवक है। पर वह तो सारा क़ानून भूलभुला गया है और उसने अपनी क़िस्मत मेरे साथ जोड़ दी है। वह हर रोज़ गाँव में जाता है और इन किताबों में से उन लोगों को ऐसी बातें पढ़ के सुनाता रहता है जिन्हें वे समझ सकें और हज़म भी कर सकें। वह अपने साथ एक-दो अख़बार भी ले जाता है। पर वह उन्हें हमारे अख़बार कैसे समझावे? वे क्या जानें कि स्पेन और रूस क्या हैं और कहाँ हैं? वे भूगोल भी क्या जानें? ऐसे लोगों को मैं क्या पढ़ के सुनाऊँ? क्या मैं उन्हें श्री मुंशी के उपन्यास पढ़ के सुनाऊँ? या श्री कृष्णलाल झवेरी का बँगला से उलथा किया हुआ श्रीकृष्ण-चरित्र सुनाऊँ? किताब तो वह अच्छी है, परन्तु मुझे भय है कि मैं उसे उन अपढ़ लोगों के सामने नहीं रख सकता। उसे आज वे नहीं समझ सकते।

आपको जानना चाहिए कि सेगाँव के एक लड़के को यहाँ लाने की मेरी बहुत इच्छा होने पर भी मैं उसे

नहीं लाया हूँ। वह बेचारा यहाँ क्या करता? वह तो अपने-आपको एक दूसरी ही दुनिया में पाता। लेकिन दूसरे देहातियों के साथ-साथ उसका भी प्रतिनिधि बनकर मैं आया हूँ। यही सच्चा प्रातिनिधिक शासन है। किसी दिन मैं कहूँगा कि आप ख़ुद वहाँ मेरे साथ चलिए। तब तक मैं आपका रास्ता साफ़ कर लूँ। रास्ते में काँटे ज़रूर हैं, पर मैं यह कोशिश करूँगा कि ये काँटे निरे काँटे न हों, बल्कि उनमें फूल भी हों।

आपसे यह कहते हुए मुझे दीन फ़रार की और उसकी लिखी ईसा की जीवनी की याद आ रही है। अँगरेज़ों के राज्य से भले ही मुझे लड़ना पड़े, पर मुझे अँगरेज़ों और उनकी भाषा से द्वेष नहीं है। सच तो यह है कि मैं उनके साहित्य-भाण्डार की दिल से क़द्र करता हूँ। दीन फ़रार की किताब अँगरेज़ी-भाषा की अमूल्य निधि में से एक चीज़ है। आपको पता है कि यह किताब लिखने में उसने कितना परिश्रम किया है? पहले तो ईसा मसीह पर अँगरेज़ी-भाषा में जितनी किताबें उसे मिल सकीं वे सब उसने पढ़ डालीं। फिर वह फ़िलिस्तीन पहुँचा और बाइबिल में लिखी हर जगह और मुकाम को ढूँढ़ने की कोशिश की और फिर इँग्लेंड के जनसाधारण के लिए श्रद्धा और भक्ति-भरे हृदय से ऐसी भाषा में पुस्तक लिखी जिसे सब समझ सकें। वह डाक्टर जानसन की नहीं, बल्कि डिकन्सन की सीधी-सादी शैली में लिखी हुई है। क्या हमारे यहाँ भी ऐसे लोग हैं जो फ़रार की तरह गाँवों के लोगों के लिए ऐसी महान् कृतियाँ निर्माण कर सकें? हमारे साहित्यिकों की आँखों और दिमाग़ में तो कालिदास, भवभूति तथा अँगरेज़ी-लेखक घूमा करते हैं और वे नक़ली चीज़ें ही निर्माण करते हैं। मैं चाहता हूँ कि वे गाँवों में जायँ, ग्रामीण-जीवन का अध्ययन करें और जीवनदायी साहित्य निर्माण करें।

बिहार में शिक्षितों की बेकारी

बिहार-उड़ीसा की सरकार ने प्रान्तीय कौंसिल में स्वीकृत एक प्रस्ताव के अनुसार उक्त प्रान्त के शिक्षितों की बेकारी के सम्बन्ध में जाँच करने और उसके निवारण के उपाय बतलाने के लिए दस सदस्यों की एक कमिटी बनाई थी। इस कमिटी ने जाँच-पड़ताल के बाद २२६ पृष्ठों की एक रिपोर्ट प्रकाशित की है। इस रिपोर्ट पर विचार करते हुए पटने के साप्ताहिक 'नवशक्ति' में एक सुन्दर अग्रलेख प्रकाशित हुआ है। उसका एक महत्त्वपूर्ण अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

शिक्षितों की बेकारी दूर करने के मुख्यतः तीन रास्ते हैं—(१) युवकों को वाणिज्य-व्यवसाय और उद्योग-धन्धों में प्रवेश करने की पूरी सुविधा दी जाय। (२) कृषि की उन्नति तथा उससे होनेवाले लाभों की ओर युवकों को आकृष्ट करने की व्यवस्था की जाय। (३) सरकारी, अर्द्ध-सरकारी और ग़ैरसरकारी नौकरियों में बिहारियों को पर्याप्त संख्या में स्थान मिले। वाणिज्य-व्यवसाय और उद्योग-धन्धों की दृष्टि से बिहार अब तक बहुत पिछड़ा हुआ प्रान्त समझा जाता रहा है। परन्तु अब वह बात नहीं रही और यहाँ पर चीनी, लोहा, ताँबा, कोयला, अबरक, लाख आदि अनेक चीज़ों का व्यवसाय अच्छी तरह चल रहा है। परन्तु यह खेद की बात है कि इन व्यवसायों को अपनाने के लिए बिहारियों को जितना प्रोत्साहन मिलना चाहिए, इनमें जितने बिहारी शिक्षित युवकों को भर्ती करना चाहिए, उतना न तो उक्त व्यवसायों के अधिकारी उन्हें लेते या प्रोत्साहित करते हैं और न गवर्नमेंट ही इसके लिए कुछ उल्लेखनीय चेष्टा करती है। दूसरी चीज़ कृषि है और वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। चूँकि इस प्रान्त के लोगों की जीविका का सबसे बड़ा साधन वही है, परन्तु उसकी और उसमें लगे लोगों की स्थिति दिनों दिन इतनी दयनीय होती जा रही है कि लोग इस पेशे से ऊब उठे हैं और बहुत आदमी इससे पिण्ड छुड़ाकर दूसरे पेशों तथा शहरों की शरण ले रहे हैं। बिहार जैसे कृषि-प्रधान तथा उर्वर भूमि-प्राप्त प्रान्त के लिए यह अत्यन्त चिन्ता की बात है। इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि अगर कृषि की उन्नति के लिए यत्न किया जाय और उसे उन्नत तथा लाभप्रद बनाने की चेष्टा हो तो वह लोगों के लिए एक बहुत फ़ायदेमन्द तथा आकर्षक चीज़ हो सकती है। तीसरा रास्ता यानी सरकारी, अर्द्धसरकारी और ग़ैर-सरकारी नौकरियों की भी यही हालत है। सरकारी नौकरियों में, और ख़ासकर बड़े बड़े ओहदों पर, इस प्रान्त में

योग्य व्यक्तियों के होते हुए भी, दूसरे प्रान्तों के अत्यधिक आदमी नियुक्त हैं। यह सन्तोष की बात है कि कमिटी ने इन सब बातों पर विचार कर बिहार के युवकों का उपर्युक्त तीनों विषयों के अन्दर आनेवाले कामों में लेने तथा उनके लिए उचित शिक्षा का प्रबन्ध करने के लिए सरकार पर ज़ोर दिया है।

चुनाव के पर्चों से हिन्दू-मुसलिम दंगे की आशङ्का

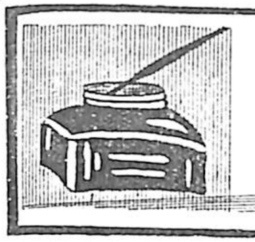
लाहौर से श्रीमती शन्नोदेवी के सम्पादकत्व में 'शक्ति' नाम का एक नवीन दैनिक पत्र प्रकाशित होने लगा है। उसमें प्रतिदिन "सीधी, टेढ़ी, खरी, मज़ेदार बातें" शीर्षक के अन्दर कितनी ही मनोरञ्जक बातें प्रकाशित होती रहती हैं। एक ऐसी ही मनोरञ्जक टिप्पणी हम उसके गत १३ नवम्बर के अङ्क से उद्धृत करते हैं—

कराची से समाचार आया है कि वहाँ चुनाव के समय में उम्मीदवार लोग हवाई जहाज़ों-द्वारा अपने पक्ष की विज्ञप्तियों का वितरण न कर सकेंगे। यह सरकारी फ़ैसला है और इस फ़ैसले का कारण यह बताया जाता है कि अगर यह प्रथा जारी की गई तो हिन्दू-मुसलमानों में दंगा हो जाने की संभावना है, कहीं किसी हिन्दू उम्मीदवार का पर्चा मस्जिद में गिर गया या मुसलमान का मंदिर में तो झगड़ा हो जायगा। दुनिया की नज़रों के सामने हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों की अहमीयत को बढ़ाने और यह दिखाने के लिए कि हिन्दू और मुसलमान कितनी छोटी बातों पर लड़ मरते हैं, यह सरकारी हुक्म कितना सरल नुस्ख़ा है। नोटिसों और पर्चों के केवल मस्जिदों या मन्दिरों में गिर जाने पर लड़ाई हो जायगी! तोबा! तोबा!! बात तो यह है कि हिन्दू और मुसलमान इतने गिर गये हैं कि उनके सम्बन्ध में जो कुछ भी कह दिया जाय सब लागू हो सकता है। अभी तक उनको लड़ने के लिए कितनी ही बातें थीं, मस्जिद, बाजे, गोवध आदि। अब इन बातों में इतना इज़ाफ़ा हो गया है कि चुनाव के पर्चों के नाम पर अगर हिन्दू का पर्चा मस्जिद में और मुसलमान का मन्दिर में किसी तरह आ पड़े तो वे लड़ सकते हैं! सरकारी आज्ञा का एक कारण यह भी बताया गया है कि पर्चों से निवासियों के हृदय में घबराहट भी पैदा हो जाने का डर है। एक दशा में वे कितने भीरु और डरपोक हैं कि पर्चों और इश्तहारों से वे घबरा सकते हैं, दूसरी ओर वे कैसे लड़नेवाले हैं कि पर्चों के नाम पर वे मार-काट शुरू कर देंगे। हम ऐसे ही हैं कि हमारे लिए जो भी कह दिया जाय सब ठीक हो सकता है।

अब्दुल्ला गांधी ने इस्लाम छोड़ा

पाठकों को स्मरण होगा कि महात्मा गांधी के ज्येष्ठ पुत्र श्री हीरालाल गांधी ने हिन्दू-धर्म छोड़कर इस्लाम-धर्म की दीक्षा ली थी। अब वे फिर हिन्दू हो गये हैं। बम्बई-आर्यसमाज में हिन्दुओं की ५,००० की महती सभा में उन्होंने शुद्ध होते समय एक भाषण भी किया था, जिसका सारांश यहाँ हम 'भारत' से उद्धृत करते हैं—

मैंने इस्लाम-धर्म को इसलिए ग्रहण किया था कि उसके अनुयायियों के नैतिक तथा सामाजिक जीवन तथा संस्कृति के सिद्धान्तों का अनुभव करूँ। जो कुछ मैंने देखा और अनुभव किया उसके आधार पर मैं यही कह सकता हूँ कि प्राचीन हिन्दू वैदिक-धर्म के सिद्धान्त, उसकी संस्कृति, उसका नैतिक तथा सामाजिक जीवन और उसके अनुयायी अन्य किसी भी धर्म से किसी भी रूप में घटकर नहीं हैं। इसी लिए मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि अब किसी भी प्रकार से इस्लाम-धर्म की सेवा नहीं करूँगा। अगर मेरे माता-पिता, मेरे सम्बन्धी तथा मित्रगण इस समाचार से प्रसन्न हो सकें तो मैं उनसे आशीर्वाद की याचना करता हूँ। माता कस्तूरीबाई के पत्र ने मुझ पर बहुत ही अधिक प्रभाव डाला। मैं उस धर्म का अनुभव करना चाहता था। इतने दिनों इस्लाम-धर्म का अनुसरण करने के बाद मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि हिन्दुओं का प्राचीन वैदिक धर्म, संस्कृति, भाषा, साहित्य, नैतिक तथा सामाजिक जीवन किसी भी प्रकार इस्लाम-धर्म की इन चीज़ों से घटकर नहीं है। वास्तव में हिन्दू धर्म इस्लाम-धर्म से बढ़कर है।



सम्पादकीय नोट

डिक्टेटरशाही का ज़माना

गत महायुद्ध के फलस्वरूप योरप ने अपने यहाँ से प्रजातन्त्र की भावना को निकाल बाहर किया है। उसके स्थान में अब वहाँ डिक्टेटरशाही का झंडा गाड़ा गया है। अतएव जहाँ पहले न्याय-निष्ठा और सम्पन्नता का बोलबाला था, वहाँ भय तथा दरिद्रता का राज्य स्थापित हो गया है और यह सब गत १५ वर्षों के भीतर ही हुआ है। स्पीवक नाम के एक प्रसिद्ध लेखक तथा पत्रकार ने 'योरप अंडर दि टेरर' नाम की एक पुस्तक लिखी है। उसमें उन्होंने योरप का यथावत् चित्र अंकित करने का ख़ासा प्रयत्न किया है। उन्होंने लिखा है कि जिन देशों में फ़ैसिस्टों का ज़ोर है, वहाँ से स्वाधीनता का नामशेष हो गया है और वहाँ के निवासी डिक्टेटरों के निरंकुश शासनचक्र में पिस रहे हैं तथा बेईमानी, अत्याचार और व्यवसाय की मंदी के शिकार हो रहे हैं। यही नहीं, उन्हें अन्न-वस्त्र तक का अभाव हो गया है और वे भूखों मर रहे हैं।

लोग अख़बारों में मुसोलिनी, हिटलर, स्टेलिन आदि डिक्टेटरों की सफलता की प्रशंसायें पढ़ पढ़कर समझते हैं कि इन महावीरों ने अपने अपने देश को समुन्नत और गौरवान्वित किया है। परन्तु बात वास्तव में ऐसी नहीं है। बेकारी, वेतन तथा मज़दूरी की कमी, और कर-वृद्धि से वहाँ के निवासी त्राहि-त्राहि कर रहे हैं। एक ओर जहाँ धनवान् लोग अधिकाधिक धन-सम्पन्न होते जा रहे हैं, वहाँ दूसरी ओर श्रमिक और कृषक दरिद्र से दरिद्रतर। और मज़ा यह कि लोग अपने दुःखों और कष्टों की बात तक नहीं कर सकते। क्या जर्मनी, क्या इटली, क्या रूस, कहीं भी कोई यहाँ तक कि अपने घरों के भीतर अपनी दुरवस्था के सम्बन्ध में किसी तरह की चर्चा नहीं कर सकता।

पोलेंड में साधारण मज़दूर १८ घंटे काम करने पर केवल ८ पेंस मज़दूरी पाता है और सो भी तभी जब काम मिल जाता है। वहाँ ग़रीब लोग इस दशा को पहुँच गये हैं कि वे दियासलाई के अभाव में चकमक पत्थर से आग बनाने लगे हैं और सरकार उनकी इस स्वच्छन्दता में भी बाधक हो रही है। वहाँ दियासलाई की डिब्बी में जहाँ पहले ५२ दियासलाइयाँ रहती थीं, अब ३८ सलाइयाँ रखकर बेची जा रही हैं, जिनको ग़रीब लोग ख़रीद तक नहीं सकते। वहाँ के किसानों को यदि आलुओं में डालने के लिए रोज़ नमक मिल जाया करे और सातवें दिन भी वे शक्कर मिली चाय पा सकें तो इसे वे अपने लिए न्यामत मानेंगे। परन्तु यह भी सभी को वहाँ सुलभ नहीं है।

ज़ेचोस्लोवेकिया में भी बेकारी, भारी करों और दरिद्रता के मारे लोगों के नाकोंदम है। वहाँ के एक किसान ने मिस्टर स्पीवक से कहा था—रोज़-रोज़ आलू खाते-खाते आप ऊब जायँगे। तो भी जहाँ कुछ भी खाने को नहीं है, यह भी ग़नीमत है और यदि कोई नमक डालने को पा जाय तो वह आलू खाकर ही निर्वाह कर सकता है। बिना नमक के आलू अच्छे नहीं लगते और उस दशा में और भी यदि उन्हें छोड़ और कुछ खाने को न मिलता हो। साढ़े चार पेंस के आलुओं से निर्वाह हो जाता है, परन्तु ये साढ़े चार पेंस पाना अतिदुर्लभ है।

डिक्टेटरशाही का यह कैसा उत्साहप्रद चित्र है। उनके जंगी शासन में सर्वसाधारण की स्वाधीनता छिन गई है और लोग कर-भार से पिस रहे हैं। यह सच है, योरप का अधिकांश डिक्टेटरों के शासन में पड़ कर त्राहि-त्राहि कर रहा है। देखना है कि इस विपत्ति से योरप का कब तक छुटकारा होता है और प्रजातंत्रवाद की पहले की ही भाँति प्रतिष्ठा होती है।

योरप की भयावह दशा

इस समय योरप की बड़ी नाज़ुक हालत है। वहाँ के सभी राष्ट्र युद्ध के लिए तैयार हैं और जो तैयार नहीं हैं वे

भी उसके लिए शीघ्रता से तैयार हो रहे हैं। इटली और जर्मनी तो खुल्लमखुल्ला युद्ध के लिए ललकार रहे हैं और तदनुसार उन्हें त्योरियाँ बदलकर उत्तर भी दिये जा रहे हैं। उधर कूटनीति का बाज़ार भी गर्म है। अपने-अपने गुट्ट बनाये तथा दृढ़ किये जा रहे हैं। इस सम्बन्ध में फ़्रांस के पौ बारह हैं। बेल्जियम यदि उसके दल से निकल गया है तो उसकी पूर्ति पोलेंड के मिल जाने से हो गई है। आक्रान्त होने पर ग्रेट ब्रिटेन मदद करने को वचनबद्ध है ही और रूस की उसकी परस्पर सहायता की सन्धि ही हो गई है। अब रहा इटली, सो उससे भी फ़्रांस का कोई भीतरी समझौता है। इसी से वह चाहता है कि भूमध्यसागर के सम्बन्ध में इटली से ग्रेट ब्रिटेन का समझौता हो जाय ताकि जर्मनी से युद्ध होने पर फ़्रांस के विरुद्ध इटली जर्मनी का साथ न दे। इधर अँगरेज़ यह चाहते हैं कि फ़्रांस, जर्मनी, इटली तथा ग्रेट ब्रिटेन एवं रूस में एक समझौता हो जाय। ऐसा हो जाने से योरप में युद्ध नहीं होगा और तब इटली अकेला रह जायगा और भूमध्यसागर का प्रश्न अपने आप हल हो जायगा। इस तरह कूटनीतिज्ञ अपने-अपने दाँव अलग लगा रहे हैं। पर ये अपने प्रयत्न में सफल नहीं हो रहे हैं। क्योंकि योरप के डिक्टेटरों की अपनी कूट-नीति अलग है और उनकी नीति योरप में इतना लोकप्रिय हो गई है कि उसकी बदौलत आज स्पेन में भयंकर नर-संहार हो रहा है और आशंका की जाती है कि स्पेन की देखा-देखी फ़्रांस और ब्रिटेन में भी कहीं फ़ैसिस्टवाद ज़ोर न पकड़ जाय। वास्तव में यही वह अवस्था है, जिसके कारण योरप में युद्ध नहीं छिड़ रहा है। साथ ही यह भी प्रकट हो रहा है कि यह नीति योरप में बहुत कुछ ज़ोर पकड़ती जा रही है। स्पेन में उसकी जीत हो जाने पर उसका और भी अधिक ज़ोर बढ़ेगा। फ़्रांस और ब्रिटेन में फ़ैसिस्टों के दल पहले से संगठित हैं। यदि महायुद्ध नहीं छिड़ेगा तो भिन्न-भिन्न देशों में डिक्टेटरों की कूटनीति से गृहयुद्ध तो अवश्य ही छिड़ेंगे। वास्तव में योरप की ऐसी ही भयावह दशा है।

——

भूमध्य-सागर का प्रश्न

इटली की महत्त्वाकांक्षाओं ने भूमध्य-सागर में बड़ी पेचीदा परिस्थिति उत्पन्न कर दी है। अभी तक भूमध्य-सागर में ग्रेट ब्रिटेन का ही बोलबाला था। परन्तु जब से इटली ने अबीसीनिया पर चढ़ाई की है तब से उसने भूमध्य-सागर को अपने जीवन-मरण का प्रश्न बना लिया है। उस दिन इटली के सर्वेसर्वा मुसोलिनी ने इस बात को अपने भाषण में स्पष्ट रूप से कह भी दिया है कि भूमध्य-सागर इटली के जीवन के लिए अत्यधिक आवश्यक है और वह तब तक अपना सामरिक बल बढ़ाता चला जायगा जब तक वह भूमध्य-सागर में अपनी स्थिति को भले प्रकार सुरक्षित नहीं समझ लेगा। मुसोलिनी की इस महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति से अँगरेज़ी साम्राज्य के हितों को ठेस पहुँचेगी, क्योंकि इस समुद्र से होकर अँगरेज़ी साम्राज्य का मुख्य मार्ग गया है। वहाँ इटली की प्रतिपत्ति स्थापित हो जाना अँगरेज़ों को क्योंकर पसन्द होगा? इसी से मुसोलिनी के बार-बार अपने उग्र विचार प्रकट करने पर इस बार अँगरेज़ी सरकार के वैदेशिक मंत्री श्री एडेन साहब को भी स्पष्ट कह देना पड़ा है कि ग्रेट ब्रिटेन अपने साम्राज्य के राज-मार्ग को किसी भी तरह जोखिम में नहीं पड़ने देगा। इस तरह इन दोनों महाशक्तियों के हितों ने भूमध्य-सागर का एक नया प्रश्न उठा कर खड़ा कर दिया है और यह प्रश्न इतना अधिक महत्त्व धारण कर गया है कि ग्रेट ब्रिटेन को जर्मनी से अधिकाधिक सहानुभूति दिखलाने को बाध्य होना पड़ रहा है।

इसमें सन्देह नहीं है कि भूमध्य-सागर का प्रभुत्व ग्रेट ब्रिटेन के लिए जीवन-मरण का प्रश्न है। उसी की रक्षा के विचार से उसे हाल में मिस्र की स्वाधीनता स्वीकार करनी पड़ी है और वह आज बड़ी सावधानी के साथ ज़िब्राल्टर, माल्टा, साइप्रस और हैफ़ा में अपनी क़िलेबन्दियाँ करने में संलग्न है। देखना है कि इस प्रश्न की मीमांसा भविष्य में कैसे होती है।

——

जापान की औद्योगिक उन्नति

जापान व्यवसाय के क्षेत्र में भी बहुत आगे बढ़ गया है। उसके ओसाका नगर ने मैंचेस्टर का स्थान ले लिया है और पिछले तीन वर्षों में उसने जितना सूती कपड़ा बाहर के देशों में बेचा है, उतना और कोई देश नहीं बेच सका है। कपड़े के धन्धे में उसका १९२७ में छठा नम्बर था। पर १९३५ में वह दूसरे नम्बर में आ पहुँचा

है और इस धन्धे में वह संयुक्त-राज्य (अमरीका) के बराबर हो गया है। उसकी इस औद्योगिक उन्नति को देखकर अन्य देश चिन्तित हैं। गत मई से संयुक्त-राज्य ने जापानी वस्त्र पर ४२ फ़ी सदी चुंगी बढ़ा दी है। उसी समय आस्ट्रेलिया ने ब्रिटेन के माल को छोड़कर और सभी विदेशी माल पर चुंगी बढ़ा दी, जिसका प्रभाव जापानी माल पर बहुत अधिक पड़ा। जुलाई में मिस्र ने भी जापानी माल पर ४० फ़ी सदी चुंगी कर दी। डच ईस्ट-इंडीज़ की सरकार भी समय समय पर जापानी माल के आयात पर चुंगी बढ़ाती रही है। दक्षिण-अफ़्रीका की सरकार ने भी ऐसी ही रोक-थाम की है, जिससे अब वहाँ उतना जापानी माल नहीं जाता है। कोई ६० बाज़ारों में जापानी माल के आयात में चुंगी बढ़ाकर बाधा डाली गई है। केवल ३० ही ऐसे बाज़ार हैं, जहाँ जापानी माल के साथ समानता का व्यवहार किया जाता है। जापान का व्यवसाय इस समय ऐसी ही परिस्थिति में फँस गया है। यदि संसार के देश सावधान न हो जाते तो आज जापान के माल के आगे अन्य देशों का व्यवसाय चौपट हो जाता। जापान चाहता है कि उसके व्यवसाय के मार्ग में कम-से-कम अनुचित बाधायें तो न खड़ी की जायँ। इसी लिए उसकी सरकार अन्य देशों की सरकारों से व्यावसायिक समझौते करने में लगी हुई है। हमारी भारतीय सरकार से भी उसके दूत-मण्डल की समझौते की बातचीत फिर शुरू हो गई है, क्योंकि पिछले समझौते की मियाद पूरी हो गई है। आश्चर्य की बात तो यह है कि इतनी विघ्न-बाधाओं के होते हुए भी जापानी माल की खपत योरप तक के देशों में बढ़ गई है। इस सबसे प्रकट होता है कि जापानी लोग क्या उद्योग-धन्धों में और क्या इंजीनियरिंग और यंत्र-निर्माण-कला में, सभी क्षेत्रों में बहुत अधिक उन्नति कर गये हैं और उन्नत से उन्नत योरपीय राष्ट्र से वे सभी बातों में होड़ कर रहे हैं। इसका मूल कारण उनका अप्रतिम अध्यवसाय और देशभक्ति ही है।

——

अगला निर्वाचन

अगला निर्वाचन लड़ने के लिए देश के भिन्न-भिन्न राजनैतिक दल ज़ोरों से तैयारी कर रहे हैं। कांग्रेस के पार्लियामेंटरी बोर्ड ने अपना चुनाव-आन्दोलन शुरू भी कर दिया है। इस सिलसिले में कई प्रान्तों के कांग्रेसी उम्मेदवारों की सूचियाँ भी प्रकाशित हो गई हैं और सरदार पटेल तथा राष्ट्रपति नेहरू आदि कांग्रेस के प्रमुख नेता देश के दौरे पर निकल पड़े हैं। साम्प्रदायिक निर्णय के सम्बन्ध में कांग्रेस के केन्द्रीय कार्यकर्ताओं से बङ्गाल का कुछ मतभेद हो गया था। प्रसन्नता की बात है कि पण्डित जवाहरलाल नेहरू के प्रयत्न से वह भी दूर हो गया। राष्ट्रपति की इस सफलता का सभी प्रान्तों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा है। इससे कांग्रेस पार्लियामेंटरी बोर्ड के कार्य-कर्ताओं का कार्य बहुत सरल हो गया है और उनके लिए देश का राजनैतिक वातावरण बहुत अनुकूल हो गया है। फिर भिन्न-भिन्न प्रान्तों में कांग्रेस के विरोधी दलों की इतनी प्रबल स्थिति भी नहीं है कि वे कांग्रेस के सुदृढ़ संगठन और प्रभाव का मुक़ाबिला कर सकें। यह सब देखते हुए यही कहना पड़ता है कि कांग्रेस को इस चुनाव में भी विजय मिलेगी, जो उचित ही होगा, क्योंकि कांग्रेस ही भारतीय राष्ट्र की एक-मात्र सबसे बड़ी संस्था है।

कांग्रेस के बाद मुस्लिम लीग का नम्बर है। इसके प्रधान सूत्रधार जिन्ना साहब ने प्रायः सभी प्रान्तों में अपनी लीग के चुनाव-बोर्ड स्थापित कर लिये हैं और आशा है कि सभी प्रान्तों में उन्हीं के दल का बहुमत होगा। पञ्जाब और कदाचित् बङ्गाल में लीग को कड़े विरोध से सामना करना पड़ेगा। बाक़ी अन्य प्रान्तों में मुस्लिम लीग का ही ज़ोर रहेगा। मुस्लिम-निर्वाचन-क्षेत्र में कांग्रेस की प्रबलता केवल सीमाप्रान्त में रहेगी। अन्य प्रान्तों में उसका इस निर्वाचनक्षेत्र में न तो प्रवेश है, न इस ओर उसने प्रकट रूप में अभी तक कोई प्रयत्न ही किया है। हरिजन-चुनाव-क्षेत्र से उसने अपने उम्मेदवार ज़रूर खड़े किये हैं।

कांग्रेस के विरुद्ध हिन्दू-महासभा अपने उम्मेदवार खड़े करेगी, और सो भी केवल पञ्जाब और संयुक्त-प्रान्त में। अन्य प्रान्तों में उसका वैसा कोई संगठन नहीं है। बिहार और मध्य-प्रदेश में उसके संगठन की चर्चा हो रही है। हिन्दू-महासभा के सिवा महाराष्ट्र में 'डेमाक्रेटिक स्वराज्य-दल', मदरास में 'जस्टिसदल' तथा संयुक्त-प्रांत में भूस्वामियों एवं पूँजीपतियों की एग्रीकलचरिस्ट पार्टी कांग्रेस का विरोध करेगी। इस प्रकार कांग्रेस का बङ्गाल, आसाम, उड़ीसा, बिहार तथा मध्य-प्रान्त को छोड़कर शेष सभी बड़े

प्रान्तों में भिन्न-भिन्न दलों-द्वारा विरोध होगा। इधर निर्वाचन-क्षेत्र इतने विस्तृत हो गये हैं कि उनमें व्यवस्थित रूप से चुनाव-आन्दोलन करना अत्यधिक व्ययसाध्य हो गया है। मतदाताओं में व्यापक प्रचार करने के लिए वक्ताओं एवं प्रचार करने की ज़रूरत होगी, विरोधी उम्मीदवारों का विरोध करने के लिए पर्चेबाज़ी आदि के प्रकाशन की व्यवस्था की जायगी, मतदाताओं को अपने अनुकूल करने के लिए जगह-जगह सभायें करनी होंगी। और इस सबमें धन व्यय होगा। निस्सन्देह देश में यदि किसी राजनैतिक दल का व्यापक संगठन है तो वह कांग्रेस ही है और चुनाव के सिलसिले में उसे उससे पूरी सहायता मिलेगी। दूसरे दलों का ऐसा कोई सङ्गठन नहीं है, तो भी वे चुनाव में भाग लेंगे। इससे जान पड़ता है कि इस बार चुनाव बड़े उत्साह के साथ लड़ा जायगा।

बम्बई का साम्प्रदायिक दङ्गा

बम्बई में मारुती-मन्दिर को लेकर वहाँ के हिन्दू-मुसलमानों में जो मारकाट मची हुई है वह इन दिनों की सबसे अधिक खेदजनक घटना है। जिस मन्दिर को लेकर यह उपद्रव खड़ा किया गया है, मज़े की बात यह है कि उसका निर्माण बम्बई के एक खोजा मुसलमान सज्जन ने किया था। वे आलू के व्यापारी थे और अपने मुसलमान नौकरों के लिए एक मस्जिद और हिन्दू नौकरों के लिए उसके पास ही हनूमान जी का एक मन्दिर अपने धन से बनवा दिया था ताकि उनके यहाँ के दोनों धर्मों के लोग अपने जीवन-निर्वाह के साथ-साथ अपने-अपने धर्म का भी पालन सुभीते के साथ कर सकें। उन्हें इसकी क्या ख़बर थी कि एक समय ऐसा आवेगा जब उन्हीं का बनवाया हुआ हिन्दू-मन्दिर एक भयानक ख़ूनी बलवे का मुख्य कारण होगा। दोनों बार के उपद्रवों में अब तक ८० आदमी जान से मारे जा चुके हैं और ५९८ घायल हो चुके हैं। २००० उपद्रवी पकड़े गये हैं, ७५ जगहों में आग लगाई गई है और २७५ जगहों में लूट हुई है। प्रसन्नता की बात है कि अब फिर शान्ति स्थापित हो गई है। इस उपद्रव के फलस्वरूप व्यापार के बन्द हो जाने से लाखों रुपये की हानि हो चुकी है। इसके कारण बम्बई की प्रसिद्ध दीपमालिका भी वैसे उत्साह के साथ नहीं मनाई जा सकी है। बम्बई जैसे सर्वोन्नत नगर में ऐसे उपद्रवों का होना और उनका महीनों तक जारी रहना यही सिद्ध करता है कि इस देश के हिन्दू और मुसलमान दोनों समाजों के प्रतिष्ठित लोग कहने भर को प्रतिष्ठित हैं। यदि उनकी अपने अपने समाज में प्रतिष्ठा होती तो ऐसे उपद्रव एक तो होने न पाते और यदि उपद्रव-प्रिय लोग आवेश में आकर कुछ कर भी गुज़रते तो वह जहाँ का तहाँ रोक दिया जा सकता था। परन्तु दोनों समाजों के प्रतिष्ठित लोग इस अवसर पर यह सब कुछ भी नहीं कर सके हैं। यही नहीं, पुलिस को भी उपद्रव के दबाने में भारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। इससे उपद्रव की व्यापकता तथा भयानकता का भी अन्दाज़ लगाया जा सकता है। इस उपद्रव से यह बात भले प्रकार स्पष्ट हो गई है कि हिन्दू-मुसलमानों के धार्मिक विचारों में पहले की अपेक्षा अब बहुत अन्तर आ गया है। मस्जिद के आगे बाजा न बजने देना, मार्ग के पीपल आदि पवित्र वृक्षों को काटकर ताज़िया निकालना एवं प्रदर्शन के साथ गाय की क़ुर्बानी करना मुसलमानों के धर्म के मुख्य अङ्ग बन गये हैं। इधर हिन्दुओं ने मस्जिदों के आगे अवश्य बाजा बजाना, पीपल आदि वृक्षों को ताज़ियों के निकलने के लिए न काटने देना तथा प्रदर्शन के साथ की जानेवाली क़ुर्बानी में ज़रूर विघ्न डालना अपना धर्म बना लिया है। धर्म का यह विलक्षण लक्षण इतना गूढ़ नहीं है कि इस देश के पढ़े-लिखे हिन्दू-मुसलमान उसका आशय न जान सकते हों, और उसके इस नये विकसित रूप की दशा में उनमें समझौता न हो सकता हो। खेद की बात यही है कि इन दोनों धर्मों के प्रतिष्ठित लोग आज अपने इस सम्बन्ध के कर्तव्य का पालन नहीं कर रहे हैं।

ग्वालियर-नरेश का प्रजा-प्रेम

ग्वालियर के महाराज जीवाजीराव सिन्धिया ने दूसरी नवम्बर को राज्याधिकार ग्रहण कर लिया। इस समय पर आपने जो घोषणायें की हैं उनसे आपकी राजोचित उदारता का परिचय प्राप्त होता ही है। ग्वालियर-राज्य के किसानों पर साठ लाख रुपये का बक़ाया है। महाराज ने वह सारा का सारा माफ़ कर दिया है। ऊपर से २५ लाख रुपये की रक़म अलग कर दी है, ताकि किसानों को बैल

और बीज ख़रीदने के लिए क़र्ज़ की समुचित व्यवस्था हो जाय। इसके सिवा महाराज ने ग्राम-सुधार के कार्य में लगाने के लिए १ करोड़ रुपया ख़र्च करने की घोषणा की है। इस व्यवस्था से ग्वालियर के किसानों का काया-पलट हो जायगा। इस अवसर पर महाराज अपने राज्य के जागीरदारों को भी नहीं भूले हैं। उनका भी एक साल का कर माफ़ कर दिया है और उनमें जो अधिक ऋणग्रस्त हो गये हैं उनकी रक्षा करने के लिए एक जाँच-कमीशन नियुक्त कर दिया है। इसी प्रकार अपने राज्य के ५ नगरों में ड्रेनेज-स्कीम की मंज़ूरी दी है। महाराज ने अपने शासन-कार्य का ॐनमः सिद्धम् इसी प्रकार किया है। और इससे यह प्रकट होता है कि आप अपने स्वर्गीय पिता की ही तरह उदार और मनस्वी नरपति होंगे। भगवान् करे, महाराज के इन प्रयत्नों से ग्वालियर-राज्य का अभ्युदय हो और उसके नये महाराज अपनी ऐसी ही उदार नीति के द्वारा एक लोकप्रिय शासक प्रमाणित हों।

गुप्त जी का सम्मान

श्रीयुत मैथिलीशरण जी गुप्त की 'स्वर्णजयन्ती' अभी हाल में धूमधाम से मनाई गई थी और पिछले दशहरे के अवसर पर काशी में उनका 'काव्य-मान-सम्मान' भी महात्मा गान्धी की प्रमुखता में अच्छे ढंग से किया गया। इस अवसर पर महात्मा गान्धी ने जो भाषण किया है वह 'आज' में इस तरह छपा है—

मेरे हाथों-द्वारा जो यह भेंट दिलवाई गई वह अच्छी नहीं मालूम हुई। न तो मैं कवि हूँ, न मैं हिन्दी-भाषा को ही अच्छी तरह जानता हूँ। मुझे तो किसी छोटे या बड़े की जयन्ती मनाना भी पसन्द नहीं है। यदि किसी की जयन्ती मनाना भी हो तो तब मनाना चाहिए जब कि वह आदमी न हो। रामचन्द्र जी जब जीवित थे तब वे अवतार नहीं माने जाते थे। तुलसीदास जी जब थे तब उनकी जयन्ती नहीं मनाई गई थी। उसी तरह यह जयन्ती तब मनानी चाहिए थी जब कवि न होते। वैसे समय में लोग जानते कि उनके लिए कुछ किया जा रहा है। लोग क्षमा करेंगे। मैंने तो जब पद्मनारायण जी सेगाँव गये थे, यह कह दिया था कि किसी अच्छे कवि के लिए सम्मतियों का लिखाना अच्छा नहीं। किसी



[महात्मा गांधी श्री मैथिलीशरण गुप्त को काव्य-मान-ग्रन्थ प्रदान कर रहे हैं।]

सत्कवि की कृति कभी सम्मति की अपेक्षा नहीं करती। मैंने यदि कभी गुरुदेव के लिए, मालवीय जी के लिए अथवा द्विवेदी जी के लिए कुछ लिखकर दिया है तो दबाव से ही। सच पूछो तो मेरी इच्छा कभी किसी महापुरुष के सम्बन्ध में लिखने की नहीं हुई। यदि उस समय मैंने ग़लती की थी तो क्या अब भी वही ग़लती करता रहूँ? यदि तुम भी कुछ दबाव डालो तो मैं तुम्हें भी कुछ लिखकर दे सकता हूँ, पर स्वेच्छावश नहीं। मैथिलीशरण जी को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। उनके बारे में कुछ नहीं लिखते, फिर भी हममें कोई ग़लतफ़हमी नहीं होगी। चिरगाँव में उनका आतिथ्य भी स्वीकार कर चुका हूँ।

इस भाषण से जो बात प्रकट होती है उसके स्पष्ट करने की यहाँ ज़रूरत नहीं है, तो भी इतना हम ज़रूर

कहेंगे कि महात्मा जी यदि सहमत नहीं थे तो उस समारोह में उन्हें शामिल ही नहीं होना चाहिए था और यदि शामिल हुए थे तो फिर ऐसा 'अप्रिय सत्य' नहीं कहना चाहिए था। ख़ैर, काशी का यह 'सम्मानोत्सव' भी सफलतापूर्वक हो गया। श्रीयुत मैथिलीशरण जी गुप्त को यह गौरवपूर्ण सम्मान पाने के लिए हम बधाई देते हैं।

संयुक्त-प्रान्त में हिन्दी

हिन्दी भी संयुक्त-प्रान्त की अदालती भाषा है। यह बात उस दिन प्रान्तीय कौंसिल में सरकार ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार की है। परन्तु हिन्दी के दुर्भाग्य से सरकारी अदालतों में उसका प्रवेश नहीं है, हालाँ कि सारे प्रान्त में स्वयं सरकारी स्कूलों में भी हिन्दी पढ़नेवालों की ही सबसे अधिक संख्या है। सरकारी अदालतों में हिन्दी के लिए कभी समुचित प्रोत्साहन नहीं दिया गया है। यदि प्रोत्साहन दिया गया होता तो आज वह अपने उपयुक्त स्थान पर वहाँ भी आसीन होती। परन्तु खेद है, स्वयं हिन्दी-भाषी ही यह नहीं चाहते कि उनकी भाषा और लिपि का सम्मान हो और उसका हक़ न मारा जाय। वे यहाँ तक अकर्मण्य हो गये हैं कि उन्हें उन कठिनाइयों और असुविधाओं का झेलना भी नहीं अखरता जो अदालतों में हिन्दी के न होने से उन्हें नित्य झेलनी पड़ती हैं। ऐसी दशा में हिन्दी का सारे भारत में राष्ट्रभाषा के रूप में प्रचार करना एक प्रकार की विडम्बना ही है, क्योंकि वह स्वयं अपनी जन्मभूमि में ही अपने नैसर्गिक अधिकार से वञ्चित है।

कुमार रामरणविजयसिंह का स्वर्गवास

दुःख है कि पटने के खड्गविलास प्रेस के मालिक और विहार-प्रान्तीय कौंसिल के मेम्बर रायबहादुर कुमार रामरणविजयसिंह का स्वर्गवास हो गया। आपकी उम्र अभी ४६ बरस के लगभग थी।

आप स्वर्गीय महाराजकुमार रामदीनसिंह के ज्येष्ठ पुत्र थे। आपका जन्म संवत् १९४७ में हुआ था। आप बलिया-ज़िले के प्रसिद्ध हल्दी-राजवंश में थे। सन् १९०३ में आपने पटना-कालेजियट स्कूल से इंट्रेन्स पास किया था। उसी साल आपके पिता का देहान्त हो गया। आपने कालेज में आई० ए० के द्वितीय वर्ष तक ही पढ़ा। इसके बाद आपको अपना कारबार देखना पड़ा, जिससे आप आगे न पढ़ सके। खड्गविलास प्रेस की स्थापना यद्यपि आपके पिता ने की थी, तथापि आपके समय में उसकी बड़ी उन्नति हुई।

अपने पिता की भाँति आप भी हिन्दी के बड़े प्रेमी थे। हिन्दी के प्रचार के लिए आप भी बराबर प्रयत्नशील रहे। अपने पिता की स्मृति में पटना-विश्वविद्यालय में आपने हिन्दी-शिक्षा के लिए प्रोफ़ेसर नियुक्त करने के लिए धन दिया था।

सन् १९२२ में आप रायबहादुर बनाये गये और बिहार कौंसिल के सदस्य मनोनीत किये गये। आप बिहार और उड़ीसा-प्रान्तीय व्यापारमण्डल के पुराने सदस्य थे और कुछ दिनों तक उसके अध्यक्ष भी थे। आप बड़े ही सज्जन और भगवद्भक्त थे।

आपके एकलौते लड़के का देहान्त गत वर्ष हो गया था। आपके दो छोटे भाई हैं—श्री शार्ङ्गधरसिंह एम० ए०, बी० एल० और श्री रामजीसिंह।

ट्रावनकोर में मन्दिर-प्रवेश

ट्रावनकोर के महाराज ने अपनी २५ वीं वर्षगाँठ के दरबार में इस बात की घोषणा की है कि ट्रावनकोर के उन सब मन्दिरों में हरिजन लोग भी जा सकेंगे जो सरकार के तत्त्वावधान में हैं। इस घोषणा से ट्रावनकोर के महाराज ने हरिजनों की पेचीदा समस्या के हल करने का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। ट्रावनकोर में मन्दिर-प्रवेश-आन्दोलन सन् १९१९ से जारी है। सन् १९२४ में वैकोम में वहाँ के मन्दिर के तीन ओर की सड़कों पर हरिजनों के आने-जाने के प्रश्न को लेकर सत्याग्रह छेड़ा गया था, जो साल-भर तक चलता रहा। अन्त में हरिजनों के सम्बन्ध की निषेध-आज्ञा उठा ली गई और दूसरे लोगों की तरह हरिजनों को भी उन सड़कों का उपयोग करने की आज्ञा दे दी गई। इसके बाद १९३२ में श्री केलप्पन ने गुरुवयूर-मन्दिर में हरिजनों के प्रवेश के सम्बन्ध में धरना देने का निश्चय किया। इस प्रकार मन्दिर-प्रवेश के सम्बन्ध में दक्षिण-भारत के उस अञ्चल में वर्षों तक आन्दोलन छिड़ा रहा। फलतः ट्रावनकोर की सरकार ने १९३४ में एक जाँच-कमिटी नियुक्त की, जिसने हरिजनों को कुछ हद तक मन्दिरों में जाने की सिफ़ारिश की। परन्तु इससे वहाँ के इज़हवा लोगों को सन्तोष नहीं हुआ। अतएव वहाँ के मन्दिर-प्रवेश के प्रश्न को हरिजन-सेवक-संघ ने अपने हाथों में ले लिया और वे आज अपने प्रयत्न में सफल हुए हैं, जिसका सारा श्रेय वहाँ के महाराज को तथा उनके उदार दीवान सर रामस्वामी ऐयर को है। और इसमें सन्देह नहीं है कि ट्रावनकोर के महाराज का यह महत्कार्य एक नये युग का सूत्रपात करता है। आशा है, अँगरेज़ी भारत तथा देशी राज्यों में इस सद् प्रयत्न का समुचित रूप से अनुकरण होगा।

बरार के प्रश्न का निपटारा

प्रसन्नता की बात है कि अँगरेज़ सरकार ने बरार पर हैदराबाद के निज़ाम का स्वामित्व स्वीकार कर लिया है। इस सम्बन्ध में सम्राट् एडवर्ड और हैदराबाद के निज़ाम के बीच में एक नई सन्धि हुई है। इसके अनुसार निज़ाम साहब का बरार पर राज्याधिकार स्वीकार किया गया है। इसलिए जहाँ तक बरार का सवाल है, वहाँ तक निज़ाम ने फ़ेडरेशन में प्रवेश करना स्वीकार कर लिया है। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित बातें भी तय हुई हैं—

(१) सी० पी० तथा बरार के गवर्नर नियुक्त करते समय निज़ाम से परामर्श किया जायगा। (२) यूनियन जैक के साथ साथ सरकारी इमारतों में बरार में निज़ाम का झण्डा भी उड़ा करेगा। (३) निज़ाम बरार में दरबार कर सकेंगे और वायसराय से परामर्श लेकर बरार के लोगों को उपाधि भी प्रदान कर सकेंगे। (४) वायसराय महोदय बरार में हैदराबाद के व्यापारिक तथा आर्थिक हितों का भी ध्यान रक्खेंगे। (५) निज़ाम अपनी इच्छा से सी० पी० तथा बरार की कौंसिल में अपना प्रतिनिधि रख सकेंगे, ताकि हैदराबाद से सम्बन्ध रखनेवाले मामलों पर वह हैदराबाद-सरकार की सम्मति पेश कर सके। (६) सी० पी० कौंसिल के लिए वोट देने का निज़ाम की पुलिस और कर्मचारियों को उतना ही हक़ होगा, जितना सी० पी० पुलिस और फ़ौज के कर्मचारियों को है। (७) ब्रिटिश सरकार प्रतिवर्ष निज़ाम को बरार के सम्बन्ध में २५ लाख रुपया दिया करेगी। (८) अब निज़ाम की उपाधि होगी "हिज़ एग्ज़ालटेड हाईनेस दी निज़ाम आफ़ है[illegible] एण्ड बरार" और उनके युवराज की 'हिज़ हा[illegible] प्रिंस आफ़ बरार'।

बरार का प्रदेश सन् १८५३ में तत्कालीन [illegible] महोदय ने ईस्ट इंडिया कम्पनी को सेना-सम्बन्धी [illegible] लिए प्रदान किया था। उसके बाद सन् १९०२ [illegible] कर्ज़न ने निज़ाम महोदय से एक नया इक़रारनामा [illegible]वाया, जिसके अनुसार भारतसरकार ने निज़ाम मह[illegible] २५ लाख रुपया देना स्वीकार किया और शासन-प्र[illegible] लिए बरार को मध्य-प्रान्त में शामिल कर लिया [illegible] वर्तमान निज़ाम महोदय को यह व्यवस्था नहीं स्वी[illegible] और इस सिलसिले में अपनी माँगें अँगरेज़ सरकार [illegible] बराबर रखते रहे। अन्त में सफलता प्राप्त हुई अ[illegible] पर उनका प्रभुत्व अँगरेज़ सरकार ने स्वी[illegible] लिया।

उपनिवेश और प्रवासी भारतीय

साम्राज्य के देशों में भारतीयों के प्रवेश अ[illegible] सम्बन्ध में कहाँ कैसी कठिनाइयाँ हैं, इसका विवरण [illegible] ने प्रकाशित किया है, जो इस प्रकार है—

(१) न्यूज़ीलेंड—इस द्वीप में व्यापार के निमि[illegible] समय के लिए जाने में कोई रुकावट नहीं है। अ[illegible] पासपोर्ट प्राप्त करके कोई भी भारतीय वहाँ जा सक[illegible] वहाँ के भारतीय केवल ओल्डएज पेंशन एक्ट से [illegible] उठाने से वञ्चित हैं। भारतीयों की कुल संख्या ११[illegible]

(२) आस्ट्रेलिया—बड़े व्यवसाय के लिए यह[illegible] जाने में कोई बाधा नहीं है। वहाँ जो भारतीय [illegible] उनकी किसी तरह की शिकायत सरकार को नहीं [illegible]

(३) कनाडा—इस देश में भारतीयों को मुनिसि[illegible] प्रान्तीय तथा केन्द्रीय शासन-सभाओं के निर्वा[illegible] भाग लेने का अधिकार नहीं है।

(४) दक्षिण-अफ़्रीका—भ्रमण या व्यापार [illegible] जाने के लिए पहले से अनुमति प्राप्त करना पड़ता [illegible] बस जाने की अनुमति नहीं मिलती है। ट्रान्सवाल [illegible] भारतीय न तो ज़मीन के स्वामी हो सकते हैं, न [illegible] किन्हीं भूभागों में रह ही सकते हैं।

(५) ब्रिटिश गायना और ट्रिनीडाड—यहाँ भारतीयों के प्रवेश में कोई रुकावट नहीं है। ब्रिटिश गायना में नवागन्तुक भारतीय को पुलिस अधिकारी को ९६ डालर दिखलाना पड़ता है और ट्रिनीडाड में ५० पौंड जमा करना पड़ता है। १२ महीने के बाद वे ५० पौंड उसे वापस मिल जाते हैं।

(६) जमैका और केनिया—जो भारतीय जमैका के जन्मे होते हैं या जो १० वर्ष तक वहाँ रह चुके होते हैं उनको वही राजनैतिक अधिकार प्राप्त होते हैं जो वहाँ के निवासियों को प्राप्त हैं। केनिया में उन एशियाइयों या अफ़्रीकावासियों को २०० शिलिंग जमा करने पड़ते हैं या उतनी रक़म की ज़मानत देनी पड़ती है जो समझे जाते हैं कि उनकी जीविका का कोई सिलसिला नहीं है।

(७) उगंडा आदि—उगंडा में उन एशियाइयों और अफ़्रीका-वासियों को २०० शिलिंग जमा करने पड़ते हैं या उतने की ज़मानत देनी पड़ती है जिनकी जीविका का कोई सिलसिला नहीं होता है। टांगानीका में समुचित पासपोर्ट पेश करना पड़ता है। उसे अपने लिए १०० पौंड और अपने आश्रितों के प्रत्येक बच्चे के लिए ५० पौंड जमा करना पड़ता है। न्यासालैंड में ५० पौंड जमा कराया जाता है, जो छः महीने के बाद यह साबित करने पर वापस कर दिया जाता है कि वह जीविका से लगा हुआ है। मारीशस में यह साबित करना पड़ता है कि आगन्तुक कम-से-कम साल भर तक अपने पास की पूँजी से अपना निर्वाह कर सकेगा। जिनके सम्बन्ध में सन्देह होता है उनसे २००) जमा करा लिया जाता है।

(८) जंज़ीबार और रोडेशिया आदि—जंज़ीबार में भारतीयों के आने-जाने की कोई रोक-टोक नहीं है। उत्तरी रोडेशिया में नवागन्तुक को १००) जमा करने पड़ते हैं या उतनी रक़म की ज़मानत देनी पड़ती है। इसी उत्तरी बोर्नियो, मलाया और गोल्ड कोस्ट में भी प्र भारतीयों के आने-जाने के सम्बन्ध में कोई रोक- नहीं है।

(९) सीलोन—यहाँ भी भारतीयों के आने-जाने में बाधा नहीं है। पर यहाँ के बसनेवाले भारतीय यहां सिविल सर्विस में नहीं लिये जा सकते। ब्रि साम्राज्य में केवल सीलोन और मलाया यही दो हैं, जहाँ भारतीयों को सिविल सर्विस नहीं सकती है।

(१०) फ़ीजी—यहाँ जाने के लिए भारतीय को पह ही अनुमति-पत्र मँगा लेना पड़ता है। फ़ीजी के अधि जीविका-रहित भारतीय से ५० पौंड जमा करवा सकते

'सरस्वती' के मूल्य में कमी

अन्यत्र प्रकाशित विज्ञापन से पाठकों को विदित कि 'सरस्वती' के वार्षिक मूल्य में २) की कमी कर दी है। यह इसलिए कि इधर 'सरस्वती' की ग्राहक-संख्य काफ़ी वृद्धि हो गई है। चूँकि 'सरस्वती' के सञ्चालकों उद्देश इस पत्रिका के द्वारा एकमात्र सत्साहित्य का प्र ही रहा है और उसे उन्होंने धनोपार्जन का साधन नहीं बनाया, इसलिए जब ग्राहक इतने अधिक बढ़ कि उसके मूल्य में एक तिहाई कमी करने की गुंजाइश गई तब संचालकों ने यह निश्चय करना उचित स कि उसके मूल्य में यथाशीघ्र कमी कर दी जाय। फ 'सरस्वती' के ग्राहकों तथा पाठकों को यह सूचना देते हमें प्रसन्नता होती है कि उनके सहयोग की बदौलत अगली जनवरी से 'सरस्वती' का वार्षिक मूल्य ४॥) हो है। आशा है, हिन्दी के प्रेमी इस परिवर्तन से उठायेंगे।

Printed and published by K. Mittra. at The Indian Press, Ltd., Allahabad.